वर्ष ४३

परलोक और पुनर्जन्माङ्क

संख्या १

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय-जय ।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय ॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर ।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा । जय गणेश, जय शुभ-आगारा ॥
जयति शिवाशिव जानकिराम । गौरीशंकर सीताराम ॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम । व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजाराम । पतितपावन सीताराम ॥

[संस्करण १,६०,०००]

जीवनका फल

सियराम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है ।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नाम, हिएँ पुनि रामहि को थलु है ॥
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति राम सों रामहि को बलु है ।
सबकी न कहै, तुलसीके मतें इतनो जग जीवनको फलु है ॥

—तुलसीदासजी

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु. ९.००
विदेशमें रु. १२.३५
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

इस अङ्कका मूल्य
रु० ९.००
विदेशमें १२.३५
(१५ शिलिंग)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

'कल्याण'के प्रेमी पाठकों और ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

(१) जगत्में जितना-जितना भौतिकवाद और भोगवादका प्रसार-प्रचार हो रहा है, उतना ही उतना ही भगवान्, धर्म, परलोक, पुनर्जन्म और दैवी सम्पदामें विश्वास घट रहा है और उसी अनुपातमें कामोपभोगमयी दम्भ, दर्प, अभिमान, काम, क्रोध, लोभ, असत्य, द्वेष, वैर, हिंसा, अशान्ति, विषाद, भय, स्वेच्छाचार, भ्रष्टाचार और अत्याचाररूपिणी आसुरीसम्पदाका विस्तार हो रहा है एवं बुद्धिके तमसाच्छन्न होनेके कारण इसीमें मनुष्य प्रगति, उन्नति, विकास, अभ्युदय, सुख आदिकी मिथ्या कल्पना करके मिथ्या सुखकी आशा-तृष्णासे जला जा रहा है। मानव-जीवनका उद्देश्य 'भगवत्प्राप्ति' या 'आत्मसाक्षात्कार' है—इसको वह प्रायः भूल-सा गया है। शिक्षा, सेवा, समृद्धि तथा बाह्य त्यागके और राजनीति, समाजसुधार, धर्म तथा अध्यात्मके स्थल—आदि सभी क्षेत्रोंमें न्यूनाधिक रूपसे प्रायः भोगोन्मुखी विनाशी प्रवृत्ति चल रही है। इसके फलस्वरूप विनाश, दुःख, पतन आदि भी बढ़ते जा रहे हैं। पता नहीं, क्या परिणाम होगा। इस परिस्थितिमें भगवत्प्रेरणावश इस 'परलोक और पुनर्जन्माङ्क'का प्रकाशन इसीलिये किया जा रहा है कि किसी अंशमें पतन और विनाशकी ओर जानेवाले प्रबल प्रवाहमें कहीं कुछ रुकावट हो। इस अङ्कमें ऐसी ही सामग्री संग्रह करनेका प्रयास किया गया है। इसमें गहन दार्शनिक विषय भी हैं और सरल सहज उद्बोधक प्रसङ्ग भी हैं। घटनाएँ भी दी गयी हैं। चित्र भी हैं। इससे यह विद्वान्, अविद्वान् सभीके लिये उपयोगी है। हमारा उद्देश्य तो केवल 'भगवत्प्रीति' और 'भगवत्सेवा' ही है। कुछ न भी होगा तो भगवान् तो अपनी वस्तुको स्वीकार कर ही चुके हैं। यही परम लाभ है।

(२) इस विशेषाङ्कमें ७०० पृष्ठकी पाठ्य-सामग्री है। सूची आदि अलग हैं। तिरंगे, इकरंगे, बहुत-से चित्र भी हैं। अवश्य ही हम जितने और जैसे चित्र देना चाहते थे, उतने और वैसे परिस्थिति-वश नहीं दिये जा सके हैं। पर जो दिये गये हैं, वे सुन्दर तथा उपयोगी हैं। चित्र बहुत समीप-समीप न रहें, इसलिये उनके कथा-प्रसङ्गोंके साथ न दिये जाकर प्रायः इधर-उधर लगाये गये हैं। पाठक महोदय क्षमा करें।

(३) कागज, डाक-महसूल, वेतन आदि सभी प्रकारका खर्च गतवर्षकी अपेक्षा भी बहुत अधिक बढ़ जानेसे 'कल्याण'में घाटा लग रहा है। नौ रुपये मूल्यमें घाटेकी पूर्ति नहीं हो रही है। पर अभी यही मूल्य रक्खा गया है। इस स्थितिमें हम अपने ग्राहकोंसे इस बार इतना विशेषरूपसे अनुरोध करते हैं कि वे अपना पवित्र कर्तव्य समझकर 'कल्याण'के अधिक-से-अधिक ग्राहक बनाकर रुपये भिजवानेका प्रयत्न करें।

(४) कई कारणोंसे इस बार भी विशेषाङ्क बहुत देरसे जा रहा है। गत बारहवाँ अङ्क भी विलम्बसे गया है। परिस्थितिसे विवश होनेके कारण ही ऐसा करना पड़ा। ग्राहक महानुभावोंको बार-बार पत्र लिखने पड़े। हमें इस बातका बड़ा खेद है। प्रेमी ग्राहक महोदय कृपया क्षमा करें।

(५) 'कल्याण'का विशेषाङ्क तो निकल गया है। पर इस समय देशमें चारों ओर

परलोक और पुनर्जन्माङ्ककी विषय-सूची

बहुरंगे चित्र

दुरंगा चित्र

सादा चित्र

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क (डाकखर्च सबमें हमारा है)

१—संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क

इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी विविध दिव्य लीलाओंका बड़ा ही रोचक वर्णन है। पृष्ठ-संख्या ७०४, ब १७, दोरंगा १, इकरंगे ६, रेखाचित्र १२०, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्द रु० ८.७५।

२—धर्माङ्क

धर्म-सम्बन्धी विवेचनाओं, सुरुचिपूर्ण कथाओं, सरस सूक्तियों तथा रोचक निबन्धोंसे युक्त। ७००, बहुरंगे चित्र १४, दोरंगा १, सादे चित्र ४ तथा रेखाचित्र ८१, सजिल्द (कपड़ेकी जिल्द) मूल्य रु०

३—श्रीरामवचनामृताङ्क

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके विविध विषयोंपर कहे हुए आदर्श वचनोंका अभूतपूर्व स रामगीता भी है। पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र ९, दोरंगा १, एकरंगा १, रेखाचित्र ६४, मूल्य रु० सजिल्द रु० १०.०० मात्र।

साधक-संघ

देशवासियोंका जीवनस्तर यथार्थ रूपमें ऊँचा हो; उनमें सदाचार, संयम, भक्तिका उदय नगा ैल हो—इसके लिये 'साधक-संघ'की स्थापना की गयी है। इसमें सदस्योंको कोई शुल्क नहीं देना पड़ता। योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-न्दनी' दी जाती है, उसके लिये ३० पैसेका मनीआर्डर अथवा डाकके टिकट (रेवेन्यू नहीं) लिफाफेमें कर प्रतिवर्ष मँगवा लेना चाहिये। उसीमें वे अपने नियम-पालनका ब्योरा लिखते हैं। सभी कल्याणकामी -पुरुषोंको स्वयं इसका सदस्य बनना चाहिये और अपने बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों एवं साथी-गियोंको भी प्रयत्न करके सदस्य बनाना चाहिये। इस समय २५७३ सदस्य हैं। नियमावली इस पतेपर लिखकर मँगवाइये—संयोजक, 'साधक-संघ' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) उ० प्र०

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीगीता और श्रीरामचरितमानस—ये दो ऐसे लोक-कल्याणकारी और जीवनके सारे प्रश्नोंका समाधान नेवाले ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसीलिये समितिने ग्रन्थोंके द्वारा लोकमानसको ऊँचा उठानेके लिये परीक्षाओंकी व्यवस्था की है। उत्तीर्ण छात्रोंको स्कार भी दिया जाता है। परीक्षाके लिये स्थान-स्थानपर केन्द्र स्थापित किये गये हैं। इस समय गीता-मायण दोनोंके मिलाकर कुल ५०० केन्द्र और लगभग २०,००० परीक्षार्थी हैं। नियमावली मगाइये।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पो०—स्वर्गाश्रम, (पौड़ी-गढ़वाल)

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—दोनों आशीर्वादात्मक प्रासादिक ग्रन्थ हैं। इनके प्रेमपूर्ण स्वाध्यायसे लोक-परलोक दोनोंमें कल्याण होता है। इन दोनों मङ्गलमय ग्रन्थोंके पारायणका तथा इनमें वर्णित आदर्श सिद्धान्त और विचारोंका अधिक-से-अधिक प्रसार हो—इसके लिये 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ' उन्नीस वर्षोंसे चलाया जा रहा है। अबतक गीता-रामायणके पाठ करनेवालोंकी संख्या लगभग ५५,००० हो चुकी है। इन सदस्योंसे कोई शुल्क नहीं लिया जाता। सदस्योंको नियमितरूपसे गीता-रामचरितमानसका पठन-अध्ययन और विचार करना पड़ता है। इस संस्थाके द्वारा श्रीगीताके ६ प्रकारके और श्रीरामायणके ३ प्रकारके एवं उपासना-विभागमें नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी या मानसिक पूजा करनेवाले सदस्य बनाकर श्रीगीता और श्रीरामायणके अध्ययन एवं उपासनाके लिये प्रेरणा की जाती है। विशेष जानकारीके लिये इसके नियम और आवेदन-पत्र कार्ड लिखकर मगानेकी कृपा करें।

मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम, (पौड़ी-गढ़वाल) उ० प्र०

The Kalyana-Kalpataru

1. The Gitā-Tattva Number—I — Price Rs. 2.50
   (An Exhaustive Commentary in *English* on the Bhagavad-Gitā along with the original Sanskrit text from Chapters I to VI)
2. The Bhāgavata Number—II, V and VI (@Rs. 2.50 each.) — " Rs. 7.50
   (An English Translation of Books IV to VI, Book X (Latter Half) and Books XI, XII with original Sanskrit text of the Bhāgavata)
   (Numbers I, III, & IV containing Books I to III, VII to IX and the First Half of Book X respectively, are out of stock.)
3. The Vālmiki-Rāmāyaṇa Number—I, II, III, IV, V, VI & VII — Rs. 18.00
   (An English Translation, with the original Sanskrit text of the Bālakāṇḍa to Sundarakāṇḍa of the Vālmiki-Rāmāyaṇa— @ Rs. 2.50 each, the price of only Sundarakāṇḍa is Rs. 3.00)

Postage free in all cases. MANAGER—KALYANA-KALPATARU, P. O. Gita Press (Gorakhpur)

८—गीता-दैनन्दिनी सन् १९६९—पृष्ठ-संख्या ४१६, मूल्य साधारण जिल्द .७५, कपड़ेकी जिल्द ,, [illegible]

९—श्रीव्रज-रस-माधुरी—पृष्ठ-संख्या २७५, ... ,, [illegible]

१०—श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत-महोत्सव—पृष्ठ-संख्या ७२, ... ,, [illegible]

११—मधुर—भाग १—(दिव्य श्रीराधा-माधव-प्रेमकी मधुर झाँकी) पृष्ठ-संख्या १७६, ... ,, .६

१२—कलेजेके अक्षर—(पढ़ो, समझो और करो भाग २) पृष्ठ-संख्या १३६, ... ,, .५

१३—आदर्श मानव-हृदय—(,, भाग ३) पृष्ठ-संख्या १२६, ... ,, .५

१४—दान करना धर्म नहीं, आवश्यकता है—(पढ़ो, समझो और करो भाग ४) पृष्ठ-संख्या १२०, ,, .५०

१५—भलेका भला और बुरेका बुरा—(पढ़ो, समझो और करो भाग ५) पृष्ठ-संख्या १२६, ,, .५०

१६—उपकारका बदला—(पढ़ो, समझो और करो भाग ६) पृष्ठ-संख्या १३२, ... ,, .५०

१७—असीम नीचता और असीम साधुता—(पढ़ो, समझो और करो भाग ७) पृष्ठ-संख्या १३०, ,, .५०

१८—नवधा भक्तिके निदर्शन—(कहानी) ले०—श्रीचक्र, पृष्ठ-संख्या १०८, ... ,, .४०

१९—कर्मयोगकी चतुःसूत्री और चतुर्विध भक्त—(कहानी) ले०—श्रीचक्र, पृष्ठ-संख्या ७६, ... ,, .३०

२०—दस महाव्रत—(कहानी) ले०—श्रीचक्र, पृष्ठ-संख्या ७८, ... ,, .३०

२१—चमत्कारी आठ 'अ' कार—(कहानी) ले०—श्रीचक्र, पृष्ठ-संख्या ६२, ... ,, .२५

२२—त्रिविध श्रद्धा और त्रिविध त्याग—(कहानी) ले०—श्रीचक्र, पृष्ठ-संख्या ५०, ... ,, .२०

२३—बालकोंके कर्तव्य—ले०—ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ-संख्या ८६, ... ,, .३०

२४—ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री—ले०— ,, ,, पृष्ठ-संख्या ५८, ... ,, .२०

२५—भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारी-धर्म—ले० ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ-सं० ४४ ,, .१५

२६—तीन आदर्श देवियाँ—ले०—ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ-संख्या ३२, ... ,, .१२

दाम घटाये

१—हिन्दी बाल-पोथी—शिशु-पाठ भाग १—के दाम ३० पैसेसे घटाकर २५ पैसे कर दिये गये हैं ।

सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग । व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)
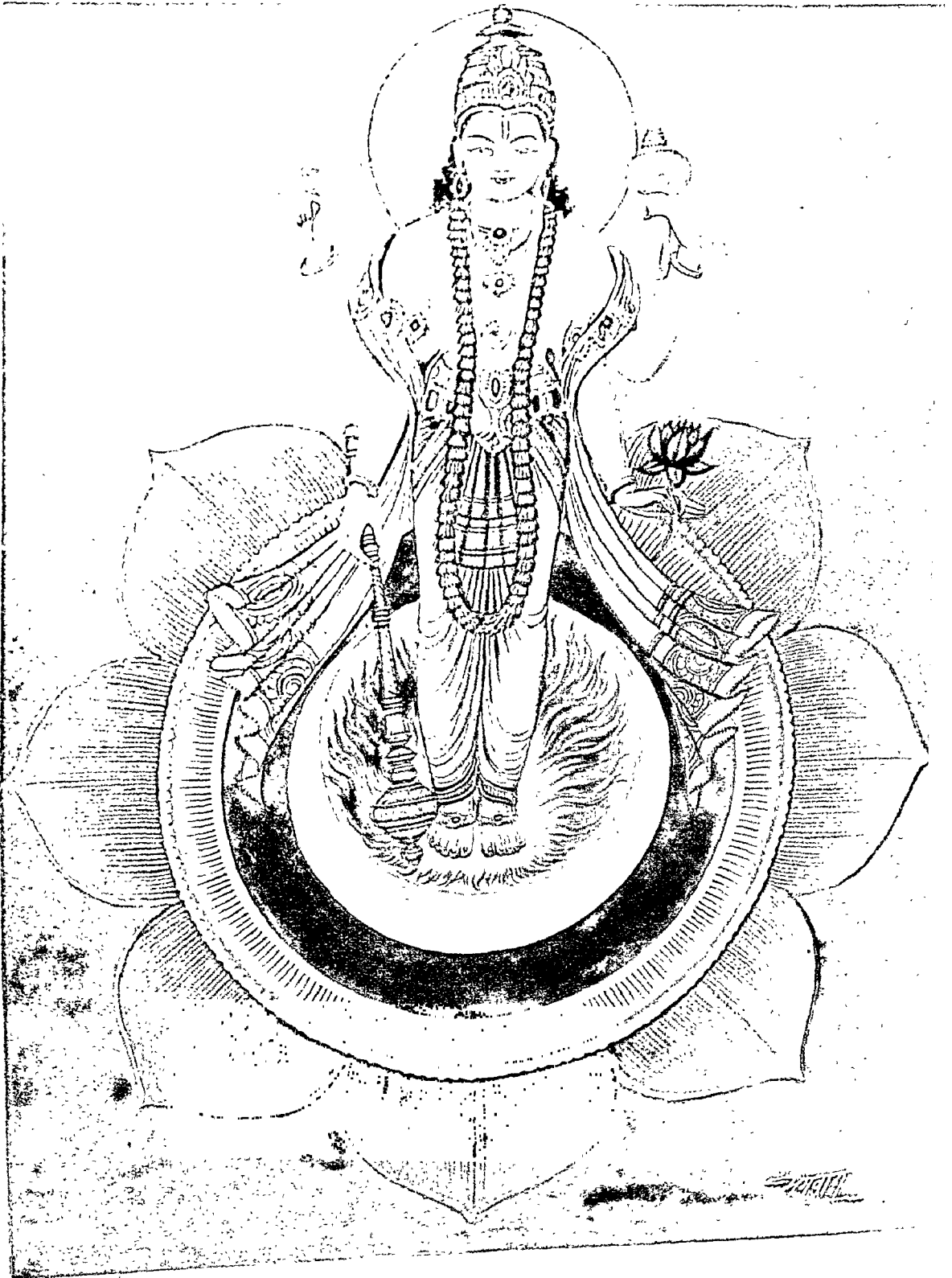
सूर्य-चन्द्र-अग्निको सूर्यत्व, चन्द्रत्व, अग्नित्व देनेवाले भगवान्

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥

वर्ष ४३ } गोरखपुर, सौर माघ २०२५, जनवरी १९६९ { संख्या १
पूर्ण संख्या ५०६

सर्वप्रकाशक ज्योतिर्मय भगवान्

देते सूर्य-सोम-मण्डलको, अग्निदेवको उज्ज्वल भास ।
अग्र-कमलदलपर वे नित्य स्थित हैं नारायण श्रीवास ॥
जिनके रोम-रोममें अगणित हैं ब्रह्माण्ड नित्य अव्यक्त ।
जो हैं कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके अनन्त रूपोंमें व्यक्त ॥
लीलामय वे लीलाकारण धरे विचित्र विविध बहु रूप ।
दर्शन हैं दे रहे चतुर्भुज विष्णु वही सब भाँति अनूप ॥

जन्म-मरणरूप संसारसे छूटकर भगवान्‌के परमपदको कौन प्राप्त होता है ?

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ (कठ० १।२।२०)

इस जीवके हृदयरूप गुफामें रहनेवाला आत्मा—परमात्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महान्‌से भी महान् है; परमात्माकी उस महिमाको कामनारहित, वीतशोक विरला पुरुष सर्वाधार परब्रह्म परमेश्वरकी कृपासे ही देख पाता है ।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥ (कठ० १।२।२३)

यह परमात्मा न तो प्रवचनसे, न बुद्धिसे और न बहुत सुननेसे ही प्राप्त हो सकता है; जिसको यह स्वीकार कर लेता है, उसीके द्वारा प्राप्त किया जा सकता है; यह परमात्मा उसके लिये अपने यथार्थ स्वरूपको प्रकट कर देता है ।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ (कठ० १।२।२४)

सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा भी इस परमात्माको न तो वह मनुष्य प्राप्त कर सकता है, जो बुरे आचरणोंसे निवृत्त नहीं हुआ है; न वह प्राप्त कर सकता है, जो अशान्त है; न वह ही, जिसके मन-इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं और न वही जिसका मन चञ्चल है । (सदाचारी, शान्त, समाहित और शान्तचित्त पुरुष ही प्राप्त कर सकता है ।)

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ (कठ० १।३।७)

जो सदा विवेकहीन बुद्धिवाला, असंयतचित्त और अपवित्रजीवन रहता है, वह उस परमपदको नहीं पा सकता; वर वह तो बार-बार जन्म-मृत्युरूप संसार-चक्रमें ही भटकता रहता है ।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥ (कठ० १।३।८)

परंतु जो सदा विवेकशील बुद्धिसे सम्पन्न, संयतचित्त और पवित्रजीवन होता है, वह उस परमपदको प्राप्त हो जाता है, जहाँसे लौटकर फिर संसारमें जन्म नहीं लेता ।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद् विष्णोः परमं पदम् ॥ (कठ० १।३।९)

जो मनुष्य विज्ञान-विवेकशील बुद्धिरूप सारथिसे सम्पन्न तथा मनरूपी लगामको सदा वशमें रखनेवाला है, वह इस संसारमार्गके उस पार पहुँचकर परब्रह्म परमात्मा विष्णुके उस महान् परम पदको प्राप्त हो जाता है ।

अमृतलोक

(रचयिता—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, 'राम', साहित्याचार्य)

(१)

चिन्मयीका एक व्यापक महान् पुञ्ज
कोटि रवि-शशिसे अमित और न्यारा है।
प्रतीत एकदेशमें ही सारा यह—
वारिद-सा व्योममें प्रपञ्चका पसारा है॥
[-]व्योम है, परम पद पुण्यधाम,
लोक है अमृत, अवलोकनीय प्यारा है।
उसे है, अभिनन्दन उसे है, वह
राधा-उर-चंद नन्दनन्दन हमारा है॥

(२)

[-]रे बन्धनोंमें विधि या निषेधके जो—
ऐसा नहीं वेद-उपवेद वहाँ कोई है।
[-]धा-वृष्टि हर दृष्टि करती है सदा
होता न किसीको कभी खेद वहाँ कोई है॥
[-]और धाम अतिशय अभिराम राम
दीखता न स्याह या सफेद वहाँ कोई है।
[-]था गेहीमें न, नेह तथा नेहीमें न,
देह तथा देहीमें न भेद वहाँ कोई है॥

(३)

[-]नीका, संविदका, ह्लादिनीका लीलालास्य
सत-चित-आनँदका विमल विलास है।
[-]के गुलाम यहाँ पाते हैं प्रवेश नहीं,
देश प्रीतिका है, प्रिया-प्रीतमका वास है॥
चातकी है वहाँ नित्य घनश्याम-रस
सतत चकोरीके सुधाकी निधि पास है।
है सभीके, किंतु पा सका न कोई भेद,
दूर भी है, पास भी, न दूर है, न पास है॥

(४)

[-]योंको अगम, सुगम प्रेम-योगियोंको
भूतल यहाँका नित्य-नूतन लखाता है।
[-]त समस्त ऋतुओंका सुविलास यहाँ
उरमें अमन्द मोदरस उमगाता है॥
जन्म-जरा-मरण शरण वहाँ पाते नहीं,
राज्य रसराजका न किसको लुभाता है।
क्लेश-द्वेष, लेश-आधि-व्याधिका प्रवेश नहीं,
देश राधिकाके सुखसिन्धु लहराता है॥

(५)

वैर या विरोध जड जगके निरुद्ध, उस
चेतन पुरीमें रस-रंगकी रवानी है।
इति-अथ-हीन वह अकथ अपथगम्य
सफल कहानीमें न वानीकी भी वानी है॥
प्रणयी असंख्य प्रीतिपात्र सबका है एक
पेड़-लतामें भी जहाँ छेड़ छेड़खानी है।
सानी उसकी क्या छैल गैलमें गलीमें जहाँ
करता यशोदाका सभीकी अगवानी है॥

(अमृतलोककी राधा)

(६)

चंदमुखी मुखसे बिछाती चाँदनीका जाल
धूरि-सी कपूरकी स्वहाससे उड़ाती है।
'राम' श्याम-घनकी घटा-सी घिर आती जब,
पाससे असित केशपाश लिये जाती है॥
कौंध उठती है बिजली-सी चकाचौंध लिये,
चपल कटाक्ष पल-पलमें चलाती है।
मन मनमोहनका मोह मनमोहनी यों
कान्तिसे धवल नेह नवल जगाती है॥

(७)

सच्चित्-सुखामृत-सरोवरके कंज मञ्जु
मोहन-मधुव्रतके सेव्य हैं, शरण हैं।
दस नख-चंद, मंद मलिन खचंद जहाँ
नीके चाँदनीके नव्य निर्झर-झरण हैं॥
मंद-मंद गतिसे गयंदके विनिन्दक हैं
नन्द-नन्द-तनके रतन-आभरण हैं।
'राम' अभिराम कोटि-कोटि रति-काम विना—
दामके गुलाम देख राधिका-चरण हैं॥

जीवनका सनातन प्रश्न

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीअभिनवसच्चिदानन्दतीर्थ स्वामीजी महाराज)

प्रायः सभी मनुष्योंके जीवनमें किसी-न-किसी समय ये प्रश्न आये बिना नहीं रहते कि 'मैं कहाँसे आया हूँ ?' और 'कहाँ जाऊँगा ?'—'कोऽहं कुत आयातः' । बात स्पष्ट है कि अज्ञलोग या अल्पज्ञलोग इन प्रश्नोंको टालनेका प्रयत्न करते हैं । अधिकांश विद्वान्लोग विचार करके थक जाते हैं और उत्तर शायद ही पाते हैं । ये प्रश्न सनातन हैं और खोज भी सनातन ही है । जगत्सृष्टिके समयसे यह खोज सभी देशों और सभी मतों तथा सभी दर्शनोंमें की जा रही है । सभी मतवाले लोग परलोक तथा पुनर्जन्मके सम्बन्धमें अपने-अपने विचार भी प्रदर्शित करते रहे हैं । इन सब विचारोंपर ध्यान किये बिना अपने-अपने आध्यात्मिक सिद्धान्तका स्थापित करना असम्भव नहीं तो, कठिन अवश्य है ।

कठोपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीताका बीज-प्रश्न भी यही है । अन्यान्य उपनिषदोंमें, पुराणोंमें और दर्शन-ग्रन्थोंमें इस विषयपर बड़ी चर्चा आयी है । वह ठीक ही है; क्योंकि पुनर्जन्म-परलोकसम्बन्धी चर्चाके बिना अध्यात्म-विचार हो ही नहीं सकता । कठोपनिषद्में—

> येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
> ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
> एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
> वराणामेष वरस्तृतीयः ॥
> (१ । १ । २०)

—यह जो प्रश्न अधिकारी शिष्य नचिकेताने गुरु ब्रह्म-विद्याचार्य वैवस्वत यमसे किया, वह प्रश्न सनातन ही है । गीताका द्वितीयाध्याय, जो गीताका हार्द है और जिसमें अर्जुनके इस प्रश्नका उत्तर आया है, वह सम्पूर्णतः कठोपनिषद्पर आधारित है । दोनोंमें 'नायं हन्ति न हन्यते' इत्यादि कई

सभी दार्शनिक ग्रन्थोंमें—विशेषरूपसे गीतामें स्पष्ट सिद्ध किया गया है कि आत्मा अजर-अमर तथा अविनाशी है—

> नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
> न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
> अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
> नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥
> (गीता २ । २३-२४)

और पुनर्जन्मके सम्बन्धमें सर्वश्रुत श्लोकोंमें बताया है—

> वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
> नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
> तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
> न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
> (गीता २ । २२)

> जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥
> (गीता २ । २७)

> ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
> क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
> (गीता ९ । २१)

—आदि प्रकरणोंमें तथा **'शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।'** (८ । २६) आदि प्रकरणमें भी जीवके बाहर जाने अर्थात् परलोकगमनके सम्बन्धमें स्पष्ट कहा गया है ।

परलोक और पुनर्जन्म भारतीय वैदिकधर्मकी मूलभित्ति होनेसे इन्हीं विषयोंपर यह 'कल्याण'के विशेषाङ्कका प्रकाशन सभीके लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होगा । 'इति शुभम्'

सारा शरीर पसीनेसे सराबोर है। इसी अवस्थामें बालकका जन्म भी हो जाता है। सर्वथा असहाय अवस्थामें वह अपने इस नवजात शिशुको खेतके साग-पत्ते, अन्न अथवा घासकी टोकरीमें रखकर, अपने सिरपर उठाकर घर चली आती है। स्पष्ट है कि उत्पन्न होते ही इन दोनों बालकोंको जो सुख-दुःखकी उपलब्धियाँ हुईं, उनका कुछ कारण होना चाहिये। यह केवल प्रकृतिकी लीला है—ऐसा कहकर पिण्ड छुड़ाना शोभा नहीं देता। अतः मानना पड़ेगा कि दोनोंने ही पहले कुछ ऐसे कर्म किये हैं, जिनके फलस्वरूप जन्मते ही उन्हें ये सुख और दुःख मिले। 'कर्मके फल', 'कर्म' और 'पुनर्जन्म'—तीनोंकी सिद्धि इस एक ऊपरके उदाहरणसे हो जाती है। लोग इसे स्वभाव, प्रकृति या नेचर कहकर संतोष भले ही कर लें, पर वस्तुतः इन समस्याओंका उत्तर तो तभी हो सकता है, जब इनके मूलकारणकी खोज की जाय और वह मूलकारण विभिन्न प्रकारके शुभाशुभ कर्म ही हो सकते हैं, जिनके फलस्वरूप प्राणिमात्रको तारतम्य या वैषम्यसे जन्मसे मृत्युपर्यन्त सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं।

कर्म भी फल देनेमें स्वतन्त्र नहीं हैं; क्योंकि वे जड हैं। लोकमें भी सेवा, नौकरी, व्यापार आदि कर्म स्वयं स्वतन्त्ररूपसे फल नहीं देते, अपितु किसी नियामक, स्वामी, व्यवस्थापक आदिके द्वारा फल देते हैं। नौकरी करनेवालेको नौकरीरूप उसका कर्म स्वयं वेतन नहीं देता; किंतु जिसकी वह नौकरी करता है, वह स्वामी नौकरीका

कोटि-ब्रह्माण्ड-स्वरूप इस संसारमें एक-एक ब्रह्माण्ड... अनन्तानन्त जीव हैं। ब्रह्माण्डकी अनेकता और अनन्तता अब वैज्ञानिक भी स्वीकृत कर चुके हैं। चन्द्र, शुक्र और सूर्यलोक तथा पृथ्वीका ओर-छोर लेनेके लिये अन्तरिक्ष उड़ान करनेवाले वैज्ञानिकोंने अपना यह स्पष्ट मत अ... व्यक्त कर दिया है कि इस दुनिया-जैसी ऐसी ही बहुत-दुनियाएँ विश्वमें सम्भव हैं। यही हमारे ब्रह्माण्डोंको अन... कहनेका तात्पर्य है। अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंमें एक-ए... ब्रह्माण्डमें अनन्तानन्त जीव रहते हैं, जिनका ज्ञान संसार किसी एकको तो क्या, सभी वैज्ञानिकोंको नहीं हो सकता मनुष्योंकी, पशुओंकी और किसी अंशमें पक्षियोंकी गण... की जा सकती है, किंतु कीट, पतङ्ग आदि योनियोंमें कित... जीव इस संसारमें भटक रहे हैं, इसका पता क्या स... संसारके वैज्ञानिक 'राउण्ड टेबल कान्फ्रेन्स' करके या जीवनभ... खोजबीन करके लगा सकते हैं? बरसातकी एक रात्रिमें ए... नगरके एक मुहल्लेकी एक सड़कके एक बिजलीके बल्ब... नीचे कितने हजार जीव एक ही रात्रिमें पैदा होकर सवेर होते-होते समाप्त हो जाते हैं। इन जीवोंकी गणना, भिन्न भिन्न जातियाँ, खान-पान और इनके सुख-दुःखके प्रकार जानना क्या आजकलके पहुँचे हुए वैज्ञानिकोंके लिये भी सम्भव है? किंतु यह सब कार्य ऐसा नियमित और व्यवस्थित होता है कि जिसके आधारपर एक किसी परम समर्थ सर्वज्ञ नियामक या व्यवस्थापककी कल्पना न चाहते हुए भी करनी पड़ती है; अन्यथा किस व्यक्तिने उन सब जीवोंको एक नियमित

यमें उत्पन्न किया, नियमित जीवन प्रदान किया और मित मृत्यु अथवा कराल कालके गालमें सन्निविष्ट दिया—यह प्रश्न सारे संसारके बुद्धिमानोंके सामने ड़ा ही रहता है।

ईश्वरको मान लेनेपर इसका सीधा समाधान हो जाता । अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंके एक-एक ब्रह्माण्डमें अनन्तानन्त व हैं। अनन्तानन्त जीवोंमें एक-एक जीवके अनन्तानन्त न्म हैं। एक-एक जीवके अनन्तानन्त जन्मोंमें एक-एक न्मके अनन्तानन्त कर्म हैं। अनन्तानन्त कर्मोंमें एक-एक र्मके अनन्त फल हैं और अनेक कर्मोंके एक-एक फल ते हैं। इनसे ही जन्म, संस्कार और फल नते हैं। ऊपर लिखे गये विवरणसे जीवोंके प्राग्जन्म, नर्जन्म और बारंबार जन्म न माननेवाले व्यक्तिसे यह छा जा सकता है कि मनुष्यका बालक छः महीनेमें यत्न करनेपर बैठना सीखता है; पर गाय, भैंस, गधे, घोड़ेका बच्चा पैदा होनेके कुछ क्षण पश्चात् ही केवल चलने ही नहीं लगता, अपितु उछलने-कूदने, फाँदने और भागने लगता है। पुनर्जन्म न माननेवालेसे हम पूछते हैं कि इन पशुओंके इन बच्चोंको यह ट्रेनिंग किसने दी? इसके लिये कहाँ 'ट्रेनिंग सेण्टर या इन्स्टीट्यूशन' खुले हुए हैं? पक्षियोंके बच्चोंको उड़ना किसने सिखाया? हंसको नीर-क्षीर-विवेककी शिक्षा किसने दी? कागके शावकको उत्तमोत्तम भक्ष्य, भोज्य, लेह्य पदार्थका परित्याग-कर अति बीभत्स और जघन्य विष्ठाकी ओर ही आकृष्ट होनेकी तत्परता किसने सिखलायी? सद्योजात सिंह-शावकको हरिणपर आक्रमण करनेका उपदेश किसने दिया? इन सबके उत्तरमें भी प्रकृति, स्वभाव, नेचर कहकर लोग संतोष भले ही कर लें, किंतु यह इन प्रश्नोंका सत्य समाधान नहीं, जब कि पुनर्जन्म, प्राग्जन्म और एक-एक संस्कारोंके उद्बोधसे, बिना किसीके सिखाये यह सब करने लगता है।

पूर्वजन्मके संस्कार मनमें रहते हैं। उन संस्कारोंका उद्बोधन करनेवाला देश, काल, अवस्था, परिस्थिति आदि कोई भी पदार्थ जैसे ही सामने आता है, संस्कार उद्बुद्ध हो जाते हैं और प्राणीको पूर्वजन्मके अभ्याससे उस कार्यमें प्रवृत्त कर देते हैं। यही कारण है कि पक्षीका बच्चा बिना शिक्षा या उपदेशके ही उड़ने लगता है। हंस नीर-क्षीर-विवेक कर लेता है और सिंह-शावक हरिणको दबोच बैठता है। कहा जा सकता है कि एक मनमें इतने संस्कार कैसे और कहाँसे आ सकते हैं? इसका उत्तर यही है कि जैसे घी, तेल, अचार अथवा ऐसी ही कोई अन्य वस्तु जिस मिट्टीके पात्रमें कुछ दिन रक्खी जाय, उस मिट्टीके पात्रको तेल, घी आदि निकालकर, सोडा, मिट्टी, गरम पानी आदि स्नेह-निवारक द्रव्योंसे रगड़-रगड़कर खूब अच्छी तरह धो लेनेपर भी क्या उस पात्रमेंसे चिकनाहटके संस्कार मिट सकते हैं? कहना न होगा कि धोनेके बाद तत्काल उसमें चिकनाहट भले ही दिखायी न दे, पर ज्यों-ही उस पात्रको धूप अथवा अग्निका संयोग प्राप्त होगा, चिकनाहट उससे बाहर आ जायगी। यहाँ चिकनाहटके संस्कार पात्रमें छिपे हुए थे, अग्नि अथवा आतपने संस्कारोंको उद्बुद्ध कर दिया। ठीक इसी प्रकार अनेक बार पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, देवता, दानव, मानव, कूकर, शूकर आदि योनियोंमें जन्म लेनेके कारण उन सबके कामोंके संस्कार प्रत्येक प्राणीके मनमें विद्यमान हैं, किंतु छिपे हुए रहते हैं। जैसे ही धूप या अग्निकी तरह उन संस्कारोंका उद्बोधक पशु-पक्षी आदिका जन्म मिला कि संस्कार उद्बुद्ध होकर, उस प्राणीको उठने-बैठने, दौड़ने-भागने, उड़ने, मारने-काटने आदिमें प्रवृत्त कर देते हैं। अतः एक-एक जीवके ...

होती रहती थी। धीरे-धीरे महात्माजीके पास लगभग एक लाख रुपये इकट्ठे हो गये। अपने प्रति सर्वाधिक श्रद्धा-भक्ति दिखानेवाले उस धनिकपर विश्वास कर महात्माने एक लाख रुपये उसीके पास जमा कर दिये। कुछ समयके पश्चात् उनकी इच्छा आश्रम बनानेकी हुई। सेठजीसे उन्होंने रुपये माँगे। उनकी नीयत बदल गयी। वे कहने लगे—'कैसे रुपये? कब दिये थे? आप-जैसे लंगोटी लगानेवालेके पास एक लाख रुपये?' इन अप्रत्याशित वचनोंको सुनकर महात्माके हृदयकी गति बंद हो गयी और तत्काल उनका प्राणान्त हो गया। उधर सेठजीके कोई संतान न थी। सेठजी इस घटनाको भूल गये; किंतु ठीक दसवें महीने उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऐसी धनसमृद्धियुक्त वृद्धावस्थामें पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी कभी आशा नहीं थी। पैदा होते ही इस खुशीमें पैसा पानीकी तरह बहाया जाने लगा। लड़केके लालन-पालन, देख-रेख, खिलौने आदिमें भी पैसेकी जगह रुपया खर्च किया जाने लगा। ऐसे लाड़-प्यारमें पला लड़का भी बचपनसे ही आवश्यकतासे अधिक खर्चीला होता चला गया। युवावस्थामें आते-आते उसकी फजूलखर्चीका पारावार न रहा। रात-दिन यार-दोस्तोंमें पड़े रहना, खाना-पीना, मौज करना और गुलछर्रे उड़ाना—यही उसकी वृत्ति बन गयी। प्रारम्भमें तो पिताने अपने इकलौते बेटेकी इस चर्यापर ध्यान नहीं दिया, किंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया, पिताकी चिन्ताएँ बढ़ने लगीं। फिर भी पिताने कभी यह हिसाब लगाकर नहीं देखा कि लड़का कितना खर्च कर चुका और कितना कर रहा है। सिलसिला जारी रहा।

× × × ×

जीवनमें शान्ति भगवत्-प्राप्तिसे ही हो सकती है और भगवत्प्राप्ति निष्काम कर्मके द्वारा चित्तकी शुद्धि, उपासनाके द्वारा चित्तकी एकाग्रता तथा ज्ञानके द्वारा अज्ञानका नाश होनेपर ही हो सकती है। मनसे भगवान्का साक्षात्कार होता है। मनमें मल, विक्षेप और आवरण—तीन दोष हैं। पहला दोष मनकी 'मलिनता' है, जिसका कारण है—जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरमें किये गये शुभाशुभ कर्मोंकी वासना। मैले कपड़ेको साबुन या क्षारसे धोनेपर जैसे उसमें स्वच्छता आती है, ठीक वैसे ही मनके मलिन संस्कारोंको धोनेके लिये शास्त्रविहित निष्काम कर्मकी आवश्यकता है। मनका दूसरा दोष है—'विक्षेप' अर्थात् चित्तकी चञ्चलता। उसके दूर करनेका एकमात्र उपाय है—भगवान्की भक्ति। दूसरे शब्दोंमें भगवान्में प्रेम। प्रेम उसी वस्तुमें उत्पन्न होता है, जिसके रूप और गुणोंका ज्ञान हो। लौकिक पदार्थोंमें भी उनके रूप और गुणोंका ज्ञान होनेपर ही प्रेम उत्पन्न होता है; इसी प्रकार भगवान्में प्रेम उत्पन्न करनेके लिये भगवान्के रूप और गुणोंका ज्ञान आवश्यक है और भगवद्रूप तथा गुणोंके ज्ञानका साधन है—इतिहास-पुराणद्वारा भगवान्के पवित्र चरित्रका श्रवण अथवा पठन। भगवान्के चरित्रका जितना ही अधिक श्रवण अथवा पठन होगा, उतना ही अधिक भगवान्में प्रेम बढ़ता चला जायगा। जैसे-जैसे प्रेम बढ़ेगा, वैसे-वैसे ही भगवान्में मन भी लगने लगेगा। स्त्री-पुत्रादिमें भी प्रेम बढ़नेसे ही मन लगता है और प्रे[illegible] बढ़ानेका उपाय—जिसमें प्रेम हो, उसके रूप औ[illegible]

शरीररूपी आत्माका किन्हीं भी सदसत् उपायोंद्वारा
ायन करते रहो और आनन्दसे जीवन बिताओ।
स्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः । ऋणं कृत्वा घृतं
त्।' इत्यादि उनका घण्टा-घोष है।" इस स्थितिके
ुसार शरीरकी उत्पत्ति भी कामासक्त स्त्री-पुरुषोंके परस्पर
-संघर्षके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इस प्रकारके
ार्वाकवादियोंके लिये काम-तृप्ति सर्वत्र समान है।

अब 'आस्तिक' सम्प्रदाय आता है। वह नास्तिककी
र्युक्त आंशिक युक्तियोंकी धज्जी उड़ा देता है कि 'यदि
रीरकी उत्पत्ति (जीवन) और विनाश (मृत्यु) का कोई
ेष कारण नहीं है तो सभी मनुष्य समान रूप, समान-
रीर, समान आयु और समान भोगवाले होने चाहिये थे।
षमताका क्या कारण है?' समान रूपादिके सम्बन्धमें
ास्तिक यह कहकर कपड़े छुड़ाना चाहता है कि 'किसी
शकी जलवायु, खान-पान और आर्थिक व्यवस्थाके ढाँचेके
नुसार रूप, आयु और अवस्था निर्भर करती है।' पर हम
छते हैं कि जन्मसे अंधे, जन्मसे गूँगे और जन्मसे बहिरे क्यों
उत्पन्न होते हैं? यदि यह कहो कि इसमें माता-पिताका दूषित
ुक्र और शोणित ही कारण है, तो पूछना होगा कि इससे
पहलेके और बादके बच्चोंमें इस प्रकारका ऐन्द्रिय-दोष न
होनेसे शुक्र-शोणितका दूषण कहाँ गया? अतः यह अवश्य
मानना होगा कि हमारे जीवन-मृत्युके साथ न केवल प्राणका
संसर्ग है, अपितु और भी कोई इस प्रकारके तत्त्व अवश्य हैं,
जो प्राणके सहचारी या प्राणानुगामी हैं। वह तत्त्व सम्भूय होकर
जैसे इस शरीरको धारण करता है, ठीक उसी प्रकारसे
शरीरान्तर-धारणकी क्षमता भी रखता है। जैसे इस भूलोकमें
इस शरीरद्वारा रहता है, उसी प्रकार इस लोकमें देहान्तर
और लोकान्तरमें शरीरान्तर प्राप्त करनेकी क्षमता भी रखता
है। इसलिये—

चैतन्यं यदधिष्ठानं लिङ्गदेहश्च यः पुनः।
चिच्छाया लिङ्गदेहस्था तत्संघो जीव उच्यते॥
(पञ्चदशी-द्वैत ११)

—के अनुसार लिङ्गशरीरकी कल्पनाका आधारभूत
चैतन्य-अधिष्ठान, लिङ्गशरीर—पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय,
पञ्चप्राण, मन और बुद्धि—ये सत्रह तत्त्व तथा इन सत्रह
तत्त्वोंमें पड़ा हुआ चिदाभास—यह 'जीव' शब्दसे लिया
जाता है। अतएव यह सत्रह तत्त्ववाला जीव कर्मानुसार
शरीरान्तरमें गतागत करता रहता है। इस प्रकार अधिष्ठान-
चैतन्य, लिङ्गदेह और चिदाभास—इनकी कभी मृ
नहीं होती और न इनका कभी जीवन होता है। इनसे यु
शरीरका ग्रहण 'जन्म' और उस शरीरका त्याग ही 'मृ
मानी जाती है। अतएव गीतामें—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(२।२

—कहा गया है। 'जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रे
उतारकर नवीन वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी प्रकार
जीव भी पुराने शरीरका त्यागकर नवीन देह धारण क
है।' पुराने वस्त्रके त्याग और ग्रहणमें भी कुछ निमित्त ह
है। कोई उत्सव या अन्य हेतु होनेपर ही वस्त्रान्तर ध
किये जाते हैं। ठीक उसी प्रकार कर्मनिमित्तक ही देहा
के धारण करनेका कारण होता है। इसीलिये छान्दो
पनिषद् (६।८।४)में 'सन्मूलाः सौम्य इमाः सर्वाः प्र
सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः' कहकर सिद्ध किया गया है कि
सौम्य! इस समस्त संसारका मूल सत्तत्त्व है और इस
प्रजाका एकमात्र सदधिष्ठान है और सब प्रजा सत्तत्त्वमें
स्थित है।' इस प्रकार शरीरसे भिन्न, प्राणसे भिन्न तथा इन्ि
ग्रामसे भिन्न एक तत्त्व है, जो शरीरान्तरोंमें गतागत क
है और उसकी जीवन तथा मृत्यु—ये दो गतियाँ हैं।

यह तो एक अत्यन्त सामान्य और साधारण-सी
है। पर इसमें भी आगे बहुत ही विचारणीय बात य
कि आखिर वह तत्त्व, जो पूर्वोक्त तीन वस्तुओंका संघ
वह कैसे मनुष्य और स्त्रीके शुक्र-शोणितमें पहुँचा, क
गया, कैसे गया इत्यादि। यह एक गम्भीर विचार
है। इसी प्रसङ्गको दृष्टिमें रखते हुए श्वेताश्वतर-उपनि
आरम्भमें लिखते हैं—

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्॥
(श्वे० अ० १।

इसका उत्तर देते हुए आगे लिखा है—'काल, स्व
नियति, यदृच्छा, भूत प्रभृति आत्म-संयोगसे शरीरके क
होते हैं, केवल आत्मा इस सम्बन्धमें कारण नहीं माना जात

जैसे उत्पत्स्यमान अङ्कुरके प्रति न केवल बीज कारण है, न केवल भूमि और न केवल कृषक—बीज, भूमि, कृषक, जल-वायुसे सभी समुदित होकर अङ्कुरके कारण बनते हैं, ठीक उसी प्रकार अन्नादि मेघद्वारा, शुक्र-शोणित अन्नद्वारा बननेपर जीव भी उन-उन पदार्थोंके द्वारा उन्हींमें ओतप्रोत हुआ जीवन-मरणके चक्करमें पड़ा रहता है। इस महाचक्रसे छुटकारा पानेके लिये जप, तप, ध्यान और समाधिका विधान शास्त्रोंमें बताया गया है। वह एक देव आत्मा या ब्रह्मपदवाच्य ऊर्णनाभि (मकड़ी) की भाँति अपने द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुओंसे ही अपनेको बाँध लेता है। ठीक उसी प्रकार यह आत्मारूपी दिव्य प्रकाशवाला देव अपने द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुओंसे अपनेको ही बाँध लेता है। यथा—

यस्तूर्णनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः। देव एकः स्वमावृणोति। स नो दधातु ब्रह्माव्ययम्॥

(श्वेताश्वतर० ६।१०)

इसी बातको और स्पष्ट करते हुए कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद्-में लिखा है कि—'लोग इस संसारको छोड़कर परलोकमें जाते समय पहले चन्द्रमामें पहुँचते हैं। यदि उन जीवोंके कर्म जन्म लेनेके योग्य होते हैं तो वे वर्षाद्वारा भूमिपर आ[illegible] हैं और जिस शरीरके उपयोगी उनके कर्म होते [illegible] शरीरोंमें वे पहुँच जाते हैं। कोई कीड़े, पतंगे, पक्षी, कोई मनुष्य, देव, गन्धर्व इत्यादि शरीरोंमें जन्म ग्रह[illegible] लेते हैं।'

इस प्रकार जीवन-मृत्युका शास्त्रोंमें बहुत विवेचन[illegible] पर वस्तुस्थिति यह है कि वही एक तत्त्व ब्रह्म या सर्वत्र है। कर्मानुसार उसीका देहान्तरमें प्रवेश-निवेश है। यह सब सत्-असत् कर्म-कलापका परिणाम है। व[illegible] यदि आत्म-तत्त्वको ठीक समझ लिया जाय—मन[illegible] निदिध्यासनद्वारा पूर्ण निष्ठा हो जाय तो जन्म दे[illegible] कर्मोंकी समाप्ति हो जाती है। जब जन्म देनेवाले कर्म [illegible] तो मृत्यु कहाँसे। इसलिये वेदान्तियोंका यह डिण्डिम घोष है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

(आत्मोपनिषद् ३१)

पुनर्जन्मकी दृष्टिसे मानवका कर्तव्य

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित श्रीकांचीकामकोटिपीठाधिपति जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीजी महाराज)

संसारमें सब जीव-जन्तु 'प्राणी' कहलाते हैं। जिनमें प्राण हैं, वे प्राणी हैं। सभी प्राणी सदा कुछ-न-कुछ काम करते ही रहते हैं। चींटी सदा इधर-उधर फिरती रहती है। कीड़े-मकोड़े भी कुछ-न-कुछ कार्य करते रहते हैं। पक्षी उड़ते या खाते-पीते रहते हैं। बुद्धिजीवी मानव अपने कार्यालयमें जाता है, वहाँ कुछ काम करता है। श्रमजीवी किसान खेती-बारीका काम करता है। मजदूर मजूदरी करता है। इस प्रकार मनुष्यमात्र विविध कामोंमें लगे रहते हैं। दुनियामें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो बिना कुछ किये सर्वदा चुपचाप बैठा रहे। इसी बातको स्पष्ट करते हुए भगवान्ने गीतामें कहा है—

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

(३।५)

'कोई भी क्षणभरके लिये भी बिना कुछ कर्म किये नहीं रहता।' इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव सदा कर्मरत रहता है। छोटे गाँवमें रहनेवालोंके काम कम रहते हैं; बड़े शहरोंमें कि 'मानवको किसलिये सदा काम करते रहना पड़ता है?'

मानवको इसीलिये सदा कर्मरत रहना पड़ता है कि वह जीवनमें अनिष्ट दूर करना और सुखी रहना चाहता है और यह सुनिश्चित है कि मनुष्य तभी सुखी रह सकता है, जब वह किसी-न-किसी उपयोगी काममें लगा रहे। बेकाम रहना उसके लिये बड़ा दुःखदायक है। मनुष्यको काम करते रहनेके लिये अंदरसे सदा प्रेरणा मिलती रहती है। जैसे प्रत्येक जीवके अंदर 'भूख' नामक एक चीज है। वह भूख अपनी शान्तिके लिये प्रत्येक मनुष्यको काम करनेकी सदा प्रेरणा देती रहती है। यदि वह कोई काम नहीं करता है तो उसका पेट भूखकी ज्वालासे जलने लगता है। अतः इस 'भूख' नामक रोगके शमनके लिये दवाकी खोजमें मनुष्यको काम करना ही पड़ता है। शिरोवेदनाके लिये यदि हम कोई दवा लगा देते हैं, तो वह वेदना तुरंत मिट जाती है। कभी बहुत दिनोंके बाद फिर शायद आती है। पर यह भूख ऐसा रोग नहीं है। दूसरे रोगोंमें और इस रोगमें

ृखायी दे, तभी दवा लेनी पड़ती है। जबतक इसकी दवा · हो जाय, तबतक दूसरा काम होना कठिन होता है। ्सके लिये सभीको प्रयत्न करना पड़ता है। बाघ या सिंह हेरन या बैलको मारता है तो वह इसी रोगको दूर करनेके लेये। मनुष्य भाँति-भाँतिके वेष बनाकर, नाना प्रकारसे सब तरहकी बुद्धि लगाकर पैसे कमाता है, तो इसीके लिये। भूखे-भटकते मानवको यदि ढूँढनेपर कहीं दो मुट्ठी चावल मिल जाते हैं तो वह तुरंत उन्हें सिजाकर खा लेता है और बड़ा तृप्त होता है। यह काम भी उसका इसीलिये होता है। मनुष्यको जीवित रहनेके लिये काम करना ही चाहिये। वह एक क्षण भी निकम्मा नहीं रह सकता।

फिर यह बात भी है कि मनुष्य यदि कुछ भी काम न करे तो उसका शरीर बेकार बन जाता है। अतः दरिद्र-धनी सब काम करते हैं। बल्कि धनीको तो वस्तुतः मन-तनसे अधिक काम करना पड़ता है; क्योंकि उसको यह चिन्ता लगी रहती है कि उसके पैसे सुरक्षित रहने चाहिये। इस चिन्तासे उसका मन सदा काम करता रहता है। यह सत्य है कि एक उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणकी अपेक्षा लाखों-करोड़ोंवाला धनी बहुत अधिक काम करता है।

मनुष्यके द्वारा किये जानेवाले काम विभिन्न हेतुओंसे विभिन्न प्रकारके होते हैं। मनुष्य कुछ काम अपने शरीरके लिये और अपने सम्बन्धियोंके लिये करता है। उसको अपने बाल-बच्चे, स्त्री, माता-पिता आदि सम्बन्धियोंका संरक्षण तथा भरण-पोषण करना पड़ता है। अतः उनकी देख-भालके लिये उसे काम करना पड़ता है। तदनन्तर अपने बैल, गाय, कुत्ते, बिल्ली, घरके नौकर-चाकर, अपने खेतोंमें काम करनेवाले मजदूर आदिकी भी देख-भाल करनेके लिये कुछ काम करना पड़ता है। फिर मनुष्यके लिये ग्राम-समाजके सम्बन्धमें भी काम रहते हैं। जैसे घरवालेका कर्तव्य अपने घरको साफ-सुथरा तथा सुन्दर रखना है, वैसे ही गाँववालोंका कर्तव्य है कि वे अपने गाँवको साफ, स्वच्छ तथा सुन्दर रक्खें। जिस प्रकार मनुष्यके लिये अपने कुटुम्बका काम करना आवश्यक है, उसी प्रकार गाँवका काम करना भी प्रयोजनीय है। इसके पश्चात्, देशके तथा राष्ट्रके काम आते हैं। जिम्मेवार मनुष्य उन कामोंका सम्पादन भी करता ही है।

इस प्रकार विभाजित कामोंमें छोटे-बड़े सभी काम—

दन्तधावन करना, कपड़े साफ करना, स्नान करना, भ करना आदि काम अपने निजके प्रयोजनके लिये किये हैं। घर बनाना, उसको साफ रखना, घरमें आ चीजोंका संग्रह तथा रक्षण करना इत्यादि परिवार-क काम हैं। नाले बनाना, कुएँ-तालाबोंका निर्माण तथा मरम्मत कराना, गाँवमें दवाखाना खोलकर रोगों करनेके लिये प्रबन्ध करना और शिक्षालयोंकी स्थापन आदि ग्राम-समाजके काम हैं। देशभरकी भलाई अन्यान्य बहुत-से काम किये जाते हैं, जिनसे आ लोग भलीभाँति परिचित हैं।

जो सशक्त हैं, वे अशक्तकी रक्षा करते हैं। मनुष्य बच्चोंको उनकी छोटी अवस्थामें पाल-पोसकर बड़ तथा योग्य बनाता है और बादमें अपनी वृद्धावस उनके द्वारा पाला-पोसा जाता है। यह सब काम चलते आ रहे हैं। यह स्वभाव केवल मनुष्य-सम नहीं, परंतु पशु-पक्षियोंमें भी न्यूनाधिक रूपमें जाता है।

सारी दुनियामें काम चलते रहते हैं। म विभिन्न कामोंमें यथायोग्य भाग लेता है। बहुत-प्रधानतासे समाज-कल्याणके लिये विविध कार्य साथ ही अपना काम भी करते जाते हैं।

मानवके लिये साधारणतः तीन ही चीजें आवश्यक हैं—(१) भूख मिटानेके लिये आहार धूप-सर्दी आदिसे अपनेको बचानेके तथा मान संरक्ष वस्त्र और (३) विश्राम तथा निवास करनेके इनके अतिरिक्त जो चीजें वह एकत्र करता है, बाल-बच्चोंके पालन-पोषण और उनके विवाह अन्यान्य सामाजिक, व्यक्तिगत आवश्यकताकी संग्रहवृत्तिकी चरितार्थताके लिये करता है।

पहले भूखको रोगके रूपमें और भोजनको उस रूपमें बताया गया है। इसमें एक विशेषता है—

क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौष स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात् प्राप्तेन सं शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथावाक्यं स मौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपानैष्ठुर्यमुत्स

(भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य—साधनपञ्च

इस श्लोकमें भगवान् श्रीशंकराचार्यजी, 'क्षु व्याधिको अन्नरूपी औषधसे दूर करो' यह

हैं। रोगी उतनी ही औषध खाता है, जितनी उसे अपना रोग दूर करनेके लिये पर्याप्त हो। अपनी रुचिके अनुसार दवाओंको मनमाने तौरपर लाकर नहीं खाता। वहाँ भी, जो दवा सस्तेमें मिलती है, उसीको खरीदकर खाता है। इस श्लोकका तात्पर्य है कि शरीर-धारण करनेके लिये साधारण भोजन ही पर्याप्त है।

इन आवश्यक चीजोंको उपलब्ध करनेके लिये जो काम किये जाते हैं, उनके अतिरिक्त मानवको दूसरे काम भी रहते हैं। कभी-कभी मानव मन्दिर, मस्जिद् या गिरजाघर बनाता है; भस्म-रुद्राक्ष आदि धारण कर पूजा-पाठ करता है; संध्या-उपासना आदि कर्म करता है; भजन करता है। इसपर यह प्रश्न होता है कि 'इन कामोंसे क्या उसकी भूख मिटेगी? क्या उसे वस्त्र मिल जायगा और क्या रहनेके लिये घर प्राप्त हो जायगा?' मोटी दृष्टिसे देखनेपर तिलक धारण करना, मन्दिर बनाना, पितृ-श्राद्ध करना, पूजा-पाठ करना, अन्नदान करना आदि कर्म उपर्युक्त अत्यन्त आवश्यक चीजोंको उपलब्ध करनेके लिये नहीं किये जानेके कारण अनावश्यक मालूम होते हैं। परंतु मानव अनादिकालसे ऐसे काम भी करता आ रहा है। अतः हमें विचार करना चाहिये कि इनसे क्या लाभ होते हैं? मानव इनको क्यों करता है?

मनुष्यका स्वभाव है कि वह एक दिनके लिये भोजन मिल जानेपर उससे तृप्त नहीं होता। भविष्यके लिये भी आज ही कुछ चीजें इस विचारसे संग्रह करके अपने पास रखना चाहता और रखता है कि भविष्यमें यदि तकलीफ आयी तो उस समय उसका सामना करनेके लिये भी हमें तैयार रहना चाहिये। कुछ चीजें ऐसी हैं, जो पके अन्नकी तरह थोड़े समयके लिये ही उपयोगी रह सकती हैं। कुछ और चीजें हैं, जो और अधिक समयतक काममें आती हैं। जैसे गेहूँ, चावल आदि कच्चा अनाज। परंतु धन आदि ऐसी चीजें हैं, जो तरह-तरहके उपयोगके लिये काममें आती हैं और अधिक दिनोंतक सुविधासे रखी जा सकती हैं। बुद्धिमान् मनुष्य दीर्घकालतक रख सकने योग्य चीजोंको ही संग्रहके लिये चुनता है, न कि मूर्खकी तरह थोड़े दिन रहनेवाली चीजोंको। आत्मा अमर है। शरीरका ही जन्म-मरण है। इसलिये इस नित्य आत्माको सुखी रखनेके लिये जो काम करना आवश्यक तथा उचित है, उसीमें

मान लीजिये, हम किसी पहाड़ीकी इस ओर हमारे पास हजार रुपये हैं। यह पूरा धन पैसोंके रूपमें है। वहाँ चोर आते हैं। ऐसा भय लगा र[ह] उनके और हमारे बीचमें झगड़ा होगा। परंतु पहाड़ीके ऊपर चढ़कर उस पार चले जायँ तो यह रहेगा। उसी समय भाग्यवश कोई मनुष्य आ[कर कहे] कि 'क्या उन सिक्कोंके बदलेमें आप एक हज[ार का] नोट लेंगे?' तो हम क्या करेंगे? पैसोंकी गठरी देकर नोट ले लेंगे और दौड़कर पहाड़ीके उस प[ार] सुखी रहेंगे। परंतु, यहाँ एक शर्त है। वह यह जो नोट मिले हैं, वे पहाड़ीके उस पार भी चलने चाहिये। प्रत्येक जीवकी भी यही स्थिति है। अप[नी] अनुसार भविष्यके लिये जितना भी वह उपयोगी सकता है, उतना ही अच्छा है और वह उसी चाहता है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि 'हमें तो इस लो[क में] जीवित रहना है, भविष्यके बारेमें क्यों सोचना सम्बन्धमें एक कहावत है—

'नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको [हतः]।'

आस्तिक कहता है—'अभी अच्छे-अच्छे क[र्म करो,] क्योंकि इस जन्मके बाद दूसरा जन्म भी रहेगा, ये अच्छे कर्म काम आयेंगे।' नास्तिक बोलता [है] निश्चितरूपसे यह कह सकता है, इस जन्मके बा[द] पुनर्जन्म लेंगे। अतः क्यों ऐसा करें?' पर य[ह] ज्ञानकी चीज है कि यदि अब हम अच्छे उपयो[गी] संग्रह रखेंगे तो भविष्यमें वे लाभदायक होंगे। भावी जन्म है तो सत्कर्मसंग्रह करनेवाला आस्ति[क] रहेगा और यदि भावी जन्म नहीं है तो उसकी हानि नहीं हुई—उसने बुराई तो कुछ की ही न[हीं।] यदि भावी जन्म रहा तो सत्कर्म न करनेवाले कष्ट होगा ही।

अतएव अच्छे कर्म करना सदा ही अच्छ[ा है।] हम कहीं यात्रा करते हैं तो उस समय हमारा रहना चाहिये। वैसे ही इस शरीरको छोड़कर जगह जाते समय भी हमारा मन शान्त और चाहिये। उसके लिये यदि हम आवश्यक काम तो बादमें हमें ही कष्ट होगा। इस दिशामें उपयुक्त

जो भी काम हम आज करते हैं, उनका फल इस
में नहीं मिला तो दूसरे जन्मोंमें अवश्य मिलना
हिये। यह नियम आत्माके विषयमें अटल है। हमारे
ोंने न्यूटनके क्रिया-प्रतिक्रिया—नियम (Action-
action) को शताब्दियों पूर्व आत्मिक विषयमें भी
णित कर दिया था। हमारे शास्त्र इस बातकी घोषणा
े हैं कि किसी भी क्रियाकी प्रतिक्रिया अवश्य होती है।

क्रैस्तव (ईसाई) लोग जन्मान्तरको नहीं मानते हैं;
ु उनकी कुछ बातोंसे पता चलता है कि वे अनजान
र भी किसी-न-किसी रूपमें पुनर्जन्मको मानते हैं। वे
ते हैं कि 'शरीर-पतनके पश्चात् जीवात्माका न्याय-निर्णय
ावान्‌के समक्ष होता है और तब वह नरक या स्वर्गको
ा जाता है। सुख-दुःखका अनुभव करनेवाला शरीर
पि यहाँ पेटीमें पड़ा रहता है, फिर भी जीवको इस
ीरके साधनसे किये गये कर्मोंके कारण सुख या दुःख—
र्ग या नरकमें भोगना पड़ता है।' इसीको हम 'पुनर्जन्म'
हते हैं। उस देशमें (स्वर्ग या नरकमें) सुख-दुःख
ोगनेके पहले उनके कारण जो कर्म थे, उनके लिये एक
न्म अवश्य था। इसी तर्कके अनुसार हम कह सकते हैं
क इस जन्मके सुख-दुःखके कारण इसके पहले जन्ममें किये

यं पालयसि धर्मं त्वं धृत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु॥
(वाल्मीकिरामायण, अयोध्याकाण्ड २५। ३

'राघव! तुम्हारी सुरक्षाके लिये मैं क्या करूँ? के
धर्म ही निश्चय तुम्हारी रक्षा करेगा। तुम जिस धर्मका
और नियमके साथ पालन करते आ रहे हो, वही
तुम्हारी रक्षा करेगा। यही मेरा एकमात्र अनुग्रह है।'
भी नियम प्रसिद्ध है कि यदि हम धर्मकी रक्षा और पा
करेंगे तो वह धर्म हमारा रक्षण तथा पालन करेगा—'ध
रक्षति रक्षितः।'

श्रीकौसल्याजीके कथनानुसार जो धर्म श्रीरामचन्द्रकी
करनेवाला था, वही धर्म परमेश्वरके अखण्ड चतुर्दश भु
राज्यमें चलनेवाला नोट है। अतः हमारे दूसरे कामोंके साथ-
हमें ऐसे भी काम अवश्य करने चाहिये, जो 'धर्म' कह
हैं और जिनका उल्लेख पहले मन्दिर बनाने, भगवा
भक्ति करने, अन्नदान करने, सेवा-परोपकार करने इत्य
'अनावश्यक' कामोंके अन्तर्गत किया जा चुका है।

वास्तवमें जो भी कर्म ईश्वरार्पण-बुद्धिसे किया जाता
वह धर्मके रूपमें परिणत हो जाता है और निरन्तर आ
देनेवाला होता है। अपने स्वार्थके लिये न होकर, दूसरे

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यका परलोक और पुनर्जन्म-सिद्धान्त

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित निखिलमहीमण्डलैकदेशिक सर्व तन्त्र-स्वतन्त्र जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्री'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज)

श्रीमते सर्वविद्यानां प्रभवे प्रभविष्णवे ।
आचार्याय मुनीन्द्राय निम्बार्काय नमो नमः ॥

वेद-संहिता, ब्राह्मण-ग्रन्थ, उपनिषद्, पुराण, स्मृति, सूत्र, महाभारत तथा रामायण आदि समस्त शास्त्रोंमें पुनर्जन्म और परलोकसम्बन्धी विशद विवेचनाएँ मिलती हैं। जहाँ-तहाँ जो शङ्कापरक वचन मिलते हैं, वे सब पूर्व-पक्षके रूपमें हैं। दर्शनोंमें चाहे आस्तिक हों या नास्तिक, केवल एक चार्वाक-दर्शनको छोड़कर सभी दर्शनकारोंने पुनर्जन्म और परलोकका समर्थन किया है।

स्थूलदेह विनश्वर है। इसके छहों भावविकारोंका प्रत्यक्ष अनुभव सभीको होता ही है।

'अस्ति जायते वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यति ।' यास्क मुनिकी यह उक्ति तथा **'सस्यमिव मर्त्यो जायते पच्यते च ।'** नचिकेताका यह वचन अक्षरशः सत्य है। जो जन्मते हैं, बढ़ते हैं, वे विकृत और क्षीण होकर विनष्ट होते रहते हैं।

जीवात्मा अजर-अमर एवं अविनाशी है। उसे अपने अनादि कर्मोंके अनुसार शरीर प्राप्त होते हैं, उनके द्वारा वह शुभाशुभ कर्मोंके फलोंको भोगता है और पूर्वसंस्कारोंके अनुसार कर्म करता रहता है। समय पाकर उनका वियोग हो जाता है। इस प्रकार जबतक जीवोंके कर्म एवं उनके संस्कार बने रहते हैं, तबतक जन्म-मरणरूपी संसृति-चक्र चलता है। उन कर्मोंका क्षय भोगसे, ज्ञान एवं प्रभकी पराभक्तिसे हो सकता है। पराभक्तिद्वारा प्रभुका सा

व्यक्ति फटे हुए पुराने वस्त्रोंको त्यागकर नवीन वस्त्रोंको करता है।[1] आत्मा वास्तवमें न कटता है, न है, न सूखता है, न गलता ही है।[2]

जीवात्मा शरीरसे निकलकर दूसरे शरीरमें प्रविष्ट है, अथवा पुनर्जन्मसे छुटकारा पाता है। इन दोनों मार्ग बतलाये गये हैं। पहलेको **'धूमयान'** (कृष्णगति) है और दूसरेको 'देवयान' (शुक्ल-गति) एवं अर्चिरादि कहा गया है। वेद-उपनिषद् आदि शास्त्रोंमें अर्चिरादि-के क्रमवर्णनमें जहाँ-तहाँ विभेद प्रतीत होता है, सबका समन्वय श्रीवेदव्यासजीने स्वरचित ब्रह्मसूत्रोंमें दिया है।[3] संक्षेपमें उसका निष्कर्ष यह कि भगव परम भक्त एवं ज्ञानीजन अर्चिमार्गसे जाते हैं वे मुक्त हो जाते हैं। उनके कर्मबन्धन समाप्त हो जाते अतः फिर उनका जन्म नहीं होता।

इष्टापूर्तादि सकाम कर्मोंमें निरत रहनेवाले जीव मार्गसे जाते हैं और स्वर्गादि लोकोंमें पुण्यका फल भो वापस लौट आते हैं। इसी प्रकार पापकर्म करनेवाले नर भोगकर पुनः यहाँ जन्म ग्रहण करते हैं।

इन दोनों मार्गोंके अतिरिक्त तृतीय मार्ग क्षुद्र जन्तुओंका है, वह "जायस्व म्रियस्व"[4] अर्थात् प्रतिदिन जन्मना और मरना ही है उनका उत्क्रमण न देवयानसे होता है, न पितृयाणसे।

आराधक देवलोकोंमें और पितरोंके आराधक पितृलोकोंमें जाते हैं ।' (गीता ९ । २५)

उपर्युक्त गीता-वाक्योंमें परलोकके साथ-साथ पुनर्जन्मका भी संकेत है । इनके अतिरिक्त निम्नाङ्कित वाक्योंमें और भी स्पष्टरूपेण पुनर्जन्मका उल्लेख है । 'जन्मे हुएकी मृत्यु और मरे हुएका जन्म अवश्य होता है ।' (गीता २ । २७) 'हे अर्जुन ! मेरा अनेक बार अवतार हुआ है । तेरे भी कई बार जन्म हो चुके; किंतु उनका तुझे स्मरण नहीं है ।' (गीता ४ । ५) 'योगभ्रष्ट व्यक्ति मृत्युके पश्चात् पवित्र सम्पत्तिवाले एवं योगियोंके घरमें जन्म लेता है ।' (गीता ६ । ४१) 'अनेकों जन्मोंतक अभ्यास करनेपर परम गति मिलती है ।' (गीता ६ । ४५ एवं ७ । १४)

कुछ व्यक्ति "अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ।' (श्रीमद्भा० ३ । ३० । २९) कपिलदेवकी इस उक्तिके आधारपर नरक-स्वर्गादि परलोकोंका इसी मृत्युलोकमें अन्तर्भाव कर बैठते हैं । उन्हें इसके उत्तरार्ध वाक्यपर भी विचार करना चाहिये—

'या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ।'

अर्थात् 'चोरी आदि पापकर्म करनेवालोंको जो यहाँ दण्डादि भोगने पड़ते हैं, वे उन नरकादि लोकोंकी यातनाओंके भी उपलक्षक हैं । अर्थात् जिस प्रकार पापियोंको दण्ड यहाँ मिलता है, उसी प्रकार परलोकोंमें उन्हें दण्ड भोगना पड़ता है ।'

आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यने भी ऐसा ही स्पष्टीकरण किया है—

"उक्तलक्षणप्राणादिमाञ्जीवो हि सूक्ष्मभूतसम्परिष्वक्त एव देहं विहाय देहान्तरं गच्छति ।"

(ब्र० सू० ३ । १ । १की पारिजात-सौरभ)

अर्थात् 'जीवात्मा जब अपने पूर्व स्थूलशरीरको छोड़कर दूसरे स्थूलशरीरमें प्रवेश करता है, तब सूक्ष्मशरीरके साथ ही जाता है ।' इत्यादि वचनोंसे उनकी पुनर्जन्मसम्बन्धी मान्यता स्पष्ट होती है । पुनर्जन्मकी मान्यतासे परलोककी मान्यता यद्यपि स्वतःसिद्ध हो जाती है, तथापि उनकी रची हुई 'वेदान्तकामधेनु' (दशश्लोकी) के तृतीय श्लोकमें सूक्ष्मतया समस्त लोक-लोकान्तरोंका दिग्दर्शन भी कराया गया है । श्रीपुरुषोत्तमाचार्यकृत 'वेदान्तरत्नमञ्जूषा' (दशश्लोकी-भाष्य) आदि ग्रन्थ इस सम्बन्धमें द्रष्टव्य हैं ।

इसी सिद्धान्तका समर्थन श्रीनिम्बार्काचार्यके परवर्ती, श्रीनिवासाचार्य, श्रीदेवाचार्य, श्रीविलासाचार्य, श्रीसुन्दरभट्टाचार्य, श्रीकेशवकाश्मीरि भट्टाचार्य, श्रीहरिव्यास-देवाचार्य, श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद, श्रीअनन्तराम आदि सभी आचार्य एवं विद्वान् ग्रन्थकारोंने किया है । शास्त्रीय वाक्योंके अतिरिक्त लौकिक युक्तियाँ और तर्कोंसे भी उन्होंने पुनर्जन्म और परलोककी सिद्धि की है । यह सिद्धान्त अनादि, अनन्त अतएव स्वाभाविक है । किसी भी तार्किकमें इसे हिलानेकी शक्ति नहीं है, चाहे वह कैसी भी आलोचना करता रहे ।

मृत्यु-मीमांसा

(लेखक——अनन्तश्रीविभूषित आचार्य श्रीअनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी महाराज तर्कशिरोमणि)

'परलोक' और 'पुनर्जन्म' का माध्यम 'मृत्यु' है। एक लोकके रससे संचित विलक्षण शरीर-इन्द्रिय आदिका त्याग और अन्य लोकमें संचित विलक्षण शरीर-इन्द्रिय आदिका ग्रहण 'पुनर्जन्म' है। 'मृत्यु' के बिना ये दोनों अनुपपन्न हैं। अतः परलोक और पुनर्जन्मके जिज्ञासुओंको 'मृत्यु'के स्वरूपका ज्ञान भी परम आवश्यक है। 'मृत्यु'का स्वरूपज्ञान मोक्ष-कारण-सामग्रीमें भी अन्यतम है। अतः इस मिताक्षर लेखमें 'दैवत-मीमांसा' के आधारपर 'मृत्यु-मीमांसा' की जाती है।

'अथ मृत्युः कस्मात्।'

अर्थात् 'मृत्युमें विद्यमान 'मृत्युत्व'का स्वरूप क्या है?' जिज्ञासाका समाधान कठ, कपिष्ठल, मैत्रायणी एवं तैत्तिरीय आदि संहिताओंमें उपलब्ध 'मृत्यु' शब्दके अर्थतः निर्वचन, शतपथ, गोपथ, जैमिनीय एवं ऐतरेय आदि विज्ञान-ग्रन्थोंमें उपलब्ध 'मृत्यु' शब्दके निर्वचन एवं शतबलाक्ष मौद्गल्य, आग्रायण, शाकपूणि एवं यास्क आदि नैरुक्तोंद्वारा अनुगृहीत 'मृत्यु' शब्दके निर्वचन कर रहे हैं। इनमें अथर्ववेदानुबन्धी 'गोपथब्राह्मणों'में उपलब्ध **'स समुद्रादमुच्यत। स मुच्यु-रभवत्। मुच्युरेव मृत्युः।'** निर्वचन 'विशकलन'को मृत्युका 'मृत्युत्व' कह रहा है। नैरुक्त भगवान् यास्ककृत **'मारयति इति मृत्युः।'** निर्वचन उच्छेदको 'मृत्युत्व' कह रहा है। नैरुक्त शतबलाक्ष मौद्गल्यकृत **'मृतं च्यावयति इति मृत्युः'** निर्वचन मृतभागके निरसनको 'मृत्युत्व' कह रहा है। नैरुक्त आग्रायणकृत **'मुञ्चति इति मृत्युः'** निर्वचन मोचनको 'मृत्युत्व' कह रहा है।

तो वह विशकलन, अवसान, उच्छेद, मोचन और च्यावन रूप धर्मोंका आश्रय (धर्मी) मृत्यु कौन है? जिज्ञासाके समाधानमें काठक, कपिष्ठल एवं मैत्रायणी आदि वैदिक शाखाएँ शतपथ, गोपथ, जैमिनीय एवं तैत्तिरीय आदि विज्ञान (ब्राह्मण) ग्रन्थ एवं आग्रायण, शतबलाक्ष मौद्गल्य, औदुम्बरायण और भगवान् यास्क आदि नैरुक्त प्रवृत्त हुए हैं। इनमें 'मैत्रायणी' शाखाका विज्ञान है—

(१) अग्निर्वै मृत्युः।

'अग्नि मृत्यु है।'

माध्यन्दिन-शाखानुबन्धी 'शतपथ'का विज्ञान है—

(२) संवत्सरो हि मृत्युः। एष हीदमहोरात्रा क्षिणोति। अथ म्रियन्ते।

'संवत्सर मृत्यु है। यही दिन और रात्रिद्वारा क्षय करता है। इससे पदार्थोंकी आयु क्षीण होती है क्षय मृत्यु है।'

'शतपथ ब्राह्मण'का पुनरपि विज्ञान है—

(३) अवाङ् प्राणो वै मृत्युः।

'अवाङ्प्राण मृत्यु है।'

'जैमिनीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(४) अशनाया वै मृत्युः।

'बुभुक्षा मृत्यु है।'

'तैत्तिरीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(५) अपानान्मृत्युर्निरभिद्यत।

'अपानसे मृत्युका प्राकट्य हुआ है।'

कण्व-शाखानुबन्धी 'शतपथ'का विज्ञान है—

(६) छायामयः पुरुषो मृत्युः।

'छायामय पुरुष मृत्यु है।'

'शतपथ'का पुनरपि विज्ञान है—

(७) श्रमो वै मृत्युः। आदित्यो मृत्युः।

'श्रम मृत्यु है। आदित्य भी मृत्यु है।'

मृत्यु-मीमांसा

कण्वशाखानुबन्धी 'शतपथ'का विज्ञान है—

(८) प्राणो वै मृत्युः।

'प्राण मृत्यु है।'

पुनरपि 'शतपथ'का विज्ञान है—

(९) आदित्यात्मना एको मृत्युः। प्राण बहवो मृत्यवः।

'सूर्यरूप एक मृत्यु है। प्राणरूपसे अनेक मृत्यु'

'मैत्रायणी शाखा'का विज्ञान है—

(१०) एकशतं मृत्यवः।

'एक सौ एक मृत्यु हैं।'

'तैत्तिरीयशाखा'का विज्ञान है—

(११) अमुमाहुः परं मृत्युं पवमानं तु मध्यम अग्निरेवावमो मृत्युश्चन्द्रमाश्चतुर्थ

'सूर्य पर मृत्यु है। पवमान मध्यम मृत्यु है। अग्नि तृतीय त्यु है। चन्द्रमा चतुर्थ मृत्यु है।'

'शाङ्खायन ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(१२) **मृत्योर्ह वा एतौ वज्रबाहू यदहोरात्रे।**

'मृत्युके ये वज्ररूप हाथ हैं, जो दिन-रात हैं।'

'जैमिनीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(१३) **स यो ह स मृत्युरग्निरेव सः।**

'वह जो वह मृत्यु है, वह अग्नि ही है।'

पुनरपि 'जैमिनीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(१४) **अहोरात्रे मृत्यू।**

'दिन और रात्रि मृत्यु हैं।'

'जैमिनीय ब्राह्मण'का स्थलान्तरमें विज्ञान है—

(१५) **अग्निवायुसूर्यचन्द्रमसा मृत्यवः।**

'अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्रमा—ये मृत्यु हैं।'

पुनरपि 'जैमिनीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(१६) **प्रजापतिर्वै मृत्युः।**

'प्रजापति ही मृत्यु है। उनका नाम प्रभूयान् है।'

मीमांसा

'कर्म-मीमांसा'में संदिग्ध वस्तुके निर्णयके लिये आविष्कृत न्याय-कलापोंके आधारपर इन सब निगम-वाक्यों तथा नैरुक्तोंके मतोंका समन्वय करके मृत्युके स्वरूपका 'इदमिदम्, इदमित्थम्, इदमियत्' रूपसे निर्णय किया जाता है।

'गोपथ-ब्राह्मण'में उपलब्ध '**स समुद्रादमुच्यत। स मुच्युरभवत्। मुच्युरेव मृत्युः।**' विज्ञानके अनुसार प्रत्येक पदार्थमें विद्यमान जीवनरूप अंशुओंका विशकलन 'मृत्यु' है। वह विशकलन अग्नि, वायु, सूर्य और सोमसे होता है। अतः 'मैत्रायणी संहिता'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'**अग्निर्वै मृत्युः।**' जैसे अग्नि प्रतिक्षण पदार्थोंको क्षीण करता है, वैसे वायु भी करता है। अतः 'जैमिनीय ब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'**वायुर्वै मृत्युः।**' वायु दो प्रकारका है—याम्य (उष्ण) और सौम्य (शिव) वायु। इनमें यहाँपर 'वायु' शब्दसे याम्य वायुका ही ग्रहण होता है। कारण कि वही पदार्थोंके सौम्य-अंशुओं (अमृतमय आयुरूप अंशुओं) को प्रतिक्षण क्षीण करता रहता है। सौम्य वायु तो उनका रक्षक है, अतः याम्य वायु 'मृत्यु' है। सूर्य भी प्रतिक्षण पदार्थोंके अमृतमय कणोंको क्षीण करता रहता है। अतः 'जैमिनीय ब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'**सूर्यो वै मृत्युः।**' चन्द्रमा भी अग्निका मृत्यु है। चन्द्र भी सूर्यरश्मियों और आग्नेय किरणोंकी मृत्यु है। अ 'जैमिनीय ब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'**चन्द्र वै मृत्युः।**' 'चन्द्रमा' शब्दसे यहाँपर जलका भी ग्र है। जल अग्निकी मृत्यु है। जैमिनीय ब्राह्मणमें इन नामान्तर भी उपलब्ध हैं। अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्र रूप मृत्युओंके क्रमशः 'रीहत्', 'अजिर', 'म्रोचत्' 3 'अत्स्यत्'—ये नामान्तर हैं। इनमें उत्तम, मध्यम 3 अधम विभाग भी विज्ञान (ब्राह्मण) ग्रन्थोंमें उपलब्ध इस विषयमें 'तैत्तिरीय ब्राह्मण'का विवेचन है—

अमुमाहुः परं मृत्युं पवमानं तु मध्यमम्।
अग्निरेवावमो मृत्युश्चन्द्रमाश्चतुरुच्यते॥

सूर्यके दो रूप हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। इ बाह्य सूर्य है, आभ्यन्तर प्राणरूपमें प्राणियोंमें स्थित है प्राणोंकी स्थिति भी सोम-अंशुओंपर ही विश्रान्त है। भी प्रतिक्षण सोमांशुरूप जीवनखण्डोंके क्षीण करनेसे 'मृ है, अतः 'शतपथ'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'**प्राणो मृत्युः।**' इनमें सूर्यरूपसे वह शरीरके बाहर व्याप्त प्राणरूपसे वह शरीरके भीतर व्याप्त है। इन दो रूपोंसे ब और आभ्यन्तर स्थितिको ही वेदान्तोंमें 'अन्तर्व्या और 'बहिर्व्याप्ति' कहा है। इस रहस्यको न जाननेके क कतिपय अज्ञजन परमात्माकी जीवात्मामें अन्तर्व्याप्ति अथवा बहिर्व्याप्ति है—इसको लेकर महान् कलहमें प्र हैं। उनको ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें प्रतिपादित रहस्योंका य ज्ञान न होनेसे वे आकल्प अज्ञान-पङ्कमें ही नि रहेंगे। अग्नि, वायु और सूर्यद्वारा पदार्थनिष्ठ स अंशुओंका प्रतिक्षण क्षय संवत्सरकी सहायतासे अहोर द्वारा ही होता रहता है। अतः 'शतपथब्राह्मण'में विज्ञान प्र हुआ है '**संवत्सरो हि मृत्युः। एष हीदमहोरात्राभ्याम क्षिणोति। अथ म्रियन्ते।**' श्रम भी अग्निरूप है। उ भी अमृतरूप सोमकलाओंका क्षय होता है। अतः 'शतप में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'**श्रमो वै मृत्युः।**' अ श्रमसे मनुष्य क्लान्त हो जाता है। वस्तुकी स्वस्व स्थिति 'जीवन' है। उससे विच्युति 'मृत्यु' है। अश (बुभुक्षा) से जीव स्वस्थितिसे च्युत हो जाता है। 'शतपथ'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'**अशनाया वै मृत्यु** मृत्यु एक प्रकारका काला आग्नेय प्राण है। अतः 'शतपथब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'**छायामयः**...

मृत्युः।' पुरुषका अर्थ वेदोंमें प्राण है। प्राङ् प्राण सूर्य है। अवाङ् प्राण अग्नि है। अग्नि मृत्यु है। अतः 'शतपथ' में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'अवाङ् प्राणो वै मृत्युः।' इस अवाङ् प्राणकी प्राणियोंके अपानमें स्थिति है। अतः 'तैत्तिरीय संहिता'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'अपानो वै मृत्युः।' पदार्थ दो प्रकारके हैं—अमृत और मृत्यु। इनमें अमृत पदार्थोंका च्यावन नहीं हो सकता, कारण कि वे अमृत-धर्मा हैं। मृत पदार्थोंका ही अवाङ् प्राण च्यावन करता है। अतः नैरुक्त शतबलाक्ष मौद्गल्यने 'मृत्यु' शब्दका **'मृतं च्यावयति इति मृत्युः।'** निर्वचन किया है। यहाँपर 'मृत' शब्दके अर्थमें मतभेद है। कतिपय विद्वान् क्षरणशील पदार्थोंको मृत मानते हैं। उनके मतमें क्षरणशील पदार्थोंके परमाणुओंका च्यावन करनेके कारण अवाङ् (पार्थिव) प्राण मृत्यु है। अन्य विद्वान् 'मृत' शब्दका प्राणहीन वस्तु अर्थ करते हैं। उनके मतमें प्राणहीन पृथिवी, जल और वायुओंका च्यावन मल-मूत्र और अपान-वायुके रूपमें अवाङ् प्राण करता रहता है। अतएव—**'मृतं प्राणहीनं वस्तु च्यावयति इति मृत्युः।'** निर्वचनसे 'अपान-प्राण' 'मृत्यु' है। यह 'मृत्यु' सूर्यरूपसे एक है, प्रत्येक पदार्थमें प्राणरूपसे स्थित अनेक; अतः 'शतपथ'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—

'आदित्यात्मना एको मृत्युः, प्राणात्मना बहवो मृत्यवः।'

मृत्युके दिन और रात वज्रमय बाहु हैं, अतः 'शतपथ'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—

'मृत्योर्ह वा एतौ वज्रबाहू यदहोरात्रे।'

नैरुक्त भगवान् यास्ककृत **'मारयति इति मृत्युः'** निर्वचन उच्छेद, उत्क्रान्ति एवं अवसानको 'मृत्यु' कह रहा है; परंतु ये कार्य यमके भी यममीमांसाके द्वितीय अध्यायमें कहे गये हैं। परंतु प्रतिक्षण विनाश 'मृत्यु' है। सर्वथा उच्छेद 'यम' है।

एक सौ एक मृत्युएँ

कठ, मैत्रायणी और कपिष्ठल आदि वेदकी शाखाओंमें एक सौ एक मृत्युओंका उल्लेख है। इनमें इन्द्रिय, वध, रोग, शोक और काम-क्रोध आदि सौ मृत्युएँ हैं। इनका प्रतीकार (चिकित्सा) है। परंतु उच्छेदरूप एक मृत्युका कोई प्रतीकार नहीं है। मनुष्योंके लिये अपनी नियत आयु-तक जीवित रहना अमृतत्व है।

स्तुति-ऋचा

'निरुक्त'में भगवान् यास्कने 'मृत्यु'की स्तुतिमें 'तस्यैष भवति' निर्देश करके **'परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम्'** ऋचाको उद्धृत किया है। इसकी आनुपूर्वीके शरीरका गुम्फन इस रूपमें उपलब्ध है—

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां
यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि
मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्॥

(ऋग्वेद १०। १८। १)

अन्वय—

हे मृत्यो परम् पन्थाम् अनुपरेहि, यः ते देवयानात् इतरः स्वः पन्थाः। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि। नः प्रजाम् मा रीरिषः। उत वीरान् मा रीरिषः। इति प्रार्थयामः।

भाष्यम्—

(**हे मृत्यो**) हे मृत्युरूप अग्निके अभिमानी देव! (**त्वम्**) आप (परम्) अन्य (पन्थाम्) मार्गमें (अनुपरेहि) पधारें, (यः) जो मार्ग (ते) आपका (देवयानात्) देवयान-मार्गसे (इतरः) भिन्न (स्वः) अपना (पन्थाः) मार्ग है। (अहम्) मैं (संकुसुकः) संकुसुक-नाम ऋषि (चक्षुष्मते) चक्षुष्मान् और (शृण्वते) कर्णवान् आपके उद्देश्यसे (ब्रवीमि) कहता हूँ कि (नः) हम सबकी (प्रजाः) प्रजाओंको (मा) मत (रीरिषः) क्षीण करें। (उत) और (वीरान्) वीरोंको भी (मा) मत (रीरिषः) क्षीण करें।

विशेष—

देह-त्यागके अनन्तर लोकान्तरमें संचारको 'गति' कहते हैं। गतिके हेतु नियत देशको 'पथ' (मार्ग) कहते हैं। पितृयाण और देवयान भेदसे पथ दो प्रकारके हैं। दक्षिण-मार्ग, धूममार्ग, कृष्णमार्ग और पितृमार्ग—ये 'पितृयाण'के नामान्तर हैं। उत्तर-मार्ग, अर्चिमार्ग, शुक्लमार्ग और देवयान मार्ग—ये सब देवयानके नामान्तर हैं। देवयानकी दो शाखाएँ हैं—'देवपथ' और 'ब्रह्मपथ'। पितृयाणकी भी दो शाखाएँ हैं, 'यमपथ' और 'पितृपथ।' उपर्युक्त ऋचामें देवयान पथसे भिन्न मृत्युका स्वपथ 'पितृपथ' विवक्षित है। देवयानसे भी यहाँ केवल 'ब्रह्मपथ' ही विवक्षित है—कारण कि देवयानके विभागोंमें केवल ब्रह्मपथमें ही मृत्युका संचार नहीं है। देवपथमें तो मृत्युका अपेक्षाकृत संचार है।

ऋचामें 'संकुसुक' ऋषिने मृत्युके उद्देश्यसे 'चक्षुष्मते'

प्रकृतिमें विद्यमान तत्त्वोंकी स्थितिसे विरुद्ध होनेसे भ्रान्त है। 'मृतं च्यावयति इति मृत्युः' निर्वचनसे प्रकट महिमा मृत्युका अमृत पदार्थपर प्रभाव नहीं है। पायुस्थ प्राण उदरमें मृत अन्न, जल और वायुके मृत भागोंका च्यावन (बहिःक्षेपण) करनेके कारण 'मृत्यु' शब्दसे अभिहित है; परंतु वैदिक विद्वानोंके मतमें चक्षुः, श्रोत्र आदिमें स्थित मल-भागके बहिःक्षेपणके कारण तत्स्थ प्राण भी 'मृत्यु' है।

मृत्युका उपयोग

अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवत-भेदसे तीन प्रकारके विश्वमें 'मृत्यु' प्राणका उपयोग (कार्य) पदार्थोंमें वैविध्य उत्पन्न करना है। यदि एक अमृत पदार्थ ही होता और मृत्यु पदार्थ न होता तो उस अवस्थामें एक ही पदार्थकी सत्ता रहती। पदार्थगत वैविध्य दृष्टिगोचर न होता। अमर समबल अग्नि और सोम अमर एक ही पदार्थ उत्पन्न कर सकते थे। मृत्युसे विषमबल ये दोनों नानाविध पदार्थोंको उत्पन्न करते हैं। अमृत और मृत्यु-भावमें प्रजापति (परमात्मा) की इच्छा ही कारण है। पदार्थगत वैविध्य ही इसके पृष्ठमें विद्यमान इच्छाका अनुमापक है। इच्छा मनके बिना अनुपपन्न है, अतः अर्थापत्ति प्रमाणसे वह मनकी अनुमापिका है। 'मन' भी मनस्वीके बिना अनुपपन्न है। वह मनस्वी (प्रजापति) का अनुमापक है। वह प्रजापति त्रिधातुमय है। मनः, प्राण और वाक्—उस मनस्वी प्रजापतिकी तीन धातुएँ हैं। इनमें 'वाक्' धातुमें वैषम्य (वैविध्य) 'प्राण' धातुसे आता है। यह प्राण ही मृत्यु पदार्थ है। प्राणमें वैविध्य 'मन' से आता है। इस प्रकार यह विश्वगत वैविध्य मृत्यु (प्राण) से उत्पन्न हुआ है। इससे विश्वमें 'मृत्यु'की मङ्गलरूपता भी सिद्ध होती है।

दो प्रकारका मृत्यु

मृत्यु दो प्रकारका है—एक सोमका मृत्यु, दूसरा अग्निका मृत्यु। इनमें सोमका मृत्यु 'यम' है। अग्निका मृत्यु 'आपः' (जल) है। इनको 'अशनाया' भी कहते हैं। यमरूप मृत्यु रूक्षस्वभाव और उष्ण है। यह स्नेहका यमन करके, अर्थात् स्नेहको आत्मसात् करके वस्तुको शिथिल-अवयव करके नष्ट कर देता है। अशनाया (बुभुक्षा)-रूप मृत्यु तो वस्तुओंका संहार करके, वस्तुके सम अवयवोंको उदरमें नियमन करके परिणामद्वारा उसको नष्ट करती है। एक वस्तुका विनाश वस्तुका निर्माण है। इस प्रकार ये दोनों मृत्युएँ वैविध्यके कारण होनेसे मङ्गलायतन हैं।

रसायन-शास्त्र

'रसायन' शास्त्रका उपयोग हमने यहाँ देवतां (रंगों) के विश्लेषणमें किया है। वेदोंमें वर्णभे सौर, आग्नेय, वायव्य और पार्थिव रश्मियोंके सम्मिश्रण हैं। 'ऐतरेय ब्राह्मण'में मृत्युका रंग 'कृ गया है। काले रंगमें किसी भी सौर रश्मिकी ज है। कृष्ण वर्ण यों केवल विशुद्ध पार्थिव किर आग्नेय रश्मियाँ ही हैं।

'मृत्यु'की मूर्ति

वस्तुमात्रमें विद्यमान वस्तुगत अवयवोंके विशरणके कारण आग्नेय प्राणविशेष 'मृत्यु' है मूर्तिका निर्माण उसके विशुद्ध ज्ञान और उसकी लिये निदान-शास्त्रके संकेतोंके आधारपर कृष्णराज ओडयारने 'श्रीतत्त्वनिधि' ग्रन्थमें आधारपर इस रूपमें विहित किया है—

पाशखड्गाङ्कुशगदाभासमानकराम्बुजम्
गीर्वाणगणवन्द्याङ्घ्रिं मृत्युं महिषवाहनम्

'मृत्यु महिषवाहन है। वह देवसमूहद्वार मान-चरणकमल है। वह चतुर्भुज है। उसमें पाश अंकुश और गदा ये अस्त्र हैं।'

निदान-रहस्य

मृत्युका वाहन 'महिष' मोहका निदान-सूच मोहका यहाँ दूसरा नाम 'मरण' है। देवसमूहके द्वा श्रीचरणोंका वन्दन प्राणोंके अनेक परिणामोंका नि अर्थात् मृत्यु प्राणोंमें अनेक परिवर्तनोंसे उनमें वैवि है। उसके चार हाथ चारों दिशाओंमें उसकी संकेत हैं। उनमें विद्यमान पाश, खड्ग, अंकुश गदा मृत्युके द्वारा प्रतिक्षण क्रियमाण क्षयके सं पाश आदि सब विनाशके सूचक हैं।

प्रतिभट

'मृत्यु' का प्रतिभट अमृत (सोम) है। यम इसका विनाशमें साधर्म्य है। प्रतिक्षण विनाश और उच्छेद—यह यम और मृत्युमें वैधर्म्य भी है।

लना, यह बात भगवान्‌की न्यायप्रियता तथा उनके रुण्यसे विसङ्गत है।

अपने सनातनधर्ममें इसका समाधान विचार तथा अनुभवके अनुरूप किया गया है। जिस जीवने जो कर्म किये हों, उनका फल भोगनेके लिये अन्यान्य लोक हैं, जिनमें वह अपने शुभाशुभ कर्मोंके फलोंका भोग करता है तथा कुछ कर्मोंके फलभोगके लिये इसी मर्त्यलोकमें पुनः विभिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहणकर फल भोगता है और मनुष्य बनकर अपनी उन्नति करनेका अवसर बार-बार प्राप्त करता है और क्रमशः अपने सब कर्मोंको भोगकर उनका क्षय करता हुआ, अन्ततोगत्वा पूर्ण सुखशान्तिरूप मुक्ति प्राप्त करता है। अपने शास्त्रोंने इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार परलोक तथा इहलोकमें पुनर्जन्मका विचार केवल तर्क अथवा अनुमानमात्र प्रतीत हो सकता है, किंतु हमारे पूर्वजोंने प्रखर तपस्याके बलपर दिव्य दृष्टि प्राप्तकर इन सत्योंका साक्षात् ज्ञान प्राप्त किया था। केवल तर्क या अनुमानके आधारपर परलोकोंके अस्तित्व तथा पुनर्जन्म-ग्रहणकी वास्तविकताका उन्होंने प्रतिपादन नहीं किया, अपितु प्रत्यक्ष ज्ञानके बलपर इसका उद्घोष किया।

अनेकों व्यक्तियोंका जन्मसे ही अलौकिक प्रतिभासम्पन्न होना, कुछ अबोध बालकोंको पूर्वजन्मके स्थान, परिवारस्थ जन इत्यादिका आश्चर्यचकित करनेवाला ज्ञान सप्रमाण प्रकट करते हुए दिखायी देना ऐसे अनेक उदाहरण प्रमाणभूत होकर उपस्थित होते हैं। अब विगत कुछ कालसे इन बातोंपर विश्वास न रखनेवाले पश्चिमीय देशोंके विद्वानोंमें भी परलोकविद्याका अध्ययन करनेकी प्रवृत्ति बढ़ी है और धीरे-धीरे वे परलोक तथा पुनर्जन्मके सत्यको पहचाननेकी तथा माननेकी ओर झुक रहे हैं। जिन धर्म-मतोंका अवलम्बन उन्होंने किया है, उनका समर्थन न होनेसे अभी उनमें पर्याप्त झिझक है। तथापि सत्यान्वेषणकी अन्तःप्रेरणा उन्हें इस सत्यका साक्षात्कार करनेके मार्गपर अग्रसर करा रही है।

वैसे सूक्ष्मदृष्टिसे अध्ययन करनेपर ईसाई धर्मग्रन्थ 'पवित्र बाइबल'में भगवान् ईसाके ही मुखारविन्दसे प्रकट हुए शब्दोंसे यह जाना जा सकता है कि भग[वान्] ईसाने स्थानीय परिस्थिति तथा मान्यताओंके होते ह[ुए] स्थानीय परिभाषाके ही माध्यमसे भारतीय क्रान्तिद[र्शी] ऋषियोंके सत्य सिद्धान्तको ही समझानेका प्रयास किया[;] किंतु शुद्ध दृष्टिसे इसका अध्ययन करना आवश्यक है।

परलोक तथा पुनर्जन्मके सिद्धान्तके कारण प्रत्येक व्य[क्ति] यह समझ सकता है कि उसका सुख-दुःख, श्रेष्ठत्व-कनि[ष्ठत्व,] सद्गुणोंका अभाव आदि सब उसीके पूर्वजन्मोंमें किये [गये] कर्मोंके परिणाम हैं और इस जन्ममें यदि वह अपने क[र्मोंमें] सुधार कर ले तो इसी जन्ममें वह अधिक श्रेष्ठ एवं [सुखी] बन सकता है और उसे यह भी विश्वास होता है [कि] जीवनका चरम लक्ष्य—मोक्ष, इस एक जन्ममें न भी [प्राप्त] हो तो भी, उसके लिये उचित प्रयत्नोंमें रत र[हनेसे] आनेवाले जन्मोंमें वह अपनेको मोक्षके लिये अधिक योग्य बनाकर, अन्तमें जीवन-मरणके सब सुख-दुःखोंसे [मुक्त हो]कर अपनी नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त सच्चिदानन्द-स्थितिमें [स्थित] हो सकता है। धन्य हो सकता है।

श्रेष्ठ कर्मप्रेरणा देनेवाले, मनुष्यमात्रके पौ[रुषका] आवाहन करनेवाले इस सत्यको हृदयङ्गम करना म[ानव-]कल्याणके लिये परम आवश्यक है। आज इसके स[म्बन्धमें] कुछ भ्रम फैले हैं और निष्क्रियताको पनपानेवाला दै[व] लोगोंकी बुद्धिपर चढ़ बैठा है। उससे अपनेको छु[टकारा] दिलाकर, विशुद्ध कर्मसिद्धान्त, तदङ्गभूत परलोक [तथा] पुनर्जन्मके सत्य सिद्धान्तोंको समझकर सत्कर्ममें प्रवृत्त ह[ोकर] निरन्तर उद्यमशील रहना तथा परिणामस्वरूप इह[लोकमें] वैयक्तिक एवं सामूहिक उत्कर्षकी प्राप्तिके साथ मुक्ति[-पथ]पर अग्रसर होकर मनुष्यजीवन सार्थक करना आ[वश्यक] है। यही धर्म है—'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स ध[र्मः]' (वैशे[षिक])

अपने महान् सनातनधर्ममें* उद्घटित इन सत्योंको जीवनमें उतारकर अपने समाजके सब [लोग] उत्तरोत्तर श्रेष्ठ शुद्ध जीवनके चलते-बोलते आदर्श बनें [और] सम्पूर्ण मानवजातिके सन्मार्ग-पथप्रदर्शक बनें। यही स[मयकी] माँग है। इति शम्।

---

* 'सनातनधर्म' शब्दप्रयोगसे यहाँ भारतीय परम्परामें उत्पन्न सभी पन्थ-सम्प्रदाय आदि सब मत-मतान्तरोंका स[मावेश] समझना चाहिये।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥
(१ । २ । १८)

'यह नित्य चिन्मय आत्मा न जन्मता है, न मरता है; यह न तो किसी वस्तुसे उत्पन्न हुआ है और न स्वयं ही कुछ बना है (अर्थात् न तो यह किसीका कार्य है, न कारण है; न विकार है, न विकारी है) । यह अजन्मा, नित्य (सदासे वर्तमान अनादि), शाश्वत (सदा रहनेवाला, अनन्त) और पुरातन है तथा शरीरके विनाश किये जानेपर भी नष्ट नहीं होता ।'

उपर्युक्त वर्णनसे आत्माकी अमरता सिद्ध होती है ।

आगे चलकर यमराज उन मनुष्योंकी गति बतलाते हैं, जो आत्माको बिना जाने हुए ही मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥
(२ । २ । ७)

'अपने कर्म और ज्ञानके अनुसार कितने ही देहधारी तो शरीर धारण करनेके लिये किसी देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनिको प्राप्त होते हैं और कितने ही स्थावर-भाव (वृक्षादि योनि) को प्राप्त होते हैं ।'

ऊपरके मन्त्रसे भी पुनर्जन्मकी सिद्धि होती है ।

गीतामें भी परलोक और पुनर्जन्मका प्रतिपादन करनेवाले अनेक वचन मिलते हैं । दूसरे अध्यायमें भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥
(२ । १२)

'न तो ऐसा ही है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू नहीं था अथवा ये राजालोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे ।'

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
(२ । १३)

'जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है;

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥
(२ ।

'यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है ‌और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवा है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरा शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता ।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही
(२ ।

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने श त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है ।'

चौथे अध्यायके ५ वें श्लोकमें भगवान् कहते हैं—' अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं । उन स नहीं जानता, किंतु मैं जानता हूँ ।' गीतामें स्वर्गादि लो भी कई जगह उल्लेख आता है । पुनर्जन्म, परलोक, अ अनावृत्ति, गतागत (गमनागमन) आदि शब्द भी कई आये हैं । छठे अध्यायके ४१-४२ वें श्लोकोंमें योगभ्रष्ट दीर्घकालतक स्वर्गादि लोकोंमें निवासकर शुद्ध आचर श्रीमान् पुरुषोंके घरमें अथवा ज्ञानवान् योगियोंके ही जन्म लेनेकी बात आयी है तथा ४५वें श्लोकमें जन्मोंकी बात भी आयी है । इसी प्रकार १३वें अ २१वें श्लोकमें पुरुषके सत्-असत् योनियोंमें जन्म बात कही गयी है । १४वें अध्यायके १४-१५ तथा श्लोकोंमें गुणोंके अनुसार मनुष्यके उच्च, मध्य तथा गतिको प्राप्त होनेकी बात आयी है तथा १५वें अ ७-८वें श्लोकोंमें एक शरीरको छोड़कर दूसरे जानेका स्पष्टरूपमें उल्लेख हुआ है । १६वें अ १६, १९ और २०वें श्लोकोंमें भगवान्ने सम्पदावालोंको बारंबार तिर्यग्योनियों और नरकमें गि बात कही है । इन सब प्रसङ्गोंसे भी पुनर्जन्म और पर पुष्टि होती है ।

योगसूत्रमें भी पुनर्जन्मका विषय आया है ।

मूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।
(साधन० १२)

[क्ले]श (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और [अभिनिवे]श—मृत्युभय) जिनकी जड़ हैं, वे कर्माशय [(कर्मोंकी] वासनाएँ) वर्तमान अथवा आगेके जन्मोंमें [भोगे जा] सकते हैं ।'

[उन] वासनाओंका फल किस रूपमें मिलता है, इसके [विषयमें] महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

[सति मू]ले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः ।
(साधन० १३)

[क्]लेशरूपी कारणके रहते हुए उन वासनाओंका फल [जाति (] योनि), आयु (जीवनकी अवधि) और भोग [(सुख-]दुःख) होते हैं ।'

[म]नुस्मृतिमें भी पुनर्जन्मके प्रतिपादक बहुत-से वचन [मिलते] हैं । किन-किन कर्मोंसे जीव किन-किन योनियोंको [प्राप्त हो]ते हैं, इस विषयमें भगवान् मनु कहते हैं—

[देव]त्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ।
[ति]र्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥
(१२ । ४०)

'सत्त्वगुणी लोग देवयोनिको, रजोगुणी मनुष्ययोनिको [और] तमोगुणी तिर्यग्योनिको प्राप्त होते हैं । जीवोंकी सदा [यही] तीन प्रकारकी गति होती है ।'

इसके आगे भगवान् मनु ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुपत्नीगमन [आदि] कुछ महापातकोंका उल्लेख करते हुए कहते हैं कि इन [पापों]को करनेवाले अनेक वर्षतक नरक भोगकर फिर नीच [योनि]योंको प्राप्त होते हैं । उदाहरणतः ब्रह्महत्या करनेवाला [कुत्ता], सूअर, गदहे, चाण्डाल आदि योनियोंको प्राप्त होता [है ।] ब्राह्मण होकर मदिरा-पान करनेवाला कृमि, कीट,

जाकर तर्पण किया एवं स्वयं जैसा भोजन किया करते थे, उसीके पिण्ड बनाकर दशरथजीके निमित्त दिये—

ततो मन्दाकिनीं गत्वा स्नात्वा ते वीतकल्मषाः ॥
राज्ञे ददुर्जलं तत्र सर्वे ते जलकाङ्क्षिणे ।
पिण्डान् निर्वापयामास रामो लक्ष्मणसंयुतः ॥
इङ्गुदीफलपिण्याकरचितान् मधुसम्प्लुतान् ।
वयं यदन्नाः पितरस्तदन्नाः स्मृतिनोदिताः ॥
(अध्यात्म० अयोध्या० ९ । १७–१९)

'फिर सब लोग मन्दाकिनीपर जाकर स्नान करके पवित्र हुए । वहाँ उन सबने जलकाङ्क्षी महाराज दशरथको जलाञ्जलि दी तथा लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचन्द्रजीने पिण्ड दिये । जो हमारा अन्न है, वही हमारे पितरोंको प्रिय होगा—यही स्मृतिकी आज्ञा है—यों कह उन्होंने इंगुदी फलकी पीठीके पिण्ड बना उनपर मधु डालकर उन्हें प्रदान किया ।'

वाल्मीकीय रामायणमें भी इसी भावके द्योतक श्लोक मिलते हैं ।

बहुत-से लोग यह शङ्का करते हैं कि 'मरनेके बाद आत्मा रहता है या नहीं, किये हुए कर्मोंका फल कर्ताको परलोकमें मिलता है या नहीं, मृत व्यक्तिके लिये दिया हुआ पदार्थ उसे मिलता है या नहीं और जो मृत व्यक्ति मुक्त हो गया है, उसके प्रति दिया हुआ पदार्थ किसको मिलता है ?' इन प्रश्नोंका समाधान यह है कि 'मरनेपर आत्मा अवश्य रहता है तथा किये हुए कर्मोंका फल कर्ताको अवश्य मिलता है । वह इस लोकमें भी मिल जाता है और शेष बचा हुआ परलोकमें मिलता है । मृत व्यक्तिके लिये जो कुछ दिया जाता है, वह सब उसे प्राप्त

प्राणी गाय है तो उसे चारेके रूपमें, देवता है तो अमृतके रूपमें, मनुष्य है तो अन्नके रूपमें और बंदर आदि है तो फल आदिके रूपमें उतने ही मूल्यकी वस्तु मिल जाती है।

यदि कहें कि 'जीवित व्यक्तिके लिये भी यदि कोई यज्ञ, दान, अनुष्ठान, व्रत, उपवास आदि कर्म करता है तो क्या वह उसे भी मिलता है?' तो इसका उत्तर यह है कि 'अवश्य उसे मिलता है। नहीं तो, फिर यजमानके लिये जो ब्राह्मण यज्ञ, तप, अनुष्ठान, पूजा, पाठ आदि करता है, वह किसको मिलेगा? न्यायतः वह यजमानको ही मिलेगा; कर्म करनेवाले ब्राह्मणको नहीं।'

यदि कोई प्राणी मुक्त हो गया है तो उसके निमित्त किया हुआ कर्म कर्ताको ही मिलता है। जैसे किसी आदमीको रजिस्ट्री चिट्ठी या बीमा भेजी जाती है और जिसको भेजी जाय, वह आदमी मर गया हो तो फिर वह लौटकर भेजनेवालेको ही वापस मिल जाती है, उसी प्रकार इस विषयमें भी समझना चाहिये।

नीचे लिखे युक्ति-प्रमाणोंसे भी यही सिद्ध होता है कि परलोक अवश्य है और प्राणियोंका पुनर्जन्म होता है—

(१) शरीरकी तरह आत्माका परिवर्तन नहीं होता। शरीरमें तो हम सभीके अवस्थानुसार परिवर्तन होता देखा जाता है। आज जो हमारा शरीर है, कुछ वर्ष बाद वह बिल्कुल बदल जायगा। उसके स्थानमें दूसरा ही शरीर बन जायगा—जैसे नख और केश पहलेके कटते जाते हैं और नये आते रहते हैं। बाल्यावस्थामें हमारे सभी अङ्ग कोमल और छोटे होते हैं, कद छोटा होता है, स्वर मीठा होता है, वजन भी कम होता है तथा मुखपर रोएँ नहीं होते। जवान होनेपर हमारे अङ्ग पहलेसे कठोर और बड़े हो जाते हैं, आवाज भारी हो जाती है, कद लंबा हो जाता है, वजन बढ़ जाता है तथा दाढ़ी-मूँछ आ जाती हैं। इसी प्रकार बुढ़ापेमें सारे अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, शरीरकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है, चमड़ा ढीला पड़ जाता है, बाल पक जाते हैं, दाँत ढीले हो जाते हैं तथा गिर जाते हैं एवं शरीर तथा इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है। यही कारण है कि बालकपनमें देखे हुए किसी व्यक्तिको उसके ... हम सहसा नहीं पहचान पाते। परंतु शरीर ... भी हमारा आत्मा नहीं बदलता। दस वर्ष प[हले] ... आत्मा था, वही आत्मा इस समय भी है ... परिवर्तन नहीं हुआ। यदि होता तो आजसे दस ... बीस वर्ष पहले हमारे जीवनमें घटी हुई घटनाव[ओंका स्मरण] नहीं होता। दूसरेके द्वारा अनुभव किये हुए ... जिस प्रकार हमें स्मरण नहीं होता। परंतु आजकी ... दस वर्ष बाद अथवा बीस वर्ष बाद भी स्म[रण रहता है।] इससे मालूम होता है कि अनुभव करनेवाला [और स्मरण] करनेवाला दो व्यक्ति नहीं, बल्कि एक ही व्यक्ति ... प्रकार वर्तमान शरीरमें इतना परिवर्तन होनेपर [भी आत्मा] नहीं बदला, उसी प्रकार मरनेके बाद दूसरा शरीर ... आत्मा नहीं बदलता। इससे आत्माकी नित्यता सि[द्ध होती है।]

(२) मनुष्य अपना अभाव कभी नहीं दे[खता।] यह कभी नहीं सोचता कि एक दिन मैं नहीं रहूँ[गा या] मैं पहले नहीं था। अपने अभावके बारेमें आत्मा[से] उसे कभी समर्थन नहीं मिलता। वह यही सो[चता है कि] मैं सदासे हूँ और सदा रहूँगा। इससे भी आत्मा[की नित्यता] सिद्ध होती है।

(३) बालक जन्मते ही रोने लगता है और ... बाद कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी सोता है; ... उसके मुखमें स्तन देती है तो वह उसमेंसे दू[ध खींचने] लगता है और धमकाने आदिपर भयसे काँपता ... देखा जाता है। बालकके ये सब आचरण पूर्वजन्म[के संस्कारसे ही] करते हैं; क्योंकि इस जन्ममें तो उसने ये सब ब[ातें सीखी] नहीं। पूर्वजन्मके अभ्याससे ही ये सब बातें उस[में] स्वाभाविक ही होने लगती हैं। पूर्वजन्ममें अनुभव [किये हुए] सुख-दुःखका स्मरण करके ही वह हँसता और ... पूर्वमें अनुभव किये हुए मृत्युभयके कारण ही व[ह] ... लगता है तथा पूर्वजन्ममें किये हुए स्तन्यपानके ... ही वह माताके स्तनका दूध खींचने लगता है। इ[ससे] पुनर्जन्म सिद्ध होता है। (शेष आगे)

अन्तके भावानुसार गति

जीवनभर जिन भाव-विचारोंमें—कर्मोंमें रहता व्यस्त।
मरण-कालमें वही भाव आते हैं मनमें चिर अभ्यस्त॥
अगला लोक-जन्म मिलता है, अन्तिम भावोंके अनुसार।

वेदमें मृतात्माकी अष्टविध दशा

(लेखक—वेद-दर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर पू० स्वामीजी श्रीगंगेश्वरानन्दजी महाराज)

मरणोत्तर जीवात्माकी प्रथमतः 'गति'-'अगति'—भेदसे प्रकारकी दशाएँ होती हैं।

'अगति' शब्दकी परिभाषा लोकान्तरमें गमनाभाव है। [अ]तः अगति चार प्रकारकी बन जाती है। सर्वोत्तम अगति [त]त्त्वदर्शीकी है, जो तत्त्वदर्शनसे अविद्या और अविद्याके [का]र्य लिङ्गशरीरका बाध होनेसे कहीं जाता ही नहीं, अपने [वा]स्तविक स्वरूप—ब्रह्मभावमें स्थित हो जाता है। दूसरे शब्दोंमें 'जीवभूमि'से उठकर 'स्वयं ब्रह्म' बन जाता है। तात्पर्य—उपाधि-सम्बन्धसे कल्पित जीवभाव मिटकर विशुद्ध ब्रह्म-स्वरूपमें अवस्थित होता है। जैसे दर्पणके सम्बन्धसे कल्पित सूर्य-प्रतिबिम्ब दर्पण-उपाधिके हट जानेसे शुद्ध अपने बिम्ब-स्वरूप सूर्यमें ही मिल जाता है।

इस अगतिका नाम 'मुक्ति' भी है। वह दो तरहकी है—'क्षिणोदर्क' और 'भूमोदर्क'। 'क्षिणोदर्क मुक्ति' है वह जो शरीर-इन्द्रिय-प्राणादि अनात्म-पदार्थोंमेंसे आत्मव्याप्तिको 'नेति-नेति' प्रक्रियाके द्वारा हटाकर निराकार निर्विशेष विशुद्धात्म-दर्शनसे प्राप्त होती है। 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म।' 'इदं सर्वं यदयमात्मा' 'सर्वं वासुदेवः' आदि प्रक्रियाके द्वारा आत्म-व्याप्तिके विस्तार होनेपर विश्वात्मदर्शनसे जो प्राप्त होती है, वह 'भूमोदर्क मुक्ति' है।

पृथिवीमें ही मरणोत्तर अस्थिहीन कीट-पतङ्ग-वृक्षादि योनि प्राप्त होनेपर 'तृतीय अगति' है और अस्थियुक्त पशु-पक्षी आदि योनि 'चतुर्थ अगति' है; क्योंकि मृतात्माको पृथिवीको छोड़कर लोकान्तरमें जाना नहीं पड़ता। किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं। कारण, उसके प्राण 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति।' इस श्रुति-वचन (बृह० ४।४।६) के अनुसार उत्क्रमण बिना किये ही 'अत्रैव समवलीयन्ते।' इस वचनके आधारपर यहाँ ही ज्ञानके द्वारा सविलास अविद्याकी निवृत्ति हो जानेसे अपने अधिष्ठान ब्रह्मतत्त्वमें विलीन हो जाते हैं। वेदान्तशास्त्रका उद्घोष है—अधिष्ठानाविशेषो हि बाधः कल्पित-वस्तुनः। अर्थात्' कल्पित वस्तुकी निवृत्ति अपने अधिष्ठानसे अतिरिक्त नहीं, अपितु तत्स्वरूप ही है।' शिष्ट-द्विविध अगति तथा चतुर्विध गतिके साथ उत्क्रान्तिका अविनाभाव है। अर्थात् उनका होना उत्क्रान्तिपूर्वक ही सम्भव है। इसी प्रकार गतिके साथ कहीं-कहीं अगति—पुनरावृत्तिका सम्पर्क अवश्यम्भावी है।

अतएव वेदान्तदर्शन २। ३। १९ में कहा है—

'उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्।'

'जीवात्माकी उत्क्रान्ति, गति तथा अगतिका श्रुतियोंमें स्फुट वर्णन है।' यथा—

'स यदास्माच्छरीरादुत्क्रामति सहैवैतैः सर्वैरुत्क्रामति।'
(कौषीतकी० ३।४)

'ये वै के चास्माल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति।'
(कौषीतकी० १।२)

'तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मणे।'

चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ॥
(ऋक्० १० । १६ । ३; । तै० आ० ६ । १ । ४;
ñ ७ । ३)

पूर्वार्धमें—'सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च
छ पृथिवीं च धर्मभिः ।'

इस प्रकारसे स्वल्प पाठभेदके साथ अथर्ववेदमें यही
र १८ । २ । ७ उद्धृत है ।

छान्दोग्योपनिषद्के पञ्चम अध्यायके ३ से १० तक
खण्डोंमें पञ्चाग्निविद्याका निरूपण है । उसका संक्षेप
तीय मुण्डक, खण्ड प्रथम, मन्त्र पञ्चम— .

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः
सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम् ।
पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां
बह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः ॥

—इस मन्त्रमें हुआ है । उसी पञ्चाग्निविद्याका बीज
सूर्यं चक्षुर्गच्छतु' इस मन्त्रमें उपलब्ध है । पाठकोंको
मझानेके लिये बीजभूत मन्त्रकी व्याख्यासे पहले पञ्चाग्नि-
वद्याका सार दिया जाता है । पाँच अग्नि हैं—द्युलोक,
र्जन्य, पृथिवी, पुरुष तथा योषित् (स्त्री) । क्रमशः
न पाँचों अग्नियोंमें जो प्रक्षिप्त की जाती हैं, वे पाँच
आहुतियाँ हैं—क्रमशः श्रद्धा, सोम, वृष्टि, अन्न, रेतः (शुक्र) ।
अग्निहोत्रादि यज्ञ-प्रक्रियाओंके अनुसार आवहनीय अग्निमें
दूध-दधि-घृतादिकी यजमान श्रद्धापूर्वक आहुति डालता
है । अग्निसंयोग होते ही वे दध्यादि द्रव्य सूक्ष्म वाष्परूपको
धारण कर लेते हैं* । पहलेकी अपेक्षा कुछ नवीनता आ
जानेके कारण इन्हें व्याख्याकारोंने 'अपूर्व' शब्दसे भी
कहा है ।

* इन्हींका 'श्रद्धा' शब्दसे श्रुतिमें उल्लेख हुआ है । कारण,
उनके प्रक्षेपके मूलमें श्रद्धा ही हेतु है ।

गाड़ दिया जाय और यों ही पड़ा रह जाय तो सड़ जानेसे
उसमें कीड़े पड़ जायँगे, अर्थात् वह कृमिरूपको प्राप्त
हो जायगा । अतः जीवात्माका साथ देनेवाला मरणोत्तर
सूक्ष्म शरीर या लिङ्गशरीर ही है, जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय,
पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन तथा बुद्धि—इन सत्रह तत्त्वोंका
संघात है । उसमें मनस्तत्त्वकी प्रधानता होनेके कारण उसमें
केवल 'मनः' शब्दका भी प्रयोग किया जाता है । वह
केवल शक्तिस्वरूप होनेसे भौतिक शरीरकी सहायता बिना
कहीं गमन करनेमें असमर्थ है । अतः जैसे किसी पदार्थको
घी, दूध या तैल—किसी स्निग्ध द्रव्यमें डाल दिया जाय
और पुनः उसे निकाल ही क्यों न दिया जाय फिर भी,
कुछ सूक्ष्म अंश संलग्न अवश्य रह जाते हैं । इसी प्रकार
भले ही सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरसे पृथक् हो गया हो, फिर
भी स्थूलशरीरके आरम्भिक कुछ भौतिक अंश उस सूक्ष्म-
शरीरसे संलग्न रह जाते हैं । इन्हींको शास्त्रने 'भूतसूक्ष्म'
कहा है । अतः जब लिङ्गशरीरके साथ जीवात्मा प्रस्थान
करेगा तो कतिपय भूतसूक्ष्म उसका साथ अवश्य देंगे ।
इधर अग्निप्रक्षिप्त वाष्पभावको प्राप्त हुए आहुतिद्रव्य
दुग्ध-दध्यादिके सूक्ष्म परमाणु भी साथ मिल जायँगे । जैसे
किसी पदार्थको कितना ही सुरक्षित घरमें क्यों न रक्खा
जाय, धीरे-धीरे उसपर धूलि पड़नेसे एक मृत्तिकाका परत
या स्तर जम जाता है, इसी प्रकार लिङ्गशरीरके ऊपर
स्थूलशरीर आरम्भक भूतसूक्ष्म-मिश्रित आहुतिद्रव्यके
सूक्ष्मांशोंका एक स्तर-सा बन जाता है; वही इस लिङ्ग-
शरीरका गमन करनेमें आश्रयका काम देता है । दूसरे
शब्दोंमें उसीके आश्रित हो लिङ्गशरीर परलोकयात्रा
आरम्भ करता है । कहना न होगा, उसी लिङ्गशरीरके
आधारपर भूतान्तरसहित श्रद्धा-निष्पाद्य आहुतिद्रव्यके सूक्ष्म
वाष्पसे ही एक जीवात्माके यातनाशरीरका निर्माण होता
है । अन्तर केवल इतना है—पुण्यात्मा अपने गन्तव्य स्वर्गादिमें
पहुँचकर नये दिव्य विग्रहको धारण करता है । उसी

उसके यातनाशरीरका अन्त हो जाता है। नरक-यातनाशरीरका अन्त नहीं होता। उसीके द्वारा ना रौरवादि भयंकर नरक-यातनाओंका उपभोग करता रकगामी जीवात्माके यातनाशरीरमें केवल भूतसूक्ष्मोंका अस्तित्व है, आहुतिद्रव्यके अपूर्वीभूत सूक्ष्म वाष्प-का नहीं। उनका सम्पर्क केवल ऊर्ध्वगति पुण्यात्मा ; ही आतिवाहिक शरीरमें सम्भव है। यद्यपि न्तर-गमनमें सहकारी शरीर यातनाशरीर ही है ने यातनाशरीरका व्यवहार पुण्यात्माके लोकान्तरगति री शरीरमें शास्त्रकारोंने इस आशयसे नहीं किया पुण्यात्माको यातना होगी ही क्यों? अतः कतिपय नोंका मत है कि स्वर्ग या नरकतक पहुँचानेवाले को आतिवाहिक शरीर कहना ही अधिक उपयुक्त है। ाशरीर तो पापात्माओंको उसी समय मिलेगा जब वे में यातना भोगनेके लिये ढकेल दिये जायँगे।

उपर्युक्त विवेचनासे प्रमाणित हुआ कि पुण्यात्मा चन्द्र-में द्युलोक-अग्निमें आहुत श्रद्धाशब्दित सूक्ष्म अप् (जल) ा दुग्ध-दध्यादिके द्रुत द्रव्य वाष्पापन्न अंशोंसे निष्पन्न । विग्रहमें स्वर्गसुखका चिरकालतक उपभोग करता है। उस दिव्य शरीरके आरम्भक भूतसूक्ष्म जलसदृश द्रव्यके घनीभूत अंश-भोगद्वारा पुण्यके क्षय होनेपर ताप अग्निसे विलीन हो जाते हैं। उन्हीं विलीन सूक्ष्मसहित जलोंसे वेष्टित जीवात्मा स्वर्गसे वापस लौट ा है। फिर पर्जन्याग्निमें दिव्य शरीरारम्भक विलीन की आहुति होती है, जिससे वृष्टिकी निष्पत्ति होती है। वृष्टिकी तृतीय पृथिवी-अग्निमें आहुति पड़नेसे पृथिवीमें हि-यवादि अन्न उत्पन्न होता है। उस व्रीह्यादि जाति स्थावर हि-यवादिमें स्वर्गच्युत जीवात्मा चिरकालतक संसृष्ट रहता । इस व्रीह्यादि संश्लेषका अन्त कष्ट-साध्य है। दूसरे दोंमें इस व्रीह्यादि अन्नके पौधोंसे जीवात्माका निष्क्रमण ते कठिन है। इसीलिये श्रुतिमें कहा है—

'अतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरम्।'

(छान्दोग्य० ५। १०। ६)

उस शुक्रकी आहुतिसे मातृकुक्षिस्थ गर्भका जन्म होगा; वही गर्भ क्रमशः मातृकुक्षिमें नौ या दस मास रह परिपूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्गादियुक्त हो जाता है। पश्चात् मातृयोनि निर्गत हो शिशु, बाल, कुमार नामोंसे व्यपदिष्ट होता है कहनेका अभिप्राय है कि द्युलोकादि पाँच अग्नियोंमें क्रम श्रद्धादि पञ्चाहुतियोंके प्रक्षेपका परिणाम ही मानव है। निष्कर्ष—यज्ञाग्निमें हवन करनेसे अग्नि-संयोग विलीन हो द्रुतद्रव्य बने; अतएव उन्हें अप् या जल गया। वे ही क्रमशः मनुष्य-शरीरमें परिणत होकर पुरुष कहे जायँगे। अर्थात् पञ्चमाहुतिमें पहले 'जल' श कहे जानेवाले जल अब 'पुरुष' नामसे व्यवहृत होंगे। उन्हें 'अप्' संज्ञा न देकर 'पुरुष' संज्ञा दी जायगी। अत श्रुति भगवतीका वचन है **'पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषव भवन्तीति**।—तात्पर्य, पञ्चमी आहुतिके प्रक्षिप्त होते पहलेके द्रुतद्रव्य, जिन्हें जल कहा जाता था, 'पुरुष' संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं।' इसी अभिप्रायको संक्षेपमें मुण्डक १। ५ **'तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः।'**—यह मन्त्र करता है।

(मन्त्रार्थ)—उस अक्षरब्रह्मसे द्युलोक अग्निका हुआ। सूर्य ही इस द्युलोक अग्निका इन्धन है; क्योंकि भौतिक अग्निकी तरह यह द्युलोक सूर्यसे समिद्ध, प्र अर्थात् चमकता है। उस द्युलोकाग्निमें पूर्वोक्त द्रुतद्रव्य श्रद्धाकी आहुतिसे सोम (चन्द्र) स्वर्गीय दिव्य निष्पन्न होता है। जब भोगद्वारा पुण्यक्षयके कारण शरीरधारी जीवात्माको अनुताप वा पश्चात्ताप होता है उस विलीन सोमसे पर्जन्यकी उत्पत्ति होती है। पुनः पर्जन्याग्निसे तृतीय पृथिवीरूपाग्निमें वृष्टिकी आहुति व्रीहि-यवादि ओषधियोंका प्रादुर्भाव होता है। पुरुषाग्निमें अन्नरूपसे प्राप्त उन ओषधिद्रव्योंसे रेतः (की निष्पत्ति होती है। जब चतुर्थाग्नि-पुरुष योषित् (पञ्चमाग्निमें रेतःका सिंचन करता है, तब पुरुषशरीर के गर्भमें धीरे-धीरे पुष्ट हो शिशुभावमें प्रकट होत इस क्रमसे ब्राह्मणादि समस्त प्राणिवर्ग उस अक्षर

ना=प्राण, वातं—समष्टि आधिदैविक वायुमें मिल जाय। ऽ कहा जा चुका है कि आध्यात्मिक चक्षुरादि प्राण धिदैविक सूर्याग्नि आदि देवभावको प्राप्त हो मृतात्माके ानमें सहायक होते हैं। उसी अभिप्रायको मन्त्रका प्रथम ण व्यक्त कर रहा है। अथवा इस मन्त्रांशसे उत्क्रान्तिका न किया है, जिसके बिना लोकान्तर-गति असम्भव है।

ज्ञातव्य है, उत्क्रान्ति (देहत्याग) के समय जीवात्माको ते दुःसह चतुर्विध भयंकर यातना सहन करनी पड़ती । अतएव उत्क्रान्ति (मृत्यु) का नाम सुनते ही मानव-रय काँप जाता है। वे दुःख निम्नलिखित हैं— श्लेषज-दुःख', 'मोहज', 'अनुतापज' और 'आगामी-यदर्शनज'। गोंदसे चिपकाये हुए दो कागजोंको अलग रना बहुत कठिन है। कभी-कभी अलग करनेके समय लग न होकर वे फट जाते हैं। ठीक यही स्थिति अहंता-मताके गोंदद्वारा स्थूलशरीरसे संलग्न सूक्ष्मशरीरकी है। ब सूक्ष्मशरीरसे स्थूलशरीरको पृथक् होना पड़ता है, तो सह्य वेदनाका अनुभव करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त से दोका भार एक मनुष्यको उठानेमें अति क्लेश होता , वैसे ही स्थूल-सूक्ष्म दोनों शरीरोंका भार अब अकेले क्ष्मशरीरपर ही आनेके कारण महती पीड़ा होती है। स, यही 'विश्लेषज-दुःख' है।

मरणोन्मुख प्राणीको चारों ओरसे कुटुम्बीजन घेरे रहते । सामने साश्रुनयना पत्नी या पति है, लाड़ले बेटे कह हे हैं—'माताजी! पिताजी! आप हमें अनाथ छोड़कर जा रहे हैं।' पुत्रवत्सला मा आर्तनाद कर रही है—'पुत्र! तू क्यों कठोर हो वृद्धा माताको असहाय दशामें छोड़े जा रहा है', तब उसका तीव्र मोह (कुटुम्बासक्ति) उद्‌बुद्ध हो हृदयको अत्यन्त संतप्त करता है—'हाय! जिनसे मैं पलभर भी पृथक् होना नहीं चाहता था, उन्हें छोड़नेके लिये विवश हूँ।' इसीको 'मोहज-दुःख' कहा गया है।

'मैंने जन्मभर पाप किये। भूलकर भी भगवद्भजन, साधुसेवा, दानादि पुण्य कार्य नहीं किये। अब मैं यमराजके दरबारमें क्या उत्तर दूँगा।' इन विचारोंसे अनुतापकी पराकाष्ठामें असह्य वेदना मुमूर्षुको होती है। इसीका नाम 'अनुतापज-दुःख' है।

मृत्युके समय भावी दृश्य उपस्थित हो जाता है, जिनसे पापात्माको बड़ी घबराहट होती है। वह काँपता है— 'मुझे रौरवादि भयंकर नरकोंमें ढकेला जायगा। मैं असहाय हो वहाँकी कठोर यातनाएँ भोगूँगा। जिन कुटुम्बियोंके लिये अगणित चोरी, ठगी, डकैती आदि कुकर्म किये, वे मेरा वहाँ साथ न देंगे।' भागवतमें वर्णन है कि पापात्माको निगृहीत करनेके लिये भयंकर आकृति, दण्डपाणि, रक्तनयन यमदूत उपस्थित होते हैं, जिनके देखनेमात्रसे मुमूर्षुका हृदय भयभीत हो जाता है। इतना ही नहीं, अधिक भयके कारण शय्यामें ही मलमूत्रका त्यागतक हो जाता है। इसीको 'आगामी दृश्यदर्शनज-दुःख' कहते हैं। अतएव जन्म, जरा, व्याधि-दुःखोंकी तुलनामें मरण-दुःखको सर्वाधिक भयंकर दुःख माना गया है।

पुण्यात्माके पास इस प्रकारके दुःख कभी फटकते तक नहीं। प्रत्युत वह आगामी स्वर्गीय दृश्यदर्शनसे अत्यन्त प्रसन्न हो हँसते-हँसते प्राणोंका विसर्जन करता है। उत्क्रान्त जीवात्माको पुण्यवश कहाँ, किस प्रकार जाना होगा और वहाँसे प्रत्यावर्तित हो किस स्थितिमें आना होगा—इसका विवरण शिष्ट तीन चरणोंमें दिया गया है।

परलोकगामी जीवात्मासे कहा जा रहा है कि तुम 'धर्मणा'—अपने अर्जित पुण्यके प्रभावसे 'द्यौ'—स्वर्गको 'गच्छ'—प्राप्त करो। फिर स्वर्गप्रापक पुण्यके क्षीण होनेपर अनुतापाग्निसे विलीन सोमद्वारा 'अपो वा गच्छ'—अन्तरिक्ष-को प्राप्त होओ। तात्पर्य—अन्तरिक्षस्थित मेघके जलमें प्रवेश करो। तत्पश्चात्, वृष्टिके द्वारा 'पृथिवीं गच्छ'—स्वर्गसे प्रत्यावर्तित हो पृथिवीको प्राप्त करो। फिर पृथिवीमें प्रादुर्भूत व्रीहि-यवादि ओषधियोंमें स्थित (संश्लिष्ट) होओ। 'शरीरैः'—शरीर-धारणके निमित्त। यह तृतीया फल उद्देश्य लक्षणहेतु अर्थमें है। यथा 'अध्ययनेन वसति'—अध्ययनके उद्देश्यसे रह रहा है। अर्थात् उसके निवासका फल उद्देश्य और लक्ष्य अध्ययन ही है।' भट्टोजी दीक्षितने सिद्धान्त-कौमुदीमें 'फलमपीह हेतुः' इस उक्तिसे दण्डादि कारण-की तरह क्रियाके फलको भी हेतु मानकर हेतु तृतीयाका समर्थन किया है। निष्कर्ष—ओषधिमें जीवात्माकी स्थिति या संश्लेषका लक्ष्य भावी पुरुषशरीर-धारण ही है। ओषधि-नाम व्रीहि-यवादि अन्नका है। वही अन्न पुरुष (पिता) के द्वारा भुक्त हो रसादि परम्परासे सप्तम धातु—शुक्र बनेगा। वह शुक्र स्त्रीमें निषिक्त हो 'गर्भ' बनकर कुछ महीनोंमें पुरुषाकृतिमें परिणत हो, मातृयोनिसे निर्गत होनेपर शिशु, बाल, कुमार आदि शब्दोंसे व्यवहृत

होगा। अतः प्रमाणित हुआ कि ओषधिमें स्वर्गसे प्रत्यावर्तित जीवात्माके अवस्थानका उद्देश्य शरीर-धारण ही है। इस मन्त्रके द्वारा अति संक्षिप्त शब्दोंमें पञ्चाग्नि-विद्याके समस्त सिद्धान्तोंको गागरमें सागरकी तरह भर दिया गया है।

प्रसन्नताकी बात है, जिस पञ्चाग्निविद्याका गूढ़ वर्णन संहितामें किया, उसीका कुछ विस्तारके साथ मुण्डकमें दिग्दर्शन हुआ। छान्दोग्योपनिषद्के पञ्चमाध्यायके ३ से १० तक आठ खण्डोंमें एवं बृहदारण्यकोपनिषद् पष्ठाध्यायके द्वितीय ब्राह्मणमें अति विस्तारके साथ इसका निरूपण किया गया है।

विस्तारभयसे लेखनीको विराम ही देना पड़ेगा। फिर भी कतिपय शब्दोंमें पञ्चाग्निविद्याके पाँच प्रश्न और उनके उत्तरोंका दिग्दर्शन अनिवार्य है।

प्रश्न—पृथिवीलोकसे मरणोत्तर प्राणी ऊपरके किस लोकमें जाता है?

उत्तर—ज्ञानी, उपासक, कर्मठ, कुकर्मी—चार श्रेणियोंमें प्राणिवर्ग विभक्त हैं। ज्ञानीको कहीं जाना ही नहीं। यह पहले कहा जा चुका है। वह यहीं जीवभावका अन्त होनेसे अपने ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हो जाता है। उपासक दो तरहके हैं—जैसे पञ्चाग्नि-उपासक एवं ब्रह्मोपासक। दोनों ही ब्रह्मलोकमें अवश्य जायँगे। अन्तर केवल इतना है कि पञ्चाग्नि-उपासक जिस कल्पमें ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ है उस कल्पमें उसकी पुनरावृत्ति न होगी; क्योंकि श्रुति (छान्दोग्य० ४। १५। ६)में लिखा है कि '**एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते।**' इस विशेषणसे उसी कल्पमें, जिस कल्पमें वे ब्रह्मलोक गये हैं, पुनरावृत्तिका निषेध हुआ है। कल्पान्तरमें पुनः प्रतीकोपासककी पुनरावृत्ति अनिवार्य है। ब्रह्मोपासककी पुनरावृत्ति न होकर क्रममुक्ति ही होगी।

भेद केवल इतना है कि पितृलोकसे प्राप्त पृथिवी तथा द्युलोकके मध्यवर्ती अन्तरिक्षमें है। देव[illegible] स्वर्ग, चन्द्रलोक द्युलोक अथवा द्युलोकसे उ[illegible] परमेष्ठि-मण्डल है। वैदिक प्रक्रियामें पाँचों मण्डल है[illegible] भूमण्डल, परमेष्ठिमण्डल, सूर्यमण्डल, पृथिवीमण्ड[illegible] पृथिवीके ऊपर अन्तरिक्षके एक देशमें स्थित लघु-चन्द्र[illegible] '**आकाशाच्चन्द्रमसम्।**' इस श्रुतिवचन (छा[illegible] ५। १०। ४) में इसी लघु-चन्द्रमण्डलका [illegible] है। '**संव[illegible]राददित्यमादित्याच्चन्द्रमसम्**' इस श्रु[illegible] (छान्दोग्य० ५। १०। २) में आदित्यमण्डलके उ[illegible] परमेष्ठिमण्डलकी ओर संकेत है; क्योंकि परमेष्ठिमण्ड[illegible] चन्द्रमण्डलका ही आदित्यमण्डलके ऊपर होना न्या[illegible] है। इन पाँचों मण्डलोंमें भूरादि सप्तलोकोंका सामवेश हो[illegible] है और एक-एक लोककी दो-दो बार गणना करनेसे त्रिलोकियोंका स्वरूप निष्पन्न होता है। जैसे भूलोक पृ[illegible] जिसपर मनुष्य-समाज रह रहा है; द्युलोक, जिसमें देदीप्यमान है, जिसे सूर्यमण्डल कहा जायगा। इन पृ[illegible] द्युलोकके मध्यवर्ती अवकाशात्मक आकाश अन्तरि[illegible] इन तीनोंकी एक त्रिलोकी बनी। दो मण्डलोंकी [illegible] इस त्रिलोकीका वैदिक नाम 'रोदसी' है। द्युलोक [illegible] 'जनः' या जनलोक इन दोनोंके मध्यवर्ती 'महः' ना[illegible] आकाशको मिला लेनेसे स्वः, महः, जनः—इन तीनोंकी द्वि[illegible] त्रिलोकी बनी। द्युलोकका अपर नाम स्वः या सूर्यमण्ड[illegible] है। जनलोकका नामान्तर ही 'परमेष्ठिमण्डल' है।* ज[illegible] और सत्य और उनके मध्यवर्ती तपोलोकको मिला लेनेसे इ[illegible] तीनोंकी तीसरी त्रिलोकी बनेगी। परमेष्ठिमण्डल, स्वयम्[illegible] मण्डल—इन दो मण्डलोंकी दृष्टिसे इस त्रिलोकी[illegible] द्विवचनान्त वैदिक नाम 'संयती' है।

कटिबन्ध, उष्ण कटिबन्ध, मध्य कटिबन्ध एवं नागवीथि, वीथ्यादि नौ वीथियोंका शास्त्रवर्णित विवरण आवश्यक पर भी स्थानसंकोचके कारण नहीं किया जा सका। के लिये पाठक पुराणशास्त्रकी शरण लें। कर्मठोंको फलभोगके अनन्तर पृथिवीपर अवश्य लौटना ही होगा, का विवरण द्वितीय प्रश्नके उत्तरमें दिया जायगा।

प्रश्न २—स्वर्ग या पितृलोकमें गये हुए प्राणियोंके ावर्तनका प्रकार क्या होगा?

उत्तर—वे स्वर्ग वा पितृलोकके प्रापक कर्मसमूहके गके अनन्तर वहाँसे वक्ष्यमाण मार्गसे प्रत्यावर्तन करते। पहले वे आकाशको प्राप्त होंगे, पश्चात् वायुको, फिर यु-सदृश होकर धूम-सदृश होंगे। अनन्तर अभ्र, तदनु बनकर वृष्टिद्वारा पृथिवीपर पहुँचेंगे। वे साक्षात् मादि स्वरूप न बनकर उनके समान स्वभावके ते हैं। पृथिवीपर पहुँचकर जातिस्थावर व्रीहि-यवादि धोंके साथ संश्लिष्ट होते हैं। स्वयं स्थावर निको प्राप्त नहीं होते। इसको समझनेके लिये दान्तदर्शन—

'साभाव्यापत्तिरुपपत्तेः।' 'नातिचिरेण विशेषात्।'
'अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्।'

(३।१।२२, २३, २४)

—सूत्र तथा शांकरभाष्य द्रष्टव्य है।

प्रश्न ३—देवयान-पितृयान, इन दोनों मार्गोंका विभाग अथवा अन्तर क्या है? तात्पर्य, ये दोनों मार्ग कहाँसे पृथक् होते हैं तथा इन दोनोंके विश्राम, पड़ाव, स्टेशन समान हैं या न्यूनाधिक?

उत्तर—पितृयानमार्ग (धूमयान) के क्रमशः सात पर्व हैं—धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायनके षण्मास, ये प्रथम चार पर्व हैं। ज्ञातव्य है कि धूमादि शब्दोंका सिद्धार्थ यहाँ विवक्षित नहीं, अपितु तदभिमानी 'आतिवाहिक देवता' अभिप्रेत है। देखिये—वेदान्तदर्शन ४।३।४ 'आतिवाहिकास्तल्लिङ्गात्।'

इस मार्गसे जानेवाले कर्मठ प्राणी संवत्सराभिमानी आतिवाहिक देवताको मिल नहीं पाते। बस, यहींसे इस पितृयानमार्गका देवयानमार्गसे विभाग हो जाता है। पञ्चम पर्व पितृलोक, षष्ठ आकाश, सप्तम चन्द्रलोक है।

(देखिये छान्दोग्योपनिषद्—५।१०।३, ४)

देवयानमार्गके १४ पर्व हैं—(१) अर्चिः अग्नि ज्वाला, (२) दिवस, (३) शुक्लपक्ष, (४) उत्तरायणके षण्मास, (५) संवत्सर, (६) देवलोक, (७) वायु, (८) आदित्य, (९) चन्द्र (जनः) परमेष्ठिमण्डल, (१०) विद्युत् (तपः), (११) वरुण, (१२) इन्द्र, (१३) प्रजापतिः, (१४) ब्रह्मलोक (सत्यलोक)।

विद्युत्-लोकमें उपासकके पहुँचते ही उसके स्वागतके लिये ब्रह्मलोकसे अमानव (दिव्य पुरुष) भेज दिया जाता है। वह उसे साथ ले वरुणलोकादिद्वारा ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। छान्दोग्य ५।१०।१, २ में यद्यपि देवलोक, वायुलोक, वरुण, इन्द्र, प्रजापति—इन पाँचों पर्वोंका उल्लेख नहीं, तथापि कौषीतकी आदि अन्य श्रुतिवचनोंके आधार-पर वे मार्गकी पर्वपूर्तिके लिये अवश्य उपादेय हैं। इसका विवरण वेदान्तदर्शन ४।३।१, २, ३ सूत्रों तथा उनके भाष्यमें द्रष्टव्य है।

प्रश्न ४—क्या आजतक अनन्त पुण्यात्माओंके स्वर्गमें चले जानेसे वह स्वर्ग परिपूर्ण न हो गया होगा, अर्थात् आज-कल जिन देशोंमें अधिक जनसंख्या हो जाय, वहाँ नये विदेशियोंके आनेपर प्रतिबन्ध लगाया जाता है। सम्भव है स्वर्गलोकमें अधिक प्राणिवर्गकी उपस्थितिके कारण नये परलोकयात्रियोंके लिये प्रतिबन्ध तो नहीं लगा दिया गया?

उत्तर—प्रथमतः पुण्यात्माओंकी स्वल्प संख्या होती है, और गये हुओंका प्रत्यावर्तन भी पहले कहा जा चुका है। कुकर्मीको वहाँ जानेका आदेश ही नहीं। कारण, कुकर्मी वहाँ जाते ही नहीं। उनके लिये जन्म-मरण-परम्परारूप तृतीय स्थान निर्धारित है। निष्कर्ष—कुकर्मी लोग क्षुद्र कीट-पतङ्गयोनिमें चले जाते हैं। वे बार-बार जन्मते तथा मरते हैं। इसलिये वे पृथिवीपर ही जन्म-मरणके चक्रमें फँसे रहते हैं। अतएव अनन्त कुकर्मियोंके पृथिवीमण्डलमें ही तिर्यक् योनियोंमें प्रविष्ट होनेके कारण स्वर्गलोकके परिपूर्ण होनेकी सम्भावना ही नहीं। कतिपय स्वर्गमें गये हुए पुण्यात्माओं-को भी कुछ सीमित समयतक निवासका आदेश है। भोगसे कर्मक्षय होनेपर उन्हें भी वहाँसे निर्वासित किया जाता है। भला, ऐसी स्थितिमें स्वर्गका भरना तो दूर रहा, वहाँके रिक्त स्थानोंकी पूर्ति होना भी कठिन है; क्योंकि जनसमाजका अधिक झुकाव पापकी ओर है। पुण्यकी ओर अङ्गुलिगण्य विरले व्यक्तियोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है। इसके अतिरिक्त

अति कुकर्मी, जिन्हें रौरवादि नरकोंमें जाकर यातना भुगतनी होगी, उनकी तुलना अपराधी कैदियोंसे करनी होगी। न्यायालयोंमें दण्डित होकर कैदी कारा (जेल) में भेज दिये जाते हैं। वहाँ कारावासकी कठोर यातनाएँ उन्हें भोगनी पड़ती हैं।

दक्षिणायन नामक न्योंये पर्वतक वे जा सकते हैं; उसके पश्चात् दक्षिणदिशामें वर्तमान यमालयमें उन्हें जाना पड़ेगा। यहाँ मृत पुरुषोंके अपराधके दण्डका निर्णय वैवस्वत यमदेव करते हैं। इस कार्यके लिये वे प्रभुकी ओरसे नियुक्त हैं। इसीलिये उन्हें पितृलोक नामक यमालयमें पहुँचे हुए प्राणिवर्गका शासक होनेके कारण अभिधान-कोशमें 'पितृपति' या 'धर्मराज' कहा है। इस विषयका स्पष्टीकरण निम्न निर्दिष्ट मन्त्रोंके अवलोकनसे होगा—

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ।
तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥
(शु० य० मा० सं० १९ । ४५)

इस मन्त्रमें पितृवर्गकी यमराज्यमें सत्ताका उल्लेख है। भाष्यकार महीधर—

'यमस्य राज्यं यस्मिन् तत्र यमलोके ये पितरो वर्तन्ते धर्मराजः पितृपतिरित्यभिधानात् ।'

इस उक्तिद्वारा यमालय (यमलोक) और वहाँ नियुक्त दण्डपाणि धर्मराजके अस्तित्वका स्पष्ट प्रतिपादन कर रहे हैं। केवल दण्डपाणि यमकी नियुक्ति नहीं, उसकी सहायताके लिये पाशपाणि वरुण भी नियुक्त हुए हैं—

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥
(ऋ० १० । १४ । ७, अथर्व (कुछ पाठान्तरसे) १८ । १ । ५४)

पुत्र अपने मृत पितासे कह रहा है कि 'मेरे पूज्य पिताजी! पूर्वकालमें होनेवाले अनादिकाल-प्रवृत्त मार्गोंसे आप वहाँ अति शीघ्र जायें। द्विरुक्तिसे आदरातिशय अथवा अतिशीघ्रताकी सूचना है। वहाँ हमारे पूर्वपुरुष पितामहादि पहले पहुँच चुके हैं तथा वहाँ पहुँचकर स्वधया—अमृतसे तृप्त यम और वरुणदेव दोनों राजाओंके दर्शन करें।' इससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि यमालयमें मृतात्माओंके भाग्य निर्णय करनेके लिये दो अधिकारी नियुक्त हैं—यम और वरुण। उनमेंसे वरुणका उत्कर्ष बतलानेके लिये 'देव' शब्द प्रयुक्त हुआ है। कारण ऋग्वेदमें केवल वरुणदेव लिये 'सम्राट्' शब्दका प्रयोग हुआ है। अतएव यम हाथमें दण्ड और वरुणके हाथमें पाश शासकका चिह्न है—

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ।
(तै० आ० ६ । ४ । २; ऋग्वेद १० । १४ । ८; अथर्व १८ । ३ । ५

पुत्र अपने मृत पितासे पुनः प्रार्थना करता है—

'हे मृतात्मन् पिताजी! अवद्यम्—पापको हित्वाय—हि परित्याग करके अनुष्ठान किये हुए इष्टापूर्त श्रौतस्मार्त द रूप कर्मके प्रभावसे आप यमसे मिलें। तदनन्तर उ शासित पितरोंसे समागम करें। जो यम और पितृ परमे व्योमन्—उत्कृष्ट स्थान—उत्तम पितृलोक—स्वर्गमें रह रहे 'अस्तं—भोगसे कर्मक्षयके होनेपर फिर पृथिवीपर एहि आगमन करें। अथवा कर्मभोगानन्तर, अस्तं—सर्व प्राणि गृह—निवासस्थान पृथिवीको प्राप्त हों। इतना ही क पृथिवीपर आकर सुवर्चाः—सुवर्चसा। तृतीयार्थे प्रथमा शो दीप्तियुक्ततन्वा—सुन्दर कान्तिवाले शरीरसे संगत हों, अथ पितृलोकसे पृथिवीमें लौटकर सुन्दर शरीरको धारण करें।

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः ।
(ऋग्वेद १० । १६ । ५; अथर्व १८ । २ । १०; तै० आ० ६ । ४ ।

(व्याख्या) हे अग्ने! यः—जो मृत पुरुष, ते—तु आहुतः—चितामें वेदमन्त्रसे समर्पण किया गया है 'स्वधाकार' उच्चारणपूर्वक समर्पित उदकादिके सहित 'चरति इधर-उधर चक्कर काट रहा है, उसे 'पितृभ्यः—पितृ प्राप्तिके निमित्त अर्थात् पितृलोककी प्राप्तिके लिये, पुनः 'सृज'—फिर प्रेरित करें। पितृलोकमें कर्मभोगके अनन्तर पुरुष हे जातवेद! आपकी कृपाद्वारा शरीरसे, 'संगच्छता' संगत हो, अर्थात् पितृलोकसे प्रत्यावृत्त हो शरीर धारण क यही क्यों, आपकी कृपासे 'आयुर्वसानः'—जीवनको ध करनेवाला, दीर्घायुः शेष—संतान अपत्य (शेष इत्यपत्य निघण्टु २-२) उपवेतु—उपगच्छतु—उस पुरुषको प्राप्त

तात्पर्य—पृथिवीपर शरीर धारण करके पितृलोकसे हुआ पुण्यात्मा पुरुष दीर्घजीवी पुत्ररत्नको प्राप्त हो। अ शेष भुक्तकर्म उस पितृलोकसे प्रत्यावृत्त पुरुषको उप उपगमयतु—पृथिवीपर शरीर धारण करने और वह

ान—आयुयुक्त दीर्घजीवी हो, पृथिव्यां तिष्ठतु इति अध्याहारः—
थ्वीमें रहे ।

इन मन्त्रोंसे मृतात्माके लोकान्तरमें पहुँचने और प्रत्या-
त होकर पृथिवीमें शरीर धारण करनेका स्पष्ट वर्णन है ।
सन्नताकी बात है कि जब हमने वैदिक संहिताओंमें
लोकसम्बन्धी खोज आरम्भ की, तब एक-दो नहीं, असंख्य
न्त्र अहं-अहमिकासे उपस्थित हुए । तब हमें निःसीम
ाश्चर्य हुआ । भगवान् वेद विश्वकल्याणके लिये जिन
दार्थोंका प्रत्यक्ष अथवा अनुमानसे ज्ञान सम्भव नहीं, उनकी
वगति करानेमें सर्वथा सचेष्ट हैं । इसी अभिप्रायकी अभि-
क्तोक्ति है—

प्रत्यक्षेणानुमानेन यस्तूपायो न बुद्ध्यते ।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥

'प्रत्यक्ष वा अनुमानसे जिस अलौकिक साधनका ज्ञान
नशक्य है, उसे वेदके द्वारा ही मनुष्य जानते हैं । यही
ादका वेदत्व है ।'

वेदवर्णित यमालय तथा उसके स्वामी यमराज एवं
उसके द्वारा पापकी जाँच कर नरकगतिके निर्णयका उल्लेख
ेदान्तदर्शनमें ३ । १ । १३, १४ तथा १५ सूत्र तथा उनके
भाष्यमें द्रष्टव्य है ।

'संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात् ।'
'स्मरन्ति च ।' 'अपि च सप्त ।' 'पूषा त्वेतः ।'
(ऋग्वेद १० । १७ । ३; अथर्व० १८ । २ । ५४; तै० आ०
६ । १ । १; निरुक्त ७ । ९)

'द्यौर्मे पिता जनिता ।'
(ऋग्वेद १ । १६४ । ३३; अथर्व० ९ । १० । १२; निरुक्त०
४ । २१)

पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनुषिच्यते ।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत् ॥
(अथर्व० ६ । ११ । २)

इत्यादि वेद-मन्त्र पञ्चाग्निविद्याके मौलिक तत्त्व तथा
परलोकसम्बन्धी तथ्योंकी जानकारीके लिये विशिष्ट महत्त्व
रखते हैं । विस्तारभयसे उनकी व्याख्या नहीं की गयी ।

सुबन्धु-उपाख्यान, ऋग्वेदीय १० वें मण्डलके सूक्त ५७
से ६० तक ४ सूक्तोंसे सम्बद्ध है । उन सूक्तोंकी क्रमशः
ऋचाएँ ६, १२, १० तथा १२—संकलित ४० हैं । उस
उपाख्यानके परिशीलनसे परलोकसम्बन्धी मनोरञ्जक तथ्य
अवगत होते हैं । नीतिमञ्जरी, सामवेदीय शाट्यायण
ब्राह्मण, बृहद्देवता, कात्यायन ऋग्वेदीय सर्वानुक्रमणी तथा
सायण भाष्य उसके आधार हैं ।

हमारे प्राचीन महर्षियोंको एक अपूर्व विद्या अवगत
थी, जिसके द्वारा वे मृत व्यक्तिके जीवात्माको जिस शरीरसे
वह उत्क्रान्त हुआ है, उसीमें फिरसे आह्वान कर सकते थे ।

अस्याति राजा मानवी असुरोंके मायाजालमें फँस गये
और अपने कुलगुरु पुरोहितोंको छोड़कर कीराताकुली नामक
मायावी असुरोंको उन्होंने अपना पुरोहित बनाया । इससे
क्रुद्ध होकर उसके सुबन्धु, बन्धु, श्रुतबन्धु तथा विप्रबन्धु—
इन चार पुरोहितोंने अभिचार-प्रयोगसे राजाका अनिष्ट करना
चाहा । राजाके द्वारा उसकी सूचना नवनियुक्त असुर
पुरोहितोंको दी गयी । उन्होंने अपनी माया तथा योगशक्तिसे
प्राचीन पुरोहितोंके अभिचार-प्रयोगको निष्फल बना दिया
तथा राजाका बाल बाँका नहीं हो सका । प्राचीन पुरोहितोंके
समक्ष एक नया संकट उपस्थित हुआ । असुर पुरोहितोंने
सुप्त—असावधान उनके सुबन्धु भ्राताके प्राणोंको हरण कर
लिया । वे स्वदृष्ट उक्त सूक्तोंके प्रभावसे सुबन्धुके निर्गत
प्राणोंको वापस बुलानेमें सफल हुए और मृत सुबन्धु चेतनामें
आये और जीवित हो गये । तब उनके बन्धु आदि भ्राताओं-
ने सुबन्धुके लब्धसंज्ञ शरीरको हाथसे सस्नेह स्पर्श करते
हुए मन्त्र पढ़ा—

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥
(ऋग्वेद १० । ६० । १२)

'मेरा हाथ क्या ही सौभाग्यशाली है । यह अत्यन्त
सौभाग्यशाली है, यह सबके लिये भेषज है । इसके स्पर्शसे
कल्याण होता है ।'

अथर्ववेदमें भी जब मनुष्यकी आयु क्षय हो रही हो,
मरणोन्मुख दशामें उसका कण्ठ कफावरोधके कारण भयंकर
शब्द कर रहा हो एवं मनुष्य ऊर्ध्व श्वास ले रहा हो या
उसके प्राण शरीरसे विदा हो गये हों, उसे दीर्घजीवी बननेके
लिये मन्त्र है—

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो
यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमाहरामि निर्ऋतेरुपस्था-
दस्पार्शमेनं शतशारदाय॥
(अथर्व० ३।११।२)

"यदि आयु क्षीण हो चुकी हो, अथवा प्रेत मर गया है या मृत्युके समीप ही पहुँचा गया है, इस 'अस्पार्श' निर्जीव पुरुषको मृत्युके मुखसे मैं 'आहरामि'—वापस ला[illegible] जिससे वह, 'शतशारदाय'—सौ वर्षतक जीवित र[illegible]

श्रीकृष्ण प्रभुने मृत गुरुपुत्र, मृत अपने देवकीके छः पुत्रों तथा मृत ब्राह्मण-पुत्रोंको वापस हमारी मृतसंजीविनी वेदविद्याके अद्भुत चमत्कार प्रदर्शन किया है। श्रीमद्भागवतमें इन वृत्तान्तोंका वर्णन द्रष्टव्य है।

पुनर्जन्मके सिद्धान्त

(लेखक—पूज्यपाद श्री१००८ श्रीस्वामीजी महाराज श्रीपीताम्बरापीठ)

प्राचीन समयसे ही पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें मतभेद चला आ रहा है। कुछ लोग यह मानते हैं कि शरीरके मरनेपर आत्मा भी मर जाता है और कुछ लोगोंका मत है कि मृत्यु शरीरकी ही होती है, आत्मा अमर है, नित्य सच्चिदानन्दस्वरूप है। इसीका निर्णय करानेके लिये नचिकेताने यमसे कहा था, जिसे—

'अस्तीति एके नायमस्तीति चैके।'
(कठ० १।१।२०)

—इस कठ-श्रुतिद्वारा व्यक्त किया गया है। मृत्युतत्त्वके अधिष्ठाता यमने नचिकेताके प्रश्नकी कठिनताको जानकर, अनेक प्रलोभनोंद्वारा उसे इस प्रश्नसे हटाकर किसी अन्य वरदानके लिये कहा; क्योंकि यह प्रश्न बहुत ही दुरूह है एवं सर्वसाधारण इसे नहीं समझ सकते। यह विषय कठोपनिषद्के प्रथमाध्यायकी प्रथम वल्लीमें बताया गया है। इस विषयको, ब्रह्मविद्या प्राप्त होनेपर योगविधिके द्वारा ही जाना जा सकता है। इसको अनेक उदाहरणोंद्वारा बताया गया है। इसलिये अन्तमें कहा है—

विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्।
(कठ० २६।१८)

योगदर्शनमें इस विषयके सूत्रपर कहा गया है—

संस्कारसाक्षात् करणात् पूर्वजातिज्ञानम्।
(३।१८)

'संस्कारोंके साक्षात्कार होनेपर ही पूर्वजातिका ज्ञान होता है।' जो लोग इस पुनर्जन्मके सिद्धान्तपर केवल पुस्तकोंके पठनमात्रसे या सुनी-सुनायी बातोंद्वारा अपनी राय दिया करते हैं, उनका कथन वास्तवमें भ्रान्तिसे नहीं हो सकता। बहुतसे लोग तर्कद्वारा इसे चाहते हैं। तर्क तत्त्वनिर्णयका एक साधन अवश्य है, सारे विषयोंका निर्णय तर्कसे ही नहीं हो सकता पुनर्जन्मके विषयमें तर्ककी अनुपयोगिता बताया है—'नैषा तर्केण मतिरापनेया' (कठ० २।९) क[illegible] है। पुनर्जन्मकी प्रत्यक्ष घटनाएँ भी घटती रहती हैं, प्रत्यक्षरूपमें देखा जा सकता है। विद्वानोंने तर्कसे [illegible] सिद्ध किया है। एक बार प्लेटोने सुकरातसे पूछा कि सभी विद्यार्थियोंको एक-सा ही पाठ पढ़ाते हैं, तथा[illegible] विद्यार्थी एक बारमें, कोई दो बारमें, कोई तीन-तीन पाठको जान पाते हैं और कोई दस बारमें भी नहीं पाते, इसका क्या कारण है?' सुकरातने इसका दिया कि 'जिन लोगोंने पहलेसे ही अभ्यास कि[illegible] उन्हें जल्दी ही समझमें आ जाता है और जिन्होंने किया है उन्हें देर लगती है तथा जिन्होंने समझना [illegible] ही किया है, उन्हें और भी अधिक देर लगती है कथन पूर्वजन्मसे ही सम्बन्धित है। बिना पुनर्जन[illegible] इस भेदका युक्तिसंगत उत्तर नहीं हो सकता।

इस्लाम-ईसाई धर्मोंमें पुनर्जन्म न माननेका योग एवं आत्मविद्याका अभाव ही है; तथापि पुन[illegible] घटनाएँ तो उनके सामने भी आती हैं। भा[illegible] जैन, बौद्ध, अवैदिक मतोंमें भी पुनर्जन्म स्वीकार गया है। केवल चार्वाकने अर्थ-काम,-दृष्टिको मु[illegible] धर्म एवं मोक्षको नहीं स्वीकार किया है। चार्वाक[illegible] पुनर्जन्मके सिद्धान्तका विरोध किया गया है। [illegible]

र्तके सिद्धान्तके अनुसार पुनर्जन्मके सिद्धान्तको
: झूठा बताया गया है । बहुतसे पाश्चात्त्य विद्वानोंने
र्यजातिके मान्य वैदिक ग्रन्थोंमें भी ऐसा सिद्ध
प्रयत्न किया है कि ''पुनर्जन्मका यह सिद्धान्त
समयका नहीं है; क्योंकि वैदिक संहिता-ग्रन्थोंमें
माना गया है । इस सिद्धान्तको बादमें साम्राज्यवादी
स्वीकार करके साम्राज्यवाद एवं कैपिटेलिस्टवादके
नसे प्रवृत्त किया है; क्योंकि छान्दोग्योपनिषद्-
गति-जैविलि-संवादमें एवं श्रीभगवद्गीता (२।२२)
उसीका अनुसरण किया गया है । **'वासांसि
यथा विहाय'** आदि श्लोक श्रीकृष्ण एवं अर्जुनके
बताये गये हैं । यह भी क्षत्रियोंका सिद्धान्त है,
क्षत्रियोंद्वारा ही समर्थित है ।''

ंतु यह आक्षेप सर्वथा निराधार है कि पुनर्जन्मका
। साम्राज्यवादियों एवं कैपिटेलिस्टोंका है । वैदिक
ग्रन्थोंमें यह सिद्धान्त नहीं है—यह कथन भी
हित है । अथर्ववेदके अठारहवें काण्डमें अनेक
पुनर्जन्मके समर्थक आये हैं, जिनका पाठ ऋग्वेद
जुर्वेदमें भी आया है । यहाँपर एक मन्त्र उदाहरणके
लिखा जा रहा है, जिससे यह सिद्धान्त स्पष्ट ज्ञात
ऋग्वेद एवं यजुर्वेदमें भी इसका पाठ आया है—

**नर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं
व्रेसहि ।** (ऋ० १० । ५७ । ५; यजुर्वेद ३ । ५५)

मैं पुनः-पुनः माता-पिताको प्राप्त करूँ, दिव्यजन
जीवके विग्रहको प्राप्त करूँ ।' गीता (४।९) में भी दिव्य
की बात कही गयी है—**'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'**
श्लोकमें नारायणके दिव्य पुनर्जन्मकी कथाएँ
दकालसे ही प्रसिद्ध हैं । अन्तर केवल इतना है कि जीव
ागे हैं और ईश्वर अविद्यासे मुक्त है । बार-बार जन्म
के होते हैं ।

**बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥**
(श्रीमद्भगवद्गीता ४ । ५)

अयुक्त है । कठोपनिषद्, मुण्डक आदि उपनिषदोंमें
क्षत्रियों एवं कैपिटेलिस्टोंका कोई सम्बन्ध नहीं है । उनमें
पुनर्जन्मके सिद्धान्त स्पष्टरूपसे बताये गये हैं । वास्तवमें
यह एक पूर्ण सत्य है, जिसका किसी वर्गविशेषसे कोई
सम्बन्ध नहीं है ।

जीवका स्वरूप और पुनर्जन्म

**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥**
(ऋ० १ । १६४ । २०; मुण्डक० ३ । १ । १)

'दो पक्षी एक वृक्षपर बैठे हुए हैं । एक वृक्षके स्वादिष्ट
फलोंको खा रहा है, दूसरा केवल साक्षीरूपसे देख रहा
है ।' इस मन्त्रमें ईश्वर एवं जीवका स्वरूप बताया गया
है । राग-द्वेषमय अविद्याके साथ अभ्यास होकर, अहं-ममके
अभिमानसे जीव सांसारिक सुख-दुःखोंमें बँधा हुआ है ।
यह व्यवहार कबसे हुआ, इसके आरम्भका ज्ञान न होनेसे
इसे अनादि बताया गया है—

'नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।'

इसे ही भगवद्गीता (१५।३)में स्वीकार किया गया है ।
सत्त्व, रज, तम—इन त्रिगुणोंके प्रभावसे जीव ऊँच-नीच
कर्मोंको करता है और उसीके अनुसार अनेक योनियोंमें घूम
रहा है । यही पुनर्जन्मका कारण है । इसीको यमने कहा है—
'पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ।' (कठ० १ । २ । ६)

'बार-बार रागद्वेषात्मक कर्मफलोंमें आसक्त रहनेसे
जीव जन्म-मरणके चक्रमें पड़े रहकर हमारे वशमें रहते
हैं ।' जो लोग सात्त्विक कर्म करते हैं, उन्हें ऊर्ध्वगति प्राप्त होती
है, राजस लोग मध्यम गतिवाले हैं तथा तामस लोग जघन्य
योनियोंको प्राप्त होते हैं । छान्दोग्योपनिषद्में पञ्चाग्नि-
विद्यारूपसे यह विषय बताया गया है । यदि पुनर्जन्म नहीं
माना जायगा तो सांसारिक व्यवस्था सम-विषमरूपसे जो
चल रही है, उसका कोई ठीक समाधान हो ही नहीं सकता ।
किसी भी भौतिक उपायसे यह असम्भव है । संसारमें जहाँ-
कहीं यह विषय चल रहा है, वहाँ भी स्वाभाविक भेदभाव

रहा है वह बिना किये हुए ही है। कोई बुद्धिमान्, कोई मूर्ख; कोई धनी, कोई गरीब; कोई महात्मा, कोई दुष्ट आदि भेदोंका समाधान नहीं होगा। वर्तमानमें जो धर्मात्मा शुभ कर्म कर रहे हैं, अधर्मी पापी जो पाप करते हैं, उनका फल उन्हें नहीं मिलेगा; क्योंकि मरनेके पश्चात् फिर जन्म न होनेसे दोनों एकसे ही होंगे। इस अव्यवस्थाको सुलझानेका उपाय पुनर्जन्म है। यह अभिप्राय उक्त युक्तिका है।

आगमके अनुसार जीवका स्वरूप

'न जायते म्रियते वा कदाचित्'—इस गीतावाक्य (२। २२)से आत्माकी उत्पत्ति एवं मरणका निषेध किया गया है। इसपर यह प्रश्न होता है 'तो फिर जन्म-मरण किसका है?' इसके लिये यह अङ्गीकार किया गया है कि जन्म-मरण जीवात्माका है। वास्तवमें जीव भी जन्म-मरणसे रहित ही है। कर्मफल भोगनेके लिये शरीरोंका ही जन्म-मरण होता है, तथापि शरीरका सम्बन्ध होनेसे आत्मामें गौण रूपमें जीवन-मरण स्वीकार किया गया है। इसके आविर्भावका सिद्धान्त इस प्रकार बताया गया है। सहस्रारके ऊर्ध्व भागमें निर्वाण-शक्तिका ध्यान योगी करते हैं। शिव-शक्ति-सामरस्य भावसे आनन्दबिन्दुका आविर्भाव इसी शक्तिसे होता है, जिसे इस प्रकार कहा गया है—

ज्वलदग्नेर्यथा देवि स्फुरन्ति विस्फुलिङ्गकाः।
तस्माच्च्युतं परं बिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यपि॥
तदैव सहसा देवि संज्ञायुक्तो भवत्यपि।

'जैसे प्रज्वलित अग्निसे छोटे-छोटे अग्निकण स्फुरित होते हैं, इसी प्रकार उस परमानन्दस्वरूपिणीसे जीवकण उत्पन्न हुए। अविद्यामें प्रतिफलित होनेसे उसके तमोअंशसे आनन्दांश तिरोहित हो गया है। उसे (आनन्द) प्राप्त करनेके लिये यह जीव सर्वदा लालायित रहता है ज्ञान होनेपर ही उसे प्राप्त कर सकता है। जबत ज्ञान नहीं प्राप्त करता, तबतक पुनर्जन्मका चक्र ही रहता है। मुण्डकोपनिषद्में भी ऐसा गया है—

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद्
विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूप
तथाक्षराद् विविधाः सौम्य भावाः
प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति
(मु० २।

'हे प्रिय! वह केवल परम सत्य ब्रह्मतत्त्व है अनेक भाव प्रकट होकर पुनः उसीमें लय हो जैसे प्रज्वलित अग्निसे अनेक चिनगारियाँ प्रकट उसीमें समा जाती हैं।'

उपसंहार

संक्षिप्त रूपमें पुनर्जन्मके उपयोगी सिद्धान्तोंका दिया गया है। विस्तृत रूपमें पुराण-ग्रन्थोंमें जो अने लोकान्तरोंका वर्णन मिलता है, वह भी पुनर्जन्मके सि ही आधारपर है। शुभकर्म, उपासना, योगके द्वार जीवात्मा अपनी योग्यताके अनुसार प्राप्त करता दक्षिणायन एवं उत्तरायण गतिका वर्णन भी इसीसे रखता है। इन दोनों गतियोंसे भिन्न सगुण ब्रह्म प्राप्तिके भी सिद्धान्त हैं, जिन्हें जानकर सगुण ब्र प्राप्त करके अपने वास्तविक आनन्दरूपको प्राप्त कर लिये सांसारिक दुःखोंसे जीव छूट जाता है। यह जीवनका लक्ष्य है। निराकार ब्रह्मकी प्राप्ति भी, अद्वैत-बोध रूपसे बताया गया है। उसके लिये लोकलोकान्तरकी अपेक्षा नहीं है।

कौन स्वधर्म-भ्रष्ट कैसे प्रेत होते हैं?

वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात् स्वकाच्च्युतः। अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः।
मैत्राक्षज्योतिष्कः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक्। चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात् स्वकाच्च्युतः।

अपने धर्मसे च्युत ब्राह्मण वान्तभोजी (वमन खानेवाला), ज्वालायुक्त (जलते) मुँहवाला प्रेत; स्वधर्मच्युत क्षत्रिय ३ (निषादि) तथा शवको खानेवाला कटपूतन नामक प्रेत; स्वधर्मभ्रष्ट वैश्य पीव खानेवाला 'मैत्राक्षज्योतिष्क' नामक प्रेत

द्वन्द्वमयी सृष्टि

(लेखक—श्रीस्वामीजी श्रीप्रेमानन्दतीर्थजी महाराज)

[प्रेषक—श्रीओङ्कारनाथजी सुहृद्]

सृष्टि-रचनाके लिये 'एक' को 'बहु' होना होगा, बहुरूपी स्वाँग बनाने होंगे, देवासुररूपमें प्रकट होना होगा, द्वन्द्वभावके माध्यमसे बाहर निकलना होगा और जन्म-मृत्युद्वारा परिणति प्राप्त करनी होगी । । नाटकमें जितनी रामकी आवश्यकता है, रावणकी उससे किंचिन्मात्र भी कम नहीं है; और दोनोंके बीचमें रहेगी—महामाया सीतादेवी एवं इसके भीतर आ जायगा एक, असम्भव स्वर्णमृग-रहस्य । तभी तो रामलीलाका खेल सुचारु रूपसे होगा । नाटक देखकर तुम बाहरका लीलातत्त्व तो कुछ समझ गये; अब एक बार साधनबलसे नेपथ्य (green room) में जाकर स्वरूप-तत्त्वको समझनेकी चेष्टा करो । यदि किसी प्रकार वहाँ पहुँच सको तो देखोगे कि न राम राम हैं, न रावण रावण है और न सीता सीता ही । वहाँ न कोई भेद-भाव है, न झगड़ा-विवाद । जो कुछ गड़बड़ी है वह रंगमंचपर और वह भी सबको आनन्द देनेके लिये, लीलामयकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये । जिसने एक बार वेशस्थानमें जाकर स्वरूप-को देख लिया, स्वाँगके भीतरके असली मनुष्यको पहचान लिया, असली मनुष्यके भीतरके उद्देश्यको जान लिया, उसके लिये सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है । उसके भाव-कर्म-वचनमें आनन्दके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलेगा ।

और जिसने स्वाँगको ही सार मान लिया है, जो लीला-के रहस्यको समझ नहीं सका, स्वरूपको जाननेकी कोई चेष्टा नहीं की; वह घात-प्रतिघातद्वारा कल्पित द्वन्द्वके प्रभावसे,

साधु शिक्षा देता है—विध्यात्मकरूपसे । वह ब[illegible] है कि किस प्रकार जीवनमें चलनेसे उन्नति, शान्ति, [illegible] प्राप्ति-लाभ की जा सकती है । और असाधुकी निषेधात्मक होती है । वह अपने चरित्रद्वारा दिख[illegible] है कि कुपथमें जाने और कुकर्म करनेका कैसा परिणाम होता है—उन्नति, शान्ति और आनन्दसे किस[illegible] वञ्चित होना पड़ता है । साधु हाथ पकड़कर ले [illegible] और असाधु पद-पदपर सावधान करता है [illegible] ही हमारे कल्याणमें सहायक और आवश्यक हैं । महात्मा मौलाना रूमीने पापी-तापी-दुराचारीको [illegible] ग्रहणकर प्रणाम किया । सभी देशोंके साधकोंने [illegible] की शिक्षाको स्वीकार किया है ।

सच्चे साधकको जन्म और मृत्यु दोनों आत्मा[illegible] विकासमें सहायक होनेके कारण समान रूपमें ग्रा[illegible] उसकी आनन्द-अनुभूतिमें—भगवत्-लीलारस-आस[illegible] सहायक हैं । ज्ञानीके ज्ञानद्वारा और अज्ञानीकी अज्ञ[illegible] भगवत्-उद्देश्य किस प्रकार सफल हो रहा है; [illegible] युद्धके द्वारा उनके स्वर्गकी पवित्रताकी किस [illegible] रक्षा हो रही है; द्वन्द्वभावके द्वारा उनकी महिम[illegible] प्रकार घोषित हो रही है, उनका लीलारस अनु[illegible] हो जाता है, यह साधकके अतिरिक्त अन्य लोगों[illegible] समझना वास्तवमें कठिन है ।

असंयत स्वार्थचालित विषयलोलुप व्यक्ति यदि[illegible]

वह माँ क्यों अपनी एकमात्र संतानको कड़वी जोर करके खिलाती है, अच्छी-अच्छी खानेकी उससे छिपाकर रखती है—इस बातको क्या अबोध समझनेमें समर्थ होता है अथवा समझकर माँ-बापके कृतज्ञ रहता है ? किंतु सच्चा साधक जानता माँका समस्त ऐश्वर्य, माधुर्य, सुख, शान्ति संतान-याण और आनन्दके लिये है।

ाँ प्रकृतिदेवी जब देखेगी कि तुमने साधनाके द्वारा ीजोंका सद्व्यवहार करना सीख लिया, सब प्रकारके ास्वादनका सामर्थ्य लाभ कर लिया, तुम्हारे द्वारा ापना या और किसीका अनिष्ट होनेकी सम्भावना ; तब वे अपने अक्षय भण्डारकी सारी चाबियाँ तुमको सुख अनुभव करेंगी। किंतु जबतक तुम्हारे भाव, या कर्मसे किसीका भी अनिष्ट होनेकी सम्भावना है, प्रेममयी माँ अपने भण्डारकी बहुमूल्य चीजें तुम्हारे अस्वास्थ्यकर, कष्टप्रद जानकर तुमसे दूर हटाकर रक्खेंगी। ऐसी अवस्थामें, शायद न करोगे कि तुमको कठोर विधान पालनकर संयमपूर्वक चलना चाहिये। जो माँ असुरोंके लिये असि-मुण्डधारिणी हैं, दुष्टोंके दलनमें व्यस्त हैं, वही माँ देवताओंको वर-अभय प्रदान करनेवाली हैं; संयत साधु महात्माओंकी रक्षामें तत्पर हैं।

विचारपूर्वक समझनेकी चेष्टा करो कि हम क्यों माँके जन्म-मृत्युरूपी ऐसे सुन्दर कौतुकको भयकी दृष्टिसे देखते हैं ? अपनी आँखोंको प्रेम-यमुनाके जलसे धोना शुरू करो, मनको संस्काररूपी आवर्जनासे मुक्त करो और बुद्धिको ज्ञान-गङ्गाके जलसे शुद्ध करो। एक दिन जब माँकी कृपासे तुम्हारी दिव्य दृष्टि खुल जायगी, तब देखोगे कि माँ कैसी सुन्दरी, आनन्दमयी, दयामयी, प्रेममयी हैं। तब माँके सृष्टिरहस्य, जन्म-मृत्युलीला, सुख-दुःखतत्त्वसे अवगत होकर तुम आनन्द-विभोर हो जाओगे। तब मृत्यु तुम्हें भय नहीं दिखा सकेगी। ('जन्म-मृत्यु' नामक पुस्तकाकार पत्रावलीसे)

पागलकी झोली

[परम पद]

(लेखक—महात्मा अनन्तश्रीविभूषित ठाकुर श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराज)

ागल हाथसे ताली बजाते हुए नाच-नाचकर राम-ोल रहे हैं। उसी समय हलधर आकर कुछ देर ारमें शामिल होकर कहने लगे—'अच्छा, पागल यज्ञोपवीत होनेके बाद '**ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा ़ सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।**' (यजुर्वेद ६। ५)—त्र बोलकर आचमन करते हैं, इसका अर्थ क्या है ?'

ागल—राम-राम सीताराम। तत्त्वदर्शी लोग विष्णुके रमपदको सर्वदा देखते हैं। कैसे देखते हैं ?—ामण्डलमें विस्तारित आँखें जैसे अबाधरूपसे आकाशकी ोभा देखती हैं, उसी प्रकार वे परमपदकी शोभाको हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

़लधर—परमपद किसे कहते हैं ? तत्त्वज्ञानी लोग कैसे शोभा देखते हैं ?

ागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। ़ कहते हैं—परमाकाश परव्योमको। साधनाके द्वारा और ज्ञानी लोग उस परमपदको देख पाते हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। श्रीभगवान्ने उद्धवजीसे कहा था कि 'उनका वह रूप अङ्ग-प्रत्यङ्गके अनुरूप है। श्रीसम्पन्न प्रशान्त सुन्दर मुख है। चारों भुजाएँ दीर्घ और मनोज्ञ हैं, ग्रीवा रमणीय और मनोहर है, कपोल सुरम्य है। वदन सहास्य और चित्ताकर्षक है, दोनों कानोंमें मकराकृति कुण्डल हैं, सुवर्ण वसन पहने हैं, चरणयुगलमें शब्दायमान नूपुर हैं, श्यामघनके समान श्याम वर्ण है, लक्ष्मीजीके द्वारा सेवित हैं और श्रीवत्ससुशोभित वक्षःस्थल है। चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म हैं तथा गलेमें वनमाला और प्रभावशाली कौस्तुभ लटक रहा है, मस्तकपर कान्तिमान् किरीट है और बाहुमें सम्यक् रूपसे सुशोभित अङ्गद है। कटिमें मेखला है, मुख और दृष्टि प्रसन्नतापूर्ण हैं। इस प्रकार सर्वाङ्गसुन्दर मेरे रूपका अभिनिवेशपूर्वक ध्यान करे। धीरतापूर्वक मेरे सर्वाङ्गमें मनको लगाये रक्खे। मनके द्वारा सारी इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर शुद्ध मनसे बुद्धिरूप सारथिके द्वारा आकृष्ट करके मुझमें लगा दे। मनको अन्य चिन्ताओंसे दूर रक्खे, केवल मेरे मनोहर

हास्ययुक्त मुखका चिन्तन करे। पश्चात् मनको खींचकर कारणोंके कारण आकाशमें स्थापन करे—

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत्।

(श्रीमद्भागवत ११। १४। ४४)

उसे त्यागकर जो आदमी मुझमें आरूढ़ होना चाहता है, वह केवल मेरा ही चिन्तन करे। राम-राम सीताराम। ध्यानके समय जो आकाश उपस्थित होता है, उस आकाश-को ही परमपद कहते हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—जिस आकाशको हम देखते हैं, इसीका नाम परमपद है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। नहीं, परमपद इन आँखोंसे नहीं देखा जाता। आँखें मूँदकर ज्ञाननेत्रसे उसे देखना पड़ता है। वह परमपद सबका काम्य है। भक्त सगुण मन्त्र जप करता है। सगुण-साक्षात्कारके बाद मन्त्र लय हो जाता है, ॐकारकी प्राप्ति होती है। उसकी सुषुम्णामें नादात्मक ॐकार अबाध गतिसे निरन्तर क्रीड़ा करता है। उस नादको सुनते-सुनते आकाश उपस्थित होता है। कोई उसको विराट् कहता है, कोई महान् कहते हैं, कोई उसको परमपद कहते हैं। राम-राम सीताराम। शास्त्रमें परमपदका अनेक रूपोंमें वर्णन किया गया है। राम-राम सीताराम।

हलधर—बतलाइये न, शास्त्र क्या कहते हैं?

पागल—

अविकारमजं शुद्धं निर्गुणं यन्निरञ्जनम्।
नताः स्म तत् परं ब्रह्म विष्णोर्यत् परमं पदम्॥

(विष्णुपुराण १। १४। ३८)

'जो अविकार, अज, शुद्ध, निर्गुण और निरञ्जन विष्णु-का परमपद है, उस परब्रह्मके प्रति हम नत होते हैं।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—आपने आकाशको परब्रह्म कहा है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। श्रुति कहती है—

यद् वै तद् ब्रह्मेतीदं वाव तद् योऽयं बहिर्धा पुरुषादा-काशो यो वै सः।

(छान्दोग्य० ३। १२। ७)

'पहले जिसको ब्रह्मरूप बतला चुके हैं, वही देहके बाहर विद्यमान आकाश है। देहके बाहर जो आकाश है, वही आकाश शरीरके भीतर है। देहके भीतर जो आकाश है, वही आकाश हृदयकमलके भीतर है; यह हृदयाकाश नामक ब्रह्म पूर्ण और प्रवृत्तिहीन है। जो इस प्रकार ब्रह्मको जानता है, वह पूर्ण और अविनाशी ऐश्वर्य प्राप्त करता है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—आकाशको देखनेसे ब्रह्म देखा जाता है?

पागल—ब्रह्माकाश आँखोंसे नहीं देखा जाता। ब्रह्माकाश भूताकाशको व्याप्त करके स्थित है। राम-राम सीताराम। **'मनो ब्रह्म'** अध्यात्म उपासना है। 'आकाशो ब्रह्म' अधिदैवत उपासना है। मन ब्रह्मके चार पद हैं—वाक्, नासिका, चक्षु और श्रोत्र; तथा आकाश ब्रह्मके चार पद हैं—अग्नि, वायु, सूर्य और दिक्। राम-राम सीताराम। यहाँ ब्रह्मके प्रतीकरूपमें मन और आकाशको ब्रह्म कहकर उपासनाकी बात कहते हैं। राम-राम।

हलधर—श्रुति आकाशको ब्रह्म कहती है?

पागल—ॐ ही आकाश ब्रह्म है, आकाश चिरन्तन है। कौरव्यायनी-पुत्र कहते हैं कि वायुका आधार ही आकाश है। (बृहदारण्यक०) राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

'आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता। ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतं स आत्मा।' (छान्दोग्य० ८। १४। १)

'जो आकाश नामसे प्रसिद्ध है, वही नाम-रूपको अभि-व्यक्त करता है। वही ब्रह्म है, वही अमृत है, वही आत्मा है' राम-राम सीताराम।

हलधर—परमपदकी बात कहिये।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। दूसरे स्थानमें श्रुति कहती है—

निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि।
यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम्॥

(ब्रह्मबिन्दु० ४)

'विषयोंके भोगकी अभिलाषा निरस्त हो जानेपर, मनको हृदयमें पूर्णतः निरुद्ध करनेपर जब मन उन्मनीभावको प्राप्त होता है, तब उस अवस्थाको परमपद कहते हैं। राम-राम सीताराम।

हलधर—उन्मनीभाव किसको कहते हैं?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

संकल्पशून्यताका नाम उन्मनीभाव है। राम-राम सीताराम। ॐकारका नाम भी परमपद है—

सर्वंतातः सर्वभर्त्ता जगद्बुध्नो जगन्निधिः।
जगद्वीचितरङ्गाणामाधारं परमं पदम्॥
(प्रणवकल्प)

प्रणवकी नवमी मात्रा शान्त, निर्मल आकाश है। राम-राम सीताराम।

हलधर—तब तो तरङ्गशून्य शान्त अवस्थाका नाम परमपद है?

पागल—

अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतं मनः॥
तन्मनो विलयं याति तद् विष्णोः परमं पदम्॥
(उत्तरगीता)

'अनाहत शब्दकी जो विशेष ध्वनि होती है, उस ध्वनिके अन्तर्गत जो ज्योति है, उस ज्योतिके अन्तर्गत जो मन होता है, वह मन जहाँ विलयको प्राप्त होता है, वह स्थान ही विष्णुका परमपद है। राम-राम सीताराम।

हलधर—मनोलय विष्णुका परमपद है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

सा कुण्डलिनी कण्ठोर्ध्वभागे सुप्ता चेद् योगिनां मुक्तये भवति। बन्धनायाधो मूढानाम्। इडादिमार्गद्वयं विहाय सुषुम्नामार्गेणागच्छेत् तद् विष्णोः परमं पदम्।
(शाण्डिल्योपनिषद् १। ३७)

'वह कुण्डलिनी शक्ति यदि कण्ठके ऊर्ध्वभागमें निद्रित रहती है तो वह योगियोंके लिये मुक्तिका कारण बनती है और अधोभागमें मूढ़ लोगोंके बन्धनका हेतु होती है। निद्रा टूटनेपर यह इडा-पिङ्गला मार्गको त्याग करके सुषुम्णा मार्गसे गमन करती है। यही विष्णुका परमपद है। राम-राम सीताराम।

गङ्गायमुनयोर्मध्ये बालरम्भां तपस्विनीम्।
बलात्कारेण गृह्णीयात् तद्विष्णोः परमं पदम्॥
(हठयोगप्रदीपिका)

ज्योतिर्मयी सुषुम्णा नाड़ीको पकड़े, वही विष्णुका परम-पद है। राम-राम सीताराम।

हलधर—सुषुम्णाको ही आपने परमपद कह

पागल—राम-राम सीताराम। हाँ, सीतार

राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनो
अमरत्वं लयस्तत्त्वं शून्याशून्यं परं
अमनस्कं तथाद्वैतं निरालम्बं निरञ्
जीवन्मुक्तिश्च सहजा तुर्या चेत्येकवाच
(हठ

'राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अ तत्त्व, शून्याशून्य, परमपद, अमनस्क, अद्वैत निरञ्जन, जीवन्मुक्ति, सहजा, तुर्या—ये शब्द प हैं।' राम-राम सीताराम।

हलधर—एक परमपद इतने नामोंसे पुकारा अच्छा, पागल बाबा! सुषुम्णामें प्रवेश करनेसे ही पद प्राप्त हो जाता है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम स नहीं, सीताराम। सुषुम्णामें प्रवेश करके जब सहस्रारमें परम शिवके साथ मिलती है, वास्तविक प्राप्ति तभी होती है। राम-राम सीताराम।

परमं पदमिति च प्राणेन्द्रियाद्यन्तःकरणगुणा सच्चिदानन्दमयं नित्यमुक्तब्रह्मस्थानं परमं पदम्।
(निरालम्ब

'प्राण-इन्द्रिय आदि अन्तःकरणके गुण औ सच्चिदानन्दमय नित्यमुक्त ब्रह्मस्थानका नाम परम

व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीयाव्यक्तसंज्ञका
मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्द्धमात्रा परं पदम्
(मार्कण्डे

'प्रथम मात्रा अकार, पृथिवी, अग्नि, ब्रह्मा आ हैं; द्वितीया मात्रा उकार, अन्तरिक्ष, विष्णु आदि हैं और तृतीया मात्रा मकार, द्यौ, शिव चिच्छ तथा अर्द्धमात्रा परम पद है।' राम-राम सीताराम।

यद् योगिनः सदोद्युक्ताः पुण्यपापक्षयेऽक्षयम्
पश्यन्ति प्रणवे चिन्त्यं तद्विष्णोः परमं पदम्
(विष्णुपुराण १। ९

'सदा साधनमें उद्युक्त, ध्यानमें निपुण योगीज पापके क्षय होनेपर प्रणवमें चिन्तनीय विष्णुके उस परमपदको देखते हैं।' राम-राम सीताराम। जय-ज सीताराम।

बीजाक्षरं परं बिन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम् ।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ॥

(ध्यानबिन्दूपनिषद् २)

'बीज ॐकार है, उसके परे बिन्दु है और उसके ऊपर स्थित है—नाद। शब्दके साथ अक्षर नादके क्षीण होनेपर शब्दशून्य अवस्थाका नाम परमपद है।'

यन्मनस्त्रिजगत्सृष्टिस्थितिव्यसनकर्मकृत् ।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

(ध्यानबिन्दूपनिषद् २५)

'जो मन सृष्टि, स्थिति और लय करता है, वह मन जहाँ विलय होता है, वही विष्णुका परमपद है।' राम-राम सीताराम।

हलधर—सब प्रणवका ही व्यापार देखता हूँ!

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। ॐकारके अतिरिक्त क्या और कुछ है? बाह्यजगत्, अन्तर्जगत्, शब्दजगत्—सब ॐकारसे उद्भूत है और ॐकारमें ही लय हो जायगा। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डरूपमें ब्रह्माण्डमें व्याप्त होकर एकमात्र ॐकार ही लीला करता है। जगत्में जो कुछ देखनेमें आता है, सब कुछ उस ॐकार पुरुषोत्तमका लीला-विग्रह है। पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, कीट-पतङ्ग, मनुष्य-देवता, पिशाच-राक्षस सब कुछ ॐकार है। धूलके कण या हिमालय पर्वत सब कुछ उस पुरुषोत्तमके लीला-विग्रह हैं। राम-राम सीताराम।

हलधर—कहिये, परमपदके विषयमें और कुछ कहिये।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

अकारे रेचितं पद्ममुकारेणैव भिद्यते ॥
मकारे लभते नादमर्द्धमात्रा तु निश्चला ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं निष्कलं पापनाशनम् ॥
लभते योगयुक्तात्मा पुरुषस्तत् परं पदम् ।

(योगतत्त्वोपनिषद् १३८, १३९, १४०)

'अकारमें पद्म रेचित होता—निकलता है, उकारमें भिन्न होता—खिल जाता है, मकारमें नादको प्राप्त करता है और अर्द्धमात्रा निश्चला होती है। वह विशुद्ध स्फटिकके समान श्वेतवर्ण, निष्कल और पापनाशक होता है। योगयुक्त चित्त-वाले पुरुष उस परमपदको प्राप्त होते हैं।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—और भी कहिये।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रिस्रः संध्यास्त्रयः स्वराः ॥
त्रयोऽग्नयश्च त्रिगुणाः स्थिताः सर्वे त्रयाक्षरे ।
त्रयाणामक्षराणां च योऽधीतेऽप्यर्द्धमक्षरम् ॥
तेन सर्वमिदं प्रोतं तत्सत्यं तत्परं पदम् ।

(योगतत्त्वोपनिषद् १३४-१३६)

'भूः, भुवः, स्वः—तीन लोक; ऋक्, यजुः, साम—तीन वेद; प्रातः, मध्याह्न, सायं—तीन संध्या; उदात्त, अनुदात्त, स्वरित—तीन स्वर; गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिण—तीन अग्नि; सत्त्व, रजः, तमः—तीन गुण—ये सब-के-सब अकार, उकार, मकार—इन तीन अक्षरोंमें अवस्थित हैं। इन तीनों अक्षरोंके बीच जो अर्द्धमात्रा है, उसके द्वारा ये सब समाच्छन्न हैं। वही सत्य है, वही परमपद है।' राम-राम सीताराम।

हलधर—सब कुछ ॐकारकी लीला है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। कन्हैयाके बिना गीत नहीं। सब कुछ प्रणव है।

लयविक्षेपरहितं मनः कृत्वा सुनिश्चलम् ।
यदा यात्यमनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥

(मैत्रायणी उपनिषद् ४ । ७)

'लय-विक्षेपरहित मनको भलीभाँति स्थिर करके जो अमनीभाव उपस्थित होता है, वह विष्णुका परमपद है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—इस परमपदको कौन प्राप्त कर सकता है?

पागल—राम राम सीताराम। जय जय राम सीताराम।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥

(कठ० १ । ३ । ८)

'जो विज्ञानवान्, अनुभवसम्पन्न, मननशील, नित्यशुचि है, वही उस परम पदको प्राप्त करता है; उसको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। बाह्य-विषयका त्याग किये बिना परमपद प्राप्त नहीं होता। राम-राम सीताराम।

हलधर—यह बड़ी कठिन बात है। 'बाह्य विषय स्मरण न करूँगा।' यह कहनेपर भी मन बलात्कारसे किसी बहाने विषयमें कूद पड़ता है। वह कौन-सा साधन—अभ्यास है जिससे मन विषयशून्य होता है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

केवल नाम-जप करो, नाम-जप करते रहनेपर मनको सहज ही विषयशून्य किया जा सकता है। राम-राम सीताराम।

परमपदप्रतिमो हि साधुसङ्गः। (योगवासिष्ठ ५।२१।७८)

'साधुसङ्ग परम पदके तुल्य है।' राम-राम सीताराम, सीताराम। यदि कुछ न हो सके तो केवल साधुसङ्ग करो। उसीके द्वारा कृतार्थ हो जाओगे। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—साधुसङ्गकी प्राप्तिसे तो सहज ही हो जायगा, परंतु वह भी अतिदुर्लभ है। अच्छा परमपदकी बात करें।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। जगन्माता ही परमपद है।

एषा माहेश्वरी देवी मम शक्तिर्निरञ्जना।
शान्ता सत्या सदानन्दा परं पदमिति श्रुतिः॥
अस्याः सर्वमिदं जातमत्रैव लयमेष्यति।
एषैव सर्वभूतानां गतीनामुत्तमा गतिः॥

(कूर्मपुराण)

'यह माहेश्वरी देवी मेरी निरञ्जना शक्ति हैं, यह शान्ता, सत्या, सदानन्दा हैं, श्रुति इनको परमपद कहती है। इनसे यह सारा जगत् उत्पन्न होता है और अन्तमें इनमें ही लीन होगा। यही सर्वभूतोंकी गति है। उनमें भी सबसे श्रेष्ठ गति है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीत.राम।

हलधर—तब तो जगन्माता ही परम पद हैं!

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। सुनो—

तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा।
मनो निर्विषयं युङ्क्त्वा ततः किञ्चन न स्मरेत्।
पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति॥

(श्रीमद्भागवत २।१।१९)

'स्थिर चित्तसे एक-एक अवयवका ध्यान करे। निर्विषय मनको उससे युक्त करे। तत्पश्चात् और कुछ स्मरण न करे। वही विष्णुका परमपद है जहाँ मन प्रसन्न होता है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्वमिदं जगत्।
जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिन् विलयमेष्यति॥
तद्ब्रह्म परमं धाम सदसत् परमं पदम्।

(ब्रह्मपुराण २३।४१-४२)

राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। 'वह परम ब्रह्म हैं। जिससे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ जगत् है, जिसका जगत् है, जिसमें जगत् विल[illegible] जायगा, वही ब्रह्म परम धाम है। वह सत्-असत् [illegible] है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। और सुनो—

परं गुह्यतमं विद्धि ह्यस्ततन्द्रो निराश्रयः
सोमरूपकला सूक्ष्मा विष्णोस्तत् परमं पदम्

(तेजोबिन्दूपनिषद् १

'अतिशय गुह्यतम, अस्ततन्द्रा, निराश्रय सोमरू[illegible] कला है, वही विष्णुका परमपद है।' राम-राम सीत[illegible] जय-जय राम सीताराम।

हलधर—शान्त अवस्थाका ही न.म परमपद है [illegible] पदके और भी नाम हैं?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीत[illegible] वह नित्य विभूति है—आमोद, प्रमोद, सम्मोद, वैकुण[illegible] चार प्रकारका। पुनः अनन्ता, त्रिपादविभूति, परमपद व्योम, परमाकाश, अमृत, नाक, अप्राकृतलोक, आनन्[illegible] वैकुण्ठ, अयोध्या आदि भी उसके नाम हैं।

इस विभूतिमें द्वादश आवरणयुक्त गोपुर प्राकार द्वारा आवृत वैकुण्ठ नामक नगर है। आनन्द नामक [illegible] आलय है। उसके भीतर रत्नमय सहस्रों स्तम्भोंसे [illegible] महामणिमण्डप नामक सभा है। उसमें सहस्र-फण [illegible] तेजसे युक्त अनन्त विराजमान हैं। उसपर दिव्य धर्म [illegible] वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्यमय [illegible] सिंहासन है। उसके ऊपर चामरधारिणी विमला, उ[illegible] ज्ञान, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशानीद्वारा सेवित [illegible] पद्म है। उसके ऊपर शेषनागका प्रकृष्ट धाम है और ऊपर अनिर्वचनीय श्रीभगवान् हैं। (यतीन्द्रमतदीपिक[illegible]

हलधर—हे हरि! वैकुण्ठ, परम व्योम, अयोध्या, [illegible] लोक—सब परमपदके ही नाम हैं?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम सीताराम। राम-राम सीताराम। पाप-पुण्य और प्रकारके पीड़ा-दुःखोंके कारणोंके निवृत्त होनेपर प्रा[illegible] गमन करते हैं और शोक नहीं करते, वही विष्णुका [illegible] है। धर्म और ध्रुव आदि लोकसाक्षीगण इन्द्रियवशीकरण [illegible] प्राप्त योगबलसे दीप्तिमान् होकर जहाँ धर्माचरण [illegible]

कारण उपासकके लिये प्रत्यक्ष सिद्ध है, उस ब्रह्मलोक या हिरण्यगर्भलोकमें प्रविष्ट होनेपर पहले जो ह्रद पड़ता है, उसका नाम है—'आर'। वह 'आर' ह्रद ब्रह्मलोक जानेके मार्गको अवरुद्ध करके स्थित है। वह ह्रद शत समुद्रके समान गहरा है और उसका जल सदा नीला रहता है। काम-क्रोधादि अरिवर्गके द्वारा वह ह्रद विरचित है, अतएव उसका नाम रक्खा गया है 'आर'। उसी आर ह्रदके उस पार मुहूर्त अथवा दण्डद्वय कालके अभिमानी देवता लोग निवास करते हैं। वे देवता किस प्रकारके हैं?

······जो लोग ब्रह्मलोकप्राप्तिके अनुकूल उपासनाको काम-क्रोधादि प्रवृत्तिके उत्पादनके द्वारा विनष्ट कर देते हैं। उस ब्रह्मलोकमें उसके बाद जो नदी है, उसका नाम है–'विजरा'। जिसका दर्शन करनेसे जरावस्था नष्ट हो जाती है, उसको 'विजरा' कहते हैं। वह उपासना क्रिया है। उस नदीका नाम भी ऐसा ही है। जो वृक्ष है उसका नाम 'ईला' है। ईला शब्द पृथ्वीका वाचक है। तद्रूप ही सारे वृक्ष हैं। इस वृक्षको अन्य उपनिषद्में 'सोमसवन' नामक अश्वत्थ वृक्ष कहा गया है। बहुत-से लोगोंके निवास योग्य पत्तन 'सालज्य' नामक है अर्थात् साल वृक्षके समान है, धनुषके ज्याके सदृश वस्तु जिसके तीरपर है। अतएव उसको सालज्य कहते हैं। अर्थात् देवताओंके द्वारा सेव्यमान आराम, वापी, कूप, तडाग और सरित् आदि विविध जलोंसे परिपूर्ण छोटे-बड़े नगर-नगरी वहाँ विराजमान ब्रह्मके निवासस्थल हैं, जहाँ हिरण्यगर्भका राजमन्दिर है। उसका नाम 'अपराजित' वेदीमें जो पर्यङ्क है, वह 'अमितौजा' अर्थात् प्राण-संवादादिसे प्रसिद्ध और विज्ञात हो गया है। जिसमें अमित या अपरिमित ओजः, बल है, वह प्राण ही है। वह प्राण ही उसका मञ्चक है। हिरण्यगर्भके आसनरूपमें प्राण पर्यङ्करूप है। उनकी प्रिया 'मानसी' है। वह मनकी कारणभूता प्रकृति और मनोगत आह्लादकारिणी भार्या है। उनकी मानसी भार्याके अलंकार आदि भी मानसी हैं, मनोगत आह्लादकारी हैं। उनकी प्रतिच्छाया चाक्षुषी है अर्थात् चक्षुकी प्रकृतिके स्वरूप तैजसी या तेजोमयी है। जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज—इन चार प्रकारके भूतोंको 'जगत्' कहते हैं। यह जगत् जिनके पुष्प एवं उत्तरीय तथा अधरीय वसन हैं; ये भूत सारे लोक-संस्थानके सहित जिनके कुसुम हैं; जिस प्रकार कुसुम कलिकावस्थासे प्रस्फुटित होकर जनसाधारणको सुगन्ध प्रदान करते हैं, उसी प्रकार भूतवर्ग भी बाल्यावस्थासे क्रमशः यौवनादिको प्राप्त होकर जनसाधारणके मनको आनन्द प्रदान करते हैं; तथा कुसुमके समान ही समय आनेपर कलेवर छोड़ देते हैं। केवल पुष्प ही नहीं, चारों ओर जो तन्तुसंतानके द्वारा निष्पादित पट, आच्छादन तथा परिधानके साधन वसन हैं, वे उसके स्वरूप हैं। जिस प्रकार सब प्राणी सङ्कोच और विकासमें तत्पर हैं, दोनों वस्त्र भी उसी प्रकारके हैं। इसी कारण चतुर्विध भूत उनके पुष्प और वसनका कार्य करते हैं। इसी प्रकार 'अम्बा' और 'अम्बायवी' वहाँकी अप्सराएँ हैं। जगत्की जननी (अम्बा) श्रुतियाँ हैं तथा न्यूनाधिक भावरहित बुद्धियाँ अम्बायवी हैं। ये श्रुतियाँ

ज्ञान। उसको जिसके द्वारा प्राप्त किया जाय, उसे 'अम्बया' कहते हैं। अम्बया शब्दका अर्थ है—उपासना। सब नदियोंका प्रवाह है—उपासनाकी धारा।

श्रीमद्भागवत (३ । १५)में वर्णित वैकुण्ठ

"उस वैकुण्ठधाममें सभी लोग विष्णुरूप होकर रहते हैं और वह प्राप्त भी उन्हींको होता है, जो अन्य सब प्रकारकी कामनाएँ छोड़कर केवल भगवच्चरण-शरणकी प्राप्तिके लिये ही अपने धर्मद्वारा उनकी आराधना करते हैं। वहाँ वेदान्त-प्रतिपाद्य धर्ममूर्ति श्रीआदिनारायण हम अपने भक्तोंको सुख देनेके लिये शुद्धसत्त्वमय स्वरूप धारणकर हर समय विराजमान रहते हैं। उस लोकमें 'नैःश्रेयस' नामका एक वन है, जो मूर्तिमान् कैवल्य-सा ही जान पड़ता है। वह सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वृक्षोंसे सुशोभित है, जो स्वयं हर समय छहों ऋतुओंकी शोभासे सम्पन्न रहते हैं।

"वहाँ विमानचारी गन्धर्वगण अपनी प्रियाओंके सहित अपने प्रभुकी पवित्र लीलाओंका गान करते रहते हैं, जो लोगोंकी सम्पूर्ण पापराशिको भस्म कर देनेवाली हैं। उस समय सरोवरोंमें खिली हुई मकरन्दपूर्ण वासन्तिक माधवी लताकी सुमधुर गन्ध उनके चित्तको अपनी ओर खींचना चाहती है, परंतु वे उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते, वरं उस गन्धको उड़ाकर लानेवाले वायुको ही बुरा-भला कहते हैं। जिस समय भ्रमरराज ऊँचे स्वरसे गुंजार करते हुए मानो हरि-कथाका गान करते हैं, उस समय थोड़ी देरके लिये कबूतर, कोयल, सारस, चकवे, पपीहे, हंस, तोते, तीतर और मोरोंका कोलाहल बंद हो जाता है—मानो वे भी उस कीर्तनानन्दमें बेसुध हो जाते हैं। श्रीहरि तुलसीसे अपने श्रीविग्रहको सजाते हैं और तुलसीकी गन्धका ही अधिक आदर करते हैं—यह देखकर वहाँके मन्दार, कुन्द, कुरबक (तिलकवृक्ष), उत्पल (रात्रिमें खिलनेवाले कमल), चम्पक, अर्ण, पुन्नाग, नागकेसर, बकुल (मौलसिरी), अम्बुज (दिनमें खिलनेवाले कमल) और पारिजात आदि पुष्प सुगन्धयुक्त होनेपर भी तुलसीका ही तप अधिक मानते हैं। वह लोक वैदूर्य, मरकतमणि (पन्ने) और सुवर्णके विमानोंसे भरा हुआ है। ये सब किसी कर्मफलसे नहीं, बल्कि एकमात्र श्रीहरिके पादपद्मोंकी वन्दना करनेसे ही अपनी मन्द मुसकान एवं मनोहर हास-परिहा[स] विकार नहीं उत्पन्न कर सकतीं।

"परम सौन्दर्यशालिनी लक्ष्मीजी, जिनकी कृ[पा] करनेके लिये देवगण भी यत्नशील रहते हैं, श्रीहरि[के] चञ्चलतारूप दोषको त्यागकर रहती हैं। जिस सम[य] चरण-कमलोंके नूपुरोंकी झनकार करती हुई वे अप[ने] कमल घुमाती हैं, उस समय उस कनक-भवनकी स[्फटिक] दीवारोंमें उनका प्रतिबिम्ब पड़नेसे ऐसा जान [पड़ता है] मानो वे उन्हें बुहार रही हों। प्यारे देवताओ! जि[स समय] दासियोंको साथ लिये वे अपने क्रीडावनमें तुलसी[से] भगवान्‌का पूजन करती हैं, तब वहाँके निर्मल जलसे [भरे] सरोवरोंमें, जिनमें मूँगेके घाट बने हुए हैं, अपन[ी] अलकावली और उन्नत नासिकासे सुशोभित मुख [का प्रतिबिम्ब] देखकर 'यह भगवान्‌का चुम्बन किया हुआ है' यों [मानकर] उसे बड़ा सौभाग्यशाली समझती हैं।" (श्रीमद्भाग[वत ३।] १५। १४–२२)।

राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। [...] और सुनो।

"प्रकृति और परव्योमके बीच पवित्र विरजा नदी [...] है, वह वेदाङ्गरूपी धर्मवारि (स्वेद-जल) के द्वारा [...] हो रही है। इस विरजाके उस पार त्रिपादविभू[ति] सनातन, अमृत, शाश्वत, नित्य और अनन्त, [...] परिमाणरहित परम व्योम नामक स्थान है। रा[म-राम] सीताराम। जय-जय राम सीताराम। वह शुद्ध स[त्त्वमय] अलौकिक, अविनाशी एवं ब्रह्मका आश्रय है। दूसरा जो अनेक कोटि सूर्य और अग्निके समान तेजोमय है, [...] सर्ववेदस्वरूप, शुभ्रवर्ण, सब प्रकारके प्रलयसे वर्जित, [...] शून्य, अजर, सत्य, जाग्रत्-स्वप्नादि तीनों अवस्थाओंसे [...] स्वर्णमय, मोक्षप्रद, ब्रह्मानन्द सुखस्वरूप तथा जिसके [...] या अधिक कुछ नहीं है; जो आदि-अन्तशून्य, [...] स्वरूप, अतिशय अद्भुत, रमणीय, नित्य और आनन्द[...] इत्यादि गुणयुक्त है, वही विष्णुका परमपद है। रा[म-राम] सीताराम। जय-जय राम सीताराम।" (संक्षेप भागवता[...] उद्धृत पद्मपुराण, उत्तरखण्ड)

राम-राम सीताराम। वैकुण्ठमें सभी शुद्धस[त्त्वमय] पार्षदोंके उज्ज्वल श्यामवर्ण, पद्मलोचन, पीताम्बर-परि[धान] अति कमनीय सुकुमार आकृति है। सभी चतुर्भुज हैं, [...] —— अतिशय प्रभावाली मणियुक्त पदक देदीप्[यमान]

मृणालके समान है तथा वे सब दीप्तियुक्त कुण्डल, ट और माला धारण करके रहते हैं। राम-राम सीताराम। जय राम सीताराम।

हलधर—सुन्दर, सुन्दर! कहिये, कहिये—वैकुण्ठके धमें और भी कुछ कहिये।

पागल—राम राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। ण्ठमें सुनन्द, नन्द, प्रबल, अर्हन आदि प्रधान-प्रधान दोंके द्वारा श्रीहरि सेवित होते हैं। राम-राम सीताराम। चण्ड, प्रचण्ड, भद्र, सुभद्र, जय, विजय, धाता, विधाता, द, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वभद्र, सुमुख दि द्वारपालगण बड़ी सावधानीसे पहरा देते हैं। राम-राम ताराम। यहाँ सम्पत्तिरूपिणी श्री मूर्तिमती होकर विविध वोंके द्वारा श्रीभगवान्‌के चरणारविन्द-युगलकी सेवा करती और निरन्तर अपने प्रियतम श्रीहरिका गुणगान करती रहती। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—बोलिये—वैकुण्ठकी बात और सुनाइये!

पागल—राम-राम सीताराम। मोक्ष, परमपद, दिव्य, मृत, विष्णु, मन्दिर, अक्षर, परमधाम, वैकुण्ठ, शाश्वतपद, त्य, परम व्योम, सर्वोत्कृष्ट और सनातन—ये सब शब्द रम व्योमके पर्यायवाची हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय म सीताराम।

त्रिगुणात्मिका प्रकृति और परम व्योमके बीच विरजा दी विद्यमान है। यह विरजा वेदाङ्गसे उत्पन्न है, स्वेदजल-के द्वारा प्रवाहित है। उसके दूसरे पार महाकाश है। उस महाकाशमें सनातनी त्रिपादविभूति वर्त्तमान है। वह त्रिपादविभूति अक्षर-ब्रह्मपद है। वह अमृत, शाश्वत, नित्य, अनन्त, परम शुद्ध सत्त्वमय और दिव्य है। उसकी अव्यय कान्ति अनन्त-कोटि सूर्य और अग्निके समान है।

है। बड़े ऊँचे मण्डपके समान यह राजस्थान है। यह शुभ स्थान रत्नमय, सहस्रों मणि-माणिक्यमय स्तम्भोंसे युक्त है। दिव्य मुक्तासमाकीर्ण है तथा सामगानसे परम रमणीय है। उसके बीचमें सर्ववेदमय सुरम्य शुभ्र सिंहासन विद्यमान है। वह सिंहासन वेदमयात्मक धर्मादि देवगण, धर्म, ज्ञान, महैश्वर्य, वैराग्य, पाद, विग्रह, ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—इन सबके द्वारा यथाक्रम नित्य परिवृत है। शक्ति, चिच्छक्ति, सदाशिवा तथा धर्मादि देवगणोंकी शक्तियाँ उसकी आधार-शक्ति हैं। उसके भीतर वह्नि, चन्द्र और सूर्य वास करते हैं तथा कूर्म, नागराज, वैनतेय, वेदाधिप मन्त्रोंके छन्द—ये सब उस सिंहासनके पीठत्वको प्राप्त हो रहे हैं। यह पीठ 'सर्वाक्षरमय योगपीठ'के नामसे अभिहित है। सिंहासनके बीचमें नवोदित आदित्यकी प्रभाके समान अष्टदल पद्म विराजमान है। उसमें सावित्री नामकी कर्णिकामें ईश्वरीके साथ परमपुरुष देवेश भगवान् श्रीहरि समासीन हैं। वे इन्दीवरदलके समान श्यामवर्ण और कोटि-सूर्यके समान दीप्तिमन्त हैं। उनकी युवा, कुमार स्निग्ध दिव्य कोमल काया है। उनके प्रस्फुटित रक्तपद्मप्रभ कमलके समान कोमल चरण-युगल हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

—(सुगम साधन-पन्था)

हलधर—सुन्दर! सुन्दर! कैसे सुन्दर भगवान् श्रीहरि हैं। कहिये, कहिये पागल बाबा और भी कहिये।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। श्रीभगवान् रामानुजाचार्य कहते हैं* कि ''निरन्तर आध्यात्मिक जीवनमें उन्नति प्राप्त करनेके लिये बार-बार इस प्रकार चिन्तन करे—यह जो चौदह भुवनोंमें विभाजित ब्रह्माण्ड है, उसके जो उत्तरोत्तर दसगुने सात आवरण हैं तथा जो समस्त कार्य-कारण-समुदाय है, उन सबसे परे दिव्य शोभासे सम्पन्न अलौकिक वैकुण्ठधाम विराजमान है। उसका दसगु

सकते। उन महात्माओंका ऐश्वर्य इतना ही है, उसकी इतनी ही मात्रा है अथवा उसका ऐसा ही स्वभाव है—इत्यादि बातोंका परिच्छेद (निर्धारण या निश्चय) करना भी वहाँके लिये नितान्त अनुचित है। वह दिव्य धाम एक लाख दिव्य आवरणोंसे आवृत है। दिव्य कल्पवृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। वह वैकुण्ठलोक शतसहस्र कोटि दिव्य उद्यानोंसे घिरा हुआ है। उसका दीर्घ विस्तार नापा नहीं जा सकता। वहाँके निवासस्थान भी अलौकिक हैं। वहाँ एक दिव्य सभाभवन है, जो विचित्र एवं दिव्य रत्नोंसे निर्मित है। उसमें शतसहस्रकोटि दिव्य रत्नमय खंभे लगे हैं, जो उस भवनकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। उसका फर्श नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंसे निर्मित होनेके कारण अपनी विचित्र छटा दिखाता है। वह सभा-भवन दिव्य अलंकारोंसे सजा हुआ है। कितने ही दिव्य उपवन सब ओरसे उस सभा-भवनकी श्रीवृद्धि करते हैं। उनमें भाँति-भाँतिकी सुगन्धसे भरे हुए रंग-बिरंगे दिव्य पुष्प सुशोभित हैं, जिनमेंसे कुछ नीचे गिरे रहते हैं, कुछ वृक्षोंसे झड़ते रहते हैं और कुछ उन वृक्षोंकी डालियोंपर ही खिले रहते हैं। घनी श्रेणियोंमें लगे हुए पारिजात आदि कल्पवृक्षोंसे शोभायमान लक्षकोटि दिव्योद्यान भी उक्त सभा-भवनको पृथक्-पृथक् घेरे हुए हैं। उन उद्यानोंके भीतर पुष्पों तथा रत्न आदिसे निर्मित लाखों दिव्य लीलामण्डप उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे सर्वदा उपभोगमें आते रहनेपर भी अपूर्वकी भाँति वैकुण्ठवासियोंके लिये अत्यन्त आश्चर्यजनक जान पड़ते हैं। लाखों क्रीडापर्वत भी उक्त उद्यानोंको अलंकृत कर रहे हैं। उनमेंसे कुछ उद्यान तो केवल भगवान् नारायणकी दिव्य लीलाओंके असाधारण स्थल हैं और कुछ पद्मभवनमें निवास करनेवाली भगवती लक्ष्मीकी दिव्य लीलाओंके विशेष रङ्गस्थल हैं। कुछ उद्यान शुक, सारिका, मयूर और कोकिल आदि दिव्य विहंगमोंके कोमल कलरवसे व्याप्त रहते हैं। उक्त सभा-भवनको सब ओरसे घेरकर दिव्य सौगन्धिक कमल-पुष्पोंसे भरी लाखों बावलियाँ शोभा पा रही हैं। दिव्य राजहंसोंकी श्रेणियाँ उन बावलियोंकी श्रीवृद्धि करती हैं। उनमें उतरनेके लिये मणि, मुक्ता और मूँगोंकी सीढ़ियाँ बनी हैं। दिव्य निर्मल अमृतरस ही उनका जल है। अत्यन्त रमणीय दिव्य विहंगप्रवर, जिनके मधुर कलरव बड़े ही मनोहर हैं, उन बावलियोंमें भरे रहते हैं। उनके भीतर बने हुए मोतियोंके दिव्य क्रीडास्थान ... है। ...के भीतर भी कितने ही क्रीड़ा-

प्रदेश उसकी शोभा बढ़ाते हैं, जो सर्वाधिक आन[न्द] स्वभाव एवं अनन्त होनेके कारण अपने भीतर प्रवेश क[रने] वैकुण्ठवासियोंको आनन्दोन्मादसे उन्मत्त किये दे[ते] उस भवनके विभिन्न भागोंमें दिव्य पुष्पशय्याएँ रहती हैं।

"नाना प्रकारके पुष्पोंका मधु पीकर उन्म[त्त] भ्रमरावलियाँ अपने गाये हुए दिव्य संगीतकी मधुर[ता से] उक्त सभामण्डपको मुखरित किये रहती हैं। चन्दन, कर्पूर और दिव्य पुष्पोंकी सुगन्धमें डूबी हुई मन्द-म[न्द वायु] प्रवाहित होकर उक्त सभाके सदस्योंकी सेवा करती रह[ती है।]

"उस सभामण्डपके मध्यभागमें महान् दिव्य यो[गपीठ] सुशोभित है, जो दिव्य पुष्पराशिके संचयसे [...] सुषमा धारण किये हुए है। उसपर भगवान् (शेषनाग) का दिव्य शरीर शोभा पाता है। [...] अनुरूप शील, रूप और गुण-विलास आदिसे सु[...] भगवती श्रीदेवीके साथ भगवान् श्रीहरि विराजमा[न] हैं। वे श्रीदेवी अनुपम शोभाशाली वैकुण्ठके ऐश्वर्य [से] सम्पन्न सम्पूर्ण दिव्य लोकको अपनी अनुपम [...] आप्यायित (परिपुष्ट) करती रहती हैं। शेष और आदि समस्त पार्षदोंको विभिन्न अवस्थाओंमें भग[वान्‌की] आवश्यक सेवाके लिये आदेश देती रहती हैं।

"भगवान्‌के दोनों नेत्र तुरंतके खिले हुए कमलोंकी [शोभाको] तिरस्कृत करते हैं। उनके श्रीअङ्गोंका सुन्दर रंग श्याम मेघसे भी अधिक मनोहर है। श्रीविग्रहपर पीले प्रकाशमान वस्त्र सुशोभित रहता है। भगवान् अपनी निर्मल और अतिशय शीतल, कोमल, स्वच्छ माणि[क्य-] प्रभासे सम्पूर्ण जगत्को प्रभासित करते हैं। वे अ[...] दिव्य, अद्भुत, नित्य-यौवन, स्वभाव और ला[वण्य-] अमृतके समुद्र हैं। अत्यन्त सुकुमारताके कारण ललाट कुछ पसीनेकी बूँदोंसे विभूषित दिखायी देता [है।] वहाँतक फैली हुई उनकी दिव्य अलकें अपूर्व शोभा [पाती] हैं। भगवान्‌के मनोहर नेत्र विकसित कोमल कमल[से भी] मनोहर हैं। उनकी भ्रूलताकी भङ्गिमासे अद्भुत [...] विलासकी सृष्टि होती रहती है। उनके अरुण [...] उज्ज्वल हासकी छटा बिखरी रहती है। उन[की] मुसकान अत्यन्त पवित्र है। उनके कपोल [...] नासिका ऊँची है। ऊँचे और मांसल कंधोंपर [...]

और कुण्डलोंके कारण भगवान्‌की शङ्ख-सदृश ग्रीवा सुन्दर दिखायी देती है। प्रियतमा लक्ष्मीके कानोंकी ा बढ़ानेवाले कमल, कुण्डल और शिथिल केशपाशोंके न्धनके विमर्दनको सूचित करनेवाली घुटनोंतक लंबी भुजाओंसे भगवान्‌के श्रीविग्रहकी अद्भुत शोभा है। ी हथेलियाँ अत्यन्त कोमल दिव्य रेखाओंसे अलंकृत कुछ-कुछ लाल रंगकी हैं। अंगुलियोंमें दिव्य मुद्रिका ा देती है। अत्यन्त कोमल दिव्य नखावलीसे प्रकाशित -लाल अंगुलियाँ उनके करकमलोंको अलंकृत करती हैं। े दोनों चरण तुरंतके खिले हुए कमलोंके सौन्दर्यको लेते हैं।

"अत्यन्त मनोहर किरीट, मुकुट, चूडामणि, मकराकृत ल, कण्ठहार, केयूर, कंगन, श्रीवत्स-चिह्न, कौस्तुभ- मुक्ताहार, कटिबन्ध, पीताम्बर, काञ्चीसूत्र और र आदि अत्यन्त सुखद स्पर्शवाले दिव्य गन्धयुक्त षण भगवान्‌के श्रीअङ्गोंको विभूषित करते हैं। ाशालिनी वैजयन्ती वनमाला उनकी शोभा बढ़ाती है। चक्र, गदा, खड्ग और शार्ङ्ग धनुष आदि दिव्य ुध उनकी सेवा करते हैं।

"अपने संकल्पमात्रसे सम्पन्न होनेवाले संसारकी सृष्टि, न और संहार आदिके लिये भगवान्‌ने अपना समस्त र्य श्रीमान् विष्वक्सेनको अर्पित कर रक्खा है। जिनमें ावसे ही समस्त सांसारिक भावोंका अभाव है, जो वान्‌की परिचर्या करनेके सर्वथा योग्य हैं तथा भगवान्‌की ही जिनका एकमात्र भोग है, वे गरुड आदि नित्य- असंख्य पार्षद यथावसर श्रीभगवान्‌की सेवामें संलग्न े हैं। उनके द्वारा होनेवाले आत्मानन्दके अनुभवसे ही परार्द्ध आदि कालका अनुसंधान होता रहता है।

"वे भगवान् अपनी दिव्य निर्मल और कोमल दृष्टिसे ूर्ण विश्वको आह्लादित करते रहते हैं। भगवान् यलीला-सम्बन्धी अमृतमय वार्तालापसे सब लोगोंके हृदयको नन्दसे परिपूर्ण करते रहते हैं। उस दिव्य लीलालापमें न्त मनोहर दिव्य भाव छिपा रहता है। उनके किंचित् े हुए मुखारविन्दके भीतरसे निकला हुआ वह अमृतमय न उनके दिव्य मुखकमलकी शोभा बढ़ाता है। उस ालापको दिव्य गाम्भीर्य, औदार्य, सौन्दर्य और माधुर्य दि अनन्त गुणसमुदाय विभूषित करते हैं। राम-राम ताराम। जय-जय राम सीताराम।

"इस प्रकार ध्यानयोगके द्वारा भगवान् नारायणका दर्शन करके इस यथार्थ सम्बन्धका मन-ही-मन निश्चय करे कि भगवान् मेरे नित्य स्वामी हैं और मैं उनका नित्य दास हूँ।

"मैं कब अपने कुलके स्वामी, देवता और सर्वस्व भगवान् नारायणका, जो मेरे भोग्य, मेरे माता, मेरे पिता और मेरे सब कुछ हैं, इन नेत्रोंद्वारा दर्शन करूँगा। मैं कब भगवान्‌के युगल चरणारविन्दोंको अपने मस्तकपर धारण करूँगा?

'कब वह समय आयेगा जब कि मैं भगवान्‌के दोनों चरणारविन्दोंकी सेवाकी आशासे अन्य सभी भोगोंकी आशा-अभिलाषा छोड़कर समस्त सांसारिक भावनाओंसे दूर हो भगवान्‌के युगल चरणारविन्दोंमें प्रवेश कर जाऊँगा। कब ऐसा सुयोग प्राप्त होगा जब मैं भगवान्‌के युगल चरणकमलोंकी सेवाके योग्य होकर उन चरणोंकी आराधनामें ही लगा रहूँगा। कब भगवान् नारायण अपनी अत्यन्त शीतल दृष्टिसे मेरी ओर देखकर स्नेहयुक्त, गम्भीर एवं मधुर वाणीद्वारा मुझे अपनी सेवामें लगनेका आदेश देंगे?

"इस प्रकार भगवान्‌की परिचर्याकी आशा-अभिलाषाको बढ़ाते हुए उसी आशासे, जो उन्हींके कृपा-प्रसादसे निरन्तर बढ़ रही हो, भावनाद्वारा भगवान्‌के निकट पहुँचकर दूरसे ही भगवती लक्ष्मीके साथ शेषशय्यापर बैठे हुए और गरुड आदि पार्षदोंकी सेवा स्वीकार करते हुए भगवान्‌को 'समस्त परिवारसहित भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है'—यों कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। फिर बार-बार उठने और प्रणाम करनेके पश्चात् अत्यन्त भय और विनयसे नतमस्तक होकर खड़ा रहे।

"जब भगवान्‌के पार्षदगणोंके नायक द्वारपाल कृपा और स्नेहपूर्ण दृष्टिसे साधककी ओर देखें तो उन्हें भी विधिपूर्वक प्रणाम करे। फिर उन सबकी आज्ञा लेकर श्रीमूलमन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) का जप करते हुए भगवान्‌के पास पहुँचे और यह याचना करे कि 'प्रभो! मुझे अपनी अनन्य नित्य सेवाके लिये स्वीकार कीजिये।' तदनन्तर पुनः प्रणाम करके भगवान्‌को आत्मसमर्पण कर दे।

"इसके बाद भगवान् स्वयं ही जब अपनेको जीवनदान देनेवाली मर्यादा और शीलसे युक्त अत्यन्त प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखकर सब देश, सब काल और सब अवस्थाओंमें ...

दासभावके लिये साधकको सदाके लिये स्वीकार कर लें और सेवाके लिये आज्ञा दे दें, तब वह अत्यन्त भय और विनयसे विनम्र होकर उनके कार्यमें संलग्न रहकर हाथ जोड़े हुए सदा भगवान्‌की उपासना करता रहे।

"तदनन्तर भावविशेषका अनुभव होनेपर सर्वाधिक प्रीति प्राप्त होती है, जिससे साधक दूसरा कुछ भी करने, देखने या चिन्तन करनेमें असमर्थ हो जाता है। ऐसी दशामें वह पुनः दासभावकी ही याचना करते हुए निरन्तर अविच्छिन्न प्रवाहरूपसे भगवान्‌की ही ओर देखता रहे।"

राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—पागल बाबा! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपने मुझको एक बार वैकुण्ठमें श्रीभगवान्‌के पास लाकर उपस्थित कर दिया। आपकी कृपारूपी ऋणका शोधन करनेके लिये मेरे पास कुछ नहीं है। मैं आपको पुनः प्रणाम करता हूँ। बतलाइये, पागल बाबा, मैं किस प्रकार वैकुण्ठनाथके चरणोंमें आश्रय पा सकूँगा?

पागल—(बदलेमें प्रणाम करते हुए) राम-राम सीताराम-जय-जय राम सीताराम। इस युगमें भगवत्प्राप्तिकी कोई चिन्ता नहीं है। अति सहज ही श्रीभगवान् प्राप्त हो सकते हैं। उठते-बैठते, सोते-जागते नाम-स्मरण करो। नियमित रूपसे रोज चार घंटा नाम-कीर्तन करो। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। कुछ दिन नाम-जप करनेपर भगवान् स्थिर न रह सकेंगे; नादरूपसे तुमको आश्रयमें ले लेंगे। रात-दिन अनेक राग-रागिनी, अनेक गीत सुनाते हुए वे तुमको प्रकाश (ज्योति) के राज्यमें ले जायँगे। असंख्य प्रकाश, अनन्त आकाशके बीचसे तुमको हृदयसे लगाकर वैकुण्ठमें ले जायँगे। राम-राम सीता-राम। जय-जय राम सीताराम।

तुम नित्य तीनों संध्याओंमें अर्चि आदि म करो। पश्चात् वैकुण्ठमें नारायणका चिन्तन क सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—अर्चि आदि मार्ग किस प्रकारका

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय रा हृदयमें मृणाल-तन्तुके समान अति सू नाड़ी है। उसी नाड़ीके सहारे तुम बाह पहले अर्चि (तेजःज्योति) को प्राप्त होओगे। व द्वारा पूजित होनेके बाद दिवसाभिमानी देवत पूजा करके शुक्लपक्षाभिमानी देवताके पास पहुँच वे उत्तरायण अभिमानी देवताके पास पहुँचा संवत्सर अभिमानी देवताके पास पहुँचायें सूर्यलोक, वहाँसे चन्द्रलोक, पश्चात् विद्युल्लोक उस लोकवासी देवताके द्वारा पूजित होकर वि स्नान करके तुम आगे जाओगे। तब गरुड़ अ गण तथा दिव्य सूरीगण आकर तुमको श्रीभगव ले जायँगे। राम-राम सीताराम। जय-जय राम जो तीनों संध्याओंमें इस अर्चिमार्गका चिन्तन कर और कुछ जानना शेष नहीं रहता। वे श्रीनाराय देहान्त होनेपर वैकुण्ठमें उनका दासत्व प्राप्त कर उनको मृत्युलोकमें नहीं आना पड़ता। राम राम। जय-जय राम सीताराम। यदि वैकुण्ठ जा हो, परमपदरूप श्रीभगवान्‌को प्राप्त करना चाह मेरे साथ ताली बजाकर नाचते हुए गाओ—

श्रीराम जय राम जय जय राम
श्रीराम जय राम जय जय राम
श्रीराम जय राम जय जय राम

दोनों नाच-नाचकर नाम-कीर्तन करने लगे!

वैकुण्ठ प्राप्त करो

दुःखालय अनित्य दारुण इस मर्त्यलोकके सब सुख भोग।
लगते मधुर, भरे विष भारी, नरक-दुःख-परिणामी रोग॥
मनसे तुरत निकालो इनको, भजो हृदयसे श्रीभगवान्।
विश्व-चराचरमें नित देखो मधुर उन्हींका रूप महान्॥
सेवारूप करो केवल तन-मनसे सब उनके ही काम।
प्राप्त करो वैकुण्ठ परम दुर्लभ हरिका मंगलमय धाम॥

मृत्युके समय भगवन्नाम और उसका फल

(लेखक—महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी भजनानन्दजी महाराज)

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥
(गीता २ । ४०)

'इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं और उल्टा फलरूप दोष भी नहीं है । बल्कि स कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-त्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है । (भय बसे बड़ा जन्म-मृत्युका) ।' भगवान् शंकर माता पार्वतीसे हते हैं—

मा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥

'हे पार्वती ! जगत्पिता भगवान्के स्वभावको जो जान जायगा, उसको भजनके सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगेगा। तो फिर यहाँ निश्चय होता है कि यह देवदुर्लभ मनुष्य-शरीर भगवान्का भजन करनेके ही लिये मिला है; क्योंकि कहा है—

देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥

भगवान्की प्राप्ति भजन करनेसे जितनी सुगमतासे प्राप्त होती है, उतनी दूसरे साधनोंसे नहीं। भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

मनुष्य पूरे जीवनमें यानी सौ वर्षतक जीवित रहे और सौ वर्षके जीवनमें एक करोड़ रुपया पैदा कर ले, जब मृत्युका समय आवे तब वह प्राणी एक करोड़ रुपयोंसे चाहे कि इन रुपयोंको दे करके मैं एक मिनट जीवित बना रहूँ तो जीवित नहीं रह सकता। मृत्यु होनेपर जो एक करोड़ रुपया जीवनमें पैदा किया है, उसमें एक कौड़ी भी साथ नहीं जाती—**सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति'** । लेकिन भगवान् कहते हैं—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
(गीता ८ । ५)

'जो पुरुष अन्तकालमें मेरेको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है वह मेरे (साक्षात्) स्वरूप-को प्राप्त होता है, इसमें (कुछ भी) संशय नहीं है ।'

ऐसा किसीको हुआ है कि जिसने पूरा जीवन आहार, निद्रा, भय तथा मैथुनमें ही दिया हो और अन्तिम समयमें भगवान्का स्मरण करते हुए शरीरको त्याग करके, भगवत्-प्राप्ति की हो या भगवद्धामको प्राप्त किया हो ? ऐसे अनेक भक्त हो गये हैं। नीचे एक भक्तका नाम देते हैं—

'आप योगियोंके परम गुरु हैं, इसलिये मैं आपसे परम-सिद्धिके स्वरूप और साधनके सम्बन्धमें प्रश्न कर रहा हूँ। जो पुरुष सर्वथा मरणासन्न है उसको क्या करना चाहिये।'

उसका उत्तर देते हुए शुकदेव मुनि कहते हैं—

एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया।
जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः॥
(श्रीमद्भा० २।१।६)

'मनुष्य-जन्मका यही इतना ही लाभ है—चाहे जैसे हो ज्ञानसे, भक्तिसे अथवा अपने धर्मकी निष्ठासे जीवनको ऐसा बना लिया जाय कि जिससे मृत्युके समय भगवान्‌की स्मृति अवश्य ही बनी रहे।'

यही बात अजामिलकी थी। गोस्वामी तुलसीदासने जीवनका फल बताते हुए कवितावलीमें लिखा है—

सिय-रामसरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जल है।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नाम, हिएँ पुनि रामहि को थल है॥
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति रामसों, रामहि को बल है।
सबकी न कहै 'तुलसी' के मते इतनो जग जीवन को फल है॥
(कवितावली उत्तर० ३७)

यदि इतना जीवनका फल प्राप्त नहीं किया तो महापुरुष लोग बड़ी निन्दा और बुराई करते हैं।

जो पै रहनि राम सों नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर सम बृथा जियत जग माहीं॥
(विनय० १७५)

'मनुष्य-शरीर धारण करके भी वे शूकर, कूकर तथा गदहेके समान व्यर्थ जीवन गँवाते हैं, जिन्होंने भगवान्‌से प्रेम नहीं किया है।' भगवान्‌से जिन्होंने अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ा, उनके लिये एक हिंदीके कविने लिखा है—

जननी जन जानकी जीवन को,
जग में जननी सो भई जननी।
मति मंजुल साधु सराहत सो,
सिय नाह की नेह सनी सो गनी॥
धन धन्य धनी हरि नाम धनी,
जग और धनी सो धनी न धनी।
जिनकी न लगी [illegible]

टूटा नहीं और जिन्होंने संसारसे सम्बन्
रहा नहीं। एक और हिंदी-कवि लिख

अजामिल अधममें थी क्या बुरा
मगर आपने उसकी
घड़ी मौतकी सिर पै जब उसके आ
तो बेटे नरायणकी
तुरत खुल गये उसके बैकुण्ठ द्वा
हरे कृष्ण गोविन्द
यही नाम हो हरदम

कितना कोई भी पापी क्यों न
सब पाप भस्म हो जाते हैं। यमराज अप

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मको
यद् व्याजहार विवशो नाम स्व
(श्री

'हे यमदूतो! इसने कोटि-कोटि
पूरा-पूरा प्रायश्चित्त कर लिया है; क्योंकि
ही सही, भगवान्‌के परम कल्याणमय (
उच्चारण तो किया है।'

एक बात और है। जिन्होंने भगवन्ना
बड़ा रूप, बड़ा कुल, बड़ी विद्या,
ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया, तो उन्होंने कुछ
लिखा है—

काम से रूप, प्रताप दिनेस-से,
सोम-से सील, गनेस
हरिचंद्र-से साँचे, बड़े, बिधि-से,
मघवा-से महीप, बिषै
सुक-से मुनि, सारद-से बकता,
चिर जीवन लोमस ते
ऐसे भए तो कहा तुलसी,
जो पै राजिवलोचन राम
(कविता

अन्य साधनोंके बजाय भगवन्नाम-साध
है और हर वर्ण, हर आश्रमको इसका अधि

भगवन्नाममें एक विशेषता और भी है कि
वात, पित्त तथा कफके कारण साधक अन्तमें

यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां न संस्मरेत्।
अहं स्मरामि सततं नयामि परमां गतिम्॥

इसका भाव ऊपर लिख चुके हैं। आजकलके कुछ यह कहेंगे, 'यह कैसे हो सकता है कि नाम लेनेवाला , पित्त, कफके कारण नाम न ले तो भगवान् उसके के लिये नाम लेंगे।' उसका उदाहरण नीचे लिखकर को विश्राम देते हैं।

जिस प्रकारसे एक सज्जन भोजन करनेके लिये अपनी पत्नीसे भोजनकी थाली मँगाता है और भोजन करनेको र होता है। इतनेमें उस पिताका छोटा-सा लड़का, जो अभी डेढ़-दो वर्षका ही है, जिसके मुँहसे शुद्ध द भी नहीं निकलते हैं, वह पिताकी थालीके पास जाता है और यह कहता है कि 'पिताजी हमको अट्टी (रोटी) देओ।' ऐसा कई बार कहता है। इतनेमें पिता अपनी थालीसे रोटीका टुकड़ा तोड़कर साग और दालमें मिलाकर लड़केके मुखमें देने लगता है, लड़का तबतक अट्टी-अट्टी कहता रहता है। जब रोटीका टुकड़ा मुँहमें जाता है तो लड़केका अट्टी कहना बंद हो जाता है और पिता फिर कहता है—'लेओ अट्टी'। इसी प्रकारसे वात, पित्त, कफके कारण भक्तको भगवान्‌का नाम विस्मृत हो जाय तो उतनी देरतक भगवान् भक्तके लिये नाम लेंगे। इसलिये हर समय भगवन्नामका अभ्यास करना चाहिये। एक भक्तने भगवान्‌से प्रार्थना की है—

रात दिवसका रोवना, पहर पलकका नाहिं।
रोवत रोवत मिल गया, अपने साहिब माँहि॥

मोक्ष-सोपान

(लेखक—अनन्तश्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम्॥*

ही टिकता है; अन्य पात्रोंमें रक्खा जाय तो वे पात्र फूट जाते हैं। गौका दूध चाँदी या मिट्टीके पात्रमें रक्खा जाय तो वह अमृतोपम गुणवाला होता है, उसी गौ-दुग्धको ताम्रपात्रमें रख दो तो वह विष बन जाता है। वर्षाका

र्थात् कुत्तेकी भाँति बना हुआ है। इसीलिये कहा है—

न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः।
यत् सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तवासिनः॥

'जो सुख एकान्तवासी मुनिको होता है वह सुख न तो क्रवर्ती राजाको होता है और न देवताओंके राजा इन्द्रको होता है।'

९—निरन्तर मन्त्र-जपसे भी मोक्ष प्राप्त होता है। मन्त्रमें वता, ऋषि और छन्द—तीन होते हैं। ऋषिको सिरपर रण करते हैं, छन्दको मुखमें और इष्ट देवताको हृदयमें। स मन्त्रका जप करते हैं, उसके अर्थकी भावना भी छेसे करते हैं। अर्थ-भावना करते-करते इष्टकी प्राप्ति ती है। इसीलिये शिवजीने पार्वतीजीसे कहा है—

'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्वरानने।'

'हे वरानने पार्वती! मैं तीन बार प्रतिज्ञा करके कहता कि केवल जपमात्रसे ही सिद्धि हो जाती है।'

१०—समाधिसे भी मुक्ति होती है। यम और नियम योगके ही अङ्ग नहीं, सभी साधनोंमें इनकी आवश्यकता ती है। यम-नियमके बिना तो कोई भी साधक साधन-म्पन्न नहीं बन सकता। अतः आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, रणा, ध्यान और समाधि—इन छःको ही 'षडङ्ग-योग' कहते। आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार—ये बाह्य साधन हलाते हैं। धारणा, ध्यान और समाधि—ये तीन ान्तरिक साधन हैं। धारणाकी परिपक्वावस्थाका ही नाम ध्यान' है और ध्यानकी परिपक्वावस्थाको ही 'समाधि' कहते। समाधिसे चित्त एकाग्र होता है। यदि शरीरमें मल न टकर निर्मल बन जाय, मनमें विक्षेप न होकर बिना क्षेपके बन जाय और बुद्धिका आवरण हटकर निरावरण न जाय तो समाधिसे मोक्ष हो ही जाता है।

इस प्रकार ये १० मोक्षके साधन हैं। ये कब ाधन हैं? जब साधक जितेन्द्रिय हो। उसने इन्द्रियोंको लीभाँति जीत लिया हो और तब उसने इन साधनोंका ाश्रय लिया हो, तो वह विमुक्त बन सकता है। यदि ना इन्द्रियोंके जीते अजितेन्द्रिय पुरुष इन साधनोंका ाश्रय लेता है तो उसके लिये ये साधन खाने-पीनेका वसाय—जीवन-निर्वाहका साधनमात्र बन जाते हैं। ाधन विधिवत् करनेपर भी ऐसे साधक इन्द्रियाँ वशमें न होनेके कारण उसके यथार्थ फलसे वञ्चित हो
उनका वह शुद्ध साधन-व्यवसाय जीवन-निर्वा कामनापूर्तिका कारण बन जाता है। पर जितेन्द्रिय को वही मोक्ष देनेवाला होता है; किंतु जो न तो साधक हैं और न अजितेन्द्रिय साधक ही, केवल ढोंगी हैं, केवल अपनी आजीविका-अर्जनके ही निमित्त रूपमें नहीं, ढोंगरूपमें इसे अपनाते हैं, वे तो साधक ही बदनाम करते हैं। हैं तो वे सर्वथा साधनविरो भोगपरायण। ऐसे लोगोंका कभी-कभी तो उससे चल जाता है, कभी उनकी पोल खुल जाती है। बनावटका भंडाफोड़ हो जाता है। फिर इन बातोंसे जीवन-निर्वाह भी नहीं होता।

जैसे कालनेमि जितेन्द्रिय-अजितेन्द्रिय कैसा नहीं था। उसने साधुका केवल वेष बना लिय साधुओं-जैसे जटाजूट बना लिये थे। महात्माओंके-से पहिन लिये थे। हनुमान्‌जी पहिले तो उसके चक्कर गये। जब अप्सराके कहनेसे उसके यथार्थ रूपक गये तब उसका वहीं काम तमाम कर दिया।

रावण कैसा भी साधु नहीं था। उसने साधुव बनाया था। साधु-जैसा वेष बना लिया था। उसके देखकर सीताजी उसे भिक्षा देने निकलीं तो उसने वेष फेंक दिया; यथार्थ रूपमें आ गया। ऐसे लोगोंकी टिप्पस लग जाती है, कभी नहीं भी लगती।

उघरे अंत न होहि निबाहू। कालनेमि जिमि रावन रा

एक सज्जनने दरभंगाकी ओर कहीं प्रसिद्ध कर रख कि 'मेरा नाम प्रभुदत्त ब्रह्मचारी है।' वह कथा करने रुपया पैदा करने लगा। थानेमें जाकर अपरा छुड़ाने लगा। उसकी बड़ी प्रसिद्धि हो गयी। एक पुलिसमें भक्त हैं—पं० परमानन्दजी पा एक पुलिस इन्स्पेक्टरने उनसे कहा—'पाण्डेयजी! तो ब्रह्मचारीजीकी बड़ी भारी प्रशंसा किया करते वे तो हमें बहुत ही हलके अनपढ़ प्रतीत हुए

उन्होंने पूछा—'तुमने उन्हें कहाँ देखा?' वे बो 'वे तो अब भी हमारे यहाँ कथा कर रहे हैं। सं कंठा पहिनते हैं। बड़े ठाट-बाटसे रहते हैं।'

उन्होंने कहा—'वे ब्रह्मचारीजी नहीं हैं। उन्हें पक पुलिसने उन्हें पकड़ा। एक थानेदार बिहारसे मेरे

। आया । उसने सब बातें बतायीं । मैंने कहा—'मैंने नाम रजिस्टर्ड तो कराया नहीं है । एक नामके बहुतसे ःगी हो सकते हैं, उसे छोड़ दो ।' उसने बताया—कहता है 'मैं इसी रहता हूँ संकीर्तन-भवनमें । मैं ही न्जीके विरुद्ध चुनावमें खड़ा हुआ था ।' पीछे सुनते हैं । सजा हो गयी । इसीका नाम दम्भ है, बनावट है ।

आज हम अजितेन्द्रिय साधक भी नहीं; दम्भी बन गये हैं । ा वेषभूषा, उपाधि-आश्रम, व्याख्यान-प्रवचन सब दम्भके होते हैं । हम मोक्षमार्गसे कोसों दूर चले गये हैं । साधनों-वाल भले ही कर लें, जबतक हम अपनी इन्द्रियोंपर । प्राप्त नहीं करते, सदाचारका पालन नहीं करते, सद्गुणों-पने जीवनमें एकीभूत नहीं करते, तबतक हम मुमुक्षु । मोक्षप्राप्तिके अधिकारी नहीं । सच्चे साधक नहीं ।

परंतु इन्द्रियोंको जीतना क्या कोई सरल काम है ? इन्द्रियजित् होना गुड़का पूआ है जिसे उठाया कि कर गये । जितेन्द्रिय होना टेढ़ी खीर है । हम चाहते भी इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे रोक नहीं सकते । मित्र आदि ऋषियोंने कितनी तपस्या की । सहस्रों क घोर तप करते रहे । कहीं कामने विघ्न डाला, कहीं । धर दबाया । क्या वे चाहते थे कि हमें काम-क्रोध ? महर्षि सौभरि जनसंसद्से दूर रहकर यमुनाजी-लमें, जलको स्तम्भन करके सहस्रों वर्ष पर्यन्त तप करते फिर भी मीनके संगको देखकर विवाह करनेकी इच्छा यी और एकसे पचास और पचाससे पाँच सहस्र ाये ।

बात यह है कि उनके साधनोंमें तो कोई कमी थी संगदोषवश विघ्न आ गये । उन विघ्नोंकी कुछ भी परवा रके वे साधनमें जुटे रहे । सौभरि मुनिको अन्तमें कृत्यपर पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने कहा—'जिसे ी इच्छा हो, उस पुरुषको चाहिये कि वह संसारी विषय-योंका संग सर्वथा त्याग दे । एक क्षणको भी अपनी योंको बहिर्मुख न होने दे । अकेला ही एकान्तवास एकान्तमें रहकर अपने चित्तको सर्वशक्तिमान् ईश्वरमें ।' यदि संग करनेकी आवश्यकता ही हो, तो भगवान्-क्तोंमें, अनन्यनिष्ठ साधकोंमें, प्रभुप्रेमियोंमें और निष्ठावान् महात्माओंमें ही रहे, उन्हींका संग

इसलिये इन्द्रियसंयमको मोक्षके साधनोंमें प्र दी गयी है । साधनकी इन्द्रियसंयम नींव है । अ पुरुष धन-दौलत, मान-प्रतिष्ठा, बड़ी-बड़ी भले ही प्राप्त कर ले; किंतु वह मोक्षमार्गका पथि बन सकता । जितेन्द्रिय होनेपर भी, जिसके भगवद्भक्ति नहीं, सरसता नहीं, भगवान्के प भरोसा नहीं, उनके प्रति अनुराग नहीं, उनक कृपापर भरोसा नहीं, उसका जितेन्द्रिय होना भी एक मात्र ही है । अतः भागवतकारने मोक्ष-प्राप्तिके मुख्य साधन बताये हैं ।

१—एक तो निरन्तर प्रभुकी अनुकम्पाकी प्र अर्थात् प्रतिक्षण भगवान्को स्मरण करके रोता यही प्रार्थना करता रहे—'हे प्रभो ! मेरे ऊपर क करोगे ? कब दीनबन्धो ! मेरी बारी आयेगी । ऊपर करुणाकी कोर करोगे, कब दीनपर कृ वृष्टि होगी ?' जैसे चातक सर्वदा स्वातीकी बूँदके बादलकी ही ओर देखता रहता है, उसी प्रकार सद प्रभुकी कृपाकी बाट जोहता रहे ।

२—अपने प्रारब्धवश जो भी सुख या दु जाय उसे बिना विरोधके निर्लेप भावसे भोगता रहे ।

३—हृदयसे, वाणीसे तथा शरीरसे भ नमस्कार करता रहे । हृदयसे नमस्कारका भ भगवान्की मूर्तिको हृदयमें बिठाकर उसका ध्या सोचे—यह जो कुछ है सब तेरा ही है ।

वाणीसे मन्त्र जपा करे । मन्त्र उसे कहते हैं आदिमें ओंकार हो, चतुर्थी लगी हो और अन्त या स्वाहा हो । जैसे 'ॐ रामाय नमः ।' 'ॐ नमो वासुदेवाय ।' अथवा सम्बोधन और भगवान्का नाम हे राम ! हे कृष्ण ! हे नाथ ! हे दीनबन्धो ! यह भी का नमस्कार है ।

---

* सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः
सर्वात्मना न विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि ।
एकश्चरन् रहसि चित्तमनन्त ईशे
युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत् प्रसङ्गः ॥
(श्रीमद्भा० ९ । ६

शरीरसे भगवान्‌की चल अथवा अचल मूर्तिको साष्टाङ्ग प्रणाम करे। भगवान्‌की चल मूर्ति तो साधु, संत, महात्मा, विद्वान्, ब्राह्मण, भक्त आदि हैं; अचल भगवत्-मूर्ति भगवान्‌के विग्रह हैं। उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करता रहे।

इस प्रकार जो इन तीन साधनोंको सावधानीके साथ, बिना आलस्यके निरन्तर करता रहता है, वह भगवान्‌का जो मुक्तिरूप परम धन है, उसका उसी प्रकार उत्तराधिकारी बन जाता है जैसे पुत्र बिना किसी प्रयत्नके पिताकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी बन जाता है। यही यथार्थमें मुक्तिरूपी परमपदका सुन्दर सोपान है। यही निर्वाण पदकी सुन्दर सीढ़ी है। इसी बातको नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी स्तुति करते हुए श्रीब्रह्माजीने कहा है—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥
(श्रीमद्भा० १०।१४।८)

छप्पय—

कृष्ण कृपा कब करें लगन जिनकी चातकघन।
भोगें सुख दुख सहज भाग्यवश जो कछु आवन॥
मनतैं बचतैं और देहतैं तुमकूँ सिमरैं।
हरिमय जग कूँ जानि विनय तैं सबकूँ प्रनवैं॥
यों जो जीवन धारि प्रभु, शरनागत बनिकैं रहैं।
पावैं पितु धन पुत्र ज्यों, मुक्ति चरन तव त्यों लहैं॥
(भागवतदर्शनसे)

तीर्थंकर और सिद्ध

(लेखक—आचार्य श्रीतुलसीजी)

जैन दर्शनके चार ध्रुव सिद्धान्त हैं—

१—आत्मवाद

२—लोकवाद

३—कर्मवाद

४—क्रियावाद

आत्माके अस्तित्वके लिये छः बातें ज्ञातव्य हैं—

१—आत्मा है, २—पुनर्भव है, ३—बन्ध है, ४—बन्धके हेतु हैं, ५—मोक्ष है, ६—मोक्षके हेतु हैं।

प्रत्येक शरीरमें आत्मा है; किंतु किसी भी आत्माका शरीरसे पृथक् अस्तित्व ज्ञात नहीं होता, इसलिये आत्माका अस्तित्व सदा संदेहका विषय बना रहता है। हमारे शरीरमें जाननेवाली सत्ता आत्मा है। वह चिन्मय है। उसमें दृश्य वस्तुओंको जाननेकी क्षमता है। किंतु वह स्वयं पुनर्भवी है या नहीं है, यह जाननेकी क्षमता उसमें विकसित नहीं है। स्मृति, प्रत्यभिज्ञा, तर्क और अनुमानके आधारपर कुछ विद्वानोंने यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है कि आत्मा पुनर्भवी नहीं है, तो अनेक विद्वानोंने यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है कि वह पुनर्भवी है। परोक्षके आधारपर दोनों धाराएँ चल रही हैं। प्रत्यक्षका प्रामाण्य किसीके पास नहीं है। यह विषय सूक्ष्म और दूरगामी है, इसलिये इसे केवल तार्किक स्तरपर सुलझाना सम्भव नहीं है। इसके समाधानके लिये तीव्र वैज्ञानिक प्रयत्न या तीव्र साधना निमित्त बन सकती है। जिन व्यक्तियोंके मनमें आत्माकी उत्कट जिज्ञासा जाग उठती है, वे आत्म-दर्शनकी साधनाके पथपर चल पड़ते हैं। यह साधु-जीवनकी भूमिका है।

ध्यानकी उच्चतम भूमिकापर आरोहण करते-करते साधु प्रत्यक्ष-दर्शनको उपलब्ध कर लेते हैं। वे प्रत्यक्षदर्शी (केवलज्ञानी) साधु 'जिन' कहलाते हैं। तीर्थंकरमें कुछ जिन होते हैं, पर सभी जिन तीर्थंकर नहीं होते। तीर्थंकरमें कुछ अतिशायी विशेषताएँ होती हैं। वे धर्म-शासनके शास्ता और पथदर्शक होते हैं। भगवान् महावीर तीर्थंकर थे। उनके शासनमें सैकड़ों जिन थे। जीवनकालमें जिन और तीर्थंकर दो भूमिकाओंमें रहते हैं। निर्वाण होनेपर वे सब सिद्ध बन जाते हैं—समान भूमिकाको प्राप्त हो जाते हैं। सिद्ध अवस्था बन्धन-मुक्तिकी अवस्था है। इस अवस्थामें केवल आत्माका अस्तित्व रहता है। इसलिये सिद्धत्व सबकी सामान्य भूमिका है। जैन आगमसूत्रोंमें सिद्धोंके पंद्रह प्रकार बतलाये गये हैं। किंतु वर्तमान अवस्थासे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका आधार पूर्वजन्मकी स्थिति है। सिद्धोंके पंद्रह प्रकार ये हैं—

१–तीर्थसिद्ध–तीर्थंकरके शासनमें दीक्षित होकर मुक्त होनेवाले।

२–अतीर्थसिद्ध–तीर्थंकरके शासनमें दीक्षित हुए बिना मुक्त होनेवाले।

३–तीर्थंकरसिद्ध–तीर्थंकरके रूपमें मुक्त होनेवाले।

४–अतीर्थंकरसिद्ध–तीर्थंकरकी भूमिकाको प्राप्त किये बिना मुक्त होनेवाले।

५–स्वयंबुद्धसिद्ध–स्वयंबोधि प्राप्त कर मुक्त होनेवाले।

६–प्रत्येकबुद्धसिद्ध–किसी एक निमित्तसे बोधि प्राप्तकर मुक्त होनेवाले।

७–बुद्धबोधितसिद्ध–आचार्यके द्वारा सम्बुद्ध होकर मुक्त होनेवाले।

८–स्त्रीलिंगसिद्ध–स्त्री-जीवनमें मुक्त होनेवाले।

९–पुरुषलिंगसिद्ध–पुरुष-जीवनमें मुक्त होनेवाले।

१०–नपुंसकलिंगसिद्ध–कृत नपुंसक जीवनमें मुक्त होनेवाले।

११–स्वलिंगसिद्ध–मुनिके वेषमें मुक्त होनेवाले।

१२–अन्यलिंगसिद्ध–परिव्राजक आदिके वेषमें मुक्त होनेवाले।

१३–गृहिलिंगसिद्ध–गृहस्थके वेषमें मुक्त होनेवाले।

१४–एकसिद्ध–एक समयमें एक ही मुक्त होनेवाला।

१५–अनेकसिद्ध–एक समयमें अनेक मुक्त होनेवाले।

इन भेदोंमें सत्यकी सम्प्रदाय, लिंग, वेष आदि बाह्य उपकरणोंसे निरपेक्ष स्वीकृति है। अमुक सम्प्रदायमें दीक्षित होनेपर ही कोई मुक्त हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता। अमुक वेष धारण करनेपर ही कोई मुक्त हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता। अमुक लिंगमें ही कोई मुक्त हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता। दूसरोंद्वारा प्रतिबुद्ध होनेपर ही कोई मुक्त हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता। ये एकाङ्गी धारणाएँ इन पंद्रह भेदोंके द्वारा निर्मूल की गयी हैं। मुक्त वह हो सकता है, जो बन्धन-मुक्तिकी साधनामें गतिशील है—सम्यग्-दर्शनी, सम्यग् ज्ञानी और सम्यक् चारित्री है। भगवान् महावीरके अनुसार मुक्तिके नियामक तत्त्व सम्प्रदाय, वेष और [illegible] नहीं हैं; किंतु सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र हैं। इनका यथेष्ट विकास होनेपर किसी भी सम्प्रदाय या वेषमें मुक्ति हो सकती है और इनका विकास हुए बिना किसी भी सम्प्रदाय या वेषमें मुक्ति नहीं हो सकती। सम्प्रदाय आदि बाह्य निमित्त हैं। उनका जीवनके साथ आत्मीय सम्बन्ध नहीं है। दर्शन, ज्ञान और चरित्र जीवके मौलिक गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, वीतरागता आदि धर्मोंसे अन्वित सत्ताका नाम 'जीव' है। बन्धन-दशामें ये धर्म आवृत रहते हैं। इनकी साधना करनेपर ये अनावृत होते चले जाते हैं। साधनाकालमें ये मुक्तिके साधन होते हैं और सिद्धि-कालमें ये जीवके स्वाभाविक गुण हो जाते हैं।

जीवके मौलिक गुण चार हैं–(१) ज्ञान, (२) दर्शन, (३) आनन्द, (४) शक्ति। ये गुण सब सिद्धोंमें समान रूपसे विकसित हो जाते हैं। इसीलिये उस अवस्थामें स्वरूप-कृत कोई तारतम्य नहीं होता। 'आचारांग सूत्र'में सिद्धका स्वरूप निम्न शब्दोंमें व्याख्यात है—

वह संस्थानरहित है—दीर्घ और ह्रस्व नहीं है। वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण और परिमण्डल नहीं है।

वह अरूप है—कृष्ण, नील, लोहित, पीत और शुक्ल नहीं है।

वह अगन्ध है—सुगन्ध और दुर्गन्ध नहीं है।

वह अरस है—तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और मधुर नहीं है।

वह अस्पर्श है—कर्कश, मृदु, गुरु और लघु नहीं है। शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष नहीं है।

वह अशब्द है—उसमें ध्वनि-प्रकम्पन नहीं है। वह स्त्री, पुरुष और नपुंसक नहीं है।

वह अशरीर, अजन्य और असंग है।

वह अनुपम है—उसके प्रत्यक्ष बोधके लिये कोई उपमा नहीं है।

वह अपद है—उसकी व्याख्याके लिये कोई पद नहीं है। स्वर उसतक पहुँच नहीं पाते। उसे जाननेके लिये कोई तर्क नहीं है। मति उसे ग्रहण नहीं कर पाती। वह चिन्मय अरूपी सत्ता है।

'औपपातिक सूत्र'में सिद्धके बारेमें कुछ विशेष जानकारी मिलती है—मुक्त जीव किससे प्रतिहत हैं? कहाँ स्थित होते हैं? कहाँ शरीरको छोड़ते हैं? और कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं?

गोलोकाधिपति भगवान श्रीराधामाधव

वे आलोकसे प्रतिहत होते हैं, लोकके अग्रभागमें स्थित होते हैं, मनुष्यलोकमें शरीरको छोड़ते हैं और लोकके अग्रभागमें जाकर सिद्ध होते हैं। वे अरूप-साधन (एक दूसरेसे सटे हुए) और ज्ञान-दर्शनमें सतत उपयुक्त होते हैं। उन्हें वैसा सुख प्राप्त होता है, जिसके लिये इस जगत्‌में कोई उपमा नहीं है।

एक राजा अश्वारूढ़ होकर यात्राके लिये गया। उसका घोड़ा वक्र गतिवाला था। वह राजाको घने जंगलमें ले गया। वहाँ एक जंगली आदमी रहता था। उसने राजाका आतिथ्य किया और उसे मार्ग बता दिया। राजा उसे अपने साथ ले गया। उसने संकटमें सहायता की, उसे यादकर राजाने भी उसका बहुत सम्मान किया। उसे बड़े प्रासादमें ठहराया। बड़े-बड़े राजभवन दिखलाये। बढ़िया भोजन कराया। कुछ दिन रहकर वह जंगलमें चला गया। घरवालोंने पूछा तो उसने कहा, 'मैं नगरमें गया था।' 'नगर कैसा होता है?' 'उसमें बहुत बड़े-बड़े घर होते हैं।' उसने बहुत बताया पर उन्हें नहीं समझा सका। इसी प्रकार सिद्धके सुख भी अनुभूतिगम्य हैं, वाणीगम्य नहीं हैं। सिद्धका सुख शाश्वत और निर्विघ्न है, अतृप्त और क्षोभसे मुक्त है।

जीव सिद्धकी अविकसित दशा है और सिद्ध जीवकी विकसित दशा है। इन दोनोंमें दशा-भेद है, अस्तित्व-भेद नहीं है। प्रत्येक पदार्थका अस्तित्व त्रैकालिक है, तब कोई कारण दिखायी नहीं देता कि जीवका अस्तित्व त्रैकालिक न माना जाय। (प्रेषक—श्रीकमलेश चतुर्वेदी)

पूर्वजन्म और भावसिद्धि

(लेखक—आचार्य श्रीप्राणकिशोर गोस्वामी महाराज)

परलोकके विषयमें कुछ बोलते समय आत्मनिष्ठाकी आवश्यकता है। यह आत्मनिष्ठा सुलभ नहीं है। जडदेहके अतिरिक्त आत्माको स्वीकार किये बिना परलोकके विषयमें कोई प्रश्न ही नहीं उठता। विभिन्न शरीरोंमें एक आत्माके परिभ्रमणकी सम्भावना माननेपर ही परलोकका विषय विचारणीय होता है। तभी एक विशेष क्रमिक पथ-परिक्रमणके अनुगमनमें विश्वास उत्पन्न होता है। जिसकी बातपर विश्वास हो सके, ऐसे साधक या गुरुका अनुवर्तन किये बिना हृदयमें श्रद्धा या विश्वास नहीं जमता। अन्धविश्वाससे किसी सत्यकी स्थापना नहीं हो सकती। अन्धेके द्वारा प्रदर्शित पथमें बहुत दूरतक रास्ता तय कर लेनेके बाद भी चित्तमें भ्रम उत्पन्न होते ही किसी दूसरे पथ या उपायका अवलम्बन करना पड़ता है। शास्त्र, सदाचारका अनुसरण न कर स्वतन्त्र युक्तिके बलसे वस्तुका निरूपण करनेपर आती। सत्य और शाश्वतका अवलम्बन किये बिना कोई भी सिद्धान्त जीवका कल्याण-साधन नहीं कर सकता।

काल सदासे है। काल नहीं था, इस प्रकारकी काल-सम्बन्धी कल्पना हम नहीं करते। इस अखण्ड कालकी किसी समय सीमारेखा नहीं खींची जा सकती। इस कारण कालको नित्य कहा जाता है। इसी कालमें समय-समयपर विश्वरचनाका वैचित्र्य, अनन्त भेद, प्रलयकी विभीषिका, बन्धन और मुक्ति तथा जन्म और मृत्युकी छायाके दर्शन होते हैं। कालकी सृष्टि मायारचित है। इस कारण वह अमूलक छायादर्शन है। कालातीत वस्तु ही स्वतन्त्र, सत्य अथवा अन्यनिरपेक्ष है। काल, कर्म, प्रकृति, जीव—सभी परमेश्वरके अधीन हैं, निरपेक्ष नहीं हैं। मेघाच्छन्न अमावस्याकी रात्रिका घना अन्धकार हमारी दृष्टिको अभिभूत कर लेता है। हम निकटस्थ स्थायी स्तम्भको भी नहीं देख

गन्धमें अनन्त देवगण अपनेको विलसित करते हैं। सूर्यकी किरणोंसे रंग ग्रहण करके जैसे पुष्प अनेक रंगोंके हो जाते हैं, उसी प्रकार एक परमात्माकी किरण-छटामें अनन्त जीव कर्मवासनासे जगत्‌में विचरण करते हैं। अनादिकालसे यह विचरण चल रहा है। अनन्त पथपर चलते हुए मार्गमें कितने तीर्थ-दर्शन, कितने सुख तथा कितने दुःख आते हैं। स्वर्ग है, नरक है। कर्ममय जीवनको क्या कोई किसी प्रकार अस्वीकार कर सकता है? प्रतिक्षण अपनेको उत्कर्षका अधिकारी बनानेकी चेष्टामें ही प्राणीकी प्राणसत्ताका परिचय है।

विश्वप्राण एक होकर भी बहुत होनेकी इच्छा करता है। यह मौलिक इच्छा या कामना, सृष्टि करनेकी इच्छाका प्रथम स्पन्दन जीव-सृष्टिके जन्म-मृत्युका प्रकृष्ट सङ्केत है। अव्यक्तसे व्यक्त, सूक्ष्मसे स्थूल रूपमें आना जन्म-यात्रामें उतरना है। स्थूलसे, व्यक्तसे, अस्थूल-अव्यक्तमें लौटना मृत्युके पथमें पदार्पण करना है। इस प्रकार जड और चेतनका व्यक्त और अव्यक्त स्वरूपमें प्रकाश और अप्रकाश होता रहता है। जन्म-मृत्युके द्वारपर जगत्‌के जीव पुरुषार्थ-सिद्धिके लिये निर्बाध गतिसे निरन्तर दौड़-धूप कर रहे हैं। यह दौड़-धूपका वेग क्रमशः बढ़ रहा है—एकके बाद एक, सृष्टिके प्रत्येक स्तरमें, उत्कर्ष-प्राप्तिकी शीघ्रतामें, पूर्णता-प्राप्तिकी उत्कण्ठामें, पथ-परिक्रमणके उल्लासमें। अगणित रूपोंमें, रसोंमें, लालसाओंमें, अभिलाषाओंमें आवर्तन, विवर्तन, परिस्फुरण, परिनमनके माध्यमसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवसत्ता प्राणमय कोषके अधिकारमें कर्ममय ऐतिह्योंका वहन करती हुई मनुष्य बनी है। उसके मनुष्यजन्मकृत संचित, आंशिक भुक्त, भोग्य और प्रारब्ध कर्मकी समष्टि है। पूर्व-जन्मोंमें जो कर्म किये गये हैं, उनके चिह्न वर्तमान जीवनके छन्द-छन्दमें स्पष्ट झलक रहे हैं। संचित कर्म उसके भाग्यको नियन्त्रित करते हैं, कर्मकी प्रेरणा और प्रवृत्तिको उद्बुद्ध करते हैं। एक ही मनुष्यके भीतर क्षेत्रविशेषमें साँप, बाघ, हंस, भ्रमर, कभी राक्षस और कभी देवताका भाव प्रकट हो उठता है। इसके द्वारा उसके विभिन्न योनिमें भ्रमणकी बात पण्डितलोग शास्त्र-प्रमाणके द्वारा निर्धारण करते हैं।

प्रमाण माने बिना प्रमेयका निर्णय नहीं होता। परलोक, जन्मान्तर, जन्म-मृत्यु और आत्माके रहस्यको माननेके लिये अलौकिक शास्त्र-प्रमाणको स्वीकार करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अलौकिक तत्त्व केवल युक्तिके द्वारा सा[illegible] नहीं होता।

अजा, अज्ञेया मायाकी सृष्टि ब्रह्माण्ड है; जीव उस[illegible] अन्तर्गत है। स्वरूपतः जीव अणु होनेपर भी सत्, चि[illegible] और आनन्दमयका अंश है; अतएव नित्य है। जीव नि[illegible] है, उसका स्वभाव नित्य है। यह जीव मनुष्यके रूप[illegible] अभिव्यक्त होकर नित्य आनन्दमय भगवान्‌के संग मिलने[illegible] लिये साधनामें प्रवृत्त होता है। अनेक योनियोंमें भ्रम[illegible] करनेपर जो मनुष्यदेह प्राप्त होता है, वह सबसे श्रेष्ठ ला[illegible] है, यह बात अनेक बार कही जा चुकी है। इन्द्रिय आदि[illegible] संस्थान, मनोवृत्तिके उत्कर्ष, ज्ञान-विज्ञान तथा ईश्वरानुराग[illegible] द्वारा मनुष्य सृष्टिमें अनन्यसाधारण जीव है। जन्म-मृत्यु[illegible] व्यवधान मिटाकर इहलोक और परलोकमें मधुर सम्बन्[illegible] स्थापन करनेका अधिकार साधक मनुष्यको ही है। अन[illegible] पथके यात्रीके रूपमें उसको जो मन्त्रग्रहण करना पड़ता [illegible] जिस साधनामें अपनेको लगाना पड़ता है, उसका [illegible] अधिकार मनुष्यको है। यह मनुष्य-देहकी प्राप्ति देव-दुर्ल[illegible] है; क्योंकि साधनाका मूल इस मानव-जीवनमें ही है। इ[illegible] एक जीवनमें शत-शत जीवनकी समस्याओंका समाधान [illegible] जाता है। बद्ध जीव, जब उसको अपने स्वरूपका ज्ञान हो[illegible] है, मुक्त हो जाता है। जीव परम पुरुषोत्तमके विभिन्न अं[illegible] —उनकी तटस्था शक्तिके विलास हैं। सूर्य और उस[illegible] किरण जैसे स्वरूपतः अभिन्न होकर भी नित्य भिन्न है; अ[illegible] और उसकी चिनगारी अथवा समुद्र और उसके तरङ्गों[illegible] जैसे भेदाभेदका सम्बन्ध है; उसी प्रकार अंशी कृष्ण औ[illegible] जीवमें भेदाभेद है। भक्तलोग जीवका अभिन्न होनेपर [illegible] भिन्न रूपमें चिन्तन करते हैं। यह भेद मुक्तिकी अवस्था[illegible] भी रहता है।

अतस्तस्मादभिन्नास्ते भिन्ना अपि सतां मताः।
मुक्तौ सत्यामपि प्रायो भेदस्तिष्ठेदतो हि सः॥
(बृहद्भागवतामृतम् २।२।१८६)

आचार्य श्रीशंकरका वाक्य है—

'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्[illegible] भजन्ति।'

इससे इस विषयका दिग्दर्शन होता है।

श्रीमद्भागवतमें भी देखा जाता है—

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥
(६ । १४ । ५)

मुक्तिमें जीवसत्ता जब ब्रह्ममें लय हो जाती है तो फिर लीलामें विग्रह धारण करेगा कौन ? अथवा कौन सिद्ध होकर मुक्तिके पश्चात् भी फिर नारायण-परायण होगा ? पद्मपुराणमें भगवान्में महामुनिका मनुष्य-शरीर लय हो जानेके पश्चात् भी पुनः नारायण मुनिके रूपमें आविर्भाव होनेकी कथा आती है । बृहत् नरसिंहपुराणमें नृसिंहचतुर्दशी-व्रतके प्रसङ्गमें वेश्याके सहित ब्राह्मणके भगवान्में लीन हो जानेके बाद भी पुनः भार्याके सहित प्रह्लादके रूपमें आविर्भावका वर्णन है । परंतु यदि भगवदिच्छा हो तो वे किसीको सायुज्य नामक निर्वाण भी दे सकते हैं । इसीलिये मूल श्लोकमें 'प्रायः' शब्दका व्यवहार किया गया है । सत् या असत्के साथ जीवका उत्थान या पतन होता है । कभी स्वर्ग, कभी नरक भोग मिलता है । शास्त्र अनुशासन करते हुए जीवके उत्कर्षके मार्गका निर्देश करते हैं । देवर्षि नारद अपने पूर्वजन्मका स्मरण करके वेदव्याससे कहते हैं कि 'मैं पूर्व-जन्ममें एक दासीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । मेरी माता थी वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी सेविका । वर्षाकालमें चार मास एक स्थानपर अवस्थान करनेवाले साधु-संतोंकी सेवामें मैं नियुक्त था । साधुजन मुझपर अनुग्रह करते थे । उनके उच्छिष्ट पात्रका अवशिष्ट भोजन करनेसे मेरा हृदय भगवद्भावसे भावित हो गया । प्रतिदिन साधु-संतोंके मुखसे श्रीकृष्ण-कथा, श्रीकृष्ण-गुणगान सुनते-सुनते मेरी श्रीकृष्णमें रति हो गयी । तब मैंने समझा कि परमात्मा परब्रह्मकी मायाके द्वारा स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चात्मक देहकी सृष्टि हुई है । इस प्रकार विश्वके रहस्यका ज्ञान मुझको हुआ—'

तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने
प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ।
ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया
पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥
(श्रीमद्भा० १ । ५ । २७)

जन्म-जरा और मृत्यु, सब कुछ मायिक है, तथापि इनसे भय-विभीषिका कम नहीं होती । भगवान् कपिलमुनि माता देवहूतिसे जन्म-मृत्युका रहस्य कहते हैं—

जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः ।
तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः ॥
(श्रीमद्भा० ३ । ३१ । ४४)

जीव एक लोकसे दूसरे लोकमें जाता है, यह अगम्य नहीं है । वह अपने उपाधिमय लिङ्गशरीरको धारण कर परलोक-गमन करता है । नवीन देहमें नवीन कर्मोंमें प्रवृत्त होता है । कर्मानुसार फलभोग करता है । उपाधिमय लिङ्गशरीर तथा पाञ्चभौतिक इन्द्रियोंसे युक्त स्थूलशरीर—इन दोनोंके जब एक साथ मिलकर कर्म करनेकी क्षमता नहीं रहती है, तब कहते हैं कि 'मृत्यु' हो गयी । लिङ्गशरीर और भोगायतन मन-इन्द्रियसे युक्त स्थूलशरीरका एक साथ मिलकर प्रकट होना ही 'जन्म' कहलाता है । इस जन्मके साथ एक अभिमान—अर्थात् मैं हूँ और मेरा शरीर है—इस प्रकारकी एक अवस्था रहती ही है । इसी 'मैं और मेरा'की भावनाका जब पूर्णतया विस्मरण हो जाता है, तो कहा जाता है कि 'मृत्यु' हो गयी । एकादश इन्द्रिय और पञ्च तन्मात्राएँ, इन सोलह पदार्थोंके साथ सत्रहवाँ जीवचैतन्य मिलकर स्थूलशरीरमें हर्ष-शोक, भय, दुःख और सुख आदि विभिन्न भावोंसे आक्रान्त होता है'—

अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति ।
हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति ॥
(श्रीमद्भा० ४ । २९ । ७)

पञ्च प्राण, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि—वेदान्तमें सूक्ष्मशरीरके ये ही सत्रह अवयव हैं, ऐसा भी कहा जाता है, सूक्ष्मशरीरको लेकर जीवचैतन्य का स्थूलदेहमें प्रवेश ही 'जन्म' है । सूक्ष्मशरीर स्वरूप और परिमाणमें भी सूक्ष्म होता है, अतएव अदृश्य तथा सर्वत्र निर्बाध विचरणमें समर्थ होता है । मृत्युके समय यह सूक्ष्म देह ही जीवको स्थूल देहसे वहन करके ले जाता है । उस समय इसका नाम 'आतिवाहिक' देह होता है तथा यह प्रेतशरीरके नामसे परिचित होता है । इसके बाद यथा-नियम स्थूलदेह या भोगदेह प्राप्त होता है । वेदादि शास्त्रोंके अनुशासनमें अवस्थित वेदोक्त दस संस्कारोंमें विश्वास रखनेवाले मनुष्यका ही श्राद्ध आदि अनुष्ठान होता है । शास्त्रोक्त पारलौकिक अनुष्ठान यथोचित रूपमें अनुष्ठित होनेपर मृत व्यक्तिकी प्रेतत्वसे मुक्ति होती है और कर्मफल-भोगके उपयुक्त देह प्राप्त होती है । जीवनकालमें जिस प्रकारके कर्म किये जाते हैं, मनुष्यकी तदनुसार ही शुक्ल या कृष्ण मार्गसे गति होती है । एक परावर्तनका मार्ग और दूसरा अनन्तका । उस मार्गसे जानेपर फिर लौटना नहीं होता । कर्मविपाक किस आदमीको कहाँ ले जाय

कहना कठिन है। जो लोग समझते हैं कि जीव निरन्तर
र्गकी ओर जा रहा है, उनकी बात दूसरी है; परंतु
समें विश्वास रखनेवाले साधक मनुष्यका उत्थान-पतन,
ष्ट देहकी प्राप्ति तथा निकृष्ट योनिमें जन्म—दोनोंको ही
कार करते हैं। इसी कारण साधक अविचारपूर्वक किसी
द्रत कर्ममें प्रवृत्त नहीं हो सकते। भूलसे यदि कोई
ाप हो जाय तो उसके लिये प्रायश्चित्त करके शुद्ध होनेके
यत्न करते हैं। मृत्युके पहले ही बहुतसे लोग स्वेच्छासे
शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त किया करते हैं। हरिनामकी
ना करनेवाले साधक श्रीभगवान्के नामकीर्तनको ही
ेष्ठ प्रायश्चित्त समझते हैं। वे लोग हृदयकी शुद्धिके
अन्य किसी प्रकारके प्रायश्चित्तको स्वतन्त्ररूपसे प्रधानता
प्रदान करते। सब कर्मानुष्ठानोंमें उनको पूर्णत्व प्राप्त
के लिये श्रीहरिनामकीर्तनकी व्यवस्था श्रुति-स्मृति-
त है। जीवनमें और मरणमें हरिस्मरण ही उनके लिये
। है। वे कहते हैं—

ो मनुष्य चाहे पशु पक्षी या बन जायें कीट पतङ्ग।
ाना जाना रहे कर्मवश मति नित रहे तुम्हारे सङ्ग॥

अर्थात् 'हे प्रभु! हम चाहे मनुष्य, पशु-पक्षी या कीट-
किसी भी योनिमें जन्म लें, कर्मविपाकसे चाहे बारंबार
गमन हो, किंतु हमारी बुद्धि सदा तुम्हारेमें लगी रहे।'
जैसी भावना वैसा ही भव। अर्थात् भावनाके अनुसार
व (संसार) मिलता है। जिसमें जो भाव मुख्यरूपसे
है, वही उसके भावी जीवनका पथ-प्रदर्शक होता है।
िये देहकी शुद्धि जैसे आवश्यक है, वैसे ही भावकी
भी आवश्यक है। शुद्धभाव रहते इहलोक हो या
क—'भगवद्धाममें ही मैं हूँ'—इस प्रकारकी अनुभव-
त समानरूपसे प्राप्त होती है। तब शरीरके रहने या न
ा कोई आग्रह या अनाग्रह नहीं होता तथा देह-त्याग

पथिक होते हैं, उनमें भी तारतम्य देखा जाता है। कोई
ज्ञानमिश्रित भक्ति करते हैं, कोई शुद्धा भक्तिके साधक होते
हैं, तो कोई प्रेम-भक्तिका अनुशीलन करते हैं। इसके
अतिरिक्त प्रेमपरायण और प्रेमातुर भक्त भी प्राप्त होते हैं।
उनके भजनरसकी विभिन्नताके कारण भगवत्प्राप्तिमें भी
तारतम्य माना गया है। वैकुण्ठ-वर्णनमें सालोक्य, सारूप्य,
सामीप्य और सार्ष्टि मुक्तिकी बात प्रसिद्ध है। भक्तके जीवनमें
सायुज्य तो कभी भी आदरणीय नहीं होता। इस सायुज्य
मुक्तिको तो श्रीकृष्णसे विद्वेष रखनेवाले भी श्रीकृष्णके हाथों
मारे जानेके फलस्वरूप प्राप्त कर चुके हैं, ऐसा सुना
जाता है।

भगवान्के मन्दिरमें प्रविष्ट सभी भक्तोंको आनन्दका
अनुभव होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। किंतु जो लोग
विशेष रसयुक्त प्रीतिविशेषमें भगवान्की कृपा प्राप्त करके
रास आदि नृत्य-विलासके द्वारा आनन्दमयको आनन्द प्रदान
करते हैं, उनके लिये एक ऐसा कोई विशेष स्थान है, जिसे
वैकुण्ठसे भी अधिक सुखमय कह सकते हैं। इसको भी
अवश्य ही मानना पड़ता है। यहाँ ब्रह्मसंहिता (५।४६)का
अवतरण दिया जाता है—

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

ब्रह्माजी कहते हैं कि 'सच्चिदानन्दविग्रह आदिपुरुष
गोविन्दको मैं भजता हूँ। श्रीकृष्ण गोविन्द प्रेमरसमय हैं,
उनकी शक्ति भी प्रेमरसमयी है। इस प्रकारकी आनन्दिनी
मूर्तिमयी शक्तियोंके साथ गोलोकमें वे नित्य विहार करते हैं।'
यह गोलोक कहाँ है? कैसा है? कैसे, किस मार्गसे वहाँ
जाना होता है?—इस प्रकारकी जिज्ञासा साधकके मनमें

लोकधामके दर्शन और अनुभवके सम्बन्धमें हम यहाँ कुछ चर्चा करेंगे।

एक ब्राह्मण धनकी आशासे कामाख्या देवीकी उपासना करते थे। देवीने उनकी श्रद्धासे संतुष्ट होकर उनको स्वप्नमें दस अक्षरका श्रीमदनगोपाल मन्त्र प्रदान किया। साध्य-साधनके विषयमें जानकारी न होनेपर भी उस जपके फलसे ब्राह्मणका हृदय कामनारहित हो गया। वे मन्त्र-जप पूरा करके तीर्थभ्रमणके लिये निकले। वैष्णव लोगोंके उपदेशसे, सत्सङ्गके फलस्वरूप एकान्तमें मन्त्र-जपके प्रभावसे उन ब्राह्मणको आनन्दमूर्च्छा हुई। उसको भी उन्होंने जपके मार्गमें विघ्नरूप माना। एक दिन उनको श्रीभगवान्‌का आदेश हुआ कि 'वृन्दावन जाओ, वहाँ परम आनन्द प्राप्त करोगे। रास्तेमें देर न करना।' वृन्दावन जानेपर उनको गोपकुमारके रूपमें श्रीगुरुदेव प्राप्त हुए। गोपकुमारने कृपापूर्वक अपने जीवनकी कहानी उनको सुनायी। साधनाकी प्रथम अवस्था देहान्तरकी भावना या जन्मान्तरकी विभीषिका नहीं है। शुद्ध भावके सम्बन्धसे ही साधककी देह सिद्धदेह हो जाती है। दीक्षाके प्रभावसे सत्सङ्गके द्वारा भगवद्धाममें अवस्थितिका अनुभव करके उनको नवजन्म प्राप्त होता है।

नूतन मनुष्य बननेके लिये पहले महान् पुरुषकी कृपा चाहिये। दीक्षा ग्रहण करना परम आवश्यक है। नियमित मन्त्रजपसे एकके बाद एक भगवद्विग्रहके प्रति श्रद्धा होती है। शालग्रामचक्र, चतुर्भुज श्रीनारायण, श्रीजगन्नाथ, श्रीवामन भगवान्, यज्ञेश्वर भगवान् और तपोलोकमें परमात्माका अनुसंधान तथा सत्यलोकमें सहस्रशीर्षा पुरुषकी महिमाका पता लगता है।

मायाके प्रभावसे मुक्त साधक चिरदीप्त पराकाश, परव्योम या चिदाकाशका दर्शन करता है। इस अनुभवके राज्यमें प्रवेश करनेके लिये भगवद्भक्तिके सिवा और कोई उपाय शास्त्रोंमें प्रदर्शित नहीं हुआ है। मर्त्यलोकमें हमलोग देवीधाम, शिवधाम, श्रीक्षेत्र, अयोध्या, द्वारका, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन आदिका दर्शन करते हैं; परंतु इन सब तीर्थस्थानोंकी महिमा ग्रहण करनेका सौभाग्य सबको नहीं होता। इसका कारण है हमारे अंदर साधनाका अभाव।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें प्रकृतिके पार विभु प धामके विषयमें कहा गया है कि—

> सर्वग अनन्त ब्रह्म वैकुण्ठादि धाम।
> कृष्ण कृष्ण अवतारेर ताहाई विश्राम॥
> ताहार उपरि जगे कृष्णलोक ख्याति।
> द्वारका, मथुरा, गोकुल त्रिविधत्वे स्थिति॥
> सर्वोपरि श्रीगोकुल व्रजलोक धाम।
> श्रीगोलोक श्वेतद्वीप वृन्दावन नाम॥

श्रीभगवान्‌के पूर्णतम प्रेम, माधुर्य-विलासका श्रीगोलोक है। श्रीकृष्ण एक स्थानमें रहते हुए ही भक्तोंके स्थानोंमें साक्षात् अनुभूत होते हैं। भगवान् धाम अप्राकृत चिन्मय परव्योममें रहते हुए हो संसारमें प्रकट होकर प्रत्यक्ष अनुभवका विषय बने साधारण मनुष्य उनकी विवेचना करते हुए देशवि विचार करके ही उनके धामके सम्बन्धमें सि बनाते हैं। यह धामतत्त्व अप्राकृत मनमें प्रत्यक्ष है, कृपासे जाना जाता है तथा प्रेम-सेवाकी लालसासे होता है। यह बात साधक लोग हमको स्मरण कराते है

> सर्वग अनन्त विभु कृष्ण तनु सम।
> उपर्यधो व्यापियाछे नाहिक नियम॥

भक्तके प्रति अनुग्रह करनेके लिये रसिकेन्द्रचूड परम करुणामय श्रीकृष्णकी इच्छासे प्राकृत ब्रह्माण्डमें प्रेमप्रोज्ज्वल चिन्मय धाम प्रकाशित होता है। यही उनकी चिर आनन्दमयी लीला भी उसके साथ प्रक होती है। वह लीला, वह धाम-माधुर्य, काम-क दूषित मन-प्राणमें अनुभूत नहीं होता। इसके चाहिये—शुचि शुभ्र जीवनशोभा। श्रीकृष्णवि भूमिके यथार्थ दर्शनके लिये आवश्यक है—अ उत्कण्ठा, निराविल दैन्य, निरलस नामाश्रय तथा ऐक प्रेमप्रकर्ष।

> चिन्तामणि भूमि कल्पवृक्षमय वन।
> चर्मचक्षे देखे तारे प्रपञ्चेर सम॥
> प्रेमनेत्रे देखे तार स्वरूप प्रकाश।
> गोपगोपी सङ्गे जाहाँ कृष्णेर विलास॥

समाधि-दर्शन और प्रेमदर्शनकी, अन्तरानुभव बाह्यदर्शनकी विचित्रताकी बात भूल जानेसे काम चलेगा। समाहित होनेपर अहंतत्त्व लय हो जाता उसके साथ ही बहिरिन्द्रिय और अन्तरिन्द्रियों

इन्द्रियोंकी और अन्तःकरणकी वृत्ति लुप्त हो जाती है। अनुभवकर्ता और अनुभवका अभाव होता है। उस समय जो सुख होता है, उसको शून्यरूपताके सिवा और क्या कहेंगे ?

परं समाधौ सुखमेकमस्फुटं
वृत्तेरभावान्मनसो न चाततम्।
वृत्तौ स्फुरद्वस्तु तदेव भासते-
ऽधिकं यथैव स्फटिकाचले महः॥
(बृहद्भागवतामृतम् २।२।२१५)

अनुभवसे जो आनन्द नहीं प्राप्त होता है, वह भी निरानन्द है। गलेमें मणिमय हार रहनेसे क्या होगा, यदि उसकी स्मृति नहीं है ? भक्तिसुखका अनुभव करनेवाला भक्त नित्य है; अनुभवके कर्म श्रीभगवान् अनिर्वचनीय और अनुभवनीय नित्य हैं। अनुभूति बाह्य और अन्तरिन्द्रियकी वृत्ति नव-नव माधुर्य ग्रहण करनेमें प्रकृष्ट रूपसे नित्य स्फूर्त्ति प्राप्त करती रहती है। 'मैं उनका सेवक हूँ, सर्वदा पादसंवाहनादि करता हूँ'—ऐसे अनुभवका प्रतिदिन उत्कर्ष होता है। 'उनके रूप, गुण और लीलाका माधुर्य प्रतिक्षण नवनवायमान होकर मेरे नयन, मन और प्राणमें अनुभूत होता है। मैं उत्तरोत्तर अधिक उल्लासके साथ नामकीर्तन करता हूँ, जप करता हूँ, विग्रह-सेवा करता हूँ। उनके ही चरणारविन्दके स्मरणमें ही मन लगा रहता है। दूसरी-दूसरी भावनाएँ बाधा नहीं दे सकतीं। जैसे सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे स्फटिकके पहाड़की उज्ज्वलता क्रमशः बढ़ती है, उसी प्रकार मेरे अनुभवमें श्रीकृष्णकी कृपा-किरणके सम्पातसे उत्तरोत्तर आनन्दोल्लास बढ़ता है।

कदापि तस्मिन्नेवाहं लीयमानोऽनुकम्पया।
रक्षेय निजपादाब्जनखांशुस्पर्शतोऽमुना॥
(बृहद्भागवतामृतम् २।३।४०)

कभी-कभी सायुज्य मुक्तिके समान उनकी प्रदीप्त कान्तिमें मानो डूब जानेपर मैं उनके श्रीविग्रहकी करुणाकी बात स्मरण करता हूँ। तब वे ही मुझको निज पदकमलका स्पर्शदान करके सजग कर देते हैं। मैं फिर सेव्य-सेवक सम्बन्धमें लौट आता हूँ।

भगवान् सेवककी लालसा पूर्ण करते हैं। सेवक भी अनन्यभावसे अपने प्रियतमके लीलामाधुर्यके प्रकाशनमें सहचर होता है। मर्त्यलोकमें द्वारका, मथुरा, वृन्दावनमें उनकी लीला होती है। वैसे ही वैकुण्ठके ऊपर अवस्थित कृष्णलोकमें तदनुरूप लीला नित्य होती रहती है। श्रीगोविन्दकी गोलोकलीलामें इस प्रकारका गौरववर्द्धित माधुर्यपूर्ण व्यवहार है कि कोई यह समझ नहीं सकता कि वह मर्त्यलोकमें है या अमृतलोकमें है। गोलोक, कृष्णलोक सबसे ऊर्ध्व सर्वोत्कृष्ट सब देशोंका चूड़ामणि है।

ब्रह्मसंहिता (५।५२) का यह वर्णन स्मरण रखने योग्य है—

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवीमहेशहरिधामसु तेषु तेषु।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

गोप्रधान देश होनेके कारण ही 'गोलोक' नाम प्रसिद्ध है। सब धामोंके ऊपर गोलोक है। उसी गोलोकके नाथ भूलोकमें प्रिय वृन्दावनको सर्वदा निजपद-अङ्कित करके क्रीड़ाविशेषका विस्तार करते हैं। ऐसी लीला अन्य किसी धाममें नहीं होती। भूतलमें वृन्दावनके समान ही गोलोकमें भी नित्य ही यह लीला होती रहती है। पृथ्वीके वक्षःस्थलपर गोकुल-वृन्दावनमें प्रकट और अप्रकट भेदसे यह लीला साधारण जीवके भाग्यमें कभी दर्शनीय और कभी अदृश्य होती है। प्रेमकी आँखोंसे तो सदा ही दर्शनीय होती है। इस आनन्दलीलामें प्रवेशलाभ करना ही मनुष्यका नया जन्म है। इसीके लिये श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने प्रेमभक्तिके अनुशीलनकी श्रीरूप-सनातन आदि निज भक्तजनको शिक्षा दी है—

लीलैव नित्या प्रभुपादपद्मयो-
र्या सच्चिदानन्दमयी किल स्वयम्।
आकृष्यमाणेव तदीयसेवया
तत्तत् परीवारयुता प्रवर्तते॥

श्रीराधावल्लभकी, निज परिकरगणके सहित, जिसके साथ जैसी समुचित है, उसी प्रकारकी, नित्य लीला प्रवर्तित होती रहती है। यह लीला सच्चिदानन्दमयी है; अतएव सब प्रकारके दोषोंसे रहित है। प्राकृत व्यवहारकी दृष्टिसे देखनेपर भी वह निर्दोष है। अपने भक्तगणकी सेवाकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये ही वे मानवी लीला करते रहते हैं।

बीज और जीव

(लेखक—अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

इस विश्व-प्रपञ्चमें ऐसा कोई प्राणी नहीं है, ब्रह्मासे लेकर कीट-पतङ्गपर्यन्त, जो दुःखसे परहेज (परिजिहीर्षा ?) न करता हो और उससे बचनेका यत्न न करता हो। विवेकदृष्टिसे देखनेपर स्पष्ट हो जाता है कि दुःख अपने स्वरूपके अनुरूप नहीं, प्रतिरूप है। इसीसे बिना माता-पिता, गुरु और शास्त्रकी किसी प्रकारकी शिक्षा प्राप्त किये, बिना सिखाये, बिना संस्कार डाले स्वाभाविक ही मृत्यु, अज्ञान, भय आदिसे अरुचि होती है। विचार करके देखें तो जो दुःख बीत गया, उससे छूटनेका कोई प्रश्न नहीं। जो प्रतीत हो रहा है, वह बीतता जा रहा है। जो आनेवाला है, वह ज्ञात नहीं है। फिर दुःखसे छूटनेकी इच्छाका क्या अर्थ हुआ ? जिन कारणोंसे दुःख होते हैं उन कारणोंसे छुटकारा—सदाके लिये छुटकारा, सर्वत्रके लिये छुटकारा, सर्वरूपसे छुटकारा, अर्थात् आत्यन्तिक दुःखमुक्ति। ऐसी स्थितिमें स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि दुःखका कारण क्या है ? और उसके निवारणका उपाय क्या है ?

देहके साथ ही दुःखका उदय होता है। जन्म-मरण—दोनोंमें ही दुःखका अनुभव होता है। रोग, वियोग, भोग, संयोग, अनुकूल-प्रतिकूल—सब देहके सम्बन्धसे ही होता है। स्वाधीनता-पराधीनता भी इसीके साथ लगी हुई है। धर्म-कर्म-अवस्था-स्थिति—सब देहके ही कच्चे-बच्चे हैं। इस देहका सम्बन्ध ही दुःखका हेतु है। सम्बन्ध क्या है,—'मैं' और 'मेरे'के रूपमें इसे स्वीकार करना। अपने स्वरूपका विवेक करें और अपनेको देहसे अलग समझ लें—'नाहं न मे'—'न मैं, न मेरा'। बस, देहके बारेमें जो कुछ कहा जाय, वह कहा जाने दो। जो कुछ हो, सो हो। जैसे रहे, वैसे रहे। यह न 'मैं', न 'मेरा'। मैं द्रष्टा, साक्षी, असङ्ग, उदासीन। देहके दुःखसे मैं दुखी नहीं, देहके सुखसे सुखी नहीं। देहकी मृत्यु और जडता मेरा स्पर्श नहीं करती। इसके रोग और भोग मुझे छूते नहीं। इसके निरोध और विरोधका मुझे कोई अनुरोध नहीं है। इसकी श्रान्ति और भ्रान्तिसे मेरी शान्तिमें कोई विघ्न नहीं पड़ता। 'अहं' और 'मम'के रूपमें देहको ग्रहण करना ही दुःखका उपादान है। 'भदस्मनाद्दुत्पत्तिर्दैन्यदर्शनम् ।' इसका अर्थ हुआ कि देह दुःख है और इसको आत्मा अथवा आत्मीयरूपसे ग्रहण करना उपादान है। जब उपादान कारण तो कार्य कहाँ ?

अब सुनिये ! यह देह कहाँसे आ र
छोड़ देनेपर यह कहाँ चला जायगा ? इस
ही सम्बन्ध नहीं हो जायगा, इसका क्या
देह चाहे एक तत्त्वसे बना हो, चाहे अने
इसका घटन या गठन बिना धर्माधर्मके तो
धर्माधर्म बनता है कर्मसे। कर्म होता है
देहकी संतानपरम्पराका कभी उच्छेद नहीं
जैसे पहलेसे विहित और निषिद्ध कर्म होते आ
ही होते रहेंगे। देहसे कर्म और कर्मसे देह
वृक्षके समान अनादि परम्परासे चले आ
जीवका जीवन एक बीजका जीवन है
बीजके जीवनमें और जीवके जीवनमें
अन्तर है। जीव अविनाशी चेतन है औ
जड। आइये, एक बार दोनोंकी तुलना कर

आपके हाथमें एक बीज है। क्या अ
कि यह किस वृक्ष या फलका बीज है ?
देखते ही आप इसके पूर्व रूप और उत्तर र
सकते हैं। यह बीज कैसे मूल, तनों, डा
पुष्पोंको पार करता हुआ आया है। अब
उसीसे मिलता-जुलता रूप ग्रहण करेगा
बीजमें दीखता है ? नहीं, परंतु है स
हुआ। बीजको पृथ्वी, जल, गर्मी, प्र
अवकाश—सब कुछ चाहिये। खेत, खा
आर्द्र होगा, फूलेगा, अङ्कुरित होगा,
चाहिये, काल चाहिये। यह सब कुछ
अपने स्वभावके अनुसार ही आकृति,
करेगा। बीज अनादि परम्परासे चला आ
ऊर्ध्वाधः गति प्राप्त करता रहा है और य
रहेगा, जबतक इसका बीजत्व अग्नि
न हो जाय।

अब आप एक जीवको अपनी
लीजिये। उसमें एक विशेष प्रकारका जी
भी आविर्भाव-तिरोभावके लिये काल चाहिये

ाजन्य संस्कारका रूप ग्रहण करते हैं, जिससे उनकी धर्म अथवा अधर्म हो जाती है। चैतन्यकी प्रधानतासे होता है और जडत्वकी प्रधानतासे बीज। जीवका र उसकी अन्तःस्थताका सूचक है और बीजका 'ब'कार ताका। बीज केवल निर्माणका हेतु है; परंतु जीव ा और प्रमाण दोनोंका। बीजकी शक्तियाँ केवल भौतिक रहती हैं और जीवकी भौतिक-अभौतिक दोनोंमें। जीवके करण और अन्तःकरण दोनों जाग्रत् रहते हैं; परंतु बीजके मूर्छित होते हैं। बीजमें धर्माधर्मकी उत्पत्ति नहीं परंतु जीव प्रमाणवृत्तिका आधार होने एवं कर्ममें त्र होनेके कारण धर्माधर्मका आधार बनता है। भोग्यांश-प्रधान है और जीव भोक्ता-अंश-प्रधान; ळये जीवका सुख-दुःख जाग्रत् है और बीजका। जीव अपने धर्माधर्मके द्वारा ऊर्ध्वगति और ाति प्राप्त करता है; बीज प्रकृतिकी स्वाभाविक धारामें । होकर।

जीव भी प्रकृतिके राज्यमें ऊर्ध्वस्रोत, तिर्यक्स्रोत अधःस्रोत—तीन प्रकारके होते हैं। प्रायः पहले में जडत्वकी प्रधानता रहती है; परंतु अधःस्रोतमें । उन्नतिकी पूर्णता हो जाती है। वह ऊपरसे भोजन नीचेकी ओर बढ़ता है। यह मनुष्ययोनि ऐसी है। इसमें कर्म, ज्ञान और प्रेमके प्रकट होनेकी पूर्ण ता है; क्योंकि नवीन-नवीन कर्म करनेके लिये हस्त (इन्द्रियोंका, नित्य नूतन आविष्कार करनेके लिये का और आनन्दानुभूतिके लिये प्रेमका विकास स्पष्ट नेमें आता है। इस योनिमें सद्भाव, चिद्भाव एवं न्दभावके अनुभवकी पूर्ण योग्यता है। यह अपने

होनेपर देवी राज्यमें प्रवेशकी योग्यता मिलती है। ५५ राज्यमें भी प्रथमतः ऐन्द्रियक सुखका ही उत्कर्ष प्राप्त होता है; परंतु एक इष्टकी अनन्यभावसे उपासना करनेपर ऐन्द्रियक सुखसे विलक्षण इष्टदेवसम्बन्धी दैवी सुखका आविर्भाव होता है। धर्मसुखमें अनेक देवता, मन्त्र और विधि-विधानके कारण फलमें भी अनेकता होती है और उपासनामें एक इष्ट मन्त्र, पद्धति और निष्ठा होनेके कारण भाव-प्रधान एकाग्रवृत्तिमें भागवतसुखका आविर्भाव होता है। अन्तःकरणके साक्षी स्वयंप्रकाश चेतनका देश, काल और द्रव्यके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वृत्तियोंके विरोधसे यही द्रष्टा आत्मा स्वरूपमें स्थित हो जाता है। तब यह देशकृत गमनागमन, कालकृत जन्म-मरण और द्रव्यकृत योनिपरिवर्तनसे मुक्त हो जाता है। उपाधियोंसे असंग हो जानेके कारण उस समय यह द्रष्टा अपने स्वरूपमें अवस्थित होता है; परंतु समाधि टूट जानेपर इसका फिर वृत्तिसारूप्य हो जाता है, इसलिये वृत्तियोंके नियन्ताद्वारा इसका भी नियन्त्रण और जन्म-मरण आदि शक्य हो जाता है। परंतु वेदान्तोक्त ब्रह्मात्मैक्यज्ञान होनेपर देश-कालादिका बाध अर्थात् मिथ्यात्व निश्चय हो जाता है, तब जन्म-मरणादिकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। जबतक वृत्तिमें सत्यता और उनके साथ तादात्म्य रहेगा, तबतक भेदकी सत्यता, द्रष्टाकी अनेकता और ईश्वरकी पृथक्ताको कोई मिटा नहीं सकता। इसलिये जन्म-मरणका प्रवाह बना ही रहेगा। बीजत्व भौतिक होनेसे अनादि होनेपर भी भौतिकाग्नि-नाश्य है; परंतु जीव चेतन होनेके कारण भौतिकाग्नि-नाश्य नहीं है। इसका वृत्तियोंके मूलभूत वासनाबीज-संस्कारोंके साथ अविद्यामूलक तादात्म्य है, इसलिये ज्ञानाग्निके द्वारा अविद्याका दाह हुए बिना जीवका जीवत्व निवृत्त नहीं

सकता। जीव चेतन है, उसकी जीवनसत्ता अनादि अनन्त है। वह देश, काल और द्रव्यकी कल्पनाको ी दृष्टिमें धारण करता है। देश, काल, द्रव्यकी मानता बाधित है और चेतनका स्वरूप सर्वथा धित। अनुभवकी प्रणालीमें अपना नास्तित्व नहीं कोई भी यह अनुभव नहीं कर सकता कि मैं नहीं इसलिये जीवका वास्तविक जीवन अनन्त और अद्वय वह अपनी कल्पनामें ही भासमान कालके साथ ात्म्यापन्न होकर अपनेको नित्य, देशके साथ तादात्म्यापन्न र व्यापक और द्रव्यके साथ तादात्म्यापन्न होकर सर्वात्मक झता है। वस्तुतः ये नित्यता, व्यापकता और सर्वात्मकता उसके यथार्थ स्वरूप नहीं हैं, कल्पित दृश्यमें तादात्म्यके ण ही हैं। अधिष्ठान चेतन ही वस्तुतः जीवका यथार्थ रूप है और उसमें द्वैतका किंचित् भी भेद नहीं है। धेत भासमानताका कोई मूल्य नहीं है। वस्तुतः बीजत्व (जीवत्व आविद्यक हैं। बीजसत्ता और जीवसत्ता नों ही अखण्ड चिन्मात्र सत्तासे अभिन्न हैं।

अब फिर एक बार पहली बातपर लौट चलें। किसी एक वस्तुमें अनेकाकारताका कारण क्या है? विक्रिया थवा क्रिया। विक्रिया प्राकृत अथवा स्वाभाविक है; तु क्रिया कर्ताके द्वारा अनुष्ठित है। क्रिया धर्म अथवा धर्मसे अनुविद्ध होती है: क्योंकि उसके मूलमें प्राप्ति थवा परिहारकी इच्छा रहती है। प्राप्तिकी इच्छा भनाध्यासमूलक है और परिहारकी इच्छा अशोभनाध्यास- लक है। इसी इच्छाकी दृढ़ता-अदृढ़तासे विहित-प्रतिषिद्ध याका आचरण होता है। अध्यास अज्ञानमूलक है। सलिये जबतक अज्ञान रहेगा, तबतक अध्यास रहेगा ौर जबतक वह रहेगा, तबतक वासनाकी निवृत्ति न नेके कारण जन्म-मृत्युका चक्र भी निवृत्त नहीं हो कता। इस चक्रकी निवृत्तिके लिये वेदान्तज्ञानकी अपेक्षा । यदि यह कालकी प्रधानतासे जन्म-मरण, देशकी धानतासे गमनागमन, द्रव्यकी प्रधानतासे योनिपरिवर्तन, श्वरके द्वारा नियन्त्रित कर्मफल न होता और अज्ञानी जीव स फलको भोगनेके लिये बाध्य न होता तो

महावाक्यजन्य ज्ञानकी आवश्यकता ही न होती और सम्पूर्ण वेदान्तका श्रवण, मनन, निदिध्यासन व्यर्थ हो जाता। ब्रह्मात्मैक्यज्ञानकी आवश्यकता ही इनकी निवृत्तिके लिये है।

श्रीगौडपादाचार्यजी महाराजने, जिन्हें श्रीशंकराचार्यने ब्रह्मसूत्रके शारीरक भाष्यमें 'सम्प्रदायविद्'के नामसे स्मरण किया है और श्रीसुरेश्वराचार्यने 'वेदान्तमर्मज्ञवृद्ध'के रूपमें अपनी कृतियोंमें स्थान-स्थानपर समादृत किया है; कहा है—

यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः।
क्षीणे हेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते॥

आत्माको ब्रह्म अर्थात् देश, काल, वस्तुपरिच्छेदसे रहित सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदशून्य न जानकर यह बात मानी जाती है कि मैं धर्म-अधर्मका कर्ता और उसके फल सुख-दुःखादिका भोक्ता हूँ, तब जन्म-मरणरूप संसारकी वृद्धि होती है। जब ब्रह्मात्मैक्यज्ञानसे अज्ञानमूलक कर्तृत्व, भोक्तृत्व, संसारित्व, परिच्छिन्नत्व आदि बाधित हो जाते हैं, तब जन्म-मरण, गमनागमन आदि अनर्थमय संसारकी निवृत्ति हो जाती है। इसलिये तत्त्वज्ञानके पूर्व पुनर्जन्म और परलोकको न मानना वेदान्तविद्यासे विमुख करनेवाला है और घोर अनर्थमें फँसानेवाला है।

यह बात सर्वथा वेदान्तसम्मत और युक्तियुक्त है कि जीवका जीवन अखण्ड चिन्मात्र सत्ता ही है। अज्ञानके कारण ही भेदभ्रम होता है। भेदमात्र ही प्रातिभासिक है। भेदवस्तु सत्य नहीं है। तत्त्वतः अपने स्वयंप्रकाश अधिष्ठानसे भिन्न भी नहीं है। अपना आत्मा ही यह अधिष्ठान है। अन्ततः हम आपके अनुसंधानके लिये एक वेदमन्त्र उपस्थित करते हैं—

यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वान्
अपो भिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छन्।
उपाधिना क्रियते भिन्नरूपो
देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा॥

पुनर्जन्मका मौलिक आधार

(लेखक—स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

मानव-मस्तिष्ककी जहाँतक पहुँच है उन सम्पूर्ण पदार्थोंका विभाजन दो प्रधान विभागोंमें हो सकता है । एक तो वे पदार्थ जो हमारे अनुभवके विषय हैं और दूसरा वह जो उन सबको जाननेवाला है । दार्शनिक भाषामें इन्हींको क्रमशः दृश्य और द्रष्टा अथवा जड और चेतन कहते हैं । इनमें सम्पूर्ण दृश्यवर्गका जो मूलकारण है, उसीको प्रकृति, प्रधान या माया कहते हैं । द्रष्टा कभी किसीका भी दृश्य या विषय नहीं होता, अतः इस समय उसके विषयमें कोई विचार नहीं करना है । किंतु इतना तो स्पष्ट है कि दृश्य सर्वदा परिवर्तित होता रहता है और द्रष्टा अपरिवर्तनशील है । प्रकृति या माया स्वभावसे ही परिवर्तनशील है । यदि सच पूछा जाय तो परिवर्तनके कारण ही उसकी प्रतीति होती है । अपने मूलरूपमें तो वह भी अव्यक्त और अलिङ्ग ही है । उसमें क्षोभ होनेपर जब वह व्यक्त रूपमें आती है, तभी उसकी प्रतीति होती है । उसका यह व्यक्त रूप ही प्रपञ्च है और यह निरन्तर परिवर्तनशील है ।

परिवर्तनमें स्थिति तो क्षणिक ही होती है । वास्तवमें तो उत्पत्ति और प्रलयके क्रमका नाम ही परिवर्तन है । यह क्रम स्थूल-सूक्ष्म तथा समष्टि-व्यष्टि सभी पदार्थोंमें पाया जाता है । जिस प्रकार हमारे स्थूलशरीरमें परिवर्तन होता है वैसे ही सूक्ष्मशरीरमें भी होता रहता है । इस दृष्टिसे यद्यपि सभी पदार्थ क्षणिक हैं, तथापि व्यवहारमें हमें उनमें स्थितिका भास भी होता है । किंतु यह भास है केवल प्रतीतिमात्र ही । वास्तवमें सदृश परिवर्तन ही हमें स्थिति जान पड़ता है । जैसे दीपशिखा और जल-तरङ्ग प्रतिक्षण नयी-नयी होनेपर भी हमें स्थिर-सी जान पड़ती हैं, उसी प्रकार पदार्थ भी वास्तवमें क्षणपरिणामी होनेपर भी हमें स्थिर-से जान पड़ते हैं । सच पूछा जाय तो इस सदृश परिवर्तन या प्रतीयमान स्थितिका नाम ही 'पदार्थ' है, तात्त्विक दृष्टिसे तो केवल सतत परिवर्तन या गतिका ही भास होता है, पदार्थकी कोई सत्ता नहीं है ।

इस प्रकार क्षणिक या स्थायी जितने भी पदार्थ हैं, उन सभीका आरम्भ और अन्त होता है । आरम्भका नाम 'उत्पत्ति' है और अन्तका नाम 'नाश' है । अतः सभी पदार्थ उत्पत्ति-नाशशील हैं और यह उत्पत्ति-नाशका क्रम निर चलता रहता है । इस क्रमके द्वारा पदार्थका केवल परिव होता है; तात्त्विक नाश नहीं होता । जिस प्रकार घट फूट कपाल हो जाता है, कपाल टूटकर कपालिकाएँ हो जाती कपालिकाएँ पिसकर चूर्ण हो जाती हैं, चूर्ण खादके रू मिलकर पेड़ और पौधोंका आहार हो जाता है और उनके फल-फूलका रूप भी धारण कर लेता है, इ प्रकार विश्वके सम्पूर्ण पदार्थ बिगड़-बिगड़कर नये-नये धारण करते रहते हैं । ये रूपान्तर ही इन पदार्थ जन्मान्तर हैं । अतः संसारका प्रत्येक पदार्थ स्वभावसे नये-नये जन्म धारण करता रहता है । उसका आत्यन्ति उच्छेद कभी नहीं होता ।

यह तो हुई जड तत्त्वकी बात । अब हमें जीव जन्मान्तरके विषयमें विचार करना है । ऊपर हमने जि द्रष्टा और दृश्य दो तत्त्वोंका उल्लेख किया है उनमें परिव केवल दृश्यका ही स्वभाव है, द्रष्टामें कभी कोई परिव नहीं होता । किंतु जीव एक ऐसा तत्त्व है, जिसे न के दृश्य कह सकते हैं और न द्रष्टा ही । परंतु यह इन दो से विलक्षण कोई तीसरा तत्त्व भी नहीं है । द्रष्टा सम् दृश्यका प्रकाशक है । उसका दृश्यके धर्मोंसे कभी क सम्बन्ध नहीं है, तथापि अविवेकवश उसमें उन धर्मो सम्बन्धकी भ्रान्ति होने लगी है । जिस प्रकार फिल्म पर्देपर प्रतीत होनेवाले दृश्योंसे यद्यपि उस पर्देका क सम्बन्ध नहीं होता, तथापि उसके बिना उनकी प्रतीति नहीं होती; इसलिये वह उनसे सम्बद्ध-सा जान पड़ है । इसी प्रकार दृश्यका आधार होनेके कारण द्रष्टा दृश्य धर्मोंसे उपरक्त-सा जान पड़ता है । इस अविवेकजनि उपरक्तिके कारण ही वह अपनेको स्थूल, सूक्ष्म और कार शरीरके धर्मोंसे सम्बद्ध ही नहीं, सम्पन्न समझने लगा है । इस देहाध्यासके कारण ही वह विशुद्ध द्रष्टा न रहकर कर्मोंका कर्ता तथा कर्मफलोंका भोक्ता बन जाता है और देहके सुख-दुःखके कारण अपनेको सुखी-दुःखी मान लगता है । इसीसे उसकी संज्ञा 'जीव' हो जाती है । इ प्रकार शुद्ध साक्षी ही अविवेकवश कर्ता-भोक्ता जीव ब

जाता है और शरीरके साथ अपना तादात्म्य मानने लगता है।

परिवर्तनके क्रममें स्थूलशरीर तो यहीं सड़ जानेपर कृमि, किसीके द्वारा खा लिये जानेपर विष्ठा और जला दिया जानेपर भस्म हो जाता है। परंतु सूक्ष्मशरीर तो संस्कारोंका पुतला है। उसपर इस स्थूल जगत्के किसी घातक कारणका कोई प्रभाव नहीं होता। वह अपने संस्कारोंके अनुसार परिवर्तित होता है। जीवका उससे तादात्म्य है ही, अतः वह उसके परिवर्तनको अपना ही परिवर्तन या पुनर्जन्म मान बैठता है। इस प्रकार यद्यपि पुनर्जन्म सूक्ष्मशरीरका होता है, तथापि वह कहा जाता है जीवका।

यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि पुनर्जन्म तो नवीन स्थूलशरीर धारण करना है, सूक्ष्मशरीरमें परिवर्तन होना तो पुनर्जन्म नहीं है। फिर ऐसा क्यों कहा गया?

यह शङ्का ठीक है। परंतु सोचिये तो सही कि सूक्ष्मशरीर कहते किसे हैं? अन्तःकरण, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राण—इनके समुच्चयका नाम सूक्ष्मशरीर है। इनमें अन्तःकरण और ज्ञानेन्द्रिय तो ज्ञानशक्ति हैं और कर्मेन्द्रिय तथा प्राण क्रियाशक्ति हैं। इस प्रकार ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिके समूहका नाम ही सूक्ष्मशरीर है। ये दोनों शक्तियाँ निराधार नहीं रह सकतीं। किसी-न-किसी प्रकारका स्थूलशरीर स्वीकार करनेपर ही ये अपने व्यापारमें समर्थ हो सकती हैं। अतः अपने व्यापारके लिये सूक्ष्मशरीर सर्वदा किसी-न-किसी स्थूल आधारकी कल्पना कर लेता है। इसीसे शरीर-त्यागके समय भी पहले आतिवाहिक शरीरकी कल्पना करके पूर्वदेहको त्यागता है और उसीके द्वारा लोकान्तरोंमें आकर अपने पाप-पुण्यके अनुसार दुःख-सुख भोगकर जन्मान्तर ग्रहण करता है।

इसी संदर्भमें हम आधुनिक भौतिकवादियोंके एक प्रमुख सिद्धान्तकी समीक्षा भी कर लें। उनका मत है कि आत्मा या चेतन कोई स्वतन्त्र तत्त्व नहीं है। यह जड प्रकृतिका ही परिणाम है। अतः रोगादिके कारण जब स्थूलशरीर कार्यक्षम नहीं रहता तो उसकी चेतना नष्ट हो जाती है और फिर उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। ये लोग प्रकृति या जड तत्त्वको ही एकमात्र परमार्थ तत्त्व मानते हैं। इन्हें 'जडाद्वैतवादी' कहा जा सकता है। इस प्रकार दार्शनिक दृष्टिकी चरम परिणति दो छोरोंपर ही होती है। एक ओर जडाद्वैत है और दूसरी ओर ब्रह्माद्वैत। एक पक्षकी केवल जड तत्त्वकी ही सत्ता है, चेतन उसका विकार दूसरे पक्षकी दृष्टिमें केवल चिन्मात्र परब्रह्मकी ही जड उसमें अध्यस्त है। यदि प्रथम पक्ष स्वीकार कि तो प्रश्न होता है कि जबतक चेतनका विकास नह था, तबतक जडकी सत्ता प्रकाशित किससे होती थी प्रकाश्य है, अतः किसी प्रकाशकके बिना उसकी सिद्ध ही नहीं हो सकती। चेतन तो स्वयंप्रक उसकी सिद्धिके लिये किसी अन्य प्रकाशककी सत्ता नहीं होती। उसमें बिना किसी अन्य साधन-सामग्री ही प्रपञ्चकी प्रतीति हो जाती है—यह स्वप्न-प्रपञ्चके हमें नित्य ही अनुभव होता रहता है। अतः ज वादियोंका विचार युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। जिस चेतनका विकास जड तत्त्वसे कहते हैं, वह तो करण तथा इन्द्रियवर्ग हैं। वे अवश्य जडके परि परंतु वे कर्ता-भोक्ता जीव नहीं हैं। वे तो उसके क भोगके साधन हैं। वे कर्ता नहीं, करण हैं।

जन्मान्तर स्वीकार करनेवालोंमें भी कुछ लोगों है कि मनुष्य दूसरे जन्ममें मनुष्य ही होता है। वह प या किसी अन्य योनिमें नहीं जा सकता; क्योंकि मानवोचित संस्कार बद्धमूल हो जाते हैं। परंतु शास विचारदृष्टिसे यह बात भी युक्तिसंगत नहीं जान प जीवका स्वभाव है कि वह जिस परिस्थिति, अवस शरीरमें होता है, उसीसे उसका तादात्म्य हो जा जब आप विद्यालयमें अध्ययन करते हैं तब अपनेको मानते हैं। जब अध्ययन समाप्त करके पढ़ाना आर देते हैं तो अपनेको अध्यापक मानने लगते हैं। इस परिस्थिति परिवर्तित होते ही आपकी अहंता बदल जा जाग्रत् अवस्थामें अपनेको वयोवृद्ध अध्यापकके रूपमें हैं और स्वप्नमें युवक विद्यार्थीके रूपमें देखते हैं त अवस्थामें भी आपको कोई संदेह नहीं होता। अवस्थाके परिवर्तनसे भी आपकी अहंता बदल जा इसी प्रकार जब सम्बन्ध, पद, प्रान्त और धर्मके परि भी आपकी अहंताका परिवर्तन होता देखा गया मृत्युके द्वारा देहान्तरकी प्राप्ति होनेपर अहंताके परि कोई बाधा कैसे आ सकती है? अतः उपर्युक्त तर्को आधारपर शास्त्रीय सिद्धान्तको स्वीकार न करना यु नहीं है।

इस प्रकार निश्चय हुआ कि जिस प्रकार प्रत्येक प्रतीयमान पदार्थ परिवर्तित होता रहता है, उसी प्रकार जीव भी अपने संस्कारोंके अनुसार नये-नये शरीर धारण करता रहता है। संसारमें ऐसा तो कोई पदार्थ नहीं है, जिसमें परिवर्तन न होता हो अथवा जिसका सर्वथा उच्छेद हो जाता हो। जो कुछ प्रतीत होता है, वह न तो शाश्वत है और न अलीक है। यद्यपि जीव वास्तवमें तो शुद्ध चिन्मात्र, एकरस और शाश्वत तत्त्व है; किंतु परिवर्तनशील शरीरसे तादात्म्य स्वीकार करके वह कर्ता, भोक्ता तथा जन्म-मरणशील जान पड़ता है, *यही उसका बन्धन है।* जबतक यह अविवेक बना हुआ है, तबतक जन्म-मरणके चक्रसे उसका छुटकारा नहीं हो सकता। जब तत्त्वज्ञानके द्वारा उसे अपने वास्तविक स्वरूपका बोध प्राप्त हो जाता है, तब तो संसारकी सत्ता ही नहीं रहती। यही उसकी मुक्ति है। फिर शरीर या शरीरके धर्मोंसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता और वह अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है। किंतु जबतक प्रतीतिकी सत्ता है, तबतक परिवर्तन भी अनिवार्य है और इस परिवर्तनकी ही एक संज्ञा जन्म-मरण भी है। यह जन्म-मरणकी परम्परा ही जन्मान्तर या पुनर्जन्म है। अतः *परिवर्तनकी प्रतीति ही पुनर्जन्मका मौलिक आधार है।*

पुनर्जन्म—अनुमान, अनुभव और शास्त्रसिद्ध

(लेखक—आचार्य श्रीविनोबा)

पुनर्जन्म होता है, इसके अनेक प्रमाण हैं। यानी मेरे लिये यह जन्म जितना सिद्ध है, उतना ही पहलेका और आगेका भी। इसमें किसी प्रकारके संदेहकी गुंजाइश नहीं।

सृष्टि—अनादि और अनन्त

मेरा निश्चित मानना है कि इस सृष्टिमें कहीं भी यह नहीं कह सकते कि यहाँ उसका अन्त और यहाँ आदि है। वह अनादि और अनन्त है। सृष्टिका स्वरूप ही यह है। आसमानमें कितने तारे हैं, इसकी अब भी गिनती हो रही है। परार्धका आँकड़ा तो खतम ही होगा। 'रेडियो एस्ट्रानामी' बता रही है कि वहाँसे यहाँ प्रकाश पहुँचनेमें दस लाख वर्ष लगते हैं। इसकी अन्तिम हद कहाँ है, कह नहीं सकते। हिंदुस्तानकी हद तो कश्मीरतक है, लेकिन दुनियाकी हद कहाँ समाप्त होती है, उसकी सीमा कहाँतक है, उसके 'बार्डर' के बाद क्या है, मालूम नहीं! यदि उसका अन्त हो, तो उसके बाद वहाँ क्या कोई ठोस चीज है? तरल (लिक्विड) है या गैस, क्या है? कुछ है—यदि गैस या तरल है या कोई ठोस चीज है, तो दुनियाका वह अन्त नहीं। यानी कुछ अस्तित्व है। स्पेस हो तो भी अस्तित्व है। सारांश, दुनिया वहाँ समाप्त नहीं है। दुनियाका अन्त है ही नहीं।

हमारा स्वरूप भी अनादि-अनन्त

सत्तर साल हुए बाबा जन्मा। ७० सालसे पहले नहीं था। ८० सालमें मर गया। तो मरनेके बाद उसका स्वरूप कुछ नहीं है और जन्मसे पहले भी कुछ नहीं था; यह हो नहीं सकता। जीवका इस सृष्टिमें कब प्रवेश हुआ, मालूम नहीं। वह कबतक इस सृष्टिमें रहेगा, यह भी मालूम नहीं। यदि हम यह मानें कि हम पहले नहीं थे और मरनेके बाद नहीं रहेंगे, तो कई समस्याएँ खड़ी होंगी। लेकिन सब समस्याओंका उत्तर मिलेगा, यदि हम यह जान जायँ कि हमारा स्वरूप अनादि-अनन्त है।

कर्म-विपाक—प्रबल प्रमाण

यदि हम यह मानें कि हमारा स्वरूप अनादि-अनन्त नहीं, तो फिर कर्म-विपाक भी कुण्ठित हो जायगा। हमने जन्म पाया तो बचपनसे ही हमारे किये कर्मोंका क्षय होने लगा। हमने सुदृढ़ माता-पिताके पेटसे जन्म पाया। जीवन जीने लगे, कुछ दुःख हुआ तो कुछ सुख। लेकिन यदि हम पहले नहीं थे तो सुख-दुःखके लिये जिम्मेवार भी नहीं होंगे। तब सुख या दुःखकी जिम्मेवारी हमपर नहीं आयेगी। यदि हमने आज बुरा काम किया तो दुःख हो, यह ठीक है। लेकिन 'हमने पहले जन्ममें कुछ किया होगा इसलिये अब दुःख भुगत रहे हैं' ऐसा हम मानते हैं तो यह बात 'पहले नहीं थे और मरनेके बाद भी कुछ नहीं रहेंगे' इससे मेल नहीं खाती। सारांश, पहले और आगेकी बातें यदि नहीं मानते तो कर्म और कर्मफलका नियम टूट जाता है। यह दूसरा प्रमाण है।

स्वात्मानुभव—तीसरा प्रमाण

तीसरा प्रमाण है साक्षात् स्वानुभव। जैसे-जैसे कार्य-कारण-परम्परा खुलती जाती है, वैसे-वैसे चित्त निर्मल होता जाता है। पुरानी चीजें याद आती हैं। यदि हम प्रयत्न करें तो कुछ चीजें और याद आ सकती हैं। कुछ लोग ऐसे मिलते हैं, जो अपने पुराने जन्मकी बातें कहते हैं। बुद्धि जितनी संस्कारोंसे मुक्त रहेगी, साफ रहेगी, उतना वह पुराने जन्मका स्मरण कर सकेगी। ब्यौरेमें नहीं, लेकिन कुछ धुँधला या मोटा-मोटा स्मरण हो ही सकता है। पुराने जमानेमें जो विशेष काम या प्रयोग किया होगा, वह याद आ सकता है। कहते हैं कि ज्ञानदेवने लिखा है कि 'मैं पुराने जमानेमें राजा था।' डाक्टर एनी बेसेन्टने भी अपनी कुछ कहानियाँ लिख रक्खी हैं। गौतमबुद्धके बारेमें भी ऐसी ही कहानियाँ कही जाती हैं।

बचपनमें मैं अपनी माँके पास था। पूनाकी बात है। माँ मुझे कहीं ले जानेवाली थी। मैं तीन-चार सालका बच्चा था। जहाँ वह मुझे ले जानेवाली थी, उस स्थानका, उस घरका वर्णन मैंने किया कि 'वहाँ ऐसा आँगन होगा, ऐसा कुँआ होगा' आदि। ठीक वैसा ही घर निकला। सम्भव है, वह 'काकतालीय' न्याय हो। उससे पूर्वजन्म होता ही है, ऐसा नहीं। शायद माँने मुझसे कहा हो—'तुम्हारा इस घरके साथ पूर्वजन्ममें सम्बन्ध रहा होगा। इसीलिये यह एक-एक बात ध्यानमें रह गयी।'

दूसरा, मुझे यह भास होता है कि 'पूर्व-जन्ममें मैं बंगाली था।' कारण, घुमक्कड़ हूँ ही, घूमते-घूमते बंगाल पहुँच गया तो देखा, जितना समय और श्रम दूसरी भाषाएँ सीखनेमें लगा, उससे बहुत आसानीसे बंगला मैंने सीख ली। यह मेरा अंदाज ही है।

हाँ, शतरंजका खेल मुझे अच्छा लगता था, तो खेल[illegible] था। एक बार सपनेमें शतरंज देखा, तो लगा कि यह खे[illegible] ही मुझपर हावी हो रहा है। दूसरे दिनसे मैंने शतरंज खेल बंद कर दिया। वह मैंने खुद तोड़ा। इसलिये [illegible] सकता हूँ कि वह मेरी इस जन्मकी कमाई है। लेकिन [illegible] चीजोंका मुझे आकर्षण नहीं हुआ। वह मेरी इस जन्म[illegible] कमाई नहीं है। यदि इच्छा होती और उसे मैं रोकता [illegible] वह इस जन्मकी कमाई मानी जाती। इसलिये पुनर्जन्म[illegible] विश्वास होता है। अनुमान, अनुभव और शास्त्रवचनसे [illegible] निश्चित है कि पुनर्जन्म है। ब्यौरेमें जायँगे तो मतभेद [illegible] सकता है।

इस्लाम भी सहमत

मुहम्मदसे कहा गया था कि 'गैब' यानी 'अज्ञात' बात बताओ। उसने कहा 'अगर मैं जानता तो स[illegible] सृष्टिपर मेरी सत्ता चलती। मृत्युके बाद जीवन कायम रह[illegible] है। वह नया शरीर धारण नहीं करता, लेकिन सू[illegible] लिङ्गदेहमें पड़ा रहता है। नया शरीर, स्थूलशरीर धा[illegible] करता है या नहीं, स्पष्ट नहीं कह सकते। इसलिये क[illegible] स्तानमें पड़े रहते हैं।' इस तरह मुसलमान लोग भी मा[illegible] हैं कि मृत्युके बाद जीवन है। सवाल यही है कि सूक्ष्म रूपमें है या स्थूल रूपमें?

एक दफा एक मुसलमान भाईसे चर्चा चल रही [illegible] मैंने उनसे कहा कि 'एक लड़का पैदा होता है और [illegible] मिनटोंमें ही मर जाता है, तो क्या आखिरी दिन न्याय [illegible] समय अल्ला उसके दो मिनटोंके पाप-पुण्यको देख[illegible] न्याय करेगा? एक जीव अनन्त कालतक अव्यक्त रहता [illegible] फिर दो मिनटोंके लिये व्यक्त हो जाता है और अनन्त क[illegible] तक अव्यक्त रहता है, यह बात तर्कसंगत [illegible] मालूम होती।'

परलोक और पुनर्जन्म

(लेखक—जगद्गुरु अनन्तश्रीरामानुजाचार्य पुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी महाराज, पंढरपुर)

ग अल्पकाय निबन्धमें परलोक और पुनर्जन्मके विषयमें आधारसे किंचित् चर्चाका चित्रण किया गया है। क' शब्दमें 'पर' और 'लोक' दो शब्द हैं। इनमें 'लोक' 'लोकस्तु भुवने जने' कोशके आधारसे भुवन और -इन दोनों अर्थोंका बोधक है। अर्थात् वेद 'लोक' लोक-निवासी' दोनों अर्थोंमें 'लोक' शब्दका प्रयोग करता हाँपर 'पर' शब्दका अर्थ अन्य है। दोनोंके अर्थोंको से 'परलोक' शब्दका अर्थ लोकान्तरमें अन्य लोक और योनि, दोनों विवक्षित हैं। अर्थात् 'परलोक' शब्दसे लोक' और 'दूसरी योनि' दोनों विवक्षित हैं।

अनेक लोक

वेदोंमें अनेक लोकोंका निर्देश है। उसके मतमें आत्मा लोक है। पृथिवी और द्युलोक—ये दो लोक हैं। पृथिवी, क्षि और दिव्यलोक (द्युलोक)—ये तीन लोक हैं। , अन्तरिक्ष, द्यु और अप्—ये चार लोक हैं। वः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्—ये सात ऊर्ध्व- हैं। अतल, वितल, तल, प्रतल, तलातल, महातल और —ये सात अधोभुवन हैं।

तीन लोक

इन सब लोकोंका देवलोक, पितृलोक और जीवलोकरूप लोकोंमें अन्तर्भाव हो जाता है। इनमें इन्द्र देवलोक थम पितृलोक हैं। मनुष्यलोक जीवलोक है। इसकी व्याप्ति पृथिवीसे लेकर चन्द्रमण्डलतक है। बृहदारण्यकका विज्ञान है कि 'इस लोकका जय पुत्रके द्वारा, पितृलोकका जय इष्टापूर्तद्वारा तथा देवलोकका जय विद्या-सहकृत कर्मके द्वारा है। परमात्माकी प्राप्ति विद्याके द्वारा होती है।' अथवा विद्योत्तर कर्मसे भी भगवत्प्राप्ति होती है।

देवलोक

कौषीतकी शाखामें अग्निलोक, वायुलोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक, प्रजापतिलोक और ब्रह्मलोक—ये देवयान छः देवलोक हैं। देव स्वर्ग है अर्थात् प्रकाशमय लोक है।

वाजसनेयि शाखामें अग्निलोक, वायुलोक, आदित्यलोक, चन्द्रलोक और अशोकमहिमलोक—ये पाँच लोक देवलोक माने गये हैं। अन्य मतोंमें अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, चन्द्र, प्रजापति और ब्रह्म—ये सात देवलोक माने गये हैं। देवलोक, देवस्वर्गलोक और स्वर्गलोक—इनका अर्थ समान है। अर्थात् इन सब शब्दोंका अर्थ एक ही है।

नामान्तर

वेदोंमें अग्निलोक, वायुलोक और आदित्यलोक आदिके नामान्तर भी मिलते हैं। इनमें अग्निलोकका नाम 'अग्नेदर' है। वायुलोकको 'ऋतधामा' कहते हैं। इन्द्रलोकका नाम 'अपराजित' है। सूर्यलोकका नाम 'नाक' है। वेदोंमें दो प्रकारके नाक-लोकोंका निर्देश है। एक सूर्यलोकरूप नाक लोक है, दूसरा प्रजापतिरूप नाक-लोक है। प्रजापतिरूप

यह सर्ग रजोविशाल है। यह अर्धचेतन है।

तमोविशाल सर्ग

१–मणि, २–मुक्ता, ३–वज्र, ४–कान्त, ५–गन्धक, ६–पारद और ७–अभ्रक आदि।

यह सर्ग तमोविशाल है। इसमें केवल अर्थ-शक्तिका ही प्राधान्य है। क्रिया (प्राण) और ज्ञान (मन)—दोनों मूर्छित हैं। अतः यह सर्ग अचेतन जीवोंका है। इसलिये अचेतन सर्ग है। अचेतन होनेमे ही तमोविशाल है। ये चौदह प्रकारके जीव-सर्ग ही उच्चावच भेदसे ८४ लाख जीव-योनियाँ हैं। इनमें जीवात्मा सतत भ्रमण करता रहता है। अर्थात् जबतक मुक्ति नहीं होती, तबतक वह इन १४ प्रकारकी योनियोंमें योनिगतिसे भ्रमण करता है। सात प्रकारके देवलोक, तीन प्रकारके पितृस्वर्ग एवं सात प्रकारके यमलोक—इनमें वह कर्मगतिसे फिरता है। मुक्ति न होने-तक इन लोकोंमेंसे किसी एक लोकमें वह अवश्य रहता है।

चान्द्र जीव

चान्द्र (सौम्य), वायव्य और आप्य भेदसे जीव तीन प्रकारके हैं। इनमें आप्य जीव मत्स्य आदि हैं। वायव्य जीव मनुष्य आदि हैं, चान्द्र जीव ब्रह्मा आदि हैं। इन चतुर्दश योनियोंमें आठ प्रकारके ऊर्ध्व सर्गोंके प्राणी ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाचरूप आठ योनियोंमें उत्पन्न होनेवाले चान्द्र जीवोंकी माता पृथिवी छाया है। पिता चान्द्र प्रकाश है। यह चान्द्र जीव अयात है। इनके अट्ठाईस इन्द्रियाँ हैं। वैशेषिक दर्शनमें प्रसिद्ध ग्यारह इन्द्रियाँ तो इनके होती ही हैं। परंतु आठ सिद्धियाँ और नौ तुष्टियाँ अधिक होती हैं।

आठ सिद्धियाँ

१–अणिमा–छोटा शरीर धारण करनेकी शक्ति।
२–महिमा–महाविशाल शरीर धारण करनेकी शक्ति।
३–लघिमा–परम लघु—हल्का होनेकी शक्ति।
४–गरिमा–परम गुरु (भारी) होनेकी शक्ति।
५–व्याप्ति–बहुत देशोंमें पसरनेकी शक्ति।
६–प्राकाम्य–इच्छा होते ही वस्तु प्राप्त करनेका सामर्थ्य।
७–ईशित्व–सहस्रों प्राणियोंपर प्रभुत्व करनेकी शक्ति।
८–वशित्व–सर्प, व्याघ्र आदिको वशीभूत करनेकी शक्ति।

नौ तुष्टियाँ

१–भूत-भविष्य-ज्ञान—अवधान करते ही भूत और भविष्यको जान लेना।
२–दूरदृष्टि–दूर-दूर सहस्र कोसोंतक देखना।
३–दूरश्रवण—दूर-दूर देशोंकी बातोंको सुनना।
४–परकायप्रवेश—दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना।
५–कायव्यूह—एक ही कालमें अनेक रूप धारण करना।
६–जीवदान—मृतको जीवित करना।
७–जीवहरण—जीवितको मार देना।
८–सर्गकरण—नवीन सृष्टि करना।
९–सर्गहरण—सृष्टिका संहार करना।

ये १७ शक्तियाँ और सर्वसाधारण ११ इन्द्रिय मिलाकर अट्ठाईस इन्द्रियाँ होती हैं। चान्द्र जीवोंमें ये स्वाभाविक हैं, अर्थात् जन्मना हैं।

मनुष्योंको इनकी प्राप्ति मन्त्रयोग आदिसे होती है। आठ प्रकारके चान्द्र जीवोंका निवास चन्द्रिका, छाया और अन्धकार है। इनमें ब्रह्मा, प्रजापति और इन्द्र प्राणी चन्द्रिका-में निवास करते हैं। पितर छायामें निवास करते हैं। गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच प्राणी अन्धकारमें निवास करते हैं। इनका भोजन क्रमशः अमृत, अन्न और सुरा है।

'आब्रह्मभुवनात् लोकात्'में भौतिक सर्गस्थ प्राणी ब्रह्मा-का भुवन विवक्षित है। इनमें भी सत्त्वगुणमें उत्कर्ष और अपकर्षसे परस्परमें उच्चावच भेद हैं। सत्त्वगुणके उत्कर्षके कारण पिशाच, राक्षस, यक्ष और गन्धर्व योनियोंकी अपेक्षा पितर, इन्द्र, प्रजापति और ब्रह्मा—ये योनियाँ उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। इन सांख्योक्त १४ प्रकारके भूतसर्गों और देवसर्गों, पितृसर्गों और नरकलोकोंमें अज्ञानसे सम्मिश्रण-सा लोगोंने कर लिया है, जिससे शास्त्रोंके अर्थ समझनेमें महान् अवरोध उत्पन्न हो गया है।

भेद

योनिगति-निबन्धन सांख्य और योगमें कथित चौदह प्रकारके भूत-सर्गोंमें परिगणित ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच आदिकी अपेक्षा कर्मगति-निबन्धन सौर आदि प्राणात्मक सर्गमें परिगणित ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच आदि भिन्न हैं। योनि-निबन्धन भौतिक सर्गमें परिगणित ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और

पिशाच आदि प्राणीरूप हैं। सौर आदि प्राणात्मक सर्गोंमें विद्यमान ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच प्राणरूप हैं। चान्द्रसर्गानुगत ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच आदि भूतसर्ग-प्रधान होनेसे मर्त्य हैं। सौर इन्द्र, अन्नाद, पितर आदि प्राणसर्गात्मक देवसर्ग-प्रधान होनेसे अमृत हैं।

चान्द्रजीवोंमें पिता, पुत्र, भार्या, जन्म, मृत्यु, रथ, वाहन आदि सब व्यवहार अस्मदादिवत् ही व्यवस्थित हैं—प्राणात्मक इन्द्र आदि देवोंमें यह व्यवहार नहीं है। चान्द्रजीव पार्थिव और चान्द्र होनेसे पृथिवीसे लेकर चन्द्र-मण्डलतक ही सीमित हैं। सौर इन्द्र आदि देव त्रैलोक्य-व्यापक हैं। तत्तत् प्राणविशेषोंका तत्तत् प्रदेशोंमें अधिक विकास होनेसे उस-उस प्रदेशको वरुणलोक, इन्द्रलोक आदि कहा गया है; परंतु प्रकाशरूप इन्द्र और अन्धकाररूप वरुण सर्वत्र व्याप्त हैं। चान्द्रजीव ब्रह्मा, प्रजापति और इन्द्र आदि देवोंमें यह व्यवहार नहीं है। चान्द्रजीव ब्रह्मा, प्रजापति और इन्द्र आदि पुरुषविध हैं। भूतसर्गमें परिगणित ब्रह्मा प्रजापति और इन्द्र भौमस्वर्ग हैं। पितर और गन्धर्व भौम पितृ-स्वर्ग हैं। यक्ष, राक्षस, पिशाच भौम नरक हैं। स्थावर स्तम्ब और कृमि आदि भी भौम नरक हैं। मानुषसर्ग मनुष्य-लोक हैं। इन भौमस्वर्ग, भौम पितृस्वर्ग, भौम नरकोंसे दिव्य स्वर्ग, आन्तरिक्ष्य पितृस्वर्ग एवं याम्य नरक भिन्न हैं। जहाँ दिव्यस्वर्गों, पितृस्वर्गों और याम्य नरकोंमें विद्यासह कृत कर्मों, केवल कर्मों, विकर्मों और अकर्मोंसे गति होती है, वहाँ भौमस्वर्गों और भौम नरकोंमें केवल योनिगति ही होती है। गतिविशेषोंका वर्णन विस्तारसे अनपदमें ही होगा।

भेदसे दो ही शाखाएँ हैं। साम्परायिक मार्गोंके चतुर्धा विभक्त होनेसे गतियाँ भी चार ही हैं। इन गतियोंका अभिधान वेदोंमें इस प्रकार उपलब्ध है। परमागति, उत्तमागति, सद्गति और दुर्गति। ब्रह्मपथमें संचार करना 'परमागति' है। यही 'मुक्ति' है। देवपथमें संचार करना 'उत्तमागति' है। पितृपथमें संचार करना 'सद्गति' है। यमपथमें संचार करना 'दुर्गति' है।

गतियोंके कारण

ब्रह्मपथ, देवपथ, पितृपथ और यमपथमें संचाररूप चार गतियोंके सम्पादक कर्म, नाड़ी, आकाश, छन्द, देव और आतिवाहिक—ये छः होते हैं। इनके द्वारा जीवात्मा देवयान अथवा पितृयाण—इन मार्गोंमें संचार करता है। इनमें भी मुख्य कर्म ही है। विद्योत्तर कर्म ब्रह्मपथमें संचारका कारण होता है, अर्थात् निष्कामभावसे आचरित यज्ञ, दान और तप आदि कर्म जीवात्माकी मुक्तिके सम्पादक हैं। विद्या-समुच्चित कर्म देवपथमें संचारके हेतु होते हैं, अर्थात् सकामभावसे आचरित यज्ञ, दान और तप देवपथसे देव-स्वर्गोंमें जानेके कारण होते हैं। विद्यानिरपेक्ष कर्म पितृपथमें संचारके हेतु हैं, अर्थात् विद्यारहित केवल इष्ट एवं पूर्त आदि कर्म जीवात्माको पितृस्वर्गमें ले जाते हैं। अकर्मों और विकर्मोंसे जीवात्माका यमपथमें संचार होता है, अर्थात् हिंसा, स्तेय, अनृत आदि जीवात्माको नरकोंमें ले जाते हैं।

शारीरिक देवयान और पितृयाण

अधिदैवतवत् अध्यात्ममें भी देवयान और पितृयाण मार्ग हैं। इनमें हृदयसे अधोगामिनी नाड़ियाँ पितृयाण मार्ग हैं। हृदयसे ऊर्ध्वगामिनी नाड़ियाँ देवयान मार्ग हैं। इनमें पितृयाण और देवयान दोनोंके दो-दो भेद हो गये हैं।

नहीं होता—वहाँ ही वह परमात्मामें लीन हो जाता है।' यही 'समवलय गति' है। यह भी एक प्रकारकी मुक्ति है।

आत्मा नित्य है

पञ्चत्वमें जिस प्रकार पाँचों भूतोंका शरीर आत्मासे पृथक् हो जाता है, उसी प्रकार पाँच देवमय आत्मा भी शरीरसे पृथक् हो जाता है; किंतु इसमें यह विशेषता है कि शरीरके पाँचों भूत अलग होकर पाँच स्थलोंमें विभक्त हो जाते हैं, परंतु आत्माके पाँचों देवता शरीरसे पृथक् होनेपर भी अपने प्रभवके रूपमें पाँच स्थलोंमें विभक्त नहीं होते। हमारे इस भूतात्मामें काल, कर्म और शुक्र आदि अविद्याद्वारा जो पाँच देवताओंका हृद्ग्रन्थि-बन्धन हो रहा है, वह मुक्तिके प्रथम अविद्याके निवृत्त न होनेसे नहीं टूटता। अतः पाँच देवताओंसे निर्मित आत्मा शरीरसे पृथक् होकर भी पूर्ववत् सम्बन्धरूपमें कहीं-न-कहीं परिभ्रमण करता रहता है। चिद्रूप आत्मामें देवताओंकी शक्तियोंका बन्धन ही 'निर्माण' है। आत्मा सदा ही नित्य है।

आत्माका स्वरूप

वेदकी सरल भाषामें आत्मस्वरूपका विश्लेषण सरलतासे इस प्रकार हो सकता है। यह सृष्टि-प्रपञ्च ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय भेदसे तीन भागोंमें विभक्त है। इनमें ज्ञाता आत्मा है, ज्ञान आत्माकी रश्मियाँ हैं, ज्ञेय इसी आत्माका प्रवर्ग्य (अंश) है, अर्थात् महिमारूप है। वेदमें अंशको 'प्रवर्ग्य' कहते हैं। इनमें आत्मा चित् है, ज्ञान चेतना है, प्रवर्ग्य अचित् है—जड है। न्यायदर्शनमें इसको क्रमशः प्रमाता, प्रमा और प्रमेय—इन अभिधानोंसे अभिहित किया गया है। इसीको वेदान्तदर्शनके श्रीभाष्यमें श्रीरामानुजाचार्यजीने ईश्वर, चित् और अचित्—इन संज्ञाओंसे परिभाषित किया है। श्रीरामानुजाचार्यजीका तत्त्वोंका यह विश्लेषण वेदसम्मत

इनमें प्रत्यक्षमें आदान-विसर्गभाव ही प्रतीत होते इनमें चेतना-विकासके आधार इन्द्रियोंका विकास है; अतः ये पदार्थ अचित् (जड) हैं। परंतु एक बातपर अवश्यमेव ध्यान देना आवश्यक है। ' चित् (आत्मा) नहीं है, इसलिये ये जड हैं' मानना सत्यसे दूर है। आत्मा तो इनमें भी व्याप्त कारण कि जगत्का मूल कारण परमात्मा स्वयं मन, और वाङ्मय है। अतः इसके अंश यच यावत् प 'त्रिपर्वा' हैं। इस दृष्टिसे सब पदार्थ ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेयरूप त्रिपर्वोंसे युक्त हैं। अतः आर्योंका व्यापक चिद अव्याहत है। इस कारणसे मनुष्येतर पदार्थों—पशु, और वृक्ष आदिका उत्पीडन पाप माना गया है। ' इनमें इन्द्रियोंका विकास न होनेसे आत्माकी अभिव्य नहीं होती है; अतः ये अचित् (जड) हैं।

कुछ पदार्थ ऐसे हैं, जो घटते-बढ़ते हैं—आद विसर्गरूप व्यापार करते हुए प्रतीत होते हैं। परंतु अ स्थानसे अन्यत्र गमनमें असमर्थ हैं। ओषधि, वनस्प वृक्ष, लता और गुल्म आदि इस कोटिके हैं। इनमें के त्वगिन्द्रियका विकास है।

कुछ पदार्थ ऐसे हैं, जिनका मिथुनभावसे सर्जन हो है। मिथुनभावकी सृष्टि ही 'मैथुनी-सृष्टि' है। यह सृष्टि मानस सृष्टिसे भिन्न है। इनमें इन्द्रियोंका विकास रहता है। ये अवस और जात्यनुरूप बढ़ते हैं। प्रत्यक्षमें ध्वनि और शब्दरू वाक्का प्रयोग करते हैं। एक स्थानसे स्थानान्तरमें गमन गमन करते हैं। कृश, स्थूल आदि आकार-भेदोंमें परि होते रहते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि, कीट और पत आदिका इस तीसरी कोटिमें अन्तर्भाव है।

संज्ञ होनेसे 'अर्धचेतन जीव' हैं। इनको ही 'माण्डूक्य-उपनिषद्'में 'तैजस जीवात्मा' कहा गया है। वैश्वानर जीवोंमें केवल अर्थशक्तिका ही विकास है, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति उनमें मूर्छित हैं; परंतु तैजस जीवोंमें क्रिया-शक्तिका भी विकास है; परंतु अल्पमात्रामें। अतः ये जीव 'अर्धचेतन' हैं। इनमें केवल त्वक्-इन्द्रियका ही विशेष विकास है। इतर इन्द्रियोंका कार्य केवल त्वक्-इन्द्रियके सहयोगसे अन्तःमें विद्यमान आत्मा ही करता रहता है, अतः 'अन्तःसंज्ञक' है।

पशु, पक्षि, कृमि और मानवोंमें सब-सब इन्द्रियोंका विकास है। अतः ये 'चेतन जीव' हैं। 'माण्डूक्योपनिषद्'में इनको 'प्राज्ञ जीव' कहा गया है। इनमें अर्थ और क्रियाशक्तिके साथ-साथ प्रज्ञा (मन) शक्तिका भी विशेष विकास है। अतः ये प्राज्ञ जीव हैं। प्रज्ञा ही चेतना है, अतः ये चेतन हैं।

पाप-पुण्यका संश्लेष और आवागमन

इनमें पूर्वजन्मानुभूति, आवागमन, पाप-पुण्य आदिका विपर्यय—ये सब भाव उन जीवोंके साथ ही युक्त रहते हैं, जिनमें आत्माकी अभिव्यक्ति अधिक है। जिन जीवोंमें आत्माकी अभिव्यक्ति नहीं रहती है, उनको पाप-पुण्य नहीं लगते हैं। उनका कर्मनिबन्धन आवागमन भी नहीं होता है। केवल उनकी योनिगति ही होती रहती है। यही मनुष्य और पशु-पक्षी आदि जीवोंमें भेद है।

पाँच पुनर्जन्म

जीवात्माके अनन्तानन्त पुनर्जन्मोंका अन्तर्भाव पाँच पुनर्जन्मोंमें हो जाता है। उनके नामों और स्वरूपोंका निर्देश इस प्रकार है—

१–शुक्रमें जन्म।
२–शोणितमें जन्म।
३–भूमिमें जन्म।
४–संस्कारोंसे जन्म।
५–परलोकमें जन्म।

कर्मात्माकी अन्नके द्वारा शुक्रमें प्रतिष्ठा प्रथम जन्म है। शुक्रके द्वारा शोणित (रज) में प्रतिष्ठा द्वितीय जन्म है। गर्भाशयसे भूमिमें प्रतिष्ठा तृतीय जन्म है। संस्कारोंसे दिव्य-भावमें प्रतिष्ठा चतुर्थ जन्म है। अग्निके द्वारा परलोकमें प्रतिष्ठा पञ्चम जन्म है।

तीन जन्म

'ऐतरेय ब्राह्मण'में भगवान् ऐतरेयने इन सब जन्मोंका अन्तर्भाव तीन जन्मोंमें ही मान लिया है। उनके मतमें शोणितमें जन्म प्रथम जन्म है। शुक्र-जन्मका इसीमें अन्तर्भाव है। नौ मासके अनन्तर गर्भाशयसे भूमिष्ठ होना द्वितीय जन्म है। अग्निके द्वारा परलोकमें प्रतिष्ठा तृतीय जन्म है।

संस्कारोंके द्वारा जायमान जन्मका तृतीय जन्ममें ही अन्तर्भाव है। कारण कि पाँच जन्मोंमें प्रथम शुक्र-जन्म द्वितीय जन्मका साधन है। संस्कार-जन्म भी पञ्चम (परलोक) जन्मका साधन है; अतः तीन ही जन्म हैं।

परमागतिकी प्राप्ति आवश्यकतम

कोई माने अथवा न माने, जाने अथवा न जाने—संसार, परलोक, नित्य आत्मा, कर्मफल और कर्मोंके द्वारा गतियाँ एवं तत्तत् लोकमें जीवात्माका निवास अवश्य है। किसीके न मानने मात्रसे कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता। अतः मनुष्यके लिये सतत जागरूक रहकर विहित कर्मोंके आचरण, निषिद्ध कर्मोंके त्याग, इन्द्रियनिग्रह और निष्कामभावसे ईश्वर-उपासनाके द्वारा परमागति (मुक्ति) को प्राप्त करना परम आवश्यक है। इसके अभावमें देवस्वर्गोंको प्राप्त करना भी उत्तम है, पितृस्वर्गोंकी प्राप्ति मध्यम है। दुर्गति (नारकी गति) प्राप्त करना अधम है। केवल योनि-गतिमें परिभ्रमण करना पशु-पक्षियोंके सदृश ही है। मानवके लिये वह गति अनुचित है। मानवकी विशेषता परमागति प्राप्त करनेमें ही है।

मानव-जीवनका लक्ष्य—भगवत्प्राप्ति

(लेखक—आचार्य श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

मानव-जीवनकी उपादेयता

इस विषय-विषसे परिपूरित, सुख-दुःख, राग-द्वेष, ाम-क्रोध आदि द्वन्द्वोंसे दूषित अति भयानक, जन्म-रणरूपी गम्भीर संसारसागरमें कर्मवश निमग्न प्राणियों-ो भवसागरसे उद्धार करनेके हेतु परम दयालु श्रद्धेय गत्पिता परमात्मा भगवान् श्रीवासुदेवजीने मानुष-कलेवर-ी नौका निर्मित करके ही संतोष व्यक्त किया है—

'तासां मे पौरुषी प्रिया' (भा० रा०)

प्रभुने जितने चतुष्पदादि शरीर रचे हैं, उनमेंसे र्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका धक मनुष्य-देह ही सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि चौरासी ख योनियोंमें भटकता हुआ जीव कदाचित् पूर्वजन्ममें चेत पुण्योंके प्रतापसे भगवत्कृपाद्वारा मनुष्य-जन्म ा है और यही मनुष्य-योनि शुभ-अशुभ कर्मो-ा स्वर्ग-नरक एवं अपवर्ग देनेवाली है। इतना ही ीं, अपि तु निष्काम कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे चित्त-द्धद्वारा भगवत्प्रेमरूपा भक्तिके अङ्कुरित होनेपर वत्साक्षात्कार करानेवाली है। अतः इस दुर्लभ मानुषी को पाकर ही मनुष्य भगवत्प्राप्तिके साधनोंको भलीभाँति पाता है; इसीलिये मनुष्य-जन्म भगवत्प्रिय है। पर ्य यदि प्रेमसे भगवान्का सेवन करे तो भगवत्प्रिय है, अन्यथा नहीं। 'ऐसी श्रीमन्मुकुन्द-सेवोपयोगी पाकर भी जो भगवच्चरणोंका सेवन नहीं करता, उसे के लोभी पशुके समान गृहरूपी अन्धकूपमें पड़ा जानो'—

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं
कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ।
पादारविन्दं न भजत्यसन्मति-
र्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः॥
(श्रीमद्भागवत १० । ५१ । ४७)

भगवत्साक्षात्कारमें मानव-देहका महत्त्व

अनोखा रत्न पाकर यदि उसको मिट्टीमें गाड़ दिया तो कुछ शोभा नहीं देता है। यदि उसीको किसी आभूषणमें जड़ा दिया जाय तो वह सुशोभित होता है इसी प्रकार इस मनुष्यशरीरको क्षुद्र कर्मोंमें लगानेसे कुछ शोभा नहीं। यदि भगवत्सेवनमें लगा दिया जाय तो शोभाकी सीमा नहीं। भगवान् ऋषभदेवजीने अपने पुत्रोंसे कहा है—

नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्॥
(श्रीमद्भागवत ५ । ५ । १)

अर्थात् यह देह क्षुद्र कर्मोंके लिये नहीं है; किंतु तपद्वारा अन्तःकरणकी शुद्धिसे अनन्त ब्रह्मसुखका अनुभव करनेके लिये है। विषय-सुख तो कूकर-शूकर-गर्दभादि योनियोंमें भी उपलब्ध हो सकते हैं।

यह मानवीय शरीर परमेश्वरकी देन है कि जिससे नित्यनिरतिशय आनन्दका अनुभव होता है तथा जो भगवान्से भेट करनेके लिये उपयुक्त है। जैसे कि पूर्वकालमें बहुत-से भक्तोंको भगवान्के साक्षात् दर्शन हुए थे। ऐसी सोपानभूत मानव-योनिको पाकर जो प्राणी अपना कल्याण नहीं कर पाता, उससे बढ़कर महापापी एवं आत्मघाती कौन हो सकता है?

योनेः सहस्राणि बहूनि गत्वा
दुःखेन लब्ध्वापि हि मानुषत्वम्।
सुखावहं ये न भजन्ति विष्णुं
ते वै मनुष्यात्मनि शत्रुभूताः॥
सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः॥
(पुराण)

यद्यपि यह मानुष-कलेवर सुदुर्लभ है, तथापि क्षण-भङ्गुर है। इसका विश्वास कभी नहीं किया जा सकता है। अतः अनित्य वस्तुसे नित्य वस्तुको प्राप्त करना ही परम लाभ है। मनुष्य-शरीर वह वाहन है कि जिसका सहारा लेकर मनुष्य अपने स्वरूपका साक्षात्कार कर सकता है।

मनुष्य-देह कर्मयोनि है और मनुष्यलोक कर्म-क्षेत्र । शेष देवयोनि, पशु-तिर्यग्योनियाँ भोगयोनि हैं । भोगयोनिमें देव, पशु आदि पुण्य-पापका फल भोगते हैं । अहं-ममाभिमानयुक्त कर्मोंसे ही जीव पुनर्जन्म पाता है । जन्म-मरण देहके धर्म, भूख-प्यास प्राणके धर्म और सुख-दुःख मनके धर्म हैं, आत्माके नहीं; क्योंकि आत्मा गुणातीत है । वह अहंकारसे ही बन्धन पाता है और अहंकार किये हुए पुण्य-पापोंद्वारा ही स्वर्गीय-नारकीय योनियोंको प्राप्त होता है ।

स्वर्गीय एवं नारकीय कलेवरसे भागवत-धर्मका सम्पादन असम्भव है । श्रीमन्मुकुन्द भगवान्की सेवाके उपयोगी मानवशरीरसे ही तथा श्रवण-कीर्तनादि भागवत-धर्मोंके सेवनसे ही भगवद्दर्शन सम्भव है । ऐसे शरीरको पाकर सर्वहितैषी परमोपकारी हरिसे विमुख होना ही जन्म-मृत्युरूपी संसारका कारण है । अतः जबतक शरीर हृष्ट-पुष्ट है और इन्द्रियाँ भी अपने-अपने व्यापारोंमें समर्थ हैं, तबतक भागवत-धर्मके सेवनमें प्रयत्न करे ।

इन्हीं बातोंको ध्यानमें रखकर भक्तप्रवर महात्मा प्रह्लादजीने असुर-बालकोंको सम्बोधित करके कहा था कि 'कुमार-अवस्थासे ही भगवद्-भजन करना चाहिये; क्योंकि मानव-जीवन चिरस्थायी नहीं है'—

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥
(श्रीमद्भा० ७ । ६ । १)

अहं-मम अभिमानसे युक्त मनसे किये हुए कर्मोंसे ही वासनाश्रयी जीव पुनर्जन्म पाता है और अन्तकालमें जैसी मति वैसी ही गति होती है—

'अन्ते या मतिः सा गतिः ।'

जैसे कि भरत राजाने मरते समय मृगशावकपर आसक्त होनेसे मृगशरीरको पाया तथा आखेट-रत राजकुमारपर आसक्त हुए मुनिको ध्रुव राजकुमारका जन्म मिला । ऐसे अनेक उदाहरण हैं । अतः मन ही पुनर्जन्मका कारण है—

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।'

'अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम् ।'
(श्रीमद्भागवत ४ । २९ । ७९)

'अतः कर्मबन्धनसे छूटनेके लिये सर्वात्मना हरिका भजन करो ।'

भगवान्ने भी गीताजीमें अर्जुनसे कहा है—

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥'
(७ । ३३)

'इस अनित्य और सुखरहित लोकको पाकर मुझको भजो ।'

इन वाक्योंसे सिद्ध है कि 'सभी अनर्थोंको दूर कर परम पुरुषार्थ देनेवाली भगवद्भक्ति ही सर्वोपरि उपादेय उपाय है'—

'अनर्थोपशमं साक्षाद् भक्तियोगमधोक्षजे ।'
(श्रीमद्भागवत १ । ७ । ६)

वह भक्ति भी भगवद्भक्तोंके समागमरूपी मेघोंकी वर्षासे अङ्कुरित होकर फलती-फूलती है और कुसङ्गरूपी घामसे शुष्कताको प्राप्त हो जाती है ।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥
(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड ६१)

इस कर्मभूमिमें मनुष्य कर्मयोनिवश विविध कर्मोंकी रचना कर कर्मश्रृङ्खलासे बँध जाता है । फिर उससे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है । यदि किये हुए कर्म भगवान्के चरणकमलोंमें समर्पित कर दिये जायँ तो उनकी कर्मसंज्ञा समाप्त होकर भागवत-धर्म-संज्ञा हो जाती है । वे भागवत-धर्म बन्धनकारक न होकर मुक्तिदायक हो जाते हैं और उनका फल भगवत्प्रेममें परिवर्तित हो जाता है ।

परम दयालु भगवान्ने जीवोंके दुःखोंको दूर करनेके लिये उन्हें सब कर्म अपने समर्पण करनेकी आज्ञा देकर शुभाशुभ कर्मसे मुक्त करनेका वचन दिया है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

गवान्‌का अनन्य चिन्तन करनेपर भगवान् उसके नका भार स्वयं वहन करते हैं—

ानन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
षां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ९ । २२)

भगवत्स्मरणके अभ्याससे चित्तके स्वभावपर विजय है। स्मरणाभ्यासी पुरुषको अन्त-कालमें स्वतः ही स्मरण हो जाता है ।

भगवान्‌की स्मृति सारी विपत्तियोंका नाश कर देती है—

'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ।'
(श्रीमद्भागवत ८ । १० । ५५)

सम्पत्तिमें या विपत्तिमें हरिका स्मरण करनेसे ही तिमकादि तापत्रयोंसे छुटकारा मिल जाता है । न्‌को भूल जाना ही पुनर्जन्मका कारण है । द्वन्दन, भगवच्चरणोदक-पानादि अनेक साधनोंसे म नहीं प्राप्त होता ।

'कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ।'
'विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥'
'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥'

इत्यादि वाक्योंसे भगवद्भक्तिद्वारा प्राप्य भगवद्धाममें प्राप्त हुए प्राणियोंकी संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होती, यह सिद्ध है ।

'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।'

—इस गीता-वाक्यने भी इसकी सम्पुष्टि कर दी है। अतः अनित्य सुखोंसे मनको हटाकर उसे नित्य निरतिशय सुखस्वरूप श्रीगोपालजीके चरण-कमलोंमें लगानेके लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे ।
सुनु मन कहौं पुकारि तो सौं हौं, भज, गोपालहिं मेरे ॥
या संसार बिषय-बिष-सागर रहत सदा सब घेरे ।
सूर स्याम बिनु अंतकाल में कोउ न आवत नेरे ॥

जीवन्मुक्ति, विदेहमुक्ति, कैवल्य और पूर्णत्व

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय ० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्० ए०, डी० लिट्)

(१)

जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति

मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य यदि देहावस्थामें ही ब्ध होता है और वह उपलब्धि यदि आभासमात्र नहीं तो उस अवस्थाको 'जीवन्मुक्ति' कहा जाता है। विदेह- देह-त्यागके बाद प्राप्त हो सकती है, किंतु जीवन्मुक्ति देहमें अवस्थान करते समय ही किसी भाग्यवान्‌के पमें घटती है। प्रचलित ज्ञानमार्गकी दृष्टिके अनुसार ज्ञानभूमिमें पञ्चम, षष्ठ और सप्तम—ये तीन न्मुक्तिकी भूमि कहलाती हैं। पञ्चम भूमिके ज्ञानीको ब्रह्मविद्' कहते हैं, षष्ठ भूमिमें ज्ञानीका नाम 'ब्रह्मविद्- यान्' तथा सप्तम भूमिके ज्ञानीका नाम 'ब्रह्मविद्वरिष्ठ' इन तीनोंमें परस्पर भेद है। चतुर्थ भूमिमें अपरोक्ष ज्ञानका उदय होता है; परंतु अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान होते ही वन्मुक्ति हो ही जायगी, यह निश्चय नहीं है। अपरोक्ष नावस्थामें ब्रह्म-साक्षात्कार होता है । परंतु साक्षात्कार नेपर भी जबतक बुद्धि और देहके क्षेत्रमें उसका प्रभाव हीं पड़ता, तबतक जीवन्मुक्ति सम्भव नहीं होती । बुद्धि- क्षेत्रमें इस ज्ञानका प्रभाव पड़नेके लिये 'चित्तशुद्धि' आवश्यक है तथा भौतिक देहके क्षेत्रमें इस ज्ञानके प्रति- बिम्बित होनेके लिये 'भूतशुद्धि' और 'देहशुद्धि' आवश्यक हैं । भूतशुद्धि और देहशुद्धि हुए बिना देहावस्थामें और मनोमय स्थितिमें ब्रह्मज्ञानका अपरोक्ष अनुभवात्मक विकास नहीं होता। जो साक्षात्कार चतुर्थ भूमिमें होता है वह स्वरूपसिद्ध ब्रह्मज्ञान है । जीवनमें जबतक वह प्रतिफलित नहीं होता, तबतक जीवन्मुक्ति अवस्थाका उदय कैसे होगा ? आकाशमें सूर्यका उदय होनेपर भी जबतक बादल आदि हट नहीं जाते, तबतक हम साक्षात् रूपमें सूर्यको नहीं देख सकते । इसी प्रकार जीवन्मुक्त अवस्थामें देहमय और मनोमय अनुभवमें ब्रह्मानुभव अनुस्यूत होना चाहिये । इसके लिये देह और मनकी शुद्धता आवश्यक है । वेदान्त-मार्गकी साधनामें साधारणतः दो मार्गोंका अनुसरण किया जाता है—एक है उपासना-मार्ग और दूसरा है विचार-मार्ग । उपासना-मार्गमें उपासनाके द्वारा भूतशुद्धि और चित्तशुद्धि सम्यक्‌रूपसे सम्पन्न होनेपर

अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानके उदयके साथ-साथ ही चतुर्थ भूमिसे पञ्चम भूमिमें प्रवेश होता है, अर्थात् अपरोक्ष ज्ञानके उदयके साथ-साथ जीवन्मुक्तिका आविर्भाव होता है। जीवन्मुक्तिके आविर्भावके बाद वह क्रमशः दृढ़ता प्राप्त करता है और पञ्चमसे षष्ठ और सप्तमतक प्रगति होती है। वेदान्तकी दृष्टिसे अपरोक्ष ज्ञानके साथ-साथ जीव और जगत्‌की सत्ता बाधित हो जाती है, परंतु बाधित होनेपर भी वह अनुवृत्त रहती है तथा इसी कारण व्यवहार चलता है; किंतु जगत्‌के स्वरूप-बोधमें क्रमशः तारतम्य हो जाता है। पञ्चम भूमिमें जगत् स्वप्नवत् जान पड़ता है। अज्ञानी जैसे जगत्‌को सत्य-रूपमें अनुभव करता है, यहाँ वह भाव नहीं रहता। परंतु न रहनेपर भी व्यवहार चल सकता है। षष्ठ भूमिमें यह अत्यन्त प्रगाढ़ हो जाता है, जगत् आभासमात्र रह जाता है। इस क्षेत्रमें ज्ञान और भी तीव्र होता है। सप्तम भूमिमें जगत् एक प्रकारसे अनुभवमें ही नहीं आता। उस समय व्यवहार अत्यन्त असम्भव होता है। उसके बाद ही देहान्त होता है। तब ब्रह्मके साथ तादात्म्य प्राप्त होता है। पञ्चम और षष्ठ भूमिको तुरीय अवस्था कह सकते हैं। सप्तम भूमिको तुरीयातीत कहना सुसङ्गत है। पञ्चम और षष्ठ भूमिमें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति विद्यमान रहते हैं। परंतु वे तुरीयद्वारा अनुविद्ध होते हैं। सप्तम भूमिमें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिको पृथक् रूपमें पकड़ना कठिन होता है। इसी कारण उसका तुरीयातीत कहकर वर्णन किया जाता है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिके रहते तुरीय कहनेमें कोई सार्थकता नहीं। अब प्रश्न यह होता है कि चतुर्थ भूमिमें ब्रह्म-साक्षात्कार अपरोक्ष रूपमें होनेपर भी जीवन्मुक्ति अवश्यम्भावी क्यों नहीं होती? इस सम्बन्धमें यही कहना है कि अपरोक्ष रूपमें ब्रह्मदर्शन होते ही जीवन्मुक्ति हो ही जायगी, यह नहीं कहा जा सकता। प्रकृत विदेहमुक्ति तभी हो जाती है। मृत्युके बाद जो विदेहमुक्ति होती है, वह कैवल्यका ही दूसरा नाम है। चतुर्थके बाद जो विदेहमुक्ति होती है, वह अपरोक्ष ज्ञानके साथ-साथ ही होती है; परंतु देहाभिमान बने रहनेके कारण देहाभिमानी पुरुष उसे पकड़ नहीं पाता। इस कारण देहाभिमान रहनेकी दशामें अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानकी सत्ताका होना आवश्यक है। इसी कारण तान्त्रिक आचार्य कहते हैं कि सद्गुरुकी कृपासे पौरुष अज्ञानके निवृत्त होनेपर अपरोक्ष आत्मसाक्षात्कार होता है; किंतु बुद्धि निर्मल हुए बिना यह अपरोक्ष ज्ञानका प्रतिभास बुद्धिमें आरूढ़ नहीं होता। बुद्धिमें आरूढ़ न होनेतक जीवन्मुक्ति कैसे हो सकेगी? इसके लिये उपासना, योग, तपस्या आदिकी आवश्यकता है। उपासना आदिके द्वारा बुद्धि निर्मल होने-पर गुरुकृपासे प्राप्त अपरोक्ष ज्ञान उसमें झलकता है। तब 'शिवोऽहम्' के रूपमें अपनेको अनुभव कर सकते हैं। यहाँसे ही जीवन्मुक्तिका आरम्भ होता है। प्रारब्ध कर्मके अन्तमें देहान्त होनेपर पौरुष ज्ञानका आविर्भाव होता है और साक्षात् शिवत्वकी प्राप्ति होती है।

जीवन्मुक्त अवस्थामें केवल प्रारब्ध कर्म रहता है। वह प्रारब्ध जब भोगके द्वारा समाप्त हो जाता है, तब कर्मके अतीत परामुक्तिकी प्राप्ति होती है। परंतु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि नरदेहसे मुक्त होनेके साथ-साथ ही पूर्णत्वमें प्रतिष्ठा हो जाती है। यदि किसीके ऊर्ध्वलोकमें भोगके लिये उपयोगी कर्म अवशिष्ट रहते हैं तो मृत्युके बाद ऊर्ध्वलोकमें जाकर भोगके द्वारा उन अवशिष्ट कर्मोंका क्षय करना पड़ता है। इन सब लोगोंके नरलोकमें पुनः आनेकी सम्भावना नहीं होती। परंतु नरदेहका त्याग करनेके साथ-साथ ही पूर्णत्वमें प्रवेश हो जायगा, यह कहा नहीं जा सकता; क्योंकि अभुक्त अथ च भोग्य भोगको समाप्त करने-पर ही पराशान्ति प्राप्त होती है।

ऊर्ध्वस्तरमें सभी प्रभुभाव लेकर जीवन्मुक्त होंगे, यह कहा नहीं जाता। प्रकृतिके अनुसार कोई-कोई दास्यभावमें भी रह सकते हैं। जो भक्तिप्रधान हैं, उनको दास्यभाव और जो ज्ञानप्रधान हैं, उनको प्रभुभाव प्राप्त होता है। परंतु गुरुप्रदत्त दीक्षाकी प्रकृतिके ऊपर यह विचित्रता निर्भर करती है। इस कारण दास्य और प्रभुभावके अतिरिक्त प्रकृतिके अनुसार कोई-कोई ब्रह्मज्योतिमें भी प्रविष्ट हो सकते हैं। ये सब भोगके अन्तर्गत हैं। भोगके समाप्त होनेपर ही मोक्ष होता है।

हमने जो जीवन्मुक्तकी अवस्थाकी बात कही है, यह एक दृष्टिकोण है। आगमकी दृष्टिसे जीवन्मुक्तिका अनुभव ठीक इस प्रकार नहीं होता। इस दृष्टिके अनुसार जीवन्मुक्त अवस्थामें समस्त विश्वको अपने विभवके रूपमें अनुभव किया जाता है। यह आत्मशक्तिका स्फुरण है। जीवन्मुक्त अवस्थामें आत्मा शिवरूपमें प्रकाशित होता है; क्योंकि विश्व शिव-शक्तिका प्रकाशरूप है तथा जीवन्मुक्त पुरुष शिवस्वरूप है, इसलिये यह विश्व उसके सामने अपनी शक्तिके खेलके रूपमें अनुभूत होता है। यह मिथ्या नहीं है और अनिर्वचनीय

भी नहीं है। यह पूर्णरूपमें सत्य है; परंतु मुक्त आत्माकी शक्ति-सापेक्ष है। आगमके मतसे मुक्त पुरुषको सर्वत्र शिवरूपका भान होता है। अतएव उसकी पञ्चेन्द्रियके द्वारा अपने-अपने विषयोंका ग्रहण, तत्तत् उपचारद्वारा रूपभोग आत्माके द्वारा परमात्माकी सेवाके रूपमें ही गृहीत होता है। इसी कारण भगवान् शंकराचार्य स्वरचित 'मानस पूजा'में—'पूजा ते विषयोपभोगरचना' कहकर इसका वर्णन करते हैं।

साधारण ज्ञानीकी दृष्टिमें परामुक्ति निर्गुण ब्रह्मस्वरूपमें प्रतिष्ठा है; किंतु आगमकी दृष्टिसे परामुक्ति त्रिविध कैवल्यके (प्रकृति, माया और महामायारूप त्रिविध अचित् सत्तासे पृथक् भाव) अतीत निष्कल परम शिवकी अवस्था है। विश्वभेद करनेके बाद तथा सब प्रकारसे कैवल्यको अतिक्रम करनेके बाद उन्मनी शक्तिके प्रभावसे निष्कल पदमें प्रवेश होता है। यही परम शिवकी अवस्था है। उसके बाद उन्मनी शक्ति निवृत्त हो जाती है। यह शिव-शक्तिके सामरस्यकी अवस्था है। इस अवस्थामें सब प्रकारका सङ्कोच कट जाता है तथा स्वातन्त्र्य शक्तिका उन्मेष होता है। तब शिवभाव और शक्तिभावकी अपूर्णता परिपूर्ण स्वरूपमें आत्मप्रकाश करती है। अर्थात् शिवभावमें पूर्णबोध होनेपर भी स्वातन्त्र्यका अभाव ही अपूर्णता है। शक्तिभावमें स्वातन्त्र्य रहनेपर भी बोधका अभाव ही अपूर्णता है। शिव-शक्तिका सामरस्य सम्पन्न होनेपर यह अपूर्णता हट जाती है और परिपूर्णभावका उदय होता है।

जीवन्मुक्त पुरुष ही 'जगद्गुरु' पद वाच्य है। उनके द्वारा ही ज्ञानतन्तुका संरक्षण होता है। इस विश्वका सब प्रकारका अधिकार-कार्य जीवन्मुक्त पुरुषके द्वारा ही सम्पन्न होता है। इन लोगोंको 'सिद्धपुरुष' कहते हैं। जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार, सभी सिद्धपुरुषोंके द्वारा ही निर्वाहित होता है। परंतु अनुग्रह और तिरोभाव साक्षात् परमेश्वरके ऊपर निर्भर करता है। परमेश्वर स्वयं अधिकारी पुरुषका रूप धारण करके जगत्के व्यापारका सम्पादन करते हैं। पहले वे अनाश्रित शिवके रूपमें एक, ईश्वर और सदाशिवके रूपमें दो, तथा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूपमें तीन मूर्ति बनते हैं। इसका विस्तृत विवरण यहाँ आवश्यक नहीं है।

जीवन्मुक्त पुरुष कर्तृत्वहीन होनेके कारण कर्मातीत होते हैं। आगमकी दृष्टिसे जीवन्मुक्त पुरुष कर्तृत्वसम्पन्न होनेके कारण सब कार्योंमें भगवान्‌के प्रतिनिधि होते हैं। वास्तविक जीवन्मुक्त पुरुष मायिक देहसम्पन्न नहीं होते। वे बैन्दव अथवा महामाया-सम्भूत देहसम्पन्न होते हैं। जीवन्‌ अवस्थाके बाद परामुक्ति अवस्थामें जब भौतिक, प्रा मायिक, महामायिक देह समाप्त हो जाते हैं, तब शाक्त अथवा चिन्मय देहमें अवस्थिति होती है।

आगमवेत्ता कहते हैं कि चित्-शक्तिरूप बल प्राप्त होनेपर योगी समस्त विश्वको आत्मसात् करनेमें समर्थ होता है। चित्-शक्तिके प्रभावसे देह-प्राण आदि आवरण हट जाते हैं और अनावृत स्वरूप प्रकाशित होता है। जब यह अनावृत आत्मस्वरूप खुल जाता है, तब समस्त विश्व ही अपने स्वरूपके साथ अभिन्न रूपमें प्रकाशित हो उठता है। अग्नि प्रज्वलित होनेपर जैसे दाह्य पदार्थ दग्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार वह प्रकाशित होनेपर समस्त विषय-पाशको ध्वस्त कर देता है। विश्वको अपने साथ अभिन्न रूपमें देखनेका नाम ही चिदानन्दकी प्राप्ति है। इस अवस्थाके उदय होनेपर व्युत्थान अवस्थामें भी देह आदिकी प्रतीति होनेपर भी तथा व्यवहार-जगत्‌में अवस्थान करनेपर भी चैतन्यके साथ अपनी एकात्मताका बोध अक्षुण्ण बना रहता है। चिद्भावके साथ तादात्म्य कभी भङ्ग नहीं होता। दृष्टान्तरूपमें कमलमें स्थिति को ले सकते हैं। तदनुसार समावेश अवस्थाकी स्थिति कर्णिका या बिन्दुमें स्थितिके अनुरूप तथा व्युत्थान अवस्थाकी स्थिति कमलके दलमें स्थितिके अनुरूप होती है। दोनों ही क्षेत्रोंमें स्थिति कमलमें ही होती है, कमलके बाहर नहीं होती।

जीवन्मुक्तिके सम्बन्धमें विविध सम्प्रदायोंके दृष्टिकोणसे बहुत-सी बातें कही गयी हैं, परंतु यहाँ उनका उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं अनुभूत हो रही है। रसेश्वर-सम्प्रदाय तथा अन्यान्य सिद्ध सम्प्रदायवाले कहते हैं कि वास्तविक 'जीवन्मुक्ति'में देहपात नहीं होता। उनके मतसे जीवन्मुक्ति शब्दका अर्थ ही है—'दैहिक अमरता'। वे कहते हैं कि मृत्युपर विजय प्राप्त किये बिना जीवन्मुक्ति कैसे हो सकती है? देहसिद्धि हठयोगकी क्रियासे हो सकती है। वह कुण्डलिनीके जागरणके बाद मन्त्रशक्तिकी सहायतासे हो सकती है तथा अन्य उपायोंसे भी हो सकती है। इस सम्बन्धमें दो दृष्टिकोण हैं। उनमें एक है—भौतिक प्राकृत देहको शुद्ध करके 'सिद्धदेह'के रूपमें परिणत करना। गोरक्ष-सम्प्रदायमें 'काया-साधन' नामसे यह साधन-क्रिया प्रचलित है। दूसरे मतसे भौतिक देहके नाश हु

कृपासे जो महामायासे उद्भूत 'बैन्दव देह' प्राप्त होता है, वह बैन्दव देह ही सिद्धदेह है। भौतिक-देहके कालग्रस्त हो जानेपर भी बैन्दव देह कालपर विजय प्राप्त करता है। किसी-किसी मतसे सिद्धदेह प्राप्त हो जानेके बाद, अर्थात् मृत्युञ्जयके बाद 'प्रणवदेह' प्राप्त करना ही 'परामुक्ति' है। सिद्धदेह जीवन्मुक्तका होता है। सिद्धदेह कालके अधीन नहीं होता; परंतु सिद्धदेहके ऊपर भी देह है—वही 'प्रणव-देह' है। इस दृष्टिसे जीवन्मुक्तके प्रारब्ध कर्म रहनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

जीवन्मुक्तिके सम्बन्धमें प्राचीन कालमें मनीषीगा विभिन्न दृष्टिकोणसे विचार किया था। वैष्णवमतसे जीवन्मु को स्वीकार ही नहीं किया जाता। किसी-किसी सि मतसे विदेहमुक्तिको माना ही नहीं जाता। साधारण जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति दोनों ही अनेक सम्प्रदायोंके द्वा स्वीकृत है। बौद्ध अर्थात् प्राचीन बौद्ध लोग 'अर्हत' शब्द द्वारा इसी जीवन्मुक्तिका ही अस्तित्व स्वीकार करते हैं। व कोई इसको 'सदेह निर्वाण' भी कहा करते हैं। इस वि और अधिक कहना यहाँ आवश्यक नहीं है।

(२)

कैवल्यके विभिन्न अर्थ

'कैवल्य' शब्दका अर्थ यह है कि आत्मा अनात्माके संस्पर्शसे मुक्त होकर केवल अपने-आपमें अवस्थित हो जाय। सांख्य तथा पातञ्जल योगदर्शनमें 'कैवल्य' शब्दका प्रयोग हुआ है। पाशुपत योगीगण 'महैश्वर्य'के प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें 'कैवल्य' शब्दकी व्याख्या करते हैं। श्रीरामानुजादि भक्ति-सम्प्रदायवाले 'भगवत्कैङ्कर्य' आदिके प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें कैवल्य शब्दकी व्याख्या करते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य स्थलोंमें भी समझना चाहिये। सांख्य और पातञ्जलके मतसे कैवल्य शब्दका अर्थ यह है कि आत्मा त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे अपनेको पृथक् करके अपने चित्-स्वरूपमें प्रवेश करता है। कैवल्य-प्राप्तिका उपाय विवेकज्ञान है। पातञ्जल-सिद्धान्त यह है कि आत्मा एकाग्रभूमिका आश्रय कर प्रज्ञा लाभ करके, प्रज्ञाकी चरम अवस्थामें अविवेकको दूर करनेके लिये अचिदात्मक सत्त्वगुणसे चिदात्मक पुरुषको क्रमशः पृथक् करके अपने स्वरूपमें स्थित होता है। सम्प्रज्ञात समाधिकी अवस्थामें प्रज्ञाका उदय होता है तथा क्रम-विकास होता है। इस क्रम-विकासके फलसे समाधिका आलम्बन क्रमशः स्थूलसे सूक्ष्ममें, अवयवीसे अवयवमें स्थित होता है। पश्चात् ग्राह्य विषयसे अतिक्रान्त होनेपर वितर्क और विचारभूमिसे पार होकर ग्रहणात्मक करणको अवलम्बन

उपलब्ध ज्ञान ऐश्वर्य-व्यञ्जक होनेपर भी विशुद्ध आत्म नहीं होता; क्योंकि अनात्मसे आत्मभावको पृथक् बिना विशुद्ध आत्मसत्ताका साक्षात्कार नहीं होता। कारण आत्मसाक्षात्कारके लिये योगक्रिया आवश्यक पूर्ण 'विवेकख्याति' हुए बिना यह सम्भव नहीं है। वि ख्यातिके फलस्वरूप पुरुषका स्वरूपदर्शन होता है। तब चिदालोकमें अपरिणामी पुरुष और परिणामी गुण देर आते हैं। तभी 'गुणवितृष्णा' रूप 'परवैराग्य'का होता है। उसके बाद विवेक पूर्ण होनेपर आत्मा अन पृथक् अपने चित्स्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है। वस्तुतः अ समाधिके बाद एकाग्रभूमिसे अतीत निरुद्ध-भावका आ होता है। उसके बाद निरोध भी नहीं रहता। एकाग्र बाद निरोध चित्तका ही प्रगति रूप है। उसके बाद निरे संस्कार मात्र रह जाता है तथा उसके साथ ही चित्त हो जाता है। निरोधके बाद निरोधका भी निरोध हो ज कह सकते हैं कि चित्स्वरूप पुरुषकी अपने स्वरूपमें हो गयी। यही 'कैवल्य' है। सांख्यके मतसे या पात मतसे पुरुष त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे पृथक् होकर स्वरूपमें स्थित होता है। पुरुष द्रष्टा और अपरिणाम प्रकृति परिणामशीला है।

परंतु मायासे कैवल्य हो जानेपर ही कैवल्यका चरम उत्कर्ष नहीं हो जाता; क्योंकि मायाके परे शुद्ध माया या महामाया विद्यमान है । सिद्धान्तशैवके मतसे यह महामाया ही बिन्दु या कुण्डलिनीके नामसे परिचित है । यह शुद्ध होनेपर भी अचित् तथा परिणामशील है । सारा महामायाका जगत् इस बिन्दुसे ही रचित है । आत्मा जब महामायासे मुक्त होता है तब वह श्रेष्ठ कैवल्य प्राप्त करता है । यही विशुद्ध कैवल्य है । इसकी ही विशिष्टतम अवस्थाको 'निर्वाण', 'परिनिर्वाण' या 'महानिर्वाण' कहते हैं । किं बहुना, इसकी भी परावस्था है । वही आत्माकी शिवावस्था है । अचित् सत्तासे स्वरूप शिवभावके साथ नित्य सांश्लिष्ट है । चित्-शक्तिका पूर्ण विकास होनेपर त्रिविध कैवल्य भेद पूर्ण हो जाता है तब आत्मा ही शिवरूपमें आत्मप्रकाश करता है । ज आत्मा शिवरूपमें प्रकाशमान होता है तो उन्मनी शक्ति निवृत्त हो जाती है । तब शिव-शक्ति अभिन्न होकर प्रकाशि होती है । यही परशिव और परासंविद्की स्वरूपस्थिति है यह अवस्था 'समना' और 'उन्मना' शक्तिके परे है तथ शिव और शक्तिके सामरस्यकी स्थिति है । यह आत्माक निष्कल स्थिति है । कोई-कोई आचार्य इस स्थितिको ह कैवल्य कहते हैं । इसमें कोई आपत्ति नहीं है; क्योंकि यह पूर्ण स्वरूप है ।

(३)

आगमोंके अनुसार पूर्णत्वकी प्राप्ति

'पूर्णत्व'की प्राप्ति मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है; परंतु 'पूर्णत्व' शब्दका तात्पर्य क्या है—इस सम्बन्धमें दृष्टिभेदके कारण मतभेद है । वर्तमान निबन्धमें हम शैव और शाक्तदृष्टिके अनुसार आलोचना करेंगे । पाञ्चरात्र आगम तथा अन्यान्य वैष्णवशास्त्रोंकी दृष्टिसे कुछ नहीं कहा जायगा; क्योंकि इसकी पृथक् धारा है । एक धाराके साथ अन्य धाराका सम्मिश्रण ठीक नहीं है । 'पूर्णत्व' शब्दका अभिप्राय क्या है, इसको समझनेके लिये शास्त्रोंके चरम सिद्धान्तको जानना आवश्यक है । सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही पूर्ण सत्य है, इस विषयमें किसीका मतभेद नहीं है । ब्रह्म प्रकाशस्वरूप और आनन्दस्वरूप है, अखण्ड सत्य है, इसमें कोई संदेह नहीं । परंतु उसमें स्वातन्त्र्य नामकी अचिन्त्य शक्ति नित्य विद्यमान है । यह महाशक्ति उसकी स्वरूपा-शक्ति है और उसके स्वरूपके साथ स्वरूप होकर भी स्वातन्त्र्यहीन होनेसे व्यवहार-क्षेत्रमें जडरूपमें परिगणित होने योग्य है । आगमके मतसे पूर्ण सत्ता अखण्ड और अद्वैत है । दृष्टिकी ओरसे देखनेपर इसमें अनन्त शक्तियाँ हैं । ये सब शक्तियाँ चरम स्थितिमें इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिमें पर्यवसित होती हैं । अतएव 'पूर्णत्व' शब्दसे आगमके अनुसार तीनों दृष्टिसे एक, अखण्ड एकताका बोध होता है । प्रथम दृष्टिसे एक, द्वितीय दृष्टिसे दो और तृतीय दृष्टिसे तीन । इसे सर्वदा स्मरण रखना चाहिये । तीन कहनेपर परब्रह्मकी बहिरङ्ग दृष्टि लक्षित होती है, जहाँ इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति त्रिकोण अथवा योनिरूपमें परिगृहीत होती है । इच्छा, ज्ञान और क्रिया समष्टिरूपमें ब्रह्मकी बहिरङ्ग शक्ति है । चित् और आनन्द, अर्थात् चित् शक्ति और ह्लादिनी शक्ति ब्रह्म या पूर्णका अन्तरङ्ग है । चित्का अभिप्राय है—

अन्तरङ्ग है और न बहिरङ्ग—बल्कि उसे दोनों अङ्गोंका अङ्गी कह सकते हैं। यहाँतक धारणा कर लेनेपर ब्रह्मके निगूढ़ स्वरूपके सम्बन्धमें स्पष्ट बोध हो सकता है।

इसके बाद कला, तत्त्व और भुवनरूपमें तीन क्रमिक अवस्थाएँ ब्रह्मके साथ संश्लिष्ट हैं। इसके पश्चात् विश्वकी सृष्टिका आदिस्फुरण महासृष्टिके रूपमें प्रकाशमान होता है। उसके बाद खण्ड-खण्ड पृथक् सृष्टि होती है और उसमें खण्ड कालका प्रभाव होता है। इसी प्रकार स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण आदिको लेकर समस्त विश्वकी तथा विश्वातीत निष्कल ब्रह्मकी सत्ता है। इन सबको लेकर ही परिपूर्ण ब्रह्म-सत्ता समझनी चाहिये। इसीका नाम 'पूर्णत्व' है। आगममें इसका 'परम शिव' अथवा 'परासंवित्'के नामसे वर्णन किया गया है। प्रत्येक आत्माकी प्रकृत—वास्तविक सत्ता यही है। इस स्थितिमें प्रतिष्ठित हुए बिना यह नहीं कहा जा सकता कि 'पूर्णत्व'की प्राप्ति हो गयी। इस अवस्थाकी प्राप्ति परमेश्वरके शक्तिपात या सद्गुरुकी कृपाके बिना असम्भव है। विवेकज्ञानके द्वारा एक अवस्था प्राप्त होती है। उसका 'कैवल्य'के नामसे वर्णन करते हैं। इस स्थितिमें अचित्से चित् व्यावृत होकर निज स्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है। योगके द्वारा एक और अवस्था प्राप्त होती है, उसे 'प्रकृत ऐश्वर्य'के नामसे वर्णन कर सकते हैं। विवेकके द्वारा प्रकृति और पुरुष पृथक् हो जाते हैं तथा पुरुष अपनेको प्रकृतिसे पृथक् समझता है। योगके द्वारा प्रकृति और पुरुष एक हो जाते हैं। यही अवस्था ईश्वरका स्वरूप है। एक मार्गसे कैवल्य और दूसरे मार्गसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है, यही नियम है। विवेकके मार्गमें प्रकृतिको क्रमशः त्याग करना पड़ता है; परंतु योगके मार्गमें प्रकृतिको अपना बनाना पड़ता है। यह अपना बना लेना तभी सम्भव है, जब प्राकृत शरीरसे अर्थात् भूत और चित्तसे मलिनता दूर हो जाय। सङ्ग और स्मय, अर्थात् आसक्ति और अहंकारके रूपमें यह मलिनता अस्मिता-समाधिके बाद भी वर्तमान रहती है। इसको दूर किये बिना प्रकृतिको अपना बना लेना सम्भव नहीं है। योगके मार्गसे ऐश्वर्य ही चरम प्राप्ति है। इसीका नाम 'इच्छाशक्तिका पूर्णत्व' है। इसके बाद इच्छाशक्तिको भी समर्पण करना पड़ता है। तब 'महा-इच्छा' जागरूक रहती है। अपनी कोई इच्छा पृथक्रूपमें नहीं रह जाती। यह इच्छा शून्य अवस्था नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत इच्छाके महा-इच्छामें समर्पित होनेकी अवस्था है। इस अवस्थामें बहिर्मुख दशामें महाकरुणा रहती है, इस कारण विश्वकल्याण सम्भव होता है तथा अन्तर्मुख दशामें अपने ही साथ अपनी अनन्त वैचित्र्यमयी प्रेमलीलाका अभिनय होता रहता है। ये अभिनय नित्य हैं। कैवल्य भी नित्य है, लीला भी नित्य है। दोनोंके ऊर्ध्वमें निष्कल पूर्णस्वरूप विराजमान रहता है।

आगमके पूर्णत्वसे इस अनन्त सत्तामें सत्तावान् होना तथा अनन्त लीलाका अभिनय करना अभिप्रेत है। केवल अभिनय करना ही नहीं, बल्कि अभिनय देखना भी। सो भी, केवल तटस्थरूपमें नहीं, सामाजिकके समान भावरञ्जित दृष्टिसे। इसके अतिरिक्त अभिनयके ऊर्ध्वमें लीलातीत सच्चिदानन्द तो हैं ही। लीलातीतमें अखण्ड आनन्द है और लीलामें भीतर अनन्त लीलाका अनन्त वैचित्र्य है। पूर्णत्व कहनेसे इन सबका बोध होता है। यह एक साथ विश्व और विश्वातीत है। पृथक् आस्वाद भी है, अखण्ड आस्वाद भी है और साथ-साथ आस्वादनके ऊर्ध्वमें तटस्थ प्रकाशन तो है ही।

प्रभुका दिव्य मधुर अनुराग प्राप्त करो

प्राकृत जगत्, प्रकृति, मायाके खोलो, छिन्न करो सब बन्ध।
अनुभव करो नित्य केवल परमात्मासे अभिन्न सम्बन्ध॥
पुनर्जन्म-परलोकगमन, सद्गति-दुर्गतिका कर दो त्याग।
प्राप्त करो सच्चिदानन्दमय प्रभुका दिव्य मधुर अनुराग॥

मृत्यु तथा पुनर्जन्म

[श्रीअरविन्दके कुछ पत्र]

(लेखक—श्रीअरविन्द)

मृत्यु और अमरत्व

मृत्यु इसलिये होती है; क्योंकि देहीने अबतक इतनी प्रगति नहीं की कि विना परिवर्तनकी आवश्यकताके एक ही शरीरमें प्रवृद्ध होता चला जाय और शरीर स्वयं भी काफी सचेतन नहीं हुआ है। यदि मन, प्राण तथा स्वयं शरीर अधिक अचेतन तथा अधिक सुनम्य हो तो मृत्युकी आवश्यकता नहीं रहेगी।

× × ×

विना अतिमानसीकरणके (अतिमानसद्वारा रूपान्तरके) शरीरका अमरत्व नहीं प्राप्त हो सकता। यौगिक शक्तिके भीतर क्षमता है तथा योगी २०० या ३०० या इससे भी अधिक वर्ष जी सकते हैं; किंतु अतिमानसके बिना अमरत्वके वास्तविक सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

भौतिक विज्ञानतक यह विश्वास करता है कि एक दिन मृत्युपर विजय प्राप्त होगी तथा इसके तर्क पूरे ठोस हैं। तो कोई कारण नहीं कि अतिमानस शक्ति इसे न कर सके।

× × ×

यदि आध्यात्मिक स्थितिको प्राप्तकर यह (मानव आत्मा) पार्थिव अभिव्यक्तिसे निकल जाना चाहे तो यह वैसा सचमुचमें कर सकता है—किंतु अज्ञान नहीं, ज्ञानके भीतर एक उच्चतर अभिव्यक्ति भी सम्भव है।

× × ×

पुनर्जन्म तथा व्यक्तित्व

पुनर्जन्मकी प्रक्रियामें आत्माको भयंकर कष्ट होता है, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं; लौकिक विश्वास, जब उनका कोई आधार रहता है तब भी बहुत कम ही प्रबुद्ध तथा बिलकुल सही होते हैं।

× × ×

देही अपने अनेक जन्मोंके क्रमसे गुजरनेके समय बहुत प्रकारके व्यक्तित्व धारण करता है तथा बहुत प्रकारकी अनुभूतियोंसे होकर गुजरता है; किंतु नियमतः वह उन सबोंको अन्य जीवनमें नहीं ले जाता। वह एक नया मन, प्राण और शरीर ग्रहण करता है। पुराने मन तथा प्राणकी क्षमताएँ, व्यस्तताएँ, रुचियाँ तथा स्वभावगत विलक्षणताएँ जितनी हदतक वे नये जन्मके लिये उपयोगी होती हैं, उतनीके अतिरिक्त नये मन तथा प्राणद्वारा ग्रहण नहीं की जातीं। किसीको एक जन्ममें काव्यात्मक भाव-व्यञ्जनाकी क्षमता हो सकती है; किंतु अगले जन्ममें उसे ऐसी क्षमता या कवितामें कोई रुचि नहीं भी हो सकती। दूसरी ओर, एक जन्ममें दबायी या चूकी या अपूर्णरूपसे प्रबुद्ध प्रवृत्तियाँ दूसरे जन्ममें बाहर प्रकट हो सकती हैं। अन्तरात्मा पुरानी अनुभूतियोंका सार-तत्त्व अपने साथ रखता है, किंतु अनुभूतियोंका अथवा व्यक्तित्वका स्वरूप वह नहीं रखता—सिवा वैसी अनुभूतियों या व्यक्तियोंके स्वरूपको जो अन्तरात्माकी प्रगतिके नये विकास-बिन्दुके लिये आवश्यक हैं।

× × ×

मृत्युके बाद अन्तरात्माकी यात्रा

मृत्युके साथ तत्काल ही अन्तरात्मा (भौतिक कोषके अतिरिक्त) मनोमय और प्राणमय कोषोंका परित्याग नहीं करती। कहा जाता है कि पृथ्वीके साथ सारा सम्बन्ध काटनेमें उसे ले-देकर तीन वर्ष लग जाते हैं—यद्यपि कई बार अधिक देरसे या अधिक शीघ्रतासे भी संक्रमण होता है।

× × ×

मृत्युके समय देही मस्तकसे होकर देहसे बाहर निकल जाता है। वह सूक्ष्म शरीरमें बाहर निकलता है तथा अल्प कालके लिये अस्तित्वके कई स्तरोंमें (लोकोंमें) जाता है, जबतक कि वह चंद अनुभूतियोंसे होकर गुजर न ले, जो उसके पृथ्वीपरके जीवनके परिणाम होती हैं। बादमें वह अन्तरात्माके लोकमें पहुँचता है, जहाँ वह एक प्रकारकी नींदमें विश्राम करता है, जबतक कि उसके लिये पृथ्वीपर एक नया जन्म प्रारम्भ करनेका समय न आ जाय। सामान्यतः ऐसा ही होता है—किंतु कुछ अन्तरात्माएँ अधिक प्रगति किये होती हैं और वे इस क्रमका अनुसरण नहीं करतीं।

मृत्यु तथा पुनर्जन्म

[श्रीअरविन्दके कुछ पत्र]

(लेखक—श्रीअरविन्द)

मृत्यु और अमरत्व

मृत्यु इसलिये होती है; क्योंकि देहीने अबतक इतनी प्रगति नहीं की कि बिना परिवर्तनकी आवश्यकताके एक ही शरीरमें प्रवृद्ध होता चला जाय और शरीर स्वयं भी काफी सचेतन नहीं हुआ है। यदि मन, प्राण तथा स्वयं शरीर अधिक अचेतन तथा अधिक सुनम्य हो तो मृत्युकी आवश्यकता नहीं रहेगी।

× × ×

बिना अतिमानसीकरणके (अतिमानसद्वारा रूपान्तरके) शरीरका अमरत्व नहीं प्राप्त हो सकता। यौगिक शक्तिके भीतर क्षमता है तथा योगी २०० या ३०० या इससे भी अधिक वर्ष जी सकते हैं; किंतु अतिमानसके बिना अमरत्वके वास्तविक सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

भौतिक विज्ञानतक यह विश्वास करता है कि एक दिन मृत्युपर विजय प्राप्त होगी तथा इसके तर्क पूरे ठोस हैं। तो कोई कारण नहीं कि अतिमानस शक्ति इसे न कर सके।

× × ×

यदि आध्यात्मिक स्थितिको प्राप्तकर यह (मानव आत्मा) पार्थिव अभिव्यक्तिसे निकल जाना चाहे तो यह वैसा सचमुचमें कर सकता है—किंतु अज्ञान नहीं, ज्ञानके भीतर एक उच्चतर अभिव्यक्ति भी सम्भव है।

× × ×

पुनर्जन्म तथा व्यक्तित्व

पुनर्जन्मकी प्रक्रियामें आत्माको भयंकर कष्ट होता है, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं; लौकिक विश्वास, जब उनका कोई आधार रहता है तब भी बहुत कम ही प्रवुद्ध तथा बिलकुल सही होते हैं।

× × ×

देही अपने अनेक जन्मोंके क्रमसे गुजरनेके समय बहुत प्रकारके व्यक्तित्व धारण करता है तथा बहुत प्रकारकी अनुभूतियोंसे होकर गुजरता है; किंतु नियमतः वह उन सबोंको अन्य जीवनमें नहीं ले जाता। वह एक नया मन, प्राण और शरीर ग्रहण करता है। पुराने मन तथा प्राण क्षमताएँ, व्यस्तताएँ, रुचियाँ तथा स्वभावगत विलक्षण जितनी हदतक वे नये जन्मके लिये उपयोगी होती हैं, उत अतिरिक्त नये मन तथा प्राणद्वारा ग्रहण नहीं की जात किसीको एक जन्ममें काव्यात्मक भाव-व्यञ्जनाकी क्षमता हो सकती है; किंतु अगले जन्ममें उसे ऐसी क्षमता या कवितामें कोई रुचि नहीं भी हो सकती। दूसरी ओर, एक जन्ममें दबायी या चूकी या अपूर्णरूपसे प्रबुद्ध प्रवृत्तियाँ दूसरे जन्ममें बाहर प्रकट हो सकती हैं। अन्तरात्मा पुरानी अनुभूतियोंका सार-तत्त्व अपने साथ रखता है, किंतु अनुभूतियोंका अथवा व्यक्तित्वका स्वरूप वह नहीं रखता—सिवा वैसी अनुभूतियों या व्यक्तियोंके स्वरूपको जो अन्तरात्माकी प्रगतिके नये विकास-बिन्दुके लिये आवश्यक हैं।

× × ×

मृत्युके बाद अन्तरात्माकी यात्रा

मृत्युके साथ तत्काल ही अन्तरात्मा (भौतिक कोषके अतिरिक्त) मनोमय और प्राणमय कोषोंका परित्याग नहीं करती। कहा जाता है कि पृथ्वीके साथ सारा सम्बन्ध काटनेमें उसे ले-देकर तीन वर्ष लग जाते हैं—यद्यपि कई बार अधिक देरसे या अधिक शीघ्रतासे भी संक्रमण होता है।

× × ×

मृत्युके समय देही मस्तकसे होकर देहसे बाहर निकल जाता है। वह सूक्ष्म शरीरमें बाहर निकलता है तथा अल्प कालके लिये अस्तित्वके कई स्तरोंमें (लोकोंमें) जाता है, जबतक कि वह चंद अनुभूतियोंसे होकर गुजर न ले, जो उसके पृथ्वीपरके जीवनके परिणाम होती हैं। बादमें वह अन्तरात्माके लोकमें पहुँचता है, जहाँ वह एक प्रकारकी नींदमें विश्राम करता है, जबतक कि उसके लिये पृथ्वीपर एक नया जन्म प्रारम्भ करनेका समय न आ जाय। सामान्यतः ऐसा ही होता है—किंतु कुछ अन्तरात्माएँ अधिक प्रगति किये होती हैं और वे इस क्रमका अनुसरण नहीं करतीं।

अन्तरात्मा सीधे अन्तरात्माके लोकमें भी जा सकती है, किंतु यह निर्भर करता है शरीर छोड़नेके समयकी उसकी चेतनापर। यदि उस समय चैत्य पुरुष सामने हो तो तत्काल संक्रमण बिलकुल सम्भव है। यह मानसिक, प्राणिक तथा आन्तरात्मिक अमरत्वकी प्राप्तिपर निर्भर नहीं करता। जिन्हें इनकी प्राप्ति हो गयी है, उन्हें तो नाना लोकोंमें विचरनेकी तथा बिना बन्धनमें बँधे भौतिक जगत्पर क्रिया करनेकी शक्ति होगी। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इन वस्तुओंके विषयमें कोई रूढ़ नियम नहीं है। चेतनामें उसकी ऊर्जाओं, प्रवृत्तियों तथा रूपाकृतियोंके अनुसार बहुत-सी विविधताएँ सम्भव हैं, यद्यपि एक व्यापक चौकठा तथा खाका है, जिसके भीतर ये सभी आ जाते हैं और अपने स्थान ग्रहण करते हैं।

× × ×

जो अन्तरात्माएँ अन्तरात्माके लोकमें विश्रामके लिये जाती हैं, उनकी अवस्था बिलकुल अचल होती है; प्रत्येक अपने भीतर समाहित हो जाती है तथा एक दूसरेपर क्रिया नहीं करती। जब वे अपनी समाधिसे बाहर निकलती हैं तब वे नये जीवनमें प्रवेश करनेके लिये उतरनेको तैयार होती हैं; किंतु इस बीचमें क्रिया नहीं करतीं।······

अन्तरात्माके लोकका कोई जीव पृथ्वीपरकी किसी अन्तरात्मामें घुल नहीं जाता। किसी-किसी अवस्थामें जो होता है वह यह कि कोई बहुत ही विकसित अन्तरात्मा कभी-कभी अपना एक अंश नीचे भेजती है, जो एक मानव-प्राणीमें रहकर उसे तैयार करता है, जबतक कि स्वयं अन्तरात्माके उस जीवनमें प्रवेश करने योग्य वह तैयार न हो जाय। यह तब होता है जब कोई विशेष काम करना होता है तथा मानव-वाहनको तैयार करनेकी आवश्यकता होती है। इस प्रकारका अवतरण व्यक्तित्व तथा स्वभावमें आकस्मिक प्रकारका विलक्षण परिवर्तन लाता है।

सामान्यतः अन्तरात्मा एक ही लिङ्गका अनुसरण करती है। यदि कभी लिङ्ग-परिवर्तन होता है, तो नियमतः वैसा व्यक्तित्वके कुछ अंशोंके साथ होता है जो केन्द्रीय नहीं होते।

वे अन्तरात्माएँ, जो पुनर्जन्मके लिये लौटती हैं, कब नये शरीरमें प्रवेश करती हैं, इसका कोई नियम नहीं बनाया जा सकता; क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिके साथ विभिन्न परिस्थितियाँ होती हैं। कुछ अन्तरात्माएँ जन्मके पास-पड़ोसके वातावरण तथा माता-पिताके साथ गर्भाधानके समयसे सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं तथा अपने व्यक्तित्व और भविष्यको गर्भमें ही निश्चित करती हैं, कुछ दूसरी जन्मके बाद भी; तथा इन अवस्थाओंमें अन्तरात्माका एक अंश जीवनको अस्तित्वमें रखे रहता है। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि आगामी जन्मकी अवस्थाएँ मूलतः अन्तरात्माके लोकमें वासके समय नहीं, वरं मृत्युके समय निश्चित की जाती हैं। उस समय अन्तरात्मा यह चुनाव करती है कि उसके दूसरी बार पृथ्वीपर आनेपर उसे कौन-सी गुत्थी सुलझानी होगी और परिस्थितियाँ उसीके अनुसार सज जाती हैं।

अन्तरात्मा कब ऊपर जाती और कब नीचे लौटती है ?

वह (जीवन्मुक्त) जहाँपर भी उसने अपना लक्ष्य स्थिर किया था वहाँ जा सकता है—निर्वाणकी अवस्थामें या किसी दिव्य लोकमें और वहाँ रह सकता है। अथवा जहाँ कहीं भी वह जाय, पृथ्वीकी गति-विधिसे सम्बन्ध बनाये रख सकता है और यदि पृथ्वीकी गति-विधिमें सहायता करनेकी उसकी इच्छा हो तो फिर लौट सकता है।

यह (अन्तरात्माकी वर्तमान उच्चतम उपलब्धिसे किसी और भी उच्चतर लोकमें जानेकी बात) संदिग्ध है। यदि मूल रूपमें वह विकास-क्रमका जीव नहीं, बल्कि किसी उच्चतर लोकका जीव है, तो वह उस लोकको लौट जायगा। यदि वह और भी ऊपर जाना चाहता है तो यह सर्वथा युक्तिपूर्ण है कि जबतक वह उस उच्चतर लोककी चेतना विकसित न कर ले, तबतक विकासके क्षेत्रमें वापस आवे। प्राचीन विचार कि यदि देवता लोग भी चाहें तो उन्हें पृथ्वीपर आना होगा, इस ऊर्ध्वारोहणके सम्बन्धमें लागू किया जा सकता है। यदि वह मूलतः विकास-क्रमका जीव है तो उसे विकास-क्रमके पथसे ही, चाहे निर्वाणद्वारा, यहाँसे नकारात्मक रूपमें निकल जाना होगा अथवा सच्चिदानन्दकी वर्तमान अभिव्यक्तिमें कोई दिव्यभावात्मक चरितार्थता प्राप्त करनी होगी।

वापस लौटनेकी असम्भाव्यता बड़ा गुत्थीदार प्रश्न है। कोई दिव्य जीव सदा ही लौट सकता है—जैसा रामकृष्णने कहा था कि ईश्वरकोटि अपने इच्छानुसार जब चाहे तब अमृतत्व तथा पुनर्जन्मकी सीढ़ीके बीच उतर और चढ़

सकता है। दूसरोंके लिये यह सम्भव है कि वे एक सापेक्ष अनन्तकालतक ('शाश्वतीः समाः') विश्राम करें, यदि उनकी ऐसी इच्छा हो; किंतु उनका लौटना रोका नहीं जा सकता, जबतक कि वे अपनी उच्चतम सम्भाव्य स्थितिमें पहुँच न गये हों।

× × ×

विकसित अन्तरात्माएँ इस संक्रमण-कालमें बहुत अधिक सतर्क रहती हैं तथा इस कामका बहुत कुछ अंश स्वयं करती हैं। समय भी जीवके विकास तथा उसकी एक प्रकारकी समस्वरतापर निर्भर करता है—किसीके लिये करीब-करीब तत्काल ही पुनर्जन्म होता है, दूसरोंके लिये कुछ और अधिक समय लगता है, कुछके लिये यह सैकड़ों वर्ष ले सकता है; किंतु यहाँ भी, अन्तरात्मा जहाँ एक बार पर्याप्त विकसित हो गयी, वह अपनी समस्वरता और मध्यवर्ती काल चुननेके लिये स्वतन्त्र होती है।

× × ×

पिछले जन्मकी स्मृति

अन्तरात्माके पुनर्जन्ममें वापस आनेपर पूर्ण विस्मृति आ जाय, ऐसा कोई नियम नहीं। विशेषतः बचपनमें पिछले जीवनकी बहुत-सी स्मृतियाँ अङ्कित रहती हैं, जो प्रबल और काफी स्पष्ट हो सकती हैं; किंतु भौतिकवादी बना देनेवाली शिक्षा तथा अड़ोस-पड़ोसके वातावरणका प्रभाव उनकी वास्तविक प्रकृतिको मान्यता देनेमें बाधक होता है। ऐसे बहुतसे लोग हैं, जिनमें किसी पिछले जन्मकी बड़ी स्पष्ट स्मृतियाँ रहती हैं; किंतु शिक्षा तथा वातावरणद्वारा ये चीजें हतोत्साहित की जाती हैं और ये रह या बढ़ नहीं पातीं; बहुत अधिक अवस्थाओंमें दम घुटकर ये अस्तित्वसे लुप्त हो जाती हैं। साथ ही यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि अन्तरात्मा जो वस्तु अपने साथ ले जाती है और वापस ले आती है, वह सामान्यतः उसके पिछले जन्मकी अनुभूतियोंका सार होता है, ब्यौरे नहीं। इसलिये तुम वर्तमान जीवन-जैसी पूरी स्मृतिकी आशा नहीं कर सकते।

× × ×

यदि अन्तरात्मा अपने पूर्वजन्मका कोई एक या अधिक व्यक्तित्व वापस लावे, केवल तभी वह पिछले जन्मके ब्यौरे याद रख सकती है। वरना यह स्मृति केवल योगदृष्टिद्वारा आती है।

× × ×

प्रेत क्या है?

प्रेतसे तुम्हारा क्या तात्पर्य है? जनसाधारणकी भाषामें जो 'प्रेत' शब्दका व्यवहार किया जाता है, उसके अंदर अगणित घटित गोचर वस्तुएँ होती हैं, जो आवश्यक रूपसे एक-दूसरेसे सम्बद्ध नहीं होतीं। केवल कुछ मैं गिनाता हूँ।

(१) किसी मनुष्यकी अन्तरात्माके साथ उसके सूक्ष्म शरीरमें वास्तविक सम्पर्क तथा एक आकृतिके प्रकट होने या कोई शब्द सुनायी पड़नेद्वारा हमारे मनमें उसका प्रतिबिम्बित होना।

(२) किसी स्थान या क्षेत्रके वातावरणपर किसी दिवंगत मानव-प्राणीके विचारों और भावनाओंकी छाप लगायी हुई एक मानसिक रूपाकृति, जो वहाँ घूमती रहती या बार-बार प्रकट होती है, जबतक कि वह थक नहीं जाती अथवा किसी एक या दूसरे उपायद्वारा नष्ट नहीं हो जाती। भुतहा घर, जिसमें किसी हत्याके समय होनेवाले या उसके चतुर्दिक् वर्तमान या उसके पहलेका दृश्य बार-बार दुहराया जाता है तथा इसी प्रकारकी अनेक अन्य घटनाओंकी यही व्याख्या है।

(३) निम्नतर प्राणिक लोकका कोई जीव, जो किसी जीवित मानव-प्राणी अथवा किसी अन्य साधन या करण-द्वारा अपनेको इतना काफी ठोस भौतिक बना लेता है कि दृश्य रूपमें प्रकट हो सके, अथवा सुनायी पड़नेवाली आवाजमें बोल सके या बिना इस प्रकार दिखलायी पड़े—भौतिक पदार्थों—जैसे कि टेबुल-कुर्सी आदिको इधर-उधर सरकावे अथवा वस्तुओंको दृश्य बनावे या उन्हें एक जगहसे दूसरी जगह ले जाय। गरजनेवाले प्रेत, पत्थर फेंकनेकी घटना, पेड़ोंमें रहनेवाले भूतों तथा अन्य सुविदित घटनाओंका यही कारण है।

(४) निम्नतर प्राणिक लोकोंका कोई जीव, जो किसी दिवंगत मानव-प्राणीका छोड़ा हुआ प्राणमय कोष या उसके प्राणिक व्यक्तित्वका एक खण्ड धारण कर लेता है तथा उस व्यक्तिके रूपमें और शायद उसके उपरितलीय विचारों तथा स्मृतियोंके साथ प्रकट होता तथा क्रिया करता है।

(५) छायाएँ, जो स्वयं अपने मनकी रूपाकृति होती हैं तथा इन्द्रियोंके सामने प्रत्यक्ष रूप में दिखलायी पड़ती हैं।

(६) प्राणिक सत्ताओंद्वारा कुछ कालके लिये किसी व्यक्तिपर अधिकार, जो कभी-कभी दिवंगत-सम्बन्धी होनेका बहाना करती हैं, आदि ।

(७) मरनेके समय व्यक्तियोंद्वारा प्रायः प्रक्षिप्त स्वयं उनकी विचारमूर्तियाँ, जो मृत्युके समय या उसके कुछ घंटों बाद उनके मित्रों या सम्बन्धियोंके सामने प्रकट होती हैं ।

देखो, कि इनमेंसे केवल एक अवस्थामें ही, पहलीमें अन्तरात्माको तथ्यरूपमें माना जा सकता है और वहाँ कोई कठिनाई नहीं उठती ।

× × ×

मृत आत्माका बुलाया जाना

मृत आत्माओंको बुलाये जानेवाली गोष्ठीमें जो प्रेत या आत्मा आती है, वह अन्तरात्मा नहीं होती । माध्यमके द्वारा जो कुछ आता है, वह माध्यमकी तथा बैठनेवालोंकी अवचेतना (अवचेतना शब्दको यहाँ सामान्य अर्थमें प्रयुक्त कर रहा हूँ, यौगिक अर्थमें नहीं) का मिश्रण होता है; दिवंगत व्यक्तिद्वारा छोड़े हुए अथवा शायद किसी प्रेत या किसी प्राणिक सत्ताद्वारा अधिकृत किये हुए या प्रयुक्त प्राणमय कोष, दिवंगत व्यक्ति स्वयं अपने प्राणमय कोषमें या उस अवसरपर ग्रहण किये किसी अन्य वस्तुके भीतर (किंतु यह प्राणिक अंश होता है जो बातचीत करता है), प्राकृतिक तत्त्वों या वस्तुओंकी आत्माएँ, पृथ्वीके निकटके निम्नतम प्राणिक भौतिक लोकके प्रेत आदि । अधिकांशमें एक भयंकर तरहका गड़बड़-सड़बड़—प्रेतलोकके धूमिल प्रका[illegible] और छायाके माध्यमसे आती हुई सभी प्रकारकी वस्तुओं[illegible] खिचड़ी । अनेक माध्यम ऐसे व्यक्ति लगते हैं जो सूक्ष्[illegible] जगत्में मात्र गये हुए होते हैं, जहाँ वे पार्थिव जीवन[illegible] एक अधिक सुधरे हुए संस्करणद्वारा अपनेको घिरा पा[illegible] हैं और समझते हैं कि मृत्युके बादका सच्चा और निश्चि[illegible] जगत् यही है; किंतु यह मात्र मानव-लोकके विचार[illegible] चित्रों और सम्बन्धोंका आशावादी विस्तार है । यही परलोक जिसकी वर्णना मृत आत्माओंको बुलानेवाले 'निदर्श[illegible] और दूसरे माध्यम करते हैं ।

× × ×

स्वचालित लिखन तथा प्रेतात्माओंको बुलानेवा[illegible] गोष्ठियाँ—बड़ा मिश्रित व्यापार है । कुछ अंश माध्यम[illegible] अवचेतन मनसे आता है और कुछ बैठनेवालोंके अवचे[illegible] मनसे । किंतु यह सच नहीं कि सब कुछ नाटकीय[illegible] लानेवाली कल्पना और स्मृतिके ही परिणाम होते है[illegible] कभी-कभी ऐसी वस्तुएँ भी होती हैं जो उपस्थित लोगों[illegible] किसीको ज्ञात नहीं हो सकतीं और न याद आ सकतीं[illegible] कभी-कभी, यद्यपि यह विरले होता है, भविष्यकी झाँकिये[illegible] किंतु सामान्यतः ये गोष्ठियाँ आदि व्यक्तिको एक बड़े नि[illegible] लोककी प्राणिक सत्ताओं और शक्तियोंके सम्पर्कमें ले अ[illegible] हैं, जो स्वयं अन्ध, असंगत और धोखेबाज होती हैं [illegible] उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करना या किसी प्रकारके प्रभ[illegible] का ग्रहण करना खतरनाक होता है ।

—(भाषान्तरकारक—व्रजनन्दन, श्रीअरविन्द-आश्रम, पांडिचे[illegible]

भक्ति न करनेपर दूसरे जन्ममें पराये बैल बनोगे

भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ ।
पाउँ चारि, सिर सृंग, गुंग मुख, तब कैसैं गुन गैहौ ॥
चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ ।
टूटे कंधरु, फूटी नाकनि, कौ लौं धौं भुस खैहौ ॥
लादत-जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूँड़ दुरैहौ ?
सीत, घाम, घन, बिपति बहुत बिधि, भार तरैं मरि जैहौ ॥
हरि-संतनि कौ कह्यौ न मानत, कियौ आपुनौ पैहौ ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मिथ्या जनम गँवैहौ ॥

—सूरदासजी

पुनर्जन्म-सिद्धान्त

(लेखक—स्वामी श्रीअसङ्गानन्दजी, रामकृष्ण-मिशन, बेलूर मठ, हवड़ा)

यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

'जबतक जिओ सुखसे जिओ, ऋण लेकर भी घी पिओ । न जाने कि जलकर राख हो जानेके बाद यह शरीर पस आता है कि नहीं ।' यह भारतके एक नास्तिक र्शनिक चार्वाकका कथन है । पश्चिमके लुक्रेशियस Lucretius) ने भी कहा है कि 'खाओ, पिओ और ज करो; कौन जानता है कि कल हमारा अस्तित्व रहेगा या नहीं ।' वर्तमान समयमें प्रचलित विचारों तथा धुनिक जगत्के आदर्शोंके सम्बन्धमें विचार करते समय देखा गया है कि भौतिकवादी तथा उच्च बुद्धिवादी-पर स्थित बहुसंख्यक लोग पुनर्जन्मके सिद्धान्तको स्वीकार नेमें बहुत कठिनाईका अनुभव करते हैं । उनकी मान्यता के उनका पाञ्चभौतिक शरीर ही उनका स्वरूप है तथा रके तिरोभाव होनेके साथ ही अस्तित्वका सम्पूर्ण विलय जाता है ।

प्रागैतिहासिक युग तथा वैदिक कालमें हिंदू मनीषियों र ऋषियोंने मनुष्यके वास्तविक स्वरूपके विषयमें भगीरथ-

करते थे । वे शरीरको ही आत्मा मानते थे । वे ममी बनाने प्रक्रियाद्वारा शरीरको अधिक-से-अधिक दिनोंतक रखनेका प्रयत्न करते थे । उनका विश्वास था कि क्षत (जख्मी) होनेपर आत्मा जख्मी हो जायगी यदि शरीरका नाश हो गया तो आत्माकी दुबारा जायगी अथवा वह नष्ट हो जायगी ।

आर्यलोग आत्माकी अमरता-गरिमापर विश्वास क गीतामें कहा गया है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥
(२ । २३

'इस आत्माको शस्त्रादि नहीं काट सकते, आग नहीं जला सकती तथा इसको जल गीला नह सकता । वायु इसे सुखा नहीं सकती; क्योंकि यह अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है यह आत्मा निःसंदेह नित्य, सर्वव्यापक, अचल,

अधः) सत्यसे उच्च (ऊर्ध्व) सत्यकी ओर गतिमान् है और उसके व्यक्तिगत कर्म तथा ज्ञान ही उसकी प्रगतिके निर्णायक तत्त्व हैं—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥

(कठोपनिषद् २ । २ । ७)

'अपने कर्म और ज्ञानके अनुसार कितने ही देहधारी तो शरीर धारण करनेके लिये योनिको प्राप्त होते हैं और कितने ही स्थावरभावको प्राप्त हो जाते हैं।'

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥

(कठोपनिषद् २ । ३ । ४)

'यदि इस देहमें इसके पतनसे पूर्व ही (ब्रह्मको) जान सका, तब तो यह बन्धनसे मुक्त हो जाता है । यदि नहीं जान पाया, तो इन जन्म-मरणशील लोकोंमें वह शरीर-भावको प्राप्त होनेमें विवश होता है ।'

हिंदुओंकी पुण्यस्थली भारतवर्षमें कुछ विचारकों तथा दार्शनिकोंका मत है कि जहाँतक आध्यात्मिक जीवनका सम्बन्ध है, हम आध्यात्मिकता तथा आचारनिष्ठताको स्पष्टतया भिन्न-भिन्न नहीं मान सकते । हमारे प्राचीन विधि-निर्माताओंने बार-बार शुद्ध (नैतिक) जीवनकी आवश्यकतापर बल दिया है तथा नैतिक सिद्धान्तोंके पालनका आग्रह किया है । केवल उसी स्थितिमें ही आध्यात्मिक उन्नतिकी गति बढ़ सकती है और तभी भगवद्दर्शन तथा आत्माकी मुक्ति सम्भव है—

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥

(कठोपनिषद् १ । ३ । ७-८)

'किंतु जो अविज्ञानवान्, अनिगृहीत-चित्त और सदा अपवित्र रहनेवाला होता है, वह उस पदको प्राप्त नहीं कर सकता; प्रत्युत संसारको ही प्राप्त होता है । किंतु जो विज्ञानवान्, संयतचित्त और सदा पवित्र रहनेवाला होता है, वह उस पदको प्राप्त कर लेता है, जहाँसे वह फिर उत्पन्न नहीं होता ।'

यहाँ भारतवर्षमें शुद्धताके बिना आध्यात्मिकताके नि सोचा ही नहीं जा सकता । आध्यात्मिक विकासका आ निष्ठताके साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है । इसीलिये अथवा आध्यात्मिक शुद्धताके इच्छुक व्यक्तियोंको एक व आध्यात्मिक अनुशासनका पालन अनिवार्यतः करना चा यह बात धार्मिक जीवन तथा भगवद्दर्शनकी संजीवनी जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि हमारा वर्तमान हमारे पिछले जन्मोंके कर्मों तथा ज्ञानका परिणाम है । प्रकार हमारे भावी जन्मका निर्धारण हमारे वर्तमान सचेत प्रयत्नों, विचारों तथा ज्ञानके आधारपर हो इसलिये हमें ऐसा ही आचरण करना चाहिये, हमारे वि और कर्म ऐसे ही होने चाहिये कि हमारे भविष्यकी ज धारा तथा चरित्रपर कोई धब्बा न लगने पाये और तथा इसी जन्ममें भगवद्दर्शन हो जाय तथा आत्माको मिल जाय; भले ही विशुद्धताके इस मार्गपर बढ़ते हमें कितनी ही अड़चनों तथा कठिनाइयोंका सामना न करना पड़े । इसलिये हमें कर्मके लिये ही कर्म चाहिये और सभी कर्म तथा भावनाएँ भगवान्‌के चर अर्पित कर देनी चाहिये । हमारे हृदयमें किसीके भी ईर्ष्या-द्वेषकी भावनाएँ न हों । जीवनमें हर क्षण भग प्रेम तथा भक्ति बनी रहे; प्रार्थना भी होती रहे प्रकार करनेसे हमारे ऊपर भगवान्‌की कृपाकी वर्षा और इसके बलपर हम संसार-सागरसे तर जायँगे और मरणके चक्रसे मुक्ति पा जायँगे ।

यहूदियोंकी, ईसाइयों तथा इस्लामकी धार्मिक वि धाराको माननेवाले लोग पुनर्जन्मके सिद्धान्तपर विश्वास करते । परंतु कुछ प्राचीन तथा आधुनिक व्यक्ति अ देहान्तर-प्रवेश तथा पुनर्जन्मके सिद्धान्तपर वि करते हैं । इनमें आर्फिक (Orphic), पाइथ (Pythagoras), प्लेटो (Plato), ग्ना (Gnostic) मनीचियनस (Manichaeans) (Bruno) और कुछ अन्य विचारक मुख्य हैं । प्राक्-अस्तित्वपर विश्वास करते थे । उनका कथन 'आत्मा शरीरसे पुरातन है । आत्माएँ निरन्तर इस ज जन्म लेती रहती हैं ।' ईसामसीहने कहा—'अब्राहीमसे मैं हूँ ।' उन्होंने सैमैरिटन महिलाके समक्ष अपना भेद हुए कहा—'ऐसा कहा जाता है कि यह इलियस (El है, जो सैमैरिटन महिलाके पास आता है ।' अ

(Origen) ने कहा—'दैवी भगवद्विधान हर एकके बारेमें उसकी प्रवृत्ति, मन तथा स्वभावके अनुसार ही निर्णय करता है। मानवीय-मानस कभी तो अच्छाईसे और कभी बुराईसे प्रभावित होता जाता है। इसकी कारण-परम्परा भौतिक शरीरके जन्मसे भी अधिक पुरानी है।' जस्टीनियन (Justinian) ने इस आस्थाका घोर विरोध किया है।

आधुनिक कालके कवियों तथा दार्शनिकोंने भी आत्माओं-के देहान्तरवाद तथा पुनर्जन्मकी धारणाकी अभिव्यक्ति की है।

"The Soul that rises with us, our life's star,
Hath had elsewhere its setting
And comes from afar."
(Wordsworth—Imitation of Immortality.)

'हमारे साथ, हमारे जीवनके नक्षत्रके साथ उदीयमान आत्माका उद्भव अन्यत्र है और यह सुदूरसे आयी है।'

"Or if through lower lives I came,
Tho' all experience past became
Consolidate in mind and frame,
I might forget my weaker lot,
For is not our first year forgot?
The haunting of memory echo not."
(Tennyson—Two Voices.)

'यदि मेरे पिछले जन्म निम्न स्तरके रहे हैं और मेरे मस्तिष्कमें इन जन्मोंके अनुभव एकत्रित हो गये हैं, तो भी मैं अपने दुर्भाग्यको विस्मृत कर सकता हूँ। इसका कारण यह है कि हम अपने जीवनके प्रारम्भिक वर्षोंको भूल जाया करते हैं। पुरानी स्मृतियाँ हमारे कानोंमें नहीं गूँजतीं।'

"As to you, life, I reckon you are the leavings of many deaths.
No doubt I have died myself ten thousand times before."
(Walt Whitman)

'जीवन! तुम मेरे अनेक अवसानोंके अवशेष हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि मैं इसके पूर्व दस हजार बार मर चुका हूँ।'

प्राध्यापक हक्सले (Prof. Huxley) का कथन है—'केवल बिना ठीकसे सोचे-समझे निर्णय लेनेवाले विचारक ही पुनर्जन्मके सिद्धान्तको मूर्खताकी बात समझकर उसका विरोध करेंगे। विकासवादके सिद्धान्तकी तरह देहान्तरवादका सिद्धान्त भी वास्तविक है।' दार्शनिक ल्यूमिंग (Luming) का कहना है कि 'जबतक हर बार नया ज्ञान, नया अनुभव अर्जित करनेकी क्षमता मुझमें है, तबतक मैं पुनः-पुनः क्यों न लौटूँ? क्या मैं एक ही बार इतना कुछ लेकर आता हूँ कि मुझे पुनः लौटनेका कष्ट उठानेकी कोई आवश्यकता ही न रहे?'

कुलक्रमागत संक्रमण (Hereditary Transmission) के सिद्धान्तके प्रवक्ता मानवीय आत्माके अस्तित्वपर विश्वास नहीं करते। उनके मतके अनुसार अपने वंशजोंमें कोषाणुगत संक्रमण (Cellular transmission) की प्रक्रियाद्वारा मनुष्य अमर बन सकता है। यदि यह सही है तो शेक्सपियर अथवा वर्ड्सवर्थके वंशजोंको हम शेक्सपियर अथवा वर्ड्सवर्थके समान ही क्यों नहीं देखते? इसलिये पूर्णता प्राप्त करनेके संदर्भमें विकासवादका सिद्धान्त पुनर्जन्मकी प्रक्रियाद्वारा संतोषजनक और अपेक्षाकृत उत्तम तरीकेसे समझा जा सकता है। पुनः शरीर-धारण या पुनर्जन्मके सिद्धान्तके सम्बन्धमें सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि यदि भगवत्-साक्षात्कार अथवा मोक्ष (या कैवल्यपद) प्राप्त होनेतक मनुष्यका पुनः-पुनः जन्म होता है, तो हम इन खुली आँखोंसे, मृत्युसे जीवनकी ओर होनेवाले महान् परिवर्तनको देख क्यों नहीं पाते? अथवा इस सिद्धान्तकी सत्यता या प्रामाणिकताको सिद्ध करनेके लिये विज्ञानद्वारा प्रदत्त सूक्ष्मतम उपकरणों अथवा दूरबीनों (खुर्दबीनों) आदिकी सहायतासे इस सत्यताको प्रदर्शित क्यों नहीं किया जाता? यह हमारी हार्दिक कामना है कि न केवल बुद्धिवादी दिग्गजोंकी जिज्ञासाके समाधानके लिये, वरं विश्वके प्रत्येक देशके जन-साधारणके लिये ऐसे यन्त्र या उपकरण खोज निकाले जायँ। परंतु अनेक प्रयासोंके पश्चात् भी भौतिक जगत्के लोग यह कर पानेमें अभी सफल नहीं हुए हैं। जड पदार्थका निरीक्षण-परीक्षण भौतिक क्षेत्रमें हो सकता है और आत्माका आध्यात्मिक क्षेत्रमें। भगवान्का साक्षात्कार करनेवाले तथा समाधि या उच्चतम चेतनामें एकाकार हो जानेवाले महान् ऋषियों तथा मुनियोंने देश-काल तथा कार्य-करण भावकी सीमाओंका अतिक्रमण किया था और भूत, वर्तमान तथा भविष्यको देख सकनेकी शक्ति प्राप्त कर ली थी। उन्होंने अपनी भव्य तथा महान् अनुभूतियोंसे पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी पुष्टि की और उसकी पुनःस्थापना की।

गीतामें अपने पूर्वजन्मोंके सम्बन्धमें अर्जुनके प्रश्न पर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥
(४ । ५)

'हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुतसे जन्म हो चुके हैं; हे परंतप ! उन सबको तू नहीं जानता है, मैं ता हूँ ।'

दिव्यताकी सर्वोत्तम अभिव्यक्तिके साकार रूप, पूर्णावतार वान् श्रीकृष्णको अपना तथा अन्य उन सब लोगोंके जीवनका पूरा-पूरा ज्ञान था, जो महाभारतकालमें स्थित थे । यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस पुण्य-मि भारतवर्षमें अनेक ऐसे ब्रह्मज्ञ महापुरुष हुए हैं, जिन्हें ने पूर्वजीवनका सम्यक् ज्ञान था और उनके निकट-पर्कमें आनेवाले भाग्यशाली लोगोंको भी उन्होंने यह ज्ञान मेंमें सहायता दी । इस घोर भौतिकवादी समयमें भी घटनाओं-पूर्व जानकारी प्राप्त कर सकनेवाले तथा अपने बीते जीवनोंकी नकारी रखनेवाले लोगोंकी भी कुछ घटनाएँ प्रकाशमें ायी हैं और उनके पूर्वजन्मके सम्बन्धमें बताये गये विवरण क्षरशः सत्य सिद्ध हुए हैं ।

वस्तुतः यह संतोषकी बात है कि पश्चिमके काफी ोगोंका ध्यान पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी ओर गया है और वे इसे अपने जीवनमें उतारनेकी चेष्टा कर रहे हैं । हिंदू-समाजपर कुछ बाहरी विचारों तथा आदर्शोंका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है; फिर भी लोग अभीतक कर्मसिद्धान्त, पुनर्जन्म, आत्मा तथा मुक्ति आदि सिद्धान्तोंकी भली प्रकार रक्षा कर रहे हैं और इस प्रकार उन्होंने इन सिद्धान्तोंको इस धरतीपर अक्षुण्ण बनाये रक्खा है । निश्चय ही उन्होंने अपने कार्यों, निष्ठा, बलिदान, रुचि तथा लगनसे इस देशके गौरवकी रक्षा की है । पुनर्जन्मके सिद्धान्तको एक कल्पनामात्र कहकर उसे अलग नहीं फेंका जा सकता । यह सत्य है कि यह अभीतक भीषण आघातों तथा परिवर्तनोंके उथल-पुथलमें भी हिंदू-जातिकी रक्षा कर रहा है ।

नर नारायण है और समय पूरा होनेपर वह दिव्यताको प्राप्त होता है । परंतु उसकी सीमाएँ हैं, जिसके कारण वह यदा-कदा भूल भी कर सकता है । उसकी ऐसी भूलोंके कारण भगवद्-दर्शन तथा मुक्तिके देवमन्दिरकी ओर बढ़नेमें उसकी गति अवरुद्ध हो सकती है और इस प्रकार उसके जीवनका लक्ष्य पूरा नहीं हो पाता । इसीलिये पुनर्जन्मका सिद्धान्त उसको भविष्यमें अपने कार्योंको ठीकसे सम्पादन कर सकनेका अवसर देकर आत्यन्तिक आशा तथा सान्त्वना प्रदान करता है, ताकि उसके जीवनकी वह महत्त्वाकाङ्क्षा पूरी हो सके, जिसके लिये मानव इस संसारमें आया है ।

मृत्यु-विवेचन

(१)

मृत्यु-विज्ञान

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्०ए०, डी०लिट्०)

मृत्यु और देहत्याग ठीक एक ही वस्तु नहीं है। मर्त्यलोकमें सबकी मृत्यु होती है; परंतु देहत्याग सबका नहीं होता। जो देह ग्रहण नहीं कर सकता, वह देह-त्याग किस प्रकार कर सकता है। अज्ञानियोंका जन्म जैसे उनकी इच्छाके अधीन नहीं होता, उसी प्रकार उनकी मृत्यु भी उनकी अपनी इच्छाके ऊपर नहीं निर्भर करती है। सूक्ष्म-देहसमन्वित आत्माका स्थूलदेह ग्रहण करना प्रारब्ध कर्मके विपाकके फलस्वरूप होता है। जाति या जन्म, आयु और भोग—ये तीनों प्रारब्ध कर्मके विपाकके रूपमें जाने जाते हैं। साधारण नियम यह है कि जीवके कर्मोंकी अधिष्ठात्री दिव्य शक्ति साधारणतः जीवको मृत्युके उपरान्त संचालित करती है। मृत्युके पहले भी जैसे सब जीव स्वाधीन नहीं हैं, मृत्युके बाद भी ठीक वैसे ही स्वाधीन नहीं हैं। जीव अपने कर्मोंकी अधिष्ठात्री देवशक्तिके अधीन हैं। साधारण जीवकी मृत्यु अपनी इच्छाके अधीन नहीं होती, ठीक इसी प्रकार उसका जन्म भी उसकी इच्छाके अधीन नहीं होता। दोनों ही कर्मसापेक्ष हैं और इसी कारण कर्मकी अधिष्ठात्री शक्तिके अधीन हैं। जबतक अज्ञानमूलक देहात्मबोध रहेगा, तबतक यह नियन्त्रण अवश्यम्भावी है। इस अवस्थामें मृत्युमें अज्ञानका आवरण रह जाता है। मुमूर्षु नहीं समझ पाता कि उसकी मृत्यु हो रही है, तथापि प्रकृतिके नियमके अनुसार मृत्यु हो जाती है। वह निद्रा या निद्राके अनुरूप मूर्च्छाकी अवस्था है। किसी-किसीको मृत्युकालमें कम-अधिक यन्त्रणा होती है और किसी-किसीको बिल्कुल ही नहीं होती। सरल सहज रूपमें देहत्याग हो जाता है। अवस्थाविशेषमें मृत्युकालमें ज्ञान रहता है। इस अज्ञान और ज्ञानकी सत्ता और शक्तिके ऊपर मुमूर्षुकी मरणोत्तर शुभा-शुभ गतिके प्रकारभेद निर्भर करते हैं। शुक्ल या देवयान गति तथा कृष्ण या पितृयाण गतिकी बात शास्त्रमें प्रसिद्ध है। ज्ञानका कुछ उन्मेष रहे बिना केवल कर्म और विकर्मके प्रभावसे देवयान या शुक्लगति प्राप्त नहीं होती। यह जो ज्ञानीकी मृत्यु है, वह शुक्लगतिप्रद होनेपर भी इच्छामृत्यु नहीं है। अज्ञानीकी मृत्युके सम्बन्धमें तो इच्[छा] ही नहीं है। इस प्रसङ्गमें यह याद रखना च[ाहिये] ज्ञानीकी देहावसान कालमें कोई गति नहीं हो[ती] स्थित अवस्थामें ज्ञानीका प्राण महासत्तामें [...] है। प्रकट अथवा गुप्त योगशक्तिके बिना इच्छामृत्यु सम्भव नहीं है। योगशक्ति ही ईश्व[र...] प्रारब्धके ऊपर भी तीव्र ईश्वरीय शक्तिका प्रभ[ाव] इसके होनेपर इच्छामृत्यु हो सकती है। यह [...] साधना या तपस्याके द्वारा अर्जित हो सक[ती] पूर्वकर्म-सापेक्ष या निरपेक्ष भगवत्कृपासे भी है[...] कभी-कभी महापुरुषके वर या आशीर्वादसे [...] प्राप्ति होती है। इच्छाशक्तिके साथ ज्ञानका [...] सकता है, नहीं भी रह सकता है। इस स[...] विचित्रताएँ सम्भव हैं।

'कालमृत्यु' और 'अकालमृत्यु'में भेद है। [...] देखनेपर सभी मृत्यु 'कालमृत्यु' है। काल पू[...] मृत्यु हो ही नहीं सकती है। यह अति उच्च और [...] बात है। स्थूल दृष्टिसे कालमृत्यु और अकाल[...] सर्वत्र स्वीकार किया गया है। इसका कारण [...] दार्शनिक कहते हैं कि चार कारणोंसे मृत्यु [...] पहला कारण है आयुक्षय, दूसरा है कर्मक्षय[...] आयु और कर्म दोनोंका क्षय और चौथा कारण है [...] कर्म। आयुक्षय होनेसे मृत्यु होनेपर कहा जा सक[ता] जीवकी अपने स्तरकी दीर्घतम आयुके परिमा[ण] अतिक्रान्त हो चुकी है, इसीसे मृत्यु हुई है। यह दीर्घतम आयु ही पूर्णायुके रूपमें मानी [...] परंतु यदि जनक कर्मसे संजात शक्तिके ह्रासवश दे[...] है तो कहा जाता है कि यह कर्मक्षयके कारण मृ[त्यु ...] परंतु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्योचि[त] आयु और जनक कर्म-संजात शक्तिका परिमा[ण ...] होता है। इस कारण ऐसी अवस्थामें कहा [...] एक साथ दोनों कारणोंके संयोगसे मृत्यु हुई

आयु और कर्मशक्तिके रहते हुए भी विरुद्ध शक्तिके प्रभावसे देहपात होता है तो उसे उपच्छेदक कर्मका फल कहा जाता है। इसीको साधारणतः 'अकालमृत्यु' कहते हैं। प्राचीन आचार्यगण इसको 'उपच्छेद मृत्यु' कहते थे।

उपच्छेद मृत्यु अनेक प्रकारकी होती है। वात-पित्त आदि दोष तथा उनके सन्निपातको छोड़ देनेपर भी बाह्य कारणवश उपच्छेद मृत्यु होती है। बाह्य प्रकृतिका क्षोभ एक प्रधान कारण है। भूकम्प, वज्रपात, वर्षा, आँधी, बाढ़ तथा सवारी या अन्य गाड़ियोंसे हुई दुर्घटनाके कारण उपच्छेद मृत्यु होती है। द्रव्यादिके अनुचित व्यवहार तथा आकस्मिक आक्रमण भी उपच्छेद मृत्युके कारण बनते हैं। उत्पीड़क तथा उपघातक कर्मके द्वारा उत्पन्न व्याधि (Epidemic) आदि भी इसके कारण हैं। केवल कर्म ही जीवके दुःख और मृत्युका कारण बने, ऐसी बात नहीं है। विश्वकी रचनाप्रणालीमें ही दुःखके कारण निहित हैं।

(२)

मृत्युकालीन सत्-चिन्तन

प्रसिद्धि है कि 'अन्ते मतिः सा गतिः' अर्थात् मृत्यु-कालमें जीवका जिस प्रकारका मनका भाव रहता है, तदनुसार मरणोत्तर गतिका निरूपण होता है। प्राचीन कालसे ही हिंदूसमाजमें नियम है कि मृत्युकालमें मुमूर्षुके समीप सांसारिक आलोचना करना अनुचित है। मुमूर्षुके लिये भी उचित है कि उसका अन्तिम चिन्तन संसारविषयक न होकर भगवत्-विषयक हो। महर्षि गौतमके पितृमेधसूत्र (१ । १ । ८)में लिखा है कि 'माता-पिता आदि गुरुजनोंके मृत्युकालमें मरणासन्न व्यक्तिको वेदका आदि और अन्तिम मन्त्र उच्चारण करके सुनाना चाहिये।' मुमूर्षुके दक्षिण कर्णमें एक साम-मन्त्रका उच्चारण करके सुनानेका विधान शास्त्रमें है। ऋग्विधानमें है कि 'मृत्युकालमें मुमूर्षुके पास (त्रातारं०)—इस सूक्तका पाठ करना चाहिये।' हिरण्यकेशीसूत्र (१ । १)में लिखा है कि 'अग्निहोत्री पुरुषके मृत्युकालमें उसको वेदमन्त्र सुनावे।' वह ब्रह्मवेत्ता हो तो तैत्तिरीय उपनिषद्की 'ब्रह्म-विदाप्नोति परम्।' (२ । १) और 'भृगुर्वै वारुणिः।' (३ । १)—इन मन्त्रोंका उच्चारण करे। 'अन्त्यकर्मदीपक' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि मुमूर्षु व्यक्ति जपमें असमर्थ होनेपर मन-ही-मन विष्णु या शिवकी मूर्तिका चिन्तन करते-करते विष्णु या शिवके सहस्रनामका श्रवण करे। अथवा किसीसे श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारत, श्रीमद्भागवत, रामायण, उपनिषद् आदि अथवा पावमान-सूक्त श्रवण करे। या भगवन्नाम-कीर्तनका श्रवण करे।' छान्दोग्य उपनिषद्में शाण्डिल्यविद्याके प्रकरण (३ । १४ । ४)में है कि 'मनुष्यमात्र क्रतुमय हैं। इस लोकमें जिस मनुष्यका जिस प्रकारका क्रतु अर्थात् भाव या संकल्प रहता है, मरनेके बाद तदनुरूप ही उसकी गति होती है।' श्रीमद्भगवद्गीतामें भी (८ । ५-६) अन्तिम समयमें भगवत्स्मरणकी व्यवस्था है।

(३)

कालभेदसे मृत्युकी प्रशंसा

महाभारत शान्तिपर्वमें उत्तरायणमें देहत्यागकी भूयसी प्रशंसा देखनेमें आती है। उपनिषद्में भी इसका समर्थन प्राप्त होता है।

> आपन्ने तूत्तरां काष्ठां सूर्ये यो निधनं व्रजेत्।
> नक्षत्रे च मुहूर्ते च पुण्ये राजन् शतपुण्यकृत्॥

छान्दोग्य उपनिषद् (४ । १५ । ५-६)में देवयान पथका प्रसंग है। यह शुक्ला गति है। इससे ऊर्ध्वगति प्राप्त होती है और पुनः प्रत्यावर्तन नहीं होता है। छान्दोग्य (५ । १० । १-२) में आया है कि 'जो गृहस्थ पञ्चाग्नि-विद्यामें निष्णात हैं तथा जो वानप्रस्थ या परिव्राजक हैं, अर्थात् जो श्रद्धा और तपोयुक्त हैं, तथापि अभी ब्रह्मज्ञानको प्राप्त नहीं हैं, वे देवयान गतिको प्राप्त होते हैं।' और जो लोग ग्राममें वास करते हैं, यज्ञानुष्ठान करते हैं तथा विधिपूर्वक इष्टापूर्तका सम्पादन करते हैं, वे मृत्युके बाद धूममार्गसे गमन करते हैं। (५ । १० । ३–७) उनको संसारमें पुनरावर्तन करना पड़ता है। इन दोके सिवा एक तीसरा लोक है, जहाँ कीट-पतङ्ग आदिकी गति होती है। वहाँ केवल जाना और आना होता है। बृहदारण्यक उपनिषद्में (६ । २ । १५-१६) देवलोक और पितृलोकके समान कीटादि लोकका भी उल्लेख है। गीता पञ्चम अध्याय (२३–२५)में दोनों मार्गोंकी बात उल्लिखित है। वेदान्तसूत्रमें भी (४ । ३ पादमें) इस विषयमें कुछ आलोचना की गयी है। महाभारतमें भीष्मके उत्तरायणके लिये प्रतीक्षा करनेकी बात सभी जानते हैं। यह शुक्लमार्गकी

प्रशंसाके लिये है, ऐसा पण्डितलोग कहते हैं। वस्तुतः जो ब्रह्मवेत्ता हैं, उनके विषयमें मार्ग-विचार अनावश्यक है। उनको दक्षिणायनमें मरनेपर भी ज्ञानके फलसे ब्रह्मप्राप्ति ही होती है। भीष्मने जो प्रतीक्षा की थी, उसका तात्पर्य यह है कि इच्छामृत्यु होनेपर भी जगत्को शुक्लमार्गकी महिमा बतलानेके लिये उन्होंने ऐसा किया था। याज्ञवल्क्य-स्मृतिके सप्तम अध्यायमें आया है कि 'देवयान गतिं प्राप्त होता है।' उसमें पितृयाणका भी उल्लेख १९५-१९६)। बौधायन पितृमेध सूक्त दूसरे है—'उदगायने आपूर्यमाणपक्षे दिवा क्रत्वन्ते श्रे मित्युपदिशन्ति।' इस प्रकार पुराणादि अनेक शुक्ला-कृष्णा गतिका तारतम्य प्रदर्शित हुआ है।

(४)

मृत्यु-राज्यका विस्तार

कालराज्य ही मृत्यु-राज्य है। जहाँतक कालका प्रभाव है, वहाँतक वह मृत्युराज्यके अन्तर्गत है। कालका मुख्य कार्य है—कलन। यह कालराज्यमें सर्वत्र विद्यमान है। इसी कारण कालराज्यमें सर्वत्र और सर्वदा परिणामकी क्रिया चलती है। यहाँ क्रम है, पूर्वापरविभाग है और तदनुरूप वैचित्र्य भी है। निम्नस्तरमें अर्थात् पृथिवी आदिमें छः प्रकारके भाव-विकार देखनेमें आते हैं—जायते (उत्पन्न होता है), अस्ति (है), विपरिणमते (विकारको प्राप्त होता है), वर्द्धते (बढ़ता है), अपक्षीयते (ह्रासको प्राप्त होता है) और नश्यति (नष्ट हो जाता है)। ये छः विकार कालिक परिणामके ही छः रूप हैं। देवलोकमें साधारणतः तीन अवस्थाओंमें परिणाम-कार्य करता है—अर्थात् आविर्भाव, स्थिति और तिरोभाव। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सूक्ष्म परिणाम सर्वत्र ही है। यही कारण है कि कालराज्य सर्वत्र ही क्षरणशील है। अवश्य ही यह खण्डकालकी बात है। यहाँ अतीत, अनागत और वर्तमानका भेद है। महाकालमें इस प्रकारका भेद नहीं होता; किंतु वहाँ सभी कुछ नित्य वर्तमान रूपमें विद्यमान है। जैसे समस्त विश्व भगवान्में अभेद अहं-रूपमें एक होकर रहता है। महाकालरूपा महासृष्टिमें सारा विश्व भगवान्में नित्य वर्तमान इदंरूपमें भासित होता है। महाकालमें समस्त विश्व नित्य द्रष्टा भगवान्के नि रूपमें विराजमान है। वहाँ कालकी परिणामरू नहीं होती।

महाकालके नीचे खण्डकालमें अनन्त, असी राज्य अवस्थित है। मृत्युराज्य इतना विशाल है सारा राज्य एक प्रकारका नहीं है। सारा ही मृत्यु अवश्य है और एक हिसाबसे जीवका भोगस्थान किंतु कर्मभूमि पृथिवीके सिवा अन्यत्र विद्यमान न पृथिवीपर भी सर्वत्र भोगस्थानकी ही प्रधानता कर्मभूमि एकमात्र भारतवर्ष है। भारतवर्षमें कर्मकी भी होती है और कर्मफलका भोग भी होता है; परंतु भोग होता है। अभिनव कर्म सर्वत्र उत्पन्न नहीं इस जटिल प्रश्नकी मीमांसा आवश्यक है, परंतु आलोचनाके लिये यहाँ अवकाश नहीं है। अतए जानना चाहिये कि कालराज्यके असंख्य भेद हैं संकर्षण क्रियाके फलसे असंख्य कालराज्योंका प्रल है, तब सारा विश्व अखण्डरूपमें महाकालमें अधि जाता है। परिणामहीन, उदयास्तहीन परमात्माका य 'स्वरूप' है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

(५)

में आकुञ्चन और प्रसारणके कार्य होते हैं । समस्त मायातीत शाक्त जगत्में ऐसा ही होता रहता है । यह दीर्घकालतक होता रहता है । इसके बाद वह भी नहीं रहता । यही कालसाम्यकी अवस्था है । इसके ब परम ज्ञानका उदय होता है । उस समय सृष्टि और संहार कोई अर्थ ही नहीं रह जाता ।

गति-विज्ञान और समुच्चय-रहस्य

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्० ए०, डी० लिट्)

मरणोत्तर जीव-सत्ताकी गतिके रहस्यका ही इस लेखमें 'गति-विज्ञान'के नामसे वर्णन किया गया है । कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हम मनुष्यदेहकी मृत्युके विषयमें आलोचना कर रहे हैं । मानवके अतिरिक्त पशु-पक्षीके विषयमें नहीं । मनुष्यसे निम्न स्थितिके सब जीवोंमें कर्म-सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि उन जीवोंमें अहंकारका विकास न होनेके कारण उनमें कर्मकी सम्भावना नहीं होती । इस प्रसङ्गमें हम मानवदेहसे अवरोहक्रममें अधःपतित पशु-पक्षी आदि देहधारी जीवकी बात नहीं कह रहे हैं । चौरासी लाख योनिके स्वाभाविक क्रमविकासके अनुसार क्रमशः पशु-पक्षीकी देह प्राप्त होती है, उसीको लक्ष्य करके यह कहा जा रहा है । अन्यथा, कोई योगी या भक्त पशु-पक्षीकी देहमें स्वेच्छापूर्वक अवस्थान करके जिस अवस्थाको प्राप्त होता है, उसको लक्ष्य करके यहाँ कुछ भी नहीं कहा जा रहा है । वस्तुतः कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी आदिकी कोई गति नहीं होती । शास्त्रोंमें उनके लिये किसी लोकका निर्देश नहीं है । उपनिषद्में 'जायस्व, म्रियस्व'—ये दो बातें उनको लक्ष्य करके कही गयी हैं । अतः वर्तमान गतिकी आलोचना उनके सम्बन्धमें प्रयोज्य नहीं है ।

अभी ज्ञानका उदय नहीं हुआ, पर जो निषिद्ध कर्म छो कर केवल वैध कर्मका अनुष्ठान करते रहते हैं, मृत्युके उनकी गति हुआ करती है । इसको 'पितृयाण गति' क हैं । इस गतिके फलस्वरूप वे धूममार्गके द्वारा पुण्यक्र अनुरूप स्वर्गादि लोककी उपलब्धि और भोग प्राप्त करते यह सब उनके अनुष्ठित शुभकर्मके फलसे प्राप्त होता परंतु यह अनित्य है । इसी कारण पुण्यकी मात्राके अनु स्वर्गादि लोकमें उनको भोग प्राप्त होता है । पुण्यक्षय जानेपर वे स्वर्गसे च्युत हो जाते हैं । किं बहुना, यह र वास एकाधिक स्वर्गमें भी हो सकता है । परंतु स्वर्ग अनित्य हैं । इसी कारण भोगके समाप्त होनेपर, अ पुण्यक्षयके साथ-साथ उनको मर्त्यलोकमें जन्म ग्रहण क पड़ता है । किं बहुना, स्वर्गसे च्युत जीव साधारणतः वंशमें जन्म ग्रहण करता है । यह जन्म-ग्रहण उन सब जी शेष कर्म या अवशिष्ट कर्मके द्वारा हुआ करता है । जैसे भरे बोतलसे जल गिरा देनेपर भी उस खाली बोतलमें अवशिष्ट जलका अंश रह जाता है, उसी प्रकार स्वर्गभे द्वारा क्षीण हो जानेपर भी जो कुछ पुण्यकर्म अ रह जाता है, उसीके फलसे पुनरावर्त्तन होता है

चिह्न वर्तमान रहते हैं। किसी-किसी क्षेत्रमें कठिन रोग लेकर देह धारण करना पड़ता है। यह सब व्यतिक्रम बहुधा एकाधिक जन्ममें भी संघटित होता है। स्वर्गकी प्राप्ति या नरकमें पतन—दोनों धर्मराजके विचारके बाद निश्चित होते हैं। इन दोनों गतियोंके फलसे पुनरावर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है।

स्वर्गके सम्बन्धमें यहाँ दो-एक बात कह देना आवश्यक है। यहाँ जिस स्वर्गकी बात कही गयी है, वह निम्न स्तरका स्वर्ग है। वह सकाम पुण्यकर्मके फलसे प्राप्त होता है। इस निम्न स्वर्गसे ऊपर उच्च कोटिका ऊर्ध्वस्वर्ग है। वह ज्ञानहीन पुण्यकर्मके फलसे प्राप्त नहीं हो सकता। निम्न कोटिके स्वर्ग काम्यकर्मके फलके भोगस्थान हैं। वहाँ भोगोपयोगी सारी वस्तुएँ इच्छामात्रसे प्राप्त होती हैं, किसीसे माँगना नहीं पड़ता। अनुकूल अप्सरा, अमृतरस, नाना प्रकारके सुस्वादु फल, सुन्दर दृश्य, दिव्य सुगन्ध, स्वर्णपद्मसे परिपूर्ण सरोवर, नाना प्रकारकी भोग्य वस्तुएँ—सब वहाँ सहज ही प्राप्य हैं। यह स्वर्ग भोगका स्थान है। भोग समाप्त होनेपर पतन अवश्यम्भावी है। ये निम्नसे निम्नतर स्वर्ग बहुसंख्यक हैं। निम्न स्वर्गके अधिष्ठाता इन्द्र देवता हैं। उच्चकोटिका ऊर्ध्वस्वर्ग इन्द्रके अधीन नहीं है। महर्लोक, सत्यलोक, तपोलोक उसीके अवान्तर विभाग हैं। ज्ञान-कर्मका समुच्चय हुए बिना उनकी प्राप्ति नहीं होती। योगशक्ति तथा ज्ञानके क्रमविकासके अनुसार अत्युच्च ऊर्ध्वतम स्वर्गकी प्राप्ति होती है। कहना न होगा कि यह 'पितृयाण पथ'से प्राप्य नहीं है।

अब 'देवयान मार्ग'की बात कहते हैं। पितृयाण मार्गमें शुभ और अशुभ दोनों कर्मोंकी गति होती है। कुछ दूरतक एक ही पथसे गति होती है, उसके बाद पथ भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। देवयान पथसे जो गति होती है, वह शुक्ला गति है। ज्ञानहीन कर्मसे इसकी प्राप्ति नहीं होती तथा कर्महीन ज्ञानसे भी नहीं होती; क्योंकि ज्ञानहीन कर्म स्वर्ग और नरककी ओर आकर्षण करता है। कर्महीन ज्ञान बिल्कुल ही गतिशून्य होता है, जैसा कि पहले कह चुके हैं। यहाँ ज्ञान और कर्मका समुच्चय आवश्यक है।

यह समुच्चय दो प्रकारका होता है—'सम समुच्चय' और 'विषम समुच्चय'। सम समुच्चयमें ज्ञान और कर्मकी मात्रा समान-समान होती है। विषम समुच्चयमें ज्ञान और कर्मकी मात्रा समान नहीं होती। कर्म अङ्गी होता है और ज्ञान अङ्ग। अथवा ज्ञान अङ्गी होता है और कर्म अङ्ग। ज्ञानके साथ कर्मका मिश्रण हुए बिना गति सम्भव नहीं। कर्म और ज्ञानमें किसकी प्रधानता है, यह मुमुक्षु साधककी साधनाके ऊपर निर्भर करता है। इस समुच्चयमें कर्मकी मात्रा अधिक रहनेपर पथमें प्रत्येक स्टेशन (Station) पर उतरना पड़ता है और वहाँका भोग प्राप्त करना पड़ता है। ज्ञानका अंश अधिक होनेपर ऐसा नहीं होता। ज्ञान-कर्म-समुच्चयका अन्तिम स्टेशन ब्रह्मलोक है। विशुद्ध ज्ञानके फलसे ब्रह्मलोकमें गति नहीं होती। उसकी बिल्कुल ही गति नहीं होती, यह बात पहले कही जा चुकी है। ब्रह्मलोकमें जाकर जबतक वासनाक्षय नहीं हो जाता, तबतक शुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती। ब्रह्मलोकमें जीवन्मुक्त दशामें अवस्थान करना पड़ता है। ये सारे जीवन्मुक्त हिरण्यगर्भके साथ सम्बन्धित हैं। जो लोग ब्रह्मलोकमें निम्न अधिकार लेकर प्रविष्ट होते हैं, वे हिरण्यगर्भके सालोक्यको प्राप्त करते हैं। जो उच्चतर अधिकारी हैं, वे सारूप्यकी प्राप्ति करते हैं। जो और भी उच्च अधिकारी हैं, वे सार्ष्टि और सामीप्यको प्राप्त करके चरम अवस्थामें सायुज्यको प्राप्त होते हैं। तत्पश्चात् महाप्रलयके समय ब्रह्माण्डके नाशके साथ-साथ जब हिरण्यगर्भकी देह नष्ट हो जाती है तो हिरण्यगर्भके साथ-साथ उनके अङ्गीभूत जीव परब्रह्मके साथ अभेदको प्राप्त होते हैं। यहाँ हिरण्यगर्भ नाम दिया गया है; परंतु वस्तुतः सब साधक इस अवस्थामें अपने-अपने इष्टको प्राप्त होते हैं।

प्रभुके धाम पहुँचकर नहीं लौटते

नरकोंमें जा, पापी सहते नरक-यन्त्रणा आठों याम।
पितृयाणसे जा, पाते जो भोग स्वर्गके दिव्य ललाम॥
करके भोग समाप्त, लौटते, भर मनमें वासना तमाम।
नहीं लौटते, देवयानसे जा पहुँचे जो प्रभुके धाम॥

मृत्युविज्ञान

(लेखक—वेदतत्त्वान्वेषक श्रीरणछोड़दासजी 'उद्धव')

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥

'प्रत्यक्ष और अनुमानसे जो तत्त्व न जाना जा सके, वह वेदसे जाना जाता है—यही वेदका वेदपन है ।'

मृत्युके बाद अज्ञात परलोकमें जानेवाले जीवात्माके लिये वैदिक वैज्ञानिकोंका कहना है कि 'आत्मा' पंद्रह आत्माओंका समूह है । ईश्वरके शरीरमें (१) स्वयम्भू, (२) परमेष्ठी, (३) सूर्य, (४) चन्द्रमा और (५) पृथिवी—ये पाँच मुख्य प्रकृतिके आत्मा हैं । (१) 'प्राण' प्रकृतिवाले 'स्वयम्भू'की—अन्तर्यामी, सूत्र और वेद—ये तीन कलाएँ हैं, (२) 'अप्' प्रकृतिवाले 'परमेष्ठी'की—चित् और यज्ञ—ये दो कलाएँ हैं, (३) 'वाक्' प्रकृतिवाले 'सूर्य'की—विज्ञान और प्राणदेवता—ये दो कलाएँ हैं, (४) 'अन्न' प्रकृतिवाले 'चन्द्रमा'में—आकृति, प्रकृति और अहंकृति—इन तीन कलाओंमें महत्सोमका सामान्य है और (५) 'अन्नाद' प्रकृतिवाली 'पृथिवी'में—चित्याग्नि, वायु, वैश्वानर, हिरण्यगर्भ और सर्वज्ञ—इन पाँच कलाओंकी प्रतिष्ठा है । इस प्रकार कुल पाँच विस्तारोंके पंद्रह विस्तार हो जाते हैं । प्रकृतमें प्रधान पाँच आत्माओंके विषयमें कहा जाता है, जिससे मुख्य नित्य विभु-आत्मा और खण्डात्माओंका विज्ञान होगा । हंसात्मा, वैश्वानरात्मा, तैजसात्मा और प्राज्ञात्मा—इन पाँचोंका समूह अन्नाद-प्रकृतिवाली पृथिवीका 'शारीरात्मा' है । इन सब खण्डात्माओंका आधार (इनकी अपेक्षासे अखण्ड) सोलहवाँ षोडशीपुरुष ही 'अमृतात्मा' नामसे प्रसिद्ध है ।

(१) अव्यक्तात्मा—

'अमृतात्मा' नामसे प्रसिद्ध षोडशीपुरुषके मन, प्राण और वाङ्मय सृष्टिसाक्षी कर्मात्माभागकी बलप्रधान सृष्टिकी इच्छासे सम्बन्ध रखनेवाले मनोमय काम, प्राणमय तप तथा वाङ्मय श्रम—इन सृष्टिकर्मोंके सामान्य तीन साधनोंके व्यापारसे सबसे पहले वही प्राकृतात्मा 'अव्यक्तात्मा' कहलाया है । यह 'शान्तात्मा' नामसे भी प्रसिद्ध है । षोडशीपुरुष विश्वात्मासे सबसे पहले आकाशात्मा इसी अव्यक्त स्वयम्भूका प्रकटीकरण हुआ है । इसी अभिप्रायसे कहा गया है—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः ।
(तैत्तिरीय उ० २ । १ । १)

शरीरसे आत्माके निकल जानेके बाद यह अव्यक्तात्मा सर्वव्यापक प्राणमूर्ति आकाशात्मामें यहाँका यहीं विलीन हो जाता है । असङ्ग होनेसे कर्मबन्धनसे सर्वथा अलग रहता हुआ यह अव्यक्त-आत्मा अन्य लोकोंमें नहीं जाता है । घटके फूटते ही घटका आकाश जैसे अन्य लोकोंमें न जाकर

चारोंकी समष्टि 'पृथिवीका प्रपञ्च' है। पृथिवीके ऊपर चन्द्रमा है। इससे सर्वेन्द्रिय, अनिन्द्रिय और अतीन्द्रिय—इत्यादि नामोंसे प्रसिद्ध प्रज्ञानात्मा (मन) का विकास होता है। चन्द्रमाके ऊपर सूर्य है। सूर्यका अंश विज्ञानलक्षणवाला ज्ञान ही बुद्धि है। सूर्यके ऊपर परमेष्ठी है और उसका अंश महानात्मा है। परमेष्ठीके ऊपर स्वयम्भू है और उसका अंश अव्यक्तात्मा कहलाया है। अव्यक्तसे परे उक्त पाँच प्रकृतिके अधिष्ठाता षोडशीपुरुष है। आत्माके विस्तारकी यही अन्तिम स्थिति है। इसीका स्पष्टीकरण करते हुए ऋषि कहते हैं—

> **इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।**
> **मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥**
> **महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।**
> **पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः॥**
> (कठ० १। ३। १०-११)

'इन्द्रियोंके अर्थसहित शरीरवाला प्राणात्मा पहला विवर्त है। इससे परे मन (प्रज्ञानात्मा) है, मनसे परे बुद्धि (विज्ञानात्मा) है, बुद्धिसे परे महानात्मा है, महान्से परे अव्यक्त है, अव्यक्तसे परे पुरुष है। यही अन्तिम धाम है।' श्राद्धकर्मके सिवा सब ओर इसी क्रमकी प्रधानता समझनी चाहिये।

(३) विज्ञानात्मा—

सूर्यसे प्राप्त विज्ञानात्मामें 'धिषणा' और 'प्राण'—ये दो धाराएँ कही हैं। धिषणाको ज्ञान कहा है और प्राणभागको कर्म कहा है। ज्ञान-कर्ममयी विज्ञानात्मिका बुद्धिके आठ प्रकार हो जाते हैं। इस सूर्यके विज्ञानात्माका प्रधान कर्म है—प्रज्ञान मनवाले वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञके समष्टिरूप कर्मात्माको कर्ममें लगा रखना। इसीकी प्रेरणासे कर्मात्मा कर्म करनेमें समर्थ होता है, इसलिये इसे 'कारयिता' (कर्म करानेवाला) कहा गया है। प्रज्ञान (मन) पर विषय आते हैं, और विज्ञानात्मा (बुद्धि) विषय पर जाता है। 'यह बात हमारी समझमें नहीं आयी, अमुक बात हमें जँचती ही नहीं'—ये व्यवहार मनसे सम्बन्ध रखते हैं। 'हमारा खयाल उस

गिरनेके बाद यह विज्ञानात्मा भोग-साधक बनकर कर्मात्माके साथ साक्षीरूपसे लगा रहता है। अपने स्वरूपसे असंग इस विज्ञानात्माकी गति, श्राद्ध और प्रेतकर्म आदिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह क्षेत्रज्ञ-विज्ञान क्षेत्रका अधिष्ठाता मात्र है।

(४) महानात्मा—

अध्यात्मसंस्थामें मन एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, किंतु चार मन हैं। अव्यय, महान्, प्रज्ञान और प्राज्ञके भेदसे मन चार प्रकारका है। अव्यय मन श्वोवसीयस् और श्वोवस्यस् ब्रह्म नामसे प्रसिद्ध है। महान् मन 'सत्त्व' कहलाता है। प्रज्ञान मन 'सर्वेन्द्रिय' है, एवं प्राज्ञ मन 'इन्द्रिय-मन' नामसे प्रसिद्ध है। प्राज्ञ मन कर्मात्माका आधार है, प्रज्ञान मन विज्ञानात्माका आधार है, महान् मन अमृतात्माका आधार है और अव्यय मन सबका आधार है। इनमें अव्यय मनका एक स्वतन्त्र विभाग है। महान्, विज्ञान और प्रज्ञान—इन तीनोंका एक स्वतन्त्र विभाग है। इन तीनोंका कर्मकी गतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है, परंतु इतना ध्यान रखिये कि श्राद्धकर्मकी मूल प्रतिष्ठा शुक्रतत्त्वपर स्थित पितृप्राणमूर्ति महानात्मा ही है। सम्पूर्ण आत्मविवर्तोंमेंसे श्राद्ध केवल महानात्माके लिये ही किया जाता है।

(५) प्राणात्मा—

वेद-शास्त्रमें आत्मनिरूपणके सम्बन्धमें किसी भी अंशमें त्रुटि नहीं है, तो भी विज्ञानदृष्टिके विलुप्तप्राय हो जानेसे विज्ञानवाले वेद-शास्त्रके वास्तविक अर्थसे हम बहुत पीछे हट गये हैं या बहुत आगे बढ़ गये हैं। एक दल कहता है कि 'वेदमें विज्ञानका अन्वेषण करना मृगजलके समान है। वेद ईश्वरकी वाणी है; इसके द्वारा केवल ज्ञान, उपासना और कर्मकाण्डका ही प्रतिपादन होता है।' दूसरे दलकी वेदार्थके सम्बन्धमें इससे भी भयंकर मनोवृत्तियाँ हैं। आत्मतत्त्वप्रतिपादक, परस्परमें सर्वथा विरुद्ध शास्त्रीय-सिद्धान्त हमें उलझनमें डाल रहे हैं। सत्य तत्त्व एक ही सकता है, अनेक नहीं; ऐसी स्थितिमें कौनसे सिद्धान्तको सत्य समझा जाय! जीवके सम्बन्धमें यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब जीव ईश्वरका अंश माना गया है, फिर पापके घर जीव क्यों

भूतलपर एक बड़ा पर्वत है, पर्वतपर एक किला है, किलेपर आकाशसे वृष्टि होती है। मेघका शुद्ध जल किलेपर आते ही पर्वतकी कन्दराओंमें आता हुआ खण्ड-खण्डरूपमें परिणत होता हुआ किलेकी और पर्वतकी मलिनतासे मलिन हो जाता है। यही अवस्था यहाँ है। वे ही ईश्वरीय गुण शरीररूप भूपिण्डपर स्थित प्रज्ञानरूप किलेमें आकर, पर्वतके अवयवस्थानीय जीव-संस्थामें आकर, प्रज्ञाके अपराधरूप मलसे मिले हुए पापरूपमें परिणत हो जाते हैं। ईश्वरके समान जीव भी बिलकुल विशुद्ध है; ईश्वरीय जो गुण जीवमें आते हैं, वे भी विभूतिरूप ही हैं; किंतु प्रज्ञा (मन) के अपराधसे वे ही गुण दोषरूपमें परिणत हो जाते हैं। दो स्वतन्त्र पदार्थोंमें जो गुण या दोष नहीं देखे जाते, इन दोनोंके मिलनेकी विचित्रतासे वहाँ गुण और दोषका उदय हो जाता है। जबतक अहंकार है, तभीतक जीव जीव है। जिस दिन इसका अहंकार नष्ट हो जाता है, उसी दिन पूर्वपदभावको प्राप्त होता हुआ वह पूर्णेश्वरमें विलीन हो जाता है। महर्षि कहते हैं—

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम॥
(कठ० २। १। १५)

मृत्युके अनन्तरकी दशा

मृत्युके अनन्तर इस लोकसे पितृलोकमें मनुष्य किस प्रकार जाते हैं—फिर वहाँसे कैसे लौटते हैं, इस आवागमनकी शैलीका पूर्ण विवरण सामवेदके ताण्ड्यमहाब्राह्मणके छान्दोग्य-उपनिषद्-भागमें (५। ३। १०) किया गया है। वहाँ मृत्युके अनन्तर तीन प्रकारकी गति बतलायी गयी है—अर्चिर्मार्ग, धूममार्ग और दोनोंसे अतिरिक्त तीसरा उत्पत्ति-विनाशमार्ग। पूर्वके दो मार्गोंको ही देवयान और पितृयाणमार्ग कहा जाता है। शरीरसे निकलकर जानेवाली देवचितिरूप क्षरपुरुषकी कला है, जिसमें प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा, विज्ञानात्मा और महानात्मा सम्मिलित रहते हैं। दार्शनिक भाषामें इस देवचितिको 'सूक्ष्मशरीर' नामसे गया, तो भस्मरूप हो जाता है, यदि कोई मांस खानेवाला जन्तु उसे खा गया, तो विष्ठारूप होकर उसके उदरसे निकलेगा और यदि कोई स्थूलशरीर पड़ा ही रह गया, या भूमिमें गाड़ दिया गया, तो वह कृमि (कीड़ों) के रूपमें परिणत हो जाता है, अर्थात् उसमें हजारों कीड़े-ही-कीड़े पड़ जाते हैं।

कहना यही है कि न स्थूलशरीर कहीं जाता-आता है, न मुख्य विभु-आत्मा; क्योंकि व्यापकमें गति हो ही नहीं सकती। तब शरीरसे निकलकर लोकान्तर या जन्मान्तरमें जानेवाला सूक्ष्मशरीर ही है, जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि—ये १७ तत्त्व सम्मिलित हैं। इन्हींमें रहनेवाले चैतन्यका प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा आदि नामोंसे पूर्वमें निरूपण किया है।

अब वैज्ञानिक-प्रक्रियासे विचारना चाहिये कि यह सूक्ष्मशरीर कहाँ जायगा ? विज्ञानमें सजातीय-आकर्षणका सिद्धान्त मुख्य माना जाता है। प्रत्येक वस्तु अपने सजातीय घनकी ओर स्वभावतः जाती है। व्यष्टि समष्टिकी ओर जाया करती है। जैसे—मिट्टीका ढेला पृथ्वीकी ओर आता है। उक्त १७ तत्त्वोंमें मन प्रधान है और वह चन्द्रमाका अंश है। इसलिये चन्द्रमाके आकर्षणमें बँधकर वह चन्द्रलोकमें ही पहुँचेगा। वही दिव्य पितरोंका निवास है। वही मुख्य पितृलोक है। इसलिये स्वभावतः मृत पुरुषोंकी पितृलोकगति सिद्ध हुई।

यदि मनकी प्रधानता न रहे और सूक्ष्मशरीरका कोई और ही भाग प्रधान बन जाय, तो फिर उसके अनुसार गति होगी। मनके अनुसार चन्द्रलोककी गति नहीं बनेगी। मनकी प्रधानता दो प्रकारसे दबती है। जो तपस्वी, योगी या प्रबल उपासक होते हैं, वे विज्ञानात्मा या बुद्धिशक्तिको प्रबल कर मनको दबा देते हैं। विज्ञानात्मा या बुद्धितत्त्व सूर्यका अंश है, इसलिये वैज्ञानिक शैलीके अनुसार बुद्धिप्रधान होनेके कारण उनपर सूर्यका आकर्षण हो जाता है और वे सूर्यमण्डलकी ओर ...

कोई व्यक्ति धन लिये हुए न उत्पन्न होता है और न मरता है। अतः यह मानना चाहिये कि मैं धन-सम्पत्तिसे पृथक् हूँ। इनपर अपना अधिकार मानना मूर्खता है। इनके साथ ममत्व करना भयंकर भूल है।

जिस वस्तुका आदि है, उसका अन्त अवश्य होता है। जहाँ प्रारम्भ है, वहाँ समाप्ति है। भूतलपर शरीर-यात्राका प्रारम्भ जन्मसे होता है और समाप्ति मरणसे होती है। जन्म और मरण देहका होता है। आत्मा तो अनादि और अनन्त है। देह ही शैशव, यौवन और वृद्धता एवं क्षीणता, कृशता, पीनताका अनुभव करता है। जन्म होनेपर जब माता बच्चेकी आयुके विषयमें ज्योतिषीसे प्रश्न करती है, तब वह वस्तुतः उससे मृत्युकी तिथि पूछना चाहती है। जन्मके पश्चात् मरण ध्रुव सत्य है। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।' जिस प्रकार भरे हुए घड़ेमें छिद्र होनेपर धीरे-धीरे वह रिक्त होता जाता है, उसी प्रकारसे शरीर भी मृत्यु-छिद्र होनेके कारण धीरे-धीरे समाप्तिकी ओर प्रवृत्त होता रहता है। धन, परिवार और प्रतिष्ठा आदि तो बढ़ रहे हैं; किंतु आयु समाप्त होती जा रही है। जन्म होते ही मनुष्य मृत्युकी ओर अग्रसर होने लगता है, यद्यपि आयु बढ़नेपर बड़ा होना मानकर प्रतिवर्ष वर्षगाँठपर उत्सव मनाते हैं।

मृत्यु एक प्राकृतिक घटना है, जो प्रत्येक शरीरधारीके साथ घटित होती है; किंतु फिर भी मनुष्य मृत्युसे ऐसे डरते हैं, जैसे बालक अन्धकारमें प्रवेश करनेसे डरते हैं। जैसे कहींसे उड़ती हुई चिड़िया प्रकाशपूर्ण कमरेमें प्रवेश करके उसमें थोड़ी देर उड़ती हुई वहाँसे निकलकर फिर बाहर अन्धकारमें विलीन हो जाती है। ऐसा ही प्रतीत होता है—ऐहिक जीवन। मनुष्य मृत्युमें विलीन होनेके भयसे भयभीत

सुखद आलिङ्गन भी एक कला है। श्रेष्ठ सिद्धान्तों, आदर्शों-पर चलते हुए जीवनको सुखमय बनानेवाला व्यक्ति ही आदर्शोंके लिये मरना जानता है, ताकि मृत्यु एक सुखपूर्ण जीवनावसान बन जाय। आदर्शोंके लिये जीनेवाले और आदर्शोंके लिये ही मरनेवाले मनुष्य धन्य होते हैं और उनके लिये मृत्यु एक महोत्सव होता है।

विवेकशील व्यक्तिके लिये मृत्यु कोई समस्या नहीं है। यह देहान्तर-प्राप्तिका एक साधन है। मैं देह नहीं हूँ। मैं चैतन्य हूँ, मैं चिरन्तन हूँ। मेरी मृत्यु होनेका प्रश्न ही नहीं उठता है। आत्माका वाहन शरीर क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर—पञ्चतत्त्वोंसे विनिर्मित है और विनाशशील है। यही विवेक है, ज्ञान है।

मनुष्य धन-सम्पत्ति इकट्ठा करके संसारमें ही छोड़कर ऐसे चला जाता है, जैसे बटोही सरायमें कुछ समय रहकर अकस्मात् चला जाता है। संसारकी वस्तुएँ मेरी हैं ही नहीं और मेरी हो भी नहीं सकती हैं। उनके संग्रहके लिये पाप करना और उनके साथ मोह जोड़ना, अथवा उनपर अपना स्वत्व मानना, अधिकार समझना एक दुःखदायक भूल है।

मित्र और कुटुम्बी तो श्मशानतक साथ देते हैं और मृतक व्यक्तिकी देहको भस्मीभूत करके अपने-अपने कार्यमें संलग्न हो जाते हैं। इस जीवनकालमें किये हुए सत्कर्म अथवा दुष्कर्म संस्कार बनकर जीवात्माके आगामी जीवनमें प्रारब्ध बनकर साथ रहते हैं। वायु जिस प्रकार गन्धस्थानसे सुगन्ध अथवा दुर्गन्धको ग्रहण करके ले जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा भी त्याग दिये गये हुए पहिले शरीरसे मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर दूसरे शरीरमें ले जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

सुरक्षा करनेकी चिन्तामें अपनी शान्ति भङ्ग कर लेते हैं। हमें नित्य-प्रति अपने समक्ष अनेक मनुष्योंकी मृत्यु देखकर भी और सभीको खाली हाथ जाते हुए देखकर भी अपनी मृत्युपर विश्वास नहीं होता है और हम अपनी स्थिरताका प्रयत्न करते हैं। 'सामान सौ बरसके, पलकी खबर नहीं'। महाभारतके वनपर्वमें यक्षद्वारा यह पूछे जानेपर कि सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? युधिष्ठिरने उत्तर दिया—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥
(महाभारत, वनपर्व ३१३।११६)

'प्रतिदिन प्राणी मृत्युको प्राप्त होते हैं; किंतु फिर भी मनुष्य स्थिरता चाहते हैं (और ऐसा अभिमानपूर्ण आचरण करते हैं मानो उन्हें सदैव यहीं रहना हो); इससे बढ़कर और आश्चर्य क्या है!'

कुछ लोग विषम परिस्थितियोंमें भयभीत होकर उनसे बचनेके लिये मृत्युकी इच्छा करते हैं। कोई दुर्बुद्धि तो विषपान आदिके द्वारा आत्महत्या कर लेते हैं, जो संसारका घोरतम पाप है। जीवन प्रभुकी देन है। और इसका अधिकतम सदुपयोग करना हमारा परम धर्म है। कोटि-कोटि पुण्योंसे मनुष्ययोनि प्राप्त होती है। इसका उचित मूल्याङ्कन करना चाहिये। कुछ अल्पबुद्धि दुःखोंके मूलकारण मोहको तो विच्छिन्न नहीं करते हैं (मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला) और थोड़े समयके लिये दुःखोंको भूलनेके लिये मदिरापान आदिके द्वारा पवित्र प्रभु-मन्दिरस्वरूप शरीरको दूषित एवं नष्ट-भ्रष्ट करते हैं। यदि वे राम-नामरूपी सुमधुर सोम-रस पान करें और रामभक्तिरूपी संजीवनी बूटीका प्रयोग करें, 'रघुपति भगति सजीवन मूरी' तो भवरोग ही मिट जायँ। आजकलके कुछ दम्भी नेता तो गर्भपात-जैसे घोर पापके पक्षमें वकालत कर रहे हैं।

पञ्चभूतविनिर्मित शरीरका स्वभाव गलना-सड़ना है। शरीरका मोह मृत्युवेला समुपस्थित होनेपर पूर्वक प्राण-निर्गमनमें बाधक सिद्ध होता है तथा कारण मृत्यु भयानक प्रतीत होने लगती है।

अनेक संत शरीरके अति जर्जर होनेपर तथा चि विफलता देखकर चिकित्साका त्याग कर देते हैं तथ गङ्गा-जलका पान ही करते-करते प्राण-विसर्जन कर मरणावस्था होनेपर जैन साधु 'सल्लेखना' ग्रहण करके ओषधि, जल आदिका पूर्ण परित्याग करके मृत्यु आलिङ्गन करते हैं। संतोंके लिये मृत्यु एक मह जिसकी तैयारी करनेमें उन्हें एक विशेष आह्लादका होता है। उन्हें तो मृत्युद्वारको पार करनेपर प्रियतम संदर्शन होनेकी आशा ही आनन्दित करती रह

प्राणोत्सर्गके समय संसारके सभी विषयोंसे मित्रगण एवं कुटुम्बीजनसे मोह-नाता छोड़ प्रभुका नामजप तथा ध्यान करना चाहिये। वीतराग होकर प्र करे। शान्तरसमें निमग्न होकर, आत्मामें संस्थित शारीरिक एवं मानसिक दुःख-सुखसे ऊपर उठकर प्र विभोर हो जायँ। रामनाम सत्य है; सत्य बोलनेसे है। मरणासन्न होनेपर रामनामका सहारा ही शान्ति होता है।

जीवन-कालमें मरणकी इच्छा नहीं करनी चाहि मृत्यु समुपस्थित होनेपर जीनेकी इच्छा नहीं करनी च जीवनभर परोपकाररत रहकर, दयाद्रवित होकर निःस्वार्थ आदि करनेवाले व्यक्तिका मन मृत्युवेलामें अवश्य शान्त यदि किसीने जीवनमें आततायी बनकर अत्याचार कि तो उसे महाप्रयाणके समय अत्यधिक मानसिक कष्ट ह उदाहरणार्थ औरंगजेबके अन्तिम शब्द इसकी पुष्टि हैं। महमूद गजनवी भी मृत्युसंकटके समुपस्थित होनेप धनको धिक्कारने लगा था, जिसके हेतु उसने घोर अत्य किये थे। मृत्युके समय समस्त जीवनके पुण्य-पाप सामने मानो मँडराकर शान्ति अथवा अशान्ति दे

आदेश दिया और अपने प्रशंसकोंको भी न रोनेका आदेश दिया था। कभी-कभी अल्प आयुमें मृत्यु हो जाती है, जिसके कारण माता-पिता, कुटुम्बीजन तथा मित्रगण रोने लगते हैं; किंतु प्रभुका विधान सदैव प्रसन्नतापूर्वक मान्य होना चाहिये। मालीने हरे-हरे पौधोंको भी क्यों काट दिया, माली ही समझता है। कभी-कभी सड़क बनानेके लिये नये-नये मकान भी उखाड़ दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त सभी अपने-अपने कर्मानुसार अल्पायु अथवा दीर्घायुमें मृत्युको प्राप्त होते हैं। ईश्वरका विधान निर्दोष है। मोहवश रोकर दुःखवृद्धि करना अविवेक है। स्वयं रोना, दूसरोंको रुलाना अविवेक है। अनेक बार सहानुभूति प्रकट करनेवाले व्यक्ति स्वयं अश्रुपात करके दूसरेको शोकनिमग्न कर देते हैं; शोक दूर करनेका प्रयत्न ही नहीं करते हैं।

सत्य तो यह है कि संसारमें मिलना और बिछुड़ना सभी कर्मवश होते हैं। कुछ पक्षी एक वृक्षपर संयोगवश बैठे हैं। फिर वे उड़कर विभिन्न वृक्षोंपर बैठ जाते हैं और पुराने सम्बन्ध भूल जाते हैं। रेलके डिब्बेमें जब तक बैठना है, हँस-खेलकर प्रेमपूर्वक बैठना चाहिये। फिर विभिन्न स्टेशनोंपर सबको एक-एक करके उतरना पड़ेगा। यदि न उतरेंगे तो डिब्बेमें स्थान ही न रहेगा। संसारका खेल विचित्र है। एक व्यक्तिकी मृत्युपर एक स्थानपर रोना मच रहा है और उसके अन्यत्र जन्म लेनेपर किसी मा[illegible] गोदमें पुत्ररत्न आ जाता है और शहनाई बजती[illegible] मृत्यु होनेपर पुराने नाते टूट जाते हैं, जिससे उ[illegible] मिथ्यापन सिद्ध हो जाता है।

मृत्यु-महोत्सवके समुपस्थित होनेपर उल्लासका अ[illegible] करें। रामको हृदयमें आसीन करके, रामके ध्यान-स्म[illegible] निमग्न होकर राममें विलीन होना ही जीवन-यात्राकी [illegible] सफलता है।

किञ्चिन्मात्र तो विचार करें कि सच बात क्या[illegible] युधिष्ठिर कहते हैं—

अस्मिन् महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धने[illegible] मासर्तुदर्वी परिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्त[illegible]

(महाभारत, वनपर्व ३१३। ११८)

अर्थात् 'यह संसार एक महामोहरूपी कड़ाह[illegible] सूर्यरूपी अग्नि उसे गरम कर रही है, रात्रि और दिन ई[illegible] की भाँति उसे परितप्त कर रहे हैं, मास और ऋतु (समय[illegible] एक दर्वी (घोटनेवाला डंडा) है, जिसके द्वारा घोट[illegible] काल प्राणियोंको (कड़ाहमें) पका रहा है।' वास्तवि[illegible] (सत्य) बात यह है; शेष सब बातें व्यर्थ हैं।' राममय हो[illegible] पवित्रहृदयसे पुण्यकर्म करना ही एकमात्र सुरक्षा [illegible] वास्तविक सुख है।

अवसर बीतनेपर पछतानेसे क्या लाभ ?

लाभ कहा मानुष-तनु पाये।
काय-बचन-मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराये ॥
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहिं बुलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन समुझत नहिं समुझाये ॥
पर-दारा, पर-द्रोह, मोह-बस किये मूढ़ मन भाये।
गरभवास दुखरासि जातना तीव्र बिपति बिसराये ॥
भय, निद्रा, मैथुन, अहार सबके समान जग जाये।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गवाँये ॥
गई न निज-पर-बुद्धि सुद्ध ह्वै रहे न राम-लय लाये।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताये ॥

—तुलसीदासजी

मृत्युपर कुछ विचार

(१)

अन्तिम भावके अनुसार गति

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
(गीता ८। ६)

'अन्त समयमें जिन-जिन भावोंको स्मरण करते हुए मनुष्य देहत्याग करता है, अर्जुन! वह सदा उसी भावसे प्रभावित रहता है और वही-वही भाव—उस भावके अनुरूप देह प्राप्त करता है।'

अन्तिम समयका क्या अर्थ? एक व्यक्ति मूर्छित हो जाता है और वह मूर्छा लंबी चलती है। इस मूर्छामें ही उसके प्राण छूटते हैं तो?

इसका सीधा उत्तर है कि मूर्छासे पूर्वका जो उसका अन्तिम भाव था, वही अन्तिम भाव। मृत्यु मूर्छामें हो, निद्रामें हो या सावधानीमें हो—अन्ततः कोई भाव तो अन्तिम होगा ही। देहत्यागसे पूर्व जो मनका अन्तिम भाव था, जिसके पश्चात् मनमें दूसरा कोई भाव नहीं आया, वह भाव ही यहाँ ग्रहण करने योग्य है। फिर भले उस भावके तत्काल बाद शरीर छूटा हो अथवा कुछ काल पश्चात्।

मरण-क्षणके इस अन्तिम भावकी बड़ी महिमा है। मनुष्यका यही भाव निर्णायक है कि उसकी कैसी गति होगी।

प्रारब्ध कैसे बनता है?

मनुष्य ही कर्मयोनिका प्राणी है। शेष सब प्राणी भोगयोनिके हैं; अतः मनुष्यदेहके मरण-क्षणकी ही मुख्यता है और मनुष्यके मरनेके समय ही उसके वे सब प्रारब्ध बन जाते हैं, जो भोगयोनियोंमें उसे ले जानेवाले हैं।

जिस समय मनुष्यदेह छूटने लगता है, उस समय उसका प्रारब्ध तो समाप्त हो चुका होता है। अब उसे देहमें कोई भोग भोगना है नहीं। अतः इस जीवनके क्रियमाण कर्म संचितमें मिल चुके हैं। केवल संचित कर्मके संस्कारोंकी राशि रह गयी है और इसीमेंसे उसका नवीन प्रारब्ध बनना है।

मरते समय जो अन्तिम भाव उस मनुष्यके मनमें आया, कर्मनियन्ता सबसे पहले उस भावको सफल करना अनिवार्य मानता है। उस भावके साथ मेल करनेवाले ऐसे संस्कार संचितसे छाँटकर एक प्रारब्ध बनेगा, जिससे उस जीवको एक जन्म मिल सके। यह जन्म पृथ्वीपर ही मिले, यह आवश्यक नहीं है। स्वर्ग, नरक या अन्य किसी लोकमें जन्म मिले, पर वह अन्तिम संस्कार उस जन्ममें सफल बने। अब यह जो एक प्रारब्ध बना, उससे मेल खाता दूसरा, दूसरेसे तीसरा, इस प्रकार प्रारब्धोंकी लड़ियाँ बन जायँगी और यह श्रृङ्खला वहाँ समाप्त होगी, जहाँ अन्तमें फिर मनुष्य-जन्म मिलनेवाला प्रारब्ध बन जाय।

कर्मानुसार और अन्तिम संस्कार (भाव) के अनुसार यह भी हो सकता है कि किसी जीवका पहला ही प्रारब्ध मनुष्यजन्म पानेका बन जाय और दूसरा प्रारब्ध बने ही नहीं। यह भी हो सकता है कि पूरे चौरासी लक्ष योनियोंमें जानेके अथवा एक-एक योनिमें कई-कई बार जन्म लेनेके प्रारब्ध बनें और तब कहीं मनुष्य-योनि पानेका प्रारब्ध बने। प्रत्येक दशामें श्रृङ्खला मनुष्यजन्म देनेवाला प्रारब्ध बनाकर समाप्त हो जाती है।

कर्म-नियन्ताके लिये दो नियम मुख्य हैं—१—अन्तिम भाव सफल हो, पहला जन्म ऐसा देना है। २—अब यदि अन्तिम भाव अनेक योनियोंमें सफल हो सकता है तो देखना है कि उसके प्रारब्धोंकी श्रृङ्खला इस प्रकार बनानी है, जिससे छोटी-से-छोटी श्रृङ्खला बने। प्रारब्धोंका संयोजन इस प्रकार करना है कि कम-से-कम प्रारब्ध बनें और वह जीव शीघ्र मनुष्य बन सके।

दयामय भगवान्‌का ही यह परम दयापूर्ण विधान है कि जीवको बार-बार यथासम्भव शीघ्र अवसर मिलता है, साधन-भजनके द्वारा अपने संचितकी अशुभ राशिको भस्म करके जन्म-मरणसे मुक्त हो जानेका।

(२)

आत्मत्याग-आत्महत्या-स्वेच्छामृत्यु

'आत्मा' शब्दका अर्थ यहाँ स्थूलशरीर है; यह बात हमारी समझमें स्पष्ट रहनी चाहिये; क्योंकि आत्माका जो मुख्यार्थ चेतन है; उसका न त्याग किया जा सकता है और न उसकी हत्या की जा सकती है।

'गो-हत्या-निरोध' के प्रश्नको लेकर पिछले समय कुछ महाप्राण महात्माओं तथा अन्य लोगोंने अनशन किया था। कुछ विद्वन्मन्य व्यक्तियोंने उस त्यागके महत् प्रयासको 'आत्महत्याका प्रयत्न' कहनेकी धृष्टता की थी। यदि मनुष्यकी बुद्धिमें भ्रम हो जाय तो वह उलटा समझने लगता है। तामसी बुद्धि पुण्यको पाप और पापको पुण्य बतलाती है। अतः आवश्यक है कि हम यहाँ आत्मत्याग, आत्महत्या और स्वेच्छामृत्युके भेदोंको ठीक-ठीक समझ लें।

आत्मत्याग

अनशन ही आत्मत्याग नहीं है। पिछले वर्षों वियत-नाममें कुछ बौद्ध भिक्षुओंने वहाँके शासकके विरोधमें अपनेको सार्वजनिक स्थानोंमें भस्म कर दिया। यह प्रयत्न आत्महत्या माने जायँ, ऐसा कहना धृष्टता होगी।

अनशन और आत्मदाह—ये दोनों आत्महत्या भी हो सकते हैं और आत्मत्याग भी। इनमें उद्देश्यको देखना पड़ेगा। वैयक्तिकरूपसे भी जब अन्यायके प्रतिकारका दूसरा कोई उपाय न रह जाय, तब निर्बलके लिये अनशनका मार्ग अपनाना आत्महत्या नहीं है।

जब कोई धर्म, जाति, समाज या राष्ट्रके लिये अपने जीवनको समर्पित कर देता है, तब उसके प्राणान्तकी रीति क्या रही, इसका कोई अधिक महत्त्व नहीं रह जाता। यतीन्द्रनाथ दास और उत्तम विजयपुंगीने अनशन करके प्राणत्याग किया था। उनका अनशन कारागारमें बंदी देशभक्तोंके कष्टको कम करनेके लिये था। सैकड़ों क्रान्तिकारी फाँसीपर चढ़े अथवा गोलीसे मारे गये। श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी अपने नगरमें होनेवाले साम्प्रदायिक दंगेको शान्त करनेका प्रयत्न करते समय आततायीद्वारा मार दिये गये। ये सब समानरूपसे महान् एवं आत्मत्याग करनेवाले पुण्यात्मा होने चाहिये।

जब व्यक्तिगत स्वार्थ और सर्वथा अनुचित दुराग्रह किसीके अनशन, आत्मदाह या मृत्युका कारण हो—तभी उसे 'आत्महत्या' कहा जा सकता है। जैसे कोई किसीके विरुद्ध अनशन करे—'मुझे इतने सहस्र रुपये दो या मैं तुम्हारे द्वारपर प्राण दे दूँगा।' अथवा कोई हठ करे—'अमुक वर्ग या परिवार मेरा धर्म, मेरी आराधना-पद्धति अपनावे, नहीं तो मैं आत्मदाह कर लूँगा।' यह सर्वथा आत्महत्याकी बात है। इसे शासनको दण्डनीय मानना चाहिये और सामान्य व्यक्तियोंको ऐसे दुराग्रहोंकी—मृत्युकी भी उपेक्षा करनी चाहिये।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजीने भी कई बार अन[शन] किया। उनके अनशनको कोई आत्महत्याका प्रयत्न क[हे तो] वह मूर्ख ही होगा। इसी प्रकार किसी भी महत् प्रय[त्नके] लिये होनेवाला अनशन अथवा अन्य किसी प्रकारसे मृत[्युका] वरण 'आत्मत्याग' है, पुण्य है।

जिन कार्योंमें मृत्यु होनेकी सम्भावना अधिक रहती [है,] उनमें किसी महान् उद्देश्यको लेकर जो सम्मिलित होते हैं वे भी 'आत्मत्यागी' हैं। उनकी मृत्यु न हो या हो; [पर] उन्होंने अपनी ओरसे तो अपनेको उसके लिये प्रस्तुत [कर] ही दिया था। जैसे, जो लोग स्वाधीनताके क्रान्तिक[ारी] आन्दोलनमें सम्मिलित हुए, जो लोग सत्याग्रह आन्दोल[नमें] गोली चलनेकी सम्भावना होनेपर भी जुलूसों और सभाओं[में] डटे रहे, जो सैनिक देशकी रक्षाके लिये युद्धमें लड़ते [हैं] अथवा जिन पुण्यपुरुषोंने गोरक्षार्थ आमरण अनशनका [व्रत] लिया था, ये सब आत्मत्यागी हैं।

आत्मत्याग महान् पुण्य है; क्योंकि प्राणीको स[बसे] अधिक मोह शरीरसे—जीवनसे है। किसी महान् उद्देश्[यके] लिये अपने जीवनके त्यागका संकल्प महत्संकल्प है अ[ौर] उसका पुण्यफल भी महान् है।

आत्महत्या

जहाँ आत्मत्याग महापुण्य है, वहीं आत्महत्या महाप[ाप] है। किसी दुराग्रहके वश, किसी रोग-शोक-अर्थहानि-अपम[ान] या इनके भयसे; किसी असफलता-अयश आदिसे घबराक[र] किसी लड़ाई-झगड़ेके कारण जब मनुष्य बलात् मरता है, उसे 'आत्महत्या' कहा जाता है।

विष खाकर, गोली मारकर, जलमें डूबकर, आग[में] जलकर, फाँसी लगाकर, ऊँचेसे कूदकर, रेल या किसी भा[री] यानके नीचे आकर, बिजलीसे या अन्य किसी भी प्रका[र] मृत्युको चुना जाय; मृत्युकी पद्धतिके कारण कोई अन[्तर] नहीं पड़ता। इससे आत्महत्याका पाप कम नहीं होता।

आत्मत्याग और आत्महत्यामें एक बड़ा अन्तर है आत्मत्याग विचारपूर्वक होता है। उसमें आवेश-आवेग न[हीं] है। आत्महत्या आवेशमें होती है।

आत्महत्याकी इच्छा एक मनोरोग है और इसप

उसे कह दें—'यह अग्नि है' तो उसके हाथपर फफोला पड़ जायगा। उस व्यक्तिके मनमें असंदिग्धभाव बना कि वह अग्नि है, यह तो ठीक; किंतु ठोस भौतिक पदार्थ बरफका गुण-धर्म उसके संकल्पने कैसे बदल दिया ?

इतनी सब बातोंको यहाँ लिखनेका तात्पर्य यह है कि सिद्धियोंका तत्त्व ही यही है कि जगत्‌के पदार्थ वस्तुतः ठोस पदार्थ नहीं हैं। वे संकल्पात्मक हैं। सृष्टिकर्ताका संकल्प ही घनीभूत होकर हमें इन पदार्थोंके विभिन्न रूपोंमें उपलब्ध हो रहा है। जैसे स्वप्नका समस्त दृश्य, उसके सब पदार्थ संकल्पात्मक होते हैं, उसी प्रकार हमारा जाग्रत्‌का यह संसार भी संकल्पात्मक ही है। इसीलिये प्रबल संकल्प इसमें अपने अनुकूल परिवर्तन कर लिया करता है।

'जगत् स्वप्नवत् है। यह मायामय है।'—इस प्रकारकी बातें प्रायः सभी धार्मिक ग्रन्थोंमें प्रचुरतासे पायी जाती हैं। एक बार आप इसे ठीक हृदयंगम कर लें तो जगत्‌में जो कुछ भी अद्‌भुत आश्चर्यजनक लगता है, उसको समझनेमें आपको कठिनाई नहीं होगी। इस तथ्यको अवगत किये बिना जो भी समाधान ढूँढ़ें अथवा दिये जायँगे, उनकी अपूर्णता नयी-नयी शङ्काएँ उत्पन्न ही करती रहेंगी।

अब अपने मूल विषयपर आवें। जब जगत्‌के सब पदार्थ संकल्पात्मक हैं, तब शरीर भी संकल्पात्मक ही है। किसीका शाप-वरदान अथवा अपना प्रबल संकल्प शरीरको अपने अनुकूल परिवर्तित कर सकता है, सिद्धिके द्वारा शरीर भारी-हल्का, छोटा-बड़ा हो सकता है, तो शरीरका जन्म तथा उसका लय भी प्रबल संकल्पके अनुसार हो सकता है; क्योंकि संकल्प मनमें होता है और स्थूल शरीरके न रहनेपर भी मन तो रहता ही है।

जो तपस्वी, सिद्ध पुरुष माताके गर्भमें आना पसंद नहीं करते, उनका संकल्प ही उन्हें 'अयोनिज' जन्म दे[illegible] है। महर्षि अगस्त्य, महर्षि वसिष्ठ, द्रौपदी, धृष्टद्युम्न[illegible] जन्मकथाएँ इसी बातको बतलाती हैं। इनके पूर्वज[illegible] वर्णन पढ़नेपर यह बात स्वयं स्पष्ट हो जाती है। स[illegible] यदि प्रबल है तो स्रष्टाके संकल्पसे एक होकर उ[illegible] परिवर्तन कर लेता है। इन्द्रजाल करनेवाले पदार्थको [illegible] देरके लिये दिखा देते हैं, अनुभव करा देते हैं। उस [illegible] वह पदार्थ देखने, छूने, चखनेमें वास्तविक ही लगता[illegible] जो बात संकल्प कुछ क्षणके लिये सम्भव बना सकत[illegible] वही बात अधिक शक्ति होनेपर कुछ वर्षके लिये भी स[illegible] बना सकता है, यह बात समझमें आनी चाहिये। इस [illegible] उनके शरीर वैसे ही साधारण होते हैं या हो सकते हैं, [illegible] साधारण जन्मसे उत्पन्न शरीर। यह बात वैसी ही है जैसे सं[illegible] बलसे बनाये गये या बदले गये पदार्थ गुण-धर्ममें सा[illegible] पदार्थों-जैसे ही बनते हैं और साधारण पदार्थोंके समा[illegible] उनपर वातावरणका प्रभाव पड़ता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु या मीराँबाईने कोई संकल्प [illegible] किया था श्रीविग्रहमें लीन होनेका; किंतु सहज भावसे उ[illegible] मन उस श्रीमूर्तिमें लीन हो रहा था। यह तल्लीनता [illegible] बहुत बढ़ गयी—शरीर भी उस मूर्तिमें लय हो ग[illegible] शरीरका यह रूप भी मनने ही दिया है। हमारा स[illegible] शरीर हमारे सूक्ष्मशरीरके अनुरूप ही बना है। जब स[illegible] शरीरमें—मनमें सम्यक् एवं पूर्णतः दूसरा आकार [illegible] गया, उससे तादात्म्य हो गया तो इस शरीरका भी उ[illegible] तादात्म्य हो जाना स्वाभाविक है। माता देवहूतिके म[illegible] किसी आकारसे तादात्म्य नहीं आया। केवल भक्तिके क[illegible] हृदयका परिपूर्ण द्रवीभाव सम्पन्न हुआ; अतः उनका स्थ[illegible] देह भी द्रवीभूत हो गया।

होता है। कर्मका नियन्ता अपनी ओरसे कोई परिवर्तन प्रारब्धमें नहीं करता। लेकिन इस नियममें भी अपवाद है। जो भगवान्का आश्रय लेनेवाले लोग हैं, उनके सर्व-समर्थ परम दयामय प्रभु भले सर्वसामान्यके लिये समदर्शी हों; किंतु अपने शरणागतके लिये तो वे 'भक्तपक्षपाती' हैं। वे अपने आश्रितके ऐसे प्रारब्धभोगको, जो उसका अमङ्गल कर सकता हो (उनकी दृष्टिमें अमङ्गलकारी हो), निष्क्रिय कर देते हैं। भगवान्ने श्रीमद्भागवतमें स्वयं कहा है—

'यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।' (१०।८८।८)

'जिसपर मैं कृपा करता हूँ, (अनर्थोंमें ले जानेवाला) उसका धन मैं हरण कर लेता हूँ।'

अब प्रारब्धमें यदि उसके धन हो ही नहीं तो उसके हरणकी बात क्यों कही जाय ? केवल धन ही आप हरण नहीं करते; दुःख-दुर्भाग्य और पापादि समस्त अमङ्गलोंका हरण कर लेते हैं।

सबको स्वेच्छाभोग बनाइये

प्रारब्ध केवल परिणाम प्रकट करता है। आप कर्म करनेमें स्वतन्त्र हैं; अतः मानसिक कर्म करनेमें—भावना करनेमें भी आप स्वतन्त्र हैं। अतः आप चाहें और थोड़ा अभ्यास कर लें तो प्रारब्धके सब भोगोंको आप स्वेच्छा-भोग बना ले सकते हैं और ऐसा करनेपर आपके दुःख तो मिट ही जायँगे, हर कष्ट, हर अभाव आपको पुण्य देनेवाला बन जायगा।

आप परिस्थिति परिवर्तित कर देनेमें स्वतन्त्र नहीं हैं, यह बात प्रतिकूल परिस्थितिके लिये ठीक है। अनुकूल परिस्थिति—सुखके त्यागके लिये आप स्वतन्त्र हैं; क्योंकि नियम यह है कि पुण्यका भोग—पुरस्कारके त्यागमें प्राणी स्वतन्त्र होता है। पापका भोग—अपराधके दण्डको तो स्वीकार ही करना पड़ता है।

अब आप देखिये कि कर्म करनेमें—भावना बनानेमें तो आप स्वतन्त्र हैं ही, प्रारब्धमें भी जो सुखद है, अनुकूल है, उसे त्याग देनेमें—उसका दान कर देनेमें आप स्वतन्त्र हैं। केवल प्रतिकूल प्रारब्धको अस्वीकार करनेमें आप स्वतन्त्र नहीं हैं। यह प्रतिकूल प्रारब्ध भी जब स्वेच्छाभोगके रूपमें आता है, तो उससे आपको कोई कष्ट नहीं होता। उलटे उससे आपको प्रसन्नता होती है। आप व्रत, तप, दान, यज्ञ आदिमें भूखे रहते हैं, श्रम करते हैं, धनका त्याग करते हैं और इसमें प्रसन्नता तथा गौरवका अनुभव करते हैं। यह सब करके आपको पुण्य होता है।

परेच्छा या दैवेच्छासे जो प्रतिकूलता आती है, उसमें आप तप या त्यागकी भावना बना लें तो वह भी स्वेच्छा प्रारब्धके समान आपको पुण्य देगा तथा उसमें दुःख नहीं रहेगा। वह भी आपको प्रसन्न करेगा। एक साधुको ज्वर आया था। मैं उनके समीप गया तो वे बोले—'आज तप कर रहा हूँ। लोग पञ्चाग्नि तापते हैं, मैं जाठराग्नि ताप रहा हूँ।' अब ज्वर जितना तीव्र हो, तपकी बुद्धि उसमें उतनी ही अधिक। ज्वरकी पीड़ा तो ज्यों-की-त्यों बनी रही; किंतु उसमें दुःख नहीं रहा। उसमें गौरवभाव आ गया और ज्वरमें तपका पुण्य होने लगा।

मेरे एक परिचित व्यापारी हैं। बहुत ईमानदार, सच्चे तो हैं ही, बहुत प्रसन्नमुख, परिश्रमी और अध्ययनशील व्यक्ति हैं। व्यापारमें कभी हानि होती है तो प्रसन्नमुख कहते हैं—'सब मुझे ही क्यों मिलना चाहिये ? समाजने अपना भाग दान ले लिया।' अब घाटेमें उन्हें दान-बुद्धि हो गयी तो दुःख तो बिदा हो ही गया, दान करनेका पुण्य भी होता ही है।

एक सज्जन गिर गये। कड़ी चोट लगी। हड्डी टूट गयी। पैरपर पलस्तर चढ़ा था। हँसते हुए कह रहे थे—'चलो, प्रायश्चित्त हो गया। इन पैरोंसे जाने कितने ठौर-कुठौर घूमा हूँ, अब इन्हें दण्ड तो मिलना ही चाहिये था।'

'रपट पड़े की हरगंगा' व्यर्थ नहीं है। सचमुच उनका प्रायश्चित्त हो गया। आप भी इस प्रकारका अभ्यास कर लें तो प्रारब्धसे आये प्रतिकूल भोग आपको दुखी नहीं करेंगे—उनमें व्यथा नहीं होगी। साथ ही वे पुण्य देकर अथवा पापका प्रायश्चित्त पूरा कराकर जायँगे। आप उनके द्वारा यह दुहरा लाभ उठाना सीख लें।

अकालमृत्यु

केवल प्रारब्धसे आये दुःखोंके सम्बन्धमें ही भावना बदली जा सकती हो, ऐसी बात नहीं है। भावना तो मृत्युके सम्बन्धमें भी बदली जा सकती है। मृत्युके सम्बन्धमें भाव बदल लिया जाय तो वह सब झंझटोंसे—जन्म-मरणसे ही मुक्त कर देनेवाली हो जाती है। मृत्युके

सम्बन्धमें जो भाव कर लेते हैं—'अब निर्वाण हो रहा है' उन्हें मृत्यु सचमुच निर्वाण प्रदान करनेवाली बन जाती है।

यह मृत्यु भी दो प्रकारकी है—१–कालमृत्यु और २–अकालमृत्यु। आप भगवान्‌के चरणामृतका माहात्म्य सुनते हैं—'अकालमृत्युहरणम्'। यदि अकालमृत्यु कुछ हो ही नहीं तो उसे हरण करनेकी बातका अर्थ क्या ?

कालमृत्यु—प्रारब्धके अनुसार जिस जीवको, जिस शरीरमें जितने समयतक रहना है, उतने समयतक वह उस शरीरमें रहकर जब मरता है तो उसे 'कालमृत्यु' कहते हैं।

इस कालमृत्युके निमित्त कुछ भी हो सकते हैं। रोग, चोट, युद्ध, सर्पादि प्राणी या और कोई भी निमित्त कालमृत्युका हो सकता है।

सामान्यरूपसे कालमृत्युको टाला नहीं जा सकता। औषध, तन्त्र-मन्त्रादिसे कालमृत्यु नहीं टलती। लेकिन प्रबल अनुष्ठान, देवताका अनुग्रह या किसी समर्थका आयुदान नवीन प्रारब्ध-निर्माण करके कालमृत्युको भी टाल दे सकता है।

अकालमृत्यु—प्रारब्ध समाप्त हुए बिना ही जब कोई प्राणी शरीर त्याग देता है तो उसे 'अकालमृत्यु' कहा जाता है।

अकालमृत्यु जब स्वयं वरण की जाती है तो वह आत्मदान या आत्महत्या होती है। आत्महत्याके … हैं और आत्मदानके भी नाना प्रकार हो सकते हैं … प्रबल संकल्प, दूसरोंका प्रयत्न और ओषधि भ… दे सकती है।

जब कोई दूसरा देवता, सिद्ध, तपस्वी, … अपने बलसे या शापसे किसीको मार देते हैं तो … अकालमृत्यु' होती है। बिजली गिरनेसे, महामारीसे … सर्पादिके काटनेसे भी अकालमृत्यु हो सकती है।

उपासना, मन्त्र-तन्त्र, औषध आदिसे अका… निवारण किया जा सकता है—किया जाता है। य… प्रयोग ठीक हो रहा है तो प्रायः सरलतासे अका… निवारण हो जाता है।

भगवान्‌की शरण लेनेवालेकी रक्षा वे प्रभु स्व… हैं। अतः भक्तकी अकालमृत्यु न होती है और … सम्भव है। कोई प्रेतादि तो उसका भला क्या करेगा, कोई देवता या सिद्ध भी उसका अहित … जाय तो स्वयं अपना अहित कर लेगा। अम्बरीषपे… कृत्या उत्पन्न करके भगवान् शिवके साक्षात् अ… परम तपस्वी महर्षि दुर्वासाको ब्रह्मलोक, कैलास तो … स्वयं वैकुण्ठनाथके यहाँ भी शरण नहीं मिल सकी … उन्हें अन्ततः अम्बरीषके ही चरणोंपर गिरना प… अतः त्रिभुवनमें कोई निर्भय है तो वह श्रीह… चरणाश्रित ही है।

प्रभु-कृपा बिना जलन नहीं बुझती

ऐसी करत अनेक जनम गये मन संतोष न पायो।
दिन दिन अधिक दुरासा लागी सकल लोक फिरि आयो॥
सुनि सुनि स्वर्ग रसातल भूतल तहीं तहीं उठि धायो।
काम क्रोध मद लोभ अगिनते जरत न काहु बुझायो॥
स्रक चंदन बनिता बिनोद सुख यह जुर जरत बितायो।
मैं अजान अकुलाइ अधिक लै जरत माँझ घृत नायो॥
भ्रमि भ्रमि हौं हार्‌यौ हिय अपने देखि अनल जग छायो।
सूरदास प्रभु तुम्हरि कृपा बिनु कैसे जात बुतायो॥

—सूरदासजी

मृत्युकी विभीषिका और उसका निराकरण

(लेखक—श्रीरामलालजी)

विश्वके प्रायः समस्त धर्मग्रन्थोंमें मृत्युके विकराल तथा षण रूपका अङ्कन मिलता है। यद्यपि मृत्यु अपनी बाह्य कृतिमें रूपतः अत्यन्त भयंकर और अशोभन है, तथापि श्वके अनेक दर्शन और विचार तथा संत-महात्माओंके न्तनसे पता चलता है कि यह स्वरूपतः परम करुणामयी र परोपकारिणी है। जीवात्माका इसके माध्यमसे कल्याण-धन होता है। मृत्यु अनिवार्य है, इसकी वास्तविकताके रूपणमें भगवान् श्रीकृष्णका कथन है।

भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्न प्रतिक्रियाम्।

(श्रीमद्भागवत १।८।४)

मृत्युके भयसे छुटकारा पानेके लिये प्रायः यह बहाना केया जाता है कि 'मृत्यु नामकी वस्तुका अस्तित्व ही नहीं ।' अपने-आपको सान्त्वना देनेके लिये अनेक लोग ऐसा ी कहते हैं कि 'मृत्यु तो बहुत दूर है'। मृत्युके सम्बन्धमें इस तरहका दृष्टिकोण उसके भीषण रूपके प्रति हमें निश्चिन्तता नहीं प्रदान कर सकता। साथ-ही-साथ यह भी स्मरणीय है कि 'मृत्यु शाश्वत निद्रा है। इसमें भयके लिये अवकाश नहीं है।' पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटोने मृत्युको शरीरसे जीवात्माका अलग होना माना है। उसकी दृष्टिमें मृत्यु और कुछ भी नहीं है। संत तिरुवल्लुवरके तमिळ वेद 'कुरल'में विज्ञप्ति है कि "यह सोचना कि 'अमुक वस्तु सदा बनी रहेगी'—सबसे बड़ा अज्ञान है। पक्षी अपना घोंसला छोड़कर उड़ जाता है, इसी तरह देह और (जीव) आत्माका सम्बन्ध विनश्वर है। आत्मा देहको छोड़कर चला जाता है। मृत्यु नींद है और जन्म नींदके पश्चात् जागनेका नाम है।"

मृत्युके स्वरूपपर विचार करते हुए आधुनिक विज्ञान-जगत्के महान् वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र वसुका कथन है कि—'मृत्यु चेतन अवस्थासे अचेतन अवस्थाकी परिणति है।' सांख्यदर्शनके परम विज्ञानी भगवान् कपिलका देवहूतिके प्रति कथन है—

देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन्।
भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान्॥

जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः।
तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः॥

(श्रीमद्भागवत ३।३१।४३-४४)

इसका आशय यह है कि 'जीवके उपाधिभूत लिङ्गदेहके द्वारा पुरुष एक लोकसे दूसरे लोकमें जाता है और अपने प्रारब्ध कर्मोंको भोगता हुआ निरन्तर अन्य देहोंकी प्राप्तिके लिये दूसरे कर्म करता रहता है। जीवका उपाधिरूप लिङ्ग-शरीर तो मोक्षपर्यन्त उसके साथ रहता है तथा भूत, इन्द्रिय और मनका कार्यरूप स्थूलशरीर इसका भोगाधिष्ठान है। इन दोनोंका परस्पर संगठित होकर कार्य न करना ही प्राणीकी मृत्यु है तथा दोनोंका साथ-साथ प्रकट होना ही जन्म है।'

भारतीय चिन्तन-जगत्की यह प्रत्यक्ष अनुभूति है कि मृत्यु कितनी ही भयंकर और भीषण हो, वह भगवान्के विधानसे सर्वथा अनुशासित है। भगवद्वाक्य है—

'मृत्युश्चरति मद्भयात्।'

(श्रीमद्भागवत ३।२५।४२)

इस कथनकी सत्यता मृत्युकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें पूरी तरह चरितार्थ होती है। प्रजापति ब्रह्माद्वारा प्रजाकी सृष्टि होनेपर ही मृत्युकी उत्पत्ति हुई। इसके पहले मृत्युका अस्तित्व नहीं था। ऋग्वेदका 'नासदीय सूक्त' प्रमाण है।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः
किमासीद् गहनं गभीरम्॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥

(ऋग्वेद १०।१२९।१-२)

'इस जगत्के उत्पन्न होनेके पहले न असत् था, न सत् था। उस समय अनेक लोक भी नहीं थे। न आकाश था। जो उससे भी परे है, वह भी नहीं था। उस समय

कौन-सा पदार्थ सबको चारों ओरसे घेर सकता था; यह सब कहाँ था, किसके आश्रयमें था। समुद्रका गहन-गभीर जल भी कहाँ था। उस समय न मृत्यु थी, न अमृत ही था। जीवनकी सत्ता और लोप—दोनोंका अभाव था। रात और दिनका ज्ञान नहीं था। उस तत्त्वका स्वरूप प्राणशक्तिरूप था, पर स्थूल वायु न था। वह एक अपने ही बलसे समस्त जगत्को धारण करनेवाला अपनी ही शक्तिसे युक्त था।' 'उससे सूक्ष्म अन्य कुछ भी नहीं था। उस ब्रह्मने इन लोकोंकी रचना की।'

'स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति। स इमाँल्लोकान-सृजत।' (ऐतरेयोपनिषद् १।१-२)

जगत् तथा लोकों और प्रजाकी सृष्टिके बाद संहारका प्रश्न उठना स्वाभाविक ही था। महाभारतके द्रोणपर्वके ५२ वें से ५४ वें अध्यायतकमें मृत्युकी उत्पत्तिका उपाख्यान वर्णित है। देवर्षि नारदने सत्ययुगमें राजा अकम्पनको यह उपाख्यान सुनाया था। रणमें अपने पुत्र हरिकी मृत्यु हो जानेसे अकम्पनने बड़ा शोक किया। नारदने मृत्युका स्वरूप समझाकर उसे सान्त्वना दी।

उपर्युक्त उपाख्यानमें मृत्युकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें कहा गया है कि आदिसृष्टिके समय प्रजावर्गका सृजन होनेके उपरान्त संहारकी व्यवस्था नहीं थी। सम्पूर्ण जगत्को प्राणियोंसे परिपूर्ण देखकर ब्रह्मा उनके संहारके लिये चिन्तित हो उठे। उपाय न मिलनेपर उनके श्रवण-नेत्र आदिसे अग्नि प्रकट हो गयी। आकाश और पृथ्वी तथा दिशाएँ जलने लगीं। अनेक स्थावर-जङ्गम प्राणी विनष्ट हो गये।

उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोषजं तथा।
प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यो गोभ्यो नारी महात्मनः॥
कृष्णरक्ता तथा पिङ्गरक्तजिह्वास्यलोचना।
कुण्डलाभ्यां च राजेन्द्र तप्ताभ्यां तप्तभूषणा॥
सा निःसृत्य तथा खेभ्यो दक्षिणां दिशमाश्रिता।
स्मयमाना च सावेक्ष्य देवौ विश्वेश्वरावुभौ॥
(महाभारत, द्रोण० ५३। १७-१

उस नारीको ब्रह्माने पास बुलाकर कहा कि इन समस्त प्रजाओंका संहार करो। 'हे मृत्यो! तुम संह बुद्धिसे मेरे रोषसे प्रकट हुई हो। मूर्ख और पण्डित- समस्त प्रजाका संहार करती रहो। मेरी आज्ञासे यह व तुमको करना होगा। ऐसा करनेसे तुम कल्याण प्राप्त करोगी

त्वं हि संहारबुद्ध्याथ प्रादुर्भूता रुषो मम।
तस्मात्संहर सर्वास्त्वं प्रजाः सजडपण्डिताः॥
मम त्वं हि नियोगेन ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि।
(महाभारत, द्रोण० ५३। २१-२२

मृत्यु चिन्तित होकर फूट-फूटकर रोने लगी। पितामह उसका अश्रु अपने हाथमें ले लिया। मृत्युको सान्त्व देकर प्रसन्न किया। मृत्युने निवेदन किया कि पापसे डरती हूँ। जब मैं लोगोंके प्रिय पुत्र, मित्र, भा माता, पिता, पतिको मारने लगूँगी तो उनके सम्बन्धी मे अनिष्ट सोचेंगे।'.....'मुझे यमके भवनमें न जाना पड़े। आपकी आज्ञासे धेनुकाश्रम जाकर आपकी ही आराधन तत्पर रहकर तप करूँगी। मैं रोते-बिलखते प्राणियों नहीं मार सकूँगी। आप इस अधर्मसे मुझे बचा लीजिये मृत्युने प्रजाके हितकी कामनासे संहारमें मन न

वरदान देंगे। तुम पापमुक्त होकर अपने निर्मल स्वरूपसे विख्यात होगी।' मृत्युने ब्रह्माकी आज्ञा मान ली। उसने निवेदन किया—'लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता और एक-दूसरेके प्रति कही गयी कठोर वाणी—ये दोष ही देहधारियोंके शरीरका भेदन करें।' ब्रह्माने कहा—'ऐसा ही होगा। तुम धर्ममें तत्पर रहनेवाली और धर्मानुकूल जीवन बितानेवाली धरित्री होकर समस्त जीवोंके प्राणोंका नियन्त्रण करो। काम और क्रोधका परित्याग कर जगत्के प्राणियोंका संहार करो। ऐसा करनेसे अक्षय धर्मकी प्राप्ति होगी। मिथ्याचारी पुरुषोंको तो उनका अधर्म ही मार डालेगा।'

इस तरह नारदने अकम्पनको मृत्युकी उत्पत्तिका आख्यान सुनाया। यह आख्यान महाभारतमें वर्णित होनेके नाते सर्वथा ऐतिहासिक है। इसे कोरी कल्पना या भावात्मक रूपक मानना असंगत है। नारदने उत्पत्तिपर प्रकाश डालकर मृत-पुत्रके लिये शोक न करनेका जो उपदेश दिया, उससे मृत्युकी विभीषिकाका सहज निराकरण हो जाता है। नारदने कहा कि 'यही मृत्यु अन्तकाल आनेपर काम और क्रोधका परित्यागकर अनासक्तभावसे समस्त प्राणियोंके प्राणका अपहरण करती है। यही प्राणियोंकी मृत्यु है। इसीसे व्याधियोंकी उत्पत्ति हुई है। आयु समाप्त होनेपर सबकी मृत्यु होती है। आयुके अन्तमें सारी इन्द्रियाँ प्राणियोंके साथ परलोकमें जाकर स्थित होती हैं और पुनः उनके साथ ही इस लोकमें लौट आती हैं। इस तरह सभी प्राणी देवलोक-में जाकर देवस्वरूपमें स्थित होते हैं तथा वे कर्मदेवता मनुष्योंकी भाँति भोग समाप्त होनेपर इस लोकमें लौट आते हैं। भयंकर शब्द करनेवाला बलशाली प्राणवायु चेतन आत्माका नहीं, प्राणियोंके शरीरका ही भेदन करता है। आत्मा सर्वव्यापी और अनन्त तेजसे सम्पन्न है। उसका कभी आवागमन नहीं होता है'—

मृत्युस्त्वेषां व्याधयस्तत्प्रसूता
व्याधी रोगो रुज्यते येन जन्तुः।
सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्ते
तस्माच्छोकं मा कृथा निष्फलं त्वम्॥
सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्ते
गत्वा वृत्ताः संनिवृत्तास्तथैव।
एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र गत्वा
वृत्ता देवा मर्त्यवद् राजसिंह॥
वायुर्भीमो भीमनादो महौजा
भेत्ता देहान् प्राणिनां सर्वगोऽ[illegible]
नो वाऽऽवृत्तिं नैव वृत्तिं कदाचित्
प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजोविशिष्टः
(महाभारत, द्रोण० ५४। ४

नारदने कहा कि 'यह मृत्यु भगवान्द्वारा हितके लिये प्रदत्त है। समय आनेपर यह यथो[illegible] संहार करती है। प्रजावर्गका प्राण लेनेवाली मृत्यु ब्रह्माने रचा है। सब प्राणी स्वयं ही अपने-आपको [illegible] मृत्यु हाथमें डंडा लेकर इनका वध नहीं करती है[illegible] पुरुष मृत्युको ब्रह्माजीका रचा हुआ निश्चित विधान कर मृत प्राणियोंके लिये कभी शोक नहीं करते हैं'—

एषा मृत्युर्देवदिष्टा प्रजानाम्
प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत्।
स्वयं कृता प्राणहरा प्रजानाम्
आत्मानं वै प्राणिनो घ्नन्ति सर्वे
नैतान् मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति
तस्मान्मृतान् नानुशोचन्ति धीरा
मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम्
(महाभारत, द्रोण० ५४। ४

यह निर्विवाद है कि जो प्राणी जन्म लेता है, शरीरके साथ मृत्यु भी उत्पन्न होती है। मृत्यु होत[illegible] चाहे आज हो, अभी हो या सौ सालके ब[illegible] श्रीमद्भागवतमें सूतका शौनकादि ऋषियोंके प्रति कि 'स्थूल रूपसे परे भगवान्का एक सूक्ष्म अव्य[illegible] है। यह न तो स्थूलकी तरह आकारादि गुणोंवाल[illegible] देखने-सुननेमें ही आ सकता है। यही सूक्ष्मशरी[illegible] आत्माका आरोप या प्रवेश होनेसे यही 'जीव' क[illegible] और इसीका बार-बार जन्म होता है। उपर्युक्त सू[illegible] स्थूल शरीर अविद्यासे ही आत्मामें आरोपित है[illegible] अवस्थामें आत्मस्वरूपके ज्ञानसे यह आरोप दूर हो[illegible] उस समय—उस अवस्थामें ब्रह्मका साक्षात्कार [illegible] तत्त्वज्ञानियोंकी यह मान्यता है कि जिस समय यह परमेश्वरकी माया निवृत्त हो जाती है, उस समय परमानन्दमय हो जाता है तथा अपनी स्वरूप-प्रतिष्ठित होता है'—

अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम्।
अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात् स जीवो यत्पुनर्भवः॥

यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ।
अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥
यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः ।
सम्पन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ॥
(श्रीमद्भागवत १ । ३ । ३२–३४)

जीवात्माका परमानन्दमय हो जाना मृत्युकी विभीषिका-
[illegible]रिसमाप्तिका प्रतीक है। पाश्चात्त्य विद्वान् बेकनका
[illegible] है कि 'मृत्युसे मनुष्य उसी तरह डरता है, जिस
बालक अँधेरेमें जानेसे भयभीत होता है।' यूनानके
[illegible]निक सुकरातने, यह पूछे जानेपर कि 'आपको मृत्युसे
क्यों नहीं लगता है?' कहा था कि 'मुझे बड़ा आनन्द
रहा है कि मेरी आत्मा पाञ्चभौतिक शरीरके पिंजड़ेसे
होगी।' मृत्युकी भावनाका अन्त कर देना ही
[illegible]त्माके लिये बड़े श्रेयकी बात है। ईसाई-जगत्के प्रसिद्ध
पालका वचन है कि 'मृत्यु हमारा अन्तिम शत्रु है।
[illegible]र विजय पाना ही चाहिये।' भौतिक शरीर जायगा
इसे रोक रखनेकी ताकत किसीमें भी नहीं देखी गयी।
[illegible]-मन्थनके परिणामस्वरूप हाथमें अमृत-कलश लेकर प्रकट
[illegible]ाले धन्वन्तरिका शरीर भी चला ही गया। संत पलटू
[illegible]की स्वीकृति है—

'बैद धनन्तर मरि गया, अमर भया नहिं कोय।'

अनेक डाक्टरोंद्वारा यह प्रत्यक्ष अनुभव किया गया है
मृत्यु एक मूर्च्छामात्र है।' अमेरिकामें सैनफ्रांसिस्कोके
डाक्टर जेरम एन्डरसनने एक नौजवानसे वादा
[illegible]या था कि 'यदि वह उनसे पहले स्वाभाविक रूपसे मरे
[illegible]त्युकालीन वेदनाका अङ्कन करनेकी चेष्टा करे।' मरते
उस नौजवानके शब्द थे—'मुझे ऐसा लग रहा है
[illegible] मूर्च्छित हो रहा हूँ।' महर्षि रमणने गृहत्यागके पहले
के स्वरूपका प्रत्यक्ष अनुभव किया। एक दिन वे अपने
[illegible]ाके घरकी ऊपरी छतपर थे। उन्हें लगा कि मृत्यु आ
है। वे सोचने लगे कि "मृत्यु शरीरकी होती है या इसमें
रहनेवाले 'चेतन अहं' की।" वे छतपर उतान लेट गये
शरीरके अङ्गोंको शिथिल कर दिया। हाथ-पैर फैला दिये
सोचने लगे कि 'थोड़ी देरमें लोग मेरा मृत शरीर श्मशा[illegible]
ले जायँगे, जलाकर राख कर देंगे, तो क्या इसके ज[illegible]
जानेपर इसमें निवास करनेवाला 'अहं' भी जल जायगा
अन्तरात्माने उत्तर दिया कि 'ऐसा कभी नहीं हो सकता।
मृत्यु शरीरको मार सकती है। आत्मा अविनश्वर है।' [illegible]
सावधान हो गये। उन्होंने अनुभव किया की "मैं देख रह[illegible]
हूँ कि मृत्यु आ रही है। इसे देखनेवाला 'मैं' निस्संदेह
अमर है।" इन्दुमतीके मर जानेपर अजके शोक करनेप[illegible]
महर्षि वसिष्ठने जो सान्त्वना-संदेश भेजा था, उससे मृत्यु
की विभीषिकाके अस्थायित्व और जीवनकी क्षणभङ्गुरताक[illegible]
पता चलता है। महाकवि कालिदासकी उक्ति है—

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः ।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ॥
(रघुवंश ८ । ८७)

'देहधारीके शरीरका मरना स्वाभाविक ही है। विद्वानों-
का तो यह कहना है कि जीना ही बड़ा भारी विकार है।
प्राणी जितने क्षण जी जाय, उतनेसे ही उसे संतोष करना
चाहिये'—

अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः ।
छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम् ॥
(श्रीमद्भागवत २ । १ । १५)

'मृत्युका समय आनेपर घबराना नहीं चाहिये।
वैराग्यके शस्त्रसे शरीर और उससे सम्बन्ध रखनेवालोंकी
ममता काट देनी चाहिये।' आसक्ति मिटा देनेसे मृत्युकी
विभीषिकाका निराकरण अपने-आप हो जाता है।

आत्मतत्त्वको जान लेनेपर प्राणी मृत्युके भयसे मुक्त
हो जाता है। 'जो उसे जान लेते हैं वे अमर हो जाते हैं।'
(बृहदारण्यक ४ । ४ । १४) 'ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।'
से इस कथनकी वास्तविकता प्रमाणित होती है। मृत्यु-भय
अस्थायी और अवास्तविक है, अमरता स्थायी और वास्तविक है।
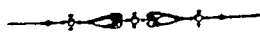
जन्म और मृत्युका रहस्य

(लेखक—श्रीवीरेन्द्रस्वरूपजी अग्रवाल)

पञ्चभूतोंसे निर्मित यह देह नाशवान् है। प्रत्येक जन्मी हुई वस्तुकी मृत्यु होना एक शाश्वत सत्य है। विशुद्ध भौतिकवादी धारणाके अनुसार शरीरके निधनके साथ ही मनुष्यका सब कुछ समाप्त हो जाता है, कुछ शेष नहीं रहता। उनका मत है कि जिन तत्त्वोंसे शरीरकी रचना होती है, वे सब अपने मूलतत्त्वोंमें आकर विलय हो जाते हैं और पुनर्जन्मका प्रश्न ही नहीं उठता। वास्तवमें वे लोग जड और चेतनका भेद ही वस्तुरूपमें स्वीकार नहीं करते और उनके मतानुसार चेतनता जड पदार्थोंकी वैज्ञानिक अथवा रासायनिक प्रक्रियामात्र होती है, जो एक विशेष स्थितिमें उत्पन्न होती है। इसी कारण वे शरीरसे पृथक् आत्माका अस्तित्व नहीं मानते। जडसे ही चेतनताका उद्भव होनेके कारण इस सिद्धान्तको उद्भूतिवाद भी कहा जा सकता है। उदाहरणतः—

"Mind is an emergent from life, as life an emergent from a lower physico-chemical level of existence."—Samuel Alexander (Space, Time and Diety—Vol. II, page 14).

इसके विपरीत कुछ अध्यात्मवादी जन्म और मृत्युका अस्तित्व ही भ्रमात्मक मानते हैं और योगवासिष्ठीय सिद्धान्तके अनुसार इसको मनःसृष्टि कहकर सारे विवादसे बच निकलते हैं। वस्तुतः यह तो दर्शनकी उच्चतम पराकाष्ठा है। अतः इस विशुद्ध धारासे हटकर ही जीवनकी मीमांसा करनी उचित होगी।

उपर्युक्त दोनों धारणाओंके मध्यकी एक और आध्यात्मिक धारणा है, जिसमें चेतनका एक स्वतन्त्र अस्तित्व माना गया है। उसके अनुसार चेतनका जडसे उद्भव नहीं होता; अपितु चेतनका प्रतिबिम्ब पड़नेसे जड भी उद्भासित हो उठता है और चेतन-सा ही प्रतीत होता है। उसके अनुसार शरीरका निधन होता है; परंतु आत्मा अवशिष्ट रहता है।

गीतामें कहा गया है—न आत्माका जन्म होता है, न वह मर सकता है। शरीर आत्माका वस्त्रमात्र है, जिसे जीर्ण होनेपर त्यागकर नवीन धारण कर लिया जाता है। आत्मापर न अस्त्र-शस्त्रोंका प्रभाव पड़ता है, न अग्नि, जल अथवा वायुका।' तात्पर्य यह है कि पञ्चमहाभूतोंका, जिनसे शरीरका नि होता है, आत्मासे पृथक् एवं निम्नस्तर है।

एक अध्यात्मवादी मनीषीने एक स्थानपर लिर कि 'आत्मा तो कर्ता नहीं है, अपितु साक्षीमात्र है; अत जन्मके बन्धनमें कैसे आ सकता है?' उनके मता पुनर्जन्मका सिद्धान्त ही भ्रममूलक है। वास्तवमें पुनर्ज घटनाएँ इतनी बहुतायतसे देखनेमें आ रही हैं कि उ नितान्त भ्रमात्मक नहीं कहा जा सकता है। अतः उ अस्तित्व स्वीकार करके उनकी वैज्ञानिक मीमांसा आवश्यक है।

वस्तुतः स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरकी स स्वयंसिद्ध हैं। स्थूलके अंदर सूक्ष्म और सूक्ष्मके अ कारण शरीरकी विद्यमानता निरपवाद है। इनकी र एवं क्षयका कारण जानकर ही आगे बढ़ा जा सकता है

वैशेषिक सूत्रोंके अनुसार द्रव्य नौ हैं—पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन—

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशंकालो दिगात्मा मन इति द्रव्य
(वैशेषिक० १ । १ ।

इनमेंसे प्रथम पाँच महाभूत कहलाते हैं। इन त चौबीस गुण हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परि पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्र स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्र धर्म, अधर्म और संस्कार। दो परमाणुओंके आ संयुक्त होनेसे द्व्यणुककी, तीन द्व्यणुकोंके संयोगसे त्र्यण और चार त्रसरेणुओंके योगसे चतुरणुककी उत्पत्ति होती इसी क्रममें स्थूल पदार्थोंका जन्म होता है। वि परमाणुओंके विभिन्न संयोगोंसे अनेकानेक योनियाँ होती हैं। इसी प्रकार संयोग गुणके कारण पञ्च महाभ मानव-शरीरका निर्माण होता है तथा पृथक्त्व-गुणके क कुमार, यौवन एवं जरा अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं और होती है।

यह अवश्य जानना चाहिये कि आत्माका अ स्वतन्त्र है और निरवयव तत्त्व होनेके कारण वह नि तथा कार्यरत तत्त्व होनेसे शरीर अनित्य है। यही आत्मा

शरीरके निधनपर भी शेष रहता है । यही जीवात्मा पुनर्जन्मका हेतु बनता है । 'जीवात्मा'से भिन्न एक और भी संज्ञा है जिसे 'विशुद्ध आत्मा' कहा जाता है, जो ब्रह्मका सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूप है । इनकी विवेचना इस प्रकार की गयी है—

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।'

(श्वेता० ४ । ६)

स्थूलशरीरके अन्तर्में जो जीवात्मा है उसका आकार अङ्गुष्ठमात्र कहलाता है—

'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।'

(कठो० २ । १ । १३)

उसका स्वरूप तेजस् है—

'सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।'

(गीता ८ । ९)

उसका निवासस्थान हृदयदेश है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

(गीता १८ । ६१)

यह हृदयदेश हृत्पिण्ड नहीं है, वरं इस पार्थिव शरीरका सबसे गूढ़ स्थल है । जैसे स्थूलशरीरमें इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि होते हैं, वैसे ही सूक्ष्मशरीरमें भी होते हैं । यह सूक्ष्मशरीर बिना आँखोंके देख सकता है, बिना कानोंके सुन सकता है, बिना मुखके बोल सकता है और बिना हाथके स्पर्श कर सकता है । इसको भी कुमार, युवा और जरा अवस्था प्राप्त होती है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

(गीता २ । १३)

इसी सूक्ष्मशरीरको अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है । जिस प्रकार अणुको तोड़ना कठिन होता है, उसी प्रकार सूक्ष्मशरीरका भेदन भी कठिन होता है; परंतु भावनाओं और संकल्पोंकी तरङ्गें निरन्तर प्रहार और आघात करते-करते इसमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर देत[illegible] परिवर्तनको लेकर सूक्ष्मशरीर एक स्थूलश[illegible] दूसरे स्थूलपिण्डको ढूँढ़ता है ।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्राम[illegible]
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिव[illegible]

([illegible]

सूक्ष्मशरीर जब स्थूलशरीरको छोड़ता[illegible] 'मृत्यु' कहते हैं । यह कार्य अदृष्टसे होता है—

अपसर्पणमुपसर्पणमशितपीतसंयोगाः
कार्यान्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्टकारि[illegible]

(वैशेषिक [illegible]

पुरुषके भोग अथवा अपवर्ग अथवा [illegible] 'अदृष्ट' कहा जाता है । जो अतृप्त वासनाएँ [illegible] होती हैं, उन्हींकी पूर्तिके लिये वह दूसरा [illegible] करता है ।

किसी-किसी मनीषीका विचार है कि स्थूल[illegible] पहले ही सूक्ष्मशरीर दूसरे शरीरका चयन [illegible] इस सिद्धान्तको स्वीकार करनेका अर्थ होगा—स[illegible] अस्वीकार करना । अतः यह कहना अधिक [illegible] कि वह चयन नहीं करता, वरं संकल्प कर [illegible] हमारे विचार और भाव बहिर्मुखी न होकर [illegible] जाते हैं, उस अवस्थाको 'निर्विकल्प' समाधि [illegible] सूक्ष्मशरीरके पुनर्जन्म संकल्प क्षीण होते हैं ।

सूक्ष्मशरीरकी दो गतियाँ होती हैं—[illegible] 'देवयान' कहते हैं और दूसरीको 'पितृयाण'—

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते [illegible]
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते [illegible]

(गीता [illegible]

शुक्ल गति (देवयान) से ब्रह्मकी प्राप्[illegible] अथवा आत्मतत्त्वमें विलीनीकरण हो जाता है औ[illegible] (पितृयाण) से जन्म-मृत्यु अथवा पार्थिव श[illegible] होती है ।
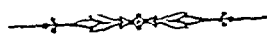
आयुको काटनेवाले छः दोष

(लेखक—श्रीराजेन्द्रकुमारजी भवन)

धृतराष्ट्रने पूछा—

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा ।
नाप्नोत्यथ च तत् सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३७ । ९)

'जब सभी वेदोंमें पुरुषको सौ वर्षकी आयुवाला बताया गया है, तो वह किस कारणसे अपनी पूर्ण आयुको नहीं पाता !'

उत्तरमें विदुरजीने कहा—

अतिमानोऽतिवादश्च तथात्यागो नराधिप ।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ॥
एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम् ।
एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते ॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३७ । १०-११)

'राजन् ! आपका कल्याण हो ! अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्यागका अभाव, क्रोध, अपना ही पेट पालनेकी चिन्ता (स्वार्थ) और मित्रद्रोह—ये छः तीखी तलवारें देहधारियोंकी आयुको काटती हैं । ये ही मनुष्योंका वध करती हैं, मृत्यु नहीं ।'*

उपर्युक्त छः दोषोंकी क्रमशः व्याख्या की जाती है—

(१) ऊँचे पदपर प्रतिष्ठित होना; अपनी प्रशंसा सुनना; धन और भोग-सामग्रीकी बहुलता; मनोकामना पूर्ण होना; अपने द्वारा किसीका हित होना; दूसरोंमें दोष और अपनेमें गुण देखना; अपनेको बलवान्, विद्वान, बुद्धिमान्, साधक, त्यागी, महात्मा आदि मानना आदि एक-एक कारणपर ऊँची स्थितिवाले महात्मातक अभिमानके शिकार हो जाते हैं ।

भगवान्ने जब कभी अपने भक्तमें अभिमानका प्रवेश देखा, तुरंत उसकेअभिमानको चूर्ण किया । अभिमानी मनुष्य शीघ्र ही अपनी स्थितिसे विचलित तथा पतित हो जात अति अभिमानी पुरुषको भ्रष्ट हुए बिना चेत नहीं ह ऐसा पुरुष भगवान्के शरण नहीं हो पाता तथा उसमें समता रहती है और न उसे अपने अवगुण—द कभी दीखते हैं । अभिमानी पुरुष अपनेसे श्रेष्ठको भी देखता है और उसकी अवहेलना करता है । अभि नष्ट होनेपर प्रत्येक स्थितिवाला मनुष्य ऊँची-से-ऊँची प्राप्त कर सकता है ।

सभी वस्तुओंको प्रभुकी समझकर उनके तन-मनसे दूसरोंकी सेवा निष्काम-भावसे व तथा दूसरोंके गुण एवं अपने दोष देखनेपर अ दूर हो जाता है । अपनेको तुलसीदासजीकी भाँ ओरसे दीन-हीन समझते रहनेसे भी अभिमान नहीं आता और बहुत बड़ा लाभ होता है ।

(२) अधिक बोलनेवाला व्यक्ति व्यर्थकी बातें करता है । वह सत्यका पूर्णतया पालन नहीं कर सकत ऐसी बातें भी कर बैठता है, जिनका परिणाम बुर है । ऐसा व्यक्ति बुद्धिमानोंको प्रिय नहीं होत दूसरोंपर उसकी बातोंका प्रभाव भी नहीं पड़ र अतः निरर्थक शब्दोंका प्रयोग न करके वाणीको कर तपमें लगाना चाहिये । वाणीसम्बन्धी तप श्री में इस प्रकार कहा गया है—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।

(१७

'जो उद्वेगको न करनेवाला, प्रिय और हितक यथार्थ भाषण है और जो वेद-शास्त्रोंके पढ़नेका एवं प नाम जपनेका अभ्यास है, वह निःसंदेह वाण तप कहा जाता है ।'

अधिक बोलनेकी आदतसे छुटकारा पानेके लि से-अधिक भगवन्नाम-जप करनेका नियम करना इससे दुहरा लाभ होगा ।

(३) त्यागके अभावके कारण ही रावण, आदिका पतन हुआ । सांसारिक सुखोपभोग

* आयुकी अवधि श्वासोंकी संख्यापर है, महीने-दिन-रूप कालपर नहीं । जिनमें ये छः दोष आ जाते हैं, उनमें आवेश, उत्तेजना आदिके कारण श्वास जोर-जोरसे चलकर जल्दी समाप्त होते रहते हैं । अतः आयुके दिन घट जाते हैं । श्वास पूरे होते ही मृत्यु हो जाती है ।

ओर अग्रसर होते हुए कई पुरुषोंका उत्थान मित्रोंने ही किया है। परंतु जो मित्रद्रोही है, वह कैसे सुखी जीवन यापन कर सकता है। मित्रद्रोह नामक महान् दोषसे बचनेके लिये स्वार्थत्याग तथा परहितसाधन करना परम आवश्यक है। भगवान्ने 'भक्तको सब भूतोंका अद्वेष्टा तथा सबका मित्र' (अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः···) बतलाया है। अतएव किसी भी प्राणीसे द्वेष न करके सबका हितचिन्तन और हितसाधन करना चाहिये। महात्मा विदुरजीने आयुको काटनेवाले जो छः दोष बतलाये हैं, वे सभी प्रायः एक-दूसरेपर ही निर्भर हैं। अतः कल्याणके इच्छुक पुरुषोंको यथाशक्ति इन दोषोंसे बचना चाहिये। यदि छःमेंसे एक दोषका भी पूर्णतया अभाव हो जाय तो कल्याण-मार्ग प्रशस्त हो सकता है। अन्तमें महात्मा विदुरजीके कुछ और वचनोंका पाठकगण मनन करें—

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान्॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३३।५८)

"राजन्! ये दो प्रकारके पुरुष स्वर्गके भी ऊपर स्थान पाते हैं—'शक्तिशाली' होनेपर भी 'क्षमा' करनेवाला और 'निर्धन' होनेपर भी 'दान' करनेवाला।"

गृहीतवाक्यो नयविद् वदान्यः
शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च।
नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः
सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान्॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३७।१२)

'बड़ोंकी आज्ञा माननेवाला, नीतिज्ञ, दाता, यज्ञ अन्न भोजन करनेवाला, हिंसारहित, अनर्थकारी कार्योंसे रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और कोमल स्वभावव विद्वान् स्वर्गगामी होता है।'

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३९।५

'सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति कोमलताका भाव, गुणोंमें न देखना, क्षमा, धैर्य और मित्रोंका अपमान न करना ये सब गुण आयुको बढ़ानेवाले हैं—ऐसा विद्वान् ह कहते हैं।'

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात्॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३९।६

'जो अधर्मके द्वारा कमाये हुए धनसे परलोकस यज्ञादि कर्म करता है, वह मरनेके बाद उसके फलको पाता; क्योंकि उसका धन बुरे मार्गसे आया होता

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

मानव-शरीर परमात्माका मन्दिर

मानव-शरीर अनेक जन्मोंके पुण्योंसे प्राप्त होता है। जो शरीर देवोंको दुर्लभ है, उसे व्यर्थ नष्ट कर हमारी बड़ी भूल है। हम अपने कर्तव्यको भुला दें, उसका स्मरण न करें,···नियमोंका पालन न करें, हम दुखी न हों तो कौन होगा?

× × × ×

यह शरीर 'परमात्माका मन्दिर' है। इसमें ईश्वरका निवास है। सदैव उनको अपने भीतर अनुभव क इस मन्दिरको कभी अपवित्र न होने दो। इस मन्दिरको अपवित्र बना देनेवाली कुछ बातें हैं, जिनसे सदा ब उनमें एक असत्य है। भूलकर भी, स्वप्नमें भी असत्य मुँहसे न निकले; इसकी कोशिश बराबर करो। कहीं भूलसे झूठ निकल जाय तो उस असत्यके लिये प्रार्थना करो, क्षमा माँगो। सच्चे और पवित्र हृद परमात्माके चरणोंमें गिरो और पुनः असत्य न बोलनेका व्रत लो। उसे अपना प्राण देकर भी पालो।

—महामना मदनमोहन माल

काटते हैं और उनका त्याग शीघ्र ही शान्तिप्रद ायुवर्द्धक भी होता है। भगवान् श्रीगीतामें कहते हैं—

ेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥

(१२।१२)

मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे परोक्षज्ञान और परोक्षज्ञानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान तथा ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका मेरे लिये करना श्रेष्ठ है और त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति है।'

स बातको मनुष्य सदैव स्मरण रक्खें कि हम इस ो कुछ लेनेके लिये नहीं आये हैं, बल्कि दूसरोंको सुख लिये ही आये हैं तथा यह शरीर हमें केवल प्राप्तिके लिये ही मिला है, भोगोंको भोगनेके हीं।

दि किसी वस्तुको ग्रहण करनेका हेतु 'राग' और का हेतु 'द्वेष' हो, तो ऐसा त्याग भी निरर्थक ही है। शास्त्रको प्रमाण मानकर ही त्याग और ग्रहण करना ीगीतामें भगवान् कहते हैं कि 'कर्मोंको स्वरूपसे न र उनमें की हुई आसक्तिका त्याग करे और उन म्मत कर्मोंके फलका भी त्याग मेरे (प्रभुके) लिये अतः कल्याणके इच्छुक पुरुषोंको शास्त्रविरुद्ध कर्मोंको ा त्यागकर शास्त्रसम्मत कर्मोंको अनासक्त एवं भावसे करते रहना चाहिये।

(४) क्रोध सभीका एक महान् शत्रु है। इसके होनेपर पुरुष धर्म (कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञान) को रिणामको भूल जाता है, जिससे उसका पतन होता हात्मा विदुरजी कहते हैं—

व्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि
पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्।
तां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३६।६८)

र्थात् 'महाराज! जो बिना रोगके उत्पन्न, कड़ुवा, दर्द पैदा करनेवाला, पापसे सम्बद्ध, कठोर, तीखा गरम है, जो सज्जनोंद्वारा पान करनेयोग्य है और जिसे दुर्जन नहीं पी सकते—उस क्रोधको आप पी जाइ और शान्त होइये।'

क्रोधी पुरुष स्वयं सब कुछ करनेमें असमर्थ रहता है। श्रीगीताजीमें भगवान् कहते हैं कि 'शरीरान्तके पूर्व ही जिस क्रोधको पूर्णतया जीत लिया, वह मनुष्य इस लोकमें योगी है और वही सुखी है।' इसके अतिरिक्त क्रोधको 'नरकका द्वार' भी कहा गया है। इसका तात्पर्य यह कि क्रोधवश हुए मनुष्यको नरकमें जानेके लिये अन्य मार्गकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती (क्रोध अकेला ही मनुष्यको न पहुँचानेमें समर्थ नरकका द्वार ही है)।

भगवान् कहते हैं—क्रोधसे मुक्त हुआ पुरुष कल्या आचरण करता है, जिससे वह मुझे प्राप्त हो जाता है।

प्रतिकूलता सहन करनेका अभ्यास करनेपर ही क्रो रक्षा होती है। यदि दूसरा अपने ऊपर क्रोध करे, तो शान्ति रखकर उसे क्षमा कर देना चाहिये।

(५) स्वार्थ सभी अनर्थोंका मूल है। लोकमें होने रोमाञ्चकारी युद्धोंका कारण स्वार्थ (पृथ्वी, धन या स्त्री) ही है। स्वार्थी मनुष्य स्वार्थसिद्धिके लिये बड़े-से-बड़ा पाप करनेमें भी लज्जाका अनुभव नहीं करता। इस स्व के ही कारण आज चारों ओर पापोंकी वृद्धि होकर अशान्ति ही छायी हुई है।

दूसरेके सुखको देखकर सुखी होने और दुःख देख दुखी होनेका अभ्यास करनेपर स्वार्थ-दोषका न होता है।

हमलोग सच्चे हृदयसे प्रार्थना करें—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

'सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब कल्याणको दे कोई भी दुःखको प्राप्त न हो।'

(६) मित्रद्रोही पुरुषको शास्त्रोंमें 'अधम' कहा गया है। ऐसे मनुष्यकी निन्दा सभी करते हैं। मनुष्यजीवन मित्रोंका बहुत महत्त्व है। सच्चा मित्र मनुष्यके जीवनमार्ग एक आश्रय है। मित्रतासे एक नयी शक्तिका निर्माण हो है, जिससे शत्रुओंको भी भय होता है। मित्रोंने कई महापुरु को अच्छे कार्योंकी प्रेरणा और सहायता दी है। पतन

ओर अग्रसर होते हुए कई पुरुषोंका उत्थान मित्रोंने ही किया है। परंतु जो मित्रद्रोही है, वह कैसे सुखी जीवन यापन कर सकता है। मित्रद्रोह नामक महान् दोषसे बचनेके लिये स्वार्थत्याग तथा परहितसाधन करना परम आवश्यक है। भगवान्ने 'भक्तको सब भूतोंका अद्वेष्टा तथा सबका मित्र' (अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः···) बतलाया है। अतएव किसी भी प्राणीसे द्वेष न करके सबका हितचिन्तन और हितसाधन करना चाहिये। महात्मा विदुरजीने आयुको काटनेवाले जो छः दोष बतलाये हैं, वे सभी प्रायः एक-दूसरेपर ही निर्भर हैं। अतः कल्याणके इच्छुक पुरुषोंको यथाशक्ति इन दोषोंसे बचना चाहिये। यदि छःमेंसे एक दोषका भी पूर्णतया अभाव हो जाय तो कल्याण-मार्ग प्रशस्त हो सकता है। अन्तमें महात्मा विदुरजीके कुछ और वचनोंका पाठकगण मनन करें—

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान्॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३३। ५८)

"राजन्! ये दो प्रकारके पुरुष स्वर्गके भी ऊपर स्थान पाते हैं—'शक्तिशाली' होनेपर भी 'क्षमा' करनेवाला और 'निर्धन' होनेपर भी 'दान' करनेवाला।"

गृहीतवाक्यो नयविद् वदान्यः
शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च।
नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः
सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान्॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३७। १४)

'बड़ोंकी आज्ञा माननेवाला, नीतिज्ञ, दाता, यज्ञशेष अन्न भोजन करनेवाला, हिंसारहित, अनर्थकारी कार्योंसे दूर रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और कोमल स्वभाववाला विद्वान् स्वर्गगामी होता है।'

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३९। ५२)

'सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति कोमलताका भाव, गुणोंमें दोष न देखना, क्षमा, धैर्य और मित्रोंका अपमान न करना—ये सब गुण आयुको बढ़ानेवाले हैं—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं।'

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात्॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३९। ६६)

'जो अधर्मके द्वारा कमाये हुए धनसे परलोकसाधक यज्ञादि कर्म करता है, वह मरनेके बाद उसके फलको नहीं पाता; क्योंकि उसका धन बुरे मार्गसे आया होता है।'

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

मानव-शरीर परमात्माका मन्दिर

मानव-शरीर अनेक जन्मोंके पुण्योंसे प्राप्त होता है। जो शरीर देवोंको दुर्लभ है, उसे व्यर्थ नष्ट कर देना हमारी बड़ी भूल है। हम अपने कर्तव्यको भुला दें, उसका स्मरण न करें,···नियमोंका पालन न करें, तब हम दुखी न हों तो कौन होगा?

× × × ×

यह शरीर 'परमात्माका मन्दिर' है। इसमें ईश्वरका निवास है। सदैव उनको अपने भीतर अनुभव करो। इस मन्दिरको कभी अपवित्र न होने दो। इस मन्दिरको अपवित्र बना देनेवाली कुछ बातें हैं, जिनसे सदा बचो। उनमें एक असत्य है। भूलकर भी, स्वप्नमें भी असत्य मुँहसे न निकले; इसकी कोशिश बराबर करो। यदि कहीं भूलसे झूठ निकल जाय तो उस असत्यके लिये प्रार्थना करो, क्षमा माँगो। सच्चे और पवित्र हृदयसे परमात्माके चरणोंमें गिरो और पुनः असत्य न बोलनेका व्रत लो। उसे अपना प्राण देकर भी पालो।

—महामना मदनमोहन मालवीय

मृत्यु और व्यक्तित्व

(लेखिका—प्रो॰ इन्दुप्रभा आत्रेय, एम्॰ ए॰, एम्॰ एड्॰)

भौतिकवादी मनोविज्ञानके अनुसार मृत्यु व्यक्ति व्यक्तित्व—दोनोंको समाप्त कर देती है। यह भौतिक-की महान् भूल है। मनोविज्ञानकी नवीन शाखा मनोविज्ञानकी खोजोंके द्वारा प्राप्त तथ्योंने यह सिद्ध दिया है कि मृत्यु केवल स्थूलशरीरको ही समाप्त पाती है। मरनेके बाद भी मृत व्यक्तिकी आत्मा संसारके व्यक्तियोंपर प्रभाव डालती रहती है[1]। स्थूल-रतक ही व्यक्तित्व सीमित नहीं माना जा सकता है। शान्तिप्रकाश आत्रेयने अपनी पुस्तक 'योग-मनोविज्ञान'-कहा है कि 'स्थूलशरीरको ही व्यक्तित्व मानना तथा कहना कि स्थूलशरीरके नष्ट होनेपर व्यक्तित्व ही प्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकारसे है जिस प्रकारसे कथन कि बिजलीके बल्ब फूट जाने या फ्यूज हो पर बिजली ही नहीं रह जाती तथा उस बल्बके नपर कोई बल्ब ही नहीं जल सकता। व्यक्तित्वकी प्रकारकी धारणा मूर्खतापूर्ण धारणा है।' (योग-विज्ञान—२८७)।

हैरवार्ड कैरिंगटन (Hereward Carrington)-भी मृत्युके बाद व्यक्तित्वको सिद्ध किया है।[2] धुनिक वैज्ञानिक भी अब अपने अनुसंधानोंके धारपर भारतीय विचारधाराका प्रतिपादन करने हैं तथा मृत्युके बाद व्यक्तित्व विद्यमान रहता है तथ्यकी पुष्टि करने लगे हैं।[3] इन्द्रियजन्य ज्ञान एवं नुभव तो बहुत सीमित है। व्यक्तित्व तथा अनुभवका इन्द्रियजन्य ज्ञानके क्षेत्रसे कहीं विशाल है। स्थूल-रीरके अतिरिक्त आत्मा एवं समस्त वासनाओंसहित मशरीर भी है, जो मृत्युके बाद स्थूलशरीरके समाप्त जानेपर भी समाप्त नहीं होता। वह जीवके मोक्ष करनेतक उससे सम्बन्धित रहता है। सांख्यदर्शनके अनुसार मृत्युके द्वारा स्थूलशरीरके नष्ट होनेपर आ लिङ्ग-शरीर तथा अधिष्ठान-शरीरसहित उसे छोड़ दूसरी दुनियामें विचरता है। सूक्ष्मशरीरके साथ अ जन्मोंके कर्माशय संस्काररूपसे विद्यमान रहते है सूक्ष्मशरीरके प्रवेशमें कहीं भी कोई रुकावट नहीं हो सकत यह महाप्रलयकालमें भी नष्ट नहीं होता, बल्कि बी रूपसे प्रकृतिमें विद्यमान रहता है तथा सृष्टिकालमें पु आत्मासे सम्बन्धित होकर धर्म-अधर्मरूपी कर्माशयों फल भोगता रहता है। आत्मासे इसका सम्बन्ध के मोक्षके बाद ही छूटता है; अन्यथा कर्मोंका फल भोगने लिये एक स्थूलशरीरसे दूसरे स्थूलशरीरको धार करता रहता है। सांख्य तथा योगके अनुसार अन आत्माएँ हैं और उनके साथ अनन्त सूक्ष्मशर वासनाओंसहित लगे हैं। प्रलयकालीन अवस्था व्यक्तित्वकी केवल सुप्तावस्था है, सृष्टिकाल उसकी जाग्रत अवस्था है। कोई दो जीव समान व्यक्तित्ववाले नहीं हो हैं। यह व्यक्तित्व परिवर्तनशील होनेसे मोक्षकालत स्थायी होते हुए भी गत्यात्मक है।[4] प्रारब्ध कर्मोंसे वर्तमा शरीर, भोग, कुल, आयु, वातावरण आदि प्राप्त हो हैं। व्यक्तित्वका निर्माण भी व्यक्ति अपनी स्वतन्त्र इच्छा शक्तिद्वारा करता है। क्रियमाण कर्मोंसे व्यक्ति अप व्यक्तित्वमें परिवर्तन पैदा कर सकता है। इस आधारप ही व्यक्तित्वमें विकास हो सकता है तथा होता है मृत्यु इस विकासको समाप्त नहीं कर सकती। इ विकासके बिना मोक्ष ही असम्भव है। यदि हम भौतिक वादियोंकी तरह मृत्युके द्वारा व्यक्तित्वको समाप्त मान लें त हमारे प्रयत्न एवं इच्छाओंका कोई फल नहीं होता इस रूपसे तो नैतिक उच्च व्यक्तित्वका विकास करना व्यर्थ ही है। मरनेके बाद जब कुछ रह ही नहीं जात तो इतना कष्टप्रद प्रयत्न सब शून्यमें विलीन होनेके लि

१. डा॰ बी॰ ला॰ आत्रेय—परामनोविज्ञान—अ॰ ६।

2. Carrington: The Story of Psychic Science, age No. 323, 324, 282, 425.

3. Lodge: The Survival of Man, Page No. 221. Osborn: The Super physical, 1953. Page 250; ir A. Conon Doyle : Survival, Page 104.

४. डा॰ शान्तिप्रकाश आत्रेय—योगमनोविज्ञान—अध्याय-२

क्यों किया जाय ? इसको माननेसे तो जीवन ही मूल्यहीन हो जाता है। सत्य तो यह है कि संसारमें बुद्धि और विवेकका शासन है तथा विकास होता है। विज्ञान, दर्शन, धर्म एवं नैतिकताका अस्तित्व है; वे बेकार नहीं हैं। जीवात्माको मृत्यु समाप्त नहीं करती। वह तो एक जन्मसे दूसरे जन्ममें प्रकाशित होता रह सकता है। इसी आधारपर जीवका मोक्ष सम्भव है। अगर मृत्युके बादके जीवनकी आशा न हो तो सम्पूर्ण क्रियाएँ तथा कर्म बेकार हो जायँगे। मृत्युके बाद तो जीव लिङ्ग-शरीरसहित अनेक लोकोंमें विचरण करता है। अतः यह कहना कि मृत्यु व्यक्तित्वको समाप्त कर देती है, महान् मूर्खता है।

आधुनिक युगमें अब परामानसकीय अनुसंधान और परामनोविद्याकी खोजोंसे जिन तथ्योंकी स्थापना हुई है, वे हमारे अंदर एक ऐसी वस्तुकी ओर संकेत करते हैं जो दिक्, काल, शरीर और पर्यावरणकी भौतिक सीमाओंसे परे हैं। इनके परिणामोंकी व्याख्या किसी भी भौतिकीय सिद्धान्तके द्वारा नहीं हो सकती है। डा० जे० बी० राइनने अपनी पुस्तक 'न्यू वर्ल्ड आफ माइंड'में कहा है कि 'मनुष्यके अंदर भौतिक नियमोंसे परे कार्य करनेवाली चीज है, जिससे आध्यात्मिक नियमका अस्तित्व स्पष्ट है।' आज यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि इस शक्तिका अस्तित्व असंदिग्ध है। यह स्थूलशरीरके समाप्त होनेसे समाप्त नहीं होती है। डा० भी० ला० आत्रेयने अपनी पुस्तक 'परामनोविज्ञान'में कहा है कि 'मनुष्यकी असाधारण शक्तियाँ और मनुष्यके अंदर रहनेवाले अतिप्राकृतिक तत्त्वोंके वैज्ञानिक अध्ययनपर आधारित मानव-व्यक्तित्व-विषयक यह मत कि हम परस्पर और सब प्राणियोंसे जुड़े हुए आध्यात्मिक जीव हैं, तथा यह कि हम सब सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् परम सत्तासे एक हैं और वही हमारा मूल है; वही मत है जो भारतमें वेदों और उपनिषदोंके प्राचीनतम युगसे चला आ रहा है।' भगवद्गीतामें इसकी संक्षेपमें चर्चा है और योगवासिष्ठमें विस्तारसे। थियोसोफीने इसी मतको समस्त धार्मिक विश्वासोंके आधारके रूपमें स्वीकार किया है और इसकी विस्तृत व्याख्या की है। इस प्रकार परामानसकीय अनुसंधान आधुनिक पाश्चात्त्य मनोविज्ञान और प्राचीन भारतीय मनोविज्ञानके बीच इस समय पायी जानेवाली चौड़ी खाईको पाटनेका काम करता है।'

सब कथनोंका अन्तिम सारांश यह है कि व्यक्तित्वमें स्थूल शरीरके अतिरिक्त आध्यात्मिक शक्ति या भौतिक तत्त्वोंसे परेकी शक्ति भी विद्यमान है जो मृत्युके द्वारा समाप्त नहीं होती है। अतः व्यक्तित्व मृत्युके बाद भी विद्यमान रहता है।

जन्म-मरणरूपी दुःख-सागरसे तरनेका उपाय

जो नर इस संसारमें अत्यन्त प्रेम, धर्म, विद्या, सत्संग, सुविचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता आदि शुभ गुणों तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ईश्वरका आश्रय लेता है वही सौभाग्यशाली है; क्योंकि ऐसा जन यथार्थ सत्य विद्याके द्वारा सम्पूर्ण दुःखोंसे छूटकर परमानन्द परमेश्वरका नित्य संगरूप, जो मोक्ष है, उसको प्राप्त करता है। फिर वह जन्म-मरणरूप दुःख-सागरको प्राप्त नहीं होता। परंतु जो विषयलम्पट, विचाररहित, विद्या-धर्म-जितेन्द्रियता-सत्संगसे रहित, छल-कपट दुराग्रहादि दुष्ट गुणोंसे युक्त है, वह कभी भी मोक्ष-सुखको प्राप्त नहीं कर सकता; क्योंकि वह ईश्वर-भक्तिसे विमुख है। ऐसा जन जन्म-मरण आदि पीड़ाओंसे पीड़ित होकर सदा दुःख-सागरमें ही डूबा रहता है। सब मनुष्योंको उचित है कि परमेश्वर तथा उनकी आज्ञाके विरुद्ध कभी भी कोई आचरण न करें। परमेश्वर तथा उनकी आज्ञामें सदा तत्पर होकर इस लोक तथा परलोककी सिद्धि यथावत् करें। यही मनुष्य-जीवनकी कृतकृत्यता है। —स्वामी दयानन्द सरस्वती

देवयान और पितृयाण, पुनर्जन्म तथा मुक्ति

(लेखक—श्रीसुशान्तजी ब्रह्मचारी)

मनुष्य इन्द्रियोंके जगत्में इतना अधिक आसक्त है कि वह इसे छोड़ना नहीं चाहता; परंतु सौभाग्य या दुर्भाग्यसे हर एक व्यक्तिके जीवनमें ऐसा समय आता ही है, जबकि एकमात्र प्रश्न यह रहता है कि 'क्या कब्रके उस पार भी कोई जीवन है ? क्या क्षितिजके उस पार भी कोई जीवन है ?' कुछ लोग इस प्रकारके परेशानी पैदा करनेवाले प्रश्नोंकी ओरसे, इनको तत्कालके लिये अनावश्यक मानकर अपनी आँख मूँदनेकी चेष्टा कर सकते हैं; परंतु जैसे-जैसे मृत्यु निकट आयेगी, स्वभावतः यह प्रश्न फिरसे खड़ा हो जायगा कि 'क्या इस जीवनके उस पार भी कोई सत्य है?' भारतमें प्राचीन समयके उपनिषदोंके ऋषियोंमें भी हमें इसी प्रश्नकी जिज्ञासा दिखायी देती है—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-

होगा । जब कोई व्यक्ति मरता है, तो उसके स्थू और मनसे सूक्ष्मशरीर तथा मन आत्माकी निद्रित अ अविलम्ब बाहर आता है । यह कुछ समयतक सूक्ष्मरू रहेगा और इसकी समाप्तिके साथ ही यह पुनः स्थूलरूप होगा । कुरुक्षेत्रके युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको उत्साहित करते हुए बहुत ही सुन्दर ढंगसे विचारको व्यक्त किया है । जब वह युद्धभूमिमें ही धनुषको एक किनारे रखकर रथमें यह कहते हुए बैठ था कि मैं युद्ध नहीं कर सकता और द्रोण तथा भीष्म पूज्य गुरुजनोंका वध नहीं कर सकता, उस समय भग अर्जुनको फटकारते हुए कहा—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का

जबतक वे समाप्त नहीं हो जाते और वे फिर लौटकर भूमिपर आ जायँगे।

प्रथमको 'देवयान' कहते हैं और द्वितीयको 'पितृयाण'। देवयानमार्गके विषयमें बृहदारण्यकोपनिषद्में कहा गया है—

'ते य एवमेतद्विदुः, ये चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यमुपासते तेऽर्चिरभिसम्भवन्ति' अर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद् यान् षण्मासानुदङ्ङादित्य एति मासेभ्यो देवलोकं देवलोकादादित्यमादित्याद्वैद्युतं तान्वैद्युतान्पुरुषो मानस एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः। (६।२।१५)

'ये जो (गृहस्थ) इस प्रकार इस (पञ्चाग्निविद्या) को जानते हैं तथा जो (संन्यासी या वानप्रस्थ) वनमें श्रद्धायुक्त होकर सत्य (ब्रह्म अर्थात् हिरण्यगर्भ) की उपासना करते हैं, वे ज्योतिके अभिमानी देवताओंको प्राप्त होते हैं; ज्योतिके अभिमानी देवताओंसे दिनके अभिमानी देवताको, दिनके अभिमानी देवतासे शुक्लपक्षके अभिमानी देवताको और शुक्लपक्षके अभिमानी देवतासे जिन छः महीनोंमें सूर्य उत्तरकी ओर रहकर चलता है, उन उत्तरायणके छः महीनोंके अभिमानी देवताओंको (प्राप्त होते हैं); षण्मासाभिमानी देवताओंसे देवलोकको, देवलोकसे आदित्यको और आदित्यसे विद्युत्-सम्बन्धी देवताओंको प्राप्त होते हैं। उन वैद्युत्-देवोंके पास एक मानस पुरुष आकर उन्हें ब्रह्मलोकमें ले जाता है। वे उस ब्रह्मलोकोंमें अनन्त संवत्सरपर्यन्त रहते हैं। उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती।'

और पितृयाणके विषयमें लिखा है—

अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा लोकाञ्जयन्ति ते धूममभिसम्भवन्ति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपक्षीयमाणपक्षमपक्षीयमाणपक्षाद् यान् षण्मासान्दक्षिणादित्य एति मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकाच्चन्द्रं ते चन्द्रं प्राप्यान्नं भवन्ति, तांस्तत्र देवा यथा सोमं राजानमाप्यायस्वापक्षीयस्वेति एवमेनांस्तत्र भक्षयन्ति तेषां यदा तत्पर्यवैत्यथेममेवाकाशमभिनिष्पद्यन्ते आकाशाद्वायुं वायोर्वृष्टिं वृष्टेः पृथिवीं ते पृथिवीं प्राप्यान्नं भवन्ति ते पुनः पुरुषाग्नौ हूयन्ते ततो योषाग्नौ जायन्ते लोकान्प्रत्युत्थायिनस्त एवमेवानुपरिवर्तन्ते।

(बृहदारण्यकोपनिषद् ६।२।१६)

'और जो यज्ञ, दान, तपके द्वारा लोकोंको जीतते हैं, वे धूम (धूमाभिमानी देवता) को प्राप्त होते हैं। धूमसे रात्रि देवताको, रात्रिसे अपक्षीयमाणपक्ष (कृष्णपक्षाभिमानी देवता) व अपक्षीयमाणपक्षसे जिन छः महीनोंमें सूर्य दक्षिणकी ओर हो जाता है, उन छः मासके देवताओंको, छः मासके देवताअं पितृलोकको, पितृलोकसे चन्द्रमाको प्राप्त होते हैं। चन्द्रम पहुँचकर वे अन्न हो जाते हैं। वहाँ जैसे ऋत्विग्गण सोमर को 'आप्यायस्व अपक्षीयस्व'—ऐसा कहकर चमसमें भर पी जाते हैं, उसी प्रकार इन्हें देवगण भक्षण कर जाते हैं। ज उनके कर्म क्षीण हो जाते हैं, तो वे इस आकाशको ही प्र होते हैं। आकाशसे वायुको, वायुसे वृष्टिको और वृष्टि पृथ्वीको प्राप्त होते हैं। पृथ्वीको प्राप्त होकर वे अन्न हो ज हैं। फिर वे पुरुषरूप अग्निमें हवन किये जाते हैं। उर वे लोकके प्रति उत्थान करनेवाले होकर स्त्रीरूप अग्नि उत्पन्न होते हैं। वे इसी प्रकार पुनः-पुनः परिवर्तित ह रहते हैं।'

(३) और तीसरा है—अपने दुष्कर्मोंके परिणामस्वर आत्माका अधोगतिको प्राप्त होना। ऐसे लोग उपरिलिखि दोनों मार्गोंसे नहीं जायँगे। शास्त्रोंकी अवहेलना करके वे नि पशु-योनिमें यहाँतक कि जड वृक्ष या पत्थरोंकी योनि प्राप्त करेंगे।

'य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतङ्गा यदिदं दन्दशूकम्

(बृहदारण्यकोपनिषद् ६।२।१६

'और जो इन दोनों मार्गोंको नहीं जानते, वे कीट, पत और डाँस-मच्छर आदि होते हैं।'

अब प्रश्न यह है कि 'क्या आत्माका इस आवागमन निकलनेका कोई उपाय है?'

इसके लिये हिंदू-मस्तिष्कका उत्तर है कि 'हाँ, है। यदि कोई सच्चाईके साथ उसपर चलना चाहे तो वह इस जन्म मृत्युके चक्करसे बच सकता है।'

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोकायन्ति पथ्येव सूराः शृण्वन्ति विश्वे अमृतस्य पुत्राआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः

(श्वेताश्वतरोपनिषद् २।५

'मैं तुमसे सम्बन्ध रखनेवाले पुरातन ब्रह्ममें नमस्का (चित्त-प्रणिधान आदि) द्वारा मन लगाता हूँ। सन्मार्ग विद्यमान विद्वान्की भाँति मेरा यह कीर्तनीय श्लोक (स्तुति पाठ) लोकमें विस्तारको प्राप्त हो। जिन्होंने सब और दिव्य धर्मोंपर अधिकार कर रक्खा है, वे अमृत (हिरण्यगर्भ के पुत्र विश्वेदेवगण श्रवण करें।'

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।८)

'मैं इस अज्ञानातीत प्रकाशस्वरूप महान् पुरुषको जानता हूँ। उसे ही जानकर पुरुष मृत्युको पार करता है; इसके सिवा परमपद-प्राप्तिका कोई और मार्ग नहीं है।'

सार यह है कि प्रत्येक प्राणी ब्रह्म है। वे अज्ञानके आवरणके परिणामस्वरूप अहंकारसे अपने-आपको शरीर, मन तथा बुद्धि मान बैठते हैं।

'जन्म' तथा 'मृत्यु' शरीरकी अभिव्यक्ति और विघटनके ही नाम हैं। यह शरीर ही है, जो मरता है और आत्माद्वारा छोड़ दिया जाता है; परंतु आत्मा नहीं मरता। वास्तवमें मन और शरीर उस अहंकार-चैतन्यको सीमित करनेवाले सहयोगी हैं, जो उसके अस्तित्व तथा ब्रह्ममें अन्तर करते हैं। यदि कोई व्यक्ति मन तथा शरीरसे आ त्याग कर देता है और अपनी चेतनाको अद्वितीय लगा देता है, तो वह जन्म-मरणको पार कर जायगा। अ बुद्धियोगसे उसके अज्ञानका नाश हो जायगा। इसीलिये विशुद्ध बनानेकी आवश्यकता है, ताकि सब द्वन्द्वों आसक्तियोंसे ऊपर उठकर ब्रह्मका साक्षात्कार हो सके। कि भगवद्गीतामें कहा है—

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥
(५।

'जिनका मन तथा बुद्धि तद्रूप है और उस सच्चिदा घन परमात्मामें ही है एकीभावसे स्थिति जिनकी, तत्परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पापरहित हुए अपुनरावृ अर्थात् परमगतिको प्राप्त होते हैं।'

देवयान या अर्चिमार्ग—उत्तरायण शुक्लपक्ष और दिवामार्गसे मृत्यु

(लेखक—श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्यजी महाराज)

द्वे सृती अश्रृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥
(ऋ० १०।८८।१५; यजु० १९।४७)

वर्तमान शरीर त्यागकर प्राणियोंके लिये इस लोकसे परलोकमें जानेके वेदोंमें दो मार्ग बताये गये हैं—एक 'देवयान' और दूसरा 'पितृयाण'। देवयान मार्ग शुक्ल और प्रकाशमय है तथा पितृयाण कृष्ण और अन्धकारमय है। इसीका गीतामें भी प्रतिपादन किया गया है—

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः॥
(८।२६)

शुक्ल (देवयान) को अनावृत्ति (मुक्ति) मार्ग और कृष्ण (पितृयाण) को आवृत्ति (बार-बार संसारमें लौटनेवाला) मार्ग कहा गया है। मुक्तिमार्ग ही अर्चिरादि मार्ग है, जो प्रकाशमय है। 'अर्चि' अग्निको कहते हैं। अग्निसे ही प्रकाश होता है।

अर्चिरादिगतानां हि वैष्णवानां हरिः स्वयम्।
गतिः स्मृत्या विनिर्दिष्टा श्रुत्या चापि द्विजोत्तम॥
निर्हेतुककृपा दृष्ट्या यमेवेक्षेत माधवः।
स एव निर्गुणे मार्गे परमैकान्तिनां मुने॥
विना भागवतीं दीक्षां विनैकान्तनिषेवणम्।
नाधिकारो महाभाग परमैकान्तिनां पथि॥

अर्चिमार्गसे जानेवाले वैष्णवोंकी गति साक्षात् भगवान् नारायण ही होते हैं। जिसपर भगवान्‌की निर्हेतुक कृपा होती है, वही परम वैष्णव है और वही इस गुणातीत अर्चिमार्गसे जाता है। वैष्णवधर्मपरायण तथा अनन्यभावसे भगवान्‌की सेवा किये बिना जीव इस मार्गका अधिकारी नहीं होता है।

एवं संसृतिचक्रस्थे भ्राम्यमाणे स्वकर्मभिः।
जीवे दुःखाकुले विष्णोः कृपा काप्युपजायते॥

'पूर्वजन्मके स्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके फल-भोगानुसार संसृतिचक्र (बार-बार जन्म और मरणकी परम्परा) में उलझे हुए दुःखाक्रान्त जीवोंके ऊपर कभी भगवान्‌की निर्हेतुक कृपा होती है।'

'जब द्रवहिं दीनदयालु राघव साधु संगति पाइये।'

भगवान्‌के कृपाप्राप्त जीवोंको सर्वप्रथम सत्पुरुषोंकी संगति प्राप्त होती है—

सत्सङ्गाद्भव निःस्पृहो गुरुमुखाच्छ्रीशं प्रपद्यात्मवान्
प्रारब्धं परिभुज्य कर्म सकलं प्रक्षीणकर्मान्तरः ।
न्यासादेव निरङ्कुशेश्वरदयानिर्लूनमायान्वयो
हार्दानुग्रहलब्धमध्यधमनीद्वारा बहिर्निर्गतः ॥
मुक्तोऽर्चिर्दिनपूर्वपक्षषडुदङ्मासाब्दवातांशुमद्
ग्लौविद्युद्वरुणेन्द्रधातृमहितः सीमान्तसिन्ध्वाप्लुतः ।
श्रीवैकुण्ठमुपेत्य नित्यमजडं तस्मिन् परब्रह्मणः
सायुज्यं समवाप्य नन्दति चिरं तेनैव धन्यः पुमान् ॥

संतोंकी संगतिद्वारा मनुष्य सांसारिक विषयोंसे निःस्पृह हो सर्वशरण्य भगवान् नारायणकी शरणागति करता है। इस क्रियाके द्वारा उसे आत्मस्वरूपका परिचय प्राप्त होता है। आत्मज्ञान होनेपर अनातुरभावसे प्रारब्ध-कर्म-फलको निःशेष भोगकर शरीरस्थ नाड़ियोंमें सर्वप्रधान सुषुम्णा-नाड़ीद्वारा आत्माका बहिर्निर्गमन होता है। यह मुक्तात्मा अर्चिरादि मार्गद्वारा वैकुण्ठ जाता है।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥
(गीता ८ । २४)

ब्रह्मज्ञानी मुक्तजन अर्चिरादि मार्गद्वारा परमधाम जाते हैं। इस मार्गमें अग्निलोक, अहर्लोक, शुक्लपक्षलोक, उत्तरायणलोक, संवत्सरलोक, वायुलोक, सूर्यलोक, चन्द्रलोक, विद्युल्लोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक तथा ब्रह्मलोक मिलते हैं।

भगवान्का अनन्य भक्त शरीर त्यागकर प्रथम अग्निलोकमें जाता है। अग्निलोक-देव उसे अपने लोकका मार्ग दिखाते हुए अहर्लोकतक पहुँचा देता है। अहर्लोक-देव अपने लोकसे उत्तरायणलोकतक पहुँचाकर लौट आता है। उत्तरायणलोक-देव उसे संवत्सरलोकतक पहुँचा देता है। इस तरह ऊपर लिखित बारह लोकोंके अधिपति अपने-अपने लोकसे दूसरे लोकतक मुक्तात्माको सम्मान पहुँचाकर लौट आते हैं—

अर्चिरहः सितः पक्ष उत्तरायणवत्सरौ ।
मरुद्रवीन्दवो विद्युद्वरुणेन्द्रचतुर्मुखाः ॥
एते द्वादश धीराणां परधामातिवाहिकाः ।
वैकुण्ठप्रापिका विद्युद्वरुणादेस्त्वनुग्रहः ॥

इसीको 'अर्चिरादि-मार्ग' कहते हैं। छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक आदि श्रुतियोंमें भी ऐसा ही कहा गया है।

गीता अ० ८ के २६ और २७वें श्लोकका य[illegible] मन्तव्य है। भगवान् श्रीकृष्णने इन श्लोकोंके द्वारा अर्जुन[illegible] ऊपर लोकोंमें जानेके लिये जिन दो मार्गोंका निर्देश कि[illegible] है, अर्थात् अर्चि और धूम—इन दोनों मार्गोंका ज्ञा[illegible] योगी मोहाक्रान्त नहीं होता है। अतः मुमुक्षुओंको इस विचारकर अर्चिरादि-मार्ग प्राप्त करनेका उपाय कर[illegible] चाहिये।

यद्यपि इस समय घनघोर कलिकालमें विद्याकी क्षीण[illegible] तथा जीवोंकी केवल अर्थ-कामपरायणताके का[illegible] अर्चिरादि-मार्ग लोगोंके लिये कहानीका भी विषय न[illegible] रह गया है, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णका यह नि[illegible] अनुष्ठेय है—

'तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ।'
(गीता ८ । २[illegible]

अर्थात् अर्चिरादि-मार्ग-ध्यानरूप योगप्राप्तिका उ[illegible] आवश्यक है। वह उपाय भगवान्की अनन्य भ[illegible] ही है। जो व्यक्ति उल्लिखित दोनों मार्गोंका [illegible] कर लेगा, वह तो अवश्य ही समझ जायगा कि अर्चि-[illegible] प्राप्त किये बिना संसारबन्धनका पचड़ा मिटनेको [illegible] है। अतः शीघ्रातिशीघ्र भगवान्की शरणागति सबको क[illegible] चाहिये, जिससे परलोक नहीं बिगड़ने पाये और मनु[illegible] जीवन सफल हो—

एतद् यो न विजानाति मार्गद्वितयमात्मवान् ।
दन्दशूकः पतङ्गो वा भवेत्कीटोऽथ वा कृमिः ॥
(याज्ञ० स्मृ० ३ । १

अर्थात् 'जो व्यक्ति अर्चि और धूममार्गका [illegible] नहीं कर सका है, वह सर्प, पतङ्ग, कीट या कृमि उ[illegible] योनिमें भ्रमता रहेगा।'

अर्चि-मार्ग-वर्णन

सोहर छन्दमें (देहाती भाषामें)

दया किन्ह भगवान् संत मोहि मिलल ये।
तब संत किये उपदेश शरण हरि के भये ये ॥
दिन्ह ज्ञान भगवान् हृदय-तम भागल ये।
तब तन धनसे मन भग हरिके चरण लागल ये ॥
अन्तर्यामी कृपा करि धमनी धरवतन ये।
हरि अर्चिक पन्थ बतलवतन उपर दिखवतन ये ॥
अतिवाहिक देव मिली मोहि रथ चढ़उवतन ये।
तब दिन पक्ष मास वर्ष पति पूजन करतन ये ॥

बात सूर्य विधु चपल बरुण इन्द्र विधि पुर ये।
पुनि जायब विरजा नहायब तनहु विकायब ये ॥ ५ ॥
अतिमानव भगवान् स्वरूप निज देतन ये।
तब दिव्य विमान चढ़ाइ देव लै जयतन ये ॥ ६ ॥
आरंग ताल नहायब गन्ध लगवायब ये।
पुनि तिलतर भूषण बसन पहिरी बनि जायब ये ॥ ७ ॥
लक्ष्मीसरोवर पहुँचव बहुरि नहायब ये।
पुनि बहुविधिसे बहुमानित हो चल जायब ये ॥ ८ ॥
नित्य सूरि तहँ मिलि सन हरि धुनि गवतन ये।
तब दिव्यलोक हम देखब शीश नवायब ये ॥ ९ ॥
पाँव पाँव हम दौड़ब हावु हावु बोलब ये।
हमें देखतहि भगवान् हँभर के बुलवतन ये ॥१०॥

जात हि हम गिरजायब हरिके चरणतर
प्रभु चारिउ कर धर मोहि हृदयमें लगवतन
सिरपर कर धर पुछतन बबुआ तु कहाँ हल
तब तनु कर जन्म मरण दुख कह समुझायब
लक्ष्मी के गोद देतन हम हँस बैठब
मैया मुख चूमत चुचुकारत अधिक दुलारत
हृदयके जलन बुतायत शान्ति सुखद जल
अतिमोद उछाह प्रवाह सुनेह निबाहत
सेवन विधिहुँ बताइ सेवा सब देतन
तब नित नेह लगाइ सदा हम सेवब
ब्रह्मानन्द अघाके परम रस पायेब
श्रीलक्ष्मीनाथ के साथ सुमाथ झुकायेब

आयुष्कालका रहस्य या आयुकी अभिवृद्धि

(लेखक—डा० श्रीत्रिभोवनदास दामोदरदासजी सेठ)

दुर्लभ मनुष्यदेह बार-बार नहीं मिलता। इसलिये हृदयमें हरि-नामसे प्रेम धारण करनेका प्रयत्न करो। यदि एक बार दृढ़ निश्चय कर लो कि प्रभुकी प्राप्ति करके ही रहूँगा, तो फिर ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो तुम्हें प्रभुप्राप्तिके मार्गसे हटा दे। भगवत्-साक्षात्कार करके मानवजीवनको धन्य तथा सफल बनाना है। इसके लिये आयुवृद्धि और स्वास्थ्य-रक्षाके लिये प्रयत्नशील रहना अपना कर्तव्य है—

आचार्य कहते हैं—'**इदं शरीरं खलु धर्मसाधनम्।**'—तथा—

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।
सर्वकार्येष्वन्तरङ्गं शरीरस्य हि रक्षणम्॥

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके लिये नीरोग तथा स्वस्थ शरीर ही मुख्य साधन है। इस

तथा अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति कराकर ब्रह्मलोकमें ले जाती

इस मन्त्रमें सबसे प्रथम आयुका उल्लेख किया गय आयुके बिना प्रजा, कीर्ति, धन आदिका कुछ भी मूल्य है। आत्माके बिना देहका कोई मूल्य नहीं। यही बात अ विषयमें है। सौ वर्षकी आयुके लिये अनेक प्रार्थनाएँ दे आती हैं।

दीर्घजीवनके लिये अथवा मृत्युको दूर करनेके लिये बातें आवश्यक हैं—(१) ब्रह्मचर्य, (२) प्राणाय (३) प्रणव-जप, (४) सिद्धपुरुषकी कृपा, (ओषधि तथा रसायन-सेवन और (६) मिताहार। आयु रक्षा और वृद्धिके ये छः स्तम्भ हैं।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व राभरत॥

वाणीकी दृढ़ता, कार्यकी दृढ़ता, सच्चे साहसकी स्वाभाविकता, जीवनमें चापल्य और चाञ्चल्य—ये सब पूर्ण ब्रह्मचर्यके चिह्न हैं।

वैज्ञानिकोंने यह निश्चय किया है कि ८० पाउंड भोजनसे ८० तोला खून बनता है और ८० तोला खूनसे दो तोला वीर्य बनता है। एक मासकी कमाई डेढ़ तोला वीर्य है। एक बार ब्रह्मचर्य-भङ्ग होनेसे लगभग डेढ़ तोला वीर्य निकलता है। इससे आयु घटती जाती है। कठिन परिश्रमसे प्राप्त की हुई शक्तिको एक बारमें नष्ट कर देना कैसी मूर्खता है। यही वीर्य यदि नष्ट न हो, तो ओजस् बनकर सारे शरीरको तेजस्वी बना देता है। इसी कारण कहा है—

'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।'

'वीर्यका नाश मृत्यु है और वीर्यकी रक्षा जीवन है।'

गुरुके सांनिध्यमें रहकर प्राणायाम करना सीखना चाहिये और फिर उसका अभ्यास बढ़ाना चाहिये। स्वरोदयके अनुसार एक दिनमें अर्थात् चौबीस घंटेमें मनुष्यके औसत इक्कीस हजार छः सौ श्वास चलते हैं। उनमें जितनी कमी की जाय उतनी ही आयु बढ़ जाती है तथा जितने ही श्वास बढ़ते हैं, उतनी ही आयु घट जाती है।

मैथुनक्रिया, क्रोध, उत्तेजना, हिंसा, आवेश, अतिहर्ष, दौड़ना आदिमें श्वास जल्दी-जल्दी चलकर बढ़ जाते हैं, जिससे आयु घटती है और प्राणायाम, ध्यान, शान्ति, क्षमा, ब्रह्मचर्य, नम्रता, धीरे-धीरे चलना आदिमें श्वास धीमी गतिसे चलते हैं, अतः आयु बढ़ती है। आयुकी अवधि श्वासोंपर निर्धारित है, कालपर नहीं। आयुके घटने-बढ़नेका यह रहस्य निरन्तर स्मरण रखना चाहिये। मनुष्यको जहाँतक हो सके, जल्दी-जल्दी और लघु श्वास नहीं लेना चाहिये। बल्कि ऐसी आदत डालनी चाहिये कि श्वास लम्बा हो और धीरे-धीरे चले। प्राणायाम इसका एक मुख्य साधन है। परंतु प्रत्येक मनुष्य प्राणायाम नहीं कर सकता, इसलिये दीर्घ श्वास-प्रश्वासकी क्रिया नीचे लिखे अनुसार करनेसे उद्देश्य-सिद्धि हो सकती है।

प्रकार ले कि नाभिके साथ-साथ पेट फूलता जाय। इस प्रकार पेट भर जानेपर मुँह बंद रखते हुए नाकके द्वारा इस प्रकार श्वास छोड़े कि धीरे-धीरे पेट बैठता चला जाय। नाकसे श्वास लेने और छोड़नेका समय एक-सा होना चाहिये। परंतु यह समय घड़ीसे मापना ठीक नहीं। प्रभुकी प्रार्थनासे एक चरण-पद लेकर मनमें एक बार जबतक पाठ होता रहे, तबतक श्वास ले; और पश्चात् वही पाठ एक बार होता रहे, तबतक श्वास छोड़े। पश्चात् जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जाय, वैसे-वैसे प्रार्थनाके पाठकी मात्रा बढ़ाता जाय। उसका दूसरा चरण ले ले। (अथवा प्रार्थनाके स्थानमें भगवान्‌के नामका जप करता रहे) अर्थात् जितने समयमें चौबीस अक्षरका उच्चारण हो, उतने समयतक श्वास लेने और उतने ही समयतक श्वास छोड़नेका अभ्यास करे। इस प्रकार कम-से-कम सात बार और अधिक-से-अधिक इक्कीस बार श्वास लेने-छोड़नेका नियमित अभ्यास करे। यह विशेष रूपसे याद रक्खे कि श्वास लेनेमें वायु नाभिपर्यन्त पहुँचता है या नहीं और श्वास छोड़ते समय नाभि खाली हो जाती है या नहीं। इस प्रकार क्रिया करनेके बाद दिन-रात यह ध्यान रक्खे कि श्वास छोटा तो नहीं हो रहा है। इसकी परीक्षा स्वयं ही की जा सकती है।

यदि यह क्रिया बराबर होती रहेगी, तो क्रिया करनेवालेका मल साफ उतरेगा, पेशाब ठंडा होगा, भूख खूब लगेगी। खाया हुआ भोजन खूब पचेगा, आँखका तेज बढ़ेगा। सिरमें आनेवाला चक्कर और दिमागकी गरमी शान्त होगी। शरीरमें शक्ति बढ़ने लगेगी।

किंतु यह क्रिया ठीक न होती होगी, तो श्वास लेनेकी अपेक्षा छोड़नेमें समय कम लगेगा। ऐसी अवस्थामें उपर्युक्त गुणोंकी अपेक्षा विरुद्ध परिणाम निकलेगा। यदि कभी आवश्यक कार्यवश श्रम होनेके कारण श्वास जोर-जोरसे चलने लगे तो घबराकर मुँहसे श्वास न ले। बल्कि मुँह बंद रखकर नाकसे श्वास लेते रहनेसे थोड़ी ही देरमें श्वास नियमित हो जायगा और थकावट दूर हो जायगी।

प्रणव-मन्त्रके जपसे आयु बढ़ती है। तैलधारावत् प्रणव-मन्त्रका जप श्वास-श्वासमें चलना चाहिये। नाड़ीके साथ प्रणव-मन्त्रका जप करनेसे बहुत शीघ्र प्रगति होती है। श्वास-प्रश्वासकी गति तालबद्ध बनती है। धातु और रसायनके विशेष योगसे विद्युत्-शक्ति प्रकट होती है। इसी प्रकार श्वास-प्रश्वासके साथ प्रणव-मन्त्रका जप करनेसे अमोघ शक्ति उत्पन्न होती है। अखण्ड गतिसे प्रणव-मन्त्रका जप करनेसे मन उसमें स्थिर हो जाता है। जैसे चुम्बकके सामने लोहा रखनेसे तुरंत ही चुम्बक लोहेको खींच लेता है, केवल चुम्बककी शक्तिके पास लोहा आना चाहिये; इसी प्रकार अखण्ड प्रणव-मन्त्रका जप चुम्बकके समान है, चित्त-वृत्तियाँ लोहेके समान हैं। ये दोनों समीप आ जायँ तो प्रणव-मन्त्रका जप वृत्तियोंको खींच लेता है और वृत्तियाँ प्रणव-मय बन जाती हैं। इस प्रकार दीर्घजीवन और प्रभु-प्राप्तिकी साधना—दोनों साथ-साथ आगे बढ़ते हैं और जीवनका ध्येय सफल हो जाता है।

सिद्धपुरुषकी कृपा भी इसमें विशेषरूपसे सहायक होती है। यदि सिद्धपुरुषकी कृपा हो तो दीर्घ-जीवन और प्रभुकी प्राप्ति दोनों ही सत्वर प्राप्त होते हैं।

मुमुक्षु आत्मसाक्षात्कार तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। परंतु इसका साधन भी शरीर ही है। यदि बीचमें ही शरीरका पतन हो जाय तो अन्तिम लक्ष्य-स्थानतक पहुँचनेमें दीर्घकालतक समय बिताना पड़ता है। बार-बार जन्म लेने और देहत्याग करनेमें बहुत समय नष्ट होता है। अतएव किसी भी उपायसे शरीर सशक्त और स्वस्थ बना रहे तथा दीर्घकालतक टिका रहे तो प्रभुकी प्राप्तिमें सहायक हो सकता है। शरीरको बलवान् बनानेमें शास्त्रोक्त औषध और रसायनका सेवन भी बहुत काम करता है। कायाकल्पके प्रयोगसे शरीरको फिर तरुण-जैसा बलवान् बनाया जा सकता है। अमृत पीनेसे यह देह अमर हो जाता है। बहुतसे योगियोंका मत है कि हमारे परम गुरु मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि आज भी अपने असली शरीरसे विद्यमान हैं। अश्वत्थामाके विषयमें भी यही बात कही जाती है। अतएव औषध और रसायनका सेवन करनेसे अपने ध्येयमें पर्याप्त सहायता मिलती है।

मिताहार शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। मिताहारका अर्थ है—पेटमें दो भाग भोजनसे, एक भाग जलसे भरे और एक भाग हवाके लिये खाली रक्खे। खाना तभी चाहिये जब भूख लगे।

आयुकी वृद्धि एवं जीवनके परम लक्ष्य प्रभुकी प्राप्तिके उपर्युक्त छः उपायोंका श्रद्धा तथा दृढ़तापूर्वक सेवन करके जीवनको सफल बनाना चाहिये।

देह-विवेचन

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्०)

(१)

देहस्वरूपका विचार

हमलोग भौतिक जगत्के निवासी हैं, इसी कारण साधारणतः एकमात्र भौतिक देहको ही देह समझते हैं। भौतिक देह पाञ्चभौतिक है, अर्थात् पृथिवी आदि पञ्चभूतोंकी मिलित अवस्थामें भौतिक देहकी उत्पत्ति होती है। इन पाँच भूतोंमेंसे प्रत्येक भूत ही प्रति भौतिक देहका उपादान हो, ऐसी बात नहीं है। पार्थिव देहका उपादान पृथिवी है, अन्यान्य भूत यहाँ निमित्त या उपष्टम्भक हैं। वरुणलोकमें जलीय देहमें जल ही उपादान होता है, अन्यान्य भूत निमित्त-मात्र होते हैं। तैजस देह, वायवीय देह और आकाशीय देहके सम्बन्धमें भी यही एक नियम है। स्थूलदेहके सिवा सूक्ष्मदेह भी है। प्रकृतिके सूक्ष्म उपादानके द्वारा इसकी रचना हुई है। सांख्यशास्त्रके मतसे लिङ्ग सूक्ष्मके ही अन्तर्गत है। **'सप्तदशैकं लिङ्गम्'**—यह प्रसिद्ध ही है। जैसे मृत्यु जबतक नहीं हो जाती, तबतक स्थूलदेह रहता है। इसी प्रकार जबतक 'कैवल्य' प्राप्त नहीं हो जाता, तबतक लिङ्ग-शरीरकी सत्ता अटूट बनी रहती है। मृत्युके समय लिङ्ग या सूक्ष्म सत्ता स्थूलदेहका त्याग करती है। स्थूलदेह भोगायतन है। लिङ्गशरीरमें भोग नहीं होता। लौकिक जीवन स्थूलदेहके जन्मसे लेकर स्थूलदेहके त्याग अर्थात् मृत्युपर्यन्त सीमित रहता है। मृत्युके बाद आतिवाहिक देहका काम शुरू हो जाता है। परंतु वह सामयिक होता है। स्थूलदेहके त्यागके बाद लिङ्गशरीर एक स्थानसे दूसरे स्थानपर स्वयं नहीं जा सकता। मृत्युके बाद जब स्थूलदेहसे लिङ्गशरीर पृथक् होता है तब एक आतिवाहिक देह आविर्भूत होता है और लिङ्गशरीरको कर्मानुसार अन्य भोगायतन देहकी प्राप्तिपर्यन्त साथ लिये चलता है; क्योंकि उसके बिना योगिगण 'भुवनज देह'के नामसे वर्णन करते हैं। इन भुवनज देहोंमें तत्त्व-देह प्रविष्ट होकर भोग-सम्पादन करता है। केवल तत्त्व-देह (लिङ्ग) में भोग नहीं होता। केवल तत्त्व-देह और लिङ्ग-देह पर्यायवाची हैं। उसमें भोगका संस्कार तो होता है; परंतु भोगकी सामर्थ्य नहीं होती। भुवनगत भेदके कारण भुवनज देहके भी भेद होते हैं। इसी कारण भुवनज देह स्थूल होनेपर भी विष्णुलोकका भुवनज देह शिवलोकके भुवनज देहसे विभिन्न प्रकारका होता है। प्रत्येक लोकमें एक व्यक्तिके भुवनज देहसे अन्य व्यक्तिका भुवनज देह भिन्न होता है, तथापि वह सजातीय होता है। तत्त्व-देह या लिङ्गशरीर पीछे अभिन्न या एकरूप होनेपर भी तत्तत् लोकके भोगके लिये एक ही तत्त्व-देहके विभिन्न भुवनज देह होते हैं। जबतक कैवल्यप्राप्ति नहीं हो जाती, तबतक ऐसा ही चलता रहता है। लिङ्ग या तत्त्व-देहके मूलमें 'कला-देह' रहता है। वह योनिस्वरूप है। इसी कारण शिवसूत्रमें लिखा है—**'योनिवर्गः कलाशरीरम्।'**

वेदान्तके मतसे स्थूल और सूक्ष्म शरीरके परे एक कारणदेह है। पञ्चकोषोंमें 'अन्नमय कोष' 'स्थूलशरीर' है, 'प्राणमय', 'मनोमय' और 'विज्ञानमय' कोष 'सूक्ष्मशरीर' है; और 'आनन्दमय कोष' 'कारणशरीर' है।

यह हुई स्थूल, सूक्ष्म और कारण देहकी बात। वैष्णवाचार्य, शैवाचार्य और शाक्ताचार्यगण कारण-देहके परे एक और देह बतलाते हैं। उसका नाम है—'महाकारण-देह।' यह देह त्रिगुणके अन्तर्गत नहीं है, यह रजोगुण और तमोगुणके स्पर्शसे रहित 'विशुद्ध सत्त्वमय' है। यह अत्यन्त निर्मल है। यह 'अप्राकृत देह' है। शैवसिद्धान्तके

प्रणव-मन्त्रके जपसे आयु बढ़ती है। तैलधारावत् णव-मन्त्रका जप श्वास-श्वासमें चलना चाहिये। नाड़ीके थ प्रणव-मन्त्रका जप करनेसे बहुत शीघ्र प्रगति होती । श्वास-प्रश्वासकी गति तालबद्ध बनती है। धातु और सायनके विशेष योगसे विद्युत्-शक्ति प्रकट होती है। इसी कार श्वास-प्रश्वासके साथ प्रणव-मन्त्रका जप करनेसे अमोघ क्ति उत्पन्न होती है। अखण्ड गतिसे प्रणव-मन्त्रका जप रनेसे मन उसमें स्थिर हो जाता है। जैसे चुम्बकके सामने ोहा रखनेसे तुरंत ही चुम्बक लोहेको खींच लेता है, वल चुम्बककी शक्तिके पास लोहा आना चाहिये; इसी कार अखण्ड प्रणव-मन्त्रका जप चुम्बकके समान है, चित्त-त्तियाँ लोहेके समान हैं। ये दोनों समीप आ जायँ तो प्रणव-न्त्रका जप वृत्तियोंको खींच लेता है और वृत्तियाँ प्रणव-य बन जाती हैं। इस प्रकार दीर्घजीवन और प्रभु-प्तिकी साधना—दोनों साथ-साथ आगे बढ़ते हैं और ीवनका ध्येय सफल हो जाता है।

सिद्धपुरुषकी कृपा भी इसमें विशेषरूपसे हायक होती है। यदि सिद्धपुरुषकी कृपा हो तो दीर्घ-ीवन और प्रभुकी प्राप्ति दोनों ही सत्वर प्राप्त होते हैं।

मुमुक्षु आत्मसाक्षात्कार तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त रना चाहता है। परंतु इसका साधन भी शरीर ही है। यदि बीचमें ही शरीरका पतन हो जाय तो अन्तिम लक्ष्य स्थानतक पहुँचनेमें दीर्घकालतक समय बिताना पड़ता है। बार-बार जन्म लेने और देहत्याग करनेमें बहुत समय नष्ट होता है। अतएव किसी भी उपायसे शरीर सशक्त और स्वस्थ बना रहे तथा दीर्घकालतक टिका रहे तो प्रभुकी प्राप्तिमें सहायक हो सकता है। शरीरको बलवान् बनानेमें शास्त्रोक्त औषध और रसायनका सेवन भी बहुत काम करता है। कायाकल्पके प्रयोगसे शरीरको फिर तरुण-जैसा बलवान् बनाया जा सकता है। अमृत पीनेसे यह देह अमर हो जाता है। बहुतसे योगियोंका मत है कि हमारे परम गुरु मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि आज भी अपने असली शरीरसे विद्यमान हैं। अश्वत्थामाके विषयमें भी यही बात कही जाती है। अतएव औषध और रसायनका सेवन करनेसे अपने ध्येयमें पर्याप्त सहायता मिलती है।

मिताहार शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। मिताहारका अर्थ है—पेटमें दो भाग भोजनसे, एक भाग जलसे भरे और एक भाग हवाके लिये खाली रक्खे। खाना तभी चाहिये जब भूख लगे।

आयुकी वृद्धि एवं जीवनके परम लक्ष्य प्रभुकी प्राप्तिके उपर्युक्त छः उपायोंका श्रद्धा तथा दृढ़तापूर्वक सेवन करके जीवनको सफल बनाना चाहिये।

भी इसी प्रकारका है। 'महाकारण-देह'का उपादान विशुद्ध सत्त्व है। इसके बाद चित्-शक्तिमय देह भी है। 'महाकैवल्य-देह' के नामसे संत-समाजमें वह प्रसिद्ध है। 'बैन्दव देह'का नाम तान्त्रिक जगत्‌में सब जानते हैं। इसके भी अतीत जो देह है, शाक्त लोग उसको 'शाक्त देह' या 'चिन्मयस्वरूप'के नामसे पुकारते हैं।

यह केवल कैवल्यात्मक चिन्मात्र नहीं है, किंतु चित्-शक्ति-निर्मित 'शाक्तदेह' है। कबीर-सम्प्रदायमें 'हंस-देह' नामक एक सर्वोपरि देहका पता मिलता है। यह सब वर्णन सत्य है; क्योंकि आत्माकी स्वरूपशक्तिके क्रमविकासके अनुसार साधकके जीवनमें इन सबकी अभिव्यक्ति होती है। निश्चय ही सब साधकोंको सब स्तरोंका पता नहीं रहता। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि मृत्यु स्थूलदेहकी होती है। सूक्ष्म या लिङ्ग देहकी मृत्यु नहीं होती। इसी प्रकार अन्य देहोंकी भी बात है। परंतु निवृत्ति है। स्थूलदेहातीत होनेपर जन्म-मृत्युका आवर्तन कट जाता है, परंतु ऊर्ध्वगतिकी सम्भावना तब भी रहती है। तदनुसार शुद्धतर, शुद्धतम देहका विकास होता है। चरम अवस्थामें जो स्थिति होती है, वह देहभावका परम उत्कर्ष है। उस अवस्थामें एक पृष्ठपर देह और दूसरे पृष्ठपर देहातीत स्थिति होती है। वहाँ चित् और अचित् योगनिष्ठ साधकगण Integrated body कहा करते हैं। स्थूल और सूक्ष्म सत्तामें साम्यकी प्रतिष्ठा करके इसकी रचना की जा सकती है एवं और भी उच्चतर सत्ताके साथ साम्य स्थापित करनेपर यह हो सकता है। सब प्रकारके सिद्धदेह एक-से नहीं होते।

'ज्ञानदेह' इन सबसे पृथक् होता है। वह सद्गुरुकी कृपासे दीक्षाके समय प्राप्त हो जाता है। यह 'ज्ञानदेह' साधारणतः गुरुप्रदत्त बीजके रूपमें शिष्यको अर्पित होता है। शिष्यको योग-क्रियाके द्वारा उसका विकास करना पड़ता है। विकास पूर्ण होनेपर वह ज्योतिर्मय अमरदेहके रूपमें प्रकाशित होता है। शिष्य उच्च अधिकारी हो तो गुरुकी कृपासे वह विकसित रूपमें भी प्राप्त हो सकता है।

'भावदेह' इन सब देहोंसे पृथक् होता है। यहाँ भाव-देहके सम्बन्धमें संक्षेपमें कुछ कहा जाता है। यह अत्यन्त गुह्य विषय है, साधारण लोगोंके ज्ञानके अगोचर है, बुद्धिके लिये भी अगम्य है। सत्यके गम्भीर स्तरमें उपस्थित हुए बिना इन सब तत्त्वोंमें प्रवेश पाना अति कठिन है। सद्गुरु-की प्राप्तिके बाद उनके द्वारा मन्त्रकी प्राप्ति होती है। यह मन्त्र-साधना नाम-साधनाका ही गम्भीरतर रूप है। नाम-साधनासे गुरु-प्राप्ति होती है। तत्पश्चात् गुरुप्रदत्त मन्त्र-

आवरणको हटाकर उसको अपने स्वभावमें प्रतिष्ठित करना। साधारणतः मनुष्य वस्तुतः जानता ही नहीं है कि वह कौन है और क्या चाहता है। उसे क्या अभाव है और वह कहाँ और किस प्रकार निवृत्त हो सकता है, यह उसकी समझमें ही नहीं आता। सब कुछ मायाके आवरणसे ढका है। सत्यका स्वरूप उसके सामने उन्मुक्त होकर खुलता नहीं है। सद्गुरुप्रदत्त मन्त्रकी सिद्धिके बाद यह आवरण खुल जाता है। आत्मा तब अपनेको पहचान सकता है। और अपने अभावको स्वयं ही अनुभव करता है तथा अभावकी निवृत्तिका उपाय भी उसके सामने प्रकट हो जाता है। प्रकारान्तरसे कहा जाता है कि मायाके कट जानेके बाद 'माँ' मिल सकती है। किंतु साथ-ही-साथ उसी समय वह मिल जाती हो, ऐसी बात नहीं है। माँका अभाव उस समय अनुभूत होता है और वह अपनेको मातृहीन शिशुके समान असहाय समझता है। केवल यही नहीं, मातृ-हीन शिशु उस समय अभावकी ताड़नासे 'माँ-माँ' कहकर रुदन करता रहता है।

इस तत्त्वको और भी स्पष्ट करके कहा जाता है। मन्त्र-साधनाके फलसे ज्ञानका उदय होनेपर अनादि कालका आवरण कट जाता है। इस आवरणके भंग होनेके साथ-साथ जीव अर्थात् मायामुक्त जीव अपने स्वरूपको देख पाता है। इस स्वरूपकी दो सत्ताएँ नित्य सम्पर्कयुक्त रूपमें सम्बद्ध हैं,—एक है इसकी 'आश्रय-सत्ता' और दूसरी है 'विषय-सत्ता'। मायाके हटनेपर जब स्वभावका उन्मेष होता है तब मायातीत निज स्वरूपकी ये दोनों दिशाएँ खुल जाती हैं। इसीका नाम है—भावका विकास अथवा 'भावदेहकी प्राप्ति'। यही स्वभाव है। मायाके आवरणमें यही अनादि-कालसे ढका हुआ था। इसीके उन्मुक्त होनेपर भावदेही शिशु अपनी अनादिसिद्धा जननीके लिये क्रन्दन करता रहता है। इसीका नाम है—'भाव-साधना'! मायाका आवरण हट जानेपर यह नित्य-निरन्तर चलता रहता है। एक ओर जैसे भावमय शिशुका आविर्भाव होता है, दूसरी ओर वैसे ही इस भावमय शिशुकी जननीका भी आविर्भाव होता

शिशु माँके सिवा और किसीको जानता नहीं है। भावदेही आत्मा जो निरन्तर माँ-माँ कहकर व्याकुलभाव प्रकट करता है, इसीका नाम है—'भावसाधना'। वास्तविक साधनाका प्रारम्भ यहींसे होता है। मायाकी निवृत्तिके पूर्व जो साधना थी, वह कृत्रिम थी; क्योंकि वह कर्तृत्वाभिमान लेकर की जाती थी, परंतु वह भी व्यर्थ नहीं है; क्योंकि उसीके फलसे मायाकी निवृत्ति होती है। भावसाधना अकृत्रिम है, यह किसीको भी सिखानी नहीं पड़ती। इसके लिये गुरुकी आवश्यकता नहीं होती। मन्त्र आवश्यक नहीं होता, शास्त्रकी आवश्यकता नहीं होती, विधि-विधानकी आवश्यकता नहीं होती। इस भावदेहमें ही साधकका अहंभाव जुड़ जाता है। मायादेह उस समय भी रहता है। मायादेह कर्मजगत्की वस्तु है, वह प्रारब्धकर्मसे उत्पन्न है और प्रारब्धकर्मके साथ ही संश्लिष्ट है। आत्मा एक साथ इन दोनों देहोंमें अधिष्ठान करता है। मायादेह कर्मजगत्के नियमके अनुसार चलता रहता है। आत्माका अहंभाव या अभिमान जब मायिक देहमें रहता है तब मायिक देहका कार्य होता है; जब भावदेहमें रहता है तब भावदेहका कार्य होता है। एक ही समयमें न्यूनाधिक भावसे दोनों देह ही रह सकते हैं। किंतु भावदेहके विकासकी धारा स्वतन्त्र है। भावसाधनाके फलस्वरूप भावका विकास होता है और उसके प्रभावसे मातृसत्ता उसके समीप उपस्थित हो जाती है। 'भाव' प्रेमकी अपरिणत अवस्था है। भाव परिपक्व होनेपर वही 'प्रेम'रूपमें परिणत हो जाता है। 'भाव' मानो पुष्पकी कलिका है और 'प्रेम' मानो खिला हुआ सुगन्धित पुष्प है। भावके विकाससे मातृसत्ता क्रमशः विकसित होकर सामने प्रकट हो जाती है। भाव परिपूर्ण होनेपर माँ और संतानका मिलन हो जाता है, अर्थात् प्रेमके उदयके साथ-साथ माँ संतानको गोदमें ले लेती है। तब फिर व्यवधान नहीं रह जाता। इसके बाद जब क्रमशः प्रेमकी प्रगाढ़ता बढ़ती है, तब माँ और संतान क्रमशः द्रवित—विगलित होकर एक होनेकी दिशामें अग्रसर होते हैं। प्रेमावस्थामें
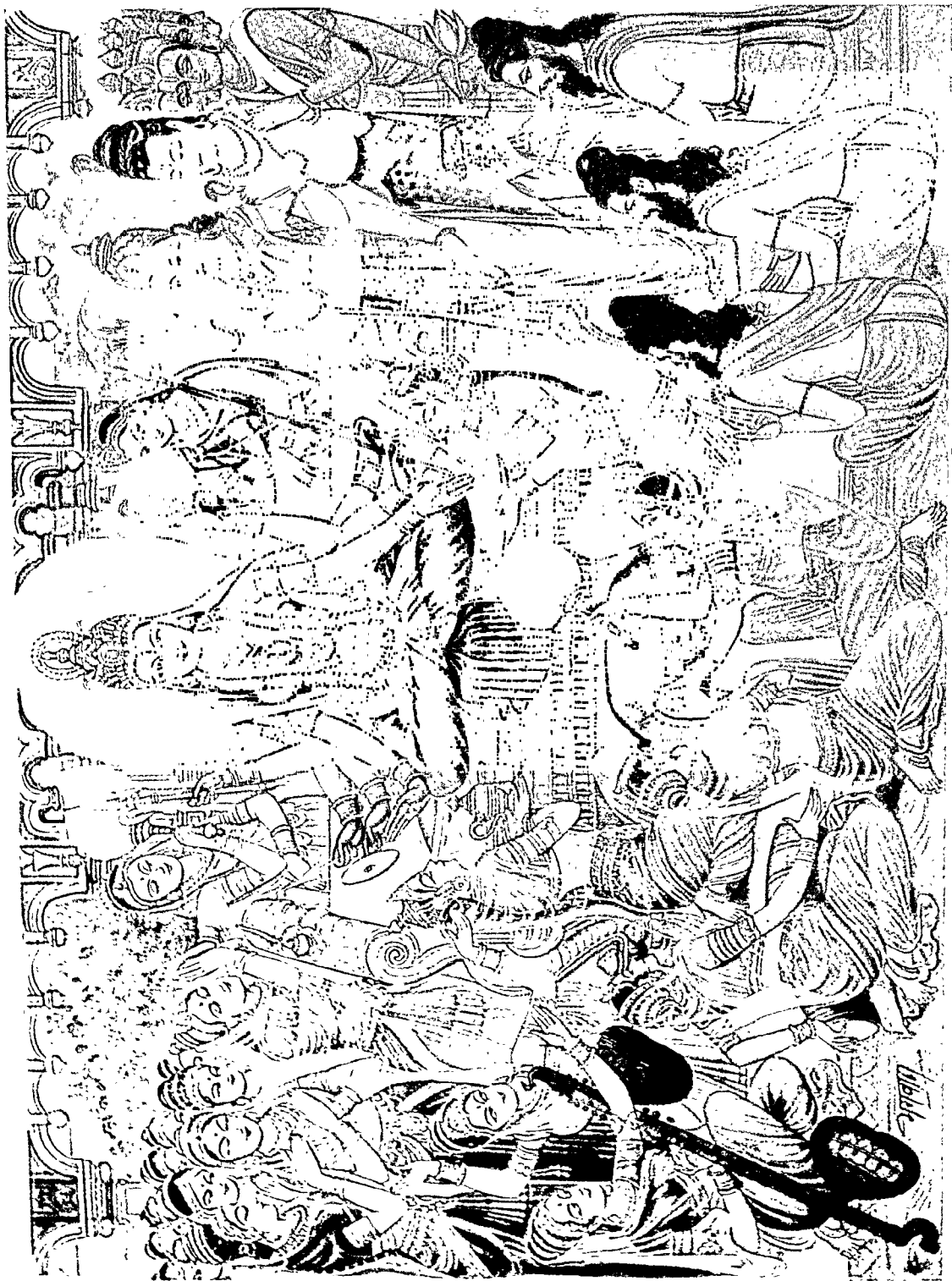
दिव्य देवीद्वीपमें महादेवी

दिव्य देवीद्वीपमें महादेवी
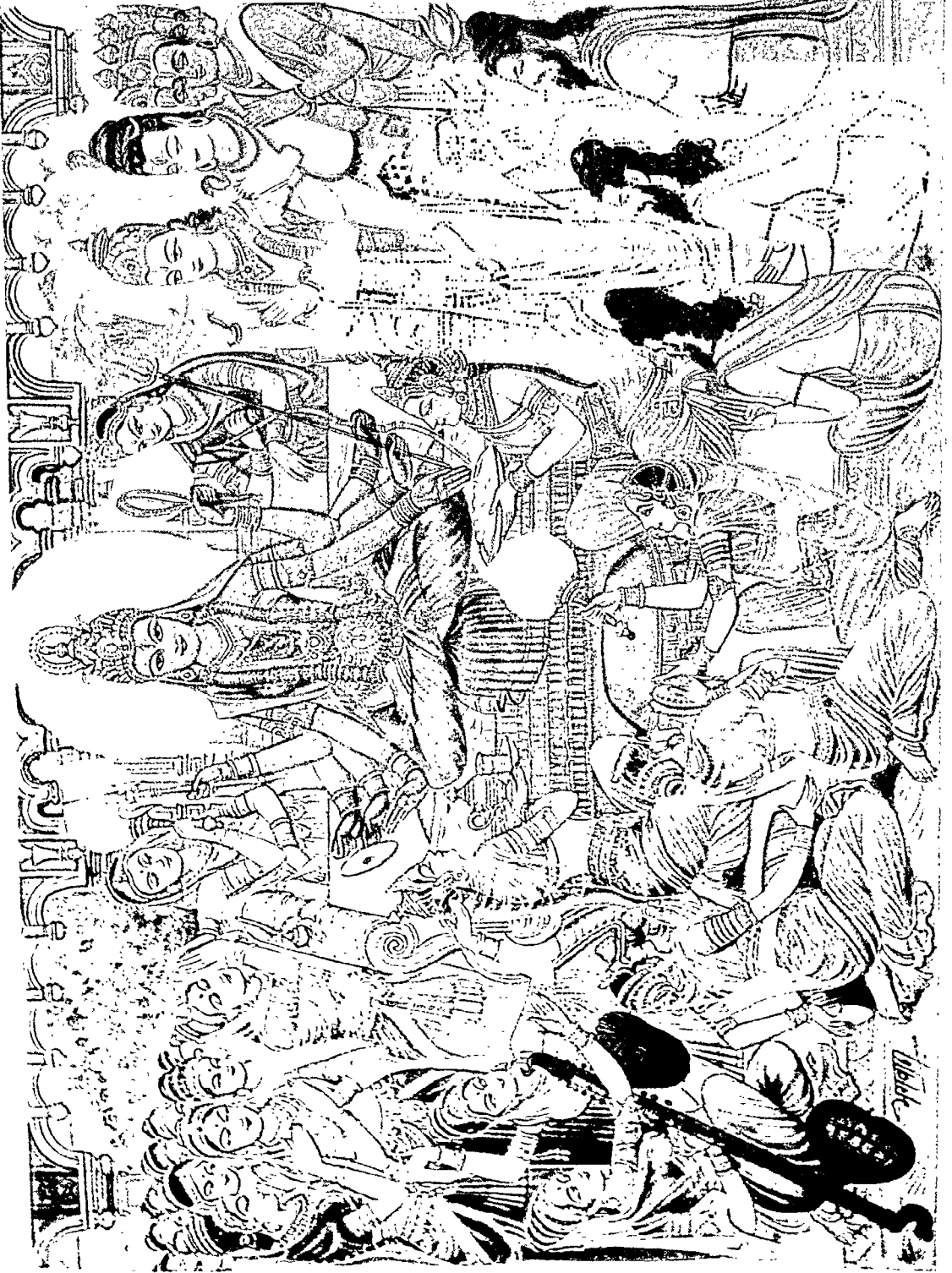
जो पिण्ड दिया जाता है, उसके फलस्वरूप क्रमशः भोगदेह निर्मित होता है। इस मतसे पहले आतिवाहिक देह, उसके बाद भोगदेह तथा उसके बाद भी एक अन्य तृतीय देहका उल्लेख देखनेमें आता है। 'प्रायश्चित्तविवेक'के टीकाकार गोविन्दानन्द कहते हैं कि 'देह दो प्रकारके होते हैं, एक आतिवाहिक अर्थात् प्रेतदेह और दूसरा भोगदेह।' आचार्य-गण कहते हैं कि 'पिण्डदान हुए बिना अथवा षोडश श्राद्ध किये बिना जीव चिरकालतक पिशाचरूपमें भ्रमण करता है और ढूँढ़नेपर भी उसे शान्ति-लाभका कोई मार्ग नहीं मिलता। समय बीत जानेपर अनेक श्राद्ध करनेपर भी पिशाचत्व सहसा दूर नहीं होता।' प्रेतको पिण्डदान करनेकी उपयोगिता प्राचीन कालमें सभी स्वीकार करते थे। धर्म-शास्त्रके अनुसार यह पिण्डदान न होनेपर कल्पान्ततक पिशाचभाव रह जाता है। वर्षके अन्तमें सपिण्डीकरण हो जानेपर दूसरे प्रकारका देह धारण करना पड़ता है। वही वास्तविक 'भोगदेह' होता है। इसके बाद पाप-पुण्यका विचार होनेपर यदि पुण्यकी अधिकता होती है तो उसे 'दिव्य देह'की प्राप्ति और देवलोककी गति होती है। पापकी अधिकता रहनेपर 'यातना-देह' धारण करके नरकमें जाना पड़ता है। स्वर्ग और नरकका पृथक्‌रूपमें वर्णन किया गया है। किं बहुना, स्वर्गमें असंख्य देवलोक विद्यमान हैं और इसी प्रकार नरकोंकी संख्या भी अनेक है। किंतु स्वर्गमें केवल सुख और आनन्दका ही भोग होता है; वहाँ दुःखका लेश भी नहीं होता। इसी प्रकार नरकमें केवल दुःख ही रहता है।

स्वर्ग प्रकाशमय है, वहाँ अन्धकार नहीं है। सदा ज्योतिका प्रकाश रहता है। नरकमें प्रकाश नहीं है, केवल अन्धकार रहता है। स्वर्गमें नित्य सुगन्धकी अनुभूति होती है और नरकमें सदा दुर्गन्ध क्लेश देती रहती है। याद रखनेकी बात है कि स्वर्ग या नरकमें स्थिति दीर्घकालतक होनेपर भी वह नित्य नहीं है। पुण्यक्षय हो जानेपर स्वर्गीय जीवनसे स्खलित होना पड़ता है। इस प्रकार स्वर्गभ्रष्ट जीव मनुष्य-कुलमें, सद्‌वंशमें, उत्तम परिस्थितिमें जन्म ग्रहण करता है। इसी प्रकार नरकसे निकलनेपर साधारणतः पशु-पक्षीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है, पश्चात् मनुष्ययोनिमें जन्म होता है तथा मनुष्ययोनिमें आकर भी हीनवंशमें प्रायः विकृत देह लेकर जन्म लेना पड़ता है।

(३)

मरस हो जाते हैं, वे अद्वयस्वरूप और नित्य स्वप्रकाश-र होते हैं। तब उनका तिरोभाव भी नहीं होता।

सिद्ध-सम्प्रदायमें एक किंवदन्ती है, जिसके जाननेसे म्यक् और असम्यक् रूप 'कायसिद्धि'का भेद स्पष्ट हो ता है। ऐसा सुना जाता है कि एक बार गोरक्षनाथने ल्लाम प्रभुदेव नामक किसी एक महासिद्धके समीप प्रकट ोकर उनके सामने अपने भूतजय तथा वज्राङ्गताका दर्शन किया था। प्रभुदेवके मतसे केवल वज्राङ्गताकी ाप्ति सम्यक् सिद्धिके रूपमें स्वीकृत नहीं है। देहकी थिरता सिद्ध हो जानेपर भी जबतक मायापर विजय नहीं प्राप्त ो जाती, तबतक परामुक्तिकी सम्भावना नहीं है। उनके तसे क्षर भूतसमूह और अक्षर कूटस्थके अधीश्वर हेश्वरकी भक्ति ही परामुक्ति प्रदान करती है। इस भक्तिके उदय हुए बिना देहसिद्धि परम देहसिद्धिके रूपमें रिगणित नहीं हो सकती।

गोरक्षनाथने कहा कि उनके शरीरपर तीक्ष्ण धारवाली तलवारके प्रहारसे भी कोई क्षति नहीं होगी। प्रभुदेवके मतसे छेदन-भेदन आदि क्रियाके द्वारा कायसिद्धिकी परीक्षा आसुरी परीक्षा है। तथापि जब गोरक्षनाथके शरीरपर खड्गप्रहार किया गया, तब उनके शरीरका कोई अंश छिन्न नहीं हुआ, यहाँतक कि उनके शरीरका रोम भी उससे नहीं कट सका। केवल देहसे उसी प्रकार शब्द हुआ, जैसे वज्रके द्वारा आघात लगनेपर पहाड़से शब्द उत्थित होता है। तब प्रभुदेवने कहा कि 'कायसिद्ध योगी वात, आतप, अग्नि, वज्र, वृष्टि, हिम आदिके द्वारा पीड़ित नहीं होता तथा वह जरा-मृत्युसे रहित होता है। वह सब प्रकारके सम्बन्धसे रहित होकर ईश्वरमें पूर्ण समाधिस्थ रहता है।'

गोरक्षनाथ ये सब बातें सुनकर उनकी परीक्षामें लग गये। उन्होंने तलवार लेकर अनेक प्रकारसे प्रभुदेवके शरीरपर आघात किया। परंतु प्रभुदेव आकाशवत् अचल रहे। वह आघात कहाँ लगा है, यह समझमें नहीं आया। गोरक्षनाथ इस प्रकारकी अद्भुत सिद्धि देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। उनके अपने शरीरपर आघातके फलस्वरूप शब्द उत्थित हुआ था, किंतु प्रभुदेवका शरीर अचल और निःशब्द था।

प्रभुदेव बोले—'काये घनीभवति सापि घनैव माया।'

रस-सम्प्रदायमें अति प्राचीन कालसे ही जीवन्मुक्तिकी साधनाके लिये कायसिद्धिकी उपयोगिताके विषयमें जानकारी थी। रसतत्त्ववेत्ता कहते हैं कि 'इस शरीरमें ही परमात्म-संवेदन होना आवश्यक है। शरीरत्यागके बाद ज्ञानलिप्सा निरर्थक है। परंतु नाना प्रकारकी व्याधि, जरा-मरण आदि दुःखोंके द्वारा संतप्त क्षणभङ्गुर शरीरके द्वारा मनके अगोचर सूक्ष्म तत्त्वका साक्षात्कार प्राप्त करना सम्भव नहीं है। अतएव महाज्ञानकी प्राप्तिके पूर्व ही अणिमा आदि अष्ट गुणोंसे सम्पन्न स्थिर-देह प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न आवश्यक है। दिव्य देह-निर्माणके लिये शिववीर्यरूप पारद तथा शक्ति-बीजात्मक अभ्रककी उपयोगिता रसतन्त्रमें बारंबार उल्लिखित हुई है और इसी कारण देहको 'हरगौरीसम्भूत' कहा करते हैं; क्योंकि पारद शिवके अङ्गसे उत्पन्न है, अतएव इसको 'रस' भी कहते हैं।

अष्टादश संस्कारके द्वारा संस्कृत रस जिस प्रकार एक ओर लौहको भेदनेमें समर्थ होता है, उसी प्रकार इसके द्वारा देहकी भी भेदनक्रिया सम्पादित हो सकती है। रसके द्वारा लौहका भेदन होनेपर वह स्वर्णके रूपमें परिणत हो जाता है तथा उसके द्वारा नरदेहका भेदन होनेपर वह सिद्धदेहमें परिणत होता है। वेधक्रियाके द्वारा देह शुद्ध होनेपर देह आकाशगमन आदि कार्य कर सकता है। रसायनविद्याका उद्देश्य लौहको स्वर्णमें परिणत करना नहीं है, बल्कि देहकी अमरता-साधन करना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। रस सम्यक्रूपमें संस्कृत हुआ है या नहीं, यह जाननेके लिये लौहका वेधन किया जाता है, और किसी उद्देश्यसे नहीं। रस जीवको 'पार' प्रदान करता है, इसी कारण इसका दूसरा नाम 'पारद' है। शिव-शक्ति-बीजस्वरूप पारद और अभ्रकके संघट्टके वश रसदेहकी अभिव्यक्ति होती है। अनित्य भौतिक देह जिस प्रकार रज और वीर्यके संयोगसे उत्पन्न होता है, उसी प्रकार रसदेह भी शिव-शक्ति-सामर्थ्यसे उत्पन्न होता है। जो लयको प्राप्त होता है तथा जिसमें वह लीन होता है, उन दोनोंके बीच साम्य हो जाता है। जो पारद अभ्रकको ग्रास करता है, उसमें स्वर्ण आदि लीन होनेपर अमृत सत्त्व प्रकट होती है, जिसके फलस्वरूप देहको स्थैर्य प्राप्त होता है।

देहसिद्धिके फलसे समस्त मन्त्रवर्ग, शुद्ध अध्वा अन्तर्गत समस्त देवता रससिद्ध पुरुषके किंकर हो जाते हैं अनादिकालसे अनेक उपासक इस देहको प्राप्त करके सि रूपमें प्रसिद्ध हो चुके हैं। उनमें महेश्वर, दत्तात्रेय, शुक्राच

आदिका नामोल्लेख किया जा सकता है। इस प्रकार मन्थान भैरव, सिद्धबुद्ध, नागार्जुन, नित्यनाथ, विन्दुनाथ आदिके नाम इस प्रसङ्गमें उल्लेखनीय हैं। ये लोग अमरदेह प्राप्त करके कालसे बचते हुए त्रिलोकमें विचरण करते हैं, ऐसी प्रसिद्धि है।

चतुष्पाद ब्रह्मका केवल एक पाद मृत्युके द्वारा व्याप्त है। अन्य पादत्रय 'अमृतं दिवि' हैं। वे मृत्युहीन और दिव्य हैं। वे स्वमहिमामें विराजमान हैं। समस्त विश्व एकपादमें स्थित है। वह चलस्वभाव होनेके कारण हेय है; किंतु 'त्रिपाद्विभूति' उपादेय है और वह मनके अगोचर है। यह 'ब्रह्मतत्त्व' एकमात्र योगगम्य है। 'योग' शब्दको यहाँ प्रकृति और पुरुषके शुद्धिसाम्यमूलक रूपमें समझना चाहिये। नरदेह प्राकृत होनेके कारण स्वभावतः मलिन है; अतएव योगसम्पादनके पूर्व इसको विशुद्ध करना आवश्यक है। योगके द्वारा आत्मसंवेदन होता है तथा समस्त जगत्को भासित करनेवाली चिज्ज्योति प्राप्त होती है। देहके काल-ग्रास होनेकी आशङ्का जबतक निवृत्त नहीं होती, तबतक देह और आत्माका योग सम्भव नहीं है तथा उपर्युक्त चित्-ज्योतिका स्फुरण भी नहीं होता। यह ज्योति सब क्लेशोंसे मुक्त है; विकल्पहीन, शान्त और स्वसंवेद्य है। वहाँ मनके योगके फलसे विश्व चिद्रूपमें प्रतिभात होता है, सारे कर्म छिन्न हो जाते हैं, बहिःप्रवण इन्द्रियाँ स्वतः प्रत्याहृत होती हैं तथा सदाके लिये राग-द्वेषका परिहार हो जाता है। मनुष्य-जीवनकी पूर्ण सफलता इसीमें निहित है। तब देह तेजोमय होकर निजशक्तिरूपमें परिणत होता है।

अधिक दृढ़ करनेकी आवश्यकता है कि वह तेजोरूप करके बाह्य तेजको भी प्रतिहत कर सके। इस पर्यालोचना करनेपर समझमें आ जायगा कि रस[illegible] लोगोंका उद्देश्य था—प्राकृत सत्त्वको अप्राकृत सत्त्वमें [illegible] करना। अप्राकृत सत्त्व रजः और तमःद्वारा संश्लिष्ट [illegible] और वह घनीभूत है। वह अखण्ड स्वभाव है, [illegible] संयोगकालमें वह संघर्ष सहन करनेमें समर्थ है।

चैतन्य अग्निस्वरूप है। शुद्धसत्त्वका भी यही [illegible] है। इस अग्निमय देहकी बात ही श्रुतिमें 'योगाग्निमय [illegible]' के नामसे वर्णित है। यह कालाग्निद्वारा दग्ध नहीं [illegible] ऐसा भी कहा जाता है। उपर्युक्त स्थूल और सूक्ष्मका [illegible] वास्तवमें भूत और चित्के शोधनके अनुकूल साधना है, यह जानना चाहिये।

नाथयोगी-सम्प्रदायके मूल प्रवर्तक आदिनाथ हो[illegible] भी संसारमें उसके प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ हैं। पश्चात् गो[illegible] नाथ, जलन्धर, चौरङ्गी, भर्तृहरि आदि विशिष्ट योगी सम्प्रदायमें आविर्भूत हुए। ऐसा सुना जाता है कि क[illegible] मार्कण्डेय, याज्ञवल्क्य आदि हठयोगके उपदेष्टा थे। न[illegible] योगियोंमें कोई-कोई देहसिद्धिके लिये रसप्रयोग, कोई-[illegible] वायु-प्रक्रिया और दूसरे कुछ लोग बिन्दुसिद्धिके [illegible] विभिन्न उपायोंका अवलम्बन किया करते थे। ये सारे उपा[illegible] योगप्रक्रियाके रूपमें परिगणित होते हैं। उपर्युक्त नाथयोग[illegible] गण अलौकिक योगसिद्धिके अधिकारी थे। परंतु यह बा[illegible] सभी मानते हैं कि महाज्ञानके सिवा कायसिद्धिका और को[illegible]

के अनुसंधानकी इच्छासे निजावेश प्राप्त करते हैं तथा ान दशाको भी प्राप्त होते हैं। सच्चिदानन्द-चमत्कार, आकारसमूहका प्रकाश, प्रबोध, परमपद-प्रवेश आदि सार धीरे-धीरे प्राप्त होते हैं। इस अनुभवके बलसे ण्डकी सिद्धि होती है। तब सिद्ध निजपिण्डके साथ की एकाकारता सम्पन्न करता है।

इस मार्गमें कहीं-कहीं चार ज्ञानकी बात वर्णित हुई है— देखा जाता है। वे क्रमशः सहज, ससंयम, सोपाय ाद्वय नामसे वर्णित हैं। इनके आविर्भावके फलस्वरूप निरुत्थान दशाका पूर्वाङ्गरूप स्वात्मविश्रान्ति सुलभ है।

आचार्य बलभद्रके मतसे सन्मार्गप्रदर्शक पुरुष ही में स्वीकृत हो सकते हैं। आत्मविश्रान्ति प्रदान करनेकी केवल उनमें ही है। उनके द्वारा प्रदर्शित पथपर जो चलते स्वसंवेद्य वस्तुको देख पाते हैं। परमात्मरूपी सद्गुरुकी दृष्टि ही सब प्रकारके कल्याणका मूल है। योगीलोग कारकी सिद्धियोंका त्याग करके स्वात्मैकवेद्य निरुत्थान को प्राप्त करते हैं और निजपिण्डको समरस कर हैं।

पहले निजावेश उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् स्थिर महा-दशा अभिव्यक्त होती है तथा उसके साथ अमल ाका आविर्भाव होता है। यहाँतक सम्पन्न होनेपर ल भेद विगलित होकर अभेदमय चैतन्यभासक परम-ा उन्मेष होता है। उसके अनुभवके फलसे निजपिण्डका सम्यक् ज्ञान होता है तथा परमपदमें निजपिण्डका निर्वाण अथवा ऐक्य सम्पादित होता है। तत्पश्चात् निजरश्मि प्रत्यावृत्त होती है। यही द्वितीय उन्मेष है। उसके प्रत्या-हारसे सामरस्य होता है। निजकिरणपुञ्जका निजरूपमें साक्षात्कार होता है। यह सामरस्य ही 'अद्वैततत्त्व' है। अवधूत गीतामें वर्णित 'समतत्त्व' यही है। अमनस्क, भावाभाव-विनिर्मुक्त, नाश और उत्पादरहित, सर्वसंकल्पवर्जित परब्रह्म अवस्था भी इसीका दूसरा नाम है।

महाज्ञानके द्वारा 'परमशून्ययोग'की प्राप्ति होती है। आदिनाथ श्रीशंकरसे यह ज्ञान मत्स्येन्द्रनाथके समान गोरक्ष-नाथको भी प्राप्त हुआ था। सिद्ध नाथयोगीगणकी नामावलीमें बहुतसे नाम आते हैं। ये सब नाम रस-सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें भी प्राप्त होते हैं। कहीं-कहीं चौरासी सिद्धोंके नाम प्राप्त होते हैं। उनमें कोई रसमार्गमें सिद्ध हैं, कोई हठ-योगके द्वारा सिद्ध हैं और कोई तान्त्रिक प्रक्रिया अथवा बिन्दु-साधनके द्वारा सिद्ध हुए हैं। इस सम्बन्धमें किसी एक निश्चित सिद्धान्तपर पहुँचना कठिन है।

प्रायः सभी मार्गोंमें, सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर एक ही मार्ग दिखलायी देता है और वह है—ब्रह्ममार्ग। वही 'शून्य पदवी' नामसे प्रसिद्ध सुषुम्णा नामक मध्यमा-प्रतिपद् है। उसका वर्णन इस प्रकार होता है—

'भोक्त्री सुषुम्णा कालस्य गुह्यमेतदुदाहृतम्।'

'सुषुम्णा कालकी भोक्त्री है, यह गुह्य वस्तु कही जाती है।'

जन्म-मरणके चक्रसे छुटकारा

आत्मा पूर्ण ईश्वरस्वरूप है। जड शरीरसे उसके बद्ध होनेका आभास होता है सही, पर उस आभास-मिटा देनेसे वह मुक्त-अवस्थामें दीख पड़ेगा। वेद कहते हैं कि 'जन्म-मरण, सुख-दुःख, अपूर्णता आदिके न्धनोंसे छूटना ही मुक्ति है।' उक्त बन्धन बिना ईश्वरकी कृपाके नहीं छूटते और ईश्वरकी कृपा अत्यन्त ावित्र हृदय हुए बिना नहीं होती। जब अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध और निर्मल अर्थात् पवित्र हो जाता है, जिस मृत्पिण्ड देहको जड या त्याज्य समझते हो, उसीमें परमात्माका प्रत्यक्षरूपसे उदय होता है और ी मनुष्य जन्म-मरणके चक्रसे छूट जाता है।

—स्वामी विवेकानन्द

कर्मयोनि और भोगयोनियाँ

हम क्यों कहते हैं कि केवल मनुष्य ही कर्मयोनि है ? देवता, सिद्ध, यक्ष-राक्षस—ये सब कर्म करनेमें मनुष्यसे अधिक समर्थ हैं। कहां अधिक क्रियाशक्ति और बुद्धि है। कर्म तो क्षुद्र कीटतक करते हैं। ऐसी दशामें मनुष्य ही कर्मयोनि क्यों ?

१—पहले पृथ्वीके प्राणियोंको ले लें। पृथ्वीमें जो हैं, उनका एक प्रकारका विभाजन है—१—ऊर्ध्वस्रोत, र्यक्स्रोत और ३—अधःस्रोत। वृक्षादि वनस्पति 'ऊर्ध्वस्रोत' पे अपनी जड़ोंसे रस-ग्रहण करते हैं और वह रस की ओर जाकर उन्हें पुष्ट करता है। प्रकृतिमें जो न-पतनका (विकासका ही नहीं) चक्र घूम रहा है, वे विकासोन्मुख हैं। प्रकृति उन्हें ऊपर ले जा रही यह उनका ऊर्ध्वस्रोत होना वतलाता है। पशु-पक्षी सब 'तिर्यक्स्रोत' हैं। ये जो आहार ग्रहण करते हैं, उनके शरीरमें आड़े चलता है। प्रकृति इसके द्वारा ा देती है कि ये मध्यमावस्थामें हैं। ये ऊपर भी जा हैं और नीचे भी। ऊर्ध्वमुख गति और अधोमुख —दोनोंमें ही मध्यमावस्था आती है। केवल मनुष्य 'अधः- प्राणी है। यह जो आहार मुखसे ग्रहण करता है, वह की ओर जाता है। प्रकृति इस प्रकार सूचना देती है उसके राज्यमें विकासकी चरम सीमा यहाँ हो चुकी। प्रयत्न करके यदि तुम जन्म-मरणसे छूट नहीं जाते, तिके प्रशासनसे परे नहीं पहुँच जाते तो प्रकृति अब नीचे ले जानेवाली है। जिसको स्वयं प्रयत्न करके तिके प्रशासनसे परे होना है, वह 'कर्मयोनि'का प्राणी आ ही।

२—पृथ्वीपर मनुष्य ही कर्मयोनिका प्राणी है, इसका बड़ा प्रमाण यह है कि मनुष्यका बच्चा सर्वथा अशिक्षित न होता है। उसे सब कुछ उत्पन्न होनेके पश्चात् सीखना है। साथ ही सब कुछ सीखनेकी योग्यता, सब रसे रह लेनेकी क्षमता उसे दी गयी है। यह बात कि दूसरे किसी भी प्राणीमें नहीं है।

पशु-पक्षियोंके ही नहीं, नन्हे कीटोंतकके शिशु अपने न-निर्वाहके लिये आवश्यक संस्कार माताके उदरसे र उत्पन्न होते हैं। वे भोगयोनिके प्राणी हैं; अतः नी योनिके भोगोंको भोगनेका आवश्यक ज्ञान उन्हें जन्मसे ही प्राप्त होता है। बंदरके बच्चेको वृक्षपर चढ़ना या माताके पेटसे चिपके रहना सिखलाना नहीं पड़ता। गायके बछड़ेको तैरना कब सिखलाया जाता है ? प्रत्येक पक्षी अपनी परम्पराके अनुसार ही घोंसला बनाना किससे सीखता है ? बतखका शिशु अण्डेसे निकलते ही तैरने लगता है। कबूतर और बुलबुलको आप बया पक्षीके साथ बरसों पालकर देख लीजिये। बयाके समान सुदृढ़ कलापूर्ण घोंसला बनाना तो दूर, इन्हें कोई अटपटा बंद घोंसला भी बनाना नहीं आयेगा। बुलबुल वही कटोरी-जैसा घोंसला बनायेगी। ये पशु-पक्षी सिखलानेपर बहुत कुछ सीख लेते हैं, यह ठीक है; किंतु उस शिक्षाको अपने काममें लेना इन्हें कदाचित् ही आता है। अपने शिक्षकके लिये कार्य न करना हो तो ये अपने पुराने ढंगपर लौटना ही पसंद करते हैं।

मनुष्यके बच्चेकी अवस्था सर्वथा भिन्न है। वह कर्म-योनिमें आया है; अतः उसे कुछ भी सिखलाकर भेजा नहीं गया है। सब उसे यहीं सीखना है। लेकिन परिस्थितिके अनुसार रह लेने और सीख लेनेकी क्षमता उसे दी गयी है। मनुष्य जलमें तैर सकता है, वृक्षपर चढ़ सकता है; किंतु कब ? जब उसने ऐसा करना सीखा हो। अन्यथा मनुष्य जलमें डूब जाता है। उसे वनके पशु भले मार डालें; किंतु वृक्षपर चढ़ना उसने नहीं सीखा है तो चढ़ नहीं पाता है। मनुष्यके बच्चेकी कोई भाषा नहीं, कोई गृह-निर्माण-पद्धति नहीं। जो भाषा सिखलायी जाय, उसे सीख लेगा। जैसा रहन-सहन सिखलाया जाय, वैसे रहने लगेगा।

भेड़ियोंके द्वारा पाले गये मनुष्यके बच्चे मिले हैं। वे भेड़ियेकी माँदमें रहने और हाथ-पैरोंसे भेड़ियोंकी भाँति चलने-दौड़ने तथा कच्चा मांस खानेके अभ्यासी हो चुके थे। भेड़ियोंके समान गुर्रानामात्र ही उन्हें आता था। एक उदाहरण हिरणोंके द्वारा पाले गये बच्चेका भी पढ़नेको मिलता है। बतलाया गया है कि वह बच्चा मुखसे घास चरता था और हिरणोंकी गतिसे छलांग लगाता दौड़ता था।

यह कर्मयोनिके प्राणीकी ही विशेषता है कि वह उस परिस्थितिके अनुसार अपनेको बना सकता है, जो प्रकृति उसे देता है। किसी भोगके लिये आवश्यक ज्ञान एवं उपकरण देकर उसे प्रकृति नहीं भेजती; क्योंकि वह भोग-योनि'का प्राणी ही नहीं है।

३–अब देवतादि भोगयोनिके उच्च प्राणियोंको ले। बुद्धि उनमें मनुष्यसे अधिक है; किंतु उनको प्रकृतिने स्थूल-शरीर नहीं दिया है। धर्माधर्मकी उत्पत्तिके लिये स्थूलदेह ही आवश्यक नहीं है, यह भी आवश्यक है कि वह कर्म पृथ्वीपर किया जाय। दैत्यराज बलिने बलपूर्वक स्वर्गपर अधिकार कर लिया, तब दैत्यगुरु शुक्राचार्यने उन्हें समझाया—'स्वर्गपर इस प्रकार अधिकार स्थायी नहीं हो सकता। अधिकार तभी स्थायी होता है, जब उस अधिकारको प्राप्त करनेका जो नियम है, उसे पालन किया जाय। अन्यथा सृष्टिका नियन्ता किसी-न-किसी प्रकार अनधिकारीको अनधिकार-प्राप्त स्थानसे च्युत कर ही देता है। स्वर्गका स्वामित्व सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवालेको मिले, यह नियम है। तुम यज्ञ करके यहाँके नियमित अधीश्वर बन जाओ तो तुम्हें सृष्टि-नियन्ता भी पदच्युत नहीं कर सकेगा।'

बलिको यज्ञ करनेके लिये पृथ्वीपर आना पड़ा। उन्होंने नर्मदाके उत्तरतटपर अपनी यज्ञशाला बनायी; क्योंकि समस्त लोकोंमें सृष्टिकर्ताने इस धराको ही कर्मभूमि बनाया है। दूसरे सब लोक तो भोगभूमि हैं। धरा ही कर्मक्षेत्र है। इसी क्षेत्रमें कर्मकी खेती सम्भव है। यहीं हुए शुभ या अशुभ कर्मोंका भोग दूसरे लोकोंमें कर्ताको मिलता है; जैसे वृक्षकी जड़ पृथ्वीमें ही रहती है, पृथ्वीके रससे ही वह बढ़ता-फलता है। अब यह बात भिन्न है कि कुछ वनस्पति पृथ्वीपर फैलकर वहीं फलती हैं, कुछके कन्द पृथ्वीके भीतर बनते हैं और कुछके फल ऊपर आकाशमें उनकी डालोंमें लगते हैं। कर्मका फल ऊपर-नीचे या पृथ्वीपर, कहीं भी होता हो, कर्मरूपी वृक्षके उगने-पोषण पानेका स्थान पृथ्वी ही है।

देवता, दैत्य या उपदेवता कर्म कर तो सकते हैं; किंतु तभी कर सकते हैं, जब वे पृथ्वीपर आकर और मनुष्यरूपमें रहकर कर्म करें। पृथ्वीपर आकर अपने देवरूपमें वे कुछ करें तो वह कर्म कोई पाप-पुण्य उत्पन्न नहीं करता। देवता पृथ्वीपर आकर किसीको वरदान दे जायँ या शाप, इससे उन्हें कोई पाप-पुण्य नहीं होता। उनके अपने लोक तो भोगलोक हैं ही। वहाँ वे कोई शुभ कर्म करें तो वह पुण्य नहीं उत्पन्न करता। वैसे महर्लोक और जनलोकमें जो ऋषि-मुनि रहते हैं, वे सत्सङ्गमें ही लगे रहते हैं। ऐन्द्रियक भोगोंमें उनकी रुचि नहीं है; किंतु उन लोकोंका सत्सङ्ग, ज्ञान-ध्यान मोक्षप्रद नहीं बना करता। यदि कभी किसीको वहाँ ज्ञान होता भी है तो उसे होता है, जो धरासे ही उसका अधिकारी होकर जाता है।

देवताओंको अनेक बार भगवान् शिव एवं भगवान् नारायणके दर्शन होते हैं। श्रीराम-श्रीकृष्णादि जब पृथ्वीपर अवतार लेते हैं तो देवता उनका दर्शन करते हैं। अनेक बार उनकी सेवा भी करते हैं और उनके प्रत्यक्ष सम्पर्कमें भी आते हैं; किंतु इससे न उन्हें भक्ति मिलती और न उनकी मुक्ति होती है। वे तो जैसेके तैसे ही बने रह जाते हैं, जब कि पृथ्वीके पशु-पक्षी-वृक्षादिका भी उद्धार अवतार-कालमें भगवान्‌के सम्पर्कमें आनेपर हो जाता है।

देवलोकादि 'भोगलोक' हैं। वहाँ जो देह प्राप्त होता है, वह 'भोगदेह' है। उसमें नवीन कर्म-संस्कार ग्रहण करनेकी क्षमता नहीं होती। उस देहमें रहते अपवादस्वरूप ही कदाचित् पृथ्वीपर आकर और स्थूलदेह लेकर कर्म करनेकी प्रवृत्ति जागती है, जैसे बलिमें जागी। अन्यथा वहाँ भोगोंमें ही रुचि एवं प्रवृत्ति रहती है।

धरा कर्मभूमि है और यहाँ भी केवल मनुष्ययोनि ही कर्मयोनि है। देवता भी कर्म करना चाहें तो उन्हें धरापर मनुष्य बनकर आना पड़ता है।

'न हि मानुषात् परतरं हि कश्चित्।'

'मनुष्यसे श्रेष्ठ दूसरा कोई कहीं किसी लोकमें नहीं है।' लेकिन क्या द्विपाद प्राणीका नाम ही मनुष्य है?

मनुष्ययोनिकी कुछ विशेषताएँ हैं, जिन्हें यहाँ दे देना उत्तम होगा—

देवता तथा दूसरे पुण्यलोकोंके सब प्राणी क्षयोन्मुख हैं। वे अपने पुण्योंका भोग करके उन्हें क्षीण कर रहे हैं। वे वहाँसे नीचे गिरनेके मार्गपर हैं। उनकी अवनति ही होनेवाली है।

पशु-पक्षी और वृक्ष ही नहीं, नारकीय प्राणी भी ऊर्ध्वमुख हैं। वे प्रगतिके मार्गपर हैं। वे अपने पापों—अशुभ कर्मोंको भोगकर क्षीण कर रहे हैं। वे विकासोन्मुख हैं। उनकी उन्नति ही होनेवाली है।

मनुष्य कहाँ है—यह उसे स्वयं देखना है। वह जो कुछ करेगा, कर्मयोनिका प्राणी होनेके कारण उसको उसका फल भोगना है। वह शुभकर्म करता है तो उत्थानके मार्ग-

पर है—देवताओंसे भी श्रेष्ठ है। देवत्व ही नहीं, मोक्ष भी उसका प्राप्य बन सकता है। यदि अशुभ कर्म करता है तो वह पतनकी ओर जा रहा है। नरक और पशुत्व उसके भाग्यमें हैं।

धर्म-बुद्धि ही मनुष्यकी विशेषता है। धर्माधर्मको समझकर जो धर्ममें लगे, वह मनुष्य है। जो केवल ख पीने तथा अन्य भोगोंको जुटानेमें लगा है, वह कि भी बड़ा विद्वान्-बुद्धिमान् हो, वह 'द्विपाद पशु' ही है। तो पशुत्वसे भी नीचे जा रहा है!

—

कायसिद्धिके प्रकार

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्०)

अर्वाचीन कालमें वज्रयान-मार्गके पथिक साधकोंके भावसे भावित बाउल और सहजिया साधकोंके भावके द्वारा प्रभावित होकर नाथ-योगमार्गमें कुछ विशिष्टता आयी। उसके फलस्वरूप उन लोगोंने कायसिद्धिके लिये अतिगुह्य 'चारिचन्द्र साधन' नामक उपायका अवलम्बन किया। इस मतमें 'सापेक्ष' और 'निरपेक्ष' नामसे दो प्रकारके 'अमरत्व' माने जाते हैं। अनपेक्ष अमरत्व वस्तुतः 'नाथनिरञ्जन-पद' की प्राप्ति है और वही पूर्णता है। सापेक्ष अमरत्व 'सिद्धपद'की प्राप्ति है। अमृतधाराको स्रवित करना तथा उसके द्वारा देहको संजीवन प्रदान करना उपर्युक्त अमरता-प्राप्तिके उपायके रूपमें वर्णित हुआ है। अधोमुख सहस्रदल-कमलको ऊर्ध्वमुख करके उस कमलमें स्थित अमृतके द्वारा मनको अभिषिक्त करना आवश्यक है। यहाँ प्रणवका ध्यान जरूरी होता है। ब्रह्मरन्ध्रके द्वार तथा त्रिवेणीके द्वारको अवरुद्ध करना आवश्यक होता है। इस प्रकारके उपायका अवलम्बन कर सकनेपर सुधा-धारा फिर अधोदेशमें गिरने नहीं पाती। योगियोंके मतसे यह क्रिया 'आकाशचन्द्र-भेद' नामसे परिचित है। यहाँ इस बातको जान लेना आवश्यक है कि देहरस अमृतरूपमें परिणत होकर ऊर्ध्वगामी वायुके द्वारा ऊपर जाकर सहस्रारमें संचित होता है। इस मतसे चार प्रकारके चन्द्र माने जाते हैं—(१) आदिचन्द्र, (२) निजचन्द्र, (३) उन्मत्तचन्द्र और (४) गरलचन्द्र।

रसात्मक निजचन्द्रको ऊर्ध्व खींचकर आकाशस्थ चन्द्रमें संयोजित करना चाहिये। ऊर्ध्वगतिके फलस्वरूप रस अमृतरूपमें परिणत हो जाता है। आकाशस्थ चन्द्र, जो सहस्रारसे संलग्न होता है, इस प्रकारके गरलचन्द्रको योगीजन पान करते हैं। गरलचन्द्रका पान और प्रणवका ध्यान आवश्यक होता है। गरलचन्द्रके द्वारा देह और मनका शोधन और संजीवन सम्पन्न होनेपर 'सिद्धदेह' प्राप्त होता है।

महायानी बौद्धोंने भी कायसाधनके विषयमें उ दिया है। वे कहते हैं कि परप्रज्ञा-प्राप्तिके बोधिसत्त्वभूमिमें प्रवेश करना आवश्यक है तथा भेद करना भी आवश्यक है। इसके सम्पन्न हो जा प्रज्ञापारमिताकी प्राप्ति होती है। यही बुद्धत्वका सम महाज्ञान है। अक्लिष्ट अज्ञान जबतक वर्तमान है, त पूर्णत्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं तथा सम्यक् सम्बोधि पैदा नहीं होती। परंतु बोधिसत्त्वकी 'कायसम्पद्' हेतुक ही उत्पन्न हो जाती है। यह बात पहले ही जा चुकी है।

तान्त्रिक बौद्धमतसे देहरसात्मक बिन्दुको 'बोधिचि कहते हैं। चतुर्दल कमलसे इसको ऊर्ध्वके उष्णीष कम स्थापन करना योगसाधनाका फल है। षट्चक्रभे समान ही यह उत्थापनक्रिया बहुत कठिन है। बिन्दुकी निम्नतम चक्रमें स्थिति आवश्यक है। तत्प निर्माणचक्रसे उसको महासुखचक्रमें उत्थापित किया है। निर्माणचक्रमें ही बोधिचित्तका उद्भव, निरोध ऊर्ध्वगति सम्पादन करना पड़ता है। जहाँ बोधिचि उदय होता है, वह कर्ममुद्राका स्थान है। उद्भ तात्पर्य है—क्षोभ। तत्पश्चात् उस क्षुब्ध बि 'अवधूति' नामक मध्यमार्गद्वारा संचालित करना पड़ता क्षुब्ध बिन्दुके ऊर्ध्वगमनके पथमें विभिन्न प्रकारके आन आस्वादन होता है। बिन्दुके अधोगमनमें भी आन अभिव्यक्ति अवश्य ही होती है, परंतु वह अस्थायी और म होनेके कारण त्याज्य है। बिन्दुकी अधोगतिके फल जैसे कामदेहकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही उ ऊर्ध्वगमनमें दिव्यदेह प्रकट होता है।

कायसाधनके सम्बन्धमें यह बात जान लेना आव है कि बिन्दुका अधःस्खलन किसी प्रकार भी न होने

परंतु इससे चरम सिद्धि नहीं प्राप्त होती । प्राकृत सत्त्व-शुद्धिके प्रकर्षसे जैसे अप्राकृत सत्त्वरूप नहीं होता; क्योंकि पूर्वोक्त प्राकृत सत्त्वमें रजः और तमका सम्पर्क अवश्य रह जाता है, इसी प्रकार देहसे देहान्तरकी प्राप्ति होनेपर भी उसमें अशुद्ध मायाका लेश रह ही जाता है । शुद्ध मायाका योग उसमें नहीं आता । सिद्धसम्प्रदायके मतसे माया तीन प्रकारकी है—'अशुद्धा माया,' 'शुद्धा माया' और 'महामाया' । शुद्धा माया शब्दसे यहाँ शैवागम-प्रसिद्ध बिन्दुतत्त्व समझना चाहिये । महामाया प्रायः चित्-शक्तिरूप है । अशुद्ध सत्त्व विकारस्वभाव है, किंतु शुद्ध सत्त्व अविकारी है । इसी कारण सम्यक् देह-शुद्धि करनेके लिये अशुद्ध मायाजात देहको शुद्ध मायाकोटिमें ले आना आवश्यक है । जब इस प्रकार शुद्धि हो जाती है, तब मायासे उत्पन्न विकार-समूह तिरोहित हो जाते हैं; परंतु शुद्धमार्गमें अवस्थित मुक्तपुरुषके अनुग्रहके विना शुद्धदेहकी उत्पत्ति सम्भव नहीं । जबतक अशुद्ध प्राकृतदेह शुद्ध मायामयदेहमें परिणत नहीं हो जाती, तबतक मृत्यु और संसारकी निवृत्ति नहीं होती । कर्मका अभाव होनेपर भी अशुद्ध देहके बीज तब भी रह जाते हैं, अतएव संसरण होगा ही । परंतु यह संसरण स्वेच्छाधीन है । यह किसी कर्मके अधीन नहीं है । परंतु सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर सूक्ष्म कर्म वहाँ भी वर्तमान है । शुद्धमार्गमें अवस्थित पुरुषकी कृपा प्राप्त होनेपर शुद्ध बीज प्राप्त होता है और अशुद्ध देहकी शुद्धि भी होती है, तब मृत्युजय हो जाता है । मुक्त पुरुषके अनुग्रहसे अशुद्ध माया शुद्ध मायामें परिणत होती है और तब देहको भी अमरत्व प्राप्त होता है ।

यह शुद्ध देह अमृतकलामय 'प्रणवतनु'के नामसे प्रसिद्ध है । प्रणवतनुकी प्राप्ति ही 'जीवन्मुक्ति' है । इस प्रकारका जीवन्मुक्त पुरुष जीव होकर भी ईश्वरकल्प होता है । वह शुद्ध और अशुद्ध जगत्के संधिस्थलमें रहता है । अशुद्ध जगत्के साथ उसका सम्बन्ध कुछ थोड़े समयतक रहता है । परामुक्ति उसके समीप रहती है । जब उसको परामुक्तिकी प्राप्ति होती है, तब योगी चिन्मय ज्योति-स्वरूपमें अवस्थान करता है और देहमें रहता है ज्योतिस्वरूपमें । तब मायाका सम्बन्ध नहीं रहता । शुद्ध माया भी उस समय नहीं रहती । जीवन्मुक्तकी देह शुद्ध मायामय होती है, परमुक्तकी देह महामायामय होती है—परमुक्तकी देह ज्ञानमय होती है, वहाँ देह और आत्माका भेद विगलित हो जाता है । प्रणव-देहधारी जीवन्मुक्त पुरुष मायाग्र मुमुक्षु जीवोंका माया-गर्भसे उद्धार करते हैं । शुद्ध वास की निवृत्ति होनेपर वे शुद्ध मायाराज्यका भी त्याग क हैं । उनका देह अकस्मात् दिनके प्रकाशमें ही तिरोहित जाता है । सिद्धलोग कहते हैं कि देहमें रहते हुए जीवन्मुक्ति प्राप्त करना होगा, मृत्युके बाद नहीं । ि मतसे मनुष्यका एक कर्तव्य है—देहशुद्धि और चित्तशु दोनोंके मिलनमें परसत्त्वकी अभिव्यक्ति होती है । रस और नाथ-योगिगणका भी यही सिद्धान्त है ।

पाश्चात्त्य देशमें भी कायसिद्धिके सम्बन्धमें ि अनुशीलन होता था । उन देशोंके प्राचीन इतिहास आर गुप्त संस्कृतिकी आलोचना करनेपर इस विषयमें बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है । ईसाई-मतके प्रामाणिक तथ्य यहाँ उल्लेखनीय जान पड़ते हैं ।

बाइबिलके 'नव विधान' (New Testament) के चतुर्थ खण्डमें 'अप्राकृत जन्म' शब्दका उल्लेख मिलता है । इससे जान पड़ता है कि इस शब्दके द्वारा दिव्यदेह-प्राप्तिका ही संकेत है ।

ज्ञानसे ज्ञेयका भेद दूर करके ज्ञानको ज्ञेयके आकारमें परिणत करनेकी शक्ति ही 'महाज्ञान'का लक्षण है । मनुष्य-शरीरमें अनादिकालसे असंख्य शक्तियाँ सुप्तावस्थामें वर्तमान हैं । इस शक्ति-समूहको जाग्रत् किये बिना ज्ञान महाज्ञानमें परिणत नहीं हो सकता । फलतः आत्मविकास भी नहीं होता और उसके अभावमें स्वरूपप्रतिष्ठा भी नहीं हो सकती । शक्ति-जागरणका उपाय है—अन्तर्दृष्टिका उन्मीलन । उन्मीलित शक्तिसमूहके द्वारा ही मनुष्य-जीवनकी सार्थकता सिद्ध होती है तथा जरा-मरण आदिसे रहित, मल और पापलेशसे हीन दिव्यदेहका उदय होता है । यही द्विजत्व-सम्पादनकारी द्वितीय जन्म (Regeneration अथवा Birth from Above) है ।

हमारे देशमें जैसे उपनयन-संस्कारके प्रभावसे अथवा दीक्षाके फलसे शुद्ध देहका उदय माना जाता है, उसी प्रकार ईसाई-मतमें दीक्षा (Baptism) के प्रभावसे शुद्ध देह प्राप्त होती है । ऐसा उनके ग्रन्थोंमें वर्णित है ।

अब प्रश्न यह होता है कि अन्तर्दृष्टिका उन्मीलन किस प्रकार हो ? इसके उत्तरमें कहा जाता है कि इस सम्प्रदायके मतसे पूर्णसत्य अखण्ड एकरस-स्वभाव है ।

मिथ्या। पूर्णत्व इन दोनोंके परेकी अवस्था है। नित्य-मण्डल निर्विकार है। अनित्य-मण्डल विकारमय है। नित्य-मण्डलमें एकताका भान रहनेपर भी, बहुकी समष्टि होनेके कारण उसमें वास्तविक एकता नहीं है, समष्टिगत वैकल्पिक एकता अवश्य उसमें है। सांख्यमतके अनुसार प्रकृति त्रिगुणात्मिका है; किंतु साम्यावस्थामें उसमें जिस प्रकारकी एकता रहती है, वैसी ही एकता इस नित्य-मण्डलमें है। पूर्णस्वरूपमें जो एकता है, वह साम्यरूप नहीं है; अतएव वह विलक्षण स्वभावकी है।

यह नित्य-मण्डल श्रीभगवान्‌का भावरूप अथवा आदि-कल्पनारूप है। यही सृष्टिके समय भौतिकरूपमें प्रकट होता है; परंतु सृष्टिके उन्मेषके समय ये दोनों मण्डल अव्यक्त अवस्थामें रहते हैं। चिद्‌-रूप (Logos) में नित्य-मण्डलका अधिष्ठान होता है। इसके साथ सृष्टि-प्रकृति (Archeus) का क्या सम्बन्ध है? ईसाई योगियोंके मतसे यह चित् और अचित्-सत्ता समकालीन और सम-भावापन्न कही जाती है। यह चित् मूल द्रव्यमें आच्छन्न अवस्थामें निहित रहता है तथा मूलद्रव्यरूपा प्रकृति भी चित्स्वरूपकी प्राणशक्ति है। सांख्यके मतसे जैसे सत्त्व और पुरुषमें कल्पित सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है, वैसा ही यहाँ भी समझना चाहिये। चित् ज्योतिरूपमें प्रतिभात होता है। द्वैत शैवागममें जैसे बिन्दुके क्षोभके फलस्वरूप चित्-शक्तिकी अभिव्यक्तिरूप ज्योतिका प्रकाश होता है, यहाँ भी बहुत कुछ वैसा ही होता है। अखिल सृष्टि, सब प्रकारकी स्थूल और सूक्ष्म देह इसी ज्योतिसे ही आविर्भूत होती हैं। ईसाई योगियोंकी परिभाषामें इस ज्योतिको (Pneuma) कहते हैं।

यह ज्योतिरूपा मूलशक्ति समस्त जड वस्तुओंमें निहित है तथा इसके प्रभावसे विभिन्न उपादान और स्थूल—ये तीन प्रकारकी भूमि वर्तमान हैं। उपर्युक्त अन्तर्मण्डल (Logos) ही 'कारण भूमि' है। वह ज्योतिर्मय है। मध्यभूमि मनोमय (Psychic) 'सूक्ष्म' है। अन्तिम भूमि भौतिक है, वह 'स्थूल' है। यह सब प्रकारसे इन्द्रियग्राह्य है। स्थूल और सूक्ष्मके अन्तरालमें एक भूमि और है, किसी-किसीके मतसे वह स्थूलके अन्तर्गत है और किसीके मतसे सूक्ष्मके अन्तर्गत। यह भूमि कल्पनामय है। इसी प्रकार मनुष्यकी अन्तः-सत्तामें भी तीन भूमि वर्तमान हैं। वे कारणरूप, सूक्ष्म और स्थूलरूपसे कारणादि देहत्रयके नामसे परिचित हैं।

कारण देह (Pneumatic body) ज्योतिर्मय है। कहीं-कहीं वह आत्मरूप (Spiritual body) देहके नामसे भी अभिहित होती है। अन्तर्दृष्टिके द्वारा देखनेपर वह अण्डाकार प्रभामण्डलके रूपमें प्रतिभात होती है और उसमें पूर्ववर्णित ज्योति (Paraclete, Logos) सुप्तवत् निहित रहती है। उसका उद्दीपन होनेपर वह मानवके अध्यात्मजीवनको निर्मल कर सकती है। जागरणके समय वह तीव्र प्राणशक्तिके रूपमें, विद्युत्‌की प्रभाकी भाँति, सर्पकी गतिके समान विसर्पित होती है। यह शक्ति अमित है। भारतीय योगशास्त्रमें इसको 'कुण्डलिनी' कहते हैं। प्राचीन कालके यवनशास्त्रमें यह शक्ति कुण्डलाकार सर्पके समान होनेके कारण 'Speirema' नामसे अभिहित की जाती थी। जब इस शक्तिका कुण्डल भङ्ग हो जाता है, तब यह वैद्युती शक्ति कारणदेहके अन्तःस्थित सत्त्वको ग्रहण करके ज्योतिर्मय देहकी रचना करती है। इस देहका निर्माणकौशल ही दीक्षाके नामसे प्रसिद्ध है। इस चिद्‌-उज्ज्वल देहको रहस्यवेत्ता 'Augocides' शब्दसे अभिहित करते हैं। इस अजर-अमर देहको 'सौरदेह' भी कहा जाता है। इस देहमें

अचिन्त्य वैशिष्ट्य वर्त्तमान है। इसका आकार उपर्युक्त वैद्युत्-ज्योतिमें निमग्न रहता है। योगसाधनाके बलसे और श्रीभगवान्के अनुग्रहसे यह दिव्य मृत्युहीन देह मूल आकारका अनुसरण करती हुई क्रमशः अभिव्यक्त होती है। यह स्वयंप्रकाश देह सुवर्णज्योतिसे मण्डित-सी जान पड़ती है। उपनिषद्में वर्णित हिरण्मयज्योतिका यह घनीभूत रूप है। यह अवयवोंका संघात न होनेके कारण अखण्ड है। अवयवसमूहको विभक्त नहीं किया जा सकता; अतएव वह अविनाशी, अपरिणामी, अजर और अमर है। स्वयंप्रकाश होनेके कारण उसको प्रकाशित करनेके लिये किसी बाह्य प्रकाशकी अपेक्षा नहीं, अन्तःकरण या करणशक्तिकी भी अपेक्षा नहीं है।

सूक्ष्म मनोमय देह 'चान्द्रदेह' के नामसे परिचित है। मनकी चन्द्रात्मकता हमारे यहाँ एक प्रसिद्ध बात है। 'सौरदेह' और 'चान्द्रदेह' दोनों ही ज्योतिर्मय हैं, इस दृष्टिसे समानता होनेपर भी दोनोंमें भेद वर्तमान है। सौरदेह निरवयव और अखण्ड है तथा चान्द्रदेह सावयव है। सावयव विनाशधर्मी है, परंतु सौरदेह अविनश्वर है।

स्थूलदेह भौतिक है, यह बात सभी जानते हैं। अतएव इस विषयमें आलोचना करना निरर्थक है। सूक्ष्मदेहकी छायारूपी एक देह है। मृत्युके बाद कोई-कोई जीव उसे ग्रहण करते हैं। मृत्युके पहले भी उसको ग्रहण कर सकते हैं। यह मनुष्यके लिये प्रायः हानिकर है; अतएव इस छायामय देहसे आत्मरक्षा करना आवश्यक है, अन्यथा धर्म-जीवनमें उन्नति करना कठिन होगा।

योगशास्त्रमें 'ज्ञानचक्षु' को तृतीय नेत्र कहा जाता है। उपर्युक्त संजीवनी शक्तिके प्रभावसे नेत्रकी सूक्ष्म क्रियाका उन्मेष होता है। आत्माकी इच्छाशक्तिके द्वारा ही कुण्डलिनीका जागरण सम्भव है। यह कुण्डलिनी जाग्रत् होकर नाड़ीगत असंख्य आवरणोंको अपसारित करती है तथा देहको भी निर्मल करती है। यही आत्मशुद्धिका उपाय है। शुद्धिके क्रमिक उत्कर्षके फलस्वरूप शक्तिके केन्द्रस्थित सब चक्र अपने अधीन हो जाते हैं। आत्माकी शक्तिके विकासका यही क्रम है।

दिव्य देह प्राप्त करके दिव्य जीवनकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक है तथा साथ-साथ विचार-शक्ति और बोधशक्तिका परिशीलन करना भी प्रयोजनीय है। पवित्र जीवन, चिन्ताशून्यता, एकाग्रता दि सहायक होते हैं। एकाग्रताकी प्राप्तिके फलस्व अन्तर्मुख होता है और सूक्ष्म ध्यानमें प्रवणत है। इसके फलस्वरूप चित्-शक्तिका विकास और इच्छामात्रसे समाधि लग जाती है। यह प्रचलित जड-समाधिसे विलक्षण होती है। इसमें लुप्त नहीं होती है। स्वनियन्त्रणकी सामर्थ्य रहत प्राचीन ईसाई योगियोंके मतसे इसका नाम 'Ma है। यह आन्तर योगमार्ग विशुद्ध मनकी भा बलसे उन्मीलित होता है। परंतु कुण्डलिनीके ज तथा प्राणकेन्द्रपर विजय प्राप्त किये बिना उक्त कार्य नहीं करती। विशुद्ध तत्त्वज्ञानके लिये तथा शक्तियोंकी प्राप्तिके लिये यही उपाय है, अन्य कोई नहीं है।

× × × ×

हमने यहाँतक विभिन्न प्रस्थानोंका आश्रय कायसिद्धिका विवरण उपस्थित किया है तथा प्रस पाश्चात्त्य देशमें काय-साधनके विषयमें कैसा प्र पहले था—इसका भी कुछ विवरण प्रदान किया है। कौलिक आगम-सम्प्रदायके योगियोंमें कायसाधन-प्र कैसी थी, इसका उल्लेख किया जाता है। परंतु प्रक्रि सम्बन्धमें ज्ञानके पूर्व देहका विज्ञान जानना आव है। इसलिये नरदेहके महत्त्वका प्रदर्शन करनेके इस देहके साथ संश्लिष्ट पदार्थसमूहका विवरण आवश्यक है। इन सब पदार्थोंके सम्यक् ज्ञानके बिना दि देह-सम्पादनकारी कौलिकी योगक्रिया आरम्भ करना सम नहीं है।

वे पदार्थ कौनसे हैं, जिनका ज्ञान कायसाध लिये होना बहुत ही आवश्यक है? 'नेत्रागम' में मह इस विषयके पदार्थोंका उल्लेख किया है। निम्न प्रकार हैं—

> षट्‌तु (६) चक्रं स्वराधारं (१६)
> त्रिलक्ष्यं (३) व्योमपञ्चकम् (५)।
> ग्रन्थिद्वादशसंयुक्तं (१२) शक्तित्रयसमन्वितम्॥
> धामत्रयपथाक्रान्तं (३) नाडित्रयसमन्वितम् (३)।
> ज्ञात्वा शरीरं मुख्याणि दशनाडीपथावृतम् (१०)॥
> द्वा सप्तत्यासहस्रैस्तु (७२०००)
> सार्द्धकोटित्रयेण (३५००००००) च।

वृन्दैः समाक्रान्तं मलिनं व्याधिभिर्वृतम् ॥
ध्यानामृतेनैव परेणैवोदितेन तु ।
ायं कुरुते योगी आत्मनो वा परस्य च ॥
देहः स भवति सर्वव्याधिविवर्जितः ।

(१) कौलमतसे षट्चक्र

) जन्मस्थानस्थ 'नाडीचक्र'। इसका आश्रय करके नाडीसमूह जालके समान फैला हुआ है।

) 'मायाचक्र' नाभिदेशमें अवस्थित है। इस ही माया सर्वतः व्याप्त रहती है।

) 'योगचक्र' हृदयमें है। यह योगप्रसरका आश्रय-
।

) 'भेदनचक्र' तालुदेशमें है।

) 'दीप्तिचक्र' बिन्दु-स्थान भ्रूमध्यमें है।

) 'शान्तचक्र' नादस्थानमें अवस्थित है।

(२) षोडश आधार

आधारसमूह जीवका आधार होनेके कारण ' कहलाते हैं। पैरके अङ्गुष्ठसे द्वादशान्त कमल-नका विस्तार है। इनके नाम हैं—अङ्गुष्ठ, गुल्फ, मेढ्र, पायु, कन्द, नाभि, जठर, हृत्कमल, कूर्मनाडी, र, तालुदेश, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरन्ध्र और त। ये सब 'आधार' नामसे प्रसिद्ध हैं।

(३) तीन लक्ष्य

क) अन्तर्लक्ष्य—

डित्प्रभाके समान अतिसूक्ष्म कुण्डलिनी-स्थित आकाश-र्शन अथवा मस्तकके ऊर्ध्वमें द्वादशाङ्गुलपर्यन्त का दर्शन। यह आन्तर और बाह्य इन्द्रियोंके अगोचर स विषयमें कुछ मतभेद पाया जाता है। योगिगणका क्ष्य सहस्रारमें ज्वलज्ज्योतिका दर्शन है। वैष्णवोंके बुद्धिगुहामें सर्वाङ्गसुन्दर पुरुषरूपका दर्शन है। शैव-के मतसे शीर्षस्थ मण्डलमें उमामहेश्वर-रूपका दर्शन है। उपासकोंका अङ्गुष्ठमात्र पुरुषरूप दर्शन भी यही है।

(ख) मध्यलक्ष्य—

सूर्य, चन्द्र तथा अग्निकी शिखाके समान नाना प्रकारके न वर्ण अथवा तद्विहीन अन्तरिक्षके समान दर्शन।

(ग) बहिर्लक्ष्य—

अपने नासिकाग्रमें अभ्यासके फलस्वरूप थोड़ी दूरतक व्योमका दर्शन।

(४) पञ्चव्योम

ये व्योमसमूह जन्मस्थान, नाभि, हृदय, बिन्दु और नादमें भावना करनेमें आते हैं। इनमें प्रथम व्योम है अनन्त विश्वका आश्रय अनन्त शून्यरूप। यह अनन्त शून्य सुषुप्तिका आवेशकारक होनेके कारण हेय है। पञ्च आकाशके नाम विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न प्रकारके मिलते हैं। जैसे—गुणरहित आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश, सूर्याकाश आदि।

(५) द्वादश ग्रन्थि

मायासे लेकर शक्तिपर्यन्त द्वादश ग्रन्थिके स्थान हैं। मायाग्रन्थि देहकी उत्पत्तिका कारण है। पाशवग्रन्थि पशुओंकी संकुचित दृष्टिका कारण है। यह ग्रन्थि कन्दमें अवस्थित है। हृदयसे आरम्भ करके ललाटपर्यन्त पाँच कारणग्रन्थि विद्यमान हैं। ये पशुओंकी सृष्टिमें कारण हैं; इसी कारण इनका निरोध करना कर्तव्य है। निरोध करने योग्य होनेके कारण इनको 'ग्रन्थि' कहते हैं। ब्रह्मग्रन्थि हृदयमें, विष्णु-ग्रन्थि कण्ठमें, रुद्रग्रन्थि तालुमूलमें, ईश्वरग्रन्थि भ्रूमध्यमें और सदाशिवग्रन्थि ललाटमें अवस्थित हैं। इनके ऊर्ध्व भी और भी कई ग्रन्थियाँ हैं। वे नादशक्तिरूपी निरोधिकाके ऊर्ध्वपर अवस्थित हैं। उनके नाम हैं—इन्धिका, दीपिका, बैन्दव, नाद और शक्ति। ये भी परचित्के प्रकाशमें आवरणस्वरूप हैं।

(६) तीन धाम

चन्द्र, सूर्य और अग्निरूप तीन धाम वाम, दक्षिण और मध्यस्थानमें व्याप्त होकर अवस्थित हैं। मानवदेहकी अधिष्ठात्री तीन प्रकारकी वायुके द्वारा तीनों धाम सृष्ट हैं। इडा आदि तीनों नाड़ियाँ भी वायुत्रयके द्वारा नियन्त्रित हैं। वस्तुतः नाड़ी असंख्य हैं और वायु उनकी अधिष्ठाता है।

परचित्-शक्तिसे प्रसूत अमृतके द्वारा दिव्य शाक्तकाय उद्भूत होता है। इस शक्तिका स्वरूप क्या है?—यह आत्माका धर्म है, भगवान्‌की स्वरूपमहिमा है, शिवकी प्राणरूप सामर्थ्य है। परंतु शक्तिरूपमें व्यवहार होनेपर

स्वरूपसे अतिरिक्त नहीं है; क्योंकि वह स्वरूपमें त नहीं है; स्वरूपसे अभिन्न है और स्वरूपके एकरस है। इस चितिरूपा परमेश्वरकी स्वातन्त्र्य-का आश्रय करके योगिगण परमपदकी ओर यात्रा हैं। वह समस्त विश्वके मध्यमें है, विश्वकी हृदयगुहामें गुप्तभावसे निहित है।

मानव निरन्तर श्वास-उच्छ्वासशील है तथा नाना के द्वन्द्वोंके घात-उपघातसे पीड़ित होनेके कारण मार्गमें संचरणशील, समस्त वस्तुओंके मध्य रहनेवाली शक्तिका साक्षात्कार नहीं कर सकता। अन्योन्यविरुद्ध और अपानकी वृत्तियोंके संघट्टके द्वारा जीवदेहके सारे तथा चिन्तन परिव्याप्त रहते हैं। अतएव किसी-न-प्रक्रियासे इन वृत्तियोंको अभिभूत करना आवश्यक विरुद्ध शक्तियोंका विरोध शान्त होनेपर यह भावना चाहिये कि सुषुम्णामें स्थित मध्यम प्राणमें पराशक्तिका हो रहा है। यह मध्यम प्राण ही 'उदान' नामक प्राणब्रह्म जब देहादिमें अहंभावका त्याग हो जायगा तथा के समावेशकी सिद्धि हो जायगी, तभी समझना कि सब भावना सफल हो गयी। अहंभाव-परामर्शके यही क्रमशः करना चाहिये। योगी पूर्णाहंतामय के साथ पराशक्तिका सामरस्य चिन्तन करें। इस भावनाके फलस्वरूप प्राणादि-संस्पर्शसे रहित स्वयं प्रकट होगा। इस स्पन्दके द्वारा पूर्वोक्त की प्राप्ति कठिन नहीं रहेगी।

हाँतक सिद्ध हो जानेपर भावनाके मार्गमें मन्त्रवीर्यका समुदित होता है। यही अभिमान-उदयरूप रहस्य है। त् देह-प्राण आदिसे परिच्छिन्न प्रमातामें विद्यमान नका परिहार करके उसको आनन्दचक्रसे उठाकर में स्थापित करना पड़ता है।

हाँतक प्रारम्भिक प्रक्रिया हुई। इसके बाद वेध- समय आता है। पहले आधार आदि सोलह एक-एक करके वेध करना पड़ता है। वेधकार्यमें रण होता है, वह मन्त्रात्मक प्राणरूपमें अथवा स्फुरत्ता-के रूपमें प्रकट होता है। यहाँ सूक्ष्म योग और की आवश्यकता है।

निमित्त स्फुरत्ताकी तीव्र उत्तेजनाका संचार ही 'सूक्ष्म है। इसका प्रयोग इस प्रकार होता है कि प्राणात्मक मन्त्र पूर्वोक्त उत्तेजनाके वश अपने स्थानको त्यागकर कुछ ऊर्ध्व सुषुम्णाके मार्गसे आरोहण करता है। इस आरोहणके साथ-साथ कौलिक मतके अनुसार सारे आधार और सारी ग्रन्थियोंकी वेधक्रिया सम्पन्न होती है। वेधक्रिया समावेशात्मक है, इसमें कोई संदेह नहीं। द्वादशान्तमें प्रवेशके साथ-साथ महामायापर्यन्त सारे बन्धन परिहृत हो जाते हैं। उसके बाद ध्रुवपदमें स्थिति होती है। अन्तिम वेध सम्पन्न होनेपर महाव्याप्तिका आविर्भाव होता है। यह नित्योदित पराशक्तिका सामरस्य रूप है। यहाँतक योग सम्पन्न होनेपर पराशक्तिके साथ अभिन्नता स्फुरित होती है। यह अभिन्नता फिर शिवतादात्म्यरूप होती है।

कौलिक प्रक्रियामें प्रथम प्रपञ्च है परम शिवके साथ अभिन्नता और उसका फल—सब कुछ इस प्रपञ्चके अन्तर्गत है। इसके बाद द्वितीय प्रपञ्च आता है। द्वादशान्तमें प्रसरण करनेवाली शक्तिधाराकी सहायतासे मध्यम मार्गके पथमें हृदयके आपूरित होनेपर परमानन्द प्रकट होता है। उस आनन्दको परामृत-प्रवाह समझना चाहिये।

यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि हृदयमें प्रविष्ट परानन्द रसायनका काम करता है। जबतक वह हृदयमें रहता है, तबतक भावनाके बलसे उसको स्वसंवेद्य बना लेना आवश्यक है। हृदयसे उमड़ती हुई परमानन्द-प्रवाहकी धाराको चारों ओर फैला देना कर्तव्य है, जिससे वह प्रवाह समस्त नाड़ियोंके अनगिनत तन्तुओंमें गमन कर सके। इसके बाद अनुरूप ध्यान करना आवश्यक है।

तत्पश्चात् इस अमृतके द्वारा देहके बाहर और भीतरको पूर्ण कर लेना आवश्यक है। इस प्रकार स्वदेह अमृतमय हो जाय, तब तीव्रवेगसे इस प्रवाहको देहस्थ रोमकूपके माध्यमसे बाहरके विषयोंमें निरन्तर प्रेरित करना चाहिये। तत्पश्चात् शाक्तानन्द-ज्ञानके द्वारा समस्त जगत् आप्यायित हो रहा है—ऐसा ध्यान करना चाहिये। इस ध्यानके फलस्वरूप अजर और अमर भाव आता है तथा आत्मसिद्धि भी प्राप्त होती है। कौलिक शास्त्रमें मृत्युपर विजयके लिये यह प्रक्रिया उपदिष्ट हुई है।

तान्त्रिक वाङ्मयमें भी इस प्रकारकी तथा इससे भिन्न प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है। तान्त्रिक लोग कहते हैं कि पहले मत्तगन्धस्थान—संकोच-प्रसरणरूपी किसी मुद्राके द्वारा अपनी सूक्ष्म प्राणशक्तिका उद्बोधन आवश्यक है। इस

शक्तिका आश्रय लेकर आगेकी क्रियाओंका साधन होता है। इस स्पन्दके द्वारा आविष्ट 'मध्यमा कला' नामक प्रसिद्ध शाक्त-कन्द जन्मस्थानमें प्रसुप्त अवस्थामें है। कौलमतसे जन्मस्थान आनन्देन्द्रिय है। तान्त्रिक प्रक्रियामें वह कन्द (मूल) रूप है। केवल इतना ही दोनोंमें भेद है।

योगी बहुत सावधान चित्तसे निरन्तर इस शक्तिकी भावना तबतक करते रहें, जबतक समावेश सिद्ध न हो जाय। तत्पश्चात् भावनाके बलसे पादाङ्गुष्ठमें स्थित कालाग्निके आधारका आश्रय लेकर ऊर्ध्वमें आरोहण करनेका प्रयत्न करना आवश्यक है।

यह प्रथम पर्व है। इसके समाप्त होनेपर कन्द-भूमिसे प्राप्त शक्ति-स्पन्दात्मक वीर्यको उसमें निक्षेप करके प्रस्फुट भावनाके द्वारा व्यक्त करें। तत्पश्चात् प्राणस्पन्दरूपी क्रिया-शक्ति उस वीर्यके द्वारा आपूरित होती है। इसकी मात्रा बढ़नेपर देहकी मध्यवर्ती नाभि प्राप्त होती है। वह तीन प्रकारकी है—एक 'इच्छारूप', जिसमें संकोचक्रमसे उत्पन्न ऊर्ध्वारोहणका प्रयत्न मुख्य है। द्वितीय है 'भावनारूप' और तृतीय है 'क्रियारूप', जिसके द्वारा ऊर्ध्वग्रन्थियोंका भेद या वेध होता है। ये ग्रन्थियाँ गुल्फ, जानु, मेढ्र तथा कन्दरूप हैं।

मूलस्पन्दके आश्रय मत्तगन्धस्थानकी बारंबार संकोच-विकासक्रियाका तात्पर्य है—निरोध। यह स्वच्छन्द शास्त्रमें वर्णित दिव्यकरणका उपलक्षण है।

इडा और पिङ्गला-रूपी दोनों पार्श्वकी नाड़ियोंका परित्याग करके, इच्छाका अवष्टम्भ साधन करते हुए, मध्य-मार्गमें प्रवाहित मध्यप्राणशक्तिके द्वारा सुषुम्णाका आश्रय लेना कर्तव्य है। सुषुम्णामें प्रवेश होनेपर समस्त इन्द्रियों और विषयोंसे विरत होना चाहिये। तब मायारहित विज्ञानके द्वारा (चिदात्मक ज्ञानशक्तिके द्वारा) क्रमशः हृदय आदि स्थानोंमें स्थित ब्रह्मादि कारणोंको एक-एक करके त्यागना पड़ता है। यहाँ प्राणादिकी प्रधानता न होनेके कारण इसे विज्ञानरूप समझना चाहिये। यह ब्रह्मादि सृष्टि आदि संवित्-स्वभाव है। तत्पश्चात् मायाग्रन्थि-भेद करके पञ्च आकाशका त्याग करें। तब ब्रह्मासे लेकर शिवतक सब कारणोंके ऊर्ध्वदेशमें विराजमान 'समना' नामक कुण्डली-शक्तिको प्राप्त करना होगा। उसीके गर्भमें शून्यातिशून्य अखिल विश्व कुण्डलकी भाँति अवस्थित है। समना-प्राप्तिके बाद ऊर्ध्वमें विरति है। वहाँ उन्मनाकी प्राप्ति होती है। वही परशिवदशा परसामरस्यरूप 'परव्योम' है।

अनर्थका साधन अर्थ

अर्थैश्वर्यविमूढो हि श्रेयसो भ्रश्यते द्विजः। अर्थसंपद्विमोहाय विमोहो नरकाय च॥
तस्मादर्थमनर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्। यस्य धर्मार्थमर्थेहा तस्यानीहा गरीयसी॥
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्। योऽर्थेन साध्यते धर्मः क्षयिष्णुः स प्रकीर्तितः॥
यः परार्थे परित्यागः सोऽक्षयो मुक्तिलक्षणः॥

(पद्मपुराण सृष्टि० १९। २५०—२५३)

धन-सम्पत्ति मोहमें डालनेवाली होती है। मोह नरकमें गिराता है; इसलिये कल्याण चाहनेवाले पुरुषको अनर्थके साधन अर्थका दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जिसको धर्मके लिये धन-संग्रहकी इच्छा होती है, उसके लिये यह इच्छाका त्याग ही श्रेष्ठ है; क्योंकि कीचड़को लगाकर धोनेकी अपेक्षा उसका स्पर्श न करना ही उत्तम है। धनके द्वारा जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह क्षयशील माना गया है। दूसरेके लिये जो धनका परित्याग है, वही अक्षय धर्म है, वही मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है।

(महर्षि कश्यप)

षडध्वा-रहस्य देह-विचार

(लेखक—श्रीकुलमार्तण्ड राजगुरु पण्डित श्रीयोगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री, विद्याभूषण, साहित्यरत्न)

पञ्चदेवोंमेंसे किसी भी देवताकी मन्त्रदीक्षाके सुअवसर-पर श्रीगुरुदेव आवश्यक पञ्चाङ्ग-पूजनके अनन्तर श्रेष्ठ देवार्चन करते हैं; तदनन्तर शिष्यके शरीरमें षडध्वाओंका शोधनकर उसको (शिष्यको) मन्त्र-ग्रहण करनेका अधिकारी बनाते हैं ।

यहाँपर सबसे प्रथम मन्त्रशास्त्रमें वर्णित षडध्वाओंका वर्णन करते हैं । उनके नाम हैं—कलाध्वा, तत्त्वाध्वा, भुवनाध्वा, वर्णाध्वा, पदाध्वा और मन्त्राध्वा । ये प्रकाश और विमर्शके अंशस्वरूप हैं, अर्थात् शिव-शक्त्यात्मक हैं । इनमेंसे पहलेके तीन 'अर्थ'स्वरूप और अन्तिम तीन 'शब्द'स्वरूप हैं । अतएव लिखा है—

मन्त्राध्वा च पदाध्वा च वर्णाध्वा चेति शब्दतः ।
भुवनाध्वा च तत्त्वाध्वा कलाध्वा चार्थतः क्रमात् ॥

(शारदातिलक ५ । ७९ टीका)

विरूपाक्षसंहितामें भी आया है—

अस्य विमर्शस्यार्णः पदमन्त्रार्णात्मकस्त्रिधा भवति ।
पुरतत्त्वकलात्मार्थो धर्मिण इत्थंप्रकाररूप इति ।

अर्थात् 'पद, मन्त्र और वर्णाध्वा विमर्शात्मक (शक्त्यात्मक) हैं (शब्दस्वरूप हैं) तथा पुर (भुवन) तत्त्व और कलाध्व प्रकाशात्मक अर्थाध्व कहे जाते हैं ।'

निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता कलाके भेदसे 'कलाध्वा' पाँच प्रकारका है । कलाके षोडश भेद और भी हैं ।

'तत्त्वाध्वा'—३६ प्रकारके शिवतत्त्व, ३२ प्रकारके विष्णुतत्त्व, २४ प्रकारके सांख्यतत्त्व, प्रकृतिके १० तत्त्व और त्रिपुराके ७ तत्त्वोंके भेदसे अनेक प्रकारका है, जिसका वर्णन आगे करेंगे ।

भुवनोंकी संख्या २२४ है, जिनका सम्बन्ध तत्त्वोंसे ही है तथा आकाश, वायु, तैजस, आप्य (जलीय) और पार्थिव भुवनोंसे भी है ।

'ईरितो भुवनाध्वेति भुवनानि मनीषिभिः ।'

(शारदातिलक ५ । ९०)

वायवीय संहितामें—

'आधाराद्युन्मन्यन्तश्च भुवनाध्वा प्रकीर्तितः ।'

(शारदातिलक ५ । ९०-९१ की टीक

—ऐसा लिखा है, अर्थात् मूलाधारादि षट्चक्र आज्ञाचक्रसे एक-एक अङ्गुल ऊपर विन्दु, अर्धच रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना और उन्म पर्यन्त 'भुवनाध्वा' कहा गया है ।

अकारसे लेकर क्षकारपर्यन्त वर्णोंकी संज्ञा 'वर्णाध्वा' है तथा हि—

'वर्णाध्वेति वदन्त्यर्णानादिक्षान्तान् मनीषिणः ।
वर्णसङ्घः पदाध्वा स्यात् ।'

(शारदातिलक ५ । ९१

अर्थात् वर्णोंका समूह 'पदाध्वा' कहा जाता है वर्णसंघका अर्थ विन्दुयुक्त वर्णसमूहका है । वायवीय संहिता दूसरे प्रकारसे लिखा है—

अनेकभेदसम्भिन्नः पदाध्वा पदसंहतिः ।
महामन्त्रोपमन्त्राणां वर्ततेऽवयवात्मना ॥
प्रधानावयवत्वेन सोऽध्वा पञ्चपदात्मकः । इति

(शारदातिलक ५ । ९०-९१ की टीकामें उद्धृत)

अर्थात् महामन्त्र तथा उपमन्त्रोंके अङ्गवाला अनेक प्रकारके भेदोंसे युक्त पञ्चपदात्मक पदसमूह 'पदाध्वा' कहा जाता है ।

'मन्त्राध्वा मन्त्रराशयः ।' (शारदाति० ५ । ९१) अर्थात् मन्त्रोंके समूहको 'मन्त्राध्वा' कहते हैं । 'मन्त्रराशयः' का अर्थ शारदातिलककी टीकामें 'अकचटतपयः सप्त मन्त्राः ।' इस प्रकार लिखा है । तथा 'सप्तकोटिमहामन्त्राः' के अनुसार 'मन्त्रराशयः'का अर्थ सात करोड़ मन्त्रोंका भी है ।

छत्तीस प्रकारके शिवतत्त्वोंका वर्ण नीचे लिखा जाता है । तत्त्व तीन कोटिमें विभक्त हैं, जिनको 'शुद्ध', 'शुद्धाशुद्ध' तथा 'अशुद्ध' कहते हैं । कोई वस्तु चेतन है तथा कोई अचेतन इन्हीं दोनों (जीव-जडको) 'शुद्ध' एवं 'अशुद्ध' कहते हैं । तथा इन्हींकी संज्ञा 'पर' और 'अपर' भी है । अविद् [illegible] चिद् संसारको अनुभव कर रहा है, इसे ही 'अशुद्ध' [illegible]

हैं। इससे भिन्न 'शुद्ध' है। चिद् और अचिद्—इन दोनों प्रकारके तत्त्वोंपर शिव और शिवाका ही अधिकार है। 'जैसे शिव हैं, वैसे ही शक्ति हैं। ये दोनों चन्द्र और चन्द्रकी चन्द्रिका (चाँदनी) की भाँति परस्पर सम्बद्ध हैं' अर्थात् एक दूसरेसे पृथक् नहीं हैं। अतएव लिखा है—

यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः।
नानयोरन्तरं विद्याच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥

शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्या—ये पाँच 'शुद्ध' तत्त्व हैं। इनका अर्थ श्री१००८ राष्ट्रगुरु श्रीस्वामीजी महाराज, पीताम्बरापीठ, दतिया, म० प्र० के अनुवादसे लिखा जाता है—

शुद्ध तत्त्व

(१) शिव—इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक पूर्णानन्दस्वरूप परम शिव ही 'शिव' तत्त्व हैं। अर्थात् महेश्वर ही शिव हुए हैं।

(२) शक्ति—जगत्की रचना करनेवाले परमेश्वरका प्रथम स्पन्दरूप, जो उसकी इच्छा है, उसे ही 'शक्ति' कहते हैं। अतः वह शक्तितत्त्व अप्रतिहत इच्छावाला है।

(३) सदाशिव—सद्रूप अङ्कुरायमाण जगत्की जो प्रथमावस्था है, जो अपने स्वरूपमें अहंतासे आच्छादन करके स्थित है, उसे 'सदाशिव' कहते हैं। अर्थात् अहंतासे इदंताको आच्छादन करनेवाले तत्त्वको 'सदाशिव' कहते हैं।

(४) ईश्वर—अङ्कुरित जगत्को अहंताद्वारा स्फुट-रूपसे जो ग्रहण किये हुए हैं, उन्हें 'ईश्वर' कहते हैं।

(५) शुद्धविद्या—अहंता और इदंता (जगत्) की एकताका बोध जिससे होता है उसे 'शुद्धविद्या' तत्त्व कहते हैं।

शुद्धाशुद्ध तत्त्वोंमें प्रथम 'मायातत्त्व' है।

(६) माया—स्व-स्वरूप भावोंमें भेदप्रथारूप 'माया' तत्त्व है। कहा भी है—

मायाविभेदबुद्धिर्निजांशजातेषु निखिलजीवेषु।
नित्यं तस्य निरङ्कुशविभवं वेलेव वारिधे रुन्धे ॥

अर्थात् जिस प्रकार वेलातट समुद्रद्वारा अवरुद्ध रहता है, वैसे ही माया समस्त जीवोंमें भेद-बुद्धिरूप रहती है।

(७) पुरुष—जब परमेश्वर अपनी पारमेश्वरी माया-शक्तिद्वारा स्वरूप ग्रहण करके संकुचित ग्राहकताको प्राप्त करते हैं, तब उसकी 'पुरुष' संज्ञा होती है।

(८) कला—उस पुरुषकी किंचित् कर्तृताको 'कला' कहते हैं।

(९) विद्या—किंचित् ज्ञानके कारणको 'विद्या' कहते हैं।

(१०) राग—विषयोंमें प्रीति 'राग' है।

(११) काल—प्रकाशित और अप्रकाशित स्वरूप-वाले भावोंके क्रमका जो अविच्छेदक एवं भूतोंका जो आदि है उसे 'काल' कहते हैं।

(१२) नियति—मेरा यह 'कर्तव्य' तथा यह 'अकर्तव्य' है, इसके नियमन-हेतु 'नियति' है।

उपर्युक्त पाँचों तत्त्व जीवके आवरण करनेवाले होनेके कारण 'पञ्च-कञ्चुक' कहलाते हैं।

अशुद्ध तत्त्व

(१३) प्रकृति—महत्से लेकर पृथिवीपर्यन्त तत्त्वोंका मूलकारण 'प्रकृति' है और यह प्रकृति सत्त्व, रज, तमकी साम्यावस्थासे अविभक्त रूपवाली है।

(१४) बुद्धि—सत्त्वप्रधान और स्वच्छ होनेके कारण बुद्धिमें प्रतिबिम्ब ग्रहण करनेकी योग्यता है। इसी निश्चय करनेवाली और विकल्प-प्रतिबिम्बको धारण करनेवाली शक्तिको 'बुद्धि' कहते हैं।

(१५) अहंकार—मेरा यह है, मेरा यह नहीं है इस अभिमानके साधनको 'अहंकार' कहते हैं।

(१६) मन-संकल्प-विकल्पके साधनको 'मन' कहते हैं। मन, बुद्धि और अहंकार—इन तीनोंको 'अन्तःकरण' कहते हैं।

(१७-२१) शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धात्मक विषयोंको क्रमसे ग्रहण करनेके साधनोंको श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण —'पाँच ज्ञानेन्द्रिय' कहते हैं।

(२२-२६) वचन, आदान, विहरण, विसर्ग-(मलत्याग), **आनन्दात्मक क्रियाओंके** साधन क्रमसे जिह्वा, हस्त, पाद, पायु और उपस्थ—ये 'पाँच कर्मेन्द्रियाँ' हैं।

(२७-३१) शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-इनकी सूक्ष्मावस्थाको 'पञ्च तन्मात्रा' कहते हैं।

(३२) आकाश–अवकाश देनेवाला तत्त्व ।

(३३) वायु–संजीवन करनेवाला तत्त्व ।

(३४) अग्नि–दाहक और पाचक क्रिया करनेवाला तत्त्व ।

(३५) सलिल–गीला करनेवाला और बहानेवाला जल-तत्त्व ।

(३६) भूमि–धारण करनेवाली वस्तु 'भूमि' तत्त्व कहाती है ।

वैष्णव-तत्त्व

जीवप्राणधियश्चित्तं ज्ञानकर्मेन्द्रियाण्यथ ॥
तन्मात्राः पञ्चभूतानि हृत्पद्मं तेजसां त्रयम् ।
वासुदेवादयश्चेति तत्त्वान्येतानि शार्ङ्गिणः ॥
(शारदातिलक ५ । ८५-८६)

अर्थात् 'जीव, प्राण, बुद्धि, चित्त, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चभूत, हृदय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये बत्तीस तत्त्व विष्णुके हैं ।'

सांख्य-तत्त्व

पञ्चभूतानि तन्मात्रा इन्द्रियाणि मनस्तथा ।
गर्वो बुद्धिः प्रधानं च मैत्राणीति विदुर्बुधाः ॥
(शारदातिलक ५ । ८७)

अर्थात् 'पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन, अहंकार, बुद्धि और प्रकृति—ये चौबीस तत्त्व सांख्यशास्त्रके हैं ।'

प्रकृति-तत्त्व

निवृत्त्याद्याः कलाः पञ्च ततो बिन्दुः कला पुनः ।
नादः शक्तिः सदापूर्वः शिवश्च प्रकृतेर्विदुः ॥
(शारदातिलक ५ । ८८)

अर्थात् 'निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता कलाएँ, बिन्दु, कला, नाद, शक्ति और सदाशिव—ये दस तत्त्व प्रकृतिके हैं ।'

त्रिपुरा-तत्त्व

आत्मविद्या शिवः पश्चाच्छिवो विद्या स्वयं पुनः ।
सर्वंतत्त्वं च तत्त्वानि प्रोक्तानि त्रिपदात्मनः ॥
(शारदातिलक ५ । ८९)

अर्थात् 'आत्मा, विद्या, शिव, शिव, विद्या, आत्मा तथा सर्वतत्त्व—ये सात तत्त्व 'त्रिपुरा-तत्त्व' कहाते हैं ।' इस प्रकार यह सब 'तत्त्वाध्वा'का वर्णन है ।

कला, तत्त्व, भुवन और वर्ण, मन्त्र तथा पद—इन छः अध्वाओंकी भलीभाँति शुद्धि हुए बिना पूर्णत्व-प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि सब पापोंका उच्छेद करनेके लिये समग्र अध्वाओंकी शुद्धि आवश्यक है; तभी पशुत्वकी निवृत्ति तथा शिवत्वकी अभिव्यक्ति हो सकती है ।

अनेन अध्वविशोधनेन शरीरशुद्धिः कृता भवति, यतः षडध्वमयमेव शरीरम् । यदाहुः—

शान्त्यतीतकला मूर्द्धा शान्तिवक्त्रशिरोरुहा ।
निवृत्तिजानुजङ्घाङ्घ्रिर्भुवनाध्वशिरोरुहा ॥
मन्त्राध्वमांसरुधिरा पदवर्णशिरायुता ।
तत्त्वाध्वमज्जामेदोऽस्थिधातुरेतोयुता शिवे ॥
(शारदातिलक ५ । ९५-९६ में उद्धृत)

अर्थात् ''मानव-शरीर षडध्वमय है, अर्थात् छः अध्वाओंसे युक्त है । शरीरमें अध्वविभाग करके बताते हैं—सिरमें शान्त्यतीतकला है; मुख और बालोंमें शान्तिकला है; जानु, जङ्घा और पैरोंमें निवृत्तिकला है; सिरमें 'भुवनाध्वा', मांस और रुधिरमें 'मन्त्राध्वा', शरीरकी शिराओंमें (नाडियोंमें) 'पदाध्वा' और 'वर्णाध्वा' तथा मज्जा-मेद (चर्बी), अस्थि (हड्डियाँ), धातु (कफ, पित्त और श्लेष्म) तथा वीर्यमें 'तत्त्वाध्वा' है ।''

केवल मानव-शरीर ही षडध्वमय नहीं, अपितु देवशरीर भी षडध्वपरिपूर्ण है । अतएव 'ज्ञानार्णव-तन्त्र'में श्रीयन्त्रके (श्रीचक्रके) विषयमें लिखा है—

'अस्मिंश्चक्रे षडध्वानो वर्तन्ते वीरवन्दिते ।'
(१० । ८९)

'एवं षडध्वविमलं श्रीचक्रं परिचिन्तयेत् ।'
(१० । ९८)

दक्षिणामूर्ति-संहितामें भी लिखा है—'षडध्वरूपमधुना शृणु योगेशि साम्प्रतम् ।' इत्यादि—'एवं षडध्वभरितं श्रीचक्रं परिचिन्तयेत् ।' इत्यादि । ज्ञानार्णवतन्त्रमें षट् अध्वाओंके लक्षण भी लिखे गये हैं ।

भैरवयामलमें महेश्वर गौरीके प्रति कहते हैं कि श्रीचक्राकाररूपिणी पराशक्ति श्रीचक्रके बैन्दवस्थानमें श्रीसदाशिवके

सम्पृक्त है तथा श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीका श्रीचक्र ब्रह्माण्डाकार है, जो कि पञ्चभूतात्मक, पञ्चतन्मात्रात्मक, पञ्चज्ञानेन्द्रियात्मक, मनस्तत्त्वरूप, मायादितत्त्वस्वरूप है। उसीके (श्रीचक्रके) तत्त्वातीत (तत्त्वोंसे परे) बैन्दवस्थानमें जगत्‌की उत्पत्ति-स्थिति-संहारकारिणी ज्योतिःस्वरूपा पराकारा महेश्वरी विराजमान है, जिसके देहसे समुत्पन्न कोटिशः किरण चराचर सम्पूर्ण जगत्‌को (ब्रह्माण्डको) प्रकाशित करते हैं। उन अनन्तकोटि मयूखों (किरणों) के मध्यमें सोम, सूर्य और अनलात्मक तीन सौ साठ रश्मियाँ हैं, जिनमेंसे एक सौ आठ अग्निकी, एक सौ सोलह सूर्यकी और १३६ (एक सौ छत्तीस) चन्द्रमाकी किरणें हैं, जो कि ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्डको प्रकाशित करती रहती हैं। अर्थात् दिनमें भगवान् भास्कर, निशीथिनी (रात्रि) में निशापति चन्द्र और दोनों संध्याओंमें अग्निदेव। अतएव ये तीनों (सूर्य, चन्द्र और अग्नि) 'कालात्मक' माने जाते हैं, अर्थात् ये (तीनों) कालत्रयको प्रकाश प्रदान करते हैं। वर्षभरमें तीन सौ साठ दिन होते हैं। परमेशानी (श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी) से नियुक्त हायनात्मा महादेव सृष्टि, स्थिति और लयको करते रहते हैं और यह कार्य इस प्रकार चलता रहता है।

'तामेवानुप्रविश्य।' इत्यादिना—'**तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।**' इस श्रुत्यर्थका ही उपर्युक्त अनुवाद भैरवयामलने किया है।

श्रीललितासहस्रनाममें भगवतीके निम्नलिखित तीन नाम आये हैं—'**तत्त्वाधिका, तत्त्वमयी, तत्त्वमर्थस्वरूपिणी।**' '**तत्त्वेभ्यः षट्त्रिंशत्तत्त्वेभ्यः अधिका तन्नाशेऽप्यवस्थानात्।**' अर्थात् छत्तीस तत्त्वोंसे भी जो अधिक है, अतः तत्त्वोंके नाश होनेपर भी जो विद्यमान रहती है। '**तत्त्वमयी—तत्त्वप्रचुरा**' अर्थात् बहुतसे तत्त्वोंसे युक्त '**यद्वा तत्त्वं शिवतत्त्वं तदधिका चिन्मयी चेति नामद्वयार्थः।**' अर्थात् शिवतत्त्वसे भी अधिक तथा चिन्मयी। यानी जो सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधिरूपा है। अथवा तत्त्वमयी—आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—त्रिविध तत्त्वरूपिणी तथा तत्त्वाधिका—तीन प्रकारके आत्म, विद्या और शिवतत्त्वोंसे अधिक अर्थात् '**तत्समष्टिरूप सर्वतत्त्वरूपत्वात् त्रिविधतत्त्वाधिका**—तीनों तत्त्वोंकी समष्टिरूप सर्वतत्त्वरूपसे जो तीन प्रकारके तत्त्वोंसे अधिक है।' तथा 'तत्त्वमयी' का अर्थ शिव-जीवरूपा भी है। यथा '**महावाक्यस्थयोस्तत्पदत्वंपदयोरर्थौ शिवजीवौ स्वरूपमस्याः सा तत्त्वमयी।**' (सौभाग्यभास्कर-व्याख्या)।

जिस प्रकार परमेश्वरीका शरीर षडध्वमय है, इसी तरह परमेश्वरका (परमात्माका) शरीर भी षडध्वमय है। अर्थात् देवी और देवताओंके—सबके देह षडध्वभरित हैं, तथा हि—

षडध्वात्मकपरमात्मशरीरे षट्त्रिंशदात्मकतत्त्वाध्वनोऽप्यवयवत्वात्तत्त्वमयी। तदुक्तं कामिके—पृथिव्यादीनि षट्त्रिंशत्तत्त्वान्यागमवेदिभिः। उक्तान्यमुष्य तत्त्वाध्वा शुक्रमज्जास्थिरूपधृगिति। (ललितासहस्रनाम सौभाग्यभास्कर-व्याख्या)

अध्वशोधन-विधि लेखके अन्तमें दी जायगी। अध्वविशोधनानन्तर श्रीगुरुदेव शिष्यसे तत्त्वाचमन कराकर उसके मलमय तथा स्थूल-सूक्ष्मादि चतुर्विध देहोंका संशोधन कराते हैं। मनुष्यका शरीर (२३) स्थूल-सूक्ष्म-कारण और महाकारणके भेदसे चार प्रकारका माना जाता है।

स्थूलशरीर (देह)

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंकुलम्।
पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यमिदं वपुः॥

(विवेकचूडामणि ९८)

अर्थात् 'त्वचा (चर्म), मांस, रक्त, स्नायु (नसें), मेदा (चर्बी), मज्जा और हड्डियोंका समूह तथा मल-मूत्रसे पूर्ण (भरा हुआ) स्थूलदेह कहलाता है।' यह अन्य देहोंकी अपेक्षा निन्दनीय है। यह शरीर आत्माका स्थूल भोगायतन (भोगका घर) है। इसकी अवस्था जाग्रत् है। इस अवस्थामें ही स्थूल पदार्थोंका अनुभव किया जाता है। अतएव जाग्रदवस्थामें स्थूलदेहकी प्रधानता है। स्थूलदेहका अभिमानी जीव 'विश्व पुरुष' कहलाता है।

सूक्ष्मशरीर

वागादिपञ्च श्रवणादिपञ्च प्राणादिपञ्चाभ्रमुखानि पञ्च।
बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्मणी पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः॥

(विवेकचूडामणि ९८)

'वाणी आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ, श्रवण आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राणापानादि पाँच प्राण, आकाशादि पञ्चभूत, बुद्धि, मन आदि अन्तःकरण (भीतरकी इन्द्रियाँ—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार), अविद्या, काम और कर्म यह पुर्यष्टक सूक्ष्मशरीर कहलाता है।' इस सूक्ष्मशरीरको लिङ्ग-शरीर भी कहते हैं। यह अपञ्चीकृत भूतोंसे उत्पन्न हुआ है। यह वासना-

होनेसे कर्मफलोंका अनुभव करानेवाला है। अपने का यथार्थ ज्ञान न होनेके कारण यह आत्माकी अनादि है। स्वप्न इसकी अभिव्यक्ति अवस्था है। इस में यह स्वयं बचा हुआ भासता है। बुद्धि इसकी है। यह लिङ्ग-देह (शरीर) चिदात्मा पुरुषके व्यापारोंका कारण है। स्वप्नदशापन्न (स्वप्नावस्था-प्राप्त) सूक्ष्मशरीरके व्यष्ट्यभिमानी जीवकी संज्ञा पुरुष' है।

कारणशरीर

अव्यक्तमेतत्त्रिगुणैर्निरुक्तं
तत्कारणं नाम शरीरमात्मनः।
सुषुप्तिरेतस्य विभक्त्यवस्था
प्रलीनसर्वेन्द्रियबुद्धिवृत्तिः॥

(विवेकचूडामणि १२२)

रजोगुणकी विक्षेपशक्ति क्रियारूपिणी है। इसीसे समस्त होती हैं और इसीसे मानसिक विकार (सुख-दु) उत्पन्न होते हैं। इसीके कारण ही जीव नाना के कर्मोंमें प्रवृत्त होता है। रजोगुण ही जीवके बन्धन-रण है।

तमोगुणकी आवरण-शक्तिसे वस्तु कुछ-की-कुछ प्रतीत है। यही पुरुषके (जन्म-मरणरूप) संसारका आदि-है। अज्ञान, आलस्य, जडता, निद्रा आदि तमके ।

यद्यपि सत्त्वगुण जलके समान शुद्ध है, तथापि रज तमसे मिलनेपर वह भी (सत्त्वगुण) संसार-बन्धन-रण होता है। यम-नियमादि, श्रद्धा, भक्ति, मुमुक्षुता दैवीसम्पद्—ये 'मिश्र सत्त्वगुण'के धर्म हैं। प्रसन्नता, नुभव, परम शान्ति, आत्यन्तिक आनन्द और परमात्मामें —ये 'विशुद्ध सत्त्वगुण'के धर्म हैं।

एवं उक्त तीनों गुणोंके निरूपणसे अव्यक्तका वर्णन गया है। यही आत्माका 'कारण-शरीर' है। इसकी यक्ति सुषुप्ति-अवस्थामें होती है। सुषुप्तावस्थामें सम्पूर्ण वृत्तियाँ लीन हो जाती हैं। अर्थात् सब का ज्ञान शान्त हो जाता है और बुद्धि बीजरूपसे र रहती है।

कारण-शरीरके व्यष्ट्यभिमानी जीव (सुप्त) की संज्ञा पुरुष' है।

महाकारण-शरीर

तुरीया दशाको प्राप्त जीवकी उपाधिको 'महाकारण-शरीर' कहते हैं। उपर्युक्त जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओंका तथा इन अवस्थाओंके भोक्ताओंके ज्ञानपूर्वक विवेचनसे उत्पन्न शुद्धविद्याके उदयका (ज्ञानका) चमत्कार ही 'तुरीयावस्था' है।

तदुक्तं स्पन्दशास्त्रे—

—एतदवस्थात्रयस्य तद्भोक्तॄणां च विविच्य ज्ञानजन्यशुद्धविद्योदयाख्यश्चमत्कारस्तुर्यावस्था। तथा हि—

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्तितः।
विद्यात्तदुभयं यस्तु स भुञ्जानो न लिप्यते॥

इति वरदराजोऽप्याह—

तुर्यं नाम परं धाम तदाभोगश्चमत्क्रिया।
भेदेऽपि जाग्रदादीनां योगिनस्तस्य सम्भवः॥

(शिवसूत्र, वरदराज० ४४। ४५)

अर्थात् 'तुर्य (तुरीयावस्था) उस महाशक्तिका परधाम है। उसका आभोग (परमानन्दका अनुभव) ही चमत्कार है। जाग्रत्-स्वप्न आदि अवस्थाओंके भेद होनेपर भी योगी पुरुषको तुरीयावस्थाके आनन्दका अनुभव होता रहता है।' इस विषयमें शिवसूत्र (१। ७) भी कहता है—

'जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभेदेऽपि तुर्याभोगसम्भवः।'

अर्थात् 'जाग्रदादि अवस्थाओंमें भेद होनेपर भी तुर्याका भोग (तुरीयावस्थाको आनन्द अनुभव) अवश्य होता है।' एक और भी शिवसूत्र (३। २०) है—

'त्रिषु चतुर्थं तैलवदासेच्यम्।'

अर्थात् 'तीनों अवस्थाओंके रहते हुए भी चतुर्थी तुर्यावस्थाका आनन्द उनके ऊपर ऐसा रहता है जैसे पानीके ऊपर तैलबिन्दु ऊपर ही तैरता रहता है और पानीका उसके ऊपर कुछ भी असर (प्रभाव) नहीं होता है।'

तद्वान् महाकारणशरीराभिमानी जीवस्तुर्यः। तस्य व्यष्ट्या समष्ट्या चाभिन्ना तुर्यावस्था॥

मलत्रय—३२ कर्ममल, मायामल और आणवमलका देह-सम्बन्ध

मनुष्यके शरीरमें आणव, कार्म और मायामलके भेदसे

न प्रकारके मल हैं । शरीरका अर्थ शरीरमें स्थित वात्माका है । इन तीनों मलोंको अणु, भेद और कर्म नाम- तीन पाश भी कहते हैं । अणुसे आणव, कर्मसे कार्मण कर्म) तथा भेद—मायासे मायिक (मायिकमल अथवा ायापाश) मल ।

आणव मल

अणुका अर्थ अज्ञान है । अज्ञानसे चैतन्यस्वरूप ात्माको आत्मा न मानकर शरीरको आत्मा मानना था अनात्मा (आत्मासे भिन्न) देहको आत्मा मानना, स भाँति दो प्रकारके अज्ञानका नाम 'आणव मल' है । अतएव कहा है—

'आणवो नाम सदाशिवस्य स्वस्याऽनवमर्शः ।

अर्थात् सदाशिवका अपनेको न पहचानना ही आणव मल है । आणव मलको 'अविद्या' भी कहते हैं । इसी कारण वह अपनेको नहीं पहचानता तथा सौर-संहितामें भी लिखा है—

'आत्मनोऽणुत्वहेतुत्वादणोर्मालिन्यतो मलम् ।'

कार्मण मल

विहित तथा निषिद्ध क्रियाओंके (कर्मोंके) करनेसे उत्पन्न पुण्य और पापके भेदसे कार्मण मल दो प्रकारका है । अतएव कहा भी है—

'कार्मो नाम पुण्यपापवानहं प्रतीतिः ।'

अर्थात् 'मैं पुण्यवान् हूँ, मैं पापी हूँ'—इस प्रकारकी प्रतीति (विश्वास) ही 'कार्मण मल' है ।

मायिक मल

मायासे उत्पन्न मलको 'मायिक मल' कहते हैं । मायाका अर्थ है—ईश्वरके अंशसे उत्पन्न सम्पूर्ण जीवोंमें भेदबुद्धि रखना, अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रथारूप मायीय मलसे स्वाङ्गसदृश जड वेद्यवर्गमें अनेक प्रकारकी भेदवाली बुद्धिको 'माया' कहते हैं । यह तत्त्वोंमेंसे छठा तत्त्व है । तथा मायासे उत्पन्न सप्तम तत्त्वसे (पुरुषतत्त्वसे) छत्तीसवें तत्त्व (पृथिवीतत्त्व) पर्यन्त सभी तत्त्व 'मायिक मल'के नामसे व्यवहृत होते हैं ।

आणव मलसे आच्छन्न जीव स्वयं देहपरिमित होकर, अन्य अनन्त जीवोंको भी देहपरिमित जानता हुआ अपनेसे भिन्न देखता है । यही 'मायिक मल' है । भेदप्रथारूप मायिक मलसे मलिन जीव शुभाशुभ कर्मोंको करते हुए उनसे (शुभाशुभ कर्मोंसे) उत्पन्न संस्कारवाले होते हैं । इसीको 'कार्मण मल' कहते हैं । इन तीनों प्रकारके मलोंको 'शरीर' भी कहते हैं ।

जब परमेश्वर अपनी पारमेश्वरी मायाशक्तिके द्वारा स्वरूप ग्रहणकर संकुचित ग्राहकताको प्राप्त करते हैं, तब उनकी पुरुष संज्ञा होती है । पुरुष (अर्थात् जीव) ही मायासे मोहित होकर कर्मबन्धनवाला 'संसारी जीव' कहाता है । परमेश्वरसे अभिन्न होनेपर भी इसी जीवको मोह होता है, परमेश्वरको नहीं । बाजीगर अपनी इच्छासे ही दर्शकोंकी भ्रान्तिके लिये अपना इन्द्रजाल प्रकट करता है; परंतु स्वयं मोहित नहीं होता । इसी तरह परमेश्वरको भी अपनी मायासे मोह नहीं होता है ।

जीवात्मा देहमें ही स्थित रहता है । वह देहसे भिन्न स्थानमें नहीं रहता । किंतु आणव, कार्मण और मायिक मलोंसे आच्छन्न होकर अपने परमात्मभावको भूला रहता है । वह यह नहीं समझता कि वह (जीवात्मा) स्वयं परमात्मा है, जिसके (परमात्माके) विषयमें गीता कहती है—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः ॥

(१३ । २२)

अर्थात् 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, प्रज्ञा और इन्द्रियोंकी आकृतियोंका परीक्षक, अनुमोदनकर्ता, भर्ता, भोक्ता (इन्द्रियोंद्वारा तत्तद्विषयोंके भोगनेवालेको) इस शरीरमें महेश्वर, परपुरुष (परमपुरुष) तथा परमात्मा कहते हैं ।'

शाक्त धर्मके अनुसार जीवात्मा और (ईश्वर) परमात्माका सम्बन्ध

शरीरकञ्चुकितः शिवो जीवो
निष्कञ्चुकः परः शिवः ।

(प० क० सू०)

उपर्युक्त आणवादि मलोंको 'शरीर' कहते हैं । कञ्चुकका अर्थ आवरण (आच्छादित करनेवाला) है । आणव, कार्मण और मायिक मलसे आवृत कञ्चुकित (आच्छादित) शिव 'जीव' कहलाता है और निष्कञ्चुक—

उपर्युक्त मलत्रयके आवरणसे रहित (निरावरण) जीव 'परशिव' कहलाता है। मन्त्रशास्त्रमें परमात्माको 'परशिव' कहते हैं। इसी प्रकार जीवात्मा और परमात्माका सम्बन्ध है।

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'

(गीता १५। ७)

वास्तवमें 'कञ्चुक' संस्कृतमें 'स्तनावरण वस्त्र'को कहते हैं; अतएव **'निन्दति कञ्चुककारं प्रायः शुष्कस्तनी नारी।'** यह संस्कृतकी लोकोक्ति है।

तत्त्वशोधन

आणव, कार्मण और मायिक मलोंकी तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण-शरीरोंकी संशोधन-प्रक्रियाको 'तत्त्वशोधन' कहते हैं। अतः तत्त्वशोधन-मन्त्र नीचे लिखे जाते हैं।

प्रथमाचमन

आचमनीमें तीर्थजल लेकर—**'ॐ अं आं इं ईं······ अं अः प्रकृत्यहंकारबुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राण-वाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धआकाशवाय्वग्निजल-भूम्यात्मकाय चतुर्विंशतितत्त्वात्मकाय आत्मतत्त्वा-यात्मतत्त्वात्मने विष्णुरूपाय विश्वपुरुषात्मने सरस्वती-हिरण्यगर्भसहितात्मने ब्रह्मग्रन्थिविदलनार्थमात्मपाशविच्छे-दनप्रवीणमाणवमलशोधनार्थमाधारेऽऽत्मतत्त्वं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा। ॐ ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्मणे इदं न मम।'** इस मन्त्रसे प्रथम आचमन करे।

द्वितीयाचमन

'ॐ कं खं गं घं ङं चं टं तं पं मायाकला-विद्यारागकालनियतिपुरुषसप्ततत्त्वात्मकाय विद्यातत्त्वाय विद्यातत्त्वात्मने लक्ष्मीनारायणसहितात्मने तैजसपुरुषात्मने विष्णुग्रन्थिविदलनार्थमविद्यापाशविच्छेदनप्रवीणं कार्मणमल-

[...] **तन्त्रज्ञात्मकरुद्रग्रन्थिविदलनार्थं कर्मपाशविच्छे[...] मायिकमलशोधनार्थं शिरसि शिवतत्त्वं परि[...] जुहोमि स्वाहा। ॐ रुद्राय स्वाहा रुद्राय इदं[...]** इस प्रकार आचमन करे।

चतुर्थाचमन

'ॐ अं आं······कं चं रं तं पं प्रकृत्यहंकारसात्त्विकभूमिमायाकलाविद्यारागकालनियति[...]वशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यात्मकायात्मविद्याशिवतत्त्व[...]यग्निसूर्यसोममण्डलरूपाय सात्त्विकराजसतामसात्म[...]त्रयविदलनार्थं स्थूलसूक्ष्मकारणमहाकारणशरीरचतुष्टयैक्यरूपाय वाणीवल्लभलक्ष्मीनारायणविद्याशंकरसहितात्मने विश्वतैजस-प्राज्ञपुरुषात्मने सर्वतत्त्वेन महाकारणदेहं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा। ॐ ईश्वराय स्वाहा। ईश्वराय इदं न मम।'

—इस प्रकार चतुर्थाचमन कर मलत्रय और स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण शरीरोंका शोधन करे।

षडध्व-विशोधन-प्रक्रिया

पूर्वोक्त षडध्वाओंका शिव-शरीरमें संशोधन-प्रकार निम्नलिखित है—

क्रमादेतानध्वनः षट् शोधयेद् गुरुसत्तमः।
पादान्धुनाभिहृद्भालमूर्द्धस्वपि शिशोः स्मरेत्॥

(शारदातिलक ५। ९२)

अर्थात् 'गुरुदेव पहले संहारक्रमसे शिष्यके शरीरमें षडध्वाओंका पद, अन्धु (गुह्यस्थान), नाभि, हृदय, भाल और सिरमें तत्तदध्वाओंका न्यास—उनका विल[...] कर दें;' पुनः सृष्टिक्रमसे शिष्यके तत्तदङ्गोंको दर्भकूर्चसे (कुशोंकी कूचीसे) स्पर्शकर पूर्वोक्त छः स्थानोंमें कलाध्व, तत्त्वाध्व, भुवनाध्व, वर्णाध्व, पदाध्व और मन्त्राध्वोंका उत्पादन करें और पुनः आज्य (घृत-) मिश्रित बिल्वोंकी अग्निकुण्डमें आहुति दें। आहुति-प्रदानका मन्त्र 'अमुष्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा।'—इस प्रकार

इस प्रकार मन्त्रशास्त्रके अनुसार षडध्वशोधन तथा [स्थू]ल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण-शरीरोंके शोधनके [अ]नन्तर शाक्ती, शैवी, वैष्णवी और सौरी आदि [दी]क्षाओंमेंसे किसी भी स्वाभिलषित दीक्षासे दीक्षित होनेपर [अ]पनी उपासनामें प्रवृत्त होनेवाला उपासक मनुष्य अपने [इ]ष्टदेवतापर दृढ़ भक्ति रखनेसे तथा योग्यतानुसार देवतामें [औ]र अपनेमें अभेदचिन्तन कर मुक्तिपथका पथिक [ब]नता है। अतएव शक्तिके विषयमें लिखा है कि 'जो [ल]लिता भगवतीके मन्त्रका साधक है, वह देहान्तमें [इ]न्द्रनीलमणि-कक्ष्यामें वास करता है। वहाँपर नदियोंके [त]टपर मन्त्र-जप करता हुआ भगवतीका गुणानुवाद [क]रता रहता है। कर्मक्षय होनेपर पुनः भूलोकमें मनुष्य-[श]रीर धारणकर पूर्ववासनानुसार फिर भगवतीकी पूजा [क]रता है और पुनः श्रीनगरमें इन्द्रनीलकक्ष्यामें वास [क]रता है। जो ज्ञानी पुरुष निर्द्वन्द्व जितेन्द्रिय होते हैं, वे चिन्मय [हो]कर महेश्वरीमें प्रविष्ट हो जाते हैं।' तथा हि—

> ये भूलोकगता मर्त्या ललितामन्त्रसाधकाः।
> ते देहान्ते शक्रनीलकक्ष्यां प्राप्य वसन्ति हि॥
> तत्र दिव्यानि वस्तूनि भुञ्जाना वनितासखाः।
> सरस्तटेषु सिन्धूनां कूलेषु कलशोद्भव॥
> सदा जपन्तः श्रीदेवीं वदन्तश्चापि तद्गुणान्।
> कर्मक्षये पुनर्यान्ति भूलोके मानुषीं तनुम्॥
> पूर्ववासनया युक्ताः पुनरर्चन्ति चक्रिणीम्।
> पुनर्यान्ति श्रीनगरे शक्रनीलमहास्थलीम्॥
> ये पुनर्ज्ञानिनो मर्त्या निर्द्वन्द्वा नियतेन्द्रियाः।
> ते मुने चिन्मया भूत्वा प्रविशन्ति महेश्वरीम्॥
>
> (श्रीललितोपाख्यानम् अध्याय २९)

इस प्रकार विष्णुभक्त विष्णुलोकमें जाता है, जहाँपर भगवान् विष्णु अपने चार, दस और द्वादश रूपोंमें विराजमान होते हैं। तथा हि—

> तत्र वैष्णवलोके तु विष्णुः साक्षात् सनातनः।
> चतुर्धा दशधा चैव तथा द्वादशधा पुनः॥
> विभिन्नमूर्तिः सततं वर्तते माधवः सदा।

इसी प्रकार शैवलोग शिवलोकमें जाते हैं और वहाँपर आनन्द करते हैं—

> शिवलोकस्तत्र महान् जागर्ति स्फुरितद्युतिः।
> शैवागमा मूर्तिमन्तस्तत्राष्टाविंशतिः स्मृताः॥
> नन्दीभृङ्गिमहाकालप्रमुखास्तत्र चोत्तमाः।

अर्थात् 'शिवलोकमें २८ शैवागम मूर्तिमान् विद्यमान हैं और नन्दी, भृङ्गी, महाकाल आदि प्रमुख शिवजीके गण सर्वदा उपस्थित रहते हैं।'

जो लोग उपासनासे विमुख रहते हैं, दुराचारी हैं, गुरुसे शापित हैं, कपटसे भक्ति करनेवाले हैं, मूर्ख हैं, अत्यन्त घमण्डी हैं, मन्त्रोंकी चोरी करनेवाले, नास्तिक और पापी हैं तथा प्राणियोंके हिंसक और स्त्रियोंसे द्वेष करनेवाले हैं, उनको दण्डधर यमराज कालसूत्र, रौरव और कुम्भीपाक आदि नरकोंमें यातना प्रदान करते हैं।

उपर्युक्त सब लोक 'परलोक' (स्वर्ग और नरक) कहलाते हैं। यहाँ स्वकर्मानुसार सुख-दुःख भोगकर पुनः संसारमें पुनर्जन्म लेना पड़ता है और पूर्ववासनाके अनुसार कर्म करने पड़ते हैं। गीता ७। १४में श्रीभगवान्‌ने कहा है—'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।'

प्रभु-पदमें स्थान प्राप्त हो

> दुर्लभ मानव-तन मिला, साधन-धाम महान्।
> मत खो भोगोंमें इसे, भज ले श्रीभगवान्॥
> मोह-निशा-तम मिटे सब, समुदित हो रवि-ज्ञान।
> पुनर्जन्मसे मुक्ति हो, प्रभु-पदमें हो स्थान॥

परलोक एवं पुनर्जन्मविषयक विचारधारा

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यावाचस्पति)

(क) पुनर्जन्मवादमें विप्रतिपत्तियाँ

'पुनर्जन्म' विषय वस्तुतः विचारणीय है और महत्त्वपूर्ण भी है। इस संसारमें हिंदू, ईसाई, मुसल्मान, पारसी, यहूदी आदि बहुत-सी जातियाँ हैं। इनमें हिंदुओंको छोड़कर शेष जातियाँ अब पुनर्जन्मसिद्धान्तको नहीं मानतीं; पहले कभी ये जातियाँ भी पुनर्जन्मको मानती थीं। हिंदुओंमें भी चार्वाक आदि कई मत पुनर्जन्मके सिद्धान्तको नहीं मानते, यह 'सर्वदर्शनसंग्रहमें' स्पष्ट है। उस विषयमें आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वा० दयानन्दजीने उस मतका संग्रह करते हुए चार्वाकका यह वचन (स० प्र० १२ समु० के आरम्भमें) उद्धृत किया है—

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥
(चार्वाकदर्शन २२)

यहाँपर परलोक जानेवाला आत्मा चार्वाकके मतमें नहीं है—यह कहा गया है। इसलिये नास्तिक लोग अनुमान भी उपस्थित करते हैं—'**तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा, देहातिरिक्ते आत्मनि प्रमाणाभावात्।**'—'यह चेतन देह ही आत्मा है, इससे भिन्न आत्मा नहीं है।' इसलिये चार्वाक लोगोंकी यह उक्ति सुप्रसिद्ध है—

सिद्ध है। इस प्रकार दम्पतिके शुक्र-शोणितद्वारा जब पाँच भूतोंका योग हुआ तब स्वयं ही उसमें चेतनता आ जाती है। उसमें पुनर्जन्मका कोई अवकाश नहीं'—यह स्वभाववादियोंका मत है।

कई लोग पर-निर्माणको जन्मका कारण मानते हैं; अर्थात् माता-पितासे भिन्न स्वभावका आधारभूत कोई परम ऐश्वर्यसे मिला हुआ पर (परमात्मा) ही निर्माण करता है। उसीके प्रभावसे प्राणी चैतन्यको प्राप्त होते हैं; अतः पुनर्जन्म कारण नहीं है।

अन्य लोग 'यदृच्छा'को जन्मका कारण मानते हैं। अर्थात् उत्पत्ति अचानक हो जाती है, उसमें कोई कारण नहीं है। यदृच्छा माननेवाले प्राणियोंकी उत्पत्तिको आकस्मिक (By Chance) घटना मानते हैं। इसमें कारणका विचार नहीं करना चाहिये। यह उनका मत है। इस मतमें भी पुनर्जन्मके स्वीकारका अवकाश नहीं।

इधर आस्तिकमतकी श्रुतियाँ पुनर्जन्मको मानती हैं, इसलिये पुनर्भव (पुनर्जन्म) का विषय विचारणीय है।

(ख) 'पुनर्जन्म' शब्दकी सिद्धि तथा

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद् विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥
(४।४)

अर्जुनने पूछा—'गत जन्ममें आपने यह अव्यय योग विवस्वान्को कहा था, यह मैं कैसे जानूँ ?' इसपर भगवान्ने कहा—'**बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन !**' ४।५) '**जन्म कर्म च मे दिव्यम्**' (४।९) 'तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं।' 'मेरा जन्म दिव्य हुआ करता है।'

उपनिषदोंमें भी पुनर्जन्म बताया गया है—'**स इतः प्रयन्नेव** (मरकर) **पुनर्जायते**।' (फिर जन्म लेता है) (ऐतरेय ४।४)। '**जन्म-जन्म पुनः-पुनः**' (गर्भोपनिषद् ४)। '**पुनरावृत्तिरहितां मुक्तिम्**।' (मुक्तिकोपनिषद् १।२०) यहाँपर मुक्तिसे अन्यत्र पुनर्जन्म माना गया है।

(ग) अब पुनर्जन्मका अन्य नाम 'पुनर्भव' भी देखिये। जैसे कि श्रीमद्भागवतपुराणमें प्रार्थना है—'**क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम्**' (४।२४।५७) यहाँ 'अपुनर्भव' मुक्तिका नाम है।

(ग) पुराणोंका वेदोंके समकाल होना

पुराणोंका प्रमाण हमने जो दिया है, उसका कारण यह है कि पुराण भी वेदके समकालीन हैं। पुराणका यह उद्घोष है—

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥
(शिवपु०, वायुसं०, पूर्वभाग १।३१।३२, मत्स्यपुराण ५३।३)

'पहले ब्रह्माजीने पुराणोंका स्मरण किया, उसके बाद ब्रह्माजीके मुखसे वेद प्रकट हुए।' इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये। इसका यह आशय है कि वेद और पुराण—दोनों ही 'अनादि' हैं; अतः दोनों समकालीन हैं। पुराण 'अर्थ' हैं और वेद 'मूल' हैं। वेद 'बीज' हैं और पुराण 'वृक्ष' हैं। दोनों साथ ही रहते हैं। इस विषयमें 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाका सप्तम पुष्प * देखना चाहिये। सांसारिक साहित्यकी कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं है, जिसमें पुराणका स्मरण न किया गया हो।

पातञ्जल महाभाष्यमें शब्दके विषयमें महाभाष्यकारने कहा है—'**लोके अर्थमर्थमुपादाय शब्दान् प्रयुञ्जते। नै[...] निर्वृत्तौ यत्नं कुर्वन्ति**।' (पस्पशाह्निकमें 'लोकतः' इ[...] वार्तिकमें)। इसका यह अभिप्राय है—किसी पुरुषको घड़े[...] आवश्यकता हो, तब वह कुम्हारके पास जाकर कहता है—'मुझे घड़ा बना दो, मैं उसके शीतल जलको पीया करूँगा[...]' परंतु शब्दको कहना चाहता हुआ पुरुष वैयाकरणके पा[...] जाकर नहीं कहता कि 'मुझे शब्दोंको गढ़ दो; उन[...] मैं प्रयोग करूँगा।' किंतु अर्थका पहले स्मरण क[...] ही उसके बाद उसके मूलरूप शब्दका प्रयोग करने ल[...] जाता है। यही बात वहाँ महाभाष्यमें कही गयी है—'**न तद्वत् शब्दान् प्रयुयुक्षमाणो वैयाकरणकुलं गत्वा आह-कुरु शब्दान् प्रयोक्ष्ये। तावत्येवार्थमुपादाय शब्द[...] प्रयुञ्जते**।'

तब पुराण हैं—वेदके अर्थ और वेद उन विस्तृ[...] अर्थके संक्षिप्त मूल शब्द हैं। शब्दोंके प्रयोगका इच्छु[...] जन पहले अपने इष्ट अर्थका स्मरण करके फिर उ[...] शब्दोंका प्रयोग करता है। पुराणके उक्त वचनमें '**पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्**।' पहले अर्थरूप पुराणका स्मरण क[...] ही कहा है। '**अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः**' पीछे शब्दरूप वेदका उनके मुखसे प्रकट होना कहा[...] यह बात स्वाभाविक भी है। तब अर्थरूप पुराणका प[...] स्मरण; उसके बाद उसके शब्दरूप वेदका प्राकट्य[...] यह ठीक ही है। '**सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे**'—इस व्याक[...] वार्तिकसे शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्धके नित्य हो[...] अर्थरूप पुराण और शब्दरूप वेद नित्य ही हैं '**वागर्थाविव सम्पृक्तौ**' (रघुवंश १।१)।

तभी पुराणमें वेदका और वेदमें पुराणका नाम सुनायी पड़ता है—

'**तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्च अनुव्यचल[...]**' '**इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशं[...] च प्रियं धाम भवति। य एवं वेद**।' (अथर्ववेद १५। ११-१२)।

तब पुराण भी सृष्टिके आदिकालमें ही ब्रह्माजीद्वारा स[...] किये गये, यह सिद्ध हो गया। तभी तो वेदमें कहा गया है[...]

'**ऋच सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा स[...] उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे**।' (अथर्व० ११।९७।२४) यहाँपर ऋग्वेदादिकी भाँति पुराणोंकी भी उच्छिष्ट (सर्वा[...]

* सप्तम पुष्प फर्स्ट बी० १९ लाजपतनगर, नयी दिल्ली १४से मँगाया जा सकता है।

अवशिष्ट) ब्रह्माजीके पास स्थित रहना बताया गया है। उक्त मन्त्रमें 'पुराणं' यह जातिमें एकवचन है। उससे सब पुराण लिये जाते हैं।

पूर्वोक्त अथर्ववेदके वचनके अनुवादरूप ब्राह्मणभागात्मक वेदमें भी कहा है—'अरे अस्य महतो भूतस्य [उच्छिष्टस्य] निःश्वसितमेतद् यद्—ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः, इतिहासः, पुराणं ''अस्त्येव एतानि।' (शतपथब्रा० १४। ५। ४। १०; बृहदारण्यक उप० २। ४। १०)

यहाँपर पुराणको भी परमात्माका निःश्वासरूप कहा है। यदि ऐसा है, तब ब्रह्माजीने पुराणका पहले स्मरण किया हो; फिर उसके बाद वेद उनके मुखसे प्रकट हुए हों, यह बात युक्तियुक्त भी सिद्ध हो गयी। इसलिये त्रेतायुगके वाल्मीकि-रामायणमें भी पुराणका नाम सुनायी पड़ता है—'श्रूयतां तत् पुरावृत्तं पुराणेषु च मया श्रुतम्।' (वाल्मीकि० १। ९। १)।

इससे यह भी प्रतीत होता है कि श्रीवाल्मीकिमुनिने पुराणोंसे दुहकर ही अपनी ललित कवितामें रामायणकी रचना की। उसका प्रमाण यह है कि वाल्मीकिरामायणमें राजा दशरथसे पहला और लवकुशके बादका वृत्तान्त नहीं है; पर कालिदासके रघुवंशमें है और वह उसने पुराणोंसे लिया है—यह स्पष्ट है। जब त्रेतायुगके रामायणका मूल भी पुराण है, तब पुराण भी सृष्टिके आदिकालके सिद्ध हो गये।

द्वापरयुगके अन्तमें बने हुए महाभारतमें तो पुराणका वर्णन स्पष्ट है—

'पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्।'
(आदिपर्व ५। २)

इस प्रकार उपवेद—आयुर्वेदकी चरकसंहिता सूत्रस्थान १५। ६) में भी पुराणका नाम स्पष्ट है। इस प्रकार आपस्तम्ब-धर्मसूत्र (२। २४। ६), आश्वलायनगृह्यसूत्र (३। ३। १), शुक्रनीति (२। १७७), कौटिलीय अर्थशास्त्र (१। ५ वृद्धसंयोग), इसी प्रकार अन्यत्र भी बहुत ग्रन्थोंमें पुराणोंका वर्णन है।

कई लोग पुराणोंका श्रीवेदव्यासके द्वारा द्वापरयुगके अन्तमें निर्माण मानते हैं। वास्तवमें श्रीव्यास पुराणोंके कर्ता नहीं हैं; किंतु वक्ता और सम्पादक हैं। प्रत्येक द्वापरमें भिन्न-भिन्न व्यास पुराणका परिष्करण तथा सम्पादन करते हैं; यह पुराणमें ही स्पष्ट है। अबके द्वापरमें 'श्रीकृष्णद्वैपायन' व्यास थे और अग्रिम द्वापरमें 'अश्वत्थामा' नामक व्यास पुराणोंके सम्पादक होंगे, कर्ता नहीं। यह देवीभागवतपुराण (१। ३। १८-३३) में स्पष्ट है। पु[illegible] महत्त्व पुराणमें ही दीखता है—

श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्।
एतत्त्रयोक्तमेवास्माद् धर्मो नान्यत्र कुत्रचित्॥
(देवीभागवत ११। १।

यहाँ श्रुति-स्मृतिको नेत्र और पुराणको हृदय ब[illegible] गया है। अब क्रमागत पुनर्जन्मके नामोंके वि[illegible] देखना चाहिये। 'प्रश्नोपनिषद्'में भी 'पुनर्भव'का नाम है

'तस्माद् उपशान्ततेजाः पुनर्भवम्।' (३। [illegible]

कालाग्निरुद्रोपनिषद्में भी है—

'तत्समाचरेन्मुमुक्षुर्न पुनर्भवाय।' (४[illegible]

चरकसंहितामें भी 'पुनर्भव' शब्दका प्रयोग मिलता है-

'अथ तृतीयां परलोकैषणामापद्येत संशयश्चात्र।
कथं भविष्याम इतश्च्युता न वा॥'
(सूत्रस्थान ११। ५

'कुतः पुनः संशय इत्युच्यते। सन्ति ह्येके प्रत्यक्षपराः
परोक्षत्वात् पुनर्भवस्य नास्तिक्यमाश्रिताः॥'

यहाँ संहिताकारने पुनर्भव (पुनर्जन्म) को परोक्ष बताया है। प्रत्यक्ष माननेवाले पुनर्भवको नहीं मानना चाहते; अतः वहाँ संशय दिखलाया गया है। आगे संहिताकार कहते हैं—

'सन्ति च आगमप्रत्ययादेव पुनर्भवमिच्छन्ति।'

यहाँ संहिताकारने पुनर्भवकी सिद्धि आगमद्वारा भी सूचित की है और कहा है—

'इत्यतः संशयः, किं नु खलु अस्ति पुनर्भवो न वा इति।'
(११। ६)

(घ) परलोक

पुनर्जन्मका अन्य नाम 'परलोक' भी है। इसमें भी पुनर्जन्मके विषयमें प्रकाश पड़ता है। 'परलोक' शब्द उपनिषद्में भी दीखता है—

'अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।'

(कठ० १ । २ । ६)

यद्यपि 'परलोक' इससे भिन्न स्वर्ग आदि लोकोंका नाम है, तथापि 'परलोक' शब्द भी पुनर्जन्मको सिद्ध करता है; क्योंकि मरकर पुनर्जन्म केवल मनुष्यलोकमें हो—ऐसा नहीं है; किंतु स्वर्ग आदि अन्य लोकोंमें भी हुआ करता है—यह इससे सूचित होता है।

इसके अतिरिक्त पुनर्जन्म केवल मनुष्ययोनिमें ही नहीं होता, किंतु पशुयोनिमें भी होता है, पक्षियोनिमें भी होता है, कीट-पतङ्गादि योनियोंमें भी होता है, देव-गन्धर्वादि योनियोंमें भी होता है। उसमें भी पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग मनुष्यलोकमें होते हैं; और स्थूलशरीर होते हैं। देव-गन्धर्व आदि स्वर्गादि लोकोंमें होते हैं। वे वहाँ सूक्ष्मकाय भी होते हैं और कामरूप भी होते हैं। गरुड़ आदि पक्षी, नन्दी बैल, सिंह आदि भी वहाँ होते हैं; पर दिव्य।

आकाशमें जो तारामण्डल दीख रहा है, यही 'द्युलोक' या 'परलोक' है। परलोकको न माननेवालेको उपनिषद्ने 'नास्तिक' कहा है। 'पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।' (कठ० १ । २ । ६) इस रूपसे उसकी निन्दा की है। इस निन्दा-वाक्यसे भी उपनिषद्ने पुनर्जन्मको प्रमाणीकृत किया है; क्योंकि कठोपनिषद्के वक्ताको 'मृत्यु' (१ । १ । ४), 'यम' (१ । १ । ५), 'वैवस्वत' (सूर्यका लड़का) (१ । १ । ७), 'अन्तक' (१ । १ । २६) कहा गया है। ये नाम कोष (अमर० १ । १ । ५८-५९) के अनुसार मृत्यु-देवताके हैं। अमरकोषमें यद्यपि मृत्यु (२ । ८ । ११६) मरनेका नाम है, तथापि यमराजके मृत्युके अधिष्ठाता होनेसे 'मृत्यु' नाम भी उसका है। इसलिये मेदिनीकोषमें 'मृत्युर्ना मरणे यमे।' (अमरकोषकी सुधा-व्याख्यामें २ । ८ । ११६) 'मृत्यु' भी यमका नाम कहा गया है।

(ङ) प्रसङ्गसे प्राप्त आस्तिक और नास्तिक

हमारे प्राच्यसाहित्यमें आस्तिक और नास्तिक—ये दो मत प्रसिद्ध हैं। इससे भी पुनर्जन्म सिद्ध होता है। श्रीपाणिनिने 'अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः।' (अष्टा० ४ । ४ । ६०) इस सूत्रमें आस्तिक और नास्तिक शब्दकी सिद्धि की है।

(अ) इसमें—

'अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः।
नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिकः॥'

श्रीभट्टोजिदीक्षितने तद्धितप्रकरणमें उक्त सूत्रमें र विग्रह किया है।

(आ) काशिकाकार श्रीवामन और जयादित्यने उ सूत्रकी वृत्तिमें लिखा है—

'अस्ति मतिरस्य आस्तिकः, नास्ति मतिरस्य नास्तिकः।'

यह विग्रह करके आगे कहा है—

'न च मतिसत्तामात्रे प्रत्यय इष्यते, किं तर्हि परलोकोऽस्य अस्तीति यस्य मतिरस्ति स आस्तिः तद्विपरीतो नास्तिकः।'

इसमें 'परलोक' मानने-न-माननेवालेको 'आस्ति नास्तिक' शब्दसे कहा है; तब 'आस्तिक' शब्दसे 'पुनर्जन्म' पर प्रकाश पड़ता है।

(इ) आर्यसमाजके प्रवर्तक श्रीस्वामी दयानन्द भी अपने 'स्त्रैणतद्धित' में उक्त सूत्रकी व्याख्याकी टिप्पण कहा है—"यहाँ वाक्यार्थमें' 'इति' शब्द [इस] उ पदका लोप समझना चाहिये; क्योंकि ईश्वर, जं पुनर्जन्म और शुभाशुभ कर्मोंका फल आदि है— बुद्धि जिस पुरुषकी हो, वह आस्तिक और इसके वि नास्तिक समझा जावे।" यहाँपर स्वामीजीने पुनर्जन परलोकमें अन्तर्भावित कर दिया है।

(ई) पातञ्जल-महाभाष्यमें उक्त सूत्रके 'प्रदी श्रीकैयटने भी लिखा है—

'अस्तीत्यस्य इति परलोककर्तृका च सत्ता विज्ञे तत्रैव विषये लोके प्रयोगदर्शनात्। तेन परलोकोऽस मतिर्यस्य स आस्तिकः, तद्विपरीतो नास्तिकः।'

(३) 'नास्तिको वेदनिन्दकः' (२ । ११) मनुवचनमें 'वेद' शब्द श्रुति और स्मृतिका उपलक्षण क्योंकि उक्त वचनके प्रथम पाद 'योऽवमन्येत ते मूले यही कहा है। 'ते मूले' से इससे पूर्वके—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥

(मनु० २ ।

इस मनुवचनमें आये हुए श्रुति-स्मृतिका संकेत है। इससे श्रुति एवं स्मृतिका शुष्क तर्कके बलसे तिरस्कार करनेवालेको भी 'नास्तिक' कहा गया है। उसमें कारण यह है कि श्रुति एवं स्मृतिमें भी परलोकका स्पष्ट वर्णन है। जैसे कि—

'आप्नोति इमं लोकम्, आप्नोति अमुम्' (अथर्व० शौसं० ९। ११। १३) यहाँपर 'इमं लोकं' इस 'इदम्' शब्दसे हमारा यह लोक सूचित होता है; और 'अमुं' इस 'अदस्' शब्दसे आमुत्रिक लोक (परलोक) सूचित होता है; क्योंकि—

इदमस्तु संनिकृष्टे समीपतरवर्ति चैतयो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

—इस प्रसिद्ध शास्त्रीय उक्तिसे 'इदम्' शब्दका निकटतामें तथा 'अदस्' शब्दका इस लोकसे बहुत दूरी बताकर इस लोक और 'परलोक'का परस्पर भेद बता दिया गया है।

(अ) **'इमं च लोकं परमं च लोकम्।'**
(अथर्व० १९। ५४। ५)

यहाँपर 'परमलोक' का 'परलोक' अर्थ है, जैसे कि—

'यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे।'
(अथर्व० १३। ३। ५)

यहाँपर 'परम' शब्द 'पर' वाचक है।

(ऋ) जैसे श्रुतिमें परलोकका वर्णन है, वैसे स्मृतिमें भी है। जैसे कि—

(अ) **'परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन्।'**
(मनु० ४। २३८)

(आ) **'नामुत्र हि सहायार्थ पिता माता च तिष्ठतः।'**
(मनु० ४। २३९)

(इ) **'परलोकं नयत्याशु'** (मनु० ४। २४३)

इस प्रकार 'परलोक' शब्दको अन्य शास्त्रोंसे भी दिखलाया जा सकता है। जब परलोकको न माननेवालेको 'नास्तिक' कहा जाता है, तब इससे 'पुनर्जन्म'की सिद्धि स्पष्ट है।

अब पुनर्जन्मके पर्यायवाचक 'प्रेत्यभाव' शब्दको भी देखिये।

(च) प्रेत्यभावः

'प्रेत्यभवनं प्रेत्यभावः।' यह उक्त शब्दकी व्युत्पत्ति है।

(अ) 'प्रेत' शब्दकी सिद्धि और अर्थ।

'प्र' उपसर्गपूर्वक 'इण्' धातु (अदादि० परस्मैपदी० अनिट्) से 'क्त' प्रत्ययमें 'प्रेत' शब्द बनता है। 'प्रकर्षेण इतः' (अच्छी तरहसे गया हुआ) यह 'प्रेत' शब्दका निर्वचन है। इसीका दूसरा नाम 'परेत' भी है। इसमें 'परा' उपसर्ग है। इसकी व्युत्पत्ति है—(परा-दूरम् इतः) अथवा 'पर लोकम् इतः'—अच्छी तरहसे गये हुएका नाम 'प्रेत' बनता है। वह इससे भिन्न होकर अन्य लोकमें जाकर फिर उत्पन्न होता है—यही उसका 'प्रकर्षसे गमन' होता है।

अमरकोषमें **'परासु-प्राप्तपञ्चत्व-परेत-प्रेत-संस्थिताः। मृत-प्रमीतौ त्रिष्वेते'** (२। ८। ११७) ये नाम 'मृतक'के हैं। इसमें तीसरा नाम 'परेत' है और चतुर्थ नाम 'प्रेत' है।

'प्रकर्षेण इतः' इस व्युत्पत्तिसे यह मृतकका नाम कैसे हुआ? यह जिज्ञासा होती है; परंतु थोड़े विचारसे यहाँ ज्ञात हो जाता है। एक होती है—यात्रा। दूसरी होती है महायात्रा। लोकमें 'महायात्रा'—मृत्युका नाम प्रसिद्ध है। 'अमुक पुरुषकी महायात्रा हो गयी है'—यह वाक्य किसीकी मृत्युपर कहा जाता है। इस प्रकार **'प्रकर्षेण इतः-गतः'** का भी महायात्राको प्राप्त हो गया—यह अर्थ फलित होता है। तब 'प्रेत' यह मृतकका नाम ठीक ही है।

(आ) 'प्रेत' शब्दका शास्त्रोंमें प्रयोग।

'प्रेत' शब्दका प्रयोग उपनिषदोंमें भी दीखता है। जैसे कि—

१ ईशोपनिषद्में।

'तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।' (३)

यहाँ आत्महत्या करनेवालोंका मरकर आसुर लोकोंमें जाना कहा है। यहाँ 'प्रेत्य' शब्द मरणवाचक स्पष्ट है।

२ कठोपनिषद्में—

'येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये।' (१। १। २०)

३ उपनिषदोंके मूल वेदमें—

'इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।' (अथर्ववेद १८। ३। १)

यहाँ मृतकको कहा जा रहा है कि—'हे मर्त्य—(मरणधर्मा मनुष्य!) इयं नारी—(यह तुम्हारी स्त्री) पतिलोकं वृणाना—

(पारलौकिक पतिलोकको चाहती हुई) प्रेतं त्वा—(मरे हुए तुम्हारे पास) उपनिपद्यते—(सतीधर्मके लिये लेटी है)।' इसमें 'प्रेत' मृतकका नाम है।

४ प्रेत एक योनिविशेष।

'प्रेत' एक योनिविशेष भी है। जैसे कि—

'प्रेतः प्राण्यन्तरे मृते।' (अमरकोष ३। ३। ५९)

'भूत-प्रेत' शब्द उक्त योनिविशेषमें भी प्रसिद्ध है। 'मेदिनी'कोषमें भी कहा है—

'प्रेतो भूतान्तरे पुंसि मृते स्याद् वाच्यलिङ्गकः।'

(उक्त अमरकोषकी सुधाव्याख्यामें)

इस प्रकार शौनककृत 'ऋग्विधान'में भी कहा है—

'भूतप्रेतादिचौरादिव्याघ्रादीनां च नाशनम्।'

(८। ७। १४)

'बालग्रहा न पीड्यन्ते भूतप्रेतादयस्तथा।'

(प्रा० वि० ६। २। ९)

यहाँपर विशेष मन्त्रके जपसे भूत-प्रेतोंकी पीड़ा हट जाना कहा है। वैशेषिकदर्शनके प्रशस्तपादभाष्यमें भी कहा है—**'प्रेतं तिर्यग्योनिस्थानेषु'** (संसारापवर्गप्रकरण) यहाँपर प्रेतयोनि भी स्वीकृत की गयी है कि अधमयोनिमें 'प्रेत' होता है। 'बोधायनगृह्यशेषसूत्र'में भी 'प्रेतयोनि' दिखलायी गयी है। जैसे कि—

'भूतप्रेतपिशाचाद्याः सर्वे ते भूमिभारकाः।' (५। ४। २)

इस प्रकार प्रेतयोनि भी अपमृत्युसे शास्त्रोंमें कही गयी है। उसमें भी मरकर पुनर्जन्म-सम्बन्ध फलित हुआ।

५ 'प्रेत्यभाव' का प्रयोग और उसका अर्थ

प्रेत्य—मृत्वा, भावः—पुनर्जन्म इति 'प्रेत्यभावः'। मरकर फिर जन्म। इसका स्वरूप दर्शनोंमें दीखता है। इससे भी पुनर्जन्मपर प्रकाश पड़ता है। 'न्यायदर्शन'में कहा है—

'आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफल-दुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्।' (१। १। ९)

यहाँ प्रमेयमें 'प्रेत्यभाव'की संख्या नवम है। अब इसका न्यायदर्शनमें स्वरूप देखिये—

'पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः।' (१। १। १९)

इस सूत्रकी व्याख्या करते हुए श्रीवात्स्यायनमुनिने कहा है—'उत्पन्नस्य (पैदा हुए प्राणीका) क्वचित् सत्त्वनिकाये (किसी शरीरेन्द्रियसमुदायमें) मृत्वा (मरकर) या पुनः उत्पत्तिः (जो फिर देहादिसे सम्बन्ध है) स प्रेत्यभावः (इसका नाम प्रेत्यभाव है)। यत् क्वचित् प्राणभृन्निकाये (किसी प्राणीके शरीरमें) वर्तमानः पूर्वोपात्तान् (होकर पूर्व प्राप्त हुए) देहादीन् जहाति (शरीर-इन्द्रिय आदिको छोड़ देता है) तत् प्रैति (वह मर जाता है) यत् तत्र अन्यत्र वा देहादीन् अन्यान् उपादत्ते (जब वा अन्य देह आदिको लेता है), तद् भवति (वह उसका पुनर्जन्म होता है)'—यह कहकर भाष्यकार फिर प्रेत्यभावको स्पष्ट करते हैं—'प्रेत्यभावः—मृत्वा पुनर्जन्म' (मरकर फिर जन्म होना—यह प्रेत्यभाव होता है)।

तर्कशास्त्रके इस वचनसे प्रमाणित होता है कि पुनर्जन्मवाद केवल आप्त वचनसे प्रमाणित नहीं है, किंतु तर्कसे भी अनुगृहीत है। पहले ईशोपनिषद् (३)के वचनसे भी हम 'प्रेत्यभाव'को स्पष्ट कर ही चुके हैं।

(छ) परलोकसे पुनर्जन्मकी सिद्धि

पहले हम बता चुके हैं कि पुनर्जन्मका दूसरा नाम 'परलोक' है; इस 'परलोक' शब्दसे भी 'पुनर्जन्म'की सिद्धि होती है। उसमें कारण यह है कि यदि पुरुष यहीं होता, यहीं मर जाता, तब तो पुनर्जन्मका कोई प्रसङ्ग ही नहीं था; पर जब कि मृतकका शास्त्रोंमें परलोकमें जाना कहा है, तब इससे सिद्ध हुआ कि इस लोकमें स्थित होकर भी वह परलोकमें गया है, यह भी 'पुनर्जन्म' है।

पुनर्जन्म केवल कर्मयोनि मनुष्योंमें नहीं होता; बल्कि भोगयोनि—पशु-पक्षी आदिमें भी जन्म होता है; वह यही लोक है। वे योनियाँ ८४ लाख सुनी जाती हैं। मरकर परलोकमें गये हुए जीवका देवता आदि भोगयोनियोंमें जन्म होता है। उनकी संख्या ३३ करोड़ कही जाती है।

इस लोकसे परलोकका यही अन्तर है कि इस लोकमें तो जीवको पार्थिव पाञ्चभौतिक देह मिलता है और उसमें मुख्यता पृथिवी-भूतकी हुआ करती है और जल, तेज, वायु, आकाश आदिकी सहायता भी होती है। जैसे घड़ा पार्थिव होता है, इसलिये वहाँ मिट्टी मुख्य होती है; पर उसमें जल, तेज, वायु, आकाश आदिकी सहायताके बिना वह घड़ा नहीं बनाया जा सकता, वैसे ही पार्थिव शरीरमें पृथिवी मुख्य होनेपर भी उसमें जल आदि भूतोंकी सहायता भी अपेक्षित होती ही है।

इस लोकके पृथिवीलोक होनेसे यहाँका देह भी पार्थिव हो, यह स्वाभाविक ही है; परंतु शास्त्रकी दृष्टिसे 'परलोक' इस लोकसे भिन्न ही माना जाता है। 'परलोक' शब्दसे स्वर्ग, नरक, पितृ, मुक्ति आदि लोक लिये जाते हैं। उनमें पृथिवी प्रधान नहीं होती; किंतु जल, तेज एवं वायुकी प्रधानता रहती है; इसलिये वहाँके देवताओं आदिके शरीर भी तैजस आदि हुआ करते हैं। अतएव न्यायदर्शन तथा वैशेषिकदर्शनके प्रशस्तपादभाष्य आदिमें भी वैसे शरीरोंका वर्णन मिलता है। जैसे कि—

'तत्र मानुषं शरीरं पार्थिवम्…… आप्यतैजसवायव्यानि-लोकान्तरे (वरुण, सूर्य, वायुलोकेषु) **शरीराणि। तेष्वपि भूतसंयोगः पुरुषार्थतन्त्रः।** अर्थात् एक भूतसे बने शरीरसे भोग नहीं हो सकता; इसलिये उन शरीरोंमें भी शेष चार भूतोंका संयोग भोगके लिये ही हुआ करता है, जल आदिकी प्रधानतासे ही उन्हें 'जलीय तैजस' आदि कहा जाता है।' **'स्थाल्यादिद्रव्यनिष्पत्तावपि [भूतसंयोगो] निःसंशयः [अपेक्ष्यते] न ह्यबादिसंयोगमन्तरेण निष्पत्तिः।**—घड़े आदि-के निर्माणमें भी जल आदिके संयोगके बिना केवल मिट्टीसे काम नहीं होता।' (न्यायदर्शन ३। १। २८)

यही बात प्रशस्तपादभाष्यमें भी कही गयी है—**'तत्र शरीरम् अयोनिजमेव वरुणलोके पार्थिवावयवोपष्टम्भाच्च उपभोगसमर्थम्।'** (वरुणलोकमें शरीर अयोनिज होता है; परंतु पार्थिव अवयवोंके आश्रयसे उपभोगमें समर्थ होता है।) (द्रव्यग्रन्थ जलनिरूपणमें)। **'शरीरम् अयोनिजमेव आदित्यलोके पार्थिवावयवोपष्टम्भाच्च उपभोगसमर्थम्।'** (तेजके निरूपणमें) । **'तत्र अयोनिजमेव शरीरं मरुतां लोके, पार्थिवावयवोपष्टम्भाच्च उपभोगसमर्थम्।'** (वायुनिरूपणमें)

यहाँपर जलीय, तैजस, वायव्य आदि शरीर भी लोकान्तर-निवासियोंके बताये गये हैं। यह भी 'पुनर्जन्म' ही है। इस प्रकारके शरीरधारी लोकमें 'देव' कहे जाते हैं। नरकलोक-वासियोंको भी नरकयातनाकी प्राप्तिके लिये मरनेके बाद अन्य शरीर भी मिलता है। जैसे कि मनुस्मृतिमें कहा है—

पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम्।
शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम्॥
तेनानुभूय ता यामीः शरीरेणेह यातनाः।
तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः॥
(१२। १६-१७)

'जिन पापियोंको नरकलोक जाना होता है, उनको प्रेत्य—मरनेके बाद पीड़ाके अनुभवार्थ जरायुज आदिसे भिन्न दुःख सहनेमें समर्थ पृथिवी आदि पाँच भूतोंसे ही अन्य शरीर परलोकमें मिलता है। वे नारकी जीव यमराजके पापभोगार्थ दी जानेवाली पीड़ाओंको प्राप्त करके उस सूक्ष्मतर स्थूलशरीरके अवसानमें शुद्ध हो जाते हैं।' जैसे कि—

सोऽनुभूयासुखोदर्कान् दोषान् विषयसङ्गजान्।
व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ॥
तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह।
याभ्यां प्राप्नोति सम्पृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम्॥
(१२। १८-१९)

'वह जीव यमलोकका दुःख आदि अनुभव करके भोगसे पापके क्षीण होनेपर महान् तथा परमात्माको प्राप्त होता है। वे उसके धर्म और भुक्तशेष पापका निरीक्षण करते हैं, जिससे वह इहलोक तथा परलोकमें सुख-दुःख पाता है।'

मनुस्मृति (१२। १४) में जिनको 'महान्' और 'परमात्मा' बताया है, उन्हींको गरुडपुराण आदिमें 'चित्रगुप्त' और 'यमराज' नामसे कहा गया है; उसमें 'महान्' चित्रगुप्त मन्त्री हैं और 'परमात्मा' यमराज राजा या न्यायाधीश हैं। धर्म अधिक होनेपर जीवको स्वर्गलोककी प्राप्ति कही है।

यद्यदाचरति धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः।
तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते॥
(मनु० १२। २०)

पुण्य अधिक होनेपर वह स्वर्गमें देवता बनकर भोग-योनि बनता है। पाप अधिक होनेपर नरकमें जाता है।

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः।
तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः॥
(१२। २१)

इस कर्ममीमांसासे जीवको गतिविशेषकी प्राप्तिसे पुनर्जन्म सिद्ध हो जाता है। जैसे कि—

जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम्।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु॥
(मनु० १२। १३)

यहाँपर जीवको जन्म-जन्ममें पुण्य-पापके कारण सुख-दुःखकी प्राप्ति कही गयी है। अत्यन्त पुण्यसे स्वर्ग, अत्यन्त

पापसे नरक होता है। इससे सिद्ध होता है कि पुण्य-पाप दोनोंकी समानता हो, तो जीव मनुष्यलोकमें जन्म लेता है। स्वर्ग-नरकमें तो शरीरकी पृथिवी-प्रधानता नहीं थी, पर पृथिवी-लोकमें पृथिवी-प्रधान होनेसे स्थूलशरीर होता है। पुण्य-पाप दोनोंके न रहनेसे जीवकी मुक्ति हो जाती है। उसमें 'संकल्पमय शरीर' माना जाता है। उसमें कर्मोंके अभावसे पुनर्जन्मकी समाप्ति हो जाती है। इस प्रकार परलोकसे भी पुनर्जन्मकी स्पष्ट सिद्धि हो जाती है।

(शेष आगे)

पुनर्जन्म

(लेखक—आचार्य श्रीमुन्शीरामजी शर्मा)

अपाङ् प्राङ् एति स्वधया गृभीतो अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥

(ऋ० १।१६४।३८; अथर्व० ९।१०।१६)

अमर जीवात्मा मरणधर्मा शरीरके साथ संयुक्त होता है। इसका कारण है स्वधा—अपनेको धारण करनेकी भावना। स्वधासे गृहीत हुआ जीव 'सु' अच्छी, किंतु 'अधा' नीची प्रकृतिके प्रपञ्चमें पड़ता है। प्राकृतिक वैभव देखनेमें आकर्षक है, पर उसका उपभोग निर्बलताका भी जनक है। जीव इस वैभवके उपभोगमें रुचि लेने लगता है, इसीलिये वह शक्तिहीनताका आखेट बनता है। मनुने (१२।३८) लिखा है कि "प्रकृतिके तमोगुणसे चिपटकर मानव 'कामी' बनता है, रजोगुणसे लिपटकर 'अर्थवान्' बनता है और सत्त्वगुणका आश्रय लेकर 'धार्मिक' बनता है।" काम और अर्थकी लोलुपता उसे नीचे गिराती है और पशु-पक्षी आदि-की योनियोंमें ले जाती है। काम और अर्थपर संयम उसे मानव-योनिमें ले आता है। धर्मका आचरण उसे पितर तथा देवयोनियोंकी ओर ले जाता है। 'काम और अर्थमें अनासक्त' व्यक्ति ही धर्मज्ञान प्राप्त करते हैं। धर्मकी जिज्ञासा वेदसे शान्त होती है। धर्मके जिज्ञासुओंके लिये श्रुतिसे बढ़कर अन्य कोई प्रमाण नहीं है। (२।१३) 'वेद ही परम प्रमाण है। वेद ही अखिल धर्मका मूल है।' अतः द्विजोंको, संस्कृत व्यक्तियोंको, विशेषतः ब्राह्मीवृत्तिवालोंको वेदका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये। यदि वे वेदको छोड़कर अन्यत्र श्रम करेंगे, तो पुनः शूद्रत्वको प्राप्त कर जायँगे।' (२।१६८)

धर्म क्या है? आचार ही प्रथम धर्म है। वेद और उसके अनुकूल स्मृति जिन विधि-निषेधोंका वर्णन करते हैं, उनमें विधिका स्वीकार तथा निषेधोंका परित्याग ही धर्मका पालन करना है। ये स्वीकार तथा परित्याग आचारमें प्रकट होने चाहिये। कथनीको करनीमें परिणत करना चाहिये। ज्ञानके अनुकूल आचरण करना ही धर्म है। यदि ज्ञान तथा आचरणमें वैपरीत्य रहा तो दम्भका रूप खड़ा हो जायगा। मनुष्य धार्मिक नहीं बन सकेगा। सदाचार या सच्चरित्रसे ही मानव धार्मिक बनता है। वाणी मात्रसे नहीं। रोम-रोमद्वारा सच्चरित्रकी ध्वनि निकलनी चाहिये; हमारे एक-एक आचरणद्वारा धर्मका जय-घोष होना चाहिये। धर्म व्याख्यान-व्यापार नहीं, आचार-अनुष्ठान है; जो वाणी ही नहीं, अङ्ग-अङ्गको प्रभावित करता है। हमारी समस्त चेष्टाओंमें धर्म प्रतिध्वनित होता है।

आचरण कर्म है। कर्म तीन प्रकारका हो सकता है—तामस, राजस तथा सात्त्विक। तामस कर्म हेय है; क्योंकि वह अधोगतिका कारण है। राजसपर नियन्त्रणकी आवश्यकता है। सात्त्विक कर्म ही उन्नयन करता है—ऊपर उठाता है[1]। वेद कहता है—'**उद्यानं ते पुरुष नावयानम्**—जीव! तुझे ऊपर उठना है, नीचे नहीं गिरना है। अधोगतिकी मार खाते-खाते तू अपने स्वत्वसे ही हाथ धो बैठा है। मानव-योनिमें आकर अब तो अपने स्वत्वको पहिचान; अपने घरकी ओर चल। इस पृथिवीकी पीठपर सवार हो जा और द्यौलोकका आधान करता हुआ अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जा।'

कर्म साधना है, तप है—ऐसा सभी साधक स्वीकार करते हैं। पर सत्कर्म क्या है, अपकर्म क्या है तथा कर्म, अकर्म और विकर्ममें परिस्थितियोंके प्रभावसे क्या और कैसा अन्तर पड़ता है, इस विषयमें कभी-कभी बड़े-बड़े कवि, ज्ञानी भी मोहित हो जाते हैं और निर्णय नहीं कर पाते। एक ही कर्म एक समयमें करणीय, परंतु दूसरे समयमें

१. ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥
(गीता १४।१८)

अकरणीय बन जाता है। साधारण मानवकी बुद्धि भ्रममें पड़ जाती है। वह कर्तव्य और अकर्तव्यमें भेद नहीं कर पाता। कर्मकी गति वस्तुतः गहन है, पर इतनी गहन नहीं कि हम उसका भेदन ही न कर सकें। मनुने विचिकित्साके समय श्रुति-स्मृति, सज्जनोंका आचार तथा आत्मप्रियताको कसौटी बनाया है। इस कसौटीकी विस्तृत व्याख्या हमारे 'जीवनदर्शन' ग्रन्थमें 'करणीय' शीर्षक निबन्धके अन्तर्गत मिलेगी। इसपर कसकर हम कर्मके खरे-खोटे होनेकी परीक्षा कर सकते हैं। यह कार्य भी यद्यपि आपाततः सरल नहीं है, फिर भी दिशा-संकेत तो है ही और प्रयत्नसाध्य भी है। तैत्तिरीय उपनिषद् भी कहती है—

'अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तिविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनो युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः।'

(शीक्षावल्ली अनुवाक ११। ३-४)

'यदि तुम्हें कर्म अथवा वृत्त (आचार) के सम्बन्धमें संदेह हो कि यह करणीय है या नहीं, अथवा वरणीय है या नहीं, तो इस विषयमें ज्ञानी सदाचारी ब्राह्मणोंके पास जाओ जो विचारशील हैं, उस कर्म तथा वृत्तसे परिचित हैं, सहृदय हैं और धर्म-परायण हैं; कर्म अथवा वृत्तके सम्बन्धमें जैसा इनका बर्ताव दिखायी दे, वैसा ही तुम भी करो।' जो व्यक्ति कुख्यात हैं, उनसे व्यवहार करनेमें भी इसी प्रकारके ब्राह्मणों-के आदर्शको प्रमाण समझो। व्यवहारसाध्यताके लिये यह कसौटी समाजके पास सुलभ है।

कर्म, अकर्म अथवा विकर्मका ज्ञान हो जानेपर भी आचरणका प्रश्न बना रहता है। अनेक बार जानते हुए भी मनुष्य संस्कारवश यथार्थ आचरण नहीं कर पाता। एक कर्मके करते-करते जो संस्कार बन गया है, वह आगामी

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥

(गीता ४

इस कर्म-जालमें फँसा हुआ जीव कभी उठ जाता है, कभी नीचे गिर जाता है; कभी भोगता है, कभी दुःखका भाजन बनता है; राजा बनता है, कभी रंककी स्थितिमें पहुँचता है; देवयोनि तो कभी पशुयोनि, कभी ब्राह्मण तो कभी कभी नागरिक तो कभी वन्य, कभी संस्कृत तो असभ्य, कभी बलवान् तो कभी निर्बल, कभी सुरु कभी कुरूप—न जाने कितनी विविध उच्चावच स्थिति प्राप्त करता रहता है। इन स्थितियोंके अनुभवने ही 'पुन सिद्धान्तको पुष्ट किया है।

लेखके प्रारम्भमें हमने जो मन्त्र उद्धृत किया है पुनर्जन्मके सिद्धान्तका समर्थक है। इस मन्त्रके अ अमर्त्य आत्मा मर्त्य शरीरमें आकर नाना प्रकारके भोगता है, विविध प्रकारके काम करता है, अनेक लो दृश्य देखता है और एक नहीं, अनेक प्रकारके धारण करता है। विविध योनियोंमें विविध प्रकारके शरी जिनसे विविध प्रकारके स्वभाव, गुण, वृत्तियाँ तथा ने प्रकट हो रही हैं। ये सब जीवात्माकी अपनी क हैं। शरीर दिखायी देते हैं, गुणों तथा वृत्तियोंका ज्ञान है; परंतु जिसकी यह अर्जित सम्पत्ति है, वह जीवात्मा दिखायी देता, जाननेमें भी नहीं आता।

जीवात्मा इस झमेलेमें क्यों पड़ता है? इसका प्र कारण नीचे लिखे मन्त्रमें वर्णित है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
...पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति

चला आता है। बौद्ध तथा जैन वेदोंको मान्यता नहीं देते, पर पुनर्जन्मका सिद्धान्त उनको भी स्वीकार है। चार्वाक मतवाले अवश्य भौतिकतावादी हैं। इस जन्म और इस लोकके अतिरिक्त वे न पुनर्जन्म मानते हैं, न किसी परलोककी सत्ता स्वीकार करते हैं। ईसाई तथा मुसल्मान भी पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं रखते। जर्मनीका प्रसिद्ध दार्शनिक एमैन्युल काण्ट ईसाई होते हुए भी आचारशास्त्रके आधारपर पुनर्जन्मको अप्रत्यक्षरूपसे मान्यता अवश्य दे गया। अब तो यूरोपीय देशोंमें कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद आदिके अध्ययनमें विशेष रुचि उत्पन्न हो रही है। कर्मसिद्धान्तका समाधान जैसा पुनर्जन्म करता है, वैसा अन्य किसी वादद्वारा हो भी नहीं सकता। ऋषियोंने तो इसका साक्षात् दर्शन कर लिया था। इसीलिये इतनी गहनतापर स्पष्टताके साथ वे इसका प्रतिपादन कर सके।

एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोर्लोकं यदृच्छया ।
सनन्दनादयो जग्मुश्चरन्तो भुवनत्रयम् ॥
पञ्चषड्ढायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ।
दिग्वाससः शिशून् मत्वा द्वाःस्थौ तान् प्रत्यषेधताम्॥
अशपन् कुपिता एवं युवां वासं न चार्हथः ।
रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ।
पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमाश्वतः ॥

- (श्रीमद्भागवत ७ । १ । ३५-३७)

ब्रह्माने सनन्दनादि ऋषियोंको सृष्टिके आरम्भमें ही अपने मनसे उत्पन्न किया था । अतः ये थे तो पूर्वजोंके भी पूर्वज; परंतु तपोबलसे ये लोग ५-६ वर्षके बालकके समान ही रहते थे । ये लोग कपड़ा नहीं पहनते थे । नंगे रहते थे । अतः इनको न पहचाननेके कारण नंगे साधारण बालक समझकर भगवान्से मिलनेके लिये जानेसे रोक दिया । फिर क्या था, जैसे बच्चेको इच्छापूर्ति-व्याघात होनेसे क्रोध आ जाता है उसी तरह इनको भी क्रोध आ गया ।

यद्यपि ये लोग सिद्धपुरुष थे, तो भी भगवान्की मायाने इनकी बुद्धिको ढक दिया; क्योंकि भगवान्को इनके द्वारा शाप दिलाकर इस बातको बतलाना था कि 'बिना सोचे-समझे किसी सज्जन पुरुषका अनादर नहीं करना चाहिये । अनादर करनेसे उसका दुष्परिणाम अवश्य भोगना पड़ता है ।' दयालु हृदयवाले ऋषियोंने, जब उनको नीचे गिरते हुए देखा, तब उनके मनमें दया आयी और उन लोगोंने उनसे कहा—

एवं शप्तौ स्वभवनात् पतन्तौ तैः कृपालुभिः ।
प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । १ । ३८)

अर्थात् 'जब उनको अपने स्थानसे नीचेकी ओर गिरते

भूत-प्रेत आदिपर श्रद्धा रखता है और उन्हींकी सेवा करता है । गीतामें लिखा भी है—

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥

(१७ । ४)

'कल्याण'में बहुत बार पूर्वजन्मकी बातोंके स्मरण रहनेवालों की कथाएँ निकल चुकी हैं और वे सत्य प्रमाणित हो चुकी हैं ।

इसी पुनर्जन्मके आधारपर कर्मकाण्डमें श्राद्धादिका विधान किया गया है । पुत्रादिद्वारा श्राद्धादिमें दिये गये पदार्थ पितरोंको प्राप्त होते हैं । इसपर बहुतोंको संदेह होता है कि किसीको मालूम तो है नहीं, पूर्वज लोग अपने कर्मके अनुसार किस योनिमें उत्पन्न हुए हैं । फिर उन योनियोंमें उन्हें यहाँ दिये हुए पदार्थ कैसे प्राप्त होंगे; क्योंकि जिस योनिमें हैं, उनके लाभदायक पदार्थ हम देते नहीं हैं और जो भी वस्तु ब्राह्मणोंको देते हैं, वे यहीं रह जाती हैं ।

परंतु ऐसा संदेह व्यर्थ है; क्योंकि पितृगण जिस योनिमें रहते हैं उनके सुख पहुँचानेके योग्य वस्तुमें परिणत होकर उन्हें वे वस्तुएँ प्राप्त होती हैं ।

श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धमें जडभरतकी कथा आती है कि बहुत दिनोंतक तपस्या करनेपर भी एक मृगके बच्चेमें उनकी आसक्ति हो गयी थी और उसीके विषयमें चिन्ता करते-करते उन्होंने अपना शरीरत्याग किया, इससे उनको एक जन्म मृगजातिमें ग्रहण करना पड़ा । गीता(८।६) में भगवान्की उक्ति भी है कि 'जिस प्राणी या पदार्थका स्मरण करते हुए मनुष्य शरीर त्याग करता है, उसी पदार्थ या प्राणीको दूसरे जन्ममें प्राप्त करता है ।' और भी लिखा है— 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।' मन ही जबतक

पुनर्जन्म

(लेखक—श्रीशिशिरकुमार सेन एम्०ए०, बी० एल्०, सम्पादक 'ट्रुथ')

एक सनातनधर्म ही संसारभरमें ऐसा धर्म है जो कर्मफल अथवा कर्मके अविनाशीस्वरूपसे उद्भूत एक स्वाभाविक सिद्धान्त 'जन्मों तथा अवसानोंके पुनरावर्तन'के विषयमें पूरी जानकारी रखता तथा प्रदान करता है। संसारके अन्य धर्म-मत कर्मके अक्षय स्वरूपको तो मानते हैं; परंतु उसे मानते हैं केवल मृत्युके उपरान्त ही, न कि जन्मके पहले, जो तर्कसंगत नहीं है। यदि मृत्युके उपरान्त पुरस्कार अथवा दण्ड देनेके लिये कर्मका अविनाशी होना आवश्यक है तो जन्ममें दिखायी देनेवाली विषमताके स्पष्टीकरणके लिये क्या यह दस गुना अधिक आवश्यक नहीं है? संसारके धर्मोंको इसका उत्तर देना होगा।

लब्धा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत।
यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा॥

'अव्यक्त कारणसे जीवकी सृष्टि होती है, जो बादमें अव्यक्त हो जाती है। इस संसारमें एक सजीव प्राणीका जन्म अदृश्य कर्मसे होता है।' इस जीवनमें प्रकट होकर अपने कर्मके प्रभावसे पुनः मृत्युको प्राप्त करके प्रच्छन्न हो जाता है। महान् शक्तिशाली इस कर्मसे ही प्रेरित होकर एक जीव ऐसे परिवारके माता-पिताके यहाँ जन्म-ग्रहण करता है, जहाँ वह अपने कर्मका अनुभव कर सके।

परंतु मूर्ख पापियोंके लिये अपने पापमार्गको साफ करनेकी चिन्तामें इस कर्मफलको अमान्य करनेके सिवा दूसरा चारा दिखायी नहीं देता, जिसे प्रायश्चित्तके उद्देश्यसे भोगना ही पड़ता है। इसीलिये जन्मों तथा अवसानोंके कभी समाप्त न होनेवाले चक्करको अस्वीकार करना उन्हें आवश्यक हो जाता है। परंतु लगभग जीवनके हर मोड़पर जन्म तथा मृत्यु मनुष्यको घूरते हुए दिखायी देते हैं। अनेक उदाहरण ऐसे हैं, जो असंदिग्धरूपसे पूर्वजन्मोंके अस्तित्वको प्रमाणित करते हैं। उनके सम्बन्धमें अपनी अनभिज्ञता व्यक्त करके उनकी व्याख्या करनेकी चेष्टा करना एक दुराग्रह मात्र होगा और उन्हें पागलपनकी

अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः।
आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः॥
सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति।
अथो अहं जनसङ्गादसङ्गो विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि॥
(श्रीमद्भा० ५। १२। १४-१५)

'हे राजन्! पूर्वजन्ममें मैं भरत नामका राजा था। ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके विषयोंसे विरक्त होकर भगवान्‌की ही आराधनामें लगा रहता था, तो भी एक मृगमें आसक्ति हो जानेसे मुझे परमार्थसे भ्रष्ट होकर अगले जन्ममें मृग बनना पड़ा; किंतु भगवान् श्रीकृष्णजीकी आराधनाके प्रभावसे उस मृगयोनिमें भी मेरे पूर्वजन्मकी स्मृति लुप्त नहीं हुई। इसीसे अब मैं जन-संसर्गसे डरकर सर्वदा असङ्गभावसे गुप्तरूपसे विचरता रहता हूँ।'

हमारे पुराण, स्मृतियाँ तथा महाभारत पुनर्जन्मकी घटनाओंसे भरे पड़े हैं। उनकी प्राचीनताके कारण उन्हें एक पौराणिक गाथामात्रका रंग दिया जा सकता है। इसीलिये हमारे द्वारा समय-समयपर संगृहीत की गयी हालकी कुछ घटनाओंको हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

(१) बर्मी भाषामें बोलनेवाला अंग्रेजी सैनिक—

लन्दनसे प्रकाशित होनेवाले 'सण्डे एक्सप्रेस' नामक समाचारपत्रके माध्यमसे सन् १९३५ ई०में जार्ज कस्टर (George Castor) ने अपने कुछ गत अनुभवोंका वर्णन किया है। वह एक सैनिक था और उसका जन्म १८८९ ई०में हुआ था। अपने बचपनसे ही वह निद्रामें बोला करता था और उसके ऐसा बोलनेकी भाषा शुद्ध बर्मा होती थी। १९०७ ई०में वह सेनामें भरती हुआ। सन् १९०९ में २० वर्षकी अवस्थामें उसका स्थानान्तरण मेन्यो (बर्मा) में हो गया। वहाँ उसे ऐसा लगा कि वह उस भूमिसे भलीभाँति परिचित है, वहाँ रहा है, बर्मी भाषा बोलता रहा है और इरावदीको जानता है। उसने अपने

'मेरी यह दृढ़ आस्था थी कि दक्षिण अमरीकाके कुछ ोंसे मैं पूर्वपरिचित हूँ। मुझे यह बार-बार स्वप्न आया ता था कि मैं उष्णकटिबंधके जंगली प्रदेशमें एक वेषकके रूपमें अकेला घूम रहा था कि सहसा काले रंगके ोंका एक झुंड प्रकट हुआ, जिनसे मैंने उनकी भाषामें ातचीत की, परंतु किसी कारणसे वे क्रुद्ध हो गये और के नेताने मुझे मार डाला। अन्ततोगत्वा मैं रायलमैन ाजपर पाकशालाका भण्डारी बनकर दक्षिण अमरीका ा। वहाँ मुझे अज्ञात गलियों और भवनोंके नामोंका क-ठीक पूर्वाभास होने लगा और रियो डे जेनेरो सान्टोज ा बेनोस आइरेस (Rio de Janeiro, Santos id Buenos Aires) में घूमते समय मुझे ऐसा अनुभव रहा था कि मैं निश्चित ही इन स्थानोंमें पैदल घूम का हूँ। एक समुद्री यात्रामें सेन्टोसमें हमारे जहाजपर क डैनिश (Danish) लेखक सवार हुआ। उसने झे एक दिन अपने कक्षमें बुलाया और कहा—

'मिस्टर भण्डारी! आप एक विचित्र आकस्मिक ंयोगके शिकार प्रतीत होते हैं, अथवा इससे भी कहीं धिक आश्चर्यजनक कोई और बात हो सकती है।' इतना कहकर उसने मुझे एक नरकंकाल दिखाया, जिसे देखकर मैं सिहर उठा; क्योंकि उसमें अपनी आकृतिकी ठीक प्रतिकृति मुझे स्पष्ट दिखायी दे रही थी। उस खोपड़ीको उसने अमेज़नके मानवीय सिरोंका शिकार करनेवाले शिकारियोंसे प्राप्त किया था और एक गुप्त प्रक्रियासे उसके स्वाभाविक आकारसे उसे आधा कर दिया था। (Truth, Vol. IV, Page 394)

(५) वाजितपुर (फरीदपुर) के डाक-विभागके लिपिकका लड़का (एडवान्स १५ । ७ । ३६)

वाजितपुरके डाक-विभागके लिपिक (Clerk) का तीन वर्षका लड़का एक दिन चिल्लाने लगा तथा आग्रह करने लगा कि मैं अपने घर जाऊँगा। प्रश्न करनेपर उसने उत्तर दिया—

'मैं चटगाँवके फाजिलपुर कस्बेका निवासी हूँ। लक्षम रेलवे स्टेशनसे एक सड़क मेरे गाँवको जाती है। वहाँ मेरे तीन पुत्र तथा चार पुत्रियाँ हैं। मेरे घरसे मेहरकी कालीबाड़ी बहुत अधिक दूर नहीं है। मेहरकी कालीबाड़ीमें ही सर्वानन्दने मुक्तिका अनुभव किया है। वहाँ कालीकी कोई प्रतिमा नहीं है। एक विशाल वटवृक्ष है, जिसकी जड़ोंपर ही पूजा की जाती है। वहींपर एक बहुत ऊँचा खजूरका पेड़ भी है।'

लड़केका बाप न तो कभी चटगाँव गया था और न ही लक्षम रेलवे स्टेशन अथवा मेहरकी कालीबाड़ी देखी थी। कभी-कभी लड़का ऐसे गीत गाया करता है, जिन्हें उसने कभी सुना ही नहीं। (Truth, Vol. V, Page 264)

(६) हंगरीकी एक लड़कीका अपने माता-पिताका विस्मरण

यह घटना १९३३ ई० की है, जब बुडापेस्टमें हंगरीके एक इंजीनियरकी १५ वर्षकी लड़की मृत्युशय्यापर पड़ी थी। प्रत्यक्षतः उसकी मृत्यु हो गयी; परंतु थोड़ी देर बाद वह कुछ ठीक होने लगी और हंगरीकी अपनी मातृभाषा-को पूर्णतया भूलकर स्पेनकी भाषामें बातचीत करने लगी। वह अपने माता-पितातकको नहीं पहचान पायी, जिसके सम्बन्धमें वह कहने लगी—

'ये सम्भ्रान्त लोग मेरे प्रति अत्यन्त दयालुताका व्यवहार कर रहे हैं; परंतु इनका यह कथन मुझे मान्य नहीं है कि ये मेरे माता-पिता हैं।'

मेरा नाम सेनोरे ल्युसिड अल्टोरेज डी सैलवियो (Senore Lucid Altoreze de Salvio) है। मैं मैड्रिडमें एक कारीगरकी पत्नी थी और मेरे १४ बच्चे थे। मैं कुछ बीमार थी और मेरी अवस्था ४० वर्षकी थी। कुछ दिन पूर्व मैं मर गयी थी, अथवा कम-से-कम मैं यह समझती थी कि मैं मर रही हूँ। अब मैं इस अपरिचित देशमें ठीक हो गयी हूँ।

वह अब स्पेनी भाषाके गीत गा रही है और विशिष्ट स्पेनी पकवान बना रही है तथा मैड्रिडका बड़ा विस्तृत और रोचक वर्णन कर रही है, जहाँ वह आजतक कभी गयी नहीं। (Truth, Vol. III, Page 135)

क्या ये सब घटनाएँ पुनर्जन्मके प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं? क्या ये जन्म और मरणके चक्रका उच्च स्वरसे उद्घोष नहीं करतीं?

अभी-अभीकी कुछ घटनाओंमें हम १५ । ६ । ६८ के 'अमृतबाजार पत्रिका' में प्रकाशित कोलम्बोकी इस घटना-पर ध्यान दें—

एक अमरीकी मनोविज्ञान-चिकित्सक इस समय सीलोनमें पुनर्जन्मके सिद्धान्तके समर्थनमें तथ्योंका संग्रह करनेके उद्देश्यसे आया हुआ है। इसने पुनर्जन्मके सम्बन्धमें पहले ही एक पुस्तक प्रकाशित की है।

विरजीनिया विश्वविद्यालयके मनोविज्ञानके चिकित्सा-विभागके प्राध्यापक इयान स्टीवेन्सन (Ian Stevenson) इस समय छः वर्षकी एक बालिकाकी घटनाकी जाँच-पड़ताल कर रहे हैं। उस बालिकाको यह स्मरण है कि अपने पूर्वजन्ममें वह एक सम्पन्न जौहरी-परिवारमें जन्मी थी। उसे इस बातकी भी स्मृति है कि उसका पि कोलम्बोके सेन्ट ब्रिजिट्स कानवेन्ट (St. Bri Convent) में पढ़नेके लिये ले गया था, जह तीसरी कक्षातक शिक्षा पायी थी। जब वह तीसरी पढ़ती थी, तभी एक अस्पतालमें उसकी मृत्यु उसे स्मृति है।

प्राध्यापक स्टीवेन्सन 'ट्वेण्टी केसेज इन सं रिइनकार्नेशन' (Twenty Cases in Sugge Reincarnation) पुस्तकके लेखक हैं।

परलोक-तत्त्व

(लेखक—श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय एम्० ए०)

मुमूर्षु व्यक्तिकी पहले वाक्-इन्द्रिय मनमें विलीन हो जाती है। उस समय वह मन-ही-मन विचार कर सकता है, परंतु बोल नहीं सकता। उसके बाद चक्षु-कर्ण आदि इन्द्रियाँ भी मनमें विलीन हो जाती हैं। उस समय वह देख नहीं पाता, सुन नहीं पाता। उसके बाद मन प्राणके भीतर विलीन हो जाता है, तब वह कुछ समझ नहीं पाता, केवल श्वास-प्रश्वास चलता है। प्राण जीवके भीतर अवस्थान करता है। जीव सूक्ष्म क्षिति, जल, तेज, वायु और आकाश-(अर्थात् पञ्च तन्मात्राओं) में अवस्थान करता है। हृदयदेशसे १०१ नाड़ियाँ निकली हैं। मृत्युके समय जीव एक नाड़ीमें प्रवेश करके देह त्याग करता है। मोक्ष प्राप्त करनेवाला जीव जिस नाड़ीमें प्रवेश करता है, वह नाड़ी हृदयसे मस्तकतक फैली है। जो मोक्ष प्राप्त नहीं करते, वे जीव किसी दूसरी नाड़ीमें प्रवेश करते हैं। जीव जबतक नाड़ीमें प्रवेश नहीं करता, तबतक विद्वान् और अविद्वान्की गति एक ही तरहकी होती है। उसके बाद विभिन्न प्रकारकी गति हो जाती है। श्रीस्वामी शंकराचार्यजी कहते हैं कि 'जो लोग ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति करते हैं, वे मृत्युके बाद देह ग्रहण नहीं करते, बल्कि मृत्यु होते ही उनको मोक्ष प्राप्त हो जाता है।' श्रीरामानुज स्वामी कहते हैं कि 'ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति होनेपर भी जीव देवयान पथमें गमन करके पश्चात् ब्रह्मको प्राप्त होता है। मुक्त हो जाता है।' श्रीस्वामी शंकराचार्य कहते हैं कि 'जो लोग सगुण ब्रह्मकी उपासना करते हैं, वे ही देवयान पथमें जाकर सगुण ब्रह्मको प्राप्त होते हैं; और जो लोग निर्गुण ब्रह्मकी उपासन ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति करते हैं, वे लोग देवयान पथ जाते। अग्निके संयोगसे जब स्थूलशरीर ध्वंस ह है, उस समय सूक्ष्मशरीर ध्वंस नहीं होता। मृत्यु देहका कोई स्थान उष्णरूपमें अनुभव होता है अ स्थानसे सूक्ष्मशरीर देह-त्याग करता है, वही स्था जान पड़ता है।

जिसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया है, उसकी मृत्यु या दक्षिणायनमें होनेपर भी उसे मोक्षकी प्राप्ति हो भीष्मपितामहने जो उत्तरायणकी प्रतीक्षा की थी, आचारका पालन करनेके लिये तथा यह दिखलाने की थी कि वे 'स्वेच्छामृत्यु' हैं। गीतामें श्रीभगवान्ने कह

> अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्
> तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः
> (८।

इसमें आये हुए अग्नि और ज्योति—ये दो काल या समयको लक्ष्य नहीं करते। ये अग्निदेवता ज्योतिके देवताको लक्ष्य करते हैं। जो देवयान पथमें हैं, उनको ये दोनों देवता अपने अधिकृत स्थानके ले जाते हैं। उसके बाद 'अहः' अथवा दिवसके अ देवता ले जाते हैं। उसके बाद शुक्लपक्षके देवता उत्तरायणके देवता ले जाते हैं।

उपनिषदोंके विभिन्न वाक्योंकी आलोचना

श्रीरामानुज स्वामीने देवयान पथका इस प्रकार वर्णन किया है—(१) अग्निदेवताका अधिकृत देश (२) दिवस-देवता (३) शुक्लपक्ष (४) उत्तरायण (५) वत्सर (६) वायु और (७) आदित्य। देवयान पथ—इन सब देवताओंके अधिकृत देशोंमें होकर जाता है। उसके बाद (८) चन्द्र (९) विद्युत् (१०) वरुण (११) इन्द्र (१२) प्रजापति (१३) ब्रह्म। जो लोग ईश्वरकी पूजा करते हैं, वे इस पथसे जाते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता; परंतु जो लोग ईश्वरकी पूजा नहीं करते, बल्कि कूप-तड़ाग-निर्माण तथा दान आदि पुण्यकर्म करते हैं, वे इस पथसे नहीं जाते। वे पितृयाण पथसे जाते हैं और उनका पुनर्जन्म होता है। पितृयाण पथसे भी चन्द्रलोक जाना पड़ता है; किंतु मार्ग भिन्न है। उनका पथ धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन है—अर्थात् ये सब देवता उनको अपने अधिकृत स्थानके मध्यमें ले जाते हैं। चन्द्रलोकसे वे लोग मेघमें उतरते हैं, मेघसे वृष्टिके साथ पृथिवीपर आते हैं, पृथिवीपर शस्यके भीतर प्रवेश करते हैं, उसके बाद शस्यको खानेवाले पुरुषके देहमें प्रवेश करते हैं। पुरुषके देहसे उसके शुक्रके साथ रमणीके गर्भमें प्रवेश करते हैं। तत्पश्चात् पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार मनुष्य या पशुदेहको प्राप्त होते हैं। चन्द्र कभी तो खूब गरम रहते हैं और कभी अतिरिक्त शीतल हो जाते हैं। वहाँ स्थूलशरीरयुक्त मनुष्य रह नहीं सकता, परंतु सूक्ष्मदेह, जो परलोकमें जाता है, वह चन्द्रमें रह सकता है।

जो ईश्वरकी पूजा नहीं करते, परोपकार भी नहीं करते; जो केवल इन्द्रिय-सुख-भोगमें जीवन व्यतीत करते हैं, वे लोग न तो देवयान पथसे जाते हैं और न पितृयाण पथसे। वे कीट-पतङ्ग होकर यहीं बारंबार जन्मते-मरते रहते हैं।

जो लोग अधिक पाप करते हैं, वे मृत्युके बाद नरकमें जाते हैं। नरकोंका वर्णन पुराणोंमें मिलता है। पापोंके तारतम्यके अनुसार नरकमें कम या अधिक यन्त्रणा भोगनी पड़ती है तथा कम या अधिक समयतक रहना पड़ता है। किंतु किसीको भी नरकमें सदा नहीं रहना पड़ता। नरकमें दुःख-भोगके द्वारा पाप-क्षय हो जानेपर पापी पुनः मनुष्यदेहको प्राप्त होकर तथा सत्-जीवन यापन करके उन्नति प्राप्त करनेका सुअवसर पाता है। ईसाई-धर्मकी अनन्त स्वर्ग तथा अनन्त नरककी कल्पना युक्तिपूर्ण नहीं है। पुनर्जन्म माने बिना इस प्रकारकी कल्पना अनिवार्य हो जाती है। विशेषरूपसे ईसाई-मतकी यह कल्पना कि जो लोग यीशु खीष्टमें (ईसामें) विश्वास करेंगे, उन्हें अनन्त स्वर्ग मिलेगा और जो विश्वास नहीं करेंगे, उनको अनन्त नरक मिलेगा—अत्यन्त असंतोषप्रद है। हिंदूधर्मका सिद्धान्त यह है कि विश्वास चाहे जिसमें करो, जो आदमी सत्कर्म करेगा, उसको स्वर्ग मिलेगा और जो असत्कर्म करेगा, उसको नरक-वास करना पड़ेगा तथा कर्मके गुरुत्वके अनुसार स्वर्ग या नरकमें अल्प या दीर्घकालतक रहना पड़ेगा—यह सिद्धान्त पूर्णतया युक्तियुक्त है। ईसाई और मुसल्मानोंके धर्मकी एक और असंतोषप्रद कल्पना यह है कि 'मृत्युके बाद आत्मा देहके साथ कब्रमें रहेगी। प्रलयके शेष दिन ईशु बाँसुरी बजायेंगे और उसे सुनकर सब आत्माएँ अपने-अपने देहके साथ कब्रसे उठकर आयेंगी।' हिंदूधर्मका सिद्धान्त यह है कि 'मृत्युके बाद इस देहके साथ आत्माका सम्बन्ध नहीं रहता, इसलिये जहाँतक हो सके, शीघ्र देहको अग्निसे दग्ध कर देना चाहिये। श्राद्धके समय जो अन्न-पान आदि निवेदित होते हैं, वे मन्त्र और श्रद्धाके प्रभावसे परलोकवासी आत्माके पास पहुँचते हैं, जैसे पोस्ट आफिसमें रुपया जमा करके उसे उद्दिष्ट व्यक्तिके पास भेजा जाता है। वह यदि पुण्यवान् व्यक्ति होता है तो वह श्राद्धके समय वहाँ अवस्थान करता है। यदि उसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति हो गयी होती है तो वह मनुष्य या पशु—चाहे जिस योनिमें जन्म ग्रहण करे, तदुपयोगी अन्नके रूपमें श्राद्धका अन्न उसके पास पहुँच जायगा।'

किस पुण्यसे कौनसे श्रेष्ठ फल या सुखकी प्राप्ति होती है

दानाद् भोगमवाप्नोति सौख्यं तीर्थस्य सेवया। सुभाषणात् मृतो यस्तु विद्वांश्च धर्मवित्तमः॥

(गरुडपुराण—२।१४।१८)

दान करनेवाला प्राणी परलोक एवं (अगले) पुनर्जन्ममें अनेक भोगोंको प्राप्त करता है, तीर्थसेवन करनेवाला प्राणी सुख पाता है और मीठा तथा विचारकर सुखदायक वाणी बोलनेवाला मनुष्य अगले जन्मोंमें बड़ा विद्वान् एवं धर्मके रहस्योंको जाननेवाला होता है।

परलोक, पुनर्जन्म और मोक्षतत्त्व

(लेखक—डा० श्रीनीरजाकान्त चौधरी, एम्० ए०, एल्-एल० बी०, पी-एच्० डी०)

गतागतेन श्रान्तोऽस्मि दीर्घसंसारवर्त्मसु ।
पुनर्नागन्तुमिच्छामि त्राहि मां मधुसूदन ॥

(श्रीशुकविरचित द्वादशाक्षरस्तोत्र)

'इस दीर्घ संसार पथमें आवागमन करते-करते (बारंबार जन्म-मृत्युको प्राप्त करते) मैं परिश्रान्त हो गया हूँ। अब फिर यहाँ आना नहीं चाहता। हे मधुसूदन! मेरी रक्षा करो।'

मनुष्य मरकर कहाँ जाता है? क्या परलोक है? इस रहस्यका उत्तर पानेके लिये आदिकालसे सब देशोंमें मनुष्य चेष्टा करता आ रहा है। पर्देके पीछे क्या है, यह जाननेके लिये प्राणपणसे अनवरत प्रयास कर रहा है। स्थानाभावके कारण संक्षेपमें परलोकवासी आत्माके दर्शनके विषयमें कुछ सत्य घटनाएँ यहाँ लिखी जाती हैं।

परलोक सत्य है, विदेही आत्माका दर्शन

(१) १९३३ ई०के ८ अगस्तको अपराह्ण-कालमें मध्यप्रदेश नरसिंहपुरमें बंगलेके बरामदेमें खाटपर सोयी हुई अपनी बीमार पत्नीके पास मैं बैठा था। अचानक वह चिल्ला उठी—'भगवान्‌को पुकारो, वे मेरी रक्षा करें।' पश्चात् उसने बतलाया कि 'बरामदेके ठीक बगलमें आँगनमें खड़े-खड़े तीन ब्राह्मण न जाने क्या कह रहे थे। आकृति देखनेसे जान पड़ता था कि वे मेरे परलोकवासी तीनों जेठ थे।' ठीक एक महीनेके बाद ८ सितम्बरको मेरी पत्नीका स्वर्गवास हो गया। जान पड़ता है वे लोग उसको इस विषयमें कुछ बतलानेकी चेष्टा कर रहे थे। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वे लोग मेरे दृष्टिगोचर नहीं हुए थे।

(२) १९४७ ई०के जुलाई महीनेमें मेरे पुत्र श्रीप्रणवकान्त (२१ वर्ष) अपने मामाके घर बागछी जमशेरपुर (जिला नदिया, पश्चिम बंग) गाँवमें दो तल्लेपर मेरे बगलमें सो रहे थे। वे प्रतिदिन रातमें एक वृद्ध आदमीको देखते थे। उनके बड़े-बड़े केश और दाढ़ी-मूँछ थी। वे मसहरीके बगलमें घूमते रहते थे। वे अशरीरी आत्मा कलकत्ताके हमारे निवासस्थानमें भी इसके बाद इसी प्रकार कुछ दिनोंतक उनको दिखलायी देते रहे। परंतु मैं कुछ भी नहीं देख पाता था।

(३) मेरे परम मित्र रायबहादुर परलोकवासी मनोमोहन लङ्गर एक निष्ठावान् काश्मीरी ब्राह्मण थे। वे महाराजा प्रतापसिंहके समय काश्मीरके गवर्नर रहे। पश्चात् झालावाड़ राज्यके दीवान-पदपर रहे। तीर्थराज प्रयागमें १९५४ ई०में कुम्भके अवसरपर दिनमें उन्होंने अपनी परलोकगत पत्नीको अपने साथ संगममें स्नान करते देखा था। कुछ दिनों बाद इन्दौरमें उन्होंने यह बात मुझसे कही थी।

(४) श्रीयुत श······एक उच्चपदस्थ रेल कर्मचारी हैं। पत्नीके परलोक-गमनके कुछ महीने बाद उन्होंने गयाधाममें अपनी पत्नीके नामसे पिण्डदान किया, परंतु उनके मनमें यह खटका बना रहा कि सपिण्डीकरणके पूर्व इस प्रकारका पिण्डदान कोई फल प्रदान करेगा या नहीं। कलकत्ता लौटते समय वे ट्रेनमें प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें सोये हुए थे। अचानक मानो किसीके जगानेपर देखते क्या हैं कि उनकी स्त्री, जिस वेषमें मृत्यु हुई थी, ठीक उसी रूपमें सामने खड़ी है और 'तुम चिन्ता मत करो, मेरा उद्धार हो गया है'—कहकर अन्तर्धान हो गयी!

यमदूत, यम और यमलोक सत्य है

यमदूत-दर्शन। मनुष्य मरनेके बाद फिर शरीरमें लौटकर कहते सुना गया है कि 'यमलोकमें मुझे ले गये थे, यमराजने कहा कि भूल हो गयी है और मुझे लौटा दिया है।' इस प्रकारकी कई सत्य घटनाएँ लेखकको ज्ञात हैं। विस्तार-भयसे उनका वर्णन नहीं किया जाता है।

परलोक सत्य है। यमराज भी हैं और यमलोक भी है, इसमें संदेह नहीं है। कठोपनिषद्‌में नचिकेता और यमराजके साक्षात्कारका वर्णन है। ऋग्वेदमें यम वैवस्वत बहुत-से मन्त्र हैं। ब्रह्मसूत्र (३ । १ । १३–१६) में यम यमलोक, यमयातना तथा रौरव आदि सात नरकोंका उल्लेख है। यहाँतक कि श्रीशंकराचार्यने भी अपने भाष्यमें चित्रगुप्त आदि यमके कर्मचारीके विषयमें स्मृति-पुराण आदि कथाओंको सत्य माना है।

जन्मान्तर और कर्मफलवाद

जन्मान्तरवाद वैदिक सनातनधर्मका मूल सिद्धा

है। जीव अपने किये हुए कर्म-प्रारब्धके अनुसार इस जन्ममें सुख-दुःख भोग करता है। मृत्युके बाद पाप और पुण्यके वश नरककी यन्त्रणा या स्वर्गका सुख भोगनेके पश्चात् संचित (अवशिष्ट) कर्मफलके भोगके लिये फिर संसारमें आकर विभिन्न योनियोंमें जन्म लेता है। जड देहमें बारंबार रोग-शोक, जरा-मृत्यु, सुख-दुःखकी शृङ्खलामें आबद्ध होकर आवागमनके चक्रमें भटका करता है। इससे त्राण पानेका एकमात्र उपाय है—वर्णाश्रम-धर्मको मानकर अपने-अपने अधिकारके अनुसार निष्कामभावसे शास्त्र-निर्दिष्ट मार्गसे नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मोंको प्रवाह-पतितवत् करते जाना। इससे पाप-पुण्य, सुकृत-दुष्कृतका अतिक्रमण करके, भगवद्-दर्शन प्राप्त कर जीव अमृतका अधिकारी हो जाता है। संसारके और किसी धर्ममें क्रम-मुक्तिका इस प्रकारका उपाय नहीं है। भारत और वर्णाश्रमी भारती-जातिसे आबाद द्वीपों तथा बृहत्तर भारतको छोड़कर अन्य किसी भी देशमें मोक्षकी कल्पना भी नहीं थी। हम इस लेखमें केवल सेमिटिक मतकी संक्षेपमें आलोचना करेंगे।

सेमिटिक एकजन्मवाद

सेमिटिक (Semitic) अर्थात् यहूदी, ईसाई और मुस्लिम मतकी कुछ विशेषताएँ यहाँ संक्षेपमें दिखलायी जाती हैं।

(१) यहूदी पुराण (Torah और Old Testament) या शास्त्रमें परलोकका कोई उल्लेख नहीं है। इस जन्मके कृतकर्मोंका फलभोग इसी जन्ममें होता है।

(२) मनुष्यजातिके पुरुषके सिवा अन्य किसी जीवकी, यहाँतक कि नारीकी भी आत्मा नहीं होती। मनुष्यका इस लोकमें केवल एक बार जन्म होता है। सर्वव्यापी ब्रह्मकी कोई कल्पना भी नहीं है। यहूदीके 'यहोवा' (Yahveh or Jehovah), ईसाईके 'गाड' (God) और मुस्लिमके 'अल्लाह' (Allah) 'ईश्वर' हैं। वे पुरुष हैं और स्वर्गमें रहते हैं। उनका अवतार नहीं होता। स्वर्गमें और कोई देवता नहीं और न कोई देवी है।

(३) यहूदी-मतसे ईश्वरके प्रेरित दूत मसीहा (Messiah) भविष्यमें पृथ्वीपर आवेंगे। ईसाइयोंके मतसे वह मसीहा ईसा (Jesus) हैं। वे ईश्वरके पुत्र हैं और पृथ्वीपर अवतीर्ण हो गये हैं। मुस्लिमके मतसे महम्मद ईश्वरके दूत (अल्लाहके पैगम्बर) हैं।

ईसाई-समाजमें, रोमन कैथलिक और पूर्वदेशीय ग्रीक च आदिमें ईसाकी कुमारी माता (Virgin) मेरी (Mar की उपासना होती है। परंतु 'मेरी' ईश्वरकी महाश या महामाया नहीं हैं। उनकी पूजा भी पहले नहीं थी पाँचवीं शताब्दीमें मिश्रके आइसिस् (Isis) ३ ग्रीक आर्तेमिस् (Artemis) आदि देवीकी उपासन अनुकरणमें पहले-पहल प्रवर्तित हुई। प्रोटेस्टैण्ट ३ दूसरे ईसाई देवीकी उपासना नहीं करते।[2]

मुस्लिम-स्वर्गमें कोई देवी नहीं है। जान पड़ता कि किसी स्त्रीको वहाँ प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।

(४) ईसाई और मुस्लिमके मतसे आत्मा और देह सम्बन्ध प्रायः अविच्छेद्य है। इसी कारण मिश्रदेशके 'ममी अनुकरणमें मृतदेहको दाह न करके शव-देहके उपर आकारकी शव-पेटिका कफन (Coffin) में सुरक्षित

---

1. The council of Ephesus, in that year (4 sanctioned or Mary the title 'Mother of G Gradually the tenderest features of Asterte, byb Artemis, Diana and Isis were gathered together in worship of Mary. (Dr. Durant, The Age of Fa P. P. 745- 46.)

'Statues of Horus and Isis were renamed J and Mary.' (Ibid. P. 75)

एफिसस् नगरके धर्मपरिषद्में ४३१ ई० में मेरीके 'ईश्वरकी जननी' उपाधि अनुमोदित हुई थी। क्रमशः आस्तर्त, सिि आर्तेमिस, दायना और आइसिस देवीके कोमलतम वैशिष्ट्य मे उपासनाके अङ्गीभूत हो गये।' 'होरस और आइसिसकी प्रतिमा ईसा और मेरी नवीन नाम दिया गया।'

The identification of Mary with Isis, and elevation to a rank quasi- divine, × × × was also a natural step."

—(H. G. Wells, The Outline of History, 368—69)

'आइसिस देवीके साथ मेरीका एकीकरण तथा उनका देवीकी मर्यादामें उन्नयन भी एक बहुत ही स्वाभाविक परिणति थ

2. "Note the absence of mother goddes in such strongly patriarchal societies as Jud Islam and Protestant Christendom." (Dur "Life of Greece" p. 178, F. n.)

'यहूदी, इस्लाम और प्रोटेस्टैण्ट ईसाइयोंके सदृश कठोर उपासक समाजमें मातृरूपिणी देवीका अभाव लक्ष्य करनेका विषय

उसे भूमिमें दफना देते हैं। ये देह सुदूर भविष्यत् कालमें अन्तिम विचारके दिन (Last day of Judgment) ईश्वरके सिंहासनके दोनों ओर उठकर खड़े हो जायँगे। दाहिनी ओर रहेंगे धार्मिकलोग और बायीं ओर पापीलोग खड़े होंगे।

(५) एकमात्र इसी जन्मके कर्मफलसे पुण्यात्माओंको अनन्त कालतक स्वर्ग और पापात्माओंको अनन्त कालतक नरक भोगना पड़ेगा। जो लोग ईसाई या मुसल्मान नहीं हैं, वे लोग यथाक्रमसे ईसाई और मुस्लिम दर्शनके अनुसार, अवश्य ही अक्षय नरकाग्निमें दग्ध होंगे। जैसे बुतपरस्त वर्णाश्रमी हिंदू, चाहे वह कितना ही भला आदमी क्यों न हो, उसके लिये निखालिस नित्यस्थायी नरकभोग अनिवार्य है।

मुश्किल यह है कि रोमन कैथलिक लोग समझते हैं कि प्रोटेस्टैण्ट आदि ईसाई भी नरकमें गिरेंगे, केवल वे ही अनन्त स्वर्गमें जायँगे। प्रोटेस्टैण्ट भी इसी प्रकार समझते हैं कि रोमन कैथलिक नरकमें जायँगे। मुस्लिम शिया-सुन्नी आदिकी भी ठीक इसी प्रकारकी अवस्था है।

(६) इन सभी धर्मोंके दर्शनमें समग्र जीव-जगत् (तथा नारी भी) पुरुषके भोगके उपादान मात्र हैं। जब पुरुष (नर) के सिवा और किसीमें आत्मा ही नहीं है, तब जिस प्रकार भी हो, जिस किसी प्राणीकी हत्या क्यों न की जाय, उस जीवहिंसामें कोई पाप न होगा। जान पड़ता है कि इन मतोंमें अहिंसाके लिये कोई स्थान ही नहीं है।

केवल एक जन्मके पाप-पुण्य तथा धार्मिक विश्वासके फलसे अनन्त नरक या अनन्त स्वर्गका भोग एक भ्रान्त सिद्धान्त है; यह तर्कयुक्त नहीं है। फलतः सेमिटिक धर्मोंके दर्शन अत्यन्त दुर्बल हैं। पाश्चात्त्य देशोंमें भी बहुत-से लोग अब दूसरे धर्मोंमें विश्वास करने लगे हैं। श्रीमती एनी बेसेण्ट, सुनते हैं अपनी शिशु-कन्याकी अकाल-मृत्युका कोई संतोषजनक उत्तर ईसाई-धर्ममें न पाकर, हिंदूधर्मकी ओर आकृष्ट हुई थीं। राइडर हग्गार्ड (Rider Haggard) और मोरी करेली (Morie Corelie) के उपन्यासोंमें पुनर्जन्मकी कहानी है। एक आधुनिक उपन्यासके निम्न अवतरणसे ज्ञात होता है कि ईसाईलोगोंमें भी तर्क जाग रहा है।

'कोई बुद्धिमान् आदमी ईसाइयोंके ईश्वरमें विश्वास नहीं कर सकता। सामूहिक रूपमें मरे हुए लोगोंक खड़ा होना और उसके बाद इन्साफके फलस्वरूप ३ सुख और अनन्त कालके लिये यातनाका भोग एक युगि प्रस्ताव है। जो जन्मसे ही जडबुद्धि हैं या अ माता-पिताकी संतान हैं, उन अभागे लोगोंको कु जीवन-यापनके लिये दण्डविधान एक प्रहसनमात्र है उनके जीवनमें क्या सम्भावना थी? और जो किशोरावस्थामें ही मर जाते हैं, वे क्या अपने कर्मोंके पूर्ण उत्तरदायी हैं? जिस ईश्वरने मानवजातिको इस अनर्गल शर्त्तपर जन्म दिया है, उसके न्यायालयमें जानेपर उसके ऊपर हमलोग घृणाके सिवा और कुछ अनुभव करते। अतएव ईसाईकी ईश्वरके अस्ति कहानी ही मिथ्या है।[3]

(७) सेमिटिक धर्मग्रन्थोंके अनुसार अनुम ४००४ ई० पूर्व, अर्थात् केवल छः हजार वर्ष पहले जग सृष्टि हुई थी। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि आधु विज्ञानकी भूतत्त्व, नृतत्त्व आदिकी गवेषणाके द्वारा प्रमाणित हो रहा है कि यह सिद्धान्त बिल्कुल भ्रान्त है सृष्टि कोटि-कोटि वर्ष पूर्व हो चुकी है।

गीतामें जन्मान्तर-रहस्य

वैदिक धर्मशास्त्रका सार और मध्यमणिस श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीभगवान्ने बारंबार पुनर्जन्म, उ

3. "No sensible person can believe in t Christian God, or for that matter, a personal God. The very conception of universal resurrection followed by a judgme awarding all of us either perpetual bliss consigning us to eternal torment, on o conduct during one short span of life, absurd. One has only to think of those w are born half-witted or as the children criminal parents. What chance in life ha they ? To condemn such unfortunates becau they have led evil lives would be a travesty justice. And what of young people who when still in their teens ? Are they to be he fully responsible for their actions ? Were y or I brought before such a tribunal, we shou feel only contempt for a God who had giv life to men on such arbitrary terms; so t teaching that he exists must be false." (Dennis Wheatlley, "They used dark forces." p. 474)

मोक्ष तथा अवतारवादके सिद्धान्तकी घोषणा स्पष्टाक्षरोंमें की है। सूत्ररूपमें यहाँ उसमेंसे कुछ दिया जाता है—

(१) जन्मान्तर—जन्म लिये हुए व्यक्तिकी मृत्यु तथा मृत व्यक्तिका जन्म निश्चित है।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'
(गीता २ । २७)

'देहाभिमानी जीवका जैसे इस एक स्थूलदेहमें शैशव, यौवन और वार्द्धक्य होता है—**देहिनोऽस्मिन्**' इत्यादि (गीता २ । १३), 'मनुष्य जैसे जीर्ण वस्त्र त्याग करके नवीन वस्त्र ग्रहण करता है। देहान्तरकी प्राप्ति भी वैसे ही होती है—**'वासांसि जीर्णानि'** इत्यादि (गीता २ । २२)। 'हमलोगोंके बहुत-से जन्म हो चुके हैं—**बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि**' इत्यादि (गीता ४ । ५)।

(२) परलोक—'मृत्युके समय जो कुछ चिन्तन करता हुआ मनुष्य देह त्याग करता है, परलोक भी तदनुसार ही प्राप्त होता है।' (**यं यं वापि**—इत्यादि गीता ८ । ६) 'मृत्युके समय सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण जिसकी उस समय वृद्धि होगी, उसीके अनुसार यथाक्रम उत्तम ऊर्ध्वलोक, कर्मासक्त मनुष्यलोक अथवा पशु-पक्षी आदिकी निम्न योनिमें जन्म होता है।' (**'यदा सत्त्वे'** इत्यादि गीता १८ । १४–१६)। 'देवताओंकी पूजा करनेवाले अनित्य देवताओंको, पितरोंकी पूजा करनेवाले पितरोंको, भूतोंके उपासक भूतोंको और मेरे उपासक अक्षय आनन्दस्वरूप मुझको प्राप्त होते हैं।' (**'यान्ति देवव्रताः'** इत्यादि, गीता ९ । २५)। 'द्वेषकारी, क्रूर, नराधम, अशुभकर्मा लोगोंको जन्म-मृत्यु-पथमें आसुरी अर्थात् व्याघ्र-सर्प आदि और कृमि-कीटादि योनियोंमें अनवरत मैं डालता हूँ।' (**'तानहं द्विषतः'** इत्यादि गीता १३ । १९-२०)।

'वेदोक्त क्रियापरायण लोग यज्ञद्वारा निष्पाप होकर स्वर्गमें जाते हैं। विपुल भोगके पश्चात् पुण्य-क्षीण होनेपर पुनः मर्त्यलोकमें पवित्र और धनवान् या योगीके कुलमें जन्म-ग्रहण करते हैं।' (**'त्रैविद्या मां'** इत्यादि गीता ९ । २०-२१ तथा **'योगिनां कुले०'** इत्यादि गीता ६ । ४१–४२)

(३) मुक्ति—'अनेक जन्मकी योग-साधनासे सिद्ध, निष्पाप, ज्ञानवान् पुरुष मुझको अर्थात् मेरी पराभक्तिको प्राप्त होते हैं।' (**'अनेकजन्मसंसिद्धः'**—गीता ६ । ४५); (**'बहूनां जन्मनाम्'** गीता ७ । १९)। 'शुक्ल और कृष्ण—दो गति हैं, एकसे संसारमें लौटना नहीं होता, दूसरेसे लौटना पड़ता है' (**'यत्र काले'** इत्यादि, गीता ८ । २३-२४)। 'दैवी और आसुरी सम्पत्तिमें प्रथम मोक्षका हेतु है और दूसरी संसार-बन्धनका हेतु है।' (**'दैवी'** इत्यादि, गीता १६ । ५)। 'मनीषी लोग कर्मजन्य फलका त्याग करके जन्म-बन्धसे मुक्त होकर अनामय मोक्षपदको प्राप्त होते हैं।' (**'कर्मजं'** इत्यादि, गीता २ । ५१)।

(४) अवतार—'मैं जन्मरहित होकर भी साधुवृन्दकी रक्षा और पापीलोगोंका विनाश करनेके लिये अपनी मायाके द्वारा धर्मकी संस्थापनाके लिये युग-युगमें अवतीर्ण होता हूँ।' (गीता ४ । ६–८)।

पाश्चात्त्यमत—ऋग्वेदमें जन्मान्तर और मोक्षवाद नहीं है

बहुत-से पाश्चात्त्य लोगोंका मत है कि ऋग्वेदमें जन्मान्तरकी और मोक्षकी बात नहीं है। यह बात परवर्ती युगमें हिंदू-धर्म-दर्शनमें प्रविष्ट की गयी है।

वेबर (Weber १८५१) कहते हैं कि यह बात पहले-पहल छान्दोग्य उपनिषद्में मिलती है। बृहदारण्यक उपनिषद्-में भी तदनुरूप उल्लेख है।

मैकडोनेल (Macdonell १९००) साहबने दुःख प्रकट किया है कि 'इस मतवादके ग्रहण करनेका फल यह हुआ है कि वैदिक आशावाद, जो पहले स्वर्गमें चिरस्थायी सुखकी आशा करता था, वह एक मृत्युसे दूसरी मृत्युके बीच निःसीम दुःखमय जीवन-प्रवाहके एक विषादमय दृश्यमें परिवर्तित हो गया। × × × ऋग्वेदमें इस विषयका (जन्मान्तरका) कोई संकेत भी नहीं मिलता। केवल अन्तिम मण्डलमें दो स्थलोंमें मृत आत्माके जल या उद्भिज्जमें जानेकी बात पायी जाती है। × × × सम्भवतः आर्य औपनिवेशिक लोगोंने भारतके आदिम निवासियोंसे इस विषयकी प्रथम शिक्षा प्राप्त की होगी। मोक्षके तत्त्व सभी दर्शनोंमें हैं। मोक्षका सिद्धान्त देहान्तर-प्राप्तिके सिद्धान्तके समान ही प्राचीन है। मोक्षसे जन्मान्तरकी समाप्ति हो जाती है[४]।

4. By the acceptance of this doctrine, the Vedic optimism, which looked forward to a life of eternal happiness in heaven, was transformed into the gloomy prospect of an interminable

विन्टरनिट्ज (Winternitz १९२०) के मतसे 'आत्माके देहान्तर तथा अनन्तकालव्यापी जन्म-जन्मान्तरकी धारणा दुःखमय है...... इस विश्वासने परवर्ती कालके समस्त दार्शनिक चिन्तनको प्रभावित किया है। तथापि ऋग्वेदमें इसका कोई चिह्न नहीं मिलता[5]।'

मिशनरी श्रीफर्कुहर साहेबके मतसे 'वेदमन्त्रोंमें देहान्तर-प्राप्तिका कोई सन्धान नहीं है[6]।'

अपने देशके आधुनिक विद्वानोंमेंसे भी कुछ महानुभावोंने इनके सुरमें अपना सुर मिलानेमें कोई संकोच नहीं किया। वरं यहाँतक कह दिया कि 'पुनर्जन्मकी बातका बीज आर्यलोग जो आदिम निवासियोंके सम्पर्कमें आये, उनके प्रभावसे उद्भूत हुआ है।' अथवा 'पुनर्जन्मवाद असभ्य जाति या द्राविड़ी सभ्यतासे लिया गया है।'

परंतु उन लोगोंका यह मत सर्वथा भ्रान्त है। हम प्रमाणित करेंगे कि ऋग्वेदमें केवल जन्मान्तरकी बात ही नहीं, बल्कि देहत्यागके बाद आत्माकी परलोकमें गति तथा पुनः इहलोकमें जन्म लेनेकी बात एवं मोक्षवाद भी ऋग्वेदमें अभिव्यक्त है। वेद समस्त ज्ञानके मूलस्रोत हैं। जो ऋग्वेदसंहितामें नहीं है, वह सनातन वैदिक धर्ममें नहीं हो सकता। आत्माकी अमरता, जन्मान्तर, मुक्ति आदिके विषयमें जो मन्त्रभागमें बीजके रूपमें—सूत्रके आकारमें हैं, वही क्रमशः ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्में विकसित हैं और पश्चात् पुराण, इतिहास और स्मृति-ग्रन्थोंमें विस्तृत रूपमें उपबृंहित हुए हैं। स्थानाभावसे केवल कुछ ही ऋक्-मन्त्रोंका उल्लेख किया जाता है।

(१) *'गर्भे नु सन्'*—इत्यादि ४ । २७ । १—यह 'अस्य वामीय' सूक्तका प्रथम मन्त्र है। वामदेव ऋषिने मातृगर्भमें रहते समय ही मन्त्रोंका दर्शन किया था।

सायणभाष्यका भावार्थ—'मैंने मातृगर्भमें रहते समय ही यह उपलब्ध किया है कि इन्द्रादि सारे देवता उसी एक परमात्मासे उत्पन्न हैं। ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके पूर्व विभिन्न जन्मोंमें मैं लौहमयपुरके समान दृढ़ शत-शत शरीरोंमें आबद्ध रहा। इस कारण मैं शरीरके अतिरिक्त आत्माको नहीं जान पाया। अब आत्माको अनावरण जानकर मैं इस देहसे श्येन पक्षीके समान वेगसे निकल गया हूँ।'

'पुरुषो ह वा अयमादितो गर्भो भवति।'

(ऐतरेय ब्राह्मण २ । २५)

यहाँ इन सब मन्त्रोंका और भी विश्लेषण है। जन्मान्तर-तत्त्व और आत्मज्ञानके द्वारा मुक्तिकी बात स्पष्टरूपसे वामदेव-दृष्ट मन्त्रोंमें पायी जाती है।

२–(क) 'त इन्निण्यं हृदयस्य' इत्यादि।

(ऋ० ७ । ३३ । ९)

(ख) 'विद्युतो ज्योतिः' इत्यादि।

(ऋ० ७ । ३३ । १०)

प्रजापतिके मानसपुत्र वसिष्ठ ऋषि निमि प्रजाके शापसे देहान्तको प्राप्त हुए। दूसरे जन्ममें मित्रावरुणसे कुम्भयोनि महर्षि अगस्त्यके साथ अप्सरालोकमें उन्होंने पुनः जन्म ग्रहण किया। ऊपरके दो मन्त्र उनके तथा उनके पुत्रोंके द्वारा दृष्ट हैं। इस जन्मान्तरका वर्णन उनमें है। श्रीशंकराचार्यने अपने ब्रह्मसूत्र-भाष्य (३ । ३ । ३२) में इस घटनाका उल्लेख किया है।

(३) 'संगच्छस्व पितृभिः' इत्यादि। (ऋ० १० । १४ । ८)

यह मन्त्र पितृमेधमें विनियुक्त होता है। परलोकगत पिताके उद्देश्यसे पुत्र कहता है—'आप ऊर्ध्वलोकमें पितरों तथा यमके साथ मिलें। इष्टापूर्त प्रभृति कर्मोंके फलसे

---

series of miserable existences leading from one death to another. x x x The Ṛgveda contains no trace of it beyond a couple of passages in the last book, which speak of the soul of a dead man as going to waters or plants. x x x It seems more probable that the Aryan settlers received the first impulse in this direction from the aboriginal inhabitants of India. Common to all the systems of Philosophy and as old as that of transmigration is the doctrine of salvation which put an end to transmigration," (Macdonell, "History of Sanskrit Literature" pp. 388—9)

5. "Of the dismal belief in the transmigration of the soul and eternal rebirths—the belief which controls the whole philosophical thoughts of Indians in later centuries—there is in the Ṛgveda as yet no trace to be found." (Winternitz, "History of Indian Literature." P. 68)

6. There is no trace of transmigration in the hymns of the Vedas. (Farquhar, "An Outline of the Religions and Literature of India" Page 33)

आपको उत्तम सुख प्राप्त हो। स्वर्गभोगके बाद आप पाप (अवद्य) त्याग करके पुनः पृथिवीपर आकर उत्तम देह धारण करें। अर्थात् जन्म ग्रहण करें।'

(४) 'सूर्यं चक्षुर्गच्छतु' इत्यादि। (ऋ० १०।१६।३)

शवदाहके बाद यह मन्त्र पढ़ा जाता है। जन्मान्तर और पुनर्जन्मकी बात इसमें स्पष्टरूपमें कही गयी है। 'परलोकगत आत्माने अपने कर्मोंके द्वारा जिस स्वर्गादि लोकको प्राप्त किया है, वहाँ वह गमन करे। उसके नेत्र सूर्यमें गमन करें। इसके बाद जल और ओषधि अथवा शस्यके माध्यमसे नये माता-पिताके शरीरमें आत्मा प्रवेश करके नये शरीरमें प्रतिष्ठित हो जाय।'

मोक्षका प्रसङ्ग

(५) 'त्र्यम्बकं यजामहे' इत्यादि। (ऋ० ७।५९।१२)

इस मन्त्रसे महादेवकी पूजा होती है। हलायुधकृत 'ब्राह्मणसर्वस्व' में इसकी व्याख्या है। 'उर्वारुक (ककड़ी) जैसे पकनेपर अपने आप वृंतसे टूट पड़ती है, उसी प्रकार हम शिवजीकी उपासनाके द्वारा श्रेय प्राप्त करें तथा संसारके बन्धन अर्थात् जन्म-मृत्युके पाशसे मुक्त होकर अमृतत्व प्राप्त करें।'

देवयान और पितृयाण

श्रीभगवान्ने गीताके अष्टम अध्यायमें 'अक्षर ब्रह्मयोग'का उपसंहार करते हुए कुछ श्लोकों (८। २३–२८) में जन्म-मृत्युके पथसे अनावृत्ति प्राप्त करनेके उपायको विशद रूपसे बतलाया है।

(१) जो लोग ब्रह्ममें संलीन हैं, वे तत्काल मुक्ति प्राप्त करते हैं। उनके प्राणका उत्क्रमण नहीं होता—

प्राप्त होता है। अर्चिः आदि मार्ग अग्नि और ज्योतिका मार्ग है। क्रमशः अर्चिःके अभिमानी, दिवसके अभिमानी, आपूर्यमाण पथ (शुक्ल पथ), उत्तरायण तथा संवत्सरके अभिमानी देवता उसको ऊर्ध्वमें ले जाते हैं। क्रमशः सूर्य, चन्द्र, विद्युत् और अन्तमें ब्रह्माके मानस पुरुष उसको ब्रह्मलोकमें ले जाते हैं। ब्रह्माके साथ वह क्रममुक्तिका साधक लयको प्राप्त होता है। उसको आवर्तन नहीं करना पड़ता। (छान्दोग्य उप० ५।१०।१-२)

(३) पितृयाण या कृष्णगति—

'जो गृहस्थाश्रममें नित्यकर्म, इष्टापूर्त्त आदि, अग्निहोत्र आदि कर्म तथा वृक्ष, कूप, वापी, तड़ाग आदिकी प्रतिष्ठा करते हैं; किंतु ज्ञान-प्राप्तिकी चेष्टा नहीं करते अथवा पञ्चाग्नि विद्याको नहीं जानते, वे मृत्युके बाद पितृयाण मार्गसे गमन करते हैं। क्रमशः धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायनके छः मास, संवत्सर आदिके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं। पश्चात् पितृलोक, वहाँसे आकाश, चन्द्रमा (ब्राह्मणंके राजा सोम) को प्राप्त होते हैं। चन्द्रमण्डलमें वास करके जबतक कर्म क्षीण नहीं होता, तबतक देवगणके साथ क्रीड़ा करते हैं।

'पश्चात् इसी पथसे उनका पृथ्वीपर पुनरावर्तन होता है। चन्द्रमण्डलसे क्रमशः आकाशमें, वायुमें, धूममें, अभ्रमें, मेघमें, वृष्टिके साथ भूमिमें गिरकर व्रीहि, यव, ओषधि, वनस्पतिमें प्रविष्ट होते हैं। व्रीहिसे बाहर निकलनेमें बहुत क्लेश होता है। शस्य या फलके साथ पुरुष या नर-पशु अथवा अन्य जीवमें प्रविष्ट होकर रेतःके साथ अनुरूप स्त्री-गर्भमें सिञ्चित होकर पुनः अपने जीव-देहको प्राप्त होते हैं।' (छान्दोग्य उप० ५।१०।३–६)

नहीं, व्यभिचार करते हैं, जब जो इच्छा होती है, वही करते हैं, वे देवयान या पितृयाण, किसी भी पथसे नहीं जाते। वे लोग कीट-पतङ्ग, मच्छर-मक्खी होकर वारंवार जन्म लेते और मरते हैं। इसको तृतीय मार्ग कहा जाता है।' (छान्दो० ५।१०।८) 'य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतङ्गा यदिदं दन्दशूकम्॥

(बृहदा० उप० ६।२।१६)

देवयान पथसे गमन करनेपर क्रममुक्ति और मोक्ष होता है। पितृयाण पथसे गमन करनेपर स्वर्ग-भोगके बाद संसारमें पुनः लौटना पड़ता है। पापी जीव उभय पथसे भ्रष्ट होकर कर्मफलके अनुसार नाना प्रकारकी नीच योनिमें वारंवार जन्म लेते और मरते हैं तथा असीम कष्ट भोगते हैं।

स्वर्णचोर, मद्यपायी ब्राह्मण, गुरुपत्नीगामी तथा ब्रह्महत्या करनेवाले 'महापातकी' कहलाते हैं, इनका पतन अवश्यम्भावी है। (छान्दोग्यो० ५।१०।९)

दहर और पञ्चाग्नि-विद्या

दहर-विद्या—'प्रणवावेशित ब्रह्मबुद्धि-विशिष्ट ध्यान योगीके हृदय-पुण्डरीकमें अथवा ललाटके बीचमें की जानेवाली ब्रह्मोपासना ही दहर-विद्याका विषय है। रजोगुण और तमोगुणको अभिभूत करके सर्वदा सत्त्वगुणमें रहनेका अभ्यास होनेपर आत्मा स्वस्वरूपमें अवस्थित होता है। दहर-विद्या इसी स्वरूपावस्थानका निर्देश करती है। ब्राह्मण जो गायत्री-उपासना करते हैं, वह वरणीय भर्ग भी ब्रह्मोपासना है।' (छान्दोग्य० ८।१।१)

दहरोपासक क्रमशः मुक्ति प्राप्त करते हैं; परंतु पञ्चाग्नि-विद्याके उपासकको भोगके पश्चात् लौटना पड़ता है। अतएव देवयान-पथ पितृयाणकी अपेक्षा उत्कृष्ट है।

आजन्म ब्रह्मचारी या वानप्रथ-संन्यासी जो हिरण्यगर्भ या सगुण ब्रह्मकी उपासना करते हैं, वे भी पञ्चाग्नि-विद्यामें अधिगत होनेपर देवयानपथसे गमन कर सकते हैं।

ब्रह्मसूत्र तृतीय अध्यायके प्रथम पादमें भगवान् बादरायण कृष्णद्वैपायनने पञ्चाग्निविद्या, पितृयाण और परजन्म आदिके विषयमें विशद आलोचना की है।

वेदमें देवयान और पितृयाणका उल्लेख

वेदके मन्त्रभागमें भी अनेक स्थलोंपर देवयान और पितृयाणका उल्लेख है। हम ऋक्संहितासे केवल दो मन्त्र प्रदर्शित करते हैं—

(१) 'द्वे सृती अशृणवम्' इत्यादि (ऋक्० १०। ८८। १५)

यह प्रसिद्ध मन्त्र तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।४।२।९; २।६।३५), सांख्यायन ब्राह्मण (१४।२।१।४) तथा बृहदारण्यक उपनिषद् (६।२।२) में आम्नात हुआ है। गीतामें 'नैते सृती जानन्' (८।२७) श्लोकमें भगवान्ने निःसंदेह इसी मन्त्रका निर्देश किया है (सायणभाष्य द्रष्टव्य है)। 'द्वे सृती' देवयान और पितृयाणसे—परलोक-गमन करनेवालोंके लिये ये दो महापथ ही विवक्षित हैं।

रंतु पाश्चात्त्य अनुसंधानकारी लोग उपदेश करते हैं के आदि-वैदिक युगमें शवदाह नहीं होता था। ईसाई या मुस्लिमके समान शवदेह भूमिमें दफना दिया जाता था।

स्थानाभावके कारण केवल दो-तीन ऋग्वेदके मन्त्रोंका हम उल्लेख करते हैं। इसके द्वारा प्रमाणित हो जायगा कि पाश्चात्त्य वेदधुरन्धर लोग भ्रान्त और मिथ्यावादी हैं। दाह-संस्कार ऋग्वेदीय युगकी प्रथा है—

(१) 'ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा' इत्यादि (ऋ० १०। १५। १४)

आश्वलायन श्रौतसूत्र तथा सायणभाष्यके अनुसार चितापर शवदाह करनेके समय इस मन्त्रका पाठ करना पड़ता है। 'अग्निदग्धा'का अर्थ सुस्पष्ट है। 'अनग्नि-दग्धा'का अर्थ उन सब स्थितियोंके लिये प्रयुक्त हुआ है, जहाँ शवदाह नहीं हो पाता; जैसे युद्धमें, जलमें डूबनेपर या जानवरोंके द्वारा खाये जानेपर इत्यादि।

(२) 'मैनमग्ने वि दहो' इत्यादि (ऋ० १०। १६। १)

इस मन्त्रमें अग्निदेवताको शवदेह सावधानीसे जलाकर परलोकगत आत्माको पितृगणके समीप पहुँचानेमें सहायता करनेके लिये कहा गया है।

(३) 'उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं' इत्यादि (ऋ० १०। १८। ८)

पहले उच्च वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि) की विधवाओंको चितापर पतिके शवके पार्श्वमें शयन करना पड़ता था, इस प्रकारकी विधि थी। अधिकांश स्थलमें सहमरण नहीं होता था। विधवा नारीका देवर, वृद्ध नौकर या अन्तेवासी (पड़ोसी या शिष्य) कोई भी यह मन्त्र पढ़कर चितापरसे उसका हाथ पकड़कर उठा देते थे।[७] कोई भाई चितासे उठाता था। यह एक प्र विवाह-प्रथा थी[८]।'

भारतीय आधुनिक समाज-सुधारक लोग तथा ऐतिहासिक लोग इस मन्त्रकी गलत व्याख्या करके चि चिल्लाकर कहते हैं कि 'यह वैदिक युगमें विधवा-विव प्रमाण है'।

किंतु सायणभाष्यमें आश्वलायन गृह्यसूत्रका उद्धरण है, उससे क्या यह समझा जायगा कि प मृत्युके पश्चात् ही देवर ही क्यों, वृद्ध दास, शि पड़ोसी या जो कोई मित्र होता उसके साथ विध विवाह स्थिर हो जाता था? क्या वृद्धा स्त्रियोंका भी प्रकार पुनर्विवाह होता था?

समस्त वैदिक शास्त्र या भारतके प्राचीन सा या इतिहासमें विधवा-विवाहका या शवदेहकी समा एक भी दृष्टान्त नहीं मिलता है। हिंदू नारीका, वह सधवा हो या विधवा, दूसरा पति ग्रहण करना, सो पथरौटी बनानेके समान एक असम्भव और अ बात कभी थी ही नहीं।

सौ वर्षकी बात है, ईश्वरचन्द्र विद्यासागरने स्मृ पुनर्भूविषयक श्लोकका गलत अर्थ करके विधवा विव कानून बनानेमें सहायता की थी। परंतु समाजने इ नहीं माना, यह कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी।

विन्टरनिट्ज कहते हैं कि 'प्राचीन भारतमें सामा शवदाहकी प्रथा रहनेपर भी अति प्राचीन कालमें इण्डो-यूरोपीय जातिके समान सम्भवतः पृथ्वीमें स (कब्र) दे दी जाती थी।[९]' ऋग्वेद (१०। १ १०–१३) के मन्त्रमें समाधिका उल्लेख मिलता है।

---

8. 'Burial was practised as well as crei

पुनर्जन्मका प्रयोजन

(लेखक—श्रीअनिलवरण राय)

भगवान्के बिना मानवजीवनका कोई अर्थ ही नहीं होता। मानवजीवनकी किसी समस्याका यथार्थ समाधान नहीं हो सकता; तथापि आज भारतवर्षमें 'सेक्युलरिज्म' (Secularism) इसी असम्भव चेष्टामें लगा हुआ है और इसका जो फल होना चाहिये, वही हो रहा है। भगवान्में विश्वास तो अधिकांश लोग ही करते हैं; परंतु वह इतना शिथिल और मोहाच्छन्न है कि उससे कोई काम नहीं निकलता। गतानुगतिक धर्मानुष्ठान करके लोग कोल्हूके आँखोंमें पट्टी बँधे बैलके समान एक ही स्थानमें घूमते रहते हैं। धर्मके नामपर आज सारा जगत् ही जो कुछ कर रहा है, गीताकी भाषामें उसको 'धर्मकी ग्लानि' कहा जा सकता है। केवल शास्त्र-विचारके द्वारा यह ग्लानि दूर न होगी। अर्जुनमें शास्त्र-ज्ञानकी कोई कमी नहीं थी तथापि उन्होंने गीताके प्रथम अध्यायमें जो धर्मतत्त्वकी व्याख्या की है, वह धर्मकी ग्लानिका प्रकृष्ट दृष्टान्त है। आज हमारी भी यही दशा है। गीताकी यथार्थ शिक्षाका आचरण आज कितने आदमी करते हैं? वस्तुतः कम्युनिस्ट लोग जो कहते हैं कि 'धर्मने लोगोंको अफीम खिलाकर निर्जीव बना दिया है'—यह इस दृष्टिसे अधिकांशमें सत्य है। इसी कारण आज संसारकी जनसंख्याके प्रायः एक तिहाई अंशने कम्युनिस्टोंके नास्तिक-वादको ग्रहण कर लिया है। अदृष्टकी दुहाई देकर हिंदू निश्चेष्ट हैं, संसारमें कोई दुःख-दारिद्र्य भोग करता है, तो उसको वह पूर्वजन्मका कर्मफल या दण्ड समझकर उसकी सहायता करनेके लिये कोई अग्रसर नहीं होते। समाजके दारुण वैषम्यको हिंदू कर्मफलकी दुहाई देकर स्वीकार कर लेते हैं। कर्मफल निश्चय ही है, परंतु उसका यथार्थ मर्म क्या है—इसे लोग नहीं समझते—'गहना कर्मणो गतिः'। आज लोगोंको सत्यधर्मकी शिक्षा देते समय शास्त्र-की दुहाई देनेसे काम नहीं चलेगा; क्योंकि शास्त्रमें लोगों-की श्रद्धा नहीं है। जो लोग शास्त्रानुसार धर्मानुष्ठान करते हैं, उनमें भी श्रद्धाका अभाव रह जाता है। इस प्रकारके अश्रद्धायुक्त आचरण करनेसे कोई फल नहीं होता।

> अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
> असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥
> (गीता १७। २८)

शास्त्रका पाठ या विचार करके अर्जुनका मोह दूर नहीं हुआ था। भगवान्ने साक्षात् रूपसे उनके सामने खड़े होकर उनके सारे संशयोंको दूर किया था—

> 'योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्।'
> (१८। ७५)

योगसिद्ध तत्त्वज्ञानी गुरुके हृदयमें अवस्थित होकर श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं मनुष्यको अर्जुनके समान शिक्षा देते हैं। यही उपनिषद्का निर्देश है—

> 'प्राप्य वरान् निबोधत।'—(कठ० १। ३। १४)

'तत्त्वज्ञानीको खोजकर, उनके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो।' जिनकी अपनी साधना नहीं है, आध्यात्मिक अनुभूति उपलब्ध नहीं है—वे लोग पाण्डित्यके अभिमानमें शास्त्रकी व्याख्या करके लोगोंको विभ्रान्त करते हैं।

> अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
> स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
> दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
> अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥
> (कठ० १। २। ५)

आजकलका मानव ऐसे पण्डितोंकी बातपर कान देना नहीं चाहता—इसके लिये उनको दोष नहीं दिया जा सकता। स्वामी विवेकानन्दने श्रीरामकृष्ण परमहंसको गुरु मानकर पहले सीधा—स्पष्ट यह प्रश्न किया था—'क्या आपने भगवान्को देखा है?'—यही है वर्तमान युगके मनुष्यका प्रश्न। इस प्रश्नका सदुत्तर जो दे सकते हैं, उन-की बातमें ही लोगोंके मनमें श्रद्धा होती है। श्रद्धा उत्पादन करनेका अन्य मार्ग नहीं है। इसी कारण उपनिषदोंके ऋषि घोषणा करते हैं—

> वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
> मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
> तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
> नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
> (श्वेता० ३। ८)

इस प्रकारके तत्त्वज्ञानी द्रष्टाका साक्षात्कार प्राप्त कर,

करते हैं, सुख-दुःखका बोध करते हैं, संकल्प-विकल्प करते हैं, ये सब भी मनुष्यकी मूल सत्ता या आत्मा नहीं हैं। मानवात्माके निवासके लिये प्रकृतिके द्वारा ही इन सबका विकास होता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

(*गीता* ७। ४)

मनुष्य अपने कर्मोंके कारण सुख-दुःख भोग करता है। दुःख-यन्त्रणा पापका दण्ड है, यह कर्मतत्त्वकी अति स्थूल धारणा है। मनुष्यकी मूल सत्ता आत्मा है, जो साधारण मानवीय सुख-दुःखसे अतीत है। वह सदा आनन्दमय और सच्चिदानन्द है। सुख-दुःख आदि अहंभावापन्न मानस-चैतन्यमें होते हैं। वे प्रकृतिके अन्तर्गत हैं। यह मानस-चैतन्य भी जब अज्ञान, अहंभावसे मुक्त होगा, तब मनुष्यका बाह्य-चैतन्य भी आनन्दमय हो जायगा, प्रेम उसका मूल उपादान होगा; मानव-जीवन भीतर-बाहर सौन्दर्यमय हो जायगा। वृन्दावनके श्रीकृष्ण भगवान् उसीके प्रतीक हैं। एक दिन सारा जगत् वृन्दावन हो जायगा, सारा मानव-जीवन हो जायगा—'रासलीला'। यही जगत्में मानवजीवनका लक्ष्य है। वेदमें इसीको 'अमृत' या 'अमृतत्व' नामसे अभिहित किया है। अमृतत्वकी प्राप्तिको ही मानवजीवनका लक्ष्य बतलाया गया है। भारतीय नारी मैत्रेयीकी वाणी है कि—**'येनाहं नामृता स्यां तेन किमहं कुर्याम्'** (बृहदा० २। ४। ३) जिससे मुझको 'अमृतत्व' नहीं मिलता, उसको लेकर मैं क्या करूँगी?

हमें अपने बालकों और कन्याओंको नचिकेता और मैत्रेयीके आदर्शमें उद्‌बुद्ध करना पड़ेगा, जिससे वे इस भूतलपर ही दिव्य जीवन, अमृतत्व-प्राप्तिको जीवनका लक्ष्य मानकर चलें तथा ऐसा कोई काम न करें या न चाहें जो उनके इस दिव्य जीवनकी प्राप्तिमें प्रतिबन्धक हो।

भगवत्प्राप्ति ही मानवजीवनका लक्ष्य कहा जाता है। यह भी केवल एक स्थूल बात है; क्योंकि संसारमें भगवान्‌को छोड़कर कोई भी न तो है और न रह सकता है। सब भगवान्‌के भीतर स्थित हैं और भगवान् सबके भीतर विराजित हैं। भगवान् स्वयं ही जगत्का सब कुछ बन गये हैं—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—यही वेद-वेदान्तका सार सत्य है।

'सदेव सोम्य इदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्।'

(छान्दोग्य० ६। २। १)

प्राचीन भारतमें तरुण शिष्य ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये तत्त्वज्ञ ऋषिके सामने उपस्थित होता था तो वह मूल सूत्र बतलाते थे—'हे प्रियदर्शन युवक! यह जो कुछ देखते हो, यह सब पहले एक सत्ता थी, दूसरा कुछ न था।' अकेले रति नहीं होती, मिलनका आनन्द नहीं होता। इसी कारण सच्चिदानन्द ब्रह्म अपने आनन्दको अनन्त वैचित्र्यके द्वारा उपभोग करनेके लिये अपनेको विभक्त करके इन अनन्त वैचित्र्यस्वरूप जीव-जगत्में बन गये—

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।

(गीता १३। १६)

वे सचमुच ही विभक्त नहीं हो जाते, बल्कि मानो विभक्त हो गये हों, इस प्रकारसे आलिङ्गन करते हैं। यही वह अघटनघटनापटीयसी माया है। यह मिथ्या नहीं है, रज्जुमें सर्पका भ्रम नहीं है। वे एक रहते हुए ही सचमुच बहुत रूप ग्रहण करते हैं; किंतु इससे उनके एकत्वकी कोई हानि नहीं होती। जैसे स्वर्णके द्वारा अनेक प्रकारके अलङ्कार निर्मित होनेपर भी सोना ज्यों-का-त्यों रहता है, उसमें किसी प्रकारकी विकृति नहीं होती, इसी प्रकार ब्रह्म भी सत्य है और उसके असंख्य नाम-रूप भी सत्य हैं। नाना नाम-रूपकी सृष्टि करती है—'प्रकृति'। 'प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।' किंतु इस बहुरूपका विस्तार करनेके लिये जडदेहकी सृष्टि करनी पड़ी; क्योंकि जडदेहका अवलम्बन करके ही वे एक से बहु (अनेक) बनते हैं। जैसे एक सूर्य असंख्य जलाशयोंमें असंख्य सूर्योंके रूपमें प्रतिफलित होता है। देह ब्रह्मको प्रतिफलित कर सके, इसके लिये युग-युगान्तरसे देहका क्रमविकास चल रहा है। इसका प्रारम्भ होता है जड अणुसे। भगवान् स्वयं ही अपनी प्रकृतिके द्वारा अणु बने हैं—

'अणोरणीयान् महतो महीयान्'—(श्वेताश्वतर० ३। २०)

जड अणु-परमाणुसे कैसे विश्वजगत्, सौर-जगत् तथा अन्तमें पृथ्वीका उद्भव हुआ तथा पृथ्वीपर जडसे प्राण, प्राणसे मन—असंख्य उद्भिद् जीव-जन्तुके भीतर विकसित होकर जगत्में मानव-देहका* आविर्भाव हुआ। आधुनिक जडविज्ञानने इसकी विस्तृतरूपसे खोज की है। किंतु मनुष्यदेहमें आकर भी इस विकासका अन्त नहीं हुआ है।

* ८४ लाख योनि-भ्रमणका यही निगूढ़ रहस्य है। मनुष्यकी जो आत्मा 'मर्त्येषु अमृतम्' है, उसका आविर्भाव होता है। पृथ्वीपर मानवदेहका विकास होनेसे पूर्व किसी योनिमें घर नहीं हुआ।

मनुष्यके बाद जो अतिमानव (Superman) का आविर्भाव होगा, विज्ञान उसका भी संकेत देता है। परंतु किसलिये किस शक्तिके प्रभावसे यह आश्चर्यमय विकास चल रहा है? विज्ञान इसका उत्तर नहीं दे पाता। इसका उत्तर मिलता है भारतके वेद, उपनिषद् और गीतामें, भारतकी युग-युगव्यापी अध्यात्मसाधनामें। इस पृथ्वीपर मनुष्यको ही देवता बनना पड़ेगा, यह पृथ्वी स्वर्ग बनेगी—यही वेद-वाणी है,—'मर्त्येषु अमृतम्'।

'यो मर्त्येषु अमृतं ऋतावा देवो
देवेष्वरतिर्निधायि।' (ऋग्वेद० ४। २। १)

'मर्त्य-मानवमें जो अमृत है, वह देवता है। मनुष्यके बीच रहकर वह शक्तिका विकास करता है।'

भगवान् एक हैं। 'बहु स्याम्'—बहुत हो जानेकी इच्छा की, तब उनके अंशस्वरूप बहुत जीव हो गये और जीवलोकका आविर्भाव हो गया—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥
(गीता १५। ७-८

ईश्वरका अंश जीवात्मा पञ्चभूतात्मक देह करके इस देहको विकसित करता है, जिससे अन्तर्निहित दिव्य शक्तियाँ जड देहमें प्रकाशित यह जड देह ही सच्चिदानन्दविग्रह बन जाय। परं जन्ममें देहका यह विकास पूर्ण नहीं होता, इसी जीवात्मा एक देहमें आत्मविकासके पथपर अग्रसर हुआ, उसे संग्रह करके ध्वंसोन्मुख देहको प करके नवीन देह ग्रहण करता है। यही मृत्यु और पुन का मूल तत्त्व है। मृत्युके बाद ही पुनर्जन्म नहीं हो जीवात्मा कुछ समय परलोकमें वास करके पूर्वज अभिज्ञताओंको जाँचता-परखता है। जो रखनी होती उसे रखता है। जो त्यागनी होती है, उसे त्याग देता ठीक उसी प्रकार जैसे सारे दिनकी अर्जित अभिज्ञता लेकर रातमें मनुष्य सोने जाता है और पुनः प्रभा कालमें नवीन रूपसे जीवन-पथमें चलने लगता है। जबत मनुष्य ऐसे शरीरका विकास नहीं कर लेता, जो जरा-व्या और मृत्युसे मुक्त हो, तबतक उसको बार-बार जन ग्रहण करना पड़ेगा—यही पुनर्जन्मका प्रयोजन है।

हिंदुओंका पुनर्जन्ममें विश्वास और उसके लौकिक लाभ

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभास्कर, दर्शनकेसरी)

भारतीय संस्कृतिकी मान्यता है कि मृत्युसे मानव-जीवनका अन्त नहीं होता। हमारा आत्मा शरीररूपी जर्जर वस्त्र त्यागकर नया वस्त्र (नया शरीर) धारण कर लेता है। आत्मा अमर है।

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥
(ऋग्वेद १। १६४। ३८; अथर्ववेद ९। १०। १६)

अर्थात् स्मरण रखिये, जीवात्मा अमर है तथा शरीरसे भिन्न है और यह हाड़-मांसका शरीर नाशवान् एवं क्षणभङ्गुर है। सम्पूर्ण शारीरिक क्रियाओंका अधिष्ठाता हमारा आत्मा है (यह ईश्वरका अंश है); क्योंकि जबतक इस शरीरमें प्राण रहता है, तबतक वह क्रियाशील रहता है। अभी इस आत्माके सम्बन्धमें पूरा ज्ञान बड़े-बड़े पण्डितों और मेधावी पुरुषोंतकको नहीं है। आत्माको जानना ही मानव-जीवनका प्रमुख लक्ष्य है।

कर्मके अनुसार उपहार या दण्डके रूपमें जीव नाना योनियोंमें जन्म लेता है। संसारमें अपने अच्छे या बुरे कर्मोंके अनुसार उन्नत होता हुआ चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् जीव मनुष्य-जैसा दुर्लभ और समुन्नत शरीर प्राप्त करता है।

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
तथात्मानं समाधत्स्व भ्रंश्यसे न पुनर्यथा॥

अर्थात् 'याद रखिये, यह सुदुर्लभ मानवशरीर, जो पूर्व-जन्मोंके बड़े-बड़े सत्कर्मोंसे मिलता है, स्वर्गप्राप्तिका सहज सोपान है। इस जन्ममें भी इसे शुभ कर्मोंमें ही लगाना चाहिये, ताकि मनुष्य अवनति, पथभ्रष्टता और नैतिक पतनकी ओर न बढ़ सके।'

स्वेदज, उद्भिज्ज, अण्डज, जरायुज आदि जीवयोनियाँ एकके बाद दूसरी, पहलेसे ऊँची कक्षाकी हैं। मनुष्यको उसके कर्मोंके अनुसार योनि प्राप्त होती है। कर्म ही प्रधान

पुनर्जन्मकी मान्यतासे लाभ

अच्छे कर्मोंसे भविष्यमें अच्छी योनिमें जन्म होता है। हमारे सब कर्मोंके फल इस जन्ममें तथा अगले जन्ममें भी मिलते रहते हैं। यह सत्य है और इस सत्यकी मान्यतासे व्यक्ति और समाज दोनोंको लाभ होता है। पुनर्जन्ममें विश्वास करनेवाला व्यक्ति यह मानता है—

'मेरे-जैसा ही आत्मा सबका है और सबके-जैसा ही मेरा आत्मा है। मेरे आत्माकी अवस्था भूतकालमें अन्य जीवों-जैसी हुई है और भविष्यमें भी हो सकती है। जीवमात्र ही किसी-न-किसी समय परस्पर निकट-सम्बन्धी रहे हैं और शुभ-अशुभ कर्मोंके फलोंके अनुसार भविष्यमें भी रह सकते हैं।'

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥
(यजुर्वेद ४० । ६-७)

अर्थात् 'जो मनुष्य सब प्राणियोंको आत्मामें और सब प्राणियोंमें आत्माको ही देखता है, वह कभी भी किसीसे घृणा (द्वेष या बुरा बर्ताव) नहीं करता। इस प्रकार जाननेवाले पुरुषके लिये सभी प्राणी अपने आत्मस्वरूप ही हो चुकते हैं। यों सबमें एक आत्माको (आत्मस्वरूप एकमात्र परमतत्त्व परमात्माको) देखनेवाले पुरुषमें कौन-सा मोह-शोक रह जाता है?'

इस प्रकार इस मान्यतासे मनुष्यका सब जीवोंके प्रति सप्रेम और आत्मीय-भाव बढ़ता है। ऊँचा-नीचा, अमीर-गरीब, पापी और पुण्यात्मा, निम्न जीव तथा उच्चतर जीव, पशु, कीट, पतंग आदि सब समीप आ जाते हैं। सबके प्रति सहज आत्मभाव और सौहार्द बढ़ जाता है।

दूसरी ओर बुरे और निन्दित कर्म करनेके कारण [illegible] रूपमें अधःस्वरूपको भी धारण कर सकता है—

येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥
(सामवेद ५ । २ । ८ । ५)

मनुष्य-जीवनकी सफलता इस बातमें है कि वह आत्मिक और मानसिक दोषोंको त्यागकर निर्मल और पवित्र बने। मल-विक्षेप और आवरणरहित बने। इसके अनेक उपाय वेदोंमें वर्णित हैं। अतः वे पठनीय हैं।

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महाँस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥
(अथर्ववेद १३ । २ । २९)

'हे मनुष्यो! तुम्हारा आत्मा सूर्यके समान तेजस्वी, प्रकाशमान एवं महान् है। वही तुम्हारा शुद्ध स्वरूप है। (तुमको अपना उच्चतम परमात्मस्वरूप प्राप्त करना है। अच्छे पुण्यकर्म करने हैं। परोपकारमय जीवन बिताना है। आत्माके गुणोंको विकसित करना है) देखो, तुम्हारी महिमा कितनी विशाल है।'

भारतीय संस्कृतिमें इसी समाजमें, इसी जगत्में सत्कर्म, सद्व्यवहार तथा सदाचरणद्वारा पुरुषार्थ, सत्प्रयत्न और आशाको प्रेरणा मिलती रहती है। पुनर्जन्ममें अपने सत्प्रयत्नोंसे हम बहुत कुछ सुधार और उन्नति भी कर सकते हैं। हम स्वयं ही अपने भविष्यके निर्माता हैं। भविष्यमें अच्छा जन्म पाना स्वयं हमारे हाथकी बात है। कहा है—

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे
प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥
(अथर्ववेद १९ । ५१ । १)

अर्थात् 'मेरी शक्ति असीम है। मैं अकेला ही दस हजारके बराबर हूँ। मेरा आत्मबल, प्राणबल, दृष्टि और श्रवणशक्ति भी दस हजार मनुष्योंके बराबर है। मेरा अपान और व्यान भी दस हजारके बराबर है। (मैं विकसित होकर) सारा-का-सारा दस हजार मनुष्योंके बराबर हूँ।'

मनुष्यके अन्तर्मन तथा गुप्त मानसिक प्रदेशका विश्लेषण करनेसे पता चलता है कि वह ज्ञानका भण्डार है। साधारण व्यक्तिको भी देखें, तो मनुष्य मानसिक दृष्टिसे बुद्धिमान्-से-बुद्धिमान् पक्षीकी अपेक्षा विकसित और चतुर दिखायी देता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य-योनिमें आनेसे पूर्वके असंख्य अनुभव उसकी सुप्त चेतनामें भरे हुए हैं। वे पूर्वसंचित असंख्य शुभ सात्त्विक अनुभव समय और नयी परिस्थितिके अनुसार जाग्रत् और प्रस्फुरित होते रहते हैं। अपनी योग्यताएँ बढ़ाकर चतुर व्यक्ति अनेकानेक असाधारण कार्य कर डालते हैं। उनकी छिपी हुई योग्यताएँ असाधारण हो[illegible] हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने जन्म-जन्मान्तरों[illegible] अनुभवरूपी खजानेको खोल लिया है।

आजके वैज्ञानिकोंने भौतिक संसारमें जो अ[illegible] अद्भुत आविष्कार किये हैं, विद्वानोंने बड़े-बड़े ग्रन्थ लि[illegible] हैं, अध्यात्म तथा अन्य विषयोंमें जो उन्नति की है, [illegible] शोधोंमें प्रधान सहायता उनके गुप्त मनमें पुरानी योनियों[illegible] शुभ संस्कारोंसे मिली है।

हमारा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, परंतु विषय-वासनारूपी [illegible] उसे मलिन करता है। हमें चाहिये कि शारीरिक [illegible] मानसिक मलोंका—दोषोंका संशोधन करते हुए निरन्तर [illegible] ज्ञान और विवेकको बढ़ाते रहें, शुभ सात्त्विक परोपकारमय [illegible] करते रहें, जिससे शरीरमें अन्ततक शक्ति बनी रहे। [illegible] कर्मोंद्वारा हम नया और अच्छा जीवन प्राप्त करने[illegible] कामना रखें।

पुनर्जन्म—एक दार्शनिक विवेचन

(लेखक—साहित्य-महोपाध्याय पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज' शास्त्री, एम्० ए०, काव्यतीर्थ, व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, सांख्यदर्शन-योग-दर्शनाचार्य, वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

विश्वके यावदीय धर्मग्रन्थोंमें भारतीय सिद्धान्त-ग्रन्थ अपना सानी नहीं रखते। हमारे यहाँ वेदोंसे लेकर पुराणों तथा उपपुराणोंतक तथा अन्य ग्रन्थोंमें भी पुनर्जन्मसे सम्बद्ध विचार, मान्यताएँ तथा कथाएँ मिलती रही हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है, हुआ है कि प्रारब्धके वैचित्र्य-वश राजर्षि भरतको कालञ्जर गिरिपर मृगयोनिमें जन्म लेना पड़ा। 'कौशिक-संहिता'की एक कथाके अनुसार—कैलासपर स्थित वटकी छायामें कथा-श्रवण करती हुई गिरिराजनन्दिनीकी पलकें निद्राविभोर हो गयीं। वक्ता देवाधिदेव तब नितरां चकित हो उठे, जब उन्हें पता चला कि हुंकार भरनेवाला एक अण्डज मुमूर्षु शुकशावक है और वही शुक-शावक प्रारब्धवश द्वैपायनकी आँखोंका तारा लाड़ला शुकाचार्य होकर प्रकट हुआ। 'कथासरित्सागर' तथा बाणभट्टकी 'कादम्बरी'का वैशम्पायन-जैसा पण्डितप्रवर शुक क्या विस्मरणका विषय हो सकता है? अपनी ही प्रेयसी महाश्वेताके प्रकोपका शिकार होकर, उसे ब्राह्मणपुत्रसे भ्रष्ट होकर तिर्यग्योनिमें निवास करना पड़ा। सूफियोंके सुप्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'पद्मावत'का हीरामन तोता महाकाव्यमें ब्रह्मर्षि वसिष्ठकी भाँति पथ-प्रदर्शक एवं गुरुपदको अलंकृत करता प्रतीत होता है। इतना ही नहीं, देवत्वसे च्युत होकर धनद कुबेरके दोनों ही लाड़लों—नलकूबर और मणिग्रीवको जड़-(वृक्ष) योनिमें उतर आना पड़ा। श्रीमद्भागवतकी यमलार्जुन-की कथा क्या हमारी आँखोंपर पड़ी पट्टियाँ नहीं खोल देतीं? श्रीमदकी संक्षिप्त पर इतनी प्रभावोत्पादक आलोचना अन्यत्र नहीं मिलती। 'कादम्बरी'में भी लक्ष्मी एवं उसके ऐश्वर्यजनित अनर्थोंकी विस्तृत आलोचना 'शुकनासोप-देश'में की गयी है। पर देवर्षिद्वारा श्री(धन-)मदका निन्दन तो सद्यः प्रभाव डालता है। देखिये—आपकी वाणी कितनी प्रभावकर है—

> असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम्।
> आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते॥
> (श्रीमद्भा० १०।१०।१३)

अभिप्राय यह है कि 'श्रीमदसे अन्ध, श्रीभगवान् तथा उनके भक्तोंका भी तिरस्कार करनेवाले, आर्यमर्यादाको मिटानेवाले असत्पुरुषकी दरिद्रता ही आँखें खोलनेके लिये सबसे

घटना है। नारद, वाल्मीकि, कुम्भजन्मा (अगस्त्य) तथा वामदेवादि ऋषियोंके पुनर्जन्मोंकी कथाएँ रामायण-महाभारत तथा पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं। कहते हैं—मीराँ भी गोलोकवासिनी गोपियोंमें एक थीं। किसी शापके कारण उन्हें भी भारत-भूमिमें अवतरित होना पड़ा। सूरदासने भी कृष्णोपभुक्ता एक गोपीके पुनर्जन्मकी बात लिखी है, जो मुगल बादशाहके हरममें रहती थी। कवयित्री 'ताज', जिसकी तुलना आप और हम मीराँसे करते हैं, भी कृष्णोपभुक्ता एक शापग्रस्ता गोपी ही थी। ऐसी-ऐसी ढेरों कथाएँ—उपकथाएँ उपलब्ध हैं, जिनसे 'पुनर्जन्म'की पुष्टि होती है। 'योगवासिष्ठ' का 'लीलोपाख्यान' तो महर्षि वसिष्ठ तथा देवी अरुन्धतीके ही लीला एवं विदूरथके रूपमें जन्मान्तरोंकी घटनाएँ हैं।

हमारे दर्शन-शास्त्र तो स्पष्टतः 'पुनर्जन्मप्रतिपादक' हैं। अपने अकाट्य तर्कों तथा सबल युक्तियोंसे ये विश्वके उन सभी ग्रन्थोंको, जो पुनर्जन्मवादी सिद्धान्तोंसे दूर हैं, खुली चुनौती दे रहे हैं। **'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।'**—आद्यशंकराचार्यके इस कथनमें कितना सार है, कितना तथ्य है, यह तो विद्वानोंका विचारणीय विषय है। इसी पुनः पुनर्जन्मको सदाके लिये मिटा देनेके लिये दर्शनके चार प्रतिपाद्य विषय हैं। वे हैं—(क) हेय—दुःखका वास्तविक स्वरूप क्या है, जो 'हेय' अर्थात् त्याज्य है? (ख) हेयहेतु—दुःख कहाँसे उत्पन्न होता है? इसका वास्तविक कारण क्या है, जो हेय अर्थात् त्याज्य दुःखका वास्तविक हेतु है? (ग) हान—दुःखकी सर्वथा निवृत्ति अर्थात् दुःखका नितान्त अभाव क्या है? अर्थात् 'हान' किस अवस्थाको कहते हैं? (घ) हानोपाय—हान अर्थात् सर्वथा दुःख-निवृत्तिका उपाय क्या है! विचारणीय तो इतना ही है कि दुःख किसको होता है, क्यों होता है? जिसको दुःख होता है, यदि वह दुःख उसका स्वाभाविक धर्म होता

पुनर्जन्मके कारण ही आत्माके शरीर, इन्द्रियों [illegible] विषयोंसे सम्बन्ध जुड़ते रहते हैं और 'आत्मनो भोगायतनं शरीरम्।' न्यायसे उस जीवको सुख-दुःखके भोगोंके [illegible] बार-बार एक शरीरसे दूसरेमें भटकना पड़ता है। [illegible] शास्त्रोंमें ८४ लाख योनियोंकी चर्चा कपोल-कल्पना नहीं [illegible] यह तथ्यपूर्ण, मनोवैज्ञानिक एवं रहस्यातिरहस्यपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्त है। अतएव मीमांसकोंकी मोक्षकी परिभाषा [illegible] शब्दोंमें है—

'प्रपञ्चसम्बन्धविलयो मोक्षः। त्रेधा हि प्रपञ्चः। [illegible] बध्नाति तदस्य त्रिविधस्यापि बन्धस्य आत्यन्तिको वि[illegible] मोक्षः।'

(शास्त्रदीपि[illegible]

इस संसारके साथ आत्माके साथ आत्माके देहेन्द्रिय विषयोंके सम्बन्धके आत्यन्तिक विनाशका नाम ही मोक्ष [illegible]

'सांख्यकारिका' (१८) का श्लोक सांख्योक्त **'जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्।'** (२। १४९)—[illegible] भाष्य है। लिखा है—

जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत् प्रवृत्ते[illegible] पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्[illegible]

सचमुच ईश्वरकृष्णकी उक्त कारिका पुन[illegible] सिद्धान्तकी सिद्धिके लिये अकाट्य युक्तियाँ दे रह[illegible] यदि जन्म-जन्मान्तर नहीं होते तो जीवकी अनेक अ[illegible] देखनेमें क्यों आतीं? जन्मादि व्यवस्थासे ही यह सिद्ध [illegible] है कि पुरुष बहुत हैं; क्योंकि यदि सभी अन्तःक[illegible] वृत्तियोंका आधार एक ही पुरुष होता तो य[illegible] है, यह पट है, इस घटको मैं जानता [illegible] इस पटको मैं देखता हूँ। इस प्रकारका [illegible] जिस क्षणमें एक अन्तःकरणको होता, उसी क्षण [illegible] अन्तःकरणोंमें होना चाहिये; क्योंकि वह एक ही आश्रयी है। लेकिन जगत्में ऐसा देखनेमें नहीं [illegible] इस कारण पुरुष अनेक हैं। और युक्तियाँ लीजिये—

जन्म, मरण और करणों (अन्तःकरण, इन्द्रियों) के अलग-अलग नियमोंसे, एक साथ प्रवृत्त न होनेसे तथा न गुणोंके भेदसे पुरुषका अनेक होना सिद्ध है। सभी रुप न एक साथ जन्म लेते हैं, न एक साथ मरते हैं। नका अलग-अलग जन्म-मरण होता है। इसी प्रकार करणोंमें भेद है। कोई अंधा है, कोई बहरा है, कोई लूला है। भी एक-जैसे नहीं हैं। सबमें एक-जैसी प्रवृत्ति भी नहीं अर्थात् एक समयमें सब एक ही कर्म नहीं करते। जब ई सोता है, दूसरा जागता है, तीसरा रास्ता चलता ता है, इत्यादि। सभीके गुण भी एक-जैसे नहीं होते। ई सात्त्विक होता है तो कोई राजस तथा कोई तामस । कोई रूपवान् होता है और कोई कुरूप। अनेक सादृश्य हैं; अतः जन्म-मरण सापेक्ष होता है। जन्मके द मरण और मरणके बाद जन्म। जन्मना कर्म तथा कर्मणा न्म-शृङ्खलाएँ चलती हैं। ये सिलसिले मोक्षतक बने रहते हैं। ; अनेकत्व (बहुत्व) बद्ध पुरुषोंकी अपेक्षासे होता है, न मुक्त पुरुषोंकी अपेक्षासे।

चार्वाकादि नास्तिक दर्शनकारोंकी दृष्टि भौतिक शरीरतक सीमित है। मृत्युके बाद स्थूलशरीर ही जलाया या दफनाया ता है। महर्षि कपिलके 'अविशेषाद्विशेषारम्भः।' (सांख्य० १) सूत्रके अनुसार अविशेषात् अर्थात् जिससे छोटी और कोई न हो सके, ऐसे भूत-सूक्ष्म, अर्थात् पञ्चतन्मात्राओंसे ष स्थूल महाभूतोंकी उत्पत्ति होती है; क्योंकि सुखादिका स्थूल भूतोंमें हो सकता है। सूक्ष्मभूत योगी महात्माओंके यमें प्रकाश होते रहते हैं। बाईस तत्त्वोंमेंसे स्थूल-सूक्ष्म रोंकी उत्पत्ति होती है। स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण— रके तीन भेद हैं। स्थूलशरीर किसे कहते हैं? जिसका त्-अवस्थामें अभिमान होता है। यह माता-पिताके वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला, अन्नसे बढ़नेवाला, पञ्चभूतों— ी, जल, अग्नि, वायु और आकाशसे बना हुआ है। तमोगुण रजोगुणसे दबा हुआ होता है, तब जाग्रत्- स्थामें सारे कार्य-कलाप स्थूल जगत्में इसी स्थूलशरीर- । किये जाते हैं।

इस प्रत्यक्ष देहमें कौमार, यौवन और जरा-जैसी स्थाएँ दिखायी पड़ती हैं; अतः जन्म-मरण इसी स्थूल का होता है। इसीमें जरा (बुढ़ापा) तथा अनेकानेक उत्पन्न होते हैं।

'सूक्ष्म' अथवा लिङ्ग-शरीर किसको कहते हैं? मन, अहंकार और इन्द्रियाँ, जिसके द्वारा अपने-अपने तत्पर रहती हैं, उसको लिङ्ग-शरीर कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ, शक्तिमात्र नासिका, रसना, चक्षु, श्रो त्वचा तथा पाँचों कर्मेन्द्रियाँ, शक्तिमात्र हस्त, पाद, गुदा और उपस्थ तथा ग्यारहवाँ मन जिसके द्वारा करते हैं तथा जिसमें संकल्प-विकल्प होते हैं, पञ्च सू अथवा प्राण और अहंकार, अहंता पैदा करनेवाली बुद्धि, चित्तसहित निर्णय करनेवाली तथा भावों विचारों तथा संस्कारोंको सँजोकर रखनेवाली शक्ति— अष्टादश शक्तियोंका समूह 'सूक्ष्मशरीर' कहलाता स्वप्न—जब बाहरके कार्योंसे स्थूलशरीर थक जाता है, तब तमोगुण रजोगुणको दबाकर स्थूलशरीरको स्थूल जगत्में कार्यरत रहने देनेमें असमर्थ कर देता है। किंतु तमोगुणसे दबा हुआ सूक्ष्मशरीर जाग्रत् अवस्थाकी स्मृतिके कल्पित विषयोंमें कार्यारम्भ कर देता है, वह 'स्वप्न' कहलाता है। इसी सूक्ष्म अथवा लिङ्ग-शरीरद्वारा ही चित्तमें जन्म, आयु तथा भोग देनेवाले वासनाओंके संस्कार संचित (इकट्ठे) रहते हैं। जिस प्रकार चर्खीका डोरा टूटनेपर पतंग जब दूसरी चर्खीके डोरेमें जोड़ दी जाती है तो उसका सम्बन्ध पुनः उसी चर्खीसे हो जाता है। इसी प्रकार मृत्युके समय हृदय-रूपी चर्खीसे डोरी टूटनेपर सूक्ष्मशरीररूपी पतंग उड़ता हुआ ऐसे गर्भके पास पहुँच जाता है, जहाँ उसकी वासनाओं (प्रधान कर्म-विपाक) की पूर्ति करनेवाले उसके समान संस्कार होते हैं। कतिपय योगाचार्योंका मत है कि सूक्ष्मशरीरका सूक्ष्मजगत्में भ्रमण नहीं होता। सूक्ष्म जगत्में काल और दिशाका ऐसा भेद नहीं रहता, जैसा स्थूल जगत् तथा स्थूलशरीरके व्यवहारमें होता है; केवल वृत्तियाँ जाती हैं, अर्थात् चित्तमें इन्हीं वृत्तियोंद्वारा ऐसा परिणाम होता है तथा सूक्ष्मशरीर जाता हुआ प्रतीत होता है। जिस प्रकार डोरीसे बँधा हुआ पक्षी अनेक दिशाओंमें घूमकर दूसरे स्थानमें आश्रय न पाकर पुनः अपने बन्धन-स्थलपर ही आ जाता है, उसी प्रकार यह मन भी अनेक दिग्देशोंमें घूम-घामकर कहीं सहारा न मिलनेके कारण प्राणका ही सहारा लेता है। इसलिये कि मन प्राणके साथ बँधा हुआ है।

'कारणशरीर' किसे कहते हैं? लिङ्ग अथवा सूक्ष्मशरीरके बीज कारणको ही 'कारणशरीर' कहते हैं। बाईस तत्त्व शरीरके कारण हैं और देखनेमें ऐसा ही आता है कि कारणके

बिना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। अतः सिद्ध है कि इन्हीं २२ तत्त्वोंसे संसारकी उत्पत्ति होती है। अविशेष जो सूक्ष्म भूत हैं, उनकी सृष्टि-प्रवृत्ति तभीतक रहती है, जबतक विवेक (ज्ञान) नहीं होता। विवेक होते ही सूक्ष्म भूतोंकी प्रवृत्ति तिरोहित हो जाती है।

पुनः पुनर्जन्मोंके कारण कर्माशय हैं। पातञ्जलदर्शनके साधनपादका १३ वाँ सूत्र—

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।'

'अविद्या आदि क्लेशोंकी जड़के होते हुए उस (कर्माशय) का परिणाम जन्म, आयु और भोग होता है।' बहुत कालतक किसी जीवात्माका एक शरीरके साथ सम्बन्ध बना रहना आयु' पदका अर्थ है। इन्द्रियोंके विषय रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श ही भोग हैं। क्लेश जड़ है। उन जड़ोंसे कर्माशयका वृक्ष बढ़ता है। उस वृक्षमें तीन प्रकारके फल लगते हैं—जाति, आयु और भोग। यह वृक्ष तभीतक फल देता रहता है जबतक अविद्यादि क्लेशरूपी उसकी जड़ें विद्यमान रहती हैं। इससे उत्पन्न हुए संस्कार भी अनन्त हैं। मनकी वृत्तिरूपी कर्म भी अनन्त हैं। ये संस्कार चित्तमें जन्म-जन्मान्तरोंसे संचित चले आ रहे हैं। चित्तका अर्थ ही है 'संचित' अर्थात् इकट्ठा। जिन कर्माशयोंके संस्कार चित्तमें प्रबलरूपसे उत्पन्न होते हैं, वे 'प्रधान' तथा शिथिलरूपसे उत्पन्न होनेवाले 'उपसर्जन' कहलाते हैं। मृत्युके समय 'प्रधान' कर्माशय पूरे वेगसे जाग उठते हैं और अपने-जैसे पूर्वजन्मोंके कर्माशयके संचित संस्कारोंके अभिव्यञ्जक होकर उन्हें झकझोरकर जगा देते हैं। इन्हीं प्रधान संस्कारोंके अनुसार ही अगला जन्म देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदिमें होता है। गुरुगोविन्दके 'विचित्र नाटक' में उनके पूर्वजन्मके कर्माशयोंका तथा उनसे प्रेरित पुनः उनके गुरुगोविन्दके रूपमें जन्म लेनेका उल्लेख मिलता है। कर्माशयों-के अनुकूल ही उनका भोग नियत होता है। आयु भी उतनी ही होती है, जिसमें उन कर्माशयोंका फल भोगा जा सके।

भविष्य जन्मोंमें भोग्य है। जब चित्तमें क्लेशोंके संस्कार जमे होते हैं, तब उनसे 'सकाम कर्म' उत्पन्न होते हैं। रजोगुणके बिना कोई क्रिया नहीं हो सकती। रजोगुणका जब सत्त्वगुणसे मेल होता है, तब ज्ञान, वैराग्य, धर्म तथा ऐश्वर्यके कार्योंमें प्रवृत्ति होती है और जब तमोगुणके साथ मेल होता है, तब तद्विपरीत—अज्ञान, अवैराग्य, अधर्म तथा अनैश्वर्यके कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है। ये ही दोनों प्रकारके कर्म 'शुभ-अशुभ', 'शुक्ल-कृष्ण' तथा 'पाप-पुण्य' कहलाते हैं। इन कर्मोंसे इन्हींके अनुकूल फल भोगनेके बीजरूप जो संस्कार चित्तमें पड़ते हैं, उन्हींको 'वासना' कहते हैं। यही मीमांसकोंका 'अपूर्व' तथा नैयायिकोंका 'अदृष्ट' कहलाता है। पुण्य-कर्माशय मनुष्योंसे ऊँचे देवताओं आदिके सदृश भोग देनेवाले होते हैं। पाप-कर्माशय मनुष्येतर योनियों—पशु-पक्षीमें ले जानेवाले तथा तत्तुल्य भोग देनेवाले होते हैं। इस प्रकार वासनाएँ अनन्त हैं, उनके संस्कार अनन्त हैं, मनोवृत्तियाँ अनन्त हैं तथा फल-भोग भी अनन्त होते हैं। कुछ कर्माशय वर्तमान जन्ममें, कुछ अगले जन्ममें तथा कुछ दोनों ही जन्मोंमें फल देते हैं। उपर्युक्त जाति, आयु और भोग इनका परिणाम है इसीलिये योगदर्शनमें इन्हें 'अदृष्ट जन्मवेदनीय' (२।१२) कहा गया है।

सामान्यतः मनुष्योंका जन्म मनुष्योंमें ही होता है। उससे ऊँची देवादि योनियोंमें होता है तथा शापवश अथवा विशेष कारणोंसे विशेष अवस्थामें तिर्यक् (पशु-पक्षी) योनियोंमें भी जाना पड़ जाता है।

गुरु नानकने पितृपक्षके अवसरपर लाहौरके सेठ दुलीचन्दको उनके पिताको मांसाहारी भेड़ियेके शरीरमें दिखलाया था। पूछनेपर गुरुने यही कारण बतलाया कि मृत्युके समय उसके पिताके मनमें मांस-भक्षणकी उत्कट इच्छा जग गयी थी। 'मुण्डक'में कहा है—

नों पुत्रोंको) वासनाके अनुसार नौ ब्रह्माके रूपमें उत्पन्न बतलाया गया है । लिखा है—

'मनसैव भवानां दाता ऐन्दवाः पश्य कौतुकम् ।'

श्रीराम-कृष्णादि अवतारी पुरुषोंके जन्म-कर्म 'दिव्य' होते हैं । उनकी सारी लीलाएँ वाणी-मनोबुद्धिसे अतर्क्य हैं । उनके दृश्यमान शरीर भी पाञ्चभौतिक नहीं होते—दिव्य तथा चिन्मय—सच्चिदानन्दमय होते हैं । गीता (४ । ९)में श्रीमुखकी वाणी है—

'जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।'

पुनर्जन्म केवल उसी महापुरुषका नहीं होता, 'जो पुरुष अन्तकालमें भगवान्का ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह उन्हींके स्वरूपको प्राप्त होता है; इसमें कुछ भी संशय नहीं है*।' परब्रह्म परमात्मा ही जीवोंका एकमात्र उपास्य है । ब्रह्माकी सृष्टिमें नीचेसे ऊपरतक चौदह भुवनोंमें जानेवालोंको लौट-लौटकर आना पड़ता है । ये पुनरावर्ती लोक हैं । भगवान्ने कहा है—'हे कुन्तीपुत्र ! मुझे प्राप्त कर पुनर्जन्म नहीं होता ।'—

'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।'

(गीता ८ । १६)

जीवात्मा तो अज्ञानके कारण कर्ता और भोक्ता है; किंतु परमात्मा सर्वथा निर्विकार है । वह केवलमात्र साक्षी है—सर्वद्रष्टा है । इसलिये जीवोंके कर्मफलस्वरूप सुख-दुःखादिके सदृश उसका कर्मफलसे सम्बन्ध होना सम्भव नहीं । मुण्डक उपनिषद्का (३ । १ । १) वाक्य है—

'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।'

वेदान्तमें सर्वत्र जीवात्माको ही 'भोक्ता' बतलाया गया है, परमात्माको नहीं । यह कहा गया है कि समस्त यज्ञों तथा तपस्यादिमें देवता आदिके रूपमें परमेश्वर ही शुभ कर्मोंका भोक्ता है—पर वह है सर्वथा निर्लेप भोक्ता (सबका आधार होनेके कारण यह सत्य भी है) । श्रुति परमात्माके लिये 'असंगो नहि सज्जते' का प्रयोग करती है ।

जीवात्मा पुनः पुनर्जन्मके चक्करमें पड़ा रहता है । वेदान्तने जीवात्माको 'नियम्य' तथा परमात्माको 'नियन्ता' बतलाया है । शरीररूप वृक्षपर रहनेवाला यह जीवात्मा शरीरमें आसक्त होकर डूब रहा है । अपनेको सर्वथा असमर्थ समझकर मोहमें पड़कर शोक करता रहता है; परंतु जब वहीं स्थित भक्तजनोंद्वारा सेवित अपनेसे भिन्न परमेश्वरको देख लेता है, तब उसकी महिमाको समझकर सर्वथा शोकरहित हो जाता है । कैवल्य, निर्वाण, मोक्ष या मुक्तिकी प्राप्तिसे पूर्व बार-बार जन्म-मरण होते रहते हैं ।

वेदान्तमें प्रतिपादित—'दहर उत्तरेभ्यः ।' (ब्रह्मसूत्र १ । ३ । १४)के अनुसार वह परमात्मा ही एकमात्र अन्वेष्टव्य है, ज्ञातव्य है, द्रष्टव्य है; अतः इस ब्रह्मके नगररूप मनुष्य-शरीरमें कमलके सदृश आकारवाला जो घर है, उसी हृत्पद्ममें जो सूक्ष्म आकाश है, उसके भीतर जो वस्तु है, वही जीवात्माकी जिज्ञासाका विषय है । उसका चरम लक्ष्य है ।

'जो शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धसे रहित, अविनाशी, नित्य, अनादि, अनन्त, महत्से परे तथा ध्रुव (अटल-अचल) है, उस तत्त्वको जानकर मनुष्य मृत्युके मुखसे अर्थात् जन्म-मरणके बन्धनसे छूट जाता है ।' (कठो० १ । ३ । १५)

कठोपनिषद्में—मृत मनुष्यके विषयमें कोई तो कहता है, यह रहता है और कोई कहता है, नहीं रहता है, ऐसी आशंका ब्रह्मचारी नचिकेताने उठायी है, जिसका यमराजने युक्तियुक्त समाधान किया है, नचिकेताके प्रश्न अग्नि, जीवात्मा तथा परमात्माकी जिज्ञासाके लिये हैं ।

दर्शनकी दृष्टिमें जन्म-मरण शब्द सापेक्ष हैं; एक-दूसरेका पूरक है, आप और हम जन्म-मृत्युके बारेमें प्रायः ही बातें करते हैं; पर इन दोनों शब्दोंके वास्तविक तात्पर्यपर विचार नहीं करते । विश्वकी किसी भी भाषामें, संस्कृतको छोड़कर, जन्म और मृत्युका दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विवेचन नहीं मिलता । अंगरेजी भाषाके अनुसार तो ये दोनों मात्र दो विशेष घटनाएँ हैं, जो पुनः-पुनः घटती रहती हैं । लेकिन घटित होनेका कारण क्या है, इस प्रश्नका उत्तर मात्र मौन है ।

किंतु संस्कृतमें, जो एकमात्र पूर्णतम भाषा है, जिसे सारा विश्व 'देववाणी' स्वीकार कर चुका है, इसमें एक भी शब्द आपको ऐसा नहीं मिलेगा, जिसे आप यह कह सकें कि यह तो आकस्मिक रूपसे इसमें आ घुसा है ।

---

* अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
(गीता ८ । ५)

संस्कृतमें 'जन्म' शब्दका क्या अर्थ है ? 'जनी प्रादुर्भावे' धातुसे व्युत्पन्न 'जन्म' शब्द सिद्ध होता है, जिसका अर्थ है—प्रकट होना। प्रकटसे अभिप्राय है—जो वस्तु पहले अप्रकट थी, उसीका प्रकट होना अर्थात् आँखोंके सामने आकर देखने योग्य हो जाना। संस्कृतमें इसका दूसरा पर्याय है 'उत्पत्ति'। अंग्रेजीमें इसे 'ऑरिजिन' (Origin) शब्दसे व्यक्त किया गया है। इस शब्दका अभिप्राय है उद् (ऊपर) पद् (चलना), अर्थात् ऊपर आकर प्रकट होना। दूसरे शब्दोंमें गुप्त वस्तुका ऊपर आकर प्रकट होना, बाहर आना है। संस्कृतमें इसके लिये तीसरा शब्द है 'सृष्टि'। अंग्रेजीमें 'क्रिएशन' (Creation) है। यह सृष्टि शब्द 'सृज् विसर्गे' धातुसे व्युत्पन्न है। इसका अर्थ भी बाहर आना—प्रकट होना ही है।

इसी प्रकार 'मृत्यु' शब्दको लें। इसका पर्याय संस्कृतमें 'नाश' है। यह 'नश् अदर्शने' धातुसे व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है—देखने योग्य नहीं रह जाना। ये चारों शब्द बतलाते हैं कि जन्म तथा मृत्युका अर्थ नव-जीवनकी प्राप्ति अथवा समाप्ति होना नहीं है।

पुनर्जन्म भारतीय दर्शनका एक प्रमुख तथा विवेच्य विषय है। यहाँके बड़े-बड़े दार्शनिकों, तत्त्व-चिन्तकों, मनीषियों और तार्किकोंने इसपर बड़ी ही गम्भीरतापूर्वक मनन-चिन्तन किया है। आस्तिक दर्शनोंमें पुनर्जन्मका सिद्धान्त निर्विवाद-सा मान लिया गया है। बौद्ध तथा जैनदर्शन इसे डंकेकी चोट स्वीकार करते हैं। बौद्ध जातकोंमें तो तथागतके पूर्वके हजारों जन्मोंकी कथाएँ लिपिबद्ध हो चुकी हैं। न्याय-दर्शनका तो यह एक प्रतिपाद्य सिद्धान्त रहा है। गीता-जैसी सर्वतन्त्र-सिद्धान्त एवं विश्व-सम्मान्य पुस्तकमें भी पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्मका उल्लेख है।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'

(गीता २। २७)

श्रीभगवान्‌की वाणी ध्रुव-सत्यकी ओर अंगुल्यानिर्देश कर रही है। जन्म और मरणमें अन्योन्य सम्बन्ध है। जन्म है तो मृत्यु भी है और मृत्यु है तब जन्म भी स्वयंसिद्ध है। मृत्यु सिद्ध है तो जन्म क्योंकर असिद्ध हो सकता है ?

पातञ्जलदर्शनमें इसके लिये 'अभिनिवेश' शब्द आया है। अभिनिवेश क्या है ? 'मरण-भीति'। मरणदुःखके ज्ञानसे भिन्न मरण-भय हो ही नहीं सकता। अतएव पूर्वजन्ममें अनुभूत मरण-दुःखकी स्मृतिसे ही मरण-त्रास उत्पन्न होता है। मरण-भीतिके कारण ही पूर्वजन्म अनुमित होता है।

जीवको आचार्य रामानुजने अपने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तके प्रतिपादनमें अणु, अज्ञ, क्षुद्र, अल्पज्ञादि विशेषणोंसे विभूषित किया है। अथच जीव अल्पज्ञ है और तद्विपरीत ब्रह्म सर्वज्ञ है। सांख्यने लिखा है—'स हि सर्ववित् सर्वकर्ता' (३।५६)। पातञ्जल अन्य दर्शनोंसे लोहा लेता हुआ प्रमाणित करता है कि 'ज्ञान जहाँ चरमोत्कर्षको पहुँचा है, वह अवश्य ही सर्वज्ञ है। वही ईश्वर है।'

जीव काय, क्लेश, कर्म, विपाक तथा आशय-सम्पर्कयुक्त है—अपरामृष्ट या निर्भिन्न नहीं। ये क्लेशादि सभी भोगोंके कारण हैं और शरीर भोगायतन है। वात्स्यायन कहते हैं—'आत्मनो भोगायतनं शरीरम्।' अर्थात् 'शरीर ही आत्माके शुभाशुभ भोगोंका आयतन है।' शरीर-धारणके अतिरिक्त शुभाशुभ कर्मोंका भोग सम्भव नहीं। अथच शरीर-धारण पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मका कारण है। कारणसे हमारा अभिप्राय कर्म-विपाक है। शरीरका अर्थ है—'शीर्यते (प्रतिक्षणम्) इति शरीरम्।'

चूँकि यह शरीर अनुक्षण क्षीयमाण है, अतएव सड़ने-गलनेके कारण ही बुद्धिमानोंने इसको शरीरकी संज्ञा दी है। किसी भी प्रकारके शरीरकी प्राप्तिका उद्देश्य पूर्वतन कर्मोंका भोग तथा नवीन कर्मोंका आरम्भ है। 'योनिज' तथा 'अयोनिज'—शरीर दो प्रकारके माने गये हैं। शुक्र-शोणितके संयोगसे उत्पन्न शरीर 'योनिज' एवं तद्भिन्न 'अयोनिज' कहलाता है। 'योगार्णव'के अनुसार (१) उद्भिज, (२) स्वेदज, (३) अण्डज तथा (४) जरायुज—शरीर चार प्रकारके होते हैं। भूमिको फोड़कर निकलनेवाला तृण-लता-गुल्मादि 'उद्भिज', स्वेद (पसीने) से उत्पन्न कृमि-कीटादि 'स्वेदज', अंडेसे उत्पन्न 'अण्डज' तथा जरायु (गर्भ) से उत्पन्न 'जरायुज' कहलाता है।

पूर्वजन्म, पुनर्जन्म तथा पुनः पुनर्जन्म—सभीका एक कारण है—कर्म। कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण, शुक्ल और अशुक्ला-कृष्णा के भेदसे—कर्म चार प्रकारके हैं। निरवच्छिन्न पाप-कर्मका नाम 'कृष्ण कर्म' है। बहिःसाधन-साध्य कर्मका नाम 'शुक्ल-कृष्ण' है। कारण, बहिःसाधन-साध्य यज्ञादिमें कुछ-न-कुछ परपीड़न तथा परानुग्रह रहते ही हैं। तपस्या, स्वाध्याय तथा ध्यानसाध्य कर्म 'शुक्ल'

है । योगियोंका योगाभ्यास 'अशुक्लाकृष्ण' है, इसलिये कि उसमें परपीड़ाका सम्पर्क नहीं, अथच उसका फल कृष्णार्पित है । परमात्माके साक्षात्कारमें तो ये कर्मविपाक-जनित फलभोग विलम्ब करनेवाले विघ्न ही हैं । जिनके मनमें भोग भोगनेका संकल्प नहीं है, उनके लिये जन्म-मरणके बन्धनसे छूटकर तत्काल परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाना ही उनका मुख्य फल बतलाया गया है । ब्रह्मज्ञानका फल भी जन्म-मृत्युरूप संसारसे छुटकारा पाना ही है । यज्ञ, दान और तपरूप तीन कर्मोंका करनेवाला मनुष्य जन्म-मृत्युसे तर जाता है । श्रुति कहती है—'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।' (श्वेताश्वतर० ३ । ८) अर्थात् 'उस परमात्माको जानकर ही मनुष्य जन्म-मरणकी सीमाको लाँघ जाता है । परमपद-प्राप्तिके लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है ।' (शेष आगे)

जन्म-मृत्यु, अमरत्व, परलोक और पुनर्जन्मका स्वरूप तथा रहस्य

(लेखक—श्रीश्रीराममाधव चिंगले, एम्० ए०)

'स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयꣳ हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद ॥' *

(बृहदारण्यकोपनिषद् ४ । ४ । २५)

१—प्रस्तुत विषयका महत्त्व

(क) भारतीय संस्कृतिमें इसका स्थान और महत्त्व

जन्म-मृत्यु सबके दैनन्दिन अनुभवके विषय हैं; क्योंकि वे प्रत्यक्ष हैं । तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि सभी इनके वास्तविक रहस्यसे परिचित हैं; क्योंकि इन्हींके कारणस्वरूप और फलस्वरूप पूर्वजन्म, पुनर्जन्म तथा परलोक और इनका अन्तिम पर्यवसान अमृतत्वरूप मोक्ष इत्यादि प्रत्यक्ष प्रमाणगोचर नहीं है । इसीलिये अनादिकालसे ये विषय विवादास्पद रहे हैं । मुमुक्षु बालक नचिकेताने यमराजसे साग्रह यही तो प्रश्न पूछा था—'येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।' "मृत मनुष्यके विषयमें यह संदेह है कि कोई तो कहते हैं वह 'रहता है' और कोई कहते हैं 'नहीं रहता' । इसमें सच्चाई क्या है ?" इस विषयका विचार करते समय पहली महत्त्वकी बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि प्रत्यक्ष प्रमाण ही तो एकमात्र प्रमाण नहीं । निरे प्रत्यक्ष प्रमाणको माननेका पर्यवसान तो चार्वाकदर्शनमें ही हो सकता है । प्रमाणविचारमें अनुमान, शब्द इत्यादि अन्य प्रमाण तथा उन्हींके पोषक विद्वदनुभव इत्यादि भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं । इनके द्वारा आत्माकी अमरता तथा उसके व्याप्य पूर्वजन्म, पुनर्जन्म तथा परलोकादिकी सिद्धि हो जाती है । इनमें दृढ़ विश्वास और उससे निकलनेवाले निष्कर्ष व्यष्टि तथा समष्टि जीवनपर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकते । इन्हींके आधारपर हमारे नैतिक, धार्मिक तथा तात्त्विक या एक शब्दमें हमारे आध्यात्मिक जीवन और संस्कृतिकी सिद्धि होती है । इसके विपरीत इनमें अविश्वास इन सबकी जड़ ही उखाड़ फेंकता है । इनके बिना हमारा जीवन समस्त उदात्त मूल्योंसे शून्य, निरा पशु-तुल्य रह जाता है । इसीलिये भारतकी अध्यात्ममय संस्कृतिमें इनका पूरा-पूरा महत्त्व स्वीकार किया गया है और इन्हें जीवनव्यापी स्वरूप दिया गया है । हमारे 'संस्कार' जन्म-पूर्व तथा मरणोत्तर जीवनको भी व्याप्त किये हुए हैं । हमारा धर्म तथा दर्शन इहलोकतक ही सीमित न होकर पग-पगपर जन्मान्तर तथा परलोकको भी दृष्टिमें रक्खे हुए है । इसी प्रकार हमारा जीवनव्यापी मानवधर्म मनुष्यको अधिकारभेदसे साक्षात् या परम्परया आत्म-साक्षात्काररूप परमधर्म यानी मोक्षरूप परम पुरुषार्थकी ओर ही प्रवृत्त करता है । इसी आशयसे महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्मृतिमें कहते हैं—

भारतमें मरणोत्तर जीवनका कितना महत्त्व है, यह बात भारतीय दर्शनके अनन्य प्रेमी, जर्मन विद्वान् पॉल डायसन (Paul Deussen) के 'उपनिषद् दर्शन' (The Philosophy of the Upanishads) नामक ग्रन्थके निम्न अवतरणसे देखी जा सकती है—'मरणोत्तर मनुष्यकी क्या गति होती है?' यह प्रश्न हमें जीवात्माके पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी ओर ले जाता है जो कि भारतीय दर्शनका अत्यन्त मौलिक और प्रभावकारी सिद्धान्त है और जो उपनिषद्कालसे लेकर आजतक भारतीय चिन्तनमें प्रमुख स्थान रखता आया है। भारतमें आज भी यह सक्रियरूपसे अत्यधिक प्रभावशील है।' (पृ० ३१३)

भगवल्लीन स्व० श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने इस विषयमें लिखा है—'आत्माकी उन्नति तथा जगत्‌में धार्मिक भाव, सुख-शान्ति और प्रेमके विस्तारके लिये तथा पाप-तापसे बचनेके लिये भी परलोक एवं पुनर्जन्मको मानना आवश्यक है।' (तत्त्व-चिन्तामणि भाग ५)

आज भौतिकवाद तथा जडवादकी ओर उसके फलरूप देहात्मवादकी वृद्धि हो रही है, जो अनेक अनर्थोंको जन्म दे रही है। एकमात्र इसी लोक और इसी जन्मकी ओर ध्यान केन्द्रित करनेके कारण जीवन-संघर्ष अत्यन्त तीव्र हो गया है और सम्पूर्ण जीवन ही समस्यामय बन गया है। इस कारण मानसिक तनाव तथा अशान्तिकी अत्यधिक वृद्धि हो रही है। इन सब बातोंका दुष्परिणाम जीवनका भार असह्य होकर बढ़ती हुई आत्महत्याओंके रूपमें दिखायी दे रहा है। यदि इन अनिष्ट प्रवृत्तियोंमें रोक लगाना हो तो धर्ममें श्रद्धा, ईश्वरमें विश्वास, आत्माकी अमरता, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म तथा परलोकमें विश्वास रखना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा करनेपर मनुष्यके मनमें पापभीरुता और कार्याकार्यका विवेक जाग्रत् होगा और मनुष्य-जन्मका तथा चित्तकी साम्यावस्थाका महत्त्व मालूम होगा और आत्मघातके सम्भाव्य दुष्परिणामोंका ज्ञान होकर उस ओर उसकी भूलकर भी प्रवृत्ति न होगी।

(ख) पाश्चात्य विचारकोंका इस विषयमें समर्थन

सुप्रसिद्ध यूनानी तत्त्वज्ञ प्लेटो (Plato) ने तो दर्शनकी व्याख्या ही 'मृत्यु तथा मरणका प्रदीर्घ अभ्यास' ("One long study of death and dying") इस प्रकार की है।

प्लेटोके सुयोग्य शिष्य अरस्तू (Aristotle) कहते हैं, 'हमें इस मत-प्रणालीका कदापि आदर नहीं करना चाहिये कि चूँकि हम मानव तथा मर्त्य हैं, इसलिये हमें अपने विचार मानव तथा मृत्युलोकतक ही सीमित रखने चाहिये। चाहिये तो यह कि हम अपने जीवनके दैवी अंशको जाग्रत् करके अमरत्वका अनुभव करनेमें कोई कसर न उठा रखें।'

लूथर (Luther) के अनुसार भावी जीवनके निषेधका अर्थ होता है—'स्वयं ईश्वरका तथा हमारे उच्चतर नैतिक जीवनका निषेध और स्वैराचारका स्वीकार।'

फ्रेंच धर्मप्रचारक मसिलाँ (Massilon) तथा ईसाई संत पॉल (St. Paul) के अनुसार 'देहके साथ ही आत्माका नाश माननेका अर्थ होता है—विवेकपूर्ण जीवनका अन्त और विकारमय जीवनके लिये द्वारमुक्त करना।'

सुप्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक कांट (Kant) ने 'परिपूर्ण नैतिक तथा सदाचारसम्पन्न जीवनकी प्राप्ति तथा उसके फलस्वरूप मिलनेवाली सुखप्राप्तिके लिये आत्माके अमरत्वको माननेकी आवश्यकता सिद्ध की है।'

फ्रेंच विचारक रेनन (Renon) के अनुसार 'भावी जीवन तथा आत्माके अमरत्वमें अविश्वासका पर्यवसान मानवके भयंकर नैतिक तथा आध्यात्मिक पतनमें होना अनिवार्य है।'

मॅकडूगल (Mc Dougall) के अनुसार 'भावी जीवनमें विश्वास उठना हमारी सभ्यताके लिये तथा हमारे नैतिक जीवनके लिये एक भयावह संकट होगा।' श्रीमॅकडूगलने अपना 'शरीर और मन' (Body and Mind) नामक ग्रन्थ भावी जीवनमें पुरातन तथा विश्व-व्यापक विश्वासको वैज्ञानिक आधार प्रदान करनेके लिये ही लिखा है।

मॅक टेगार्ट (Mc Taggart) के अनुसार 'आत्माके अमरत्वकी साधक युक्तियोंके द्वारा ही हमारे भावी जीवनके साथ ही पूर्वजन्मकी भी सिद्धि हो जाती है। एकके बिना दूसरेमें विश्वास तर्कसंगत और युक्तियुक्त नहीं।'

मानव-वंश-शास्त्रज्ञोंके अनुसार 'मरणोत्तर जीवनमें विश्वास सभ्यताके शैशव-कालसे ही व्यापकरूपसे प्रचलित रहा है।'

सर जेम्स फ्रेजर (Sir James Frazer) के अनुसार 'वन्य जातियोंमें मरणोत्तर जीवन कल्पनामात्र न होकर एक निश्चयात्मक तथ्य रहा है।'

श्रीएडमंड होम्स (Edmond Holmes) खुले हृदयसे निम्न स्वीकृति देते हैं—'पुनर्जन्मके सिद्धान्तके साथ ही कर्म-सिद्धान्तने मेरे जीवनमें प्रवेश किया और मेरे हृदयने सहर्ष उसका स्वागत किया । इसके कारण मेरी हृदयस्थ न्यायभावनाका पूर्ण समाधान हो गया ।'

सर हेनरी जोन्स कहते हैं—'अमरत्वके निषेधका अर्थ होता है—पूर्ण नास्तिकता ! अमरत्वको स्वीकार करके ही हम पूर्णातिपूर्ण विश्वपतिमें तथा उसकी सुसम्बद्ध एवं अर्थपूर्ण रचनामें विश्वास रख सकते हैं । अन्यथा यह विश्व यादृच्छिक तथा अविचारमूलक ही सिद्ध होगा ।'

जे. बी. प्रट कहते हैं—'हिंदूधर्मकी तरह ईसाईधर्ममें भी अमरत्वको धर्मका एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग माना गया है ।'

श्री प्रिंगल पैटिसन (Pringle Pattison) अपने 'अमरत्वका विचार' (The Idea of Immortality) नामक ग्रन्थमें (जिसमेंसे कि उपर्युक्त अधिकांश अवतरण लिये गये हैं) कहते हैं—'यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि मृत्यु-विषयक चिन्तनने ही मनुष्यको सच्चे अर्थमें मनुष्य बनाया है । उसके दर्शन, उसके धर्म तथा उसके सर्वश्रेष्ठ काव्यके मूलमें मृत्यु तथा उसे अन्तिम तथ्य न माननेकी प्रेरणा ही रही है ।'

प्रो० एस० सी० नारथ्राप (S. C. Northrop) कहते हैं कि 'आत्माके अमरत्वका निषेध करनेवाले पाश्चात्य जडवादी भी भौतिक शास्त्रान्तर्गत शक्ति तथा अचेतन द्रव्यकी अक्षय्यताको मानकर एक तरहसे अमरत्वकी ही स्वीकृति देते हैं ।'

श्री ई. एम. मेलीन (E. M. Meleen) के अपने बद्धमूल है कि मानो उसे विधाताने ही वहाँ निहित किय

उपर्युक्त विवेचनसे और अवतरणोंसे स्पष्ट है कि अधिकांश विचारक आत्माकी अमरता तथा मरणोत्तर विश्वास रखनेवाले हैं । स्वानुभवसे भी इसी सिद्ध पुष्टि होती हुई देखी जा सकती है । इसका विचार प्रकारसे है—

२—जीविताशा बलीयसी—आत्मा प्रेमास्पद है

प्रत्येक मनुष्य और केवल मनुष्य ही नहीं, प्रा चाहता है कि वह किसी-न-किसी रूपमें बना रहे; मरे ये दो बातें—(१) सदैव जीवित रहनेकी उत्कट और (२) मरणभय । केवल मनुष्यमें ही नहीं, जीव वनस्पति-कीट-पतंगादि सबमें पायी जाती हैं । समस्त भयोंमें यदि कोई सबसे बड़ा भय हो अथवा माना जाता है तो वह 'मरणभय' ही है । यो इसकी गणना 'पञ्च क्लेशों'में की गयी है । अविद्या क्लेशोंमें 'अभिनिवेश' संज्ञक पञ्चम क्लेश 'मरणभय' जीवमात्रके अन्तःकरणमें यह इतना गहरा घुसा हुआ वह केवल साधारण लोगोंतक ही सीमित हो, पर यह अच्छे-अच्छे और बड़े-बड़े विद्वान्, पण्डित तथा शा निष्णात दार्शनिक भी इसके प्रभावसे मुक्त नह जानते हुए भी कि शरीर मर्त्य है और एक-न-ए उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है और आयु प्रारब्धकर्मके समाप्त होते ही समाप्त होनेवाली है स्थितिमें भी आबाल-वृद्ध सभी चाहते हैं कि इन ही अनित्य और नाशवान् देहेन्द्रियादिसे उनका वियो

यही इतरेतराध्यास उक्त दोनों बातोंके मूलमें है। वस्तुतः अमर जीवन हमारी प्रकृति है और मृत्यु अज्ञानमूलक विकृति है, जिसकी यथार्थ ज्ञानद्वारा निवृत्ति सम्भव है। मरणभय और उत्कट जीवितेच्छाके द्वारा हमारा असीम आत्मप्रेम ही प्रकट होता है। श्रीविद्यारण्यस्वामी 'पञ्चदशी'में यथार्थताके साथ कहते हैं—

अयमात्मा परानन्दः परप्रेमास्पदं यतः।
मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनीक्ष्यते॥

(तत्त्वविवेक ८)

"नित्य स्वयंप्रकाश ज्ञान ही आत्माका स्वरूप है। साथ ही यह परम प्रेमास्पद होनेके कारण परमानन्द-स्वरूप भी है। 'मैं न रहूँ ऐसा कभी न हो; किंतु मैं सदैव बना रहूँ' ऐसा प्रेम आत्मासे सभी करते हैं।"

ध्यान रहे, विषयोंके साथ हमारा प्रेम सोपाधिक, सावधिक और अनित्य होता है। इसके विपरीत आत्माके साथ हमारा प्रेम नित्य, निरुपाधिक और निरवधिक होता है। दुःखरूप वस्तुके साथ इस प्रकारका प्रेम कभी सम्भव नहीं। मृत्यु तो सबसे बड़ा दुःख है। आत्मा यदि उससे ग्रस्त होता तो इस प्रकारका प्रेम उसके साथ कदापि न होता। इससे सिद्ध होता है कि आत्मस्वरूप सत् यानी त्रिकालाबाधित है और नित्य, निरतिशय आनन्द या सुखस्वरूप है। जाग्रदादि समस्त अवस्थाओंका साक्षी होनेके कारण वह ज्ञानस्वरूप भी है। आत्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अज, अमर और सच्चिदानन्दस्वरूप है। यही जीव-मात्रका सच्चा स्वरूप है।

३—मरणभय अज्ञानमूलक है

अब प्रश्न यह है कि यदि हम स्वरूपतः ही अमर हैं तो हमें मरनेसे भय क्यों लगता है और त्रिकालाबाधित सत्य हमारा स्वरूप होते हुए भी हमें सदैव बने रहनेकी इच्छा क्यों होती है? इसका निस्संदिग्ध उत्तर यह है कि यही तो माया या मूल अविद्याका प्रभाव है। इसकी आवरण-शक्ति-के प्रभावसे हम अपने अज, अमर, सच्चिदानन्द-स्वरूपको स्वप्नद्रष्टाकी तरह भूल-से गये हैं और इसकी विक्षेप-शक्तिके प्रभावसे दृश्यमान जगत्में सत्यत्वबुद्धि रखकर देहादि अनात्मपदार्थोंके साथ आध्यासिक यानी मिथ्या तादात्म्य स्थापित कर बैठे हैं। इसके फलस्वरूप हम अपना अमरत्व अनात्मपदार्थोंपर आरोपित करके उनको शाश्वत समझने लगते हैं और उनका विनश्वर स्वरूप अपने स्वयंपर आरोपित करके अपने-आपको मरणशील समझने लगते हैं। अज्ञानका तो यह स्वभाव ही होता है कि वह 'जो वस्तु है और भासमान होती है' उसीके सम्बन्धमें 'वह नहीं है और भासती नहीं है' इस प्रकारका विपरीत व्यवहार करा देता है। हमारे समस्त वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण तथा शास्त्र—मनुष्यके इस आत्मस्वरूपविषयक अज्ञानको दूर करके उसे उसके स्वानन्द-स्वाराज्य-साम्राज्यपदपर अभिषिक्त कराना चाहते हैं। भारतकी ब्रह्मविद्या डंकेकी चोट यह कहती है कि 'हे मनुष्य! तू न तो क्षुद्र है और न मर्त्य! तू न तो जड है और न नियति-परतन्त्र! यह तो तेरा स्वप्नद्रष्टाकी तरह अज्ञान-कालीन कल्पित स्वरूप है। तू तो अमृतका पुत्र है **'अमृतस्य पुत्राः।'** तू अजर, अमर, अक्षर, अव्यय है। तू स्वयं ही अमृतस्वरूप परात्पर परब्रह्म है। श्रुति तेरे ही हितमें मुक्तकण्ठसे कहती है—'तत्त्वमसि'। तू कालका कवल न होकर तू कालका भी काल—महाकाल है। तेरे वास्तविक स्वरूपसे ही स्वयं निःसत्त्व मृत्यु सत्ता प्राप्त करती है और तेरे भयसे ही वह निरन्तर कार्यशील रहती है। **'मृत्युर्वा असद सदमृतम्।'** (बृ० उपनिषद् १।३।२८)। **'भीषास्मात्…… मृत्युर्धावति'** (तैत्तिरीयोपनिषद् २।८)। 'जगत्के सारे पदार्थ तेरे प्रकाशसे ही प्रकाशित हैं—**तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।'** (मुण्डकोपनिषद् २।२।१०)। उनकी उत्पत्ति, स्थिति तेरे कारण ही है और लय भी तेरेमें ही है। तू उठ, अपनी अनादि अविद्याजन्य मोहनिद्राको छोड़ और अपने वास्तविक स्वरूपको पहचान!! **'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।'** (कठोपनिषद् १।३।१४) उठो! जागो और श्रेष्ठ पुरुषोंके समीप जाकर (आत्म-) ज्ञान प्राप्त करो!'

४—आत्माका अमरत्व श्रुति, युक्ति तथा विद्वदनुभवसिद्ध है

आत्माके अमरत्वकी सिद्धि पाश्चात्त्य तथा पौरस्त्य विचारकोंने अनेक युक्तियाँ देकर की है। इनमेंसे कुछ प्रमुख युक्तियाँ हम प्रस्तुत संदर्भमें देख लें। पाश्चात्त्य दार्शनिकोंने प्राचीन कालसे आत्माके अमरत्वको अनेक युक्तियोंद्वारा सिद्ध किया है। उदाहरणार्थ प्लेटो (Plato) ने आत्माके अमरत्वके समर्थनमें दस युक्तियाँ दी हैं। इन दार्शनिकोंमें कुछ तो स्पष्टतया पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मको माननेवाले हैं। इस दृष्टिसे पाइथागोरसका नाम विशेषतया उल्लेखनीय है।

पाश्चात्य दर्शनमें ह्यूम (David Hume) तथा कांट (Kant) के समयतक आत्माके अमरत्वकी एक प्रमुख युक्ति रही है—आत्माकी एकरूपता, निरवयवता तथा निष्कलता(Unity and Simplicity of the Soul)। भारतीय दार्शनिकोंने भी यह युक्ति इस संदर्भमें दी है। सावयव, सखण्ड तथा विभजनीय वस्तुओंका ही विघटन या विनाश सम्भव है। अखण्ड, एकरस, निष्कल, निरवयव, निर्विकार आत्मतत्त्वका स्वरूप ही इस प्रकारका है कि उसका विघटन या विनाश सम्भव नहीं। वह स्वरूपतः ही अविनाशी है। सर्वदा एकरूप होनेके कारण उसमें उपचय-अपचय सम्भव नहीं। वह अहेय, अनुपादेय है; वह षड्भावविकार-रहित है।

आत्मा अप्रमेय यानी देश-काल-वस्तुरूप त्रिविध परिच्छेद-रहित होनेसे कूटस्थ नित्य है; क्योंकि उसके विनाशका कोई हेतु ही सम्भव नहीं। आत्मा नित्य है; क्योंकि वह कालतः अपरिच्छिन्न है। उसका न तो प्रागभाव है और न प्रध्वंसाभाव; मान लीजिये आत्मा भी घटादिकी तरह द्विविध अभावोंसे ग्रस्त है। अब प्रश्न यह है कि उसके इन अभावों-को कौन ग्रहण करता है ? स्वयं आत्मा या अनात्मा या अन्य आत्मा ? अनात्मपदार्थ जड होनेसे उनमें जाननेकी योग्यता ही नहीं। ज्ञानभिन्नत्व तो जडका स्वरूप ही है। आत्मा स्वय ही स्वविरोधी नहीं हो सकता; अतएव स्वयं आत्मा अपना अभाव ग्रहण करता है, यह कथन वदतो-व्याघात है। ऐसा माननेसे कर्तृकर्मविरोधरूप दोष भी आता है; क्योंकि जिस समय वह ग्राह्यस्वरूप यानी कर्म स्वरूप होगा, उस समय वह ग्राहक यानी कर्तृस्वरूप न होगा और जिस समय वह ग्राहक या कर्ता होगा, उस समय वह ग्राह्य या कर्म न होगा। यदि कहा जाय कि एक आत्माका अभाव दूसरा आत्मा ग्रहण करेगा, तो यह भी सम्भव नहीं; क्योंकि शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मामें भेदक न होनेसे वह एक ही हो सकता है, अनेक नहीं। अतएव आत्मासे भिन्न जो-जो कुछ होगा, वह अनात्मा ही होगा, आत्मा नहीं। व्यवहार-कालमें जीवोंमें प्रतीयमान भेद अन्तःकरणरूप उपाधिके आते हैं। यदि इस जन्मसे पूर्व आत्मा न होता तो इस जन्ममें हमने जो कर्म पहले कभी किये नहीं, उन्हें ही भोगनेमें आपत्ति आती है। इससे कर्म-सिद्धान्त और कार्य-कारणभावके सिद्धान्तको भी घोर बाधा पहुँचती है। इसी प्रकार यदि आत्मा आगे न रहे तो महाकष्टार्जित पुण्यकर्मोंके फल किसे और किस प्रकार मिल सकते हैं ? ऐसी स्थितिमें आयासबहुल शुभकर्मोंको करनेकी प्रेरणा ही न रहे। भला, जो बैंक निश्चयात्मकरूपसे डूबनेवाला है, उसमें पैसा जमा करनेकी मूर्खता कौन करेगा ? तात्पर्य यह कि आत्माका न तो प्रागभाव है और न प्रध्वंसाभाव ही; वह नित्य है; अज, अमर है। समस्त बाधावधि होनेसे उसके स्वयंका बाध नहीं हो सकता। कोई भी बाध निःसाक्षिक नहीं हो सकता। आत्माका निराकरण कोई नहीं कर सकता; क्योंकि स्वयं निराकरण करनेवालेका स्वरूप ही तो आत्मा है—'य एव हि निराकर्ता तदेव तस्य स्वरूपम्।' इससे सिद्ध होता है कि नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अज, अमर—यही आत्माका सच्चा स्वरूप है।

पाश्चात्य दर्शनमें जर्मन दार्शनिक कांट (Kant) और आंग्ल दार्शनिक ह्यूमके समयसे आत्माके अमरत्वकी सिद्धिके लिये अध्यात्मशास्त्रमूलक युक्ति (Metaphysical argument) को गौणस्थान प्राप्त हुआ और नीतिशास्त्र-मूलक युक्तिको प्रधानता मिली। इसके दो रूप हैं—(१) न्यायकी माँग, कृतकर्मोंके फल मिलना ऋतसत्य (Moral Order) के निर्वाहके लिये आवश्यक है। किंतु हम सदाचारी और पुण्यशील पुरुषोंको दुःख उठाते हुए पाते हैं और पापी तथा दुराचारी पुरुषोंको सुखमय जीवन व्यतीत करते हुए पाते हैं। इनके इन भले-बुरे कर्मोंके फल इस जन्ममें नहीं तो जन्मान्तरमें अवश्य ही मिलने चाहिये। यह बात आत्माके अमरत्वके बिना सम्भव नहीं। इसलिये मानना पड़ता है कि आत्मा अमर है। (२) परिपूर्ण नैतिक जीवन क्रमशः प्राप्य है। मनुष्यके आध्यात्मिक विकासका क्रम है। एक जन्म इसके लिये पर्याप्त नहीं। भावी अनेक जन्मोंमें ही यह सम्भव है। इसलिये भी आत्माको अमर

संरक्षणके सिद्धान्तमें (Law of conservation of energy) और पदार्थकी अनश्वरताके सिद्धान्तमें विश्वास करता है। जब जगत्के जड पदार्थोंकी यह स्थिति है, तब इन्हींके अभिन्न-निमित्त-उपादान-कारण चेतन आत्मतत्त्वकी अनश्वरता कैमुतिक न्यायसे सुतरां सत्य होनी चाहिये।

मनुष्य-मनुष्यमें, एक ही माता-पितासे उत्पन्न बालकोंमें दिखायी देनेवाला स्वभावका वैचित्र्य तथा वैविध्य, नवजात शिशुमें पायी जानेवाली स्तन्यपानादिकी सहज प्रवृत्ति, जीव-मात्रमें पाया जानेवाला मरण-भय इत्यादि सहस्रों बातें पूर्व-जन्मके संस्कारोंको सिद्ध करती हैं। उनके बिना इनकी कोई समाधानकारक उपपत्ति नहीं लग सकती। इस तरह भी आत्माका पूर्वकालीन अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।

हमारा वर्तमान जन्म ही हमारे पूर्वकालीन और मरणोत्तर अस्तित्वको सिद्ध करता है। 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।' अर्थात् 'असत्का कभी भाव नहीं हो सकता और सत्का कभी अभाव नहीं हो सकता।' यह अबाधित सिद्धान्त इस विषयमें पर्याप्त प्रमाण है। पाश्चात्त्य विचारकोंने भी इस सिद्धान्तको माना है। लैटिन भाषामें यह न्याय निम्न शब्दोंमें व्यक्त किया गया है— 'Ex nihilo nihil fit' जिसका अंग्रेजी अनुवाद है— 'Nothing comes out of nothing.' यह 'नासतो विद्यते भावः' को ही व्यक्त करता है।

पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्म न माननेका यह अर्थ होता है कि हमारा वर्तमान जन्म आकस्मिक है। वह यदृच्छासे, बिना किसी कारणके और बिना किसी उद्देश्यके होता है और यदृच्छासे, बिना किसी कारण और उद्देश्यके ही उसका अन्त होता है; मानो यहाँ कार्य-कारण-भावने विराम पा लिया हो; किंतु यह विश्व सुसम्बद्ध, सुव्यवस्थित, अतएव कार्य-कारण-भावसे बद्ध है, यह यादृच्छिक नहीं है। यह बात तो विज्ञानकी समस्त शाखाओंकी मूलभूत मान्यता है। इस दृष्टिसे यदृच्छावाद अपसिद्धान्त ही है। यदि यह जन्म है तो इसका कोई कारण

आत्माके अमरत्वके विषयमें श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराणादिमें सहस्रशः प्रमाण हैं। इनमेंसे उदाहरणार्थ कुछ वचन उद्धृत किये जाते हैं—

१. 'अविनाशी वा अरेऽयमात्मा अनुच्छित्तिधर्मा।'
(बृहदारण्यकोपनिषद् ४। ५। १४)

'यह आत्मा स्वभावतः ही अविनाशी और उच्छेदरहित है; अर्थात् इसका न तो विकाररूप नाश होता है और न उच्छेदरूप ही।'

२. 'स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्म।'
(बृ० उ० ४। ४। २५)

'वही यह महान् अजन्मा आत्मा अजर, अमर, अमृत एवं अभय ब्रह्म है।'

३. 'एष त आत्मा सर्वान्तरो योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति।'
(बृ० उ० ३। ५। १)

'यह तुम्हारा आत्मा सर्वान्तर है, जो भूख-प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्युसे परे है।'

४. 'एष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्तम्।'
(बृ० उ० ३। ७। २३)

'यह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी और अमृत यानी अमर है। इससे भिन्न सब विनाशी है।'

५. न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
(कठोपनिषद् १। २। १८)

'यह मेधावी आत्मा न तो उत्पन्न होता है और न मरता है। यह न तो किसी कारणसे ही उत्पन्न हुआ है और न स्वतः ही कुछ बना है। यह अजन्मा, नित्य (सदासे वर्तमान), सर्वदा रहनेवाला और पुरातन है तथा शरीरके मारे जानेपर भी यह स्वयं नहीं मरता।'

श्रीमद्भगवद्गीताके द्वितीय अध्यायमें आत्माके अमरत्वका सविस्तर निरूपण है, जो सुप्रसिद्ध है। स्थलसंकोचवश हमने यहाँ केवल इसका निर्देशमात्र कर दिया है।

श्रुति तथा युक्तिके साथ ही विद्वदनुभव यानी जगत्के ईश्वर या तत्त्व-साक्षात्कारी पुरुषोंके अनुभव भी इस विषयमें अविद्यान्धकारसे ग्रस्त सामान्यजनोंके लिये दीपस्तम्भकी तरह मार्गदर्शक हैं। इन सबका निस्संदिग्ध अनुभव यही है कि 'आत्मा अमर है और उसके अपरोक्ष, साक्षात्कारात्मक ज्ञानसे अमृतत्वरूप मोक्षका अनुभव इसी लोकमें, इसी देहमें किया जा सकता है।' यह मोक्ष दृष्टफल है और ज्ञानके साथ ही मिलता है—'ज्ञानसमकालमुक्तः।' क्योंकि अविद्या ही एकमात्र बन्ध है और ज्ञानसे उसकी निवृत्ति होना ही मोक्ष है—

'अविद्यास्तमयो मोक्षः सा च बन्ध उदाहृता।'

इस स्थितिको 'जीवन्मुक्त अवस्था' कहा गया है, जिसकी सिद्धि भगवान् भाष्यकारने ब्रह्मसूत्र-भाष्यमें प्रयत्नपूर्वक की है (४।१।१५)। आपके अनुपम, दिव्य वेदान्तस्तोत्र इसी अनुभवको विशद करते हैं। उदाहरणार्थ निम्न श्लोक देखिये—

न मे मृत्युशङ्का न मे जातिभेदाः पिता नैव मे नैव माता न जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

(निर्वाणषट्क ५।१)

पञ्चदशीकारका सिद्धावस्थाका निदर्शक निम्न श्लोक देखिये—

धन्योऽहं धन्योऽहं नित्यं स्वात्मानमंजसा वेद्मि।
धन्योऽहं धन्योऽहं ब्रह्मानन्दो विभाति मे स्पष्टम्॥

(विद्यानन्दप्रकरण ५९)

'मैं धन्य हूँ; क्योंकि अपने नित्य आत्माको मैं ठीक-ठीकसे समझ गया हूँ। मैं धन्य हूँ; क्योंकि अब मुझे ब्रह्मानन्दका स्पष्ट अनुभव होने लगा है।'

महाराष्ट्र संत श्रीतुकाराम कहते हैं कि मेरी मृत्युकी ही मृत्यु मैंने अपनी आँखोंसे देखी। यह एक अनुपम महोत्सव है।

बाइबलमें ईसामसीह अमृतस्वरूप आत्माके लाभका महत्त्व बतलाते हुए कहते हैं—

'What shall it profit a man if he shall gain the whole world and lose his own soul.'

अर्थात् 'यदि सम्पूर्ण जगत्का भी स्वामित्व प्राप्त कर लिया और अपने आत्माको ही गँवा दिया तो यह सौदा किस भाव पड़ा?'

उपर्युक्त विवेचनका तात्पर्य यह है कि अमृतस्वरूप आत्माके लाभसे बढ़कर कोई लाभ नहीं और अविद्याजन्य आत्मापहारसे बढ़कर दूसरा कोई पाप और दूसरी कोई हानि नहीं। (शेष आगे)

लोक-परलोकमें भयदायक कर्म न करे

मनुष्यको सब प्रकारके उपायोंसे लोभ और क्रोधको काबूमें करना चाहिये। सब ज्ञानोंमें यही पवित्र ज्ञान है और यही आत्मसंयम है। लोभ और क्रोध सदा मनुष्यके श्रेयका विनाश करनेको उद्यत रहते हैं। अतः सर्वथा उनका त्याग करना चाहिये। क्रोधसे सदा शीलको बचावे और मात्सर्यसे तपकी रक्षा करे। मान और अपमानमें विद्याको बचावे तथा प्रमादसे आत्माकी रक्षा करे। ब्रह्मन्! जिसके सभी कार्य कामनाओंके बन्धनसे रहित होते हैं तथा त्यागके लिये जिसने अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी है, वही त्यागी और बुद्धिमान् है। किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे, सबसे मैत्रीभाव निभाता रहे और संग्रहका त्याग करके बुद्धिके द्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीते। ऐसा कार्य करे जिसमें शोकके लिये स्थान न हो तथा जो इहलोक और परलोकमें भी भयदायक न हो। सदा तपस्यामें लगे रहकर इन्द्रियोंका दमन तथा मनका निग्रह करते हुए मुनिवृत्तिसे रहे। (महर्षि भृगु)

पुनर्जन्मके आधार

(लेखक—श्रीगोविन्दजी शास्त्री, एम्० ए०)

वेदने कहा है—'धाता यथापूर्वमकल्पयत्', कोफने स्वीकार किया 'इतिहास अपनेको दोहराता है।' आजका युग जिसे हम जी रहे हैं, अथवा विज्ञानके वे स्वप्न जो भविष्यमें छिप रहे हैं, कोई अभूतपूर्व परिवर्तन नहीं है। कालने विज्ञानकी कल्पनातीत स्थितिको साक्षी बनकर देखा है और महाकाल बनकर इस सारे विकासको लील लिया है। इसलिये लील लिया है कि वही क्रम फिरसे दोहराया जाय। उस चरम स्थितिपर पहुँचनेके बाद विनाश ही तो शेष रहता है। जिन शस्त्रों और अस्त्रोंका आज आविष्कार किया जा रहा है, क्या उनका अस्तित्व किसी और युगमें नहीं था ? क्या महाभारत और रामायणकाल विज्ञानकी प्रगति और भौतिक उपलब्धियोंके क्षितिज नहीं थे ? किंतु मानवने उस सत्यको भुलाकर अपने पौरुषपर उसी तरह अट्टहास करना शुरू कर दिया है; जिस तरह अतीतमें रावणने किया था। वह आज फिरसे प्रकृतिको विजित करनेका दम्भ भरने जा रहा है, जब कि प्रकृतिके साधारणसे आक्रोशसे उसका यह सारा प्रयास-इतिहास अपने-आप जलकर राख हो जायगा। यह परिवर्तन ही युग है, इसका परिवेश ही इसकी शैली है, अन्यथा अथ और इति तो सदा एक-से होते हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है—भले ही हम इसे स्वीकार न करें; क्योंकि आजका हमारा चिन्तन आयातसे प्रभावित है और वह आयात हो रहा है—पश्चिमसे। पश्चिमके विज्ञानधुरीण इतिहासको पाषाण-युगसे आगे मानते ही नहीं। उनके विश्वासमें इस युग—पाषाणयुगसे पहले किसी युगका अस्तित्व ही नहीं है, वैसे ही जैसे वे इस ब्रह्माण्डसे दूसरे ब्रह्माण्डको अभी कुछ समय पहलेतक नहीं मानते थे, किंतु आज वे इस आकाशगङ्गा, जो एक ब्रह्माण्डमें एक ही होती है-से परे भी कई आकाशगङ्गाओंको मानने लगे हैं। पश्चिमी सभ्यता और भौतिक विज्ञान भले ही इतिहासको पाषाणयुगसे ही माने और इसे सिद्ध करनेके लिये आन्तरिक एवं बाह्य साक्ष्य भी जुटा ले, किंतु यह यथार्थ है कि इस तरहके पाषाण-युग इस विश्वने अनेक बार देखे हैं और यह विज्ञानके विनाशतकका विकास भी कई बार देखा है। विज्ञान-जैसा विषय भारतीय ऋषियोंने अलगसे नहीं माना; इसलिये नहीं माना कि यहाँका प्रत्येक विषय विज्ञानके सत्य और यथार्थसे पूर्ण रहता था। यदि हम यह कहें कि आजका भौतिक विज्ञान भारतीय कल्पना और आख्यानोंकी पृष्ठ-भूमिपर ही पनप रहा है तो यह असंगत नहीं होगा। व्यक्तिके जीवनसे भिन्न विश्वका इतिहास नहीं है। व्यक्ति लघुतम इकाई है, इसलिये उसके जीवनकी हर घटना आनुपातिक ढंगसे होगी; समष्टि उसका विराट्‌रूप है, इसलिये उसमें हो रहे परिवर्तन उसी क्रमसे होंगे। व्यक्ति जिन अवस्थाओंको वर्षोंमें भोगता है, विश्व उनको युगोंमें।

सामयिक विज्ञान भौतिक, अन्तरिक्षीय और रसायन विज्ञान है, तात्त्विक नहीं। वह किसी भी सत्यको तथ्यके रूपमें स्वीकार करता है। किसी भी परिणाम और परिवर्तन-का इन्द्रियगम्य रूप ही उसके लिये विश्वसनीय होता है। किसी भी वस्तुका इन्द्रियगम्य रूप कुछ और होता है तथा आन्तरिक कार्य-कारण कुछ और; इसीलिये भारतीय शास्त्रोंने चेतनसे भी आगे मन, बुद्धि और आत्मा-जैसे तत्त्वोंको खोजा, परखा और माना है। ये तीनों—मन, बुद्धि और आत्मा—भौतिक सीमामें नहीं आते। ये प्राणीकी आन्तरिक सूक्ष्मताएँ हैं, जिनको खोजनेकी सामर्थ्य विज्ञानके उपकरणोंमें नहीं है। इनके खोजनेमें तो आस्था ही एकमात्र उपकरण हो सकती है। प्राणी पाँच तत्त्वोंका एक संगठन है। साधारणतया उसके ज्ञानकी भी एक परिसीमा रहती है। इन्द्रियाँ जो पाँच तत्त्वोंका प्रतिनिधित्व करती हैं—उनका अधिष्ठाता मन भी सामान्यतया सीमाका अतिक्रमण नहीं करता। यद्यपि मनका धर्म कल्पना है तथा उसमें बड़ी शक्ति है; फिर भी वह अपरिमेय कल्पना नहीं कर सकता। मनकी कल्पनाको अपरिमेय कहते समय हम वैसी ही भूल कर बैठते हैं, जैसी एक समुद्रके बीचमें बैठा व्यक्ति यह समझ लेता है कि इस सागरका कोई अन्त ही नहीं है। फिर भी मनका महत्त्व भौतिक और आत्मिक, बाह्य और आन्तरिक जगत्‌के लिये अनिवार्य रूपसे है। हमारी इन्द्रियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ) यद्यपि पाँचों तत्त्वोंका प्रतिनिधित्व करती हैं, पर उस प्रतिनिधित्वका अनुपात भी प्राणियोंमें भिन्न-भिन्न स्तर-पर है। कान आकाश-तत्त्वका प्रतिनिधित्व करता है तो नेत्र तेजस्-तत्त्वका; किंतु एक सीमातक ही इस प्रतिनिधित्वकी सामर्थ्य सीमित है। मन्दतम और तीव्रतम शब्द अथवा

तेजको हमारे कान और नेत्र ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। उदाहरणके रूपमें इस विशाल आकाशमें बहुत-से पदार्थ हैं तथा असंख्य ध्वनियाँ तैर रही हैं; किंतु न वे हमारी आँखोंकी सामर्थ्यमें आते हैं और न हमारे कानोंकी ग्रहणशक्तिकी सीमामें ही आ पाते हैं।

उपरिलिखित विवेचनसे मेरा तात्पर्य यह है कि भारतीय वैज्ञानिकोंने, जिन्हें हम ऋषि कहते हैं, जिस आत्मतत्त्वकी प्रतिष्ठा की है और मन-जैसे आयामकी स्थापना की है, वे पदार्थोंकी आन्तरिक अतीन्द्रिय संरचना और कार्यसे भी परिचित थे। उनकी सूत्र और मन्त्र-पद्धति यद्यपि आजके युग-व्यवहारकी तरह सरल-सुगम और सर्वजनगम्य नहीं थी (हो सकता है उस युगकी परम्पराके लिये आजके दुर्बोध सूत्र सुबोध रहे हों। अथवा उन्होंने पात्रत्वका विचार करके उन रहस्योंको नियत श्राव्य मानकर ऐसी व्यवस्था की हो।), फिर भी उनके सूत्र किसी युगके व्यवहार रहे थे। एक कारण यह भी हो सकता है कि चेतनकी कार्यविधि अथवा अनुभूतिमें एकरूपता नहीं होनेके कारण भी उन्होंने विधि और परिणामोंको सटीक-सभाष्य नहीं लिखा।

यह है—भारतीय कार्य-प्रणाली, जो सदा राजाज्ञाकी तरह संक्षिप्त और निर्देशक होती है। किम्-कथम्को वहाँ अवकाश नहीं। इन अनुभूतिगम्य विषयोंपर शास्त्रार्थ-जैसी भाष्य-परम्पराका निर्माण नहीं हुआ; क्योंकि वे अतीन्द्रिय थे; बुद्धिसे परेके विषय थे। आत्मदर्शनके समय बुद्धि भी रीत जाती है।

एक क्षणको भारतीय आस्था और संस्कारको भूलकर हम पुनर्जन्मको एक परिणामके रूपमें अथवा उदाहरणके रूपमें देखें; उसकी सीमाओंका मूल्याङ्कन करें और परिणामोंका विश्लेषण करें, तो भी यह मान्यता काल्पनिक अथवा असत्य नहीं रह सकती। वैसे तो उपरिवर्णित विवेचनके आधारपर कल्पना भी असत्य नहीं हुआ करती। यह हो सकता है कि उस कल्पनाका व्यावहारिक रूप अतीतमें समा गया हो, अथवा अनागतमें तिरोहित हो। पुनर्जन्मकी कल्पनाके आधारका विश्लेषण हम पहले कर लें। पुनर्जन्मकी सत्यताका पहला प्रमाण हमारे स्वप्न हैं। योगशास्त्र, जो काय-विज्ञान अथवा चिकित्सा-शास्त्रकी ही तरह व्यवहार-शास्त्र हैं, उसके मतानुसार व्यक्तिकी निद्रा जब आती है तो उसका मन सुषुम्णा नाड़ीमें प्रवेश कर जाता है। आयुर्वेद भी मनके सुषुम्णामें प्रवेश करनेकी स्थितिको 'निद्रा' कहता है। निद्रितावस्थामें व्यक्ति जो स्वप्न देखता है, उनका आधार क्या है? मनकी कल्पना-शक्तिको तीव्र मानते हुए भी उसकी एक सीमा निश्चितरूपसे होती ही है, फिर उन स्वप्नोंका, जो हमारे विचारोंकी प्रतिक्रिया और वासनाओंकी तृप्तिसे सम्बन्ध नहीं रखते, उद्गम कहाँ है? क्यों है? सामयिक मनोविज्ञान इस स्वप्न-जगत्को अतृप्त वासनाओंकी पूर्ति कहकर संतोष कर लेता है; पर यह हमारे प्रश्नोंका समग्र-समुचित उत्तर नहीं है। इसका उत्तर योगशास्त्र ही देता है। उसके मतमें सुषुम्णा नाड़ीमें व्यक्तिके जन्म-जन्मान्तरोंका इतिहास लिखा रहता है और इस प्रकारके विचित्र स्वप्न देखते समय हमारा मन उस विगत जीवनकी स्मरणीय घटनाओंके खण्डमें चला जाता है। स्वप्नवाली निद्रा गम्भीर निद्रा नहीं मानी जाती, इसका कारण भी यही है। योगी अपने जन्मोंका इतिहास इसी नाड़ीके सहारे जान पाते हैं। स्वप्नोंकी यह संगति साधार है—इसे केवल आर्ष-वचनके आधारपर माननेका आग्रह मैं नहीं करता; प्रत्युत आज भी यह सिद्धान्त व्यक्तियोंके जीवनमें घटित होता है। कई बार कई व्यक्तियोंने स्वप्नमें वे दृश्य देखे हैं जो उन्होंने जीवनमें कभी नहीं देखे; किंतु कालान्तरमें प्रसंगवश वे अपने स्वप्नमें देखे दृश्यों और स्थानोंको देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। भारतीय ही नहीं, कई विदेशियोंने अपने स्वप्नोंमें वे स्थान और दृश्य देखे हैं, जिनको उन्होंने जीवनमें नहीं देखा था; पर बादमें देखा है। आखिर इस भविष्यकी यथार्थ कल्पना करना क्या मनकी सीमामें आता है? कल्पना करनेके लिये यद्यपि मन स्वतन्त्र है, पर उसके साथ अनुभूति किसी-न-किसी रूपमें जुड़ी हुई है। इसलिये किसी स्थान-विशेषकी अविकल कल्पना करना उसकी सामर्थ्य-सीमामें नहीं आता। फिर ये स्वप्न किस तरह देख लिये जाते हैं? इसका समाधान वही योगशास्त्रका सूत्र है, अर्थात् व्यक्तिने उन दृश्योंको इस जन्ममें भले ही न देखा हो, पर पूर्वजन्ममें अवश्य देखा है; अन्यथा ऐसी सजीव और यथार्थ कल्पना स्वप्नसाध्य होती ही नहीं।

इस सम्बन्धमें एक और जीवन्त घटना हमारे सामने है जो कोई एक वर्ष पहले राजस्थानके प्रमुख दैनिक पत्र 'राष्ट्रदूत'में छपी थी। घटनाका सारांश यह है कि राजस्थान विश्वविद्यालयके परा मनोविज्ञान विभागके एक अधिवेशनमें एक सज्जन आये थे। शायद वे दूरके निवासी थे।

उन्होंने बताया था कि भारत आनेसे पहले वे कई बार स्वप्नमें शिखरवाले मन्दिर, देवताकी मूर्ति और पूजा-सामग्री देखा करते थे। ऐसे स्वप्नोंपर उनको स्वयंको आश्चर्य था; क्योंकि उनके देशमें मन्दिर-जैसी कोई चीज नहीं थी और उनके धर्ममें किसीकी मूर्ति नहीं होती थी, फिर भी वे स्वप्न उनके लिये स्वप्नमात्र न रहकर प्रेरणाके स्रोत बने रहे। अन्ततः उन्होंने भारतके सम्बन्धमें पढ़ा, चित्रोंमें मन्दिर देखे और उनका विश्वास प्रबल हो गया कि ये स्वप्न भारतीय भूमिके हैं। एक दिन ऐसा भी आया जब उन्होंने भारतके दर्शन किये और दक्षिण भारतमें उनको वह मन्दिर उसी रूपमें मिल गया, जिस रूपमें वे उसे स्वप्नमें देखते थे।

उनको स्वतः ही यह विश्वास हो गया कि वे पूर्वजन्ममें भारतीय थे और उस मन्दिरके पूजक थे। परामनोविज्ञान विभाग उनकी इस मान्यताको न माने, पर भारतीय शास्त्र इसे स्वीकार करते हैं।

पुनर्जन्मकी वास्तविकताका विश्वास दिलानेवाला दूसरा ज्वलन्त प्रमाण है—व्यक्तिके जीवनस्तरका। एक ही व्यक्तिकी दो संतानें—एक सुरूप, दूसरी कुरूप; एकमें असाधारण बल, दूसरी अपंग; एक प्रतिभासम्पन्न, दूसरी जड; बड़े होनेपर एक ही पिताकी सम्पत्तिका दो पुत्रोंमें समान विभाग किया गया। एकने सम्पदाको शतगुणा कर दिया, दूसरेको रोटियोंके लाले पड़ गये। एकके कुत्ते दूध पीते हैं, दूसरेको सूखी रोटीके टुकड़े भी नहीं मिलते—यह सब क्या है? अनास्थावादी इन भिन्न परिणामोंका आधार कुछ भी खोज लें और उनका सामान्य सूत्र भी निश्चित कर लें, पर भारतीय इस व्यवस्थाको भाग्य ही मानेगा और भाग्यका निर्माण होता है—कर्मसे; तथा उत्पन्न होते ही किसी प्रकारके कर्मका इतिहास नहीं जुट पाता; इसलिये उसे पूर्वजन्मका स्पष्ट आधार चाहिये ही। वह आधार सागर और संसारके पारदर्शी ऋषियोंने भारतीयोंको वरदानके रूपमें दे ही दिया है। आज हम निर्विवादरूपसे कह सकते हैं कि भारतके पास जो कुछ है, उससे नया हो ही नहीं सकता। यदि उस आर्ष सत्यको हम अनुभव करके व्यवहारयोग्य बना देते हैं और भारतीयोंकी आस्थाको पुनर्जागरित कर देते हैं तो यही वैज्ञानिक उपलब्धि होगी।

भौतिक विज्ञानके अन्धविश्वासकी तमिस्रामें भाग्यको अवकाश नहीं है, इसीलिये कर्मका जन्मना सम्बन्ध वह नहीं जोड़ता तथा पुनर्जन्मको विश्वसनीय नहीं मानता। वह व्यक्तिका भाग्य समाजके साथ जोड़कर निश्चिन्त हो जाता है; किंतु ऐसा सम्भव हो ही नहीं सकता। जो प्राणीका प्राणिगत ऐक्य है, वहींतक समाजवाद है। प्रकृतिकी समरसता तक ही समानता है; इससे आगे न है, न हो सकती है। ये भौतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ क्या व्यक्तिको व्यक्ति-स्तरसे हटाकर समष्टि-स्तरपर सुखी कर सकती हैं? नहीं, बिल्कुल नहीं। सुविधा-साधनोंके परिग्रहसे व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता, सामान्य आवश्यकताकी पूर्तिसे दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंसे नहीं बचा जा सकता। यह तो व्यक्ति-स्तरपर घटता रहा है और घटता रहेगा। इस घटनेके साथ कर्म-बन्धनोंका सत्य जुड़ा हुआ है और कर्म-बन्धन पुनर्जन्मकी पृष्ठभूमि है।

यह इन्द्रियगम्य विषय तो है नहीं, जिसे प्रत्यक्षकी तरह देख-सुन-समझ लिया जाय। इसके लिये तो आस्थाका सम्बल लेकर आर्ष सत्योंको मान लेनेसे ही कुछ पाया जा सकता। भारतीय संस्कृति पुनर्जन्मके प्रति आस्थावान् है और इस आस्थाके पीछे प्रबल आधार हैं, भले ही वह आजके भौतिक विज्ञानकी प्रक्रियाओंसे सिद्ध न हो, पर सत्य है।

—०◎०—

जन्म-मरणके भयानक दुःखसे छूटनेका उपाय

जन्म मरणके दुःख भयानकसे यदि चाहो होना मुक्त।
मनको रखो निरन्तर श्रीहरिकी पावन स्मृतिसे संयुक्त।
भोगोंमें न राग रख रंचक, बने रहो प्रभु-पद-अनुरक्त।
सेवा करो सदा सबकी, बन प्रभु-भक्तोंके सेवक भक्त॥

अनेक संत-महात्माओंकी देहान्तर-स्थिति

(लेखक—श्रीरामलालजी)

संत-महात्मा दिव्यगुणसम्पन्न शुभ कर्मोंके धनी होते हैं। शुभ कर्मोंके अनुष्ठान और दिव्य पवित्र स्वभावके परिणामस्वरूप उनमें दिव्यताका अवतरण सम्भव होता है, जिसके बलपर उनमेंसे अनेक लोक-लोकान्तरमें सूक्ष्मशरीरके सहारे विचरते रहते हैं। साथ-ही-साथ इस जगत्‌में निवासकर वे लोक-लोकान्तरके जीवात्माओंसे सम्पर्क बनाये रहते हैं; उन लोकोंमें निवास करनेवाली दिव्य महाशक्तियोंसे अनेकानेक शुभ-पवित्र प्रेरणाएँ प्राप्त करते रहते हैं। उनके सम्बन्धमें आचार्य निम्बार्कका यह कथन नितान्त युक्तिसंगत है कि 'जीवात्मा ज्ञानस्वरूप है; वह भगवान् श्रीहरिके अधीन है; उसमें एक शरीरको छोड़कर दूसरे नूतन शरीरको ग्रहण करनेकी योग्यता है। वह प्रत्येक शरीरमें भिन्न, अणु, ज्ञानयुक्त बताया गया है तथा अनन्त कहा गया है।'

ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं
शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं
ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः॥

(कृष्णस्तवराज)

पाश्चात्त्य दार्शनिक महामति हीगलके शब्दोंमें यह स्वीकृति सर्वथा समीचीन है कि 'आत्माके रूपमें मनुष्य अमर है, वह ईश्वरका कृपापात्र है, वह सीमा और पराश्रयसे परे होकर भौतिक स्तरसे अपने-आपको मुक्त करनेमें योग्य है।' इसका आशय यह है कि वह मृत्युसे बच सकता है। यही जीवन्मुक्ति-अवस्था है। यही आत्मसाक्षात्कार है। मध्यकालीन भारतके महान् दार्शनिक स्वामी विद्यारण्यका कथन है कि 'मरणपर्यन्त विचार करते रहनेपर यदि किसीको आत्माका साक्षात्कार नहीं होता है तो प्रतिबन्धोंका क्षय होनेपर दूसरे जन्ममें साक्षात्कार हो ही जायगा।'

विचारयन्नामरणं नैवात्मानं लभेत चेत्।
जन्मान्तरे लभेतैव प्रतिबन्धक्षये सति॥

(पञ्चदशी, ध्यानदीपप्रकरण ३३)

निस्संदेह प्रतिबन्धक्षय पूर्वजन्मकी स्मृतिमें बड़ा सहायक होता है। अनेक संत-महात्माओंको अपने पूर्वजन्मकी घटनाओं और बातोंकी स्मृति बनी रहती है। संत कबीरको अपने पूर्वजन्मकी स्मृति थी। उन्होंने स्वयं कहा है—

पूरब जनम हम ब्राह्मन होते, ओछे करम तपहीना।
रामदेवकी सेवा चूकी, पकरि जुलाहा कीना॥

इसी तरह सिक्खोंके दसवें पातशाह गुरुगोविन्दसिंहने भी अपने पूर्वजन्मके सम्बन्धमें मत व्यक्त किया है कि 'मैंने हेमकूट पर्वतके सप्तशृङ्गपर तपस्या कर महाकाल और कालिकाकी आराधना की। प्रभुकी आज्ञासे मुझे कलियुगमें इस लोकमें जन्म लेना पड़ा।' स्वरचित 'विचित्र नाटक'में उनकी स्वीकृति है।

हेमकुण्ट पर्वत है जहाँ।
सप्त शृंग शोभित है तहाँ॥
....
तहँ हम अधिक तपस्या साधी।
महाकाल कालिका अराधी॥
....
तप साधत हरि मोहिं बुलायो।
इम कहि कै इह लोक पठायो॥
मैं अपना सुत तोहिं निवाजा।
पंथ प्रचुर करिबेको काजा॥
....
तब मैं जगत जनम धरि आयो॥

गुरुगोविन्दसिंहकी पूर्वजन्ममें तप-साधनाके सिद्धि-औचित्यका प्रमाण महाकवि कालिदासरचित अभिज्ञानशाकुन्तलमें हेमकूटके तपोमय वातावरणके वर्णनमें सटीक परिलक्षित होता है—

'आयुष्मन्! एष खलु हेमकूटो नाम किम्पुरुषपर्वतस्तपःसंसिद्धिक्षेत्रम्।' (अभिज्ञानशाकुन्तल-अङ्क ७)

निस्संदेह गुरुगोविन्दने पूर्वजन्ममें हेमकूट पर्वतपर तपस्या की थी। उनकी वाणीमें किसी भी तरहका संदेह नहीं किया जा सकता है।

अनेक संत-महात्माओंकी देहान्तर-स्थिति अपने-आपमें एक विचित्र रहस्य है, जिसका उद्घाटन यदि असम्भव नहीं है तो कठिन तो है ही। अनेकके [illegible] विचित्र ढंगका सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य तथा सारूप्यके माध्यमसे समाधान मिल सकता है; पर इस सम्बन्धमें

निशेष चिन्तन अनुभूतिगण तथा स्वबोध-परक है। लोगोंकी वह भी धारणा मिलती है कि मृत्यु आती है। इसका कारण यह है कि शरीरस्थ पुरुष इतने पर्याप्तरूपमें विकसित नहीं रहता है कि वह परिवर्तनकी आवश्यकताके बिना एक ही देहमें निरन्तर बढ़ता ही रहे; तथा स्वयं शरीर भी काफी सचेतन नहीं होता।

यह निर्विवाद है कि अनेक संत-महात्माओंके सत्यलोक, अथवा स्वलोक, किंवा परलोकगमनमें असाधारण विचित्र बातोंके दर्शन हुए। यामुनाचार्यके तिरोधान-कालमें उनके ब्रह्मलीन होनेपर हाथकी तीन अँगुलियाँ तबतक उठी रहीं, जबतक उनके प्रिय शिष्य रामानुजाचार्य नहीं आ गये। आचार्य रामानुजके आते तथा प्रणाम करते ही अँगुलियाँ पहलेकी हालतमें आ गयीं। यामुनाचार्यकी तीन कामनाएँ थीं। उनकी पूर्तिमें रामानुजने कहा कि "मैं 'ब्रह्मसूत्र', 'विष्णु-सहस्रनाम' और 'दिव्यप्रबन्धम्'की टीका अवश्य लिखूँगा और लिखवाऊँगा।" इस घटनाके सम्बन्धमें इतना ही कहकर संतोष किया जा सकता है कि यामुनाचार्यकी देहान्तर-स्थितिमें सूक्ष्मशरीरकी प्रेरणा-शक्तिसे तीनों अँगुलियाँ उठ गयी थीं। रहस्य तो अभेद्य ही है।

पार्थिव शरीरका दिव्य देहमें रूपान्तर प्रत्यक्षरूपसे प्रस्तुत कर काश्मीरकी सिद्ध शैव संत- योगिनी लल्लेश्वरीने मध्यकालीन साधना-जगत्को आश्चर्यचकित कर दिया। उनकी दृष्टिमें कोई पुरुष नहीं था, वे सबको शिवकी उपासिकाके रूपमें देखती थीं। एक दिन उन्होंने प्रसिद्ध सूफी संत शाह- हमदानीको देखा। वे 'पुरुष' कहकर चौंक उठीं और दौड़कर एक धधकते तंदूरमें कूद पड़ीं। संत हमदानीने उनका पीछा किया। तंदूरवालेसे पूछा; पर पता न चला। तंदूरवालेकी दृष्टिमें तो वे जलकर राख हो गयी थीं। संत हमदानी खोजते रहे। थोड़ी ही देरमें वे दिव्य स्वर्गीय हरे रंगके परिधान पहनकर संत हमदानीके आवाहन-पर बाहर आ गयीं। यह अध्यात्म-विज्ञान है। जड-विज्ञान इस रूपान्तर-तथ्यका समाधान कदापि नहीं प्रस्तुत कर सकता।

संत कबीर, महाप्रभु वल्लभाचार्य, चैतन्यदेव, मीराबाई-के सम्बन्धमें इस लोकसे जानेके समय विचित्र दैहिक रूपान्तरकी बात भारतीय इतिहासकी आध्यात्मिक समृद्धि है। कबीरका शरीर छूटनेपर हिंदू उनके शवको जलाना चाहते थे और मुसलमान कब्रमें दफनाना चाहते थे। चादर उठानेपर शवके स्थानपर फूल दीख पड़ा मुसलमान—दोनोंने आधा-आधा ले लिया। चादर शवका न पाया जाना संत कबीरकी लीलामा है। धनी धरमदासका शब्द है—

'खोदिके देखी कबर, गुरु-देह न पाइय

... ...

'मगहरमें एक लीला कीन्ह ....

संत कबीरका शरीर पाञ्चभौतिक तत्त्वसे ग था। इसलिये उस शरीरपर मृत्युका वश नहीं च लुप्त हो गया और उसके स्थानपर केवल फूल दी विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दीके प्रथम चरणमें उपस्थि कवि हरिराम व्यासका कथन है—

'कलि में साँचो भक्त कबीर।
पाँच तत्त ते देह न पाई, ग्रस्यो न काल स

वैश्वानर-अवतार महाप्रभु वल्लभाचार्यने अपं स्वरूपमें स्थित होकर श्रीकृष्णके नित्य लीला-लोक किया था। अन्तिम दिन उन्होंने मौन लिया काशीमें हनुमानघाटपर गङ्गाकी धारमें मध्याह्न-स्न गये थे। ....लोगोंने प्रत्यक्षरूपसे देखा कि भाग मध्यधारामें महाप्रभुके शरीरके स्थानपर एक अलौकि शिखा आकाशकी ओर उठती जा रही है। उनका शरीर अलौकिक अग्नि-तेजमें रूपान्तरित हो उठा।

चैतन्य महाप्रभु सदेह पुरीमें श्रीजगन्नाथ-विग्र गये। एक दिन वे गरुड-स्तम्भके पीछेसे दर्शन न मन्दिरके भीतर चले गये। मन्दिरके दरवाजे अ बंद हो गये। वे जगन्नाथजीमें अन्तर्हित हो गये।

ठीक इसी तरह राजरानी मीराँ रणछोड़जीकी आत्मलीन हो गयीं। रणछोड़जीके सम्मुख एक गा-गाकर तथा नाचकर उन्हें रिझा रही थीं। ए ज्योतिने भगवान्‌के श्रीविग्रहसे निकलकर उनका अ किया। वे ज्योतिमें समा गयीं। यह मूर्ति डाकोर और मीराँका चीर बगलमें लटका हुआ बताया जात

संत तुकारामके सदेह स्वर्ग जानेका विवरण होता है। संवत् १७०६ वि० की चैत्र कृष्ण द्वि संत तुकारामने सदेह स्वर्ग-गमन किया। यह घटन कल्पनामात्र कहकर नहीं उड़ायी जा सकती। साहित्यके तुलसीदास महाकवि मोरोपन्तका कथन

'जिस तरह भगवान् राम सदेह स्वर्ग—साकेतलोक गये, उसी तरह संत तुकारामने शरीरसे ही वैकुण्ठकी यात्रा की।'

दक्षिणके प्रसिद्ध योगी संत रामलिंगम्‌ने दो साल पहले ही बतला दिया था कि मैं ५४ सालकी अवस्थामें इस शरीरसे ही अदृश्य हो जाऊँगा। अन्तिम समय उपस्थित होनेपर शिष्योंने उनको आरामसे सुला दिया। वे कहने लगे—'मैं कुछ समयके लिये अदृश्य हो रहा हूँ। यह शरीर जलाने अथवा समाधिके लिये नहीं मिल सकेगा। मैं शुद्ध निर्विकल्प समाधिमें हूँ।···खिड़की और दरवाजे चारों ओरसे बंद कर दीजिये।' उनकी आज्ञाके अनुसार दरवाजे बंद कर दिये गये। ताले लगा दिये गये। लोग बाहर खड़े होकर सावधानीसे देख रहे थे। दरवाजे खोले जानेपर कुटीमें शून्यके सिवा और कुछ भी न दीख पड़ा।

दक्षिण भारतके ६३ नायनार संतोंमें महात्मा तिरुमूल नायनारको एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। भ्रमण करते समय कावेरी सरिताके तटपर उन्होंने पशुओं—गाय-बछड़ोंको अपने चरवाहे—मूलनकी मृत्यु हो जानेपर उसके शरीरको घेरकर करुण विलाप करते देखा। पशु चरवाहेके मृत शरीरकी परिक्रमा कर रहे थे और जोर-जोरसे डकार रहे थे। उनके नेत्र अश्रुपूर्ण थे। संत तिरुमूलके लिये यह शोकपूर्ण दृश्य असह्य हो उठा। उन्होंने अपने शरीरको एक सुरक्षित स्थानमें छोड़कर योगबलसे मूलनके मृत शरीरमें प्रवेश किया। मूलनको जीवित देखकर पशुओंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। शामको गायोंके पीछे-पीछे गाँवमें आकर चौराहेपर मूलनके शरीरमें स्थित तिरुमूल खड़े हो गये। मूलनकी पत्नीके आनेपर उन्होंने कहा कि 'आजसे हमारा-तुम्हारा शारीरिक सम्बन्ध समाप्त हो गया।' ग्रामके एक मठमें निवासकर कुछ दिनोंतक साधना करनेके बाद अपने पहले शरीरका पता न चलनेपर तिरुअवदत्तरैमें आकर शिवकी उपासना कर शेष जीवन सार्थक किया।

संत-महात्माओंका यह दृढ़ निश्चय है कि कायामें स्थित होकर जीव आता है, पर जाता अकेला ही है। महायोगी गोरखनाथका कथन है—

'काया हंस संगी ह्वै आवा।
जात जोगी किनहूँ न पावा।'

संत शेख फरीदका कथन है कि 'जीवात्मा दुलहिन है। मृत्यु दूल्हा है, मृत्युसे उसका विवाह होता है, वह मृत्युके घर चली जाती है।' फरीदकी वाणी है—

'जिंदु बहूटी मरणु बरु ह्वै जासी परणाइ।'

संत मृत्युसे कभी भयभीत नहीं होते हैं। उनका तो कथन सदा यही रहता है। संत सिंगाजीका वचन है—

ऐसा मरना मरो संत भाई।
बहुरि जनम नहिं धरणा रे।

संत-महात्माओंकी देहान्तर-स्थिति रहस्यमयी है। उनकी कृपा तथा भगवान्‌के अनुग्रहसे ही किसी-किसीकी समझमें आती है।

नारायणके भजनमें मन-इन्द्रियोंकी सफलता

यदि मुक्ति चाहते हो तो सच्चिदानन्दस्वरूप परमदेव भगवान् नारायणका सम्पूर्ण चित्तसे भजन करो। भगवान् जनार्दनमें जिसकी दृढ़ भक्ति है, उसके सम्पूर्ण श्रेय सिद्ध हो जाते हैं। अतः भक्त पुरुष सबसे बढ़कर है। मनुष्योंके उन्हीं पैरोंको सफल जानना चाहिये, जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें दर्शनके लिये जाते हैं। उन्हीं हाथोंको सफल समझना चाहिये, जो भगवान् विष्णुकी सेवामें तत्पर होते हैं। पुरुषोंके उन्हीं नेत्रोंको पूर्णतः सफल जानना चाहिये, जो भगवान् जनार्दनका दर्शन करते हैं। साधुपुरुषोंने उसी जिह्वाको सफल बताया है, जो निरन्तर हरिनामके जप और कीर्तनमें लगी रहती है। मैं सत्य कहता हूँ, हितकी बात कहता हूँ और बार-बार सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार बतलाता हूँ—इस असार संसारमें केवल श्रीहरिकी आराधना ही सत्य है। यह संसार-बन्धन अत्यन्त दृढ़ है और महान् मोहमें डालनेवाला है। भगवद्भक्ति-रूपी कुठारसे इसको काटकर अत्यन्त सुखी हो जाओ। वही मन सार्थक है, जो भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगता है तथा वे ही दोनों कान समस्त जगत्के लिये वन्दनीय हैं; जो भगवत्-कथाकी सुधाधारासे परिपूर्ण रहते हैं। (नारदपुराण)

परलोक और पुनर्जन्म

(लेखक—पं० श्रीसभापतिजी मिश्र, बी० ए०, साहित्यरत्न, विद्यावाचस्पति)

सृष्टिके आदिकालसे ही पारलौकिक विधानकी परम्परा ात विधिसे चली आ रही है। इस विधानपर मानवका अधिकार नहीं है। वेद, पुराण, उपनिषद् और शास्त्र ी मर्यादाकी सीमा बाँधते हैं। भारतीय संस्कृति भी ौकिक सत्ताको स्वीकार करती है। यह पुनर्जन्मके ान्तोंमें भी विश्वास रखती है। कारण स्पष्ट है कि मानव-ताके विकासके साथ-साथ प्रकृति भी मानवकी सहचरी है। आर्यलोग भी प्रकृतिपूजक थे। प्रकृति नित्य नवीन फल, पुष्प, लतिका, कलिकाको जन्म देती है। भला र मानव-शरीर उस अनादि नियमसे कैसे वञ्चित रह ता है; भारतीय संस्कृति लोकेतर, अर्थात् स्वर्ग-नरकके द्धान्तोंमें विश्वास रखती है। **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं र्म शुभाशुभम्।'** का भोग करनेके लिये मनुष्य पुनः म लेता है। **'ततो मनुष्यताप्राप्तिस्ततः कर्माणि ाधयेत्।'** मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगता है। ीलिये स्वर्ग तथा नरककी व्यवस्था की गयी है।

पुनर्जन्मके विविध प्रसङ्ग

भारतीय संस्कृतिके अवयवमें पुनर्जन्म प्राणकी तरह तिष्ठित है। अनेक घटनाएँ, कहानियाँ, शास्त्रसम्मत माण, इस तथ्यकी पूर्ति करते हैं कि शरीरादि विभागों- ं विनष्ट हो जानेके अनन्तर भी जीवकी सत्ता समाप्त नहीं ोती; बल्कि वह पुनः अन्य शरीरोंको प्राप्त हो जाता है।

मुनियोंद्वारा दिये गये शापके कारण भानुप्रताप तीन न्मोंतक राक्षसयोनिमें रहा। राजा नृगको दूसरे जन्ममें गरगिट होना पड़ा था। कश्यप और अदिति दूसरे जन्ममें शरथ और कौशल्या हुए—

कस्यप अदिति महातप कीन्हा।
तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा।
कोसलपुरीं प्रगट नरभूपा॥

(बा० का० १८६। ३)

भगवान् विष्णु अपने अन्य अवतारोंमें राम एवं कृष्ण हुए। शिवजी अपने दूसरे रूपमें हनुमान् हुए। स्कन्दपुराण-के रेवाखण्डमें पुनर्जन्मकी अन्यान्य कथाएँ सर्वविदित ही हैं।

शतानन्दो महाप्राज्ञो सुदामा ब्राह्मणो ह्यभूत्।
तस्मिन् जन्मनि श्रीकृष्णं ध्यात्वा मोक्षमवाप ह॥
काष्ठभारवहो भिल्लो गुहराजो बभूव ह।
तस्मिन् जन्मनि संसेव्य रामं मोक्षं जगाम वै॥
उल्कामुखो महाराजो नृपो दशरथोऽभवत्।
श्रीरङ्गनाथं सम्पूज्य श्रीवैकुण्ठं तदागमत्॥
धार्मिकः सत्यसंधश्च साधुर्मोरध्वजोऽभवत्।
देहार्धं क्रकचैश्छित्त्वा दत्त्वा मोक्षमवाप ह॥
तुङ्गध्वजो महाराजो स्वायम्भुवोऽभवत्किल॥

अर्थात् शतानन्द नामक व्यक्ति दूसरे जन्ममें सुदामा हुआ। उल्कामुख राजा दूसरे जन्ममें राजा दशरथ तथा सत्यसंध नामक धार्मिक दूसरे जन्ममें मोरध्वज हुए।

इन पौराणिक कथाओंका पूर्वापर सम्बन्ध कुछ भी हो; किंतु ये कथाएँ इस तथ्यके लिये पुष्ट प्रमाण हैं कि जीवका पुनर्जन्म होता है तथा कर्मानुसार शुभाशुभ लोकोंकी प्राप्ति अवश्य होती है। ऐसी ही अन्यान्य कथाएँ हमारे धर्मशास्त्रोंमें वर्णित हैं, जिनमें विश्वास न करना अपनी संस्कृतिपर कुठाराघात करना है।

हमारे उपनिषद् भी पुनर्जन्म तथा परलोकके बारेमें एक-मत हैं। कठोपनिषद्में यम तथा नचिकेताका अन्यान्य प्रश्नोंका संवाद इसी ओर इंगित करता है। मनुष्य अपने कर्मानुसार स्वर्ग (परलोक)की प्राप्ति करता है। नचिकेता स्वर्गकी समृद्धिका वर्णन करते हुए कहता है कि 'स्वर्ग-लोकमें कोई भय नहीं। वहाँ न तो मृत्यु है और न कोई वृद्धावस्थासे डरता है। भूख-प्यास दोनोंसे रहित होकर तथा शोकरहित हुआ व्यक्ति प्रसन्न हो जाता है।' (कठ० १। १। १२)

इसी परलोक-प्राप्तिके साधनोंके सम्बन्धमें नचिकेताका प्रश्न था। जो परलोक सकाम कर्म एवं यज्ञादिसे प्राप्त होता है, वह मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ देवयोनिमें जन्म लेनेसे अधिक कुछ नहीं है। निश्चयमेव वह सर्वश्रेष्ठ योनि दुःखोंसे रहित और उत्कृष्टतम सांसारिक सुखोंसे पूर्ण होती है; इसीलिये

(२)

कालका आवर्तन

कालकी गति आवर्तनशील है। इस आवर्तनमें सारा विश्व अपनी-अपनी मात्राके अनुसार आवर्तित होता रहता है। कालकी सरल गति भी है। उसमें काल महाकालरूपमें आत्मप्रकाश करता है। मायाराज्यको पार करनेपर कालकी वक्रगतिसे उद्धार पाना सम्भव होता है। तब सरल गतिका प्रकाश रहता है। इससे तीनों काल एक अखण्ड वर्त्तमान रूपमें प्रकाशित होते हैं। कालकी सरल गतिके बाद केन्द्रस्थानमें काल स्थिरत्व प्राप्त करता है। काल महाकालमें परिणत होकर कालातीत नित्य विराजमान परम पुरुष-रूपमें आत्मप्रकाश करता है। कालकी वक्रताके चले जानेपर अनन्त आकाशकी अनन्त सत्ता निवारण होकर वहाँ प्रकाशमान होती है। तब सर्वदेश और सर्वकाल एक महाबिन्दुके बीच प्रकाशमान हो जाता है अर्थात् तब योगीकी इच्छाके साथ-साथ तत्तत् देश और तत्तत् काल प्रकाशित होते हैं। तब व्यवधान अथवा दूरत्व नहीं रहता। आचार्य भर्तृहरि कहते हैं—

> आविर्भूतप्रकाशानामनुपप्लुतचेतसाम् ।
> अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते ॥

अर्थात् महाप्रकाशका आविर्भाव होनेपर किसी प्रकारका आवरण क्रिया नहीं कर सकता। आवरण तमोगुणका कार्य है। प्रकाशके आनेपर जैसे अन्धकार हट जाता है, ठीक उसी प्रकार महाप्रकाशके उदय होनेपर सब प्रकारके

अमरत्वकी प्राप्ति और मृत्यु-विजय

साधारण स्थूल दृष्टिसे अमरत्वकी प्राप्ति और मृत्यु-विजय एक ही अवस्थाके दो नाम जान पड़ते हैं, परंतु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है; क्योंकि अमरत्वकी प्राप्तिकी अपेक्षा मृत्यु-विजय बहुत ही ऊँची अवस्था है। समुद्र-मन्थनके उपाख्यानसे जाना जाता है कि समुद्र-मन्थनसे उत्पन्न अमृतका पान करके देवताओंने अमरत्व प्राप्त किया था; परंतु समुद्रमन्थनसे ही उत्पन्न तीव्र हलाहल विषको ग्रहण करनेमें उनमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ। जिन्होंने उस हलाहलको पान करके पचा लिया था, उनकी स्थितिको केवल देवताओंके अनुरूप वर्णन करनेसे काम नहीं चलता। इसीलिये उनको 'मृत्युञ्जय', 'महादेव' कहा जाता है। कालरूपी मृत्युपर विजय प्राप्त किये बिना कोई 'मृत्युञ्जय' नहीं हो सकता। यह काल ही 'कालकूट विष' है। देवता लोग इसको पचा नहीं सकते। समस्त विश्व-सत्ताको मन्थन करके उसमेंसे सुन्दर और शोभन अंश जो ग्रहण करते हैं, वे दिव्य पुरुष हैं; किंतु इस मन्थनसे उत्पन्न विश्वकी अन्तर्वर्त्ती प्रतिकूल सत्ता, जिसको देवगण सहन नहीं कर सकते, उसको भी जो अम्लानवदन—प्रसन्न मुखसे पान करके मृत्युके ऊपर जय-ध्वजा फहराते हैं, वे 'मृत्युञ्जय' महादेव हैं। इसीका नाम है—स्वरूपका रूपान्तर-सम्पादन। कालपर विजय प्राप्त करना हो तो

ा। इसके बाद 'क' ऊर्ध्वगतिके द्वारा मनोमयमें प्रवेश रता है और उसके साथ एक हो जाता है। तत्पश्चात् ' में अवतरण करके 'क'को भी मनोमय कर डालता । धीरे-धीरे वह एक हो जाता है। उसका नाम 'ख' । इसके बाद 'ख' ऊर्ध्वगतिके द्वारा विज्ञानमय कोषमें वेश करता है और उसके साथ ऐक्य प्राप्त करता है। पश्चात् वह उतरकर 'ख' के साथ एक हो जाता है। त अवस्थाका नाम 'ग' है। इसके बाद 'ग' उत्थित कर आनन्दमय कोषको स्पर्श करता है और उसको पना लेता है। उसके बाद यह एकीभूत सत्ता विज्ञानमयमें वतरण करती है और विज्ञानको अपने साथ अभिन्नरूपमें ापित करती है। इसका नाम 'घ' है। इसके परे भी वस्था है। जिसको 'घ' कहा गया, वह एक ही साथ न्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय और आनन्दमय सत्ता । किंतु यह अचित्-स्वरूप है। इसके बाद 'घ' चित्-वरूप आत्मामें प्रवेश करके उसके साथ एक हो जाता । उसके बाद चित्स्वरूप आत्मा अवतरण करके चित्के साथ एक हो जाता है। तब चित् और अचित्का थवा आत्मा और शरीरका भेद नहीं रहता। यहाँतक सम्पन्न होनेपर चित् और अचित्का भेद कट जाता है तथा स्थूल और सूक्ष्मका भी भेद नहीं रह जाता। विभिन्न खण्ड सत्तामेंसे सब प्रकारका पार्थक्य तिरोहित होकर एक अखण्ड सत्ता विद्यमान हो जाती है। यही यथार्थ सिद्धावस्था है। इसीके दूसरे नाम 'कालजय' या 'मृत्युञ्जयत्व'की प्राप्ति है। यह देवावस्थासे बहुत ऊँची अवस्था है; क्योंकि देवावस्थामें अमरत्वकी प्राप्ति तो होती है, किंतु मृत्युपर जय प्राप्त नहीं है। अमर लोग मृत्युसे डरकर दूर ही रहते हैं। इसीसे कहा जाता है कि देवगण भी मृत्युके अधीन हैं। सोमपान या अमृतपानके द्वारा देवगण जो अमरत्व प्राप्त करते हैं, वह केवल दीर्घजीवनकी प्राप्ति मात्र है। महाप्रलय या अतिमहाप्रलयमें इस दीर्घ-जीवनका भी अवसान हो जाता है; किंतु मृत्युञ्जय अवस्था कालातीत है। उसमें मृत्यु ही नहीं रहती। सिद्धगणका सिद्धत्व इस मृत्युञ्जयत्वकी सामर्थ्यके ऊपर निर्भर करता है। केवल मृत्युञ्जयत्व चरम सिद्धि नहीं है। गीता (१४।२) में जो कहा है—

'सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।'

यह इसी 'कालातीत मृत्युञ्जय' अवस्थाका वर्णन है।

(३)

काल और महाकालका रहस्य

काल और महाकालके रहस्यके सम्बन्धमें संक्षेपसे कुछ कहा जाता है। काल और महाकाल स्वरूपतः एक ही वस्तु हैं। तथापि दोनोंमें पार्थक्य है। जगत्के परिणामके मूलमें कालकी शक्ति क्रिया करती है। प्रकृतिके परिणाम-शीला होनेपर भी सृष्टिकी धारा कालके द्वारा ही नियन्त्रित होती है। पातञ्जलदर्शनके दृष्टिकोणसे ज्ञात होता है कि प्रकृति परिणामिनी है। यह परिणाम दो प्रकारका है। एक परिणाम, 'सदृश परिणाम'के नामसे ख्यात है। दूसरेका नाम 'विसदृश परिणाम' है। गुणत्रयकी साम्यावस्था ही प्रकृतिका स्वरूप है। वैषम्यावस्थामें सृष्टिका उदय होता है। लयके समय सत्त्व सत्त्वरूपमें, रजः रजोरूपमें और तमः तमो रूपमें 'सदृश परिणाम'को प्राप्त होता है। इस परिणामके साथ भी कालका सम्बन्ध है। इस परिणामके समय सारे कर्म-संस्कार परिपक्व होते हैं और सृष्टिकी उन्मुखावस्थाका उदय होता है। सृष्टिके नियामकके रूपमें कालके न रहनेपर प्रलयके अन्तमें सृष्टिके आरम्भ होनेका कोई निर्देश न रहता। प्रकृतिका परिणाम स्वभावसिद्ध होनेपर भी गुणका परिपाक काल-सापेक्ष है। गुणके परिपाकके बिना 'विसदृश परिणाम' अथवा 'तत्त्वान्तर परिणाम' नहीं होते। तत्त्वान्तर परिणामकी सम्भावना न रहनेपर सृष्टिका उदय असम्भव हो जाता है। सृष्टिके मूलमें कर्मसंस्कार रहता है, यह सत्य है; किंतु अपक्व संस्कारसे सृष्टि नहीं होती। इसके लिये कालकी अपेक्षा है। इसी कारण महाभारतमें कहा है कि—

'कालः पचति भूतानि।'

'तत्त्वान्तर परिणाम'के तीन प्रकार हैं—धर्म, लक्षण और अवस्था। प्रकृति धर्मी है। वह जो धर्मरूपमें परिणत होती है, वही उसका प्रथम परिणाम है। यह धर्म उसके बाद काल-परिणामके अधीन हो जाता है। 'काल-परिणाम'को 'लक्षण-परिणाम' कहते हैं। अनागत, वर्त्तमान और अतीत—ये तीन लक्षण हैं। इनका त्रिकाल (तीन काल) के नामसे वर्णन किया जाता है। धर्म सबसे पहले अनागत लक्षणमें प्रवेश करता है। उसके बाद अनागत धर्म अर्थात् भविष्य धर्म वर्तमान रूपमें परिणत हो जाता है। अनागतको करण

व्यापारके द्वारा वर्तमानमें परिणत करना पड़ता है। अकृत्रिम रूपमें यह स्वभावतः होता है। कृत्रिम रूपमें मनुष्य इसे कर सकता है या किया करता है। अनागत अवस्थामें जो सत्ता रहती है, वर्तमान अवस्थामें भी सत्ता वही रहती है। परन्तु अनागत अवस्थामें वह अव्यक्त होती है। करण आदि अभिव्यञ्जकके द्वारा अभिव्यञ्जित होकर वह वर्तमान रूपमें स्थित होती है। यहाँ याद रखना चाहिये कि करण व्यापार अनागत सत्ताको अभिव्यक्त करके वर्तमानमें व्यक्त करता है, यह सत्य है। किंतु केवल धर्म सत्ताको अव्यक्त अवस्थासे व्यक्त नहीं कर सकता। धर्म-परिणाम कालसे संश्लिष्ट हुए बिना अनागत लक्षण-परिणामके रूपमें परिणत नहीं हो सकता। लक्षण-परिणाम वस्तुकी व्यापक सत्ता है। वह परिणामशील होकर भी जबतक अव्यक्त रहती है, तबतक उसमें क्षणिक परिणामका उदय नहीं होता। वर्तमान लक्षणमें प्रतिक्षण परिणाम सम्भव है। इसीका नाम 'अवस्था-परिणाम' है। अतीत लक्षणमें क्षणिक परिणामका संधान नहीं मिलता। अनागत और अतीत, दोनों क्षेत्रोंमें ही क्षणिक परिणाम नहीं होता। कालक्रमको अवलम्बन करके परिणाम कार्य सम्पादन करता है। इस क्रमके द्वारा ही पूर्वापर अनुभव होता है। वस्तुतः यह क्रम क्षणका ही क्रम है। योगीके सिवा दूसरा कोई 'क्षणका क्रम' नहीं समझ सकता। वस्तुतः एक ही क्षणमें समस्त जगत् परिणाम अनुभव करता है। योगीकी दृष्टिमें काल बौद्ध पदार्थ है। बुद्धिके बाहर काल नहीं है, क्रम है। क्षणके क्रमके अनुसार कालका परिमाण होता है। क्षण और उसके ऊपर योगी 'विवेकज ज्ञान' प्राप्त कर सकता है। 'विवेकज ज्ञान' विवेकज्ञान नहीं है, वह उससे पृथक् है। यह 'अलौपदेशिक प्रातिभ ज्ञान' है। इस प्रातिभ ज्ञानसे त्रिकालका पूर्ण ज्ञान उत्पन्न होता है। उसमें कोई क्रम नहीं रहता। वह शब्दजनित ज्ञान नहीं है। अतएव उसमें क्रमका प्रश्न ही नहीं उठता।

वर्तमान रूपमें प्रकाशित है। परन्तु यह अनन्त सृष्टि इ रूपमें प्रकाशित है, अहं रूपमें नहीं। जो कोई जो कु खोजेगा, वहाँ उसको वही मिलेगा। वहाँ किसी वस्तुक अभाव नहीं है। वहाँ अतीत भी वर्तमान है, अनागत भ वर्तमान है और वर्तमान भी वर्तमान है। हमारे परिचि वर्तमानमें क्षणिक परिणाम है, परंतु वहाँ वह भी नहीं है

हमारा परिचित विश्व कालराज्यमें अवस्थित है जिसको ब्रह्माण्ड कहा जाता है, वह कालके अधीन है क्योंकि इसकी भी सृष्टि, स्थिति और संहार है। ब्रह्माण्डकी संख्या असंख्य है, पर सर्वत्र यही नियम है। ब्रह्माण्डकी समष्टिको लेकर प्रकृत्यण्डकी सृष्टि होती है। प्रकृत्यण्ड भी असंख्य हैं। वहाँ भी कालका परिणाम है और उनक भी सृष्टि-संहार है। समस्त प्रकृत्यण्डकी समष्टिको मायाण्ड कहते हैं। समस्त मायाण्डमें एक ही स्वभाव है। मायाके ऊर्ध्वमें शाक्ताण्ड है। वहाँ कालकी गति अन्य प्रकारकी है। वहाँ निम्नस्तरकी भाँति सृष्टि-संहार नहीं होता, तथापि सृष्टि-संहार है।

कालकी आलोचना करते समय सृष्टि और संहारके विषयमें प्रसङ्गतः आलोचना करना आवश्यक है। सबसे पहले संहारके विषयमें कुछ कहना सङ्गत जान पड़ता है; क्योंकि संहारके बाद ही सृष्टिका उन्मेष बुद्धिमें आरूढ़ होता है। प्राचीन आचार्योंने प्रलयको चार भागोंमें विभक्त किया है, अवश्य ही वह है आपेक्षिक रूपमें ही। उनमें एक 'नित्य प्रलय' है। दूसरा, 'नैमित्तिक प्रलय' तीसरा 'प्राकृतिक प्रलय' अथवा 'महाप्रलय' है और चौथा 'आत्यन्तिक प्रलय या 'मोक्ष' है। नित्य प्रलय सर्वदा और सर्वत्र सूक्ष्म रूपमें चलता रहता है। निद्राकी अवस्था भी एक प्रकारका प्रलय है। सारे जगत्में निरन्तर इस प्रकारका प्रलय चलता रहता है। नित्य प्रलय जगत्की निरन्तर विनश्वरताको प्रमाणित करता

परब्रह्मके साथ तादात्म्यको प्राप्त हो जाते हैं । अबतक ब्रह्मलोकमें जो लोग रहते थे, उन सभीको लेकर वे ब्रह्ममें प्रविष्ट हो जाते हैं । परंतु ब्रह्मलोकमें सब लोग एक ही अवस्थामें हों, ऐसी बात नहीं है । सालोक्यसे सायुज्यपर्यन्त सभी अवस्थाएँ वहाँ हैं । महाप्रलयके बाद नवीन सृष्टि दूसरे ब्रह्माको लेकर होती है । इसी प्रकार अनादिकालसे होता आ रहा है और अनन्त कालतक होता रहेगा । ब्रह्माण्डके ध्वंसरूपी इस प्रलयको 'प्राकृतिक प्रलय' कहते हैं । प्रचलित भाषामें इसका नाम 'महाप्रलय' है । इस अवस्थामें प्राचीन जगत्की सृष्टिका अवसान तथा नवीन जगत्का अभ्युत्थान होता है ।

ब्रह्माके दिनके अन्तमें अर्थात् ब्रह्माके निद्राकालमें जो प्रलय होता है, उसका नाम 'नैमित्तिक प्रलय' है । नैमित्तिक प्रलय दो प्रकारका होता है--आंशिक और पूर्ण । आंशिक प्रलय कब होता है ?—इसके उत्तरमें आचार्यगण कहते हैं कि एक-एक मन्वन्तरके बाद यह हुआ करता है । ब्रह्माके एक दिनको 'कल्प' कहते हैं । कल्पके अन्तमें जो प्रलय होता है, उसका नाम 'कल्प प्रलय' है । एक कल्पमें, अर्थात् ब्रह्माके एक दिनमें चतुर्दश मनुओंका आविर्भाव और तिरोभाव होता है । ७१००० महायुगमें एक-एक मनुका आविर्भाव और तिरोभाव होता है । एक मनुके अवसानमें एक प्रलयावस्था उदय होती है । तत्पश्चात् द्वितीय मनुका उदय होता है, इत्यादि । इस प्रकार चतुर्दश मनुका आयुष्काल पूर्ण होनेपर ब्रह्माका एक दिन पूर्ण होता है । 'मन्वन्तर प्रलय' से कल्प प्रलय' व्यापक है और 'कल्प प्रलय' से 'महाप्रलय' व्यापकतर होता है । एक-एक मन्वन्तरमें मनुके साथ इन्द्र, ऋषि, देवर्षि और पितृगणका परिवर्तन होता है । मन्वन्तर प्रलयमें पृथिवी जलमग्न हो जाती है । तब भूर्लोकसे भुवर्लोक और स्वर्लोकका सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है । महर्लोककी अवस्था अविकृत रहती है । पूर्ण नैमित्तिक प्रलयके समय कल्पका अन्त हो जाता है, अर्थात् ब्रह्माके एक दिनका अवसान हो जाता है, अतएव समस्त सृष्टिमें निद्राका भाव प्रबल हो जाता है । ब्रह्माके निद्रागत होनेके कारण कल्प प्रलयमें सारा जगत् सुप्त हो जाता है । उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक नहीं रहते, दग्ध हो जाते हैं । महर्लोकके ऋषिगण तापके कारण जन-लोकमें चले जाते हैं । इसके बाद नीचेके तीनों लोक जलमग्न हो जाते हैं । तब ब्रह्माण्डको प्राणशक्तिको आकर्षण करके भगवान् विष्णु शेषशय्यापर शयन करते हैं । यह उनकी 'योगनिद्रा' है ।

'नित्य प्रलय' और 'आत्यन्तिक प्रलय' पिण्डके साथ संश्लिष्ट हैं, किंतु 'नैमित्तिक प्रलय'का सम्बन्ध ब्रह्माण्डके साथ है ।

पापका फल अकेला ही भोगता है

अन्तकालमें मनुष्य सबको छोड़कर अकेला ही परलोककी यात्रा करता है । मेरी माता, मेरे पिता, मेरी पत्नी, मेरे पुत्र और मेरी वस्तु – इस प्रकारकी ममता प्राणियोंको व्यर्थ पीड़ा देती रहती है । पुरुष जबतक धन कमाता है, तभीतक भाई-बन्धु उससे सम्बन्ध रखते हैं, परंतु इहलोक और परलोकमें केवल धर्म और अधर्म ही सदा उसके साथ रहते हैं' वहाँ दूसरा कोई साथी नहीं है । धर्म और अधर्मसे कमाये हुए धनके द्वारा जितने जिन लोगोंका पालन-पोषण किया है, वे ही मरनेपर उसे आगके मुखमें झोंककर स्वयं घी मिलाया हुआ अन्न खाते हैं । पापी मनुष्योंकी कामना रोज बढ़ती है और पुण्यात्मा पुरुषोंकी कामना प्रतिदिन क्षीण होती है । मनुष्यके कमाये हुए सम्पूर्ण धनका सदा सब भाई-बन्धु भोगते हैं, किंतु वह मूर्ख अपने पापोंका फल स्वयं अकेला ही भोगता है । (महर्षि उत्तङ्क)

मनोविज्ञान और पुनर्जन्म

(लेखक—श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी)

मनोविज्ञान मानवजीवनके अन्तर्बाह्य समस्त व्यापारोंका अध्ययन करता है। इन व्यापारोंकी चरम परिणति क्या होगी, यह विषय आधुनिक मनोविज्ञानके विचार-क्षेत्रके बाहर है। मानसिक व्यापार मानवके स्वभावका निर्देश करते हैं। दूसरे शब्दोंमें यह कह सकते हैं कि जिसका जैसा स्वभाव होता है, वैसा ही वह सोचता है, विचारता है; वैसे ही स्वप्नोंमें विचरण करता है और वैसा ही कर्म करता है। 'जैसा स्वभाव, वैसा जीवन'—यह स्वभाववादी मनोवैज्ञानिकका सिद्धान्त है। स्वभाववादी मनोवैज्ञानिककी दृष्टिमें चेतना, मन और आत्मा आदि तत्त्वोंका कोई अस्तित्व ही नहीं है। सब कुछ स्वभावसे होता है। इसीको लक्ष्य करके किसी विद्वान्ने कहा है—

'Psychology first lost its soul, then its mind, and then its consciousness; how, it has only the body, with behaviour of a kind.'

'मनोविज्ञानने पहले अपनी आत्माको उड़ा दिया। उसके बाद अपने मनको और उसके बाद अपनी चेतनाको। अब उसके पास केवल एक प्रकारका स्वभाव या व्यवहार-युक्त शरीर रह गया है।'

इस प्रकारके मनोविज्ञानको आप स्वभाववाद, व्यवहार-वाद या प्रकृतिवाद जिस-किसी नामसे पुकारें, केवल व्यवहार (Behaviour) को लेकर मानस-व्यापारको सीमित करना कभी भी समीचीन नहीं हो सकता। प्रश्न यह होता है कि मानस-व्यापारका कोई अर्थ है? इसका कोई प्रयोजन है? अथवा यों ही सब कुछ हो रहा है? संसारके मनीषियोंने जो आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक, धर्म-अधर्म आदि तत्त्वोंका उपदेश देकर अशुभकर्मोंसे बचने और शुभकर्मोंके करनेकी प्रेरणा प्रदान की है, क्या वह सब निरर्थक है? व्यवहारवादी (Behaviourist) इसका उत्तर देता है—

'To rescue from the clutches of Superstition and fear, throw away meaning and purpose. The Uuiverse is a big machine.'

'अन्धविश्वास और भयके चंगुलसे बचना हो और प्रयोजनको लात मारो। विश्व एक बड़ी समान है।'

व्यवहारवादीका यह कथन विरुद्धहेत्वाभाससे है। जब वह विश्वको मशीन मानता है तो मशीन चलाये बिना नहीं चल सकती। अतएव इसके विश्वनियन्ता ईश्वरको मानना ही पड़ेगा। व्यवहार मनोविज्ञान अर्थप्रधान है और मनोविश्लेषणवादी साहबका मनोविज्ञान अर्थ और कामप्रधान है। प्रधानवाले केवल जाग्रदवस्थाकी चेतनामें ही विचरण हैं। उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्व यूरोपका मनोविज्ञान अवस्थातक ही सीमित था। फ्रायड साहब आगे उन्होंने स्वप्नकी अनुभूतियोंके आधारपर उपचेतन अचेतन (Preconscious and Unconscious का पता लगाया और सुषुप्तिकी प्रेरणा तथा स्वरूप कुछ प्रकाश डाला। परंतु काम-प्रबलताको स रखनेकी उनकी परिकल्पना (Hypothesis) अम गयी। सिद्धान्तरूपमें न आ सकी। इंग्लैंडके जोड उनसे बहुत आगे बढ़े और उन्होंने कहा—

'My recipe for the world is the vation of the spirit by recollec meditation, fasting, breathing exercises prayer in preparation for the coming of newly conscious-man.'

'संसारके लिये मेरा यह अभिलेख है कि अ चेतनायुक्त मानवके आगमनकी तैयारीमें प्रार्थना, प्राण उपवास और ध्यान-धारणाके द्वारा चित्तवृत्तिको करना चाहिये।'

यहाँतक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक अर्थ और कामसे धर्मकी भूमिकामें अवतीर्ण हो गये। इसी भूमिकामें सोफिस्ट लोगोंने प्रेतवाद (Spiritualism) के पदार्पण किया।

थियोसोफिस्ट लोगोंने बहुत कुछ आगे बढ़कर तीय अध्यात्मको स्पर्श करनेका प्रयत्न किया। भा

मनोविज्ञानकी विचारसरणिमें इस अध्यात्मसाधनके पथ-पर योगिराज श्रीअरविन्दको बहुत सफलता प्राप्त हुई। चेतनाके विभिन्न स्तरोंको परिकल्पनाके साथ-साथ 'अति-मानव'का सृष्टि-विकास तथा भूतलपर देवत्वके स्वयं आवि-र्भावकी उच्चतम परिकल्पना (Highest hypothesis) भारतके प्राचीन मनीषियोंके सिद्धान्तसे निराली वस्तु है। मूलतः यह परिकल्पना डार्विनके विकासवादको श्रेष्ठतम आध्यात्मिक परिणति है। इसका परिच्छेद भारतीय है; परंतु सांख्यके परिणामवादसे इसका पूर्णतः मेल नहीं खाता और न पुराणोंका कर्मवाद इसके अनुकूल है।

मनोविज्ञानको भारतीय परम्परामें पुनर्जन्मका सिद्धान्त पूर्णतः कर्मफलपर आधारित है। इस परम्पराके पूर्ण समर्थक स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—

'It is the Science of Psychology that teaches us to hold in check the wild gyrations of the mind, place it under the control of the will, and thus free ourselves from its tyranuous mandates Psycholgy is therefore the science of sciences without which all sciences, all our knowledge are worthless'

—(Complete Works Vol. VI. Page 26)

'मानस-शास्त्रका विज्ञान हमको मनकी उच्छृङ्खल प्रवृत्तियोंको निरुद्ध करने, उसको संकल्पशक्तिके निय-न्त्रणमें रखने और इस प्रकार मनके अनियन्त्रित शासनसे अपनेको मुक्त करनेकी शिक्षा देता है। इस प्रकार मनोविज्ञान विज्ञानोंका विज्ञान है। इसके बिना सारे विज्ञान, हमारा सारा ज्ञान व्यर्थ है।'

स्वामी विवेकानन्दने इस कथनके द्वारा महर्षि पतञ्जलिके 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।' (१।२)—इस सूत्रके अभि-प्रायको व्यक्त किया है। वस्तुतः चित्तवृत्ति अर्थात् मनको उच्छृङ्खल बने रहने देना ही सब अनर्थोंका मूल है। अपने जीवनमें मनका अनियन्त्रित शासन चलने देना अपनेको नरकमें गिराना है। बस, यहाँसे हमारा भारतीय मनो-विज्ञान शुरू होता है। प्रश्न यह होता है कि मन है क्या? इसको कहाँसे शक्ति मिलती है? प्रथम प्रश्नका उत्तर योग-वासिष्ठके अनुसार है—

अतस्त्वं मन एवेदं नरं विद्धि न देहकम्।
जडो देहो मनश्चात्र न जडं नाजडं विदुः।
(३।११०।१

सारांश यह है, कि 'मन ही मनुष्य है' देह म नहीं है। देह तो जड है, परंतु मन न जड है न चे यह उभयात्मक है। जड-चेतनके बीचमें दुभाषि काम करता है। चेतनसे चेतना लेकर जडको चेतन बनाता है।'

सांख्यशास्त्र कहता है—

उभयात्मकमत्र मनः संकल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्या
गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाच्च
(कारिका २

'मन ज्ञानेन्द्रियोंके साथ होकर रूप-रस आदि विष ज्ञान-सम्पादन करता है और कर्मेन्द्रियोंके साथ र वचनादान-विहरणादि कर्मोंका सम्पादक बनता है। भी ही-भीतर नाना प्रकारके संकल्प-विकल्प करता है। सा अहंकारसे उत्पन्न होनेके कारण इन्द्रियोंके साथ इ साधर्म्य है, इस कारण मनको एकादश इन्द्रिय कहते सत्त्वादि गुणोंका परिणामविशेष होनेके कारण मन प्रकारका होता है और बाह्य इन्द्रिय-व्यापारोंके कारण मन विभिन्न रूप धारण करता है।' इसी बा योगवासिष्ठने इस प्रकार व्यक्त किया है—

मनः पश्य भवत्यक्षि श्रुत्वच्छ्रवगतां गतम्।
त्वग्भावं स्पर्शनादेति घ्राणतामेति जिघ्रतात्॥
रसनाद्रसतामेति विचित्रास्तत्र वृत्तिषु।
नाटके नटवद्देहे मन एवानुवर्तते॥
(३।११०।१८-१

'देखो, मन आँख बनकर रूप ग्रहण करता है अ रूपका आकार धारण करता है, सुनते समय श्रोत्र शब्दाकार धारण करता है, स्पर्शद्वारा त्वग्भावको होता है, इत्यादि नाना रूपोंमें इस देहरूपी नाटकमें ही नटवत् नाट्य करता है।'

सारांश यह है कि मन ही इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका रस लेता है। उपर्युक्त दूसरे प्रश्नका उत्तर है कि मनको विषयरससे बल मिलता है। यदि वि रस न मिले तो मन दुर्बल होकर मर जायगा।

विषयको छान्दोग्योपनिषद्में इस प्रकार विशदरूपसे व्यक्त किया गया है—

'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मांसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥१॥ आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः ॥ २ ॥ तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक् ॥ ३ ॥
(अ० ६ । ५)

'मनुष्य जो अन्न खाता है, वह परिपाक होनेपर तीन भागोंमें विभाजित होता है । अति स्थूल अंश पुरीष (विष्ठा) बनता है, मध्यम अंश मांस बनता है और सबसे सूक्ष्मतम अंश मन बनता है । वह जो जलपान करता है, उसका परिपाक होनेपर स्थूलतम अंश मूत्र बनता है, मध्यम अंश रक्त बनता है और सूक्ष्मतम अंश प्राण बनता है । वह जो तेज (तैजस पदार्थ) भोजन करता है, उसका स्थूलतम अंश अस्थि बनता है मध्यम अंश मज्जा बनता है और सूक्ष्मतम अंश वाक् बनता है ।'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य जो भोजन करता है, उसीका परिपाक मन, प्राण और वाक् है । मानवजीवनके ये ही तीन प्रमुख स्तम्भ हैं । मन प्राणके कम्पनके साथ प्रकम्पित अर्थात् चञ्चल होता है और उसका सारा व्यापार वाङ्मय (वाक्से ओत-प्रोत) होता है । उसका [illegible] विचारना, संकल्प-विकल्प, स्मृति आदि सब कुछ

णार्थ बौद्ध-साधकोंकी 'आनापान साधना'को दे[illegible] वे चित लेटकर केवल प्राणकी गतिपर ध्यान जमा[illegible] कुछ दिनके अभ्यासके बाद प्राणकी गति अवरु[illegible] जाती है और वाक्हीन अर्थात् मौन मन समाधि[illegible] जाता है ।

इसलिये मन कहनेपर मनके साथ प्राण और [illegible] का भी बोध होता है । प्राण और वाक्से रहित [illegible] कल्पना भी नहीं की जा सकती । वाक्को यदि चिद् [illegible] और प्राणको अचिद्, तो मनको 'चिदचिद्विशिष्ट[illegible]' कह सकेंगे । वस्तुतः सविकल्पक मन ही मायिक हो[illegible] निर्विकल्पक मन तो ब्रह्मस्वरूप होता ही है । प्रा[illegible] होनेपर ही मन सविकल्पक अर्थात् वाक्से युक्त होता है[illegible]

प्रश्नोपनिषद्में एक प्रश्न आता है कि 'यह [illegible] कहाँसे उत्पन्न होता है और कैसे इस शरीरमें आता [illegible] इसका उत्तर देते हैं कि 'आत्मन एष प्राणो जायते । [illegible] पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोऽधिकृतेनायात्यस्मिञ्छर[illegible]' (३ । ३) अर्थात् 'आत्मासे प्राण उत्पन्न होता है । [illegible] पुरुषमें छाया होती है, उसी प्रकार इसमें मन व्याप्त होता है । मनसे अधिकृत होकर प्राण इस शरीरमें आता है ।' अतएव प्राण मनको साथ लेकर इस शरीरसे निकलता है । मनके साथ वाक् आदि इन्द्रियाँ भी निकलती हैं । बृहदारण्यक उपनिषद्के षष्ठ अध्यायमें प्राणकी इस प्रधानताका स्पष्टरूपसे विवेचन किया गया है । परंतु ब्रह्मबिन्दूपनिषद् (२) में यह प्रधानता मनको प्रदान की गयी

या क्रिया कहना भी ठीक नहीं है। वेदान्तसूत्र (२ । ४ ।) में इसका खण्डन है—'न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ।'—त 'प्राण वायु और क्रिया नहीं है; क्योंकि श्रुतिमें से पृथक् प्राणका उपदेश है।' जैसे—

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ॥
(मुण्डक० २ । १ । ३)

'आत्मासे प्राण, मन, सारी इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, न, जल और सबको धारण करनेवाली पृथ्वी उत्पन्न ती है।'—यहाँ स्पष्टरूपसे प्राण और वायुका पृथक्-क् निर्देश किया है; अतएव प्राण वायु नहीं है, पृथक् व है। परंतु सांख्यने प्राणको वायु कहकर भी पृथक् व नहीं माना है। जैसे—

स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या ।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ॥
(सांख्यकारिका २९)

'मन, बुद्धि और अहंकारकी विशेष स्वालक्षण्य-त्ति है। मन मनन करता है, बुद्धिद्वारा बोध (ज्ञान) ता है और अहंकारकी अहं (मैं और मेरा) वृत्ति है। रंतु करण, अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियकी प्राणादि च-वायु सामान्य वृत्ति हैं।' अभिप्राय यह है कि इन्द्रियाँ च-प्राणके साथ ही अपने-अपने विषयोंमें बर्तती हैं। स्तुतः मनसे पृथक् प्राणको तत्त्वरूपमें ग्रहण करना ठीक हीं है। 'वाक्' मनका स्वरूप है और प्राण 'गति' है।

पुनर्जन्मके सिद्धान्तको समझनेके लिये प्राणके स्वरूपको समझना आवश्यक समझकर कुछ विस्तारपूर्वक इसकी आलोचना की गयी है। इसके द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि मन ही वस्तुतः जीवन-मरणमें मुख्य तत्त्व है। आश्चर्यकी बात है कि पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक श्री एफ० डब्लू० वेलिस (F. W. Balis) साहबने भी यही बात निष्कर्षरूपमें कही है। जैसे—

'Man is not a body consisting a mind. He is a mind operating through a body. The body itself is the result of the activity of mind, is moulded by mind and changed by mind.'

'मनुष्य मनके साथ शरीर नहीं है। वह शरीरके द्वारा कार्य-सम्पादन करनेवाला मन है। शरीर स्वयं मानसिक कर्मोंका परिणाम है, मनके द्वारा गठित हुआ है और मनके द्वारा परिवर्तित होता है।' सच है, शरीर मनके हाथका खिलौना है। यह शरीरको जिधर, जिस रूपमें चाहता है, चलाता-फिराता है। शरीरके द्वारा मन मौज करता है और शरीररूप अपनेको मानकर नाना प्रकारके शारीरिक क्लेशोंका कर्ता-भोक्ता भी बनता है। मन ही शरीरको नीरोग रखता है और यही उसको रोगी बनाता है। मन ही शरीरको रोगोंके द्वारा जर्जर बनाकर उसे मार डालता है और मन ही लिङ्गशरीरको लेकर पुनर्जन्मका हेतु बनता है।

'उभयात्मकं अत्र मनः'—पूर्वजन्ममें क्रियमाण कर्मोंका कर्ता मन है और उनको प्रारब्धके रूपमें लेकर इह-जन्ममें उनका भोक्ता भी मन ही है। यही बात वर्तमान जन्म और अगले जन्मके विषयमें है। ये तो व्यक्तिके विषयमें व्यष्टि मनके क्रियाकलाप हैं। जरा आँखें खोलकर विश्वमें चारों ओर कला-कौशलकी वस्तुएँ, आलीशान मकानात, सुन्दर सड़कें, इंजिनियरिंगकी आश्चर्योत्पादक निर्माणकला, विज्ञानके रेल, तार, जहाज, वायुयान आदि तथा जीवनोपयोगी नाना प्रकारके विविध प्रकारके प्रसाधन-सामग्रियोंका अम्बार, ज्ञान-विज्ञानके सारे साधन, मानव-संस्कृति और सभ्यताको व्यक्त करनेवाली वस्तुएँ इत्यादिको देखिये। ईश्वरीय सृष्टिके मुकाबले एक अद्भुत मानवीय सृष्टि आपको दीख पड़ेगी। यह सब कुछ मनुष्य-के मनके करिश्मे (achievements of human mind) के सिवा क्या है? मानवके समष्टि मनके करिश्मेको देखकर आप चकित हो जायँगे। अनादिकालसे मानवके समष्टि मनने विश्वमें अपने मौजके लिये जो कुछ बनाया-बिगाड़ा है तथा इस समय जो कुछ उसके कर्तव्यकी निशानी या बानगी मौजूद है, वह अज्ञेय है, अपार है, अनन्त है। इसीलिये कहना पड़ता है कि समष्टि मन 'परमात्माका मन' है और यह सारी सृष्टि परमात्माकी सृष्टि है।

ऊपर जो मनके विषयमें कहा गया है कि मन रूपादि इन्द्रियविषयोंमें आसक्त होकर बन्धन (जन्म-मृत्यु) का कारण बनता है, यह सुस्पष्टरूपसे समझने योग्य है। प्रकृति और पुरुष-दोनों 'विभु' हैं। विभुका अर्थ है—कालातीत और देशातीत; देश और काल प्रकृति और पुरुषको सीमित नहीं कर सकते। मन और सूक्ष्मशरीर विभु नहीं हैं;

अणु-स्वभावके हैं। देश (दिक्) और काल कोई तत्त्व नहीं हैं, उपाधि हैं। इनको साथ लेकर ही मन अपने व्यापारमें लगता है। मन जो कुछ बाह्य विषयोंका ज्ञान प्राप्त करता है, उसके साथ देश और काल लगे रहते हैं। देश-कालके परे मनकी गति नहीं है और न मनकी गतिसे अस्पृष्ट देश-कालकी स्थिति है। देश और कालका व्यवधान हमारे मनमें है। समीप और दूर, अतीत और भविष्य मानसिक कल्पनामात्र हैं। वस्तुतः इनका कोई अस्तित्व नहीं। सांख्यकारिकामें कहा है कि—

'प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद् व्यवतिष्ठते लिङ्गम्।' (४२)

'लिङ्ग-शरीर प्रकृतिके विभुत्वके कारण नटके समान नाना रूपमें (नाना योनिमें जन्म लेकर) क्रीड़ा करता है।' भावोंसे अधिवासित अर्थात् इहजन्मके कृतकर्मोंके सूक्ष्म संस्कारसे युक्त लिङ्ग-शरीर बिना स्थूलशरीरके रह नहीं सकता। इसलिये मृत्युके बाद मानसिक आतिवाहिक शरीरसे संलग्न होकर वह गतिशील होता है। प्रकृति और पुरुषके विभुत्वके बाहर उसे नहीं जाना पड़ता। जैसे इहलोक और इसके सारे व्यापार प्रकृति-पुरुषके विभुत्वके भीतर ही हैं, उसी प्रकार लोक-लोकान्तर भी इसके भीतर ही हैं। वस्तुतः भावोंसे अधिवासित लिङ्ग-शरीर और ये भोगार्थ परिकल्पित लोक-लोकान्तर सब कुछ मायिक हैं, प्रकृति और पुरुषके संयोगके कारण प्रकृति अर्थात् मायाके विलासमात्र हैं। मन जबतक विषयासक्त है; तभीतक वह जन्म-जन्मान्तर और लोक-लोकान्तरके मायिक चक्करमें पड़कर परेशान हो रहा है। जब वह निर्विषय हो जायगा तब यह सारी परेशानी दूर हो जायगी।

यह मनकी विषयोंमें आसक्ति ही मूलतः पुनर्जन्म कारण है, यह स्पष्ट हो गया। इस विषयासक्तिका परिण दुःख है। मनःसंतापका यही मूल कारण है। मनः जो विषयभोग प्राप्त होता है, उसका संस्कार मनप पड़ता है और उसको अधिकाधिक भोग प्राप्त करने इच्छा होती है। मनकी कमी इस भोगसे परितृप्ति न होती। यही अतृप्तिकी वासना उसके पुनर्जन्मका कार बनती है। अतएव इस वासनासे मनको मुक्त करनेसे पुनर्जन्मके दुःखसे जीवको त्राण मिल सकता है। इस लिये विभिन्न सम्प्रदाय विभिन्न प्रकारकी साधनाका निर्दे करते हैं। परंतु कलिमें एकमात्र भगवन्नाम ही आधा है। गोस्वामीजीने ठीक ही कहा है कि—

कलि केवल हरि नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पा

शास्त्रमें भी कहा है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

आचरणको पवित्र रखकर नाम-स्मरणकी साधना अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरणके शुद्ध होने मन विषय-वासनासे विरक्त हो जाता है। जीव भगवत्-कृपाको प्राप्तकर कृतार्थ होता है और पुनर्जन्मके चक्करमे उसे त्राण मिलता है तथा उसका मानव-जीवन सफल हो जाता है। इसके सिवा जीवके लिये दूसरा कोई सरल उपाय नहीं है।

निष्काम भावसे नारायणकी पूजा करो

तुम प्रतिदिन सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णुका भजन करो। सर्वशक्तिमान् श्रीनारायणका चिन्तन करते रहो। दूसरोंकी निन्दा और चुगली कभी न करो। महामते! सदा परोपकारमें लगे रहो। भगवान् विष्णुकी पूजामें मन लगाओ और मूर्खोंसे मिलना-जुलना छोड़ दो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य छोड़कर लोकको अपने आत्माके समान देखो—इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। ईर्ष्या, दोषदृष्टि तथा दूसरेकी निन्दा भूलकर भी न करो। पाखण्डपूर्ण आचार, अहंकार और क्रूरताका सर्वथा त्याग करो। सब प्राणियोंपर दया तथा साधु पुरुषोंकी सेवा करते रहो। अपने किये हुए धर्मोंको पूछनेपर भी दूसरोंपर प्रकट न करो। दूसरोंको अत्याचार करते देखो, यदि शक्ति हो तो उन्हें रोको, आततायी न करो। अपने कुटुम्बका विरोध न करते हुए सदा अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करो। पत्र, पुष्प, फल अथवा दूर्वादल पल्लवोंद्वारा निष्कामभावसे जगदीश्वर भगवान् नारायणकी पूजा करो। (ऋषि जानन्ति)

मृत्यु-संसार-सागरसे पार उतारते हुए भगवान् (गीता १२ । ७)

सेवाका फल भगवत्प्राप्ति

भोगका फल दुःखप्राप्ति

कालातीत भगवान् महाकाल

(लेखक—श्रीजगदीशप्रसादजी चतुर्वेदी)

कालज्ञानार्थ जिज्ञासा सदैव रही है, रहेगी भी। इसीसे मुनियोंने विचक्षण वायुदेवसे पूछा था—

क एष भगवान् कालः कश्चस्य वा वशवर्त्यम्।
क एवास्य वशे न स्यात् कथयैतद् विचक्षण॥

(श्रीशिवपुराण, वायुसंहिता)

'वह काल क्या है? किसके वशमें रहता है? कौन इसके वशमें नहीं हो सकता?'

ठीक ऐसे ही श्वेताश्वतर उपनिषद्में कुछ जिज्ञासु सृष्टिका कारण काल और स्वभावको बताते हैं। (१।२;६।१) श्रीशंकराचार्यने कालका अर्थ 'स्वभाव' या 'प्रकृति' किया है।

वरदराज मिश्रके अनुसार कोई कार्य तबतक नहीं होता, जबतक उसका 'समय' नहीं आता। इसी प्रकार 'कालवाद' का उल्लेख ईश्वरकृष्णने 'सांख्यकारिका'में, गौडपादने 'कारिका'में तथा उद्योतकारने 'न्यायवार्तिक' में किया है।

जैन-दर्शन, पुदगल एवं अन्य सभी द्रव्योंका कारण 'काल' को मानता है। उसके अनुसार 'काल' का अभाव न होनेके कारण ही 'पुदगल' सदैव गतिमान रहते हैं और क्षणिक समय 'काल-अणु' कहलाता है। 'काल-अणु' अनन्त हैं। उनके नित्यरूप कालको हम 'काल' के नामसे एवं सापेक्ष प्रकारके कालको 'समय'के नामसे पुकारते हैं।[1]

काश्मीरीय शैवदर्शनके अनुसार "परमशिवके आवरण (माया) के पाँच कञ्चुकोंमेंसे 'काल' भी एक कञ्चुक है।"[2] माध्ववेदान्तके अनुसार 'काल प्रकृतिसे उत्पन्न होता है और उसीमें लय होता है।'[3] वाल्लभ शुद्धाद्वैत (वेदान्त) के अनुसार 'अक्षरका ही स्वरूपान्तर काल है।'

भगवान् बुद्धने 'संयुत्तनिकाय' में कहा है—'प्राणियोंकी संसाररूपी महायात्रा 'अनादिकाल'से चल रही है।'[4] बौद्धोंका 'शून्यवाद' कालवादकी ओर ही संकेत है। नागार्जुन, 'ते आकाशस्थितेन चेतसा कालं कुर्वन्ति।' के अनुसार 'काल' भी एक विचारका रूप है, जिसकी रचना 'शून्यता' में हुई है।[5]

गुरु नानकदेव एवं अन्य गुरुओंने 'काल' का चिन्तन किया था। फलतः 'अकाल-पंथ' संस्थापित हुआ।

वैशेषिक-दर्शनके आदिप्रणेता भगवान् कणाद तथा वृत्तिकार महर्षि भरद्राजने 'काल' को नौ द्रव्योंमें स्थान दिया है। रावण भी वैशेषिकका मर्मज्ञ था; 'ब्रह्मसूत्र'-शांकर-भाष्यकी टीका 'रत्नप्रभा' (२।२।११) में उसके 'भाष्य' की चर्चा है। किंतु यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। रावणने 'काल'को खाट-पाटीसे बाँधा था—यह एक कहावत है। इसका भावार्थ उसकी काल-मर्मज्ञतासे ही लिया जा सकता है; फलतः उसने भगवान् रामका साक्षात्कार 'महाकाल'के रूपमें प्राप्त किया था। वैशेषिकके नौ द्रव्य ये हैं—

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति नव द्रव्याणि' (१।१।५)

वैशेषिकके अनुसार 'काल' द्रव्य है; अतः गुणोंका आधार है; क्योंकि ऐसा कोई 'द्रव्य' नहीं, जिसमें कोई-न-कोई गुण न हो; उसके अनुसार 'काल-द्रव्य' का विवेचन इस प्रकार होगा—'रावण मर गया।' 'गो-वध हो रहा है।' 'धर्म-संस्थापना होगी।'—वाक्योंसे भूत, वर्तमान या भविष्यका व्यावहारिक ज्ञान 'काल-द्रव्य'के सहारे होता है। यदि 'काल-द्रव्य' न हो तो भूत, भविष्य, वर्तमानको किससे सम्बद्ध किया जा सकेगा? अतः 'काल-द्रव्य' मानना आवश्यक है। यदि भौतिकवादी कहें कि 'सूर्य-गति ही काल है।' और यह मानकर हम कहें, 'अभी यह शरीर है' तो 'अभी'का अर्थ क्या होगा? इसका अर्थ यही हो सकता है कि 'यह शरीर अभी सूर्यकी वर्तमान गत्यात्मक क्रियासे सम्बन्धित है।' तो फिर यह विचार करना होगा कि 'अत्यन्त दूर सूर्यकी गतिका इस शरीरसे क्या और कैसे सम्बन्ध हो सकता है? क्योंकि गति तो सूर्यमें ही है। अतएव ऐसे व्यापक द्रव्यका मानना आवश्यक होगा—जिसका सम्बन्ध गत्यात्मक सूर्य और शरीर (दोनों) से हो। और ऐसा 'काल-द्रव्य' माननेपर ही सम्भव है, तभी 'अभी यह शरीर है' व्यवहार-कथनमें

१. डा० राधाकृष्णन्का 'भारतीय-दर्शन' भाग-१, पृष्ठ-५९०
२. पाँच कञ्चुक—कला, विद्या, राग, काल, नियति।
३. पदार्थ-संग्रह, पृष्ठ ६३ (क)
४. डा० उमेश मिश्रका 'भारतीय दर्शन' पृष्ठ-१६२
५. डा० राधाकृष्णन्का 'भारतीय दर्शन' पृष्ठ-५९६

ज्ञान-बाधा न होगी । अतएव काल-द्रव्यका मानना आवश्यक है ।

'काल' गुणोंका आधार है; अतएव 'काल' में संख्या, परिमाण, संयोगादि गुण विद्यमान रहते हैं । साथ ही बिना इसके कोई अन्य द्रव्य उत्पन्न भी नहीं हो सकता ।

'नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति ।'
(वै० २ । २ । ९)

तत्त्वार्थ यह है कि सृष्टि-प्रलय, जन्म-मृत्यु—सभी इसीमें होते हैं ।

'काल' तत्त्वतः एक है; किंतु प्रभेदोंमें सीमित करनेपर अनेक हो जाता है; यथा त्रुटि, पल, निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, अयन (उत्तर, दक्षिण), युग (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग), कल्प, मन्वन्तर, सवन, (१०० ब्रह्मयुग) आदि 'काल'के प्रभेद हैं । इस्लाम-धर्म सृष्टि और प्रलय (कयामत) और हिजरी संवत्सर-द्वारा 'काल-प्रभेद' करता है । हिंदू और पारसियोंका 'सृष्टि-काल' लगभग एक-सा काल-प्रभाग करता है । 'पारसी १२००० दिव्य वर्षोंका दैवी समय स्वीकार करते हैं ।'[1] आधुनिक युगमें घड़ीद्वारा घंटा, मिनट, सेकेंडोंके प्रभेदके आधारपर वैज्ञानिक अन्वेषण कर रहे हैं । निष्कर्षतः एक ही 'काल'के अनेक प्रकारसे प्रभेद हैं । आइन्सटीन 'काल'को '4th Dimension'[2] बताकर आधुनिक वैज्ञानिकोंको चक्कर (काल-चक्र) में फँसा गया है । गणितज्ञ अनन्त गणनाके लिये बीजीय चिह्नोंका प्रयोग करते हैं । उनकी अनन्तताकी गणना ही 'काल' है । 'काल-ज्ञान' भारतीय-दर्शनोंकी आधुनिक वैज्ञानिकोंको दी गयी चुनौती है ।

आइन्स्टीनका चतुर्विस्तारात्मक सिद्धान्त और काल

ब्रिटिश भौतिक विज्ञानवेत्ता स्व० सर जेम्स जीन्सके शब्दोंमें, ''ब्रह्माण्डीय बुलबुलेके चार विस्तार हैं—तीन तो कालसे संयुक्त है ।''[3] यथार्थतः वैज्ञानिक त्रिविस्तारात्मकता (दिक्) और 'काल' को अखण्डताके रूपमें देखते हैं । उदाहरणके लिये, वे दूरी (दिक्) को प्रकाश-वर्ष (काल) से मापते हैं । अतएव 'दिक्-काल' का संगठित रूप एक है । तदनुसार आइन्स्टीनने अपने अन्तिम दिन 'संगठित-क्षेत्र-सिद्धान्त' (Unified field Theory) में लगाये, जिसे यहाँ उद्धृत किया जाता है[4]—

'संसारके असंख्य पदार्थोंका ९२ प्राकृतिक तत्त्वोंमें वर्गीकरण था । फिर इन तत्त्वोंको कुछ मौलिक कणोंमें सीमित किया गया । इसके साथ ही, विश्वकी विभिन्न शक्तियाँ एक-एक करके विद्युत्-चुम्बकीय शक्तिके विभिन्न रूप मानी जाने लगीं और ब्रह्माण्डके विभिन्न प्रकारके विकिरण—प्रकाश, ताप, क्ष-किरणें, रेडियो-तरङ्गें, गामा किरणें—विभिन्न तरङ्गदैर्घ्य और आवृत्तिकी विद्युत्-चुम्बकीय तरङ्गोंके रूपमें स्वीकार किये गये । अन्ततः ब्रह्माण्डकी विभिन्न सामग्रियाँ कुछ मौलिक परिमाणों—दिक्, काल, पदार्थ, शक्ति और गुरुत्वाकर्षणमें सीमित हो गयीं । लेकिन विशिष्ट सापेक्षवादने दिक् (१ लंबाई, २ चौड़ाई, ३ ऊँचाई), काल (चौथा) अखण्डताकी अविभाज्यताको प्रकट किया ।'

यह 'संगठित क्षेत्र सिद्धान्त' वैज्ञानिकोंकी पहुँचकी निर्धारित सीमा है। फिर यहाँ प्रश्न उठता है कि ''आखिर दिक्-काल अखण्डताकी ज्यामिति 'गणित' ही क्यों है ? क्या किसी संख्याकी 'काल'से बाहर (बिना) गणना हो सकती है ?'' इसका उत्तर निश्चय ही 'नहीं' होगा । फिर 'काल' क्या है ? अतएव सिद्ध है कि 'काल' से पृथक् रहकर अन्य किसी द्रव्यकी सत्ता नहीं हो सकती; फिर जिन प्रतीकों और गणनाओंका सहारा लिया जाय और उनके द्वारा 'काल' को प्रभेदोंमें सीमित किया जाय, तो वे 'काल-प्रभेद' भी किसी 'काल' में ही होंगे । अतएव 'महाकाल'का मानना स्वयं-सिद्ध एवं युक्ति-पूर्ण है । 'महाकाल' क्या है ? जैसाकि भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

'कालोऽस्मि' (११ । ३२)
'कालः कलयतामहम्' (१० । ३०)
'अहमेवाक्षयः कालो' (१० । ३३)
'तस्मात्सर्वेषु कालेषु' (८ । ७, २७)
'यमः संयमतामहम्' (१० । २९)

अतएव भगवान् ही महाकाल हैं। वही ब्रह्माण्डके परम प्रशासक हैं—ईश्वर हैं। वे एकमात्र अपरिमित हैं। कालावधिवाले समस्त देव, लोक-ब्रह्माण्ड आदि परिमित हैं। श्रीमार्कण्डेयपुराणके अनुसार "प्रत्येक मन्वन्तरके अन्तमें कालराज मनुके साथ देवता, ऋषि, पितृगण तथा इन्द्रादि समस्त पदाधिकारी बदल जाते हैं। कालके परम प्रशासक (ईश्वर) भगवान् महाकाल ही 'अक्षर' रहते हैं।[1]"

'पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।' (पातञ्जल-योग-दर्शन १ । २६) निष्कर्षतः ब्रह्मलोक आदि अवधिवाले हैं; अतएव अनित्य हैं। (ब्रह्मणः अहः रात्रि-गीता ८ । १७) एकमात्र ईश्वर भगवान् महाकाल ही कालातीत हैं।

जिस वस्तुको किसी प्रकार सीमित करना सम्भव न हो, उसे ही 'असीम' कहा जायगा। असीमताको ही व्यापक समझा जाता है। सापेक्ष काल (समय) को 'संख्या' द्वारा सीमित किया जा सकता है; किंतु निरपेक्ष महाकालको सीमित नहीं किया जा सकता। अतएव 'महाकाल' पुरुष अनादि है, व्यापक है। 'काल'में संख्या, परिमाणादि गुण है; इसलिये वह 'सादि' हुआ। सभी लोक एवं देव पद-धारी अवधि (संख्या) वाले हैं, अतएव नश्वर हैं, 'सादि' हैं। 'सादि' मृत्युतत्त्व है; असत् है। 'अनादि' अमृतत्व है; सत् है। इसलिये काल मृत्युतत्त्व है। मृत्यु ही यमराज हैं।[2] महाकाल अनादि है, अमृत है; अतएव वही कालातीत भगवान् महाकाल हैं। वह सत्, असत् और सदसत्से परे परात्पर ब्रह्म है।

प्रत्येक वस्तु देश और कालसे ही सीमित होती है; किंतु कालातीत महाकालसे शक्तिरूपमें अनन्तकाल (संख्या रूपमें) उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। यही 'एकोऽहं बहु स्याम' रूप है। काल उन्हीं भगवानकी शक्तिका रू[illegible] माया अव्यक्त प्रकृति है। भगवान् महाकालकी [illegible] अनन्त है। तदनुसार उनके रोम-रोममें (अनन्त) ब्र[illegible] हैं। उनका कालचक्र अनन्त है। उसके द्वारा वह [illegible] रूपमें सात लोक, चौदह-भूतवर्गपर शासन कर र[illegible] उन्हींके द्वारा सृष्टि-प्रलय (कालचक्र) संचालित हैं। [illegible] कि अथर्व श्रुति कहती है—

> कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत
> काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते।
> काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्
> कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापते[illegible]
> कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्
> स्वयम्भूः कश्यपः कालात्तपः कालादजायत
> (अथर्व १९ । ५३ । ५

कालातीत भगवान् शिवकी शक्ति (माया) म[illegible] है। वह भी 'कालरूपम्' है। 'कलनात्सर्वभूतानाम्[illegible] 'काल ही सब पदार्थोंका कलन-कर्ता है।'

'कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः[illegible]

'कालसे ही सभी भूत-पदार्थोंकी उत्पत्ति होती[illegible] उसीमें सब लय हो जाता है।'

इसी काल-चक्र (भव-चक्र) में फँसकर भ्रमात[illegible] संशयात्मा होकर कालका चबेना बनता है। '[illegible] विनश्यति।' (गीता ४ । ४०) और फिर[illegible] जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम[illegible] चरितार्थ करता हुआ नाना योनियोंमें घूमता रह[illegible]

अतएव कालातीत भगवान् महाकाल, जो [illegible] परिमित नहीं हैं, वही एक शरणाश्रय हैं। उन्हीं[illegible] मात्र आश्रय लेना चाहिये। तभी दुरतिक्रम [illegible] भीष्मकी तरह अतिक्रमण हो सकता है; भगवान् मा[illegible] भाँति 'काल-गति'को अवरुद्ध किया जा सकता [illegible] नचिकेताकी भाँति 'काल-चक्र'का ज्ञान हो सकता [illegible]

---

[1] 'कल्याण' का उपनिषद्-अङ्क, पृष्ठ-५७।

[2] कठोपनिषद्में 'मृत्यु' और 'यम' दोनों ही मृत्युदेवको सम्बोधित हैं।

काल-विज्ञान

(लेखक—श्रीजयराजी वशिष्ठ)

(१)

कालतत्त्व

१—कालतत्त्व बड़ा गहन है। इसका रूप-गुण-स्वभाव क है। पञ्चभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—में यह कोई भी तत्त्व नहीं है। न कालमें गन्ध है, न रस, न स्पर्श और न शब्द है। इस प्रकार यह इन्द्रिय- अगम्य है। 'संकल्प-विकल्प करना' मनका स्वभाव समें नहीं है; 'सोचना-निश्चय करना' बुद्धिका स्वभाव समें नहीं है; 'स्मरण करना, विस्मरण करना' चित्तका व भी इसमें नहीं है, तो 'अहं-अहं करना' जीवका व भी इसमें नहीं है। जीव तो स्वयं भगवान्‌की च्छन्न-लीला-प्रयोजनार्थ काल-सीमाके अन्तर्गत अभिव्यक्त जीव असीम कालको नहीं जानता। त्रिगुणमयी व्यक्ति सब काल-सीमाके अन्तर्गत है। सृष्टिकी उत्पत्ति, ति, प्रलय सभी काल-अपेक्षासे हैं। इस प्रकार काल णातीत सिद्ध होता है। सत्त्वगुणका स्वभाव ज्ञान-सुख- त-त्याग-दया-प्रेम—कालमें प्रतीत नहीं होता है। गुणका स्वभाव कामना-कर्म-भोगेच्छासे भी यह शून्य। तमोगुणका स्वभाव आलस्य-मूढ़ता-निद्रा-तन्द्रा- द भी इसमें नहीं है। फिर यह काल है क्या वस्तु ? क विचार करें।

२—अच्छा तो जब काल त्रिगुणमयी प्रमाणोंसे सिद्ध होता है, तो हम त्रिगुणातीत-तत्त्वके प्रमाणोंसे सिद्ध नेका प्रयत्न करते हैं। गुणातीत-तत्त्व तो एक ही वस्तु —वह तत्त्व आत्मा है अथवा परमात्मा है।

(क) आत्मा अजन्मा है—काल भी अजन्मा है; कि कालकी सीमामें ही सबका जन्म होता है। काल स्वयं न्मा रहता हुआ सबके जन्म (आदि) को सिद्ध करता सब सृष्टि कालमें उत्पन्न होती है।

(ख) आत्मा अमर है—काल भी अमर है; क्योंकि ल सबकी अवधि है। काल-अवधिमें ही सब मृत्युको प्त होते हैं। काल सबकी मृत्युको सिद्ध करता है।

(ग) आत्मा अजर है—काल भी अजर है; क्योंकि स्वयं अजर रहता हुआ सबको जर बनाता है।

(घ) आत्मा सर्वव्यापक है—काल भी सर्वव्यापक है; क्योंकि परमाणुसे महान्‌तक काल निरन्तर विद्यमान है। काल अणु-अणुमें व्यापक है; क्योंकि कोई भी परमाणु अवधिरहित नहीं है।

(ङ) आत्मा सबमें व्याप्त होता हुआ भी असङ्ग है—काल भी सबमें व्याप्त होता हुआ असङ्ग है, निर्लिप्त है; क्योंकि न इसका कोई मित्र है, न इसका कोई शत्रु है, न इसका कोई बान्धव है, न इसका कोई अपना है, न पराया।

(च) आत्मा सम है—काल भी सम है; क्योंकि काल न धर्म-पक्षपाती है और न अधर्म-पक्षपाती है। कालकी गोदीमें धर्म-अधर्म—दोनों जोड़े-पुत्रोंकी भाँति सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलिके रूपमें खेलते रहते हैं। कालकी दोनोंके प्रति समता है।

(छ) आत्मा नित्य है—काल भी नित्य है; क्योंकि काल ही तो स्वयं नित्य रहता हुआ सबको अनित्य सिद्ध करता है।

(ज) आत्मा अपरिच्छिन्न है—काल भी अपरिच्छिन्न है; क्योंकि अपनी वर्तमानतामें ही सबकी परिच्छिन्नताको सिद्ध करता है अर्थात् अपनी वर्तमानतामें ही सबको वर्ता कर समाप्त कर देता है।

(झ) आत्मा असीम है—काल भी असीम है; क्योंकि यह स्वयं असीम रहता हुआ सबकी सीमा सिद्ध करता है।

(ञ) आत्मा अज्ञेय है—काल भी अज्ञेय है, बुद्धिसे अतीत काल ज्ञेय कैसे हो सकता है ?

(ट) आत्मा अनन्त है—काल भी अनन्त है; क्योंकि काल स्वयं अनन्त रहता हुआ सबका अन्त कर देता है।

(ठ) आत्मा अनादि है—काल भी अनादि है; क्योंकि काल स्वयं अनादि रहता हुआ सबके आदिको सिद्ध करता है। सबका आदिपन काल-सीमामें है।

(ङ) आत्मा अप्रमेय है—काल भी अप्रमेय है; क्योंकि काल स्वयं अप्रमाणित रहता हुआ दूसरोंको प्रमाणित करता है।

३—इन उपर्युक्त अतीत गुणोंके संतुलनात्मक विवेचनसे तो 'आत्मा' और 'काल'में कोई भी भेद प्रतीत नहीं होता है। तो क्या आत्मा और काल एक ही वस्तुके दो नाम हैं? पाठक तनिक गम्भीरतासे विचार करें। इस प्रकार तो काल सर्वातीत प्रतीत होता है; क्योंकि यह स्वयं अतीत रहता हुआ सबको व्यतीत कर देता है। अच्छा, तो विवेचनद्वारा जहाँ इस समय हम पहुँचे हैं, वहाँ तो यह प्रतीत होता है कि यह काल हमारी आत्माकी समानता करता हुआ कहीं हमारे आत्माका ही अन्त तो नहीं कर देगा? चलो देखें, काल कहाँतक आत्माकी समानता कर सकता है?

(क) आत्मा स्वयम्प्रकाश है और अपने प्रकाशद्वारा दूसरोंको भी प्रकाशित करता है। आत्मचेतना ही आत्म-प्रकाश है। यह आत्मचेतना जब बुद्धिमें पहुँचती है तो बुद्धिको प्रकाशित करती है। इसी प्रकार मन, चित्त, इन्द्रियाँ, शरीर सबको प्रकाशित करती है। फिर इन बुद्धि, मन, चित्त, इन्द्रियोंद्वारा ही समस्त संसारको प्रकाशित करती है अर्थात् सबके अस्तित्वको सिद्ध करती है। इस आत्माके प्रकाश बिना हमारी बुद्धि सोच-विचार-निश्चय कुछ भी नहीं कर सकती, चित्त स्मृति लब्ध नहीं कर सकता, मन संकल्प-विकल्प नहीं कर सकता, आँखें देख नहीं सकतीं, कान सुन नहीं सकते, नाक गन्ध नहीं ग्रहण कर सकता, त्वचा स्पर्श अनुभव नहीं कर सकती और जिह्वा स्वाद नहीं बता सकती है। आत्माके चेतन-प्रकाशसे ही चैतन्य होकर हम कार्यशील बनते हैं—तो क्या काल भी इस प्रकार स्वयम्प्रकाश है? क्या वह भी इसी प्रकार हमारी बुद्धि, मन, चित्त, इन्द्रियाँ, शरीर, संसार सबको चेतना देता है? ऐसा देखा-सुना-पढ़ा है क्या कहीं हमने? कदापि नहीं! काल स्वयं हमारी आत्मचेतनाद्वारा प्रकाशित होता है, हमारी आत्मचेतनाद्वारा प्रमाणित होता है। हमारी आत्मचेतना न हो तो बुद्धि, मन, चित्त, इन्द्रियाँ, शरीर, देश, काल, वस्तु, संसार कुछ भी प्रमाणित नहीं हो सकता। आत्मा और कालके भेदका यह पहला स्पष्टीकरण है।

(ख) आत्मा सर्वशक्तिमान् है। जैसे यह एक पिण्डको शक्ति देता है, वैसे ही ब्रह्माण्डको भी यही एक आत्मा शक्ति देता है। क्या काल भी सर्वशक्तिमान् है? क्या काल भी पिण्ड और ब्रह्माण्डको शक्ति देता है? कदापि नहीं। इसका प्रयोजन तो काल-गणना अथवा काल-माप ही है। यह काल स्वयं आत्मशक्तिद्वारा गतिशील है, आत्माद्वारा प्रमाणित है—यह किसीको शक्ति क्या देगा? भेदका यह दूसरा स्पष्टीकरण है।

(ग) आत्मा ज्ञानस्वरूप है, अनुभवस्वरूप है। क्या काल भी ज्ञानस्वरूप तथा अनुभवरूप है? कदापि नहीं! जो स्वयम्प्रकाश नहीं है, स्वशक्तिमान् नहीं है, वह ज्ञानस्वरूप अनुभवरूप कैसे हो सकता है? कालद्वारा आत्मा प्रमाणित नहीं है; परंतु आत्माद्वारा काल प्रमाणित है; क्योंकि आत्मा कालको जानता है, काल आत्माको नहीं जानता है। यह तीसरा भेद है।

४—इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि काल एक 'अचेतन तत्त्व' है और आत्मा 'चेतन तत्त्व' है। अचेतन-तत्त्व चेतन-तत्त्वके द्वारा ही प्रमाणित होता है; नहीं तो बताइये, अचेतनकी क्या सत्ता है? यह काल आत्म-भगवान्से ही सत्ता पाकर समस्त संसारको भयभीत करता रहता है, स्वयं अचेतन है। यह स्वयं आत्म-भगवान्से भयभीत रहता है। तभी तो शास्त्रोंमें आत्माको कालका भी काल बताया है। अब बताइये कि क्या काल हमारे आत्मापर शासन कर सकता है? यह तो जो आत्मा परमात्मासे विमुख हैं, उनपर शासन करता है अर्थात् अनात्म-उपासकोंपर शासन करता है—उन्हींका ही अन्त करता है। आत्मा-परमात्मा तथा इनके उपासकोंका यह काल क्या बिगाड़ सकता है? फिर भी काल आत्मा तथा परमात्माका जिनको ज्ञान नहीं है, उनपर प्रभुता रखता है। आइये, अब हम काल और इसके कर्तव्यपर विचार करें कि भगवान्ने इनको क्या काम दे रक्खा है?

५—अब हमें विचार करना चाहिये कि यह जो कुछ संसार परमाणुसे लेकर ब्रह्मातक विद्यमान है—सब कुछ कालका ही बना हुआ है अथवा कालके अतिरिक्त कोई और तत्त्व भी जगत्के निर्माणमें विद्यमान है? जगत्के निर्माणमें पहला कारण तो परमात्माका आदिसंकल्प 'एकोऽहं बहु स्याम्' ही है। उस संकल्पमेंसे किन-किन तत्त्वोंका प्रादुर्भाव हुआ—यह हमें निम्नलिखित रूपकद्वारा जानना है—

आदि-इच्छा, नीतिशक्ति, देश, काल, गति, त्रिगुण, अहंकार, पञ्चभूत, संख्या, जीव—ये दस भगवत्-लीलाके सदस्य हैं—जो आदिसंकल्पके स्फुरित होते ही विद्यमान होते गये हैं।

(१) आदि-इच्छामें बहु बननेकी धारणा है, यह बहु बननेके संकल्पको धारण करती है।

(२) नीतिशक्ति योगमाया है, यह इच्छाके अनुसार विधान तैयार करती है।

(३) बहुलीलाके लिये लोक-परलोकका विधान योगमाया करती है—यही देश-अपेक्षा है।

(४) कब-से-कबतक लीला करनी है, इसके लिये कालकी अपेक्षा है।

(५) लीलाको क्रियात्मक रूप देनेके लिये गतिकी अपेक्षा है। यही क्रिया-शक्ति है।

(६) अनेक प्रकारकी लीलाके लिये अनेक भावोंकी अपेक्षा है। वे भाव त्रिगुणात्मक रूपमें एक अहंकार बनकर सोये हुए हैं, उनको जाग्रत् करनेके लिये काल-गतिकी अपेक्षा है।

(७) गति पाकर जाग्रत् हुए गुण एक अहंकारसे गुण-भेदानुसार तीन प्रकारके हो जाते हैं—सात्त्विक अहंकार, राजस अहंकार और तामस अहंकार।

(८) तामस अहंकारका परिणाम पञ्चभूत तथा पाञ्च-भौतिक पदार्थों—शरीरोंका निर्माण है। राजस अहंकारका परिणाम इन्द्रियाँ—प्राण हैं। सात्त्विक अहंकारका परिणाम अन्तःकरणचतुष्टय—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार है।

(९) पाञ्चभौतिक पदार्थों—शरीरों तथा त्रिगुणमयी अनेक भावोंके तारतम्यसे घटनाएँ पैदा होती हैं। उन घटनाओं तथा शरीरों—पदार्थोंके हिसाबके लिये तथा काल-मापके लिये गणित (संख्या) की अपेक्षा है।

(१०) इन सब प्रकारके शरीरों—पदार्थोंमें ममत्वबुद्धि तथा अहंबुद्धि रखनेवाले जीवकी सबसे अधिक अपेक्षा है।

६—यह सब आदिसंकल्पका परिणाम है, अथवा इन दस सदस्योंका साझा परिणाम है—केवल कालका ही परिणाम नहीं है। कालका कार्य तो केवल अवधि-प्रयोजन ही है और वह अवधि भी अनात्म तत्त्वों, पदार्थों, शरीरों, लोकों-परलोकोंकी, न कि सबके अंदर बैठे अविनाशी आत्मा-की। शेष अपना-अपना काम दूसरे सदस्य भी कर जैसे संकल्प, इच्छा, योगमाया, देश, दिशा, त्रिगुण, आदिका स्वरूप निराकार है—अव्यक्त है, इसी प्रकार व स्वरूप भी निराकार और अव्यक्त है। इस प्रकार स गया कि कालका प्रयोजन अवधि-संख्या ही है। यह ही सबका कर्ता-धर्ता नहीं है।

७—अब हमें यह देखना है कि कालके इस अव्यक्त (निराकार) स्वरूपका हमें किस आकारमें प्रतिदिन अनुभव होता है? रातको हम सो जाते हैं; मन्दिरकी घंटी बजती है; पक्षी अपनी रागिणी अलापते हम तुरंत उठ बैठते हैं और कहते हैं—'सबेरा हो गय यदि घंटी न बजे, पक्षी अपनी रागिणी न अलापें, प्रकाश न करे, ऐसी कोई घटना न घटे जिससे हम अ समयके व्यतीत होनेका पता लगा सकें—तो हमको का प्रतीति नहीं हो सकती है। ये घटनाएँ ही हमें कालके व्य होनेका पता देती हैं और हमें दैनिक कार्य-क्रममें आ करती हैं। आज मैं वहाँ गया था; कल मैं तुमसे मिलूँ सबेरे दो घंटे हमारे घर कथा हुई; मेरा भाई दस बाद आयेगा। ये शब्द आज, कल, सबेरे, दो घंटे, दिन केवल समयको मापनेके चिह्न हैं। सबेरा होना, दोप होना, संध्या होना, रात होना, इसी प्रकार जन्म लेन जवान होना, बूढ़ा होना, बीमार होना, मरना—ये स घटनाएँ हैं। रात-दिन, शुक्ल-पक्ष, कृष्ण-पक्ष, उत्तराय दक्षिणायन, संवत्सर, मन्वन्तर, युग, कल्प आदि स घटनाएँ हैं—ये सब काल-माप हैं (These events an circumstances are the measures of time.) इस प्रकार स्पष्ट होता है कि घटनाओं, पदार्थों, शरीरों ऋतुओं, संवत्सरों, युगों, कल्पोंका परिवर्तन (बदलना ही कालका आकार है; वास्तवमें काल निराकार है।

गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः।
पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयासृजत्॥
विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया।
ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना॥

(श्रीमद्भा० ३। १०। ११-१२)

त्रिगुणमयी पदार्थोंका रूपान्तर (बदलना) ही कालका आकार है (स्वरूप है)। स्वयं काल निर्विशेष (निराकार) और अप्रमाणित है। उसीको निमित्त बनाकर भगवान् अपनेको परिच्छिन्न मूर्तिमें व्यक्त करते हैं।

(२)

काल-विभाजन और कालचक्र

१. जैसे एक अव्यक्त आत्माका अनेक जीवात्माओंमें विभाग-सा हुआ है, एक आदिसंकल्पसे अनेक संकल्प बने हैं, एक देशके अनेक देश बने हैं, एक इच्छा अनेक इच्छाओंमें विभक्त हुई है, एक बुद्धि अनेक बुद्धियोंमें विभक्त हुई है, एक मन कई मनोंमें विभक्त हुआ है, एक विराट् शरीर अनेक शरीरोंमें विभक्त हुआ है, इसी प्रकार काल भी परमाणुसे परम महान्‌तक अनेक कालोंमें विभक्त हुआ है।

२. पृथ्वीका जो भाग सूक्ष्मतम अंश है, जिसका और विभाग नहीं हो सकता, उसको 'परमाणु' कहते हैं। जिस समग्रका यह परमाणु अंश है उसे 'परम महान्' कहते हैं। यह वस्तुका 'सूक्ष्मतम' और 'महत्तम' स्वरूप है। इसी मापसे अव्यक्त काल परमाणुमें परमाणुरूपसे और महान्‌में महान्‌रूपसे व्याप्त हो जाते हैं—

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम्।
सतोऽविशेषभुग् यस्तु स कालः परमो महान्॥

(श्रीमद्भा० ३ । ११ । ४)

'जो काल परमाणुमें व्याप्त है, वह परम सूक्ष्म है, जो सृष्टिकी उत्पत्तिसे प्रलयपर्यन्त व्याप्त है, वह परम महान् है।'

३. काल-विभाजन

२ परमाणुओंके संयोगसे एक 'अणु' बनता है।
३ अणुओं ,, ,, ,, 'त्रसरेणु' ,, ,,।

(झरोखेमें आयी सूर्यकिरणोंमें त्रसरेणु उड़ा करते हैं, ऐसे तीन त्रसरेणुओंको पार करनेमें सूर्य जितना समय लेता है, उसे 'त्रुटि' कहते हैं)

१०० त्रुटिका एक वेध होता है।
३ वेध ,, ,, लव ,, ,,।
३ लव ,, ,, निमेष ,, ,,।
३ निमेष ,, क्षण ,,।
५ क्षणोंकी ,, काष्ठा होती है।
१५ काष्ठाका ,, लघु होता है।
१५ लघुकी ,, नाडिका होती है।
६ नाडिकाका ,, प्रहर होता है।
८ प्रहरका एक दिन-रात होता है।
१५ दिन-रातका ,, पक्ष ,, ,,।
२ $\frac{\text{पक्ष}}{\text{शुक्ल+कृष्ण}}$ { का एक मास होता है (यह [illegible] दिन-रात है)
२ मासकी एक ऋतु होती है।
६ मासका एक अयन होता है (उत्तरायण-द[illegible] ये देवोंके दिन-रात हैं)
२ अयनोंका एक वर्ष होता है।

अब कालका युग-मन्वन्तर-कल्परूपमें विभाजन दे[illegible]

कलियुगकी आयु संध्या-संध्यांशोंसहित ४,३२,००० मा[illegible]
द्वापरयुगकी ,, ,, ,, ,, ८,६४,०००
त्रेतायुगकी ,, ,, ,, ,, १२,९६,०००
सत्ययुगकी ,, ,, ,, ,, १७,२८,०००

एक चतुर्युगीकी आयु = ४३,२०,०००

७१$\frac{6}{14}$ चतुर्युगीतक एक 'मनु'की आयु होती है[illegible] एक 'मन्वन्तर कालमान' है। एक मन्वन्तर बीतनेपर[illegible] प्लावन—प्रलय होता है। मनु-इन्द्र-देवता-सप्तर्षिका इस प्र[illegible] अन्त हो जाता है। १००० चतुर्युगीका ब्रह्माका एक[illegible] होता है। यह एक 'कल्प' कहलाता है। इस प्रकार ब्र[illegible] एक दिन—

४३,२०,००० ×१०००=४,३२,००,००,००० मा[illegible]
इतनी ही बड़ी ब्रह्माकी एक रात ४,३२,००,००,००० ,[illegible]
यह ब्रह्माका अहोरात्र है— ८,६४,००,००,००० ,[illegible]
(इससे तीसगुना करने
यह ब्रह्माका एक मास है २,५९,२०,००,००,००० ,,
(इससे बारहगुना करने
यह ब्रह्माका एक वर्ष है ३१,१०,४०,००,००,००० ,,
(इससे सौगुना करनेपर

दो परार्ध काल=यह ब्रह्माकी १०० वर्षकी आयुः } ३१,१०,४०,००,००,००,०००

ब्रह्माजीकी आयुके आधे भागको 'परार्ध' कहते हैं। ब्रह[illegible] का पहला परार्ध बीत चुका है। अब दूसरे परार्धका पहला बीत रहा है। इस समय 'वाराह-कल्प' चल रहा है।

दूसरे परार्धका पहला कल्प है। ब्रह्माजीकी आयुके इस समय १५,५५,२१,९७,२९,४९,०७४ मानवीय वर्ष बीत चुके हैं। यह ब्रह्माजीकी आयुका दो परार्धवाला काल विष्णु भगवान्पर शासन नहीं करता है। यह केवल ब्रह्माकी सृष्टिका अन्त करता है। इस प्रकार कालका 'परमाणु'से लेकर 'ब्रह्मा'तक विभाजन है। यह 'क्षर ब्रह्म'का ही विभाजन है। यहाँतक कालका व्यक्त व्यापक रूप है। इसके परे 'अक्षर ब्रह्म'का राज्य है। यह विष्णु भगवान्का श्रेष्ठ धाम है।

इस विषयमें श्रीमद्भागवतपुराणके वचन हैं—

विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः।
आण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः॥
दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत्।
लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः॥
तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्।
विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः॥
(३।११।३९—४१)

"प्रकृति+महत्तत्त्व+अहंकार+पञ्चतन्मात्रा—इन आठ प्रकृतियोंसहित दस इन्द्रियाँ+मन+पञ्चभूत—इन १६ विकारोंवाला ब्रह्माण्ड-कोश जिसमें परमाणु-समान दीखता है, जिसमें ऐसे करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं, वही सब कारणोंका कारण 'अक्षर ब्रह्म' कहलाता है—यही विष्णु भगवान्का श्रेष्ठ धाम है।"

यहाँ काल अक्षररूप है, अकालरूप है।

'Here the time is timeless.'

तभी तो ब्रह्माके ऊपरके शिवलोक, दुर्गालोक, विष्णुलोक, महाविष्णुलोक, गोलोक—ये सब शास्त्रोंमें प्रकृतिसे अतीत कालातीत नित्य लोक बताये गये हैं।

कालचक्र

१—समयका पुनरावर्तन ही 'कालचक्र' है। गति बिना कालचक्र गतिशील नहीं हो सकता है। वास्तवमें कालचक्रका दूसरा नाम 'कालगति' ही है। गति (motion) क्या वस्तु है? 'गति' भी कालकी भाँति असंग तत्त्व, व्यापक तत्त्व तथा अव्यक्त तत्त्व ही है। गति बिना संसारकी कोई भी क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती है। यह गति ही सब पदार्थों, जीवों, तत्त्वों तथा लोकों-परलोकोंसे युक्त होकर उन सबको गतिशील बनाती है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, तारे, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु—सब इस गतिद्वारा ही गतिशील हैं। समस्त संसार गतिशील है। अणु-अणु, परमाणु-परमाणु गतिशील है, सबका जीवन गतिशील है। संसारके संसरनेको ही 'गति' कहते हैं। गति जब श्वाससे युक्त होती है तो 'श्वास-गति' कहलाती है; हृदयसे युक्त होती है तो 'हृदयगति' कहलाती है; रक्तसे युक्त होती है तब 'रक्तगति' कहलाती है। इसी प्रकार यह नाड़ीकी गति, मनकी गति, बुद्धिकी गति, जीव-गति, परमगति—अनेक संज्ञा पाती है। परंतु स्वयं असंग रहती हुई गतिकी गति ही रहती है। यही जब काल-से युक्त होती है तो 'काल-गति' कहलाती है।

२—गति-तत्त्व न हो तो समस्त संसार गतिहीन हो जाय—कोई भी हिल न सके। समस्त संसार पुरुषार्थहीन हो जाय। पुरुषका पुरुषत्व यह गति ही है। गति बिना संसारकी गति नहीं हो सकती; क्योंकि कर्मगति ही सबकी गतिका कारण है। शुभकर्मसे जीवकी गति स्वर्गको होती है, पापकर्मसे जीवकी गति नरकको होती है। कर्मगति ही दूसरे लोकोंकी गति पानेका कारण है। जीवका पुनरावर्तन ही जन्म-गति है, यही 'जीवगति' कहलाती है। यह गति इच्छासे युक्त होती है तब इच्छाशक्ति है, ज्ञानसे युक्त होती है तब ज्ञान-शक्ति है, चित्तसे युक्त होती है तब चित्तशक्ति है, त्रिगुणसे युक्त होती है तब त्रिगुणमयी शक्ति है, पञ्चभूतोंसे युक्त होती है तब भौतिक शक्ति है, क्रियासे युक्त होती है तब क्रिया-शक्ति है। इसी शक्तिसे सब क्रियाशील हैं। यही भगवान्की स्वभाव-शक्ति (अर्थात् योगमाया) बनकर अणु-अणुमें प्रविष्ट होकर समस्त जड-चेतन पदार्थों, जीवों, जीव-शरीरों, लोकों तथा परलोकोंका निर्माण करती है। यह वैज्ञानिकोंकी Energy—(Blind force) 'अन्ध-शक्ति' नहीं है। यह भगवान्की पूर्ण ज्ञानयुक्त क्रिया-शक्ति है। यह समस्त जड-चेतन पदार्थों, जीवोंके स्वभावके रूपमें विद्यमान है। जो भाव बार-बार उदय हो, वह भाव 'स्वभाव' बन जाता है। संसारका उदय-अस्त स्वभाव ही है। स्वभावका बार-बार पुनरावर्तन ही 'चक्र' कहलाता है। यह 'स्वभावचक्र' ही कालसे युक्त होना हुआ 'कालचक्र' कहलाता है। काल प्रत्येक स्वभावमें अवधिरूपसे विद्यमान है। वास्तवमें यह स्वभावचक्र ही कालचक्र संज्ञा पाता है। इस चक्रको चाहे आप मायाचक्र कहें, चाहे इच्छाचक्र, चाहे वासनाचक्र, चाहे कर्मचक्र, चाहे संसारचक्र, चाहे जीवचक्र, चाहे स्वभावचक्र तो चाहे कालचक्र कहें—वास्तवमें यह सबका साँझा-चक्र है। फिर भी हम काल-प्रसङ्गमें कालचक्रकी संज्ञा ही निश्चित करेंगे। इस प्रकार

यह स्वभावका पुनरावर्तन ही समयका पुनरावर्तन है— यही कालचक्र कहलाता है।

३—श्वास अंदर जाता है फिर लौटकर बाहर आता है। यह अंदर जाना और बाहर आना श्वासका एक 'क्रम-चक्र' है। काल श्वाससे अभिन्न है; क्योंकि काल श्वासकी अवधि बनकर श्वासके साथ ही अंदर जाता है, फिर श्वासके साथ ही बाहर आता है। मनुष्य दिनमें लगभग २१,६०० श्वास लेता है और छोड़ता है। इस क्रमसे उसका एक दिन पूरा हो जाता है और इसी क्रमसे उसकी एक रात पूरी हो जाती है। फिर यह रात-दिनका चक्र चलता है। दिन आता है, रात आती है—मनुष्यकी आयु इसी प्रकार समाप्त होती है। सप्ताहमें रवि, सोम आदि वारोंका पुनरावर्ती चक्र चलता है। इसी प्रकार शुक्लपक्ष-कृष्णपक्षका चक्र चलता है। यह पितरोंकी आयुको क्षीण करता है, फिर ऋतुओंका चक्र चलता है। वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर बार-बार उपस्थित होती हैं। ये वनस्पति फल-फूलकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करती रहती हैं। फिर सूर्य आदि ग्रहोंका द्वादश-राशि भ्रमणचक्र चलता रहता है। यह ज्यौतिष-कालचक्र है। इसी प्रकार देवोंका उत्तरायण-दक्षिणायन-चक्र चलता है। यह देवोंकी दिन-रातके रूपमें देवोंकी आयु हरता है। फिर सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुगका—युग-कालचक्र चलता है। यह मनु-इन्द्रकी आयुको हरता है। मनु-काल 'मन्वन्तर' कहलाता है। मन्वन्तर-चक्रानुसार ब्रह्म दिनमें १४ मनु समाप्त हो जाते हैं। फिर ब्रह्माके दिन चक्र चलता है। यह 'कल्पचक्र' कहलाता है। यह व ब्रह्माकी १०० वर्षकी आयु समाप्त कर देता है।

४—ब्रह्माका अन्त होनेके बाद काल पाक ब्रह्माका उदय होता है। इस प्रकार संसारकी उत्पत्ति, प्रलयका चक्र निरन्तर चलता रहता है। यह कालक कल्प-चक्र' कहलाता है। यह पुनरावर्तन ही कालच जन्म, जवानी, बुढ़ापा, मृत्युका पुनरावर्तन ही काल शुभ कर्मसे जीव स्वर्ग जाते हैं; फिर लौटकर इस आते हैं। पापकर्मसे जीव नरक जाते हैं; फिर लौटक आते हैं—यह कर्मरूपी कालचक्रका प्रवाह है। यही भ चक्र है। यह बड़ा प्रबल चक्र है। इस प्रकार यह अनेक प्रकारका है। यह चींटीसे लेकर ब्रह्मातक पुनर्जन्म सिद्ध करता है। संसारकी बार-बार उत्पत्ति, प्रलयद्वारा काल संसारका पुनर्जन्म सिद्ध करता कालचक्र अथवा पुनर्जन्म-चक्रसे समस्त संसार ब है तो तुच्छ जीवोंकी तो बात ही क्या है। इस पुन कालचक्रसे जीव कैसे मुक्त हो सकता है? अथव संसार इस चक्रसे कैसे मुक्ति पा सकता है? इस र सुझाव ही 'कालचक्र'का प्रयोजन है। यही का स्वरूप है।

(२)

कालचक्रसे निवृत्ति

१. हमें यह विचार करना है कि संसारके जीवोंकी इस 'कालचक्र'के कारागारसे कैसे मुक्ति हो सकती है?

२. कालचक्रसे मुक्त होनेके लिये ऋषियों, मुनियोंने ज्ञान, योग, भक्ति तथा निष्काम कर्म—ये चार साधन शास्त्रोंमें बताये हैं। सम्यक् प्रकारसे इनका अनुष्ठान करनेसे आयु ही चाहिंगे; क्योंकि ये सब कालातीत न मार्कण्डेयजीकी आयु ब्रह्माके सात दिनोंमें ही स लेती है तथा लोमशजीकी आयु ब्रह्माके पंद्रह व पा जाती है। ब्रह्मलोकके वासी ब्रह्माके साथ ही प्राप्त होते हैं। यह सब 'क्षर ब्रह्म'की महिमा परे अक्षर है। यह अक्षर तत्त्व तीन प्रकारका सगुण-ब्रह्म, दूसरा ज्योतिर्ब्रह्म और तीसरा निर्

हेत हैं। जिसमें जिसकी जैसी इच्छा हो अवलम्बन करे। All the three are eternal,—One may take sort to anyone of the three.) ये तीनों म धाम हैं। ये एक ही परम धामके तीन स्वरूप हैं। $+\frac{1}{3}+\frac{1}{3}=१$—यह एक पुरुषोत्तम-तत्त्व है, जो तीनोंको रण करता है। यह 'परात्पर ब्रह्म' है।

४. हम यहाँ त्रिगुणात्मक जगत्में हैं। यहाँपर हमें न तीनों अक्षर-तत्त्वोंमें भेद दीखता है। इस कारण पनी-अपनी निष्ठा-अनुसार अपने-अपने लक्ष्यको ही हम ष्ठ मान्यता देते हैं; दूसरेके लक्ष्यको न्यून समझते हैं। इ भेद विभ्रम गुणोंके कारण भासता है। यह हमारे धूरे ज्ञानका फल है। यदि हम परम तत्त्वमें भी भेद देखते तो हम यथार्थदर्शी नहीं हैं, हम भेददर्शी हैं। परंतु ब हम सम्यक् रूपसे किसी एक भी अक्षर-तत्त्वका र्शन करते हैं, तो चाहे हम निर्गुण-तत्त्वके अभ्यासी हों, ोतिके अभ्यासी हों या चाहे सगुण-तत्त्वके अभ्यासी —हमें यह निर्बाध अनुभव होगा कि 'मैं ही निर्गुण । मैं ही सगुण हूँ। मैं ही सब कुछ हूँ।' तीनों प्रकारके म्यक्-अनुभवियोंको अभिन्नताका ही अनुभव होगा। भी तो गीतामें कहा है कि 'निष्काम कर्म करनेवाले गियों, भक्तों, ज्ञानियोंकी एक ही गति है अर्थात् एक परमधामको वे प्राप्त होते हैं।' फिर हम क्यों यहाँपर पने-अपने पक्षके लिये झगड़ा करते हैं? सबके साथ भिन्नताका अनुभव करना ही 'पूर्ण दर्शन' है। यही म्यक्-ज्ञानका अन्तिम फल है, यही सम्यक्-भक्तिका न्तिम फल है और यही सम्यक्-योगका अन्तिम फल । ऐसी समता जो सबका अपनेमें समावेश कराके त्वका दर्शन करावे—उसे 'सम्यक्-दर्शन' कहते हैं। ो इस सम्यक्-दर्शनसे वञ्चित हैं, वे भेददर्शी हैं। वे सम्यक्-नी नहीं हैं, वे सम्यक्-योगी नहीं हैं, वे सम्यक्-भक्त नहीं और वे सम्यक्-कर्मयोगी भी नहीं हैं। जहाँ अभिन्नता नहीं , वहाँ भेद है; जहाँ भेद है, वहीं काल है और जहाँ काल , वहीं भय है।

५. अब आप कहेंगे कि यह अक्षर-धाम तो ब्रह्माके ोकसे ऊपर है और हम यहाँ क्षर-ब्रह्ममें बैठे हैं, हम न आधारोंसे वहाँ 'अक्षर-ब्रह्म'में पहुँचेंगे?

अरे भाई! हमें आधार ढूँढ़ने कहीं बाहर नहीं जाना है। तीनों लक्ष्योंके स्वरूप तथा करण हमारे ही शरीरमें तो विद्यमान हैं—

क. ज्ञानके लिये बुद्धि करण है—आत्मा लक्ष्य है।
ख. योगके लिये मन करण है—मूर्द्धा-ज्योति लक्ष्य है।
ग. भक्तिके लिये हृदयका भाव करण है—भगवद्-दर्शन लक्ष्य है।
घ. कर्मके लिये निष्कामता करण है—निष्कर्मता लक्ष्य है।

इन साधनोंकी पूर्णताके तीन-तीन स्तर हैं—

ज्ञान—१. अपनेमें आत्म-दर्शन।
२. सबमें आत्म-दर्शन।
३. सब कुछ आत्मा ही है—पूर्ण-दर्शन।

योग—१. अपनेमें ज्योति-दर्शन।
२. सबमें ज्योति-दर्शन।
३. सब कुछ ज्योति-ही-ज्योति है—पूर्ण-दर्शन।

भक्ति—१. अपनेमें भगवान्‌के दर्शन।
२. सबमें भगवान्‌के दर्शन।
३. सब कुछ भगवान् ही हैं—पूर्ण-दर्शन।

कर्म—१. अपनेमें निष्कर्मताका दर्शन।
२. सबमें निष्कर्मताका दर्शन।
३. सब कुछ निष्कर्म-तत्त्व ही है—पूर्ण-दर्शन।

ज्ञान—

६. ये सब तत्त्व कालातीत हैं। कालातीत तत्त्वोंकी जब हम उपासना करेंगे तो हमारी गति भी कालातीत धाममें होगी। हमें तो केवल अनात्मपदार्थोंकी उपासना-को छोड़ना है और आत्मतत्त्वकी उपासना करनी है। अनात्मतत्त्वोंके तो बार-बार उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय होते रहते हैं। उनके विनाशको हम अपने आत्माका विनाश समझते हैं। उनके जन्मको हम अपने आत्माका जन्म समझते हैं। शरीर तो जन्मते-मरते रहते हैं; परंतु आत्मा अजर, अमर, नित्य होनेके कारण न मरता है न जन्मता है। गीताके वचन हैं—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(२ । २०, २२)

जब हमें यह ज्ञान हो जाता है कि हम अमर आत्मा हैं, हम शरीर नहीं हैं; तो बताइये फिर हमारे आत्माके आगे कालका क्या स्वरूप रह जाता है। काल तो इन अनात्मपदार्थोंसहित अभावरूप ही सिद्ध होता है। यही वह आत्मा है, जिसका कभी अभाव नहीं है और यही वह अनात्म-शरीर पदार्थ हैं कि जिनका कभी अपना अस्तित्व नहीं है। आत्माके अस्तित्वसे इनका अस्तित्व है—नहीं तो, नित्य इनका अभाव ही है। गीतामें कहा है कि 'सत् वस्तुका कभी अभाव नहीं है और असत्का कभी अस्तित्व नहीं है।'—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
(२ । १६)

इस प्रकार सत्य और असत्य वस्तुका तत्त्व जान लेना ही कालचक्रसे निवृत्तिका स्वरूप है; क्योंकि आत्मामें—सत्य वस्तुमें, काल और कालचक्रका नित्य अभाव है। इस प्रकार जब हम अपनेको कालातीत जान लेते हैं और इसी कालातीत तत्त्वका अपनेमें तथा दूसरोंमें दर्शन करते हैं, तो हमें दूसरे भी मुक्तस्वरूप दीखते हैं; क्योंकि उनका और हमारा आत्मा एक ही है, जो नित्यमुक्त है। आत्मा तो सब जीवोंका मुक्त है—फिर हम क्यों अपने तथा दूसरोंके लिये परेशान होते हैं? सब जीवोंका आत्मा कालातीत है; परंतु सबके अनात्मशरीर काल-परिधिमें हैं। तो वे शरीर यदि काल-परिधिमें हैं, तो होते रहें—हमें अनात्मोंको थोड़ा ही मुक्त करना है। हमें तो जीवोंका अज्ञान (भ्रम) दूर करना है। अज्ञानमें काल भी है और कालचक्र भी है। ज्ञानमें न काल है और न कालचक्र है। यह सिद्धज्ञान है। यह आत्मज्ञानद्वारा काल-निवृत्ति है।

योग—

७. आत्मा ही ज्योतिस्स्वरूप है। उसकी ज्योतिसे सूर्य, चाँद, तारे, लोक-परलोक समस्त ब्रह्माण्ड देदीप्यमान हैं। आत्मा अमर है तो उसकी ज्योति भी अमर है। इस प्रकार ज्योतिदर्शन भी काल-निवृत्तिका उपाय है—अर्थात् अमर विभूतिमें निष्ठा पाना है। सुषुम्णा-मार्ग ज्योतिर्मय मार्ग है। यही वह अर्चि-मार्ग है कि जिस द्वारा गया योगी लौटता नहीं है। सुषुम्णा-द्वार कुण्डलिनी-शक्ति विद्यमान रहती है। कुण्डलिनी अग्निस्वरूपा है, अर्थात् ज्योतिर्मयी है। जब यह योगद्वा जाग्रत् होती है तो इडा-पिङ्गलारूपी श्वास-प्रश्वासको निग जाती है और सुषुम्णा-द्वारमें प्रवेश पा जाती है। यो द्वारा कुण्डलिनीको जाग्रत् करके यही सुषुम्णारु ज्योतिःपथ खोला जाता है। इस मार्गसे गया यो मस्तिष्कमें शिवरूपी परम ज्योतिमें समा जाता है—य वह 'मूर्द्धा ज्योति' कहलाती है। श्वास-प्रश्वासका सुषुम्ण लय होना ही 'कालातीत पथ'पर आरूढ़ होना है। सुषुम्ण रूपी ज्योतिर्मय मार्ग कालातीत है। इस मार्गद्वारा यो कालातीत धाममें पहुँचता है। यह योगद्वारा का निवृत्ति है।

भक्ति—

८. परमात्मा नित्य-सत्य, नित्य-चेतन तथा नि आनन्दस्वरूप है। जीवात्मा भी परमात्माका अंश हों हेतु सत्+चित्+आनन्दरूप है। जीवको अपने सच्चिदान रूपका ज्ञान नहीं है। जिस पूर्णका वह अंश है, वह स्वयं अंशसे अभिन्न है। इस अभिन्नताका ज्ञान अंश नहीं है। परमात्मा चेतन है तो उसका अंश भी चे जातिका है। चेतन अंशका जड अंशके साथ स सजातीय सम्बन्ध तो हो नहीं सकता है, परंतु जीवा अपने पुरातन नित्य सम्बन्धको, जो परमात्मासे भूलकर जड शरीरों—पदार्थोंसे सम्बन्ध जोड़ बैठा है यह भूल ही अज्ञान है, यही भ्रम है। जब अंश अर्थात् जीवको यह ज्ञान हो जाता है कि मेरा वास्त नित्य सम्बन्धी तो परमात्मा है; ये जड शरीर—पा नहीं हैं; तो उस जीवके हृदयमें एक ज्वाला दीप्त उठती है, जिस ज्वालाको (Divine Spark) 'दि विस्फुलिङ्ग' कहते हैं अथवा भगवद्भाव, भगवत्-स्म अथवा विरह-प्रेम कहते हैं। यही भक्तिका आरम्भ इसी भावके बलपर जीव अपने कृत्रिम सम्बन्धोंको तो अपने परम प्रियतम भगवान्की खोजमें निकल पड़ता और दिन-रात, भूख-प्यास, शीतोष्ण सहन करता

उसका अपना 'वास्तविक देह' होता है। पाञ्चभौतिक देहकी तो उसे सुध नहीं रहती है। भगवान्‌के लिये दिन-रात रो-रोकर अपने भावरूपी देहको परिपुष्ट करता हुआ वह पूर्ण-समर्पणके योग्य बनता जाता है। हृदयमें भी एक कुण्डलिनी होती है, वह सोती-सी रहती है। यही प्रेम-कुण्डलिनी कहलाती है। यह प्रेम-अग्निसे प्रज्वलित होकर जागती है। यह सबसे प्रथम भावरूपमें उदय होती है; फिर अनेक स्तरोंको पार करती हुई भक्तको प्रियतम भगवान्‌के समीप पूर्ण समर्पण-योग्य बनाकर उपस्थित करती है। प्रेम बिना पूर्ण समर्पण होना असम्भव है। पूर्ण-प्रेमकी सीमापर ही पूर्ण समर्पण होता है। न पूर्ण-प्रेमी समर्पण करनेसे थकता है, न पूर्ण परमात्मा समर्पण ग्रहण करते थकता है। न पूर्ण समर्पण हो पाता है, न प्रेम समर्पण-क्रियाको कभी बंद होने देता है। यह प्रेमलीला अनेक प्रकारसे भगवद्-धाममें होती रहती है। गोप-गोपियाँ इस प्रेमपथकी सर्वोत्कृष्ट सिद्धा हैं—कालातीत प्रेम-राज्यकी आह्लादमयी तरङ्गें हैं, जो परम प्रेममय सिन्धुमें निरन्तर उठती रहती हैं। यह समस्त प्रेम-पथ कालातीत है। प्रेम-पंथियोंका काल कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। प्रेमियोंका भावमय शरीर कालसे अछूता होता है। आप शिवरूपमें, श्रीकृष्णरूपमें, विष्णुरूपमें तथा रामरूपमें, जिस रूपमें भी ठीक समझें अपना प्रेम-सम्बन्ध जोड़ सकते हैं; क्योंकि राम, कृष्ण, विष्णु, शिव उस एक ही परम अक्षर तत्त्वके भिन्न-भिन्न नाम हैं। इन अक्षर रूपोंकी भक्ति करनेसे हम अक्षर भाव-को प्राप्त होते हैं। यह भक्तिद्वारा 'काल-निवृत्ति' है।

निष्काम कर्म—

९. जबतक हम सकाम होते हैं, तबतक हम कामना-युक्त कर्म करते रहते हैं। निष्कामताके स्वरूपका हमको ज्ञान ही नहीं है। हृदयमें जो वासना है, यही कर्मका रूप धारण करती है और फल-इच्छाद्वारा कर्मरूपी काल-चक्रमें आरूढ़ करवाकर पुनर्जन्मके चक्रमें पहुँचा देती

इससे स्पष्ट होता है कि हम तत्त्वनिष्ठ होकर यथार्थ सङ्कल्पत्यागी बन सकते हैं और तभी हम सि असिद्धिमें सम रह सकते हैं। समत्वयोग तभी स है, जब हम किसी समतत्त्वमें निष्ठ हों। कर्म न क निष्कर्मता सिद्ध नहीं होती है। जिस कर्ममें कामन अभाव हो, वही निष्कर्मता है। सांख्ययोगी या ज्ञानयोगि निष्कर्मता अहंकृत-भावके अभावमें है। कर्म होता रहे, अहंकृत भावका अभाव रहे। यह अहंकृत भाव ही 'कर्म' और इसका अभाव ही 'अकर्म' है। निरन्तर कर्म करते ह निष्कर्मताकी भावना बनी रहे—यही अकर्म-भाव निष्काम-तत्त्वको जाने बिना और फिर उस तत्त्वमें हुए बिना जो हम निष्काम कर्मका ढोल पीटते हैं— अपनेको धोखा देते हैं। कर्मभाव कालके अन्तर्गत कारण कि कर्म फलरूप है अर्थात् पुनर्जन्मरूप अकर्म-भाव निष्काम है और कालातीत है। कामनायु कर्म कालकी परिधिमें है और कामनारहित कर्म कालात है। अहंकृत-भाव ही कालरूप है, यही कालचक्रमें जीव फँसाता है; निरहंकृत भाव कालातीत है। इस भावमें का की दाल नहीं गलती है। वासना ही काल है, जो जीव 'कालचक्र'में फँसाती है; वासनाहीनता ही 'निष्कामता' अर्थात् निष्कर्मता है, जो जीवको कालातीत बनाती है यह निष्काम कर्मद्वारा 'काल-निवृत्ति' है।

१०. यह चार प्रकारकी साधनाद्वारा काल-निवृत्ति है यह व्यक्तिगत साधनाका स्वरूप है। व्यक्तिगत साधनाद्वा अपने-अपने अन्तःकरणमें अपनी-अपनी निष्ठाके अनुसार आत्माका दर्शन, ज्योतिका दर्शन, भगवान्‌का दर्शन त निष्कर्मताका दर्शन अपने-अपने जीवनकालमें ही कर ले चाहिये। तभी जीवन सफल है, नहीं तो जीवन निष्फल है। य साधनाका पहला सोपान है। जिन्होंने यह पहला सोपान सि कर लिया हो, वे दूसरे सोपानकी साधना प्रारम्भ कर दें जैसा भी भगवद्दर्शन हमने अपने अन्तःकरणमें कि

परमात्मा सबमें गोप्यरूपसे रहता हुआ भी हमारे साक्षात् दर्शनकी धारणाद्वारा सजातीय आकर्षण पाकर, उन सबके मलरूपी आवरणोंको हटाता हुआ हमसे अभिन्न हो जायगा। इस प्रकार जो अध्यात्मकी ओर नहीं भी आना चाहते, अथवा अध्यात्मसे विमुख हैं, वे भी पहले अज्ञातरूपसे, फिर ज्ञातरूपसे अपना परिवर्तन प्रतीत करते हुए हमसे समरूप होते जायँगे। जब हम भगवद्धारणाद्वारा एक पत्थरमेंसे भगवान्‌को प्रकट कर सकते हैं तो क्या चेतन जीवोंमेंसे आत्मतत्त्व अथवा परमात्मतत्त्वको हम बाहर व्यक्त नहीं कर सकते ? यह संसार तो पहले ही भगवद्रूप है। हमें तो अपना तथा दूसरोंका अज्ञानरूपी मल धोना है। जब हम इस दूसरे सोपानमें सफल होंगे तो समस्त संसार सच्चिदानन्दरूपमें व्यक्त हो जायगा। इस प्रकार काल तथा कालचक्र भी सच्चिदानन्दरूपमें ही परिणत हो जायगा। इस प्रकार समस्त संसारकी काल-निवृत्ति सम्भव है—यह समष्टि-साधनाका सोपान है।

कर्मका श्रेणी-विभाग और क्लिष्ट-अक्लिष्ट कर्म

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०, डी० लिट्०)

(१)

कर्मका श्रेणी-विभाग

कर्मका श्रेणीविभाग विभाजन-धर्मके अनुसार नाना प्रकारका है। उनमें एक विभाजन-धर्मके प्रति कर्मके पृथक्-पृथक् कृत्य हैं। तदनुसार कर्मका इस प्रकार श्रेणीविभाग होता है। प्रथम कर्म 'जनक', द्वितीय 'उपष्टम्भक', तृतीय 'उत्पीडक' और चतुर्थ 'उपघातक' होता है। जनन, उपष्टम्भन आदि कर्मके विभिन्न कार्य हैं। उसको विभाजक धर्मके रूपमें स्वीकार करके इस प्रकारके विभाग किये जाते हैं। इसको भलीभाँति समझ लेना आवश्यक है। प्रत्येक कर्मके कृत्य विभिन्न प्रकारके होते हैं। प्रतिसंधि या उन्मेष-स्थानमें फल-प्रदान करनेके क्रमके अनुसार कर्मका श्रेणी विभाग हुआ करता है। इसके अतिरिक्त समस्त जीवनकी प्रवृत्तिके समयमें भी फल-प्रदानके समयके अनुसार भी कर्मका भेद होता है। यह अत्यन्त जटिल रहस्य है। याद रखनेकी बात है कि जीवनके दो अंश हैं—एक है 'प्रवर्तन' और दूसरा है 'प्रतिसंधि'। प्रतिसंधिसे प्रवर्तनकी धारा चलती है। यही भव या संसार है। प्रवर्तनकी जहाँ समाप्ति होती है, वहीं है च्युतिक्षण। च्युतिके बाद भी दूसरी अवस्थाएँ हैं। प्रतिसंधिक्षणके बाद भव या संसारके च्युतिक्षणतक प्रवर्तन 'काल' कहलाता है। कुशल और अकुशल चेतना ही जनक कर्म कहलाती है। यह जीवके जीवन-कालमें विपाक या कर्मज रूप उत्पन्न करती है। जीवन-धाराके प्रथम क्षणसे ही विपाक उत्पन्न होने लगता है। जीवनकालमें अन्यान्य कर्मोंके द्वारा जनक कर्म यदि पुष्ट होता है या बाधाको प्राप्त होता है तो वह विपाक उत्पन्न कर सकता है अथवा बाधित होता है। उपष्टम्भक कर्म जनक कर्मकी सहायता करता है या पुष्ट करता है अर्थात् फलोत्पादनमें उसकी सहायता करता है। उत्पीडक कर्मका कार्य है—जनक-कर्मके विपाकको बलहीन करना। इसका प्रधान उपाय है—उपष्टम्भक-कर्मको सदा और सर्वत्र बाधा प्रदान करना। उद्देश्य यह होता है कि उपष्टम्भक-कर्म यदि बाधाको प्राप्त होगा, तो जनक कर्मको अपना विपाक-साधन करनेमें बाधा होगी। आचार्यगण कहते हैं कि शुभ उत्पीडक कर्म अशुभ उपष्टम्भक कर्मको और अशुभ उत्पीडक कर्म शुभ उपष्टम्भक कर्मको बाधा प्रदान करके दुर्बल बना देता है। उपघातक कर्म उत्पीडकके समान बाधक तो होता ही है, साथ ही उपष्टम्भक कर्मको ध्वंस करके अपना फल उत्पादन करनेकी चेष्टा करता है। दार्शनिक लोग इसे एक दृष्टान्तके द्वारा समझाया करते हैं। कल्पना कीजिये कि एक आदमीने एक पत्थर ऊपर फेंका। वह पत्थर कुछ दूर ऊपर जाकर गिर पड़ा। यहाँ उस आदमीका शक्तिसंचार, जिसके द्वारा पत्थर ऊपर उठा, जनक कर्मका दृष्टान्त है। पत्थरका जडत्व उपष्टम्भक कर्मका दृष्टान्त है; क्योंकि यह जडत्व ही गतिका परिपोषक है। पत्थरके ऊपर उठनेमें वायुकी बाधा उत्पीडक कर्मका दृष्टान्त है। मध्याकर्षण आदिकी बाधा उपघातक कर्म है। सर्वत्र इसी प्रकार समझ लेना चाहिये।

अब प्रतिसंधि-कालमें फल-प्रदानके क्रमके अनुसार कर्मका श्रेणीविभाग बतलाते हैं। प्रतिसंधि अथवा जन्म-क्षणके बाद ही कर्म फल देना प्रारम्भ कर देता है। इसमें जो कर्म सबसे पहले फल प्रदान करता है, वही 'गुरु कर्म' होता है। वह कर्म शुभ या अशुभ दोनों ही हो सकता है। वह कर्म करता क्या है? वस्तुतः वह पूर्ववर्णित जनन, उपष्टम्भन, उत्पीडन या उपघात—सब हो सकता है। पहले कह चुके हैं कि गुरुकर्म शुभ या अशुभ दोनों ही हो सकते हैं। शुभ गुरुकर्म रूपलोककी पञ्चभूमि और अरूप-लोककी चार भूमिका दर्शन—अर्पणा ध्यान चित्तमें हुआ करता है; किंतु उसका अनुशीलन कामलोकमें भी सम्भव है। परंतु यह कर्म महद्गत कर्मके रूपमें प्रसिद्ध है। यह मनःकर्म है। अशुभ मनःकर्म केवल कामलोकमें ही सम्भव है। यह कर्म सब कर्मोंके पहले फल प्रदान करता है। बद्धमूल मिथ्या दृष्टि भी गुरु-कर्मके समान होती है, परंतु उसके नष्ट होनेकी सम्भावना है। गुरु-कर्म अन्य सब कर्मोंके पहले फल प्रदान करता है। यह निश्चयपूर्वक मृत्युके पूर्व शोधित हो सकता है, यह याद रखनेकी बात है। गुरु-कर्मको दार्शनिक लोग 'आनन्तर्य-कर्म' कहते हैं। यह फल प्रदान करनेके विषयमें किसी अन्तरालकी अपेक्षा नहीं करता, इसी कारण इसको आनन्तर्य-कर्म कहते हैं। 'अनन्तर' शब्दका तात्पर्य यह है कि इस प्रकारके कर्म जिस जीवनमें सम्पादित होते हैं—उसी एक जीवनमें इनका फल-भोग भी हो जाता है। बद्धमूल मिथ्या-दृष्टि गुरु-कर्मके अनुरूप होती है, परंतु मृत्युके पहले उसके कट जानेकी सम्भावना है। परंतु गुरु-कर्मके नामसे जिन पाँच कर्मोंकी प्रसिद्धि है (जैसे पितृहत्या, मातृहत्या इत्यादि) यह वैसा नहीं है। गुरु-कर्मके बाद ही मरणासन्न कर्मका उल्लेख किया जा सकता है। जो मनुष्य मुमूर्षु दशामें है, उसका सर्वोत्तम जवन चित्त ही मरणासन्न कर्मके नामसे प्रसिद्ध है। 'जवन चित्त' क्या वस्तु है, यह आगे बतलाते हैं। यही 'आसन्न कर्म' है। गुरुत्वके हिसाबसे गुरु-कर्मके बाद ही इसका स्थान है। यह आसन्न-कर्म भविष्यत्-जीवनका नियामक है। मृत्युके पश्चात्का जीवन किस प्रकारका होगा, यह इसी आसन्न-कर्मके ऊपर निर्भर करता है। भावी जीवनके नियन्त्रणके सम्बन्धमें गुरु-कर्मका ही अधिक महत्त्व होता है। उसके बाद ही आसन्न-कर्मकी प्रधानता होती है। यदि किसीके जीवनमें गुरु-कर्म है, तो वही नियामक बनता है। न होनेपर आसन्न-कर्मकी नियामकता सब सम्प्रदायोंमें प्रसिद्ध है। मुमूर्षुके अन्तिम समयके चिन्तनके ऊपर उसका भविष्य जीवन निर्भर करता है, यह बात सभी धर्मोंमें प्रसिद्ध है। हिंदू, बौद्ध, ईसाई—सबका यही सिद्धान्त है कि जीवनमें चाहे जो होता रहे, मृत्युके समय सद्भावके द्वारा उसका समाधान हो सकता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें मरणासन्न पुरुषके लिये प्रयाणकी या देहत्यागकी जो सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रणाली बतलायी गयी है तथा नेत्रतन्त्रादि आगम ग्रन्थोंमें जिसका समर्थन है, वह सर्वधर्म-सम्मत है, इसमें संदेह नहीं। इस विषयमें तिब्बती बौद्ध तथा पौराणिक साहित्यमें बहुत पर्यालोचना की गयी है। इस दृष्टिसे मृत्युविज्ञान एक विशेष आलोचनाका विषय है। आचार्य लोग कहते हैं कि मुमूर्षुके आसन्न कर्मको बल प्रदान करनेके लिये उसकी मृत्युके समय सत्-चिन्तनकी उद्भावनाके निमित्त सद्ग्रन्थ-पाठ, नामकीर्तन, विशुद्ध वातावरणका विकास तथा दिव्य भावकी स्मृतिका उत्पादन अवश्य करना चाहिये। इन सब क्रियाओंका यही उद्देश्य है कि मुमूर्षु व्यक्ति इन उपायोंके द्वारा अशुभ निमित्तके आविर्भावसे सुरक्षित रहे। आसन्न कर्मकी दुर्बलताके कारण उत्पादन शक्तिके अभावमें मुमूर्षु व्यक्तिके हितैषी मित्र-बन्धुओंके लिये यह सब कर्तव्य है। आसन्न कर्म जिससे जनक कर्मके रूपमें परिणत हो सके, मृत्यु-विज्ञानवेत्ता उसीको 'कर्तव्य' कहते हैं। मुमूर्षुके समीप मृत्युके समय यही एकमात्र लक्ष्य होना चाहिये कि अशुभ निमित्त उदित न हों। मुमूर्षुके आसन्न-कर्मको सुपथमें संचालित करना ही हितैषीका कर्तव्य है। इसके लिये मृत्युके साहित्य और विज्ञान (Art and Science) विशेष रूपसे आलोचनीय जान पड़ते हैं।

शुभकर्म या आसन्न-कर्म न रहनेपर आचरित कर्म कार्य करते हैं। शुभ कार्य पुनः-पुनः करते रहनेसे भविष्यमें वे कर्म संस्कारमें परिणत हो जाते हैं। बौद्धलोग इसको 'आचरित कर्म' कहते हैं। शुभकर्म या सत्कर्म इसी हेतु बारंबार करने पड़ते हैं कि जिससे उनके संस्कार चित्तपर अङ्कित हो जायँ। ये शुभ संस्कार मृत्युके समय मुमूर्षुकी सद्गति-प्राप्तिमें सहायक होते हैं। धम्मपद (११८) में बुद्धभगवान्का इस प्रकारका आदेश देखनेमें आता है। धम्मपदमें दूसरी जगह यह भी कहा गया है कि 'प्रमादवश कोई अकुशल कर्म हो जानेपर भी मृत्युके समय उसका

स्मरण करना अनुचित है।' स्मरण करनेपर वह हानिकारक होता है। उस समय वह 'आचरित कर्म' के रूपमें परिणत हो जाता है।

इस प्रकार हमने तीन प्रकारके कर्मोंके कृत्य और स्वरूपका विवरण देख लिया। गुरु-कर्म, मुमूर्षुका अनुस्मृत आसन्न-कर्म और प्रतिदिन नियमित रूपसे जिस कर्मका आचरण होता है अर्थात् जिसको आचरित-कर्म कहते हैं। इन तीनों प्रकारके कर्मोंके विषयमें कहा जा चुका है। इसके सिवा शुभ या अशुभ जो भी कर्म हों, सबके सब वर्तमान जीवनके या अतीत जीवनके सभी कर्म 'उपचित कर्म'के नामसे प्रसिद्ध हैं। उपचित कर्मकी शक्ति उपर्युक्त तीन प्रकारके कर्मोंसे कम होती है।

इन चार प्रकारके कर्मोंमें गुरु-कर्म ही अगले जन्मके नियामक बनते हैं। उनके अभावमें आसन्न-कर्म नियामक बनते हैं। आसन्न कर्म न हों तो आचरित-कर्म यह स्थान ग्रहण करते हैं। यदि इन तीनोंका अभाव हो तो एकमात्र उपचित-कर्मके द्वारा भावी जीवन नियन्त्रित होता है।

(२)

कर्मफल-प्रदानके समय नियामक कौन है ?

इसके बाद प्रश्न यह होता है कि कर्म फल प्रदान करते हैं, यह तो समझमें आ गया, पर इस फल-प्रदानके कालका नियामक क्या है ? अर्थात् कर्मसे फलकी उत्पत्ति कब होगी, उस कालकी उत्पत्ति कब होती है ? इस विषयमें साधारण नियम है कि कर्म तीव्ररूपसे अनुष्ठित होनेपर उसकी फलोत्पत्ति शीघ्र होती है। यह तीव्रता आश्रयगत और विषयगत दोनों ही हो सकती है, अर्थात् जो कर्म करता है, वह यदि तीव्र भावसे उसे करता है तो फल-प्राप्ति आसन्न होती है और यदि कर्मका विषय किसी उच्च स्तरका होता है तो उससे भी कर्मकी तीव्रता सिद्ध होती है। वह नाना प्रकारके औपाधिक कारणोंसे भी हो सकता है। काल-विशेष, स्थान-विशेष अथवा अन्य किसी उपाधि-विशेषके द्वारा कर्मकी तीव्रतामें वृद्धि हो सकती है। कौन-सा कर्म किस समय फल प्रदान करेगा, इसको भलीभाँति समझनेके लिये जवन तत्त्वको समझना आवश्यक है। 'जवन' शब्दका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। जवन शब्दका अर्थ वेग है अर्थात् सक्रिय रूपसे चित्तके द्वारा आलम्बनकी उपलब्धि। बौद्ध योगिगणने 'संप्रतिच्छ चित्त' और 'जवन चित्त'के रूपमें चित्तके दो भाग किये हैं। संप्रतिच्छका अभिप्राय है शिथिल और तमोबहुल (slow and dull) चित्त। इस सक्रिय चित्तके वेग और उसकी मात्राके विचारके प्रसङ्गमें उन्होंने सात उत्तरोत्तर क्षणोंका उल्लेख किया है। जवन चित्तके ये सात क्षण विशेषरूपसे आलोचनीय हैं। इन सप्त क्षणोंमें प्रथम क्षण चित्त 'निष्क्रियवत्' या 'स्रोतोवाहितवत्' रहता है। इसी भावसे वह आलम्बनको ग्रहण करता है। द्वितीय क्षणमें सक्रिय भाव ग्रहण करता है। यही द्वितीय जवन है। प्रथम क्षणमें इच्छाशक्ति (will) अस्फुट होती है, द्वितीय क्षणमें अधिकतर स्फुट हो जाती है। उस समय उसको 'स्वबोध' कहते हैं अर्थात् जिसको स्व-बोध—(self awareness) कहा जाता है। वह परिस्फुट होता है। प्रथम क्षण ठीक जवन चित्तके रूपमें परिचित होने योग्य नहीं होता। वह बहुत कुछ स्रोतके अधीन रहता है। जवन-चित्त ठीक अनुकूल-प्रतिकूल उभय स्रोतमें चल सकता है। जवन चित्तमें सात चित्तक्षणकी क्रिया होती है। प्रथम क्षण अति दुर्बल है; क्योंकि इसमें प्रथम उत्पन्न होनेके कारण अभ्यासजनित संस्कारकी अनुकूलता नहीं होती। इसी कारण प्रथम क्षणसे द्वितीय क्षण प्रबल होता है, तृतीय क्षण और भी प्रबल होता है। चतुर्थ क्षण सर्वापेक्षा प्रबल होता है। इसके बाद वेगका ह्रास होने लगता है। पञ्चम कुछ दुर्बल होता है। षष्ठ अधिक दुर्बल होता है। सप्तम सबसे दुर्बल होता है। प्रथम जवनका विपाक उसी जन्ममें फल देता है; यदि किसी कारणवश फल न दे सके तो क्षीण हो जाता है। सप्तम जवनका फल अत्यन्त कम होता है, अतएव इस जवनका फल अगले जीवनमें फलता है। फल न दे सकनेपर यह क्षीण हो जाता है। मध्यवर्ती जवनकी शक्ति निर्वाण-प्राप्तितक संजीवित रहती है, ध्वंस नहीं होती। पहले कह चुके हैं कि प्रथम जवनका कर्म उसी जीवनमें फल दे देता है। इसीको आचार्यगण 'दृष्टधर्म-वेदनीय कर्म' कहते हैं।

जिस जन्ममें कर्मानुष्ठान होता है, यदि किसी विशेष कारणसे उस जन्ममें वह फल प्रदान न कर सके तो वह कभी फल प्रदान नहीं कर सकता। वह क्षीणवीर्य हो जाता

है । तब वह 'भूतपूर्व कर्म'के नामसे जाना जाता है । सप्तम जवनके कर्म परवर्ती द्वितीय जन्ममें फल प्रदान करते हैं । इसी कारण इस प्रकारके कर्मोंका नाम होता है 'उपपद्य वेदनीय कर्म' । यदि किसी कारणसे वह फल प्रदान न हो सका तो वे नष्ट हो जाते हैं तथा 'भूतपूर्व कर्म'के नामसे जाने जाते हैं । अथवा अवस्थाविशेषमें जनक कर्म या उपष्टम्भ कर्मके नामसे ख्यात होते हैं । मध्यवर्ती जवनके कर्म निर्वाण-पर्यन्त रहते हैं । इनको 'अपरपर्याय वेदनीय कर्म'के नामसे जानते हैं । भूतपूर्व कर्म शुभ अथवा अशुभ हो सकते हैं, इसका कोई नियम नहीं है । ये अत्यन्त दुर्बल कर्म होते हैं । ये विपाक उत्पन्न नहीं कर सकते, यह चाहे दुर्बलताके कारण हो या विरुद्ध कर्मके उपघातके कारण ।

(३)

क्लिष्ट और अक्लिष्ट कर्म

कर्मोंके सम्बन्धमें साधारण लोगोंकी धारणा स्पष्ट न होनेके कारण अधिकांश लोगोंका विश्वास है कि इस संसार-प्रपञ्चका तथा व्यापक दुःख-जंजालका मूल एकमात्र कर्म है । यह विश्वास निर्मूल नहीं है । तथापि यह स्पष्टरूपसे ज्ञात होना चाहिये कि जिस कर्मके प्रभावसे संसारके सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं, वह अज्ञानमूलक कर्म है । अज्ञान अथवा अविद्या ही संसारका मूल कारण है । अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—इन पाँच क्लेशोंमें अविद्या ही मूल क्लेश है । अविद्यासे अस्मिता अर्थात् अहंभावका उदय होता है । अस्मिताके उदयके फलसे अवस्थाके अनुसार चित्तमें राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं तथा उसके बाद अभिनिवेश अर्थात् मृत्युभय उत्पन्न होता है । अविद्या आदि पाँच क्लेश सांसारिक जीवनके मूल-स्तम्भ-स्वरूप हैं । अविद्या शब्दसे यहाँ 'अविवेक' अर्थ लेना चाहिये । जो वस्तु जैसी नहीं है, उसको वैसी समझना ही 'अविद्या' है और इस मिथ्या ज्ञानसे ही अस्मिता या अहंभावका उदय होता है । सत्ता और चैतन्य, दोनोंमें जो पृथक्ता है, उसको ध्यानमें न रखकर दोनोंको एक रूप समझना ही 'अस्मिता' है और इसीका दूसरा नाम है—अहंभाव । इस अहंभावसे आकर्षण और विकर्षण

अविद्याका मूल स्वरूप है—अविवेक, अर्थात् पुरुष और प्रकृतिके पार्थक्यको न समझ पाना । योगमार्गमें प्रविष्ट पुरुष 'विवेकख्याति'का अभ्यास करता है । पुरुष और प्रकृतिके अभेदज्ञानका आश्रय करके जो कर्म होते हैं, वे ही 'क्लिष्ट कर्म' हैं तथा विवेकख्यातिको पृष्ठभूमिमें रखकर जो कर्म उत्पन्न होते हैं, उनका नाम है 'अक्लिष्ट कर्म' । अविवेकमूलक कर्म नाना प्रकारके हो सकते हैं । श्रेणीविभाग करते समय वे शुक्ल, कृष्ण और मिश्र—इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त होते हैं । ये सभी सांसारिक कर्म हैं । इन सब कर्मोंके फलसे संसार-बन्धन क्रमशः दृढ़ होता है । किंतु विवेकख्यातिमूलक कर्मसे संसार-बन्धन क्रमशः शिथिल हो जाता है । योगीजन शुक्ल, कृष्ण और मिश्र-नामसे प्रधानतः तीन प्रकारका कर्म-विभाग करते हैं । तत्पश्चात् विवेकख्याति हो जानेपर इस प्रकारके कर्मोंका अवसान हो जाता है । तब जो कर्म होते हैं उनका नाम है—अशुक्ल-अकृष्ण कर्म । इन कर्मोंसे संसार-बन्धन तो होता ही नहीं, बल्कि पूर्वस्थित बन्धन कट जाते हैं । योगीके कर्म अशुक्ल-अकृष्ण होते हैं, इसी कारण इन कर्मोंके प्रभावसे संसारोत्पादक मिश्रकर्म, शुक्लकर्म और कृष्णकर्म क्रमशः

है; परंतु अक्लिष्ट कर्म संसारनाशक है । परमेश्वरके स्वरूपमें किसी प्रकारके कर्मका ही स्पर्श नहीं है। कर्मविज्ञान अति जटिल रहस्य-स्वरूप है । चित्त मछुएके जालके समान है । वही ग्रन्थियुक्त कर्मका आश्रय है । अनादिकालसे क्लिष्ट कर्मकी धारा चली आ रही है । जबतक विवेकख्याति पूर्ण नहीं होती, इस धाराकी विश्रान्ति नहीं है । कर्माशय क्लिष्ट कर्मसे उत्पन्न होता है, अक्लिष्ट कर्मसे नहीं होता । सुख-दुःखके तारतम्यके अनुसार शुभ कर्माशय और अशुभ कर्माशयको पृथक्-पृथक् करके देखना आवश्यक है । कर्माशय और वासना, दोनों ही संस्कार हैं और कर्मसे उत्पन्न होते हैं, किंतु दोनों संस्कार एकसे नहीं होते । कर्माशयसे सुख-दुःखका भोग संघटित होता है, परंतु वासनासे पातञ्जलयोगकी दृष्टिके अनुसार भोग नहीं उत्पन्न होता । वासनाका फल स्मृति है, परंतु कर्माशयका फल सुख-दुःख है । ये दोनों संस्कार एक साथ जड़ित होकर कार्य करते हैं । कर्माशयसे तीन प्रकारके विपाक उत्पन्न होते हैं । प्रथम विपाक 'जाति' अथवा जन्म है । देह-प्राप्तिका दूसरा नाम जन्म है । देह भोगायतन है । अतएव देहसे सुख-दुःखका अनुभवरूप भोग सम्पन्न होता है । इस देहके स्थिति-कालको 'आयु' कहते हैं । जिस कर्मसे देह उत्पन्न होता है, उसी कर्मसे उस देहके भोग और आयुका नियन्त्रण होता है । इस प्रकारके कर्मका नाम 'प्रारब्ध कर्म' है । स्थूलदृष्टिसे मनुष्यके कर्म दो प्रकारके होते हैं । वर्तमान कर्मको 'क्रियमाण' कर्म कहते हैं । जीव कर्तृत्वके अभिमान-वश कर्म करता है । देहात्मबोधके बिना कर्म नहीं उत्पन्न होता तथा कर्मके भोगानुकूल संस्कार भी नहीं उत्पन्न होते । प्राक्तन कर्म अनादिकालसे क्रमशः चित्तमें सञ्चित होते हैं, उनको 'सञ्चित कर्म' कहते हैं । ये अनेक जीवनके संस्कारोंकी समष्टि हैं । इन सञ्चित कर्मोंसे ही प्रारब्ध कर्मकी उत्पत्ति होती है । कहनेकी आवश्यकता नहीं कि केवल सञ्चित कर्मसे काम नहीं चलता, सञ्चित और क्रियमाण कर्मकी सहकारितासे देहत्यागके समय 'प्रारब्ध कर्म'का आविर्भाव होता है । मृत्युके समय या अन्तिम कालमें जो विचारधारा रहती है, उसीका दूसरा नाम है—'क्रियमाण कर्म' । उस धाराके अनुसार सञ्चित कर्मके भण्डारसे अनुरूप कर्मोंके संस्कार उद्बुद्ध होकर प्रारब्ध कर्मकी रचना करते हैं । साधारण प्रारब्ध एक जन्मका नियामक होता है, किंतु अवस्थाविशेषमें एकसे अधिक जन्मका प्रादुर्भाव एक ही प्रारब्धसे हो सकता है । कर्मका विपाक कालके अधीन है । बहुधा बहुतेरे कर्मोंके संस्कार कालमें याप्य अवस्थामें रहते हैं । वे योग्य अभिव्य[illegible] अभावमें प्रसुप्तवत् पड़े रहते हैं । परंतु संस्कार नष्ट होते । समय आनेपर वे फल-प्रदानोन्मुख हो जाते हैं ।

कर्मकी एक रहस्यात्मक प्रक्रिया है, उसका नाम है 'आवापगमन' । बहुधा एक ही कर्मपिण्डमें शुक्ल कृष्ण विरुद्ध संस्कार रहते हैं । प्राचीनकालमें यज्ञार्थ हिंसाके सम्बन्धमें यही आवापगमनका प्रसङ्ग उठाया था । समष्टि कर्म शुक्ल और कृष्ण उभयात्मक हो तो गुणप्रधानरूपमें विभक्त किया जाता है । यदि उसमें [illegible] कर्म या पुण्य है, तथापि वह तत्संश्लिष्ट क्लिष्ट कर्म या [illegible] द्वारा युक्त होकर यथासमय फल प्रदान करता है । व्यापारमें दोनों कर्मोंके संयोगमें समष्टि कर्मका विचार है । अर्थात् किसी पुण्य कर्मके करते समय आनुषङ्गिक यदि कुछ पाप कर्म होते हैं तो इस पुण्य और पाप [illegible] फल एक साथ जुड़ जाता है । दृष्टान्तस्वरूप, यदि पुण्य कर्मके अनुष्ठानमें अनिवार्यरूपसे कुछ पाप [illegible] अनुष्ठान होता है तो दोनों कर्मोंकी एक साथ योजना [illegible] कर्मफल निर्णीत होता है । अर्थात् पुण्य कर्म दस आने पाप कर्म दो आने हों तो ऐसी अवस्थामें पुण्य और पा[illegible] एक साथ जोड़ लिये जायँगे और पुण्यके भागमेंसे दो घटकर वह पुण्यभाग आठ आने फल उत्पन्न करेगा । कर्मका 'आवापगमन' है । साधारणतः पाप और पु[illegible] फल अलग-अलग भोगना पड़ता है; किंतु सजातीय [illegible] कर्म होनेपर दोनोंका विचार एक साथ होता है । जैसे [illegible] और क्षमा—ये दोनों सजातीय विरुद्ध कर्म हैं । यहाँ प्राध[illegible] अनुसार फलनियन्त्रण होता है । कर्मके सम्बन्धमें एक [illegible] नियम यह है कि विशेष-विशेष क्षेत्रमें विशेष कारणसे इ[illegible] तीव्रता बढ़ती है अथवा घटती है । जैसे, यदि जपको कर्म समझें तो उसके फलकी अभिव्यक्तिके सम्बन्धमें [illegible] कारणोंसे परिवर्तनकी सम्भावना है, यह जान लेना चा[illegible] साधारण जपमें जो फल होता है, स्थान-विशेष या [illegible] विशेषके कारण उसका फल अधिक हो जाता है । [illegible] प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये । इसी प्रकार कोई अ[illegible] करके उसके लिये संतप्त हृदयसे पश्चात्ताप करनेपर, [illegible] लोगोंके सामने या किसी विशिष्ट व्यक्तिके सामने अपराधको स्वीकार कर लेनेपर, अथवा अन्य किसी प्र[illegible] शुद्ध संकल्पका आश्रय लेनेपर पापकी तीव्रता कम हो[illegible]

है। पाप और पुण्य उत्कट होनेपर उसका फल बहुत थोड़े समयके भीतर ही भोगना पड़ता है।

क्लिष्ट कर्मके भीतर अक्लिष्ट कर्म रहनेपर वह अक्लिष्ट ही रह जाता है, क्लिष्टके साथ मिलता नहीं। इसी प्रकार विपरीत अवस्थामें भी समझना चाहिये। प्रत्येक जातिके कर्मका हिसाब अलग-अलग होता है। क्लिष्टका फल अक्लिष्ट नष्ट नहीं करता, अक्लिष्टका फल भी क्लिष्ट नष्ट नहीं करता। जीवनके क्षेत्रमें प्रायः सर्वत्र ही वासना और कर्माशयका मिश्रण होता है। एक मनुष्य पहले नाना प्रकारकी पशु-पक्षी आदि योनियोंमें भ्रमण करके आया है, किंतु इस समय वह शुद्ध मनुष्यदेहधारी है। इसके बाद यदि वह कर्मफलके वश दूसरे जन्ममें पशु होकर जन्म ले, तो उसके उस पशु-जन्ममें प्राक्तन पशुजन्मकी वासना स्वभावतः अभिव्यक्त होगी। उसमें पूर्वसंस्कारकी अभिव्यक्ति होगी और अस्पष्ट स्मृतिके रूपमें पूर्वोक्त देहोचित क्रियाएँ संघटित होंगी। कर्माशयके प्रभावसे ही यह स्थूलशरीरसे जन्म होता है और वासनाके प्रभावसे पशुके उपयुक्त संस्कारका उद्बोधन होता है।

पुनर्जन्म, कयामत और मुक्ति

(लेखक—'श्रीमण्डन मिश्र')

(१)

कर्मविपाक और विकासवाद

आधुनिक वैज्ञानिकोंका मत है कि सृष्टिमें निरन्तर विकास होता रहता है। उनके अनुसार जलमें रहनेवाला 'अमोबा' कीटाणु सर्वप्रथम प्राणी है। धीरे-धीरे उसके रूप बदलते गये। विकासवादका दूसरा सिद्धान्त है कि 'योग्यतम प्राणी ही अन्तमें बच सकेगा।' इसके विपरीत अपने यहाँका सिद्धान्त है कि मनुष्य अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियोंमें जन्म लेता है। मोटे रूपसे योनियोंकी संख्या ८४ लाख मानी गयी है। वे इससे भी अधिक हो सकती हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि इन ८४ लाख योनियोंमें विकासका सिद्धान्त दिखलाया गया है। इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य-योनि सर्वोत्कृष्ट है—

'बड़ें भाग मानुष तनु पावा।'

(रामचरितमानस ७। ४२। ४)

फारसीमें भी इसको 'अशरफुल मखलूकात' अर्थात् प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ माना गया है। किंतु अपने यहाँ विकास-का अर्थ निरन्तर विकास नहीं लिया गया है, जैसा कि पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका मत है। अपने यहाँके शास्त्रानुसार विकास और संकोचका क्रम कर्मानुसार चलता रहता है। अपने कर्मोंके फलस्वरूप मनुष्य दूसरे जन्ममें पशु या अन्य किसी योनिमें जन्म ले सकता है।

यदि कर्मविपाकका सिद्धान्त न माना जाय तो सृष्टि-वैषम्यका कोई न्यायोचित आधार नहीं मिलता। कोई अमीरके घर जन्म लेता है तो कोई गरीबके घर। इसी तरह जन्मसे ही कोई रोगी होता है तो कोई हृष्ट-पुष्ट। यदि ईश्वरमें विश्वास है तो क्या वह मनमाने ढंगसे प्राणियों-की स्थिति निर्धारित करता है? यदि ईश्वर न मानकर प्रकृतिमें ही विश्वास है तो इस वैषम्यका उसमें भी कोई आधार होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं तो प्रकृतिका कोई नियम ही नहीं रह जाता, जब कि वैज्ञानिक सदा प्रकृतिके नियमोंकी दुहाई देते रहते हैं। विकासवादके जन्मदाता डार्विन साहब स्वयं प्रकृति-वैचित्र्य देखकर चकित रह गये थे। उसकी गुत्थी सुलझानेके लिये उन्होंने विकासवादका सिद्धान्त अपनाया और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि वह गुत्थी सुलझती नहीं। उसका एकमात्र समाधान 'कर्म-विपाकका सिद्धान्त' ही है।

प्रायः लोग यह शङ्का करते हैं कि यदि कर्मफलके अनुसार ही जन्मकी व्यवस्था है तो यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो बार-बार जन्म लेता रहता है; परंतु यहाँ यह बात भुला दी जाती है कि योनियाँ स्वतन्त्र और असंख्य हैं। मनुष्य अपने कर्मानुसार ही विभिन्न योनियोंमें जन्म लेता है। भगवान्ने उसे विवेक दिया है, इसलिये उसे अपने कर्मोंका फल भी भुगतना पड़ता है। किंतु कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि विवेकहीन हैं, इसलिये

उन्हें निर्धारित क्रमके अनुसार चलना पड़ता है । अपने यहाँके सिद्धान्तानुसार जब कोई मनुष्य अपने कर्मोंके फल-स्वरूप किसी पशु-पक्षीकी योनिमें जन्म लेता है, तब प्रायः उसमें कुछ पिछले संस्कार बने रहते हैं। अपने यहाँ पक्षियों भी जटायु-जैसे पक्षी हो गये हैं, जिन्होंने भगवान्की से करते अपने प्राण गँवाये थे ।

(२)

कयामतका दिन

मुसल्मानोंका विश्वास है कि 'कयामतके दिन अल्ला-मियाँ शंख फूकेंगे तब सब मृत प्राणी जीवित हो उठेंगे।' परंतु यह नहीं बतलाया गया है कि यह कयामतका दिन कब आयेगा । यह बात अवश्य है कि 'शंख-ध्वनिसे मुसल्मान घबराते बहुत हैं।' फिर इससे यह बात भी सुस्पष्ट नहीं होती कि मरनेके बाद यदि प्राणी स्वर्ग या नरकमें जाता है जैसा कि मुसल्मान भी मानते हैं, तो फिर कब्रमें क्या रह जाता है जो कयामतके दिन उठेगा । एक बात और भी है। यदि सभी मृत व्यक्ति जीवित हो उठेंगे तो फिर उस समय जनसंख्या-विस्फोट कितना भारी होगा, इसकी क्या कोई कल्पना की जा सकती है ?

(३)

मुक्तिका द्वार सबके लिये खुला

संसारमें जितने धर्म या सम्प्रदाय हैं, उन सबमें यही व्यवस्था है कि स्वर्ग या मोक्षका द्वार उन्हीं लोगोंके लिये खुला है, जो उस धर्म या सम्प्रदायके अनुयायी हैं । पर अपने यहाँ मोक्षका द्वार सभीके लिये खुला है; केवल हिंदुओंके लिये ही नहीं । अपने यहाँ काशी, काञ्ची, मायापुरी, अयोध्या, द्वारका, मथुरा और उज्जैनको मोक्षदा पुरियाँ अर्थात् मोक्ष देनेवाली पुरियाँ माना गया है । इनमें मृत्यु होनेपर कोई भी प्राणी, वह किसी भी सम्प्रदायका क्यों न हो, मोक्ष प्राप्त करेगा । उसमें हिंदू, मुसल्मान, ईसाई-जैसा कोई भेद नहीं । कहा जा सकता है कि 'यदि ऐसा ही है तो इन पुरियोंमें रहकर सभी प्रकारके पाप किये जा सकते हैं । अन्ततः मोक्ष तो हो ही जायगा ।' कि इसमें भी एक बात भुला दी जाती है । कर्मफलके अनुसार ही तो इन पुरियोंमें जन्म या निवास होता है । तभी उ अन्तमें मोक्ष मिलता है । काशीमें रहनेवालेके लिये भैरवी यातनाकी व्यवस्था है । प्रायः लोग कर्मफल भोगकर शरीर छोड़ते हैं । जब ऐसा नहीं हो पाता उन्हें स्वर्ग या नरकमें फल भोगना पड़ता है । कि बातको प्रसंगसे अलग कर उसपर विचार नहीं हो सकत किस प्रसंगमें क्या बात कही गयी है, इसपर ध्यान रख बहुत आवश्यक है । सभी कार्योंमें एक तारतम्य रहता है उसीके अनुसार आगे प्रगति होती है ।

कर्मानुसार देहप्राप्ति

जबसे यह त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ, तभीसे कर्मका सम्बन्ध है । सबकी उत्पत्तिमें कर्म ही कारण है । यह जीव स्वरूपतः जन्म और मरणसे रहित हैं, फिर भी कर्मरूपी बीजके प्रभावसे अनेक योनियोंमें बार-बार जन्मते और मरते र हैं । कर्म समाप्त हो जानेपर जीवका देहसे सम्बन्ध कभी नहीं हो सकता । उत्तम, निन्द्य और उत्तम-निन्द्य-मिश्रित— तीनों गुणोंसे यह जगत् व्याप्त है । जो तत्त्वके रहस्यको जाननेवाले विद्वान् हैं उनके द्वारा भी कर्मोंका भेद तीन प्रकारसे बताया गया है । वे तीन प्रकारके कर्म—संचित, प्रारब्ध और वर्तमान हैं । इस देहमें कर्मोंकी तीन गतियोंका सम्मि रहता है । राजन् ! ब्रह्मा आदि सभी उस कर्मके अधीन हैं । महाराज ! सुख, दुःख, जरा, मृत्यु, हर्ष, शोक, काम, तथा लोभ—ये सभी देहसे सम्बन्ध रखनेवाले गुण हैं । देवताओं, मनुष्यों और पशुओं—सबसे ये सम्बन्ध रखते हैं । सभी विकारोंका देहसे ही सम्बन्ध रहता है । पूर्वजन्मके किये हुए वैर और स्नेहके अनुसार वे शरीरमें आश्रय पाते कर्म शेष न रहनेपर प्राणियोंकी उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है । **(महर्षि व्यास)**

कर्मसम्बन्धी विचार

(१)

कर्मभोग एवं कर्मप्रायश्चित्त

'गहना कर्मणो गतिः ।' (गीता ४ । १७)

कर्मकी गतिको गहन कहनेका तात्पर्य है । 'जो कर्म करता है, वही फल भोगता है' और 'कर्मका फल भोगना ही पड़ता है'—इतनी सीधी बात नहीं है ।

औरु करै अपराध कोउ, और पाव फल भोगु ।
अति बिचित्र भगवंत गति, को जग जानै जोगु ॥

(रामचरितमानस २ । ७७)

आपको यह बात अटपटी लगती है या नहीं ? गीताका यह श्लोक (४ । १८) भी यहाँ विचारणीय है—

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥

'जो कर्ममें अकर्म देखता है और अकर्ममें कर्म देखता है, वह मनुष्योंमें बुद्धिमान् है । वह युक्त है । वह समस्त कर्मोंको करनेवाला है ।'

कर्म सब हो रहे हैं; किंतु आसक्ति नहीं है, उनमें कर्तृत्वका अहंकार नहीं है तो व्यक्ति अकर्ता है । और कर कुछ नहीं रहे हैं; किंतु मन 'यह करो' 'यह करो' की योजनाएँ बना रहा है तो वह देहसे कुछ न करनेवाला कर्ता ही है ।

प्रधान सेनापति या राष्ट्रपति युद्धमें तोप चलाते हैं या बन्दूक ? लेकिन युद्धका कर्ता कौन माना जाता है ? विजय किसकी कही जाती है ? सेवक जो काम करते हैं, उसका पाप-पुण्य, लाभ-हानि स्वामीका है या नहीं ?

आप कहेंगे कि जिसमें कर्तृत्वका अहंकार है, कर्मफल उसे होता है । स्वामीमें कर्तृत्वका अहंकार है । वह कर्ता भले न हो, कारयिता है; अतः फलभोग उसे प्राप्त होना ही चाहिये । लेकिन आपने व्रत-माहात्म्यमें शिवरात्रि-व्रतका माहात्म्य पढ़ा होगा । एक हिंसक शिकारी दिनभर वनमें भटकता रहा । कुछ मिला नहीं भोजनको; अतः भूखा रहा । रात्रिमें वन्य पशुओंसे बचनेके लिये बेलके पेड़पर चढ़ गया । प्राणभयसे रात्रिभर जागता रहा । संयोग ऐसा

शिवरात्रि-व्रत तथा शिवार्चन मान लिया गया । कहाँ उसमें कर्तृत्वका अहंकार है ?

एक दूसरा उदाहरण

वृन्दावनमें यमुना-किनारे एक टीलेपर एक अच्छे संत खड़े-खड़े श्रीव्रजराजकुमारकी लीलाओंका चिन्तन कर रहे थे । कोई ऐसी लीला चित्तमें आयी कि उन संतको हँसी आ गयी । संयोग ऐसा कि उसी समय यमुनाजीसे स्नान करके कोई दोनों पैरोंसे लँगड़ा, कूबड़ा साधु उधर आ रहा था । संतको हँसते देखकर उसे लगा कि 'ये मुझे देखकर हँस रहे हैं ।' उसे बहुत दुःख हुआ । इधर संतके हृदयमें भगवल्लीलाका दर्शन बंद हो गया । बहुत प्रयत्न किया उन्होंने, बहुत व्याकुल हुए; किंतु फल कुछ नहीं निकला ।

'तुमसे किसीका अपमान हुआ है । किसीका हृदय तुम्हारे कारण दुखी हुआ है । उससे क्षमा माँगो ।' जब उन संतने दूसरे महापुरुषसे अपना दुःख सुनाया तो उन्हें यह उत्तर मिला । बहुत सोचनेपर उनको स्मरण आया कि उस समय आसपास तो एक साधु ही दीखा था । ढूँढ़कर वे उसके समीप गये ।

'बच्चे-बड़े सब मुझे देखकर हँसते हैं । वे अज्ञानी हैं, अतः हँसें तो ठीक है; किंतु आप संत होकर, ज्ञानी होकर भी हँसते हैं । यह शरीर कुछ मेरा बनाया है ?' लँगड़े साधुने उन संतको खरी-खरी सुनायी । 'आप मुझपर हँसेंगे तो मुझे दुःख नहीं होगा तो क्या सुख होगा ? मैं दीन हूँ, दुर्बल हूँ, आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकता, इसलिये जो आपके जीमें आये, कर लीजिये ।'

संत तो क्षमा माँगने गये थे । उन्होंने अपनी हँसीका कारण बतलाया और क्षमा माँगी । उन साधुको भी अपनी भूलका पता लगा । उसने भी क्षमा माँगी; किंतु संतमें कहीं अपमानका कर्तृत्व था ? उनको जो भगवल्लीलाके दर्शनसे वञ्चित रहना पड़ा, यह उनके किस कर्मका फल हुआ ?

नियम ठीक है। कर्मका फल कर्ताको ही होता है, यह नियम भी ठीक है। कर्मका फल भोगना ही पड़ता है, यह बात भी सच है; किंतु ये सब सामान्य नियम हैं। सैकड़ों नियम-उपनियम इन सामान्य नियमोंके बाधक हैं; क्योंकि कर्मका फल कहीं कर्ताकी प्रधानतासे होता है, कहीं देशकी प्रधानतासे; कहीं कालकी प्रधानतासे, कहीं क्रियाकी प्रधानतासे; कहीं वस्तु-उपकरणकी प्रधानतासे और कहीं तो फलभोक्ताकी प्रधानतासे ही कर्मफल कम-अधिक हो जाया करता है।

कर्मफलमें अनेक भागीदार होते हैं। माता-पिता, पुत्र, पति या पत्नी, देशका शासक, गुरु—ये सब कर्मफलमें भाग पाते हैं, भले उस कर्मके किये जानेका उन्हें पता तक न हो। कर्मका आदेश देनेवाले, उसका समर्थन या विरोध करनेवाले, उसकी प्रशंसा या निन्दा करनेवाले भी उसमें भाग पाते हैं।

इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर कहा गया है, 'गहना कर्मणो गतिः।'—कर्मकी गति बहुत गहन—अत्यन्त जटिल है। बड़े-बड़े कर्मशास्त्रके ज्ञाता भी इस सम्बन्धमें भ्रममें पड़ जाते हैं।

कर्मभोग कितना

किस कर्मका क्या भोग प्राप्त होगा? कितने समयतक प्राप्त होगा? इसका वर्णन यद्यपि ज्यौतिषशास्त्र और कर्म-विपाक दोनोंमें है, यह सत्य है। किंतु यही कोई बहुत सुनिश्चित बात नहीं है। सबको एक-सा ही फल नहीं मिलता। स्थितिके अनुसार तारतम्य रह सकता है।

एक ही कर्मका उदीयमान दुःखद फल एक पाप-रत प्राणीको दीर्घकालतक दुःख देता है और एक साधकको कभी-कभी तो उसके आराध्यकी कृपासे केवल स्वप्नमें ही उसका फल-भोग हो जाता है। जाग्रत्‌में उसका कोई प्रभाव ही नहीं होता। इसीलिये राष्ट्रकवि स्वर्गीय श्रीमैथिलीशरण गुप्तने कहा था—

'अरे डराते हो क्यों मुझको कहकर विधिका अटल विधान।
'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' है समर्थ मेरा भगवान॥'

भक्तिशास्त्रमें—भगवान्‌में जिनकी श्रद्धा है, उन भगवान्‌के मङ्गलविधानमें सहज विश्वास रखनेवाले भक्तोंपर प्रारब्धका कोई प्रभाव नहीं होता। वे सर्वत्र सदा भगवान्‌का मङ्गल-स्पर्श प्राप्त करते हैं। भक्तका कोई पूर्वकृत कर्म ऐसा फल प्रकट कर नहीं सकता, जिसमें भक्तका अहित—अमङ्गल हो। कर्मविधानका दुःख-पारतन्त्र्य भक्तके लिये जाग्रत् तो क्या, स्वप्नमें भी नहीं है।

श्रीशुकदेवजी तो कहते हैं—

**देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥**
(श्रीमद्भागवत ११।५।४१)

'राजन् परीक्षित्! शरण लेने योग्य श्रीमुकुन्दकी शरणमें जो अपने कर्तृत्वाभिमानको छोड़कर सर्वात्मना चला गया, वह अब देवता, ऋषि, किसी प्राणी, श्रेष्ठ मनुष्य (राजादि) एवं पितरोंका भी न सेवक है और न ऋणी।'

अतः कर्मका भोग कब, कैसे मिलेगा और कैसे नहीं मिलेगा, इस चिन्ताको छोड़कर मङ्गलमय श्रीहरिके मङ्गल-विधानपर विश्वास रखकर उनकी शरण ग्रहण करना सबसे निरापद मार्ग है। जो ऐसा नहीं कर पाते, उनके लिये सकाम अनुष्ठान तथा कर्म-प्रायश्चित्तका विधान शास्त्रने किया है।

कर्म-प्रायश्चित्त

मनुष्य संयम-नियमसे रहे और नियमित पथ्य, आहार-विहार रक्खे तो उसके रोगी होनेकी सम्भावना बहुत कम रहती है। रोग प्रायः आहार-विहारके असंयमसे अथवा कहीं किसी प्रकारकी सावधानीमें त्रुटि हो जानेसे होते हैं। जब रोग हो जाता है, तब उसकी चिकित्सा करनी पड़ती है।

'रोगी स्वयं कुशल चिकित्सक भी हो तो भी अपनी चिकित्सा स्वयं न करे, यह नियम है।' उसे दूसरे अच्छे चिकित्सककी सम्मति लेनी चाहिये। जो चिकित्सा-शास्त्र जानते ही नहीं अथवा अपूर्ण जानते हैं, उनके द्वारा कोई चिकित्सा करायेगा तो परिणाम जो कुछ होगा, वह आप समझ सकते हैं।

पाप मानसिक रोग हैं। जैसे आहार एवं आचारमें च्युति होनेसे शारीरिक रोग होते हैं और वे दुःख देते हैं, वैसे ही विचार-आचारमें च्युतिका होना ही 'पाप' कहलाता है। इससे मनमें रोग होते हैं और कालान्तरमें वे जब फल-दानोन्मुख होते हैं तो तन-मन दोनोंके लिये दुःखद होते हैं।

शारीरिक रोग तत्काल दुःख देने लगते हैं; किंतु पाप तो एक रोगके बीजके समान हैं। जैसे किसीके शरीरमें कैन्सरका बीज पहुँच जाय तो वह बहुत देरमें रोगके रूपमें प्रकट होता है और पीड़ादायक बनता है, उसी प्रकार पाप दुःखके बीज हैं, जो देरमें या जन्मान्तरमें अपना भयानक रूप प्रकट करते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति कैन्सर तथा दूसरे किसी रोगका बीज शरीरमें पहुँचनेकी सम्भावना होनेपर जाँच कराता है और यदि बीज शरीरमें हुआ तो उसकी उसी समय चिकित्सा करता है। उस समय रोगकी चिकित्सा सरल होती है। इसी प्रकार पाप—अशुभ कर्म हो जायँ, अपनेको लगे कि हुए तो इनकी तुरंत चिकित्सा कर दी जानी चाहिये। इस समय इनका प्रायश्चित्त उतना कठिन नहीं होता; किंतु जन्मान्तरमें जब ये फलोन्मुख होंगे, तब इनके प्रभावको मिटानेके लिये जो अनुष्ठानादि करने होंगे; वे पर्याप्त कठिन होंगे।

अपकर्मका प्रायश्चित्त स्वयं कर्ता निश्चित नहीं कर सकता; क्योंकि एक ही कर्म देश, काल, पात्र तथा कर्ताकी योग्यता, मनःस्थितिके अनुसार लघु या गुरु बनता है। पापमें लघु-गुरु, शुष्क-आर्द्रके स्वतः भी भेद होते हैं। चींटीकी हत्या, गधेकी हत्या, मृग या बाराहकी हत्या, हाथीकी हत्या, मनुष्य या गौकी हत्या—ये सब प्राणिवध हैं; किंतु इनमें हत्याका पाप समान नहीं है। क्षुद्र जीवोंके वधका पाप 'क्षुद्र' माना गया है। बड़े प्राणियोंमें भी किन्हींके वधका पाप अल्प एवं किन्हींका बहुत माना गया है। हाथी उन्मत्त न हो तो युद्धके अतिरिक्त उसका वध महाहत्या—गोवधके समान मानी गयी है। जो पाप तुरंतके हैं, वे आर्द्र हैं और जिनको पर्याप्त समय बीत गया है, वे शुष्क हैं। आर्द्रपापका प्रायश्चित्त शुष्ककी अपेक्षा अधिक होता है; क्योंकि शुष्कपापका अर्थ ही है कि वह मनोवृत्ति अब रही नहीं, अन्यथा उस पापकी पुनरावृत्ति हुई होती।

रोगोंकी चिकित्साके समान ही पापका प्रायश्चित्त है। रोग-निदानके समान ही पाप-निदान होता है। पापका स्वरूप, समय, स्थल, कर्ताकी शक्ति, साधन, स्थिति एवं मनोभावादिका पूरा विचार करके तब उसके अनुसार प्रायश्चित्त निर्धारित होता है। अतः जैसे प्रत्येक मनुष्य चिकित्सक नहीं होता, उसके लिये पर्याप्त अध्ययन एवं अनुभव आवश्यक होता है; वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति प्रायश्चित्त-निर्देशक नहीं हो सकता, भले वह उच्चकोटिका साधक अथवा महात्मा हो। इसके लिये प्रायश्चित्त-शास्त्रका गम्भीर अध्ययन तथा स्थितियोंको समझनेका अच्छा अनुभव आवश्यक है। ऐसे व्यक्तिसे ही प्रायश्चित्त-विधान प्राप्त किया जाना चाहिये।

जो लोभ, द्वेष, भय अथवा मोहके वश हो—इनसे प्रेरित हो, वह जैसे योग्य होनेपर भी उपयुक्त चिकित्सक नहीं है, वैसे ही ऐसा व्यक्ति उपयुक्त प्रायश्चित्तनिर्देशक भी नहीं हो सकता।

रोग अशुभ कर्मोंके फलसे ही आते हैं। अतः रोगकी चिकित्सा तथा ग्रह-शान्तिके अनुष्ठान प्रायश्चित्त ही हैं। सकाम अनुष्ठानोंमें तथा प्रायश्चित्तमें इतना ही अन्तर है कि प्रायश्चित्त प्रायः वर्तमान जीवनमें किये गये पापोंको मिटानेके लिये—निष्प्रभाव करनेके लिये किया जाता है और सकाम अनुष्ठान पूर्वकृत अज्ञात अशुभ कर्मोंसे प्राप्त रोग, शोक, दुःख या असफलताको दूर करनेके लिये होता है।

एक दिनके सामान्य उपवास, गङ्गास्नान, पञ्चगव्यपानसे लेकर चान्द्रायण, कृच्छ्रचान्द्रायण एवं देहत्यागतक प्रायश्चित्त-विधानके अन्तर्गत हैं।

आजके युगमें मनुष्य वैसे ही अल्पशक्ति, अल्पप्राण और श्रद्धाहीन हो गया है। वह कठिन प्रायश्चित्त कर सकेगा? ठीक-ठीक प्रायश्चित्त बतलानेवाले कठिनाईसे मिलते हैं। बतलानेवाला मिल जाय तो उसके बतलाये उपायपर श्रद्धा होनी कठिन और श्रद्धा भी हो तो क्या आज उतने कष्ट उठा लेनेकी क्षमता सामान्य व्यक्तिमें है?

ऐसी दशामें आजका मनुष्य क्या करे? इस युगके लिये पाप-परिमार्जनका, सबके लिये सब पापोंके परिमार्जनका सुगम साधन शास्त्रने पहलेसे सुनिश्चित कर दिया है—

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम्।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥
(श्रीमद्भागवत ६। २। १०)

'सब प्रकारके पापोंके कर्ता पापियोंके लिये केवल यही समुचित प्रायश्चित्त है कि वे भगवान् नारायणके नामका उच्चारण-जप-संकीर्तन करें, जिससे भगवान्‌में उनकी बुद्धि लगे।'

भगवन्नाम-कीर्तन, भगवन्नाम-जप सब पापोंका सुनिश्चित एवं सर्वसम्मत प्रायश्चित्त है। यह सर्वत्र, सब समय, सबके लिये सुगम है। अतः नामका आश्रय ही लेनेयोग्य है।

(२)

कर्मफल-पद्धति

कर्मफल कालान्तरमें

'बीज-वृक्ष-न्याय'—कर्मफलकी पद्धति बहुत संक्षिप्त कहें तो इतनी ही है। बीज-वृक्ष-न्यायको ठीक-ठीक समझ लिया जाय तो कर्मका सिद्धान्त समझमें आ जायगा।

'अमुक व्यक्ति बहुत धर्मात्मा है; किंतु उसको तो अभाव तथा दुःख ही भोगना पड़ रहा है।' अथवा 'अमुक व्यक्ति धर्माधर्मकी कोई चिन्ता नहीं करता; झूठ-छल, कपट, विश्वासघात आदि ही करता है; किंतु कितना सम्पन्न और सुखी है ?'—ऐसी बातें प्रायः लोग कहते हैं।

धर्मका फल दुःख और पापका फल सुख कभी हो नहीं सकता। यदि पापका फल सुख होता तो पाप करनेवाले सब धनी और सुखी होते; किंतु उनमें तो अत्यन्त दरिद्र, रोगी और बहुत दुखी देखे जाते हैं।

एक किसानने पिछले वर्ष खेती नहीं की। इस वर्ष खेतोंमें जी-तोड़ परिश्रम करता है; किंतु पुराना अन्न घरमें रहा नहीं; फलतः उसे और उसके परिवारको प्रायः भूखों रहना पड़ता है। दूसरे किसानने पिछले वर्ष बहुत परिश्रम खेतोंमें किया था। इस वर्ष उसने हल-बैलको छुट्टी दे रक्खी है। दिन-रात घरमें पड़ा रहता है। घरमें पिछले वर्षका अन्न भरा है, सो स्वयं खाता है, दूसरोंको भी देता है। अब आप क्या कहना चाहते हैं कि खेतोंमें श्रम करनेका फल उपवास है और बैठे रहनेका फल भरपेट भोजन ?

एक दैनिक मजदूरीपर काम करनेवाला मजदूर भी शामको या सप्ताहान्तमें मजदूरी पाता है। कर्म बहुत ही प्रबल न हो तो वह तत्काल फल नहीं देता और उतना ही फल नहीं देता जितना किया जाय। कर्मका फल किये गयेसे बहुत अधिक होता है, यदि ठीक संयोग मिलते गये। सब संयोग विपरीत हों तो कर्म निष्फल भी हो सकता है। कुछ संयोग मिलें तो अल्प फल दे सकता है। प्रायः पाप-पुण्यका फल इस जीवनमें नहीं मिलता। वह जन्मान्तरमें मिलता है।

कर्मका फल ऐसा कम ही होता है जो कर्मकालमें मिले। फल प्रायः कालान्तरमें ही मिलता है, भले वह काल अत्यल्प हो या बहुत लंबा। आप भोजन बनाते हैं तो थोड़े ही समय बाद खानेके लिये भोजन मिल जाता है। कोई कारखाना लगाते हैं तो कई वर्षमें कारखाना चालू होता है। इमली-जैसे कुछ वृक्ष हैं, जो लगाये जानेपर बहुत लंबे समयमें फल देते हैं। अतः कालान्तरमें फलकी प्राप्ति, यह तो कर्मका स्वाभाविक नियम है।

कर्मफल—देश-काल-पात्रानुसार

आप एक बीज बोते हैं या एक वृक्ष लगाते हैं तो क्या वह एक ही फल देता है ? जितना लगाया जाय, उतना ही मिले तो कोई व्यापार क्यों करे और कारखाने क्यों स्थापित करे। कर्मका दूसरा नियम है कि अनुकूल संयोग मिलते जायँ तो वह अपना सैकड़ोंगुने फल देता है। अवश्य ही अनुकूल संयोग कम हों तो फल कम होता है और सब संयोग विपरीत हों तो बोया बीज भी नष्ट हो जाता है। यही बात धर्म-अधर्मरूप सभी कर्मोंके सम्बन्धमें है।

अनुकूल संयोग क्या ? देश, काल, पात्र तथा कर्ताके भाव एवं कर्म करनेकी विधि—ये सब कर्मफलको प्रभावित करते हैं। जिस खेतमें बीज बोना है, वह उपजाऊ होना चाहिये। वह बंजर हो तो सब अन्य संयोग व्यर्थ जायँगे। इसी प्रकार धर्म या अधर्म कहाँ किया गया, उस स्थानका महत्त्व है। गयामें किया गया श्राद्ध पितरोंको अक्षय तृप्ति देता है। तीर्थमें किया गया दान-पुण्य बहुत अधिक फल देता है और तीर्थमें किया गया पाप भी बहुत अधिक कुफल देता है।

स्थान-देश उपयुक्त हो, इतना ही पर्याप्त नहीं है, काल भी उपयुक्त होना चाहिये। खेत कितना भी उपजाऊ हो, आप मौसमके विपरीत उसमें बीज डालेंगे तो फसल होगी ? इसी प्रकार जिन कर्मोंके जो समय निश्चित हैं, उनमें वह कर्म करनेपर पूरा फल देता है। एकादशी आदि पर्वों को दान, श्राद्धपक्ष एवं श्राद्धतिथिमें श्राद्ध करनेपर उनका फल बहुत बढ़ जाता है। ऐसे ही पुण्यपर्वके दिन पाप करनेसे वह बहुत बढ़ जाता है।

किसके साथ पाप या पुण्य किया गया, इसका उस कर्मके फलपर प्रभाव पड़ता है। चोर-बदमाशको थप्पड़ मारते हैं, आप एक साधारण मनुष्यको चपत लगाते हैं, एक कर्तव्यशील पुलिसवालेको

लगाते हैं और एक न्यायाधीशको चपत लगाते हैं । क्या चारोंको चपत लगानेका दण्ड समान है ? इसी प्रकार एक ही अपराध या एक उपकार किसके साथ किया गया, इसके अनुसार कर्मका फल कम या अधिक है । एक भूखसे मरतेको रोटीका टुकड़ा देनेका अनन्त पुण्य है; किंतु किसी धनीको किसी शिष्टाचारवश या भय-स्वार्थादिके कारण स्वादिष्ट भोजन करानेमें कोई खास पुण्य नहीं है ।

कर्मका फल कर्ताकी परिस्थितिके अनुसार भी कम या अधिक होता है । एक अरबपतिके कुछ सहस्र रुपये दानका वह पुण्य नहीं है, जो एक कंगालके द्वारा किये गये पाँच पैसे दानका है । इसी प्रकार एक व्यक्ति शत्रुतासे हत्या करता है और एक विवश होकर प्राण या धर्म बचानेको हत्या करता है तो दोनोंका अपराध समान नहीं है । दोनों-को समान दण्ड दिया नहीं जा सकता ।

कर्ताका भाव तथा उसकी श्रद्धा फलको प्रभावित करती है । एक भिखारीको झिड़ककर, तिरस्कारपूर्वक, उससे पिण्ड छुड़ानेको आप एक पैसा फेंक देते हैं, यह पुण्य ही नहीं हुआ । वही एक पैसा उसी भिखारीको आप सत्कारपूर्वक, मीठे वचन कहकर श्रद्धासे देते हैं तो आपका पुण्य बहुत बढ़ गया । इसी प्रकार एक व्यक्ति तीर्थ जाता है व्यापार करने, एक जाता है मनोरञ्जन करने, एक जाता है तीर्थयात्रा करने । तीनों वहाँ स्नान-दान-देवदर्शन करते हैं; किंतु तीनोंकी तीर्थयात्राके फलमें बहुत अन्तर होता है ।

आजकल आस्थावान् लोगोंमें भी शास्त्रीय कर्मोंकी विधिके प्रति उपेक्षा हो गयी है । वे कह देते हैं—'हम क्या करें; जितना जानते हैं, उसमें जितना सम्भव है करते हैं । जो विधि हम नहीं जानते, उसका क्या करें ।'

यह बात प्रमाद है । विधिको जानने और उसे ठीक-ठीक पूर्ण करनेका उत्तरदायित्व किसपर है ? कर्तापर । आप खेती करना नहीं जानते और बड़ी श्रद्धा-विश्वाससे उलटे-सीधे ढंगसे खेती करते हैं तो फल क्या होगा ? बहुत विश्वास-श्रद्धा रखकर आप एक रोगीको दवा दें या एक मशीन चलाने लगें; किंतु आपको चिकित्सा-शास्त्र न आता हो, मशीन-के संचालनका ज्ञान न हो तो परिणाम क्या होगा ?

हमको जो काम करना है, उसको करनेकी विधिको ठीक-ठीक जानना और ठीक-ठीक करना—यह हमारा उत्तर-दायित्व है । इसमें 'हम जानते नहीं थे' और 'हमसे इतना ही हो सकता था'—यह बात नहीं चल सकती । आप [illegible] चलाना न जानें तो साग छीलनेमें हाथ कटकर रहेगा; भोजन बनाना न जानें तो रसोई बिगड़कर रहेगी; 'ह[illegible] पास इतना ही नमक था'—यह कहनेसे वहाँ काम च[illegible] वाला नहीं है ।

श्राद्ध, यज्ञ, देवपूजनादि कर्मोंमें सकाम अनुष्ठा[illegible] विधिका अज्ञान तथा क्रिया एवं सामग्रीमें किसी भी क[illegible] त्रुटि होगी तो उनका फल घट जायगा । वे निष्फल [illegible] सकते हैं और कभी-कभी उनसे सर्वथा विपरीत फल प्राप्त होता है ।

अवश्य ही निष्काम भावसे, भगवदर्पणबुद्धिसे [illegible] गया कर्म कभी अनिष्ट फल नहीं देता । वह निष्कामभ[illegible] किया गया है, अतः उसके फलके घटने-बढ़ने या अस[illegible] होनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता । भगवान्‌की या देवता[illegible] की उपासना श्रद्धापूर्वक हो, देवतामें विश्वास हो तो उ[illegible] भी विधि या सामग्रीकी त्रुटिका महत्त्व नहीं रहता; क[illegible] देवता कर्ताकी श्रद्धा पहले महत्त्वपूर्ण मानते हैं ।

यज्ञ, श्राद्ध, सकाम अनुष्ठान, ग्रह-शान्ति आदि [illegible] ऐसे हैं, जिनमें विधिका बहुत महत्त्व है । इनमें क[illegible] विधि जाननी ही चाहिये ।

अनेक कर्मका एक फल

कभी-कभी एक परिणाम उत्पन्न करनेके लिये बहु[illegible] काम करने पड़ते हैं । जैसे खेतसे अन्न उत्पन्न करना [illegible] इसमें खेतको जोतना, बोना, सींचना, घास-फूस निकाल[illegible] खाद देना, रक्षा करना आदि बहुतसे काम करने पड़ते [illegible] इसी प्रकार एक अभीष्टकी पूर्तिके लिये ग्रह-शान्ति, [illegible] पूजन, जप-पाठ आदि कई अनुष्ठान करने पड़ सकते [illegible] योगमें समाधि-सिद्धिके लिये यम, नियम, आसन, प्राणाय[illegible] मुद्रा, प्रत्याहार, धारणा, ध्यानादि बहुत-से काम क[illegible] पड़ते हैं ।

सच तो यह है कि एक फलके लिये अनेक कर्म [illegible] जायँ, यही सामान्य नियम है । संसारके अधिक[illegible] परिणाम ऐसे ही हैं कि उनके लिये कई-कई काम क[illegible] पड़ते हैं । इसी प्रकार पारलौकिक फलोत्पादनमें भी [illegible] फलके लिये कई कर्म करने पड़ते हैं या पड़ सकते हैं ।

एक कर्मके अनेक फल

जैसे अनेक कर्म एक फल उत्पन्न करते हैं, वैसे ही [illegible]

आराध्य-चरणोंमें श्रीहनुमान

कर्म अनेक फल उत्पन्न करता है। आप स्नान करते हैं— इस एक कर्मसे शरीर स्वच्छ होता है, मन प्रसन्न होता है, पूजा-पाठादि करनेकी योग्यता आती है। आप खेतमें खाद डालते हैं तो खेत उर्वर बनता है, खाद जहाँ थी, उस स्थानकी सफाई होती है, आपके शरीरको श्रम होता है। इसी प्रकार धार्मिक-पारमार्थिक कर्म भी एक करने-पर अनेक फल उत्पन्न करते हैं। कोई सच बोलता है तो पापसे—असत्यसे बचता है, समाजमें एक आदर्श उपस्थित करता है, उसका मन शान्त-निर्भय बनता है। कोई सकाम भावसे भी भगवान्‌की पूजा करता है तो उसका चित्त निर्मल होता है, मन भगवान्‌के स्मरणमें लगता है, कम-से-कम उतने समय बुराइयोंसे बचा रहता है; लोकमें आस्तिकता—भगवद्-विश्वास उसके द्वारा फैलता है।

कोई व्यक्ति जैसे समाजमें अकेला नहीं है। हमारा जीवन, हमारे समस्त दैनिक व्यवहार अनेकोंके ज्ञात एवं अज्ञात सहयोगपर निर्भर हैं और हमारे प्रत्येक कार्यका अनेकों-पर प्रभाव पड़ता है, वैसे ही कर्म लौकिक हों या पारलौकिक, अकेले नहीं हुआ करते। प्रत्येक कर्म अपनी पूर्णताके लिये अनेक अन्य कर्मोंपर निर्भर रहता है। उसकी पूर्णतारूप फल वस्तुतः अनेक कर्मोंका फल होता है और कोई कर्म केवल अपना एक ही फल नहीं देता। उसके अनेक फल हुआ करते हैं।

कर्मकी प्रतिक्रिया

कर्मका तीसरा मुख्य नियम है कि उसकी प्रतिक्रिया होती है। जहाँ क्रिया होगी, वहाँ प्रतिक्रिया भी होगी। जितनी बलवान् क्रिया होगी, प्रतिक्रिया भी उतनी ही बलवान् होगी। आप गेंद जितने वेगसे दीवारपर मारेंगे, उतने ही वेगसे वह आपकी ओर लौटकर आयेगी। आप आकाशमें धूल फेंकेंगे तो आपके सिरपर धूलि गिरेगी और पुष्प फेंकेंगे तो पुष्प सिरपर पड़ेंगे।

आप यदि जगत्‌को भलाई दे रहे हैं तो आपको भलाई प्राप्त होगी। भलेके लिये पूरा संसार भला है और बुरेके लिये पूरा संसार बुरा है। आप यदि समाजको बुराई दे रहे हैं तो आपको बुराई मिलकर रहेगी। इसलिये व्यवहार-का नियम यह है—

> श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
> आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

भगवान् व्यास कहते हैं—'धर्मका सर्वस्व सुनो औ इसे सुनकर चित्तमें बैठा लो कि जो बात-व्यवहार दूसरों तुम अपने प्रति नहीं चाहते, वह व्यवहार तुम दूसरों साथ मत करो।'

ऐसा नहीं है कि आप कुछ करेंगे, तभी उसका प्रभा दूसरोंपर पड़ेगा। आप मनमें जो सोचते हैं, उसका प्रभा भी दूसरोंपर पड़ता है। आप किसीको बुरा मानते हैं, किस की बुराई सोचते हैं तो उसके मनमें आपके प्रति उपेक्ष घृणा या द्वेष उत्पन्न होता है। आपके मनका भाव उस यहाँसे प्रतिक्रान्त होकर आपकी ओर लौटता है।

कर्मके लिये प्रकृतिका नियम

कर्मका चौथा नियम है कि जिस शक्तिका—जि इन्द्रियका आप दुरुपयोग करते हैं, वह आपसे छीन जाती है। जो बहुत जिह्वालोलुप हैं, वे यदि आहार संयम नहीं रख पाते तो उनका पेट ऐसा खराब होता कि वे सामान्य भोजनका भी स्वाद नहीं ले पाते और उ पथ्यपर रहना पड़ता है। जो बहुत कामुक हैं, वे अल्पका में ही पुंस्त्व खो बैठते हैं। बहुत सिनेमा देखनेवालों नेत्र-ज्योति क्षीण हो जाती है। यह नियम सभी इन्द्रिये सम्बन्धमें है।

जैसे इस जन्ममें यह नियम सत्य है, पुनर्जन्मके ि भी यही नियम सत्य है। जिन्होंने वाणीका दुरुपयोग लोग को कटुवचन कहनेमें किया, वे गूँगे होकर उत्पन्न होते जो दूसरोंको कुदृष्टिसे ही देखते हैं, वे अन्धे पैदा होते जिन्होंने अपने बलके गर्वमें दूसरोंको सताया है, वे नि तथा रोगी होकर जन्म लेते हैं। जो अपनी बुद्धि सत्य तिरस्कार करनेमें, अच्छे लोगोंको तर्क करके अपमा करनेमें लगाते हैं, वे बुद्धिहीन अथवा पागल उ होते हैं।

इसके विपरीत जो अपनी शक्तिका, अपनी इन्द्रियं सदुपयोग करते हैं, उनकी वह शक्ति जन्मान्तरमें बढ़ है अथवा वे अधिक उच्च योनिमें जन्म लेते हैं। यह नि भी संसारके कर्मक्षेत्रके नियमके समान ही है। यहाँ भी ज कर्मचारी अपने पद-अधिकारका दुरुपयोग करता है, उ पदावनति होती है अथवा उसे पदच्युत कर दिया ज है। जो अपने पद-अधिकारका ठीक-ठीक सदुपयोग करत उसे पदोन्नति प्राप्त होती है।

कर्मफल यहाँ कितना ? परलोकमें कितना ?

जितना फल मिलता है, वह सब पूर्वजन्मके ही कर्मका फल है और इस जन्मके कर्मका इस जन्ममें कुछ फल होता ही नहीं, ऐसी बात नहीं है। कर्मके स्थूल अंशका स्थूल फल इसी जन्ममें मिलता है। बहुत कर्म ऐसे हैं कि उनका दृष्ट इहलौकिक फल ही होता है। पारलौकिक फल उनका कुछ नहीं होता। कुछ कर्म कोई दृष्ट फल नहीं देते। उनका अदृष्ट फल ही होता है। कुछ कर्म उभयात्मक होते हैं। उनका कुछ फल इस लोकमें होता है, कुछ परलोकमें।

आप कहीं जानेके लिये चलते हैं और वहाँ पहुँच जाते हैं। आप भोजन करते हैं और उससे भूख मिट जाती है। आप दूध आदि पौष्टिक पदार्थ खाते हैं और इससे शरीर पुष्ट होता है। यह सब कर्म केवल लौकिक फल देनेवाले हैं। इन लौकिक कर्मोंको भी पारलौकिक फल भी देनेवाला बनाया जा सकता है। अपना लौकिक फल तो वे देंगे ही। ऐसा करनेमें केवल मनका भाव परिवर्तन करना पड़ता है। आपको कहीं जाना है। अब आप सोचते हैं कि पृथ्वी तो भगवान्‌की पत्नी हैं, अतः मेरी माता हैं। मैं माताकी गोदमें टहल रहा हूँ। अब यह यात्रा पुण्यप्रद हो गयी। इसने हृदयशुद्धि प्रारम्भ कर दी। आप भोजन बनाकर उसे भगवान्‌को अर्पित करते हैं और भगवत्प्रसाद मानकर खाते हैं तो भूख मिटन पुष्ट होना तो होगा ही, हृदयकी शुद्धि भी ह प्रकार भाव-परिवर्तनमात्रसे प्रत्येक लौकिक कर्मको फल भी देनेवाला बनाया जा सकता है।

श्राद्ध-तर्पणादि केवल पारलौकिक फल देने हैं। प्रत्यक्ष फल इनका नहीं है। प्रत्यक्षमें तो लो कर्मोंमें समय, सामग्री और श्रमका व्ययमात्र दीखत

बहुत कर्म ऐसे हैं कि उनका लौकिक-पारलौकि फल प्राप्त होता है। जैसे आप भूखेको भोज तो समाजमें एक व्यक्तिकी जीवनरक्षा होत आप चाहें या न चाहें, कम-से-कम उसक आपका मान बढ़ जाता है। दानका पुण्य तो प्राप्त ही हुआ। आप मन्दिरमें जाकर पूजा कर वहाँकी शान्ति-सुरभि आदि आपके चित्तको शरीरको तो सुख-स्वास्थ्य देती ही है, आपको पूज भी प्राप्त होता है।

एक मित्र सूर्य-नमस्कार करते थे—मन्त्रोंके उनके शरीरको व्यायाम करनेका लाभ तो होता भगवान् सूर्यके प्रति श्रद्धा एवं आराधनाका पुण्य भ प्राप्त होता था।

इस प्रकार कर्मका लौकिक-पारलौकिक दोनों ह होता है।

कर्मफलभोगमें परतन्त्रता

कर्मबन्धनमें जकड़ा हुआ यह अखिल जगत् परिवर्तनशील तो है ही, जीवको नीच योनियोंमें भी जाना है। यदि जीव कर्मपरतन्त्र न होकर स्वतन्त्र होता तो यह परिस्थिति सामने क्यों आती। भला, स्वर्गमें रहने और प्रकारके सुख भोगनेकी सुविधाको छोड़कर विष्ठा एवं मूत्रके भण्डारमें भयभीत होकर रहना कौन चाहता है ? त्रिल गर्भवाससे बढ़कर दूसरा कोई नरक नहीं है। गर्भवाससे भयभीत होकर मुनिलोग कठिन तपस्यामें तत्पर हो जाते गर्भमें कीड़े काटते हैं। नीचेसे जठराग्नि ताप पहुँचाती है। निर्दयतापूर्वक बँधे रहना पड़ता है। गर्भसे बाहर नि समय भी वैसे ही कठिन परिस्थिति सामने आती है; क्योंकि निकलनेका मार्ग जो योनियन्त्र है, वह स्वयं दारुण है। बचपनमें नाना प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं। विवेकी पुरुष किस सुखको देखकर स्वयं जन्म लेनेकी इच्छा कर हैं; परंतु देवता, मनुष्य एवं पशु आदिका शरीर धारण करके किये हुए अच्छे-बुरे कर्मका फल अवश्य ही भोगना प है। तप, यज्ञ और दानके प्रभावसे मनुष्य इन्द्र बन सकता है और पुण्य समाप्त हो जानेपर इन्द्र भी धरातलपर आते हैं इसमें कोई संशय नहीं है। (महर्षि व्यास)

कर्मविपाक-मीमांसा

(लेखक—डा० श्रीशान्तिप्रकाशजी आत्रेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

'निष्काम कर्म' तथा 'सकाम कर्म' भेदसे कर्म दो के होते हैं। निष्काम कर्म रागरहित कर्म होते हैं। कर्मोंके द्वारा बन्धनकी उत्पत्ति नहीं होती है। अतः के द्वारा जाति, आयु, भोग—ये तीनों ही प्राप्त नहीं । निष्काम बुद्धिसे किया हुआ कर्म आगे सांसारिक बन्धन पैदा नहीं करता।

सकाम कर्मके द्वारा ही जाति, आयु और भोग—ये नों प्राप्त होते हैं। इन कर्मोंके द्वारा ही व्यक्ति एक शेष स्थान, कुल, वातावरण, जाति एवं शरीरको प्राप्त ता है। शरीरको 'भोगायतन' कहा गया है। सत्य तो है कि कर्मके द्वारा शरीर प्राप्त होता है और साथ-ही-थ यह भी सत्य है कि शरीरके द्वारा कर्म होते हैं। संसार यं कर्म-जाल है। इसकी उत्पत्ति आदि सब प्राणीके मोंके ऊपर आधारित है। कर्मोंको भोगनेके हेतु देहकी आवश्यकता होती है। शरीरके बिना कर्म और भोग दोनों नहीं होते। शरीरके द्वारा चार प्रकारके कर्म होते हैं—

(१) **शुक्ल** (पुण्य या धर्म)।
(२) **कृष्ण** (पाप या अधर्म)।
(३) **शुक्ल-कृष्ण** (पुण्य-पापमिश्रित)।
(४) **अशुक्ल-अकृष्ण** (न पुण्य, न पाप)।

जिन कर्मोंसे अपना-पराया किसीका अहित नहीं होता, किसी प्राणीको कष्ट प्राप्त नहीं होता, बल्कि परहित अर्थात् दूसरोंको सुख पहुँचता है, वे कर्म ही 'शुक्ल कर्म' कहे जाते हैं। इन कर्मोंसे धर्मरूप कर्माशय उत्पन्न होते हैं। इन धर्मरूप कर्माशयोंसे कर्त्ताको सुख प्राप्त होता है। इन कर्मोंके फलभोगके अनुसार वासनाओंकी उत्पत्ति होती है; इसी कारण कर्म-फल भोगनेके लिये ऐसे व्यक्तियोंको भी जन्म लेना पड़ता है। ये भी संसारचक्रमें डाले रखनेवाले कर्म हैं। समाजके लिये अकल्याणकारी अर्थात् असामाजिक कर्म जिनके द्वारा दूसरोंका अहित होता है तथा प्राणियोंको कष्ट होता है, वे कर्म 'कृष्ण कर्म' कहलाते हैं। इस प्रकारके कर्म करनेवालेको 'पापी' कहते हैं। ये अधर्मरूप कर्माशयको उत्पन्न करनेवाले कर्म हैं, जिनसे कर्त्ता इनके फल भोगनेके लिये उसके अनुरूप जन्म ग्रहण करता है। अधर्मरूपी कर्माशयके फलस्वरूप कर्त्ताको दुःख भोगने पड़ते पापकर्म भी व्यक्तिकी मनोवृत्तिसे प्रभावित होते हैं, कि निश्चितरूपसे फल भुगवाते हैं और प्राणीको संसार-डाले रहते हैं।

सामान्यरूपसे साधारण व्यक्तिके कर्म पाप-पुण्या होते हैं। ऐसे व्यक्तियोंके द्वारा समाजमें किसीका होता है, जिसके फलस्वरूप उसको दुःख प्राप्त होता है किसीका हित होता है, जिसके फलस्वरूप उसको सुख होता है। इस प्रकार कर्मोंके फलोंके अनुरूप गुणोंवाली वा उत्पन्न होती हैं और उनके अनुसार ही प्राणी जाति, और भोग प्राप्त करता है और सुख-दुःखादि फल है। इन वासनाओंके द्वारा कर्ममें प्रवृत्ति होती है और कर्मके द्वारा वासनाएँ बनती हैं। इस रूपसे पुण्य-पापी कर्मोंवाले प्राणियोंको उनकी मनोवृत्तियोंके कारण सुख-रूपी कर्म-फल प्राप्त होते रहते हैं।

वासनामय कर्म अर्थात् रागपूर्ण कर्म ही प्राणि निरन्तर संसार-चक्रमें घुमाते रहते हैं। सत्य तो य कि वासनामय कर्म ही संसार है। इनके बिना संसा समाप्त हो जाता है। कर्म स्वयंमें फल प्रदान करनेकी नहीं रखते। यह तो कर्ताकी मनोवृत्ति ही फल करती है।

जो कर्म फलोंकी आशासे रहित होते हैं, उन नि कर्मोंको 'अशुक्ल-अकृष्ण कर्म' कहते हैं। ये कर्म कि मनोवृत्तिसे नहीं किये जाते। भावनाओंसे प्रेरित हो किये जानेके कारण इनसे धर्म-अधर्मरूप कर्माशय उत्पन्न होते और इसी कारण कर्मोंका फल भी प्राप्त नहीं ह योगी लोग इसी प्रकारके कर्म करते हैं। लगाव ही बन्ध कारण है। वासनारहित कर्म धर्म-अधर्मरूप नहीं ह कर्मोंको किये बिना तो प्राणीका शरीर नहीं रहता। व प्रवृत्त करनेवाले अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवे ये पञ्चक्लेश नहीं होने चाहिये। केवल कर्तव्यके कर्म करने चाहिये। आत्मसंतुष्ट व्यक्तिके लिये उ कोई भी कार्य नहीं रह जाता। उसके जितने कार्य हे वे सब वासनारहित होते हैं। उसके सारे कार्य ईश्वर

नके कार्य होते हैं। वह अज्ञानीकी तरह अपनेको करनेका अभिमानी कर्ता समझकर उनमें आसक्त होता। इसी कारण वह समस्त कर्मोंको करते हुए भी प्त रहता है[1]। सुख-दुःख, पाप-पुण्य सचमुचमें को छूकर भी नहीं जाते; क्योंकि यह तो त्रिगुणात्मक की ही देन हैं और अज्ञानके कारण निर्विकार, शुद्ध र आत्माको त्रिगुणात्मक शरीरसे बाँधते हैं। उस के कारण आत्मा अपनेको सीमित, सुखी, दुखी, एवं भोक्ता समझने लगता है। इन त्रिगुणोंके अहंकार उत्पन्न होता है। यह अहंकार जब ज्ञानके समाप्त हो जाता है, तब कर्म करनेका अभिमान भी हो जाता है और इस कर्म करनेके अभिमानके होनेपर कर्म फल-प्रदान करनेकी शक्तिसे हीन हो हैं[2]। इस रूपसे यह स्पष्ट है कि शुक्ल, कृष्ण तथा कृष्णमिश्रित कर्म क्रमसे धर्म, अधर्म तथा धर्माधर्म-कर्माशयोंको पैदा करनेके कारण प्राणीको जन्म-मरण-संसारके चक्रमें घुमाते रहते हैं; किंतु इसके विपरीत म कर्म अर्थात् अशुक्ल-अकृष्ण कर्म वासनारहित कारण कर्मबन्धनको उत्पन्न नहीं करते।

सामान्य सांसारिक व्यक्ति अपने सब दुःख-सुख के अधीन बतलाने लगते हैं। उन बेचारोंको यह हीं है कि सचमुचमें भाग्य उनके पूर्वके कर्मोंद्वारा होता है। वर्तमान कर्म भविष्यके भाग्यको बनाने-होते हैं। पुरुषार्थके द्वारा व्यक्ति अपने भाग्यका करता है। किये हुए पुरुषार्थ अथवा कर्मोंके प्राप्तिका नाम ही 'भाग्य' है। पूर्वकृत कर्मके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। कहनेका तात्पर्य यह है कि स्वयं अपने भाग्यका विधाता है। वर्तमान शुभ कर्मोंके पूर्व कालके अशुभ कर्मोंपर विजय प्राप्तकर अशुभ कर्मों-लको शान्त किया जा सकता है[3]; किंतु यह ते हुए भी शुभ और अशुभ कर्म दोनों ही संसार-चक्रको चलानेवाले कर्म हैं और प्राणीको सुख-दुःखरूप भोग भुगवाते रहते हैं। मानव-शरीरकी यही विशिष्टता है कि वह अपने पूर्वकर्मोंका भी भोग भोगता है और साथ ही नवीन कर्म करनेमें स्वतन्त्र है। वह संसारके बन्धनसे छुटकारा भी प्राप्त कर सकता है। अतः सत्पुरुषार्थके द्वारा मनुष्यको मोक्ष-प्राप्तिकी ओर अग्रसर होकर संसार-सागरसे पार उतरना चाहिये।

मानवको संसारबन्धनमें बाँधनेवाले कर्म 'अविद्या-मूलक कर्म' कहे जाते हैं। उपर्युक्त शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण—ये तीनों कर्म अविद्यामूलक हैं। इनके अतिरिक्त 'अशुक्ल-अकृष्ण कर्म' ही अक्लिष्ट कर्म हैं, जिनके द्वारा व्यक्ति जन्म-मरणके प्रभावसे बच जाता है।

प्राणीके ऊपर जन्म-जन्मान्तरोंके कर्मोंकी छाप पड़ी होती है। ये संस्कार और वासनाओंके रूपमें अज्ञातरूपसे विद्यमान रहते हैं। चित्तकी वृत्तियोंके अनुरूप चित्तमें पड़ी छाप-को ही 'संस्कार' कहते हैं। संस्कार ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक—तीन प्रकारके होते हैं। इनके अतिरिक्त पूर्वजन्म तथा जन्मसे पूर्व गर्भावस्थाके संस्कार भी होते हैं, जिनकी वृत्तियोंसे हमारी वासनाएँ होती हैं और वे ही हमारी रुचियों और प्रवृत्तियोंको बनाती हैं। योगके द्वारा चित्तके समस्त संस्कारोंका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है तथा ज्ञान प्राप्त करके उनसे मुक्त हुआ जा सकता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—शुभ-अशुभ कर्म धर्माधर्मरूपी कर्माशयों-को उत्पन्न करते हैं, जिनके द्वारा जन्म, आयु और भोग प्राप्त होते रहते हैं। आत्मा अनादिकालसे संसार-चक्रमें पड़ा है तथा अनन्त जन्मोंमें भ्रमण करता आ रहा है। जब-तक इन समस्त व्युत्थान-संस्कारोंको निरोध-संस्कारसे समाप्त नहीं कर दिया जायगा, तबतक जन्म-मरण-से छुटकारा प्राप्त नहीं हो सकता; क्योंकि ये सब वासनारूपसे हमारे चित्तमें विद्यमान रहते हैं। कर्माशय भी कई प्रकारके होते हैं। कुछ कर्माशय इसी जन्ममें फल देने-वाले होते हैं, कुछ दूसरे जन्ममें तथा कुछ इस प्रकारके कर्माशय होते हैं, जो इस जन्ममें भी तथा अग्रिम जन्ममें भी फल देते हैं। उग्र कर्मोंके द्वारा तत्काल फल प्राप्त होता है। उग्र पुण्यकर्म तथा उग्र पापकर्म (दुःखीको सताना, विश्वासघात तथा तपस्वियोंको कष्ट पहुँचाना) दोनों ही तुरंत वर्तमान जीवनमें फल प्रदान करते हैं। उग्र पुण्योंके कारण नहुषने इन्द्रत्व प्राप्त किया था। गाय-ही-

[1] श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ५। १०, ११, १२।

[2] श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १४। ५ से ९ तक।

[3] योगवासिष्ठ २। ७। २१, २। ९। ४, २। ९। ६, २। -६, २। ६। ४, २। ६। ३—५, २। ६। २, २। ६। , १। ५७। २९, २। ६। १८, २। ६। ३९, २। ५। ५। २५, २। ५। ११।

साथ ऋषियोंको लात मारनेके उग्र पापसे सर्पयोनिको प्राप्त हो गये। शिलाद मुनिके पुत्र नन्दीश्वरकुमारका मनुष्यशरीर शिवजीकी उग्र पूजा आदिसे देवशरीरमें परिवर्तित हो गया था अर्थात् उसने देवत्व प्राप्त किया था।

हिंदू सनातन-धर्ममें कर्मके विषयमें बड़े सुन्दर ढंगसे विवेचन किया गया है। कल्याणकी इच्छावालोंको शास्त्राभिमत कर्मोंका आचरण करना चाहिये तथा शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंका निश्चितरूपसे त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि कर्म सूक्ष्मरूपसे सदैव विद्यमान रहते हैं। वे संस्काररूपसे चित्तमें रहनेके कारण बिना भोगे नहीं रहने देते। ये कर्माशयरूपी संस्कार फोटोग्राफकी नेगेटिव प्लेटकी तरह वा टेप रिकार्डकी तरहसे हैं। अतः जबतक चित्तमें संस्कार स्थित हैं, तबतक उन्हें भोगनेके लिये निश्चितरूपसे जन्म लेना ही पड़ेगा। संस्कारोंको समाप्त करनेके लिये योगमें बतायी गयी विधियोंसे अभ्यास करना चाहिये; क्योंकि अभ्यासके द्वारा संस्कार दग्धबीज हो जाते हैं और कर्मफल प्राप्त नहीं होता। सारे संसारका खेल इन संस्कारोंके ऊपर है। ये जब समाप्त हो जाते हैं तो संसार भी समाप्त हो जाता है। इन संस्कारोंका जाल बड़ा विचित्र है। चित्तके जन्म-जन्मान्तरोंके अनन्त कर्मोंके अनन्त संस्कारोंमेंसे कुछ संस्कार प्रबलरूपसे जागते हैं और कुछ मध्यमरूपसे। जो संस्कार प्रबलरूपसे जागते हैं, उनको 'प्रधान' कहा जाता है। दूसरे 'उपसर्जन' कहलाते हैं। मृत्युके समय प्रधान संस्कार जाग्रत् होकर पूर्वजन्मके समस्त अन्य समान संस्कारोंको जाग्रत् कर लेते हैं, जिससे कि उन कर्माशयोंके अनुकूल फल-भोग प्राप्त करनेके लिये अग्रिम जन्म तथा आयु निश्चित होती है। जिस जातिमें जन्म होता है, उस जातिके पूर्वके समस्त जन्मोंके संस्कार उदय हो जाते हैं और उन्हींके अनुकूल भोग प्राप्त होता है। अन्य जातियोंके समस्त संस्कार सुप्तावस्थामें रहते हैं। जिस प्रकार बीजमें वृक्ष विद्यमान होता है, किंतु उसका प्रत्यक्ष नहीं हो पाता; उसी प्रकारसे सम्पूर्ण कर्म संस्काररूपसे प्राणीके चित्तमें विलीन रहते हैं और अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण अज्ञानी पुरुष उनका स्मरण भी नहीं कर पाते; किंतु वे देश-कालकी अनुकूलता प्राप्तकर यथाशक्ति और यथायोग्य फल प्रदान करते हैं[1]। कर्म संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण-भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। जो कर्म केवल संस्काररूपसे विद्यमान होते हैं और उनके फल भोगनेकी अवधि नहीं आयी है, ऐसे अनन्त जन्म-जन्मान्तरों 'संचित कर्म' कहते हैं। कर्माशयके अनन्त कर्म कर्मोंको भोगनेके लिये हमें वर्तमान जाति और हुई है, उन कर्मोंको 'प्रारब्ध कर्म' कहते हैं। इस जन्म इच्छासे संग्रह किये हुए कर्मोंको 'क्रियमाण कर्म' क्रियमाण कर्मोंके द्वारा नवीन संस्कारोंकी उत्पत्ति होत पूर्वके कर्माशयोंमें वृद्धि होती है। क्रियमाण कर्मोंमेंसे ऐसे होते हैं, जो संचित कर्मोंमें मिश्रित होकर सु पहुँचकर विपाक होनेपर कभी अग्रिम जन्मोंमें फल कुछ इस प्रकारके भी उग्र क्रियमाण कर्म होते हैं, जो इ प्रारब्ध कर्मोंके साथ मिश्रित होकर फल प्रदान प्रधान कर्माशयोंको अर्थात् प्रारब्ध कर्मोंको भोग प्राणीको एक निश्चित आयु मिलती है। प्राणी प्रारब्ध फल भोगकर ही मरता है। इन कर्मोंके द्वारा ही जाति, आयु और भोग निश्चित होते हैं। इसी यह 'नियत विपाक कर्म' कहे गये हैं। योगमें इन्हें 'दृ वेदनीय' कहा है। इन कर्मोंको भोगनेसे ही प्राणी नहीं मिल जाती, किंतु उसे तो संचित कर्मोंमेंसे विपाक होनेवाले कर्मोंको भोगते रहना पड़ता है। क निरन्तर क्रियमाण कर्मोंके मिश्रित होनेसे क की वृद्धि इतनी अधिक होती चली जाती है कि निरन्तर जन्म ग्रहण करके भी भोग समाप्त नहीं संचित कर्मोंके संस्कार सुप्तावस्थामें रहते हैं। अत 'उपसर्जन' कहते हैं। इन कर्मोंका फल निश्चित न इन्हें 'अनियत विपाक' कहते हैं। इन कर्मोंको बिन साधारण प्राणी नहीं बचता; किंतु फिर भी इनके भ फल निश्चित न होनेसे इन्हें योगमें 'अदृष्ट जन्मवे कहा है। ये संचित कर्म योगियोंके द्वारा दग्धबीज जानेपर ही अग्रिम जन्मोंको उत्पन्न नहीं करते और चक्रसे सदैवके लिये छुटकारा प्रदान कर देते हैं; योगियोंके क्रियमाण कर्म होते ही नहीं, इन्हें तो प्रारब्ध कर्मोंको ही भोगना पड़ता है।

वासनाओंके दग्धबीज होनेपर ही मुक्तावस्था प्राप्त है। समस्त संचित कर्म दग्धबीज हो जानेपर भी व्य प्रारब्ध कर्मोंका फल भोगे बिना छुटकारा प्राप्त नहीं ह यह अवस्था योगीकी जब हो जाती है तो उसे 'जीव अवस्था' कहते हैं। उसके लिये न कुछ हेय है, न उपा साधारण मनुष्यकी तरह भोग करते हुए भी वह स

१. श्रीसंन्यास गीता, अध्याय ४। ७-१३।

वासनाओंसे रहित रहता है । उसके समस्त व्यवहार अनासक्त भावसे होते हैं । उसके लिये भोग और त्याग समान है । सदैव समभावसे स्थित रहनेवाला जीवन्मुक्त व्यक्ति अलिप्त होकर समस्त सांसारिक कर्मोंको अन्य व्यक्तियोंकी तरहसे ही करता है । अहंभाव तो उसको उदय होता ही नहीं । हर काममें लिप्त प्रतीत होता हुआ भी सब कार्योंसे विरक्त होता है । निन्दा और स्तुतिका उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं होता । वह राग-द्वेषरहित होता है । बाह्य व्यवहारमें वह अज्ञानियोंके समान ही रह सकता है । वह सदैव शान्त, अविचलित, अहंकाररहित, काम-क्रोध-लोभ-भ्रम आदिसे रहित मन, बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियादिको किसी भी कालमें अपना न समझनेवाला होता है ।' वह स्वाभाविक रूपसे ही नैतिक होता है । उसके व्यवहार आदर्श होते हैं । उसके लि समान है । वह सबका प्रिय और सबका मित्र है । अ व्यस्त दीखते हुए भी भीतरसे एकदम शान्त रह उसका मन, शरीर, इन्द्रिय आदिपर पूर्ण नियन्त्रण रह वास्तविकरूपसे उसीका पूर्ण स्वस्थ एवं सुखी जीव प्रारब्ध-भोग समाप्त हो जानेपर ऐसा व्यक्ति शरीरको त्य जीवन्मुक्त अवस्थासे 'विदेहमुक्त' अवस्थाको प्राप्त है और सदैवके लिये संसार-चक्रसे मुक्त हो जाता है विदेह अवस्थामें किसी भी कर्म (संचित, क्रियमाण, प्र के संस्कार शेष नहीं रह जाते । यही मानवका परम है, जिसकी प्राप्तिके लिये अनेकानेक मार्ग शास्त्रोंमें गये हैं तथा सम्पूर्ण योगशास्त्रका मार्ग भी इस अव प्राप्तिके लिये ही है ।

भगवद्भक्ति और पुनर्जन्म

(लेखक—श्री के० वा० भातखडे, बी० ए०, बी० टी०)

जे या भक्तिची घेतुली प्रीति ।
जे कैवल्याते पर् हा सर म्हणती ॥
(श्रीज्ञानेश्वर)

पंढरीचा वास चंद्रभागे स्नान आणिक दर्शन विठोबाचें ।
हेंचि मज घडो जन्मेंजन्मांतरी ।
मागणें श्रीहरी नाहीं दुजे ॥
(नामदेव)

आम्ही सुखें गर्भवास घेऊँ देखा ।
मुक्तिचिया मस्तका पाय देऊँ ॥
(एकनाथ)

गर्भवासीं दुःख नाहीं येतां जातां ।
हृदयीं असतां नाम तुझें ॥
(तुकाराम)

योगिराज श्रीज्ञानेश्वर 'भक्तिकी प्रीतिमें कैवल्यका तिरस्कार करते हैं ।' भक्त नामदेव श्रीहरिसे केवल यही चाहते हैं कि 'मुझे जन्म-जन्मान्तरमें पंढरीमें निवास, चन्द्रभागाका स्नान और विठोबाका दर्शन मिलता रहे ।' श्रीएकनाथ महाराज 'मुक्तिको पददलितकर भक्तिके लिये सुखपूर्वक गर्भवास स्वीकार' करते हैं और संत तुकाराम भगवान्से कहते 'हृदयमें तुम्हारा नाम रहे, फिर गर्भवासमें आने- कोई दुःख नहीं है ।'

'भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।'

—इस नास्तिक चार्वाक-तत्त्वको वैदिक धर्मने कभी नहीं किया । ईश्वर-प्राप्तिके अनेक साधन (सा अनेकता) और अनेक मार्ग वैदिक धर्मके द्वारा दिख हैं । किंतु ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग ईश्वर-प्राप्तिके चार प्रमुख मार्ग हैं । आत्मचिन्तनपर शा अष्टाङ्गादि ध्यानयोग, निष्काम कर्मयोग—ये मार्ग म मुक्ति-पदपर अग्रसरकर उसको ईश्वर-प्राप्तिका अ करते हैं, यह तो सत्य है; किंतु भगवत्-स्मरणसे युक्त प्रेममय भक्तियोगमें इन सबकी अपेक्षा विशेषता है ।

मुक्तिका अभिप्राय है—भवबन्धनसे छुटकारा परमात्माके साथ एक रूप हो जाना । मुक्ति यानी अ परमात्माके साथ एकरूपता—यही मुक्ति है । भगवत् भरा हुआ भक्त इस महान् मुक्तिका निषेध करत

१. तेजोबिन्दूपनिषद् ४ । १ । ३२; 'योग-मनोविज्ञान' अध्याय २४ ।
(डा. शान्तिप्रकाश आत्रेय, संचालक ग्रामविद्यापीठ, सरस्वतीनगर उ. प्र.)

भक्त इस मुक्तिको अस्वीकार क्यों करता है ? मुक्ति प्राप्त होनेपर भक्त परमात्मा बनेगा और परमात्मा बननेपर भक्तको इष्टदेवकी प्रेममयी और आनन्द देनेवाली सेवासे वञ्चित होना पड़ेगा । भगवत्सेवाकी लगन बड़ी मधुर तथा अपार आनन्दमयी होती है । मुक्तिमें इस सेवाके लिये अवसर नहीं । इसीलिये तो भक्त मुक्तिका तिरस्कार करता है । भ्रमरको मकरन्दका बड़ा शौक होता है । यदि भ्रमर स्वयं ही मकरन्द बन गया तो वह मकरन्दके माधुर्यका अनुभव कैसे कर सकेगा ? भगवत्सेवाका दिव्यतम मधुर सुख निरन्तर लूटनेको मिले, इस प्रेममय भूमिकामेंसे ही भक्त मुक्तिका निषेध करते हैं ।

तुकाराम महाराज भगवान्से स्पष्ट कहते हैं—

'मोक्ष तुमचा देवा, ठेवा तुमचे पाशी ।
मज भक्तीची आवडी ।'

'भगवन् ! आप अपना मोक्ष अपने पास ही रक्खें । मुझे तो भक्ति प्रिय लगती है ।' यह प्रेममय भक्तिरस मुक्तिकी महत्ताको सम्पूर्णतया कम कर देता है । श्रीमधुसूदन सरस्वतीजी भक्तिके लक्षण बतलाते समय 'मोक्षलघुताकृत'-जैसे मार्मिक शब्दकी योजना करते हैं ।

भक्ति-सुख उत्तरोत्तर बढ़नेवाला सुख है । सच्चा भक्त भक्तिसे कभी ऊब नहीं सकता । उसको नित्य नया आनन्द भक्तिसे मिलता रहे, यही तो भक्तकी उत्कट इच्छा होती है ।

तुकाराम महाराज एक अभंगमें कहते हैं— 'भगवान्के सेवा-सुखमें जो आनन्द है, वह मोक्षावस्थामें नहीं ।' भागवत-माहात्म्यमें कहा है—

'सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ।' (४ । ८०)

पवित्र-मङ्गलमय हरिनामको इस भक्तिधर्ममें बहुत ऊँचा स्थान है । हरिनाम-संकीर्तनका माधुर्य अमृतसे भी बढ़कर है और अपूर्व है । इस नामामृतकी मधुरताको वैष्णव निरन्तर चखते रहते हैं । भक्तिरसयुक्त ऐसे नामामृतके माधुर्यका आस्वादन करनेके लिये कमल-मुखकी आवश्यकता है (राम-भजनको दिया कमल-मुख) । कमल-मुखके लिये रूप चाहिये । रूप चाहिये—देह चाहिये । देहके लिये जन्म भी चाहिये । भक्तिसुखका मीठापन निरन्तर प्राप्त हो, इस लिये भक्त ईश्वरसे पुनर्जन्मकी इच्छा करते हैं । गर्भवासके भारी दुःख वे सहनेको तैयार हैं; क्योंकि उनको भक्तिसुखके महान् माधुर्यका बड़ा भारी आकर्षण है । अतः ज[...] मृत्युकी परम्पराका कष्ट सहनेको वे सहजसे प्रस्तुत [...] ऐसा अटूट भक्ति-प्रेम प्राप्त हो, यह उनके मनकी उ[...] अभिलाषा है ।

भक्ति-सुखकी उत्कट इच्छाकी भूमिकामें भक्ति[...] पुनर्जन्मको स्वीकार करता है । अपुन[...]की इच्छाको उ[...] भक्तिमें जरा भी स्थान नहीं है । भक्ति-सुख लूटनेके [...] हमें पुनः-पुनः जन्म प्राप्त हो—उत्तम देह मिले—[...] अपूर्व दृष्टिकोण भगवद्भक्तोंका है ।

तुकाराम महाराजने जीवनभर भगवद्भक्ति क[...] उनको भक्तिका बहुत बड़ा शौक था । वे नि[...] पूर्वक भगवान्से कहते हैं—

'घेईन मी जन्म याजसाठी देवा । तुझी चरणसेवा साधावया[...]

'भगवन् ! तुम्हारी चरणसेवाके लिये मैंने जन्म-[...] किया है ।'

पूर्वके युगमें भी वे बड़े भक्त थे । महाराष्ट्रके भक्त[...] मान्यता है कि अति पूर्वकालमें वे 'प्रह्लाद' थे । रामाव[...] वे रामभक्त 'अङ्गद' थे । फिर श्रीकृष्णाव[...] आपने 'उद्धव' रूपमें भक्तिका आनन्द लूटा था । उ[...] कलियुगमें ज्ञानदेवके समय नामदेवकी भूमिकामें भक्ति[...] सेवन किया । इन्हीं नामदेवने आगे चलकर तुकार[...] रूपमें जन्म लिया । इस प्रकार तुकारामजीने युगों-[...] भक्ति की । उनकी भक्तिकी रुचि कभी कम नहीं हुई । ये हरिप्रेममें रँगे रहनेवाले भक्त भक्ति-प्रेम-सुखकी प्रा[...] लिये बार-बार जन्म लेते हैं—नयी-नयी देह धारण करते[...]

हालमें ही वैकुण्ठवासी हुए ह० भ० प० गु[...] सोनोपंत दांडेकरजी अस्वास्थ्यके कारण व्यासपी[...] बैठकर कीर्तन करते थे । कीर्तन-सेवा ईश्वरके आगे रहकर करनेकी सेवा है ।

'रंगी रंगे नारायण, उभा करितो कीर्तन ।' —तु[...]

खड़े न होकर कीर्तन करनेकी स्थिति न होनेसे वे दुः[...] रहते थे और ईश्वरसे प्रार्थना करते थे—'हे ईश्वर ! ऐसा स्वास्थ्य दो कि मैं खड़ा होकर कीर्तन कर सकूँ ।' [...] अन्तःकरणमें भक्तिकी बड़ी उत्कट इच्छा जाग्रत् [...]

ज्ञान, ध्यान, कर्म आदि सब मार्ग मोक्षतक जा सकते हैं; किंतु भक्ति मोक्षके भी उस पार जाती है और फिर भी शेष रह जाती है। भक्तिका फल भक्ति ही है।

'स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमारः।' ऐसा वचन नारदसूत्र (३०) में कहा गया है। भक्ति फलरूपा होनेसे मोक्षसे भी उच्चतर है। इसीलिये शास्त्रमें भक्तिको 'पञ्चम पुरुषार्थ' कहा है। ऐसी भक्ति युगोंतक पुनः-पुनः मिलती रहे, इसके लिये भक्त पुनर्जन्मका मीठा सहारा लेते हैं।

'आत्माराम मुनिगण' भी भक्ति-सुखकी प्राप्तिके लिये फिरसे जन्म लेते हैं। भक्ति-सुखका युगोंतक नि आस्वादन करनेका प्रमुख साधन 'पुनर्जन्म' है और साधनको भगवद्भक्त निरन्तर अपनाते हैं।

तुकाराम महाराज कहते हैं—

हेची व्हावी माझी आस
जन्मोजन्मीं तुझा दास॥
मोक्षपद. तुच्छ केले या कारणें
आम्हां जन्म घेणें युगायुगी॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

भगवत्प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता

(लेखक—आचार्य श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय, एम्० ए०, साहित्याचार्य, शिक्षा-शास्त्री, तीर्थद्वय, रत्नद्वय)

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने।
तथापि तत्परा राजन् न हि वाञ्छन्ति किंचन॥
(श्रीमद्भागवत १०। ३९। २)

'श्रीनिकेतन प्रभुके प्रसन्न हो जानेपर इस विश्वमें कुछ भी अलभ्य नहीं है; किंतु फिर भी भगवदीय जन अपने प्रभुको छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं चाहते।'

मुक्तिका व्युत्पत्तिलभ्य साधारण अर्थ है—सभी प्रकारके दुःखों, बन्धनों, इच्छाओं और वासनाओंसे छुटकारा पाना। (**मोक्षयति, मोक्षति** अथवा **मोक्ष्यते दुःखमनेन**) किंतु यह एक पारिभाषिक दार्शनिक शब्द है, जिसका अर्थ है—सदा-सदाके लिये जन्म-मरण '**पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।**' के दुःसह-दुःखपूर्ण बन्धनसे मुक्त हो जाना। दूसरे शब्दोंमें निरतिशय दुःखकी निवृत्ति जन्म-मरणके प्रवाहसे मुक्त हो जानेपर ही सम्भव है।

मुक्ति, कैवल्य, निर्वाण, निःश्रेयस, अमृत, मोक्ष, अपवर्ग आदि मुक्तिके अनेक नाम हैं (अमरकोश १।५।७)। सभी दर्शनोंकी मुक्तिके सम्बन्धमें अलग-अलग प्रकारकी मान्यताएँ हैं। अपनी-अपनी मान्यताओंके अनुसार दार्शनिकोंने मुक्तिके लिये पृथक्-पृथक् शब्दोंका प्रयोग किया है। उपनिषदोंमें बार-बार जिसे 'अमृतत्वकी प्राप्ति' कहा गया है, सांख्य-योग उसे 'कैवल्य' कहता है, न्याय 'निःश्रेयस,' बौद्ध 'निर्वाण'। इसी प्रकार अन्यान्य दर्शन 'अपवर्ग' तथा 'मोक्ष' आदि शब्दोंका प्रयोग करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि क्या भगवत्प्रेमी दुःखो आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं चाहता? उत्तर है—अवः चाहता है; किंतु उसका जीवन, जगत् और परम-तत्त्व सम्बन्धी दृष्टिकोण अन्य दार्शनिकोंकी मान्यतासे सर्वथ पृथक् है; फलतः वह एक विशिष्ट अर्थमें प्रयुक्त मुक्ति नहं चाहता।

यहाँ संक्षेपतः मुख्य-मुख्य दार्शनिकोंके मुक्ति-सम्बन्धी दृष्टिकोणोंका परिचय आवश्यक है, जिससे भगवत्प्रेमीक दृष्टिभेद स्पष्टतः समझमें आ सके। यद्यपि संसारमें विरले पुरुष ही मुमुक्षु देखे जाते हैं; किंतु इससे मुक्तिका महत्त्व कम नहीं होता; क्योंकि जिनको निरतिशय सुख-प्राप्ति और निरतिशय दुःख-निवृत्ति-स्वरूप मोक्षका ज्ञान ही नहीं है, उनकी प्रवृत्ति मोक्षमें कैसे हो सकती है? ज्ञात सुखके लिये ही प्रवृत्ति होना सर्व-तन्त्र-सिद्धान्त है। तथापि मनुष्य-मात्र अपनी-अपनी रुचि, योग्यता, संस्कार एवं कल्पनाके अनुसार मुक्तिके लिये प्रयत्नशील है?

सर्वथा प्रत्यक्षवादी चार्वाक—'**मरणमेवापवर्गः**' मरणको ही मोक्ष कहता है; क्योंकि वह स्पष्ट शब्दोंमें परलोकमात्रका खण्डन करता है। उसकी दृष्टिमें इस परिदृश्यमान जगत्के अतिरिक्त परलोककी कोई सत्ता नहीं है। '**न स्वर्गो नापवर्गो वा लोकाः क्लिश्यन्ति वै वृथा।**' जैन-दर्शनमें 'कर्मके आत्यन्तिक क्षय'को ही मोक्ष कहते हैं, उनके अनुसार 'कर्मसे उत्पन्न देहमें जब आवरण न हो तो जीवका निरन्तर ऊपर उठते जाना ही मोक्ष है।' वहीं वह अनन्त-चतुष्टयकी सत्ता

उपलब्धि करके अपने नैसर्गिक शुद्ध स्वरूपमें आ जाता है। शून्यवादी आत्माका उच्छेद होना मोक्ष मानते हैं। 'निर्माण'को उन्होंने दुःख-निरोधके नामसे चार आर्य-सत्योंमें सम्मिलित किया है।

सांख्य-दर्शनमें 'प्रकृति-नर्तकीके उपरत हो जानेपर, पुरुषका अपने स्वरूपमें स्थित हो जाना ही मोक्ष है'—**'द्वयोरेकतरस्य वा औदासीन्यमपवर्गः।'** (सां० सू० ३। ६५)। प्रकृतिकी निवृत्ति होनेपर पुरुष स्वतः कैवल्यकी स्थितिमें पहुँच जाता है—

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद् विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्॥

(सां० का० ६४)

न्यायदर्शन 'दुःखके आत्यन्तिक उच्छेदको ही मोक्ष कहता है'—**'दुःख-जन्म-प्रवृत्ति-दोष-मिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः।'** (गौ० सू० १। १। २)

न्याय-दर्शनकी एक विशिष्ट मान्यता यह है—वह मुक्त-दशामें सुखकी विद्यमानता स्वीकार नहीं करता; क्योंकि सुखका रागसे अनिवार्य सम्बन्ध है और राग बन्धनका कारण है। आत्मा गुणी है, सुख-दुःख आदि गुण हैं। मुक्त होनेपर आत्मा सभी प्रकारके गुणोंसे मुक्ति पा जाता है—**स्वरूपैकप्रतिष्ठानः परित्यक्तोऽखिलैर्गुणैः।**

ऊर्मिषट्कातिगं रूपं तस्य आहुर्मनीषिणः।
संसारबन्धनाधीनदुःखक्लेशाद्यदूषितम्॥

(न्यायमञ्जरी)

वैशेषिक दर्शनकी मान्यता भी न्यायसे ही मिलती-जुलती है। मीमांसकोंके अनुसार "दृश्य-जगत्के साथ आत्माके सम्बन्धका विनाश ही मोक्ष है—**प्रपञ्चसम्बन्ध-विलयो मोक्षः।**' '(शा० दी०)' प्रपञ्च तीन प्रकारसे पुरुषको बन्धनमें जकड़ता है—भोगायतन शरीर, भोग-साधन इन्द्रिय एवं भोग-विषय-पदार्थ। इस त्रिविध बन्धनके आत्यन्तिक विलयका नाम ही मोक्ष है।"[1] कुछ मीमांसक मुक्तावस्थामें नित्य-सुखकी अभिव्यक्ति भी स्वीकार करते हैं:

दुःखात्यन्तसमुच्छेदे सति प्रागात्मवर्तिनः।
सुखस्य मनसा भुक्तिर्मुक्तिरुक्ता कुमारिलैः॥

(मा० मे० पृ० २१

अद्वैत-वेदान्तमें 'अपने यथार्थ स्वरूपका परि अथवा स्व-स्वरूपमें अवस्थान ही मोक्ष' है। मोक्षमें अपूर्व वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती है; किंतु मूलस्व जीवात्माका जो अवस्थान है, वही मोक्ष है। पारमा दृष्टिसे आत्मा, ब्रह्म और मोक्ष एक ही है। (ब्रह्मविद् ब्र भवति) आत्मा तो नित्य-मुक्त है। बन्धन और मोक्ष-सब अज्ञानकी सृष्टि है—'**अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्ष** 'अज्ञान अथवा अविद्यासे छुटकारा पाना[2] अर्थात् अ और ब्रह्मके तादात्म्यका अनुभव करना ही मोक्ष है उस अखण्ड चिद्वस्तुको छोड़कर अन्य किसीकी ही नहीं है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

(माण्डूक्य-कारिका २। ३

चित्सुखाचार्य 'मुक्तावस्थामें अनवच्छिन्न आन प्राप्ति स्वीकार करते हैं—**अनवच्छिन्नानन्दप्राप्तिः।**' अ दर्शनका प्रमुख सिद्धान्त है—'आत्मा तथा ब्रह्मकी एक अङ्गीकरण, इस सम्बन्धका प्रबोध ही मुक्ति है।'

तुलसीदासजीने इन सभी दर्शनोंका सार लेकर प्राप बन्धनको 'जड और चेतनकी ग्रन्थि पड़ जाना कहा चित्तत्त्व मानव, जड़ पदार्थोंसे इस प्रकार ता सम्बन्ध स्थापित कर लेता है कि जिससे मुक्ति कर लेना एक कठिनतम व्यापार है—

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठि
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरु

(मानस ७। ११६।

सांख्यसारमें इसीलिये 'सर्वाशा-संक्षयको ही कहा है—

न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले।
सर्वाशासंक्षये चेतःक्षयो मोक्ष इति श्रुतेः॥

(२। ७।

---

१. त्रेधा हि प्रपञ्चः पुरुषं बध्नाति—भोगायतनं शरीरं भोगसाधनानीन्द्रियाणि, भोग्याः शब्दादयो विषयाः। भोग इति च सुखदुःखविषयोऽपरोक्षानुभव उच्यते। तदस्य त्रिविधस्यापि बन्धस्य आत्यन्तिको विलयो मोक्षः।' (शास्त्रदीपिका पृ० ३५। ८)

२. अविद्यास्तमयो मोक्षः सा च बन्ध उदा (माण्डूक्यका

उपर्युक्त समीक्षासे स्पष्ट है कि प्रायः उक्त सभी दार्शनिकोंने दुःख-निरोध अथवा दुःखोंसे आत्यन्तिक निवृत्तिपर ही जोर दिया है; उन्होंने परमात्म-तत्त्वके करुणापूर्ण, परम मधुर, आनन्दमय रस-स्वरूपकी चर्चा नहीं की है। जीवात्माका पृथक् अस्तित्व भी महत्त्वपूर्ण नहीं समझा; मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे साधना-जगत्में मनुष्य-स्वभावकी व्यावहारिक कठिनाइयोंपर भी ध्यान नहीं दिया गया। यही कारण है कि अनेक दर्शनोंकी मुक्तिसम्बन्धी धारणाएँ सर्वस्वीकृत नहीं हुईं। श्रीहर्षने न्याय-दर्शनकी मुक्ति-सम्बन्धी मान्यताको आधार बनाकर गौतम (न्याय-दर्शनके प्रणेता) पर मार्मिक कटाक्ष किया है—'जिस सूत्रकारने सचेता पुरुषोंके लिये, ज्ञान-सुखादि-शून्य शिलारूप मोक्षप्राप्तिको जीवनका चरमोद्देश्य कहा है, उनका 'गौतम' यह अभिधान केवल शब्दतः ही नहीं, अर्थतः भी यथार्थ है। वह केवल गौ (बैल) न होकर गोतम (**अतिशयेन गौः—गोतमः**) पक्का बैल है।[3] वैष्णवजन तो वैशेषिक-मुक्तिकी अपेक्षा, वृन्दावनकी सरस निकुञ्जोंमें शृगाल बनकर जीवन बिताना ही अधिक प्रशस्त समझते हैं[4]। बौद्धोंका निर्वाण या शून्यवाद जीवनके मूल्यकी दृष्टिसे कोई सार्थकता नहीं रखता। सूक्ष्म विचार करनेपर मुक्तिसम्बन्धी अन्य दार्शनिक मान्यताएँ भी, किसी अनुपेक्षणीय दोषसे अनुविद्ध हैं।

भगवत्प्रेमीका वास्तविक मतभेद अद्वैत-वेदान्तकी मुक्तिसे है, जिसमें परिच्छिन्न जीवात्मा, ब्रह्मके साथ निर्भेद स्थितिके लिये अग्रसर होता है; क्योंकि वहाँ परमात्म-तत्त्वमें आत्माका विलय स्वीकार करनेपर, भोक्ता और भोग्यके अभावमें, रस-ब्रह्मका इतर-राग-विस्मारण-आस्वादन ही सम्भव नहीं है। प्रेम-रज्जुके बन्धनका यह एक विलक्षण स्वभाव ही है, जो दो पृथक्-पृथक् तत्त्वोंको ही संयुक्त करता है। जब जीवात्मा अपना अस्तित्व ही खो देगा, तो बन्धनोंसे छूटने और आनन्दके उपभोग करनेका अर्थ ही क्या होगा? अतः वैष्णव दार्शनिक, जीवकी परमात्मरूपमें परिणति अथवा दोनोंके सम्मिलनसे एक सर्वथा पृथक् सत्तामें परिणमन स्वीकार नहीं करते।

प्रेमके लिये प्रेमी तथा प्रेमास्पद—दोनोंकी पृथक् सत्ता अनिवार्य है। इमेन्युअल स्वीडनवर्गका कथन है—'प्रेमका स्वभाव ही प्रेम किया जाना है, जिसमें प्रिय और प्रेमी दोका अस्तित्व है। प्रेमद्वारा वे दोनों संयुक्त होते हैं। सम्पूर्ण प्रेमका सार दो सत्ताओंके मिलनमें है।'[5] आनन्दको प्राप्त करनेवालेकी पृथक् सत्ता जबतक न हो, तबतक आनन्दकी प्राप्तिका अर्थ ही स्पष्ट नहीं हो सकता। उपभोक्ताकी पृथक् सत्ता होनी ही चाहिये। मधुका आस्वादयिता जबतक पृथक् न हो, तबतक उसके अनिर्वचनीय माधुर्यका मूल्याङ्कन ही कैसे सम्भव है?

इसीलिये चैतन्य-सम्प्रदायानुयायी 'श्रीकृष्णका नित्यदासत्व ही जीवका स्वरूप' स्वीकार करते हैं—'**जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास।**' इस भावमें जो एक आनन्दका समुद्र उत्पन्न होता है, निर्विशेष ब्रह्मका कोटिगुणित सुख भी उस आनन्द-समुद्रके एक बिन्दुकी तुलना नहीं कर सकता[6]। भगवान्की परम प्रेयसी हृदयवासिनी लक्ष्मी भी अति दीनभावसे इस रसको पानेके लिये प्रार्थना करती है। विधि, शिव, नारद, शुक, सनकादि सभी—इस भावके द्वारा आनन्दित हैं।[7]

श्रीरामानुजाचार्य इसी दास्य-भावको शेष-शेषीभाव कहते हैं। द्वैतवादके प्रतिष्ठापक मध्वाचार्य तो '**जीवगणा हरेरनुचराः।**' के सिद्धान्तका प्रबल तर्कोंसे मण्डन करते हैं। तुलसीदास इस भावके बिना संसार-सागरसे पार होना ही नहीं मानते। (सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि। मानस ७। ११९) प्रेमकी सर्व-विध-वैचित्रीमें दास्य-भाव उपस्थित है; क्योंकि प्रेमकी प्रत्येक अवस्थामें सेवाद्वारा स्वसुखवासनासे रहित, श्रीकृष्णके प्रति प्रीति-उत्पादनकी वासना एवं प्रयास विद्यमान है। अपनी इसी मान्यताके अनुसार भक्तिके सभी सम्प्रदाय जीवका ब्रह्ममें विलीन होना स्वीकार नहीं करते।

---

३. मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्।
गोतमं तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव सः॥
(नैषध १७। ७५)

४. वरं वृन्दावने रम्ये शृगालत्वं वृणोम्यहम्।
वैशेषिकोक्तमोक्षात्तु सुखलेशविवर्जितात्॥
(स० सि० सं० पृ० २८)

5. 'The Divine Love and Wisdom'. page, 9

६. कृष्ण-दास अभिमाने ये आनन्दसिन्धु।
कोटि ब्रह्म-सुख नहे तार एक बिन्दु॥
(चै० च० १। ६। ४०)

७. वही (१। ६। ४२–४३)

मुक्तिके चार अथवा पाँच भेदोंका भी वर्णन प्राप्त होता किंतु भगवत्प्रेमी उसके किसी भी भेदको तृणतुल्य समझ- (प्रेम-सुरसरिमें डूबते-उतराते ही अपनेको कृतकृत्य मझता है—

त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरन्तो महामुदः ।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ॥

श्रीमद्भागवतमें एक स्थानपर पाँच प्रकारकी मुक्तियों- ी भी चर्चा है—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

(श्रीमद्भा० ३ । २९ । १३)

वस्तुतः श्रीकृष्ण अथवा भगवदीय चरण-कमलोंकी सेवा-सुखके लिये जिनका चित्त नित्य लालायित तथा अतृप्त रहता है, उन भक्तोंकी मोक्षके लिये कभी भी इच्छा नहीं होती । पुराणोंमें शतशः स्थानोंपर इसका समर्थन किया गया है । श्रीमद्भागवतमें स्वयं श्रीभगवान्‌का कथन है—'सर्वथा मेरे भक्त धीर और साधु-पुरुष भक्ति (प्रेम) के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहते । यहाँतक कि कोई महासौभाग्यशाली मेरे द्वारा दिये जानेपर भी जन्म-मरणसे छुड़ा देनेवाले मोक्षको भी नहीं चाहता ।'[८] श्रीहनुमान्‌जीका यह कथन कितना भावपूर्ण है—'जहाँ पहुँचकर आप प्रभु हैं और मैं आपका दास हूँ, इसका लोप हो जाता है, उस भाव-बन्धनोंका नाश करनेवाले मोक्षको भी मैं नहीं चाहता ।'[९]

नारद-पञ्चरात्रके जितन्त-स्तोत्रमें यह स्तुति की गयी है—

'हे परमात्मन् ! मेरी धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके लिये तनिक भी इच्छा नहीं है; मुझे तो केवल अपने चरण-कमलोंकी छायामें जीवित रहने दीजिये ।'[१०] श्रीतुलसीदासजीने भी कुछ इसी प्रकारका भाव व्यक्त किया है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ॥

(मानस २ । २

सर्वेन्द्रियोंके संतर्पक भगवत्प्रेमकी ही यह अ महिमा है, जिससे तुष्ट तथा तृप्त होनेपर, इस लालची की सभी चाहें, सदा-सदाके लिये, उस अद्वितीय, निर आलम्बनको पाकर, पूर्णताके शिखरपर पहुँचकर कृत हो उठती हैं । जब सांसारिक तुच्छ विषयोंका प्रेम कभी-कभी, कुछ समयके लिये अपने रागके आल लिये सब कुछ भूला रहता है, तब जहाँ सभी कुछ अ है, उस परम प्रेमास्पदको पाकर जीव शाश्वत और चि आनन्द-महासमुद्रमें डुबकियाँ लगानेवाला बनकर मुक्ति कुछ भी नहीं चाहता—

तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनन्त आद्ये
किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः ।
धर्मादयः किमगुणेन च काङ्क्षितेन
सारं जुषां चरणयोरुपगायतां नः ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । ६ ।

श्रीमद्भागवतमें गजेन्द्रने भी कुछ इसी प्रकारके व्यक्त किये हैं—

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥

(८ । ३ ।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें इस दृष्टिकोणको अत रीतिसे समझाया है—"श्रीकृष्ण-चरणानुरागमें सब निछावर कर देनेवाली (**'या माभजन् दुर्जरगेहशृ संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ।'**,भा० १० । ३२ । गोपियाँ जब श्रीकृष्णका दर्शन करती हैं, तब दर्शन सुखके लिये उनकी कुछ भी वाञ्छा न होनेपर भी श्रीकृष्णसे कोटिगुण अधिक सुख मिलता है ।[११]" अब यह कहा जाय कि श्रीकृष्ण-सुखको छोड़कर उनक कोई वाञ्छा ही नहीं—**तत्सुखे सुखित्वम्**; फिर :

---

८. न किंचित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम ।
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥
(११ । २० । ३४)

९. भवबन्धच्छिदे तस्मै स्पृहयामि न मुक्तये ।
भवान् प्रभुरहं दास इति यत्र विलुप्यते ॥

१०. धर्मार्थकाममोक्षेषु नेच्छा मम कदाचन ।
त्वत्पादपङ्कजस्याधो जीवितं दीयतां मम ॥

११. गोपीगणकरे यबे श्रीकृष्ण दर्शन ।
सुख वाञ्छा नाहि, सुख हय कोटि गुण ॥
(चै० च० १ । ४ । १

श्रीकृष्णसे भी कोटिगुणा अधिक सुख कैसे सम्भव है; क्योंकि विना इच्छाके सुखका आस्वादन ही नहीं हो सकता। इसके उत्तरमें उनका कथन है—

''गोपियोंके सुखका पर्यवसान श्रीकृष्णके सुखमें ही है। अर्थात् जो सुख गोपियोंको मिलता है, वह भी श्रीकृष्णके सुखमें ही जाकर परिणत हो जाता है। गोपियोंका दर्शन करनेसे श्रीकृष्ण प्रफुल्लित हो उठते हैं, तब उसका माधुर्य इतना अधिक विकसित होता है कि जिसकी कोई भी समता इस विश्वमें अप्राप्य है। इस असीम माधुर्यको देखकर प्रत्येक गोपी विचार करती है—'अहो! मुझे देखकर श्रीकृष्णको इतना सुख हुआ!' बस, इसी सुखमें ही गोपीके मुख एवं अङ्ग प्रफुल्लित हो उठते हैं। इसी प्रकार गोपीकी शोभा देखकर श्रीकृष्णकी शोभा जितनी अधिक बढ़ती है, उस बढ़ी हुई श्रीकृष्णकी शोभाको देखकर, गोपीकी शोभा उतनी ही अधिक बढ़ती है। इस तरह एक-दूसरेकी शोभाको देखकर, गोपीकी शोभा और श्रीकृष्णकी शोभा होड़ बाँधकर अधिकाधिक बढ़ते रहते हैं, कोई भी मुख नहीं मोड़ता; किंतु गोपियोंके रूप-गुणोंका आस्वादन करके श्रीकृष्णको जो सुख होता है, श्रीकृष्णके उस सुखको ही देखकर गोपियोंके चित्तमें सुखकी वृद्धि होती है; अपने सुखकी वासनासे उनके सुखकी वृद्धि नहीं होती।''[१२]

इससे एक तथ्य अनायास ही निकल आता है कि भगवत्प्रेमकी यह विलक्षण महिमा है कि प्रेमीके कुछ भी न चाहते हुए ही, उस प्रेमकी महिमासे ही उसे इतने अतुलनीय सुखकी उपलब्धि होती है, जिसके आगे इस ब्रह्माण्डका सब कुछ तृणतुल्य प्रतीत होता है।

रूप गोस्वामीने एक पद्यमें प्रेमके इस सर्वाश्चर्यमय स्वरूपका वर्णन किया है—

ऋद्धिसिद्धिव्रजविजयिता सत्यधर्मा समाधि-
र्ब्रह्मानन्दो गुरुरपि चमत्कारयत्येव तावत्।
यावत् प्रेम्णां मधुरिपुवशीकारसिद्धौषधीनां
गन्धोऽप्यन्तःकरणसरणीपान्थतां न प्रयाति॥[१३]

अर्थात् 'श्रीकृष्णके वशीकरणमें सिद्ध-ओषधिस्वरूप प्रेम-समूहका लेशमात्र जबतक अन्तःकरणके पथका पथिक नहीं होता है, तबतक ही समृद्धिशालिनी अणिमादि सिद्धियोंकी उत्कृष्टता, सत्यधर्मोपेत समाधि तथा निर्विशेष ब्रह्मानुभवजनित महानन्द चमत्कारिता सम्पादन कर सकते हैं, अर्थात् श्रीकृष्णके सामान्यमात्र भी हृदयमें आविर्भूत होनेपर अष्टसिद्धियाँ, योगाभ्यासलब्ध समाधि एवं निर्विशेष ब्रह्मानन्द उस साधकके लिये तुच्छ होकर दीखते हैं—वह इनमें लोभायित नहीं होता।'

भगवत्प्रेम तो समस्त आश्चर्योंका खजाना है। यहाँ विस्तारभयसे उसका वर्णन सम्भव नहीं है[१४]। उसका गान वाणीसे नहीं, हृदयसे होता है; वह कहा नहीं जाता, अनुभव किया जाता है; उसकी सिद्धि नहीं की जाती, वह स्वतःसिद्ध है। इसका उदय होनेपर बाहरी कोई भी आकर्षण मनको चञ्चल नहीं कर सकता—**'प्रेमभक्तौ च सिद्धायां सर्वेऽर्थाः सेवकाः स्वयम्।'** कभी तो प्रेमके उच्चतम भावको प्रियतम भी नहीं समझ पाता। वह समझसे ऊपर है। देवर्षि नारदने परमप्रेमरूपा भक्तिका व्याख्यान इस प्रकार किया है—**'अमृतस्वरूपा च। यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति। यत्प्राप्य न किंचिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति। यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति।'**[१५]

जो प्रेम समस्त विश्वको मुक्ति देनेवाले भगवत्तत्त्वको भी बाँध लेता है, क्या उसकी महिमा शब्दोंमें बाँधी जा सकती है?

अहो चित्रमहो चित्रं वन्दे तत्प्रेमबन्धनम्।
यद्बद्धं मुक्तिदं मुक्तं ब्रह्म क्रीडामृगीकृतम्॥

प्रेमका सम्बन्ध होनेपर इस जगत्के प्रत्येक पदार्थसे सरसताके स्रोत फूटने लगते हैं। मन, प्राण सब कुछ प्रतिपल आनन्दरससे भींगा रहता है। भगवत्प्रेमकी अनिर्वचनीयता 'मूकास्वादनवत्।' (नारद० ५२) भक्तिके आचार्योंद्वारा शतशः समर्थित है।

---

१२. चैतन्यचरितामृत (१।४।१६०-१६६)।

१३. ललितमाधव (५।६)।

१४. द्रष्टव्य—लेखकका अप्रकाशित ग्रन्थ 'भक्ति-रहस्य' जिसमें भक्ति-जगत्के सभी सम्प्रदाय, आचार्य, ग्रन्थकार तथा समीक्षकोंके विचारोंकी अत्यन्त क्रमबद्ध, तर्कपूर्ण, गहन तथा मर्मस्पर्शी शास्त्रीय समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। विद्वान्, विचारक, व्याख्याता सभीके लिये संग्रहणीय, सर्वथा अपूर्व।

१५. नारद-भक्ति-सूत्र (३—६)

भगवत्प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता, इसमें मनोवैज्ञानिक रहस्य भी है। सांसारिक आकर्षणोंसे प्रायः सभी लोग पीड़ित हैं; इनमें उलझा हुआ मनुष्य निरन्तर जटिलताओंमें फँसता चला जाता है, जिससे वह अधिकाधिक उद्विग्न और व्याकुल होकर छटपटाता है। इन आकर्षणोंका अन्तिम परिणाम निरन्तर जलते ही रहना है। इन रोगोंके उपचारके लिये नियम-निष्ठा, आचार, जप, तप, व्रत, धर्म आदि कितने ही उपाय हो सकते हैं; किंतु उनका प्रभाव स्थायी नहीं होता। इसका स्थायी उपचार केवल भगवत्प्रेमसे ही सम्भव है; क्योंकि उसमें रागात्मिका वृत्तियों तथा मनको ऐसा उत्कृष्टतम, आह्लादमय आकर्षण मिल जाता है, जिस आलम्बनको पाकर, उनका मानसिक संघर्ष, प्रबल और वेगवती इच्छाएँ, विविध प्रकारकी ग्रन्थियाँ, क्वथित और भूर्जित बीजके समान[16] निःसत्त्व होकर, परम रमणीय भाव-गङ्गाके अखण्ड-प्रवाहमें लीन होकर, चिरकाङ्क्षित भगवदीय सुख-समुद्रमें विश्राम करती हैं। इस राग-विपर्यय और उसके उदात्तीकरणद्वारा, मानसिक असंतुलन और उद्वेगके लिये अवकाश ही नहीं रहता। तथाकथित मुक्तिका मार्ग अनेक जटिलताओंसे भरा हुआ होनेके कारण, दुर्गम, कठिन और प्रत्यूह-संकुल है।

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥
(मानस ७। ११८। ४)

गोस्वामी तुलसीदासजी तो यह भी कहते हैं कि 'वेद-पुराण तथा समस्त ग्रन्थ यही कहते हैं कि भक्तिके बिना सुख-प्राप्ति असम्भव है।'[17] उनका यह भी कहना है—'मुक्ति भक्तिपर आश्रित है और भक्तिका एक साधारण परिणाम मात्र है। जिस प्रकार भूमिके बिना जल नहीं रह सकता, उसी प्रकार मोक्ष-सुख करोड़ों उपाय करनेसे भी भक्तिके बिना नहीं टिक सकता।' अतएव ज्ञानी भी मोक्षकी अवहेलना कर भक्तिकी कामना करते हैं—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥
(मानस ७। ११८। ३)

'भक्ति करनेपर बिना ही यत्न और प्रयास मूल अविद्या ही नष्ट हो जाती है। भक्तिका र कर्मोंका परिपाक इस प्रकार कर देता है, जठराग्नि भोजनका।'[18] भक्ति-चिन्तामणिका वर्णन ही है, भावुकोंको उसे वहीं देखना चाहिये, कोई भी मानसिक रोग मनुष्यको कष्ट नहीं देता—

गरल सुधा सम अरि हित होई।
तेहि मनि बिनु सुख पाव न
ब्यापहिं मानस रोग न भारी।
जिन्ह के बस सब जीव दु
(मानस ७। ११

इस प्रकार मनके दमनकी दुरूहता और अव्य को ध्यानमें रखते हुए, भगवत्प्रेम प्रवृत्तिमूल होनेसे स्वभावतः सांसारिक विक्षेपोंका शमन व मनोविज्ञानके अनुसार प्रवृत्तियोंके दमनकी अपेक्ष सहज एवं स्वाभाविक है। भक्ति (भगवत्प्रेम) राग चिन्मुख हो जाता है—उसकी रागात्मक बनी रहती है। फलतः इस सरस राजमा रूखे युक्तिमार्गकी ओर उन्मुख ही क्यों होगा सिद्धिके समीप पहुँचकर भी, मनोवेगों त प्रलोभनोंसे विचलित हो सकता है, जब समानतासे मायिक-इन्द्रजाल एवं मनोवृत्तियाँ भ प्रभाव नहीं डाल सकतीं—

बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा।
श्रवन सुखद अरु मन अ
(मानस ७

मनकी विश्रामाकाङ्क्षिणी गति साधनावस्थ प्रत्यक्षधर्मका आश्रय लेकर, सुख-सागरकी यात्रा हो जाती है। यही कारण है कि शुक, नार जैसे मुक्त-जन भी भगवत्प्रेम-रसकी उपलब्धि बनकर घूमते हैं। 'जिनकी सभी ग्रन्थियाँ खुल आत्माराम महामुनि भी भगवद्-भक्तिके लिये क्योंकि वे इस परमानन्दमय रस-समुद्रमें गोता रह ही नहीं सकते।'[19] शंकराचार्य कहते हैं—

१६. न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते॥
(श्रीमद्भा० १०। २२। २६)

१७. श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं।
रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥
(रा० मा० उत्तर० १२२। ७)

१८. (रा० मा० उत्तर० ११८। ४-५)।

१९. आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरु
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो
(श्रीमद्भा० १

लीलया विग्रहं कृत्वा भजन्ते ।[२०] श्रीमद्भागवतमें भगवत्प्रेम-विमुख मुक्तिमार्गियोंके प्रयत्नको निष्फल कहा है—

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥
(१० । १४ । ४)

तुलसीदासजीने इसी बातको बड़ी भर्त्सनाके साथ कहा है—

जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी । खोजत आक फिरहिं पय लागी ॥
(मानस ७ । ११४ । १)

शुकदेवजीकी विवशता ध्यान देने योग्य है—

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया ।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥
(श्रीमद्भा० २ । १ । ९)

एक स्थानपर किसी अद्वैतवीथी-पथिकको बलपूर्वक दास बना लिया गया है—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः ।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन ॥

इसीलिये 'भगवत्प्रेम-रस-रसिक परार्द्धगुणीकृत ब्रह्मानन्द-को भी भक्ति-सुख-समुद्रके सम्मुख परमाणु-तुल्य भी घोषित नहीं करते'—

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्द्धगुणीकृतः ।
नैति भक्तिसुखाम्भोधेः परमाणुतुलामपि ॥

पद्मपुराणान्तर्गत श्रीभागवत-माहात्म्य (२ । ७, ११) में मुक्तिका भक्तिकी दासीके रूपमें वर्णन किया है, जो कभी भी उसके बुलानेपर आती है और चली जाती है । रूपगोस्वामी उसे 'पिशाची' तक भी कह देते हैं ।[२१] चैतन्य-चरितामृतके रूप-शिक्षा-प्रकरणमें मुक्ति-वाञ्छाको भक्ति-प्राप्तिमें सर्वाधिक बाधक बताया गया है ।[२२] गीतामें ब्रह्मभूत, प्रसन्नात्माके लिये परा-भक्ति-प्राप्तिकी चर्चा है—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥
(१८ । ५४)

इस भगवत्प्रेमकी कुछ ऐसी विलक्षण महिमा है, जो करोड़ों मुक्त-पुरुषोंमें ही किसी-किसीको प्राप्त होता है—

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥
(श्रीमद्भागवत ६ । १४ । ५)

इसे प्राप्त कर फिर कोई वाञ्छा ही शेष नहीं रहती—

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाऽऽधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ॥
(श्रीमद्भागवत १० । १६ । ३७)

प्रणय-रशनासे बँधकर 'प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः' (भागवत ११ । २ । ५५) साक्षात् भगवान् ही उनके हृदयमें प्रवेश कर लेते हैं, फिर बचा ही क्या ?

सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका।
हरिरपि निजलोकं सर्वथाऽतो विहाय
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः॥
(श्रीमद्भागवत मा० ३ । ७३)

जिनके नाम-श्रवण मात्रसे ही मनुष्य सर्वथा निर्मल हो जाता है, क्या श्रीभगवान्‌के दासोंके लिये फिर कोई वस्तु पाने योग्य रह सकती है ?

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः ।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥
(श्रीमद्भागवत ९ । ५ । १६)

श्रीमधुसूदन सरस्वतीने कितने प्रिय शब्दोंमें द्रुत-चित्त-द्वारा गृहीत भगवत्तत्त्वका वर्णन किया है—

भगवन्तं विभुं नित्यं पूर्णं बोधसुखात्मकम् ।
यद् गृह्णाति द्रुतं चित्तं किमन्यदवशिष्यते ॥
(भ० र० १ । २८)

२०. भावार्थ-दीपिका (भा० १० । ८७ । २१), नृसिंहतापनी (२ । ५ । १६१) ।

२१. भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते ।
तावद् भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत् ॥
(भ० सि० १ । २ । ११, पद्मपुराणसे उद्धृत)

२२. भुक्ति-मुक्ति-आदि वाञ्छा यदि मने हय ।
साधन करिले प्रेम उत्पन्न ना हय ॥
(चै० च० २ । १९ । १५०)

'हरिभक्तिसुधोदय'में श्रीप्रह्लादने नृसिंह भगवान्‌से कहा है—

त्वत्साक्षात्करणाह्लादविशुद्धाब्धिस्थितस्य मे ।
सुखानि गोष्पदायन्ते ब्रह्माण्यपि जगद्गुरो ॥

(१४ । ३६)

रामचरितमानसमें विदेहकी यह उक्ति भी ध्यान देने योग्य है—

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥

(१ । २१५ । ३)

भगवत्स्वरूपका अनुभव किस प्रकार सब कुछ विस्मृत करा देता है, इस सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतके निम्नाङ्कित प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्ददर्शने ।
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ॥

(१० । १९ । १६)

अटति यद् भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥

(१० । ३१ । १५)

केवल इतना ही नहीं, समस्त चराचर विश्व, जिनके किसी भी प्रकारके सम्पर्कको पाकर, आनन्दकी पराकाष्ठापर पहुँचकर, स्वस्वरूप-विस्मृतसे अभिभूत था—

'अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणाम् ।'

(श्रीमद्भा० १० । २१ । १९)

'यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥'

(श्रीमद्भा० १० । २९ । ४०)

भगवत्प्रेमकी इस मृदु-मधुर मादकतामें मुक्तिका स्थान ही कहाँ है ?

'त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ।'

(श्रीमद्भा० १० । ३८ । १४)

भगवान्‌में ब्रह्मानन्द-तुच्छकारी, सर्वाकर्षक सर्वाह्लादक, महारसायन, सर्वविस्मारक, भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि आदि वासना-अपसारक ऐसे पूर्णानन्दमय गुण हैं, जिनके सामने ब्रह्मानन्द तृणवत् तुच्छ प्रतीत होता है । सनकादिका मन श्रीकृष्णके सौरभादि गुणमें ही आकृष्ट हो गया था[२३]। शुकदेव लीला-श्रवणमें ही सब कुछ भूल बैठे थे[२४]। गोपियाँ उनके त्रैलोक्यमोहन रूप-सौन्दर्यपर निछावर थीं[२५]। श्रीकृष्णकी वंशी-ध्वनिपर श्रीलक्ष्मी, त्रिभुवनका युवति-समूह तथा चराचर विश्व विमोहित था[२६]। उनका एक-एक गुण विश्व-मनको मुग्ध कर देनेमें समर्थ है। इसीलिये जगत्‌का प्रत्येक साधक तीव्र भक्तियोगसे उनका ही यजन करना चाहता है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

(श्रीमद्भा० २ । ३ । १०)

श्रीधरस्वामीने **'धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सताम् ।'** (श्रीमद्भागवत १ । १ । २) पदकी व्याख्यामें **'प्रोज्झितकैतव'** शब्दमें प्रयुक्त 'प्र' उपसर्गके प्रयोगसे, प्रधान कैतव (मोक्ष-वाञ्छा) का निरसन माना है । **'अत्र 'प्र' शब्देन मोक्षाभिसन्धिरपि निरस्तः ।'** अर्थात् उनकी दृष्टिमें मोक्ष-वाञ्छा भी कैतव है । यह प्रधान-कैतव इसलिये भी है कि धर्म, अर्थ, काम—पदार्थ-त्रयके अभिलाषी, भाग्यवश महत्कृपाकी उपलब्धि होनेपर, कभी किसी जन्ममें श्रीकृष्णसेवा प्राप्त कर कृतकृत्य हो सकते हैं; किंतु सायुज्य-मुक्ति प्राप्त करनेवालेका तो स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं रहता; फलतः उसे कभी भी श्रीकृष्ण-भजनका सुयोग प्राप्त होना दुर्लभ है । एक आत्माराम अपने दुर्भाग्यको कोसते हुए कह रहे हैं—यह सुख घनमूर्ति परमात्मा वृष्णिपत्तन (द्वारका) में स्फुरित हो रहा है । 'मैं आत्माराम हूँ' इस अभिमानमें मेरा बहुत समय व्यर्थ ही बीत गया—

अस्मिन् सुखघनमूर्तौ परमात्मनि वृष्णिपत्तने स्फुरति ।
आत्मारामतया मे वृथा गतो बत चिरं कालः ॥[२७]

श्रीभगवान् दुर्वासा मुनिसे स्वयं कहते हैं—'मेरे समस्त भक्त मेरी सेवाके सुखसे परिपूर्ण हैं । मेरी सेवाके प्रभावसे सहजमें प्राप्त होनेवाली उन चार प्रकारकी मुक्तियोंको भी वे ठुकरा देते हैं, फिर वे कालके प्रभावसे नष्ट होनेवाले स्वर्गादि सुखको क्यों ग्रहण करने लगे ?'

मत्सेवया प्रतीतं ते सालोक्यादिचतुष्टयम् ।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम् ॥

(श्रीमद्भा० ९ । ४ । ६७)

---

२३. भागवत ३ । १५ । ४३ ।

२४. वही० ११ । ९ तथा १२ । १२ । ६९ ।

२५. भागवत १० । २९ । ३९ ।

२६. वही १० । १६ । ३६; १० । २९ । ३९ ।

२७. भक्तिरसामृतसिन्धु ३ । १ । २३ की टीकामें उद्धृत ।

चैतन्य-सम्प्रदाय तो परम-तत्त्वकी खण्ड-प्रतीति ब्रह्म एवं अपूर्ण प्रतीति परमात्माको स्वीकार करता है; भगवत्प्रेमी उस ओर कभी नहीं जाना चाहते। उनका मन, प्राण सब कुछ उस भक्ति-रससे भींगा रहता है, जिसे समस्त तृष्णाओंका त्याग कर देनेवाले मुक्त-जन भी खोजते फिरते हैं—

विमुक्ताखिलतर्षैर्या मुक्तैरपि विमृग्यते।
या कृष्णेनातिगोप्याऽऽशु भजद्भ्योऽपि न दीयते॥[२८]

प्रेमा-भक्तिका ऐसा विलक्षण माधुर्य है, जिसका रस-लोभी भक्त मुक्तिकी ओर कभी नजर भी नहीं डालता[२९]। वह निरन्तर उसकी पराकाष्ठापर पहुँचनेकी ओर अग्रसर होता है। मुक्ति प्राप्त कर लेनेपर तो सारा खेल ही समाप्त हो जायगा; क्योंकि तब पुनर्जन्मके अभावमें सदा-सदाके लिये प्रेम-रससे वञ्चित होना पड़ेगा। भगवान् भी मुक्ति देकर भक्तको धोखा देना चाहते हैं; क्योंकि प्रेम उनकी स्वतन्त्रताको छीन लेता है, उनको प्रेमी भक्तके वशीभूत होकर, उसकी इच्छानुसार रहना पड़ता है। इस तथ्यको वे स्वयं स्वीकार करते हैं—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः
(श्रीमद्भा० ९। ४।

मुक्ति देकर उनको एक बार ही छुट्टी मिल है। अस्तु,

यहाँ विस्तार-भयसे यह नहीं लिखा जा सकता भगवत्प्रेमी किस प्रकार वर्तमान-जीवन (साधक-देह), देह और सिद्ध-देहसे भगवल्लोक तथा लीला-स्थलोंमें अ अनिर्वचनीय भगवद्रसका अनुभव करता है, जिसके उसे मोक्षपर्यन्त सभी सुख तृणवत् तुच्छ प्रतीत होते हैं

उपर्युक्त समीक्षासे यह स्पष्ट है कि 'भगवान्के च कमलोंकी सेवाके सुखसे जिनका चित्त एक बार तृप्त हो है, उन भक्तोंकी फिर मोक्षके लिये कभी भी इ नहीं होती।'

श्रीकृष्णचरणाम्भोजसेवानिर्वृतचेतसाम्।
एषां मोक्षाय भक्तानां न कदापि स्पृहा भवेत्॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु १। २। १

भगवत्-प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता

(लेखक—श्रीजयनारायणलालजी)

१—'सा परानुरक्तिरीश्वरे।' (शाण्डिल्यसूत्र)

'ईश्वरके प्रति अनन्य प्रेम भक्ति है।'

२—'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। मूकास्वादनवत्।'
(नारदसूत्र ५१-५२)

'जैसे गूँगा स्वादका वर्णन नहीं कर सकता, वैसे ही प्रेमका स्वरूप अवर्णनीय है।'

परंतु जबतक मनुष्य कर्मद्वारा प्राप्त भोगोंकी लालसा और ज्ञानद्वारा प्राप्य मोक्षकी वासनामें लिप्त रहेगा, तबतक उसके हृदयमें प्रेमका उदय नहीं होगा। यह पद्मपुराणका वचन है।

'भक्ति' शब्द 'भज्' धातु और 'क्ति' प्रत्ययसे बनता है। 'भज्' इति 'सेवायाम्' और 'क्ति'का अर्थ है—'प्रेम'। सेवामें प्रेमकी प्रधानता है। भक्ति स्वतन्त्र है; कर्म और ज्ञानपर निर्भर नहीं है। स्वतः पूर्ण है। वह मोक्षको हेय समझती है।

४ 'मुक्ति निरादर भगति लुभाने।' (मानस ७। ११८।
५ 'सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं।
तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥'
(मानस ६। १११। ४

'भगवत्-पादारविन्द-रसास्वादन-परायण महानुभ सौभाग्यशाली भक्तगण मुक्तिपदको पददलितकर भक्तिपुष्प भ्रमर बने रहते हैं। सगुण भगवान्के उपासक मोक्ष न ग्रहण करते। उनको तो श्रीरामजी अपनी भक्ति ही देते हैं

वस्तुतः भक्तोंकी मुक्ति तो अपने आराध्यदेवके लील व्यूहमें प्रवेश करके भगवत्-चरित-चिन्तनमय हो जाना य नित्य सेवामें संलग्न रहना है। भक्त कभी भी विलयरू मुक्तिकी चाह नहीं करते। भक्तिके दो प्रकार हैं— एक, भेदभक्ति=सेवक-सेव्यभाव—जिसमें सेवाग्राही एव भगवान् हैं और दूसरा सेवापरायण भक्त है। दूसर

---

२८. भक्तिरसामृतसिन्धु १। ३। १८।
२९. किन्तु प्रेमैकमाधुर्यभुज एकान्तिनो हरौ। नैवाङ्गीकुर्वतेजातु मुक्तिं पञ्चविधामपि॥ (१। २। १६)

सत्त्वगुणी भगवान्में जाता है   रजोगुणी फिर मनुष्य होता है   तमोगुणी कुत्ता आदि बनता है

नरकके तीन द्वार—काम, क्रोध और लोभ (गीता १६ । २१)

प्रकार अभेदभक्ति है, जिसमें भोक्ता और भोग्यकी विभिन्नता नहीं है। ब्रह्ममें लीन हो जाना है और सभी सुखोंको लय कर देना है; जैसे गम्भीर समुद्रमें नमककी पोटली डाल देनेपर वह अपने अस्तित्वको ही खो बैठती है।

भेदभक्तिमें भक्त भगवान्के साथ मुख्यतया पाँच सम्बन्धों- (शान्तभाव, दास्यभाव, सख्यभाव, वात्सल्यभाव और मधुर-भाव) मेंसे अपनी रुचिके अनुकूल किसी सम्बन्धको जोड़कर तद्वत्-भावनामें जन्म-जन्म परमानन्दमें मग्न रहता है। भगवत्-प्रेमीका ध्येय पुनर्जन्म पाकर भगवत्-कैंकर्यपरायण होना, भगवत्-सेवा-पूजा-अर्चानिष्ठ होना, जप-ध्यान करना, कथा-कीर्तन, सत्संग करना, साधु-सहवासमें निरत रहना और भगवद्-गुणगान ही है। यही नवधा भक्ति है। प्रेम-लक्षणा भक्ति—पराभक्तिका आश्रय लेकर परमानन्दकी प्राप्ति ही उसका जीवन-सर्वस्व है।

भगवान् राघवेन्द्र सरकारके साकेत-यात्राके समय मरुत्-नन्दन श्रीहनुमन्त्लालजीसे प्रश्न किये जानेपर उत्तर मिला कि 'इस धरातलपर ही रहकर मैं आपका नामजापक और कथा-श्रोता होकर रहना चाहता हूँ'—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

'भगवत्-प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता'—यह स्वर्ण-सिद्धान्त अटल नियम सदैव, सभी युगोंमें अक्षरशः सत्य पाया जाता है। इन भगवत्-प्रेमियोंमें, चाहे वे किसी योनिमें हों—देव, दानव, दैत्य, ऋषि, मुनि, मनुष्यादि जो हों—सबमें जन्म-जन्मातर भगवत्-कैङ्कर्य करनेकी एक अमिट चाह बनी रहती है। उदाहरणार्थ, नीचे कुछ ज्वाज्वल्यमान उक्तियाँ प्रमाणरूपमें उद्धृत की जा रही हैं—

सत्ययुग

(१) दैत्यकुलभूषण परमभागवत श्रीप्रह्लादजी नृसिंह भगवान्से वरदान माँगते हैं—

नाथ! योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वच्युताभक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि॥
(विष्णु० १।२०।१८)

'नाथ! जिन-जिन हजारों योनियोंमें मैं जन्म लूँ, उन-उन योनियोंमें तुम्हारी अचल अच्युत भक्ति मुझे प्राप्त हो।'

(२) वृत्रासुर—भगवान्से माँगता है—

अहं हरे तव पादैकमूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं
संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहे-
ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्॥
(श्रीमद्भा० ६।११।२४—२७)

'प्रभो! आप मुझपर ऐसी कृपा करें कि जिससे मुझे अगले जन्ममें भी आपके चरण-कमलोंके आश्रित सेवकोंकी अनन्य भावसे सेवा करनेका अवसर प्राप्त हो। प्रियतम! मेरा मन आपके मङ्गलमय गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी उन्हींका गान करे और मेरा शरीर आपकी सेवामें ही लगा रहे। सर्वसौभाग्यनिधे! मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमण्डलका साम्राज्य, रसातलका एकाधिपत्य, योगकी सिद्धियाँ, यहाँतक कि पुनर्जन्मनाशक मोक्ष भी नहीं चाहता। जैसे पक्षियोंके बिना पंख जमे हुए बच्चे माँकी बाट देखते रहते हैं; जैसे भूखे बछड़े गोमाताका स्तन्य-पान करनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतम पतिसे मिलनेके लिये व्याकुल रहती है, वैसे ही कमलनयन! मैं आपके चरण-दर्शनके लिये छटपटाता रहूँ। प्रभो! मैं मुक्ति नहीं चाहता। मेरे कर्मोंके फलस्वरूप मुझे बार-बार जन्म-मृत्युके चक्रमें भले ही भटकना पड़े। परंतु मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ, जिस-जिस योनिमें जन्मूँ, वहाँ-वहाँ आपके प्यारे भक्तोंसे मेरी प्रेम-मैत्री बनी रहे। स्वामिन्! जो लोग आपकी मायासे घर-शरीर और स्त्री-पुत्रादिमें आसक्त हो रहे हैं, उनके साथ मेरा किसी प्रकारका कभी सम्बन्ध न हो।'

त्रेतायुग

(१) भरतजी प्रयागमें वर माँगते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन ॥
(मानस, अयोध्याकाण्ड २०४)

यहाँ भी मुक्तिको ठुकराकर जन्म-जन्मान्तर राम-प्रेमकी ही आकाङ्क्षा है ।

(२) बालि—रामजीसे माँगता है—

जेहिं जोनि जन्मौं कर्मबस, तहँ राम पद अनुरागऊँ ॥
(मानस, किष्किन्धाकाण्ड ९ छन्द)

(३) शरभङ्गजी—

ताते मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ ॥
(मानस, अरण्य० ८१)

(४) वसिष्ठजी—

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु ।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ॥
(मानस, उत्तरकाण्ड ४९)

(५) काकभुशुण्डिजी—

भगत कलपतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुख धाम ।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ॥
(मानस, उत्तरकाण्ड ८४ ख)

(६) दशरथजी—विजयोपरान्त लङ्कामें उपस्थित हैं । सगुणोपासक थे । भक्ति मिली ।

ताते उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो ॥
(मानस, लंकाकाण्ड १११ । ३)

द्वापरयुग

(१) कुन्ती देवी—श्रीकृष्ण भगवान्से माँगती हैं—

स्वकर्मफलनिर्दिष्टां यां यां योनिं व्रजाम्यहम् ।
तस्यां तस्यां हृषीकेश त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे ॥

'हे भगवान् श्रीकृष्ण ! अपने कर्मोंके फलस्वरूप जिन-जिन योनियोंमें मैं जाऊँ, उन-उन योनियोंमें आपमें मेरी दृढ़ भक्ति हो ।'

(२) महाभाग्यवती गोपाङ्गनाएँ—तो प्रेमस्वरूप ही हैं। उनकी लीला-भूमिमें तो वहाँकी रज प्राप्त करके मुक्ति ही मुक्त हो जाती है—

'ब्रज रज उड़ि मस्तक चढ़ै, मुक्ति मुक [illegible]

प्रेमोदय केवल शुद्ध सत्त्वमें ही होता [illegible] रज, तममें नहीं होता, नहीं ठहरता । ब्रज[illegible] शुद्ध सत्त्व हृदय-गगनमें प्रेम-भास्करका उदय [illegible] उनकी दिव्य रुचियोंमें मधुर स्निग्धता आयी थी [illegible] दिव्य सुधा है। इसमें किसी स्वार्थकी कोई गन्ध [illegible]

'तत्सुखे सुखित्वम्', 'तद्विस्मरणे परमव्याक[illegible]

ये ब्रह्ममें लीन होना कभी नहीं चाहत[illegible]

(३) राजा द्रुपद—गरुड़ध्वजके प्रति—

त्वयि भक्तिर्दृढा मेऽस्तु जन्मजन्मान्तरेष्व[illegible]
कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु
रक्षःपिशाचमनुजेष्वपि यत्र य[illegible]
जातस्य मे भवतु केशव ते प्रसादात्
त्वय्येव भक्तिरचलाव्यभिचारिणी[illegible]

'हे केशव ! जन्म-जन्म आपमें मेरी भक्ति [illegible] कीट, पतङ्ग, पक्षी, राक्षस, पिशाच, मनुष्य—जिस [illegible] जन्म लूँ, आपमें अचल अनन्य भक्ति हो ।'

कलियुग

(१) श्रीचैतन्यमहाप्रभु—

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये[illegible]
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवतां भक्तिरहैतुकी त्वयि[illegible]

'मैं धन, जन, सुन्दरी कविताकी इच्छा नहीं [illegible] मुझे जन्म-जन्ममें ईश्वरमें अहैतुकी भक्ति हो ।'

(२) गोस्वामी तुलसीदासजी—

(क) यत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्मवश
भ्रमति जगयोनि संकट अनेकम् ।
तत्र त्वद्भक्ति-सज्जन-समागम सदा
भवतु मे राम विश्राममेकम् ॥
(विनय० ५७ [illegible]

(ख) कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआ[illegible]
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो कमठ अंडकी नाँ[illegible]
(विनय० १०[illegible]

ग) नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु ।
जन्म जन्म रघुनंदन तुलसिहिं देहु ॥
(बरवै०)

(क) कर्मवश जहाँ भी मेरा जन्म हो, जिस योनिमें
मण करूँ, वहाँ-वहाँ भगवन् ! आपकी भक्ति-सत्संग
ाबर मिले । राम ही एक विश्राम हों ।

(ख) मेरा दुष्कर्म मुझे जिस भी योनिमें ले जाकर
ले, वहाँ हे भगवन् ! आप मुझपर कृपा न छोड़ें,
से कछुआ अपने अंडेपर स्नेह नहीं छोड़ता ।

(ग) हे रघुनन्दन ! तुलसीको जन्म-जन्म नाममें भरोसा,
ल और स्नेह प्रदान करो ।

(३) कबीरदास—

राम बुलावा देखिके दिया कबीरा रोय ।
जो सुख रह सतसंगमें सो सुख वहाँ न होय ॥

कबीरदासने भी यहाँके सत्संग-सुखको मुक्तिसे अधिक-
र बताया है ।

बड़े-से-बड़े देवता

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥
तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥
(श्रीमद्भा० १० । १४ । ३०, ३४)

'भगवन् ! मुझे इस जन्ममें, दूसरे जन्ममें अथवा किसी पशु-पक्षी आदिके जन्ममें भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासोंमेंसे कोई एक दास हो जाऊँ और फिर आपके चरणकमलोंकी सेवा करूँ । प्रभो ! इस व्रजभूमिके किसी वनमें और विशेष करके गोकुलमें किसी भी योनिमें जन्म हो जाय, यही मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी; क्योंकि यहाँ जन्म हो जानेपर आपके किसी-न-किसी प्रेमीके चरणोंकी धूलि अपने ऊपर पड़ ही जायगी । प्रभो ! आपके प्रेमी व्रजवासियोंका सम्पूर्ण जीवन आपका ही जीवन है । आप ही उनके जीवनके एकमात्र सर्वस्व हैं । इसलिये उनके चरणोंकी धूलि मिलना आपके ही चरणोंकी धूलि मिलना है और आपके चरणोंकी धूलि तो श्रुतियाँ भी अनादिकालसे अबतक ढूँढ़ ही रही हैं ।'

भगवान् शंकर—

बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग ।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ॥
(मानस, उत्तरकाण्ड १४ क)

इस प्रकार भगवत्प्रेमियोंने मुक्ति न चाहकर नित्य प्रेमकी—सेवाकी ही इच्छा की है, चाहे कितने ही जन्म हों । यह उनकी विशेषता है ।

प्रियतम-मुख सुखभरा

नहीं चाहता राज्य चक्रवर्ती मैं नहीं चाहता स्वर्ग ।
नहीं चाहता विधि-सुरपति-पद नहीं चाहता मैं अपवर्ग ॥
नहीं चाहता योगसिद्धि मैं नहीं चाहता पद-पाताल ।
नहीं चाहता मुक्ति चतुर्विध दुर्लभ सालोक्यादि विशाल ॥
जन्म-जन्ममें बनी रहे मन प्रियतमकी स्मृति मधुर अबाध ।
रहे छलकता स्याम-रूप-रस-सुधा-उदधि उर मध्य अगाध ॥
डूबा रहूँ उसीमें संतत रहे न अन्य राग-रति-काम ।
दिखता रहे सदा मुसकाता प्रियतम-मुख सुखभरा ललाम ॥

भगवत्प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता

(लेखक—पं० श्रीउमाशंकरजी अग्निहोत्री शास्त्री, मानसमहारथी, भागवताचार्य)

श्रीकलिपावनावतार, कलिकालिमानाशक, कविकुल-चूडामणि, कविताकाननकेसरी, काव्यकाननकलाधर श्रीमद्-गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने अनेकानेक ग्रन्थों, संतों, मतान्तोंका निष्कर्ष निकालकर संसारके समक्ष उपस्थित किया, जिसको संसारने बड़े आदरके साथ स्वीकार किया। वह तथ्य है—

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥
(मानस, लंकाकाण्ड १११ । ४)

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥
भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
(मानस, उत्तरकाण्ड)

भारतीय वाङ्मय-भण्डारमें इतने ग्रन्थ हैं कि यदि उनकी गणना की जाय तो कई ग्रन्थ ही बन जायँ। परंतु भूतभावन चन्द्रमौलिकी अहैतुकी कृपासे श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीने उस सारे भण्डारका सार एक समासरूप रामचरितमानसमें रख दिया और विचारपूर्वक विवादोंको शान्त करनेके लिये निष्कर्षरूप यह सिद्धान्त उपस्थित किया—

भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥
(मानस, अरण्यकाण्ड १५ । २)

प्रमाण—वालि वानरेन्द्र है। पुराणोंमें लिखा है कि वह संध्या-पूजा करने समुद्रके तटपर जाया करता था। सत्संग भी करता था। अन्यायी नहीं था। पूर्ण विवेकी भी नहीं था। सुग्रीवके कारण वैर ठन गया। फलतः रामजीके दर्शन हुए—

परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठि देखि प्रभु आगें॥
(मानस, किष्किन्धाकाण्ड ८ । १)

मुक्तिका उपासक वालि रामजीसे ज्ञानकी चर्चा करने लगा; परंतु जो उसने संतों, प्रेमियों, ज्ञानियोंसे श्रवण किया था, जिसका निर्णय नहीं मिल पाया था, जिसका समाधान नहीं है, जो अवर्णनीय है और जिसका निरूपण नहीं है; वही सर्वाधिष्ठान, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, सर्वरूप, सर्वातीत, सर्वमान्य आज मुनिवेष धारण कर सम्मुख आ गया। भली प्रकार पहचाना, परखा; पश्चात् भक्त होकर बोला—

स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ॥
पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
(मानस, किष्किन्धाकाण्ड ८ । १-२)

अपरिचितसे परिचित हुआ, विवाद हुआ, बाद अपनी भूल स्वीकार की और अपना हृदय चढ़ा दिया—

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यान प्रद प्रभु लीजिऐ।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिऐ॥
राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥
(मानस, किष्किन्धाकाण्ड)

अतः सिद्ध हुआ मुक्तिसे भक्ति श्रेष्ठ है।

श्रीरामकथारसिक, रामप्रेमपोषित, श्रीरामबाँह-छाँह-प्राप्त श्रीचन्द्रमौलि-कृपाप्राप्त; नीलाचल पर्वतपर नित्य नवीन नवनीत वितरित करनेवाले श्रीकाकभुशुण्डिजी महाराजके लिये, जिनका जीवन ही शिक्षाप्रद है, श्रीलोमशमुनि चाहते थे कि मेरे प्रभावसे ये मुक्तिमार्ग, निर्गुण मत, ज्ञानकी श्रेष्ठता स्वीकार कर लें। परंतु सत्य तो सत्य ही है। श्रीकाकजी कहते हैं—

तब मैं निर्गुन मत करि दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी॥
(मानस, उत्तरकाण्ड ११० । ७)

भक्त अभय होता है—

लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई॥
(मानस, उत्तरकाण्ड १११ । ८)

भक्त प्रत्येक दशामें हर्षित रहता है, अपने भगवान्की कृपाको ही देखा करता है। अनिष्ट करनेवालेको भी प्रणाम करता है। भयभीत कभी नहीं होता।

तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ॥
(मानस, उत्तरकाण्ड ११२ क)

तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहिं बरना॥
(मानस, उत्तरकाण्ड)

भजनका अर्थ ही सेवा करना है और सेवा भक्त ही करता है। भक्त निष्कामी होता है, पुरुषार्थी होता है, वीर होता है। वह यही चाहता है कि मैं बारंबार जन्म ग्रहण करूँ और शरीर, मन, वाणी, इन्द्रियोंसे सदा-सर्वदा केवल भगवान्की सेवा करता रहूँ।

मृत्युके समय भगवन्नामका महत्त्व

(लेखक—श्रीश्रीकान्तशरणजी, समस्त तुलसीसाहित्यके भाष्य एवं तिलककार)

महत्त्व-प्रमाण

मृत्युके समयका एक बारका भी नामोच्चारण अत्यन्त महत्त्वशाली है; यथा—

जा कर नाम मरत मुख आवा । अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥
(रामचरितमानस, अरण्य० ३०)

जाको नाम मरत मुनि दुरलभ तुमहि कहाँ पुनि पैहौं ॥
(गीतावली, अरण्य० १३)

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान ॥
(रामचरितमानस, अरण्य० २०)

मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ रामनामेति यः स्मरेत् ।
स पापात्मापि परमं मोक्षमाप्नोति जैमिने ॥
(पद्मपुराण, क्रियायोग०, व्यासवचन)

अर्थ—(श्रीव्यासजी जैमिनिसे कहते हैं कि) हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मृत्यु-कालमें 'राम' इस नामका जो स्मरण करता है, वह पापी भी परम मोक्ष-पद प्राप्त करता है; तथा—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
(गीता ८ । ५)

'जो मनुष्य अन्तकालमें भी मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करता है, वह मेरे स्वरूपको प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है ।'

यहाँतक मृत्युकालके नामोचारणके प्रमाण लिखे गये । अब नाम-श्रवणका माहात्म्य सुनिये—

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव ॥
(श्रीरामोत्तरतापनी० ३ । ८)

'श्रीरामजीने श्रीशिवजीसे कहा है कि जिस किसी मरनेवालेके दाहिने कानमें आप यह मन्त्र (राममन्त्र) देंगे, वह मुक्त हो जायगा ।'

कासीं मरत जंतु अवलोकी । जासु नाम बल करउँ बिसोकी ॥
(रामचरितमानस, बाल० ११८)

माहात्म्य-विमर्श

मृत्युकालके नाम-स्मरणका ऐसा प्रभाव क्यों है ? इसका वेद-वाक्यके आधारपर विचार किया जाता है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।
(यजुर्वेद ३२ । ३)

'जिस परमात्माका नाम और यश महान् हैं, उसकी बराबरीका कोई नहीं है ।'

नामकी महिमा—

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ । कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ ॥
(रामचरितमानस, बाल० २१)

'चारों युगों और चारों वेदोंमें नाम-प्रभाव कहा गया है । कलिकालमें विशेषरूपमें यही उपाय है; क्योंकि इसमें अन्य उपायोंका अभाव-सा है; इससे इसमें नामका प्रभाव प्रत्यक्ष है । तथा—

ध्यानु प्रथम जुग मखबिधि दूजें । द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ॥
कलि केवल मल मूल मलीना । पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥
नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग जाला ॥
(रामचरितमानस, बाल० २६)

अर्थात् सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें क्रमशः ध्यान, यज्ञ और पूजन विधिरूपमें रहते हैं; नामाराधनसे इन विधियोंकी रक्षा एवं पूर्ति होती है । यथा—

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी । बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ॥
(रामचरितमानस, बाल० २१)

'कलि केवल—कलिकालमें यह नाम केवल (विधियोंके बिना स्वयं) ही सब कल्याण करता है; क्योंकि कलियुग पापमूल एवं मलिन है; इसमें लोग पाप-सागरके मीन हो रहे हैं । अतः राजारूप रामनामके संरक्षणसे ही अन्य साधन सिद्ध होते हैं ।' तथा—

नाम रामको अंक है सब साधन हैं सून ।
अंक गए कछु हाथ नहिं अंक रहें दस गून ॥
(दोहावली १०)

'श्रीरामका नाम अङ्क (१, २, ३) के समान है और समस्त साधन (कर्म, योग, ज्ञान आदि) शून्य (०) के समान हैं। अङ्कके चले जानेपर हाथमें कुछ नहीं रह जाता (शून्यका अर्थ कुछ न रहना है) और अङ्क रह जानेपर वे शून्य दसगुने (१०, २०, ३०) महत्त्व पाते हैं।' तथा—

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
(रामचरितमानस, बाल० २६)

'भक्ति-वैराग्य-विज्ञान-शम-दान-दम,
नाम आधीन साधन अनेकम्॥'
(विनयपत्रिका ४६)

इसीसे नामको सदासे महान् यश प्राप्त होता आया है; यथा—

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
(रामचरितमानस, बाल० २६)

कुछ उदाहरण

(१) जैसे कोई यशस्वी वैद्य अच्छे-अच्छे देशोंमें जड़ी-बूटीकी ओषधियोंमें कुछ रसायन देकर बहुतोंका कल्याण करता है, इससे उसका यश फैल जाता है। संयोग-से यदि वह किसी ऐसे देशमें जा पहुँचता है, जहाँ जड़ी-बूटी नहीं मिलती; वहाँ वह रसायन मात्रसे रोगियोंकी रक्षा कर अपने यशकी रक्षा करता है और अपने नामकी लज्जा रखता है; वैसे यशस्वी राम-नाम भी विधिहीन कलिकालमें अपने ही प्रभावरूपी रसायनसे अपनी लज्जा रखता है। ध्यान, यज्ञ और पूजन आदि विधियोंके अभाव-की भाँति नाम-जप विधिके अभावमें भी अपने यशकी रक्षा करता है। गोस्वामीजीने कहा है—

सो धौं को जो नाम लाज ते नहिं राख्यो रघुबीर।
कारुनीक बिनु कारन ही हरि हरी सकल भव भीर॥ १॥
बेद-बिदित जग-बिदित अजामिल बिप्रबन्धु अघ-धाम।
घोर जमालय जात निवारयो सुत-हित सुमिरत नाम॥ २॥
पसु पाँमर अभिमान-सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह।
सुमिरत सकृत सपदि आये प्रभु हरयो दुसह उर-दाह॥ ३॥
ब्याध निषाद गीध गनिकादिक अगनित औगुन मूल।
नाम-ओट तें राम सबनि की दूरि करी सब सूल॥ ४॥
(विनय-पत्रिका १४४)

श्रीरामजी अपने नामकी लज्जा रखनेके लिये 'बिनु कारन ही'—नाम-जप विधि-हीन जापककी भी भव-भीरका हरण करते हैं; उसके प्रति करुणा हो आती है और उसके रक्षार्थ आपके हृदयमें त्वरा और विह्वलता जग जाती है। यथा—

अंतरजामिहु तें बड़ बाहेर जामि हैं, जे राम नाम लिये तें।
धावत धेनु पेन्हाइ लवाई ज्यों बालक बोलनि कान किये तें॥
(कवित्त०, उत्तर० १२९)

इसी पदमें आगे अजामिल और गजेन्द्रादिके कई उदाहरण हैं—

(२) अजामिलने बेटेके लक्ष्यपर 'नारायण' नाम लिया है। उच्चारण ठीक था, पर लक्ष्य ठीक नहीं था। इसपर भगवान्के पार्षदोंने वाद होनेपर अन्तमें कहा कि इसने यमदूतोंसे डरकर 'नारायण' यह नाम पुकारा है। इस डरसे बचानेवाले तो भगवान् नारायण ही हैं (बेटा नारायण नहीं)। अतः यह भगवान्के द्वारा ही रक्षणीय है।

(३) गजेन्द्रके हृदयका लक्ष्य ठीक था, पर उच्चारण नहीं था। उसने डूबनेके समय भगवान्का ध्यान रखकर सूँड़का अग्रभाग फैला दिया कि क्षणभर भी बच जाऊँ। इतनेमें भगवान्ने 'रा' उच्चारणका संकेत मान लिया; फिर डूबनेसे प्रथम ही भगवान्ने बचा लिया। डूबनेमें मुँह बंद करनेमें 'म' का संकेत भी हो जाता, पर आधे नामके संकेतपर ही उसकी रक्षा हो गयी; यथा—

'तरयौ गयंद जाके अर्द्ध नाँय।' (विनयपत्रिका ८३)

यहाँ नाम लेनेके संकेतमात्रपर रक्षा हुई। ऐसे ही व्याधादिके भी भाव हैं। ऐसे यशस्वी श्रीराम-नामका अन्तके समय एक बार स्मरणपर मुक्ति होनेपर विचार करना है—

(१) अन्तका एक बारका भी नामोच्चारण इसके समस्त पापोंको भस्म कर देता है; यथा—

'जासु नाम पावक अघ तूला।'
(रामचरितमानस, अयोध्या० २४७)

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥
(श्रीमद्भा० ६। २। १४, १८)

'संकेतसे, परिहासमें, स्तोभ या अवहेलनापूर्वक भी भगवान्का नाम लेनेसे समस्त पाप नष्ट होते हैं। अज्ञान अथवा ज्ञानपूर्वक किया हुआ पुण्यश्लोक भगवान्का नाम-

उच्चारण मनुष्यके पापोंको उसी प्रकार जला देता है, जैसे किसी प्रकार डाला हुआ ईंधन अग्निमें भस्म हो ही जाता है। फिर साथ ही, प्राण निकल जानेपर और पाप होते नहीं, इससे यह मनुष्य नाम-प्रभावसे मुक्त हो जाता है। यथा—

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

(रामचरितमानस, उत्तर० १२९)

(२) अन्तमें नामोच्चारणके साथ शरीर छोड़नेमें भगवान् अपने नामकी महत्ता सिद्ध करते हुए यह मान लेते हैं कि इसने मेरा नाम लेकर जो शरीर छोड़ा है, इसका तात्पर्य यह कि अपना शरीर मुझे संकल्प कर दिया। अतः इस शरीरके सम्बन्धवाले एवं इसके पूर्व शरीरोंके सभी पाप और पुण्य भी मुझे ही पचाना चाहिये, बस, इसपर यह सभी पापों और पुण्योंसे रहित होकर मुक्त हो जाता है। नामसे ही भगवान् अपने नामवाले स्वरूप एवं धाम-प्राप्तिकी आकाङ्क्षा भी पूरी करते हैं। प्रमाण ऊपर आ गये हैं।

मृत्युके समय भगवन्नामका महत्त्व

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड, वेदाचार्य)

चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण करता हुआ जीवात्मा भगवत्कृपासे मनुष्य-योनिको प्राप्त करता है। जीव जब गर्भावस्थामें आता है, तो वह वहाँके भयंकर कष्टोंसे पीड़ित होकर अपने आत्मोद्धारके लिये भगवान्‌की स्तुति करता हुआ सर्वदा भगवन्नामोच्चारण करनेकी प्रतिज्ञा करता है। किंतु वह जीव जब गर्भसे बाहर आता है, तब अपनी की हुई प्रतिज्ञाको भूलकर सांसारिक मायामोहमें आसक्त हो जाता है। सांसारिक मायामोहमें आसक्त होनेके कारण वह जीव आत्मोद्धार न कर वही कर्म करता है, जिससे बन्धनको प्राप्त होकर सर्वदा जन्म-मरणके चक्रमें फँसा रहता है—

'तदर्थं कुरुते कर्म यद् बद्धो याति संसृतिम्।'

(श्रीमद्भागवत ३। ३१। ३१)

मानव-जन्म बड़ा ही दुर्लभ है। भगवत्कृपासे मानव-जन्मको प्राप्तकर जो मनुष्य आत्मोद्धार नहीं करता, उसका मानव-जन्म धारण करना ही व्यर्थ है। अतः मनुष्यको आत्मोद्धारार्थ अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। आत्मोद्धारके लिये भगवन्नामोच्चारण ही सर्वश्रेष्ठ सहज साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य आत्मोद्धार कर सकता है।

भगवान्‌ने मनुष्यके शरीरमें हाथ, पैर, मुख, वाणी, कान, नाक, मन, शिर आदि जो अङ्ग दिये हैं, वे सभी भगवत्सेवार्थ दिये हैं। अतः भगवान्‌के दिये हुए हाथ, पैर आदिसे भगवान्‌के तत्-तत् अङ्गकी सेवा करनी चाहिये।

भगवान्‌ने मनुष्यके शरीरमें मुखका जो निर्माण किया है, वह केवल भोजन करनेके लिये नहीं, किंतु भगवन्नामोच्चारण करनेके लिये किया है। अतः मनुष्यको भगवन्नामोच्चारण करके ही भोजन करना चाहिये। जो मनुष्य भगवन्नामोच्चारण न कर केवल भोजन करता है, वह महापापी और भगवान्‌का विरोधी है।

वस्तुतः मुखकी यथार्थ शोभा और यथार्थ उपयोग भगवन्नामोच्चारण करनेसे ही है। जो मनुष्य अपने मुखसे भगवन्नामोच्चारण नहीं करता, उसका मुख निरर्थक ही है। इसलिये मनुष्यको अपने मुखको सार्थक करनेके लिये सर्वदा भगवन्नामोच्चारण करना चाहिये।

भगवान्‌ने मनुष्यके मुखमें जो वाणी दी है, वह व्यर्थकी बातें करनेके लिये नहीं दी है, किंतु भगवान्‌की लीलाओंके गायन करनेके लिये दी है। जो मनुष्य अपनी वाणीके द्वारा भगवान्‌की लीलाओंका गायन नहीं करता, उसकी वाणी मेंढककी जीभके सदृश कही गयी है—

जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥

(श्रीमद्भागवत २। ३। २०)

'जिस मनुष्यकी जीभ भगवान्‌की लीलाओंका गायन नहीं करती, वह मेंढककी जीभके समान टर्र-टर्र करनेवाली है। उसका तो न रहना ही अच्छा है।'

और भी कहा है—

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः ।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्‌गुणोदयम् ॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥
न तद् वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद् ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंससेवितं
यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥

(श्रीमद्भागवत १२ । १२ । ४८-५०)

'जिस वाणीके द्वारा अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णके लीला, गुण आदिका उच्चारण नहीं होता, वह भावपूर्ण होनेपर भी निरर्थक है, सुन्दर होनेपर भी र है और सर्वोत्तम विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली भी असत्कथा है । जो वाणी और वचन भगवान्‌के परिपूर्ण रहते हैं, वे ही परम पावन हैं, वे ही ाय हैं और वे ही परम सत्य हैं ।

जिस वाणीसे भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र यशका ाता है, वही परम रमणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण ी जान पड़ती है । उससे अनन्तकालतक मनको न्दकी अनुभूति होती रहती है । मनुष्योंका समस्त चाहे वह समुद्रके समान लंबा और गहरा क्यों न स वाणीके प्रभावसे सदाके लिये सूख जाता है ।

जिस वाणीसे जगत्‌को पवित्र करनेवाले भगवान् ाके यशका कभी गान नहीं होता, वह कौओंके उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अत्यन्त अपवित्र ानस-सरोवरनिवासी हंस अथवा ब्रह्मधाममें विहार ले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त उसका सेवन नहीं करते । निर्मल हृदयवाले साधुजन तो वास करते हैं, जहाँ भगवान् रहते हैं ।'

गवान्‌ने मनुष्यको जो जिह्वा दी है, वह खासकर मोच्चारणके लिये ही दी है । अतः जो मनुष्य ्की दी हुई जिह्वाके द्वारा भगवन्नामोच्चारण करता अवश्य ही मोक्षकी सीढ़ियोंपर आरूढ़ हो सकता है । जो मनुष्य भगवान्‌की दी हुई जिह्वाके द्वारा भगव मोच्चारण नहीं करता, वह मोक्षकी सीढ़ियोंपर आ नहीं हो सकता । कहा भी है—

जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत् ।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणिं स नारोहति दुर्मतिः ॥

'जो मनुष्य जिह्वा प्राप्त करके भी कीर्तनीय भगवा विष्णुका कीर्तन (उच्चारण) नहीं करता, वह कुत्सि बुद्धिवाला मनुष्य मोक्षकी सीढ़ियोंको पाकर भी उनप चढ़नेमें सर्वदा असमर्थ रहता है ।'

अतः मनुष्यको अपनी जिह्वाद्वारा भगवन्नामोच्चारण कर मोक्षकी सीढ़ियोंपर आरूढ़ होना चाहिये । भगवन्नामोच्चारणद्वारा मोक्षकी सीढ़ियोंपर आरूढ़ होनेसे ही मनुष्य परम पद (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है ।

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥

(श्रीमद्भा० ११ । ९ । २९)

'यह मानव-शरीर यद्यपि अनित्य और मृत्युग्रस्त है तथापि इससे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति हो सकती है । इसलिये अनेक जन्मोंके बाद यह अत्यन्त दुर्लभ मानव-शरीर पाकर विचारशील मनुष्यको शीघ्रातिशीघ्र मृत्युसे पहले ही मोक्ष-प्राप्तिके लिये प्रयत्न कर लेना चाहिये । मानव-जीवनका मुख्य उद्देश्य मोक्ष-प्राप्ति ही है, विषय-भोग नहीं । विषय-भोग तो सभी योनियोंमें प्राप्त हो सकते हैं, जो कि मनुष्यके लिये सर्वथा त्याज्य हैं ।'

समस्त योनियोंमें मनुष्य-योनि श्रेष्ठ कही गयी है । मनुष्य-योनिके श्रेष्ठ होनेका कारण यह है कि इसी योनिके द्वारा 'मोक्ष'की प्राप्ति की जा सकती है, अन्य योनियोंके द्वारा नहीं की जा सकती । मनुष्यके लिये 'मोक्ष'की प्राप्ति बहुत ही श्रेष्ठ और आवश्यक वस्तु है । मोक्षकी प्राप्ति होनेके अनन्तर मनुष्य सदाके लिये 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्' के चक्करसे मुक्त हो जाता है । अतः मनुष्यको मोक्षकी प्राप्तिके लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये ।

दुःखका विषय है कि जिस मोक्षकी प्राप्तिसे मनुष्य बारंबार जीवन-मरणके चक्करसे छूट जाता है, उस मोक्षकी प्राप्तिके लिये वह प्रयत्न नहीं करता; किंतु साधारण

ञीकी तरह आहार, निद्रा, भय, मैथुनादि अनित्य
क सुख-भोगोंमें ही आसक्त रहता है। ऐसे
की तुलना उस व्यक्तिसे की गयी है, जो अपने
ी प्राप्तिके लिये ऊपरकी मंजिलमें पहुँचकर, अज्ञानवश
अकस्मात् नीचे गिर जाता है। ऐसे मनुष्यके लिये
ागवान् वेदव्यासजीने कहा है—

'तमारूढच्युतं विदुः।' (श्रीमद्भा० ११। ७। ७४)

अतः बुद्धिमान् मनुष्यको संसार-चक्रसे छुटकारा
के लिये मोक्षप्राप्त्यर्थ सदा प्रयत्न करना चाहिये।
-प्राप्तिके लिये भगवन्नामसे बढ़कर और कोई सुलभ
न नहीं है। इसलिये मनुष्यको मोक्ष-प्राप्तिके लिये
ा भगवन्नामका उच्चारण करना चाहिये।

भगवन्नामका उच्चारण वही मनुष्य कर सकता है, जिसका
वान्में श्रद्धा और विश्वास हो। श्रद्धा और विश्वासके
ा मनुष्य भगवन्नामका उच्चारण नहीं कर सकता।
: भगवन्नामके उच्चारणार्थ मनुष्यको भगवान्के प्रति
ा और विश्वास रखना चाहिये।

भगवान्के प्रति श्रद्धा और विश्वासका होना भी
ावत्कृपापर ही निर्भर है। भगवत्कृपाके बिना मनुष्य
ावान्में श्रद्धा और विश्वास नहीं कर सकता। अतः
ष्ट है कि भगवत्कृपासे ही मनुष्य भगवान्के प्रति श्रद्धा
ार विश्वासको प्राप्तकर भगवन्नामका उच्चारण कर
कता है।

भगवन्नामका उच्चारण मनुष्य-जीवनके प्रारम्भकालसे
ी होना चाहिये। जो मनुष्य अपने जीवनके प्रारम्भकालसे
ी भगवन्नामके उच्चारणका अभ्यास कर लेता है, वही
अपनी मृत्युके समयमें भी भगवन्नामका उच्चारण कर
सकता है। जो मनुष्य अपने जीवनके प्रारम्भकालमें
भगवन्नामके उच्चारणका अभ्यास नहीं करता, उसके लिये
मृत्युके समय भगवन्नामका उच्चारण करना बहुत ही कठिन है।
अतः मनुष्यको अपने जीवनके प्रारम्भकालसे ही भगवन्नाम-
के उच्चारण करनेका अभ्यास कर लेना चाहिये, जिससे
वह अपनी मृत्युके समयमें भी भगवन्नामका उच्चारण कर
सके। जो मनुष्य अपने समस्त जीवनमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक
भगवन्नामका उच्चारण करता रहता है, वह निश्चित ही
जीवन-मरणके चक्करसे छूटकर मुक्त हो जाता है। अतः
मोक्षाभिलाषीको उठते, बैठते, सोते, जागते, चलते,
फिरते आदि सभी अवस्थाओंमें सर्वदा भगवन्नामका उच्चारण
करना चाहिये।

वेदादि सद्ग्रन्थोंका तो यहाँतक कहना है कि जिस
मनुष्यने प्रमादवश जीवनपर्यन्त कभी भी भगवन्नामका
उच्चारण नहीं किया, उसने भी भगवत्कृपासे मृत्युके समयमें
भी विवश होकर यदि भगवन्नामका उच्चारण कर लिया,
तो उसके समस्त पापोंका क्षय हो जाता है और वह
निश्चित ही मुक्तिको प्राप्तकर भगवत्सायुज्य लाभ करता
है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अजामिल है, जिसने मृत्युके
समय अपने पुत्रके व्याजसे भगवान्का नाम लेकर परम
पदको प्राप्त किया*—

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥
(श्रीमद्भा० ६। २। ४९)

'अजामिल-जैसे पापीने मृत्युके समय पुत्रके बहाने
भगवान्के नामका उच्चारण किया, जिसके फलस्वरूप उसे
परमपद (वैकुण्ठ) की प्राप्ति हुई। फिर जो लोग श्रद्धा-
भक्तिसे सावधान होकर भगवन्नामका उच्चारण करते हैं,
उनकी भगवद्धामकी प्राप्तिमें अर्थात् उनके मुक्त होनेमें
तो संदेह ही क्या है!'

प्राणत्यागके समय भगवन्नामके उच्चारण और स्मरण
करनेसे मनुष्य 'मोक्ष' प्राप्त करता है, इस विषयका उल्लेख
भागवत, गीता आदि शास्त्रोंमें बारंबार किया गया है—

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये॥
(श्रीमद्भा० ३। ९। १५)

"जो मनुष्य प्राणत्यागके समय आपके (भगवान्के)
अवतार, गुण और कर्मोंको बतलानेवाले 'गोविन्द', 'वासुदेव',
'जनार्दन' आदि नामोंका विवश होकर भी उच्चारण करते
हैं, वे अनेकों जन्मोंके पापोंसे तत्काल मुक्त होकर माया
आदिके आवरणोंसे रहित होकर ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं।
आप नित्य अजन्मा हैं; मैं आपकी शरण स्वीकार
करता हूँ।"

* अजामिलोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु।
प्राप्तवान् परमं धाम तं वन्दे लोकसाक्षिणम्॥
(पद्मपुराण)

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः
पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान् ।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥
(श्रीमद्भा० १२ । ३ । ४४)

'मनुष्य मरनेके समय आतुर अवस्थामें अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर भी यदि भगवान्‌के किसी एक नामका उच्चारण कर ले, तो वह मनुष्य समस्त कर्मबन्धनसे मुक्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त करता है। किंतु फिर भी इस कलियुगमें कलियुगसे प्रभावित होकर प्राणी उस भगवान्‌की आराधना नहीं करते, यह बड़े दुःखकी बात है।'

जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥
(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड ३० । ३)

मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ रामनामेति यः स्मरेत् ।
स पापात्मापि परमं मोक्षमाप्नोति जैमिने ॥
(पद्मपुराण, क्रियायोग०)

'हे जैमिनि ! जो मृत्युकालमें रामनामका स्मरण करता है, वह पापात्मा होनेपर भी परम मोक्ष-पदको प्राप्त करता है।'

भगवान् श्रीकृष्णने अपने नामके स्मरणके महत्त्वके सम्बन्धमें अर्जुनसे यों कहा है—

नामस्मरणमात्रेण प्राणान् मुञ्चन्ति ये नराः ।
फलं तेषां न पश्यामि भजामि तांश्च पार्थिव ॥
तस्मान्नामानि कौन्तेय भजस्व दृढचेतसा ।
राम राम सदा युक्तास्ते मे प्रियतमाः सदा ॥

''हे पार्थ ! जो मनुष्य मेरे नामका स्मरण करते हुए प्राणत्याग करते हैं, उनके फलको मैं स्वयं भी नहीं कह सकता हूँ, किंतु मैं स्वयं उनका भजन करता हूँ। इसलिये स्थिरचित्त होकर भगवान्‌के नामका ही स्मरण और कीर्तन करना चाहिये। जो 'राम-राम' इस प्रकार निरन्तर जपते रहते हैं, वे मेरे अत्यन्त प्रिय हैं।''

भगवान् बड़े ही दयालु हैं। वे अपना नाम-स्मरण करनेवाले भक्तको सदा स्मरण करते हैं। भग[illegible] करनेवाला कोई भक्त यदि अपने पूर्वजन्मके सं[illegible] कारण मृत्युकालमें ज्ञानशून्य (बेहोश) होकर स्मरण करनेमें असमर्थ हो जाता है, [illegible] भगवान् स्वयं स्मरण करते हैं और उसे पर[illegible] हैं। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

ततस्तं म्रियमाणं तु काष्ठपाषाणसंनिभ[illegible]
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गति[illegible]

'काष्ठ और पाषाणके सदृश म्रियमाण उस[illegible] मैं स्वयं स्मरण करता हूँ और उसको परमगति देत[illegible]

और भी कहा है—

कफवातादिदोषेण मद्भक्तो न च मां स्मरे[illegible]
तस्य स्मराम्यहं नो चेत् कृतघ्नो नास्ति मत्पर[illegible]

'मेरा भक्त यदि कफ-वातादि दोषोंके कारण [illegible] समय) मेरा स्मरण करनेमें असमर्थ होता है, स्वयं उसका स्मरण करता हूँ। यदि मैं अपने [illegible] करनेवाले भक्तको मृत्युके समय भूल जाऊँ, [illegible] बढ़कर कोई कृतघ्न नहीं हो सकता।'

भगवान्‌की दयाशीलता और कृपाशीलता अ[illegible] है। वे अपने भक्तकी जिम्मेदारी जीवनपर्यन्ततक[illegible] स्वयं वहनकर सदा उसका सर्वप्रकारसे कल्याण कर[illegible] अतः भगवद्भक्त मनुष्यको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपने वाणी, मन, बुद्धि, इन्द्रिय और आत्मा आदि भगवान्‌में समर्पितकर सर्वदा उनके नाम, लीला स्वरूपका स्मरण और उच्चारण करना चाहिये।

अब हम उन सच्चिदानन्द भगवान्‌को प्रणाम[illegible] हुए अपने लेखको समाप्त करते हैं, जिनके स्मरण[illegible] मनुष्यके समस्त प्रकारके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं—

प्रयाणे चाप्रयाणे च यन्नाम स्मरतां नृणाम् ।
सद्यो नश्यन्ति पापौघा नमस्तस्मै चिदात्मने ॥

'मृत्युकालमें अथवा जीवनकालमें भगवान्‌का स्मरण करनेवाले मनुष्योंके सभी प्रकारके पाप त[illegible] नष्ट हो जाते हैं। उन चिदात्मा भगवानको नमस्कार है[illegible]

वेदोंमें पुनर्जन्म और मोक्षका सैद्धान्तिक विवेचन

(लेखक—श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा)

मोक्ष और पुनर्जन्म-सम्बन्धी प्रश्नके समाधानके लिये पूर्णरूपसे 'शब्द-प्रमाण'का ही सहारा लेना पड़ता है जब शब्दप्रमाण पुनर्जन्म और मोक्षके सिद्धान्तोंका न करते हैं, तब हमें इन सिद्धान्तोंको स्वीकार करना ड़ता है।

शब्द क्या है? न्यायदर्शनकी परिभाषाके अनुसार तोपदेश' ही शब्द है[1] अर्थात् आप्तोंके द्वारा कहे गये न ही शब्दप्रमाण हैं। आप्त कौन है? न्यायदर्शनके ल्याकार वात्स्यायनके अनुसार 'आप्त वही हैं कि जिन्होंने का साक्षात्कार किया हो।[2]' इस धर्मका ज्ञान प्राप्त करना नशील मनुष्यका स्वभाव है और मनुजीके अनुसार 'धर्मकी ासा रखनेवालोंके लिये श्रुति या वेद ही परम प्रमाण ।[3]' उन परम प्रमाणभूत वेदोंका पुनर्जन्म और मोक्षके में क्या मन्तव्य है, इसीका संक्षिप्त विवेचन इस लेखका श्य है।

आगे-पीछे जानेवाला अमर्त्य

वेदोंमें अप्रत्यक्ष जगत्‌की पहेलीका हल निकालनेके रेमें महर्षि दीर्घतमाका 'अस्यवामीय सूक्त' (ऋग्वेद १। ६४) अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उसी सूक्तका ८वाँ मन्त्र एक अमर्त्य तत्त्वका वर्णन करता है—'एक मर तत्त्व दूसरे मरणशील तत्त्वके साथ एक स्थानपर कर अपनी शक्तिसे बँधकर आगे-पीछे जाता है। इन नों तत्त्वोंमेंसे एक तत्त्वको तो मनुष्य प्रत्यक्ष देखते हैं और सरेको नहीं देख पाते[4]।'

इस मन्त्रमें अमर तत्त्वका संकेत आत्माकी ओर है और रणशीलका संकेत शरीरकी ओर। इनमेंसे एक तत्त्व शरीर'को तो मनुष्य देख और जान सकते हैं और दूसरा तत्त्व अमर आत्मा' उनके लिये अप्रत्यक्ष ही रहता है। परस्पर विरुद्ध होते हुए भी ये दोनों तत्त्व सयोनिः अर्थात् एक ही स्थानपर रहनेवाले और शाश्वत अर्थात् चिरन्तन हैं। आत्मा शरीरके द्वारा ही प्रकट होता है और शरीरमें चैतन्यताका कारण आत्मा है; इस प्रकार दोनों परस्पराश्रित हैं। शरीर आत्माका भोगाधिष्ठान है।[5] इसी शरीरमें आकर आत्मा अपने पूर्वकृत कर्मोंका भोग भोगता है।

आत्मा जब इस शरीरके साथ संयुक्त हो जाता है, तब वह अनेक प्रकारके प्रपञ्चोंमें पड़ जाता है और ये प्रपञ्च ही उसके लिये बन्धन सिद्ध होते हैं। ये बन्धन वस्तुतः उसके अपने न होकर सत्त्व, रज और तम—इन गुणोंसे युक्त प्रकृतिके ही होते हैं। इनमें तमोगुणसे बँधा हुआ मनुष्य 'कामी' बनता है, रजोगुणसे लिप्त होकर 'अर्थवान्' बनता है और सत्त्वगुणसे युक्त होकर 'धार्मिक' बनता है।

वेदके उपर्युक्त मन्त्रमें आये हुए 'अपाङ्' और 'प्राङ्'—ये दोनों शब्द क्रमशः पुनर्जन्म और मोक्षके वाचक हैं। पुनर्जन्म और मोक्ष—दोनों ही हालतोंमें आत्माको इस शरीरमें आना ही पड़ता है; पर जो आत्मा इस शरीरमें आकर प्रकृतिके तमोगुण या रजोगुणसे बँध जाता है, वह अपाङ् अर्थात् पीछेकी तरफ—पृथ्वीपर लौटता है, यही वस्तुतः पुनर्जन्म है। पर जो आत्मा इस शरीरमें आकर भी धार्मिक प्रवृत्तिका ही रहता है, वह प्राङ् अर्थात् आगे बढ़ता जाता है। दूसरे शब्दोंमें वह मोक्षकी तरफ बढ़ता चला जाता है।

दो सुपर्ण

दीर्घतमाके इसी सूक्तके बीसवें मन्त्रमें ऋषिने एक रूपकके द्वारा इस सिद्धान्तकी विवेचना की है। इस मन्त्रमें बताया है—

'दो मित्र रूपसे रहनेवाले सुपर्ण एक ही वृक्षपर बैठे हुए हैं। उनमें एक इस वृक्षके मीठे-मीठे फलोंको खाता है, जब कि दूसरा सुपर्ण फलोंको न खाता हुआ केवल प्रकाशित होता है[6]।' यह वृक्ष प्रकृतिका प्रतीक है और इस

---

१. आप्तोपदेशः शब्दः। (१। १। ७)

२. आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा। (१। १। ७ की टीका)

३. धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः। (मनुस्मृति २। १३)

४. अपाङ् प्राङ् एति स्वधया गृभीतः अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥
(ऋग्वेद १। १६४। ३८)

५. भोगाधिष्ठानं शरीरम्। (न्यायदर्शन)

६. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया: समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥
(ऋग्वेद १। १६४। २०; मुण्डक० ३। १। १)

प्रकृतिरूपी वृक्षपर आत्मा और परमात्मारूपी दो पक्षी बैठे हैं, जिनमें आत्मारूपी पक्षी तो इस प्रकृतिके फलोंको खाता है और परमात्मारूपी पक्षी केवल द्रष्टाके रूपमें देखता रहता है । इस वृक्षके फलोंको खाना ही जीवात्माके बन्धनका कारण है; क्योंकि इन फलोंमें आसक्त होकर वह अपना स्वत्व खो बैठता है और उस स्वत्वके खोनेसे उसकी शक्ति कम हो जाती है और शक्तिके कम हो जानेके कारण वह परतन्त्र हो जाता है; और इस परतन्त्रताके कारण वह जन्म-मरण या पुनर्जन्मके चक्रमें पड़ता है । पर जब वह भोगेच्छाको छोड़कर अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है, तभी वह पूर्णरूपसे स्वाधीन हो जाता है और मोक्षका अधिकारी बन जाता है ।

वस्तुतः आत्माका सच्चा स्वरूप वह नहीं है, जो बन्धनमें पड़े हुए आत्माका देखा जाता है । आत्माका सच्चा स्वरूप सच्चिदानन्द है । वह परमात्माका एक अंश है । जिस प्रकार एक चिनगारी अग्निका अंश है और वह चिनगारी भी अग्निके समस्त गुणोंको सूक्ष्मरूपमें समेटे रहती है, उसी प्रकार यह आत्मा भी परमात्माका एक अंश होनेके कारण परमात्माके सभी गुणोंको अपनेमें समेटे रहता है । गीतामें भी भगवान् कृष्णने कहा है कि 'मेरा ही अंश इस मर्त्यलोकमें जीवके रूपमें अभिव्यक्त हुआ है[7] ।' पर इस जीवात्मामें जो शक्ति है जिसके लिये वेदमें 'स्वधा' शब्द आया है, वह शक्ति ही इसके सच्चे स्वरूपको ढक देती है और उस स्वधाशक्तिसे प्रभावित होकर यह आत्मा अपनेको बन्धनमें समझने लगता है । इसीको यजुर्वेदके शब्दोंमें इस प्रकार कहा जा सकता है—

'सोनेके पात्रसे सत्य ढका हुआ है[8] ।' चमक-दमकवाली माया जीवात्माके सच्चे स्वरूपको ढक देती है। उस अवस्थामें वह आत्मा अपनी शक्तियोंसे युक्त होकर मर्त्य शरीरको अपना स्थान बनाकर एक शरीरसे दूसरे शरीरमें विचरता है, यही इसका 'पुनर्जन्म' है ।

पर बन्धनसे हीन होनेपर आत्मा अपने सच्चे स्वरूपको जब पहचान लेता है, तब वह परमात्मामें ही मिल जाता है । उपनिषद्के अनुसार 'ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है[9] ।' एक तत्त्वदर्शीके लिये परमात्मा ः एक ही तत्त्व है । यजुर्वेदका भी कथन है कि प्रजापति गर्भके अंदर विचरता- हुआ अनेक रू होता है[10] ।' बुद्धिमान् जन उस परमात्माके स् देखते हैं, जिसमें यह सारा संसार स्थित है । 'ज इस अवस्थापर पहुँच जाता है, तब उसके हृदयक टूट जाती हैं, सभी संशय समाप्त हो जाते हैं अ कर्म भी क्षीण हो जाते हैं ।'[11] यही 'मोक्ष' है । इ उसके सभी प्रकारके बन्धन टूट जाते हैं । 'यह साधनसम्पन्न होकर मुक्तावस्थामें द्यौसे पृथ्वीतक में घूम आता है । चारों ओर भ्रमण करता हुआ स् का दर्शन करता है और सारी दिशाओंमें घूमता है । फैले हुए तन्तुओंको चीरकर वह आनन्दका अनुभव है और वह आनन्दस्वरूप ही हो जाता है[12] ।'

दो मार्ग

ऋग्वेदमें (१० । ८८ । १५) देवयान और पि इन दो मार्गोंका वर्णन है । पूर्वजन्मके चक्रमें पड़ा आत्मा पितृयाणसे गमन करता है और मोक्षका अधि आत्मा देवयानसे । अपने कर्मोंका फल भोगनेके जीव इन दो मार्गोंसे जाता है । द्यौ और पृथ्वीके ब जितने भी पदार्थ हैं, वे सब इन्हीं दो मार्गोंमें जाते हैं ।

देवयानका मार्ग ही तत्त्वज्ञानीको स्वर्गकी ओर जाता है । 'यज्ञ करते हुए जो याजक चैतन्याग्नि आरोहण करते हैं, वे नाककी पीठसे द्युलोककी ओर ज हैं । उन्हीं उत्तम कार्य करनेवालोंको नभमें स्वर्गको ले जा वाला देवयानका मार्ग दिखायी देता है[13] ।' वेदका य मन्त्र उपनिषदोंमें जाकर और अधिक विस्तृत हुआ । जिसे यह

७. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (१५ । ७)

८. हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । (यजु० ४० । १७)

९. ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।

१०. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर जायमानो बहुधा विजायते ।
(यजु० ३१ । १९)

११. भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥
(योगशिखोपनिषद् ५ । ४५)

१२. यजुर्वेद (३२ । १२)।

१३. अथर्व० (१८ । ४ । १४) व्याख्या डॉ० मुन्शीराम शर्मा ।

'नाक' कहा है, वही उपनिषद् (मुण्डक० १ । २ । ११) में 'सूर्यद्वार' कहा गया है—'सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति **यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा**। विगत राग-द्वेषवाले सुकृतीजन सूर्यद्वारसे उस लोकको जाते हैं कि जहाँ वह अव्यय और अमृत पुरुष रहता है।' यह अमृततत्त्वकी प्राप्ति ही मोक्ष है। 'यह स्वर्गलोक अमृतसे व्याप्त है[१४]।' इसलिये—'हे मनुष्य! ऋतके इस पन्थको देख, जिसपर साधु, सुकृती और आङ्गिरस चलते हैं। इन्हीं मार्गोंसे तू स्वर्गको चल, जहाँ आदित्यदेव मधुका भक्षण करते हैं[१५]।'

मोक्षलोककी दिव्यता

ऋग्वेदमें इस मोक्षलोककी दिव्यताका बड़े सुन्दर शब्दोंमें वर्णन है। वेदका ऋषि उस लोककी दिव्यताका वर्णन करते हुए कहता है—

'उस मोक्षलोकमें अजस्र ज्योति है। हर तरहका स्वः अर्थात् प्रकाश और सुख है। उस स्वर्गमें अनुकाम है। वहाँके लोक ज्योतिर्मय हैं। वहाँ काम, निकाम, स्वधा, तृप्ति, आनन्द, मोद और प्रमोद हैं। वहाँ सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं[१६]।'

यह मोक्षलोकका वर्णन अनेक दिव्य भावनाओंसे परिपूर्ण है। वहाँ अन्धकारका नाम भी नहीं है। यही शाश्वत ज्योति है, यही सत् है और यही अमृत है। इसीके लिये उपनिषद्का ऋषि प्रार्थना करता है—

> असतो मा सद्गमय।
> तमसो मा ज्योतिर्गमय।
> मृत्योर्मा अमृतं गमय।
> (बृहदा० १ । ३ । २८)

इस प्रकार वेदोंमें पितृयाण और देवयानके रूपमें दो मार्गोंका वर्णन है। इनमें पितृयाण पुनर्जन्मका कारण बनता है और देवयान मोक्षका। जो आत्मा इन्हीं सांसारिक विषयोंमें फँसा रहता है, वह मृत्युके पश्चात् पितृयाणका पथिक होता है और अपने पूर्वसंचित कर्मोंका उपभोग करनेके लिये उसे फिर इस संसारमें लौटना पड़ता है। पर देवयानके पथिक आत्माका फिर पुनर्जन्म नहीं होता, वह अनन्तकालके लिये मोक्षमें लीन हो जाता है।

अभ्युदय और निःश्रेयस

वैशेषिक दर्शनकी परिभाषामें सांसारिक सुखको, जो पुनर्जन्मका कारण बनता है, 'अभ्युदय' कहा है और पारमार्थिक आत्मसुखको जो मोक्षरूप होता है, 'निःश्रेयस' कहा है। महर्षि कणादने इन दोनोंपर समान बल दिया है। उनके अनुसार 'धर्म वही है जिससे अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि हो[१७]।' गीतामें भगवान्ने भी इसी बातको मान्यता प्रदान की है।

मनुष्यको चाहिये कि वह ऐहिक जीवनको श्रेष्ठ बनाकर ही पारलौकिक जीवनको सँवारे; क्योंकि मनुष्य संसारमें आये बिना और इस जीवनको उन्नत किये बिना मोक्षका अधिकारी नहीं बन सकता। इसलिये उसे चाहिये कि वह सांसारिक भोगोंका भोग करते हुए ही मोक्ष-प्राप्तिके प्रति सचेष्ट रहे। गीता (५ । १०) में भगवान्ने '**पद्मपत्रमिवाम्भसा**।' के उदाहरणसे इस बातको बड़ी आसानीसे समझा दिया है। पानी कमलका जीवन है। वह बिना पानीके विकसित नहीं होता, पर फिर भी वह पानीसे लिप्त नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्य इस संसाररूपी पानीमें रहकर अपने जीवन-कमलको विकसित करता रहे, पर उन सांसारिक भोगोंमें लिप्त न हो। वस्तुतः यही सारांश है—सम्पूर्ण गीताका। इसे हम एक प्रकारका 'समन्वयवाद' कह सकते हैं। यह समन्वयवाद वेदोंको भी अभीष्ट है। वेद एक ओर जहाँ मोक्षकी ओर अपने अनुयायियोंको प्रेरित करते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे इस संसारकी तरफ भी प्रेरित करते हैं। या कहें कि इन्हीं सांसारिक विषयोंपर ही उन्होंने मोक्षका महल खड़ा किया है। वेदके एक मन्त्रमें प्रार्थना की गयी है—'पवित्र करनेवाली गायत्री माता मुझे आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, ब्रह्मवर्चस् और धनैश्वर्य प्रदान करके ब्रह्मलोक अर्थात् मोक्षलोककी प्राप्ति कराये[१८]।'

यह सत्य है कि आत्यन्तिक ब्रह्मवाद और आत्यन्तिक लोकवाद दोनों ही विनाशक हैं। इसीलिये भारतने

---

१४. स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठाः। (अथर्व० १८ । ४ । ४)

१५. अथर्व० (१८ । ४ । ३)।

१६. ऋग्वेद (९ । ११३ । ७—९)।

१७. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः॥ (वैशे० सूत्र १ । २)

१८. आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ (अथर्ववेद)

क लोकवादी चार्वाक और आत्यन्तिक] मोक्षवादी को स्वीकार नहीं किया। भारतमें चार्वाक तो कभी ग ही नहीं और बौद्धधर्म भी बरसाती नदीकी ादम जितनी तेजीसे फैला, उतनी ही तेजीसे उतर भी गया। अन्तमें रह गया वेदों और अन्य वैदिक दर्शनोंका वह समन्वयवाद ही।

वेदोंका यह 'समन्वयवाद' शाश्वत है, सनातन है अ अभेद्य है।

परलोक और पुनर्जन्मका वैदिक रहस्य

(लेखक—कविरत्न पं० श्रीदेवीप्रसादजी शास्त्री 'पाराशर')

लपर जन्म लेनेवाले मानवोंके लिये स्वर्गलोक, , यमलोक आदि आकाशमण्डलस्थ लोक प्रत्यक्ष नहीं ाते, परंतु वेदमन्त्रोंसे उनका अस्तित्व अवश्य मानना संसारमें सभी पदार्थोंका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता; अतः उपमान तथा शब्दादि प्रमाणकी उपयोगिता सिद्ध उदाहरणार्थ—गर्भाधानकालमें पुत्रका अस्तित्व नहीं इ शब्दप्रमाणसे ही अपने पिताका निश्चय करता पने पिताकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी भी होता प्रकार श्रुति भगवतीकी आज्ञासे अदृश्य वस्तु तथा न्तरका बोध होना सम्भव है। वैसे तो सम्पूर्ण ाङ्मय परलोक और पुनर्जन्मकी कथाओंसे भरा तिहास आदि धर्मशास्त्रोंमें इसके अनेकानेक प्रमाण नारद आदिकी पुनर्जन्म-कथाएँ तथा गर्गसंहिता ुण्यग्रन्थोंके प्रसंग पठनीय हैं।

ुनिककालमें नास्तिकताका अत्यधिक प्रचार है। र्मनिरपेक्षताके नामपर अधर्मका आचरण कर घोर ओर जा रहा है। परलोक तथा पुनर्जन्मको मिथ्या शास्त्रमर्यादासे विरुद्ध यथेच्छाचारपरायण तथा विश्वका सर्वनाश करनेमें कटिबद्ध है। ऐसी में अनादिकालसे संसारके प्रकाण्ड विद्वानोंद्वारा वेद भगवान्‌की पुण्यवाणीका आश्रय लेकर हस्यका पता लगाना तथा तदनुसार सदाचार धारण- ा पारमार्थिक श्रेय पाना ही परम धर्म है। प्रथम विचार करें। सत्कर्मानुष्ठानसे देवमार्ग और लोकान्तर जानेका वर्णन वेदवर्णित है—

अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ादं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥
(यजुर्वेद १९। ४७)

दो मार्गोंका उल्लेख अन्यत्र भी पाया जाता है—

स एष देवयानो वा पितृयाणो वा पन्थाः।

स्वर्गादि पुण्यलोकोंकी प्राप्तिके लिये आराधक प्रार्थन करता है—'हम अनृण होकर जो देवयान और पितृयाण मा हैं, इन सभी मार्गोंसे स्वर्गको प्राप्त करें।'

'ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः
सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम।'
(अथर्ववेद ६। ११७। ३)

श्राद्धकर्म करनेका अभिप्राय ही एकमात्र मृतात्माके सुख-शान्तिमय लोकोंकी प्राप्तिका सूचक है। ऋग्वेदका मन्त्र मृतात्माको सूर्य-रश्मियोंके साथ सहगमनसे लोकान्तर-गमनका बोधक है। (ऋग्वेद १। १०९। ७)

इसी प्रकार अथर्ववेदमें भी मृतात्माके बान्धव कहते हैं कि 'हे मृतात्मन्! जो हमारे पिताके पिता हैं तथा पितामह हैं और जो बड़े अन्तरिक्षमें प्रविष्ट हुए हैं, उनको स्वराट् सूर्य जो कि लोकान्तरमें पहुँचानेवाला है, जहाँतक हो सके वहाँतक शीघ्र ही पितृयोनिस्थ शरीर दें।'
(अथर्ववेद १८। ३। ५९)

उपर्युक्त मन्त्रोंमें मार्ग-प्रदर्शन, पितृलोकगमन वहाँपर शरीर-प्राप्ति आदि अनेक विलक्षण विषय आये हैं। इनसे मृतात्माका पितृलोक, यमलोक, स्वर्गलोकमें जाना सिद्ध है। स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक आदि पावन लोकोंमें पवित्र अन्तःकरण, यज्ञ, दान, तप इत्यादि सत्कर्मोंसे सम्पन्न विशुद्धात्मा महा-पुरुषोंका ही वास होता है। जातवेद नामक क्रव्याद अग्नि चितामें जलाते समय स्वर्गीय आत्माओंका इन्द्रियगमूह नष्ट नहीं करता। सूक्ष्म शरीरके साथ सब इन्द्रियगोलक बने रहते हैं, इसलिये उसे वहाँपर बहुत-सा भोग प्राप्त होता है।'
(अथर्ववेद ४। ३४। २)

पुनर्जन्मके सम्बन्धमें भी अनेक वेदमन्त्र प्रमाण हैं, उदाहरणके लिये कुछ उद्धृत करते हैं—

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥
(ऋग्वेद १।२४।२)

अव सृज पुनरग्ने! पितृभ्यः यस्ते आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः॥
(ऋग्वेद १०।१६।५)

इन मन्त्रोंमें अग्निसे पुनर्जन्मकी प्रार्थना की गयी है। मन्त्र कहता है 'हम देवोंमें अग्निका नाम स्मरण करते हैं, वह प्रसन्न होकर पृथ्वीतलपर पुनः जन्म दे, जहाँ हम दुबारा माता-पिताको प्राप्त करें।' 'हे अग्ने! जो जीव तुम्हारे वंशमें स्वधाके बलपर अभीतक हैं, उनको तुम पितृलोकमें भेजो। फिर वहाँसे लौटनेपर किसीके घर उन्हें पुत्ररूपसे उत्पन्न करो।'

विचारपूर्वक अनुमान करनेपर भी यही ज्ञात होता है कि पुनर्जन्म अवश्य होता है। वैसे तो आजकल इसपर अनेक घटनाएँ ही प्रमाण हैं। जगत्की विचित्रता देखनेपर भी यही सिद्ध होता है। यदि पुनर्जन्म न होता तो सृष्टि विचित्र क्यों है? अतः यह विचित्रता ही पुनर्जन्मसूचक है। पुनर्जन्म न माननेवाला सृष्टिकी विचित्रताका प्रश्न करनेपर निरुत्तर हो जायगा। अतः परम प्रमाण वैदिक वाणी सदैव विचारकोंके लिये माननीय है। प्राणीको शुभाशुभ कर्मानुसार ही उत्तमोत्तम तथा अधमाधम योनियाँ प्राप्त होती हैं। छान्दोग्य उपनिषद् अध्याय ५ खण्ड १० मन्त्र ७ में कहा गया है कि 'जो अच्छे आचरणवाले होते हैं, वे शीघ्र ही उत्तम योनिको प्राप्त होते हैं। वे ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि अथवा वैश्ययोनिको प्राप्त होते हैं तथा जो अशुभ आचरणवाले होते हैं, वे तत्काल अशुभयोनिको प्राप्त होते हैं। वे कुत्तेकी योनि, सूकरयोनि अथवा चाण्डालयोनि प्राप्त करते हैं।' एतदर्थ शुभाचरण कर्तव्य है तथा लोक-लोकान्तरमें परम हितकर है।

परलोक और पुनर्जन्मके वैदिक रहस्यको जानकर वेदाज्ञानुकूल सत्कर्मानुष्ठान ध्येय तथा वेदविपरीत दुष्कर्म त्याज्य हैं। मानव-जीवनकी सार्थकता श्रुतिपथानुगमन ही है। अतः सभीको तदर्थ प्रयत्नशील होना अत्यावश्यक है।

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम॥

अमृतत्व कौन प्राप्त करता है ?

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैतत्प्रधार्यताम्। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥
मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्। आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति॥
पक्वान्नं वैश्वदेवार्थे परार्थे यच्च जीवितम्। एतद्ब्रुवेक्ष्य सर्वस्वं धातूनामिव काञ्चनम्॥
सर्वभूतहितं राजन्नधीत्यामृतमश्नुते।
(पद्म० सृष्टि० अ० १९)

ब्रह्मद्रवमयी गङ्गा

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, संचालक, अनुसंधान-संस्थान, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय)

'ब्रह्मद्रवेति विख्याता पापं मे हर जाह्नवी ।'

इस प्रख्यात श्लोकमें गङ्गा 'ब्रह्मद्रव' के नामसे विख्यात । गयी है । इस शब्दके अर्थकी किञ्चित् मीमांसा यहाँ त है ।

जल मानवके लिये ही नहीं, प्रत्युत चेतन-अचेतन प्रकारके जीवोंके लिये नितान्त उपयोगी पदार्थ है । उपयोगिताके कारण तो जल 'जीवन'की आख्या ा है (जीवनं भुवनं जलम्) । सूखते हुए पौधोंको े सींचनेपर हरा-भरा होते हुए किसने नहीं देखा परंतु आश्चर्य होता है उस रेल-इंजनके व्यवहारपर, जलसे आप्यायित होनेपर ही अपना कार्य चारुतया ादित करता है । फलतः जल मशीनके लिये भी उतना उपयोगी है, जितना मानवके लिये । तथ्य यह है कि सृष्टिका आधार है । इसके विषयमें वेद तथा पुराणमें । ज्ञातव्य तथा ध्यातव्य सामग्री संचित है ।

जलकी चार अवस्थाएँ वेदमें स्पष्टतः अङ्कित हैं । य उपनिषद्[1]का कथन है कि आत्माने जिस आप्-तत्त्वको न्न किया, वह चार लोकोंमें चार नामोंसे चार अवस्थाओंमें । है । इन अवस्थाओंसे विभेद धारण करनेवाले जलके नाम हैं—(१) अम्भः, (२) मरीचि, (३) मर (४) आप् । इन चारोंने चार लोकोंको क्रमशः व्याप्त रक्खा है—(१) द्युलोक, (२) अन्तरिक्ष, (३) पृथ्वी,) पृथ्वीके अधःस्थ लोक । इन सबमें अम्भस् अत्यन्त त्मक तत्त्वका द्योतक है और वह सूर्यलोक (दिव्) से ं प्रदेशमें—महः, जनः, तपः, सत्यम् आदि लोकोंमें व्याप्त वाला जल है । यही है—'दिव्या आपः' । अन्तरिक्षलोकमें । होनेवाला जल मरीचि नामसे व्यवहृत होता है । के उत्पादनमें समर्थ होनेवाला जल मर् तथा के खोदनेसे निकलनेवाला जल आपः शब्दसे व्यवहृत । जाता है । इन चारोंमें अम्भः ही मूल जल-तत्त्व है, जो विशुद्ध रसात्मक होता है । अन्य जल अन्य तत्त्वोंके मिश्रणसे उत्पन्न होते हैं । इसे ही वेदान्त पञ्चीकृत की संज्ञा देता है ।

ध्यान देनेकी बात है कि आप्में दो तत्त्वोंका आधार है—सोम तथा अग्निका । 'एतद्विषयक' मन्त्र है—

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषज ।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥
(ऋग्वेद १ । २३ । २०)

यहाँ यह मन्त्र अनुष्टुप्में है, परंतु ऋग्वेदके अन्य मण्डलमें (१० । ९ । ६) तथा अथर्ववेदमें (१ । ६ । २) में यह मन्त्र त्रिपदा गायत्रीके रूपमें निर्दिष्ट है । फलतः वहाँ चतुर्थ चरणका अभाव है । मन्त्रका आशय है कि "जलके भीतर स्थित सोमने कहा कि जलके भीतर समस्त भेषज विद्यमान हैं तथा विश्वका कल्याण करनेवाला अग्नि भी वहाँ स्थित है । इसीलिये जलका नाम 'विश्वभेषजी'—समस्त औषधोंका निकेतन मानते हैं ।" जलके भीतर सोम-तत्त्वकी सत्ताका यहाँ स्पष्ट उल्लेख है । अन्य मन्त्रोंमें अग्निके प्रवेशका भी स्पष्ट संकेत मिलता है—

यासु राजा वरुणो यासु सोमो
　　विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्ट-
　　स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥
(ऋग्वेद ७ । ४९ । ४)

अन्य एक मन्त्रमें 'आप्'को अग्निको उत्पन्न करनेवाला माता कहा गया है—

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं
　　तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ॥
(ऋग्वेद १० । ९१ । ६)

जलमें सोम तथा अग्नि—इन दोनों तत्त्वोंके निवासका स्वारस्य विचारणीय है । यह समस्त विश्व ही 'अग्निषोमात्मक' है—अग्नि तथा सोमके मिश्रणसे सम्भूत । सोम है—उत्पादक तत्त्व तथा अग्नि है—शोषक तत्त्व । विज्ञानकी भाषामें सोम है—धनात्मक विद्युत् (पाजिटिव इलेक्ट्रिसिटी)

---

१. 'स इमांल्लोकानसृजत अम्भो मरीचिर्मर आपः । अदोऽम्भः दिवं द्यौः प्रतिष्ठा अन्तरिक्षं मरीचयः, पृथिवी मरः, या अधस्तात् ापः ।' (ऐतरेय उपनिषद् १ । २)

तथा अग्नि है—ऋणात्मक विद्युत् (निगेटिव इलेक्ट्रिसिटी। दोनों प्रकारके विद्युतोंके परस्पर सहयोग, आघात-प्रतिघातसे ही जगत्की सृष्टि होती है। जगत्का मूल उत्पादन जल ही तो है (**अप एव ससर्जादौ—मनु**)। फलतः उस मूल तत्त्वमें जगत्के उत्पादक तत्त्वोंका अस्तित्व होना नितान्त उचित तथा वैज्ञानिक है। सोमके साहचर्यसे अग्नि शोषक न होकर पोषक है। इसीलिये लोक-जीवनमें तथा धार्मिक कर्मकाण्डके सम्पादनमें जलकी इतनी महत्ता है।

जलके त्रिविध भेद हैं—(१) दिव्या आपः, (२) आन्तरिक्षा आपः, (३) पार्थिवी आपः।

'या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुः
या आन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः ॥'

इसीका निर्देश अथर्वण श्रुतिमें भी है (४। २८। ५)। जलका प्रथम प्रकार है—दिव्यरूप अर्थात् द्युलोकमें होनेवाला जल। एक बात समझनेकी है कि सूक्ष्मरूप जलकी संज्ञा है—आप् या अम्भः। यह शुद्ध रसरूप द्रव है। वह स्थूल रूपमें जल बन जाता है। इससे यह विश्वमें सर्वतः व्याप्त है। इसीलिये **'सर्वमापोमयं जगत्'**का यही तात्पर्य है। इसके दृष्टान्त वैदिक मन्त्रोंमें उपलब्ध होते हैं। एक मन्त्र कहता है कि 'चन्द्रमा अप्के भीतर आकाशमें दौड़ता है—**चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि**।' जिससे चन्द्रमाके लोकमें 'आप्'की सत्ता अनुमानित है। अन्य मन्त्र बतलाता है कि 'सूर्यके समीप तथा सूर्यके साथ अप् विद्यमान है'—

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्।
(ऋग्वेद १। २३। १७)

जिससे सूर्यके पास जलकी सत्ताका स्पष्ट वैदिक प्रमाण मिलता है। सूर्य जब चमकने लगता है, तब 'अप्' अपना स्थान छोड़नेके लिये बाध्य होता है; क्योंकि उसका प्रखर सूर्य-रश्मियोंसे संघर्ष होने लगता है और वह वहाँसे हटकर ध्रुवलोककी दिशामें प्रस्थान करता है। उस लोकमें सूर्यकी किरणें मन्द रहती हैं और इसलिये वहाँ आप् जमा होता चलता है और अत्यन्त घनीभूत होनेके कारण वह स्थूल जलका रूप धारण कर लेता है। गुरु होनेसे आप् वायुमण्डलमें अधिक टिक नहीं सकता और बाध्य होकर वह स्थूल जलकी धाराके रूपमें प्रवाहित हो जाता है। यही है—दिव्य जलकी धारा—गङ्गाका प्रवाह।

पुराणोंमें वर्णित है कि ध्रुवके ऊपरसे सुमेरु पर्वतपर गङ्गाका जल गिरता है। विष्णुपुराण (द्वितीय अंश, अध्याय ८) में विष्णुका तृतीय पद 'ध्रुवलोक' बतलाया गया है, जो लोकोंका आधारभूत है तथा वृष्टिका कारण है। वहींसे गङ्गा प्रवाहित होती है।

वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठनखस्रोतोविनिर्गताम्।
विष्णोर्बिभर्ति यां भक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः॥
(१११)

आशय है कि 'विष्णुभगवान्के वाम चरण-कमलके अँगूठेके नखरूप स्रोतसे निकली हुई उन गङ्गाजीको ध्रुव दिन-रात अपने मस्तकपर धारण करता है।'

इसका आधिदैविक तात्पर्य बतलाते समय महामहोपाध्याय श्रीगिरिधरशर्मा चतुर्वेदीजीने लिखा है कि "प्रातःकालका सूर्य ही 'वामन' कहा जाता है। उसके नखों (अर्थात् किरणों) के अग्रभागने जहाँ विवर बनाया है, वहाँसे यह जलधारा गिरती है[1]।" जो भी व्याख्या हो, ध्रुवलोकमें गङ्गाका उदय होता है। वहाँसे सुमेरुपर गिरती है और वहाँसे शिवके जटाजूटमें वह युगोंतक घूमा करती है। इस दृश्यका साक्षात्कार आज भी किया जा सकता है। भगवान् शंकरका एक नाम **'व्योमकेश'** है (आकाशरूपी केशवाला)। इसी आकाशपर द्वितीयाका चन्द्रमा चमकता है, जो शिवके मस्तकपर विराजमान बताया जाता है। रातके समय आकाशमें दूधकी धाराके समान करोड़ों ताराओंका जो पुञ्ज दृष्टिगोचर होता है, वही तो 'आकाशगङ्गा' है और वह आज भी व्योमकेशके सिरपर अपनी दुग्धमयी शुभ्रधारासे दिगन्तको विद्योतित करती प्रवाहित होती है। वहाँ युगोंतक विचरण करनेके बाद भक्तोंके कल्याणार्थ भगवती गङ्गाका प्रादुर्भाव इस भारतवर्षमें होता है।

इस प्रकार दिव्य जलकी धारा होनेके कारण गङ्गाजीको 'ब्रह्मद्रव' (नीराकार ब्रह्म) मानना नितान्त उपयुक्त है। इसीलिये गङ्गामें स्नानकी इतनी महिमा है। भारतीय आर्य जहाँ भी गये और अपना उपनिवेश बनाया, वहाँके मुख्य जलस्रोतको उन्होंने गङ्गाके नामसे अभिहित किया। थाईलैण्ड (स्याम) की मुख्य नदीका 'मेकाङ्ग' नाम-

१ 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' (पृ० १०९-११४) तक इस विषयका विशेष विवरण द्रष्टव्य है।

करण इसी तथ्यका द्योतक है। 'मेकाङ्ग' का अर्थ है 'माई गङ्गा' (मे=माई, काङ्ग=गाङ्ग, गङ्गा)। इस प्रकार गङ्गा माईकी प्रशस्त स्तुति भारतवर्षके ही हिंदू नहीं करते, प्रत्युत थाईलैण्डके बौद्ध भिक्षु भी 'मेकाङ्ग' को 'माई गङ्गा'के नामसे पुकारकर गङ्गाके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। तथास्तु

> नराकारं भजन्त्येके निराकरं तथापरे।
> वयं तु सर्वशास्त्रज्ञा नीराकारमुपास्महे॥

गीतामें भगवान्‌के स्वरूप, परलोक, पुनर्जन्म तथा भगवत्प्राप्तिका वर्णन

श्रीमद्भगवद्गीता अखिल ब्रह्माण्डनाथ, सर्वलोकमहेश्वर, सूर्य-चन्द्र-इन्द्र-वायु-अग्नि-वरुण-यम आदि सुर-लोकनायक-नायक, सर्वनियन्ता, सर्वरूप, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वातीत, सर्वगुणमय, सर्वगुणातीत, अनन्त-चेतनाचेतन-नियन्ता तथा भिन्नाभिन्न सम्बन्धी, परात्पर परब्रह्म, ब्रह्म-प्रतिष्ठा, अनन्ताचिन्त्य-निरवधि-निरङ्कुश-ऐश्वर्यस्वरूप, युगपत्-विरोधिगुणधर्माश्रय, शरणागतवत्सल, भक्तवाञ्छाकल्पतरु, प्रेमस्वरूप, भक्तिवश्य, अचिन्त्यानन्त परोक्षापरोक्ष-लीलास्वरूप 'स्वयं भगवान्' श्रीकृष्णकी वाणी है। इसमें जो कुछ कहा गया है वह परम सत्य है; विविध भाव-विचार-अधिकार-रुचि-युक्त प्राणियोंके कल्याणके लिये ज्ञान, भक्ति, निष्काम कर्म, योग प्रभृति विभिन्न साधनरूपमें परम कल्याणकर है।

वेद भगवान्‌के सिद्धान्तप्रतिपादक 'भगवद्-निःश्वास' हैं; गीता भगवान्‌के सिद्धान्तदर्शक साक्षात् 'भगवद्वचन' हैं। उपनिषद् भगवत्तत्त्व-बोधक हैं। गीता उन्हीं उपनिषद्-रूप गौओंका दुग्धामृत है। महाभारत अखिल ज्ञान-भण्डार-रूप दुग्धसिन्धु है और गीता उसको मथकर निकाला हुआ सार-सर्वस्व नवनीत है। गीता भगवान्‌का हृदय है, गीता साक्षात् भगवत्स्वरूप है।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण किसी मत-विशेषका प्रतिपादन या किसी सिद्धान्तका स्थापन नहीं करते हैं। वे त्रिकालाबाधित नित्य सत्यका अपनी दिव्य भाषामें अपने प्रिय भक्त अर्जुनके हितार्थ प्रकाश करते हैं। भगवान् सबके हैं, भगवान्‌की वाणी सबके लिये सहज ही कल्याणकारिणी है और त्रिकालाबाधित सत्य तत्त्व सबके लिये ग्राह्य है। अतएव गीता सहज ही अखिल विश्वके हितमें संलग्न है। अन्धकारमें पड़े हुए प्रत्येक प्राणीको विना किसी भेदके गीताने प्रकाश दिया है—दे रही है और देती रहेगी।

सत्यका प्रतिपादन या स्थापन नहीं होता; वह तो नित्य अनादि अनन्त है ही। वह किसीकी न तो स्वीकृतिकी अ[पेक्षा] रखता है, न समर्थन या संरक्षणकी। सत्यकी निर्बाध र[हता] है; उसे न माननेवाले उससे वञ्चित भले ही रह जा[यँ], सत्य किसीके मानने न माननेकी परवा नहीं करता। वह तो अपने सनातन जीवनमें ही नित्य सुप्रतिष्ठित रह[ता] है। उसी सत्यका प्रकाश गीतामें है। भगवान्‌ने गीतामें बताया है कि 'जो कुछ है, सब एकमात्र वे पुरुषो[त्तम] भगवान् ही हैं।' इसी तत्त्वको विविध प्रकारसे उन्हं[ोंने] समझाया है—

> 'लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।' (१५। १८)

''लोक और वेदमें 'पुरुषोत्तम' नामसे प्रसिद्ध हूँ।''

> मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय।
> मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ (७। ७)

'धनंजय! मेरे अतिरिक्त कुछ भी अन्य नहीं है, यह सब जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मुझमें गुँ[था] हुआ है।'

> 'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।' (९। ४)

'यह समस्त जगत् मुझ अव्यक्त मूर्तिसे (जलसे बरफ[के] समान परिपूर्ण है।'

> अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
> इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥ (१०। ८)

'मैं ही सबकी उत्पत्तिका मूल हूँ, सब मुझसे प्रवर्तित हैं। इस प्रकार मानकर भावसमन्वित बुद्धिमान् भक्त मुझे भजते हैं।'

> न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
> अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥ (१०। २)

'मेरे प्रभवको, उत्पत्तिको न तो देवतागण जानते हैं, न महर्षिगण ही; क्योंकि मैं ही देवताओं और महर्षियोंका भी आदि मूल हूँ।'

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(१०।३)

'जो मुझको अजन्मा (प्राकृतिक जन्मरहित), अनादि (उत्पत्तिरहित सर्वकारणकारण) तथा लोकोंका महान् ईश्वर जानता है, वह ज्ञानवान् पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(५।२८)

'(जो मुझको) सब यज्ञ-तपोंका भोक्ता, समस्त लोकोंका महान् ईश्वर तथा प्राणिमात्रका सुहृद् जानता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।'

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(६।३०)

'जो सर्वत्र (चराचर जगत्‌में) मुझको देखता है और जो सबको मुझमें देखता है, उसके लिये मैं कभी अदृश्य नहीं होता और मेरे लिये वह कभी अदृश्य नहीं होता।'

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

(१०।३९)

'अर्जुन! जो समस्त भूतोंकी उत्पत्तिका बीज है—मूल कारण है, वह मैं ही हूँ; क्योंकि चराचरमें कोई भी ऐसा भूत नहीं है जो मुझसे रहित हो। (सब मेरे ही स्वरूप हैं—सब मैं ही हूँ।)'

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

(१४।२७)

'ब्रह्मकी, अमृतकी, अविनाशी और सनातनधर्मकी तथा ऐकान्तिक सुखकी प्रतिष्ठा मैं ही हूँ; (इन सबका परम आश्रय मैं ही हूँ)।'

इस प्रकार सम्पूर्ण अनन्त विश्वब्रह्माण्ड एकमात्र भगवान्‌की ही अभिव्यक्ति है,। भगवान्‌से ही प्रकट है, भगवान्‌में ही स्थित है तथा भगवान्‌में ही पर्यवसित होता है। भगवान्‌में ही भगवान्‌से ही विश्व-प्राणियोंका प्रकृतिके द्वारा बार-बार उदय-विलय होता रहता है। यही प्रलय-सृजन है। भगवान् कहते हैं—

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥
सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥

(९।६-७)

'जैसे आकाशसे उत्पन्न सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु सदा ही आकाशमें स्थित है, वैसे ही समस्त भूत मुझमें स्थित हैं, ऐसा जानो। अर्जुन! कल्पके अन्तमें सब भूत मेरी प्रकृतिमें लय हो जाते हैं और कल्पके आदिमें मैं उनका फिर सृजन कर देता हूँ।'

यही भगवान् सर्वत्र व्याप्त एक आत्मा हैं। आत्मा स्वरूपतः जन्म-मरण-हीन नित्य सत्य है। भगवान्‌ने कहा है—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

नाश नहीं होता। इस आत्माको न शस्त्रादि काट सकते हैं, न आग जला सकती, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा ही सकता है। यह आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, अशोष्य है और निश्चय ही यह नित्य, सर्वगत, अचल, स्थिर और सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त (इन्द्रियोंका अविषय), अचिन्त्य (मनका अविषय) और विकाररहित (कभी न बदलनेवाला) कहा जाता है।'

सारे जीवोंके हृदयमें भगवान् ही आत्मारूपसे वर्तमान हैं—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥
(१० । २०)

'अर्जुन! सब भूत-प्राणियोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा मैं हूँ। मैं ही समस्त भूतोंका आदि, मध्य और अन्त हूँ।'

प्राणिमात्रके शरीरमें स्थित रहनेपर भी आत्मा (भगवान्) निर्लेप रहता है। इस विषयमें भगवान् कहते हैं—

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥
यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥
(१३ । ३१–३२)

'अर्जुन! अनादि तथा निर्गुण होनेसे यह अविनाशी आत्मा शरीरमें स्थित होकर भी वास्तवमें न तो कुछ करता है, न लिप्त होता है। जैसे सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होनेके कारण लिपायमान नहीं होता, वैसे ही देहमें सर्वत्र स्थित होकर भी आत्मा देहके कार्यों—गुणों आदिसे लिपायमान नहीं होता।'

तथापि जबतक पुरुष (आत्मा) 'प्रकृतिस्थ' है, तबतक उसमें सारे व्यापार होते रहते हैं। भगवान्का सनातन सङ्ग ही उसके सत्-असत् (देव, पितर, प्रेत, मनुष्य, पशु आदि) योनियोंमें जन्म लेनेका कारण होता है।'

गीतामें गति, योनि, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक आदि लोक—सभीका स्पष्ट वर्णन है—

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते॥
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते॥
(१४ । १४–१५)

'जब जीव सत्त्वगुणकी वृद्धिमें मरता है, तब वह उत्तम कर्म करनेवालोंके मलरहित (दिव्य स्वर्गादि) लोकोंको प्राप्त होता है। रजोगुणकी वृद्धिमें मरनेपर कर्मासक्तिवाले मनुष्योंमें जन्म लेता है और तमोगुणके बढ़नेपर मरनेवाला पशु-पक्षी आदि मूढ योनियोंमें जन्म लेता है।'

दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोधसे युक्त अशुद्ध आचरण करनेवाले कामक्रोधपरायण, कामोपभोगको ही जीवनका परम ध्येय माननेवाले, अन्यायसे धनोपार्जन करनेवाले, चिन्ताग्रस्त, हत्या-हिंसापरायण, अन्तर्यामी भगवान्से द्वेष करनेवाले आसुरभावापन्न मनुष्य मरनेपर नरकोंमें आसुरी योनियोंमें जाकर, वहाँ नाना प्रकारकी यन्त्रणा भोगते हैं। (गीता १६। ४–१५ देखिये) भगवान् आगे कहते हैं—

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥
आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥
तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
[illegible] गतिम्॥

करते हैं, उन द्वेष करनेवाले क्रूरहृदय नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी (कुत्ते, सूअर, गदहे आदि) योनियोंमें गिराता हूँ। वे मूढ लोग (जिनको मानवजन्म मेरी प्राप्तिके लिये दिया गया था) मुझे न पाकर जन्म-जन्ममें आसुरीयोनिमें जाते हैं और फिर उससे भी नीच गति (घोर नरक आदि)को प्राप्त होते हैं ।'

अर्जुनने कहा—

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥
(१ । ४१–४४)

'श्रीकृष्ण ! अधर्म अधिक बढ़ जानेसे कुलस्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं और वार्ष्णेय ! स्त्रियोंके आचरण दूषित होनेपर वर्णसंकर (संतान)का जन्म होता है । वर्णसंकर कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले जानेके लिये ही होता है । लुप्त हुई पिण्ड और जलकी क्रियावाले (तर्पण-श्राद्धरहित) इनके पितरगण भी गिर जाते हैं । इन वर्ण-संकरकारक दोषोंसे कुलघातियोंके सनातन कुलधर्म और जाति-धर्म नष्ट हो जाते हैं और हे जनार्दन ! नष्ट हुए कुलधर्मवाले मनुष्योंको अनियत कालतक नरकमें रहना पड़ता है, ऐसा हमने सुना है ।'

भगवत्प्राप्ति या मोक्षके साधनमें तत्पर पुरुष. यदि योगसाधनसे विचलित होकर बीचमें ही मर जाता है तो उसकी क्या गति होती है ? अर्जुनके इस आशयके प्रश्नपर भगवान् कहते हैं—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥
(६ । ४०–४२)

'पार्थ ! उस पुरुषका न तो इस लोकमें नाश—पतन होता है, न परलोकमें ही; किसी भी कल्याण—(भगवदर्थ) कर्म करनेवालेकी दुर्गति नहीं होती । वह योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके (स्वर्गादि दिव्य) लोकोंको प्राप्त होकर, उनमें लंबे समयतक निवास करके शुद्ध आचरण करनेवाले श्रीमानोंके घरमें जन्म लेता है । अथवा (साधनसम्पन्न या भगवत्प्राप्त) धीमान् योगियोंके कुलमें जन्म लेता है । इस प्रकारका जन्म इस लोकमें निश्चय ही अति दुर्लभ है ।'

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥
(९ । २०–२१)

'जो तीनों वेदोंके विधानके अनुसार सकामकर्म करनेवाले, सोमरस पीनेवाले पापमुक्त पुरुष यज्ञोंके द्वारा पूजा करके स्वर्गमें जाना चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्योंके फलस्वरूप सुरेन्द्र-(स्वर्ग-) लोकको प्राप्त होकर वहाँ देवताओंके दिव्य भोगोंको भोगते हैं । वे उस विशाल स्वर्गलोक (स्वर्ग-सुखों) को भोगकर पुण्यक्षय होनेपर पुनः मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं । इस प्रकार स्वर्गके साधन-रूप तीनों वेदोंमें कथित सकाम कर्मोंका सेवन करनेवाले भोगकामी पुरुष बार-बार स्वर्गलोक और मृत्युलोकमें जाते-आते रहते हैं ।'

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥
(९ । २५)

'देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको (उन-उन देव-लोकोंको), पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको (पितृलोकको), भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको (प्रेतलोकको) और मेरा (भगवान्‌का) पूजन करनेवाले मुझको ही प्राप्त होते हैं । (वे किसी अन्य लोकमें नहीं जाते और न उनका मर्त्यलोकमें पुनर्जन्म ही होता है ।);

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः ॥
(८ । २६)

'जगत्में शुक्ल और कृष्ण (देवयान और पितृयाण) मार्ग सनातन माने गये हैं। इनमें एक (देवयान) के द्वारा गया हुआ वापस न लौटनेवाली परम गतिको प्राप्त होता है। दूसरे (पितृयाण) के द्वारा गया हुआ वापस लौटता है (पुनः जन्म लेता है)।'

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥

'वायु गन्धके स्थानसे जैसे गन्धको ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिका स्वामी जीवात्मा जिस पहिले शरीरको त्यागता है, उससे मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर जिस शरीरको प्राप्त होता है, उसमें जाता है।'

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
(२ । १३)

'जैसे इस देहमें जीवात्माकी कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है, वैसे ही देहान्तरकी—दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है। इससे तत्त्वज्ञ धीर पुरुष मोहित नहीं होते।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(२ । २२)

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्र ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको छोड़कर दूसरे नये शरीरको प्राप्त होता है।'

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥
(२ । १२)

'अर्जुन ! न ऐसा है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू भी नहीं था अथवा ये राजालोग भी नहीं थे और न ऐसा ही है कि हम सब आगे नहीं रहेंगे।'

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।

अवश्य ही भगवान्‌के जन्म न तो कर्मवश होते हैं और न पाञ्चभौतिक देह उन्हें प्राप्त होता है; न वे कभी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके अधीन होते हैं। उनके स्वेच्छामय जन्म, शरीर तथा कर्म सभी दिव्य—भगवत्स्वरूप होते हैं। इसीसे वे कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥
(४ । ६, ९)

'मैं अजन्मा (प्राकृत जन्मरहित), अविनाशीस्वरूप होनेपर भी तथा समस्त भूत-प्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको (स्वभावको) अधिष्ठित करके अपनी ही मायासे प्रकट होता हूँ। अर्जुन ! मेरा वह जन्म और कर्म दिव्य (अप्राकृत भगवत्स्वरूप) है। इसको जो पुरुष तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता; मुझको ही प्राप्त होता है।'

उपर्युक्त उद्धरणोंसे पुनर्जन्म, परलोक, नरक, स्वर्ग, सद्गति, दुर्गति आदिकी बात तो स्पष्ट हो गयी। परंतु मानव-जीवन तो इसलिये मिला है कि जिसमें जीव साधनमें लगकर, 'प्रकृतिस्थ' अवस्थासे मुक्त होकर 'स्वस्थ' (आत्मस्थ) हो जाय; वह भौतिक पुनर्जन्म न होनेकी उस स्थितिको प्राप्त कर ले, जिसे प्राप्त कर लेनेपर कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। वह आवागमनसे सर्वथा मुक्त हो जाय। इसी स्थितिका भगवान्‌ने गीतामें ब्रह्म-निर्वाण, शान्ति, परमा शान्ति, शाश्वत शान्ति, दिव्य परम पुरुषकी प्राप्ति, परमा गति, अनामय पद, अव्यय पद, ज्ञान, ब्रह्मप्राप्ति, अमृत-प्राप्ति, सिद्धि, अक्षय सुख, आत्यन्तिक सुख, मेरे भावकी प्राप्ति और मेरी प्राप्ति आदि विभिन्न नामोंसे वर्णन किया है तथा उसके साधन बतलाये हैं। नीचे उदाहरण-स्वरूप इसके कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
(२ । ७१)

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥
(४ । ३९)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥
(६ । १५)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥
(१८ । ६२)

'जो पुरुष समस्त कामनाओंको त्यागकर, ममता-रहित और अहंकाररहित होकर, स्पृहारहित हुआ विचरता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है ।' 'जो मुझको (भगवान्‌को) यज्ञतपोंका भोक्ता, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी महान् ईश्वर तथा समस्त भूत-प्राणियोंका सुहृद् जान लेता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है' । 'श्रद्धावान्, साधन-तत्पर, जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है और फिर तुरंत ही परा शान्तिको प्राप्त हो जाता है ।' 'आत्माको निरन्तर परमात्माके स्वरूपमें लगाता हुआ स्वाधीन मनवाला योगी मेरी स्थितिरूप निर्वाण परमा शान्तिको प्राप्त होता है ।' 'अर्जुन ! सब प्रकार उस (अन्तर्यामी) परमेश्वरकी ही अनन्य शरणमें चला जा, उस परमेश्वरकी कृपासे ही पराशान्ति तथा शाश्वत स्थानको प्राप्त होगा ।'

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
(९ । ३०-३१)

'अतिशय दुराचारी (पापी) भी अनन्यभाक् होकर यदि मुझको भजता है तो उसे 'साधु' मान लेना चाहिये; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय (मेरी अनन्य शरणसे ही पाप-तापसे त्राण पानेका पूर्ण निश्चय करके मुझे भजने लगा) वाला है । वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और शाश्वती (सदा रहनेवाली परम) शान्तिको प्राप्त होता है । अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक यह सत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता । (उसका पाप-तापमें कभी पतन नहीं होता ।)'

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति
(२ ।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्
(५ । २४—

'इस ब्राह्मी स्थितिको (कामना, स्पृहा, ममत अहंकारसे रहित स्थितिको) प्राप्त होकर पुरुष मोहित होता और अन्तकालमें वह इस निष्ठामें स्थित ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होता है ।' 'जो पुरुष अन्तरात्म सुखवाला है, अन्तरात्मामें ही आरामवाला है त आत्मामें ही प्रकाशवाला है, वह परब्रह्म परमात्मा ऐक्यभावको प्राप्त योगी ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होता है ।' ' कल्मष (पाप) नष्ट हो गये हैं, ज्ञानके द्वारा जिनका निवृत्त हो गया है, जो समस्त भूतप्राणियोंके हितमें ही तथा जो भगवान्‌में ही संयतचित्त हैं—ऐसे ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होते हैं ।' 'काम-क्रोधसे रहित हुए चित्तवाले, परब्रह्म परमात्माको जाननेवाले पुरुषोंके लिये सब ओर ब्रह्मनिर्वाण ही प्राप्त है ।'

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥
प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥
(८ । ८,

'अभ्यासरूप योगसे युक्त, दूसरी ओर न जाने चित्तके द्वारा निरन्तर चिन्तन करता हुआ साधक परम पुरुष (परमात्मा) को प्राप्त होता है । वह युक्त साधक अन्तकालमें भी योगबलसे भ्रुकुटीके प्राणोंको भलीभाँति स्थापन करके निश्चल मनसे करता हुआ दिव्य परम पुरुष (परमात्मा) को ही होता है ।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः ॥
(८ । २६)

'जगत्में शुक्ल और कृष्ण (देवयान और पितृयाण) मार्ग सनातन माने गये हैं। इनमें एक (देवयान) के द्वारा गया हुआ वापस न लौटनेवाली परम गतिको प्राप्त होता है। दूसरे (पितृयाण) के द्वारा गया हुआ वापस लौटता है (पुनः जन्म लेता है)।'

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥

'वायु गन्धके स्थानसे जैसे गन्धको ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिका स्वामी जीवात्मा जिस पहिले शरीरको त्यागता है, उससे मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर जिस शरीरको प्राप्त होता है, उसमें जाता है।'

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
(२ । १३)

'जैसे इस देहमें जीवात्माकी कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है, वैसे ही देहान्तरकी—दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है। इससे तत्त्वज्ञ धीर पुरुष मोहित नहीं होते।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(२ । २२)

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्र ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको छोड़कर दूसरे नये शरीरको प्राप्त होता है।'

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥
(२ । १२)

'अर्जुन ! न ऐसा है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू भी नहीं था अथवा ये राजालोग भी नहीं थे और न ऐसा ही है कि हम सब आगे नहीं रहेंगे।'

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥
(४ । ५)

'अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं; पर हे परंतप ! तू उन्हें नहीं जानता; मैं जानता हूँ।'

अवश्य ही भगवान्के जन्म न तो कर्मवश होते हैं और न पाञ्चभौतिक देह उन्हें प्राप्त होता है; न वे कभी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके अधीन होते हैं। उनके स्वेच्छामय जन्म, शरीर तथा कर्म सभी दिव्य—भगवत्स्वरूप होते हैं। इसीसे वे कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥
(४ । ६, ९)

'मैं अजन्मा (प्राकृत जन्मरहित), अविनाशीस्वरूप होनेपर भी तथा समस्त भूत-प्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको (स्वभावको) अधिष्ठित करके अपनी ही मायासे प्रकट होता हूँ। अर्जुन ! मेरा वह जन्म और कर्म दिव्य (अप्राकृत भगवत्स्वरूप) है। इसको जो पुरुष तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता; मुझको ही प्राप्त होता है।'

उपर्युक्त उद्धरणोंसे पुनर्जन्म, परलोक, नरक, स्वर्ग, सद्गति, दुर्गति आदिकी बात तो स्पष्ट हो गयी। परंतु मानव-जीवन तो इसलिये मिला है कि जिसमें जीव साधनमें लगकर, 'प्रकृतिस्थ' अवस्थासे मुक्त होकर 'स्वस्थ' (आत्मस्थ) हो जाय; वह भौतिक पुनर्जन्म न होनेकी उस स्थितिको प्राप्त कर ले, जिसे प्राप्त कर लेनेपर कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। वह आवागमनसे सर्वथा मुक्त हो जाय। इसी स्थितिका भगवान्ने गीतामें ब्रह्म-निर्वाण, शान्ति, परमा शान्ति, शाश्वत शान्ति, दिव्य परम पुरुषकी प्राप्ति, परमा गति, अनामय पद, अव्यय पद, शान्ति, ब्रह्मप्राप्ति, अमृत-प्राप्ति, सिद्धि, अक्षय सुख, आत्यन्तिक सुख, मेरे भावकी प्राप्ति और मेरी प्राप्ति आदि विभिन्न नामोंसे वर्णन किया है तथा उसके साधन बतलाये हैं। नीचे उदाहरण-स्वरूप इसके कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
(२ । ७१)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥
(५ । २९)

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥

(४ । ३९)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥

(६ । १५)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

(१८ । ६२)

'जो पुरुष समस्त कामनाओंको त्यागकर, ममता-रहित और अहंकाररहित होकर, स्पृहारहित हुआ विचरता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है ।' 'जो मुझको (भगवान्‌को) यज्ञ-तपोंका भोक्ता, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी महान् ईश्वर तथा समस्त भूत-प्राणियोंका सुहृद् जान लेता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है' । 'श्रद्धावान्, साधन-तत्पर, जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है और फिर तुरंत ही परा शान्तिको प्राप्त हो जाता है ।' 'आत्माको निरन्तर परमात्माके स्वरूपमें लगाता हुआ स्वाधीन मनवाला योगी मेरी स्थितिरूप निर्वाण परमा शान्तिको प्राप्त होता है ।' 'अर्जुन ! सब प्रकार उस (अन्तर्यामी) परमेश्वरकी ही अनन्य शरणमें चला जा, उस परमेश्वरकी कृपासे ही पराशान्ति तथा शाश्वत स्थानको प्राप्त होगा ।'

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

(९ । ३०-३१)

'अतिशय दुराचारी (पापी) भी अनन्यभाक् होकर यदि मुझको भजता है तो उसे 'साधु' मान लेना चाहिये; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय (मेरी अनन्य शरणसे ही पाप-तापसे त्राण पानेका पूर्ण निश्चय करके मुझे भजने लगा) वाला है । वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और शाश्वती (सदा रहनेवाली परम) शान्तिको प्राप्त होता है । अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक यह सत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता । (उसका पाप-तापमें कभी पतन नहीं होता ।)'

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

(२ । ७२)

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥

(५ । २४—२६)

'इस ब्राह्मी स्थितिको (कामना, स्पृहा, ममता और अहंकारसे रहित स्थितिको) प्राप्त होकर पुरुष मोहित नहीं होता और अन्तकालमें वह इस निष्ठामें स्थित होकर ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होता है ।' 'जो पुरुष अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, अन्तरात्मामें ही आरामवाला है तथा जो आत्मामें ही प्रकाशवाला है, वह परब्रह्म परमात्माके साथ ऐक्यभावको प्राप्त योगी ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होता है ।' 'जिनके कल्मष (पाप) नष्ट हो गये हैं, ज्ञानके द्वारा जिनका संशय निवृत्त हो गया है, जो समस्त भूतप्राणियोंके हितमें ही निरत हैं तथा जो भगवान्‌में ही संयतचित्त हैं—ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होते हैं ।' 'काम-क्रोधसे रहित, जीते हुए चित्तवाले, परब्रह्म परमात्माको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंके लिये सब ओर ब्रह्मनिर्वाण ही प्राप्त है ।'

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥
प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

(८ । ८, १०)

'अभ्यासरूप योगसे युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्तके द्वारा निरन्तर चिन्तन करता हुआ साधक दिव्य परम पुरुष (परमात्मा) को प्राप्त होता है । वह भक्ति-युक्त साधक अन्तकालमें भी योगबलसे भृकुटीके मध्यमें प्राणोंको भलीभाँति स्थापन करके निश्चल मनसे स्मरण करता हुआ दिव्य परम पुरुष (परमात्मा) को ही प्राप्त होता है ।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥
(६ । ४५)

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥
(८ । १३)

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥
(९ । ३२)

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥
(१३ । २८)

'अनेक जन्मोंसे अन्तःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धिको प्राप्त और अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करनेवाला योगी समस्त पापोंसे परिशुद्ध होकर परमा गतिको प्राप्त होता है ।'

''जो पुरुष 'ॐ' ऐसे एकाक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरा (भगवान्‌का) स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है—वह परमा गतिको प्राप्त होता है ।' 'अर्जुन ! स्त्री, वैश्य और शूद्र आदि तथा पापयोनिवाले भी, कोई भी हों, मेरे शरण होकर परमा गतिको प्राप्त होते हैं ।' 'जो पुरुष सबमें समभावसे स्थित परमेश्वरको समान देखता हुआ अपनेद्वारा अपनेको नष्ट नहीं करता है, वह परमा गतिको प्राप्त होता है ।'

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥
(२ । ५१)

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥
(१५ । ५)

'बुद्धियोगयुक्त पुरुष कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले फलका त्याग करके जन्मबन्धनसे छूटकर अनामय पदको प्राप्त होते हैं ।' 'जो मान तथा मोहसे रहित हैं, जिन्होंने आसक्ति-रूप दोषपर विजय प्राप्त कर ली है, जिनकी नित्य अध्यात्म (परमात्म-स्वरूप) में स्थिति है और जिनकी कामना भलीभाँति निवृत्त हो गयी है, ऐसे वे सुख-दुःख आदि नामक द्वन्द्वोंसे विमुक्त ज्ञानी पुरुष अव्यय पदको प्राप्त होते हैं ।'

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥
(५ । २१)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥
(६ । २८)

'बाहरी स्पर्शादि भोगोंमें अनासक्त चित्तवाला साधक अन्तःकरणमें भगवद्-ध्यानजनित आनन्दको प्राप्त करता है और वह ब्रह्मरूप योगमें ऐक्यभावसे स्थित पुरुष अक्षय सुखका अनुभव करता है ।' 'वह कल्मष—पापरहित योगी निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगाता हुआ सुखपूर्वक ब्रह्मसंस्पर्शरूप अत्यन्त सुखका अनुभव करता है ।'

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥
(४ । ३६)

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥
(४ । ३७)

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥
(४ । ३८)

'यदि तुम सारे पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाले हो तो भी ज्ञानरूप नौकाके द्वारा निश्चय ही सम्पूर्ण पापोंसे (जन्म-मरण-प्रवाहसे भलीभाँति) तर जाओगे ।' 'अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि इन्धनको भस्मसात् कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि समस्त कर्मोंको भस्मसात् कर देती है ।' 'इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निस्संदेह अन्य कुछ भी नहीं है । उस ज्ञानको (समस्त कर्मनाश तथा मोक्षस्वरूप तत्त्वज्ञानको) समयपर स्वयं ही समत्वबुद्धिरूप योगके द्वारा भलीभाँति शुद्धान्तःकरण हुआ पुरुष आत्मामें ही अनुभव करता है ।'

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥
(१३ । ३०)

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥
(१४ । २०)

'यह पुरुष जिस कालमें समस्त भूत-प्राणियोंके पृथक्-पृथक् भावको एक परमात्मामें स्थित देखता है और उस परमात्मासे ही समस्त भूतप्राणियोंका विस्तार देखता है, उस कालमें वह ब्रह्मको प्राप्त होता है ।' 'यह पुरुष स्थूल-शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप तीन गुणोंसे जब अतिक्रमण कर जाता है, तब जन्म-मृत्यु, वृद्धावस्था तथा सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त होकर अमृतत्वका अनुभव करता है ।'

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥
(१२ । १०)

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥
(१८ । ४६)

'अर्जुन ! तू यदि अभ्यास करनेमें असमर्थ है तो केवल मेरे लिये ही कर्म करनेके परायण हो जा । इस प्रकार मेरे अर्थ कर्म करके तू (मेरी प्राप्तिरूप) सिद्धिको प्राप्त होगा ।' 'जिस परमात्मासे समस्त भूत-प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिस परमात्मासे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमात्माको अपने स्वाभाविक कर्मके द्वारा पूजकर मनुष्य (भगवत्प्राप्तिरूप) सिद्धिको प्राप्त होता है ।'

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
(८ । २१)

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
(१५ । ६)

'उस (परमात्मा) को अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा गया है, उसीको परम गति कहते हैं तथा जिसको प्राप्त करके जीव वापस नहीं लौटते, वह मेरा परमधाम है ।' उस स्वयं-प्रकाश परमधामको न सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है । उसको पाकर जीव वापस नहीं लौटते और वह मेरा परमधाम है ।'

यह परमधाम स्वयं भगवान्‌का ही स्वरूप है । इसीसे अर्जुनने भगवान्‌को 'परमधाम' बतलाया है ।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
(१० । १२)

भगवान् कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥
(७ । १९)

''बहुत-से जन्मोंके अन्तके जन्ममें ज्ञानी भक्त—'सब कुछ वासुदेव ही है,'—इस प्रकार मुझको भजकर प्राप्त होता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है ।'

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥
(४ । १०)

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
(८ । ५)

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद् विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥
(१३ । १८)

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥
(१४ । १९)

'आसक्ति, भय और क्रोधसे रहित मुझमें तन्मय, मेरे ही आश्रित बहुत-से पुरुष मेरे ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे भाव (स्वरूप) को प्राप्त हो चुके हैं ।' 'अन्तकालमें जो पुरुष मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है, वह मेरे ही भाव (स्वरूप) को प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ।' 'क्षेत्र, ज्ञान तथा ज्ञेयका स्वरूप संक्षेपसे (अध्याय १३ श्लोक ५ से १७ तक) कहा गया है; इसको तत्त्वसे जानकर मेरा भक्त मेरे भाव (स्वरूप) को प्राप्त होता है ।' जिस कालमें द्रष्टा (द्रष्टाके रूपमें स्थित) पुरुष तीनों गुणोंके सिवा अन्य किसीको कर्ता नहीं देखता, उस कालमें वह मेरे भाव (स्वरूप) को प्राप्त होता है ।'

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥
(७ । २३)

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥
(८ । ७)

'(भगवान्‌से पृथक् मानकर देवताओंके भजनेवाले) उन अल्प बुद्धिवालोंको नाशवान् फल ही मिलता है और वे देव-पूजक देवताओंको प्राप्त होते हैं, पर मेरे भक्त तो मुझको ही प्राप्त होते हैं ।'

'अतएव तू सब समय निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध कर । इस प्रकार मुझमें अर्पित मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होगा ।'

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥
(८ । १४-१५-१६)

'जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्तसे स्थित होकर नित्य निरन्तर मुझे स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगीके लिये मैं सुलभ हूँ । वे परम सिद्धि (मेरे प्रेम)को प्राप्त महात्मागण मुझे प्राप्त होकर, दुःखके स्थानरूप पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते । अर्जुन ! ब्रह्मलोकतकके सब लोक पुनरावर्ती हैं, वहाँ जानेवालोंको वापस लौटना पड़ता है, परंतु कौन्तेय ! मुझे प्राप्त हो जानेपर पुनर्जन्म नहीं प्राप्त होता ।'

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥
(९ । ३४)

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥
(१० । ९-१०)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥
(११ । ५५)

'मुझमें मनवाले होओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करके मुझे ही नमस्कार करके—इस प्रकार मेरे परायण होकर अपनेको मुझमें युक्त रक्खो तो मुझको ही प्राप्त होओगे ।'

'जिन्होंने अपना चित्त मुझमें ही लगा दिया है, अपने प्राण (जीवन) मुझको अर्पण कर दिये हैं, वे भक्तजन नित्य परस्पर मेरी चर्चा करते—मेरे प्रेम-स्वभाव-गुणोंको परस्पर समझते-समझाते हुए, मेरे ही नाम-गुणोंका कथन करते हुए, मुझमें ही संतुष्ट रहते हैं और मुझमें निरन्तर रमण करते हैं, उन निरन्तर मुझमें लगे रहकर प्रेमपूर्वक भजन करनेवाले भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं ।' 'जो मेरा ही कर्म करता है (अपना कुछ कर्म उसको है ही नहीं), मेरे ही परायण है, मेरा ही भक्त है, किसी भी प्राणिपदार्थमें आसक्ति नहीं रखता और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें जो वैरभावसे रहित है—ऐसा अनन्य भक्त मुझको ही प्राप्त होता है ।'

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(१८ । ६५-६६)

'मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा कर, मुझे ही नमस्कार कर—इस प्रकार करनेपर तू मुझको ही प्राप्त होगा । यह मैं तेरे लिये सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है । सब धर्मोंका परित्याग करके तू एकमात्र मेरी शरणमें आ जा, मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा । तू शोच मत कर ।'

इस परमधामकी, परमात्माकी या भगवान्‌की प्राप्ति अथवा मुक्ति ही मानव-जीवनका परम लक्ष्य है । जबतक भगवत्प्राप्ति या मुक्ति नहीं होती, तबतक जन्म-मृत्यु, उच्च-नीच लोकोंकी प्राप्ति, अगति-दुर्गति, सद्गति-परमगति आदि स्थितियाँ होती ही रहेंगी । इसी ध्रुव सत्यका उपदेश भगवान् श्रीकृष्णने रणाङ्गणमें अपने प्रिय सखा भक्त अर्जुनको किया है और उसे बार-बार मानव-जन्मके परम कर्तव्यकी याद दिलाकर शरणागत होनेकी आज्ञा दी है । जीवात्माका परमात्मस्वरूपमें मिल जाना मुक्ति है—यह भी 'भगवत्प्राप्ति'

है; क्योंकि परमात्मा, भगवान् एक ही तत्त्व हैं और भगवत्सेवाधिकार प्राप्त करके भगवत्स्वरूप दिव्य लीला-लोकोंमें—भगवान्‌के दिव्य परमधाममें निवास करना भी 'भगवत्प्राप्ति है।' शान्ति, मोक्ष, ज्ञान आदिके नामसे, जिसमें परमात्म-स्वरूपमें मिल जाना है—प्रधानतया उस मुक्तिका और 'मेरी प्राप्ति' आदिमें सेवाधिकार प्राप्त करके भगवा[न्‌के] दिव्य परमधाममें निवासका—संकेत है। दोनोंमें ही पुनर्ज[न्म] नहीं होता, दोनोंमें ही जन्म-मरणका चक्र छूट जाता [है।] दोनों ही परम सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। पर एकमें अभि[न्न] ब्रह्मानन्द है, दूसरेमें दिव्य रसलीलानन्द है।

वैदिक वाङ्मयमें पुनर्जन्म

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

पुनर्जन्म हिंदूधर्मका प्रधान विश्वास है। यही एक बात उसे इस्लाम तथा ईसाई धर्मसे भिन्न भूमिका प्रदान करती है। पुनर्जन्मका यह विश्वास सिद्धान्त-रूपसे, अत्यन्त प्राचीन है और हिंदू-ज्ञानका समस्त स्रोत वैदिक होनेके कारण वैदिक वाङ्मयमें उसके सूत्र बिखरे हुए हैं। उपनिषद् तो ऐसी कथाओंसे भरे हुए हैं, जिनसे पुनर्जन्म-सिद्धान्तमें हमारे विश्वासकी पुष्टि होती है; किंतु वेदोंमें भी कुछ कम प्रमाण नहीं हैं।

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्त मनुमते मृडया नः स्वस्ति॥
पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः॥

(ऋग्वेद १०।५९।६-७)

इनमें परमात्माकी 'असुनीति' संज्ञासे स्पष्ट किया गया है कि वह प्राणरूप जीवको भोगके लिये एक देहसे दूसरी देहतक ले जाता है। उस असुनीति परमात्मासे प्रार्थना है कि वह अगले जन्मोंमें भी हमें सुख दे और ऐसी कृपा करे कि सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि हमारे लिये कल्याणकारी सिद्ध हों।

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः॥

(ऋग्वेद १०।१६।५)

अगले जन्ममें विशिष्ट वस्तुएँ पानेके लिये प्रार्थना है, [और] स्पष्ट कहा गया है कि पूर्वजन्मके अच्छे-बुरे कर्मोंके अनु[सार] ही जीवात्मा नवीन योनियोंमें शरीर धारण करता है। कर्मानुसार पशुयोनिमें जन्म लेनेका भी उल्लेख इन मन्[त्रोंमें] पाया जाता है।

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं [च।]
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पन्तामिहै[व॥]

(अथर्व० ७।६७।[१])

इसमें अगले जन्ममें कल्याणमयी इन्द्रियोंकी प्रा[प्तिके] लिये प्रार्थना है।

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरू[णि।]
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिके[त॥]

(अथर्व० ५।१।[२])

इसमें ऋषि कहते हैं कि पूर्वजन्मकृत पाप-पु[ण्य-] भोगी जीवात्मा है और वह पिछले जन्ममें जो पाप-[पुण्य] करता है, उसीके अनुसार अच्छे-बुरे शरीर धारण करता [है।] अच्छा कर्म करनेवाला अच्छा शरीर धारण करता है [और] अधर्माचरण करनेवाला पशु आदि योनियोंमें जन्म लेता है।

आत्मा तो नित्य है, किंतु कर्मकी प्रेरणावश पिताद्वारा पुत्र-शरीरमें प्रविष्ट होता है। वही जीवात्मा है और वही गर्भमें जलीय तत्त्वोंसे आवेष्टित पड़ा रहता है

यजुर्वेदके कुछ मन्त्र लीजिये—

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् ।

वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥

(यजु० ४ । १५)

इसमें फिरसे जीवात्माके आगमनकी बात स्पष्ट रूपसे कही गयी है । इतना ही नहीं, आगे चलकर तो कर्मगतिका भी विश्लेषण है और बताया गया है कि उसीके अनुसार कुछ लोग मुक्त हो जाते हैं और दूसरे मर्त्यपुरुष बार-बार जन्म लेते रहते हैं—

द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥

(यजु० १९ । ४७)

जहाँ पहिलेके उद्धृत मन्त्रोंमें जीवात्माके पश्वादि योनियोंमें जन्म लेनेकी ओर संकेत मिलता है, वहाँ यजुर्वेदमें इसका भी उल्लेख प्राप्त है कि जीवात्मा न केवल मानव या पशु योनियोंमें जन्म लेता है, वरं जल, वनस्पति, ओषधि इत्यादि नाना स्थानोंमें भ्रमण और निवास करता बार-बार जन्म धारण करता है । देखिये—

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे ।
गर्भे सन् जायसे पुनः ॥
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥
प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने ।
सꣳसृज्य मातृभिष्टवं ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥
पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने ।
शेषे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्यां शिवतमः ॥

(यजु० १२ । ३६—३९)

यजुर्वेदके अन्तिमांशमें तो यह भी कहा गया है कि मनुष्यको अपने कर्मोंके अनुसार ही आगे जन्म धारण करना होगा । इसलिये जब मृत्यु सामने खड़ी हो और पञ्चतत्त्व-निर्मित शरीरके भस्मावशेष होनेका समय आ जाय, तब उसे अपने कर्मोंका स्मरण करना चाहिये—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ।
ॐ क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर ॥

(यजु० ४० । १५)

हमारे प्राचीन वाङ्मयमें यम और नचिकेताका १ प्रसिद्ध है । नचिकेता प्रसिद्ध ऋषि वाजश्रवसका था । जब वाजश्रवसके संन्यास ग्रहण करनेका समय अ तब सर्वमेध यज्ञ करनेके पश्चात् वे अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति वितरण करने लगे । तब पुत्र नचिकेताके मुँहसे कहीं नि गया कि 'सब चीजें आप दे रहे हैं तो मुझे किसको देंगे कुछ अटपटा-सा प्रश्न था, इसलिये पिताने उसपर ध्य नहीं दिया—समझा, बालक है, यों ही कहता होगा वे बँटवारेके काममें लगे रहे । उधर बालक नचिके बार-बार वही प्रश्न पूछने लगा । इससे खीझकर वा श्रवसने कह दिया—मृत्यवे त्वा ददामीति'—तुझे मृत्युव दूँगा ।' कहनेको कह दिया, परंतु पिता ही थे, दुःख औ पश्चात्तापसे हृदय भर आया । नचिकेता पिताको दुखी देख बोला—'आप दुःख क्यों करते हैं ? यह शरीर तो धान्यकी भाँति मरता है और उसीकी तरह पुनः उग आता है'— **'सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ।** (कठ० १ । १ । ६)' बालकका बहुत आग्रह देख पिताने पुत्रको मृत्यु-विषयक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आचार्य यमके पास भेज दिया । नचिकेता जब यमके आश्रममें पहुँचा, वे कहीं बाहर गये हुए थे । तीन दिन बाद लौटे । उन्हें यह जानकर बड़ा क्लेश हुआ कि हमारे यहाँ अतिथिरूपमें आकर भी नचिकेता तीन दिनोंका भूखा है । उसके परिमार्जनके लिये उन्होंने कहा—'तुम मुझसे तीन वर माँग सकते हो ।'

नचिकेताने और वरोंके साथ तीसरा वर आत्मतत्त्वका रहस्य बतानेका माँगा । उसने पूछा—'आत्माकी सत्ता है या नहीं ?—**अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके** (कठ० १ । १ । २०)।' यमने सोचा था कि बालक धन-धान्य, पुत्र-पौत्र, दीर्घायु इत्यादिकी याचना करेगा । किंतु उसने तो एक रहस्यका ज्ञान माँगा । उन्होंने बालकको बहुत समझाया कि 'अपने मतलबके भोग्य पदार्थ माँग ले, जो माँगेगा मैं दूँगा; किंतु यह प्रश्न गहन है और तेरे किसी कामका भी नहीं है ।'

किंतु नचिकेता तो अपने मनके संशयको दूरकर शुद्ध ज्ञानकी ज्योतिसे प्रकाशित होना चाहता था, इसलिये उसने विनीत भावसे कहा—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥
यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत् ।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥

(कठ० १ । १ । २६-२९)

नचिकेता कहता है कि 'मैं तो बस उसी आत्मतत्त्वका रहस्य जानना चाहता हूँ, जिसके बारेमें तरह-तरहके संशय-संदेह उठा करते हैं; जिसके विषयमें कई कहते हैं कि मृत्युके बाद भी बचा रहता है, कई कहते हैं कि नहीं बचता। मुझे निर्णय करके बताइये कि वह क्या नित्य है और मृत्युके बाद भी रहता है या नहीं रहता।'

इसके बाद यमने नचिकेताको आत्मतत्त्वका रहस्य समझाते हुए उसकी विशद व्याख्या की है। अपनी व्याख्यामें यम कहते हैं कि 'जो व्यक्ति इसी लोकके भोगोंमें डूबे रहते हैं, उनका बार-बार जन्म होता है किंतु जो आत्माको नित्य समझ, परलोकका ध्यान रखकर सत्कार्य करते हैं, वे जन्म-मरणके बन्धनसे छूट सकते हैं।' फिर यम आगे कहते हैं—

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥
(कठ० २।२।२)

'तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतम्॥
(कठ० २।३।१७)

यह 'हंस' (जीवात्मा) अन्तरिक्षमें, परमात्मामें, हृदयाकाशमें रहता है, यज्ञ करता है, पृथिवीपर जन्म लेता है, परंतु वह शरीरमें अतिथि-मात्र है।......यह स्वयं अमर है।

उत्तरके अन्तमें यमने यह भी कहा है कि 'तर्क वहाँतक नहीं पहुँच सकता।' '**नैषा तर्केण मतिरापनेया**' (१।२।९)—उसे निश्चित जानो और वह है, यही समझो।

उपनिषद् और गीतामें तो पुनर्जन्मका स्पष्ट निर्देश बार-बार आता है। शास्त्रग्रन्थोंमें वैदिक उक्तियोंपर तर्कसम्मत विवेचन भी प्राप्त है। पुराणोंमें इसका और विशद विश्लेषण-विवेचन मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदके ऋषियोंने पुनर्जन्मके जिस सत्यको सूत्रवत् कहा था, बादके हिंदू-धर्म-ग्रन्थोंमें उसकी अभिवृद्धि होती गयी है। आर्यधर्म—हिंदूधर्म पुनर्जन्म और कर्म-सिद्धान्तके जिस मूलाधारपर खड़ा है, वैदिक वाङ्मयसे आजतक बराबर उसकी पुष्टि होती आयी है।*

पुनर्जन्म और परलोकसाधक तर्क

(लेखक—श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य, पञ्चतीर्थ)

योगो 'लोकमहानिकुञ्जसखिषु श्रीरंगदेवीश्रुतः
श्रीराधाचरणारविन्दमनिशं संराधने तत्परः।
वैकुण्ठे स सुदर्शनो निगदितस्तस्यैकरूपं भुवि
श्रीनिम्बार्कमुनीश्वरं सदसतोर्निर्णायकं संश्रये॥

विश्वके अनन्त प्राणियोंकी विचारधाराएँ भी अनन्त ही हो सकती हैं, किंतु उन सबकी वास्तविकता-अवास्तविकता परखनेकी कसौटियाँ प्रायः परिगणित हैं। उन्हें ही हम 'प्रमाण' कह सकते हैं। उनमें एक कसौटी 'तर्क' भी है। आजका मानव तर्कको अधिक अपना रहा है; अतः पुनर्जन्म-सम्बन्धी कुछ तर्क यहाँ व्यक्त की जाती हैं।

केवल प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही समस्त तत्त्वोंको सिद्ध करनेवाले विचारकोंका कहना है कि जिस प्रकार चूना-कत्था-सुपारी-पानके संयोगसे लालिमा व्यक्त होती है, उसी प्रकार पृथ्वी, जल, तेज, वायु—इन चारों तत्त्वोंके संयोगसे चेतनता-(आत्मा-जीव) की उत्पत्ति हो जाती है। कीचड़में कीड़े, गोबरमें ईली (जीव); चनेमें और काठमें भी घुण पैदा होकर वह बाहर भी फिरने लगता है। इस प्रकार जीवोंकी उत्पत्तिका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। अतः देहको ही जीवात्मा, शासक नरेशको ही ईश्वर मानना चाहिये; कण्टक-वेधादि दुःख ही नरक है और कान्तालिङ्गन आदि सुख ही स्वर्ग हैं; अन्य अप्रत्यक्ष स्वर्ग-नरकादि लोक-लोकान्तर माननेकी क्या आवश्यकता है? जीव (चेतन) यहीं उत्पन्न होकर यहीं विनष्ट हो जाता है। मरनेके पश्चात् किसने किसको आते-जाते (जन्मते-मरते) देखा है। इसलिये जबतक जीवन रहे, खूब आनन्द लूटते रहें, धर्माधर्मकी कुछ भी परवा न की जाय।

यावज्जीवं सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

ऐसा यह बृहस्पति-प्रचारित 'चार्वाक-मत' कहलाता है। इसे नास्तिक दार्शनिकोंने भी नीची कोटिका माना है; क्योंकि जिस प्रकार पौगण्ड, किशोर, युवा, वृद्ध आदि शारीरिक अवस्थाओंमें बाल्यावस्थामें विचारविहीनता

* पं० श्रीनन्दकिशोरजी विद्यालंकारकी रचनासे इस लेखके लिखनेमें कृतज्ञतापूर्वक सहायता ली गयी है।—लेखक।

रहती है, हित-अनहितका विचार न करके जो कुछ वस्तु सामने आये, उसे मुँहमें ही डालनेकी चेष्टा की जाती है, चाहे विषधर सर्प ही क्यों न हो; ठीक उसी प्रकार यह चार्वाक-दर्शन समस्त दर्शनोंकी बाल्यावस्था-स्वरूप है । इसकी सार्थकता बस, इतनी ही है—

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।'

शरीरपोषणके अतिरिक्त आगेके बौद्धिक विचार इस मतके लक्ष्य नहीं हैं ।

चार्वाक-दर्शनसे उच्चकोटिवाले नास्तिक दर्शनकार भी यह स्वीकार करते हैं कि चाहे शब्द (वेद आदि शास्त्र) को प्रमाण मानें या न मानें, परंतु केवल प्रत्यक्षसे ही समस्त तत्त्वोंकी सिद्धि नहीं हो सकती; अनुमान आदि अन्य प्रमाणोंका भी आश्रय लेना आवश्यक है ।

(१) कोई भी संतति माता-पिताके बिना उत्पन्न नहीं हो सकती, ऐसा कारण-कार्य, जनक-जन्यभाव प्रत्यक्ष सिद्ध है । यदि किसीके माता-पिता जन्मते ही मर गये हों तो प्रत्यक्ष न होनेके कारण क्या उनका अस्तित्व न माना जायगा ? यदि हाँ, तो संतति कहाँसे आयी ? यही तर्क पितामह-प्रपितामह आदिके सम्बन्धमें दिया जा सकता है । अतः केवल प्रत्यक्षसे ही कार्य नहीं चल सकता । अनुमान, आप्तवचन (शब्द-शास्त्र) आदि अतीत-अनागत तत्त्वोंको सिद्ध करनेवाले प्रमाणोंको भी अवश्य मानना पड़ेगा । केवल प्रत्यक्षसे समस्त विश्वके वर्तमान पदार्थ भी सिद्ध नहीं हो सकते ।

(२) चाहे अच्छे हों या बुरे, सभी कर्मोंका फल कर्मकर्ताको भोगना पड़ेगा । अतः जबतक फलोपभोग नहीं होता, तबतक संस्काररूपसे वे कर्म बने ही रहते हैं—

'नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।'

इस सिद्धान्तको सभी दार्शनिक प्रायः स्वीकार करते हैं । ऐसी स्थितिमें यदि पुनर्जन्म न माना जाय तो जो व्यक्ति अपने किये हुए समस्त कर्मोंके फलोंका उपभोग न करके पहले ही मर गया, उसके अमुक्त कर्म व्यर्थ हुए, अतः वह 'कृतप्रणाश' दोष उक्त अभिमतवालोंपर आयेगा ।

(३) यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि किसी भी योनिका कोई भी बच्चा पैदा होते ही कोई कर्म नहीं कर सकता, फिर भी सुख या दुःखका वह उपभोग करता है, अर्थात् बहुत-से बच्चे स्वस्थ सुखी देखे जाते हैं, बहुत-से अस्वस्थ-रोगी और दुखी देखे जाते हैं । वह फल उन्हें कहाँसे मिला ? बिना ही कर्म किये यदि सुख-दुःखरूप फल प्राप्त होता है तो उसे 'अकृताभ्यागम दोष' मानते हैं; केवल प्रत्यक्ष प्रमाणवादी उस दोषसे मुक्त नहीं हो सकेगा । अतः पुनर्जन्म मानना होगा और अनुमान आदि प्रमाणोंसे प्रमाणित पूर्वकृत सुकृत-दुष्कृतोंका ही परिणाम उन सुख-दुःखोंको माना जायगा, जिन्हें नवजात शिशु भोगता है ।

(४) नवजात शिशु बोल-चाल, उठना-बैठना आदि क्रिया नहीं कर सकता; उसे यह भी नहीं समझाया जा सकता कि तुम अपनी माताके स्तनको मुँहमें लेकर दोनों जबड़ोंसे दबाकर ऐसे चूसो, जिससे उसका दूध तुम्हारे पेटमें पहुँचे और तुम्हारा पोषण हो; अन्यथा तुम नहीं जीओगे । किंतु कुछ भी कहने और समझानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती । मुँहमें स्तन दिया कि अपने-आप वह नवजात शिशु स्तन्यपान करने लग जाता है । यदि पूर्वजन्ममें किये हुए स्तन्यपानके संस्कार न हों तो उस बच्चेकी स्तन्यपानमें प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती ।

(५) पशु-पक्षियोंको संतानोत्पत्ति, उनके पालन-पोषण और रहन-सहनकी व्यवस्था करनेका ज्ञान होता है, ऐसा उनकी क्रियाओंको देखनेसे प्रमाणित होता है । यदि पूर्वजन्म न मानें तो उन पशु-पक्षियोंको इन कार्योंकी शिक्षा कहाँसे प्राप्त हुई ? यह प्रश्न बना ही रहेगा ।

(६) बिल बनाकर उसमें कीटको रखना और नादके द्वारा उसे अपने-जैसा ही भ्रमर बना लेना; अनेक पुष्पोंसे सूक्ष्म रस लाकर उससे मधु बनाना तथा एक-एक तृणको चञ्चुसे उठा-उठाकर उससे ऐसा नीड (घोंसला) बनाना, जिसे देखकर हाथ-पैर और बुद्धिवाले मानव भी चकित हो जाते हैं । भ्रमर, मधु-मक्खी, बया आदि पक्षियोंकी ये विशेषताएँ भी पुनर्जन्मको सिद्ध कर रही हैं ।

(७) सभी (अनन्त) जीव अविनाशी हैं । इनका अनेक योनियोंमें कई बार जन्म हुआ है और मुक्तिपर्यन्त वह होता ही रहेगा । अतः जिन-जिन योनियोंमें पहले जन्म हुआ था, उन्हीं योनियोंमें पुनः जन्म होनेपर उनके संस्कार उद्बुद्ध होकर वैसी ही स्मृति उत्पन्न कर देते हैं, जिससे नवजात अशिक्षित शिशु भी तदनुसार क्रिया करने लगता है । अन्यथा वह किसी भी प्रकारकी चेष्टा नहीं कर

केगा। अतः तर्कसे भी पुनर्जन्मकी सिद्धि हो रही है। पुनर्जन्म' सिद्ध हुआ कि 'परलोक' स्वतः सिद्ध हो गया। आजके वैज्ञानिक चन्द्रलोककी यात्राके लिये उद्यत हैं। उनके राकेट तो वहाँ उतर ही चुके हैं। जब चन्द्रलोक भूलोकसे एक पृथक् लोक प्रत्यक्ष सिद्ध है, तब अन्य इन्द्रादि लोक-लोकान्तर भी निश्चित हैं। यही मानना पड़ेगा।

जन्मान्तर-तथ्य

(लेखक—श्रीशैलेशजी ब्रह्मचारी)

जन्मान्तरवादीका तथ्य या पुनर्जन्म-तत्त्व—यह मनुष्यके लिये एक चिरन्तन कौतूहल है। युग-युगमें, देश-देशमें मनुष्यका मन सदासे इस विषयमें जिज्ञासाशील रहा है। हमारे देशमें तो अति प्राचीन कालसे ऋषियोंने इस विषयमें बहुत विचार किया है; किंतु पाश्चात्त्य जगत्में भी इस विषयमें लोगोंके कौतूहलकी सीमा नहीं है। हमारे आर्य ऋषियोंने इस विषयमें हमको जहाँ पहुँचा दिया है, उससे आगेकी बात आजतक कोई कहनेमें समर्थ नहीं है। अति उन्नतिशील और गौरवान्वित विज्ञानने भी इस विषयमें कोई परीक्षण-निरीक्षण नहीं किया; अतएव विज्ञान भी कोई नवीन तथ्य हमारे सामने नहीं रख सका। ऐसी स्थितिमें क्या इस विषयमें हमारे ऋषि-प्रोक्त तथ्य ही अन्तिम तत्त्व हैं।

बहुत-से लोग कहते हैं कि 'पाश्चात्त्य जगत् इसके बारेमें मौन है, अर्थात् वहाँ अधिकतर लोग जन्मान्तरवादको मानते ही नहीं हैं और यदि कोई-कोई धर्म पुनर्जन्मके सिद्धान्तको मानते भी हैं तो वह उनके लिये गौण विषय ही है।' परंतु यह बात ठीक नहीं है। वर्तमान पाश्चात्त्य जगत् तो दूर रहे, उन देशोंके प्राचीन धर्ममें भी इसके अस्तित्वका विशेष परिचय प्राप्त होता है। ग्रीस देशमें अति प्राचीन का । Urphik नामक एक धार्मिक मत प्रचलित था, भी जन्मान्तरवादको मानता था। स्वनामधन्य गणितज्ञ और दार्शनिक पाइथागोरस तथा सुकरातके सुयोग्य शिष्य प्लेटो—इन दोनोंका धार्मिक मत उपर्युक्त Urphik धर्म ही था। उन्होंने अपनी विभिन्न

पुनर्जन्मवादकी विस्तृत आलोचना करके दिखलाया है कि प्राच्य आर्षधर्मके साथ Urphik धर्मकी इस विषयमें बहुत समानता है। Gompers साहबके मतसे 'हिंदू धर्मका तथा ग्रीक धर्मका निरामिष भोजनका सिद्धान्त एक ही प्रकारके विचारसे उद्भूत था। दोनों धर्मोंमें जन्मराशि-चक्रका विवरण भी एक ही ढाँचेका है। यहाँतक कि पुनर्जन्मवादके जो सिद्धान्त दोनों धर्मोंमें विद्यमान हैं, उनकी व्याख्या भी एक ही प्रकारसे की जाती है।' मैकडानेल साहब स्पष्टरूपसे कहते हैं कि, 'There cannot be any doubt that the religion Urphik was fundamentally based on the Arya philosophy and faith." अर्थात् 'इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि Urphik धर्म मूलतः आर्यदर्शन और विश्वासके ऊपर आधारित था।'

अतएव जन्मान्तरवादके विषयमें पाश्चात्त्य जगत् मौन है, यह उक्ति, जान पड़ता है, उन देशोंके वर्तमान भौतिकवादको लक्ष्य करके ही कही गयी है।

जो हो, पुनर्जन्मवाद हमारे उपनिषदोंका एक मुख्य सिद्धान्त है। नचिकेता मृत्युराजके द्वारपर उपस्थित हुए। बारंबार अनुरोधपूर्वक उन्होंने मृत्युराजसे पूछा कि 'मृत्युके बाद मनुष्यका कुछ रहता है या नहीं, यह एक प्राचीन समस्यामूलक प्रश्न है। आप मुझे इस विषयमें उपदेश दें।' यमराजने नचिकेताको जो बतलाया था, उसका संक्षिप्त सार यही है कि 'जो लोग परलोकमें विश्वास नहीं करते, वे अविवेकी और मूढ़ हैं। इस प्रकारके लोग बारं-

छान्दोग्य उपनिषद्में भी आया है—'जीवापेतं वाव किल इदं म्रियते । न जीवो म्रियते ।' (६ । ११ । ३)

नचिकेता योग्य प्रश्नकर्ता थे । अतएव यमराजकी बात सुनकर स्वभावतः जीवके मन जो प्रश्न आता है, उनके मनमें भी वही प्रश्न उठा था । किंतु वर्तमान प्रसङ्गमें वह प्रयोजनीय नहीं । हमारा प्रश्न यह है कि जीवके देह-त्यागके समय तथा उसके बाद क्या होता है ?

इस प्रसङ्गमें बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है कि 'यथाकारी यथाचारी भवति' ...... इत्यादि (४ । ४ । ५)—अर्थात् 'जो जिस प्रकारका आचरण करता है, उसकी परिणति उसी प्रकार होती है ।' पुरुषका मन आसक्त विषयमें आकृष्ट होकर उसी पथसे गमन करता है । छान्दोग्य उपनिषद् और भी कहता है कि 'तद् य इह रमणीय-चरणा अभ्याशो ह यत् ते रमणीयां योनिमापद्येरन्' (५ । १० । ७)—'अर्थात् जो सुन्दर आचरण करते रहते हैं, वे मरणोपरान्त सुन्दर योनिमें जन्म लेते हैं ।'

तत्पश्चात् यह परिणति या गति होती है किस रूपमें ? इस विषयमें छान्दोग्य उपनिषद् कहता है कि 'मृत्युके समय पहले वाक् मनमें लीन होता है, मन तेजमें और तेज परमतेजमें लीन होता है, (६ । ८ । ६) । कौषीतकी उपनिषद् भी कहता है कि 'जीव शरीर-त्यागके समय वाक्, इन्द्रिय-समूह और मनको उपाधिके साथ एकत्रित कर लेता है तथा वे सब प्राणमें विलीन हो जाते हैं ।' बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है कि 'मृत्युकालमें इन्द्रियोंकी क्रिया अव्यक्त हो जाती है और वे हृदयमें एकत्रित होकर प्रभायुक्त होती हैं । उस प्रभाके द्वारा आलोकित होकर आत्मा देहसे निकलता है तथा सब प्राण उसका अनुगमन करते हैं ।' मरणक्रियाका यही रूप उपनिषद्में वर्णित है ।

इस प्रकार आत्मा बहिर्गत होता है; किंतु बहिर्गत होकर वह जाता कहाँ है ? और किस पथसे जाता है ? छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि विभिन्न उपनिषदोंमें आत्माकी गतिके सम्बन्धमें 'देवयान' तथा 'पितृयाण'के नामसे दो मार्गोंका वर्णन मिलता है । इसके सिवा विभिन्न सूत्रों और विभिन्न ब्राह्मणोंमें भी विभिन्न प्रकारकी बातें मिलती हैं ।

इनमें देवयान मार्गसे जानेवाला निर्वाण या मोक्षको प्राप्त होता है और पितृयाणसे जानेवालोंको पुनः लौटना पड़ता है ।

शतपथ-ब्राह्मणमें भी इन दोनों प्रकार उल्लेख है । 'अथ य एवं न विदुः, ये वै तत् मृत्वा पुनः सम्भवन्ति ।' (१० । ४ । १०)

'पुनः सम्भवन्ति'—इससे यह प्रश्न उ 'अदेहीको देहकी प्राप्ति कैसे होती है ?' इसका रण्यक उपनिषद् देता है कि 'मृत्युके समय अ सारी शक्ति और इन्द्रियाभासको साथ ले जा शक्तिके बलसे ही उसका पुनः जन्म लेना सम्भव देहके रूपके सम्बन्धमें भी उपनिषद् कहता आकार और गठन निर्भर करते हैं—पूर्वजन्मकी दुष्कृतिके ऊपर । जो आत्मा जन्म लेता है, उ उसके पूर्वजन्मके सारे संस्कार ही वर्तमान पूर्वजन्मकी कामना-वासना भी उसके साथ लगी

'स यथाकामो भवति तत् क्रतुर्भवति । यत तत्कर्म कुरुते ॥' (बृहदारण्यक० ४

जन्मान्तर-तत्त्वके विषयमें एक और बात बाद पाप-पुण्यका फल कहाँ और किस प्रकार उपनिषद्में लिखा है कि 'कृत पाप-पुण्य ही उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट योनि प्राप्त और पाप-पुण्यका फल-भोग होता है—प लोकोंमें ।' इहलोकमें भी पुनर्जन्मके बाद कर्मोंका फल भोगना पड़ता है; क्योंकि उपनिषद् कि 'जो जिसके जिस कर्मके लिये उत्तरदायी होता प्राप्तिके समय उसका भी संयोग आवश्यक होता है इस जन्ममें जो ऋणी हो गया है, जन्मान्तरमें उ परिशोधके लिये धनदाताके साथ उसका संयोग होगा । अर्थात् पाप और पुण्यके भोगके लिये को लोक ही नहीं है । यही उपनिषद्का मत है ।

इहलोक कर्मलोक है । उपनिषद् कहते हैं कि द्वारा ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस चतुर्वर्ग होती है । अतएव केवल भुक्ति ही नहीं, मुक्तिके इहलोककी आवश्यकता है । अतएव यदि जीव जन्म न्तर-कर्मके द्वारा आप्तकाम नहीं हो जाता, तो उस उत्क्रमण करेगा ही (उसका पुनर्जन्म होगा ही आप्तकामी, निष्काम हो जायँगे, उनका उत्क्रमण प्राप्ति ही ।' यही औपनिषदिक जन्मान्तरवादका संक्षिप्त है । ॐ ।

श्रीहनुमान-आराध्यकी प्रतीक्षामें

आध्यात्मिक पुनर्जन्म

(लेखक—श्री'मण्डन'मिश्र)

भौतिक पुनर्जन्ममें शरीर बदलनेकी आवश्यकता पड़ती है, किंतु आध्यात्मिक पुनर्जन्म इस शरीरके रहते हुए ही होता है। इसके लिये कुछ संस्कारोंकी आवश्यकता होती है, जो प्रायः सभी विभिन्न धर्मोंमें पाये जाते हैं। अपने यहाँ उपनयन एक ऐसा ही संस्कार है। उसके बाद उपनीतको 'द्विज' या 'द्विजन्मा' कहा जाता है। यह संस्कार होनेपर व्यक्तिको आध्यात्मिक दृष्टिसे कुछ अधिकार मिल जाते हैं और साथ ही उसकी जिम्मेदारियाँ भी बढ़ जाती हैं। जो उपनयनके अधिकारी नहीं हैं, उनके लिये विवाह इसी प्रकारका एक संस्कार है। उसके बाद उसका एक प्रकारसे पुनर्जन्म ही समझना चाहिये। वह गृहस्थ बनकर अपनी नयी जिम्मेदारियोंका बोझ उठाता है। ईसाइयोंमें 'बतिस्मां' एक ऐसा ही संस्कार है। इसके हो जानेपर बच्चा ईसाई-धर्ममें दीक्षित समझा जाता है। इसी त मुसल्मानोंके यहाँ 'सुन्नत' है। इसी तरह अधिकांश सम्प्रदा में आध्यात्मिक पुनर्जन्मकी कुछ-न-कुछ व्यवस्था है। बात अवश्य है कि अपने यहाँ इस विषयपर जितना वि तथा अनुसंधान चला है, उतना अन्य किसी धर्ममें ना यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इसका मूल सि अपने ही यहाँकी देन है, जिसे अन्य धर्मोंमें किसी-न-f रूपमें अपनाया गया है। किंतु उसमें असंगतियाँ भी यह स्वाभाविक है, जब कोई धर्म किसी दूसरे धर्मका सिद्धान्त अपनाता है, तो यथार्थरूपमें उसे सम असमर्थ होनेके कारण उसमें असंगतियाँ आ जाती हैं।

पुनर्जन्म

(लेखक—वैद्य श्रीकन्हैयालालजी मेड़ा, व्याकरणायुर्वेदाचार्य)

पुनर्जन्म भारतीय संस्कृतिके तत्त्वज्ञानका एक मौलिक सिद्धान्त है। शरीरकी मृत्युके साथ शरीरगत आत्माकी मृत्यु न होकर, वह आत्मा उस देहमें प्राप्त संस्कारोंके साथ दूसरे देहमें चला जाता है, इसीको 'पुनर्जन्म' कहते हैं।

> मृतो नष्ट इति प्रोक्तो मन्ये तच्च मृषा ह्यसत्।
> स देशकालान्तरितो भूत्वा भूत्वानुभूयते॥
> (योगवासिष्ठ ५। ७१। ६५)

> अनुभूय क्षणं जीवो मिथ्यामरणमूर्च्छनम्।
> विस्मृत्य प्राक्तनं भावमन्यं पश्यति सुव्रते॥
> (योगवासिष्ठ ३। २०। ३१)

> आशापाशशताबद्धा वासनाभावधारिणः।
> कायात्कायमुपायान्ति वृक्षाद् वृक्षमिवाण्डजाः॥
> (योगवासिष्ठ ४। ४३। २६)

पुनर्जन्मका सिद्धान्त न केवल युक्तियुक्त है, अपितु आत्माकी दृष्टिसे आवश्यक घटना है। माता-पितासे अपत्यको भौतिक शरीर मिलता है तथा कुछ वंशपरम्परागत (Hereditary) गुण-दोष भी मिलते हैं। परंतु इसमें संततिके समस्त शारीरिक एवं मानसिक गुण-दे उत्पत्ति लगाना कठिन है। पुनर्जन्म ही एक ऐसी है कि जिसके आधारपर कठिन-से-कठिन प्रश्नोंका दिया जा सकता है।

पुनर्जन्मका सिद्धान्त अनुमान और युक्तिके आ सिद्ध करना पड़ता है। इसके लिये आयुर्वेदमें बहुत सुयुक्तियुक्त एवं विस्तृत वर्णन मिलता है, उसका सा यह है कि प्रथम परलोक तथा पुनर्जन्मकी सिद्धिके लि

अपुनर्भववादी—Rejector of the Rebir Spirit theory.

१ प्रत्यक्षवादी (पुनर्जन्मके परोक्ष होनेसे), औ (परस्पर विरोध होनेसे)

Followers of Direct Observation th and Followers of Tradition theo

२ मातृ-पितृवादी—Followers of M and Father theory.

३ स्वभाववादी—Followers of N theory.

४ परनिर्माणवादी—Followers of Divine Handywork theory.

५ यदृच्छावादी—Followers of Accident theory.

—आदि विभिन्न पक्षोंका संग्रह करके विचार किया है। क्रमशः इनका खण्डन करके अन्तमें अपनी बुद्धिको पापमय कर्मोंसे हटाकर सज्जन पुरुषोंद्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तपर स्थिर होकर विचार करना चाहिये—

तस्मान्मतिं विमुच्यैताममार्गप्रसृतां बुधः।
सतां बुद्धिप्रदीपेन पश्येत् सर्वं यथातथम्॥
(चरक० सू० ११।५)

इसलिये यही सज्जनोंका मार्ग है तथा इसपर वही चल सकता है, जिसकी बुद्धि शुद्ध होती है; अतः बुद्धिका शोधन करके इस मार्गपर चलनेका आदेश दिया है।

यहाँ आचार्यने कहा है कि जगत्में प्रत्यक्ष बहुत कम पदार्थोंका होता है; किंतु अनुमान आदि प्रमाणोंसे ज्ञातव्य वस्तुएँ बहुत हैं। केवल प्रत्यक्ष प्रमाण माननेमें यह दोष भी कहा है कि इन्द्रियाँ स्वयं प्रत्यक्ष-गम्य नहीं हैं तो क्या इन्द्रियोंको नहीं मानना चाहिये? यदि इन्द्रियोंको न मानें तो वस्तुओंका ज्ञान ही सम्भव नहीं है। यदि इन्द्रियाधिष्ठानको इन्द्रिय मान लिया जाय तो बधिर-अन्ध होनेपर इन्द्रियाधिष्ठानके होते हुए ज्ञान उत्पन्न होना चाहिये, किंतु वह नहीं होता है। अतः इन्द्रियोंका ज्ञान 'चक्षुर्बुद्ध्यादिकाः करणकार्याः क्रियात्वाच्छिदिक्रियावत्।' इस अनुमान-प्रकारसे अर्थात् चक्षुर्बुद्धि आदि पाँच इन्द्रियबुद्धियाँ किसी साधनद्वारा उत्पन्न होती हैं—क्रिया होनेपर छेदनक्रियाके सदृश, अर्थात् छेदन-क्रिया जिस तरह आरे आदिद्वारा उत्पन्न होती है, तद्वत् चक्षुर्बुद्धि-ज्ञान आदि भी किसीके द्वारा उत्पन्न होने चाहिये। जिनके द्वारा वे उत्पन्न होते हैं वे ही वास्तवमें इन्द्रिय हैं—

अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च॥
(सांख्यकारिका ७

अतः केवल प्रत्यक्षको माननेवाले बिना विचारे त बिना परीक्षा किये ही 'प्रत्यक्ष ही केवल प्रमाण है, अ प्रमाण नहीं है' उनके इस मतका खण्डन करते हुए प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी पुनर्जन्मकी सिद्धि होती है, इस त्रयोदश उदाहरणोंसे स्पष्ट किया गया है—

'प्रत्यक्षमपि चोपलभ्यते मातापित्रोर्विसदृशान्यपत्यानि' इत्यादि—'तथैवानुमीयते...' इत्यादि।

अर्थात् जन्मान्तरमें किये हुए कर्मका विनाश न होता; यह अविनाशी है। भोगके बिना कर्मका विन नहीं हो सकता।

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'

तथा—'नाभुक्तं क्षीयते कर्म' इति।

इससे सिद्ध होता है पूर्वजन्म था तथा पुनः भी ज होगा। अनुमानप्रमाणसे पुनर्जन्मको सिद्ध करनेके लिये उदाहरण दिये हैं—फलको देखकर अतीत बीजका अनु किया जाता है, तदनुसार उत्तम कुल एवं अधम कु जन्म देखकर पूर्वजन्मकृत शुभाशुभ कर्मका अनुमान क पूर्वजन्म सिद्ध किया जाता है। ऐसे ही बीजको देख भविष्यमें होनेवाले फलका अनुमान किया जाता है, त इस शरीरद्वारा किये गये शुभ और अशुभ कर्मसे भवि पुनर्जन्मका अनुमान कर पुनर्जन्म सिद्ध किया जाता है।

आप्तोपदेश—आप्त महर्षियोंने दिव्य दृष्टिसे देखकर भवका उपदेश दिया है। आप्तोपदेशसे समस्त वेदव धर्मशास्त्र, स्मृति-पुराण आदिका ग्रहण होता है। म वात्स्यायनने 'आप्त' शब्दका (न्यायदर्शन १।१।७ भाष्यमें) अर्थ किया है

बहुत कारणोंके योगसे उत्पन्न अविज्ञात भावोंको विज्ञात भावोंके कार्य-कारण भावके अनुसार तथ्यको देखनेवाली बुद्धिको 'युक्ति' कहते हैं।

'**विज्ञातेऽर्थे कारणोपपत्तिदर्शनात्, अविज्ञातेऽपि वधारणं युक्तिः ।**' (गंगाधरः)

इन चार प्रमाणोंके द्वारा पुनर्जन्मको सिद्ध किया गया है। ससे परलोककी भी सत्ता सिद्ध होती है।

योगदर्शनमें—

'**संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्**'।

(योग०, विभूति० १८)

इस सूत्रके भाष्यकारने आवट्य नामक योगीश्वरका योगिराज जैगीषव्यके साथ एक संवादसे पुनर्जन्म सिद्ध किया है। इसका सार यह है कि भगवान् जैगीषव्य प्रसिद्ध योगीश्वर थे। उनके विषयमें ऐसी प्रसिद्धि है कि वे संस्कारोंके साक्षात्कारसे दस महाकल्पोंमें व्यतीत हुए अपने जन्म-परिणाम-परम्पराका अनुभव करते हुए विवेकजन्य ज्ञानसम्पन्न थे। एवं योगिराज भगवान् आवट्यके सम्बन्धमें भी सुना जाता है कि वे योगबलसे स्वेच्छामय दिव्य विग्रह धारण करके विचरण करते थे। एक समय दोनों योगियोंका संगम हो गया। उस समय आवट्यने जैगीषव्यसे यह प्रश्न किया कि 'दस महाकल्पोंमें देव-मनुष्य आदि योनियोंमें उत्पन्न होते हुए आपने जो अनेक तरहकी तिर्यक्-योनियोंमें तथा गर्भमें दुःखोंका अनुभव किया है, उन सबसे आप विदित-तत्त्व हैं; क्योंकि आपकी बुद्धि सत्त्वगुणसे युक्त होनेसे स्वच्छ है; अतः आपको सम्पूर्ण पूर्वजन्मोंका ज्ञान है। इसलिये आप यह बताइये कि इन महाकल्पोंमें आपने नानाविध जन्म धारण किये हैं, उन जन्मोंमें आपने संसारको सुखबहुल देखा या दुःख-बहुल ?' इसके उत्तरमें श्रीजैगीषव्यने कहा कि 'उन दस महाकल्पोंमें अनेक प्रकारके नरक-तिर्यक्-योनियोंमें बहुविध दुःखोंका अनुभव करते हुए पुनः-पुनः देव और मनुष्यादि योनियोंमें जन्म लेते हुए जो अनुभव किया है, उन सबको मैं दुःखरूप ही मानता हूँ।' इत्यादि।

'भगवानावट्यो जैगीषव्यमुवाच दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्त्वेन त्वया नरकतिर्यग्गर्भसम्भवं दुःखं सम्पश्यता देवमनुष्येषु योनिषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन सुख-दुःखयोः किमधिकमुपलब्धमिति भगवन्तमावट्यं जैगीषव्य उवाच—दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतबुद्धिर मया तिर्यग्भवं दुःखं सम्पश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुन द्यमानेन यत् किंचिदनुभूतं तत् सर्वं दुःखमेव प्र मीत्यादि।'

महाभारतमें महर्षि व्यासने सुगमतासे ज्ञान क लिये शुभाशुभकर्मानुसारि पूर्वजन्मको इस तरह किया है—

प्रागनेन कृतं कर्म तेनासौ निधनं गतः।
विनाशहेतुः कर्मास्य सर्वे कर्मवशा वयम्॥

अर्थात्—गौतमी नामकी कोई ब्राह्मणी सर्पके मरे हुए पुत्रको देखकर अत्यन्त चिन्ता कर रही थी। लुब्धकके द्वारा बाँधकर अपने समीप लाये हुए सर्पको, पुनः मारिये—कहनेपर भी गौतमीने उसका वध नहीं कि सर्प भी, 'मैं वध करनेवाला नहीं हूँ, कुठारकी तरह छेदन परतन्त्र हूँ; मृत्यु ही यहाँ कारण है।' ऐसा कह रहा तदनन्तर मृत्युने प्रादुर्भूत होकर कहा कि 'मैं भी काल-प हूँ।' फिर काल भी आकर कहता है कि "मैं भी स नहीं हूँ। इसका 'कर्म' ही इसकी मृत्युमें कारण है।"

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान

(ऋग्वेद १०।५५।

इसका सायणानुसार तात्पर्य यह है कि 'वृद्धाव व्याप्त प्राणीकी जब मृत्यु होती है, पुनः जन्मा प्रादुर्भूत होता है, इस स्पष्टोक्तिसे भी जन्मान्तर स होता है।' इसी वेदपुरुषोक्तिका अनुसरण करते हुए—

'**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।**'

(गीता २।

—कहकर श्रीमद्भगवद्गीतामें जन्म-मरण-सामानाधि नियमका कथन साक्षात् भगवान्ने किया है। इसी भगवद्गीताके द्वारा पुनर्जन्मप्रदर्शक बहुत वचनोंका उ दिया जा सकता है। जैसे—'**बहूनां जन्मनामन्ते**।' (७।१९)

'**बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि**' (गीता ४।५) तथा अन्यान्य श्रुति-स्मृत्यादि प्रमाणोंसे पुनर्जन्म सिद्ध हो

श्रीकालिदासने रघुवंश (१४।६६) में कहा
साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोग

अर्थात्—'यह मैं संतानके बाद सूर्यकी ओर देखती हुई वैसा तप करनेके लिये प्रयत्न करूँगी, जिससे जन्मान्तरमें भी मेरे पति आप ही हों और मेरा आपसे वियोग न हो।'

तथा—

रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां राज्ञां सहस्रेषु तथा हि बाला।
गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्॥

(रघु० ७। १५)

'निश्चय ही ये दोनों पूर्वजन्ममें रति तथा कामदेव थे (और इस जन्ममें) इन्दुमती तथा अजरूपमें उत्पन्न हुए हैं; क्योंकि कुमारी इस इन्दुमतीने हजारों राजाओंके बीचमें इनको प्राप्त कर लिया। मन दूसरे जन्मकी सङ्गतिका ज्ञाता (जानकार) होता है।'

महाकवि श्रीहर्ष भी 'नैषधमहाकाव्य' (सर्ग ९ श्लो० १००) में—

ममादरीदं विदरीतुमान्तरं तदर्थिकल्पद्रुम किञ्चिदर्थये।
भिदां हृदि द्वारमवाप्य मैव मे हृतासुभिः प्राणसमः समं गमः॥

यहाँ श्रीदमयन्तीने नलसे प्रार्थना की है कि 'तुम मेरे प्राणके समान हो, अतः सम्भव है कि तुम्हारे बिना हृदयके विदीर्ण होनेपर हतभाग्य मेरे प्राण विदारणरूप द्वारसे निकल जायँगे, किंतु तुम भी उस द्वारसे मत निकल जाना अर्थात् जन्मान्तरमें भी तुमसे ही मैं हृदयसे अनुरक्त होकर पुनः प्राप्त करूँ, यही मेरी याचना है।'

छा० उ० (८। १५। १) में—

'न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते।'
'तेषां न पुनरावृत्तिः।' (बृ० ६। २। १५)

'एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते।'

(छा० ४। १५। ६)

कर्म तथा पुनर्जन्मका सिद्धान्त, जो भारतीय धर्मकी आधारशिला है, रामायणमें सर्वत्र स्वीकृत एवं समर्थित है।

पाप और उसका फल दोनोंमें समानता एवं संगति रखी जाती है। जिस तरहका पाप-कर्म होगा, पापीको उनका परिणाम भी उसी तरहका भोगना पड़ेगा। श्रीरामचन्द्रके अनुसार श्रीकौसल्याने पूर्वजन्ममें स्त्रियोंका पुत्रोंसे विद्रोह कराया होगा, तभी इस जन्ममें उनको भी वैसा ही पुत्र-वियोग सहना पड़ा—

नूनं जात्यन्तरे तात स्त्रियः पुत्रैर्वियोजिताः।
जनन्या मम सौमित्रे तदद्यैतदुपस्थितम्॥

(२। ५३। १९)

स्वयं कौसल्याकी भी यह मान्यता थी कि 'निश्चय ही पहले मैंने अधम बुद्धिसे, बछड़ोंके दूध पीनेके समय उनकी माताओंके स्तनोंको काट डाला होगा, इसी कारण (नियति-वश) मैं भी विवत्सा कर दी गयी।'

रामायणके अनुसार मनुष्यका कोई कर्म, भले ही वह अज्ञानवश ही क्यों न किया हो, निष्फल नहीं जा सकता। इसलिये महर्षि श्रीवाल्मीकिने बहुत उदाहरणोंसे पुनर्जन्मको सिद्ध किया है। कर्मफलकी प्राप्तिके लिये जन्म-मरणकी शृङ्खला अनिवार्य है। अतः जीवके लिये पुनर्जन्मका सिद्धान्त सभी शास्त्रकारोंने स्वीकार किया है। सर्वत्र ही उसकी प्राप्ति सदाचारी जीवनसे ही सम्भव मानी गयी है। अतएव सत्यभाषण, पूज्यवर्गमें श्रद्धा आदिके लिये प्रबल बल दिया है।

वेदोंमें—**'एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः।'**

(श्वे० उ० २। १६। वा० य० ३२। ४)

अर्थात् 'जीवात्मा निस्संदेह पुनर्जन्म प्राप्त करता है।'

'सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात्पुनर्णवः।'

त्वं स्त्री पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥

उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः॥

(अथर्व० १०। ८। २३, २७, २८)

इसका स्पष्ट यही अर्थ है कि जन्म लेनेपर भी पुनः-पुनः गर्भमें जन्म लेता है। यहाँ 'पुनः नवःपुनर्णवः' पुनः-पुनः जन्म लेकर नवीन होनेवाले। इसी प्रकार ऐतरेय, कठ आदि उपनिषदोंमें पुनर्जन्मका प्रतिपादन है।

'एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः।' इसका सर्वथा समर्थक 'पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः' (न्यायदर्शन १। १। १९) सूत्रमें भाष्यकार श्रीवात्स्यायनने 'पुनरुत्पत्तिः पुनर्देहादिभिः सम्बन्धः। प्रेत्यभावो मृत्वा पुनर्जन्म।' अतः जन्म-मरण-परम्परायाः पुनः पुनर्भवनम्। इति। अर्थात् ''मरकर जन्म लेनेका नाम 'प्रेत्यभाव' है। नित्य आत्माका पुराने शरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद करना मरण तथा नूतन शरीरके साथ सम्बन्ध जोड़ना जन्म है।'' इससे सिद्ध होता है कि नैयायिक भी नित्य आत्माका जन्म-मरण मानते हैं।

शतपथ ब्राह्मण (१४ । ७ । १ । ३६) में देवलोकका (३७) में गन्धर्वलोकका (१४ । ७ । १ । १९) में ब्रह्मलोकका तथा (३ । ७ । १ । २५) में मनुष्यलोक एवं पितृलोकका उल्लेख मिलता है ।

वेदान्तदर्शनके ३ । २ । ६ 'देहयोगाद् वा सोऽपि ।' इस सूत्रके भाष्यमें—'सोऽपि तु जीवस्य ज्ञानैश्वर्यतिरोभावो देहयोगात्, देहेन्द्रियमनोबुद्धिविषयवेदनादियोगात्, भवति ।' इत्यादि वाक्योंसे भी छान्दोग्योपनिषद्के तीन उद्धरणोंसे परलोकका वर्णन हुआ है ।

सारांश—'पुनर्जन्म और परलोक' विषयपर इतना लिखनेका एकमात्र उद्देश्य यही है कि इस मनुष्ययोनिमें ही अपने जीवका उद्धार हो सकता है तथा यह मानव-शरीर पुण्यबल एवं प्रभुकी परम कृपासे ही प्राप्त हुआ है । भगवती श्रुति भी यही कहती है कि 'यदि इस सर्वोत्तम योनिमें इससे प्राप्त होनेवाले शुभ-अशुभ कर्मोंको खूब समझकर जन्म सफल—ईश्वर-प्राप्ति नहीं कर सके तो बहुत हानि होगी—

'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, नो चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।'

भगवती श्रीगीताजी भी यही कहती हैं—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् । (६ । ५)

अर्थात्—परमेश्वरप्रदत्त यह मनुष्य-योनि सर्वोत्तम है, इसके द्वारा ही शुभ कर्मोंसे आत्मोद्धार सम्भव है—

इयं हि योनिः प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते ।
आत्मा वै शक्यते त्रातुं कर्मभिः शुभलक्षणैः ॥

यह भी स्मरणीय है—

पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र, धरा धन धाम है बंधन जी को ।
बार ही बार विषय-फल खात, अघात न जात सुधारस फीको ॥
आन औसान तजो अभिमान, कही सुन कान भजो सिय-पी को ।
पाय परम पद हाथ सों जात, गई सो गई अब राख रही को ॥

इसलिये इस मानव-जीवनके मुख्य लक्ष्य भगवत्प्राप्तिके लिये पूर्ण सचेष्ट रहना चाहिये ।

पूर्वजन्म-सिद्धान्तकी विश्वव्यापी मान्यता, सत्यता और उसके प्रसारका उद्गम

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी, 'ब्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

पूर्वजन्म-स्मृति पुनर्जन्मका एक प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसे सिद्ध करनेके लिये किसी अन्य युक्तिकी आवश्यकता शेष नहीं रहती । भारतवर्षके आर्य इसे अनादिकालसे मानते चले आये हैं । आप किसी साधारण-से-साधारण अपठित हिंदूसे पूछिये, वह इस सिद्धान्तपर अपना अटल विश्वास प्रकट करेगा । यहाँ कोई हिंदू-सम्प्रदाय आपको ऐसा नहीं मिलेगा, जो इसपर विश्वास न करता हो । यहाँतक कि जैन और बौद्ध अवैदिक सम्प्रदाय भी इस सिद्धान्तपर आस्था रखते हैं । वेद, उपनिषद्, शास्त्र, स्मृति, पुराण-इतिहास—सभी यह प्रतिपादन करते हैं कि आत्मा मृत्युके पश्चात् एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरमें इसी प्रकार जाता है, जैसे हम पुराने वस्त्रोंको उतारकर नयेको धारण करते हैं ।

हम यहाँ पुनर्जन्मपर वेद तथा अन्य धर्म-शास्त्रोंके प्रमाण नहीं दे रहे हैं; वह केवल इसलिये कि यह आर्य-जातिका एक सर्वमान्य सिद्धान्त रहा है और आज भी है । हिंदू-सम्प्रदायोंमें जहाँ अन्य विषयोंपर मतभेद है, वहाँ इस सिद्धान्तपर सब एकमत हैं । अतएव प्रमाण-संग्रहको हमने इस विषयमें अनावश्यक समझकर छोड़ दिया है ।

संसारमें वैदिक धर्मके अतिरिक्त बौद्ध, ईसाई तथा इस्लाम—तीन प्रमुख मत प्रचलित हैं । बौद्धमत-प्रसारसे पूर्व भी चीननिवासी इस सिद्धान्तपर विश्वास करते थे, ऐसे प्रमाण मिलते हैं । ईसाई और इस्लाम-सम्प्रदाय पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं करते; परंतु बाइबिल तथा कुरानमें ऐसे स्थल हैं, जिनसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है । ईसाइयत और इस्लामसे पूर्व फ्रांस, इंगलैंड, यूनान आदि यूरोपीय तथा अरब, ईरान, मिश्र आदि एशियाई देशनिवासी आवागमनमें विश्वास रखते थे, इनके अनेक ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं ।

बाइबिलमें राजाओंकी दूसरी पुस्तक-पर्व २, आयत ८, १५ में वर्णन है कि 'एलियाह नबीका आत्मा मरनेके पश्चात् एलोशामें आ गया ।' इसी प्रकार मलाकी पर्व ४, आयत ४-५-६ में परमेश्वरने इसी एलियाह नबीको भेजनेकी बात कही है । मत्ती पर्व ११, आयत १०-१३ में 'यूहन्ना बपतिस्मा देनेवालेको ही पूर्वजन्मका एलियाह नबी बताया है ।' आरम्भमें ईसाइयोंके कुछ गुप्त सिद्धान्त थे, जिनमें

पुनर्जन्म भी सम्मिलित था। पाल और ईसाई गुरुओंके लेखोंमें इसका संकेत है। औरिजनमें इसका स्पष्टतया उल्लेख किया है। ईसाई-मतका एक सम्प्रदाय नास्टीसिज्म इस सिद्धान्तको प्रकटरूपमें मानता था। परिणामतः अन्य ईसाई सम्प्रदाय इसके अनुयायियोंको कष्ट पहुँचाते थे। इसी प्रकार साइमेनिस्ट, बेसीलियिन, वैलेन्टीनिय मार्शीनिस्ट तथा मैनीचियन आदि अन्य ईसाई सम्प्रदाय थे, जो पुनर्जन्म मानते थे। ईसाकी छठी शताब्दीमें चर्चकी कौंसिलमें कुछ सिद्धान्तोंका मानना पाप उद्घोषित किया गया, जिनमें पुनर्जन्म भी एक था और सम्राट् जस्टीनियनने राजाज्ञाद्वारा उनके माननेपर प्रतिबन्ध लगा दिया।

इस्लाम भी पुनर्जन्मके सिद्धान्तको नहीं मानता; परंतु कुरानमें ऐसी आयतें हैं, जो इस सिद्धान्तकी स्पष्ट शब्दोंमें पुष्टि करती हैं। उनमेंसे कुछ यहाँ दी जाती हैं—

'क्यों कुफ्र करते हो साथ अल्लाहके और थे तुम मुर्दे पस जिलाया तुमको, फिर मुर्दा करेगा तुमको, फिर जिलायेगा तुमको, फिर उसके फिर जाओगे।' (सू० रू० ३ आ० ७)।

'अल्लाह वह है जिसने पैदा किया तुमको, फिर रिज्क दिया तुमको, फिर मारेगा तुमको, फिर जिलायेगा तुमको।' (सू० रू० ३० रू० ४ आयत १३)

जैसा पैदा किया तुमको पहली बार फिर आओगे। (सूरते ऐराफ ७ रूकु० ३ आ० ४) कहेंगे अय रब हमारे मरा तूने हमको दो बार और जिलाया तूने हमको दो बार पस इकरार किया हमने साथ गुनाहों अपनोंके पस क्या है तरफ निकलनेके। (सू० मोमिन ४० रू० आ० २) कहा क्या खबर दूँ मैं तुमको·······'लानत की उसको अल्लाहने और गुस्सा हुआ ऊपर उसके और किये उनमें बंदर और सूयर इत्यादि (सू० मायदा ५ रू० ९ आ० ५)।

जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं—इस्लामके प्रचारसे पूर्व अरबनिवासी इस सिद्धान्तमें विश्वास रखते थे। वाकरने लिखा है कि 'अरबके दार्शनिकोंको यह सिद्धान्त बहु[illegible] था और कई मुसलमानोंकी लिखी पुस्तकोंमें अब भी उल्लेख है, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं। पू[illegible] स्मृतिकी घटनाएँ मुसलमानों और ईसाइयोंमें भी है[illegible] परंतु सिद्धान्तहानिके भयसे वे उसे छिपा लेते हैं [illegible] खुदाकी कुदरत कहकर टाल देते हैं।

इस्लाम-मतके इस सिद्धान्तको न माननेका एक [illegible] यह भी है कि जो सम्प्रदाय स्वर्ग-नरक लोक स्था[illegible] मानते हैं, जहाँ 'मरनेके पश्चात् आत्माएँ जाती हैं और फि[illegible] आती हैं।' उनका यह आवागमन-चक्रका सिद्धान्त मान ले[illegible] स्थायी स्वर्ग-नरक कैसा? दूसरी कठिनाई इनके पैगम्ब[illegible] पाप क्षमा करानेकी उपस्थित होती है। स्वकर्मानुसार जन्म [illegible] पर पापोंके क्षमाका प्रश्न ही नहीं रहता। सम्भवतः [illegible] उपर्युक्त दो कठिनाइयाँ हैं, जो इनको अपनी धर्म-पु[illegible] पुनर्जन्मका संकेत होनेपर भी उसे माननेमें बाधा उ[illegible] करती हैं।

अफ्रीका और अमेरिकाके आदिनिवासी लोगों[illegible] पुनर्जन्ममें विश्वासके प्रमाण उपलब्ध होते हैं। मौल्डी [illegible] एक पुरातत्त्ववेत्ताने इन जातियोंमें लकड़ी और प[illegible] बने हुए चित्रोंके आधारपर लिखा है कि 'इन ल[illegible] यह विश्वास सार्वजनिक था कि आत्मा मृत्यु होनेपर श[illegible] पृथक् हो जाती है। कुछ जातियोंका विश्वास था कि आत्मा [illegible] पुनः उसी शरीरमें आ जाती है, इसलिये उसमें म[illegible] लगाकर शवको देरतक सुरक्षित रखनेकी प्रथा थी। कई जातियाँ ऐसी थीं जो मृत्यूपरान्त आत्माका न[illegible] शरीरमें जन्म लेना मानती थीं।'

यूरोपके जिन यात्रियोंने पहले अफ्रीकामें यात्रा [illegible] उन्होंने लिखा है कि 'कई स्थानोंके लोग पुनर्जन्मको म[illegible] हैं।' इसी प्रकार प्रारम्भमें जो लोग अमेरिका गये उन्हें [illegible] हुआ कि वहाँके मूल निवासी इस सिद्धान्तपर पूर्ण नि[illegible] रखते हैं। यह विश्वास उनमें अब भी पाया जाता है।

मानव मोहवश अनर्थ संचय कर रहा है

जिस मानव-शरीरमें होते सिद्ध सहज चारों पुरुषार्थ।
जिसमें सत्पथपर चल मानव मोक्षरूप पाता परमार्थ॥
उसे खो रहा मूढ़ मोहवश दुःखयोनि भोगोंमें व्यर्थ।
तिर्यग्योनि-नरकदायक संतत संचित कर रहा अनर्थ॥

पुनर्जन्मका आधार

(लेखक—श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

आधुनिक कवियों तथा रहस्यवादियोंने बार-बार पुनर्जन्मका उल्लेख किया है, उनमेंसे बहुतेरोंने अपने विचारोंका प्रासाद खड़ा करनेके लिये इस अनुमानित कल्पनाको मान्य किया है। उदाहरणके लिये टैगोर (श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर) निस्संकोच पुनर्जन्मको स्वीकार करते थे। वाल्ट विटमैन (Walt Witman) ने अपनी कृति 'सांग आफ माइसेल्फ' (Song of Myself) में उच्च स्वरसे गाया है—

'As to you, Life, I reckon you are the leavings of many deaths. No doubt I had died myself ten thousand times before'.

'ओ जीवन ! तुम मेरे अनेक अवसानोंका अवशेष हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि मैं इसके पूर्व दस हजार बार मर चुका हूँ।' बहुतोंका अनुमान है कि जीवन अनेक अवसानोंका अवशेष है। इस जीवनको मैं जो आज देखता हूँ, यह बहुतसे जन्मों तथा अवसानोंका परिणाम है। अगणित बार मरने तथा पुनः जन्म लेनेकी घटनाओंमेंसे इसे यह वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है। अपनी समस्त त्रुटियों और महानताओंके साथ एक व्यक्ति अनेक जन्मों तथा निधनोंमेंसे निकलनेकी एक दीर्घ अविच्छिन्न प्रक्रियाका परिणाम है। आधुनिक कालके कुछ ख्यातनामा पाश्चात्त्य दार्शनिकोंने भी पुनर्जन्मकी धारणाको मान्य किया है। न केवल कवि तथा रहस्यवादी ही इस मतके अनुगामी थे, अपितु अध्यात्मविद्याविशारद भी मानव-अस्तित्व तथा अनुभूतियोंसे सम्बन्धित कुछ मौलिकताओंको स्पष्ट करनेके लिये इसे मान्य करना अनिवार्य समझने लगे थे। आर्थर शोपनहर (Arthur Schopenhauer) ने अपनी कृति 'परेरगा एण्ड पार्लीपोमेना' (Parerga and Parlipomena) में यों लिखा है—

'यदि कोई एशियानिवासी मुझसे यूरोपकी परिभाषा पूछे तो मुझे बाध्य होकर उसे यह उत्तर देना पड़ेगा कि योरप इस अविश्वसनीय भ्रान्तिके भूतसे संत्रस्त वह भूभाग है, जो मनुष्यका निर्माण शून्यमेंसे मानता है तथा उसके वर्तमान जन्मको ही जीवनमें उसका प्रथम पदार्पण समझता है।'

यदि वर्तमान जन्मको ही जीवनमें प्रथम प्रवेश मान लिया जाय तो हमारी चेतना परिमित हो जाती है। परंतु यह सभी स्वीकार करते हैं कि एक आध्यात्मिक तथा बुद्धिजीवी प्राणी होनेके कारण मनुष्यको अपनी सीमितताओंका अतिक्रमण करना ही चाहिये और अतिक्रमणमें ही उसके अस्तित्वकी सच्ची महत्ता है। ईश्वरीय चेतना हमारे भीतरके विश्व-चैतन्यकी सहायक है। उपनिषद्‌का कथन है—'ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत्।'—ईश्वरकी सर्वव्यापकताकी यह धारणा एक वैश्विक चेतना प्रदान करती है, जो इस पूर्वमान्य कल्पनाके साथ आगे बढ़ती है कि व्यक्तियोंके रूपमें हमारे इस वर्तमान भौतिक प्राकट्यके पूर्व भी हमारा अस्तित्व था। यहाँ स्वाभाविक रूपसे यह प्रश्न उपस्थित होता है कि भौतिक रूपोंमें हमारा प्राकट्य किन नियमोंद्वारा नियन्त्रित होता है। प्रायः इस शरीरको पैतृक देन समझा जाता है। हमारे भौतिक स्वभावमें भी पूर्वजोंके अनुरूप कुछ बातें रह सकती हैं। हम व्यक्ति-करणकी प्रक्रियामेंसे गुजरनेवाले आध्यात्मिक प्राणी हैं और इसलिये हमें नियमके प्रभावकी चपेटमें आना ही होगा। प्रत्येक घटनाके पीछे इतिहास है और वर्तमानको भूतकालकी उपज ही देखा गया है। अव्यक्तके रहस्यमय रसातलसे शरीरधारी अस्तित्वसे सम्पन्न व्यक्ति उठते हुए प्रतीत होते हैं। निश्चय ही व्यक्ति वह

बीजकी अदृश्य क्षमताओंको प्रकटमात्र कर देता है। टहनियाँ बनती, फैलती और पूर्ण समूहके वस्त्र धारण करती हैं। पत्ते झड़ते हैं और ऋतुओंके पुनरावर्तनसे फिर नव पल्लव प्रस्फुटित हो जाते हैं; परंतु इसकी बाह्य दशाओंकी सम्पूर्ण कालावधिमें भी वृक्षका आभ्यन्तरिक स्वरूप सतत वही रहता है। इसी प्रकार हमारे व्यक्तित्व हमारे अन्तरतम आत्माकी विविध दशाएँ हैं। सर्वत्र ही परिवर्तनके मध्यमें भी स्थायित्वकी रहस्यमयता दृष्टिगोचर होती है। ऊपरी दृष्टिसे देखनेपर आकृतियोंमें व्यक्त हमारा जीवन क्षणभङ्गुर तथा स्वेच्छाचारी शक्तियोंके अधीन प्रतीत होता है। फिर भी हम अपने अन्तरमें स्वतन्त्रताकी कुछ सृष्टि कर सकनेकी क्षमताका अनुभव करते रहते हैं। हमें व्यापक स्वत्वकी अपनी इस आन्तरिक भावनापर ही आस्था रखनी चाहिये; क्योंकि इसी दिशामें यथार्थतः बढ़नेपर हमारे ऊपरी तलके जीवनोंका अर्थ खोजा जा सकता है।

संसारके लगभग सभी प्रमुख धर्मोंने हमें यही आस्था रखनेका आदेश दिया है कि पृथ्वीतलका हमारा यह जीवन हमें इसके बादके अनन्त और उच्च जीवनके लिये तैयार करनेवाला एक अनुशासन है। यदि हमने इस उपदेशपर ध्यान दिया तो हमें जन्मों और अवसानोंके सातत्य (नैरन्तर्य) पर विश्वास करना ही पड़ेगा। और फिर पश्चिममें अमरतासम्बन्धी प्रचलित सिद्धान्त अमरत्वकी पूर्व-पीठिकाके रूपमें सर्वाधिक महत्त्व इस पृथ्वीके हमारे जीवनको प्रदान करते हैं। क्या इस शरीरमें हमारे अस्तित्वके केवल एक ही अनुभवपर हमारे अनन्त जीवनको निर्भर रखना युक्तिसंगत होगा ? व्यक्तिगत अमरताका कोई भी सिद्धान्त प्राक् अस्तित्वको अनिवार्य मानकर ही आगे बढ़ सकता है। वैयक्तिक अमरतापर आस्था रखनेवाले यदि पुनर्जन्मको स्वीकार कर लें तो उनके विश्वासका युक्तिसंगत आधार बहुत पुष्ट हो जाता है। उस स्थितिमें शरीरसे भिन्न काल-मात्रमें आत्माका अस्तित्व मानना होगा जो एक ऐसी विकासमान प्रक्रियामें संलग्न है, जिसे अनेक शरीरोंकी आवश्यकता है। वास्तविक रहस्यवादी दृष्टिकोणसे, जिसमें कालविषयक नवीन मान्यताएँ अन्तर्भूत हैं—देखनेपर एक विशेष काल-क्रममें चेतन अनुभूतियोंका विधिसंगत निरूपण ही 'पुनर्जन्म' है। इस प्रकार यदि वैयक्तिक अमरत्वके सिद्धान्तको स्वीकार किया जाय तो पुनर्जन्मके सिद्धान्तका बौद्धिक प्रतिरोध नगण्य हो जायगा। पुनर्जन्मके पक्षमें युक्तिसंगत तर्क हैं, परंतु सभी तर्कोंके समान ह पूर्वपक्ष हमें स्वीकार करना होगा। भौतिक औ अलग चेतन अनुभूतियोंकी सम्भावनाको अस्वीकार पुनर्जन्मके सम्बन्धमें विचार करना व्यर्थ श्रममात्र ह पुनर्जन्मके सिद्धान्तको माननेवाले बहुतसे लोग साध इसलिये इसे स्वीकार करते हैं; क्योंकि उन्हें ऐसा है कि यदि इसकी ठीक व्याख्या की जाय तो यह परस्परविरोधी अनुभवोंमें प्रतीत होनेवाले अन्य समाधान प्रस्तुत करता है। जब इस सृष्टिका इतन कुछ किसी नियमकी अभिव्यक्ति दिखायी देता है हमारे आत्माओंके अभिव्यक्ति-करणको स्वेच्छाचारकी देकर संतोष नहीं किया जा सकता। यदि हम आत्मा अस्तित्वको स्वीकार करते हैं तो इनके अभिव्यक्ति-कर नियन्त्रित करनेवाले नियमोंका पता लगाना तर्कशा दृष्टिसे आवश्यक हो जाता है।

हमारे जन्मको एक आकस्मिक घटनामात्र मानने धारणासे अपने आपको उन्मुक्त करना एक बौ आवश्यकता है। इसी कारणसे अनेक अस्तित्वोंकी आध भूत धारणाका यह सिद्धान्त कि 'आत्मा एक निय अनुसार अपने आपको अभिव्यक्त करता है' हम विचारशक्तिको बहुत जँच जाता है। यदि हमारे पू जन्मोंके हमारे अपने किये हुए कर्मोंसे ही हमारे वर्तम जन्मकी स्थितियोंका निर्धारण होता है तो यह हम दुर्भाग्यजनित दुःखसे हमारा त्राण कर देता है त हमारे प्रत्यक्षतः अकारण सौभाग्यका स्पष्टीकरण भी प्रस्तु करता है। हम वहीं हैं, जहाँ हम हैं और हम जो कु हैं, वह केवल इसलिये हैं; क्योंकि हमें हमारे विकास लिये ऐसी ही स्थितियोंकी आवश्यकता है और गत कर्मों फलाफलका निपटारा करनेके लिये भी यही आवश्यक है।

भगवद्गीता हमें बतलाती है कि जीवनकालमें जिस जिस विचार, संकल्प तथा कामनासे हम अत्यधि अभिभूत रहे हैं, मृत्युके समय उन्हींका प्राबल्य रहेगा और वही मरनेवाले व्यक्तिके आन्तरिक स्वभावका गठन करेंगे। यह नवगठित अन्तःकरण अपने आपको नये रूपमें अभिव्यक्त करेगा। इस आन्तरिक स्वभावका गठन करनेवाले विचार, संकल्प या कामनामें ऐसी परिस्थितियों या परिपार्श्वका चुनाव करने अथवा उसे आकर्षित करनेकी शक्ति विद्यमान है, जो इसके प्रकटीकरणके मार्गमें सहायक

सके। कुछ अर्थोंमें यह प्रक्रिया सहज स्वाभाविक ावके नियम (Law of natural selection) अनुरूप है। पुनर्जन्मके सिद्धान्तके समर्थनमें वेदान्तके र्शनिकोंका तर्क है कि इस सृष्टिमें कुछ भी नष्ट नहीं ता। आधुनिक वैज्ञानिकोंके समान वेदान्तवादियोंमें भी ासी वस्तुके लोपके अर्थमें उसका नाश होना कल्पनातीत । उनका कथन है कि 'जो नहीं है उसका होनापना दापि सम्भव नहीं और जो है उसके न होनेकी कभी म्भावना नहीं।'—

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः॥'
(गीता २। १६)

या इसे दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते जिसका पहले अस्तित्व नहीं था, उसका कभी अस्तित्व हीं हो सकता और विलोम-पद्धतिसे विचार करनेपर जेसका किसी भी रूपमें अस्तित्व है, वह कभी ास्तित्वरहित नहीं हो सकता। यह प्राकृतिक नियम है। स दृष्टिसे देखनेपर इस समय हमारे जो संस्कार या वेचार हैं और जिन शक्तियोंपर हमारा अधिकार है, उनका ाश नहीं होगा। वे किसी-न-किसी रूपमें हमारे साथ हेंगे। हमारे शरीरमें परिवर्तन हो सकता है, परंतु ाक्तियाँ, कर्म, संस्कार और हमारे शरीरोंका निर्माण करनेवाले उपकरण हममें अव्यक्तरूपसे रहेंगे ही। उनका कभी विनाश नहीं होगा। विज्ञान हमें बतलाता है कि जो कुछ भी अव्यक्त अथवा प्रसुप्तरूपमें विद्यमान है, वह किसी-न-किसी समय अवश्य ही गत्यात्मक अथवा यथार्थ रूपमें मूर्तिमान् होकर रहेगा। इसलिये हमें देर-सवेर दूसरे शरीरोंकी भी प्राप्ति होगी। भगवद्गीता भी यही कहती है कि 'जन्मके पश्चात् मृत्यु और मृत्युके पश्चात् जन्म सुनिश्चित है।'—

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'
(गीता २। २७)

जन्म-मरणके इस सतत प्रवाहमेंसे जीवनके बीज कारणको निकालना ही पड़ेगा। परंतु यहां एक समस्या खड़ी होती है। पुनर्जन्मके सम्बन्धमें इस आधारपर एक आपत्ति उठायी जा सकती है कि यदि जन्मके पूर्व हमारा अस्तित्व था, तो हमें पूर्व अस्तित्वोंकी स्मृति क्यों नहीं है?

वेदान्त इस प्रश्न तथा इससे सम्बन्धित अन्य प्रश्नोंका उत्तर यह कहकर देता है कि 'हमारे पूर्व अस्तित्वोंका स्मरण हो सकना सम्भव है' हम 'राजयोग'के तृतीय अध्यायके १८वें सूत्रका अवलोकन करें। जिसमें यह वर्णित है कि 'संस्कारोंको अनुभव करनेका अर्थ है, हमारी गत अनुभूतियोंके वे संस्कार जो सुप्त रूपमें हमारे अवचेतन मानसमें पड़े हैं और जिनका कभी नाश नहीं होता।' सुप्त संस्कारोंका चेतनाके धरातलपर जाग्रत् होना और उठ बैठना ही 'स्मृति' कहलाता है। एक राजयोगी अपने अन्तश्चेतनाके संस्कारोंपर सशक्त एकाग्रताका उपयोग करके अपने गतजीवनकी सभी घटनाओंका स्मरण कर सकता है। भारतमें ऐसे योगियोंके बहुत उदाहरण मिलते हैं, जिन्हें न केवल अपने ही गतजीवनकी जानकारी थी; अपितु दूसरोंके गतजीवनके विषयमें भी वे बतला सकते थे। कहा जाता है कि गौतम बुद्धको अपने ५०० गत-जन्मोंकी स्मृति थी। हमारा अवचेतन मानस अथवा अन्तश्चेतना उन संस्कारोंका भण्डार है, जिन्हें हम हमारे जीवनकालमें हमारे अनुभवोंद्वारा संचित करते रहते हैं। जैसा कि वेदान्तमें कहा जाता है कि कबूतरखानेके समान चित्तमें संस्कार संगृहीत हो जाते हैं। चित्तका अर्थ है वह अवचेतन मानस अथवा अन्तश्चेतना जो हमारे संस्कारों तथा अनुभवोंका भण्डार है। ये संस्कार तबतक सुप्त पड़े रहते हैं, जबतक कि अनुकूल स्थितियाँ उन्हें जाग्रत् नहीं कर देतीं और उन्हें चेतनाके तलपर बाहर नहीं खींच लातीं। इस प्रकार प्रत्येक आत्माके पास उसके परिपार्श्वमें अन्तश्चेतनाके अंदर संगृहीत अनुभवों तथा संस्कारोंका भण्डार रहता है। इस अनुशीलनके प्रकाशमें हम यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि क्या प्रेमियोंकी मृत्युके पश्चात् भी उनका परस्पर प्रेम बना रहेगा? वेदान्तका कथन है कि 'हाँ' यह रहेगा। शरीरकी मृत्यु परस्परके आकर्षण तथा दो आत्माओंके लगावका अन्त नहीं करेगी; क्योंकि आत्मा अमर हैं, इसलिये उनके सम्बन्ध सदैव बने रहेंगे।

आत्मा उन शक्तियोंका मध्यवर्ती केन्द्र समझा जाता है, जिन्हें अपने अभिव्यक्त होनेके लिये उपयुक्त क्षेत्रोंकी आवश्यकता है। यह स्मरण रखना उपयोगी होगा कि पुनर्जन्ममें कर्मस्वातन्त्र्य तथा नियतिवाद (या प्रारब्ध भोग) दोनों पहलेसे ही तथ्य मान लिये गये हैं। हम

शक्तियोंके गर्भाशयमें निहित परिणामों तथा पुनरावर्तनकी लम्बी शृंखलासे उत्पन्न विवशताओंसे बच नहीं सकते। दूसरी ओर हम मोक्षकी प्राप्तिके लिये इस नियमका उपयोग करनेमें स्वतन्त्र हैं। पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें यह भी पूर्व-कल्पित है कि प्रत्येक आत्मामें पूर्णताकी क्षमता है और यह क्रमशः अपनी शक्तियोंको उन्मुक्त कर रहा है तथा विकासकी प्रक्रियाद्वारा उन्हें यथार्थ स्वरूप दे रहा है। इस प्रक्रियाके प्रत्येक चरणमें यह नये अनुभव सँजो रहा है, जो थोड़े समयके लिये ही रहते हैं। इसीलिये हमारे अच्छे या बुरे कृत्योंके लिये न तो भगवान् और न ही शैतान उत्तरदायी हैं। पुनर्जन्मका यह अभिप्राय नहीं है कि हमें अपने आगामी जीवनमें फिर नये सिरेसे चलना पड़ेगा। इसका अर्थ है कि व्यक्ति उस स्थानसे पुनः चलना आरम्भ करेगा, जहाँतक वह अपनी पूर्व मृत्युको पहले पहुँच चुका था और प्रगतिके इस तारके टूटे बिना वह सतत आगे ही बढ़ेगा। यह सिद्धान्त हमें यह नहीं सिखलाता कि हम मरणोपरान्त कभी पुनः पशु-योनिमें जायँगे ही नहीं। अपितु हमारी कामनाओं, वृत्तियों और शक्तियोंके अनुरूप ही हमें हमारे शरीर प्राप्त होते हैं। सनातनधर्म स्पष्टतः कहता है कि पाप और उसी प्रकार पुण्यके परिणामोंका, उस पाप-पुण्यकी गुरुता या लघुताके अनुसार, देर-सबेर अन्त होगा ही और तब आत्मा अपने अन्तश्चेतना तथा ऊर्ध्वचेतनामें संकलित स्मृतियोंके साथ पृथ्वीपर लौटेंगे और गत जीवनोंमें प्राप्त शिक्षाओंके लाभ उठाकर इस विकास-पथपर विविध अनुपातोंसे आगे बढ़ेंगे अथवा पीछे हटेंगे। पुनर्जन्मके इस सिद्धान्तके साथ अनिवार्य रूपसे एक और महान् सत्य यह जुड़ा हुआ है कि हमारी पाँच इन्द्रियों तथा अवस्थाके अनुरूप जैसा हमारा यह जगत् है, वैसे ही सूक्ष्म इन्द्रियों तथा चेतनाकी अन्य स्थितियोंके अनुरूप इतरलोक हैं। हमारा आत्मा मृत्यु तथा पुनर्जन्म प्राप्त करनेके बीचकी अवधिमें इन लोकोंमेंसे वैसा ही होकर जाता है, जिस प्रकार हम रात्रि और दिनके बीच स्वप्नोंमेंसे निकला करते हैं।

वेद हमें यह बतलाते हैं कि केवल एक ही जगत्की सीमाओंमें अनन्तकालके लिये किसी प्राणीका जन्म, अवस्थिति और मरण एवं पुनर्जन्म आवश्यक नहीं होता अपितु वह अनन्त लोकोंकी मालिकामें भी पुनः जन्म-ग्रहण कर सकता है।

वर्तमान कालके कतिपय वैज्ञानिकोंने इस दृष्टिकोणका प्रचार किया है कि दो प्रमुख सिद्धान्त वेदोंकी मूल भित्ति हैं। प्रथम—वेदोंका अपौरुषेय स्वरूप और उनका अमोघत्व, तथा द्वितीय है—पुनर्जन्मका सिद्धान्त। स्वामी दयानन्द इसीपर विश्वास करते थे और इस सम्बन्धमें ब्रह्मसमाज-आन्दोलनके प्रवर्तकोंसे उनकी मत-भिन्नता थी। पुनर्जन्मकी धारणा वेदोंमें सर्वत्र व्याप्त है।

घोर यमयातनासे राम ही बचाते हैं

जहाँ जमजातना, घोर नदी, भट कोटि जलच्चर दंत-टेवैया।
जहाँ धार भयंकर, वार न पार, न बोहितु नाव, न नीक खेवैया॥
'तुलसी' जहँ मातु-पिता न सखा, नहिं कोउ कहूँ अवलंब-देवैया।
तहाँ बिनु कारन रामु कृपाल बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया॥

(कवितावली)

जहाँ यमयातना देनेवाले करोड़ों यमदूत हैं, घोर वैतरणी नदी है, जिसमें दाँतोंकी धार तेज करनेवाले (काटनेवाले) जलजन्तु हैं, जिसकी भयंकर धारा है और जिसका कोई वार-पार नहीं है, जिसमें न जहाज है, न नाव और न सुन्दर नाविक ही है; इसके सिवा जहाँ माता, पिता, सखा अथवा कोई अवलम्बन देनेवाला भी नहीं है; वहाँ श्रीगोसाईंजी कहते हैं, बिना ही कारण कृपा करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही अपनी विशाल भुजासे पकड़कर निकाल लेनेवाले हैं।

कृतकर्म और पुनर्जन्म

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी एम० ए० (द्वय), साहित्यरत्न साहित्यालंकार, साहित्यसुधाकर)

पुनर्जन्मके सिद्धान्तको केवल हिंदू-धर्मानुयायी या केवल ास्तिकवादी ही नहीं मानते, बल्कि बौद्धलोग जो आत्माको हीं मानते, वे भी वैदिक धर्ममें वर्णित इस पुनर्जन्मको ल्पनाको अपने धर्ममें पूर्णरूपसे स्थान देते हैं। आधुनिक ाधिभौतिक शास्त्रकारोंका भी यह मत है कि कर्मशक्तिका भी भी नाश नहीं होता; बल्कि जो शक्ति आज किसी ाम-रूपसे देख पड़ती है, वही शक्ति उस नाम-रूपके नाश ोनेपर दूसरे नाम-रूपसे प्रकट हो जाती है। इस बीसवीं ताब्दीमें भी पक्के निरीश्वरवादी, नास्तिक जर्मन-पण्डित ीत्शेने भी पुनर्जन्मवादको स्वीकार किया है। उसने लेखा है कि 'कर्म-शक्तिके जो रूपान्तर हुआ करते हैं, वे सब नियमित और मर्यादित हैं और इसीलिये कर्मका चक्र अर्थात् बन्धन आधिभौतिक दृष्टिसे भी सिद्ध हो जाता है।' हेगेल-(Hegel)-जैसे आधिभौतिक शास्त्रज्ञोंका भी यही सिद्धान्त है कि 'यह कृतकर्म सृष्टिचक्र मनुष्यको जिधर ढकेलता है, उधर ही उसे जाना पड़ता है।'

आध्यात्मिक दृष्टिसे इस नाम-रूपात्मक परम्पराको ही जन्म-मरणका चक्र अथवा 'संसारचक्र' कहते हैं और इन नाम-रूपोंकी आधारभूत शक्तिको समष्टिरूपसे 'ब्रह्म' अथवा 'परमात्मा' और व्यष्टिरूपसे 'जीवात्मा' अथवा 'देही' कहा करते हैं। तत्त्व-दृष्टिसे तो यह आत्मा न जन्म धारण करता है और न मरता ही है, अर्थात् यह नित्य और स्थायो है; परंतु कर्म-बन्धनमें पड़ जानेके कारण एक नाम-रूपके नाश हो

अर्थात् 'हे राजा ! यदि यह देख पड़े कि किसी मनुष्यको उसके पापकर्मोंका फल नहीं मिला तो समझ लेना चाहिये कि उस फलको उसके पुत्रों, पौत्रों और प्रपौत्रोंको भोगना पड़ेगा।'

बहुधा यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि कोई-कोई रोग वंशमें परम्परासे प्रचलित रहते हैं; कोई जन्मसे दरिद्र और कोई जन्मसे सम्पन्न कुलमें उत्पन्न होते हैं; कोई जन्मसे ही अङ्गहीन, बलहीन, बुद्धिहीन और कोई जन्मसे ही हृष्ट-पुष्ट अङ्गवाले, बुद्धिमान्, प्रतिभावान् होते हैं। इन सब बातोंकी उपपत्ति केवल कर्मवादसे ही बतलायी जा सकती है और यही सब कृतकर्मवादकी सचाईका प्रमाण है।

यद्यपि मानवी बुद्धिसे इस बातका पता नहीं लगता कि परमेश्वरकी इच्छासे संसारमें कर्मका आरम्भ कब हुआ और तदङ्गभूत यह प्राणी (जीव) कर्मके बन्धनमें पहले-पहल कब फँस गये, तथापि जब हम यह देखते हैं कि कर्मोंके भविष्य परिणाम या फल केवल कृतकर्मोंके नियमोंसे ही उत्पन्न हुआ करते हैं, तब अपनी बुद्धिसे इतना तो हम अवश्य निश्चय कर सकते हैं कि संसारके आरम्भसे प्रत्येक प्राणी नाम-रूपात्मक अनादि कर्मोंकी कैदमें बँध-सा गया है। इसीलिये '**कर्मणा बध्यते जन्तुः**—कर्मसे जीव बाँधा जाता है' ऐसा महाभारतमें कहा गया है।

कर्म-सरिता-प्रवाहमें बहती हुई जीवन-नौकाके पूर्वजन्म

कठोपनिषद् (२ । २ । ७) में कहा गया है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥

अर्थात् 'मृत्युके पश्चात् इन जीवात्माओंमेंसे अपने-अपने कर्मोंके अनुसार कोई-कोई तो वृक्ष-पाषाण आदि अचल शरीरको धारण करते हैं।' गौतमशापित अहल्याको पाषाण हो जाना पड़ा। विश्वामित्रशापिता रम्भाका शिलारूप वाल्मीकीय रामायणमें आया है। कोई-कोई देव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि जंगम शरीरोंको धारण करते हैं। महर्षि व्यासरचित ब्रह्मसूत्र उत्क्रान्तिगत्या गतीनाम्।' (२।३।१९) से एक ही जीवात्माके शरीर उत्क्रमण करने, परलोकमें जाने और पुनः लौट आनेका वर्णन आया है।

प्रश्नोपनिषद् (३ । ३ । ७) की सम्मतिमें 'जीवको पुण्य-कर्मके द्वारा पुण्य-लोकको और पाप-कर्मके द्वारा पापमय लोकको ले जाया जाता है तथा मिश्रित कर्मोंके द्वारा वह मनुष्यलोकको प्राप्त करता है।' जिस प्रकार विज्ञानके प्रयोगोंकी सत्ता, फल-प्राप्तिके निमित्त यत्नोंका प्रबन्ध करना और भविष्यके वृत्तान्तको पहलेसे ही बता देना, नियमोंकी नित्यतापर ही निर्भर है, ठीक उसी प्रकार मनुष्यके कर्मोंके नियमोंके सम्बन्धमें भी रीति बरती जाती है। जितने ज्ञानके साथ हम किसी कर्मको करते हैं, उतना ही ठीक-ठीक उसके भविष्यमें होनेवाले फलको हम बतला सकते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आधार केवल नियमोंके नित्य स्वभावपर ही निर्भर है।

मनुष्यके कृतकर्मोंके नियमनके सम्बन्धमें श्रीमती योगिनी मैडम ब्लैवट्स्कीने अपने ग्रन्थ 'गुप्त सिद्धान्त' (Secret Dectrine) में लिपिकारों (चित्रगुप्तों) का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि 'ये लिपिकार जगत्के देवगण होते हैं। इनका सम्बन्ध सृष्टिके उस अति गुप्तविभागके साथ है जो यहाँ प्रकट नहीं किया जा सकता। इन लिपिकारोंका सम्बन्ध केवल कर्मोंके बहीखातेसे रहता है।'

पश्चिम देशके दूरदर्शी ज्ञानवान् महात्मा श्रीआयम वलिकसने लिखा है कि 'न्यायकी जो व्याख्या हमको कभी-कभी ठीक नहीं प्रतीत होती, वह देवताओंको ठीक लगती है; क्योंकि हमको केवल वर्तमान और अति क्षणिक जीवनकी जानकारी रहती है; किंतु हमसे अधिक शक्तिवाले, अधिक ज्ञानवाले, देवगणोंको प्राणीके सम्पूर्ण जीवनकी जानकारी रहती है। उनको प्राणीके पिछले जन्मोंका भी सब वृत्तान्त ज्ञात रहता है।'

इसी प्रकारके और भी विचार आजकलके वैज्ञानिक भी पुनर्जन्मकी सिद्धिमें प्रकट करते हैं। हिंदू-सनातन-धर्मका तो विशाल भवन ही 'कृतकर्म और पुनर्जन्म'की नींवपर बाँधा गया है। हिंदुओंके तो रक्तमें सदैव इस सिद्धान्तकी धारा ही बहती रहती है और इसीलिये उनका व्यावहारिक जीवन बहुत ही संतुलित, संयमित, नियमित और मर्यादित ढंगसे व्यतीत करनेका प्रविधान है, जिससे इहलोक और परलोक दोनों मङ्गलमय बन सकें।

इहलोककी चिन्ता नहीं; परलोककी चिन्ता

मैंने देखा है कि सादा जीवन जटिल जीवनसे अच्छा होता है; क्योंकि उसमें ऊँची प्रवृत्तियोंके लिये समय मिल जाता है। प्राचीन सभ्यतामें भाग-दौड़ थी ही नहीं। लोग आज इहलोककी चिन्ता करते हैं, उन दिनों वे 'परलोक'की चिन्ता रखते थे। वे अपना ध्यान 'शरीर'पर नहीं, 'आत्मा'पर केन्द्रित करते थे। वे शरीरको आत्मासे बिल्कुल पृथक् मानते थे। उनके लिये भोग-विलास ही सब कुछ नहीं होता था और वह जीवनका चरम लक्ष्य भी नहीं था। अब 'शैतानकी सेवा' की जाती है; तब 'ईश्वरकी सेवा'की जाती थी। यदि मैं यह नहीं मानूँ कि आत्मा नित्य है और यदि मुझे हम-सबमें एक ही आत्माके दर्शन न हों तो मैं तो इस संसारमें रहना ही पसंद न करूँ। मैं मर जाना चाहूँगा। शरीर तो आत्माके नियन्त्रणमें चलनेवाला रथमात्र है। वह बिल्कुल हेय और अपावन मिट्टीका पुतला है।

(महात्मा गांधी)

आत्माकी सत्ता एवं नित्यता पुनर्जन्मकी साधक

['न्यायदर्शन' के आधारपर]

(लेखक—श्रीनारायणजी शर्मा शास्त्री 'राजीव', एम्० ए०, 'प्रभाकर')

आजकलके इस आत्मा-अविश्वासी युगमें 'पुनर्जन्म'का ानना भी दकियानूसियोंका विचार माना जाता है । आज-ल हेतुवादका युग है, प्रमाणवादपर लोगोंकी आस्था नहीं । तब हम तर्कशास्त्र न्यायदर्शनके आधारपर आत्माकी त्ता एवं नित्यता बताने जा रहे हैं; जिससे पुनर्जन्मकी ाद्धि स्वतः होगी ।

देहादिसंघातको, जिसमें इन्द्रियाँ, मन और शरीर आ ाते हैं, कई लोग आत्मा मानते हैं; वे आत्माकी पृथक् ात्ता नहीं मानते । इस विषयको प्रश्न-उत्तररूपसे दिखलाया ाता है ।

१. **प्रश्न**—शरीरमें भी चेष्टा दीखती है, इन्द्रियोंको भी ान होता है, मन भी ज्ञानका साधन है । इनके समुदायको ानका आधार देखा गया है, तब देहादिसंघात ही आत्मा ; उससे भिन्न आत्मा नहीं ।

१. **उत्तर**—आत्मा देहादिसंघातसे भिन्न ही है । 'दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात् ।' (३ । १ । १) । जिसको मैंने आँखसे देखा है; अब मैं उसे त्वचासे भी छू रहा हूँ; जिसे मैंने हाथसे छुआ था, अब उसे देख रहा हूँ; इससे भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंसे एक ही वस्तुके गृहीत होनेसे आत्मा देहादिसे भिन्न सिद्ध है । इससे आत्मा नित्य और चेतन सिद्ध होता है । पहले देखी हुई वस्तुका कालान्तरमें अन्य इन्द्रियसे भी ग्रहण हो सकता है । यदि देहादिसंघातको आत्मा माना जाय, तब आँखसे देखी हुई वस्तुकी त्वचासे स्मृति नहीं हो सकती, क्योंकि दूसरेसे देखी हुई वस्तुका दूसरेसे स्मरण नहीं हो सकता । नहीं तो, देवदत्तसे देखी हुई वस्तुका यज्ञदत्तसे भी ग्रहण हो जाय । पर ऐसा नहीं है ।

'तद्व्यवस्थानादेवात्मसद्भावादप्रतिषेधः ।' (न्याय० ३ । १ ।

यदि शरीरको आत्मा माना जाय, तो मृतक श जलानेपर पुत्रको भी पाप होगा—'शरीरदाहे पा भावात् ।' (३।३।४) अथवा देहादिसंघातको आत्मा जाय, वह तो प्रतिक्षणमें परिवर्तन होते रहनेसे अन्य हो कारण, जिस संघातने जीते हुए शरीरको जलाया; वह समय तो रहा नहीं; तब उसे पाप वा राजदण्ड नहीं चाहिये; परंतु हुआ करता है; इससे आत्मा शरी संघातसे भिन्न ही है ।

२. **प्रश्न**—जब आत्मा नित्य है; तब जीते हुए श जलानेपर भी आत्माके विनष्ट न होनेसे हिंसा न कारण पाप नहीं होगा । 'तदभावः सात्मकप्रदा तन्नित्यत्वात् ।' (३ । १ । ५)

२ **उत्तर**—यह शरीर आत्माको सुख आदिके मिला हुआ है; तब उसको उससे अलग करनारूप वहाँ भी है—'न कार्याश्रयकर्तृवधात् ।' (३ ६) इससे आत्मा देहसे भिन्न ही सिद्ध है ।

३. **प्रश्न**—इन्द्रियोंको ही आत्मा क्यों न मान जाय ?

३. **उत्तर**—बायीं आँखसे देखी हुई वस्तुका द आँखको भी स्मरण हो जाता है; इससे आत्मा इ भिन्न सिद्ध है । नहीं तो, एकसे देखे हुएको दूसरा नहीं कर सकता—'सव्यदृष्टस्येतरेण प्रत्यभिज्ञान (३ । १ । ७ ,

४. **प्रश्न**—जैसे पुलकी रुकावटमें ठहरे हुए दो

बिना निमित्तके होते हैं; तब इससे आत्माकी नित्यता कैसे हो जायगी ? **'पद्मादिषु प्रबोधसम्मीलनविकारवत् —विकारः।'** (३ । १ । २०)

९. **उत्तर**—कमल आदिमें जो खिलना-बंद होना आदि [विका]र होते हैं, वे भी बिना निमित्तके नहीं होते; उसमें भी [सूर्य]के उदय-अस्त आदि निमित्त होते हैं। यहाँपर भी सद्यः [उत्प]न्न हुए शिशुके हर्ष-भय आदि पूर्वजन्मके अभ्यस्त होते [हैं।] पूर्वजन्मवाले शिशुके भी उससे भी पूर्वजन्मके अभ्यस्त [होते] हैं। इस प्रकार यह परम्परा निरवच्छिन्न चलती [रह]ती है। **'न उष्णशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मकविकाराणाम्।'** (न्याय० ३ । १ । २१)

इस प्रकार बच्चेके हर्ष आदिमें पूर्वजन्मके अभ्यासके [नि]मित्त होनेसे आत्मा नित्य सिद्ध है।

इसी प्रकार सद्योजात बच्चेका स्तन्यपान, शहदका [चा]टना आदि भी पूर्वजन्मसे अभ्यस्त होनेसे हुआ करता —**'प्रेत्य आहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्।'** (३ । १ । २२)

१०. **प्रश्न**—यह बच्चेकी स्तन्यपानमें प्रवृत्ति भी [च]ुम्बकमणिके प्रति लोहेके खिंचनेकी तरह निर्निमित्त क्यों न [मा]नी जाय ? **'अयसोऽयस्कान्ताभिगमनवत् तदुपसर्पणम्।'** (३ । १ । २३)

१० **उत्तर**—यह ठीक नहीं। यदि अयस्कान्तमणि (चुम्बक) के प्रति लोहेका उपसर्पण निर्निमित्त हो तो अयस्कान्त ढेलेको क्यों नहीं खींच लेता ? पर नहीं खींच सकता, **'न अन्यत्र प्रवृत्त्यभावात्।'** (३ । १ । २४)

इस प्रकार शिशुकी स्तन्यपानमें प्रवृत्ति पूर्वजन्मके अभ्यासवश होती है, तब आत्माकी नित्यताके साथ पुनर्जन्म भी सिद्ध है।

उत्पन्न हुए शिशुमें राग भी दीखता है, वह खिलौने आदिसे प्रसन्न होता है। इससे वह पूर्वजन्मको अभ्यस्त है, यह सिद्ध है—**'वीतरागजन्मादर्शनात्।'** (३ । १ । २५) इसलिये आत्मा नित्य है।

११. **प्रश्न**—जैसे घड़ा आदि द्रव्य सगुण पैदा होते हैं, वैसे आत्माकी उत्पत्ति भी गुणसहित मान ली जाय— **'सगुणद्रव्योत्पत्तिवत् तदुत्पत्तिः।'** (३ । १ । २६)

११. **उत्तर**—राग आदि संकल्पसे होते हैं—**'न संकल्पनिमित्तत्वाद् रागादीनाम्।'** (३ । १ । २७)

वे रागादि ज्ञान हो जानेपर हट भी जाते हैं। अतः वे स्वाभाविक नहीं। रागमें पूर्वजन्मके कर्म कारण होते हैं। इससे जीवके नाना जन्म सिद्ध होते हैं। जातिविशेषमें रागविशेष भी हुआ करते हैं। जैसे—गज-जन्ममें उसका शल्लकी नामक घासमें राग होता है। विलाव-जन्ममें उसका मूषक आदिमें राग होता है। तब अदृष्ट (पूर्व-जन्मके धर्म-अधर्म आदि) से आत्मा नित्य सिद्ध है। आत्माकी नित्यतासे पुनर्जन्म भी सिद्ध है।

पुनर्जन्मकी घटनाएँ समाचारपत्रोंमें प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं। उन्हें पुनर्जन्म न माननेवाले ईसाई-मुसलमान आदि छिपाते हैं। हिंदू भी अपने बच्चेकी आयुके कम हो जानेकी शङ्कासे उन्हें छिपाते हैं। सुधारक इसमें पूर्वजन्मके कर्मोंके फलकी सिद्धि होनेसे नास्तिकताके संस्कारवश इसे छिपाते हैं। उच्च संस्कारवाला हिंदू मुक्तिको परम पुरुषार्थ माननेवाला होनेसे पुनर्जन्ममें आस्था नहीं रखता; परंतु पुनर्जन्म सिद्ध होनेसे और उसमें आस्था रखनेसे चोरी, जारी, पाप, हत्या आदि दुष्कर्म हट सकते हैं, इसी जनताकी कल्याण-भावनासे 'कल्याण'ने भी यह अङ्क निकाला है।

जन्ममरण-दुःखनाशके लिये ही आहार करे

अन्नाहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं कुर्यादाहारं प्राणसंधारणार्थम्।
प्राणाः संधार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं तत्त्वं जिज्ञास्यं येन भूयो न दुःखम्॥ (योगवासिष्ठ, नि० उ० २१।१०)

मनुष्यको चाहिये कि संसारमें आहारकी प्राप्तिके लिये शास्त्रानुसार अनिन्द्य कर्म करे। आहार भी प्राणोंकी रक्षाके लिये ही करे। प्राणरक्षा भी तत्त्वज्ञानके लिये ही करे। तत्त्वज्ञानकी इच्छा सबको करनी ही चाहिये, जिससे जन्म-मरण-दुःखकी फिर प्राप्ति न हो।

'जैसे स्वप्नकालमें स्वप्न-जगत् अपने भीतर अपनेसे पृथक् दीखता है, परंतु उसका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं होता; वह मायिक स्वप्नजगत् आत्मामें (अपने भीतर) ही उत्पन्न और विलीन हो जाता है। उसी प्रकार जाग्रत्-कालमें भी जो प्रपञ्च बाहर दीखता है, वह बाहर नहीं है। अपने भीतर है, आत्मामें है। आत्मस्थ होनेपर इसका भी अपलाप हो जाता है।'

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा।
(सुरेश्वराचार्य)

'अनादि मायासे सोया हुआ जीव जब जागता है, तब वह अज, अनिद्रा (निद्रारहित), अस्वप्न (स्वप्नरहित) अद्वैत ज्ञानको प्राप्त होता है।' वस्तुतः :—

ब्रह्म सर्वमिदं विश्वं विश्वातीतं च तत्पदम्।
वस्तुतस्तु जगन्नास्ति सर्वं ब्रह्मैव केवलम्॥
(योगवासिष्ठ ४। ४०। ३०)

'यह सारा विश्व ब्रह्म है; क्योंकि ब्रह्मके भीतर प्रतिभात होता है, किंतु ब्रह्म स्वरूपतः विश्वातीत है। वस्तुतः [illegible]की पृथक् सत्ता नहीं है; सब कुछ [illegible] ब्रह्म ही है।'

[illegible] केवला-

सारे प्रपञ्चके अस्तित्वको स्वीकार किया; परंतु साथ-ही-साथ परलोकके अस्तित्वकी उद्घोषणा कर दी। वेदान्तके अनुसार ब्रह्म निष्क्रिय था, अद्वैत था। अतएव उसके लिये जगत्के स्वतन्त्र अस्तित्वको स्वीकार करना बहुत ही कठिन था। मीमांसाने कहा कि विश्व और विश्वके व्यापारका संचालन अदृष्टके द्वारा होता है और अदृष्ट कर्मके द्वारा बनता है। शुभाशुभ कर्मके द्वारा शुभाशुभ अदृष्ट बनता है और उस अदृष्टके द्वारा जन्म-जरा, व्याधि-मृत्यु, सुख-दुःख आदिकी प्राप्ति होती है। अतिरिक्त इसके स्वर्गादि लोक भी हैं—

यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्।
अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वःपदास्पदम्॥

"जहाँ दुःखका लेश भी नहीं है और न होनेकी सम्भावना है और जो इच्छामात्रसे प्राप्त हो जाता है, वह 'स्वर्गसुख' है।" स्वर्गमें जीवको जिस सुखको भोगनेकी इच्छा होती है, वह तत्काल उसे प्राप्त हो जाता है। लौकिक सुख तो दुःखसे मिश्रित होता है; सुखकी प्राप्तिमें दुःख, भोगकालमें दुःख और भोगोपरान्त दुःख। परंतु स्वर्गका सुख निखालिस होता है और भोगोपरान्त आनन्दप्रद होता है। अतएव मीमांसक कहते हैं—'स्वर्गकामो यजेत्।' अर्थात् स्वर्गकी कामना हो तो यज्ञ करो।

इस प्रकार आत्मत्वको पृथ्वीत्वके समान ही जातिविशेष मानकर वैशेषिकने एक प्रकारसे वेदान्तके अद्वैतवादको अग्राह्य कर दिया और मीमांसाका समर्थन किया; क्योंकि वैशेषिक दर्शनमें धर्मका लक्षण करते हुए लिखा है कि—

'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।'

अर्थात् 'धर्म वही है जिससे इहलोकमें अभ्युदय हो, उन्नत जीवन बने और निःश्रेयसकी सिद्धि हो अर्थात् स्वर्ग या मोक्षकी प्राप्तिके लिये भी साधना चलती रहे।' एक प्रकारसे मीमांसाके कर्मवादके सिद्धान्तको वैशेषिकने मान लिया है। यही बात न्यायदर्शनकी है।

बौद्ध-दर्शनके शून्यवादने आधिभौतिकवाद और भगवान् शंकरके अद्वैतवाद दोनोंको अस्वीकार किया है। सांख्य-दर्शनकारने शून्यवादके विषयमें लिखा है—

शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य।'

(सांख्यदर्शन १।४४)

अर्थात् 'न भौतिकतत्त्व हैं, न ब्रह्म। केवल शून्यतत्त्व है; क्योंकि सब भाव विनाशको प्राप्त होते हैं और विनाश (शून्य) का धर्म है—वस्तुरूपमें प्रकट होना।'

परंतु बौद्धदर्शन कर्मवादके सिद्धान्तको मानता है, यद्यपि यह कर्मवाद मीमांसाके कर्मवादसे भिन्न है। 'धम्मपद'में कहते हैं—

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा॥
ततो 'वं दुक्खमन्वेति चक्कं व वहतो पदं॥ ॥
मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया
मनसा च पसन्नेन भासति वा करोति वा।
ततो 'वं सुखमन्वेति छाया 'व अनपायिनी॥ २॥

'सारे जीवनके व्यापारोंके आगे-आगे मन चलता है, मन

सुख। सुख-दुःखरूप फल मनुष्य इहलोकमें भोगता है और जो शेष रहता है; उसको भोगनेके लिये उसे स्वर्ग या नरकमें जाना पड़ता है।

बौद्धलोग हेतुवादी हैं, इसलिये पुण्य सञ्चय करनेका उपदेश देते हैं; जीवनमें जो जितना ही अधिक पुण्य सञ्चय करता है, उतना ही उसका जीवन सफल होता हैं। तथागत कहते हैं—

इ तप्पति पेच्च तप्पति पापकारी उभयत्थ तप्पति।

× × ×

इध नन्दति पेच्च नन्दति कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।

(धम्मपद १। १७-१८)

'पाप करनेवाला इहलोकमें संतप्त होता है और मरकर परलोकमें भी संताप भोगता है। × × × पुण्यकर्मा इहलोकमें आनन्द करता है, मरकर परलोकमें जाकर आनन्द भोगता है, वह दोनों लोकोंमें आनन्दित होता है।'

बौद्धलोग अनात्मवादी हैं। उनका परमतत्त्व 'शून्य' है। शून्यका लक्षण करते हुए कहते हैं—

'सदसदुभयानुभयात्मकचतुष्कोटिविनिर्मुक्तं शून्यम्॥'

अर्थात् सत्, असत्, उभयात्मक (सत्-असत्) तथा अनुभयात्मक (न सत् न असत्)—इन चारों कोटिसे पृथक् विलक्षण 'शून्यतत्त्व' है इसी कारण इनका निर्वाण भी शून्यात्मक होता है। जैसे—

दीपो यथा निर्वृत्तिमभ्युपेतो
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न कांचित् विदिशं न कांचित्
स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम्॥
तथा कृती निर्वृत्तिमभ्युपेतो
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशां न कांचित् विदिशं न कांचि—

समूह है। कर्मोंके संस्कार यानी सूक्ष्मरूपसे अधिवासित होकर यह पञ्चस्कन्धसमूहरूप जीव संसृतिमें घूमता हुआ सुख-दुःख भोगता है तथा स्वर्ग-नरकादिके सुख-दुःखको भोगनेके लिये तत्तत् लोकोंमें जाता है। सुख-दुःख, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदिको मानते हुए भी बौद्ध नास्तिक हैं; क्योंकि वे न तो आत्मा-परमात्माको मानते हैं और न वेदोक्त धर्मको मानते हैं।

बौद्ध-दर्शनके समान जैनदर्शन भी कर्मफलको मानता है और शुभ कर्मोंसे स्वर्ग तथा अशुभ कर्मोंसे नरककी प्राप्तिके सिद्धान्तमें विश्वास करता है।

सांख्यदर्शनके प्रणेता महर्षि कपिलने उपर्युक्त बौद्ध-दर्शनके शून्यवादके ठीक विपरीत सद्वादके सिद्धान्तका उपदेश दिया है। उनके अनुसार शून्यतत्त्व नहीं है और न वेदान्तकी मायाके समान असत् तत्त्व है, बल्कि जगत्का मूल कारण 'सत्' है। उसे 'प्रकृति' कहते हैं। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है अर्थात् सत्त्व, रजः और तमःस्वरूपा है। इन गुणोंके वैषम्यसे प्रकृति परिणामको प्राप्त होती है। तब—

प्रकृतेर्महान् ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानिः॥
(सांख्यकारिका २२)

'प्रकृतिसे महत्तत्त्व, उससे अहंकार, अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और सोलहवाँ मन तथा पाँच तन्मात्राओंसे पाँच महाभूत उत्पन्न हुए।' इस प्रकार प्रकृति और उसके विकारको लेकर चौबीस तत्त्व हुए। इसमें पुरुषको जोड़ देनेसे सांख्यदर्शनके कुल पचीस तत्त्व हो जाते हैं। प्रकृतिका लक्षण करते हुए कहते हैं—

त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥

हैं और विभु हैं। पुरुष प्रकृतिके संयोगसे बन्धन और प्रकृतिके कार्योंको भूलसे स्वकृत मानकर उन कर्मको भोगता है। यदि पुरुषका प्रकृतिके साथ जाय तो उसे 'कैवल्य' प्राप्त हो जाय और वह जन्म व्याधिसे सदाके लिये मुक्त हो जाय। किसीने क

पतञ्जलिमुनेरुक्तिः काप्यपूर्वा विरा
पुंप्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युच्यते य

'पतञ्जलि मुनिका यह विलक्षण सिद्धान्त है प्रकृति-पुरुषके वियोगको कहते हैं।' महर्षि पत योगकी परिभाषा करते हुए कहा है—'योगश्चि निरोधः।'—(१।२) चित्तकी वृत्तियोंके निरोध कहते हैं। चित्तकी वृत्तियाँ ही प्रकृति-पुरुषके संयोग रज्जु हैं। यदि इस रज्जुको तोड़कर पुरुषने दूर फें तो प्रकृतिकृत बन्धन समाप्त हो गया और पुरुष अपने स्वरूपमें स्थित हो गया। इसीको योगदर्शन (१ में कहा है—

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।'

पुरुषके कैवल्यकी दृष्टिसे सांख्य और योगदर्शनक ही सिद्धान्त है। परंतु जबतक कैवल्यकी प्राप्ति नहीं तबतक पुरुष प्रकृतिके साथ विभु होते हुए भी अ सुखी-दुखी, जन्मता-मरता और नाना योनियोंमें हुआ मानता है। यही पुरुषका बन्धन है। यद्यपि क कर्ता पुरुष नहीं है, प्रकृति है तथापि प्रकृतिके कृतकर्मोंका कर्ता अपनेको मानकर वह 'भोक्ता' बनता भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति

होकर नृत्य समाप्त कर देती है। सांख्यदर्शनके मतसे यही पुरुषका 'कैवल्य' है और यही 'परमपद' है।

परंतु इस अवस्थाको विरले ही भाग्यवान् पुरुष प्राप्त होते हैं। फिर तो आवागमन ही अधिकांशके मत्थे पड़ता है। मृत्युके पश्चात् पुरुषके कृतकर्मोंके संस्कार, जिनको 'भाव' कहते हैं, जो लिङ्ग अर्थात् सूक्ष्मशरीरके साथ अनुस्यूत होते हैं, पुरुषको साथ लेकर परलोक तथा जन्मान्तरमें भोग प्रदान करते हैं।

यहाँ 'भाव' और 'लिङ्ग' दो पारिभाषिक शब्द आये हैं। अतएव इनको स्पष्ट करना आवश्यक है। लिङ्ग या सूक्ष्म शरीर अनादिकालसे पुरुषके साथ लगा रहता है। सृष्टिके आदिमें पुरुष लिङ्गशरीरके साथ ही संसारमें आता है और जन्म-जन्मान्तर इसके साथ ही भोगोंमें लिप्त रहता है या कर्म करता है। जब 'कैवल्य' की प्राप्ति होती है, तब पुरुषको इस शरीरसे छुटकारा मिलता है। सांख्यशास्त्रके अनुसार बुद्धि, (महत्) अहंकार, मन, दस इन्द्रियाँ और पञ्च तन्मात्राएँ (सूक्ष्मभूत) कुल अठारह तत्त्वोंका लिङ्ग अर्थात् सूक्ष्म शरीर होता है। इस सूक्ष्मशरीरकी अप्रतिहत गति होती है। यह पत्थरके भीतरसे भी घुसकर निकल सकता है। प्रलयकालतक नियतरूपसे पुरुषके साथ रहता है। ज्ञान-अज्ञान, वैराग्य-अवैराग्य, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य-सम्बन्धी है—ऊर्ध्वगति, अवक्षेपण है—अधोगति, आकुञ्चन है—सिकुड़ना—अल्पदेशमें व्याप्त होना, प्रसारण है—फैलना—अधिक देशमें व्याप्त होना और गमन है—एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना। कर्मके संस्कार भी लिङ्गशरीरके साथ रहकर इन पाँच प्रकारोंसे उसे प्रेरित कर सकते हैं और यह कर्मवासनाकी प्रेरणा ही जीवके एक योनिसे दूसरी योनिमें संसरणमें हेतु बनती है। कर्मके सूक्ष्म संस्कारों अर्थात् भावोंके बिना लिङ्गशरीर नहीं रह सकता और न लिङ्गशरीरके बिना कहीं ये कर्मके संस्कार रह सकते हैं। इसी कारण ईश्वरकृष्णने सांख्यकारिकामें कहा है—

न विना भावैर्लिङ्गं न विना लिङ्गेन भावनिर्वृत्तिः।
लिङ्गाख्यो भावाख्यस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्त्तते सर्गः॥

(सांख्यकारिका ५२)

सूक्ष्मशरीरमें तन्मात्राएँ अविशेष होती हैं, परंतु जिन वासनाओंसे अधिवासित होती हैं, तदनुकूल ही विशेष अर्थात् शान्त, घोर और मूढ़ पञ्चभूतात्मक शरीरका संयोग होता है। जिस प्रकार बिना आश्रयके चित्र नहीं बन सकता, उसी प्रकार स्थूलशरीरके बिना सूक्ष्मशरीर निष्क्रिय रहता है। केवल भोगायतन होता है।

अतएव परलोक-प्रदान करनेमें अर्थात् स्वर्ग-नरकादिका योग प्रदान करनेमें ...

देवलोक आठ प्रकारका होता है—जैसे ब्रह्म, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाचलोक। तिर्यक्-योनि पाँच प्रकारकी होती है—पशु, पक्षी, मृग, सरीसृप और स्थावर। मनुष्ययोनि केवल एक प्रकारकी होती है। इन्हीं योनियोंमें जीव कर्मानुसार फल भोगनेके लिये भटकता रहता है। इनमें केवल एकमात्र मानवयोनि 'कर्म-योनि' है और मानव शुभाशुभ कर्म करनेमें स्वतन्त्र है।

शुभाशुभ कर्मका फल सुख-दुःख होता है। इहलोकमें जो-जो शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं, उनके संस्कार सूक्ष्म शरीरमें इकट्ठे होते हैं और उनके फलस्वरूप वह परलोकमें स्वर्ग-नरकमें सुख-दुःख भोगता है। तत्पश्चात् प्रारब्ध कर्मोंके अनुसार पुनर्जन्म होता है। जब विवेकज्ञानकी साधनासे लिङ्गशरीर संस्कारशून्य हो जाता है, तब पुरुषकी अपने स्वरूपमें स्थिति होती है, वह कैवल्य अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है। सांख्यका यह सिद्धान्त सर्वमान्य है।

सांख्यकी प्रकृतिका राधा, सीता, पार्वती आदि तथा पुरुषका श्रीकृष्ण, राम, शिव आदि नामोंसे पुराणादि शास्त्रोंमें उल्लेख किया गया है तथा शक्ति और शक्तिमान्‌के रूपमें उनको अभिन्न माना है। वस्तुतः ज्ञानीकी दृष्टिमें सांख्यका पुरुष स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं और मूलप्रकृति श्रीराधिकाजी हैं। अष्टप्रकृति-विकृति-बुद्धि, अहंकार, मन और पञ्च तन्मात्राएँ—अष्ट सखियाँ हैं; तथा षोडश विकृति—एकादश इन्द्रियाँ और पञ्चमहाभूत—ये सोलह दासियाँ हैं; श्रीकृष्ण असंख्य पुरुष बनकर, असंख्य रूपधारिणी श्रीराधा, सखियों और दासियोंके साथ रासलीलामें रत हैं। यह रासलीला अनादिकालसे हो रही है और अनन्तकालतक होती रहेगी। इस रासलीलाका, प्रकृति नटीके सारे नृत्यका एकमात्र उद्देश्य है—पुरुषको, श्रीकृष्णको रिझाना। श्रीकृष्ण अपनी परमार्थ-

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति सं
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यत

'वस्तुतः संयमी अर्थात् ज्ञानी तत्त्वदर्शनमें
जिसमें सारे प्राणी सोते हैं और सारे प्राणी जि
जागते हैं, तत्त्वज्ञानीके लिये वह रात है, वह उसमें

माया अनादि है, परंतु सान्त है; क्योंकि
होनेपर इसका अन्त हो जाता है। यहाँ प्रश्न हो
'जो वस्तु अनादि होती है, वह अनन्त भी होती
माया अनादि होते हुए सान्त कैसे हो सकती है?
कोई तत्त्व है जो अनादि हो और सान्त भी हो
उत्तर यह है कि "ऐसा दृष्टान्त है। नैयायिकोंका
अनादि होकर सान्त हो जाता है। जैसे भूतलमें '
इस प्रतीतिके पूर्व वर्तमान जो घटका प्रागभाव
अनादि था परंतु 'अयं घटः' प्रतीति होते ही उस
का अन्त हो गया। अतएव माया अनादि है, पर
अन्त हो सकता है।" भगवान् श्रीकृष्णने गीता (
में कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यय
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते

'यह त्रिगुणमयी मेरी दैवी माया है, इसका पा
बहुत कठिन है, किंतु जो मेरे प्रपन्न होते हैं, वे
मायाको पार कर सकते हैं।' भगवत्प्रपन्न अथवा श
भगवत्कृपापर अवलम्बित है। भगवत्प्रपन्न माया
करके भगवत्स्वरूपकी उपलब्धि करता है, तब उ
पदे वृन्दावनम्'का दिव्य दर्शन होता है। उसके इहलो
परलोक दोनों एकाकार 'वृन्दावनमय' हो जाते हैं।

जीवनकी साधनामें भी तारतम्य आता है। इसी कारण आचार्य लोग तत्तद् दर्शनमें तत्तत् अधिकारी साधकको महत्त्व देते हैं तथा दर्शनके अध्ययनमें अभिधेय, अधिकारी, लक्ष्य और सम्बन्धकी परीक्षाको प्राथमिकता प्रदान करते हैं। इस अधिकारीभेदके कारण एक ही वेदान्तके अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, अचिन्त्यभेदाभेदवाद आदि अनेक प्रस्थान हो गये हैं। इन विषयोंकी आलोचनाके लिये यहाँ अवसर नहीं है। अतएव परलोकवादसम्बन्धी इस अधूरी दार्शनिक आलोचनाको प्रस्तुतकर विज्ञ पाठकवृन्दसे क्षमायाचना करता हूँ।

—•❀❀❀•—
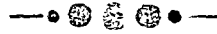
पुनर्जन्म-निवारणका सुलभ उपाय, अर्चावतारके आलम्बनसे भगवदर्चा

(लेखक—श्री च. भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु)

ज्ञानानन्दमयं देवं निर्मलस्फटिकाकृतिम्।
आधारं सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे॥
नारायणः पिता यस्य माता चापि हरिप्रिया।
भृग्वादिमुनयः शिष्यास्तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

'जो ज्ञान और आनन्दमय हैं, जिनकी आकृति स्वच्छ स्फटिकके समान है, जो समस्त विद्याओंके आधारभूत हैं, उन श्रीहयग्रीवदेवकी हम उपासना करते हैं। जिनकी माता श्रीलक्ष्मीजी तथा पिता श्रीनारायण हैं, जिनके भृगु आदि मुनि शिष्य हैं, उन श्रीविखनस गुरुजीको नमस्कार।'

पुनर्जन्मका सिद्धान्त भारतीय सनातनधर्मका परम प्रमुख सिद्धान्त है। वेद, शास्त्र, उपनिषद्, स्मृति, पुराण आदि ग्रन्थोंमें इसका विशद वर्णन मिलता है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि—

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'
(२। २७)

अर्थात् 'जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु ध्रुव है तथा मृतका जन्म भी ध्रुव है।' यहाँ पुनर्जन्मको अपरिहार्य बतलाया है। तथापि अनन्य भक्तिसे नित्ययुक्त होकर उपासना करनेसे पुनर्जन्म छूट जा सकता है। जैसे—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥

और सुलभ है। भगवान् विष्णुकी आराधनाके बिना परम पदकी प्राप्ति दुर्लभ है। कहा भी है—

'वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं समवाप्स्यति।'
(विष्णुपुराण १। ४। १८)

मानव-शरीर अत्यन्त दुर्लभ है; क्योंकि इसीसे श्रीभगवान्की आराधना होती है—'जन्तूनां नरजन्म सुदुर्लभम्'। मानव-जन्म प्राप्त करके यदि हमने निष्काम भावसे केवल परम पदकी प्राप्तिके लिये आराधना की, तब तो ठीक है। नहीं तो, यदि दुष्कर्ममें पड़े तो अधम गति प्राप्त होगी। भगवान्ने बारंबार गीतामें कहा है कि 'यदि मनुष्य-शरीरसे भगवदाराधना नहीं हुई तो अधोगतिको प्राप्त होना अनिवार्य है।' यथा—

'मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥'
(गीता १६। २०)

तथा—

'अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥'
(गीता ९। ३)

इससे सिद्ध होता है कि जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति देनेमें आराधनाका बड़ा महत्त्व है। उस आराधनाके परम आलम्बन प्रतीक या अर्चामूर्त्तिके रूपसे अवतार ग्रहण करके भगवान्ने अपनी सहज करुणाका परिचय दिया है। भगवान्के स्वरूपके विषयमें श्रुति कहती है—

प्राप्तिके लिये उपासना परम सुलभ साधन है। ब्रह्माण्ड-पुराणमें भी लिखा है—

उपासनं परं ज्ञानं परमं मोक्षसाधनम्।
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च सुलभं भुवि॥

श्रीभगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे गीतामें अभय वाणी सुनाते हुए कहा है कि 'नित्ययुक्त होकर मेरा चिन्तन करते हुए जो मेरी उपासना करते हैं, उनका 'योगक्षेम' मैं वहन करता हूँ।' यथा—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गीता ९। २२)

श्रीविष्णुभगवान्‌की आराधना ही 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।' से मुक्ति प्रदान करनेका सुगम साधन है। महाभारतमें भीष्मजीसे युधिष्ठिरने पूछा है—

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम्।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम्॥

अर्थात् 'कौन ऐसा एक देवता है जिसके परायण होकर अर्चा-स्तुति करनेसे मनुष्यकी शुभगति हो सकती है?' इसका तो भीष्मजीने उत्तर दिया है—

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः।
तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्॥
× × × ×
एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः॥

अर्थात् 'उस अव्यय पुरुषोत्तम श्रीविष्णुभगवान्‌की नित्य अर्चा करना ही सब धर्मोंमें श्रेष्ठ कर्म है।' गीतामें श्रीभगवान्‌ने कहा है कि 'श्रद्धा-भक्तियुक्त होकर जो उपासना करता है वह योगियोंमें भी श्रेष्ठ है'—

पुरुषसूक्तके मन्त्रोंके द्वारा नारायणकी अर्चा करने विष्णुपदकी प्राप्ति होती है। यथा—

अर्घ्यादिभिः पौरुषसूक्तमन्त्रैः
सम्प्राप्नुयाद्विष्णुपदं महात्मा॥'

भगवान्‌की अर्चा षट्कर्मोंमें एक नित्य *क्रियमाण कर्म* भी है। यथा—

स्नानं संध्या जपो होमो देवतानां च पूजनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिने दिने।

'स्नान, संध्या, जप, होम, देवपूजन, बलिवैश्वदेव—ये षट्कर्म प्रतिदिन करनेके हैं।'

सभी गृह्यसूत्रकारोंने नित्य भगवदर्चाको परम आवश्यक माना है। विखनस मुनिने अपने गृह्यसूत्रमें लिखा है कि नित्य होमके पश्चात् श्रीविष्णुभगवान्‌की अर्चा करनेसे सब देवताओंकी अर्चाका फल मिलता है। यथा—

'अग्नौ नित्यहोमान्ते विष्णोर्नित्यार्चा
सर्वदेवार्चना भवति।' (वैखानस गृह्यसूत्र)

'भगवान् विष्णुकी आराधना दो प्रकारकी होती है—अमूर्त और समूर्त।'

—'तदाराधनं द्विविधम् अमूर्तं समूर्तं इति।'
(मरीचिविमानार्चनकल्प)

'अमूर्त आराधना वैदिक वैष्णव-मन्त्रोंसे होम करनेसे होती है और समूर्त आराधना प्रतिमाके सविधि पूजनसे सम्पन्न होती है। इन दोनोंमें समूर्त आराधना सरल तथा श्रेष्ठ है।'

'अग्नौ हुतममूर्तं प्रतिमाराधनं समूर्तम्। तच्छ्रेष्ठं च।'
(मरीचिविमानार्चनकल्प)

श्रीविष्णुभगवान्‌का रूप 'पञ्चधा पञ्चात्मा' इस श्रुतिके अनुसार पाँच प्रकारका होता है—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा। ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है—

व्यापक 'अन्तर्यामी' रूप तथा सब जीवोंके क्लेशका नाश करनेवाला तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला 'अर्चा' रूप है। यथा—

सुलभं मोक्षसिद्ध्यर्थं भवाम्यर्चास्वरूपवान्।
निवसिष्यामि सर्वत्र जनानां मुक्तिहेतवे॥

(ब्रह्माण्डपुराण)

श्रीविष्णुभगवान्की प्रेरणासे ब्रह्माजीने अर्चावतारकी अर्चा करनेकी प्रथाके प्रवर्तकके रूपमें ध्यानसे विखनस मुनिको प्रकट किया। विखनस मुनिने डेढ़ करोड़ श्लोकोंके तन्त्र-ग्रन्थको संक्षिप्त करके चार लाख श्लोकोंका बनाया और उसका भृगु, अत्रि, कश्यप, मरीचि, नीललोहित और दक्ष आदिको उपदेश किया। उसीके आधारपर भृगु आदि महर्षियोंने दैविक ग्रन्थ भागकी रचना की। उसके आधारपर श्रीविष्णुभगवान्की प्रतिष्ठा करके अर्चा करनेसे ग्राम-निवासियोंके सारे श्रौत-स्मार्त कर्म सफल होते हैं।

वह अर्चावतार विष्णु, पुरुष, सत्य, अच्युत और अनिरुद्ध नामसे अवतरित हुआ है। देवालयमें अर्चामूर्त्ति ध्रुव, कौतुक, स्नपन, उत्सव और बलि नामसे पाँच विग्रह (बेर) में विभक्त है। ग्राम-रक्षार्थ 'ध्रुव' विग्रह है, अर्चाके लिये 'कौतुक' विग्रह है, उत्सवके लिये 'उत्सव' विग्रह है और स्नपनके लिये 'स्नपन' विग्रह तथा बलिके लिये 'बलि' विग्रह है—

ध्रुवस्य ग्रामरक्षार्थमर्चनार्थं तु कौतुकम्।
उत्सवं चोत्सवार्थं च स्नपनं स्नपनार्थकम्॥

नित्य भगवान्की अर्चा करनेसे परम पद प्राप्त हो सकता है। यही सुलभतम साधन है।

श्रीविष्णुभगवान्के अर्चावतार चार प्रकारके होते हैं—(१) स्वयं व्यक्त, (२) दिव्य, (३) सैद्ध (सिद्धपुरुषद्वारा स्थापित) और (४) मानुष। यथा—

अर्चावताराः श्रीविष्णोः कृतास्स्वेन चतुर्विधाः।
स्वयं व्यक्ताश्च दिव्याश्च सिद्धा वै मानुषा इति॥

(ब्रह्माण्डपुराण)

भक्तकी रक्षा या वरदानके लिये स्वयमेव समुत्पन्न क्षेत्र 'स्वयं व्यक्त' कहलाते हैं। जैसे—श्रीरङ्ग, वेङ्कटाद्रि, सिंहाचल, प्रयाग, काञ्ची आदि क्षेत्र। ब्रह्मा आदि देवताओंके द्वारा प्रतिष्ठित क्षेत्र तथा तपोभूमि 'दिव्य' क्षेत्र हैं। जैसे—काशीमें माधव, हस्तिशैलमें रमाधव आदि। सिद्धपुरुषोंद्वारा स्थापित अर्चामूर्ति 'सैद्ध' कहलाते हैं। जैसे—घटिकाद्रिमें, सप्तर्षियोंद्वारा स्थापित, चित्रकूटमें पतञ्जलि, ताम्रपर्णीमें कुम्भसम्भव तथा नन्दिपुरीमें महाराजा शिविके द्वारा स्थापित अर्चामूर्तिमें श्रीविष्णुभगवान्की आराधना हुई है। चातुर्वर्ण्य भगवद्भक्तोंके द्वारा स्थापित अर्चामूर्ति असंख्य हैं। वे 'मानुष' कहलाते हैं। इन चारों प्रकारके अर्चावतारोंका प्रभाव या तेजःप्रसार क्षेत्र क्रमशः तीन योजन, एक योजन, दो कोस तथा एक कोसतक होता है। इस सीमाके भीतर ये अर्चावतार सेवा करनेवाले अपने भक्तजनका उद्धार करते हैं।

श्रीविष्णुभगवान्के अर्चारूप धारण करनेके विषयमें ब्रह्माण्डपुराणमें एक आख्यान है। कल्पान्तरमें नास्तिक

अधुनावतरिष्यामि ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे।
निवसिष्यामि सर्वत्र जनानां वै मुक्तिहेतवे ॥
(ब्रह्माण्डपुराण)

अतएव जहाँ कहीं भगवान्‌की मूर्ति अर्चाके लिये स्थापित है; वहाँ-वहाँ भक्तिभावसे अर्चा करके मानवको आत्मकल्याणके मार्गपर अग्रसर होना चाहिये।

आत्मज्ञानसे मुक्ति

(लेखक—पं० श्रीभृगुनन्दनजी मिश्र)

हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें कर्मवादके सिद्धान्तके आधारपर पुनर्जन्मकी मान्यता स्वीकार की गयी है और प्रत्येक आस्तिक पुरुष संसारके आवागमनका चक्र अनादिकालसे प्रवर्तमान होना मानता है; किंतु कुछ स्थानोंपर उपनिषदों एवं श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार इस आवागमनके चक्रका रुक जाना तथा स्व-स्वरूप-स्थिति—मोक्षका प्राप्त होना भी स्पष्टतः सिद्ध है—

संसारमें रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति शुभ अथवा अशुभ कर्मोंके करनेमें प्रवृत्त रहता ही है, और जबतक कर्म करनेमें लगा हुआ है, तबतक कर्मफल अवश्य ही बन्धनकारक होकर पुनर्जन्मके हेतु होंगे। फिर ऐसी कौन-सी स्थिति है, जिसमें कर्मफलके बन्धन अथवा आवागमनके चक्रसे छुट्टी मिल सकती है। मनुष्यमें प्रत्येक कर्ममें प्रवृत्त होनेसे पूर्व कर्म करनेकी स्फुरणा अथवा इच्छा उठती है। उसकी पूर्ति करनेके लिये मनमें संकल्प खड़ा होता है, जो मनुष्यको कर्म करनेमें प्रवृत्त कराता है। यह बात स्पष्टतया सिद्ध है कि कर्ताके अहंकारसे संयुक्त हुए बिना कर्म करनेमें समर्थ होना असम्भव है। अतः हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि कर्मके करने तथा उसके फलकी प्राप्तिमें अहंकार ही मूल कारण है।

जबतक किसी वृक्षको जड़से न उखाड़ते हुए, उसकी टहनियाँ, पत्ते, तना आदि काटते रहेंगे, तबतक उसका नष्ट होना सम्भव नहीं है। वृक्षको नष्ट करनेके लिये उसका समूल उच्छेदन करना ही होगा। यही बात कर्मवाद तथा उसके परिणाम जन्म, मरण एवं पुनर्जन्म आदिके सम्बन्धमें लागू होती है। हमें देखना यह है कि क्या हम बिना संकल्प एवं अहंकारके कभी कर्म करनेमें प्रवृत्त हो सकते हैं? व्यावहारिक जगत्‌में इसका उत्तर प्रायः नकारात्मक ही मिलेगा।

यद्यपि व्यवहारमें स्थूलशरीर कर्म करता हुआ दिखायी देता है; किंतु उसकी समस्त क्रियाएँ सूक्ष्मशरीरद्वारा संचालित होती हैं, जो सत्रह तत्त्वोंका जाल है। उसमें संकल्प-विकल्परूप मन तथा उनकी अनिश्चयात्मिका बुद्धि ही कर्म करनेवाली शक्तिका केन्द्रबिन्दु बनकर कर्मके संस्कारोंको गहरा करने (उन्हें मूर्तरूप देने) में प्रधान होती है। जिसमें कर्मके कर्तापनका अहंकाररूपी बीज छिपा रहता है और यह अहंकार अज्ञानावृत होनेसे देहात्मभूत ही होता है, इससे सिद्ध होता है कि कर्मका कर्ता वास्तवमें देह-इन्द्रियादि न होकर मनुष्यका संकल्पयुक्त अहंकार ही होता है, जो देहके साथ अभिन्न हो रहा है। इस अहंकारका अस्तित्व जाग्रत् अवस्थामें अधिक स्पष्ट न होकर, स्वप्नावस्थापर सूक्ष्म विचार करनेसे आपको प्रतीत होगा कि वहाँ पूरा शरीर एवं इन्द्रियादि निश्चेष्ट पड़े होते हैं; वे स्वप्नके व्यवहारोंके कर्ता-धर्ता नहीं होते हैं। स्वप्नावस्थामें अपना स्वयंका ही अहंकारयुक्त संकल्प समस्त क्रियाओंका कर्ता-धर्ता एवं भोक्ता भी बनता है और सुषुप्ति (गहरी निद्राकी) अवस्थामें यही अहंकार जड एवं चेतनाशून्य होकर अपने असली कारणस्वरूप (अज्ञान) में लय हो जाता है।

अब देखिये कि मानवी संकल्प सुषुप्ति अवस्थासे पुनः जाग्रत् अवस्थामें बाहर आकर देहात्मरूप होकर फिर कर्म करनेमें प्रवृत्त हो जाता है और इन तीनों अवस्थाओंकी सीमामें आबद्ध रहनेके कारण अवस्थाजन्य दोषोंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। आइये, अब हम इसको तीनों अवस्थारूपी द्वारोंमें भटकनेसे हटाकर, इनसे ऊपरकी चौथी खिड़कीसे बाहर (तुरीयावस्थामें) ले चलते हैं।

जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाएँ रजोगुण एवं तमोगुणप्रधान होकर, क्रिया एवं आवरणरूपसे प्राणीमात्रको स्वाभाविक ही प्रतिदिन प्राप्त होती रहती हैं; किंतु तुरीयावस्था संकल्पोंको निरोध करनेवाले केवल अभ्यासी पुरुषोंको ही प्राप्त होती है और उस अवस्थामें पुरुषका मन एकाग्र

कर बुद्धि निश्चयात्मिका, एक, सूक्ष्म एवं प्रकाशरूप चैतन्य) होती है। वेदान्तशास्त्रके श्रवण एवं मननसे तथा सद्गुरुके अनुग्रहसे जब सत्, असत् वस्तुका परोक्ष-ज्ञान दृढ़ हो जाता है, तब साधक पुरुष एकान्त स्थानमें ध्यानावस्थित होकर महावाक्योंके लक्ष्य—'अहं ब्रह्मास्मि'के परम तत्त्व (सत्य) का अपने ही अंदर अन्वेषण करता है और अनेक जन्मोंकी संसिद्धिके रूपमें अपने आत्मस्वरूपकी अपरोक्ष रूपसे अनुभूति करता है। यह अपरोक्ष अनुभूति जीवके परिच्छिन्न अहंकार (जीवभाव) को इस प्रकार नष्ट कर देती है, जिस प्रकार सूर्यके प्रचण्ड तेजसे बरफ शीघ्र ही गल जाता है और अपने परिच्छिन्न नाम-रूपका त्याग करके अपने अधिष्ठान (जलरूप) को प्राप्त हो जाता है।

अपने ही अंदर छिपी हुई आत्मज्योतिके अज्ञानसे जीव-भावका पृथक् अस्तित्व जान पड़ता है। जिस प्रकार काष्ठके भीतर व्याप्त सामान्य अग्नि बाहर दिखायी नहीं देती और उसी सूक्ष्म अग्निकी सत्तासे ही काष्ठका पृथक् अस्तित्व दिखायी पड़ता है; किंतु जब उसी काष्ठकी दो लकड़ियोंके परस्पर संघर्षणसे जो विशेष अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, वह आसपासके अन्धकार एवं शीतादिको मिटाते हुए उसी काष्ठको सर्वथा भस्म करके, उसके परिच्छिन्न अस्तित्वको समाप्त कर देती है। इसी प्रकार जब सत् वस्तु (आत्मा) के दर्शनकी तीव्रतम जिज्ञासामें सद्गुरु कृपाका योग हो जाता है, तब हमें अपने ही अंदर विराजमान उस शाश्वत ज्योतिका दर्शन (साक्षात्कार) हो जाता है, जिसकी अनुभूति मात्रसे परिच्छिन्न मानवी-

उनके समस्त कर्म एवं क्रियाएँ विन। उनके संकल्पके समष्टि (ईश्वरीय) संकल्पद्वारा संचालित होती हैं और वे अहंकाररहित होकर ही, संसारके व्यवहारोंमें प्रवृत्त होते हैं। वे अपने आत्माको न किसी कर्मका कर्ता मानते हैं और न भोक्ता। वे कर्मके फल एवं परिणामसे रागद्वेष-रहित होकर, जलमें पद्मपत्रवत् निर्लेप रहते हैं। दूसरे शब्दोंमें व्यावहारिक रूपमें दिखायी देनेवाले उनके समस्त कर्म वास्तवमें अकर्म ही हो जाते हैं, जो उनके लिये बन्धन-का कारण नहीं हो सकते हैं; क्योंकि बन्धनके कारण तो अज्ञान एवं अहंकारसंयुक्त कर्म ही थे। भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा प्रतिपादित उपदेशके अनुसार आत्मज्ञानी पुरुषका यही **'योगः कर्मसु कौशलम्'** ही उनके लिये **'कर्मभिर्न स बद्ध्यते'** की गारंटी है।

देहमें आत्मभाव होनेसे उससे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थोंमें राग, द्वेष एवं इष्ट-अनिष्टकी भावना रहती है, जो बार-बार जन्म-मरणका कारण होती है। जब आत्मज्ञान-का उदय होता है और अपने सत्स्वरूपकी अपरोक्ष अनुभूतिमें एकाकार हो जाता है, तब अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेशादि पञ्चक्लेशोंके बन्धनसे मुक्त होकर आत्मज्ञानी परमानन्दस्वरूप होकर जीवन्मुक्त अवस्थामें विचरने लगता है। ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुषोंके इस जन्म तथा पूर्वजन्मोंकी संचित कर्मराशि ज्ञानाग्निसे इसी प्रकार भस्म हो जाती है, जैसे रूईके गोदाममें अग्निकी चिनगारीके गिरते ही समूचा रूईका ढेर राख हो जाता है। आत्मज्ञानकी अपरोक्ष अनुभूतिसे कल्पित जीवत्व इस प्रकार तिरोभावको प्राप्त हो जाता है

ब्राह्मी स्थिति एवं उसकी प्राप्तिके साधन

(लेखक—श्रीशान्तिस्वरूपजी गुप्त)

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है । नित्य परिवर्तनशील एवं ाशवान् अनित्य जगत्के पीछे जो एक अपरिवर्तनशील, ाशी, नित्य सत्य है, उसको अन्वेषण करनेका प्रयत्न सदा-से करता आया है । भगवान्के चार प्रकारके भक्तोंमें एक 'जिज्ञासु'का भी है । विश्वके सौन्दर्यके मूलमें जो तत्त्व निहित ज्ञासु मनुष्य उसे जाननेकी जिज्ञासा करता है, चिन्तन है एवं उसके अन्तरालमें देश, काल, पात्रके अनुसार र्तित न होनेवाले निहित सत्यको ढूँढ़ निकालनेकी करता है । यह सत्य द्वन्द्वातीत, कार्य-कारणसे परे, ड, अद्वय एवं स्वयम्भू है । चर्म-चक्षुओंसे अदर्शनीय नेत्य है । असम्प्रज्ञात या निर्विकल्प समाधिमें योगियोंने प्रत्यक्ष' अनुभव किया है ।

इस सच्चिदानन्द, नित्यपूर्ण, चिरन्तन, सुखदुःखातीत ा साक्षात्कार करनेकी अभिलाषा मानवमात्रका जन्म-स्वभाव है । अतः प्रत्येक धर्म एवं प्रत्येक जातिमें सत्यको साक्षात्कार करनेका प्रयास अपने-अपने ढंगसे आया है । बृहदारण्यक उपनिषद्में इस नित्य तत्त्वका इस प्रकार किया है—

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च'
इदमेव मूर्तं यदन्यत्प्राणात्...'
'अथामूर्तं प्राणश्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतं...'
(२ । ३ । १, ४)

अर्थात् ब्रह्मके दो रूप हैं—एक मर्त्य और एक अमर । ो भिन्न इन्द्रियादि शरीर मर्त्य एवं प्राण, बुद्धि, आत्मा हैं । अतः मनुष्यके दो भाग हुए । एक स्थूल साकार धर्मा और दूसरा अमर निराकार एवं अपरिवर्तनशील ा । आत्मा स्वभावसे नित्य होते हुए भी कर्मानुसार मनमें होकर बारंबार जन्म लेता है ।

ो ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ।
(अथर्व० १० । ८ । २८)

अतः शाश्वत और नित्यानन्द सुखकी प्राप्तिके लिये ऋषियोंने भौतिक सुखोंको हेय समझ उनका परित्याग । एवं हृदय-गह्वरमें प्रवेशकर चित्तमें उठनेवाली क वृत्तिका निरीक्षण एवं परीक्षण किया और जाना कि—

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत् सुखम् ।
(गीता ५ । २१)

इन्द्रियोंके बाह्य स्पर्शमें जो आसक्त नहीं होता, वही इस शाश्वत आत्मिक सुखको प्राप्त कर सकता है । इन्द्रियोंके बाह्यस्पर्श सुख-दुःखादि द्वन्द्व उत्पन्न करनेवाले हैं । अतः जो मनुष्य इन द्वन्द्वोंके आघातसे अपने मनको चञ्चल होनेसे बचा सकेगा, वही इस अमृतत्वका अधिकारी हो सकेगा । इस सत्यको साक्षात्कार करनेमें सफल हो सकेगा ।

'समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।'
(गीता २ । १५)

इसी तत्त्वका अर्जुनके पूछनेपर भगवान्ने गीताके दसवें अध्यायके ८—११ तक चार श्लोकोंमें बड़ी सुन्दरतासे वर्णन किया है—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

प्रथम श्लोकमें भगवान् कहते हैं कि अर्जुन ! मनुष्य साधारणतया परमात्मतत्त्वसे अनभिज्ञ रहता है, लेकिन जिस प्रकार घटको देखकर मनुष्य उसके निमित्त और उपादान कारण मिट्टी और कुम्हारका अनुमान कर लेता है, उसी प्रकार इस सृष्टिकी विविध विचित्रताओंको देखकर उसके उत्पत्तिकर्त्ता एवं उसके नियामकका भी अनुमान करता है । अतः प्रारम्भ करनेके लिये 'इति मत्वा' यह मान लो कि ईश्वर इस सृष्टिका उत्पत्तिकर्ता है और उसीकी प्रेरणासे सब विश्वके पदार्थ अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं । ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है जो सर्वतन्त्र-स्वतन्त्ररूपसे बिना उसकी प्रेरणाके प्रवृत्त हुआ हो । विश्वकी प्रवृत्ति उसी एक अद्वितीय परमेश्वरसे हुई है । अतः सब प्रवृत्तिका आदिकारण परमेश्वर है । श्रद्धा और

किसे ऐसा मान लेनेपर दूसरी अवस्था आती है—उसके साक्षात्कार करनेकी।

किसी भी वस्तुका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भगवान्द्वारा प्रदत्त तीन साधन मनुष्यके पास हैं—चक्षु, श्रोत्र एवं स्पर्श। प्रकाशमें मनुष्य चक्षुओंद्वारा, अन्धकारमें श्रोत्रद्वारा अथवा स्पर्शके द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है। परमात्मतत्त्व इन किन्हीं साधनोंके द्वारा प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। भगवान्ने भी लिखा है—'बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्'—वह तत्त्व बुद्धिद्वारा ग्राह्य है—इन्द्रियोंद्वारा नहीं। अतः यह निश्चय हो गया कि यह तत्त्व जाग्रत् अवस्थामें दर्शनीय नहीं।

दूसरी अवस्था है—स्वप्नावस्था—इसमें इन्द्रियाँ ज्ञान-शून्य होते हुए भी मनके द्वारा इन्द्रियोंके समस्त व्यापार सम्पादित होते रहते हैं। इसमें या तो प्राणोंका कार्य चलता रहता है या मनका। तो यह निश्चय हो गया कि इन प्राण और मनकी दो शक्तियोंके द्वारा साक्षात्कार सम्भव हो सकता है। लेकिन चित्तकी वृत्तियोंके निरोधद्वारा मनकी चञ्चलताको स्थिर किये बिना यह सम्भव नहीं। लिखा भी है—

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
(हठयोगप्रदीपिका २।२)

मारुते मध्यसंचारे मनः स्थैर्यं प्रजायते।
(हठयोगप्र० २।४२)

मारुतं धारयेद्यस्तु स मुक्तो नात्र संशयः।
(हठयोगप्र० १।५१)

अर्थात् प्राणोंके चञ्चल रहनेसे मन चञ्चल रहता है और प्राण मध्यसंचारी होनेसे चित्तको स्थिरता प्राप्त होती है और चित्तकी स्थिरतासे मुक्तिकी प्राप्ति होती है। अतः दूसरे श्लोकमें भगवान्ने बताया कि इन प्राणों और मनको स्थिर करनेके लिये इनको मेरेमें लीन कर दो—'मच्चित्ता मद्गत-प्राणाः'; क्योंकि बिना मनके लीन हुए स्थिरता नहीं आती; स्थिरता बिना मनपर अधिकार नहीं होता; मनपर अधिकार हुए बिना शक्तिकी प्राप्ति सम्भव नहीं; शक्ति बिना कल्पना-की सिद्धि नहीं; सिद्धिके बिना मन अशुभसे शुभकी ओर अग्रसर नहीं होता। अतः प्रश्न उठता है कि इनको लीन कैसे किया जाय? तो भगवान् कहते हैं कि—'कथयन्तश्च मां नित्यम्'—अर्थात् 'सदा-सर्वदा तुम मेरा ही जप करो, मेरा ही चिन्तन हो, मेरी ही कथा हो, मेरी ही उपासना हो, मेरा ही कीर्तन हो, मेरे ही बारेमें पढ़ो, मेरे ही बारेमें बोलो ऐसा करते-करते तुम्हारा जीवन ईश्वरके समर्पित हो जाय और मैं-मेरेका भाव दूर होकर सब कुछ तेरा ही 'इदं न मम'—यह भावना दृढ़से दृढ़तर होती चली जाय

ऐसा ही भाव बृहदारण्यक उपनिषद्में मह याज्ञवल्क्यने अपनी स्त्री मैत्रेयीको ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा देते कहा था—

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदि सितव्यः। आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञाने सर्वं विदितम्।'
(बृ० उ० २।४।

अर्थात् प्रथम आत्माके बारेमें सुने, पश्चात् उस मनन, ध्यान, चिन्तन अथवा स्मरण करे; तत्पश्चात् निदि सनके द्वारा उसका ज्ञान प्राप्त करे। मुसलमान भ शिरोमणि 'रसखान' ने उसकी उपासनाका और ही स उपाय बताया है—

'रसखान गोविंदहिं यँ भजिये, जिमि नागरिको चित गागरमें

अर्थात् जिस प्रकार जलसे पूर्ण पात्रको सिरपर रख पनिहारी बिना हाथके आधारके हँसती-बोलती चलती र है—लेकिन सदा-सर्वदा उसका मन घड़ेमें ही लगा र है, विस्मरण होते ही घड़ा नीचे गिर जायगा। इसी प्र मनुष्यको भी चाहिये अपने चित्तको सतत उसके चिन्त लगाकर मनुष्य-जीवनके चार पुरुषार्थ—कर्तव्य-पा अर्थप्राप्तिके उपाय, धर्मानुकूल एवं बन्धन-मुक्तिके लिये स प्रयत्नशील रहे। एवं जो सांसारिक सुख-भोग उसने प्रदान किये हैं, उनको उसीकी वस्तु और उसीकी दी समझकर, उसीके प्राणियोंके हितके लिये, उसके चर अर्पित करता रहे। जो ऐसा नहीं करके, उसके दिये भोग्य पदार्थोंको अपने निमित्त ही व्यय करते हैं, उनके भगवान्ने कहा है—

'भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।'
(गीता ३।

'वे जो अपने लिये ही संग्रह करते हैं—वे पा भक्षण करते हैं।' वेदने भी कहा है—

'केवलाघो भवति केवलादी।'
(ऋ० १०।११।७।

'अकेला खानेवाला अघका भक्षण करनेवाला है।' प्रकार 'सर्वभूतहिते रताः' रहनेसे मनुष्यका जीवन

उच्चतर होता जाता है। उसकी आशा-आकाङ्क्षाएँ मिट जाती हैं। लोकैषणा, वित्तैषणाके वशीभूत हुआ वह पापोंका अर्जन नहीं करता। भगवत्प्रदत्त सभी वस्तुएँ लोकसेवार्थ व्यय कर वह परमात्माके सामने सर्वात्म-समर्पणकर कृतकृत्य हो जाता है। चिन्तन करते-करते गद्गद हो उठता है, मन स्मरण करते-करते द्रवीभूत होने लगता है, भावावेशमें अश्रु-पात होने लगते हैं—प्रेमके आवेशमें नाचने लगता है। जब साधककी सतत चिन्तन करते-करते ऐसी अवस्था हो जाती है तो भगवान् तीसरे श्लोकमें कहते हैं कि—'**ददामि बुद्धि-योगं तम्**—मैं उनको ऐसी बुद्धि प्रदान करता हूँ, जिसके द्वारा साक्षात्कारका मार्ग प्रशस्त होता है।'

साक्षात्कारीको पुरुषार्थके अतिरिक्त भगवत्कृपा वाञ्छनीय है। 'राम कृपा बिनु सुलभ न सोऊ ॥' अतः चौथे श्लोकमें भगवान् कहते हैं कि 'मेरी कृपासे. साधकके शोक, मोह—सब दूर हो जाते हैं, उसके सब संशय मिट जाते हैं, सब ग्रन्थियाँ टूट जाती हैं। वह निष्पाप होकर अमृतत्वका अधिकारी हो जाता है, उसके संकल्प-विकल्प नष्ट होकर वासनाओंके विकार मिट जाते हैं। इस प्रकार सर्वात्म-समर्पणके दिव्य मार्गपर चलता हुआ साधक प्रारम्भमें बिजलीकी चमककी भाँति सत्यकी झलक दृष्टिगोचर करता है। इसके पश्चात् साधकमें दर्शनोंकी उत्कण्ठा तीव्र-से-तीव्रतर होती चली जाती है।

फारसीके एक कविके शब्दोंमें—

'बादये वस्ल चूँ शवद नजदीक
आतिशे शौक तू तेजतर गर्दद।'

अर्थात् 'यारसे मिलनेका वादा ज्यों-ज्यों समीप होता जाता है, मिलनेकी अग्नि प्रचण्ड-से-प्रचण्डतर होती चली जाती है।' विद्युत्की भाँति क्षणभर चमककर लुप्त होनेवाले सत्यको प्रत्यक्ष करनेके लिये साधक बेचैन हो जाता है। अज्ञात प्रेमातिशयसे चुम्बकद्वारा खैंचे गये लोहेके समान साध्यकी ओर निरन्तर खिंचने लगता है। तदनन्तर असम्प्रज्ञात समाधिकी स्थिति प्राप्त होनेपर विद्युत्की भाँति क्षणभर चमक-कर विलुप्त हो जानेवाला प्रकाश सूर्यकी भाँति स्थिर होने लगता है। इस प्रकाशकी स्थितिमें साधक अपनेमें पूर्णताका अनुभव करने लगता है। अन्तःकरण एक ऐसे अनुभवगम्य आनन्दसे भरपूर हो जाता है, जो शब्दोंद्वारा अवर्णनीय है। साधक उस ज्योतिकी रूप-माधुरीसे आनन्दविभोर होकर इस आनन्दकी अनुभूति भौतिक शरीरमें भी करने लगता है।

कभी कानोंसे दिव्य संगीत सुनता है, कभी जिह्वासे अमृतान्नके विचक्षण स्वादसे तृप्ति अनुभव करता है, कभी नासासे आकाशपुष्पकी दिव्य सुगन्ध सूँघता है और कभी दिव्य-स्पर्शसे पुलकित होकर रोम-रोम दिव्य आनन्दका अनुभव करने लगता है।

ऐसी अवस्थाको, जिसे योगमें तुरीयावस्था कहा है—प्राप्त होकर प्राणिमात्रको वह अपनी आत्माके समान समझने लगता है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
(गीता ६। २९)

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ॥
सर्वभूतेषु चात्मानम् (ईश० उ० ६)

न वह किसीसे द्वेष करता है और न अन्य कोई उससे द्वेष करते हैं। वह जीवमात्रका बन्धु हो जाता है—'**वसुधैव कुटुम्बकम्**।' सारी वसुधा ही उसका कुटुम्ब हो जाती है। संशयरहित होकर निर्द्वन्द्व हो जाता है। आवश्यकता-जैसी कोई वस्तु उसके जीवनमें शेष नहीं रह जाती। इस प्रकार साधक शरीरमें रहकर शरीर, मनमें रहकर मन एवं विषयोंमें रहकर विषयोंके अधीन नहीं होता। परमात्माके हृदय-गह्वरमें प्रवेश कर दिव्य मानव हो जाता है। उसकी बुद्धि निश्चल, मन बाह्य स्पर्शोंमें अनासक्त, भाव शुद्ध, शरीर तेजस्वी, कर्म निष्पाप, चित्त एकाग्र एवं कर्म '**सर्वभूतहिते रताः**' हो जाते हैं। साधक अहंकारशून्य, नम्र एवं निष्काम हो जाता है। किसी अपार्थिव आनन्दकी माधुरी उसके रोम-रोम-से टपकने लगती है। वह मौन होकर भी बोलता है, बोलकर भी मौन रहता है। देखकर भी नहीं देखता, सुनकर भी नहीं सुनता। अभाव-जैसी कोई वस्तु उसके जीवनमें शेष नहीं रह जाती। अपनेमें ही कृतार्थ अनुभव करता है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।

इस प्रकार जीवन बिताकर जहाँसे आया था, वहीं लौट जाता है। इत्योम् शम् ॥

दुष्कर्मका परिणाम और प्रायश्चित्त

लेखक—श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री, धर्माधिकारी)

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

—के अनुसार हमारे धर्मग्रन्थोंमें परोपकारको पुण्य और पर-पीडनको पाप बतलाया गया है । और—

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा ।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः ॥

—के अनुसार पापसे व्याधि, वृद्धत्व, दीनता, दुःख और भयंकर शोककी प्राप्ति होती है । यही नहीं, छोटे और बड़े पापोंके क्रमसे छोटे और बड़े फल प्राणीको भोगने पड़ते हैं । यह फल नरक भोगनेके पश्चात् जन्म-जन्मान्तरोंमें भुगतने पड़ते हैं । विविध प्रकारके रोग उनके चिह्न हैं । शातातपस्मृति (३ और ५) में लिखा है—

महापातकजं चिह्नं सप्तजन्मानि जायते ।
उपपापोद्भवं पञ्च त्रीणि पापसमुद्भवम् ॥
पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये ।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः ॥

इससे स्पष्ट है कि इस जन्ममें पीडा देनेवाले विभिन्न रोग पूर्वजन्मोंके पापोंके परिणाम हैं । शातातपस्मृति आदिमें इसका विस्तारसे वर्णन है ।

उदाहरणार्थ कुछ वाक्य नीचे दिये जाते हैं—

ब्रह्महा नरकस्यान्ते पाण्डुः कुष्ठी प्रजायते ।
कुष्ठी गोवधकारी···
बालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते ।
गर्भपातनजा रोगा यकृत्प्लीहा जलोदराः ।
प्रतिमाभङ्गकारी च अप्रतिष्ठः प्रजायते ।
विद्यापुस्तकहारी च किल मूकः प्रजायते ।
औषधस्यापहरणे सूर्यावर्तः प्रजायते ।

(शातातपस्मृति अध्याय २-३-

आयुर्वेदके प्रसिद्ध ग्रन्थ शिवनाथसागरके अनु[illegible] 'चन्देके द्रव्यको हड़पनेवाला गण्डमाल-रोगी, असत्य [illegible] देनेवाला मुखरोगी और रक्तपित्त-रोगी, दूसरोंको धोखा [illegible] अभक्ष्य पदार्थ खिलानेवाला उन्माद-रोगी, कन्याके शी[illegible] भङ्ग करनेवाला मूत्रकृच्छ्ररोगी, परस्त्रीगामी अश्मरीरो[illegible] सगोत्रागामी भगंदर-रोगी, गाय-साधु आदिको [illegible] वञ्चित करनेवाला तृषारोगी होता है ।'

परंतु हमारे धर्मशास्त्रोंमें इस प्रकारके स्पष्ट [illegible] होनेपर भी सामान्यतः मनुष्योंकी विचित्र गति है । वे—

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति जन्तवः ।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥

—को चरितार्थ करते हैं अर्थात् वे पुण्यका फल ([illegible] तो चाहते हैं परतु पुण्य नहीं करना चाहते और पापक[illegible] जान-बूझकर करते हैं, परंतु उन पापकर्मोंका फल (दु[illegible] नहीं भोगना चाहते हैं ।'

ऐसे व्यक्तियोंको यदि अपने दुष्कृत्योंके प्रति आत्मग[illegible] उत्पन्न हो जाती है तो उनके लिये धर्मशास्त्रोंने प्रायश्चि[illegible] व्यवस्था की है ।

वेदान्तसारमें प्रायश्चित्तकी व्याख्या करते हुए सदा[illegible] लिखा है—

'प्रायः पापं विजानीयाच्चित्तं तस्यैव शोधनम् ।'

अर्थात् पापोंको क्षालन करनेके लिये जो व्रतादि [illegible] जाते हैं, वे प्रायश्चित्त-कर्म कहलाते हैं । प्रायश्चित्त पा[illegible] फलभोगसे बचानेवाला अमोघ अस्त्र है । दूसरे श[illegible] पापनाशक कृत्यको 'प्रायश्चित्त' कह सकते हैं ।

प्रायश्चित्तेन्दुशेखरके अनुसार पाप दो प्रकारके

नश्यति कीर्तनात्' के अनुसार पाप कहनेसे नष्ट हो जाता है। अतः उसको गुरु या राजासे कह देना चाहिये। वसिष्ठ-स्मृतिमें लिखा है—

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्।
इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः॥

अर्थात् 'गुरु ज्ञानियोंका शासनकर्त्ता है, राजा दुष्टोंका शासनकर्ता है और जो इस लोकमें गुप्तरूपसे पाप करते हैं उनके शासक यमराज हैं।' इससे स्पष्ट है कि गुप्तरूपसे किये गये पापपर यमराजकी दृष्टि रहती है। अतः यहाँ कोई भले ही पाप छिपाये रहें, उनको वहाँ मुक्ति नहीं मिल सकती। वहाँ तो दण्ड मिलेगा ही। अतः पापको छिपाना नहीं चाहिये; क्योंकि जितने दिन तक पाप [illegible] उसका फल बढ़ता ही रहेगा। प्रायश्चित्तेन्दुशे[illegible]

'आसंवत्सरं प्रायश्चित्ताकरणे पापद्वैगुण्य[illegible]

'एक वर्षतक यदि पापका प्रायश्चित्त न कि[illegible] दुगुना हो जाता है। अतः पापका प्राय[illegible] करना चाहिये।

इसमें ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि स[illegible] वही है जिसमें दुष्कर्मके प्रति आत्मग्लानि [illegible] अन्तरात्मामें पश्चात्ताप हो। साथ ही यह [illegible] बार-बार पापकर्म करके बार-बार प्राय[illegible] हस्तिस्नान-जैसी प्रवृत्ति भी शास्त्र-सम्मत नहीं

सात दिनका मेहमान

[कहानी]

(लेखक—पं० श्रीमङ्गलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्विद्यालंकार')

[१]

उज्जयिनीमें नागदत्त सेठका नाम देशविख्यात था। नामके साथ दाम एवं व्यापारका काम भी दिनोंदिन बढ़ रहा था। श्रीमानताके तीन चरण—नाम, दाम एवं कामकी वृद्धि होनेपर भी चौथे चरण धामकी कमी उन्हें बेचैन बना रही थी। वैसे तो उनके रहनेका मकान बहुत अच्छा था, पर उसे महल नहीं कहा जा सकता था। अभी-अभी नगरपतिने एक सुन्दर महालय बनवाया था। नागदत्त सेठ उनसे किस बातमें कम थे, जो एक विशाल महल न बनायें?

इस कार्यके लिये उन्होंने जयपुरके ख्यातनामा शिल्पियोंको बुलवाकर अच्छे-से-अच्छा महल बनवाया। अब केवल उसमें रंगका काम ही बाकी था। चित्रकामके लिये भी देशके कुशल चित्रकार बुलाये गये थे। रंग-रौगन एवं चित्रकारीका काम चल रहा था।

प्रातःकालका समय था। स्वयं नागदत्त चित्रकारोंको सूचना दे रहे थे—'चित्रकार! देखना, नगरपतिका महल इसके सामने तुच्छ-सा लगे, ऐसी बढ़िया चित्रकलाका काम करना। चाहे जितना धन लग जाय, इसकी चिन्ता नहीं है; किंतु सात पीढ़ियोंतक रंग तथा चित्र ताजे बने रहें, ऐसा काम करना है······'नागदत्त आगे बोल[illegible] उसी मार्गसे मन्द-मन्द हँसते हुए एक मुनि [illegible] तथा उनको देखकर नागदत्तने अपनी बा[illegible] बिना ही मुनिराजका वन्दन किया।

मुनिराज अपने हाथसे आशीर्वाद देते हु[illegible] और देखकर मुसकराने लगे। मुनिराज अपू[illegible] भिक्षा लेनेके लिये ही वे बाहर निकलते थे, अ[illegible] एकान्त स्थानमें बैठकर जप-ध्यानमें मग्न रहते थे [illegible] हुए मुनि आशीर्वाद देते-देते हँसे क्यों? नाग[illegible] बातपर आश्चर्य हुआ। मुनिके जानेके बाद सेठ [illegible] आये। मार्गमें चलते-चलते भी नागदत्तके मनमें य[illegible] आ रहा था कि ऐसे प्रौढ़ मुनि मुझे देखकर [illegible] लगे! महलके निर्माणमें कोई त्रुटि रह गयी [illegible] चित्रकलामें कोई कसर होगी?

—विचार करते-करते नागदत्त सेठ घर पहुँचे

[२]

भोजन परोसती हुई नागदत्तकी पत्नी [illegible] 'मजदूर लोग काम करते हैं, महल भी अब प्रायः [illegible] चुका है, फिर भी आप वहाँ खड़े रहकर [illegible] क्यों बिगाड़ते हैं! आपको अपने स्वास्थ्यकी [illegible]

भोजनका समय बीत जानेपर भी आपको स्मरण नहीं
आपकी उपस्थितिसे ही काम चलता हो, ऐसा तो
।'

तुम चिन्ता न करो'—भोजन करते-करते नागदत्तने
देया । 'अब तो नाव किनारे लग चुकी है, सिर्फ रंग-
और कुछ कलात्मक चित्रोंका काम ही बाकी है ।
हीं जानती कि आजके मजदूर लोग देख-रेखके बिना
म नहीं करते हैं ।'

नकर पत्नी मौन रह गयी । थोड़ी देरके बाद नागदत्तने
करते-करते कहा—'सातवीं मंजिलपर कलात्मक
का झूला बन चुका है । सोनेके कड़े भी तैयार हैं ।
प्रकार हमारे प्यारे मुन्नेके लिये एक पलना बनानेका
ार्डर दे दिया है । वह भी सोने-चाँदीका
ीदार बनेगा ।'

ें भी गृह-प्रवेशके मुहूर्तकी घड़ियाँ गिन रही हूँ ।'

पूर्ववत् हास्य ! पत्नीने उठकर मुनिराजको भिक्षा दी और मुनिराज लेकर चले गये ।

भोजन कर लेनेके बाद सेठ पान-सुपारी खाते-खाते विचार करने लगे—'ऐसे ज्ञानयोगी मुनिराज बिना कारण हँसते रहें, यह तो सम्भव नहीं है । एकान्तमें जाकर उनसे इस हँसीका कारण पूछना चाहिये ।' भोजनके बाद सेठ बिस्तर-पर लेटे; परंतु मन चिन्ताग्रस्त था, इस कारण आज नींद बिल्कुल नहीं आयी ।

[३]

सायंकाल चार बजेका समय हुआ । दो-एक दिनसे सेठ दूकानपर नहीं जा सके थे । बँगलेका काम जो चल रहा था; किंतु आज थोड़ी देरके लिये उन्होंने दूकानपर जानेका निश्चय किया ।

सेठ नागदत्तकी दूकान मध्य बाजारमें थी । मुनीम लोग

माया ! तेरा चक्कर अद्भुत है। आदमी इसी गोरखधंधेमें फँसा इसी मायाजालमें डूबता-उतराता रहता है।

हम जाने थे खायेंगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रह गया, पकड़ ले गया काल॥

कालदेव आते हैं और पलभरमें हमारी मुश्कें बाँधकर चल देते हैं। न उनके आनेकी घड़ी निश्चित, न उनके आनेका बहाना निश्चित।

कभी रोग है तो कभी बीमारी। कभी आग है तो कभी तूफान। कभी महामारी है तो कभी और कुछ। कभी साँपके रूपमें वे काट खाते हैं तो कभी सिंहके रूपमें फाड़ खाते हैं।

कालदेवको न रहम है, न दया। घड़ीकी सुई ठिकानेपर पहुँची नहीं कि बस, उन्होंने अपना फंदा कसा। रहिये आप बड़े बहादुर, रहिये आप बड़े शूरवीर, रहिये आप लखपती-करोड़पती—उनके आगे आपकी दाल नहीं गल सकती। डाक्टर और वैद्य, हकीम और तबीब, सुइयाँ और गोलियाँ—सब बेकार रहती हैं, बिल्कुल बेकार। तभी तो—

आस पास जोधा खड़े सभी बजावें गाल।
मंझ महलसे ले चला ऐसा काल कराल॥

भूलोकका सर्वोच्च अधिकारी है—यमराज। उसके आगे किसीकी दाल नहीं गल पाती !

× × ×

सोचनेकी बात है कि कैसा होता है वह दिन—

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।
घर के कहैं बेगि ही काढ़ौ, भूत भये कोउ खैहैं॥
जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरैहैं।

....

भाई और बन्धु, हितू और मित्र, सब हाथ-पर-हाथ धरे रह जाते हैं, कोई दवा काम नहीं करती।

माथा पकरि के माता रोवे भुजा पकरि के भाई।
लपट झपटि के तिरिया रोवै हंस अकेला जाई॥

और फिर—

हाड़ जलै ज्यों लाह कड़ी को, केस जरै ज्यों घासा।
सोने जैसी काया जरि गइ कोऊ न आयो पासा॥

सब कुछ, सारी धन-दौलत, सारी जर-जमीन, सारे सगे-सम्बन्धी, यहीं छूट जाते हैं। श्मशान-मार्गमें कोई साथ नहीं देता।

सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लादि चलेगा बनजारा।

× × ×

प्राण राम जब निकसन लागे
उलटि गयीं तब दोनों पुतरियाँ।
भीतर से बाहर जब लाये
छूटि गयीं सब महल अटरियाँ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो
संग चली वह सूखी लकरियाँ॥

केवल थोड़ी-सी सूखी लकड़ियाँ लाशके साथ जाती हैं। चितामें लगकर अग्निकी ज्वालामें वे भी दो-तीन घंटेके भीतर सोने-जैसी कायाको राखके रूपमें बदलकर स्वयं भी भस्म हो जाती हैं। कपालक्रिया करके सगे-सम्बन्धी रोते-पीटते घर लौट आते हैं।

बस, जीवनके पर्देका पटाक्षेप हो जाता है !

× × ×

विश्वका प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक जीव, छोटा हो या बड़ा कालका कलेवा है !

आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर।

फर्क इतना ही है कि—

एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बँधे जंजीर॥

सब जानते हैं और अच्छी तरह जानते हैं कि मौत आयेगी, एक रोज वह जरूर आयेगी, उससे किसी तरह छुटकारा हो नहीं सकता। परंतु कितने आश्चर्यकी बात है कि हम ऐसा मान बैठे हैं कि मौतसे हमसे कोई वास्ता ही नहीं।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

(युधिष्ठिर—महाभारत ३। ३१३। ११६)

'दूसरे लोग रोज मरते जाते हैं, पर हम तो कभी मरेंगे ही नहीं—ऐसा हम मान बैठे हैं !' कूचके नकारे बज रहे हैं। विश्वकी धर्मशालामें आनेवाले-जानेवाले यात्रियोंकी रेलपेल मची है, पर हमें अपनी कोई परवाह ही नहीं।

अजब सरा है ये दुनिया कि जिसमें सहरो शाम,
किसी का कूच, किसी का मुकाम होता है !

कोई आ रहा है, कोई जा रहा है।

६—'जन्म और मृत्यु—दोनों ही महान् रहस्य हैं। यदि मृत्यु दूसरे जीवनकी पूर्व-स्थिति नहीं है तो बीचका समय एक निर्दय उपहास है। हमें यह कला सीखनी चाहिये कि मृत्यु किसीकी और कभी भी हो, हम उसपर हर्गिज रंज न करें। मेरे ख्यालमें ऐसा तभी होगा जब हम सचमुच ही अपनी मृत्युके प्रति उदासीन होना सीखेंगे और यह उदासीनता तब आयेगी, जब हमें हर-क्षण यह भान होगा कि हमें जो काम सौंपा गया है, उसे हम कर रहे हैं। लेकिन यह कार्य हमें कैसे मालूम होगा? वह ईश्वरकी इच्छाको जाननेसे मालूम होगा। ईश्वरकी इच्छाका पता चलेगा—प्रार्थना और सदाचरणसे।'

(बापूके पत्र मीराके नाम)

७—'यह बात गीतामें ही मिलती है कि मृत्युके लिये शोक नहीं करना चाहिये।'

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(२। १६)

इस श्लोकमें मृत्युका सारा रहस्य भरा हुआ है। अनेक श्लोकोंमें बार-बार कहा गया है कि शरीर 'असत्' है। 'असत्' का अर्थ 'माया' नहीं, ऐसी वस्तु नहीं जो कभी किसी रूपमें उत्पन्न न हुई हो; बल्कि उसका अर्थ है क्षणिक, नाशवान्, परिवर्तनशील। फिर भी हम अपने जीवनका सारा व्यवहार यह मानकर चलते हैं, मानो हमारा शरीर शाश्वत है। हम शरीरको पूजते हैं, शरीरके पीछे पड़े रहते हैं। यह सब हिंदूधर्मके विरुद्ध है। हिंदूधर्ममें यदि कोई बात चाँदनीकी तरह स्पष्ट कही गयी है तो वह है—'शरीर और दृश्य पदार्थोंकी असत्ता।' फिर भी हम जितना मृत्युसे डरते हैं, रोते-पीटते हैं, उतना शायद ही कोई करते हों।

महाभारतमें तो यह कहा गया है कि रुदनसे मृत आत्माको संताप होता है और गीता इसीलिये लिखी गयी है कि लोग मृत्युको कोई भी भीषण वस्तु न मानें। मनुष्यका शरीर काम करते-करते थक जाता है। अनेक शरीर तो मृत्युके द्वारा दुःखसे मुक्त होते हैं। गीता हमें सिखाती है और मैं प्रतिदिन इस पाठको समझता जा रहा हूँ कि अशाश्वत वस्तुके लिये की गयी सारी चिन्ता व्यर्थ है, व्यर्थ कालक्षेप है।

'असत्का भाव'—इसका अर्थ है—अस्तित्वका न होना। और जो सत् है, उसका नाश कभी नहीं हो सकता। गीता इस श्लोकमें पुकार-पुकारकर कहती है [illegible] अपने जीवनमें सत्यको धारण करके जियें और असत्य, पाखण्डका त्याग करें। अनेक बार वाणी [illegible] हो जाती है, पाखण्ड-रूप हो जाती है। क्रोध अस[illegible] काम, मोह, मद आदि असत् हैं। हमें इन तमाम [illegible] सब करना है। स्थूल सर्प तो बेचारा केवल शरीर [illegible] देता है, पर ये सर्प तो हमारी रग-रगमें पहुँच [illegible] और हमारी आत्माको भी हानि पहुँचानेकी धमकी दे[illegible] परंतु आत्माको हानि नहीं पहुँच सकती। वह अ[illegible] है। यदि हम इस बातको समझ लें कि सत् क्य[illegible] जन्म-मृत्युका रहस्य भी समझ जायँगे।

जिस प्रकार रसायनशास्त्री कहते हैं कि जब मे[illegible] जलती है, तब उसकी किसी वस्तुका नाश नहीं होता [illegible] प्रकार जब शरीर मरता है और जलता है, तब को[illegible] नष्ट नहीं होती। जन्म और मृत्यु एक ही वस्तु[illegible] स्थितियाँ हैं। किसी स्वजनके मरणपर हम जो रोते-[illegible] हैं, उसका कारण है—स्वार्थ।'

(हिं० नवजीवन ३०-७-

× × ×

बापूके इन अनमोल उपदेशोंको हम हृदयमें [illegible] कर लें तो हमारा बेड़ा पार हो जायगा। सच बात [illegible] है कि हमारी बुद्धि स्थिर हो; मोह और ममता, रा[illegible] द्वेषके चक्करसे हम अपनेको मुक्त कर लें; फिर तो [illegible] सारा डर ही दूर हो जायगा।

और वह दूर हुआ कि हमारा सारा जीवन ही [illegible] और आनन्दमय बन जायगा; साथ-ही-साथ मृत्यु भी [illegible]

दूसरी दृष्टिसे सोचें तो मृत्युका भय यदि वस्तु[illegible] आक्रान्त कर ले, तब भी काम बन सकता है। फिर [illegible] सच्चे वैराग्यकी प्राप्ति हो जायगी। 'मौत सिरपर [illegible] रही है'—इतना विश्वास दृढ़ हो जाय तो फिर हमसे [illegible] गलत काम होगा ही कैसे? कोई पाप हमसे बने[illegible] कैसे? किसीको हम सतायेंगे ही कैसे, जब कि हम [illegible] हैं कि पता नहीं कलका सूर्योदय हम देख सकें[illegible] या नहीं।

पर इस भयको हम आँख मूँदकर टाल देते हैं; हम लाख टालें, वह टलनेवाला है नहीं। तब बुद्धिमानी

में है कि हम जीवनके रहे-सहे क्षणोंको जीवनके एकमात्र चरम लक्ष्य प्रभुप्राप्तिके लिये ही प्रभुके चरणोंमें अर्पित कर दें। हम जो कुछ करें, सो सब प्रभु-पूजा ही हो। प्रभुसे हमारी एक ही प्रार्थना हो कि 'नाथ! जीवनकी अन्तिम वेलामें तुम ही मेरे समक्ष हो—

इतना तो करना भगवन्, जब प्रान तनसे निकलें।
श्री जमुनाजी का तट हो अरु पास वंशीवट हो॥
वह साँवला निकट हो, जब प्रान तन से निकलें।

फिर तो धन्य और पवित्र हो जायगा हमारा जी[वन] और धन्य तथा पवित्र हो जायगी हमारी मृत्यु!

जीवका गर्भवास और देहरचना

(लेखक—वैद्य पं० श्रीनन्दकिशोरजी गौतम 'निर्मल' एम्० ए०, साहित्यायुर्वेदाचार्य, साहित्यायुर्वेदरत्न)

अखिल विश्वमें हमारा भारत ही एक ऐसा देश है, जो पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें पूर्ण विश्वास ही नहीं रखता, अपितु समय-समयपर त्रिकालदर्शी योगियोंद्वारा इस प्रकारके उदाहरण प्रत्यक्षरूपसे प्रस्तुत करनेमें समर्थ रहा है। अणिमादि अष्ट-सिद्धियोंको प्राप्त महापुरुष तो परकाया-प्रवेशतक करके ऐसा दिखाते आये हैं।

इससे यह स्पष्ट प्रत्यक्ष होता है कि आत्मा तो अजर और अमर है तथा वह अपने प्रारब्ध (पूर्वसंचित कर्मफल) के अनुसार सम्बन्धित मानव, पशु, कीट आदि योनियोंमें जन्म लेता है। श्रीमद्भागवत तथा गरुडपुराण (सारोद्धार) आदिमें इस बातका स्पष्ट प्रमाण मिलता है—

जीवका गर्भप्रवेश

'जीव प्रारब्ध-कर्मवश देह-प्राप्तिके लिये पुरुषके वीर्य-कणके आश्रित होकर स्त्रीके उदरमें प्रविष्ट होता है।'[1]

आयुर्वेदके विभिन्न ग्रन्थोंके आधारपर जीवके पूर्वकर्मानुसार गर्भप्रवेशका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है—'यह आत्मा जैसे शुभाशुभ कर्म पूर्वजन्ममें संचित करता है, उन्हींके आधारपर इसका पुनर्जन्म होता है और पूर्वदेहमें संस्कारित गुणोंका प्रादुर्भाव इस जन्ममें[2] होता है।'

जैसा कि योगिराज श्रीकृष्णने गीताके छठे अध्यायमें इस बातकी पुष्टि—'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।' इस वाक्यसे की है। इसी कारण हम संसारमें कि[सीको] कुरूप, किसीको सुन्दर, किसीको लँगड़ा, किसीको ल[ूला,] किसीको मूक और किसीको कुबड़ा तो किसीको अंधा [या] किसीको काना देखते हैं। इसी प्रकार कोई जीव कि[सी] महापुरुषके घर जन्म लेता है तो कोई किसी अधमके [घर] उत्पन्न होता है। कोई ऐश्वर्यशालीके घरमें जन्म ले[ता] तो कोई अकिंचन कुटीरमें पलता है। यह सम्पूर्ण विवि[धता] पूर्वकृत कर्मके अनुसार होती है, जिसे कि हम 'दैव' कहते हैं—

'पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।'

चरकसंहिताके शारीरस्थानके चतुर्थ अध्यायमें भी [इस] बातकी पुष्टि इस प्रकारसे की गयी है—'सबसे पूर्व मन [रूपी] कारणके साथ संयुक्त हुआ आत्मा धातुगुणके ग्रहण कर[नेके] लिये प्रवृत्त होता है, अर्थात् अपने कर्मके अनुसार सत्त्व, [रज] तथा तम—इन गुणोंके ग्रहणके लिये अथवा महाभू[तोंके] ग्रहणके लिये प्रवृत्त होता है। आत्माका जैसा कर्म [होता] है और जैसा मन उसके साथ है, वैसा ही शरीर बनता [है,] वैसे ही पृथिवी आदि भूत होते हैं तथा अपने कर्मद्वारा प्रे[रित] किये हुए मनरूपी साधनके साथ स्थूलशरीरको उत[्पन्न] करनेके लिये उपादानभूत भूतोंका ग्रहण करता है। [यह] आत्मा हेतु, कारण, निमित्त, कर्ता, मन्ता, बोधयिता, बो[द्धा,] द्रष्टा, धाता, ब्रह्मा, विश्वकर्मा, विश्वरूप, पुरुषप्रभ[व,] अव्यय, नित्यगुणी, भूतोंका ग्रहण करनेवाला प्रध[ान,] अव्यक्त, जीवज्ञ, प्रकुल, चेतनावान्, प्रभु, भूता[त्मा,] इन्द्रियात्मा और अन्तरात्मा कहलाता है।'[3]

---

१. कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये।
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः॥
(श्रीमद्भागवत ३। ३१। १; ग० पु० सा० ६। ५)

२. कर्मणा चोदितो येन तदाप्नोति पुनर्भवे।
अभ्यस्ताः पूर्वदेहे ये तानेव भजते गुणान्॥
(सुश्रुत, शा० २। ५५)

३. तत्र पूर्वं चेतनाधातुः सत्त्वकरणो गुणग्रहणाय पुनः प्रवर्[तते ...]
स हि हेतुः कारणं निमित्तमक्षरं कर्ता मन्ता बोधयिता बोद्धा [...]

अन्तकालमें भगवान्‌के स्मरणसे भगवत्प्राप्ति (गीता ८ । ५)
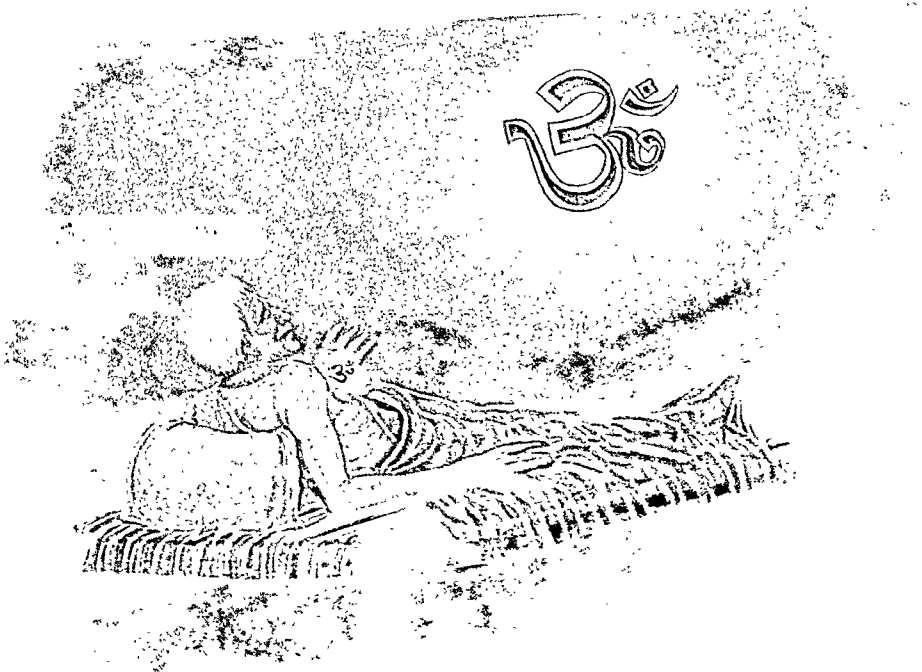
'वह जीव गर्भाशयमें अनुप्रविष्ट होकर शुक्र और शोणित-से मिलकर अपनेसे अपनेको गर्भरूपमें उत्पन्न करता है। अतएव गर्भमें इसकी आत्मसंज्ञा होती है।'

'क्षेत्रज्ञ, वेदयिता, स्प्रष्टा, घ्राता, द्रष्टा, श्रोता, रसयिता, पुरुषस्रष्टा, गन्ता, साक्षी, धाता, वक्ता इत्यादि पर्यायवाची नामोंसे, जो ऋषियोंद्वारा पुकारा जाता है, वह क्षेत्रज्ञ (स्वयं अक्षय, अचिन्त्य और अव्यय होते हुए भी) दैवके संगसे सूक्ष्म भूत-तत्त्व, रज, तम, दैव, आसुर या अन्य भावसे युक्त वायुसे प्रेरित हुआ गर्भाशयमें प्रविष्ट होकर (शुक्र-आर्तवके संयोग होते ही) तत्काल उस संयोगमें अवस्थान करता है।'

जीवका गर्भ-वृद्धिक्रम

गर्भमें प्रविष्ट होनेके बाद यह आत्मा पाञ्चभौतिक शरीर-को धारण करने लगता है। इस शरीरकी वृद्धि गर्भमें क्रमशः नौ मासतक होनेका वर्णन हमें विभिन्न ग्रन्थोंमें इस प्रकार मिलता है—

'डिम्बाणुके साथ मिले हुए शुक्राणुकी वृद्धि एक रात्रि-में कलल, पाँच रात्रिमें बुद्बुद, दशरात्रिमें कर्कन्धू (बेर) के समान मांसके पिण्डके रूपमें होती है एवं अन्य मानवेतर योनियोंमें अंडेके रूपमें होती है। उसके बाद दो मासमें सिर और बाहु अङ्गका विग्रह (विभाग) होता है। तीन माहमें नख, रोम, हड्डी, चर्म और लिङ्ग आदि छिद्र होते हैं। चार महीनेमें सातों धातु बनते हैं, पाँचमें क्षुधा तथा तृषाकी उत्पत्ति होती है। एवं षष्ठ मासमें जरायु (झिल्ली) में लिपटा हुआ दक्षिणकुक्षिमें भ्रमण करता है। सप्तम मासमें सचेत होकर प्रसूतिवायुसे कम्पित होता हुआ विष्ठासे उत्पन्न सहोदर कृमिके समान चलता रहता है।'

आयुर्वेदके प्रधान ग्रन्थ सुश्रुतसंहिताके आधारपर गर्भ-वृद्धिक्रम इस प्रकारसे उपलब्ध होता है—

'शुक्र और शोणितके संयोगसे पहले मासमें गर्भ कलल अर्थात् बुद्बुदाकार होता है। दूसरे मासमें शीत(श्लेष्मा), उष्मा (पित्त) और अनिल (वात)—इनसे पञ्चमहाभूतों-का समूह गाढ़ा बनता है। यदि वह समूह पिण्डाकृति हो तो पुत्र और पेशी (दीर्घाकृति) हो तो कन्या तथा अर्बुद गोला (Tumour) के परिमाणका हो तो नपुंसक होता है। तीसरे महीनेमें दो हाथ, दो पैर और सिर ऐसे पाँच अवयवोंके पिण्ड होते हैं और ग्रीवा, छाती, पृष्ठ तथा उदर—ये अङ्ग और ठोड़ी, नासिका, कान, अँगुली, एड़ी इत्यादि प्रत्यङ्गोंका विभाग अस्पष्टतया ज्ञात होता है। चतुर्थ मासमें सब अङ्ग-प्रत्यङ्गके विभाग खूब स्पष्ट हो जाते हैं तथा गर्भका हृदय स्पष्ट होनेसे चेतना धातु व्यक्त होता है; क्योंकि हृदय चेतना-धातुका स्थान (आश्रय) है। इसलिये इन्द्रियार्थ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इनकी अभिलाषा चौथे मासमें होती है।

'पञ्चम मासमें मन अधिक प्रबुद्ध एवं सचेत होता है। षष्ठ मासमें बुद्धि प्राप्त होती है। सप्तममें सब अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी अभिव्यक्ति भलीभाँति होती है। अर्थात् चार शाखा, सिर और कोष्ठ—ये छः अङ्ग-प्रत्यङ्ग-ग्रीवा-मूर्धादि स्पष्ट हो जाते हैं। अष्टम मासमें ओज चञ्चल रहता है। इस मासमें बालक पैदा होनेपर नैर्ऋत भागके कारण तथा ओजधातु क्षीण रहनेसे जीता नहीं। नवम, दशम, एकादश या

धाता ब्रह्मा विश्वकर्मा विश्वरूपः पुरुषः प्रभवो अव्ययो नित्यो गुणी ग्रहणं प्राधान्यमव्यक्तं जीवो ज्ञः प्रकुलश्चेतनावान् प्रभुश्च भूतात्मा चेन्द्रियात्मा चान्तरात्मा चेति। (च० शा० ४। ४)

४. स (आत्मा) गर्भाशयमनुप्रविश्य शुक्रशोणिताभ्यां संयोग-मेत्य गर्भत्वेन जनयत्यात्मनात्मानम्, आत्मसंज्ञा हि गर्भे।

(च. शा. ३। १२)

५. क्षेत्रज्ञो वेदयिता स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोता रसयिता पुरुषः स्रष्टा गन्ता साक्षी धाता वक्ता यः कोऽसावित्येवमादिभिः पर्यायवाचकै-र्नामभिरभिधीयते दैवसंयोगादक्षयोऽव्ययोऽचिन्त्यो भूतात्मना सहान्वक्षं सत्त्वरजस्तमोभिर्दैवासुरैरपरैश्च भावैर्वायुनाभिप्रेर्यमाणो गर्भाशयमनु-प्रविश्यावतिष्ठते। (सुश्रुत, शा० ३। ३)

६. कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम्।
दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम्॥
मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्ग्याद्यङ्गविग्रहः।
नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥
चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः।
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे॥
(श्रीमद्भा० ३। ३१। २—४; गरुडपुराण सारोद्धार ६। ६—८)
आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः।
नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः॥
(श्रीमद्भा० ३। ३१। १०; गरुडपुराण सारोद्धार ६। १५)

'माताद्वारा भुक्त अन्न-पानादिसे बढ़ा है रस, रक्त आदि धातु जिसका, ऐसा प्राणी असम्मत अर्थात् जिससे दुर्गन्ध आती है, जिसमें जीवका सम्भव है ऐसे विष्ठा और मूत्रके गर्तमें सोता है । सुकुमार होनेके कारण गर्तमें होनेवाले भूखे कीड़ोंके काटे जानेपर प्रतिक्षण उस क्लेशसे पीड़ित हो मूर्च्छित हो जाता है । मातासे खाये हुए कड़ुए, तीक्ष्ण, लवणीय, रूखे और खट्टे आदि उल्बण पदार्थसे छुये जानेपर अङ्गोंमें वेदना होती है तथा जरायु और आँतके बन्धनमें पड़कर पीठ-ग्रीवाके लचकनेसे काँखमें सिर करके पिंजरेके पक्षीके समान अङ्गोंके चलानेमें असमर्थ हो जाता है । वहाँ दैवयोगसे सौ जन्मकी बात स्मरणकर दीर्घ श्वास लेता है । अतः कुछ भी सुख नहीं मिलता । संतप्त और भयभीत जीव धातुरूप सात बन्धनोंमें पड़कर तथा हाथ जोड़कर, जिसने इस उदरमें डाला है, उसकी दीन वचनोंसे स्तुति करता है ।'

यदि योनिसे छुटकारा हुआ तो आपके चरणों
करूँगा, जिससे संसारसे मुक्त हो जाऊँ । विष्ठा उ
कूपमें गिरा हुआ मैं बाहर निकलनेकी इच्छा क
जठराग्निसे दग्ध हो रहा हूँ, मुझे आप क
निकालेंगे ।'

जीवके इस करुणविलापको सुनकर सर्वान्त
उसपर अपनी अहैतुकी कृपा कर उसे उस नारकी
बाहर निकाल देते हैं और जब वह कर्म भोगकर ब

---

७. तत्र प्रथमे मासि कललं जायते; द्वितीये शीतोष्मानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां संघातो घनः सञ्जायते, यदि पिण्डः पुमान्, स्त्री चेत् पेशी, नपुंसकं चेदर्बुदमिति । तृतीये हस्तपादशिरसां पञ्चपिण्डका निर्वर्तन्तेऽङ्गप्रत्यङ्गविभागश्च सूक्ष्मो भवति । चतुर्थे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्तो भवति, गर्भहृदयप्रव्यक्तिभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति, कस्मात् ? तत्स्थानत्वात् । तस्माद्गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति ।

(सुश्रुत, शा० ३ । १४)

पञ्चमे मनः प्रतिबुद्धतरं भवति, षष्ठे बुद्धिः, सप्तमे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरः, अष्टमेऽस्थिरीभवत्योजः, तत्र जातश्चेन्न जीवेन्निरोजस्त्वाद् नैर्ऋतभागत्वाच्च, ततो बलिं मांसौदनमस्मै दापयेत् । नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिन् जायते, अतोऽन्यथा विकारी भवति ।

(सुश्रुत, शा० ३ । १६)

८. मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते ।
शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे ॥
कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिक्ष
मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मु
कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः ।
मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदन
उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृ
आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोध
अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव प
तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात् कर्म जन्मशतोद्भव
स्मरन् दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दे
नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलि
स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पित

(गरुडपुराण-सारोद्धार ६ । ९—१४; श्रीमद्भा० ३
५—९

९. श्रीपतिं जगदाधारमशुभक्षयकारक
व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम्
त्वन्मायामोहितो देहे तथा पुत्रकलत्रके
अहंममाभिमानेन गतोऽहं नाथ संसृतिम्
कृतं परिजनस्यार्थे मया कर्म शुभाशुभम्
एकाकी तेन दग्धोऽहं गतास्ते फलभागिनः
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत् स्मरिष्ये पदं तव
तमुपायं करिष्यामि येन मुक्तिं व्रजाम्यहम्
विण्मूत्रकूपे पतितो दग्धोऽहं जठराग्निना
इच्छन्नितो विवसितुं कदा निर्यास्यते बहिः

(गरुडपुराण-सारोद्धार ६ । १६-

है, तभी वैष्णवीमाया उस जीवको मोहित कर लेती है तथा वह मायासे लिप्त होकर परवश हुआ कुछ नहीं बोलता और संसारचक्रमें पुनः घूमने लगता है; किंतु पूर्वजन्मके प्रबल संस्कारसे यदि वह भगवद्भक्तिके सुमार्ग-पर लग जाता है तो प्राप्त-जन्ममें अपना उद्धार कर सकता है। अतः माता-पिताको चाहिये कि अपने बालकोंमें प्रारम्भसे ही इस प्रकारके जीवनोद्धारक संस्कार डालें, जिससे जीवका सर्वथा कल्याण हो सके।

उपर्युक्त गर्भवासका वर्णन आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें प्रकारान्तरसे इस प्रकार उपलब्ध होता है—

'गर्भकी स्वकीय प्यास और भूख नहीं होती। उसका जीवन पराधीन होता है अर्थात् माताके अधीन होता है। वह सत् और असत् (सूक्ष्म) अङ्गावयववाला गर्भ मातापर आश्रित रहता हुआ उपस्नेह (रिसकर आये रस) और उपस्वेद (उष्मा) से जीवित रहता है। जब अङ्गावयव व्यक्त हो जाते हैं—स्थूलरूपमें आ जाते हैं, तब कुछ तो लोमकूपके मार्गसे उपस्नेह होता है और कुछ नाभिनालके मार्गसे। गर्भकी नाभिपर नाड़ी लगी रहती है। नाड़ीके साथ अपरा जुड़ी रहती है और अपराका सम्बन्ध माताके हृदयके साथ रहता है। गर्भको माताका हृदय स्पन्दमान (बहती हुई) सिराओंद्वारा उस अपराको रस या रक्तसे भरपूर किये रहता है। वह रस गर्भको वर्ण एवं बल देनेवाला होता है। सब रसोंसे युक्त आहाररस माताके प्रत्येक भले-बुरे कर्मका परिणाम जैसे उसके शरीरपर होता है, वैसे ही गर्भके ऊपर भी होता है। माता जब श्वासोच्छ्वास करती है, तब उसके रक्तकी शुद्धि होती है; साथ-ही-साथ गर्भके रक्तकी भी शुद्धि होती है। माता जब सोती है तो उसके साथ-ही-साथ गर्भको आराम मिलता है। माता जब भोजन करती है, तब उसके शरीरके पोषणके साथ गर्भका भी पोषण होता है। माता जब संक्षुब्ध होती है, तब उसके शरीरपर जो परिणाम होता है, वही परिणाम गर्भपर भी होता है। संक्षेपमें माताके प्रत्येक कर्मके साथ-साथ गर्भ भी वही कर्म करता जान पड़ता है। वास्तवमें न गर्भ श्वास लेता है, न सोता है, न भोजन करता है, न क्रुद्ध होता है और न मल-मूत्रका त्याग ही स्वतन्त्रवृत्तिसे करता है।'

(सु० शा० २। ५२)

गर्भ पूर्णरूपसे मातृवृत्तिपर आश्रित रहता है। अतः माताको यह आदेश दिया गया है कि वह अच्छे प्रकारका भोजन (जो लवणीय, कडुए, तीक्ष्ण, खट्टे, उल्बण आदि पदार्थोंसे रहित हो) करे। शारीरिक परिश्रम अधिक न करे। मनको कष्ट देनेवाली बातोंका चिन्तन न करे। आराम करे। मलिन वस्त्र धारण न करे। ग्राम्य धर्म (मैथुन), गाड़ीकी सवारी आदि त्याग दे। शुद्ध सात्त्विक विचार करे, सात्त्विक वस्तु देखे, सात्त्विक बातें-कथाएँ सुने; तामसका सर्वथा त्याग

जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता

[पुनर्जन्म]

(लेखक—गुरु श्रीरामप्यारेजी अग्निहोत्री)

प्राणीमात्रके लिये स्वर ही जीवन है और स्वरावरोध ही मृत्यु है। जीवनमें जो कुछ होता है, वह संसारके लिये प्रत्यक्ष है। उसकी आलोचना, प्रत्यालोचना और समालोचना—दृश्य जगत्में सभी कुछ की जाती है; किंतु मृत्युके बाद क्या होता है, बहुत ही रहस्यात्मक है। तात्त्विकों एवं साधकोंने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणसे इसपर विचार किया है। मृत्यु अवश्य ही एक रहस्य है, जिसपर आजकलके विज्ञानका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। इसीसे भगवान्‌की अदृश्य शक्तिका अनुभव होता है।

स्वरोदयका प्रकरण शिशुकी गर्भावस्थासे प्रारम्भ होकर मृत्युपर्यन्त चलता है। जीवनमें स्वरकी प्रक्रियाओंका किस प्रकार समय-समयपर परिवर्तन होता है और फिर वही परिवर्तन स्वरावरोधमें किस प्रकार परिवर्तित होता है; यह भी परम गोपनीय विषय है, जिसके अध्ययन और मननकी प्रक्रियाएँ कौतूहल-सी प्रतीत होती हैं। स्त्री और पुरुषके स्वर-संगमके प्रभावसे पुत्र-पुत्रीका किस प्रकार जन्म होता है, यह एक अभ्यास और अनुभवका विषय है, जिसपर मानव कभी असफल नहीं होता।

माँके गर्भसे धरतीपर गिरते ही स्वरपरीक्षणकी आवश्यकता होती है। जिस समय शिशु-प्रसव होता है, माँ भी प्रसव-पीड़ासे कातर हो जाती है और बाहर निकलनेके प्रयत्नमें शिशु भी श्रमित हो जाता है। श्रमताके कारण माँ और शिशु दोनोंकी स्वर-प्रवाहिनी नलिकाएँ जोर-जोरसे स्फुरित होने लगती हैं। प्रसवके बाद लगभग एक घंटेतक माँ और शिशुके स्वर-प्रवाहमें अन्तर नहीं पड़ता। प्रसवके बाद यदि माँ और शिशु—दोनोंके चन्द्रस्वर प्रवाहित होते हों तो शिशु दीर्घजीवी होता है। साथ ही मेधावी और माता-पिताको सुख देनेवाला होता है। यदि दोनोंके सूर्यस्वर प्रवाहित होते हों तो बच्चा तेजस्वी, तपस्वी, परोपकारी और नेतृत्व-शक्तिवाला होता है। यदि माता और शिशु दोनोंके शिवस्वर प्रवाहित होते हों तो शिशु अल्पजीवी होता है और माता अधिक कष्टका अनुभव करती है। यदि माताका चन्द्रस्वर और शिशुका सूर्यस्वर प्रवाहित हो तो शिशु बड़ा होनेपर कुल-परम्पराके विपरीत कार्य करता है। साथ ही वह लम्पट-चोर आदि होता है। प्रसवकालमें यदि माताका सूर्यस्वर और शिशुका चन्द्रस्वर प्रवाहित हो तो शिशु महान् पराक्रमी होता है। बड़ा होनेपर वह विदेशोंकी भी यात्रा करता है।

यदि प्रसवकालमें माता और शिशु दोनोंके शिवस्वर चलते हों तो दोनोंका जीवन अत्यन्त संकटमय हो जाता है। इसमें या तो माताका स्वर्गवास हो जाता है या शिशुका और कभी-कभी दोनोंका। माताका शिवस्वर और शिशुका चन्द्रस्वर प्रवाहित होता हो तो शिशु कौमारावस्थामें स्वर्गवासी होकर अन्य योनियोंमें पुनर्जन्म ग्रहण करता है और यदि माताका शिवस्वर और शिशुका सूर्यस्वर चलता हो तो शिशु युवा अवस्था आते-आते स्वर्गवासी होकर पुनः मनुष्य-योनिमें पुनर्जन्म ग्रहण करता है और उसे अपने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहती है तथा उसका विकास कौमारावस्थासे ही होने लगता है। यह स्मृति ज्यादा-से-ज्यादा बीस वर्षोंतक रहती है। बीस वर्ष पहुँचते-पहुँचते या तो वह स्वर्गवासी हो जाता है या उसकी पूर्वजन्मकी स्मृति नष्ट हो जाती है। वैवाहिक सम्बन्ध हो जानेपर भी स्मृति जाती रहती है।

'नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्।'

(गीता ५। १३)

शरीर नौ द्वारोंवाला होता है। नौ द्वारोंमें दो आँख, दो कान, दो नासिकाछिद्र, मुख, गुदा और लिङ्गद्वार होते हैं। इनसे अंदरकी वस्तुएँ बाहर निकलती हैं। केवल मुख ही एक ऐसा द्वार है जिससे स्वाभाविक रूपसे बाहरकी वस्तु (खाद्य-पेय-पदार्थ) अंदर जाती है। प्राणवायु अन्तिम समयमें इन्हीं किसी एक द्वारसे बाहर निकलती है और शरीर निष्प्राण हो जाता है। अन्त समयमें प्राणवायु जिस द्वारपर अवरुद्ध हो जाती है, उसी द्वारसे बाहर भी निकलती है। कभी-कभी अन्तिम समयमें प्राणवायु नवों द्वारोंसे हटकर ब्रह्माण्डमें स्थित हो जाती है और ब्रह्माण्डको फोड़कर बाहर निकलती है। ऐसा साधकों, तपस्वियोंको ही सुलभ होता है। प्राणवायु जब ऊर्ध्ववायुका रूप ग्रहणकर शरीरसे निकलती

है, तब उसका पुनर्जन्म चेतन प्राणीकी योनिमें होता है और जब प्राणवायु अधोवायुका रूप ग्रहणकर शरीरका परित्याग ती है, तब उसका पुनर्जन्म नीची योनिमें होता है। तामें भगवान् श्रीकृष्णने पुनर्जन्मपर बहुत कुछ कहा है।

भगवान्के कथनसे पुनर्जन्मका होना निर्विवाद सिद्ध है तु कुछ ऐसी अवस्थाएँ अवश्य होती हैं, जब कि मनुष्यका नर्जन्म नहीं होता। इसके लिये ब्रह्मप्राप्तिका साधन ही वश्रेष्ठ है। मस्तिष्कमें रमी हुई प्राणवायु जब नेत्रमार्गसे हर निकलती है, तब उसका पुनर्जन्म मनुष्ययोनिमें ही ोता है और उसकी पूर्वस्मृति बराबर जाग्रत् रहती है। जेस नेत्रसे प्राणवायुका बहिर्गमन होता है, वह नेत्र कुछ अधिक बड़ा और विस्फारित-सा हो जाता है। इसी तरह जेस नासिका-छिद्रसे प्राणवायु बाहर निकलती है। उसी ओर नाक टेढ़ी हो जाती है। मुखसे प्राणवायु निकलनेपर मुख एकदम फटकर भयावना हो जाता है। जिस कर्ण-मार्गसे प्राणवायु शरीरसे बाहर निकलती है, वह कान दूसरेकी अपेक्षा शीघ्र ही जड और टेढ़ा हो जाता है। मल और मूत्रद्वारसे प्राणवायुके गमन करनेपर मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रियकी भी यही दशा हो जाती है, किंतु जब ब्रह्माण्ड फोड़कर प्राणवायुका गमन होता है, तब मृतककी बड़ी ही आकर्षक आकृति हो जाती है। उसकी सौम्यावस्था सुप्तावस्था-सी प्रतीत होती है। ऐसा सौभाग्य ज्ञानियों, भक्तों और महात्माओंको ही प्राप्त होता है। ऐसे प्राणीका पुनर्जन्म नहीं होता।

'विराट् पुराण'में चौरासी लाख योनियोंका वर्णन आया है। वहाँ सत्रज, अयुज, जरायुज और उदरवीर्य योनि—श्रेणियोंमें विभाजित कर हर-एककी संख्या इक्कीस लाख निरूपित की गयी है। सत्रज योनिमें ताराओंकी संख्या नौ लाख, मेघ चार लाख और पहाड़ आठ लाख वर्णन किये गये हैं। अयुज योनिमें नाग नौ लाख, जलचर प्राणी चार लाख और पक्षी आठ लाख तथा जरायुज योनिमें दोपदे नौ लाख, चौपदे चार लाख और कीड़े-मकोड़े आठ लाख परिगणित किये गये हैं। उदरवीर्य योनिमें निर्गन्ध पौधे नौ लाख, सुगन्ध चार लाख और कन्द-मूल आठ लाखकी संख्यामें निरूपित किये गये हैं, जिनका बहुत बड़ा विश्लेषण है। किसी-किसीने चौरासी लाख योनियोंको सोलह लाख सत्त्वगुणी, बत्तीस लाख रजोगुणी और छत्तीस लाख तमोगुणी बतलाया है। और भी कई प्रकारसे ८४ लाखका वर्णन मिलता है। वास्तवमें जीव-योनि एक रहस्यात्मक विषय है और इसका सम्बन्ध पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मसे है। पुनर्जन्मका विषय भी असाधारण है।

स्वरोदयका ज्ञान दर्पणकी भाँति स्वच्छ और निर्मल है। सांसारिक प्राणियोंका पुनर्जन्म अवश्य होता है, यह विषय भी निर्विवाद है; किंतु किस योनिमें पुनर्जन्म होता है, इसका ज्ञान स्वरोदयसे प्राप्त किया जा सकता है। नासिका-छिद्रोंसे प्राणवायु चन्द्रस्वर, सूर्यस्वर और शिवस्वरके माध्यमसे बाहर निकलती है। इन स्वरोंमें अग्नि अथवा वायुतत्त्व मिले होनेसे प्राणवायु ऊर्ध्व श्वासका रूप ग्रहण करती है। अग्नितत्त्वसे संयुक्त यदि प्राणवायु चन्द्रस्वरके मार्गसे प्रयाण करती है तो जीवको प्रेत-योनि प्राप्त होती है और यदि सूर्यस्वरके मार्गसे प्राणवायुका निष्क्रमण होता है तो भी जीवको विकृत योनि यानी भूत-पिशाचकी योनि ही प्राप्त होती है। वायुतत्त्वसे मिश्रित प्राणवायुके निकलनेपर जीवको अल्पायु योनि मिलती है; कीड़े-पतंगों आदि वायुमें उड़नेवाले प्राणियोंमें जीवका पुनर्जन्म होता है। जलतत्त्वसे युक्त प्राणवायुके प्रयाण करनेपर जलचर जीवधारियोंमें जीवका पुनर्जन्म होता है। पृथ्वीतत्त्वसे मिली हुई यदि प्राणवायु चन्द्र-स्वरके मार्गसे शरीरका परित्याग करती है तो मनुष्य-योनिमें ही पुनर्जन्म प्राप्त होता है और जीवको अपनी पूर्व-स्मृति बनी रहती है; किंतु यदि प्राणवायु पृथ्वीतत्त्वसे युक्त सूर्यस्वरके मार्गसे प्रयाण करती है तो जीवको पशुयोनिमें जाना पड़ता है। इसी प्रकार आकाश-तत्त्वसे मिश्रित प्राणवायुके गमन करनेपर या तो पुनर्जन्म होता ही नहीं और यदि होता है तो वह गर्भावस्थामें ही विनष्ट हो जाता है।

इस तरह स्वरोदयके माध्यमसे प्राणवायुके निष्क्रमणके सूक्ष्मातिसूक्ष्म सिद्धान्त हैं, जिनसे जीवके पुनर्जन्मका रहस्य स्पष्ट होता है। जिस प्रकार मनुष्ययोनिमें पुनर्जन्म प्राप्त होनेपर कभी-कभी प्रारब्धवश पुनर्जन्मकी स्मृति बनी रहती है, उसी प्रकार प्राणवायुके शरीर परित्याग करनेके पहले भावी योनिका भी ज्ञान किसी-किसी जीवको हो जाता है और यदि स्वस्थावस्थामें प्राणवायुके निकलनेका समय निकट आ जाता है तो मनुष्य भावी योनिका पूरा वृत्तान्त भी स्पष्ट कर देता है। इस तरह पुनर्जन्म बड़ा ही गोपनीय और रहस्यात्मक विषय है, जिसका ज्ञान

अथवा पूर्वजन्मके कर्म माने गये हैं, उसीके अनुसार 'त्रिजग' योनियोंमें मानव जन्म ग्रहण अथवा धारण करता है। इस तथ्यपर स्वयं तुलसी तथा अन्य संत कवि भी प्रत्यय रखते हैं। कर्मोंके अनुसार जीव चेतन ही नहीं, अपितु जड शरीर भी धारण करता है। कविवर संत 'रसखान'का प्रसिद्ध सवैया इस तथ्यका स्वयं उद्‌घाटक है—

मानुष हौं तो वही 'रसखान' बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन।
जौ पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंदकी धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल कदंब की डारन॥

तुलसीने बड़े स्पष्ट शब्दोंमें भगवान् श्रीरामकी अनवरत भक्तिकी स्पृहा करते हुए बालिके शब्दोंमें प्रभुसे निवेदन करवाया है—

'जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ।'
(मानस ४।९।२ छं०)

जीव अपने कर्मोंके अनुसार श्रेष्ठ एवं अधम योनियोंमें संचरण करता रहता है। उससे उद्धारका एकमात्र उपाय है—अपने सहज स्वरूपका बोध, और इसीके हेतु साधक संतोंने उत्क्रान्तिके अनेक उपाय बताये हैं—जिनमें ज्ञान, निष्काम कर्म, योग और सर्वसुलभ भक्ति है।

'मानस'के अन्तर्गत भिन्न जन्मोंकी प्राप्तिका कारण जीव अथवा साधककी तपश्चर्याजनित सहज अभिलाषा भी है। मनु और शतरूपाने अपनी कठोर तपस्याके फलस्वरूप एक कल्पमें दशरथ और कौसल्याके रूपमें जन्म लिया था। इसी प्रकार कश्यप और अदितिने भी अन्य कल्पमें दशरथ एवं कौसल्याके रूपमें जन्म लेकर भगवान् रामके माता-

शापित जीवको ही नहीं, अपितु देवता, गन्धर्व, नाग, किन्नर ही क्या, स्वयं ब्रह्मको भी करनी पड़ती है। नारदके शापवश परब्रह्म भगवान् रामने नर-शरीर धारण किया एवं प्रिया-वियोगको सहन किया। यह बात और है कि इस प्रकार उन्होंने भू-भार-हरणकी लीला भी की। इसी संदर्भमें शंकरके गणोंको भी रावण एवं कुम्भकर्णके रूपमें जन्म लेना पड़ा।—

होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहिं सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥
(मानस १।१३५)

अगस्त्य मुनिके शापवश रावणके राक्षस दूत शुकके विषयमें स्पष्टतया यह तथ्य प्रकाशित किया गया है कि वह शापवश ही, ज्ञानी मुनिसे निशिचर रूपको प्राप्त हो गया था—

'रिषि अगस्ति की साप भवानी। राच्छस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥'
(मानस ५।५६।६)

कभी-कभी तो संगतिवश भी परिजनोंको अभिशापोंके कारण दुष्ट जन्मोंकी प्राप्ति होती दिखायी गयी है। परम प्रतापी नरेश प्रतापभानुके विप्रोंद्वारा अभिशापित होनेपर उसके भाई, संगी, परिजन एवं सेना सभीको राक्षसरूपमें जन्म लेना पड़ा। गोस्वामीजीने इन पंक्तियोंमें यही तथ्य दर्शाया है—

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुज दंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर [illegible]

हो साधनारत रहते हैं। जीवकी परमगति है—अपने प्रकृत रूपको प्राप्त करना। उसका प्रकृतरूप है—परमात्मा। जीव परमात्माका रूप है। वह वस्तुतः परमात्मा है—'तत्त्वमसि' 'सोऽहं' 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि महावाक्य इसी तथ्यके उद्घोषक हैं। गोस्वामीजीने जीवको—

'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'
(७।११६।१)

—बताते हुए उसे मायाके कारण भव-पाश-बद्धतासे मुक्ति हेतु शास्त्रविहित ज्ञानयोगकी अपेक्षा भक्ति-पथको सहज निर्दिष्ट किया है—

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥
(मानस ७।११८।२)

गोस्वामीजीने 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'के सिद्धान्तानुसार—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहि होइ जाई॥

सदृश कथनोंके द्वारा जीवकी ऐहिकसे आमुष्मिक गतिका निरूपण स्पष्टतः किया है। उन्होंने तपश्चर्या एवं भगवत्प्रेमके फलस्वरूप सायुज्य, सालोक्य, सामीप्य आदि पारलौकिक मुक्ति-स्थितियोंपर भी अनेक स्थलोंपर प्रकाश डालते हुए 'मानस'के अनेक सच्चरित्रोंको उस मुक्ति-गतिको पाते हुए दिखाया है। गीधराज जटायु एवं स्वयं राजा दशरथकी मुक्ति इसके प्रमुख उदाहरणके रूपमें ली जा सकती है।

गोस्वामीजीके मतमें जीवने विशेषरूपसे मानवशरीर इसीलिये प्राप्त किया है कि वह हरि-पद-अनुरागमें लीन रहकर सदा लोकरञ्जन करे, लोकसेवामें रत रहे। वह 'निषेध'से परे 'विधि'में निरत रहे। गोस्वामीजीने स्वयं रामके द्वारा बड़े सुष्ठु ढंगसे इस तथ्यको दृष्टिमें रखते हुए उपदेश करवाया है। रामका निम्नलिखित कथन इस दृष्टिसे द्रष्टव्य है—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि ग
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँ
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥
एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुख
(मानस ७।४२।४; ४३

महात्मा तुलसीदासने परलोकप्राप्तिका उत्क स्वर्ग-प्राप्ति नहीं स्वीकार किया है, अपितु उन्होंने सत्य ब्रह्म रामकी प्रीतिकी ही जन्म-जन्म वाञ्छा की है—उन्हें पुरुषार्थोंसे कोई हेतु नहीं, भरतसदृश परम भाग शब्दोंमें बारंबार यही निवेदन किया है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।
(मानस २।२

तुलसीको जीवनमें मुक्तिकी स्थिति राम-पद-प्री दृष्टिगत होती है। जीवकी परलोकवत् मुक्तिकी स्थिति है कि जब वह 'बिस्व रूप रघुबंस मनि' का सेवक उसके रूपमें आभासित इस जगत्की सेवामें लीन हनुमान्-सदृश सुजान सेवकको राम यही उपदेश देते हैं

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।
(मानस ४

इस प्रकार 'मानस'में बड़े ही विशद, गम्भीर, [illegible] कारी एवं सत्य स्थितिसे पुनर्जन्म एवं परलोककी [illegible] दृढ़ प्रत्यय रखते हुए जीवकी परम-लब्धि, उत्क्रान्ति एवं जीवन्मुक्त गतिकी प्राप्तिके उपायका सहज [illegible] किया गया है। यह निरूपण प्रत्येक देश-कालके [illegible] शाश्वतरूपमें उपयोगी एवं कल्याणकर है।

भगवान्से हीन जीवन जल जाय

गज बाजि घटा, भले भूरि भटा, बनिता, सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी, धनु, धाम, सरीरु भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै॥
सब फोकट साटक है तुलसी, अपनो न कछू सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवनु जानकीनाथ! जियै जगमें तुम्हरो बिनु ह्वै॥

—तुलसीदासजी

महाकवि कालिदासके काव्योंमें जन्मान्तर-दर्शन

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

'नानृषिः कुरुते काव्यम्।' (देवीभागवत ६ । १० । २३) —के अनुसार कविकुलगुरु कालिदास परमर्षि ही थे। उनके चरित्रको अन्तःसाक्ष्यके आधारपर कसनेपर वे परमर्षि ही ठहरते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीपर उनकी पूरी छाप है। गोस्वामीजीका 'पार्वती-मंगल' तो 'कुमारसम्भव' का अनुवाद है ही, मानसपर भी रघुवंशादिकी छाया है। कालिदास भी शिवपुराण-पद्मपुराणसे अत्यन्त प्रभावित हैं। अस्तु,

उन्होंने प्राक्तन संस्कार तथा सर्वसाधारणमें भी जन्मान्तरकी पहचानकी बात निज अनुभवपर ही लिखी है। वे अज तथा इन्दुमतीके सम्बन्धमें सर्वसाधारणकी धारणा व्यक्त करते हुए लिखते हैं—'मानो पूर्वकी रति अब 'अज'रूपी कामदेवको पहचानकर उनके अनुरूप बन गयी। मन जन्मान्तरकी संगतियोंको अवश्य जानता है'[1]—

गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्।
(रघुवंश ७ । १५)

इस कथनसे उनकी निरभिमानिता भी प्रकट है। वे सभी वेद-पुराण, व्याकरण, छन्द, काव्य, साहित्य, ज्यौतिष, आयुर्वेदादिके साथ दर्शनमें भी पूर्ण निष्णात थे; फिर भी लेशमात्र अहंकार नहीं, प्रत्युत विनय ही प्रकट है। गोस्वामी तुलसीदासजी इसके पूर्वके श्लोक तथा इसकी छाया लेकर श्रीसीतारामके पुष्पवाटिकादि प्रसङ्गपर लिखते हैं—

तात जनकतनया यह सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई॥
× × × × × ×
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सब कारन जानु बिधाता। × × ×
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥
× × × । नहि पावहिं परतिय मनु डीठी॥
इत्यादि (मानस १ । २३० । १–४)

रघुवंश १ । २० में वे रघुके बारेमें लिखते हैं कि 'प्राक्तन-संस्कारकी तरह उनके कार्योंका पता पहले नहीं, फल मिलनेपर ही लगता था।' (इससे सिद्ध है कि सभी गुण-परिणामादि फल प्राक्तन-संस्कारोंके ही परिणाम हैं)—

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव॥
(रघुवंश १ । २०)

'शाकुन्तल' (५।२) में लिखते हैं कि 'रमणीय पदार्थोंको देख तथा मधुर ध्वनियोंको सुनकर भी जो सुखी मनुष्य कभी-कभी पर्युत्सुक—उदास-सा दीखता है, उस समय निश्चय ही उसका मन पूर्वजन्मके स्थिर प्रेमसम्बन्धोंका स्मरण करता रहता है, यद्यपि वह उसे स्पष्ट नहीं प्रतीत होता[2]।'

इसी तरह उन्होंने अन्यत्र भी जन्मान्तर-सम्बन्धोंकी बहुत-सी बातें लिखी हैं। विस्तारभयसे यहाँ विचार नहीं किया जाता।

---

१. महाभारत १ । १९० । १३ में भी ऐसा ही प्रसङ्ग है—
तेषां तु द्रौपदीं दृष्ट्वा सर्वेषाममितौजसाम्। सम्प्रमथ्येन्द्रियग्रामं प्रादुरासीन्मनोभवः॥
कालिकापुराणमें वसिष्ठ-अरुन्धती-विवाहका प्रसङ्ग भी ऐसा ही है।

२. रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान् पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि॥

श्राद्ध-तत्त्व-प्रश्नोत्तरी

(लेखक—श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

प्रश्न—श्राद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—श्रद्धासे किया जानेवाला वह कार्य, जो पितरोंके निमित्त किया जाता है, श्राद्ध कहलाता है ।

प्रश्न—कई लोग कहते हैं कि श्राद्धकर्म असत्य है और इसे ब्राह्मणोंने ही अपने लेने-खानेके लिये बनाया है । इस विषयपर आपका क्या विचार है ?

उत्तर—श्राद्धकर्म पूर्णरूपेण आवश्यक कर्म है और शास्त्रसम्मत है । हाँ, वर्तमानकालमें लोगोंमें ऐसी रीति ही चल पड़ी है कि जिस बातको वे समझ जायँ,—वह तो उनके लिये सत्य है; परंतु जो विषय उनकी समझके बाहर हो, उसे वे गलत कहने लगते हैं ।

कलिकालके लोग प्रायः स्वार्थी हैं । उन्हें दूसरेका सुखी होना सुहाता नहीं । स्वयं तो मित्रोंके बड़े-बड़े भोज-निमन्त्रण स्वीकार करते हैं, मित्रोंको अपने घर भोजनके लिये निमन्त्रित करते हैं, रात-दिन निरर्थक व्ययमें आनन्द मनाते हैं; परंतु श्राद्धकर्ममें एक ब्राह्मण (जो हमसे बड़ी जातिका है और पूजनीय है) को भोजन करानेमें भार अनुभव करते हैं । जिन माता-पिताकी जीवनभर सेवा करके भी ऋण नहीं चुकाया जा सकता, उनके पीछे भी उनके लिये श्राद्धकर्म करते रहना आवश्यक है ।

प्रश्न—श्राद्ध करनेसे क्या लाभ होता है ?

उत्तर—मनुष्यमात्रके लिये शास्त्रोंमें देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण—ये तीन ऋण बताये गये हैं । इनमें श्राद्धके द्वारा पितृ-ऋण उतारा जाता है ।

विष्णुपुराणमें कहा गया है कि 'श्राद्धसे तृप्त होकर पितृगण समस्त कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं ।' (३ । १५ । ५१) इसके अतिरिक्त श्राद्धकर्त्ता पुरुषसे विश्वेदेवगण, पितृगण, मातामह तथा कुटुम्बीजन—सभी संतुष्ट रहते हैं । (३ । १५ । ५४) पितृपक्ष (आश्विनका कृष्णपक्ष) में तो पितृगण स्वयं श्राद्ध ग्रहण करने आते हैं तथा श्राद्ध मिलनेपर प्रसन्न होते हैं और न मिलनेपर निराश हो शाप देकर लौट जाते हैं । विष्णुपुराणमें पितृगण कहते हैं—'हमारे कुलमें क्या कोई ऐसा बुद्धिमान् धन्य पुरुष उत्पन्न होगा, जो धनके त्यागकर हमारे लिये पिण्डदान करेगा ।' (३ । १४ ।

विष्णुपुराणमें श्राद्धकर्मके सरल-से-सरल उपाय गये हैं । अतः इतनी सरलतासे होनेवाले कार्यको नहीं चाहिये ।

प्रश्न—पितरोंको श्राद्ध कैसे प्राप्त होता है ?

उत्तर—यदि हम चिट्ठीपर नाम-पता लिखकर बक्समें डाल दें तो वह अभीष्ट पुरुषको, वह जहाँ अवश्य मिल जायगी । इसी प्रकार जिनका नामो किया गया है, उन पितरोंको, वे जिस योनिमें श्राद्ध प्राप्त हो जाता है । जिस प्रकार सभी पत्र पह डाकघरमें एकत्रित होते हैं और फिर उनका अलग विभाग होकर उन्हें अभीष्ट स्थानोंमें पहुँचाया ज उसी प्रकार अर्पित पदार्थका सूक्ष्म अंश सूर्य-रश्मियोंके सूर्यलोकमें पहुँचता है और वहाँसे बँटवारा होता अभीष्ट पितरोंको प्राप्त होता है ।

पितृपक्षमें विद्वान् ब्राह्मणोंके द्वारा आवाहन जानेपर पितृगण स्वयं उनके शरीरमें सूक्ष्मरूपसे जाते हैं । अन्नका स्थूल अंश ब्राह्मण खाता है और अंशको पितर ग्रहण करते हैं ।

प्रश्न—यदि पितर पशु-योनिमें हों, तो उन्हें योनिके योग्य आहार हमारे द्वारा कैसे प्राप्त होगा ?

उत्तर—विदेशमें हम जितने रुपये उतने ही रुपयोंका डालर आदि (देशके विभिन्न सिक्के) होकर अभीष्ट व्यक्तिको प्राप्त हैं । उसी प्रकार श्रद्धापूर्वक अर्पित अन्न पितृगणको, आहारके योग्य होते हैं, वैसा ही होकर उन्हें मिलता

प्रश्न—यदि पितर परमधाममें हों, जहाँ आन आनन्द है, वहाँ तो उन्हें किसी वस्तुकी भी आवश्य नहीं है । फिर उनके लिये किया गया श्राद्ध क्या चला जायगा ?

उत्तर—नहीं । जैसे, हम दूसरे शहरमें अभीष्ट व्य कुछ रुपये भेजते हैं, परंतु रुपये वहाँ पहुँचनेपर पता

कि अभीष्ट व्यक्ति तो मर चुका है, तब वह रुपये हमारे ही नाम होकर हमें ही मिल जायँगे।

ऐसे ही परमधामवासी पितरोंके निमित्त किया गया श्राद्ध पुण्यरूपसे हमें ही मिल जायगा। अतः हमारा लाभ तो सब प्रकारसे ही होगा।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !

श्राद्ध-तर्पणका रहस्य तथा आवश्यकता एवं श्राद्ध-तर्पणकी वैज्ञानिकता

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश')

हमारा सनातनधर्म पूर्ण सहिष्णु तथा विश्वहितकर है। इतना उदार कोई भी अन्य धर्म विश्वभरमें कहीं नहीं है। यह इसकी महान् विशेषता है। यहाँतक कि वर्षभरमें एक सम्पूर्ण पक्ष पूज्य पितरों आदिके प्रति शास्त्रीय कर्मादिद्वारा अपनी श्रद्धा-निष्ठादिको प्रकट करनेके लिये नियत है। कितना सुन्दर एवं सामयिक विधान है ? 'श्राद्ध' शब्दका श्रद्धासे पूर्ण सम्बन्ध है और इसी विशिष्टताको वह चरितार्थ करता है। प्रसिद्ध मुगल बादशाह शाहजहाँने भी धर्मके इस आचरणकी महत्ता स्वीकार कर उसकी सराहना की थी। बंदी बनाये जानेके पश्चात् जब औरंगजेबने उसके जमुना-जल पीनेपर पाबंदी लगा दी तो उसने एक फारसी शेर लिखकर औरंगजेबकी भर्त्सना इस प्रकार की कि 'हिंदू लोग प्रशंसाके योग्य हैं, जो अपने दिवंगत पितरोंको भी पानी पिलाते हैं और एक तू ऐसा मुसल्मान है, जो अपने बूढ़े जिन्दे बापको पानीके लिये इस प्रकार तरसाता है।' शाहजहाँकी इस वाणीमें कितनी मार्मिकता थी, जो औरंगजेबके हृदयमें तीरकी तरह चुभी। बात ही कुछ ऐसी थी।

'श्राद्ध' शब्द तो पारिभाषिक होता है। इसमें श्रद्धाका मधुर भाव निहित रहता है। अपने जिन पिता आदिसे हमें शरीर प्राप्त हुआ, हमारा लालन-पालन हुआ, यदि उनके नामसे हम एक विशेष पात्रका सत्कार न करें, तो यह हमारी कृतघ्नता होगी। उनके नामसे दान करनेपर परलोकगत उनका आत्मा तृप्त हो जाता है, शान्तिको प्राप्त होता है और उन्नति पाता है। श्राद्धानुष्ठानके यथावत् होनेपर प्रेतयोनि-प्राप्तका प्रेतत्व हट जाया करता है। पिण्डदानसे कष्ट-मुक्ति हो जाया करती है। जैसे हजारों कोसका शब्द रेडियोद्वारा तत्क्षण सर्वत्र प्राप्त हो जाता है, वैसे ही मनःसंकल्पद्वारा विधि एवं श्रद्धापूर्वक की हुई श्राद्ध आदि क्रियाएँ भी चन्द्रलोकस्थित पितरोंको प्राप्त होकर उन्हें प्रसन्न कर दिया करती हैं। चन्द्रमा मनका अधिष्ठाता है। वह हमारी मनमें संकल्पसे की हुई क्रियाको नित्य पितरोंके द्वारा सूक्ष्मतासे अपने लोकमें खींचकर हमारे पितरोंको तृप्त कर दिया करता है। मनद्वारा दिये हुए अन्न वा जलको वह सूक्ष्मरूपसे आकृष्ट करता है। श्राद्ध पिता, पितामह, प्रपितामह—इन तीन पुरुषोंका होता है। श्राद्धमें सदाचारी, तपस्वी, विद्वान,

पड़ता है। तब जितने सूक्ष्म-शरीरयुक्त जीव चन्द्रलोकके ऊपरी भागमें स्थित पितृलोकमें जानेके लिये बहुत समयसे चल रहे होते हैं, या चल पड़े होते हैं, उनका उद्देश्य करके उनके सम्बन्धियोंके द्वारा प्रदत्त पिण्ड अपने अन्तर्गत सोमके अंशसे उन जीवोंको आप्यायित करके, उनमें विशिष्ट शक्ति उत्पन्न करके, उन्हें शीघ्र और अनायास ही, अर्थात् बिना अपनी सहायताके ही पितृलोकमें प्राप्त करा दिया करते हैं। तब वे पितर भी उनकी ऐसी सहायता पाकर उन्हें हृदयसे समृद्धि तथा वंशवृद्धिका आशीर्वाद देते हैं।

जो जीव पितृलोकको प्राप्त हो जाते हैं, उनके लिये प्रदान किये हुए पिण्डों या ब्राह्मण-भोजनके सूक्ष्मांश उनके पास पहुँचकर उनको आप्यायित करते हैं, जिनसे वे सुख प्राप्तकर पिण्डदाता तथा श्राद्धकर्ता पुत्रों आदिको आशीर्वाद देते हैं। प्रतिवर्ष क्षयाहके मास एवं तिथिमें जो श्राद्ध किया जाता है, उसमें कारण यह है कि तिथि होती है चन्द्रमासके तथा चन्द्रगतिके अनुसार। उसमें चन्द्रलोकमें वे पितर उसी मार्ग वा स्थानमें स्थित होते हैं, जब वे मरकर उसी तिथिमें उस मार्ग या स्थानको प्राप्त हुए थे। तब वे सूक्ष्माग्निसे प्राप्त कराये हुए उस श्राद्धके सूक्ष्मांशको अनायास प्राप्त कर लेते हैं। इसीलिये याज्ञवल्क्यस्मृतिमें कहा है—

मृतेऽहनि प्रकर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्।
प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि॥

(आचाराध्याय—श्राद्धप्रकरण २५६)

'वर्षे वर्षे मृततिथौ श्राद्धं कुर्यात्'

(बोधायनीय-पितृमेधशेष सूत्र खण्ड ३)

अब इसमें किये जानेवाले कर्तव्यकी विज्ञानपूर्णता देखिये।

श्राद्धके समय पृथ्वीपर कुश रक्खे जाते हैं और कुशोंपर यव-अक्षत आदिके पिण्ड रक्खे जाते हैं। पिण्डोंमें जौ, तिल, दूध, मधु और तुलसीपत्र आदि डाले जाते हैं। तब श्राद्धकर्ता नित्य पितरोंका, यम और परमेश्वरका ध्यान करता है एवं आचार्य वेदमन्त्रोंका गम्भीर स्वरसे उच्चारण करता है। इसपर यह जानना चाहिये कि चावलोंमें ठंडी बिजली और जवोंमें भी ठंडी बिजली होती है। तिलोंमें गरम बिजली और दूधमें भी गरम बिजली होती है। तुलसीपत्रमें दोनों प्रकारकी विद्युत् होती साधारण मनुष्य जब साधारण वचन बोलता है, तो शरीरसे न्यून विद्युत् उत्पन्न होती है; पर जब कोई वे कर्मकाण्डी तथा ज्ञानी विद्वान् नियत पद-प्रयोगपरिपा तथा नियत आनुपूर्वीवाले पितृगणोंसे सम्बद्ध वेदम पढ़ता है, तब नाभिचक्रसे समुत्थित वायु पु शरीरमें उष्ण-विद्युत् उत्पन्न करके उसे शरीरसे निकालता है। इधर वेदके शब्दोंके द्वारा विद्वान् ब्रा शरीरसे अलौकिक वैदिक क्रियासिद्ध विद्युत् भी नि प्रवेश करती है।

इस प्रकार बिजलियोंके समूह हो जानेपर मधुकी उनका मिश्रण करनेवाली बनती है। विद्युत् चावल, जौ, दूध, तिल, तुलसीपत्र तथा वेदम विद्युतोंको मिलाकर एक साथ कर देती है। नीचे इस कारण रक्खे जाते हैं कि पिण्डोंसे उत्पन्न पृथ्वीमें संक्रान्त न हो जाय। कुशाएँ पिण्डोंकी वि पृथ्वीमें नहीं जाने देतीं। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने समय ध्यानकर्ताकी विद्युत्की रक्षाके लिये 'चैलाजिनकुशो (६ । ११)—कुशाका आसन ऊपर रखनेका आदेश है। मधुने मिलकर जो अलौकिक विद्युत् पैदा की थ श्राद्धकर्ताकी मानसिक शक्तिद्वारा उधर ही जात जिधर उसका मन जाता है और मन नित्य-पित अपने पितरों तथा यम एवं परमेश्वरके ध्यानमें लगा है। तब वह बिजली भी इनके पास चमकती है यम या नित्य-पितर सर्वज्ञ होनेसे श्राद्धकर्ताके पुत्र अ किये हुए श्राद्धके ब्राह्मणकी वैश्वानर-अग्निसे सू अन्नको मृत पितरोंके पास तदनुकूल करके भेज देते हैं वे पितृलोकमें हों या अन्य लोकमें अथवा किसी योनिमें हों।

कोई यह शङ्का करे कि 'मृतक प्राणी श्राद्धके पावेगा, जब कि जीवित भी दूसरेसे खाये हुएको पा सकता?' तो इसपर सभीको यह जानना चाहि तर्पणके जल या श्राद्धके अन्नको जीवित पुरु शरीरमूलक अशक्तिके कारण नहीं खींच सकता, पर तो सूक्ष्म पितृशरीरको प्राप्त करके आकाशमें सूक्ष्मता हुए उसको खींच सकता है। इसके उदाहरणमें रे ले लीजिये। जिसके पास यह यन्त्र होता है

इंग्लैंड, जर्मनी, रूस, अमेरिका आदि देशोंमें उसी समय हो रहे हुए शब्दोंको खींच सकता है; परंतु जिसके पास वह यन्त्र नहीं है, वह लंदन आदिमें तो क्या, भारतमें भी हो रहे हुए कुछ दूरके भी शब्दोंको खींच नहीं सकता। इसी प्रकार जीवितोंके पास दूसरेसे दिये हुए श्राद्ध-तर्पणके आकाशस्थ रसको खींचनेकी शक्ति नहीं होती, परंतु मृतकोंके पितृलोकमें जानेसे उनके पास वह शक्ति सूक्ष्मतावश अनायास उपस्थित हो जाती है। स्थूलशरीरमें तो वह शक्ति नहीं रहती, परंतु सूक्ष्मशरीरमें वह रहती है, इसीलिये युधिष्ठिर स्थूलशरीरके साथ स्वर्ग-लोकमें विलम्बसे प्राप्त हुए। परंतु भीम-अर्जुन आदि मर जानेके कारण स्थूल शरीरके त्यागके कारण युधिष्ठिरसे पूर्व ही प्राप्त हो गये—यह महाभारतमें स्पष्ट है। स्थूल बीजमें वृक्षोत्पादन-शक्ति नहीं होती, जब वह पृथ्वीमें बोया जाकर मर जाता है, तब उसमें सूक्ष्मता आ जानेसे वह शक्ति प्राप्त हो जाती है। यह स्थूल तथा सूक्ष्म शक्तिका अन्तर है।

इस प्रकार स्थूलशरीरके नाश होनेपर प्राप्त हुए देव-पितृ आदिके शरीरमें तो वह शक्ति हुआ करती है। जैसे हम होम करें, तो उसके अग्निद्वारा आकाशमें पहुँचाये हुए सूक्ष्म अंशको सूर्य आदि देव खींच सकते हैं, वैसे ही हमसे किये श्राद्धादिके ब्राह्मणकी अग्नि और महाग्निद्वारा आकाशमें प्राप्त हुए सूक्ष्म अंशको चन्द्रलोकस्थित पितर यन्त्रस्थानीय अपनी शक्तिके आश्रयसे खींच सकते हैं।

आधुनिक विज्ञान भी आधार एवं माध्यमको पूर्णतया मानता है। टेलीपैथीमें यह विज्ञान नहीं तो और क्या इस शास्त्रीय विज्ञानका प्रत्यक्ष चमत्कार हमें उस देखनेका अवसर मिला, जब कई वर्ष पहले विन्ध्याचल सिद्ध महात्मा पधारे थे। उनमें यह चमत्कार या देवी थी कि वे साँपके काटे हुए व्यक्तिको ठीक कर देते चाहे वह कितनी ही दूरपर क्यों न हो। जो व्यक्ति पास इस आशयकी खबर लाता, मन्त्र पढ़कर वे कानपर जोरसे थप्पड़ मारते, उधर वह व्यक्ति ठीक हो समाचार देनेवाले व्यक्तिको ही वे माध्यम बनाक ठीक कर देते। यदि ऐसा सर्पदंशित व्यक्ति उनके पास कारण न लाया जा सकता तो महात्माजीका कह कि माध्यमके आधारपर एवं वायु-तरंगके अ उसका सूक्ष्म सम्पर्क बना रहता है। समस्त वायुम अर्थावा (इथर) तत्त्व है ही। साधन-सिद्ध योगी इसी वायुमण्डलमें अपना सम्पर्क बराबर बनाये रखते

यह श्राद्धीय शक्ति ऋषियोंने हजारों वर्ष स तपस्या, योग आदिके बलके द्वारा प्राप्त की है। इस भी शास्त्रज्ञ विद्वान् खण्डन नहीं कर सकता। जे पितृलोकमें न होनेसे वैसी शक्ति नहीं रखते कि वे स बनकर श्राद्धान्न-भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके शरीरमें प्र सकें, किंतु वे किसी मनुष्यादिके स्थूलशरीरकी योनि कर चुके हों; तब हमारे द्वारा दिये हुए श्राद्धके वसु, रुद्र, आदित्य ही आकृष्ट करके उन स्थूल यो पितरोंको सौंप दिया करते हैं। इस प्रकार मृत रहस्यपूर्ण, सोपपत्तिक और विज्ञानपूर्ण सिद्ध है।

मृत्यु-समयकी अनुपम सेवा

मृत्यु-समयकी अनुपम सेवा—मनसे दूर करे संसार।
करे न कभी जगत्की, भोगोंकी, घरकी चर्चा निस्सार॥
राग-कामना जगे, बढ़े जिससे ममता मिथ्याऽहंकार।
छा जाये मनपर मिथ्या भय-चिन्ता-शोक-विषाद अपार॥
असत्-अनित्य-दुःखमय जगके भोग अशुचि सब भरे विकार।
इनके दोष-दुःख दिखलाकर प्रभु-चर्चा कर बारंबार॥
नाम-रूप-गुण गाये जिससे बन जाये मन ब्रह्माकार।
मानव-जन्म सफल हो जाये, मिल जायें प्रभु सर्वाधार॥

श्राद्ध और परलोक

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

अथर्ववेद (१२ । २ । ४५) में 'पितृणां लोकमपि गच्छन्तु' तथा शतपथ (१४ । १ । ७ । १९) में भी पितृलोकादिका सुस्पष्ट उल्लेख है। स्कन्दपुराण काशीखण्ड तथा सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय, त्रिप्रश्नवासना, श्लोक १३में पितृलोकको चन्द्रमाके ऊपर बतलाया गया है—

'विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति ।'

(वही, १३)

'वीरमित्रोदय' तथा 'ब्रह्मपुराण'में आता है कि 'विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाला आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण विश्वको तृप्त कर देता है'—

यो वा विधानतः श्राद्धं कुर्यात् स्वविभवोचितम् ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः ॥

श्राद्धकर्ता कहता भी है—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥

श्राद्धकी वस्तुएँ पितरोंको कैसे प्राप्त होती हैं ?

शास्त्रोंमें बतलाया गया है कि संकल्पप्रोक्त नाम-गोत्रोंके आधारपर विश्वदेवता तथा अग्निष्वात्तादि दिव्य पितृगण हव्य-कव्यको पितरोंतक पहुँचा देते हैं । यदि पिता-माता या पितृगण देवयोनिमें भी पहुँच गये हों तो यहाँ दिये गये हव्य-कव्य उन्हें देवभोज्य अमृतादि बनकर संयोगसे प्राप्त हो जाते हैं । पशुयोनिमें भी वह अभीष्ट तृणादिके रूपमें निर्दिष्ट जीवके पास पहुँच जाता है । नागादि योनियोंमें वह हव्य-कव्य वायुरूपसे, यक्षयोनिमें पानरूपसे, पितृलोकमें स्वधारूप तथा अन्य योनियोंमें भी वह अभीष्ट तृप्तिकर खाद्य बनकर पहुँच जाता है । 'नाम, गोत्र, हृदयकी भक्ति-श्रद्धा एवं शुद्ध उच्चारित मन्त्र हव्य-कव्योंको संदेशसहित विश्वदेवता एवं अग्निष्वात्तादि पितरोंद्वारा निर्दिष्ट गन्तव्[य] ढूँढ़कर वैसे ही पहुँचा दिये जाते हैं—जैसे बछड़ा अपनी माताके पास'—

यथा गोष्ठे प्रनष्टां वै वत्सो विन्दति मात[रम्]
तथा तं नयते मन्त्रो जन्तुर्यत्रावति[ष्ठते]
नामगोत्रं च मन्त्रश्च दत्तमन्नं नयन्ति [...]
अपि योनिशतं प्राप्तांस्तृप्तिस्ताननुगच्छ[ति]

(वायुपुराण उपोद्घा० पा० ८३ । ११९-२०; ब्रह्मपुरा[ण] [...] १ । २; मत्स्य० १९ । ४ । ११; पद्म० १ । १० [...]

पितृलोकगतश्चान्नं श्राद्धे भुङ्क्ते स्वधाम[...]
प्रेतस्य श्राद्धकर्तुश्च पुष्टिः श्राद्धे कृते ध्रु[वम्]
तस्माच्छ्राद्धं सदा कार्यं शोकं त्यक्त्वा निरर्थ[कम्]

शेष पूर्ववत् है ।

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण २ । ७८ । १२, बृहद्[...]
२० । ३[...]

पितृगण देवताओंसे भी अधिक कृपालु [...] अधिक सहयोग भी करते हैं । 'जहाँ श्राद्ध [...] वहाँ दुःख-क्लेश, रोग होता है, आयुका नाश ह[ोता है] [...] कोई श्रेय नहीं होता'—

न तत्र वीरा जायन्ते आरोग्यं न शता[...]
न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जि[तम्]

(श्राद्धकल्पलता, श्राद्धप्रकाश, श्राद्धविवेक, [...]
मार्क[ण्डेय...]

अतः शाकादिसे भी श्राद्ध अवश्य करना चा[हिये]

तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथावि[धि]
कुर्वीत श्रद्धया तस्य कुले कश्चिन्न सीद[ति]

(ब्रह्मपुराण, श्र[...]

पिशुन, कवि, खसृम और पितृवर्ती—ये नाम थे। इनके कर्म भी नामानुरूप ही थे। एक बार गौके सम्बन्धमें इन्होंने अपने गुरु गार्ग्यसे भारी वञ्चना कर दी। फलतः अगले जन्ममें ये सातों ही दशार्ण देशमें व्याध हुए।† पर व्याधयोनिमें भी पितृवर्ती (श्राद्धकर्ता) के प्रभावसे ये सभी धर्मविचक्षण एवं जातिस्मर हुए—

स्मृतिः प्रत्यवमर्शश्च तेषां जात्यन्तरेऽभवत्।
जाता व्याधा दशार्णेषु सप्त धर्मविचक्षणाः॥
(हरिवंश १। २१। १८)

जातिस्मृति होनेके कारण ये अत्यन्त सावधान हो गये और लोभ, क्रोध, अनृतसे बचकर मातृपितृभक्तिरत रहने लगे। कर्मानुसार इस जन्ममें इनके निर्वैर, निर्वृति, शान्त, निर्मन्यु, कृति, वैधस और मातृवर्ती—ये (सात) नाम हुए। माता-पिताके मरते ही इन्होंने भृगुपतनद्वारा प्राण-त्याग किया। इस शुभ कर्मसे अगले जन्ममें कालंजर पर्वत (चित्रकूटके पास महोबाके निकट) पर ये मृग हुए। वहाँ भी ये जातिस्मर रहे—

'तमेवार्थमनुध्यान्तो जातिस्मरणसम्भवम्।'
(हरिवंश १। २१। २६)

वहाँ भी प्राण-साधनके द्वारा तप करते हुए प्राण छोड़कर ये सातों शरद्वीपमें चक्रवाक पक्षी हुए और अन्तमें मानसरोवरमें हंस हुए। वहाँ भी इन्हें जातिस्मरता बनी रही। कर्मानुसार उस समय इनके सुमना, शुचिवाक्, शुद्ध, पञ्चम, छिद्रदर्शन, सुनेत्र और स्वतन्त्र—ये नाम थे—

अथ ते सोदरा जाता हंसा मानसचारिण
जातिस्मराः सुसंयुक्ताः सप्तैव ब्रह्मचारिणः
(हरिवंश १। २१

'ततो ज्ञानं च जातिं च ते हि प्रापुर्गुणोत्तराम्
(हरिवंश १। २१

जब ये हंसयोनिमें थे तभी नीप देशके राजा 'वि देखकर सातवें 'स्वतन्त्र' नामक पक्षीको तपसे थकव होनेकी वासना हो गयी। उसके दो साथियोंने होनेकी कामना की। यह बात शेष चार हंसोंको लगी। अतः पूर्वके तीन चक्रवाक काम्पिल्य[1] नगरमें मन्त्री हो गये। पर शेष चारों हंस जातिस्मर ब्राह्मण

'स्मृतिमन्तोऽत्र चत्वारस्त्रयस्तु परिमोहिताः
(हरिवंश १। २३

'स्वतन्त्र' नामक हंस अणुहका पुत्र ब्रह्मदत्त नाम हुआ, जैसा कि उसका पूर्वशरीरमें संकल्प हुअ छिद्रदर्शी और सुनेत्र उसके मन्त्री हुए। शेष च श्रोत्रिय हुए, किंतु उन्हें जातिस्मरता बनी रही। ब्रह सर्वभूतरुतज्ञ (सभी जीवोंकी भाषा समझनेवाला एक बार वह अपनी रानी संनतिके साथ वनमें था कि पिपीलिका-दम्पतिके संगमविलास-वार्तापर उ आ गयी। संनतिने उससे हँसीका कारण पूछा। राजा

---

† इस दशार्ण देशका वर्णन सभी पुराणों तथा मेघदूत १। २३में भी आया है। इसमें दशार्णा (आजकी धसान) नदी बहती है। यह मालवाका पहले पूर्वी भाग था, जिसकी राजधानी विदिशा (आजका भेलसा नगर) थी, जो वेत्रवती (आजकी बेतवा) नदीके तटपर बसा है।

(Imperial Gazetteer Indian Empire).

महाभारतमें निम्नस्थलोंपर दशार्णका उल्लेख है—१। ११२। २५, (गी० प्रे०का संस्करण), २। २९। ५, २। ३२। ७, ३। ६। १३-१६ तथा ५। १८९-१९२ तकके अध्यायोंमें बार-बार

१. यह काम्पिल्य पहले कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत था और पा द्रुपदादि राजाओंकी राजधानी भी यहीं थी। द्रौपदीका स्व यहीं हुआ था। (महाभारत आदिपर्व १३७।७३, शान्तिपर्व १ वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड ३३।१९, यजुर्वेद, २३।८, तै ७। ४। १९, मैत्रायणी संहि० ३। १२। २० संहिता ४। ८, शतपथब्राह्मण १३। २। ८। ३)

(Geographical Dictionary of Ancie Madievel India, Page 88, Archaeological Report 1-255)

आज यह नगर फर्रुखाबाद, फतेहगढ़से पश्चिम, पश्चिम कम्पिलरोड और कायमगंज स्टेशनके बीच है। यह जैनतीर्थ भी है। यह १३ वें तीर्थङ्कर श्रीविमलनाथका है। (तीर्थाङ्क पृ० १०७, ५४८। तथा जैन 'अल्प

।, पर उसे इस बातपर विश्वास न हुआ कि कोई
ग्य चींटीकी बात भी समझ सकेगा। अन्तमें वह प्राण
ड़नेपर तैयार हो गयी। राजाने भगवान्‌की शरण ली।
वान्‌ने स्वप्नमें अगले दिन कल्याण-प्राप्तिका आश्वासन
॥। दूसरे दिन जब वह राजा अपने मन्त्रियोंके साथ
ोवर-स्नानकर चिन्ताकुल-हृदयसे लौट रहा था तो
न चारों ब्राह्मणोंने उसे सुनाकर ये श्लोक पढ़े—

सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ॥

(हरिवंश १।२४।२०-२१, गरुडपुराण १।२१०।२०-२१, पद्म० १।१०)

इतना सुनना था कि ब्रह्मदत्त अपने मन्त्रियोंसहित बेहोश हो गया। फिर जातिस्मरता-योग आदिको प्राप्तकर वह अपने लड़के विष्वक्सेनको राजगद्दीपर बैठाकर वन चला गया। उसकी रानी संनति भी योगिनी ही थी। वह भी उसके साथ वन चली गयी और कहा कि 'मैं सब कुछ जानती हुई भी तुम्हें राज्यसे मुक्त करना चाहती थी।' इस तरह ये सातों ही मुक्त हो गये।

तर्पण और श्राद्ध

(लेखक—श्रीमूलनारायणजी मालवीय)

भारतवर्षमें रहनेवाले वर्णाश्रम-धर्मके अनुयायियोंको पितृ-ऋणसे उऋण होनेके लिये तर्पण और श्राद्धकी सुन्दर व्यवस्था है। द्विजातियोंको नित्यके कर्म संध्यावन्दनके साथ जलसे तर्पण करनेका आदेश धार्मिक ग्रन्थोंके द्वारा प्राप्त होता है। हिंदू धर्ममें जिस प्रकार जीवित मानवों, पशु-पक्षियों तथा स्थावर-जङ्गमको जलसे तृप्त करनेकी व्यवस्था है, उसी प्रकार मृतकोंको तर्पणके द्वारा भी है। महाराज भगीरथ जिस समय भूतलपर पतितपावनी श्रीगङ्गाजीको लाये, उसी अवसरपर सृष्टिनायक ब्रह्माजीने स्वयं उनके पास पधारकर कहा कि 'नर-श्रेष्ठ! सगरके साठ हजार पुत्रोंका उद्धार तुमने कर दिया। अब तुम श्रीगङ्गाजीके पवित्र जलसे अपने पितामहोंका तर्पण करो।'

पितामहानां सर्वेषां त्वमत्र मनुजाधिप।
कुरुष्व सलिलं राजन्! ××××× ॥

(वाल्मीकि० १।४४।७)

सनातनधर्मसे सम्बन्धित मनुष्योंकी प्रबल इच्छा रहती है कि 'मेरी संतान जो हो वह मरनेके बाद तर्पण और पिण्डदान-से मुझे तृप्त करे।' महाभारतके युद्धके प्रारम्भमें अर्जुन इसीलिये युद्धसे कतराते थे कि—

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥

(गीता १।४२)

वर्णसंकर होनेसे कुलघाती समग्र कुलको निश्चय ही नरकमें ले जाता है और पिण्डदान तथा तर्पणादि क्रियाओंके लुप्त हो जानेपर उनके पितरोंका अधःपतन होता है।

'पुत्र' शब्दकी व्याख्या जहाँपर की गयी है, उसका भाव यह है कि 'पुन्नाम नरकसे पिताको बचानेवाला ही पुत्र होता है'—

पुंनाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥

(मनु० ९।१३८)

पुत्रसम्बन्धी निम्नलिखित श्लोक एक विद्वान्‌द्वारा अद्भुत रामायणका मिला, जिसमें भगवान् रामके पास महाराज दशरथने सुमन्तके द्वारा यह संदेश भेजा था—

जीवितो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरि भोजनात्।
गयायां पिण्डदानेन त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥

इन्हीं सब ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंकी बातोंसे मानवोंको प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिलता है और धार्मिक कृत्योंमें रुचि प्राप्त होती है। तर्पण न करनेवालेके लिये तो यहाँतक लिखा है कि—

नास्तिक्यादथवा लौल्यान्न तर्पयति वै सुतः।
पिबन्ति देहिनः स्रावं पितरोऽस्य जलार्थिनः॥

अर्थात् 'नास्तिकतासे अथवा चञ्चलतासे जो पुरुष तर्पण नहीं करता, उसके पितर पिपासित होते हैं और देहसे निकले हुए अपवित्र जलको पीते हैं।'

भगवान् रामको अपनी वनयात्रामें कई जगहोंपर तर्पण और पिण्डदान करना पड़ा था। सर्वप्रथम भरतजी-द्वारा जिस समय पिताके स्वर्गवासकी सूचना मिली, उस समय दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके आपने जलसे तर्पण किया और कहा—

एतत् ते राजशार्दूल विमलं तोयमक्षयम्।
पितृलोकगतस्याद्य मद्दत्तमुपतिष्ठतु ॥
(वाल्मीकि० २। १०३। २७)

'मेरे पूज्य पिता, राजशिरोमणि महाराज! आज मेरा दिया हुआ यह निर्मल जल पितृलोकमें गये हुए आपको अक्षय रूपसे प्राप्त हो।'

अधिकतर गोदुग्धद्वारा पकायी खीर, जौके आटे अथवा मावाके द्वारा पिण्ड बनाये जाते हैं; किंतु भगवान् रामने इंगुदीके गूदेमें बेर मिलाकर पिण्ड तैयार किया और कहा कि 'महाराज! प्रसन्नतापूर्वक यह भोजन स्वीकार कीजिये; क्योंकि आजकल यही हमलोगोंका आहार है। मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है, वही उसके देवता भी ग्रहण करते हैं'—

इदं भुङ्क्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥
(वाल्मीकि० २। १०३। ३०)

जिस समय गृध्रराज जटायु श्रीसीताजीके हरणके समय रावणके द्वारा हत हुआ था—अन्तिम श्वास ले रहा था, उस समय भगवान् रामने जटायुको गोदमें उठा लिया। किसी भक्त कविका कहना है कि—

अधम जाति को गीध अपावन नित ही मांस अहारी।
ताहि दई गति पितु समान तुम सुभग गोद बैठारी॥

जटायुके स्वर्ग-प्राप्त होनेके बाद भगवान् रामने इनका दाह-संस्कार किया और गोदावरीके जलसे जलाञ्जलि दी तथा रोहीके गूदेके द्वारा पिण्ड बनाकर कुशापर रख पिण्ड-दान किया। 'ब्राह्मणगण परलोकवासीको स्वर्गप्राप्ति करानेके उद्देश्यसे जिन पितर-सम्बन्धी मन्त्रोंका जप बतलाते हैं, उन सब मन्त्रोंका जप भगवान् रामने किया'—

यद् यत् प्रेतस्य मर्त्यस्य कथयन्ति द्विजातयः।
तत्स्वर्गगमनं पित्र्यं तस्य रामो जजाप ह ॥
(वाल्मीकि० ३। ६८। ३४)

जंगलमें घूमते हुए जिस समय भगवान् राम अत्रिमुनि-के आश्रममें पहुँचे, उस समय ऋषिने कहा कि 'आप पि[tा]मह ब्रह्माजीद्वारा निर्मित पुष्करतीर्थमें जाकर अ[पने] स्वर्गवासी पिताजीके लिये तर्पण और पिण्डदान कीजिये[।'] पुष्कर पहुँचकर भगवान् रामने इंगुदी, बेर, आँवले अ[ौर] पके बेलके द्वारा पिण्डदान किया तथा श्रीलक्ष्मणजीद्वा[रा] एकत्रित कंदमूलसे ब्राह्मणोंको भोजन कराया। जिस स[मय] ब्राह्मणमण्डली भोजन कर रही थी, उस समय श्रीसीता[जी] वहाँसे चली गयीं। श्रीरामजीने इसका कारण पूछा तो [श्री] जानकीजीने कहा कि 'ब्राह्मणोंके साथ महाराज दशरथ वहाँ उपस्थित थे, इसलिये श्वसुरके सामनेकी जो मर्यादा उसीको रखनेके लिये वहाँसे चली गयी थी।' इसीसे मिलती-जुल[ती] बात पूज्य महामना मालवीयजी महाराजने प्रयागमें त्रिवेणीत[ट] पर सनातनधर्म सभामें भारतके प्रसिद्ध धार्मिक विद्वानें[के] सम्मुख कही थी कि 'जिस समय मैं गयामें पिण्डदान [कर] रहा था, उस समय मुझे पूर्ण भासित हुआ कि मेरे दिये [हुए] पिण्डको प्रत्यक्षरूपसे कोई दोनों हाथोंसे ले रहा है। आश्विन मासके पितृपक्षमें महामनाजी श्राद्ध करते थे। [एक] बार मुझे भी आपके यहाँ ब्राह्मण-भोजनमें सम्मिलित हो[ना] पड़ा था। महामनामें मैंने जो श्रद्धा देखी, शिष्टाचार दे[खा] वह अन्यत्र मुझे देखनेको नहीं मिला। आश्विनके श्रा[द्धके] सम्बन्धमें यह पढ़ा जाता है—

सूर्ये कन्यागते श्राद्धं यो न कुर्याद् गृहाश्रमी।
धनपुत्रादि कुलस्तस्य पितृनिःश्वासपीडनात् ॥

श्राद्धके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें बहुत कुछ लिखा है। ब्राह्मणभोजनमें सुपात्रको जहाँ भोजन करानेकी व्यव[स्था] है, वहाँ भोजनकी सामग्रीपर भी ध्यान दिया गया है। [...] लिखी हुई—'कुम्हड़ा, भैंसका दूध, विल्वशाक [...] चीजोंका पूर्ण निषेध पाया जाता है,—

कूष्माण्डं महिषीक्षीरं बिल्वशाकोऽकृतद्विजः।

—और ब्राह्मणभोजनमें—

संस्कृतव्यञ्जनाद्यं च पयोदधिघृतान्वितम्।
श्रद्धया दीयते यस्माच्छ्राद्धं तेन निगद्यते ॥

विष्णुपुराणमें आया है कि 'श्राद्धकालमें भक्ति[पूर्वक] विनम्र चित्तसे उत्तम ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन करावे[।] इससे असमर्थ होनेपर, जो श्राद्धमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको धान्य और थोड़ी भी दक्षिणा देगा, उसका श्राद्ध भी [...]

होगा। यदि इसमें भी असमर्थ हो तो केवल आठ तिलोंसे जलाञ्जलि देनी चाहिये। यदि यह भी नहीं कर सके तो कहींसे गौका चारा लाकर प्रीति और श्रद्धापूर्वक गौको खिला दे। सभी वस्तुओंके अभावमें एकान्तमें श्रीसूर्य आदि दिक्पालोंसे हाथ उठाकर उच्चस्वरसे कहे कि 'मेरे पास श्राद्ध-कर्मके योग्य न वित्त है, न और कोई सामग्री है; अतः मैं अपने पितृगणको नमस्कार करता हूँ, वे मेरी भक्तिसे ही तृप्ति-लाभ करें।'

न मेऽस्ति वित्तं न धनं च नान्य-
च्छ्राद्धोपयोग्यं स्वपितॄन्नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य॥
(विष्णुपुराण ३। १४। ३०)

श्रीसनत्कुमारजीका कहना है कि 'विशुद्ध वित्त, शुद्ध धन, प्रशस्त काल, योग्य पात्र और परम भक्ति—ये सब मनुष्यको इच्छित फल देते हैं।'

आयुर्वेदमें पुनर्भव

(लेखक—डा० पं० श्रीवासुदेवजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद-बृहस्पति)

पुनर्जन्म समग्र आस्तिक भारतीय साहित्यका सर्वमान्य सिद्धान्त है। वेद, उपनिषद्, दर्शन तथा पुराणोंमें भी पुनर्जन्मको बिना किसी विवादके भारतीय जीवन-दर्शनका आधारभूत सिद्धान्त मान लिया गया है। नास्तिक-दर्शनोंमें चार्वाक दर्शनको छोड़कर जैन तथा बौद्धधर्मोंमें भी पुनर्जन्मको स्वीकार किया गया है।

भारतीय दर्शनके अनुसार आत्मा नित्य विभु है। उसमें ज्ञातृत्व, भोक्तृत्व तथा कर्तृत्वकी शक्ति नित्यरूपसे निहित है। आत्मा जब 'प्रकृतिस्थ' होता है, तब वह 'जीवात्मा' कहलाता है तथा मन और इन्द्रियोंके माध्यमसे कर्ता, भोक्ता और ज्ञाता बन जाता है। सांख्यदर्शनके अनुसार 'ज्ञ' पुरुष प्रकृतिके साहचर्यसे अपने आपको कर्त्ता और भोक्ता मान लेता है। जब इस प्रकारका अज्ञान नष्ट होकर तत्त्वज्ञान हो जाता है, तो वह नित्य-पुरुष मुक्त हो जाता है।

आयुर्वेद यद्यपि मुख्यरूपसे भौतिक मन और शरीरको अपना विवेच्य एवं चिकित्स्य विषय बनाता है; किंतु इस शास्त्रकी आधारशिला आस्तिक-दर्शन ही है। आयुर्वेदने मुख्यरूपसे सांख्य, वेदान्त और न्यायको अपना आधार बनाया है। आयुर्वेदकी प्रवृत्तिका उद्देश्य ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी निर्विघ्न एवं सम्यक्-प्राप्तिके साधन शरीर और मनको रोगरहित रखना है[1]; किंतु आत्मारहित मन और शरीर आयुर्वेदके लिये चिकित्स्य नहीं हैं। आत्मासे युक्त मन और शरीरवाला पुरुष ही आयुर्वेदके विवेचन और चिकित्साका विषय है।

आयुर्वेदके अनुसार मनुष्यमें मुख्यरूपसे तीन एषणाएँ पायी जाती हैं—'प्राणैषणा', 'धनैषणा' तथा 'परलोकैषणा'। आधुनिक मानस शास्त्रके अनुसार मनुष्यमें चौदह मूल प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। इन चौदह मूल प्रवृत्तियोंका अन्तर्भाव एषणात्रयमें सरलतासे किया जा सकता है। उपनिषदोंमें भी तीन एषणा ही मुख्य मानी गयी हैं।

इन तीन एषणाओंका क्रम आयुर्वेदके अनुसार अपरिवर्तनीय है। 'प्राणैषणा' मनुष्यकी आदि और आधारभूत एषणा है। संसारका प्रत्येक प्राणी अपने जीवनको सुरक्षित रखना चाहता है। फिर मनुष्य-जैसे ज्ञानवान् प्राणीके लिये तो प्राणरक्षा और दीर्घ जीवन अपरिहार्य तथा अनुपेक्षणीय एषणामें आता है। जब प्राणरक्षाका प्रश्न उपस्थित होता है तो उसके लिये साधनोंकी लब्धि भी आवश्यक हो जाती है अतएव 'धनैषणा' भी अनिवार्य है। प्राणवान्, स्वस्थ तथ

---

१. धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च॥ २॥

सत्त्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्।
लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ १९।
(च० सू० अ० १

……चेतनं तच्च तच्चाधिकरणं स्मृतम्…॥ १। १९

मातरं पितरं चैके मन्यन्ते जन्मकारणम्।
स्वभावं परनिर्माणं यदृच्छां चापरे जनाः॥ ११।७
एषा परीक्षा नास्त्यन्या यया सर्वं परीक्ष्यते।
परीक्ष्यं सदसच्चैवं तया चास्ति पुनर्भवः॥
(चरकसूत्र० ११। ९

आयुर्वेद (भारतीय वैद्यक-शास्त्र) की दृष्टिसे देह-विवेचन और देह-निवृत्ति

(लेखक—प्राध्यापक पं० काकुभाई दुर्गाशङ्कर दवे 'भानु', संस्कृत-साहित्य-व्याकरण-वेदान्त-ज्यौतिष-आयुर्वेदाचार्य, संस्कृत-काव्य-पुराण-कृत्यतीर्थ, जैनदर्शनशास्त्री, पालिविशारद, संस्कृत-साहित्य-धर्मशास्त्र-पुराण-आयुर्वेद उत्तमा)

भारतीय सुख-तत्त्व-विवेचकोंका मन्तव्य है—

पुनर्दारा पुनर्वित्तं पुनः क्षेत्रं पुनः सुतः।
पुनः श्रेयस्करं कर्म न शरीरं पुनः पुनः॥[1]

महाकवि कालिदासकी भी एक मनोहारिणी उक्ति है—**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।**[2]

'शरीर' शब्दकी व्युत्पत्ति है—शॄ धातुको ईरत् प्रत्यय लगनेपर 'शरीर' शब्द (नपुंल्लिङ्गमें) होता है और देह् धातुको घञ् प्रत्यय होनेसे 'देह' शब्द बनता है। 'काय' शब्द चि धातुको घञ् प्रत्यय होनेसे सिद्ध होता है। तीनों शब्दोंका व्यवहार समानार्थक स्वरूपमें किया जाता है; इसीलिये चरक और सुश्रुत (बृहत्त्रयीकी प्रथम दो) संहिताओंमें 'शारीरस्थान'का संनिवेश है और 'काय-चिकित्सा' (कित् सन् अ=चिकित्साका स्त्रीलिङ्ग) अष्टाङ्ग आयुर्वेदका सर्वप्रथम अङ्ग होनेसे महर्षि सुश्रुतने अपनी संहिताके शारीरस्थानमें यह शरीर कैसे बनता है, अर्थात् देह-निर्माणका मनोमुग्धकारी विवेचन किया है। वाग्भटने भी कहा है।[3]

उपक्रममें महर्षि सुश्रुत कहते हैं—**अथातः सर्वभूतचिन्ताशारीरं व्याख्यास्यामः। यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः।** (सु० शा० १। १) अर्थात् सर्वस्थावर-जङ्गम पदार्थोंके कारणभूत ये पृथिवी इत्यादि, किस कारणमेंसे उत्पन्न हुए हैं और उनके लक्षण और कार्य क्या है, यही 'सर्वभूतचिन्ता' है; क्योंकि जबतक शरीरका सम्पूर्ण ज्ञान न हो, तबतक चिकित्सा व्यर्थ हो जाती है।

महर्षि चरक और सुश्रुत-प्रणीतसंहिताएँ आयुर्वेदके अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ हैं। सांख्यशास्त्रोक्त देह-निर्माणको अंशतः स्वीकार करते हुए महर्षि सुश्रुतने अपने ग्रन्थके शारीर-स्थानके उपक्रममें कहा है—

"मूल प्रकृतिके अपर नामसे संज्ञित 'अव्यक्त' जो स्वयं तो कारणरहित है अर्थात् किसीके द्वारा उत्पन्न न होनेसे किसीका विकाररूप नहीं है और सत्त्व, रज और तम—गुणत्रयकी साम्यावस्थाके रूपमें है। उसके अष्ट रूप हैं—अव्यक्त (प्रकृतिस्वरूपी सामान्य धर्मसे युक्त), महत्तत्त्व (बुद्धि अथवा चित्त, अहंकार और शब्दादि पञ्चतन्मात्रा। सर्वजगत्की उत्पत्तिका कारण होनेसे यही मूल कारण (उपादान कारण) है। जैसे समुद्र ही समग्र जल-जन्तुओंका अधिष्ठान है, उसी प्रकार यही 'अव्यक्त' समग्र जीवात्माओंका अधिष्ठान है।[4]

सुश्रुत शारीरस्थानमें आयुर्वेद स्वीकृत सिद्धान्तका प्रतिष्ठापन करते हुए कहा गया है—

'इस शास्त्रमें पृथिवी आदि पञ्चमहाभूत और जीवके सम्मिलनसे जो मनुष्य-शरीर होता है, वह 'पुरुष' कहलाता है और इस 'पुरुष'में सब क्रियाएँ संलग्न होती हैं। अतएव वह 'पुरुष' अधिष्ठान अर्थात् आश्रय है। स्थावर और जङ्गम—इन भेदोंसे लोक दो प्रकारका है और दोनों प्रकारका यह लोक आग्नेय (अग्निमय) और सौम्य (चन्द्रमय) है। लोकमें उष्ण और शीत—ये दो ही गुण देखे जाते हैं, उससे लोकको 'अग्नि-चन्द्रात्मक' कहते हैं। या तो समग्र लोक पृथ्व्यादि पञ्चभूतमय है, अतएव उसे 'पञ्चात्मक' कहें तो भी ठीक है। इस लोकमें प्राणीके चार प्रकार होते हैं—स्वेदज, अण्डज, उद्भिज और जरायुज। इस स्थावर-जङ्गमात्मक लोकमें जीवन्त मनुष्य-शरीर ही, जिसे 'पुरुष' कहते हैं, मुख्य है और शेष

---

१. स्त्री, धन, क्षेत्र, पुत्र और श्रेयस्कर कर्म, सब कुछ फिरसे प्राप्त हो सकते हैं; किंतु मनुष्य-शरीर पुनः प्राप्त होना दुष्कर है (उसकी पुनः प्राप्ति होती ही नहीं)।

२. शरीर ही धर्म-साधनाके लिये आद्य (first and foremost) साधन है।–(कुमारसम्भव महाकाव्य)

३. कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान्।
अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता॥
(अष्टाङ्गहृदय, सूत्र-स्थान, अध्याय १। ५)

४. सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं नाम। तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानानधिष्ठानं समुद्र इवौदकानां भावानाम्। (सुश्रुत, शारीर-स्थान अध्याय १, विषय ३।)

जो कुछ है, वह सब मनुष्य-शरीरके सुखोंके साधन-रूप हैं। फलतः मनुष्य-शरीर ही आयुर्वेदोक्त समग्र क्रियाओंका अधिष्ठान अर्थात् आश्रयरूप है।[५]''

अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार, एकादश इन्द्रियाँ, पञ्च तन्मात्राएँ और आकाशादि पञ्च महाभूत—इस प्रकारसे सांख्योक्त चौबीस तत्त्व परिगणित होते हैं।[६]

इन चौबीस तत्त्वोंका वर्ग 'अचेतन' है। पुरुष अर्थात् जीवात्मा पच्चीसवाँ है। और वह महत्तत्त्व आदि कार्योंके और अव्यक्तरूप कारणके आभिमानिक संयोगवाला है।[७]

उपर्युक्त निरूपणसे स्पष्ट है कि सांख्य-प्रतिपादित सिद्धान्त केवल अव्यक्तको ही जगत्का मूल कारणरूप मानता है; किंतु आयुर्वेदके आचार्य इस प्रस्थापनाके ऊपर विस्तीर्ण विचार करते हैं और उनके सिद्धान्तानुसार, स्वभाव, ईश्वर, काल, यदृच्छा, पाप, पुण्य और अव्यक्तका परिणाम—इन षट्पदार्थोंको जगत्का मूल कारण माना जाता है। आयुर्वेदमें शरीरकी चिकित्सा प्रधानरूपेण है। फलतः अव्यक्तादिका विचार यहाँ इतना आवश्यक नहीं, जितना कि पञ्चमहाभूतोंके गुण-स्वभावादिका विचार; क्योंकि पञ्चमहाभूत ही शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप शुक्र-शोणितादि पदार्थोंके मूल कारण हैं। इसी कारण सांख्यसिद्धान्तसे कुछ भिन्न-स्वरूपमें अर्थात् इन्द्रियों और शब्द-स्पर्शादिको अहंकारसे उत्पन्न न मानकर आयुर्वेद-शास्त्रमें उनकी उत्पत्ति पञ्चमहाभूतोंसे ही मानी गयी है। इतना होते हुए भी जिस इन्द्रियमें जिस महाभूतका विशेष प्रभाव है, उस इन्द्रियसे मनुष्य उसीका गुण ग्रहण करता है। जिस महाभूतका विशेष प्रभाव नहीं है उसके गुण मनुष्य इन्द्रियद्वारा ग्रहण नहीं करता है।[८]

सांख्य-सिद्धान्तानुसार जीवात्मा सर्वव्यापक और नित्य माना जाता है; किंतु आयुर्वेदके आचार्य इस सिद्धान्तमें कुछ संशोधन कर, जीवात्माको भिन्न-भिन्न और इसीलिये असर्वव्यापक मानते हुए भी उसे नित्य मानते हैं। पाप-पुण्यानुसार तिर्यक्-मनुष्य-देवयोनियोंकी प्राप्ति जीवात्माको होती है। यही इस सिद्धान्तका साधक हेतु है। सुख-दुःखकी अनुभूतिका अनैक्य सर्वसंवेद्य है और 'कर्मानुसारिणी गतिका सिद्धान्त' इस स्थापनासे परिपुष्ट हो जाता है। फलतः 'कृतनाश' और 'अकृताभ्यागम' रूपी दोषद्वयकी सम्भावना भी सम्पूर्णतया नष्ट हो जाती है।

आयुर्वेद-शास्त्रानुसार, इन जीवात्माओंकी सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाणसे नहीं, किंतु अनुमान प्रमाणसे की जाती है। ये परम सूक्ष्म हैं, उनका जन्म नहीं होता; किंतु रज और वीर्यके संयोगसे ये प्रकटमात्र होते हैं। और इसी (प्राकट्यमात्र) को 'जन्मधारण करना' कहा जाता है। ये (जीवात्मा) सांख्यके 'पुरुष'की तरह ही पाप-पुण्यादिके फलोंके साथ, चिकित्साके फल, आरोग्यादिका भी भोग करते हैं। अतएव यह जीवात्मा सांख्य-प्रतिपादित 'निरञ्जन-पुरुष' न होकर आयुर्वेद-निरूपित 'कर्म-पुरुष' है।[८] और सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, प्राणक्रिया, अपानक्रिया, नेत्रोंके उन्मेष-निमेष, बुद्धि, मनद्वारा संकल्प, विचार, स्मरण, शास्त्रादि-बोध, निश्चय और विषयोपलब्धि—ये उस पुरुषके गुण हैं।

आयुर्वेदका मन्तव्य है कि सांख्योक्त चौबीस तत्त्वोंसे बने हुए शरीररूपी घरमें जीवात्मा निश्चय, सर्वसमयके लिये

---

५. अस्मिन् शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते। तस्मिन् क्रिया, सोऽधिष्ठानम्। कस्मात्? लोकस्य द्वैविध्यात्। लोको हि द्विविधो स्थावरो जङ्गमश्च। द्विविधात्मक एवाग्नेयः सौम्यश्च तद्भूयस्त्वात्। पञ्चात्मको वा। तत्र चतुर्विधो भूतग्रामः। संस्वेदजजरायुजाण्डजोद्भिज्जसंज्ञः। तत्र पुरुषः प्रधानं तस्योपकरणमन्यत्। तस्मात् पुरुषोऽधिष्ठानम्। (सुश्रुत, सूत्रस्थान, अध्याय १, विषय १८-१९)

६. तद्यथा—शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्र, रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमिति। तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः। तेभ्यो भूतानि व्योमानिलानलजलोर्व्यः। एवमेषा तत्त्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याता। (सुश्रुत, शारीर-स्थान, अध्याय १, विषय ६।)

७. तत्र सर्व एवाचेतन एष वर्गः। पुरुषः पञ्चविंशतितमः। स च कार्यकारणसंयुक्तश्चेतयिता भवति। (सुश्रुत, शारीर-स्थान अध्याय १, वि० ८)

८. स्वभावमीश्वरं कालं यदृच्छां नियतिं तथा।
परिणामं च मन्यन्ते प्रकृतिं पृथुदर्शिनः॥

×××× यतोऽभिहितं तत्सम्भवद्रव्यसमूहो भूतादिरुक्तः। भौतिकानि चेन्द्रियाण्यायुर्वेदे वर्ण्यन्ते तथेन्द्रियार्थाः। ×××× यतोऽभिहितं पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इति। स एव कर्मपुरुषश्चिकित्साधिकृतः। (सुश्रुत, शारीरस्थान, अध्याय १, विषय ११, १४, १७)

निवास करता है। जीवात्माका स्वान्तमन नामका दूत, लिङ्ग-शरीरका आश्रय करके रहता है अतएव वही 'देही' कहलाता है और वह जीवात्मा पाप-पुण्य, सुख-दुःख इत्यादिसे व्याप्त है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, पञ्चम अहंकार, दस इन्द्रियाँ और बुद्धि—इन सोलहोंके साथ यह जीवात्मा मनद्वारा किये गये कर्मरूपी बन्धनोंसे बद्ध होता है और यही जीवात्मा, स्वरूपके अज्ञानसे, प्रपञ्चरूप क्लेशादिसे भी बन्धनको प्राप्त होता है और यही जीवात्मा आत्मज्ञानसे, क्लेशादि बन्धनोंसे मुक्तिकी प्राप्ति करता है। (शार्ङ्गधरसंहिता पूर्व० ५। ७०—७३)

अपने कर्मानुसार, जीवात्माके स्त्री-पुरुषादि शरीर आयुर्वेदशास्त्र ईश्वरकी इच्छाको ही कारण मान (शार्ङ्गधरसंहिता पूर्व० ५। १०—१२)

देहकी निवृत्तिके लिये आयुर्वेदमें कर्मज, कर्मदोषज—तीन प्रकारकी व्याधियोंको कारणभूत बता

भारतीय आयुर्वेद-शास्त्र सम्पूर्णतया विकसित (perfectly developed Science) विधानकी सार्थकता उसकी उपरिनिरूपित विचा सिद्ध होती है।

प्राणियोंके जन्म, स्थिति और मरणका ग्रहोंसे सम्बन्ध

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड, वेदाचार्य)

वेदकी विभुता विश्वमें विख्यात है। उसके छः अङ्गोंमें ज्योतिष नेत्र होनेके कारण प्रधान माना गया है। महर्षि नारदने कहा है—

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमकल्मषम्॥
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिद्ध्यति।
तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा॥
(नारदपुराण)

'सिद्धान्त, संहिता और होरा (जातक)—ये तीन स्कन्धरूप ज्योतिषशास्त्र वेदका निर्मल और पुण्यप्रद नेत्र कहा गया है। इस ज्योतिषशास्त्रके बिना कोई भी श्रौत और स्मार्त कर्म सिद्ध नहीं हो सकता। अतः ब्रह्माने संसारके कल्याणार्थ सर्वप्रथम ज्योतिषशास्त्रका निर्माण किया।'

अतः स्पष्ट है कि संसारमें घटनेवाली समस्त घटनाओंका ज्ञान ज्योतिषशास्त्रके द्वारा ही होता है।

प्राणियोंके जन्मसे मरणपर्यन्त समस्त सुख-दुःख ग्रहोंके अधीन होते हैं। आकाशमें व्यक्त और अव्यक्त अनेक ग्रह हैं; उनमें सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि—ये सात ग्रह प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं। इनमें भी सूर्य प्रधान हैं; क्योंकि परब्रह्म परमात्मा अपनी शक्ति (प्रकृति) के द्वारा चराचर विश्वकी रचना करनेके समयमें स आकाशकी, तदनन्तर सूर्यकी सृष्टि करते हैं। पुनः द्वारा ही अन्य चन्द्र आदि ग्रहों एवं वायु, अग्नि और पृथिवी तथा पृथिवीस्थित प्राणियोंकी सृष्टि, पाल प्रलयरूप क्रिया करते हैं। इसलिये वेदमें सूर्यको ही जगत्‌का आत्मा माना गया है—

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'
(यजुर्वेद ७।४२; ऋग्वेद १।११५।१; अथर्ववेद १३।२

तथा—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः
(ऋग्वेद १०।१९०

अनन्तर सूर्यादि खेचरोंके रश्मि-प्रभावसे अन्य च अचरकी सृष्टि होती है।

इन्द्रगुरु (बृहस्पति) ने लिखा है—

ग्रहाधीनं जगत्सर्वं ग्रहाधीना नरावराः
कालज्ञानं ग्रहाधीनं ग्रहाः कर्मफलप्रदाः
सृष्टिरक्षणसंहाराः सर्वे चापि ग्रहानुगाः।

'यह समस्त संसार ग्रहोंके अधीन है और मान

१. कर्मजाः कथिताः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे। कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः॥
(भावप्रकाश, पूर्व खण्ड भाग १, अध्याय ५

अर्थात् 'कालभगवान्के सूर्य आत्मा, चन्द्रमा मन, मङ्गल सत्त्व, बुध वाणी, गुरु ज्ञान और सुख हैं तथा शुक्र मद (कंदर्प) और शनि दुःख हैं। जन्म-समयमें ये सूर्यादि ग्रह बलवान् हों तो प्राणियोंके आत्मादि बलवान् होते हैं। अतः सूर्य आदि छः ग्रहोंके प्रबल होनेसे शुभ और शनिका प्रबल होना अशुभ (विपरीत) माना गया है। क्योंकि शनि दुःखरूप है; वह जितना निर्बल रहता है उतना दुःख अल्प होता है।'

इसी प्रकार सूर्यादि ग्रह भी कालभगवान्की सत्त्व आदि प्रकृति हैं। यथा—

गुरुशशिरवयः सत्त्वं रजः सितज्ञौ तमोऽर्कसुतभौमौ।
एतेऽन्तरात्मनि स्वां प्रकृतिं जन्तोः प्रयच्छन्ति॥

'बृहस्पति, चन्द्रमा और सूर्य—ये तीन ग्रह सत्त्वगुणी हैं। शुक्र और बुध—ये दोनों रजोगुणी हैं। शनि और मङ्गल—ये दोनों तमोगुणी हैं। ग्रह अपनी प्रकृतिके अनुसार मनुष्योंकी प्रकृतिको बनाते हैं।'

एते ग्रहा बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम्।
कुर्युर्देहं नियतं बहवश्च समागता मिश्रम्॥

'गर्भाधानकालमें इन ग्रहोंमें जो ग्रह बलवान् रहता है, वह अपने स्वरूपके समान ही गर्भस्थ जीवका स्वरूप बनाता है। यदि कई ग्रह बलवान् हों, तो उन सभीके मिश्रित स्वरूपके सदृश अर्भक (बालक) का स्वरूप होता है।'

ग्रहोंके द्वारा ही प्राणियोंके पूर्व और अग्रिम जन्मकी भी स्थिति ज्ञात होती है। यथा—

गुरुरुडुपतिशुक्रौ सूर्यभौमौ यमज्ञौ
विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः।
दिनकरशशिवीर्याधिष्ठितत्र्यंशनाथात्
प्रवरसमनिकृष्टास्तुङ्गह्रासादनूके॥
(बृहज्जातक २५। १४)

'प्राणियोंके जन्म-समयमें सूर्य और चन्द्रमामें जो बलवान् हो, वह यदि गुरुके त्र्यंश (द्रेष्काण) में हो तो जातकको पूर्वजन्ममें देवलोकवासी, यदि चन्द्र और शुक्रके त्र्यंशमें हो, तो पितृलोकवासी (चन्द्रलोकवासी), यदि सूर्य अथवा मङ्गलके त्र्यंशमें हो तो मर्त्यलोकवासी और यदि शनि या बुधके त्र्यंशमें हो, तो नरकलोकवासी समझना चाहिये। उक्त त्र्यंशपति ग्रह अपने उच्चस्थान, मध्यस्थान या नीचस्थानमें हों, तो उक्त लोकमें भी जातकको यथाक्रम उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणीका समझना चाहिये। इसी प्रकार जीवके मरणकालमें भी उक्त त्र्यंशपतिकी स्थितिके अनुसार देवलोक, पितृलोक, मर्त्यलोक अथवा नरकलोकमें अग्रिम जन्म समझना चाहिये।'

इस प्रकार चराचर प्राणियोंके जन्म, स्थिति और मरणपर्यन्त सुख-दुःख सूर्यादि ग्रहोंके आधारपर ही वेद-वेदाङ्गोंमें वर्णित हैं।

यमराजके कुत्ते

ऋग्वेदमें आया है—

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति॥
(ऋग्वेद-सं० १०। १४। १०)

हे अग्निदेव! प्रेतोंके बाधक यमराजके दोनों कुत्तोंका उल्लङ्घन करके इस प्रेतको ले जाइये और ले जा करके यमके साथ जो पितर प्रसन्नतापूर्वक विहार कर रहे हैं, उन उच्चे ज्ञानी पितरोंके पास पहुँचा दीजिये; क्योंकि ये दोनों कुत्ते देवशुनी शर्माके लड़के हैं और इनकी दो नीचे और दो ऊपर चार आँखें हैं।

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि॥
(ऋग्वेद-सं० १०। १४। ११)

हे राजन्! यम आपके घरकी रखवाली करनेवाले आपके मार्गकी रक्षा करनेवाले श्रुति-स्मृति-पुराणोंके विद्वानोंद्वारा ख्यापित चार आँखवाले अपने कुत्तोंसे इसकी रक्षा कीजिये तथा इसे नीरोग बनाइये।

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्॥
(ऋग्वेद-सं० १०। १४। १२)

यमके दूत दोनों कुत्ते लोगोंको देखते हुए सर्वत्र घूमते हैं। बहुत दूरसे सूँघकर पता लगा लेते हैं और दूसरेके प्राणोंसे तृप्त होते हैं, बड़े बलवान् हैं। वे दोनों दूत सूर्यके दर्शनके लिये हमें शक्ति दें।

ज्योतिषमें पुनर्जन्म और परलोक

(लेखक—राजज्योतिषी पं० श्रीमुकुन्दवल्लभजी मिश्र, ज्योतिषाचार्य)

इस देहधारी जीवका मरणोपरान्त पुनर्जन्म होना ध्रुव सत्य है। योगेश्वर प्रभु श्रीकृष्णने अपने श्रीमुखसे वीर अर्जुनके प्रति उपदेश करते हुए कहा है—'अर्जुन! जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है, और मरनेवालेका पुनर्जन्म भी निश्चित है।' (गीता २। २७)

ज्योतिःशास्त्रके प्रवर्तक पराशरादि महर्षियों तथा वराहमिहिरादि आचार्योंने भी मरणोत्तर इस जीवका पुनर्जन्म कहाँ होगा;—इस बातका योग-दृष्टिसे जो निर्णय दिया है, उसका दिग्दर्शन कराया जाता है। सर्वप्रथम पूर्वजन्मकालीन लोकज्ञानके विषयमें ज्योतिःशास्त्रकी दृष्टिसे विचार करते हैं। आचार्य वराहमिहिर (बृहज्जातक ५। १४)के अनुसार—गुरु, चन्द्र, शुक्र, सूर्य, मङ्गल, शनि, बुध—ये ग्रह क्रमशः देवलोक, पितृलोक, तिर्यक्लोक (मर्त्यलोक) एवं नरकलोक—इनसे आये हुए प्राणियोंको सूचित करते हैं। इसे देखनेकी रीति यह है कि जन्मकालमें सूर्य और चन्द्र—इन दोनोंमेंसे जो अधिक बली हो, वह जिस द्रेष्काणमें हो, उस द्रेष्काणका स्वामी गुरु हो तो यह प्राणी देवलोकसे आया है—ऐसा समझना चाहिये। यदि चन्द्रमा या शुक्र उक्त द्रेष्काणके स्वामी हों तो पितृलोकसे, यदि सूर्य एवं मङ्गल उक्त द्रेष्काणके पति हों तो तिर्यक् (मर्त्य)-लोकसे और यदि शनि या बुध उक्त द्रेष्काणपति हों तो प्राणी नरक-लोकसे आया है,—ऐसा समझे। अब 'पूर्वजन्ममें प्राणी किस प्रकारका था'—इस विषयमें विचार करते हैं। यदि उक्त लोकोंसे आये हुए प्राणियोंको सूचित करनेवाले ग्रह अपने उच्चके समीप-स्थानोंमें स्थित हों तो प्राणी अपने अनूक (पूर्वजन्म) में देवादिलोकोंमें भी श्रेष्ठ था। यदि वही ग्रह अपने उच्च-नीचके मध्यमें स्थित हों तो उन प्राणियोंको वहाँ देवादि लोकमें भी मध्यम श्रेणीका समझें। यदि वही ग्रह नीचके समीप-स्थानोंमें स्थित हों तो देवादि लोकमें भी वह नीच श्रेणीका था—ऐसा समझना चाहिये।

मरणोपरान्त जीवकी गतिके स्थान-ज्ञानका विषय अत्यन्त गहन है। यद्यपि भौतिक-ज्ञान-विह्वल इस युगमें इस योग-दृष्टिगम्य ज्ञानकी भले ही कोई उपेक्षा करे, तथापि योगानुभवगम्य इन सैद्धान्तिक तथ्योंकी सत्यत अनुसंधानकी अपेक्षा रखता है। मरणान्तरगति-स्थ विषयमें पूर्वोक्त आचार्य (बृहज्जातक २५। १५) प्रस्तुत हैं—

जिसके जन्म-लग्नसे षष्ठ-अष्टम-सप्तम स्थानोंमें स्थित हों, उनमेंसे जो बलवान् हो, उसका जो पू कथित लोक है, उस लोकमें (गति, अर्थात्) मर प्राणी जाता है। यदि षष्ठ, अष्टम, सप्तम इन स्थान ग्रह न हो तो छठे, आठवें इन दोनों स्थानों द्रेष्काणोंका उदय हो, उन दोनों द्रेष्काणोंके स्वामि बली हो, उसका जो पूर्वोक्त देवादि लोक कहा वह उस लोकमें जाता है।

भारतीय दर्शनोंमें मानव-जीवनका चरम लक्ष्य स्व-पलब्धि आत्मसाक्षात्कार ही है। मरणोपरान्त गति-ज्ञानका निर्णय करते समय भारतीय दर्शनके मुख्य वि भी चिरंतन आचार्योंने अछूता नहीं छोड़ा। इस पूर्वोक्त आचार्यके अनुसार यदि उच्च राशिमें स्थित गुरु लग्नसे छठे, केन्द्र वा आठवें स्थानमें स्थित हो तो प्राणीको मुक्त करता है। अथवा मीन राशि शुभ न युक्त होकर लग्नमें स्थित हो तथा इन योगोंमें अन्य ग्रह निर्बल हों तो उस प्राणीको मोक्ष-लाभ होता है।

बृहस्पतौ चापनवांशकस्थे बलान्विते कर्कटलग्नयाते
त्रिभिश्चतुर्भिः सह कण्टकेषु नभश्चरैर्ब्रह्मपदं प्रयाति

'जिसके जन्म-समयमें बलवान् गुरु धनुके नवां होकर कर्क लग्नमें प्राप्त हो और तीन या चार ग्रह के हों तो वह ब्रह्मपदको प्राप्त करता है।' इस विषयमें कि प्रकार जन्म-लग्नसे शुभगति-ब्रह्मपदादिका ज्ञान कहा ग है, उसी प्रकार मरणकालिक लग्नसे भी देखना चाहिये,—ऐसा ज्योतिःशास्त्रके अनुभवी कुछ विद्वानोंका संकेत है।

जन्ममें अष्टम स्थानगत केवल शुभ-ग्रह हों तो भी मरणोत्तर शुभगति प्राप्त होती है। यदि जन्ममें शुभ-गतिप्रद ग्रह-स्थिति हो, मरणमें अशुभ हो जाय तो वह मध्यम लोकोंमें जाता है। जन्म और मरण दोनों कालकी ग्रह-स्थिति अशुभ हो तो अधोगति (नरकलोकादिमें) होती है।

ज्योतिःशास्त्रके आधारपर आचार्य मन्त्रेश्वरके विचार भी इस विषयपर अपना विशेष महत्त्व रखते हैं, जिन्हें नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

धर्मेश्वरेणैव हि पूर्वजन्मवृत्तं भविष्यजननं सुतेशात् ।
तदीशजातिं तदधिष्ठितर्क्षे दिशं हि तत्रैव तदीशदेशम् ॥

नवमेशके अनुसार मनुष्यको पूर्वजन्मका हाल जानना और पञ्चमेशके अनुसार परलोकका विचार करना चाहिये ।

उपर्युक्त नवम-पञ्चम स्थानोंके मालिकोंके अनुसार मनुष्यकी जाति और उन मालिकोंके बैठनेकी राशिके समान उसकी दिशा जानना । इसी प्रकार उन स्थानोंके मालिकोंके अनुसार उसका देश जानना चाहिये ।

स्वोच्चे तदीशे सति देवभूमिर्द्वीपान्तरं नीचरिपुस्थलस्थे ।
स्वर्क्षे सुहृद्भे समभे स्थिते वा सम्प्राप्नुयाद् भारतवर्षमेव ॥

यदि उपर्युक्त ग्रह उच्चके हों तो देवभूमिमें, नीच एवं शत्रुक्षेत्री हों तो द्वीपान्तरमें तथा यदि वह ग्रह स्वगृही, मित्र-क्षेत्री या समक्षेत्री हों तो उनका जन्म भारतमें ही जानना ।'

आर्यावर्तं गीष्पतेः पुण्यनद्यः
काव्येन्दोश्च ज्ञस्य पुण्यस्थलानि ।
पङ्गोर्निन्द्या म्लेच्छभूस्तीक्ष्णभानोः
शैलारण्यं कीकटं भूमिजस्य ॥

'गुरुका स्थान भारत, शुक्र-चन्द्रका पुण्य पवित्र नदियों-का स्थल, बुधका पवित्र स्थल, शनिका निन्दनीय म्लेच्छ-भूमि, सूर्यका पर्वतीय जंगल-प्रदेश और ऐसे ही मङ्गलका कीकट (अशुभ-मगधादि) देशोंमें स्थान बताया गया है ।'

स्थिरे स्थिरांशाधिपतेः सपापः
पृष्ठोदयेऽधो मुखभे च संस्थः ।
तदीश्वरो वृक्षलतादिजन्म
स्यादन्यथा जीवयुतः शरीरी ॥

'यदि उपर्युक्त ग्रह स्थिर राशि या स्थिर नवांश पृष्ठोदय-अधोमुख राशिमें पापग्रहसे संयुक्त हों तो मनु[ष्य]का जन्म पूर्वोक्त देशमें वृक्ष-लता-बेल आदि योनियोंमें हो[गा ।] यदि वह ग्रह अन्य राशियोंमें हो तो परलोकगत प्राण[ीका] जन्म जीवधारी प्राणियोंमें होगा—यों जानना ।'

लग्नेशितुः स्वोच्चसुहृत्स्वगेहात्
तदीश्वरो याति मनुष्यजन्म ।
समे मृगाः स्युर्विहगाः परस्मिन्
द्रेष्काणरूपैरपि चिन्तनीयम् ॥

'लग्नेशकी उच्चराशिमें, लग्नेशके मित्र-ग्रहकी रा[शि] अथवा लग्नेशकी अपनी राशिमें उपर्युक्त स्थान जतलाने[वाले] ग्रह हों तो उस व्यक्तिका पुनर्जन्म मनुष्य-योनिमें हे[ागा ।] यदि सम ग्रहकी राशिमें हों तो मृगादि पशुयोनिमें पुन[र्जन्म] होगा—ऐसा जानें । अन्य ग्रहकी राशियोंमें हों तो पक्षि[-] योनियोंमें जन्म जानें—इसी प्रकार द्रेष्काणपरसे भी विचार करना चाहिये ।'

तावेकराशौ जननं स्वदेशे
तौ तुल्यवीर्यौ यदि तुल्यजातिः ।
वर्णो गुणस्तस्य खगस्य तुल्यं
संज्ञोदितैरेव वदेत् समस्तम् ॥

'यदि उपर्युक्त दोनों ग्रह (नवमेश, पञ्चमेश) [एक] राशिमें बैठे हों तो स्वदेशमें जन्म जानें । यदि वे [दोनों] ग्रह समान बली हों तो उसी अपनी जातिमें जन्म जा[नें ।] उसका वर्ण-गुण आदि सम्पूर्ण विचार उस ग्रहके अनु[सार] ज्योतिःशास्त्रके संज्ञाप्रकरणोक्तवत् समस्त कहना चाहि[ये ।']

'कुल-गौरव' और 'कुलकलङ्क'

हो शरीर सेवा-संयममय, वाणी हो नित प्रिय-हित-सत्य ।
सर्वभूत-हित-सम करुणा हो मनमें भगवच्चिन्तन नित्य ॥
हो चाहे धन-मान-पद-रहित, हो चाहे समाजमें दीन ।
'कुल-गौरव', वह परम धन्य जीवन है जो प्रभु-पद-रति-लीन ॥

वचन अहितकर-मिथ्या-कटु हो, तन इन्द्रिय-भोगोंका दास ।
मनमें हिंसा-काम-क्रोध-मद-निर्दयता रति-भोगविलास ॥
धन-अधिकार-मान-यश हो, पर प्रभु-पद-विमुख हृदय हो नीच ।
'कुल-कलङ्क' वह रहा विषम-दुख-नरक-लताको संतत सींच ॥

जन्म-मृत्यु और ग्रह-विचार

(लेखक—डॉ० श्रीनारायणदत्तजी श्रीमाली एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भारतीय ऋषियोंने अपनी साधना, लगन, परिश्रम एवं दिव्य ज्ञानसे ग्रहोंकी गतिका अध्ययन करके जो निष्कर्ष निकाले, वे वस्तुतः प्रामाणिक होनेके साथ-साथ इस बातके सूचक भी हैं कि इन सिद्धान्तों, नियमों एवं तथ्योंके पीछे आर्यऋषियोंकी सैकड़ों-हजारों वर्षोंकी तपस्या एवं अनुभूति है। मानव-जीवनके छोटे-से-छोटे तथ्यपर भी इन ऋषियोंने विचार तथा अनुभव प्राप्त किया है। हानि-लाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण आदिका विवेचन करनेके साथ-साथ उन्होंने ग्रहोंकी गति एवं स्थितिके आधारपर आवागमनपर भी प्रकाश डाला है।

बालक जिस समय जन्म लेता है, उस समयका शोधन कर अक्षांश-देशान्तर-संस्कार करनेके पश्चात् बालककी जन्म-कुण्डली बनायी जाती है। उस समयके ग्रहोंकी स्थितिके अध्ययनके फलस्वरूप यह ज्ञात किया जा सकता है कि बालक किस योनिसे आया है और मृत्युके पश्चात् उसकी क्या गति होगी। नीचे इस सम्बन्धमें कुछ विशेष योग प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

जन्मपूर्व योनि-विचार

(१) यदि जातककी जन्म-कुण्डलीमें चार या इससे अधिक ग्रह उच्च राशिके, अथवा स्वराशिके हों तो जीवने उत्तम योनि भोगकर यहाँ जन्म लिया है, ऐसा समझना चाहिये।

(२) लग्नमें उच्चराशिका या स्वराशिका चन्द्रमा हो तो बालक पूर्वजन्ममें सद्विवेकी वणिक् था, यों मानना चाहिये।

(३) लग्नस्थ गुरु इस बातका सूचक है कि बालक पूर्वजन्ममें वेदपाठी ब्राह्मण था। यदि जन्मकुण्डलीमें कहीं भी उच्चका गुरु होकर लग्नको देख रहा हो तो बालक पूर्व-जन्ममें धर्मात्मा, सद्गुणी एवं विवेकशील साधु अथवा तपस्वी था—ऐसा ऋषियोंका कथन है।

(४) यदि जन्म-कुण्डलीमें सूर्य छठे, आठवें या बारहवें भावमें हो अथवा तुला राशिका हो तो बालक पूर्व-जन्ममें पापरत एवं भ्रष्टजीवन व्यतीत करनेवाला था—यों जानना चाहिये।

(५) लग्न या सप्तम भावमें यदि शुक्र हो, तो जा पूर्वजन्ममें राजा या प्रसिद्ध सेठ था, तथा पूर्णतः भ जीवन बितानेवाला था—यों समझना चाहिये।

(६) लग्न, एकादश, सप्तम या चौथे भावमें श इस बातका सूचक है कि बालक पूर्वजन्ममें शूद्रपरिव सम्बन्धित था एवं पापपूर्ण कार्योंमें रत था।

(७) यदि लग्न या सप्तम भावमें राहु हो तो बाल पूर्वमृत्यु स्वाभाविक रूपमें नहीं समझनी चाहिये।

(८) चार या इससे अधिक ग्रह जन्म-कुण्ड नीच राशिके हों तो बालकने पूर्वजन्ममें निश्चय आत्महत्या की होगी, ऐसा ऋषियोंका कथन है।

(९) लग्नस्थ बुध स्पष्ट करता है कि जातक जन्ममें वणिक्-पुत्र था एवं विविध क्लेशोंसे रहता था।

(१०) सप्तम भाव, छठे भाव या दशम भ मङ्गलकी उपस्थिति यह स्पष्ट करती है कि जातक जन्ममें अत्यन्त क्रोधी स्वभावका था तथा कई व्य उससे पीड़ित रहते थे।

(११) बृहस्पति शुभ ग्रहोंसे दृष्ट हो तथा गुरु प या नवम भावमें हो तो जातक पूर्वजन्ममें वीतरागी था यों समझना चाहिये।

(१२) एकादशमें सूर्य, पञ्चममें बृहस्पति त द्वादश भावमें शुक्र इस बातके द्योतक हैं कि जातक जन्ममें धर्मात्मा लोगोंकी सहायता करनेवाला तथा द पुण्यमें तत्पर ईश्वराराधक था। ऐसा भारतीय ऋषिये कथन है।

मृत्यु-उपरान्त गति-विचार

मृत्युके उपरान्त जातककी क्या गति होगी, इस ज्ञान भी आर्ष नियमोंके अनुसार जन्म-कुण्डलीसे किया सकता है। नीचे इसीके सम्बन्धमें कुछ प्रामाणिक योग प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

कुण्डलीमें कहींपर भी यदि उच्च (कर्कराशि)
स्थित हो, तो जातककी अन्त्येष्टि धूमधामसे
ा मृत्युके पश्चात् उत्तम कुलमें जन्म होता है।

लग्नमें उच्चराशिका चन्द्रमा हो तथा कोई
न देखते हों तो जातककी सद्गति होती
अपने पीछे कीर्ति-कथाएँ छोड़ जाता है।

अष्टमस्थ राहु जातकको पुण्यात्मा बना देता
रनेके पश्चात् वह राज्यकुलमें जन्म लेता है,
ोंका कथन है।

) अष्टम भावपर मङ्गलकी दृष्टि हो तथा लग्नस्थ
च शनिकी दृष्टि हो तो जातक रौरव नरक
।

) अष्टमस्थ शुक्रपर गुरुकी दृष्टि हो तो जातक
ात् वैश्यकुलमें जन्म लेता है।

) अष्टम भावपर मङ्गल और शनि—इन दोनों
दृष्टि हो तो जातक अकाल मृत्युसे मरता है।

) अष्टम भावपर शुभ-अथवा अशुभ किसी भी
हकी दृष्टि न हो और न अष्टम भावमें कोई
हों तो जातक ब्रह्मलोक प्राप्त करता है।

) लग्नमें गुरु-चन्द्र, चतुर्थ भावमें तुलाका शनि
भावमें मकर राशिका मङ्गल हो तो जातक
कीर्ति अर्जित करता हुआ मृत्यु-उपरान्त ब्रह्मलीन

(९) लग्नमें उच्चका गुरु चन्द्रको पूर्ण दृष्टिसे देख रहा हो, एवं अष्टमस्थान ग्रहोंसे रिक्त हो तो जातक जीवनमें सैकड़ों धार्मिक कार्य करता है तथा प्रबल पुण्यात्मा एवं मृत्युके उपरान्त सद्गतिका अधिकारी होता है।

(१०) अष्टम भावको शनि देख रहा हो तथा अष्टम भावमें मकर या कुम्भ राशि हो तो जातक योगिराज-पद प्राप्त करता है तथा विष्णुलोक प्राप्त करता है।

(११) यदि जन्म-कुण्डलीमें चार ग्रह उच्चके हों तो जातक निश्चय ही श्रेष्ठ मृत्युका वरण करता है, एवं पीछे अक्षयकीर्ति-वट स्थापित कर देता है।

(१२) एकादश भावमें सूर्य-बुध हों, नवम भावमें शनि तथा अष्टम भावमें राहु हो, तो जातक मृत्युके पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है।

विशेष योग

(१) द्वादशभाव शनि, राहु या केतुसे युक्त हो, फिर अष्टमेशसे युक्त हो अथवा षष्ठेशसे दृष्ट हो तो मरनेके बाद दुर्गति होगी—यों समझना चाहिये।

(२) गुरु लग्नमें हो, शुक्र सप्तममें हो, कन्याराशिका चन्द्रमा हो एवं धनुलग्नमें मेषका नवांश हो तो जातक मृत्युके पश्चात् परमपद प्राप्त करता है।

(३) अष्टमभावको गुरु, शुक्र और चन्द्र—तीनों ग्रह देखते हों तो जातक मृत्युके पश्चात् श्रीकृष्णके चरणोंमें स्थान प्राप्त करता है, ऐसा आर्यऋषियोंका कथन है।

भगवद्भक्तका महत्त्व

मद्भक्तियुक्तो मर्त्यश्च स मुक्तो मद्गुणान्वितः। मद्गुणाधीनवृत्तिर्यः कथाविष्टश्च संततम्॥
मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः। सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च॥
न वाञ्छति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम्। ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने॥
इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम्। स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि च न वाञ्छति॥

श्रीभगवान् कहते हैं—मुझमें भक्ति रखनेवाला मानव मेरे गुणोंसे सम्पन्न होकर मुक्त हो जाता है। उसकी वृत्ति ुणका अनुसरण करने लगती है। वह सदा मेरी कथा-वार्तामें लगता है। मेरा गुणानुवाद सुननेमात्रसे वह आनन्दमें उठता है। उसका शरीर पुलकित हो जाता है और वाणी गद्गद हो जाती है। उसकी आँखोंमें आँसू भर आते अपनी सुधि-बुधि खो बैठता है। मेरी पवित्र सेवामें नित्य नियुक्त रहनेके कारण सुख, चार प्रकारकी सालोक्यादि ह्माका पद अथवा अमरत्व कुछ भी पानेकी अभिलाषा वह नहीं करता। ब्रह्मा, इन्द्र एवं मनुकी उपाधि तथा स्वर्गके सुख—ये सभी परम दुर्लभ हैं; किंतु मेरा भक्त स्वप्नमें भी इनकी इच्छा नहीं करता।

(देवीभागवत, नवम स्कन्ध)

रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०, डी० लिट्०)

शीर्षकस्थ सारगर्भित वाक्यका तात्पर्य गवेषणीय है। विचारणीय है कि पुनर्जन्म होता ही कब है। भगवद्-दर्शनसे पराङ्मुख जीव इस भवार्णवमें निरन्तर जन्मता है और मरता है। भगवान्के दिव्यरूपका दर्शन तथा उसमें रागात्मिका भक्ति ही जीवको मुक्ति देनेमें समर्थ होती है। **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'**—यह शास्त्रका सर्वथा सत्य वचन है। फलतः ज्ञानकी प्राप्ति मुक्तिकी साधिका है—इस सार्वभौम सिद्धान्तमें किसी प्रकारकी विप्रतिपत्ति नहीं है।

पूर्वोक्त वाक्यका सामान्य अर्थ है कि 'रथपर स्थित वामनके दर्शन करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता।' आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको जगन्नाथपुरीमें जो रथयात्रा होती है और श्रीकृष्ण रथपर चढ़कर अपनी ससुरालमें जो जाते हैं, उन्हें देखनेके लिये लाखों मनुष्योंकी भीड़का रहस्य इसी वाक्यमें अन्तर्निहित है। जगन्नाथजी वामनके प्रतिनिधि माने जाते हैं और रथस्थ जगन्नाथजीका दर्शन मुक्तिका साधक होता है—इसी भावनासे प्रेरित होकर श्रद्धालु जनता रथयात्राके उत्सवमें सम्मिलित होती है। यह तो हुआ इसका भौतिक तात्पर्य।

इस वाक्यका आध्यात्मिक तात्पर्य बड़ा गम्भीर है। वामन छोटे रूपसे बढ़ता-बढ़ता इतना विशाल होता है कि वह समस्त ब्रह्माण्डको तीन ही पगोंमें माप डालता है। इस प्रकार वह ब्रह्मका प्रतिनिधि है, जो **'अणोरणीयान् महीयान्'** है। ब्रह्म अणुसे भी अणुतर है तथा महान् महीयान् है। रथ इस शरीरका ही बहुचर्चित प्रतीक [है।] बड़ा ही विशद प्रतीक है—नाना इन्द्रियोंके द्वारा परिच[ालित] मनके द्वारा निगृहीत शरीरका। कठोपनिषद्के द्वारा यह रूप-कल्पना बड़ी प्रख्यात है—

> आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
> बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।
> (१।३

फलतः रथस्थ वामनका अर्थ है—शरीरके ऊपर आ[सीन] आत्मा, जो रथी (अर्थात् रथके स्वामी) की तरह [...] नियन्त्रण करता है तथा उचित कार्योंमें लगाता है। रूपक यहाँ इस विशेष तात्पर्यसे प्रयुक्त है कि रथको [जिस] प्रकार सारथि लगामके द्वारा कुमार्गसे बचाकर सु[मार्गपर] ले जाता है, उसी प्रकार परमात्मा इसको नियन्त्रणमें [...] है। वामनके दर्शनका अर्थ है—'आत्माका साक्षा[त्कार] आत्माके सच्चे अर्थका ज्ञान।' कहना नहीं होग[ा कि] आत्माके साक्षात्कर्ताके लिये पुनर्जन्मका विधान नहीं [है।] फलतः वह जीवन्मुक्त हो जाता है और पुनः इस सं[सारके] बन्धनमें कभी नहीं पड़ता।

धर्मकी महत्ता

धर्मसे अर्थ, अर्थसे काम और कामसे भोग एवं सुख उपलब्ध होते हैं। धर्मसे ही ऐश्वर्य, एकाग्रता और उत्तम स्वर्गीय [गति] प्राप्त होती है। विप्रवरो! धर्मका यदि सेवन किया जाय तो वह मनुष्यकी महान् भयसे रक्षा करता है। इसमें तनिक [भी] संदेह नहीं कि धर्मसे देवत्व और ब्राह्मणत्व भी प्राप्त हो सकते हैं। जब मनुष्योंके पूर्वसंचित पाप नष्ट हो जाते हैं, तब उ[नकी] बुद्धि इस लोकमें धर्मकी ओर लगती है। हजारों जन्मोंके पश्चात् दुर्लभ मनुष्य-जीवनको पाकर जो धर्मका आचरण [नहीं] करता, वह निश्चय ही सौभाग्यसे वञ्चित है। जो लोग कुत्सित, दरिद्र, कुरूप, रोगी, दूसरोंके सेवक और मूर्ख हैं, उन्होंने [पूर्व] जन्ममें धर्म नहीं किया है—ऐसा जानना चाहिये। जो दीर्घायु, शूरवीर, पण्डित, भोगसाधनसे सम्पन्न, धनवान्, नीरोग [और] रूपवान् हैं, उन्होंने पूर्वजन्ममें अवश्य ही धर्मका अनुष्ठान किया है। ब्राह्मणो! इस प्रकार धर्मपरायण मनुष्य उ[त्तम] गतिको प्राप्त होते हैं और अधर्मका सेवन करनेवाले लोग पशु-पक्षियोंकी योनिमें जाते हैं।

समाप्त होता है। दूसरी ओर हम क्या देखते हैं—कुकर्मोंका बड़े-से-बड़ा पहाड़, पापोंकी संचित राशि, गुरुहत्या-ब्रह्महत्यादि महापातक क्षणमात्रमें बात-की-बातमें कर्पूरकी भाँति उड़ते नजर आते हैं।

'ब्रह्महत्यादिकं घोरं सर्वं पापं प्रणश्यति।'
यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे॥

—इत्यादि वाक्य पौराणिक साहित्यमें सर्वत्र हैं।

ऐसे श्लोकोंका यथार्थ भाव न समझकर इन वाक्योंकी ओटमें बहुत मनुष्य मनमाने पापाचरणमें प्रवृत्त हो जाते हैं। शास्त्रकी मर्यादा आत्म-उद्धारक है, उपसंहारक नहीं। अतः ऐसे वाक्योंकी समन्वयात्मक भावनापर विचार करना आवश्यक है। उसीके वास्तविक अर्थको अपनाकर मानवकी पुनर्जन्मताका नाश हो सकता है, मर्त्य भी अमर्त्य हो जाता है।

केवल कोरा ज्ञान—सिद्धान्त लँगड़ा है, यदि उसमें प्रयोगात्मकताकी योग्यताका अभाव है; इसी प्रकार क्रियात्मक-शक्ति तबतक अपूर्ण है, जबतक उसमें ज्ञानका सम्पुट न होगा। घरमें घोर अंधकार हो, प्रकाशके समस्त साधन भी वर्तमान हों, परंतु यदि उनमें क्रियात्मकता न हो तो प्रकाश न होगा। अतएव बिना भावना, श्रद्धा और प्रेमके उतना लाभ न होगा, जितना अपेक्षित है। प्रत्येक धार्मिक कृत्यमें विधि-विधान—कर्मकाण्डका बड़ा बन्धन है। आजके कलिकालमें उनका यथार्थ निर्वाह हो जाय, यह सहज सम्भव नहीं। आचरणकी प्रधानताके साथ हृदयकी निष्कपटता, सात्त्विक भावोंकी बहुलता और व्यवहारकी निश्छलता सर्वोपरि है।

पतितपावनी माँ गङ्गाकी महिमा अपार है। उसके जलका ही नहीं, रजतकका महान् पुण्य प्रभाव है। जहाँ माता गङ्गाकी धूलि लग जाती है, वहाँ पापोंका पहाड़ भी धूलि बन जाता है। महाकवि पद्माकरका कवित्त है—

जेते तूने तारे, तेते नभमें न तारे हैं।

इस तरणतारिणी भावनामें कर्मकी पवित्रता, मनकी सात्त्विकता और वचनकी पावनता सापेक्ष है, इसी प्रकार—

'विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।'
'स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥'

—इत्यादि वाक्योंकी संगति है।

विष्णुचरण-उदक पीनेमें ही पुनर्जन्मता-नाशकी शक्ति नहीं अपितु उसके दर्शन, स्पर्शनमात्रमें भी विलक्षण चमत्कार पाया जाता है। भगवान् विष्णुके चरणोदक (जल) की बात छोड़िये, उनके चरणोंकी रजको लीजिये। उसमें कितना प्रभाव है! उसमें भी पुनर्जन्मता-नाशकी शक्ति अन्तर्निहित है। इसी मान्यताके बलपर गोस्वामीजीको कहना पड़ा—

'रावरे दोषु न पायन को, पग-धूरिको भूरि प्रभाव महा है।
पाहन तें बन बाहन काठ को कोमल है, जलु खाइ रहा है।'
(कवितावली, अयोध्या० ७)

पाषाणी अहल्याके उद्धारकी क्षमतातक इस रजमें है। रजसे उदककी महत्ता कई गुनी अधिक है, यह सर्वसम्मत है। इस प्रकार भगवद्भक्तमें अपने आराध्यके प्रति अनन्यनिष्ठा और अटूट श्रद्धा होगी, हृदयमें निश्छलता और पावन प्रेम होगा। भगवान् और भक्तके मध्यमें सांसारिक भोगात्मक ऐश्वर्यकी कड़ी समाप्त हो जायगी; तब 'पुनर्जन्म न विद्यते' की ओषधि अवश्य काम करेगी।

पाप-पुञ्जहारी भगवान् विष्णु, तापत्रयहरण उनके चरण-कमल और त्रिविध ज्वाला (तृष्णा)-हरण उनका चरणामृत, उसमें भी हरिप्रिया महारानी पटरानी तुलसी-दलका स्वारस्य हो और हृदयमें मीराँके समान अपने आराध्यके प्रति अनन्य तन्मयता—इसी तन्मयताके बलपर भोली-भाली मीराँ भगवान्‌का चरणामृत समझकर विषपान कर बैठी और पुनर्जन्मताके रोगपर उसने काबू पा लिया। ऋषि-मुनियोंने इसी चरणामृतके लिये अनेक जन्म साधना की। उनमें इसके प्रति अगाध श्रद्धा थी। उन्हें ज्ञान हो गया कि चरणामृत यथार्थमें क्या है। उसे पीकर उनकी पुनर्जन्मता नष्ट हो गयी और वे परम शान्तिमें लीन हो गये—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥
(गीता)

पुनर्जन्म न विद्यते

(लेखक—श्रीलक्ष्मीनारायणसिंहजी)

हमारे सद्ग्रन्थोंने यह बतलाया है कि जन्मसे पूर्व जब मनुष्य अपनी माताके गर्भमें नौ मासतक झिल्लीसे आवृत हो उल्टा टँगा रहता है तब उसे असह्य पीड़ा होती है। पेटके कारागारमें बँधकर लेशमात्र भी हिलना-डुलना सम्भव नहीं होता। नरकवास-जैसा दुःसह्य दुःख उठाना पड़ता है। फिर प्रसवके समय भीषण पीड़ा होती है। मरण-कालमें जन्म लेनेसे भी अधिक वेदना होती है, जब शरीरमें सैकड़ों बिच्छुओंके डंक मारनेकी-सी पीड़ा होती है। उस समय प्राणी मूक बन जाता है। उसको अपनी वेदनाओंको बतानेकी भी शक्ति नहीं रह जाती। वह अपने आत्मीयजनों, भाई-बन्धुओं, पुत्र-कलत्रों, परिचितों-को देखकर आँखोंसे अविरल आँसुओंकी धारा बहाता है। अन्तमें उसकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती है और वह अपने कर्म-संस्कारोंको लेकर चला जाता है।

यह है जन्म-मरणका दुःखमय रहस्य। मनुष्य स्वभावतः जबतक उसमें चेतना जाग्रत् नहीं होती, तबतक अपने जन्मके बाद शिशुकालमें भी अनेक प्रकारके कष्ट उठाता है, पर क्रमशः वह सारी बातोंको भूलकर इस तरह सांसारिकतामें उलझ जाता है कि वह अपने मनुष्य-जीवन-प्राप्तिके लक्ष्यसे विचलित हो जाता है और आवागमन (पुनर्जन्म)-के चक्करमें पड़ा रहता है।

ऐसे दुःखमय जन्म-मरणसे मुक्ति पानेकी बात विरले ही महात्मा सोचते हैं। पुनर्जन्म-मुक्ति-हेतुको खोजनेवालोंके लिये भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें यह बतला दिया है कि मनुष्य किस तरह पुनर्जन्मसे निवृत्त हो सकता है और उसके क्या साधन हैं।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

(गीता ८। १६)

'हे अर्जुन! ब्रह्मलोक आदि जितने सब लोक हैं, सबसे (ऐसे लोकको प्राप्त हुएको) पुनः लौटना पड़ता है (जन्म लेना पड़ता है); परंतु हे कुन्तीनन्दन! मुझे प्राप्त कर लेनेपर फिर जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ता।'

भगवान्‌ने अर्जुनको यह भी बतलाया है—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥

(गीता ८। १५)

'मुझे प्राप्त कर लेनेपर परमसिद्ध महात्मागण पुनः दुःखके स्थानरूप अशाश्वत जन्मको प्राप्त नहीं करते।'

यह परमगति कैसे होती है, इसको भी भगवान्‌ने गीतामें स्पष्ट समझा दिया है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥
अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

(८। १३, ५–७)

'जीवनान्तसमय ॐकाररूपी एकाक्षर ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और मुझ परमेश्वरका स्मरण करता हुआ जो साधक शरीरका त्याग करता है, वह परमश्रेष्ठ गतिको प्राप्त करता है।'

'जो मरते समय मुझ परमेश्वरका स्मरण करता हुआ देह छोड़कर जाता है, वह मेरे भावको प्राप्त करता है—इसमें संदेह नहीं है। हे अर्जुन! मनुष्य जिस-जिस भावको स्मरण करता हुआ अन्तमें देह त्यागता है, सदा उस-उस भावसे युक्त होनेके कारण उसी (भाव) को प्राप्त होता है। अतएव सब कालोंमें मुझ परमेश्वरमें मन और बुद्धि अर्पण कर, मेरा स्मरण कर और युद्ध कर। ऐसा करनेसे तू मुझ परमेश्वरको ही निःसंदेह पा लेगा।'

भगवान्‌ने कहा है कि जो मनुष्य ॐकाररूपी एकाक्षर ब्रह्मका उच्चारण तथा भगवान्‌का स्मरण करता हुआ मरता है, वह पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाता है। अब यह विचारना है कि मरते समय यह उच्चारण तथा स्मरण कैसे हो। मनुष्य साधारणतया अपना सारा जीवन सांसारिकता, आत्मीयता, बन्धुता, पारिवारिकताके उलझनोंमें फँसा रहनेके कारण कभी

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
(४ । ६–८)

'मैं अजन्मा, अविनाशी-स्वरूप तथा प्राणीमात्र (भूतों) का ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको स्वाधीन के अपनी शक्तिसे जन्म लेता हूँ। जब-जब धर्मका ह्रास जाता है और अधर्म बढ़ जाता है, तब-तब मैं धर्मका त्थान करनेके लिये जन्म धारण करता हूँ। साधुओंकी ा करने, दुष्टोंका संहार करने, धर्मका पुनः स्थापन करनेके ये युग-युगमें अवतार लेता हूँ।'

उपर्युक्त वचनोंमें भगवान्ने बतलाया है कि जब ामें अनाचार, अत्याचार, दुराचार, दुष्कर्म, भ्रष्टाचार, नैतिकता आदिकी प्रबलतासे धर्मका लोप हो जाता तब ईश्वर ऐसे पापोंको मिटानेके लिये, धर्मका उत्थान नेके लिये मनुष्यरूपमें अवतार लेते हैं। ये अवतार विशेष स्थितियोंमें ही हुआ करते हैं। रामायणकालमें जब निशाचर षियोंको भाँति-भाँतिके कष्ट देने लगे, उनके यज्ञोंको ध्वंस ने लगे, अनन्त पापाचार होने लगे, रावण दक्षिणमें अपने बलसे गर्वित हो अनेक प्रकारका ऊधम मचाने लगा—तब रका अवतार राम-रूपमें महाराज दशरथके यहाँ अयोध्यामें ा। भगवान् रामने किस तरह राक्षसोंका नाश किया, र्मका उत्थान करके धर्मध्वजा फहरायी—यह रामायणमें अङ्कित । ठीक उसी तरह कृष्णावतार उस युगमें हुआ, जब कंस, ासंध, प्रलम्बासुर, बकासुर-जैसे अनेक असुर राजमदमें चूर कुरुवंश, यदुवंशमें अनेकों निरङ्कुश, उच्छृङ्खल जन न हो गये थे, अनेक प्रकारके अनाचार बढ़ गये थे। तिकताका अधःपतन हो गया था, असुरोंके अत्याचारसे डित हो यादवलोग कुरु, पञ्चाल, विदर्भ आदि अनेक ोंमें भाग गये थे।

उन लाखों असुरोंके अन्याय और अत्याचारके ासे पृथ्वी जब बहुत पीड़ित हुई, तब वह गौका रूप कर, आँखोंमें आँसू भरे हुए, दुःख और खेदके कारण र स्वरसे विलाप करती हुई ब्रह्माकी शरणमें गयी और ने सारे कष्टका हाल उन्हें कह सुनाया। तब ब्रह्माजी शंकर, ा तथा देवताओंके साथ क्षीरसागरके तटपर पहुँचे और एकाग्र होकर पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे जगदीश, देवदेव, मङ्गलरूप परमपुरुषकी स्तुति करने लगे और उन्होंने अपनी समाधि अवस्थामें परमेश्वरकी वह अलौकिक वाणी सुनी कि 'परमेश्वर शीघ्र अवतार लेकर पृथ्वीका भार उतारेंगे।' उसी वाणीके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार मथुरामें वसुदेव-देवकीके घर हुआ। उस समय भगवान्ने असंख्य दुराचारी असुरोंको मारा, महाभारत-ऐसा महान् युद्ध हुआ। भगवान् श्रीराम या श्रीकृष्णचन्द्रके अवतार ऐसी विषम परिस्थितियोंमें होते हैं और ऐसे अवतारी पुरुष अपनी ईश्वरीय शक्तिसे महान् आश्चर्यजनक काम करते हैं। श्रीरामद्वारा रावण-जैसे महान् पराक्रमीका हनन, मेघनाद-ऐसे योधाका वध आदि दिव्य शक्तिके द्वारा हुआ था, उसी तरह भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा कालिय नागका दमन, पूतनावध, अघासुर-बकासुरका वध, नखपर गोवर्द्धन-धारण, महाभारत-जैसे भीषण संग्रामद्वारा दुर्योधनादि-सरीखे अत्याचारियोंका मानमर्दन—ऐसे महान् कार्य दिव्य शक्तिद्वारा ही हुए थे। ऐसे अवतरण दैवी स्फुरणासे, भगवत्कृपासे, भगवदिच्छासे दैवी शक्तियोंके साथ हुआ करते हैं। इसे ही 'दिव्य जन्म' कहते हैं और ऐसी दैवीशक्तिके द्वारा धर्म-संस्थापनार्थ जो कर्म होते हैं, वे ही 'अलौकिक कर्म' हैं। अवतारी पुरुष जो कर्म करते हैं, वे ही दिव्य कर्म हैं। वे कर्म कैसे होते हैं, इसका तत्त्व जाननेपर मनुष्य उन्नति करता है, भगवत्स्वरूप बन जाता है। अवतार लेकर भगवान्ने किस प्रकार अपनी दिव्यशक्तिसे सर्वथा आसक्ति-कामना, अहंता-ममतासे स्वाभाविक रहित हुए आश्चर्यजनक कार्य किये, किस प्रकार महान् पराक्रमी दुष्टोंका दमन किया, किस तरह सज्जनों, साधुओं, ऋषियों, पीड़ितोंकी रक्षा की, लुप्त धर्मका किस तरह पुनरुत्थान किया, अनाचार, अत्याचार, दुराचार और अनैतिकतासे धर्मकी जो ग्लानि हुई थी, उसको किस तरह मिटाया—इन्हीं बातोंपर गम्भीरतासे विचारनेपर मनुष्यको ज्ञान होता है, ईश्वरके प्रति आकर्षण होता है और तब वह अपेक्षित पद प्राप्त करता है। दिव्यकर्म दैवीगुणोंसे युक्त कर्म हैं, जिनका गीताके १६वें अध्यायके आरम्भमें दैवी सम्पदाके नामसे वर्णन भगवान्ने किया है; उन गुणोंके मननसे अवतारी पुरुषोंके व्यवहारका मनन करना दिव्य गुणोंका दर्शन करना है। दिव्य विभूतिके दिव्य कर्मोंका अनुशीलन परमपदको प्राप्त करा देता है। इसीलिये भगवान्ने कहा है 'जो मेरे दिव्य जन्म और कर्मको इस प्रकार तत्त्वत

मान लेता है, उसको पुनर्जन्मके दुःख नहीं भोगने पड़ते हैं और वह परमेश्वरमें लय हो जाता है। जो भगवानके उपर्युक्त दिव्य जन्म और कर्मको तत्त्वतः नहीं जानता, उसको नियमानुसार जन्म लेना ही पड़ता है; भले ही वह इच्छा करे या न करे, परवश होकर उसे पुनः जन्म लेना ही पड़ता है। ऐसी परवशता दिव्य जन्म कर्मके रहस्यको जाननेवाले परमात्मस्वरूप बने मुक्त नहीं होती। उन्हें पुनर्जन्म-धारण करनेके लिये को नहीं कर सकता; क्योंकि वे स्वयं पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाते हैं।

जहाँ मृत्यु भी मङ्गलकारी है

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

यह ध्रुव सत्य है कि जगत्में मृत्युसे बढ़कर दूसरा कोई कष्ट नहीं है। मरकर अनुभव प्राप्त करनेवाले उसी समय 'मृत्यु-कष्ट'को बतलाने तो नहीं आते, किंतु मरते समय जीवको जो कष्ट होता है, उस दृश्यको देखकर यही अनुभव किया जाता है कि कष्ट बहुत होता होगा। बहुधा अपने सगे-सम्बन्धियोंको मरते समय बहुत लोग देखते हैं। दर्शकोंको मृतकके कष्टको देखकर कष्टकी कुछ अनुभूति तो हो ही जाती है। शास्त्रकारोंने जन्म और मृत्युकष्टको समान माना है—

जनमत मरत दुसह दुख होई।

लेखका शीर्षक देखकर कुछ लोग सहसा आश्चर्यमें पड़ जायँगे कि वह कौन-सा स्थान है, 'जहाँ मृत्यु भी मङ्गलकारी है।' मृत्यु और वह भी मङ्गल-सूचक—यह पहेली सबकी समझमें सहसा नहीं आ सकती। जो मोक्षमें विश्वास करते हैं और पुनर्जन्म मानते हैं, उन्हें ही यह बात समझमें आ सकती है। मृत्यु मङ्गलकारी क्यों है? इसका उत्तर यही है कि जो मोक्षमें विश्वास करते हैं, उनके लिये भारतमें भगवान् शंकरकी पावन-पुरी—वाराणसी ऐसा पवित्र तीर्थ है, जहाँ मृत्यु भी मङ्गलकारी है। मृत्यु एक ऐसी घटना है, जो निश्चितरूपमें घटती है। जो जन्म लेता है, वह अवश्य मृत्युका आलिङ्गन करता है। वह अवश्यम्भावी मृत्यु काशीपुरीमें मङ्गलकारिणी बन जाती है; क्योंकि शास्त्रका आदेश और श्रद्धालुओंका विश्वास है कि वाराणसीमें मरनेपर 'मोक्ष'की प्राप्ति होती है।

मोक्षकी आवश्यकता

'काश्यां मरणान्मुक्तिः'—काशीमें मरनेपर मुक्ति मिलती है, यह शास्त्रवाक्य है। प्रश्न उठता है कि 'काशीमें मरनेपर यदि सभी जीव मोक्ष पा सकते हैं, तो एक दिन हो सकता है कि जब सभी जीवोंका मोक्ष हो जा संसारकी सृष्टि ही समाप्त हो जाय। सम्भव है मनुष्य एक-न-एक दिन काशीमें मृत्युके समय पहुँ और मरकर मोक्ष प्राप्त कर लें।' बात सत्य है। कि सम्भव नहीं। अद्वैतवादी ब्रह्मके उपासक सृष्टिको लीलाका विषय मानते हैं। अन्य दार्शनिक जग जीवोंके भोगार्थ मानते हैं। फिर भी यही सिद्धान्त है कि जगत् और जीव दोनों परमेश्वरकी महिमामा सभी जीवोंकी संख्या गिनी तो नहीं जा सकती जीवोंके समूहोंकी संख्या अनन्त होनेमें कोई संदेह भारतीय प्राचीन भूगोलके आधारपर ब्रह्माण्डके प्रमाण पचास कोटि योजन अनुमानित है। पाताल लोकपर्यन्त इस ब्रह्माण्डमें जल, स्थल और आ कोई चप्पा नहीं बचा, जहाँ जीव न हों। यदि किस विशेषपर मरनेसे जीवको मोक्ष मिल जाता हो सृष्टिका अन्त नहीं आ सकता। मोक्षमें भी सायुज्य बड़ी महिमा है और काशीमें मरनेवालेको सायुज्य प्राप्ति होती है—

यथा स्थानविशेषेषु विविधा मुक्तिरीरिता
न तादृशी मुक्तिरन्यत्र काश्यां मुक्तिर्विलक्षणा

अतएव वाराणसीमें मरनेवाला जीव अन्तमें लीन हो जाता है, उसे पुनः जन्मग्रहण नहीं करना यह एक मत है, किंतु प्रामाणिक है।

विना ज्ञानके मुक्ति नहीं

पुनः यह प्रश्न उठता है कि 'काशीमें मरनेमा मुक्ति मिल जाती हो, तो काशीमें रहनेवाले बन पापा

। विरत नहीं होंगे ! और तब वाराणसीमें पापाचरण नहीं समझा जायगा ! इस प्रकार काशी एक प्रकारसे स्थली ही बन जायगी।' किंतु बात ऐसी नहीं है। ीमें पापाचरण करनेवाले तो भीषण यातनाके अत्यधिक ाभागी होते हैं, साथ ही वाराणसीमें किया गया 'वज्रलेप' बन जाता है। हाँ काशीके पापियोंकी विशेषता अवश्य है कि उन्हें स्थूल जन्म ग्रहण करना पड़ता; परंतु पापोंके अनुसार मोक्षसे पूर्व उन्हें ्नुसार न्यूनाधिक 'भैरवीयातना' नामक विशेष कष्ट ाना पड़ता है। अवश्य ही उसकी भी अधिक-से-बेक समयकी एक अवधि निश्चित है। 'भैरवीयातना' ा लेनेपर उनका मोक्ष हो जाता है। यह वाराणसी-विशेष प्रभाव माना जाता है। कोई ऐसा भी ते हैं कि काशीमें मरनेवालोंको ज्ञानकी आवश्यकता ीं है। पर यह बात युक्तियुक्त नहीं है। बिना ज्ञानके क्ष नहीं है—'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'—यह श्रुतिवाक्य क्या त्य है ? विद्वानोंका कथन है कि 'ज्ञानके बिना काशीमें नेपर भी मुक्ति नहीं होती।' यह तर्क भी श्रुतिसम्मत है। ीं काशी-मोक्षवादियोंका यह कथन है कि 'काशीमें मृत्युके ाय शंकरभगवान् जब 'तारक मन्त्र'का उपदेश देते हैं, उसी समय जीवको ब्रह्मका 'ज्ञान'भी करा देते हैं। ारकमन्त्र' और 'ब्रह्मज्ञान'के प्रभावसे जीव मोक्ष प्राप्त लेता है। अतएव श्रुतिवाक्यमें कोई विरोध नहीं जाता।"

पुनः यह तर्क उपस्थित होता है कि 'यदि भगवान् ार सभी जीवोंको तारकमन्त्रका उपदेश देकर मोक्ष ान कर देते हैं तो पापात्माओं और पुण्यात्माओंमें भेद कैसे ा जा सकता है ?' इसका उत्तर देते हुए शास्त्रवादियोंने सिद्ध किया है कि 'काशीमें पापाचरण करनेवाले जनोंको वीयातना अधिक कालतक भोगनी पड़ती है तथा पुण्यकर्म ्नेवालोंको तत्काल मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। अतः ाचरण तो कहीं भी श्रेयस्कर नहीं है और कहीं उसका समर्थन नहीं है।' पुनः यह प्रश्न उपस्थित होता कि 'फिर काशीमें रहनेसे जीवको क्या लाभ ?' इसका ार शास्त्रवादियोंकी ओरसे बहुत सुन्दर और मनोवैज्ञानिक ा गया है। उनका यह कहना है—"यदि जीव काशीमें कर काशीमें मरता है तो चाहे कुछ दिन उसे भैरवीयातना ्गनी पड़े, पर उसका पुनर्जन्म नहीं होता और 'मोक्ष' पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार हो जाता है। यदि नि काशीवासी जीव मृत्युके समय काशीसे अन्यत्र तनुका त्य करता है तो दूसरे जन्ममें पुनः-पुनः उस जीवको काशी ही जन्म प्राप्त होता है और उसकी मृत्यु भी काशीमें होती है। काशीमें मरनेपर 'मोक्ष' भी निश्चित है।"

वाराणसीकी विचित्रता

शास्त्रोंमें यह भी कहा गया है कि काशीपुरी शंकर त्रिशूलपर स्थित है। पृथ्वीमण्डलसे वाराणसीका सम्ब नहीं। शंकरका त्रिशूल भी आधाररहित है। इतना नहीं, वाराणसीमें मरनेवालोंके लिये उत्तरायण अ दक्षिणायनका भी विचार नहीं करना पड़ता। पवित्र अ अपवित्र स्थानका भी निराकरण नहीं करना पड़ता गङ्गातट या गलीमें भी भेद नहीं माना जाता। काशीमें जहाँ-कहीं भी जीव मर जाता है तो शंकरभगवान् उसे 'तारकमन्त्र' देकर, 'ब्रह्मज्ञान'से अभिषिक्त कर 'मोक्ष' प्रदान करते हैं—

> भूमौ जलेऽन्तरिक्षे वा यत्र क्वापि मृतो द्विजः।
> ब्रह्मात्मैकत्वमाप्नोति काशीशक्तिरपोहिता॥

काशीपुरीमें मध्यमेश्वरमें जो शिवलिङ्ग है, उसे केन्द्र-बिन्दु मानकर देहली-विनायकतककी रेखासे यदि एक वृत्त बनाया जाय तो उतने क्षेत्र (वृत्तान्तर्गत)में काशीपुरी मण्डलाकार बनती है। उतने क्षेत्रके अन्तर्गत मरनेवाले जीवोंको मोक्ष प्राप्त होता है। वाराणसीके मण्डलाकार घेरेमें पूर्वमें गङ्गातटका भाग है, पश्चिममें पाशपाणि गणेश, दक्षिणमें अस्सी नदी और उत्तरमें वरुणा नदी है। वाराणसीके भीतर ही 'अविमुक्त' नामक क्षेत्र है। विश्वनाथ-मन्दिरसे दो सौ धनुष नापनेपर चारों ओर अविमुक्त क्षेत्रका मण्डलाकार क्षेत्र बनता है। अविमुक्त क्षेत्रके भीतर 'अन्तर्गृह' क्षेत्र है। अन्तर्गृहके चारों ओरकी सीमा निम्न प्रकारसे है—पश्चिममें 'गोकर्णेश्वर', पूर्वमें आधी गङ्गा, उत्तरमें 'भारभूतेश्वर' और दक्षिणमें 'ब्रह्मेश्वर'। ब्रह्मपुराणमें श्री-ब्रह्माजीने श्रीमध्यमेश्वर शिवसे पाँच कोस तककी सीमाका माहात्म्य बतलाया है। कहीं-कहीं यह भी प्रमाण मिलता है कि अन्तर्गृहसे अन्य तीन क्षेत्रोंमें मरनेपर प्राणीको शिवके सालोक्य, सांनिध्य, सारूप्य मोक्षकी प्राप्ति होकर तब विदेह-मोक्ष अर्थात् 'सायुज्य-मोक्ष'की प्राप्ति होती है। इस मतका खण्डन है। कहा गया है—"काशीमें मरनेपर 'सायुज्य मोक्ष' ही मिलता है।"

'काश्यां मरणान्मुक्तिः' सायुज्यम्'।'

उपनिषदोंके अनुसार काशीके प्रत्यक्ष क्षेत्रोंमें मरनेपर मन्त्र'के प्रभावसे पुनः गर्भवास नहीं करना पड़ता।

मरणं मङ्गलं यत्र

'काशीमें मृत्यु मङ्गलकारी' क्यों कहा गया? इसका यही है कि काशीपुरीका महत्त्व बाबा विश्वनाथके मृत्युके समय प्राप्त 'तारकमन्त्र'के प्रभावसे मोक्ष प्राप्त है। बिना 'सायुज्य मोक्ष'के जीवका बार-बार जन्म लेने मृत्युको प्राप्त करनेसे छुटकारा नहीं मिलता। जबतक शरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होता, तबतक मोक्ष सम्भव है? जीवको मोक्ष अभीष्ट है। बार-बार जन्म- जीवको बड़ा कष्ट होता है। उससे छुटकारा पानेके योगी, संत, महात्मा लाखों प्रयत्न करते हैं—तपस्या, अनुष्ठान, दान आदि साधन करते हैं। इन प्रयत्नोंमें पूर्ण सफलतामें संदिग्धता रहती है। शास्त्रके सिद्धान्तोंमें वाराणसीमें वास करके मृत्यु प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करना सरल है। हिंदू इसीलिये मरनेके पूर्व काशीमें आकर निवास करते हैं। काशीमें यह भी कहावत है कि 'मरते समय काशीमें जीवमात्रका दक्षिण कान ऊपरको हो जाता है, अथवा एक पार्श्वमें हो जाता है।' इसका आधार यही है कि शिवजी जीवको उपदेश देनेके लिये उसका दक्षिण कर्ण ऊपर कर देते हैं और उसीमें 'तारकमन्त्र'का उपदेश देते हैं।

काशीमें निवासका महत्त्व उतना नहीं, जितना मरणका महत्त्व है। अतः लिखा गया है—काशीमें मृत्यु ही मङ्गलकारी है।

> यः कश्चिद् भेदकृल्लोके स याति नरके ध्रुवम्।
> अमङ्गलं जीवनं तु मरणं यत्र मङ्गलम्॥

श्रीभगवान्‌का दिव्यधाम एवं उसकी प्राप्ति

(लेखक—पण्डित श्रीओङ्कारदत्तजी शास्त्री)

'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते'—इस भगवद्वचनके अनुसार जैसे वान्‌का श्रीविग्रह दिव्य, चिन्मय एवं सनातन है, वैसे ही का धाम भी दिव्यतादि-गुणसम्पन्न है। भगवान्‌का धाम तलोकके अन्तर्गत भी होता है, जैसे—अयोध्या, मथुरा, ावन, काशी आदि। एवं प्राकृत लोकके बाहर जैसे—वैकुण्ठ, गोलोक, साकेतादि। इसके अतिरिक्त तोंका हृदय भी भगवान्‌का धाम माना गया है, यह बात द्भागवतकी सर्वमान्य श्रीधरी टीकासे प्रमाणित होती है। सोना कहीं भी पड़ा रहे, वह जंगसे असङ्ग रहता है एवं में रहनेपर भी जैसे कमल जलसे असम्पृक्त रहता है, प्रकार प्राकृतलोकके अन्तर्गत रहनेपर भी भगवान्‌के [illegible]

रखते हैं, किंतु अपने हृदयधाममें ही अपने आराध्यकी उपासना-सेवा करते हुए चाहे जहाँ जीवनको सफल एवं सरस बनाकर रहते हैं, वे प्रथम रुचिके भक्त हैं। दूसरी रुचिके वे हैं, जो साधनकालमें भी श्रीवृन्दावनादि धाममें रहकर साधना-उपासना करते हैं तथा देहावसानके अनन्तर भी सिद्ध देह पाकर वहीं रहना चाहते हैं। गोलोकमें जाना भी उन्हें इष्ट नहीं है। वे कहते हैं—'गोलोकमें तो भगवान्‌की जन्मलीला एवं बधाई-लीला नहीं होती, अन्य लीलाएँ ही होती हैं; किंतु श्रीवृन्दावन-गोकुलादिमें तो भगवान्‌की जन्मलीला, बधाई-लीला भी होती हैं; अतः श्रीवृन्दावन गोलोकसे भी बढ़कर है।' ऐसे भक्त दूसरी रुचिके होते हैं।

धामोंमें भी देहावसानके अनन्तर साधक इच्छानुसार जा सकता है; किंतु जो हृदयको 'भगवान्का धाम' न बनाकर 'भवका धाम' बनाते हैं तथा अन्तमें दिव्य धाममें प्रवेश पाना चाहते हैं, ऐसे साधक तो 'सदा तद्भावभावितः' के विपरीत आचरण करनेसे उपहासके ही पात्र बनते हैं। अच्छा, तो अब हृदयको कैसे भगवान्का धाम बनाया जाय---इसपर विचार करना है।

प्रकृतिके गुण हैं---तीन । उनमें तमोगुण भारी होनेसे जीवको जीवनकालमें ही जैसे आलस्य-निद्रामें डालकर चेतना-शून्य रखता है, वैसे ही अन्तमें भी नीचेकी ही ओर ढकेलता है। रजोगुणमें क्रिया तो है, किंतु ऊर्ध्वगामिनी नहीं है; अतः वह जीवको भोगोंमें ही भटकाता है और अन्तमें भी भोग-देहकी ही प्राप्ति कराता है। किंतु सत्त्वगुणमें लाघव एवं सूक्ष्मता होनेसे वह जीवनकालमें उच्च विचारोंमें लगाकर शरीरसे ऊपर उठाता है एवं अन्तमें ऊर्ध्वगति प्रदान करता है। सत्त्वमें स्थिति होनेसे हृदय शुद्ध होता है, उसमें साक्षात्कार होता है---'सत्त्वं शुद्ध्यद्दर्शनम्'। पुनः शुद्ध भावनाके आश्रयसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं। सा[illegible] की प्राप्तिके लिये स्वधर्माचरणके साथ-साथ संयम-[illegible] पालन एवं सात्त्विक आहार-विहार आवश्यक है। [illegible] आहारके लिये गृहस्थको अर्थशुद्धिपर ध्यान रखना तथा यतिको स्वादुभोजन एवं एकत्र-भोजन वर्जित श्रेयस्कर है। केवल पदार्थोंका सात्त्विक होना ही पर्या[illegible] है। ऐसा करनेसे जब चित्त शुद्ध हो जाय, तब उसमें भा[illegible] बीज वपन करनेके लिये भक्तोंका सत्सङ्ग करे। फिर [illegible] अपना श्रद्धाभाजन---गौरवास्पद बनाकर, उनसे भजन सीखकर, अपनी रुचि एवं योग्यतानुसार नामजप, लीला-चिन्तनादि साधनोंको अपनाकर श्रद्धा-विश्वा[illegible] निरन्तर दृढतासे भजन करे। ऐसा करनेसे करुणाव[illegible] प्रभु उसके हृदयमें आकर विराजमान हो जाते हैं।

परम धामका वर्णन

(लेखक---स्वामी श्रीनिर्विकारानन्दजी सरस्वती)

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने 'परम धाम'के विषयमें निर्देश किया है---

न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

(१५ । ६)

'जहाँपर अग्नि एवं चन्द्रमा और सूर्यका प्रकाश नहीं पहुँच पाता और जहाँपर पहुँच जानेपर फिरसे पुनरागमन नहीं होता, वह धाम मेरा परम धाम है।'

श्रीमहाभारतमें लिखा है कि जब श्रीगरुड़जी इन्द्रलोकमें अमृत लेने गये, तब उन्हें एक-एक तत्त्वका आवरण पार करना पड़ा था। अर्थात् जिस लोकमें हैं तो पाँचों तत्त्व, किंतु भूतत्त्वकी विशेषता है; उसका नाम 'भूलोक' पड़ गया। अब इसके ऊपर गतिमान् होनेपर एक घेरा ऐसा आता है कि जहाँपर चार ही तत्त्व हैं; किंतु वहाँपर जल-तत्त्वकी विशेषता है। इसी घेरेमें पहुँचनेके पहले एक बहुत मोटा कुहरेका घेरा पार करना पड़ता है। फिर तीन तत्त्ववाला आवरण है; उसमें 'अग्नि-तत्त्व'की विशेषता है। फिर दो तत्त्ववाला घेरा आता है, जिसमें वायु तत्त्वकी विशेषता रहती है; तब अन्तमें शुद्ध आकाश-त[illegible] घेरा आता है। इसमें दूसरा कोई भी तत्त्व नहीं रहता। घेरेके बाद भी 'अहंकार'का आवरण और फिर [illegible] आवरण आता है। तब विरजानन्दका 'चतुर्दिक्-मण्डला[illegible] घेरा आता है। उसी घेरेके भीतर शुद्ध-चिन्मय दिव्य-[illegible] परिवेष्टित 'परम धाम' आता है, जिसके भीतर [illegible] सूर्यके प्रभाववाले परात्पर ब्रह्म विलसित हो रहे हैं [illegible] भक्त अनन्य उपासनाद्वारा परात्पर ब्रह्मकी सेवामें [illegible] जाते हैं, उनका फिर पुनरागमन नहीं होता है; परम धामको छोड़कर और जितने भी अन्यान्य लो[illegible] वहाँपर पहुँचे हुए प्राणियोंको पुण्य भोग लेनेके प[illegible] 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति---' पुनः इसी मृत्युले[illegible] लौटना पड़ता है; क्योंकि ये सभी लोक किसी-न-किसी तत्त्व घेरेमें ही रहते हैं। इन लोकोंमें जो देह प्राप्त होती है, उ[illegible] भी वही तत्त्व विशेष रहता है। इसीलिये उसमें पुण्य भोग[illegible] क्षमता रहती है।

'परम धाम' कितनी दूर है, थोड़ी-सी इसकी कल[illegible] कर ली जाय, तब अन्य बातोंपर विचार किया जा[illegible] जिस सूर्यमण्डलमें हमारी पृथिवी निवास करती है, [illegible]

भगवान् विष्णु ही डूबनेसे बचानेवाले जहाज हैं

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम् ।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवतु शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥

'जो संसारसागरमें गिरे हुए हैं; [सुख-दुःखादि] द्वन्द्वरूपी वायुसे आहत हो रहे हैं; पुत्र, पुत्री, स्त्री आदिके पालन-पोषणके भारसे आर्त हैं और विषयरूपी विषम जलराशिमें बिना नौकाके डूब रहे हैं, उन पुरुषोंके लिये एकमात्र जहाजरूप भगवान् विष्णु ही शरण हों।'
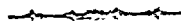
श्रीवैकुण्ठधाम और उसकी प्राप्ति

(लेखक—राष्ट्रपतिपुरस्कृत डा० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

अखिलब्रह्माण्डनायक श्रीविष्णुभगवान्‌के वैभवका वर्णन शेष और शारदा भी नहीं कर सके हैं। नेति-नेति कहकर श्रुति-शास्त्रोंने भी विश्राम किया है। फिर भी वह इतना मनोरम और आकर्षक है कि मनीषि-वृन्द उसके प्रतिपादनमें सदा ही दत्तावधान रहा है।

यह विश्वप्रपञ्च, जिसमें अनन्त ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं, कितना विशाल है—इसका निर्णय आजके वैज्ञानिक भी नहीं कर सके हैं। नील गगनमें प्रकाशमान तारावलियोंको देखकर मन विस्मयसे परिपूर्ण हो जाता है। सृष्टिकी इयत्ताका पता किसीको भी नहीं। 'इयमियत्ती' कहकर अप्रतिपाद्यमान इस समस्त सृष्टिमें जो परम सत्ता अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट है, वही 'विष्णु'-शब्दवाच्य है। परंतु जितनी यह सृष्टि है, उतने ही विष्णु हैं—यह उक्ति युक्ति नहीं है। यह सृष्टि उनके एकांशमें है। यह उनकी एकपाद्-विभूति है—यह त्रिगुणमयी है।

नामान्तर

श्रीविष्णुकी त्रिपाद्-विभूति सच्चिदानन्दमयी है। वह परमपद, परमव्योम, सनातन आकाश, दिव्य स्थान, परम-स्थान, पर-स्थान, परागति, अनामय-पद, शाश्वत-पद, महाविभूति, नित्यविभूति, ब्रह्मपुर, ब्रह्मलोक और वैकुण्ठ नामसे अभिहित है।

परतःप्रकाश्य होता है और अजड पदार्थ होता है—स्वयंप्रकाश। वैकुण्ठ स्वयंप्रकाश सत्ता है। अतएव उसकी अनादिषड्गुणमयता स्वयंसिद्ध है। ब्रह्मतन्त्रमें इस रहस्य-का उद्घाटन करते हुए कहा गया है—

> लोकं वैकुण्ठनामानं दिव्यं षाड्गुण्यसंयुतम्।
> अवैष्णवानामप्राप्यं गुणत्रयविवर्जितम्॥

अर्थात् 'वैकुण्ठ-नामक श्रीविष्णुभगवान्‌का जो दिव्य धाम है, उसमें प्रकृतिके तीनों गुणोंका अस्तित्व नहीं है। वहाँ तो केवल ज्ञानादि षड्गुणका ही विलास है।'

प्रकृतिसे परे

ऋग्वेदका एक मन्त्र है—

> प्र तद् ते अद्य शिपिविष्ट नामा-
> र्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्।
> तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्
> क्षयन्तमस्य रजसः पराके॥
> (७। १००। ५)

अर्थात् 'हे अणु-अणुमें व्यापक प्रभो! आपके लीला-चरित्रोंको जाननेवाला मैं मित्रावरुणनन्दन वसिष्ठ आपके नामका स्तवन (गान) कर रहा हूँ। मैं बलहीन हूँ। आप बलके निधान हैं। आप इस रजोगुणसे परे (आपके

वैकुण्ठ

(अ) त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः ।
ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥
यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवान् शब्दगोचरः ।
(श्रीमद्भागवत ३ । १५ । १३, १५)

अर्थात् 'ब्रह्माजीके मानस-पुत्र सनकादि एक दिन निखिल-हेय-प्रत्यनीक श्रीभगवान् वैकुण्ठके सर्वलोक-नमस्कृत वैकुण्ठ-धामको गये, जहाँ श्रुतिप्रतिपाद्य आद्य-पुरुष श्रीविष्णु विराजमान रहते हैं ।'

(आ) ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ ।
वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥
(श्रीमद्भागवत ९ । ४ । ६०)

अर्थात् (महाराज अम्बरीषके रक्षणमें दत्तचित्त सुदर्शन चक्रके भारसे भयभीत दुर्वासाको जब कहीं आश्वासन न मिला) 'तब वे निराश होकर श्रीभगवान्‌के वैकुण्ठनामक परमपदमें पहुँचे, जहाँ विष्णुभगवान् लक्ष्मीजीके साथ निवास करते हैं ।'

(इ) ततो वैकुण्ठमगमद् भास्वरं तमसः परम् ॥
यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः ।
शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः ॥
(श्रीमद्भागवत १० । ८८ । २५-२६)

अर्थात् (अपने ही वरदानसे बढ़े हुए वृकासुरसे संत्रस्त होकर देवाधिदेव शिवजी आत्मरक्षाके विषयमें निराश होकर) 'वैकुण्ठ-धाममें गये, जो बड़ा प्रकाशमान है, प्रकृतिसे परे है; जहाँ शान्त-चित्त, न्यस्त-दण्ड संन्यासियोंकी परमगति श्रीमन्नारायण निवास करते हैं और जहाँसे कर्मवश पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती ।'

वैकुण्ठका अवतार

एक बार रैवतनामक पञ्चम मन्वन्तरमें विष्णुभगवान् शुभ्रनामक महर्षिके यहाँ अवतीर्ण हुए थे । उस समय दिव्यधामका भी अवतार हुआ था—

वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः ।
(श्रीमद्भागवत ८ । ५ । ५)

नित्य भगवद्धाम वैकुण्ठ पञ्चम मनु ही नहीं, प्रथम मनुके भी स्रष्टा लोकपितामह ब्रह्माजीके आद्य-कल्पसे भी पूर्व विराजमान था । ब्रह्माजीने तपश्चरणके द्वारा उसीका दर्शन किया था । वही परमपद है । वहाँ श्री नित्य-भक्तोंसे उपासित होते हुए विराजमान त्रिगुणजननी माया ही नहीं है, तो अन्या कार्योंकी तो कथा ही क्या है ? शुकदेवजीकी

तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः
संदर्शयामास परं न
न यत्र माया किमुता हरे-
रनुव्रता यत्र सुरासुरा
(श्रीमद्भागवत २ ।

अनिर्वचनीय सौन्दर्य

वैकुण्ठधामके सौन्दर्य-माधुर्यकी छटाका किस कविकी लेखनीमें सामर्थ्य है ? उस दिव्य प वैभवका दिग्दर्शन हमें परम तत्त्वके साक्षात्कर्ता वाणीमें अवश्य प्राप्त होता है । श्रीमद्भागवतके द्वि नवम अध्यायमें तथा तृतीय स्कन्धके पंद्रहवें छटा अनुभवनीय है । आचार्य रामानुजके प्रतिपादित वैकुण्ठ-वैभव भी ऋग्वेदीय 'विष्णो मध्व उत्सः' तथा 'परमं पदमवभाति भूरि' ही है ।

वहाँ कौन नहीं जाते ?

'जो व्यक्ति सांसारिक काम-क्रोध-लोभके प्रप भगवान्‌से पराङ्मुख हैं और परमात्मासे विमुख रचना या उनके अनुवादोंमें दत्तचित्त रहते परमपदकी प्राप्तिसे वञ्चित रह जाते हैं ।'
(श्रीमद्भागवत ३ । १

वहाँ कौन जाते हैं

'जो व्यक्ति शील-सम्पन्न हैं तथा भगवान् कीर्ति-कलापके कीर्तनके कारण पुलकित रहते हैं, परमपदकी प्राप्तिके अधिकारी हैं ।'
(श्रीमद्भागवत ३ । १

वैकुण्ठमें भगवान्‌का परिकर

नित्य वैकुण्ठ-धाममें श्रीभगवान्‌का परि श्रीभगवान्‌के समान नित्य ही है । यहाँके बद्ध जीवों देह, इन्द्रिय और प्राण-सापेक्ष हैं; किंतु वहाँ जीवोंकी सत्ता देह, इन्द्रिय और प्राणके बिना प्रतिपादित की है—

देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ।

(श्रीमद्भागवत ७ । १ । ३४)

उनका शरीर हमारे-जैसा नहीं होता, जिसमें छान्दोग्य उपनिषद्के 'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते, तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति ।' (६ । ५ । १)—इस वचनकी संगति लग सके । नित्य जीवोंके चैतन्यमय आकारमें प्राकृतभावोंका अभाव है । उनमें न भूख है न प्यास, न जरा है न मरण । ऐसा भी नहीं समझना चाहिये कि उन्हें निराकार कहना ही उचित होगा; क्योंकि 'वैकुण्ठपुरवासिनः' और 'सर्वे चतुर्बाहवः' (श्रीमद्भागवत २ । ९ । ११) आदि वचनोंसे दिव्य धामके वासियोंकी साकारताका ही प्रतिपादन हुआ है ।

श्रीभगवान्के समस्त आयुध, वाहन, सेवक दिव्य हैं, चेतन हैं, आनन्दमय हैं । नित्यविभूतिमें श्रीभगवान्के आयुध पुरुषविग्रहमें श्रीभगवत्सेवोपासनामें निरत रहते हैं; अवतार-वेलामें भी दुष्टदमनाद्यतिरिक्त अवसरोंपर वे पुरुषविग्रहसे भगवदाराधनामें लीन रहते हैं—

धनुरा नानाविधान्यपि धनुरायतमुत्तमम् ।
तथायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः ॥

(रामायण, उत्तरकाण्ड १०९ । ७)

धन्य हैं वे नित्य जीव जिनके लिये श्रुतिने यह कहा है कि 'वे परमपदका सदैव अनुभव करते हैं'—

है । ये दोनों अलंकरण श्रीविष्णुभगवान्के ही हैं, अन्य पार्षदोंके नहीं ।

षोडश पार्षद

श्रुतिमें सोलह हजार मन्त्र उपासनामय हैं । प्रत्येक मन्त्र साकार होकर भगवत्सेवामें उपस्थित रहता है । श्रीभगवान्के सोलह पार्षद उन्हीं सोलह हजार मन्त्रोंके सोलह प्रतीक हैं—

प्रतीच्यां दिव्यभूदाद्यैः शङ्खचक्रगदाधरः ॥
आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ ।
पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम् ॥

(श्रीमद्भागवत ६ । ९ । २८-२९)

पार्षदोंका दिव्य व्यक्तित्व

भगवान्के नित्य-भक्त सूरियोंका बड़ा सुन्दर वर्णन इस प्रकार है—

सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥
सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ।
धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुजश्रियः ॥
दिशो वितिमिरालोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा ।

(श्रीमद्भागवत ६ । १ । ३४-३५)

वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा गुणतोऽसानि यथातथाविधः।
तदयं तव पादपद्मयोरहमद्यैव मया समर्पितः॥
(आलवन्दारस्तोत्र ५५)

अर्थात् "मेरे प्रभुवर! शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और चेतनमेंसे मैं जो कुछ हूँ सो हूँ; गुणरहित हूँ अथवा गुणसहित; मैं आज अपने 'अहम्' को आपके पद-पद्म-युगलमें समर्पित कर रहा हूँ।"

इस प्रकारका आत्मसमर्पण दीर्घकालीन दैनन्दिन साधनके अभ्यासका फल है। प्रतिदिनके अभ्यासके लिये शास्त्रकारोंने अनेक विधियोंका उल्लेख किया है। उनमेंसे ही एक परम रोचक विधि है, जिसके अनुसार प्रभातसे प्रारम्भ करके निशापर्यन्त समय आराधनामें ही व्यतीत होता है। **जयाख्यसंहिताका वचन है—**

एकस्यैव हि कालस्य वासरीयस्य नारद।
आप्रभातं निशान्तं वै पञ्चधा परिकल्पना॥

ये पाँच विभाग इस प्रकार हैं—

(अ) अभिगमन-वेला।
(आ) उपादान-वेला।
(इ) यजन-वेला।
(ई) स्वाध्याय-वेला।
(उ) योग-वेला।

एतौ च स्वाध्याययोगौ आह्निकानुयागात
पूर्वमेव केषुचित् संहिताविशेषेषु समाहृत्योपदिश्येते

इन पाँचोंमें भी 'इज्या' प्रधान है। कारण यह
इसके करनेमें सब कर्तव्य सम्पन्न हो जाता है—

'कृतं भवति वा सर्वमिज्ययैव हि केवलम्।
(भारद्वाज-सं

पूजामें सर्वप्रथम भगवद्विग्रहके सम्मुख जाना होत
यह 'अभिगमन' है। पत्र, पुष्प, फल, जल आदिके
पूजन सम्भव नहीं; अतः 'उपादान' होता ही है। मन्त्रोच
ही 'स्वाध्याय' है। ध्यानके अनन्तर ही आवाहन होत
अतः 'योग' भी हो जाता है।

भिन्न-रुचि लोकमें इज्याके अनेक प्रकार हैं
प्रकार यह है, जिसमें साधक ध्यान करता है कि—

'निखिल-हेय-प्रत्यनीक, कल्याण-गुण-गणाकर, स
सुधाके अपार पारावार, गगनोपम-नील वर्ण श्रीभ
विष्णुके एवं तदभिन्न वात्सल्यमूर्ति, सच्चिदानन्दसा
संविदाकारशालिनी, जगज्जननी, किशोर-वयस्का, हिरण
श्रीभगवती लक्ष्मीजीके चरण-नलिन-युगल नूपुरोंसे मुख
रहे हैं। उनकी जंघा, जानु और जघनस्थल पीताम्बरसे प
हैं। कटिदेशपर कलित काञ्चियाँ शोभा दे रही हैं। ग
नाभियाँ हैं। विष्णुभगवान्‌का वक्षःस्थल श्री और श्री
विभूषित है और लक्ष्मीजीका उरोदेश दिव्य हेम-

वैकुण्ठाधिपति भगवान् लक्ष्मीनारायण
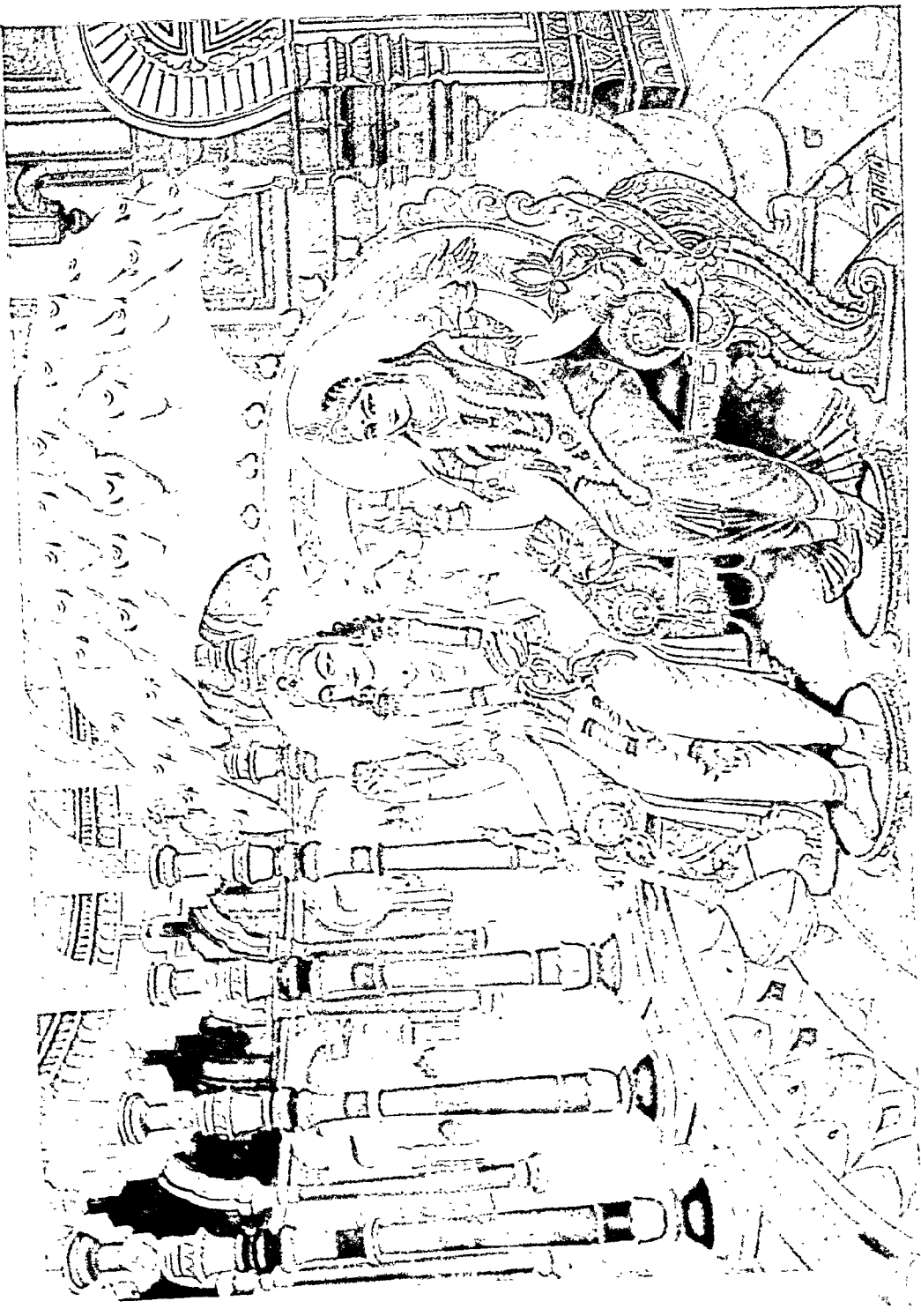
हैं । प्रणव-युगल (ॐ श्री) से चित्रित कपोल-युगल ध्याताओंके तापका शमन करनेवाले हैं । नासिकाएँ सौन्दर्यकी सार हैं । अमल-कमल-दलोंके समान दोनोंके नयन-युगल हैं। धनुराकृति भृकुटियाँ स्वजन-मनो-वक्रिमाका अपहरण कर रही हैं । प्रशस्त मस्तकोंपर यक्षकर्दमके ललित तिलक लगे हुए हैं । असित अलका-वलियोंपर विराजमान किरीट और चन्द्रिकाकी किरणावलियाँ भक्तोंके हृदयभवनोंके गहन अन्धकारका अपहरण करके उन्हें दिव्य आलोकसे आलोकित कर रही हैं ।'

साधक कहता है—

ध्यायाम्यप्राकृतौ सच्चिदानन्दमयविग्रहौ ।
लक्ष्मीनारायणौ दिव्यवैकुण्ठपुरवासिनौ ॥
नीलो नारायणो देवः पीताम्बरश्चतुर्भुजः ।
शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितः ॥
सुगन्धिः सरसः कान्तो माधुरीरसनिर्झरः ।
दयायाः सागरोऽनन्तः स एव परमा रमा ॥
लक्ष्मीर्हिरण्यवर्णा कनकाम्बरधारिणी ।
कञ्जद्वयवराऽभीतिवैजयन्तीविभूषिता ॥
पदपद्मप्रकाशेन ध्यायतां ध्वान्तनाशिनी ।
उदारा वत्सला देवी श्रीः पद्मा कमलेन्दिरा ॥

तत्पश्चात् वह प्रार्थना करता है—'अयि जगज्जननि ! हे जगत्पितः ! इहायातां भवन्तौ इहासातां अस्मत्पूजां स्वीकुरुताम् ।'

तदनन्तर वह भक्ति-भावित हृदयसे यथाशक्ति संगृहीत सामग्रीसे श्रीयुगलका यजन करता है और श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धीय सत्ताईसवें अध्यायमें उद्धवको स्वयं भगवान् श्रीकृष्णद्वारा उपदिष्ट क्रियायोगका स्मरण करके 'प्रसीद भगवन्' कहकर दण्डवत् प्रणाम करता है; आराध्य दिव्य दम्पतीके चरण-नलिन-युगलोंमें सिर नवाकर नम्र निवेदन करता है—

'प्रपन्नं पाहि मामीश'

और भगवत्प्रदत्त प्रसादको स्वीकार करके आनन्दका अनुभव करता है ।

प्रतिदिन अनुष्ठीयमान इस प्रकारके साधनसे प्रसन्न होकर श्रीभगवान् अपना देव-दुर्लभ दर्शन देकर साधकको कृतार्थ कर देते हैं; चतुर्वर्गान्तर्गत उसकी अभिलाषाको पूर्ण कर देते हैं । किम्बहुना, माता लक्ष्मीजी उपासककी इच्छाको जानकर उसके मस्तकपर अपना वात्सल्यमय वरद करारविन्द रखकर, उसे उभय-विभूतिका साम्राज्य दे देती हैं जिससे कि वह धन्य-भाग्य साधक चाहे 'इदंविभूति'[1] में रहे और चाहे तो 'अदोविभूति'[2] में रहे ।

वैदिक युगसे ही यह आर्ष भावना चली आ रही है कि वैष्णव व्यक्ति अपनी रक्षाका भार अपने आराध्यके चरणोंमें रखकर निश्चिन्त हो जाय । भगवान् उसे जहाँ उचित समझेंगे, रक्खेंगे । भक्तका तो यही वक्तव्य होना चाहिये—

'इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ।'

(यजुर्वेद ३१ । १२)

अर्थात् 'हे परम पुरुष विष्णुभगवन् ! आप मेरे लिये उस दिव्य लोककी कामना कीजिये, संकल्प कीजिये, (मैं वहाँ रहूँगा) और इस लीला-विभूतिके लोकोंका संकल्प कीजिये (मैं यहाँ रहूँगा) ।'

भगवान्‌के इङ्गितको समझकर उनका स्व-जन उनके दिये हुए अधिकारको स्वीकार करके लीला-विभूतिमें ही उनका लीला-परिकर बनकर 'आधिकारिक पुरुष' बन जाता है ।

अथवा

भगवान्‌के संकेतके अनुसार तापत्रय-पारावारमें निमग्न जीवोंके उद्धारके लिये प्रयत्नशील होकर 'तारक पुरुष' बन जाता है ।

अथवा

भगवान्‌के ही अभिप्रायका परमादर करते हुए, भव-सागरमें निमज्जनोन्मज्जनसे निर्विण्ण जीवोंको उस पार लगाने-वाला 'पारक पुरुष' बन जाता है ।

और परम धन्य हैं वे व्यक्ति, जिन्हें परम-प्रभु परम-पदमें अपने पद-कमलके मकरन्दका चञ्चरीक बना लेते हैं ।

---

१. इयं विभूतिरिति इदंविभूतिः । अर्थात् एकपाद्विभूतिः । २. असौ विभूतिरिति अदोविभूतिः । अर्थात् त्रिपाद्विभूतिः ।

दिव्य गोलोकधाम

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

पूर्ववर्ती प्रलयकालमें करोड़ों प्रभाकरकी प्रभाके समान ज्योतिपुञ्ज प्रसरित था। वह ज्योतिपुञ्ज निखिल सृष्टिके नियामक परमात्माका उज्ज्वल तेज तथा अनन्त विश्वका हेतु है। उस तेजके मध्य सुन्दर तीनों लोक स्थित हैं। उन तीनों लोकोंके ऊपर गोलोकधाम है, जो परमात्माकी भाँति दिव्य तथा नित्य है।

वहाँ एक अत्यन्त निर्मल एवं मनोहर सरिता प्रवाहित है, जिसके तटपर मणि, मुक्ता और अनेक प्रकारके बहुमूल्य रत्न बिखरे रहते हैं और उसकी दूसरी ओर पचास करोड़ योजन लंबा, दस करोड़ योजन चौड़ा एवं एक करोड़ योजन ऊँचा विशाल एवं मनहर पर्वत स्थित है। इस पर्वतकी चोटियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं।

इस गिरीन्द्रके मनोरम शिखरपर दस योजन विस्तृत अत्यन्त कमनीय एवं सुरम्य रासमण्डल है। इसके मध्य एक सहस्र पुष्पोद्यान, एक सहस्र कोटि रत्नमण्डप हैं और चतुर्दिक् सुरतरुकी पंक्तियाँ सुशोभित हैं। वह सुविस्तृत, सुन्दर, समतल और सुचिक्कण है। चन्दन, कस्तूरी, अगर और कुङ्कुमसे वह सजा रहता है। उसपर दही, लावा, सफेद धान और दूर्वादल बिखरे रहते हैं। रेशमी सूतोंसे गुँथे नव-चन्दन-पल्लवोंकी बन्दनवारों और कदली-स्तम्भोंसे वह घिरा है। उत्तम रत्नोंके सारभागसे निर्मित करोड़ों मण्डप और उनमें प्रज्वलित रत्नमय प्रदीप उक्त मण्डलकी नित्य नवीन शोभा बढ़ाते हैं। उनके भीतर अनन्त सौन्दर्य-प्रसाधन प्रस्तुत रहते हैं। वह सम्पूर्ण रास-मण्डल अत्यन्त सुगन्धित सुमनों एवं धूपसे सदा सुवासित रहता है।

पर्वतके बाहर विरजा नामकी नदी है। उसके तटपर एक सुन्दर वन है। उसे 'वृन्दावन' कहते हैं। यह वन श्रीप्रिया-प्रियतमकी क्रीड़ाका स्थल है। ये सब तीन करोड़ लंबे-चौड़े सुविस्तृत क्षेत्रमें मण्डलाकार फैले हुए गोलोकधामके अन्तर्गत हैं।

इस धामकी दिव्य भूमि रत्नमयी है। इसके चतुर्दिक् रत्नमय प्राचीर हैं। इसके चार प्रधान द्वार हैं। प्रत्येक द्वारपर असंख्य गोप-रक्षक हैं। इसके भीतर कृष्ण-भृत्य गोपोंके पचास करोड़, कृष्णभक्तोंके सौ करोड़ और कृष्ण-पार्षदोंके लिये एक-से-एक सुन्दर, नाना प्रकारके रत्नोंसे जटित एक करोड़ आश्रम हैं। इसके अनन्तर श्रीकृष्णकी प्राणप्यारी गोपियों एवं दासियोंके भी अनेक अतिशय सुन्दर एवं सुखद भवन हैं।

इसके आगे एक अत्यन्त विशाल अक्षयवट है। उसका मूल पचास योजन और उसका ऊपरी भाग सौ योजन विस्तीर्ण है। इस वटवृक्षके सहस्रों विशाल स्कन्ध एवं अगणित शाखाएँ हैं। इसमें रत्नमय फल हैं। इस विशाल वटवृक्षकी सघन शीतल छायामें श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके वेषमें अनेक गोपबालकोंका समूह क्रीड़ा करता है।

इससे कुछ ही दूर सिन्दूरी रंगके पत्थरोंसे निर्मित राजमार्ग है, जिसके दोनों ओर इन्द्रनील, पद्मराग प्रभृति रत्नोंसे निर्मित पंक्तिबद्ध अट्टालिकाएँ सुशोभित हैं। ये अट्टालिकाएँ भाँति-भाँतिके सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंसे सुसज्जित हैं। गोपाङ्गनाएँ रत्नोंके आभरण धारणकर इन्हीं भवनोंमें क्रीड़ा किया करती हैं।

इसके अनन्तर श्रीकृष्णकी प्राणप्रिया रासरासेश्वरी श्रीराधारानीका अत्यन्त अद्भुत एवं अनुपम सुन्दर महल है। इसके अत्यन्त विशाल एवं सुन्दर सोलह द्वार हैं। इस विशाल भवनमें एक सौ इतर भवन हैं। इसके चतुर्दिक् विशाल प्रासाद एवं सैकड़ों अद्भुत अलौकिक पुष्प-वाटिकाएँ हैं। श्रीराधारानीके महलके बाहर शृङ्ग पर्वत एवं उसके अनन्तर विरजा नदी है। श्रीकृष्णके स्तवनके लिये देवगण यहाँ आया करते हैं।

अप्राकृत आकाश अथवा परम व्योममें स्थित उस श्रेष्ठ धामको श्रीकृष्णने अपनी योगशक्तिसे धारण कर रक्खा है। वहाँ आधि, व्याधि, जरा, मृत्यु तथा शोक और भयका नाम नहीं है। वहाँ छहों ऋतुएँ सदा विद्यमान रहती हैं। प्रलयकालमें वहाँ श्रीकृष्ण रहते हैं और सृष्टिकालमें वह गोप-गोपियोंसे भरा रहता है। गोलोकसे नीचे पचास करोड़ योजन दूर दक्षिण भागमें वैकुण्ठ और वाम भागमें शिवलोक है। ये दोनों लोक भी गोलोकके समान ही मनोहर और सुखदायक हैं।

गोलोकके भीतर भी अत्यन्त आह्लादजनक एवं

ानन्ददायिनी मनोहर ज्योति है। योगीजन योग एवं दृष्टिसे उसीका चिन्तन करते हैं। वह ज्योति निराकार परात्पर ब्रह्म है। उस ज्योतिमें सजल जलधरकी । श्यामल अङ्गकान्तिवाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण सिंहासनपर आसीन हैं। उनके विशाल नेत्र विकसित । कमलके समान लाल एवं मनोहर हैं। मुखारविन्दकी । शारद्की पूर्णिमाके सुधांशुकी छटाको लज्जित करती उनकी दो भुजाएँ हैं। एक करकमलमें पीयूषवर्षिणी । विराजित है। उनके परम दिव्य श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर । पाता है और वे अपनी मधुर मुस्कानसे सहज ही प्राण और मन मोह लेते हैं। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स मस्तकपर उत्तम रत्नसारसे निर्मित अनुपम किरीट गाता रहता है। उनके सम्पूर्ण श्रीअङ्ग चन्दनसे चर्चित कस्तूरी और कुङ्कुमसे अलंकृत हैं। उनके गलेमें नुलम्बिनी वनमाला विराजित है। वे ही परब्रह्म परमात्मा, सबके आदिकारण, निर्विकार, परिपूर्णतम सर्वव्यापी, अविनाशी, सनातन भगवान् हैं।

तन्त्रके मतानुसार गङ्गाप्रभृति पावनतम सरिताएँ ए इन्द्रादि देवगण इसी स्थानपर उपस्थित रहते हैं। यहाँ श्रीकृष्ण अपनी पीयूषवर्षिणी वंशी अनेक स्वरोंमें बजाक सबके मन और प्राण आनन्दित करते हैं और भक्तवत्सल राधिका भी प्राणप्रिय भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उनके वाम भागमें उपस्थित रहती हैं। *

परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णके इस गोलोककी महिम अनिर्वचनीय है। योगीन्द्र-मुनीन्द्र ध्यानमें भी इसके दर्श नहीं कर पाते। जिनके हृदयमें संसारकी अतिशय अनासक्ति एवं श्रीराधाकृष्णके प्रति दृढ़ प्रीति है और जो सांसारि कामनाओंको त्यागकर 'राधाकृष्ण'के मङ्गलमय नामका ज करते रहते हैं, उन्हें ही श्रीराधाकृष्णकी कृपासे इस वाङ्मनस अगोचर पावनतम सुखद लोककी प्राप्ति होती है।

साकेत—दिव्य अयोध्या

(लेखक—मानस-तत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी)

केते स्वर्णपीठे मणिगणखचिते कल्पवृक्षस्य मूले
नानारत्नौघपुञ्जे कुसुमितविपिने नेत्रजास्वच्छकूले ।
नक्यङ्के रमन्तं नृपनयविदितं मन्त्रजाप्यैकनिष्ठं
रामं लोकाभिरामं निजहृदिकमले भासयन्तं भजेऽहम् ॥

साकेतरासरसकेलिविधौ विदग्धां
ब्रह्मेन्द्ररुद्रवसुवृन्दसशक्तिजुष्टाम् ।
आनन्दब्रह्मद्रवरूपमतीं नतोऽस्मि
तां रामप्रेमजलपूरणब्रह्मरूपाम् ॥

ब्रह्मादिभिः सुरवरैस्समुपास्यमानां
लक्ष्म्यादिभिश्च सखिभिः परिसेव्यमानाम् ।
सर्वेश्वरैः सहगणैः परिगीयमानां
तां राघवेन्द्रनगरीं नितरां नमामि ॥

यातिदिव्य साकेतलोकमें भगवान्‌के नेत्र(जल) से उत्पन्न नदीके निर्मल कूलपर पुष्पित कानन है। उसके त कल्पवृक्षके मूलमें, जो नाना प्रकारकी रत्नराशिका त्र है, मणिजटित एक स्वर्णमय पीठ है। उसपर जगज्जननी जानकीके साथ दिव्य केलिमें रत, राजनीतिके धुरंधर, अपनी आराध्या एवं प्रियतमा भगवती जानकीके ही मन्त्रजपमें अनन्य भावसे परायण तथा अपने निजजनोंके हृदयरूपी कमलमें प्रकाश फैलाते हुए लोकसुखदायक भगवान् श्रीरामका मैं भजन करता हूँ।'

'मैं उन नदीश्रेष्ठा भगवती सरयूको प्रणाम करता हूँ, जो साकेतलोकमें निरन्तर होनेवाली रासरूपी सरस केलिके विधानमें परम पटु हैं; जो शक्तिसहित ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वसु आदि देवगणोंके द्वारा सेवित हैं; जिनके रूपमें स्वयं आनन्दमय ब्रह्म ही द्रवित होकर प्रवहमाण है तथा जो भगवान् श्रीरामके नेत्रोंसे निकले हुए प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण ब्रह्मस्वरूपा हैं।'

'मैं भगवान् राघवेन्द्रकी राजधानी अयोध्यापुरीकी आदरपूर्वक वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मादि देववरोंके द्वारा उपासित हैं; भगवती लक्ष्मी प्रभृति अपनी सखियोंद्वारा सुसेवित हैं और जिनका अपने-अपने गणों (पार्षदों)

---

* ब्रह्मवैवर्तपुराणके आधारपर।

सहित सम्पूर्ण ईश्वरकोटिके देवताओंके द्वारा स्तवन किया जाता है।'

आनन्दाम्बुधि भगवान्के नित्यधामके लिये पूर्वकालमें दार्शनिकोंने प्रश्नोत्तर-रूपसे समझाया था—

प्रश्न—**किमात्मिका भगवद्व्यक्तिः ?**

उत्तर—**यदात्मको भगवान् तदात्मिका भगवद्व्यक्तिः।**

प्रश्न—**किमात्मको भगवान् ?**

उत्तर—**सदात्मको भगवान्, चिदात्मको भगवान्, आनन्दात्मको भगवान्। अतएव सच्चिदानन्दात्मिका भगवद्व्यक्तिः।**

प्रश्न—भगवान्का आविर्भाव या प्राकट्य किस रूपमें होता है ?

उत्तर—भगवान्का अपना जो स्वरूप है, उसी रूपमें उनकी अभिव्यक्ति होती है।

प्रश्न—भगवान्का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—भगवान् सत्स्वरूप हैं, चित्स्वरूप हैं, आनन्दस्वरूप हैं। इसीलिये उनका प्राकट्य भी सत्स्वरूप, चित्स्वरूप, आनन्दस्वरूप ही होता है।

यहाँ चित्से तात्पर्य स्वयंप्रकाशात्मक मात्रसे है, चैतन्यत्वसे नहीं। भगवान्के नित्यधामको ही वैदिक भाषामें 'त्रिपाद्विभूति' कहा जाता है। परमात्माकी समग्र विभूति दो भागोंमें विभक्त है। एक चतुर्थांशका एक भाग है, जिसे 'एकपाद्विभूति' कहा जाता है। इसीका नाम अविद्यापाद् एवं मायापाद् भी है और तीन चतुर्थांशका एक भाग है जिसे 'त्रिपाद्विभूति' कहा जाता है और उसीका नाम ब्रह्मपाद्, आनन्दपाद् एवं शुद्धसत्त्वपादादि भी है।

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'
(ऋग्वेद १०। ९०। ३; अथर्व० १९। ६। ३; यजु० ३१। ३; तै० आ० ३। १२। १)

'त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।'
(ऋ० १०। ९०। ४; यजु० ३१। ४; अथर्व० १९। ६। २; तै० आ० ३। १२। २)

दोनों भागोंकी सीमा विरजा है। एकपाद् (मायापाद्विभूति) में ही युगपत् प्रतिपल अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड बना-बिगड़ा करते हैं—

निमिष मात्र ब्रह्मांड निकाया। रचइ जासु अनुसासन
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड।
(श्रीरामच

इस 'एकपाद्विभूति'के लिये कहा गया है कि

''इस 'मायापाद्'के इर्द-गिर्द तथा नीचेकी ओर नहीं है। इसके ऊपरकी ओर विरजा नदी ही है विभूतिकी नीचेकी सीमा विरजा नदी ही है, उ दोनों पार्श्वोंमें सीमा नहीं है।''

आज जिस ब्रह्माण्डमें हमलोग रहते है प्रकृतिसे उत्पन्न रमणीय ब्रह्माण्ड (भूः, भुव सात ऊपरके तथा अतल, वितल आदि सात —कुल) चौदह लोकोंसे व्याप्त है। द्वीपोंसे युक्त (स्वेदज, अण्डज, जरायुज एवं उद्भिज—इन कोटिके जीवोंसे तथा महान् आनन्ददायक पर्वतों है। इतना ही नहीं, वस्त्रोंकी परतोंके समान दस विशाल आवरणोंसे यह घिरा हुआ है। यह प्राकृत साठ करोड़ योजन ऊँचा और पचास करोड़ योजन वाला है। यह अण्ड अपने इर्द-गिर्द तथा कड़ाहेके समान कठोर भागसे उसी प्रकार सब हुआ है, जैसे अनाजका बीज कड़ी भूसीसे घिरा र जैसे कैथका फल बीजोंके आधारपर स्थित रहता है, उ जड़चेतनात्मक ब्रह्माण्ड इसी अण्डकटाहके आधार है। पृथिवीका घेरा एक करोड़ योजनका है, ज दस करोड़ योजनका कहा गया है, अग्निका घेरा (एक अरब) योजनके परिमाणका है, वायुका घे करोड़ (दस अरब) योजन परिमाणका है। आवरण दस हजार करोड़ (एक खरब) योज अहंकारका आवरण एक लाख करोड़ (दस योजनका और प्रकृतिका आवरण असंख्य योजन गया है। प्रकृतिके अन्तर्गत समस्त लोक कालरूप द्वारा (प्रलयकालमें) जला दिये जाते हैं।''

× × ×

''भगवान्का (साकेत) धाम प्रकृतिके रहनेवाला, अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित, मायारूपी मलसे रहित, काल एवं प्रलयके मुक्त तथा एकमात्र भक्तिसे ही प्राप्त होता है।

परमानन्ददायिनी मनोहर ज्योति है। योगीजन योग एवं ज्ञान-दृष्टिसे उसीका चिन्तन करते हैं। वह ज्योति निराकार एवं परात्पर ब्रह्म है। उस ज्योतिमें सजल जलधरकी भाँति श्यामल अङ्गकान्तिवाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण रत्नसिंहासनपर आसीन हैं। उनके विशाल नेत्र विकसित अरुण कमलके समान लाल एवं मनोहर हैं। मुखारविन्दकी शोभा शरद्की पूर्णिमाके सुधांशुकी छटाको लज्जित करती है। उनकी दो भुजाएँ हैं। एक करकमलमें पीयूषवर्षिणी मुरली विराजित है। उनके परम दिव्य श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पाता है और वे अपनी मधुर मुस्कानसे सहज ही सबके प्राण और मन मोहे लेते हैं। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स एवं मस्तकपर उत्तम रत्नसारसे निर्मित अनुपम किरीट जगमगाता रहता है। उनके सम्पूर्ण श्रीअङ्ग चन्दनसे चर्चित एवं कस्तूरी और कुङ्कुमसे अलंकृत हैं। उनके गलेमें आजानुलम्बिनी वनमाला विराजित है। वे ही परब्रह्म परमात्मा, सबके आदिकारण, निर्विकार, सर्वव्यापी, अविनाशी, सनातन भगवान् हैं।

तन्त्रके मतानुसार गङ्गाप्रभृति पावनतम स[illegible] इन्द्रादि देवगण इसी स्थानपर उपस्थित रहते [illegible] श्रीकृष्ण अपनी पीयूषवर्षिणी वंशी अनेक स्वर[illegible] सबके मन और प्राण आनन्दित करते हैं और [illegible] राधिका भी प्राणप्रिय भक्तोंपर अनुग्रह करनेके [illegible] वाम भागमें उपस्थित रहती हैं। *

परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णके इस गोलोक[illegible] अनिर्वचनीय है। योगीन्द्र-मुनीन्द्र ध्यानमें भी इ[illegible] नहीं कर पाते। जिनके हृदयमें संसारकी अतिशय [illegible] एवं श्रीराधाकृष्णके प्रति दृढ़ प्रीति है और जो [illegible] कामनाओंको त्यागकर 'राधाकृष्ण'के मङ्गलमय न[illegible] करते रहते हैं, उन्हें ही श्रीराधाकृष्णकी कृपासे इस [illegible] अगोचर पावनतम सुखद लोककी प्राप्ति होती है।

साकेत—दिव्य अयोध्या

(लेखक—मानस-तत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी)

साकेते स्वर्णपीठे मणिगणखचिते कल्पवृक्षस्य मूले
नानारत्नौघपुञ्जे कुसुमितविपिने नेत्रजास्वच्छकूले ।
जानक्यङ्के रमन्तं नृपनयविदितं मन्त्रजाप्यैकनिष्ठं
रामं लोकाभिरामं निजहृदिकमले भासयन्तं भजेऽहम् ॥

साकेतरासरसकेलिविधौ विदग्धां
ब्रह्मेन्द्ररुद्रवसुवृन्दसशक्तिजुष्टाम् ।
आनन्दब्रह्मद्रवरूपमतीं नतोऽस्मि
तां रामप्रेमजलपूरणब्रह्मरूपाम् ॥

ब्रह्मादिभिः सुरवरैस्समुपास्यमानां
लक्ष्म्यादिभिश्च सखिभिः परिसेव्यमानाम् ।
सर्वेश्वरैः स्वगणैः परिगीयमानां
तां राघवेन्द्रनगरीं नितरां नमामि ॥

'दिव्यातिदिव्य साकेतलोकमें भगवान्के नेत्र(जल) से उत्पन्न सरयू नदीके निर्मल कूलपर पुष्पित कानन है। उसके अन्तर्गत कल्पवृक्षके मूलमें, जो नाना प्रकारकी रत्नराशिका पुञ्जमात्र है, मणिजटित एक स्वर्णमय पीठ है। उसपर जगज्जननी जानकीके साथ दिव्य केलिमें रत, रा[illegible] धुरन्धर, अपनी आराध्या एवं प्रियतमा भगवती [illegible] ही मन्त्रजपमें अनन्य भावसे परायण तथा अपने नि[illegible] हृदयरूपी कमलमें प्रकाश फैलाते हुए लोकसुखदायक [illegible] श्रीरामका मैं भजन करता हूँ।'

'मैं उन नदीश्रेष्ठा भगवती सरयूको [illegible] करता हूँ, जो साकेतलोकमें निरन्तर होनेवाली रा[illegible] सरस केलिके विधानमें परम पटु हैं; शक्तिसहित ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वसु आदि देवगणोंके [illegible] सेवित हैं; जिनके रूपमें स्वयं आनन्दमय ब्रह्म ही [illegible] होकर प्रवहमाण है तथा जो भगवान् श्रीरामके नेत्रोंसे [illegible] हुए प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण ब्रह्मस्वरूपा हैं।'

'मैं भगवान् राघवेन्द्रकी राजधानी अयोध्या[illegible] आदरपूर्वक वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मादि देववरोंके [illegible] उपासित हैं; भगवती लक्ष्मी प्रभृति अपनी सखिय[illegible] सुसेवित हैं और जिनका अपने-अपने गणों (पार्[illegible]

* ब्रह्मवैवर्तपुराणके आधारपर।

सहित सम्पूर्ण ईश्वरकोटिके देवताओंके द्वारा स्तवन किया जाता है।'

आनन्दाम्बुधि भगवान्के नित्यधामके लिये पूर्वकालमें दार्शनिकोंने प्रश्नोत्तर-रूपसे समझाया था—

प्रश्न—**किमात्मिका भगवद्व्यक्तिः ?**

उत्तर—**यदात्मको भगवान् तदात्मिका भगवद्व्यक्तिः।**

प्रश्न—**किमात्मको भगवान् ?**

उत्तर—**सदात्मको भगवान्, चिदात्मको भगवान्, आनन्दात्मको भगवान्। अतएव सच्चिदानन्दात्मिका भगवद्व्यक्तिः।**

प्रश्न—भगवान्का आविर्भाव या प्राकट्य किस रूपमें होता है?

उत्तर—भगवान्का अपना जो स्वरूप है, उसी रूपमें उनकी अभिव्यक्ति होती है।

प्रश्न—भगवान्का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—भगवान् सत्स्वरूप हैं, चित्स्वरूप हैं, आनन्द-स्वरूप हैं। इसीलिये उनका प्राकट्य भी सत्स्वरूप, चित्स्वरूप, आनन्दस्वरूप ही होता है।

यहाँ चित्से तात्पर्य स्वयंप्रकाशात्मक मात्रसे है, चैतन्यत्वसे नहीं। भगवान्के नित्यधामको ही वैदिक भाषामें 'त्रिपाद्विभूति' कहा जाता है। परमात्माकी समग्र विभूति दो भागोंमें विभक्त है। एक चतुर्थांशका एक भाग है, जिसे 'एकपाद्विभूति' कहा जाता है। इसीका नाम अविद्यापाद् एवं मायापाद् भी है और तीन चतुर्थांशका एक भाग है जिसे 'त्रिपाद्विभूति' कहा जाता है और उसीका नाम ब्रह्मपाद्, आनन्दपाद् एवं शुद्धसत्त्वपादादि भी है।

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'

(ऋग्वेद १०। ९०। ३; अथर्व० १९। ६। ३; यजु० ३१। ३; तै० आ० ३। १२। १)

'त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।'

(ऋ० १०। ९०। ४; यजु० ३१। ४; अथर्व० १९। ६। २; तै० आ० ३। १२। २)

दोनों भागोंकी सीमा विरजा है। एकपाद् (मायापा-द्विभूति) में ही युगपत् प्रतिपल अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड बना-बिगड़ा करते हैं—

निमिष मात्र ब्रह्मांड निकाया। रचइ जासु अनुसासन मा
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निका
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥
(श्रीरामचरितमा

इस 'एकपाद्विभूति'के लिये कहा गया है कि—

''इस 'मायापाद्'के इर्द-गिर्द तथा नीचेकी ओर कोई नहीं है। इसके ऊपरकी ओर विरजा नदी ही है। वि बिभूतिकी नीचेकी सीमा विरजा नदी ही है, ऊपर दोनों पार्श्वोंमें सीमा नहीं है।''

आज जिस ब्रह्माण्डमें हमलोग रहते हैं— प्रकृतिसे उत्पन्न रमणीय ब्रह्माण्ड (भूः, भुवः सात ऊपरके तथा अतल, वितल आदि सात —कुल) चौदह लोकोंसे व्याप्त है। द्वीपोंसे युक्त स (स्वेदज, अण्डज, जरायुज एवं उद्भिज्ज—इन कोटिके जीवोंसे तथा महान् आनन्ददायक पर्वतोंसे है। इतना ही नहीं, वस्त्रोंकी परतोंके समान दस ः विशाल आवरणोंसे यह घिरा हुआ है। यह प्राकृत साठ करोड़ योजन ऊँचा और पचास करोड़ योजन वाला है। यह अण्ड अपने इर्द-गिर्द तथा ऊ कड़ाहीके समान कठोर भागसे उसी प्रकार सब ओ हुआ है, जैसे अनाजका बीज कड़ी भूसीसे घिरा रह जैसे कैथका फल बीजोंके आधारपर स्थित रहता है, उ जडचेतनात्मक ब्रह्माण्ड इसी अण्डकटाहके आधार है। पृथिवीका घेरा एक करोड़ योजनका है, ज दस करोड़ योजनका कहा गया है, अग्निका घेरा र (एक अरब) योजनके परिमाणका है, वायुका घे करोड़ (दस अरब) योजन परिमाणका है। ः आवरण दस हजार करोड़ (एक खरब) यो अहंकारका आवरण एक लाख करोड़ (दस योजनका और प्रकृतिका आवरण असंख्य योज गया है। प्रकृतिके अन्तर्गत समस्त लोक कालरू द्वारा (प्रलयकालमें) जला दिये जाते हैं।''

× × ×

''भगवान्का (साकेत) धाम प्रकृतिके रहनेवाला, अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित, मायारूपी मलसे रहित, काल एवं प्रलयके प्र मुक्त तथा एकमात्र भक्तिसे ही प्राप्त होता है। उ

सम्बन्धमें गीतावक्ता श्रीकृष्ण कहते हैं—'उसे न तो सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा और न अग्नि । जहाँ पहुँचकर कोई भी लौटकर इस प्राकृत ब्रह्माण्डमें नहीं आता, ऐसा मेरा सर्वश्रेष्ठ परम धाम है (गीता १५ । ६)।' जिस मायिक प्रपञ्चका मैंने ऊपर उल्लेख किया है वह अविद्यारूप घने अन्धकारसे व्याप्त है; उसके ऊपरी भागमें विरजा नामकी नदी, जिसकी कोई सीमा नहीं है, यह विश्व-ब्रह्माण्डके उस पार उसका आवरण बनी हुई स्थित है । यह विरजा नदी प्रकृति एवं परव्योम (भगवद्धाम) के बीचमें विद्यमान है ।''
(बृहद्ब्रह्मसंहिता, पाद ३, अध्याय १ श्लोक ११ से १९, ४० से ४३)

भूलोक और महर्लोकके बीचमें भुवर्लोक और स्वर्लोक हैं । कहा गया है—

''महर्लोक' पृथ्वीके ऊपर (भुवर्लोक एवं स्वर्लोकसे भी आगे) एक करोड़ योजन परिमाणका है । उसके ऊपर दो करोड़ योजन परिमाणका 'जनलोक' है, उसके ऊपर चार करोड़ योजनका 'तपोलोक' और उसके भी ऊपर आठ करोड़ योजनका 'सत्यलोक' है । उसके बाहर 'सप्तावरण' नामका बाहरी घेरा है ।''
('उपासनात्रयसिद्धान्त' नामक ग्रन्थमें उद्धृत सदाशिव-संहितासे)

विरजापार त्रिपाद्विभूतिको ही उपासकोंकी भाषामें परम धाम, नित्यलोक, साकेत, गोलोक एवं महावैकुण्ठ आदि कहा जाता है और साम्प्रदायिक रहस्यग्रन्थोंमें अलग-अलग इनका विस्तृत वर्णन पाया जाता है ।

शिवहर स्टेटसे सं० १९९७ वि० में प्रकाशित पञ्चम-पटल शिवसंहिताके बीसवें अध्यायमें वर्णन है—

अयोध्या नन्दिनी सत्यानाम्ना साकेत इत्यपि ।
कोशला राजधानी च ब्रह्मपूरपराजिता ॥ ५ ॥
अष्टचक्रा नवद्वारा नगरी धर्मसम्पदाम् ।
दृष्ट्वैवं ज्ञाननेत्रेण ध्यातव्या सरयूस्तथा ॥ ६ ॥

'अयोध्या नगरीके अनेक नाम हैं—जैसे नन्दिनी, सत्या, साकेत, कोसला, राजधानी, ब्रह्मपुरी और अपराजिता । वह अष्टदल पद्मके आकारकी है, नौ द्वारोंसे युक्त है । यह धर्मके धनी लोगोंकी नगरी है । इसे ज्ञानके नेत्रोंसे देखकर इसका तथा (साथ-ही-साथ) सरयू नदीका (भी) ध्यान करना चाहिये ।'

इस ब्रह्मपुरी अष्टचक्रा नवद्वारा 'साकेत'का नाम ही अयोध्या, अपराजिता, सत्यलोक, सत्यधाम अ
अथर्ववेद मन्त्रसंहिताके दसवें काण्डके दूसरे
२७॥ से ३३ तक साढ़े पाँच मन्त्रोंमें अयो
का जितना विपुल, विशद, सुस्पष्ट अथच सा
है, उतना किसी भी पुरीका वर्णन वेद-मन्त्रसं
है । इसका कारण वेद भी तो श्रीरामजीके—

'सगुन जस नित गावहीं ।' (*श्रीरामच*

उन वेदमन्त्रोंके शब्दार्थमें किसीको कुछ
ओरसे (अध्याहार करके) मिलानेकी आव
रहती । वे मन्त्र ये हैं—

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उ
यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां
(अथर्व० १० । २

इस डेढ़ मन्त्रका अन्वय एकमें ही है; अ
अर्थ दिया जाता है—

'यः—जो कोई (*ब्रह्मणः*)—ब्रह्म
परात्पर परमेश्वर, परमात्मा, जगदादिकारण, अ
श्रीसीतानाथ श्रीरामजीके (**पुरम् वेद**)—पुर
(उसे भगवान् तथा भगवान्के पार्षद स
चक्षुप्राण और प्रचोदते हैं) किस पुरीको जा
कहते हो ? तो (**यस्याः**)—जिस पुरीको (**पुरुषः** उ
बोला जाता है अर्थात् जिसका प्रतिदिन नाम-स्मरण
है, उस पुरुषकी पुरीको जाननेके लिये श्रुति कह रह
ब्रह्मणः)—जो कोई अनन्तशक्तिसम्पन्न, सर्वव्यापक,
सर्वशेषी, सर्वाधार श्रीरामजीकी (**अमृतेन आवृताम्**
अर्थात् मोक्षानन्दसे परिपूर्ण, (**ताम् पुरम् वेद**)—उस
पुरीको जानता है, (**तस्मै**)—उसके लिये (*ब्रह्म च ब्रा*
साक्षात् भगवान् और ब्रह्मके सम्बन्धी अर्थात् भगवान्
सुग्रीव, अंगद, मयन्द, सुषेण, द्विविद, दरीमुख
नील, नल, गवाक्ष, पनस, गन्धमादन, विभीषण,
और दधिमुख इत्यादि प्रधान षोडश पार्षद अथवा
मुक्त सर्वजीव मिलकर (**चक्षु**)—उत्तम दर्शन-शक्ति,
(**प्रजाम् ददुः**)—उत्तम प्राणशक्ति अर्थात् आयुष्य
तथा संतान आदि देते हैं ।'

वेदोंके संस्कारभाष्यकार पण्डितराज सात्वत

स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी लिखते हैं कि इस मन्त्रमें 'ददुः' इस भूतकालिक प्रयोगको देखकर घबराना नहीं चाहिये। वेदकी सब बातें अलौकिक ही होती हैं।

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥

(अथर्व० १०।२।३०)

'(यस्याः पुरुषः)—'जिस पुरीका परमपुरुष (उच्यते)—कहा जाता रहा है अर्थात् जिसका निरूपण सर्वत्र वेद-शास्त्रोंमें किया जाता है और यहाँ भी २८ वें मन्त्रके पूर्वके मन्त्रोंमें जिस पुरुषका निरूपण किया गया है; उसको; (ब्रह्मणः तां पुरम्)—परब्रह्म (श्रीराम) की उस पुरी अयोध्याको (यः वेद, तम्)—जो कोई जानता है, उस प्राणीको (चक्षुः)—दर्शन-शक्ति अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तरिक नेत्र, तथा (प्राणः)—शारीरिक और आत्मिक बल (जरसः पुरा)—मृत्युसे पूर्व (न जहाति)—निश्चय ही नहीं छोड़ते।'

तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीरामकी उभयपादस्थित दोनों अयोध्यापुरी पवित्र अथच दिव्य हैं। त्रिपाद्विभूतिस्थ साकेतके समान ही एकपाद्विभूतिस्थ साकेत—अयोध्याका भी माहात्म्य है। इतना ही अन्तर है कि—

भोगस्थानं परायोध्या लीलास्थानं त्वियं भुवि।
भोगलीलापती रामो निरङ्कुशविभूतिकः॥

(शिवसं० पटल ५, अ० २, श्लोक ८)

'परव्योमस्थित अयोध्या दिव्य (भगवत्स्वरूप) भोगोंकी भूमि है और पृथ्वीगत यह (सबके लिये प्रत्यक्ष) अयोध्या लीलाभूमि है। इन दोनों अयोध्याओंके स्वामी श्रीराम भोग और लीला दोनोंके स्वामी हैं। उनकी विभूति (ऐश्वर्य) अङ्कुशहीन (स्वतन्त्र) है।'

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः॥

(अथर्व० १०।२।३१)

ब्रह्मकी उस पुरी (भोगस्थान पुरा अयोध्या) के नाम और रूपको स्पष्टरूपेण यह मन्त्र बताता है—

(पूः अयोध्या)—''वह (अष्टाचक्रा) पुरी अयोध्याजी है, वह आठ चक्रों अर्थात् आवरणोंवाली है; अर्थात् जिसमें आठ आवरण हैं। (नवद्वारा)—जिसमें प्रधान नवद्वार हैं। तथा जो (देवानाम्)—दिव्यगुणविशिष्ट, भक्तिप्रपत्तिसम्पन्न, यम-नियमादिमान्, परमभागवत चेतनोंसे 'सेव्या इति शे सेवनीय है। (तस्यां स्वर्गः)—उस अयोध्यापुरीमें बहुत उं अथवा बहुत सुन्दर, (ज्योतिषा आवृतः)—प्रकाशपु आच्छादित (हिरण्ययः कोशः)—सुवर्णमय मण्डप है।'

इस मन्त्रमें अयोध्याजीका स्वरूप-वर्णन है। अयो पुरीके चारों ओर कनकोज्ज्वल दिव्य प्रकाशात्मक आव है; जो भीतरसे निकलनेपर अष्टमावरण और बाहरसे प्र करनेपर प्रथमावरण या प्रथम चक्र है।

ब्रह्मज्योतिरयोध्यायाः प्रथमावरणे शुभम्।
यत्र गच्छन्ति कैवल्याः सोऽहमस्मीतिवादिनः॥

(वसिष्ठसंहिता २६। १ साकेतसुषमामें उद्धृ

''अयोध्याके सर्वप्रथम घेरेमें शुभ्र ब्रह्ममयी ज्योति प्रकाशि है। 'सोऽहम् सोऽहम्' कहनेवाले कैवल्यकामी पु (मरनेपर) इसी ज्योतिमें प्रवेश करते हैं।''

'सोऽहं' या 'अहं ब्रह्मास्मि'वादियोंका 'सुदुर्लभ कैवल परमपद' वही है। उस आवरणमें सर्वत्र दिव्य भव्य प्रका मात्र रहता है।

बाहरसे प्रवेश करनेपर द्वितीय किंतु भीतरसे निकलने सप्तमावरण अर्थात् सप्तम चक्र है, जिसमें प्रवहम श्रीसरयूजी हैं—

अयोध्यानगरी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
यस्यांशांशेन वैकुण्ठो गोलोकादिः प्रतिष्ठितः॥
यत्र श्रीसरयूर्नित्या प्रेमवारिप्रवाहिणी।
यस्यांशांशेन सम्भूता विरजादिसरिद्वराः॥

(सा० सु० पृ०

'अयोध्या नगरी नित्य है। वह सच्चिदानन्दरूपा है वैकुण्ठ एवं गोलोक आदि भगवद्धाम अयोध्याके अं अंशसे निर्मित हैं। इसी नगरीके बाहर सरयू नदी हैं, जि श्रीरामके प्रेमाश्रुओंका जल ही प्रवाहित हो रहा है। वि आदि श्रेष्ठ नदियाँ इन्हीं सरयूके अंशके किसी अं उद्भूत हैं।'

साकेतके पुरद्वारे सरयूः केलिकारिणी॥ ८

(बृहद्ब्रह्मसंहिता पाद ३, अ०

'उस अयोध्या नगरीके द्वारपर सरयू नदी क्रीड़ा क रहती हैं।'

बाहरसे तीसरा और भीतरसे निकलनेपर छ

और जो विशेषकर अपने सुधा-मधुर फलोंके भारी बोझसे अपनी डालियोंके रूपमें भूमिपर लोट रहे हैं। इनमेंसे कइयोंके नीचे दिव्य सुवर्णके गट्टे बने हुए हैं, जिनमें श्रेष्ठ रत्नोंसे पचीकारी की गयी है। उन वृक्षोंपर फूले हुए पञ्च प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित वल्लरी-जालका चँदोवा तना है; किन्हीं-किन्हींकी छाल सोनेकी है; मोती-जैसे पुष्पोंको वे मुकुटरूपमें धारण किये हुए हैं। उनपर फलोंके स्थानपर चिन्तामणियाँ लगी हैं और उनके पत्ते नीलमके बने सुशोभित हैं।'

(वसिष्ठसंहिता, उपासनात्रयसिद्धान्तसे उद्धृत)

× × ×

'उस वनमें पूर्व आदि चारों दिशाओंमें चार पर्वत हैं, उनके नाम क्रमशः मुझसे सुनो। वे हैं—शृङ्गारपर्वत, रत्नपर्वत, लीलापर्वत और मुक्तापर्वत। ये अपनी शोभासे दसों दिशाओंको उद्भासित करते रहते हैं। पूर्व दिशामें नीलमका बना हुआ 'शृङ्गारपर्वत' है, जिसपर दिव्य सूर्य उदित होते हैं और श्रीरामकी प्रिया श्रीआह्लादिनी देवीके चित्तको चुराते रहते हैं। दक्षिण दिशामें पीले रत्नोंका बना हुआ शोभासम्पन्न 'रत्नपर्वत' देदीप्यमान है, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण वनको उद्भासित करता रहता है और जो श्रीभूदेवीको प्रिय है। पश्चिम दिशामें लाल रत्नोंका बना हुआ तथा श्रीरामकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला 'नीलपर्वत' विराजमान है, जिसकी प्रभा श्रीलीलादेवीको प्रिय है। उत्तर दिशामें भगवती श्रीदेवीकी लीलामें सहयोग देनेके लिये चन्द्रकान्त मणियोंसे सुशोभित विशाल एवं उज्ज्वल 'मुक्तापर्वत' प्रकट है, जो विचित्र पुष्पपुञ्जोंसे सम्पन्न लतासमूहोंके वितान (चँदोवे) से सुशोभित तथा सुधाको भी मात कर देनेवाले स्वादिष्ट फलोंके बोझसे अत्यधिक झुके हुए वृक्षोंसे मण्डित है।'

(वसिष्ठसंहिता अध्याय २६)

बाहरसे जानेमें आठवाँ और भीतरसे निकलनेमें जो प्रथम आवरण है, उसमें नित्यमुक्त भगवत्-पार्षदगण रहते हैं और भगवान्के अनन्तानन्त अवतार भी इसीमें रहते हैं—

'साकेतके दक्षिणद्वारपर श्रीरामके प्रति वात्सल्यभाव रखनेवाले श्रीहनुमान्जी (द्वारपालके रूपमें) विराजमान हैं। उसी द्वार-देशमें 'सान्तानिक' नामका वन है, जो श्रीहरि (श्रीराम) को प्रिय है।'

× × ×

'मत्स्य, कूर्म, अनेक वराह, अनेक नरसिंह, वैकुण्ठ, हयग्रीव, हरि, वामन, केशव, यज्ञ, धर्मपुत्र, नारायणऋषि तथा उनके छोटे भाई नर, देवकीनन्दन श्रीकृष्ण, वसुदेवनन्दन बलराम, पृश्निगर्भ, मधुसूदन, गोविन्द, माधव, परात्पर वासुदेव, अनन्त, संकर्षण, इलापति, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध भगवान्के ये सभी व्यूह भी श्रीरामकी आज्ञामें रहकर एक साथ उनकी सेवामें उपस्थित होते हैं। श्रीराम नामसे विख्यात महेश्वर इनके तथा अन्य ईश्वरोंके द्वारा सेव्य हैं; कारण, ये इन सबको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा इनके मूल हैं। इनके बिना ये सब ऐश्वर्यहीन हैं।'

(सदाशिवसंहिता ५। २। २४-२८)

विभिन्न साम्प्रदायिक ग्रन्थोंमें आवरणस्थ निवासियोंके स्थानोंमें यत्रतत्र हेरफेर भी है, परंतु तत्तन्निवासियोंके नामोंमें हेरफेर नहीं है।

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥

(अथर्व० १०। २। ३२)

"(तस्मिन्) उस विशाल (हिरण्यये) सुवर्णमय (कोशे) मण्डपमें (तस्मिन्) उसके अर्थात् उस मण्डपके (आत्मन्वत्) आत्माके समान (यद् यक्षम्) जो पूजनीय देव विराजमान है, (तत्) उसीको (ब्रह्मविदः) ब्रह्मस्वरूप ज्ञानवान् जन (विदुः) जानते हैं। अथवा 'ब्रह्मविदः' में दो पद हैं 'ब्रह्म' और 'विदः' तब अर्थ हुआ यह कि (विदः तत्) विद्वान् जन उसी यक्षको उसी परमोपास्य देवको, (ब्रह्म विदुः) परात्पर सनातन महापुरुष जानते हैं। जिस कोशमें वह यक्ष विराजमान है वह कोश कैसा है? तो (त्र्यरे)उसमें तीन अरे लगे हुए हैं अर्थात् सत्, चित्, आनन्द—तीन अरोंपर वह मण्डप बना हुआ है तथा (त्रिप्रतिष्ठिते) चित्, अचित् एवं ईश्वर तीनोंसे प्रतिष्ठित—आहत है।"

इस मन्त्रमें जो 'तस्मिन्' पद आया है, वह षष्ठीके अर्थमें है। इसीसे उसका अर्थ 'उसके' किया गया है।

इस मन्त्रमें स्पष्ट ही कहा गया है कि अयोध्याके मध्यमें जो सुवर्णमय मणिमण्डप है, उसमें जो देव विराजमान हैं, उन्हींको विद्वान् लोग 'ब्रह्म' कहते हैं। अयोध्याके मणिमण्डपमें भगवान् श्रीरामके अतिरिक्त अन्य कोई भी विराजमान नहीं है। अतः भगवान् श्रीरामजी ही परब्रह्म हैं। इसी अर्थका पद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय दो सौ अट्ठाईसमें

विस्तार किया गया है। उसके कुछ श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

तद्विष्णोः परमं धाम यान्ति ब्रह्म सुखप्रदम्॥ १०॥
नानाजनपदाकीर्णं वैकुण्ठं तद्धरेः पदम्।
प्राकारैश्च विमानैश्च सौधै रत्नमयैर्वृतम्॥ ११॥
तन्मध्ये नगरी दिव्या साऽयोध्येति प्रकीर्तिता।
मणिकाञ्चनचित्राढ्या प्राकारैस्तोरणैर्वृता॥ १२॥

× × ×

मध्ये तु मण्डपं दिव्यं राजस्थानं महोच्छ्रयम्॥ १९॥
मध्ये सिंहासनं रम्यं सर्ववेदमयं शुभम्।
धर्मादिदैवतैर्नित्यैर्वृतं पादमयात्मकैः॥ २१॥
धर्मज्ञानमहैश्वर्यवैराग्यैः पादविग्रहैः।
ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्यरूपैर्नित्यवृतं क्रमात्॥ २२॥
शक्तिराधारशक्तिश्च चिच्छक्तिश्च सदाशिवा।
धर्मादिदैवतानां च शक्तयः परिकीर्तिताः॥ २३॥

× × ×

तन्मध्येऽष्टदलं पद्मसमुदयार्कसमप्रभम्।
तन्मध्ये कर्णिकायां तु सावित्र्यां शुभदर्शने॥ २६॥
ईश्वर्या सह देवेशस्तत्रासीनः परः पुमान्।
इन्दीवरदलश्यामः कोटिसूर्यप्रकाशवान्॥ २७॥
युवा कुमारः स्निग्धश्च कोमलावयवैर्वृतः।

× × ×

फुल्लरक्ताम्बुजनिभः कोमलाङ्घ्रिसरोजवान्॥ २८॥

"भक्तलोग (मरकर) भगवान् विष्णुके उस परम धाम वैकुण्ठमें जाते हैं, जो नाना प्रकारके निवासियोंसे पूर्ण है। (परम) आनन्ददायक ब्रह्म वही है। वही भगवान् श्रीहरिका निवासस्थान है। वह परकोटों, सतमंजिले महलों तथा रत्ननिर्मित प्रासादोंसे घिरा हुआ है। उसी वैकुण्ठधामके बीचमें जो दिव्य नगरी है, वही 'अयोध्या' नामसे विख्यात है। वह नाना प्रकारकी मणियों तथा सोनेके चित्रोंसे सम्पन्न है और परकोटों तथा द्वारोंसे घिरी हुई है।"

"उस अयोध्या नगरीके मध्यमें बहुत ऊँचा एवं दिव्य मण्डप है, जो वहाँके राजाका निवासस्थान है। उसके बीचमें एक आकर्षक एवं चमकीला सिंहासन है, जो अपने पायोंके रूपमें स्थित धर्मादि सनातन देवताओंसे घिरा हुआ है। अथवा धर्म, ज्ञान, महैश्वर्य एवं वैराग्य—इन पायोंके रूपमें स्थित है। अथवा पायोंके रूपमें क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—इन चारों वेदोंके ही द्वारा वह सिंहासन घिरा है। 'शक्ति', 'आधारशक्ति', 'चिच्छक्ति' और 'सदाशिवा'—ये धर्मादि चार देवताओंकी शक्तियाँ कही गयी हैं।"

× × ×

"उक्त सिंहासनके मध्यमें एक अष्टदल (आठ पँखुड़ियोंका) कमल है, जिससे उदयकालीन सूर्यकी-सी आभा निकलती रहती है। उक्त कमलके बीचके कर्णिका-भागमें, जिसे 'सावित्री' कहते हैं, समस्त देवताओंके स्वामी परात्पर पुरुष विराजमान रहते हैं। उनका वर्ण नील कमलकी पँखुड़ियोंकी तरह श्याम है और उनमें करोड़ों सूर्योंका प्रकाश है। वे नित्य युवा होनेके साथ ही कुमारभावापन्न भी रहते हैं। वे स्नेहयुक्त, सुकुमार अङ्गोंवाले, प्रफुल्ल रक्त कमलकी-सी आभावाले और कोमल चरण-सरोरुहोंसे सम्पन्न हैं।"

इसी तथ्यको सनत्कुमारसंहितोक्त 'श्रीरामस्तवराज'में और भी स्पष्ट किया गया है—

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे।
स्मरेत्कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम्॥
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नानारत्नैश्च वेष्टितम्।
रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम्।
मङ्गलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम्॥

"रम्य अयोध्यानगरीमें रत्ननिर्मित मण्डपके मध्यवर्ती कल्पवृक्षके मूलमें चमचमाते हुए रत्नसिंहासनका ध्यान करे। उस सिंहासनके बीचमें षड्दल कमल है, जो विविध रत्नोंसे घिरा हुआ है। साथ ही उसपर विराजमान रघुश्रेष्ठ वीरशिरोमणि धनुर्वेदमें 'निष्णात' मङ्गलायतन कमल-लोचन श्रीरामका भी ध्यान करे।"

करुणासिन्धु श्रीरामचरणदासजी महाराजने रामचरित-मानसकी—'जद्यपि सब बैकुंठ बखाना।' (रा० च० मा० ७।४।३) की टीकामें प्रमाण उद्धृत किया है—

वैकुण्ठं पञ्च विख्यातं क्षीराब्धि च रमाख्यकम्।
महाकारणवैकुण्ठौ पञ्चमं विरजापरम्॥
नित्यादिव्यमनेकभागविभवं वैकुण्ठरूपोत्तरम्।
सत्यानन्दचिदात्मकं स्वयमभून्मूलं त्वयोध्यापुरी॥

साकेत-सुषमामें निम्न श्रुति उद्धृत है—

'याऽयोध्या पूः सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलाधारा मूलप्रकृतेः परा तत्सद्ब्रह्ममयी विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोशाढ्या तस्यां

नित्यमेव सीतारामयोर्विहारस्थलमस्ति।'

(सा० सु०, रमावैकुण्ठ पृ० २)

तात्पर्य यह कि "क्षीरसागरस्थ वैकुण्ठ, रमावैकुण्ठ, महा-वैकुण्ठ, कारणवैकुण्ठ और विरजापार (त्रिपाद्विभूतिस्थ) आदि वैकुण्ठ—इन पाँचों वैकुण्ठोंका तथा अन्य अनन्त वैकुण्ठोंका मूलाधार 'अयोध्या-साकेत' ही है।' वह साकेत मूल प्रकृतिसे परे अखण्ड और अपरिवर्तनीय ब्रह्ममय है, विरजाके दूसरे तीरपर स्थित है, दिव्यरत्नमण्डपवाली है। इसी अयोध्यामें श्रीसीतारामजीकी नित्य विहारभूमि है।

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम्।
पुरं हिरण्मयीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्॥

(अथर्व० १०।२।३३)

'(ब्रह्म) सर्वान्तर्यामी श्रीरामजी (पुरम्) उसी श्रीअयोध्यापुरी-में (आविवेश) प्रविष्ट हैं अर्थात् विराजमान हैं। वह [illegible] मानाम्) अत्यन्त प्रकाशमयी है, (हरिणीम्) म[illegible] करनेवाली है अथवा सर्वपापोंका आत्यन्तिक नाश [illegible] है तथा (यशसा सम्परीवृताम्) अनन्तकीर्तिसे यु[illegible] (अपराजिताम्) सर्वपुरियोंमें श्रेष्ठ है अर्थात् जिस[illegible] कोई भी पुरी नहीं कर सकती।'

प्राप्य वेदोंमें तो उपर्युक्त साढ़े पाँच मन्त्र [illegible] पुराणोंमें, पाञ्चरात्रीय संहिताओंमें, यामलोंमें, [illegible] एवं साम्प्रदायिक रहस्य-ग्रन्थोंमें अयोध्या-साकेत [illegible] विस्तृत वर्णन है कि उनका संक्षिप्त संकलन भी [illegible] हो सकता है। यह लघु लेख तो स्थालीपु[illegible] संकेतमात्र है।

नित्य कैलास

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

करुणामय भगवान् शंकरका दिव्य कैलास उन्हें अत्यधिक प्रिय है। उस कैलासके शिखर मणियोंके हैं और देखनेपर अनेक विचित्र धातुओंके प्रतीत होते हैं। उन सुन्दर शिखरोंपर लता-गुल्म फैले हैं। कैलासके कल्पवृक्षों-का तो वर्णन ही क्या किया जाय, जब कि पर्वतपर और सुविस्तृत वनोंमें मन्दार, पारिजात, पुन्नाग, चम्पा, शाल, ताड़, कचनार, असन, अर्जुन, आम, कदम्ब, गुलाब, अशोक, मौलसिरी, कुन्द, कुरबक, कटहल, गूलर, पीपल, पाकर, बड़, गूगल, भोजवृक्ष और केले आदिके अनेक फलों एवं सुगन्धित पुष्पोंके असंख्य वृक्ष और पौधे सुहावने लगते हैं। उनका सौन्दर्य देखकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। इलायची और मालतीकी मनोहर लताएँ तथा कुब्जक, मोगरा और माधवीकी फैली हुई बेलें वहाँके अनुपम सौन्दर्यकी वृद्धि करती रहती हैं। वहाँ आमड़ा, पियाल, महुआ और लिसौड़ा आदि अनेक प्रकारके वृक्षों तथा पोले और ठोस बाँसोंका फैला हुआ विशाल वन बड़ा ही सुन्दर लगता है। वहाँ सुरभित वायु बहती रहती है। मयूर नृत्य करते रहते हैं और कोयलकी कूक तथा विभिन्न जातिके पक्षियोंके कलरव मनको मोहे लेते हैं। उन वनोंमें वनके हाथी, हरिन, वानर, सूअर, सिंह, रीछ, साही, नीलगाय, शरभ, बाघ, कृष्णमृग, भैंसे, एकपद, अश्वमुख, भेड़िये और कस्तूरीमृग [illegible] स्वच्छन्द सुखपूर्वक विचरण करते हैं। सरोवरोंमें [illegible] विभिन्न जातियोंके सुगन्धित प्रफुल्ल कमल नेत्रोंको [illegible] करते हैं। उनपर भ्रमर गुञ्जार करते रहते हैं। सरोवरोंमें, उनके तटपर चारों ओर केलेके वृक्षों [illegible] बड़ी सुन्दर लगती हैं। वह नन्दा और अलकनन्दा [illegible] सरितासे घिरा है। उनका जल अत्यन्त मधुर और [illegible] उनमें आदिशक्ति सतीके स्नान करनेसे उनकी प[illegible] बढ़ गयी है तथा उनका जल सुगन्धित हो गया [illegible]

उसके आगे श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न वृषभ स्थित [illegible] साक्षात् धर्म हैं। जिनके सत्य आदि चार पैर [illegible] सींग और शम उनके कान हैं। वेदध्वनि आ[illegible] नेत्र हैं। उसके आगे दिन-रात और जन्म-मृत्यु [illegible] अभाव है। उसके अनन्तर कारणब्रह्माके चौद[illegible] फिर कारण-विष्णुके चौदह लोक हैं। उसके आ[illegible] रुद्रके अट्ठाईस लोक हैं। उसके बाद कारणेश[illegible] लोक हैं। फिर शिवसम्मत ब्रह्मचर्य लोक है। [illegible] कैलास है।

इस भूतभावन भोलेनाथके कैलासमें सभी प्र[illegible] सानन्द विचरण करते हैं। वहाँ किसीको, किस[illegible] प्रकारका भय नहीं। सब एक-दूसरेके आ[illegible]

प्राणप्रिय हैं। सभी परमानन्दमें निमग्न हैं। वहाँ सांसारिक ख एवं शोककी छाया भी नहीं। उस कैलासपर भगवान् नके भक्त, सिद्ध, देवता नित्य निवास करते हैं। गन्धर्व र अप्सरादि वहाँ सदा बने रहते हैं। वहाँके आनन्दकी मा नहीं।

वहाँ अत्यन्त सुन्दर विशाल वट-वृक्ष है। वह सौ ान ऊँचा है और उसकी शाखाएँ पचहत्तर योजनतक रित हैं। वहाँ सदा शीतल सघन छाया बनी रहती है, के कारण धूपसे कभी कष्ट नहीं होता। उस वृक्षमें ायोंके नीड़ नहीं।

वहाँ पञ्चावरणयुक्त ज्ञान कैलासमें पाँच मण्डपवाला ब्रह्मकलासे सम्पन्न आद्याशक्तिसहित आदिलिङ्ग है। परमात्मा शिवका शिवालय कहलाता है। वहाँ सृष्टि, ते, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह—इन पाँचोंमें प्रवीण ाक्तिसे युक्त सच्चिदानन्दविग्रह, ध्यानधर्मा, सदानुग्रहतत्पर, समाध्यासन-समासीन, स्वात्माराम भगवान् शिव विराजमान हैं। कर्पूरगौर उमानाथके सौन्दर्यकी सीमा नहीं। त्रिनयनके मस्तकपर जटा एवं पुण्यमयी भागीरथीकी शोभा अनिर्वचनीय है। सुधांशु वहाँ मुस्कराता है और विषधर उनके श्रीअङ्गोंपर स्वच्छन्द विचरण करते रहते हैं। कल्याणमय भगवान् शशाङ्कशेखरके दर्शनसे भक्त आनन्दमग्न हो जाते हैं।

वहाँ नन्दीस्थलके पीछे श्रीचन्द्रशेखरका अमित वैभव है। वहाँ नन्दीश्वर पञ्चाक्षरकी उपासना करते रहते हैं। वहाँ सर्वत्र अखण्ड आनन्द और शान्तिका साम्राज्य फैला रहता है।

मनुष्य करुणामय आशुतोष शिवकी कृपासे साक्षात् शिवलोकके वैभवका अनुभव कर सकता है। उक्त अनुपम वैभव एवं सौन्दर्य तथा सुखके दर्शनका अन्य कोई मार्ग नहीं।

दिव्य देवी-द्वीप

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

प्रबल पराक्रमी मधु-कैटभका वध हो जानेपर ाशक्ति भगवतीने ब्रह्मा, विष्णु और महेशको सृजन-करनेका आदेश दिया। उन लोगोंने सर्वत्र जल-ल देखा। इस कारण देवीके सम्मुख अपनी ाता प्रकट की। जगदम्बा मुस्कराने लगीं।

जगज्जननीकी इच्छासे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके ्र एक रत्नजटित अत्यन्त सुन्दर विमान उतर आया। विमानपर मोतियोंकी झालरें लटक रही थीं। उसमें ं किंकिणियोंसे मधुर ध्वनि निकल रही थी। श्वरीने कहा—'त्रिदेव ! तुमलोग निश्चिन्त होकर अमरावतीके तुल्य विमानमें बैठ जाओ। आज मैं गोंको आश्चर्यजनक दृश्य दिखलाती हूँ।'

आद्याशक्ति परमेश्वरीके आज्ञानुसार ब्रह्मा, विष्णु और क विमानमें बैठ गये। तदनन्तर देवीकी शक्तिसे वेमान आकाशमें उड़ चला। उसकी गति मनसे व्र थी।

वेमान उड़ता हुआ जब कुछ नीचे झुका तो एक केक नगर दृष्टिगोचर हुआ। उसके चारों ओर चहारदीवारी थी। सर्वत्र सुगन्धित पुष्पों एवं फलोंसे लदे वृक्षोंकी पंक्तियाँ बड़ी सुहावनी लग रही थीं। उपवनमें कोयल कूक रही थी। शीतल जलके सुन्दर झरने झर रहे थे। अत्यन्त सुन्दर स्त्री-पुरुष दीख रहे थे। वहाँके नरेश देवतुल्य दिव्य थे। त्रिदेवोंको उस नगरका परिचय पानेकी इच्छा हुई कि उन्होंने वहाँ विमानमें बैठी श्रीजगदीश्वरी-को देखा।

तुरंत वह दिव्य विमान शून्यमें उड़ता हुआ एक दूसरे सुन्दर प्रदेशमें पहुँच गया। वहाँका दृश्य देखकर त्रिदेवोंके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। वहाँ ऐसा नन्दनवन था, जैसा इन लोगोंने स्वर्गमें कभी नहीं देखा। वहाँ पारिजात वृक्ष भी था, जिसके नीचे सुरभि बैठी थी। उसके समीप ऐरावत भी विराजित था। वहाँ देवराज इन्द्र अपनी प्राणप्रिया शचीके साथ विद्यमान थे। वहाँ पारिजातोपवनमें अनेक यक्ष, किंनर एवं विद्याधर नृत्य, गान एवं विहारमें संलग्न थे। ब्रह्मा, विष्णु और महेशने वहाँके राजा इन्द्रको अद्भुत शिविकामें बैठकर बाहर जाते देखा। त्रिदेव चकित थे।

वह तीव्रगामी विमान उड़ता हुआ तुरंत कैलासके मनोरम शिखरपर पहुँच गया। हिमाच्छादित कैलास-शिखरकी शोभा अवर्णनीय थी। वहाँ मन्दारके वृक्ष पुष्पोंसे लदे झूम रहे थे। शुक और कोयलका मधुर कलरव सुनायी दे रहा था। वीणा और पखावजकी सुखद ध्वनि कानोंमें पड़ रही थी। वहाँ बहुत-से यक्ष दीख रहे थे। विमानके वहाँ पहुँचते ही एक भव्य-भवनसे गजचर्म ओढ़े पञ्चमुख आशुतोष शिव निकले। उनके दस भुजाएँ थीं। उनकी कर्पूरधवल अङ्गकान्ति अत्यन्त मनोहर थी। त्रिनेत्रके ललाटपर सुधांशु चमक रहा था। भगवान् शंकरके दोनों ओर गणेश और कार्तिकेय चल रहे थे। नन्दी तथा प्रधान गण, भगवान् चन्द्रमौलिके पीछे-पीछे उनकी जय बोलते चल रहे थे। इस दृश्यको देखकर भगवान् विष्णु एवं ब्रह्मासहित पार्वतीवल्लभ शंकर आश्चर्यचकित हो रहे थे।

कुछ ही देरमें वह अद्भुत विमान कैलास-शिखरसे तीव्रगतिसे उड़ता हुआ वैकुण्ठ-लोकमें पहुँच गया। वहाँका वैभव देखकर श्रीविष्णुके आश्चर्यकी सीमा न रही। ब्रह्मा और रुद्रके साथ उन्होंने पीताम्बरधारी कमलनयन श्रीहरिको पक्षिराज गरुड़की पीठपर विराजित देखा। उनके श्रीविग्रहकी कान्ति अलसीके पुष्पकी भाँति थी। दिव्य आभूषणोंसे उनकी अनुपम शोभा हो रही थी। उनकी प्रियतमा श्रीलक्ष्मीजी उनकी सेवामें उपस्थित थीं। यह अद्भुत दृश्य देखकर तीनों देवता चकित होकर विमानमें बैठ गये। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। ये तीनों लोक (स्वर्ग, कैलाश एवं वैकुण्ठ) इन त्रिदेवोंके परिचित लोकोंसे सर्वथा भिन्न थे। इनके ब्रह्माण्डके नहीं थे।

इतनेमें ही पवनविनिन्दक गतिवाला वह विमान तुरंत आगे बढ़ गया। वहाँ त्रिदेवोंने अमृततुल्य मधुर जलका विस्तृत महासागर देखा। उसमें चञ्चल लहरें उठ रही थीं। उस समुद्रमें अनेक जलजन्तु सुखपूर्वक निवास कर रहे थे। उस सुखद समुद्रके बीच एक अलौकिक द्वीप था। मन्दार एवं पारिजातके वृक्षों एवं उनके पुष्पोंसे द्वीपका सौन्दर्य निखरा हुआ था। अशोक, बकुल, कुरवक, केतकी और चम्पा आदि वृक्षोंकी पुष्पित डालियाँ वायुके मन्द झकोरोंसे झूमती हुई अद्भुत सुगन्ध बिखेर रही उनमें यत्र-तत्र कोयल पञ्चम स्वरमें आलाप ले रही और भ्रमर गुंजार कर रहे थे। सर्वत्र दिव्य ग छिड़काव हुआ था। वह द्वीप नाना प्रकारके अ सुन्दर एवं आकर्षक चित्रोंसे सजा हुआ था और मणियोंकी मालाएँ झूल रही थीं।

उस द्वीपमें एक मङ्गलमय पर्यङ्क बिछा था। उसपर अनेक सुन्दर सुकोमल बिस्तर पड़े पर्यङ्कका प्रकाश इन्द्रधनुषके सदृश था। पलंगपर स्थिति-संहारकारिणी भगवती भुवनेश्वरी आसीन थ उनका श्रीविग्रह अरुणाम्बरसे सुशोभित था। उनके परम अङ्गोंपर रक्त-चन्दनका लेप था और उनके सुवं कण्ठमें लाल रंगकी अद्भुत दिव्य माला शोभा पा रही उनके नेत्र विशाल एवं लाल थे। उनका मुखार अत्यन्त सुन्दर था और उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा ह कोटि विद्युत्कान्तिके तुल्य थी। उनके करकमल अङ्कुश, अभय और वरमुद्रासे शोभा पा रहे थे। उ एवं अलौकिक आभूषण उनके दिव्यतम अङ्ग सुशोभित थे।

उन पराम्बाके सहस्रों हाथ, सहस्रों मुखारविन्द सहस्रों सुन्दर विशाल नेत्र थे। अनेक साधक उनके स बैठकर 'ह्रीं' मन्त्रका जप करते थे। नाम-जपमें तल्लीन ब सी सहचरियाँ उनकी स्तुति कर रही थीं। जगज्जननी कोनोंवाले उत्तम यन्त्रपर विराजमान थीं तथा 'भुवने 'माहेश्वरी' आदि नामोंको हृदयङ्गम करनेवाली देवक उनके चारों ओर बैठी थीं। महामायाकी करोड़ों विभू उनके आस-पास विराजमान थीं। उनकी विभूतियोंके भी दिव्य अलंकारों एवं दिव्य गन्धोंसे सुशोभित थे सभी सहचरियाँ कल्याणस्वरूपिणी महामायाकी से संलग्न थीं।

यह अद्भुत दर्शन प्राप्त कर क्षीराब्धिशायी भग विष्णुने विवेकपूर्वक निश्चय कर लिया कि ये हम स आदिकारण भगवती जगदम्बिका हैं।

अवश्य ही यहाँ एक बात ध्यानमें रखनेकी है आद्याशक्ति जगदम्बिकाने अपने जिस अनुपम लोकका द ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रको कराया था, वह उनकी कृ

गाम था। सर्वसाधारणके लिये उक्त धामका दर्शन दुर्लभ-सा है। हाँ, वह पराम्बा भगवती जिस महा-भागपर अनुग्रह कर दें, उन्हें उक्त पवित्रतम अनुपम लोकके दर्शन हो सकते हैं।

(देवीभागवतके आधारपर)

परमधामका चिन्तन

(लेखक—श्रीरामलालजी)

द तथा शास्त्रोंमें वर्णित दिव्य परव्योम, ब्रह्मलोक, ाम, परमकोश तथा संत-महात्माओंद्वारा निरूपित सत्य- सत्यखण्ड, अभयपद-नगरी, आनन्दपुर, ब्रह्मलोक और ागर आदि एक-दूसरेके पर्याय हैं; सब-के-सब सर्वथा न हैं। यह परमधाम अव्यक्त, अनन्त, शाश्वत ब्रह्मका अधिष्ठान है। भगवान् श्रीकृष्णका कथन है जिस सनातन अव्यक्त तथा अक्षर भावको प्राप्तकर ा—जीवात्मा वापस नहीं आता है, वही मेरा परम है'—

'यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।'

(श्रीमद्भगवद्गीता ८। २१)

यह परमधाम ही उपनिषद्में वर्णित प्रकाशमय 'परम ' है। श्रीगीतामें उपर्युक्त भगवत्स्वीकृतिकी पुष्टि नीचे द्धृत उपनिषद्-वचनमें चरितार्थ हो जाती है—

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥

(मुण्डकोपनिषद् २। २। ९)

'वह निर्मल, अवयवरहित परब्रह्म प्रकाशमय परम ा—परमधाममें विराजमान है। वह सर्वथा विशुद्ध और स्त ज्योतियोंकी ज्योति—प्रकाशक है, जिसको आत्मज्ञानी नते हैं।' निस्संदेह परमधाम-सम्बन्धी भावाभिव्यक्ति चिन्त्य है। इस तरहके भावोंको तर्ककी कसौटीपर ना व्यर्थ प्रयासमात्र है।

यह परमधाम अक्षर-ब्रह्मसे भी परे सर्वातीत, सच्चिदा- न्दस्वरूप परब्रह्म परमात्माका स्वयंसिद्ध प्रकाश-स्वरूप है। ह नित्य चेतन और सनातन है। 'जिस परब्रह्म परमेश्वरसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है; जिससे बढ़कर न तो कोई सूक्ष्म , न महान् ही है; जो अकेला ही वृक्षकी तरह निश्चल ावसे प्रकाशमय परमधाम-रूप दिव्य आकाशमें स्थित है; ारे जगत्में निराकाररूपसे परिपूर्ण परब्रह्म परमात्माका अधिष्ठान यह दिव्य प्रकाशस्वरूप परमधाम ही है'—

यस्मात् परं नापरमस्ति किंचिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३। ९)

इस परम धामको प्राप्तकर मनुष्य संसारमें फिर जन्म नहीं लेता है—

'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥'

(श्रीमद्भगवद्गीता १५। ६)

'जो प्राणी सदा विवेकशील बुद्धिसे युक्त रहता है, संयतचित्त और पवित्र भावमें स्थित रहता है, वह उस परम पद—परमधामको प्राप्त कर लेता है। वहाँसे लौटकर फिर जन्म नहीं लेता है तथा अमृतत्वमें स्थित हो जाता है'—

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते॥

(कठोपनिषद् १। ३। ८)

श्रुतिके वचन हैं—

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥

(अथर्ववेद १०। २। २९-३०)

'जो निश्चयपूर्वक ब्रह्मकी अमृतरस—परमानन्दरस या अनन्त जीवनसे पूर्ण ब्रह्मपुरी—परमधामको जान लेता है, उसे ब्रह्म और (ब्रह्मके) उपासक चक्षु आदि इन्द्रियाँ, जीवन और संतान प्रदान करते हैं। जो ब्रह्मकी उस पुरीको जानता है, जिसका अध्यक्ष साक्षात् पुरुष—ब्रह्म कहा जाता है, उसे चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियगण नहीं छोड़ते हैं, न प्राण ही वृद्धावस्था आनेके पहले उसे छोड़ता है।'

'तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ।' (प्रश्नोपनिषद् १ । १६)

'जिनमें कुटिलता, असत्य और कपटका सर्वथा अभाव है, उन्हींको यह विकाररहित पवित्र ब्रह्मलोक मिलता है।'

संत कबीर, दादू, रैदास, दरियासाहेब, गुलालसाहेब आदि सभीकी वाणियोंमें इस परमधामका विभिन्न रूपोंमें वर्णन है।

परमधाम-प्राप्ति ही साधनाका परम फल है। जो मनु ज्ञानतत्त्व और कर्मतत्त्वको साथ-साथ जान लेता है, कर्मके निष्काम अनुष्ठानसे मृत्युको पारकर तत्त्वज्ञान प्रकाशमें अमृतका रसास्वादन करता है—अविना आनन्दमय परब्रह्मको प्रत्यक्ष प्राप्त कर लेता है। परमधाम अनुभूति साक्षात् परब्रह्म—परमात्माकी ही प्राप्ति है।

यम और उनका लोक

(लेखक—'श्रीमण्डन' मिश्र)

भारतीय देवमण्डलमें यमका एक उच्च स्थान है। वे दक्षिण दिशाके दिक्पाल एवं मृत्युके देवता माने जाते हैं। कुछ लोगोंका मत है कि ये दोनों भिन्न हैं। दुर्गाचारके मतसे प्राणिमात्रके मारक हैं, वे ही मृत्यु हैं। वे भोगायतन देहसे जीवात्माको विमुक्त करते हैं। किंतु यम जीवमात्रको कर्मानुसार स्थान प्रदान करते हैं। दोनोंके कार्य भिन्न होते हुए दोनोंमें बहुत कुछ सादृश्यता देखी जाती है। वेदमें कई जगह यम और उनकी बहिन यमी (यमुना) को विवस्वत और सरण्युकी यमज संतति बतलाया गया है। ऋग्वेदके कई स्थानोंमें यमको 'वरुण' कहा गया है और उनका अग्निके साथ एकत्र वर्णन देखा जाता है। मृत व्यक्ति परलोकमें सबसे पहले यम और वरुणको देखता है। चित्रगुप्तके प्रसङ्गमें यह आया है कि उनकी सूचनापर मृत व्यक्तिकी अगली व्यवस्था यमराजजी कराते हैं। त्रिलोकमें मध्य दो सवितृलोक और तीसरा यमलोक है। वाजसनेय संहिताके अनुसार यम यमीके साथ उच्चतम स्वर्गमें विराजते हैं तथा उनके चारों ओर दिव्य संगीत और वीणाध्वनि होती रहती है। यम और यमीके कथोपकथनमें यमीने यमको सर्वप्रथम मरणशील बतलाया है। वे ही सबसे पहले देह त्यागकर मरण-पथके नेता हुए। ऋग्वेदमें एक उल्लू या कपोतको यमका दूत कहा गया है, परंतु उस रूपमें दो कुत्तोंका भी उल्लेख अधिक मिलता है। इनका वर्णन 'यमराजके कुत्ते' शीर्षक लेखमें किया गया है। प्रसिद्ध पाश्चात्य पंडित ब्लूमफिल्डका कहना है कि ये दोनों कुत्ते चन्द्र और सूर्यके रूपकमात्र हैं।

वेदके यम पारसियोंके आदिशास्त्र 'अवस्ता'में यम नामसे वर्णित हैं। यूनानी पुराणोंके प्लूतो और मीनसके साथ यमकी पूर्ण सादृश्यता है। अवस्तामें इनके पिताको 'विवमहित' और वेदमें 'विवस्वत' कहा गया है। इस त दोनोंमें कोई पृथक्ता नहीं देख पड़ती।

पुराणोंके अनुसार विश्वकर्माकी एक 'संज्ञा' नामक क थी। रविका उसके साथ विवाह हुआ था। संज्ञाने रवि देखकर आँखें मूँद ली थीं, इसलिये रविने उसे शाप दि कि 'तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र होगा, वह प्रजासंयम यम होगा

स्मृतियोंमें यमके चौदह नाम देखनेमें आते हैं। उन अनुसार यमका तर्पण किया जाता है। यमराज ही क नुसार मृत प्राणीको विभिन्न लोकोंमें भेजते हैं। इसी उन्हें कभी-कभी 'धर्मराज' भी कहा जाता है। जब पुण्यात्माको दर्शन देते हैं, तब उनका रूप बहुत कुछ वि भगवान्-जसा होता है; किंतु पापियोंको वे बड़े भया रूपमें दिखायी देते हैं। पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें इ वर्णन मिलता है। मनुष्यलोकसे यमलोक ८६००० यो दूर है। इस महापथसे ही प्रेत यमलोक जाते हैं। इ मार्गमें भयंकर वैतरणी नदी मिलती है। यमलोकका सुन्दर वर्णन पुराणोंमें मिलता है। वराहपुराणके अनु 'उनका नगर ४००० योजन लंबा और २००० योजन चौ है। इसमें कितनी ही सुन्दर अट्टालिकाएँ हैं। नगरमें विश राजमार्ग हैं, जिनपर अनेक प्रकारके वाहनोंका आवाग होता रहता है। पुष्पोदका नामकी एक नदी है, जिस जल बहुत शीतल एवं सुगन्धित है। उसमें विशाल वाली अप्सराएँ क्रीड़ा करती रहती हैं। कमलिनी खिली रहती हैं और उनके बीच हंस विचरते रहते और दूसरा प्रलुब्धक नक्षत्र हैं।' तिलकजीकी रा यह सब रूपक मात्र है। इसमें जिन दो कुत्तोंकी बात अ ह, उनमेंसे एक लुब्धक नक्षत्र और दूसरा प्रलुब्धक नक्षत्र

ये ही दोनों ज्योतिर्मय तारारूपी कुत्ते वैतरणीके दोनों किनारे अवस्थित हैं। पारसी तथा यूनानी पुराणोंमें इन कुत्तोंका जो वर्णन मिलता है, वह बहुत कुछ अपने यहाँके वर्णनसे समता रखता है। यूरोपके वेदज्ञ विद्वान् यम और यमीको दिन-रात मानते हैं। श्रीमद्भागवत, देवीभागवत, ब्रह्मपुराण, नारदपुराण, अग्निपुराण और स्कन्दपुराणमें भी यमलोकका वर्णन मिलता है। यदि विभिन्न देशोंमें प्रचलित ऐसी परम्पराओंका तुलनात्मक दृष्टिसे अध्ययन किया जाय, तो उनमें बहुत कुछ समता मिलेगी और उनका मू खोजनेमें भी सहायता प्राप्त होगी।

यदि यमराजको किसीने छकाया तो सावित्रीने। उन पीछे पड़कर पहले उसने अपने नेत्रहीन माता-पिताके लि नेत्रोंकी ज्योति प्राप्त की; फिर उसने अपने पति सत्यवान्के यमराजके पाशसे छुड़ाया। स्वर्गीय अरविन्द श्रीने 'सावित्री नामसे अंग्रेजीमें एक महाकाव्य ही लिख डाला है। साहित्य जगत्में उसकी बड़ी ख्याति है।

यमलोकके मार्गमें पापियोंके कष्ट तथा पुण्यात्माओंके सुखका वर्णन

श्रीसनकजीने नारदजीसे कहा—'ब्रह्मन्! सुनिये। मैं अत्यन्त दुर्गम यमलोकके मार्गका वर्णन करता हूँ। वह पुण्यात्माओंके लिये सुखद और पापियोंके लिये भयदायक है। मुनीश्वर! प्राचीन ज्ञानी पुरुषोंने यमलोकके मार्गका विस्तार छियासी हजार योजन बताया है। जो मनुष्य यहाँ दान करनेवाले होते हैं, वे उस मार्गमें सुखसे जाते हैं और जो धर्मसे हीन हैं, वे अत्यन्त पीड़ित होकर बड़े दुःखसे यात्रा करते हैं। पापी मनुष्य उस मार्गपर दीनभावसे जोर-जोरसे रोते-चिल्लाते जाते हैं—वे अत्यन्त भयभीत और नंगे होते हैं। उस अत्यन्त पीड़ादायक भयानक यमपथपर भीषण आकृति-प्रकृतिवाले यमदूत उनको असह्य घोर पीड़ा पहुँचाते हुए ले जाते हैं। वे पापीलोग जानकर या अनजानमें किये हुए अपने पापकर्मोंके लिये शोक करते हुए अत्यन्त दुःखसे यात्रा करते हैं।

नारदजी! जो उत्तम बुद्धिवाले मानव धर्मनिष्ठ, दानशील होते हैं, वे अत्यन्त सुखी होकर धर्मराजके लोककी यात्रा करते हैं। मुनिश्रेष्ठ! अन्न देनेवाले स्वादिष्ट अन्नका भोजन करते हुए जाते हैं। जिन्होंने जल दान किया है, वे भी अत्यन्त सुखी होकर उत्तम दूध पीते हुए यात्रा करते हैं। मट्ठा और दहीका दान करनेवाले तत्सम्बन्धी भोग प्राप्त करते हैं। द्विजश्रेष्ठ! घृत, मधु और दूधका दान करनेवाले पुरुष सुधापान करते हुए धर्ममन्दिरको जाते हैं। साग देनेवाला खीर खाता है और दीप देनेवाला सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए जाता है। मुनिप्रवर! वस्त्रदान करनेवाला पुरुष दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित होकर यात्रा करता है। जिसने आभूषण दान किया है, वह उस मार्गपर देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनता हुआ जाता है। गोदानके पुण्यसे मनुष्य सब प्रकारके सुख-भोगसे सम्पन्न होकर जाता है। द्विजश्रेष्ठ! घोड़े, हाथी तथा रथकी सवारीका दान करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण भोगोंसे युक्त विमानद्वारा धर्मराजके मन्दिरको जाता है। जिस श्रेष्ठ पुरुषने माता-पिताकी सेवा-शुश्रूषा की है, वह देवताओंसे पूजित हो प्रसन्नचित्त होकर धर्मराजके भवनमें जाता है। जो यतियों, व्रतधारियों तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, वह बड़े सुखसे धर्मलोकको जाता है। जो चराचर सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है, वह देवताओंसे पूजित हो सर्वभोगसमन्वित विमानद्वारा यात्रा करता है। जो विद्यादानमें तत्पर रहता है, वह ब्रह्माजीसे पूजित होता हुआ जाता है। पुराण-पाठ करनेवाला पुरुष मुनीश्वरोंद्वारा अपनी स्तुति सुनता हुआ यात्रा करता है। इस प्रकार धर्मपरायण पुरुष सुखपूर्वक धर्मराजके निवासस्थानको जाते हैं। उस समय धर्मराज चार भुजाओंसे युक्त हो शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करके बड़े स्नेहसे मित्रकी भाँति उस पुण्यात्मा पुरुषकी पूजा करते हैं और इस प्रकार कहते हैं—'हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ पुण्यात्मा पुरुषो! जो मानव-जन्म पाकर पुण्य नहीं करता है, वही पापियोंमें बड़ा है और वह आत्मघात करता है। जो अनित्य मानव-जन्म पाकर उसके द्वारा नित्य वस्तु (धर्म) का साधन नहीं करता, वह घोर नरकमें जाता है। उससे बढ़कर जड और कौन होगा? यह शरीर यातनारूप (दुःखरूप) है और मल आदिके द्वारा अपवित्र है। जो इसपर (इसकी स्थिरतापर) विश्वास करता है, उसे आत्मघाती समझना चाहिये। सब भूतोंमें प्राणधारी श्रेष्ठ हैं। उनमें भी जो (पशु-पक्षी आदि) बुद्धिसे जीवन-निर्वाह करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उनसे भी मनुष्य श्रेष्ठ है। मनुष्योंमें ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें

पापियोंकी दुःखपूर्ण यात्रा [पृष्ठ ४०५-६]

पापियोंको यमराजकी फटकार [पृष्ठ ४०७-८]

धार्मिकोंकी यमपुरीकी सुखयात्रा [पृष्ठ ४११]

धर्मराजके द्वारा धार्मिकोंका स्वागत [पृष्ठ ४१२]

भीलनीको शंकरका वरदान [पृष्ठ ५००]

जातिस्मर कीड़ा [पृष्ठ ५१३

जडभरतका पूर्वजन्म [पृष्ठ ५१४]

जातिस्मर चार पक्षी [पृष्ठ ५१४]

विद्वान् और विद्वानोंमें अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुष श्रेष्ठ हैं। अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुषोंमें कर्तव्यका पालन करनेवाले श्रेष्ठ हैं और कर्तव्य-पालकोंमें भी ब्रह्मवादी (वेदका कथन करनेवाले) पुरुष श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मवादियोंमें भी वह श्रेष्ठ कहा जाता है, जो ममता आदि दोषोंसे रहित हो। इनकी अपेक्षा भी उस पुरुषको श्रेष्ठ समझना चाहिये, जो सदा भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर रहता है।* इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके (सदाचार और ईश्वरकी भक्तिरूप) धर्मका संग्रह करना चाहिये। धर्मात्मा जीव सर्वत्र पूजित होता है, इसमें संशय नहीं है। तुमलोग सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न पुण्यलोकमें जाओ। यदि कोई पाप है तो पीछे यहीं आकर उसका फल भोगना।'

ऐसा कहकर यमराज उन पुण्यात्माओंकी पूजा करके उन्हें सद्गतिको पहुँचा देते हैं और पापियोंको बुलाकर उन्हें कालदण्डसे डराते हुए फटकारते हैं। उस समय उनकी आवाज प्रलयकालके मेघके समान भयंकर होती है और उनके शरीरकी कान्ति कज्जलगिरिके समान जान पड़ती है। उनके अस्त्र-शस्त्र बिजलीकी भाँति चमकते हैं, जिनके कारण वे बड़े भयंकर जान पड़ते हैं। उनके बत्तीस भुजाएँ हो जाती हैं। शरीरका विस्तार तीन योजनका होता है। उनकी लाल-लाल और भयंकर आँखें बावड़ीके समान जान पड़ती हैं। सब दूत यमराजके समान भयंकर होकर गरजने लगते हैं। उन्हें देखकर पापी जीव थर-थर काँपने लगते हैं और अ अपने कर्मोंका विचार करके शोकग्रस्त हो जाते हैं। समय यमकी आज्ञासे चित्रगुप्त उन सब पापियोंसे क हैं—'अरे ओ दुराचारी पापात्माओ! तुम सब त अभिमानसे दूषित हो रहे हो। तुम अविवेकियोंने क क्रोध आदिसे दूषित अहंकारयुक्त चित्तसे किसलिये पाप आचरण किया? पहले तो बड़े हर्षमें भरकर तुमलोग पाप किये हैं, अब उसी प्रकार नरककी यातनाएँ भी भोग चाहिये। अपने कुटुम्ब, मित्र और स्त्रीके लिये जैसा प तुमने किया है, उसीके अनुसार कर्मवश तुम यहाँ आ पहुँ हो। अब अत्यन्त दुखी क्यों हो रहे हो? तुम्हीं सोच जब पहले तुमने पापाचार किया था, उस समय यह क्यों नहीं विचार लिया कि यमराज इसका दण्ड अव देंगे। कोई दरिद्र हो या धनी, मूर्ख हो या पण्डित अ कायर हो या वीर—यमराज सबके साथ समान बत करनेवाले हैं।' चित्रगुप्तके ये वचन सुनकर वे पा भयभीत हो अपने कर्मोंके लिये शोक करते हुए चुपच खड़े रह जाते हैं। तब यमराजकी आज्ञाका पालन करनेवा क्रूर, क्रोधी और भयंकर दूत इन पापियोंको बलपूर्वक पकड़ कर नरकोंमें फेंक देते हैं। वहाँ अपने पापोंका फल भोगव अन्तमें शेष पापके फलस्वरूप वे भूतलपर आकर स्थाव आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं।

(नारदपुराण, पूर्व० अध्याय ३१

पापसे बचकर धर्म-सेवन करो

मनुष्यको अपने जीवनमें पापोंसे सदा बचना चाहिये। पाप तीन साधनोंसे होते हैं—मनसे, वचनसे शरीरसे। तीनों साधनोंको सदा पापसे बचाकर पुण्यकर्ममें—धर्म-सेवनमें ही लगाये रक्खो। पाप ती तरहसे होते हैं—'कृत' (स्वयं करे), 'कारित' (दूसरोंके द्वारा करवाये) और 'अनुमोदित' (कोई दूसर पाप करता हो तो उसका समर्थन करे)। इन तीनों तरहसे पाप-कर्म न करके स्वयं धर्मका सेवन करे दूसरोंको सदा धर्मका सेवन करनेके लिये प्रेरणा, उत्साह तथा सहायता देता रहे और किसीके द्वारा भ होनेवाले पापका समर्थन तो कभी करे ही नहीं, उसका यथोचित विरोध करे तथा दूसरोंके धर्म-कार्यों सदा समर्थन कर उन्हें उत्साहित करता रहे।

* ब्रह्मवादिष्वपि तथा श्रेष्ठो निर्मम उच्यते। एतेभ्योऽपि परो श्रेयो नित्यं ध्यानपरायणः॥

(नारद०, पूर्व० ३१। ३६-३७

पापी यमपुर कैसे जाता है ?

(लेखक—पं० श्रीमक्खनलालजी मिश्र, ज्यौतिषाचार्य)

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

(गीता १६ । १६)

'अनेक प्रकारसे भ्रमित चित्तवाले, मोहरूप जालमें । हुए और विषय-भोगोंमें अत्यन्त आसक्त मनुष्य महान् ।वित्र नरकोंमें गिरते हैं ।' भगवान् श्रीकृष्णके वचनोंका ।न अधोगति-निवारणकी सफल भूमिका है । संसार कर्म- ।ान है । जो जैसा करता है, वैसा ही फल गता है । जिनका चित्त परमेश्वरके परमानन्दका अनुभव ता है, उन्हें स्वप्नमें भी किंचित् मात्र क्लेश नहीं होता । परम गतिको प्राप्त होते हैं ।

जो हरिभक्तिविमुख पापी हैं, वे अनेक रोगरूपी खोंको प्राप्त होते हैं । उनको मन्दाग्नि होकर अन्न घट ता है, चलने-फिरनेकी चेष्टा कम हो जाती है । नाड़ी-रूप र्ग कफसे रुक जाता है । उनके नेत्र प्राणरूप वायुसे फट ते हैं और कास-श्वाससे दबाया हुआ वह प्राणी, जिसके ठमें घुर-घुर शब्द होता है, एक साथ सौ बिच्छुओंके कको पीड़ाको प्राप्त कर रोते हुए भाई-बन्धुओंके बीचमें : जाता है । इन्द्रिय-समूहके व्याकुल और जड होनेपर नीप आये भयानक यमदूतोंको देख प्राण अपने स्थानसे लायमान हो जाते हैं । जब श्वास अपने स्थानसे चलायमान ता है, पापी मनुष्यको एक क्षणका कष्ट भी कल्पके समान लूम पड़ता है । फिर जब मुख लारसे भर जाता है तो ।णवायु गुदा आदि नीचेके छिद्रोंसे होकर निकल जाती है। भयानक नेत्र और दाँतवाले दण्ड-पाश लिये यमके दूतोंका दर्शन असहनीय है । 'हाय ! हाय !' करता मनुष्य इस देहसे निकलकर अङ्गुष्ठमात्र देह धारण करता है । यातनाओंको भोगनेके लिये वह प्राणी यमदूतोंद्वारा घेर लिया जाता है । यमके दूत उसे धमकाते हैं और नरकके तीव्र भयको बारंबार कहते हैं—

शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् यास्यसि त्वं यमालयम् ।
कुम्भीपाकादिनरकांस्त्वां नयाम्यद्य माचिरम् ॥

(गरुडपुराण १ । ३५)

'अरे दुष्ट ! शीघ्र चल । तू यमके द्वारको जायगा ३ कुम्भीपाक आदि नरकोंमें तुझे ले जा रहे हैं ।' इस प्रकार य दूतोंके वचन और भाई-बन्धुओंका रुदन सुनकर वह प्रा 'हाय ! हाय !' करके रोता है । यमदूतोंकी ताड़नासे दु वह प्राणी अपने पापोंका स्मरण करता है । रास्तेमें कु द्वारा काटा जाता है । भूख-प्याससे व्याकुल, थका और मूर्च्छि हो-होकर फिर उठता है । कोड़ोंकी मार खाता हु यमलोक पहुँचता है । वासनासे बँधा हुआ देहमें पुनः प्रवेशकी इच्छा करता है । भूख-प्याससे पीि होकर बार-बार रोता है ।

मृत्युस्थान आदिमें पुत्रोंद्वारा दिये पिण्डको ३ मरतेःसमय दिये दानको खाता है । इसी पिण्डको खा वह भूख-प्याससे तृप्त होता है । अगर मृतकको पिण्डद नहीं किया जाता तो वह प्राणी कल्पभर प्रेतरूप हो है और शून्य वनमें जहाँ खाने-पीनेको कुछ नहीं, स्थानमें दुखी होकर भ्रमण करता है । बिना भोगे क्षीण नहीं होते और यमकी यातना भोगे बिना वह मनुष्य नहीं पाता । इसीलिये मृत्युके उपरान्त दस दिनतक पुत्रद्व पिण्डदान होता है । उन पिण्डोंको खानेसे ही जीव चलने-फिरनेमें समर्थ होता है । उसके अङ्ग होते हैं ।

तेरहवें दिन यमदूतोंद्वारा बाँधा गया वह प्रेत ध राजके मार्गपर चलता है । यममार्गका विस्तार छिया हजार योजनप्रमाण है । प्रेत प्रतिदिन दो सौ तैंताल योजन रात-दिनमें चलता है । वह रास्तेमें अनेक वि जीव-जन्तुओंद्वारा काटा जाता है । जलके खड्डोंमें गिर जाता है । वहाँ गहरा अन्धकार है । मार्गके मध्यमें बह वाली वैतरणी नदी देखनेहीसे बड़े दुःखको देनेवाली है वह सौ योजन चौड़ी है । उसमें पीब और रुधिर बह है । मांस तथा रुधिरकी उसमें कीच है । बड़े-बड़े ग्राह अ पक्षियोंसे घिरी रहती है । सूईकी नोकके समान कीड़ों अ जोंकोंसे व्याप्त है । उसकी धारमें बहते अनेक पापी चिल्ल हैं । बार-बार 'हाय माई ! हाय बाप !'—ऐसे कहते हैं

वे भूख-प्याससे दुखी पापी यमदूतोंद्वारा मुद्गरोंसे ताड़े जाते हैं और हाय-हाय करते हुए कहते हैं—

महता पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते।
तत्प्राप्य न कृतो धर्मः कीदृशं हि मया कृतम्॥
मया न दत्तं न हुतं हुताशने
तपो न तप्तं त्रिदशा न पूजिताः।
न तीर्थसेवा विहिता विधानतो
देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्॥
(ग० पु०)

'बड़े पुण्ययोगसे मनुष्य-शरीर पाकर भी मैंने दान, धर्म, तप, होम, देवपूजा और तीर्थसेवा नहीं की। परोपकार, गङ्गाका आश्रय और सत्सङ्ग नहीं किया। गौ-ब्राह्मण तथा दुखियोंके लिये कुछ भी नहीं किया। इसलिये हे देही! तू अपने पापकर्मोंको भोग।'

स्त्रीके लिये पति ही तीर्थ, व्रत और धर्म है; किंतु जिसने पतिकी सेवा नहीं की तथा विधवा होकर भी तपका सेवन नहीं किया, वह भी इसी प्रकार रोती-विलाप करती है।

वह प्रेत सत्रह दिनतक वायुके वेगसे अकेला ही विकट मार्गपर चलता हुआ अठारहवें दिन सौम्यपुरको जाता है। उस नगरमें बड़ा भारी प्रेतोंका समुदाय रहता है। वहाँ पुष्पभद्रा नामक नदी है। उस मनोहर नदीके किनारे विशाल वटवृक्ष है। वह वहाँपर विश्राम करता है और स्त्री-पुत्रादिके सौख्यका स्मरण करता है। फिर यमदूतोंद्वारा यमपुर ले जाया जाता है। दान-पुण्य न करनेके कारण वैतरणीमें डूबता जाता है। दूतोंद्वारा बार-बार खींचकर निकाला जाता है। रास्तेमें पुत्रोंद्वारा दिये मासिक पिण्डोंको हर्षपूर्वक खाता है।

शैलागमन, विचित्रपुर आदि नगरोंको लाँघता हुआ अन्तमें यमराजके मुख्य नगरमें पहुँचता है। वह चौवालीस योजनके प्रमाणका है। वहाँ चित्रगुप्त, जो धर्मराजके महामन्त्री हैं, उन पापियोंकी सब जानकारी बताते हैं और फिर यमराजकी आज्ञा पाकर कहते हैं—

'अरे पापी दुराचारियो! तुमने अज्ञान धारण करके अहंकारसे दूषित हो अनेक पाप इकट्ठे किये। काम-क्रोध और पापियोंकी सङ्गतिसे उत्पन्न पाप ही तुम्हें दुःख देनेवाले हैं। जैसे पाप किये हैं, वैसे ही यमकी यातना भोग योग्य है।'

यमदेवकी आज्ञा पाकर प्रचण्ड, चण्डक आदि उन सब पापियोंको एक पाशमें बाँधकर घोर नरकोंमें ले जा हैं। श्रीगरुडपुराणमें चौरासी लाख नरक बताये गये जिनमें मुख्य २१ या २८ हैं।

पापी मनुष्य अपने-अपने विभिन्न पापकर्मानुसार उपर्युक्त नरकोंमें घोर यातना भोगकर फिर शुद्ध होते हैं और भूलोकमें आकर जन्म लेते हैं। जीव मनुष्य-जन्म लेता है और मरता है, किंतु वह सत्यकी खोज न करके विषय-वासनाओं ही सदैव लिप्त रहता है। इसीका बुरा फल उसे भोगना पड़ता है।

मनुष्यकी कर्म-भोग-योनिका नाम ही प्रेतावस्था है जैसा अच्छा या बुरा जीवनमें किया जाता है, उसका भुगता अवश्य ही होता है। इसीलिये इस योनिका निर्माण किया गया। आधुनिक अश्रद्धालु दुराचारी वातावरणमें पले मानव समाजको प्राचीन सत्साहित्यका अवलोकन करना चाहिये हर विषय अपना अपूर्व महत्त्व रखता है। हमारे पूर्वजोंका अन्वेषण सर्वथा सत्य और सफल है, इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं। हमारा मानव-जीवन अवस्थाके सुप्रभात ही भगवत्-प्रेमका साधन आरम्भ कर दे तो अधोगतिका नामोनिशान ही न रहे।

सारे पापोंके नाशके लिये भगवान्के सोलह नामोंवाले निम्नलिखित स्तोत्रका प्रातःकाल सबको पाठ करना चाहिये—

सर्वपापनाशक श्रीविष्णुस्तोत्र

औषधे चिन्तयेद् विष्णुं भोजने च जनार्दनम्।
युद्धे चक्रधरं देवं प्रवासे च त्रिविक्रमम्॥
शयने पद्मनाभं च विवाहे च प्रजापतिम्।
नारायणं तनुत्यागे श्रीधरं प्रियसंगमे॥
दुःस्वप्ने स्मर गोविन्दं संकटे मधुसूदनम्।
जलमध्ये च वाराहं पर्वते रघुनन्दनम्॥
कानने नारसिंहं च पावके जलशायिनम्।
गमने वामनं चैव सर्वकार्येषु माधवम्॥
षोडशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥

पापी तथा पुण्यात्माओंकी कर्मानुसार गति और यमलोकका वर्णन

ब्रह्मपुराणमें पुण्यकर्मा मुनियों तथा भगवान् व्यासका संवाद है। उसीका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है। बहुत ही उपयोगी तथा पढ़-समझकर यथायोग्य आचरणमें लानेयोग्य है। मुनियोंके पूछनेपर भगवान् व्यासजी कहते हैं—

यमलोकका मार्ग और भयानक यमदूत

व्यासजीने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनिवरो! सुनो। यह संसारचक्र प्रवाहरूपसे निरन्तर चलता रहता है। अब मैं प्राणियोंकी मृत्युसे लेकर आगे जो अवस्था होती है, उसका वर्णन करूँगा। इसी प्रसङ्गमें यमलोकके मार्गका भी निर्णय किया जायगा। यमलोक और मनुष्यलोकमें छियासी हजार योजनोंका अन्तर है। उसका मार्ग तपाये हुए ताँबेकी भाँति पूर्ण तप्त रहता है। प्रत्येक जीवको यमलोकके मार्गसे जाना पड़ता है। पुण्यात्मा पुरुष पुण्यलोकोंमें और नीच पापाचारी मानव पापमय लोकोंमें जाते हैं। यमलोकमें (मुख्यतया) बाईस नरक हैं, जिनके भीतर पापी मनुष्योंको पृथक्-पृथक् यातनाएँ दी जाती हैं। यमलोकके मार्गमें न तो कहीं वृक्षकी छाया है, न तालाब और पोखरे हैं; न बावड़ी न पुष्करिणी है; न कूप हैं न पौंसले हैं; न धर्मशाला है न मण्डप है; न घर है न नदी एवं पर्वत हैं और न ठहरनेके योग्य कोई स्थान ही है, जहाँ अत्यन्त कष्टमें पड़ा हुआ थका-माँदा जीव विश्राम कर सके। उस महान् पथपर सब पापियोंको निश्चय ही जाना पड़ता है। जीवकी यहाँ जितनी आयु नियत है, उसका भोग पूरा हो जानेपर इच्छा न रहते हुए भी उसे प्राणोंका त्याग करना पड़ता है।

मृत्युके समय वात, पित्त, कफके दूषित होनेपर नाना प्रकारके कष्टकर रोग हो जाते हैं और जीव दुःखपूर्वक मरता है। जिसने कभी मिथ्याभाषण नहीं किया, दो प्रेमियोंके पारस्परिक प्रेममें बाधा नहीं डाली तथा जो आस्तिक और श्रद्धालु है, वह सुखपूर्वक मृत्युको प्राप्त होता है। जो देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें संलग्न रहते, किसीकी निन्दा नहीं करते तथा सात्त्विक, उदार और लज्जाशील होते हैं, ऐसे मनुष्योंको मृत्युके समय कष्ट नहीं होता। जो कामनासे, क्रोधसे अथवा द्वेषके कारण धर्मका त्याग नहीं करता; शास्त्रोक्त आज्ञाका पालन करनेवाला तथा सौम्य होता है, उसकी मृत्यु भी सुखसे होती है। जो किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाते, वे मृत्युकालमें प्राण-घातिनी क्लेशमय वेदनाका अनुभव नहीं करते। जिन्होंने कभी जलका दान नहीं किया है, उन मनुष्योंको मृत्युकाल उपस्थित होनेपर अधिक जलन होती है तथा अन्नदान न करनेवालोंको उस समय भूखका भारी कष्ट भोगना पड़ता है।

पापी लोगोंकी मृत्युके समय यमराजके दुष्ट दूत हाथोंमें हथौड़ी एवं मुद्गर लिये आते हैं; वे बड़े भयंकर होते हैं और उनकी देहसे दुर्गन्ध निकलती रहती है। उन यमदूतोंपर दृष्टि पड़ते ही मनुष्य काँप उठता है और भ्राता, माता तथा पुत्रोंका नाम लेकर बारंबार चिल्लाने लगता है। उस समय उसकी वाणी स्पष्ट समझमें नहीं आती। एक ही शब्द, एक ही आवाज-सी जान पड़ती है। भयके मारे रोगीकी आँखें घूमने लगती हैं और उसका मुख सूख जाता है। उसकी साँस ऊपरको उठने लगती है। दृष्टिकी शक्ति भी नष्ट हो जाती है। फिर वह अत्यन्त वेदनासे पीड़ित होकर उस शरीरको छोड़ देता है और वायुके सहारे चलता हुआ वैसे ही दूसरे शरीरको धारण कर लेता है, जो रूप, रंग और अवस्थामें पहले शरीरके समान ही होता है। वह शरीर माता-पिताके गर्भसे उत्पन्न नहीं, कर्मजनित होता है और यातना भोगनेके लिये ही मिलता है; उसीसे यातना भोगनी पड़ती है। तदनन्तर यमराजके दूत शीघ्र ही उसे दारुण पाशोंसे बाँध लेते हैं। जीवको बड़ी वेदना होती है, वह अत्यन्त व्याकुल हो जाता है और यमलोकके मार्गपर वायुरूप होकर चला जाता है।

वह मार्ग अन्धकारपूर्ण, अपार, अत्यन्त भयंकर तथा पापियोंके लिये अत्यन्त दुर्गम होता है। यमदूत पाशोंमें बाँधकर उसे खींचते और मुद्गरोंसे पीटते हुए उस विशाल पथपर ले जाते हैं। यमदूतोंके अनेक रूप होते हैं। वे देखनेमें बड़े डरावने और समस्त प्राणियोंको भय पहुँचानेवाले होते हैं। उनके मुख विकराल, नासिका टेढ़ी, आँखें तीन, ठोड़ी, कपोल और मुख फैले हुए तथा ओठ लंबे होते हैं। वे अपने हाथोंमें विकराल एवं भयंकर आयुध लिये रहते हैं। उन आयुधोंसे आगकी लपटें निकलती रहती हैं। पाश, साँकल और डंडेसे भय पहुँचानेवाले, महाबली,

और विद्याधरोंका प्रवेश होता है । उस नगरका उत्तर-द्वार घण्टा, छत्र, चँवर तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत है । वहाँ वीणा और वेणुकी मनोहर ध्वनि गूँजती रहती है । गीत, मङ्गलगान तथा ऋग्वेद आदिके सुमधुर शब्द होते रहते हैं । वहाँ महर्षियोंका समुदाय शोभा पाता है । उस द्वारसे उन्हीं पुण्यात्माओंका प्रवेश होता है, जो धर्मज्ञ और सत्यवादी हैं । जिन्होंने गरमीमें दूसरोंको जल पिलाया और सर्दीमें अग्निका सेवन कराया है; जो थके-माँदे मनुष्योंकी सेवा करते और सदा प्रिय वचन बोलते हैं; जो दाता, शूर और माता-पिताके भक्त हैं तथा जिन्होंने ब्राह्मणोंकी सेवा और अतिथियोंका पूजन किया है, वे भी उत्तरद्वारसे ही पुरीमें प्रवेश करते हैं ।

यमपुरीका पश्चिम महाद्वार भाँति-भाँतिके रत्नोंसे विभूषित है । विचित्र-विचित्र मणियोंकी वहाँ सीढ़ियाँ बनी हैं । देवता उस द्वारकी शोभा बढ़ाते रहते हैं । वहाँ भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख आदि वाद्योंकी ध्वनि हुआ करती है । सिद्धोंके समुदाय सदा हर्षमें भरकर उस द्वारपर मङ्गल-गान करते हैं । जो मनुष्य भगवान् शिवकी भक्तिमें संलग्न रहते हैं, जो सब तीर्थोंमें गोते लगा चुके हैं, जिन्होंने पञ्चाग्निका सेवन किया है, जो किसी उत्तम तीर्थस्थानमें अथवा कालिञ्जर पर्वतपर प्राणत्याग करते हैं और जो स्वामी, मित्र अथवा जगत्का कल्याण करनेके लिये एवं गौओंकी रक्षाके लिये मारे गये हैं, वे शूर-वीर और तपस्वी पुरुष पश्चिमद्वारसे यमपुरीमें प्रवेश करते हैं ।

यमपुरीका भयानक दक्षिण-द्वार

उस पुरीका दक्षिण-द्वार अत्यन्त भयानक है । वह सम्पूर्ण जीवोंके मनमें भय उपजानेवाला है । वहाँ निरन्तर हाहाकार मचा रहता है । सदा अँधेरा छाया रहता है । उस द्वारपर तीखे सींग, काँटे, बिच्छू, साँप, वज्रमुख कीट, भेड़िये, बाघ, रीछ, सिंह, गीदड़, कुत्ते, बिलाव और गीध उपस्थित रहते हैं । उनके मुखोंसे आगकी लपटें निकला करती हैं । जो सदा सबका अपकार करनेवाले पापात्मा हैं, उन्हींका इस मार्गसे पुरीमें प्रवेश होता है । जो ब्राह्मण, गौ, बालक, वृद्ध, रोगी, शरणागत, विश्वासी, स्त्री, मित्र और निहत्थे मनुष्यकी हत्या करते-कराते हैं; अगम्या स्त्रीके साथ सम्भोग करते हैं; दूसरोंके धनका अपहरण करते हैं; धरोहर हड़प लेते हैं; दूसरोंको जहर देते और उनके घरोंमें आग लगाते हैं; परायी भूमि, गृह, शय्या, वस्त्र और आभूषण [हड़प लिया] करते हैं; दूसरोंके छिद्र देखकर उनके प्रति क्रूरता[पूर्ण बर्ताव] करते हैं; सदा झूठ बोलते हैं; ग्राम, नगर तथा [राष्ट्रको] महान् दुःख देते हैं; झूठी गवाही देते, कन्या [बेचते,] अभक्ष्य भक्षण करते, पुत्री और पुत्रवधूके साथ [समागम] करते, माता-पिताको कटुवचन सुनाते तथा अन्यान्य महापातकोंमें संलग्न रहते हैं; वे सब दक्षिण-द्वारसे [पुरीमें] प्रवेश करते हैं ।

व्यासजी बोले—मुनिवरो ! दक्षिण-द्वार अत्[यन्त घोर] और महाभयंकर है । मैं उसका वर्णन करता हूँ । वह[ाँ] नाना प्रकारके हिंस्र जन्तुओं और गीदड़ियोंके शब्[द होते] रहते हैं । वहाँ दूसरोंका पहुँचना असम्भव है । उसे [देखते] ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं । भूत, प्रेत, पिशाच और र[ाक्षसोंसे] यह द्वार सदा ही घिरा रहता है । पापी जीव दूरसे [ही उस] द्वारको देखकर त्राससे मूर्च्छित हो जाते हैं और [विलाप-] प्रलाप करने लगते हैं । तब यमदूत उन्हें साँकलोंसे ब[ाँधकर] घसीटते और निर्भय होकर डंडोंसे पीटते हैं । स[ाथ ही] डाँटते-फटकारते भी रहते हैं । होशमें आनेपर वे [खूनसे] लथपथ हो पग-पगपर लड़खड़ाते हुए दक्षिण-द्वारको [जाते] हैं । मार्गमें कहीं तीखे काँटे होते हैं और कहीं [छुरेकी] धारके समान तीक्ष्ण पत्थरोंके टुकड़े बिछे होते हैं । [कहीं] कीचड़-ही-कीचड़ भरी रहती है और कहीं ऐसे-ऐसे [गड्ढे] होते हैं, जिनको पार करना असम्भव-सा होता है । [और] कहीं लोहेकी सूईके समान कीलें गड़ी होती हैं । कहीं वृ[क्षोंसे] भरे हुए पर्वत होते हैं, जो किनारोंपर झरने गिरते रह[नेसे] दुर्गम प्रतीत होते हैं और कहीं-कहीं तपे हुए अँगारे [बिछे] होते हैं । ऐसे मार्गसे दुखी होकर पापी जीवोंको य[ात्रा] करनी पड़ती है । कहीं दुर्गम गर्त्त, कहीं चिकने ढे[ले,] कहीं तपायी हुई बालू और कहीं तीखे काँटे होते हैं । [कहीं] दावानल प्रज्वलित रहता है । कहीं तपी हुई शिला है[, तो] कहीं जमी हुई बर्फ । कहीं इतनी अधिक बालू है कि उ[स] मार्गसे जानेवाला जीव उसमें आकण्ठ डूब जाता है । कहीं दूषि[त] जलसे और कहीं कंडेकी आगसे वह मार्ग भरा रहता है । क[हीं] सिंह, भेड़िये, बाघ, डाँस और भयानक कीड़े डेरा डाले रह[ते] हैं । कहीं बड़ी-बड़ी जोंकें और अजगर पड़े रहते हैं । भयं[कर] मक्खियाँ, विषैले साँप और दुष्ट एवं बलोन्मत्त हा[थी] सताया करते हैं । खुरोंसे मार्गको खोदते हुए तीखे सींगोंवा[ले] बड़े-बड़े साँड़, भैंसे और मतवाले ऊँट पथिकको कष्ट देते हैं

भयानक डाइनों और भीषण रोगोंसे पीड़ित होकर जीव उस मार्गसे यात्रा करते हैं।

कहीं धूलिमिश्रित प्रचण्ड वायु चलती है, जो पत्थरोंकी र्षा करके निराश्रय जीवोंको कष्ट पहुँचाती रहती है; कहीं ंजली गिरनेसे शरीर विदीर्ण हो जाता है; कहीं बड़े जोरसे ाणोंकी वर्षा होती है, जिससे सब अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जाते । कहीं-कहीं बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ भयंकर ल्कापात होते रहते हैं और प्रज्वलित अँगारोंकी वर्षा हुआ रती है, जिससे जलते हुए पापी जीव आगे बढ़ते हैं। कभी ोर-जोरसे धूलकी वर्षा होनेके कारण सारा शरीर भर जाता और जीव रोने लगते हैं। मेघोंकी भयंकर गर्जनासे रंबार त्रास पहुँचता रहता है। बाण-वर्षासे घायल हुए ारीरपर खारे जलकी धारा गिरायी जाती है और उसकी ीड़ा सहन करते हुए जीव आगे बढ़ते हैं। कहीं-कहीं त्यन्त शीतल हवा चलनेके कारण अधिक सर्दी पड़ती है ाथा कहीं रूखी और कठोर वायुका सामना करना पड़ता है; ़ससे पापी जीवोंके अङ्ग-अङ्गमें बिवाई फट जाती है। वे ़ूखने और सिकुड़ने लगते हैं। ऐसे मार्गसे, जहाँ न तो ाह-खर्चके लिये कुछ मिल पाता है और न कहीं कोई सहारा ही दिखायी देता है, पापी जीवोंको यात्रा करनी पड़ती है। सब ओर निर्जल और दुर्गम प्रदेश दृष्टिगोचर होता है। बड़े परिश्रमसे पापी जीव यमलोकतक पहुँच पाते हैं। यमराजकी आज्ञाका पालन करनेवाले भयंकर यमदूत उन्हें बलपूर्वक ले जाते हैं। वे एकाकी और पराधीन होते हैं। साथमें न कोई मित्र होता है न बन्धु। वे अपने-अपने कर्मोंको सोचते हुए बारंबार रोते रहते हैं। प्रेतोंका-सा उनका शरीर होता है। उनके कण्ठ, ओठ और तालू सूखे रहते हैं। वे शरीरसे अत्यन्त दुर्बल और भयभीत हो क्षुधाग्निकी ज्वालासे जलते रहते हैं। कोई साँकलमें बँधे होते हैं। किन्हींको उतान सुलाकर यमदूत उनके दोनों पैर पकड़कर घसीटते हैं और कोई नीचे मुँह करके घसीटे जाते हैं। उस समय उन्हें अत्यन्त दुःख होता है। उन्हें खानेको अन्न और पीनेको पानी नहीं मिलता। वे भूख-प्याससे पीड़ित हो, हाथ जोड़, दीनभावसे आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीमें बारंबार याचना करते और 'दीजिये, दीजिये' की रट लगाये रहते हैं। उनके सामने सुगन्धित पदार्थ, दही, खीर, घी, भात, सुगन्धयुक्त पेय और शीतल जल प्रस्तुत होते हैं। उन्हें देखकर वे बारंबार उनके लिये याचना करते हैं।

यमदूतोंद्वारा पापी जीवोंकी ताड़न

उस समय यमराजके दूत क्रोधसे लाल उन्हें फटकारते हुए कठोर वाणीमें कहते हैं—'अ तुमने समयपर अग्निहोत्र नहीं किया; स्वयं ब्राह नहीं दिया और दूसरोंको भी उन्हें दान देते सम मना किया; उसी पापका फल तुम्हारे सामने हुआ है। तुम्हारा धन आगमें नहीं जला था, नष्ट हुआ था, राजाने नहीं छीना था और नहीं चुराया था। नराधमो! तो भी तुमने ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया है, तब इस समय तुम्हें वस्तु प्राप्त हो सकती है। जिन साधुपुरुषोंने सा नाना प्रकारके दान किये हैं, उन्हींके लिये ये पर्वत अन्नके ढेर लगे दिखायी देते हैं। इनमें भक्ष्य, भ लेह्य और चोष्य—सब प्रकारके खाद्य पदार्थ इन्हें पानेकी इच्छा न करो; क्योंकि तुम प्रकारका दान नहीं दिया है। जिन्होंने दान, और ब्राह्मणोंका पूजन किया है, उन्हींका अन्न सदा यहाँ जमा किया जाता है। नारकी दूसरोंकी वस्तु हम तुम्हें कैसे दे सकते हैं?'

यमदूतोंकी यह बात सुनकर वे भूख-प्यास जीव उस अन्नकी अभिलाषा छोड़ देते हैं। तदन उन्हें भयानक अस्त्रोंसे पीड़ा देते हैं। मुद्गर, शक्ति, तोमर, पट्टिश, परिघ, भिन्दिपाल, ग और बाणोंसे उनकी पीठपर प्रहार किया जा सामनेकी ओरसे सिंह तथा बाघ आदि उन्हें हैं। इस प्रकारके पापी जीव न तो भीतर प्रवेश और न बाहर ही निकल पाते हैं। अत्यन्त दुः करुणक्रन्दन किया करते हैं। इस प्रकार वह पीड़ा देकर यमराजके दूत उन्हें भीतर प्रवेश उस स्थानपर ले जाते हैं, जहाँ सबका संयमन (करनेवाले धर्मात्मा यमराज रहते हैं। वहाँ पहुँ यमराजको उन पापियोंके आनेकी सूचना देते हैं आज्ञा मिलनेपर उन्हें उनके सामने उपस्थित क पापाचारी जीव भयानक यमराज और चित्रगुप्तके

यमराजके द्वारा फटकार, उपालम्भ और द

यमराज उन पापियोंको बड़े जोरसे फट चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोंसे पापियोंको समझा

हैं—'पापाचारी जीवो ! तुमने दूसरोंके धनका अपहरण किया है और अपने रूप और वीर्यके घमंडमें आकर परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट किया है। जीव स्वयं जो कर्म करता है, उसका फल भी उसे स्वयं ही भोगना पड़ता है—यह जानते हुए भी तुमने अपना विनाश करनेके लिये यह पापकर्म क्यों किया ? अब क्यों शोक करते हो ? अपने कुकर्मोंसे ही तुम पीड़ित हो रहे हो। तुमने अपने कर्मोंद्वारा जिन दुःखोंका उपार्जन किया है, उन्हें भोगो। इसमें किसीका कुछ दोष नहीं है। ये जो राजा लोग मेरे समीप आये हुए हैं, इन्हें भी अपने बलका बड़ा घमंड था। ये अपने घोर दुष्कर्मोंद्वारा यहाँ लाये गये हैं। इनकी बुद्धि बहुत ही खोटी थी।'

तत्पश्चात् यमराज पूर्वके राजाओंकी ओर दृष्टिपात करके कहते हैं—'अरे ओ दुराचारी नरेशो ! तुमलोग प्रजाका विध्वंस करनेवाले हो। थोड़े दिनोंतक रहनेवाले राज्यके लिये तुमने क्यों भयंकर पाप किया ? राजाओ ! तुमने राज्यके लोभ, मोह, बल तथा अन्यायसे जो प्रजाओंको कठोर दण्ड दिया है, उसका यथोचित फल इस समय भोगो। कहाँ गया वह राज्य ? कहाँ गयीं वे रानियाँ, जिनके लिये तुमने पापकर्म किये हैं ? उन सबको छोड़कर यहाँ तुमलोग एकाकी—असहाय होकर खड़े हो। यहाँ वह सारी सेना नहीं दिखायी देती, जिसके द्वारा तुमने प्रजाका दमन किया है। इस समय यमदूत तुम्हारे अङ्ग-अङ्ग फाड़े डालते हैं। देखो तो, उस पापका अब कैसा फल मिल रहा है।'

इस प्रकार यमराजके उपालम्भयुक्त अनेक वचन सुनकर वे राजा अपने-अपने कर्मोंका विचार करते हुए चुपचाप खड़े रह जाते हैं। तब उनके पापोंकी शुद्धिके लिये धर्मराज अपने सेवकोंको इस प्रकार आज्ञा देते हैं—'ओ चण्ड ! ओ महाचण्ड ! इन राजाओंको पकड़कर ले जाओ और क्रमशः नरककी अग्निमें तपाकर इन्हें पापोंसे मुक्त करो।' धर्मराजकी आज्ञा पाते ही यमदूत राजाओंके दोनों पैर पकड़कर वेगसे घुमाते हुए उन्हें ऊपर फेंक देते हैं और फिर लौटकर उनके पापोंकी मात्राके अनुसार उन्हें बड़ी-बड़ी शिलाओंपर देरतक पटकते रहते हैं, मानो वज्रसे किसी महान् वृक्षपर प्रहार करते हों। इससे पापी जीवका शरीर जर्जर हो जाता है। उसके प्रत्येक छिद्रसे रक्तकी धारा बहने लगती है। उसकी चेतना लुप्त हो जाती है और वह हिलने-डुलनेमें भी असमर्थ हो जाता है। तदनन्तर शीतल वायुका स्पर्श होनेपर धीरे-धीरे पुनः वह सचेत हो उठता है। तब यमराजके दूत उसे पापोंकी शुद्धिके लिये नरकमें डाल देते हैं। एकसे निवृत्त होनेपर वे दूसरे-दूसरे पापियोंके विषयमें यमराजसे निवेदन करते हैं—'देव ! आपकी आज्ञासे हम दूसरे पापीको भी ले आये हैं। यह सदा धर्मसे विमुख और पापपरायण रहा है। यह दुराचारी व्याध है। इसने महापातक और उपपातक—सभी किये हैं। यह अपवित्र मनुष्य सदा दूसरे जीवोंकी हिंसामें संलग्न रहा है। यह जो दुष्टात्मा खड़ा है, अगम्या स्त्रियोंके साथ समागम करनेवाला है। इसने दूसरेके धनका भी अपहरण किया है। यह कन्या बेचनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, कृतघ्न तथा मित्रोंको धोखा देनेवाला है। इस दुरात्माने मदोन्मत्त होकर सदा धर्मकी निन्दा की है। मर्त्यलोकमें केवल पापका ही आचरण किया है। देवेश्वर ! इस समय इसको दण्ड देना है या इसपर अनुग्रह करना है, यह बताइये ? क्योंकि आप ही निग्रहानुग्रह करनेमें समर्थ हैं। हमलोग तो केवल आज्ञापालक हैं।'

यों निवेदन करके वे दूत पापीको यमराजके सामने उपस्थित कर देते हैं और स्वयं दूसरे पापियोंको लानेके लिये चल देते हैं। जब पापीपर लगाये गये दोषकी सिद्धि हो जाती है, तब यमराज अपने भयंकर सेवकोंको उन्हें दण्ड देनेके लिये आदेश देते हैं। वसिष्ठ आदि महर्षियोंने जिसके लिये जो दण्ड नियत किया है, उसीके अनुसार वे यमकिंकर पापीको दण्ड प्रदान करते हैं। अङ्कुश, मुद्गर, डंडे, आरे, शक्ति, तोमर, खड्ग और शूलोंके प्रहारसे पापियोंको विदीर्ण कर डालते हैं।

नरकोंके भयंकर स्वरूपका वर्णन

१–महावीचि नामक नरक रक्तसे भरा रहता है। उसमें वज्रके समान काँटे होते हैं। उसका विस्तार दस हजार योजन है। उसमें डूबा हुआ पापी जीव काँटोंमें बिंधकर अत्यन्त कष्ट भोगता है। गौओंका वध करनेवाला मनुष्य उस भयंकर नरकमें एक लाख वर्षोंतक निवास करता है। **२–कुम्भीपाक**का विस्तार सौ लाख योजन है। यह अत्यन्त भयंकर नरक है। वहाँकी भूमि तपाये हुए ताँबेके पट्टोंसे भरी रहनेके कारण अत्यन्त प्रज्वलित दिखायी देती है। वहाँ गरम-गरम बालू और अँगारे बिछे होते हैं। ब्राह्मणकी

रौरव नरक [पृष्ठ ६५९]

महारौरव नरक [पृष्ठ ६५९]
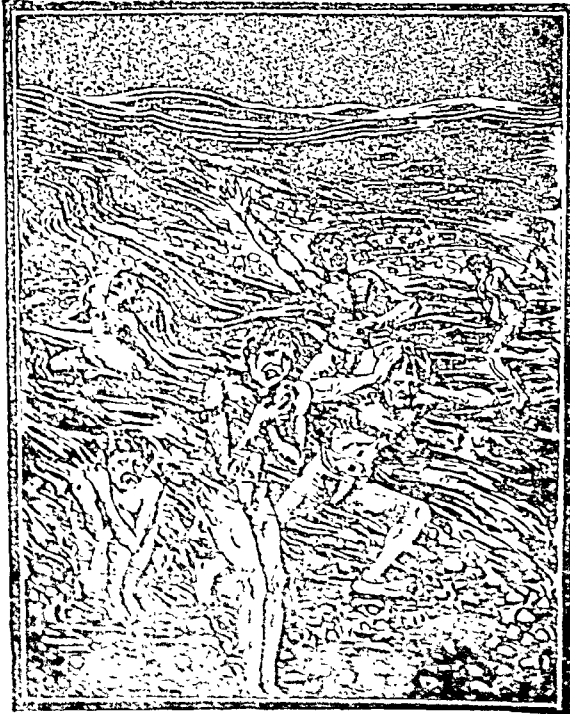
तम नरक [पृष्ठ ६५९]
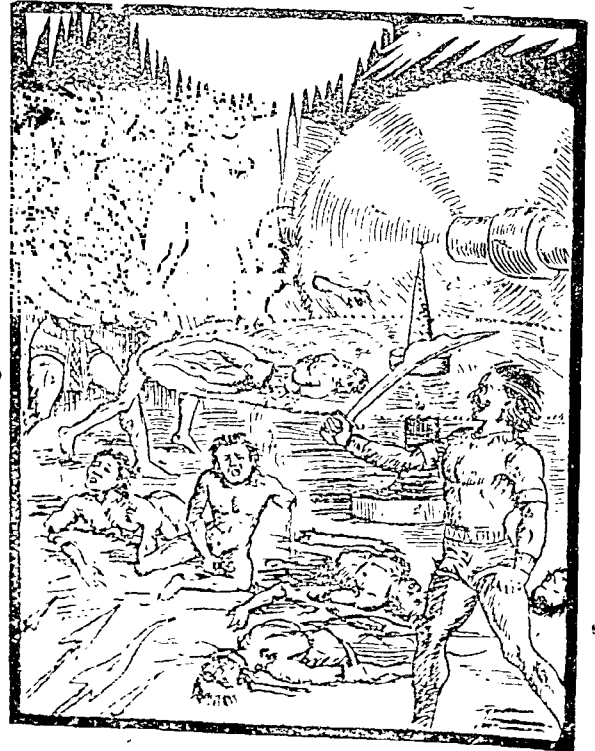
निकृन्तन नरक [पृष्ठ ६६०]

अखिपत्रवन नरक [पृष्ठ ६६०]

तप्तकुम्भ नरक [पृष्ठ ६६०]

ओंको जल पीनेसे रोकनेवालोंकी गति [पृष्ठ ६६०]

पर-धन और पर-स्त्रीपर कुदृष्टि डालनेवालोंकी गति [पृष्ठ ६६१]

है। जो लोग देनेकी प्रतिज्ञा करके भी ब्राह्मणको दान नहीं देते, वे उसीमें जलाये जाते हैं। २४–महापायी नरकका विस्तार एक लाख योजन है। जो सदा असत्य बोला करते हैं, उन्हें नीचे मुख करके उसीमें डाल दिया जाता है। २५–महाज्वाल नामक नरक सदा आगकी लपटोंसे प्रकाशित एवं भयंकर होता है। जो मनुष्य पापमें मन लगाते हैं, उन्हें दीर्घकालतक उसीमें जलाया जाता है। २६–क्रकच नामक नरकमें वज्रकी धारके समान तीखे आरे लगे होते हैं। उसमें अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेवाले मनुष्योंको उन्हीं आरोंसे चीरा जाता है। २७–गुडपाक नरक खौलते हुए गुड़के अनेक कुण्डोंसे व्याप्त है। जो मनुष्य वर्णसंकरता फैलाता है, वह उसीमें डालकर जलाया जाता है।

२८–क्षुरधार नामक नरक तीखे उस्तुरोंसे भरा रहता है। जो लोग ब्राह्मणोंकी भूमि हड़प लेते हैं, वे एक कल्पतक उसीमें डालकर काटे जाते हैं। २९–अम्बरीष नामक नरक प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित रहता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला मनुष्य करोड़ कल्पोंतक उसमें दग्ध किया जाता है। ३०–वज्रकुठार नामक नरक वज्रसे व्याप्त है। पेड़ काटनेवाले पापी मनुष्य उसीमें डालकर काटे जाते हैं। ३१–परिताप नामक नरक भी प्रलयाग्निसे उद्दीप्त रहता है। विष देने तथा मधुकी चोरी करनेवाला पापी उसीमें यातना भोगता है। ३२–कालसूत्र नरक वज्रमय सूतसे निर्मित है। जो लोग दूसरोंकी खेती नष्ट करते हैं, वे उसीमें घुमाये जाते हैं, जिससे उनका अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जाता है। ३३–कश्मल नरक मुख और नाकके मलसे भरा होता है। मांसकी रुचि रखनेवाला मनुष्य उसमें एक कल्पतक रक्खा जाता है। ३४–उग्रगन्ध नामक नरक लार, मूत्र और विष्ठासे भरा होता है। जो पितरोंको पिण्ड नहीं देते, वे उसी नरकमें डाले जाते हैं। ३५–दुर्धर नरक जोंकों और बिच्छुओंसे भरा रहता है। सूदखोर मनुष्य उसमें दस हजार वर्षोंतक पड़ा रहता है। ३६–वज्रमहापीड नामक नरक वज्रसे ही निर्मित है। जो दूसरोंके धन-धान्य और सुवर्णकी चोरी करते हैं, उन्हें उसीमें डालकर यातना दी जाती है। यमदूत उन चोरोंको छूरोंसे क्षण-क्षणपर काटते रहते हैं। जो मूर्ख किसी प्राणीकी हत्या करके उसे कौए और गधेकी भाँति खाते हैं, उन्हें एक कल्पतक अपने ही शरीरका मांस खाना पड़ता है। जो दूसरोंके आसन, शय्या और वस्त्रका अपहरण करते हैं, उन्हें यमदूत शक्ति और तोमरोंसे विदीर्ण करते हैं। जिन खोटी बुद्धिवाले पुरुषोंने लोगोंके फल अथवा पत्ते भी चुराये हैं, उन्हें क्रोधमें भरे हुए यमदूत तिनकोंकी आगमें जला[ते] हैं। जो मनुष्य पराये धन और परायी स्त्रीके प्रति सदा दू[षित] भाव रखता है, यमदूत उसकी छातीमें जलता हुआ [...] गाड़ देते हैं। जो मानव मन, वाणी और क्रियाद्वारा ध[र्मसे] विमुख रहते हैं, उन्हें यमलोकमें बड़ी भयंकर यातना भोग[नी] पड़ती है। इस प्रकार लाखों, करोड़ों और अ[...] नरक हैं, जहाँ पापी मनुष्य अपने कर्मोंका फल भोगते [हैं]। इस लोकमें थोड़ा-सा भी पापकर्म करनेपर यमलोकमें भ[यंकर] नरकके भीतर घोर यातना सहनी पड़ती है। मूढ़ मनुष्य [...] पुरुषोंद्वारा बताये हुए धर्मयुक्त वचनोंको नहीं सुन[ते]। जब कोई उनसे परलोककी चर्चा करता है, तब वे झट उत्तर देते हैं—'किसने स्वर्ग और नरकको प्रत्यक्ष देखा है।' मूढ़ लोग दिन-रात प्रयत्नपूर्वक पाप करते हैं। धर्मका आ[...] तो वे भूलकर भी नहीं करते। इस प्रकार जो इसी लो[क]में कर्मोंके फलका भोग होना मानते हैं, परलोकके प्रति जि[नकी] तनिक भी आस्था नहीं है, ऐसे नराधम भयंकर नर[कमें] पड़ते हैं। नरकका निवास अत्यन्त दुःखदायी और स्वर्गका[...] देनेवाला है। मनुष्य शुभकर्म करनेसे स्वर्ग पाते हैं [और] अशुभकर्म करके नरकोंमें पड़ते हैं।

धर्मसे यमलोकमें सुखपूर्वक गति तथा भगवद्भक्ति[के] प्रभावका वर्णन

मुनियोंने कहा—अहो! यमलोकके मार्गमें तो भयंकर दुःख होता है। साधुश्रेष्ठ! आपने उन दुःखोंक[ा] ही घोर नरकों तथा दक्षिणद्वारका भी वर्णन किया। [...] उस भयानक मार्गमें कष्टोंसे बचनेका कोई उपाय है या [नहीं]? यदि है तो बताइये, किस उपायसे मनुष्य यमलोकमें [सुख]पूर्वक जा सकते हैं?

व्यासजीने कहा—मुनिवरो! जो लोग इस [लोकमें] धर्मपरायण हो अहिंसाका पालन करते, गुरुजनोंकी [सेवामें] संलग्न रहते और देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करते [हैं, वे] स्त्री और पुत्रोंसहित जिस प्रकार उस मार्गमें यात्रा करते [हैं, वह] बतलाता हूँ। उपर्युक्त पुण्यात्मा पुरुष सुवर्णमय [...] सुशोभित भाँति-भाँतिके दिव्य विमानोंपर आरूढ़ हो ध[र्मराज]के नगरमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक नाना प्र[कारकी] वस्तुएँ दानमें देते हैं, वे उस महान् पथपर सुख[से यात्रा] करते हैं। जो ब्राह्मणोंको, ब्राह्मणोंमें भी विशेषतः [...] अत्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम रीतिसे तैयार किया हुआ अ[न्न]

हैं, वे सुसज्जित विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो सदा सत्य बोलते और बाहर-भीतरसे शुद्ध रहते हैं, वे भी देवताओंके समान कान्तिमान् शरीर धारणकर विमानोंद्वारा यमराजके भवनमें जाते हैं। जो धर्मज्ञ पुरुष जीविकारहित दीन-दुर्बल साधुओंको भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे पवित्र गोदान करते हैं, वे मणिजटित दिव्य विमानोंद्वारा धर्मराजके लोकमें जाते हैं। जो जूता, छाता, शय्या, आसन, वस्त्र और आभूषण दान करते हैं, वे दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत हो हाथी, रथ और घोड़ोंकी सवारीसे वहाँकी यात्रा करते हैं। उनके ऊपर सोने-चाँदीका छत्र लगा रहता है। जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको विशुद्ध हृदयसे भक्तिपूर्वक गुड़का रस और भात देते हैं, वे सुवर्णमय वाहनोंद्वारा यमलोकमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक शुद्ध एवं सुसंस्कृत दूध, दही, घी और गुड़ दान करते हैं, वे चक्रवाक पक्षियोंसे जुड़े हुए सुवर्णमय विमानोंद्वारा यात्रा करते हैं। उस समय गन्धर्वगण वाद्योंद्वारा उनकी सेवा करते हैं। जो सुगन्धित पुष्प दान करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंसे धर्मराजके नगरको जाते हैं। जो श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक तिल, तिलमयी धेनु अथवा घृतमयी धेनु दान करते हैं, वे चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल विमानोंद्वारा यमराजके भवनमें प्रवेश करते हैं। उस समय गन्धर्वगण उनका सुयश गाते रहते हैं। इस लोकमें जिनके बनवाये हुए कुएँ, बावड़ी, तालाब, सरोवर, दीर्घिका, पुष्करिणी तथा शीतल जलाशय शोभा पाते हैं, वे दिव्य घण्टानादसे मुखरित सुवर्ण और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् विमानोंद्वारा यात्रा करते हैं। मार्गमें उन्हें सुख देनेके लिये दिव्य पंखे डुलाये जाते हैं। जो लोग समस्त प्राणियोंके जीवनभूत जलका दान करते हैं, वे पिपासासे रहित हो दिव्य विमानोंपर बैठकर सुखपूर्वक उस महान् पथकी यात्रा करते हैं। जिन्होंने ब्राह्मणोंको लकड़ीकी बनी खड़ाऊँ, सवारी, पीढ़ा और आसन दान किये हैं, वे उस मार्गमें सुखसे जाते हैं। वे विमानोंपर बैठकर सोने और मणियोंके बने हुए उत्तम पीढ़ोंपर पैर रखकर यात्रा करते हैं।

जो मनुष्य दूसरोंके उपकारके लिये फल और पुष्पोंसे सुशोभित विचित्र बगीचे लगाते हैं, वे वृक्षोंकी रमणीय एवं शीतल छायामें सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। जो लोग सोना, चाँदी, मूँगा तथा मोती दान करते हैं, वे सुवर्णनिर्मित उज्ज्वल विमानोंपर बैठकर यमलोकमें जाते हैं। भूमिदान करनेवाले पुरुष सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंसे तृप्त हो उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंपर बैठकर देदीप्यमान शरीरसे धर्मराजके नगरको जाते हैं। जो ब्राह्मणोंके लिये भक्तिपूर्वक उत्तम गन्ध, अगर, कपूर, पुष्प और धूपका दान करते हैं, वे मनोहर गन्ध, सुन्दर वेष, उत्तम कान्ति और श्रेष्ठ आभूषणोंसे विभूषित हो विचित्र विमानोंद्वारा धर्म-नगरकी यात्रा करते हैं। दीप-दान करनेवाले मनुष्य अग्निके तुल्य प्रकाशमान होकर सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए चलते हैं। जो गृह अथवा रहनेके लिये स्थान देते हैं, वे अरुणोदयकी-सी कान्तिवाले सुवर्णमण्डित गृहोंके साथ धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जलपात्र, कुंडी और कमण्डलु दान करनेवाले मानव अप्सराओंसे पूजित हो महान् गजराजोंपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो ब्राह्मणोंको सिर और पैरमें मलनेके लिये तेल तथा नहाने और पीनेके लिये जल देते हैं, वे घोड़ोंपर सवार होकर यम-लोकमें जाते हैं। जो रास्तेके थके-माँदे दुर्बल ब्राह्मणोंको अपने यहाँ ठहराते हैं, वे चक्रवोंसे जुड़े हुए दिव्य विमानोंपर बैठकर सुखसे यात्रा करते हैं। जो स्वागतपूर्वक आसन देकर ब्राह्मणकी पूजा करता है, वह अत्यन्त प्रसन्न होकर सुखसे उस मार्गपर जाता है।

जो 'पापहरे !' इत्यादिका उच्चारण करके गौको मस्तक झुकाता है, वह सुखसे यमलोकके मार्गपर आगे बढ़ता है। जो शठता और दम्भका परित्याग करके एक समय भोजन करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं। जो जितेन्द्रिय पुरुष एक दिन उपवास करके दूसरे दिन एक समय भोजन करते हैं, वे मोरोंसे जुड़े हुए विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो नियमपूर्वक व्रतका पालन करते हुए तीसरे दिन एक समय भोजन करते हैं, वे हाथियोंसे जुड़े हुए दिव्य रथोंपर आसीन हो यमराजके लोकमें जाते हैं। जो नित्य पवित्र रहकर इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए छठे दिन आहार ग्रहण करते हैं, वे साक्षात् शचीपति इन्द्रके समान ऐरावतकी पीठपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो एक पक्षतक उपवास करके अन्न ग्रहण करते हैं, वे बाघोंसे जुड़े हुए विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। उस समय देवता और असुर उनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। जो जितेन्द्रिय रहकर एक मासतक उपवास करते हैं, वे सूर्यके समान देदीप्यमान रथोंपर बैठकर यमलोककी यात्रा करते हैं। जो स्त्री अथवा गौकी रक्षाके लिये युद्धमें प्राणत्याग करता है, वह सूर्यके समान कान्तिमान् शरीर

धारण करके देवकन्याओंद्वारा सेवित हो धर्मनगरकी यात्रा करता है।

जो भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए जितेन्द्रियभावसे तीर्थोंकी यात्रा करते हैं, वे सुखदायक विमानोंसे सुशोभित हो उस भयंकर पथकी यात्रा करते हैं। जो श्रेष्ठ द्विज प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा भगवान्का यजन करते हैं, वे तपाये हुए सुवर्णसदृश विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोकमें जाते हैं। जो दूसरोंको पीड़ा नहीं देते और भृत्योंका भरण-पोषण करते हैं, वे सुवर्णनिर्मित उज्ज्वल विमानोंपर बैठकर सुखसे यात्रा करते हैं। जो समस्त प्राणियोंके प्रति क्षमाभाव रखते, सबको अभय देते, क्रोध, मोह और मदसे मुक्त रहते तथा इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, वे महान् तेजसे सम्पन्न हो पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान विमानपर बैठकर यमराजकी पुरीमें जाते हैं। उस समय देवता और गन्धर्व उनकी सेवामें खड़े रहते हैं। 'जो सत्य और पवित्रतासे युक्त रहकर कभी भी मांसाहार नहीं करते, वे भी धर्मराजके नगरमें सुखसे ही यात्रा करते हैं। जो एक हजार गौओंका दान करता है और जो कभी मांस-भक्षण नहीं करता, वे दोनों समान हैं—यह बात पूर्वकालमें वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ साक्षात् ब्रह्माजीने कही थी। ब्राह्मणो! सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है और समस्त यज्ञोंके अनुष्ठानसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही या उसके समान फल मांस न खानेसे भी प्राप्त होता है।'* इस प्रकार दान और व्रतमें तत्पर रहनेवाले धर्मात्मा पुरुष विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोकमें जाते हैं, जहाँ सूर्यनन्दन यम विराजमान रहते हैं। धार्मिक पुरुषोंको देखकर यमराज स्वयं ही स्वागतपूर्वक उन्हें आसन देते और पाद्य, अर्घ्य तथा प्रिय वचनोंद्वारा उनका सम्मान करते हैं। वे कहते हैं—'पुण्यात्मा पुरुषो! आपलोग धन्य हैं। आप अपने आत्माका कल्याण करनेवाले महात्मा हैं; क्योंकि आपने दिव्य सुखके लिये शुभ-कर्मोंका अनुष्ठान किया है। अब इस विमानपर बैठकर उस अनुपम स्वर्गलोकको जाइये, जहाँ समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं। वहाँ महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें पुण्य क्षीण होनेपर जो थोड़ा अशुभ कर्म शेष रहेगा, उसका फल यहाँ आकर भोगियेगा।'

धर्मात्मा पुरुष अपने पुण्योंके प्रभावसे धर्मराजको कोमल हृदयवाले अपने पिताके तुल्य देखते हैं, इसलिये धर्मका सदा सेवन करना चाहिये। धर्म मोक्षरूप फलका देनेवाला है। धर्मसे ही अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि बतायी गयी है। धर्म ही माता, पिता और भ्राता है। धर्म ही अपना रक्षक और सुहृद् है। स्वामी, सखा, पालक तथा धारण-पोषण करनेवाला धर्म ही है।

जो मनुष्य नरकासुरका विनाश करनेवाले भगवान् वासुदेवके भक्त हैं, वे स्वप्नमें भी यमराज अथवा नरकोंको नहीं देखते। जो दैत्यों और दानवोंका संहार करनेवाले आदि-अन्तरहित भगवान् नारायणको प्रतिदिन नमस्कार करते हैं, वे भी यमराजको नहीं देखते। जो मन, वाणी और क्रियाके द्वारा भगवान् अच्युतकी शरणमें चले गये हैं, उनपर यमराजका वश नहीं चलता। वे मोक्षरूप फलके भागी होते हैं। ब्राह्मणो! जो मनुष्य प्रतिदिन जगन्नाथ श्रीनारायणको नमस्कार करते हैं, वे वैकुण्ठधामके सिवा अन्यत्र नहीं जाते। श्रीविष्णुको नमस्कार करके मनुष्य यमदूतोंको, यमलोकके मार्गको, यम-पुरीको तथा वहाँके नरकोंको किसी प्रकार नहीं देख पाते। मोहमें पड़कर अनेकों बार पाप कर लेनेपर भी यदि मानव सर्वपापहारी श्रीहरिको नमस्कार करते हैं तो वे नरकमें नहीं पड़ते। जो लोग शठतासे भी सदा भगवान् जनार्दनका स्मरण करते हैं, वे भी देहत्यागके पश्चात् रोग-शोकसे रहित श्रीविष्णु-धामको प्राप्त होते हैं। अत्यन्त क्रोधमें आसक्त होकर भी जो कभी श्रीहरिके नामोंका कीर्तन करता है, वह भी चेदिराज शिशुपालकी भाँति सम्पूर्ण दोषोंका क्षय हो जानेसे मोक्षको प्राप्त करता है।

धर्मकी महिमा तथा अधर्मकी गतिका निरूपण

मुनियोंने कहा—भगवन्! आप सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता तथा सब शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हैं। कृपया बताइये—पिता, माता, पुत्र, गुरु, जातिवाले, सम्बन्धी और मित्रवर्ग—इनमेंसे कौन मरनेवाले प्राणीका विशेष सहायक होता है? लोग तो मृतकके शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी भाँति छोड़कर चल देते हैं। फिर परलोकमें कौन उसके साथ जाता है?

---

* ये च मांसं न खादन्ति सत्यशौचसमन्विताः।
तेऽपि यान्ति सुखेनैव धर्मराजपुरं नराः॥
गोसहस्रं तु यो दद्याद्यस्तु मांसं न भक्षयेत्।
समावेतौ पुरा प्राह ब्रह्मा वेदविदां वरः॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।
अमांसभक्षणे विप्रास्तच्च च तत्समम्॥
(२१६। ६२, ६५-६८)

व्यासजी बोले—विप्रवरो! प्राणी अकेला ही जन्म लेता, अकेला ही मरता, अकेला ही दुर्गम संकटोंको पार करता और अकेला ही दुर्गतिमें पड़ता है। पिता, माता, भ्राता, पुत्र, गुरु, जातिवाले, सम्बन्धी तथा मित्रवर्ग—इनमेंसे कोई भी मरनेवालेका साथ नहीं देता। घरके लोग मृत व्यक्तिके शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी भाँति त्याग देते और दो घड़ी रोकर उससे मुँह मोड़कर चले जाते हैं। वे सब लोग तो त्याग देते हैं, किंतु धर्म उसका त्याग नहीं करता। वह अकेला ही जीवके साथ जाता है; अतः धर्म ही सच्चा सहायक है। इसलिये मनुष्योंको सदा धर्मका सेवन करना चाहिये। धर्मयुक्त प्राणी उत्तम स्वर्गगतिको प्राप्त होता है। इसी प्रकार अधर्मयुक्त मानव नरकमें पड़ता है; अतः विद्वान् पुरुष पापसे प्राप्त होनेवाले धनमें अनुराग न रक्खे। एकमात्र धर्म ही मनुष्योंका सहायक बताया गया है। बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञाता मनुष्य भी लोभ, मोह, घृणा अथवा भयसे मोहित होकर दूसरेके लिये न करने योग्य कार्य भी कर डालता है। धर्म, अर्थ और काम—तीनों ही इस जीवनके फल हैं। अधर्म-त्यागपूर्वक इन तीनोंकी प्राप्ति करनी चाहिये।

मुनियोंने कहा—भगवन्! आपका यह धर्मयुक्त वचन, जो परम कल्याणका साधन है, हमने सुना। अब हम यह जानना चाहते हैं कि यह शरीर किन तत्त्वोंका समूह है। मनुष्योंका मरा हुआ शरीर तो स्थूलसे सूक्ष्म—अव्यक्तभावको प्राप्त हो जाता है, वह नेत्रोंका विषय नहीं रह जाता; फिर धर्म कैसे उसके साथ जाता है?

व्यासजी बोले—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, मन, बुद्धि और आत्मा—ये सदा साथ रहकर धर्मपर दृष्टि रखते हैं। ये समस्त प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मोंके निरन्तर साक्षी रहते हैं। इनके साथ धर्म जीवका अनुसरण करता है। जब शरीरसे प्राण निकल जाता है, तब त्वचा, हड्डी, मांस, वीर्य और रक्त भी उस शरीरको छोड़ देते हैं। उस समय जीव धर्मसे युक्त होनेपर ही इस लोक और परलोकमें सुख एवं अभ्युदयको प्राप्त होता है।

किसको कौन-सी योनि मिलती है

मुनियोंने पूछा—भगवन्! आपने यह भलीभाँति बतला दिया कि धर्म किस प्रकार जीवका अनुसरण करता है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि [शरीरके कारणभूत] वीर्यकी उत्पत्ति कैसे होती है।

व्यासजीने कहा—द्विजवरो! शरीरमें स्थित जो पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज और मनके अधिष्ठाता देवता हैं, वे जब अन्न ग्रहण करते हैं और उससे मनसहित पृथ्वी आदि पाँचों भूत तृप्त होते हैं, तब उस अन्नसे शुद्ध वीर्य बनता है। उस वीर्यमें कर्मप्रेरित जीव आकर निवास करता है। फिर स्त्रियोंके रजमें मिलकर वह समयानुसार जन्म ग्रहण करता है। पुण्यात्मा प्राणी इस लोकमें जन्म लेनेपर जन्मकालसे ही पुण्यकर्मका उपभोग करता है। वह धर्मके फलका आश्रय लेता है। मनुष्य यदि जन्मसे ही धर्मका सेवन करता है तो सदा सुखका भागी होता है। यदि बीच-बीचमें कभी धर्म और कभी अधर्मका सेवन करता है तो वह सुखके बाद दुःख भी पाता है। पापयुक्त मनुष्य यमलोकमें जाकर महान् कष्ट उठानेके बाद पुनः तिर्यग्योनिमें जन्म लेता है। मोहयुक्त जीव जिस-जिस कर्मसे जिस-जिस योनिमें जन्म लेता है, उसे बतलाता हूँ; सुनो! परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य पहले तो भेड़िया होता है; फिर क्रमशः कुत्ता, सियार, गीध, साँप, कौआ और बगुला होता है। जो पापात्मा कामसे मोहित होकर अपनी भौजाईके साथ बलात्कार करता है, वह एक वर्षतक नर-कोकिल होता है। मित्र, गुरु तथा राजाकी पत्नीके साथ समागम करनेसे कामात्मा पुरुष मरनेके बाद सूअर होता है। पाँच वर्षोंतक सूअर रहकर मरनेके बाद दस वर्षोंतक बगुला, तीन महीनोंतक चींटी और एक मासतक कीटकी योनिमें पड़ा रहता है। इन सब योनियोंमें जन्म लेनेके बाद वह पुनः कृमियोनिमें उत्पन्न होता और चौदह महीनोंतक जीवित रहता है। इस प्रकार अपने पूर्वपापोंका क्षय करनेके बाद वह फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। जो पहले एकको कन्या देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर दूसरेको देना चाहता है, वह भी मरनेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म पाता है। उस योनिमें वह तेरह वर्षोंतक जीवित रहता है। फिर अधर्मका क्षय होनेपर वह मनुष्य होता है। जो देवकार्य अथवा पितृकार्य न करके देवताओं और पितरोंको संतुष्ट किये बिना ही मर जाता है, वह कौआ होता है। सौ वर्षोंतक कौएकी योनिमें रहनेके बाद वह मुर्गा होता है। तत्पश्चात् एक मासतक सर्पकी योनिमें निवास करता है। उसके बाद वह मनुष्य होता है। जो पिताके समान बड़े भाईका अपमान करता है, वह मृत्युके बाद क्रौञ्च-योनिमें जन्म लेता है और दस वर्षोंतक जीवन धारण करता है।

तत्पश्चात् मरनेपर वह मनुष्य होता है। शूद्रजातीय पुरुष ब्राह्मणीके साथ समागम करनेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। उससे मृत्यु होनेपर वह सूअर होता है। सूअरकी योनिमें जन्म लेते ही रोगसे उसकी मृत्यु हो जाती है। तदनन्तर वह मूर्ख पूर्वोक्त पापके ही फलस्वरूप कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न होता है। उसके बाद उसे मानव-शरीरकी प्राप्ति होती है। मानवयोनिमें संतान उत्पन्न करके वह मर जाता है और चूहेका जन्म पाता है। कृतघ्न मनुष्य मृत्युके बाद जब यमराजके लोकमें जाता है, उस समय क्रूर यमदूत उसे बाँधकर भयंकर दण्ड देते हैं। उस दण्डसे उसको बड़ी वेदना होती है। दण्ड, मुद्गर, शूल, भयंकर अग्निदण्ड, असिपत्रवन, तप्तवालुका तथा कूट-शाल्मलि आदि अन्य बहुत-सी घोर यातनाओंका अनुभव करके वह संसारचक्रमें आता और कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है; पंद्रह वर्षोंतक कीड़ा रहनेके बाद मानव-गर्भमें आकर वहाँ जन्म लेनेके पहले ही मर जाता है। इस प्रकार सैकड़ों बार गर्भमें मृत्युका कष्ट भोगकर अनेक बार संसार-बन्धनमें पड़ता है। तत्पश्चात् वह पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेता है। उसमें बहुत वर्षोंतक कष्ट उठाकर अन्तमें वह कछुआ होता है।

दहीकी चोरी करनेसे मनुष्य बगुला और मेढक होता है। फल, मूल अथवा पूआ चुरानेसे वह चींटी होता है। चलकी चोरी करनेसे कौआ और काँसा चुरानेसे हारीत (हरियल) पक्षी होता है। चाँदीका बर्तन चुरानेवाला कबूतर होता है और सुवर्णमय पात्रका अपहरण करनेसे कृमियोनिमें जन्म लेना पड़ता है। रेशमका कीड़ा चुरानेसे मनुष्य वानर होता है। वस्त्रकी चोरी करनेसे तोतेकी योनिमें जन्म होता है। साड़ी चुरानेवाला मनुष्य मरनेके बाद हंस होता है। रूईका वस्त्र हड़प लेनेवाला मानव मृत्युके पश्चात् क्रौञ्च होता है। सनका वस्त्र, ऊनी वस्त्र तथा रेशमी वस्त्र चुरानेवाला मनुष्य खरगोश होता है। चूर्णकी चोरी करनेसे मनुष्य दूसरे जन्ममें मोर होता है। अङ्गराग और सुगन्धकी चोरी करनेवाला लोभी मनुष्य छछूँदर होता है। उस योनिमें पंद्रह वर्षोंतक जीवित रहनेके बाद जब पापका क्षय हो जाता है, तब वह मनुष्य-योनिमें जन्म ग्रहण करता है। जो स्त्री दूधकी चोरी करती है, वह बगुली होती है। जो नीच पुरुष स्वयं सशस्त्र होकर वैरसे अथवा धनके लिये किसी शस्त्रहीन पुरुषकी हत्या करता है, वह मरनेपर गदहा होता है। गदहेकी योनिमें दो वर्षोंतक जीवित रहनेके बाद वह शस्त्रद्वारा मारा जाता है; फिर मृगकी योनिमें जन्म लेकर सदा उद्विग्न बना रहता है। मृगयोनिमें एक वर्ष बीतनेपर वह बाणका निशाना बन जाता है। फिर मछलीकी योनिमें जन्म ले वह जालमें फँसा लिया जाता है। चार महीने बीतनेपर वह शिकारी कुत्तेके रूपमें जन्म लेता है। दस वर्षोंतक कुत्ता रहकर पाँच वर्षोंतक व्याघ्रकी योनिमें रहता है। फिर कालक्रमसे पापोंका क्षय होनेपर मनुष्य-योनिमें जन्म ग्रहण करता है। जो मनुष्य खलीमिश्रित अन्नका अपहरण करता है, वह भयंकर चूहा होता है। उसका रंग नेवले-जैसा भूरा होता है। वह पापात्मा प्रतिदिन मनुष्योंको डँसता रहता है। घीकी चोरी करनेवाला दुर्बुद्धि मानव कौआ और बगुला होता है। नमक चुरानेसे चिरिकाक नामक पक्षी होना पड़ता है। जो मनुष्य विश्वासपूर्वक रक्खी हुई धरोहरको हड़प लेता है, वह मृत्युके बाद मछलीकी योनिमें जन्म लेता है। उसके पश्चात् मृत्यु होनेपर फिर मनुष्य होता है। मानव-योनिमें भी उसकी आयु बहुत ही थोड़ी होती है।

ब्राह्मणो! मनुष्य पाप करके तिर्यग्योनिमें जाता है, जहाँ उसे धर्मका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। जो मनुष्य पाप करके व्रतोंद्वारा उसका प्रायश्चित्त करते हैं, वे सुख और दुःख दोनोंसे युक्त होते हैं। लोभ-मोहसे युक्त पापाचारी मनुष्य निश्चय ही म्लेच्छयोनिमें जन्म लेते हैं। जो लोग जन्मसे ही पापका परित्याग करते हैं, वे नीरोग, रूपवान् और धनी होते हैं। स्त्रियाँ भी ऊपर बताये अनुसार कर्म करनेसे पापकी भागिनी होती हैं और पापयोनिमें पड़े हुए पूर्वोक्त पापियोंकी ही पत्नी बनती हैं। द्विजवरो! चोरीके प्रायः सभी दोष बता दिये गये। यहाँ जो कुछ कहा गया है, वह बहुत संक्षिप्त है; फिर कभी कथा-वार्ताका अवसर आनेपर तुमलोग इस विषयको विस्तारपूर्वक सुन सकते हो। पूर्वकालमें देवर्षियोंकी सभामें उनके प्रश्नानुसार ब्रह्माजीने जो कुछ कहा था, वह सब मैंने तुमलोगोंको बतलाया है। ये सब बातें सुनकर तुम धर्मके अनुष्ठानमें मन लगाओ।

पश्चात्ताप तथा दानका माहात्म्य

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणो ! जो मोहवश अधर्मका
ान कर लेनेपर उसके लिये पुनः सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप
ा और मनको एकाग्र रखता है, वह पापका सेवन नहीं
ा। ज्यों-ज्यों मनुष्यका मन पाप-कर्मकी निन्दा करता है,
यों उसका शरीर उस अधर्मसे दूर होता जाता है। यदि
ादी ब्राह्मणोंके सामने अपना पाप कह दिया जाय तो
उस पापजनित अपराधसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। मनुष्य
जैसे अपने अधर्मकी बात बारंबार प्रकट करता है, वैसे-
से वह एकाग्रचित्त होकर अधर्मको छोड़ता जाता है।
साँप केंचुल छोड़ता है, उसी प्रकार वह पहलेके अनुभव
हुए पापोंका त्याग करता है। एकाग्रचित्त होकर
ाणोंको नाना प्रकारके दान दे। जो मनको ध्यानमें लगाता
वह उत्तम गतिको प्राप्त करता है।

ब्राह्मणो ! अब मैं दानका फल बतलाता हूँ। सब दानोंमें
दानको श्रेष्ठ बतलाया गया है। धर्मकी इच्छा रखनेवाले
ष्यको चाहिये कि वह सरलतापूर्वक सब प्रकारके अन्नोंका दान
। अन्न ही मनुष्योंका जीवन है। उसीसे जीव-जन्तुओंकी
त्ति होती है। अन्नमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं; अतः
को श्रेष्ठ बताया जाता है। देवता, ऋषि, पितर और
ष्य अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं; क्योंकि अन्नदानसे मनुष्य
र्गलोकको प्राप्त होता है। स्वाध्यायशील ब्राह्मणोंके लिये
योपार्जित उत्तम अन्नका प्रसन्नचित्तसे दान करना चाहिये।
सके प्रसन्नचित्तसे दिये हुए अन्नको दस ब्राह्मण भोजन
लेते हैं, वह कभी पशु-पक्षी आदिकी योनिमें नहीं पड़ता।
ा पापोंमें संलग्न रहनेवाला मनुष्य भी यदि दस हजार
करते हुए अन्नका उपार्जन करता है और उसे एकाग्रचित्त
होकर श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दान देता है, वह धर्मात्मा है और
उस पुण्यके जलसे अपने पापपङ्कको धो डालता है। अपने
द्वारा उपार्जित खेतीके अन्नमेंसे छठा भाग राजाको देनेके बाद
जो शेष शुद्ध भाग बच जाता है, वह अन्न यदि वैश्य ब्राह्मणको
दान करे तो वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो शूद्र प्राणोंको
संशयमें डालकर और नाना प्रकारकी कठिनाइयोंको सहकर
भी अपने द्वारा उपार्जित शुद्ध अन्नको ब्राह्मणोंके निमित्त
दान करता है, वह भी पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जो
कोई भी मनुष्य श्रेष्ठ वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको हर्षपूर्वक न्यायोपार्जित
अन्नका दान करता है, उसका पाप छूट जाता है।
संसारमें अन्न बलकी वृद्धि करनेवाला है। उसका दान करने-
से मनुष्य बलवान् बनता है। सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेसे
सब पाप दूर हो जाते हैं। दानवेत्ता पुरुषोंने जो मार्ग बताया
है और जिसपर मनीषी पुरुष चलते हैं, वही अन्नदाताओंका
भी मार्ग है। उन्हींसे सनातन धर्म है। मनुष्यको सभी
अवस्थाओंमें न्यायोपार्जित अन्नका दान करना चाहिये; क्योंकि
अन्न सर्वोत्तम गति है। अन्नदानसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त
होता है। इस लोकमें उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं
और मृत्युके बाद भी वह सुखका भागी होता है।

इस प्रकार पुण्यवान् मनुष्य पापोंसे मुक्त होता है। अतः
अन्यायरहित अन्नका दान करना चाहिये। जो गृहस्थ सदा
प्राणाग्निहोत्रपूर्वक अन्न-भोजन करता है, वह अन्नदानसे
प्रत्येक दिनको सफल बनाता है। जो मनुष्य वेद, न्याय,
धर्म और इतिहासके ज्ञाता सौ विद्वानोंको प्रतिदिन भोजन
कराता है, वह घोर नरकमें नहीं पड़ता और संसार-बन्धनमें
भी नहीं बँधता; अपितु समस्त [illegible]

परलोक-यातना

(लेखक—परमहंसजी महाराज, श्रीरामकुटिया, रेवदर)

मनुष्यका सबसे बड़ा वैभव है—उसकी मनुष्यता। वही उसके सारे कार्य-कलापकी आत्मा है। आत्माकी रक्षाके लिये परमात्माने उसके सहयोगमें विद्या, धन, स्त्री, पुत्र, तीर्थ, गुरु और गीतादि उपादेय पदार्थोंकी प्रस्चना कर रक्खी है। इसीलिये हमारे अनुभवी पूर्वपुरुष कह गये हैं—'आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।'

'समस्त जगत्के वैभवोंकी बाजी लगाकर भी मनुष्यको अपनी मनुष्यता (आत्मा) की रक्षा करनी चाहिये।'

मनुष्य संसारका सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है। 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। देहधारियोंमेंसे मनुष्य ही मेरी बराबरीको रखनेवाला सनातन अंश है।' ऐसा गीतामें भगवद्वचन है। पर आज ईमानदारीसे हम देखें तो मनुष्य संसारमें 'सर्वाधिक पतित पशु' बन गया है। संयमकी दृष्टिसे पशु हमसे श्रेष्ठ है। वह आज भी प्रकृतिके नियमोंसे बँधा है और सौहार्दकी दृष्टिसे भी हम उससे पीछे हैं।

धर्मोंके नामपर, साम्प्रदायिकताके नामपर, प्रान्तीयताके नामपर, जातियोंके नामपर, रंगोंके नामपर, भाषाके नामपर, स्थानोंकी सीमाके नामपर, सभ्यता और स्वार्थके इस नवयुगमें असभ्य राष्ट्रीयताके नामपर मनुष्यने अपनी मनुष्यताको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। वह आज आत्मपदसे गिरकर पशु-पैशाच बना चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण कर रहा है। मनुष्यतासे रहित होकर उच्छृङ्खलतापूर्वक कहता है कि 'भगवान् कहाँ है? परलोक कहाँ है? नरक कहाँ है? आदि'। हाँ! यहाँ मनमाना अत्याचार करके तुम झूठी गवाहियोंद्वारा जजोंको धोखेमें डाल सकते हो, रुपये-पैसेका लालच दे न्यायमार्गसे उन्हें विचलित कर सकते हो, अपने इच्छानुसार ठीक न्याय नहीं हुआ है—ऐसा कह-कर उनके न्यायका प्रतिवाद कर सकते हो और आगेकी अदालतोंमें उसके लिये भी अपील कर सकते हो—पर भूल करके भी कभी ऐसा मत सोच बैठना कि उस अन्तर्यामी सर्वव्यापी परमेश्वरसे कुछ भी छिपा है। उसकी अदालतमें भूलके लिये स्थान नहीं है। अन्याय, भ्रष्टाचार, बेईमानी, धोखेबाजी, झूठ और रिश्वत तो उसके घरतक पहुँच ही नहीं पाती। धनी-गरीब, छोटा-बड़ा, ब्राह्मण-चाण्डाल, राजा-रंक—वहाँ एक ही दृष्टिसे देखे धन, सम्पत्ति, मान, उपाधि, पद और गौर न्यायमें लेशमात्र भी बाधा नहीं डाल सकते। भ ऐसी सामर्थ्य है, जो वहाँ धोखा दे सके? वहाँ और ठीक-ठीक न्याय होता है। उसे तुम्हारी प्रत का पता है—गुप्तसे गुप्त स्थानमें, गहनसे गहन कन्दरामें, घोर-से-घोर भयावनी काली रातमें, अं अंदर बंद होकर भी, अनेक वेष-भूषा धारणकर अथवा विचार तुमने किये हैं—उसके पास सब शुभाशुभ कर्मोंके फैसलेकी कहीं भी अपील न उसका न्याय सर्वमान्य है। सबको बाध्य होकर उ आगे नतमस्तक हो जाना पड़ता है।

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फ

(मानस २। २

जैसा किया है, वैसा भोगा जाता है। जैसा किया है, वैसा परिणाम-फल सुख-दुःख प्राप्त होता सारे जगत्में प्रधानता मानी गयी है। इस ज नाना प्रकारके दुःख हमलोगोंको उठाने पड़ते हैं, पूर्वकर्मोंके ही फलभोग हैं। परंतु यह देह मुख्यत साधन है और यह जीवलोक मुख्यतः 'कर्मलोक' है। इस शरीरके रहते जो भोग प्राप्त होता है, व भी अधिक होनेपर भी उस भोगसे तो कम है, जि पूर्णताके लिये मनुष्यको मृत्युके पश्चात् भोगदेह प्र है। यह भोगदेह दो प्रकारका है—एक वह दे पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप—स्वर्गादि उत्तमलोकोंका भो जाता है और दूसरा वह देह जिससे पापकर्म स्वरूप नाना प्रकारकी नारकीय-यातना भोगी जा मृत्युके पश्चात् मनुष्यको नवीन मनुष्य-देह नहीं प्रा नया देह प्राप्त होनेके पूर्व मनोमय और प्राणमय सुकृत-दुष्कृतके सुख-दुःखरूप फल उसे भोगने प सुकृतोंके स्वर्गादि सुखरूप फल हैं, जो इस संसार होनेवाले सुखोंसे अनन्तगुण अधिक हैं। संसारमें अपने क्षणिक सुखके लिये नाना प्रकारके दुष्कर्म कर है। उसे इस बातका पता नहीं कि इन दुष्कर्मों अन्तमें भोगना पड़ेगा। दुष्कर्मोंके नरकादि दुःख

योगभ्रष्टकी गति (गीता ६ । ४१-४२)

पवित्र श्रीमान्‌के घर जन्म

ज्ञानवान् योगियोंके कुलमें जन्म
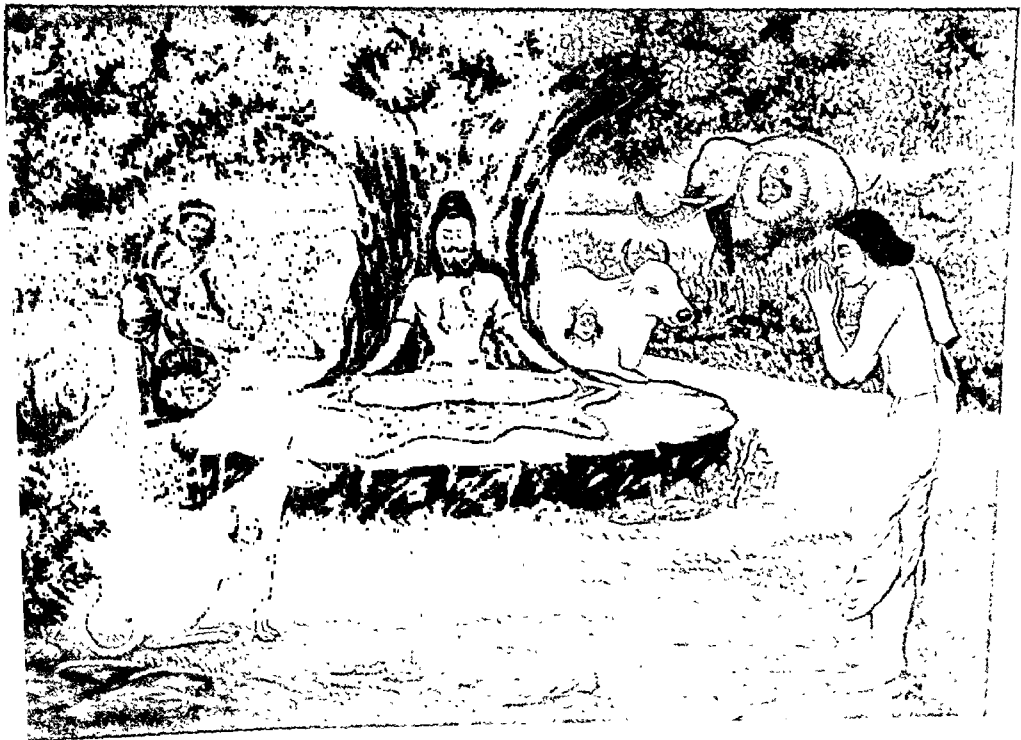
यमराजकी दूतोंको चेतावनी

(स्कन्दपुराण, काशीखण्डसे)

मथुरामें शिवशर्मा नामक एक ब्राह्मण थे। उन्होंने विधिवत् अर्थपूर्वक वेदोंका अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त वे धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय-मीमांसा, धनुर्वेद-आयुर्वेद, अर्थशास्त्र-मन्त्रशास्त्र आदि विद्याओंमें पारङ्गत थे। नाना प्रकारकी कलाओं और विभिन्न देशोंकी भाषा तथा लिपिको भलीभाँति जानते थे। अपने जीवनमें उन्होंने बहुत धन उपार्जन किया। जब बुढ़ापा आया तो वे अपने लड़कोंको सारा धन बाँटकर निश्चिन्त हो गये। परंतु बुढ़ापा आनेपर उनको एक बड़ी चिन्ता सताने लगी। वे सोचने लगे कि 'अरे! मैंने तो सारा जीवन विद्या पढ़ने तथा धनोपार्जनमें बिता दिया। मैंने कर्मपाशसे मुक्त करनेवाले शंकरजीकी आराधना नहीं की। सारे पापोंको हर लेनेवाले विष्णु-भगवान्की पूजासे वञ्चित रहा। मनुष्यकी सारी मनोकामनाको पूर्ण करनेवाले गणेशजीकी अर्चना नहीं की। अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्य भगवान्की अर्चासे वञ्चित रहा। भव-बन्धनसे छुड़ानेवाली जगद्धात्री महामाया भगवतीकी पूजा मैंने नहीं की। मैंने देवताओंको यज्ञ-हवन आदिके द्वारा संतुष्ट नहीं किया। पापोंको शान्त करनेवाली तुलसीके वनकी सेवा मैंने नहीं की। ब्राह्मणोंको मधुर रससे पूर्ण अन्नके द्वारा तृप्त नहीं किया। इहलोक-परलोकमें सुख प्रदान करनेवाले वृक्षोंको नहीं लगाया। मैंने यमलोकसे बचानेवाला दान-पुण्य नहीं किया। मैंने सुपात्रको सवत्सा गौ दानमें नहीं दी। मातृ-ऋणसे उद्धार पानेके लिये मैंने वापी-तड़ाग नहीं खुदवाया। स्वर्ग प्रदान करनेवाली अतिथि-सेवासे भी मैं वञ्चित रहा। मैंने किसीको कन्याके विवाहमें धनसे साहाय्य नहीं किया। मैंने कोई देवमन्दिर नहीं बनवाया और न ब्राह्मणोंको वस्त्र-दान किया।'

इस प्रकार शास्त्रमें वर्णित नाना प्रकारके शुभकर्मोंका स्मरण उनको होने लगा और अनुष्ठान न करनेके कारण उनका चित्त चिन्तित हो उठा। तब उन्होंने सोचा—

> यावत् स्वस्थोऽस्ति मे देहो यावन्नेन्द्रियविक्लवः।
> तावत् स्वश्रेयसां हेतुं तीर्थयात्रां करोम्यहम्॥

'जबतक मेरा शरीर स्वस्थ है, जबतक आँख-कान आदि इन्द्रियाँ दुरुस्त हैं, तबतक मैं अपने कल्याणके लिये तीर्थयात्रा करूँगा।' ऐसा सोचकर उन्होंने तीर्थयात्रा शुरू कर दी और क्रमशः अयोध्या, प्रयाग, काशी, अवन्ती, द्वारका, हरिद्वार आदि तीर्थोंमें जाकर वे स्नान-दर्शन, पूजन आदि अनुष्ठानोंमें रत रहे। हरिद्वारमें तीर्थोपवास करके रात्रिमें जागरण करके भगवत्स्मरण-चिन्तनमें बिताया। दूसरे दिन वे अति दारुण ज्वरसे आक्रान्त हुए और वहीं उनका देहान्त हो गया।

तत्काल वैकुण्ठसे एक विमान आकर वहाँ उपस्थित हुआ और पार्थिव शरीरको छोड़कर सूक्ष्मशरीरसे शिवशर्मा चतुर्भुज विष्णुरूपमें उस विमानपर आरूढ़ हो गये। विष्णुरूपमें ही दिव्य-रूपधारी दो विष्णुदूत, जो उस विमानके साथ आये थे, उनको लेकर चले। रास्तेमें पिशाचलोक, गुह्यकलोक, गन्धर्वलोक, विद्याधरलोक आदि होते हुए यमपुरके पाससे होकर विमान आगे बढ़ा। यमराजने आकर विष्णुलोकके यात्री शिवशर्माको धन्यवाद दिया और अपनी पुरीमें लौट गये। शिवशर्माने दूतोंसे पूछा—'यमराज तो बहुत शालीनतापूर्वक बातें कर गये और देखनेमें भी उनकी आकृति अत्यन्त सौम्य थी। मृत्युलोकमें तो लोग उनका बड़ा भयानक रूपमें वर्णन करते हैं, क्या बात है?'

दूतोंने उत्तर दिया—'महाराज! पुण्यकर्म करनेवाले जीवोंसे यमराज बहुत प्रसन्न रहते हैं और स्वर्ग जाते समय उनसे प्रसन्नमुद्रामें बातें करते हैं। परंतु पापकर्म करनेवालोंके प्रति वे अत्यन्त क्रूर होकर उनको नरकमें अतिक्रूर भावसे देखते हैं और उनके पाप-कर्मोंका भयानक पीड़ाजनक फल प्रदान करनेसे नहीं चूकते। यमराजके दूत जो पापियोंका प्राण लेने जाते हैं, वे भी अति भीषण रूपवाले और परम क्रूरतापूर्वक बर्ताव करनेवाले होते हैं। परंतु यमराजने अपने दूतोंको बारंबार चेतावनी देते हुए कहा है कि 'जो मनुष्य अष्टोत्तरशतनामका जप करते हों, उनसे तुमलोग दूर रहना, उनके पास न जाना।' यमराजने मृत्युलोकके जीवोंका कितना उपकार कर रक्खा है। वह यमराजकृत अष्टोत्तर-शतनाम स्तोत्र इस प्रकार है—

> गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे!
> शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे!
> दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव!
> त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति॥ १॥

गङ्गाधरान्धकरिपो हर नीलकण्ठ !
वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्जपाणे !
भूतेश खण्डपरशो मृड चण्डिकेश !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ २ ॥

विष्णो नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे !
गौरीपते गिरिश शंकर चन्द्रचूड !
नारायणासुरनिबर्हण शार्ङ्गपाणे !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ३ ॥

मृत्युंजयोग्रविषमेक्षण कामशत्रो !
श्रीकान्त पीतवसनाम्बुदनील शौरे !
ईशान कृत्तिवसन त्रिदशैकनाथ !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ४ ॥

लक्ष्मीपते मधुरिपो पुरुषोत्तमाद्य
श्रीकण्ठ दिग्वसन शान्त पिनाकपाणे !
आनन्दकन्द धरणीधर पद्मनाभ
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ५ ॥

सर्वेश्वर त्रिपुरसूदन देवदेव !
ब्रह्मण्यदेव गरुडध्वज शङ्खपाणे !
त्र्यक्षोरगाभरण बालमृगाङ्कमौले !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ६ ॥

श्रीराम राघव रमेश्वर रावणारे !
भूतेश मन्मथरिपो प्रमथाधिनाथ
चाणूरमर्दन हृषीकपते मुरारे !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति

शूलिन् गिरीश रजनीशकलावतंस !
कंसप्रणाशन सनातन केशिनाश
भर्ग त्रिनेत्र भव भूतपते पुरारे !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति

गोपीपते यदुपते वसुदेवसूनो !
कर्पूरगौर वृषभध्वज भालनेत्र
गोवर्द्धनोद्धरण धर्मधुरीण गोप !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति

स्थाणो त्रिलोचन पिनाकधर स्मरारे !
कृष्णानिरुद्ध कमलाकर कल्मषा
विश्वेश्वर त्रिपथगार्द्रजटाकलाप !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति

इस भगवान् हरि-हरके १०८ नामवाले स्तो
दिन पाठ करना चाहिये। इससे यम-भय दूर हो

यमराजके द्वारा अपने दूतोंको उपदेश तथा चेतावनी

(श्रीमद्भागवत, षष्ठस्कन्ध, अध्याय १ से ३)

अजामिल पहले बहुत संयमी तथा सदाचारी था। पर एक बार उसने क्षणभरके लिये नेत्रोंसे विषयासक्त लोगोंकी विषय-क्रीडा देख ली, इससे उसके अंदर छिपी हुई विषयासक्ति उमड़ उठी और वह महापापी बन गया। उसने पूर्वाभ्यास-

नामोच्चारणकी महिमा है।' इसके बाद उन्होंने अ
रहस्य बताकर जो चेतावनी दी, उसीका कुछ अंश
आ रहा है। यमराजने कहा—

''स्वयं भगवान्ने ही धर्मकी मर्यादाका निर्माण कि

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥
(श्रीमद्भागवत ६ । ३ । २४)

"प्रिय दूतो ! भगवान्‌के नामोच्चारणकी महिमा तो देखो, अजामिल-जैसा पापी भी एक बार नामोच्चारण करनेमात्रसे मृत्युपाशसे छुटकारा पा गया । भगवान्‌के गुण, लीला और नामोंका भलीभाँति कीर्तन मनुष्योंके पापोंका सर्वथा विनाश कर दे, यह कोई उसका बहुत बड़ा फल नहीं है; क्योंकि अत्यन्त पापी अजामिलने मरनेके समय चञ्चल चित्तसे अपने पुत्रका नाम 'नारायण' उच्चारण किया । इस नामाभास मात्रसे ही उसके सारे पाप तो क्षीण हो ही गये, मुक्तिकी प्राप्ति भी हो गयी । बड़े-बड़े विद्वानोंकी बुद्धि भी भगवान्‌की मायासे मोहित हो जाती है । वे कर्मोंके मीठे-मीठे फलोंका वर्णन करनेवाली अर्थवादरूपिणी वेदवाणीमें ही मोहित हो जाते हैं और यज्ञ-यागादि बड़े-बड़े कर्मोंमें ही संलग्न रहते हैं तथा इस सुगमातिसुगम भगवन्नामकी महिमाको नहीं जानते । यह कितने खेदकी बात है ।

"प्रिय दूतो ! बुद्धिमान् पुरुष ऐसा विचारकर भगवान् अनन्तमें ही सम्पूर्ण अन्तःकरणसे अपना भक्तिभाव स्थापित करते हैं । वे मेरे दण्डके पात्र नहीं हैं । पहली बात तो यह है कि वे पाप करते ही नहीं; परंतु यदि कदाचित् संयोगवश कोई पाप बन भी जाय, तो उसे भगवान्‌का गुणगान तत्काल नष्ट कर देता है । जो समदर्शी साधु भगवान्‌को ही अपना साध्य और साधन—दोनों समझकर उनपर निर्भर हैं, बड़े-बड़े देवता और सिद्ध उनके पवित्र चरित्रोंका प्रेमसे गान करते रहते हैं । मेरे दूतो ! भगवान्‌की गदा उनकी सदा रक्षा करती रहती है । उनके पास तुमलोग कभी भूलकर भी मत फटकना । उन्हें दण्ड देनेकी सामर्थ्य न हममें है और न साक्षात् कालमें ही । बड़े-बड़े परमहंस दिव्य रसके लोभसे सम्पूर्ण जगत् और शरीर आदिसे भी अपनी अहंता-ममता हटाकर, अकिंचन होकर निरन्तर भगवान् मुकुन्दके पादारविन्दका मकरन्द-रस पान करते रहते हैं । जो दुष्ट उस दिव्य रससे विमुख हैं और नरकके दरवाजे घर-गृहस्थीकी तृष्णाका बोझा बाँधकर उसे ढो रहे हैं, उन्हींको मेरे पास बार-बार लाया करो ।

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥
(श्रीमद्भागवत ६ । ३ । २९)

"जिनकी जीभ भगवान्‌के गुणों और नामोंका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त उनके चरणारविन्दोंका चिन्तन नहीं करता और जिनका सिर एक बार भी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें नहीं झुकता, उन भगवत्सेवाविमुख पापियोंको ही मेरे पास लाया करो ।"

"आज मेरे दूतोंने भगवान्‌के पार्षदोंका अपराध करके स्वयं भगवान्‌का ही तिरस्कार किया है । यह मेरा ही अपराध है । पुराणपुरुष भगवान् नारायण हमलोगोंका यह अपराध क्षमा करें । हम अज्ञानी होनेपर भी हैं उनके निजजन, और उनकी आज्ञा पानेके लिये अञ्जलि बाँधकर सदा उत्सुक रहते हैं । अतः परम महिमान्वित भगवान्‌के लिये यही योग्य है कि वे क्षमा कर दें । मैं उन सर्वान्तर्यामी एकरस अनन्त प्रभुको नमस्कार करता हूँ ।"

प्रभु-पदकमल-रसका ग्रहण करनेवाला जन्म-मरणको नहीं प्राप्त होता

न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् ।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ॥

मित्र ! मुकुन्दकी सेवा करनेवाला मनुष्य अन्य (संसारी) पुरुषोंकी तरह आवागमन (जन्म-मृत्यु) को प्राप्त नहीं होता; मुकुन्द-चरणारविन्दोंके आभ्यन्तरिक रसको स्मरण करता हुआ वह फिर उन्हें छोड़नेकी इच्छा नहीं करता; क्योंकि वह जीव रस (परमानन्दरस) का ग्रहण करनेवाला है ।

अब घोर कलिकाल आया ही समझिये, इसलिये संसारमें फिर अनेकों दुष्ट प्रकट हो जायँगे; उनके संसर्गसे जब अनेकों सत्पुरुष भी उस प्रकृतिके हो जायँगे, तब उनके भारसे दबकर यह गोरूपिणी पृथ्वी किसकी शरणमें जायगी ? कमलनयन ! मुझे तो आपको छोड़कर इसकी रक्षा करनेवाला कोई दूसरा नहीं दिखायी देता। इसलिये भक्तवत्सल ! आप साधुओंपर कृपा करके यहाँसे मत जाइये। भगवन् ! आपने निराकार और चिन्मय होकर भी भक्तोंके लिये ही तो यह सगुणरूप धारण किया है। फिर भला, आपका वियोग होनेपर वे भक्तजन पृथ्वीपर कैसे रह सकेंगे ? निर्गुणोपासनामें तो बड़ा कष्ट है। इसलिये कुछ और विचार कीजिये।' (श्रीमद्भा० मा० ३ । ५४—५९)

'प्रभासक्षेत्रमें उद्धवजीके वचन सुनकर भगवान् सोचने लगे कि भक्तोंके अवलम्बके लिये मुझे क्या करना चाहिये ? तब भगवान्‌ने अपनी सारी शक्ति भागवतमें रख दी; वे अन्तर्धान होकर इस भागवत-समुद्रमें प्रवेश कर गये। इसलिये यह भगवान्‌की साक्षात् शब्दमयी मूर्ति है। इसके सेवन, श्रवण, पाठ अथवा दर्शनसे ही मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इसीसे इसका सप्ताह-श्रवण सबसे बढ़कर माना गया है और कलियुगमें तो अन्य सब साधनोंको छोड़कर यही प्रधान धर्म (साधन) बताया गया है। कलिकालमें यही ऐसा धर्म है, जो दुःख, दरिद्रता, दुर्भाग्य और पापोंकी सफाई कर देता है तथा काम, क्रोधादि शत्रुओंपर विजय दिलाता है। अन्यथा भगवान्‌की इस मायासे पीछा छुड़ाना देवताओंके लिये भी कठिन है, मनुष्य तो इसे छोड़ ही कैसे सकते हैं। अतः इससे छूटनेके लिये भी सप्ताह-श्रवणका विधान किया गया है।' (श्रीमद्भा० मा० ३ । ६०—६५)

'अतः इसमें संदेह नहीं कि कलिकालमें चित्तकी शुद्धिके लिये इस भागवतकी कथाके समान मर्त्यलोकमें पापपुञ्जका नाश करनेवाला कोई दूसरा पवित्र साधन नहीं है'—

अतो नृलोके ननु नास्ति किंचि-
चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम्।
अघौघविध्वंसकरं तथैव
कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत्॥
(श्रीमद्भा० मा० ४ । ९)

इस कथारूप सप्ताह-यज्ञके द्वारा संसारमें कौन-कौन लोग पवित्र हो जाते हैं—

'जो लोग सदा तरह-तरहके पाप किया कर[illegible] निरन्तर दुराचारमें ही तत्पर रहते हैं और उल्टे मार्गसे [illegible] हैं तथा जो क्रोधाग्निसे जलते रहनेवाले, कुटिल और [illegible] परायण हैं, वे सभी इस कलियुगमें सप्ताह-यज्ञसे पवि[illegible] जाते हैं। जो सत्यसे च्युत, माता-पिताकी निन्दा करने[illegible] तृष्णाके मारे व्याकुल, आश्रमधर्मसे रहित, दम्भी, दू[illegible] उन्नति देखकर कुढ़नेवाले और दूसरोंको दुःख देनेवा[illegible] वे भी कलियुगमें सप्ताह-यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं [illegible] मदिरापान, ब्रह्महत्या, सुवर्णकी चोरी, गुरुस्त्री[illegible] और विश्वासघात—ये पाँच महापाप करनेवाले, छल[illegible] परायण, क्रूर, पिशाचोंके समान निर्दयी, ब्राह्मणके [illegible] पुष्ट होनेवाले और व्यभिचारी हैं, वे भी कलियुगमें स[illegible] यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। जो दुष्ट आग्रहपूर्वक [illegible] मन, वाणी या शरीरसे पाप करते रहते हैं, दूसरेके [illegible] ही पुष्ट होते हैं तथा मलिनमन एवं दुष्ट हृदयवा[illegible] वे भी कलियुगमें सप्ताह-यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं [illegible] (श्रीमद्भा० मा० ४ । ११—१४)

इन प्रमाणोंसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि प्रेतयो[illegible] मुक्त होनेके लिये श्रीमद्भागवतका सप्ताह-श्रवण सर्वो[illegible] उपाय या साधन है। श्रीमद्भागवत भगवान्‌की सा[illegible] शब्दमयी मूर्ति है, इसमें भगवान्‌का सदा-सर्वदा नि[illegible] रहता है। इसके श्रवण एवं दर्शनमात्रसे समस्त प[illegible] समूहोंका समूल नाश हो जाता है और चित्तकी [illegible] होकर भगवद्भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। भगवद्[illegible] प्राप्त होनेपर उसके हृदयमें भी स्वतः भक्ति[illegible] पुत्र—ज्ञान और वैराग्यका उदय हो जाता है, [illegible] उसके मुक्त होनेमें संदेह ही क्या रह जाता है ? अ[illegible] निस्संदेह श्रीमद्भागवतके सप्ताह-यज्ञसे प्रेतकी अवश्य मु[illegible] हो जाती है। राजा परीक्षित् एवं गोकर्ण आदि मुक्त [illegible] जीव इसके परम साक्षी हैं। श्रीमद्भागवत भक्ति, [illegible] और वैराग्यको जीवनीशक्ति प्रदान करनेवाला है। भगवा[illegible] श्रीसूर्यनारायण, महामुनि श्रीसनकादि परमर्षि, परम [illegible] एवं धर्मवक्ता श्रीसूतजी, देवर्षि नारद और भगवान् वे[illegible] व्यासजी आदि सत्यवक्ता, ज्ञाननिधि एवं सर्वलो[illegible] कल्याणकारी तथा स्वयं श्रीब्रह्माजी इस सप्ताह-य[illegible] से मुक्ति होनेके अनुमोदक एवं समर्थक हैं। इसलि[illegible] आस्तिक पुरुषोंको श्रीमद्भागवत-सप्ताहसे मुक्त होनेमें [illegible] ननु-नच किं वा अविश्वास हो ही नहीं सकता है। अस्तु, [illegible]

श्रवण मन, वचन और कर्मद्वारा किये हुए नये-पुराने, छोटे-बड़े—सभी प्रकारके पापोंको भस्म कर देता है'—

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी।
सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः॥
कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते।
अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति॥
आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम्।
श्रवणं विदहेत् पापं पावकः समिधो यथा॥
(श्रीमद्भा० मा० ५। ५३—५५)

इसलिये 'विद्वानोंने देवताओंकी सभामें कहा है कि जो लोग इस भारतवर्षमें श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं सुनते, उनका जन्म वृथा ही है'—

अस्मिन् वै भारते वर्षे सूरिभिर्देवसंसदि।
अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम्॥
(श्रीमद्भा० मा० ५। ५६)

किसी भी साधनको जबतक उस साधनके विधि-विधान-पूर्वक न किया जाय, तबतक उस साधनका यथार्थ फल नहीं प्राप्त होता; इसलिये प्रत्येक साधनकी साधनाके पूर्व उसके विधि-विधानका जानना अत्यावश्यक है। श्रीमद्भागवत-माहात्म्य अध्याय ६ में विधिका वर्णन है। उसे अच्छी तरह समझकर सप्ताहश्रवणका आयोजन करना चाहिये।

प्रवचनके लिये ऐसे विद्वान् ब्राह्मणको नियुक्त करना चाहिये जो विवेकी, अत्यन्त निःस्पृह, विरक्त और विष्णुभक्त हों। ऐसे लोगोंको नियुक्त नहीं करना चाहिये जो पण्डित होनेपर भी अनेक धर्मोंके चक्करमें पड़े हुए, स्त्रीलम्पट एवं पाखण्डके प्रचारक हों। वक्ताके पास ही उसकी सहायताके लिये एक वैसा ही विद्वान् और स्थापित करना चाहिये। वह भी सब प्रकारके संशयोंकी निवृत्ति करनेमें समर्थ और लोगोंको समझाने-बुझानेमें कुशल हो।

नमस्कारादि कर इस प्रकार स्तुति करे—

संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे।
कर्ममोहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात्॥
(श्रीमद्भा० मा० ६। २७)

'करुणानिधान! मैं संसारसागरमें डूबा हुआ और बड़ा दीन हूँ। कर्मोंके मोहरूपी ग्राहने मुझे पकड़ रक्खा है। आप इस संसारसागरसे मेरा उद्धार कीजिये।'

इसके पश्चात् धूप-दीप आदि सामग्रियोंसे श्रीमद्भागवतकी भी बड़े उत्साह और प्रीतिपूर्वक विधि-विधानसे पूजा करे। फिर पुस्तकके आगे नारियल रखकर नमस्कार करे और प्रसन्न चित्तसे इस प्रकार स्तुति करे—

'श्रीमद्भागवतके रूपमें आप साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र ही विराजमान हैं। नाथ! मैंने भवसागरसे छुटकारा पानेके लिये आपकी शरण ली है। मेरा यह मनोरथ आप बिना किसी विघ्न-बाधाके साङ्गोपाङ्ग पूरा करें। केशव! मैं आपका दास हूँ।' (श्रीमद्भा० मा० ६। ३०-३१)

इस प्रकार दीन वचन कहकर फिर वक्ताका पूजन करे। उसे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करे और फिर पूजाके पश्चात् उसकी इस प्रकार स्तुति करे—

'शुकस्वरूप भगवन्! आप समझानेकी कलामें कुशल और सब शास्त्रोंमें पारङ्गत हैं; कृपया इस कथाको प्रकाशित करके मेरा अज्ञान दूर करें।' (श्रीमद्भा० मा० ६। ३३)

फिर अपने कल्याणके लिये प्रसन्नतापूर्वक उसके सामने नियम ग्रहण करे और सात दिनोंतक यथाशक्ति उसका पालन करे। कथामें विघ्न न हो, इसके लिये पाँच ब्राह्मणोंको और वरण करे; वे द्वादशाक्षर मन्त्रद्वारा भगवान्‌के नामोंका जप करें। फिर ब्राह्मण, अन्य विष्णु-भक्त एवं कीर्तन करने-वालेको नमस्कार करके उनकी पूजा करे और उनकी आज्ञा

र स्वयं भी आसनपर बैठ जाय। 'जो पुरुष लोक, त्ति, धन, घर और पुत्रादिकी चिन्ता छोड़कर शुद्धचित्तसे ठ कथामें ही ध्यान रखता है, उसे इसके श्रवणका उत्तम मिलता है।' (श्रीमद्भा० मा० ६। ३७)

बुद्धिमान् वक्ताको चाहिये कि सूर्योदयसे कथा आरम्भ के साढ़े तीन पहरतक मध्यम स्वरसे अच्छी तरह कथा े। दोपहरके समय दो घड़ी कथा बंद रक्खे। उस य कथाके प्रसङ्गके अनुसार वैष्णवोंको भगवान्के गुणोंका ीन करना चाहिये—व्यर्थ बातें नहीं करनी चाहिये। ाके समय मल-मूत्रके वेगको काबूमें रखनेके लिये अल्पा- : सुखकारी होता है, इसलिये श्रोता केवल एक ही समय ाप्यान्न भोजन करे। यदि शक्ति हो तो सातों दिन निराहार कर कथा सुने अथवा केवल घी या दूध पीकर सुखपूर्वक ग करे। अथवा फलाहार या एक समय भोजन करे। ससे जैसा नियम सुविधासे सध सके, उसीको ग्रहण करे। तो उपवासकी अपेक्षा भोजन करना अच्छा समझता हूँ, दे वह कथाश्रवणमें सहायक हो। यदि उपवाससे श्रवणमें धा पहुँचती हो तो वह किसी कामका नहीं।

नियमसे सप्ताह सुननेवाले पुरुषोंके नियम ये हैं—विष्णु- क्तिकी दीक्षासे रहित पुरुष कथाश्रवणका अधिकारी नहीं है, । पुरुष नियमसे कथा सुने, उसे ब्रह्मचर्यसे रहना, भूमिपर ोना और नित्यप्रति कथा समाप्त होनेपर पत्तलमें भोजन रना चाहिये। दाल, मधु, तेल, गरिष्ठ अन्न, भावदूषित दार्थ और बासी अन्न—इनका उसे सर्वदा ही त्याग रना चाहिये। काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, म्भ, मोह और द्वेषको तो अपने पास भी नहीं फटकने ेना चाहिये। वह वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गोसेवक था स्त्री, राजा और महापुरुषोंकी निन्दासे भी बचे। नियमसे कथा सुननेवाले पुरुषको रजस्वला स्त्री, अन्त्यज, म्लेच्छ, पतित, गायत्रीहीन द्विज, ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले तथा वेदको न माननेवाले पुरुषोंसे बात नहीं करनी चाहिये। सर्वदा सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय और उदारताका बर्ताव करना चाहिये। धनहीन, क्षयरोगी, किसी अन्य रोगसे पीड़ित, भाग्यहीन, पापी, पुत्रहीन और मुमुक्षु भी यह कथा श्रवण करे। जिस स्त्रीका रजोदर्शन रुक गया हो, जिसके एक ही संतान होकर रह गयी हो, जो बाँझ हो, जिसकी संतान होकर मर जाती हो अथवा जिसका गर्भ गिर जाता हो, वह यत्नपूर्वक इस कथाको सुने। ये सब यदि विधिवत् कथा सुनें तो इन्हें अक्षय फलकी प्राप्ति हो सकती है। यह अत्युत्तम दिव्य कथा करोड़ों यज्ञोंका फल देने- वाली है।

इस प्रकार इस व्रतकी विधियोंका पालन करके फिर उद्यापन करे। जिन्हें इसके विशेष फलकी इच्छा हो, वे जन्माष्टमी-व्रतके समान ही इस कथाव्रतका उद्यापन करें; किंतु जो भगवान्के अकिंचन भक्त हैं, उनके लिये उद्यापनका कोई आग्रह नहीं है। वे श्रवणसे ही पवित्र हैं; क्योंकि वे तो निष्काम भगवद्भक्त हैं।

इस तरह जब सप्ताह-यज्ञ समाप्त हो जाय, तब श्रोताओंको अत्यन्त भक्तिपूर्वक पुस्तक और वक्ताकी पूजा करनी चाहिये। फिर वक्ता श्रोताओंको प्रसाद, तुलसी और प्रसादी मालाएँ दे तथा सब लोग मृदङ्ग और झाँझकी मनोहर ध्वनिसे सुन्दर कीर्तन करें। जय-जयकार, नमस्कार और शङ्खध्वनिका घोष करायें तथा ब्राह्मण और याचकोंको धन और अन्न दें। श्रोता विरक्त हो तो कर्मकी शान्तिके लिये दूसरे दिन गीतापाठ करे, गृहस्थ हो तो हवन करे। उस हवनमें दशम स्कन्धका एक-एक श्लोक पढ़कर विधि- पूर्वक खीर, मधु, घृत, तिल और अन्नादि सामग्रियोंसे आहुति दें।

अथवा एकाग्रचित्तसे गायत्री-मन्त्रद्वारा हवन करे; क्योंकि तत्त्वतः यह महापुराण गायत्रीस्वरूप ही है। होम करनेकी शक्ति न हो तो उसका फल प्राप्त करनेके लिये ब्राह्मणोंको हवन-सामग्री दान करे तथा नाना प्रकारकी त्रुटियोंको दूर करनेके लिये और विधिमें जो न्यूनाधिक्यता रह गयी हो, उसके दोषोंकी शान्तिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ करे। उससे सभी कर्म सफल हो जाते हैं; क्योंकि कोई भी कर्म इससे बढ़कर नहीं है।

फिर बारह ब्राह्मणोंको खीर और मधु आदि उत्तम- उत्तम पदार्थ खिलाये तथा व्रतकी पूर्तिके लिये गौ और सुवर्णका दान करे। सामर्थ्य हो तो तीन तोले सुवर्णका एक सिंहासन बनवाये। उसपर सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी पोथी, सुन्दर वेष्टनसे आच्छादित कर, उस सोनेके सिंहासनपर स्थापित कर, उनकी आवाहनादि विविध उपचारोंसे पूजा करे और फिर जितेन्द्रिय आचार्यको—उसका वस्त्र, आभूषण एवं गन्धादिसे पूजन कर दक्षिणाके सहित समर्पण कर दे। यों करनेसे वह बुद्धिमान् दाता जन्म-मरणके

पारायण करना हो, तो मुख्य श्रोताके रूपमें किसी वैष्णव ब्राह्मणको श्रोता नियुक्तकर, उसीके द्वारा सप्ताह-यज्ञकी सारी साधना प्रेतके प्रतिनिधित्वके रूपमें सम्पन्न करानी चाहिये। संकल्प-पूजा और दान आदिकी सारी योजनाएँ, उसी नियुक्त ब्राह्मणके द्वारा पूर्ण होनी अत्यावश्यक है। यही प्रणाली शास्त्रानुकूल, विधि-विधान एवं व्यवहार-व्यवहृत है। इसी प्रकार महात्मा गोकर्णजीने अपने भाई धुन्धुकारीकी प्रेतत्व-मुक्तिके लिये किया था। इस प्रकारकी योजनासे श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवण करनेसे प्रेत प्रेतयोनिसे निस्संदेह मुक्त होकर परमपद प्राप्त करता है। यज्ञान्तमें उस नियुक्त वैष्णव ब्राह्मण श्रोताका दान-दक्षिणाके द्वारा सत्कार करना अत्युत्तम है।

'श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका परिपक्व फल है। श्रीशुकदेवरूप शुकके मुखका संयोग होनेसे अमृतरससे परिपूर्ण है। यह रस-ही-रस है—इसमें न छिलका है न गुठली। यह इसी लोकमें सुलभ है। जबतक शरीरमें चेतना रहे, तबतक इसका बार-बार पान करें। महामुनि व्यासदेवने श्रीमद्भागवतपुराणकी रचना की है। इसमें निष्कपट-निष्काम परमधर्मका निरूपण है। इसमें शुद्धान्तःकरण सत्पुरुषोंके जाननेयोग्य कल्याणकारी वास्तविक वस्तुका वर्णन है, जिससे तीनों पापोंकी शान्ति होती है। इसका आश्रय पूर्वक इसके श्रवण, पठन और मननमें तत्पर रहता है, वह मुक्त हो जाता है।' (श्रीमद्भा० मा० ६। ८०—८२) जो लोग दरिद्रताके दुःखज्वरकी ज्वालासे दग्ध हो रहे हैं, जिन्हें माया-पिशाचिनीने रौंद डाला है तथा जो संसार-समुद्रमें डूब रहे हैं, उनका कल्याण करनेके लिये श्रीमद्भागवत सिंहनाद कर रहा है।

'इस असार संसारमें विषयरूप विषकी आसक्तिके कारण व्याकुल बुद्धिवाले पुरुषो! अपने कल्याणके उद्देश्यसे आधे क्षणके लिये भी इस शुककथारूप अनुपम सुधाका पान करो। प्यारे भाइयो! निन्दित कथाओंसे युक्त कुपथमें व्यर्थ ही क्यों भटक रहे हो? इस कथाके कानमें प्रवेश करते ही मुक्ति हो जाती है, इस बातके साक्षी राजा परीक्षित् हैं'—

असारे संसारे विषयविषसङ्गाकुलधियः
क्षणार्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथातुलसुधाम्।
किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे
परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने॥
(श्रीमद्भा० मा० ६। १००)

अतः—

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी।
सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः॥
(श्रीमद्भा० मा० ५। ५३)

वैष्णवकी महत्ता

अवैष्णवाद् द्विजाद्विप्र चाण्डालो वैष्णवो वरः। सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्॥
ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद् गोविन्दपादपङ्कजम्। ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत्तेषां च संनिधौ॥
(ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० ११। ३९, ४४)

'अवैष्णव ब्राह्मणसे वैष्णव चाण्डाल श्रेष्ठ है; क्योंकि वह वैष्णव चाण्डाल अपने बन्धुगणसहित संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है और वह अवैष्णव ब्राह्मण नरकमें पड़ता है।' 'वैष्णवजन सदा गोविन्दके चरणारविन्दोंका ध्यान करते हैं और भगवान् गोविन्द सदा उन वैष्णवोंके समीप रहकर उन्हींका ध्यान किया करते हैं।'

जातिस्मरता

(लेखक—जातिस्मराणां किंकरः पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

(१)

'जातिस्मरता'—अर्थ, लक्षण, परिभाषा एवं संक्षिप्त परिचय

'जातिस्मर'के सभी प्रयोग दिये जायँ तो लेखका विस्तार बहुत हो जायगा। यहाँ लक्षणकोश आदि तथा विभिन्न पुराणादिके टीकाकारोंके परिश्रमको उपस्थापन करनेका प्रयत्न किया जायगा।

(दिवादि आत्मनेपदः सेट्) जनी—प्रादुर्भावे धातुसे, **जायते अनया इति जातिः—स्त्रियां क्तिन्** (३ । ३ । ९४ पा०) **जनसनखनां सञ्झलोः।** (पाणि० ६ । ४ । ४२) **इत्यात्वम्; जननमनया इति वा जातिः** (पूर्ववत्) **तां च पूर्वपूर्वां यः स्मरति स स्यात् तथोक्तः 'जातिस्मरः'। नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः।** (पा० ३ । १ । १३४) इस तरह 'जातिस्मर' शब्द बनता है। (विष्णुपुराण ३ । ७ । ९,१३) में **'मया जातिस्मरो मुनिः' 'जातिस्मरेण कथितः'** आदि प्रयोग हैं। भागवत ९ । ८ । १६ में भी **'जातिस्मरः पुरा सङ्गात्'** प्रयोग है। विजयध्वज, शुकदेव आदि टीकाकारगण **'पूर्वजातिं स्मरतीति जातिस्मरः' 'पूर्वजन्मस्मृतिमानिति जातिस्मरः'**—ऐसा लिखते हैं। वेदान्तदर्शन ३ । २ की टीकामें वाचस्पतिमिश्र भी लिखते हैं—**'यो हि परवशो देहं परित्याज्यते देहान्तरं च नीतः पूर्वजन्मानुभूतस्य स्मरति स जन्मवान् जातिस्मरश्च। गृहादिव गृहान्तरं स्वेच्छया कायान्तरं संचरमाणो न जातिस्मर आख्यायते।'** अर्थात् 'परवश होकर जो अदृष्टादिद्वारा शरीर-त्याग करता और नवीन देहमें ले जाया जाता है, ऐसे पूर्वजन्मके अनुभवोंके स्मरणकर्ताको 'जातिस्मर' कहते हैं। स्वच्छन्दतापूर्वक शरीर छोड़नेवाला तो जातिस्मरोंसे विशेष है।'

वेदान्तकल्पतरुमें अमलानन्द सरस्वती भी लिखते हैं—**'आधिकारिकपुरुषस्तु जातिस्मराद् भिन्न।'**—कारकपुरुष जातिस्मरसे ऊँचे होते हैं।'

इन सब बातोंसे जातिस्मरतासे योगादि सिद्धि तथा भगवत्स्मृतिकी विशिष्टता प्रदर्शित है। अतः वास्तवमें जातिस्मरताकी सफलता भगवत्स्मृतिमें ही है। जातिस्मर दीर्घस्मर या दीर्घविचारक होता है। दीर्घदर्शी स्वभावतया विरक्त एवं दार्शनिक होता है। फलतः योग, वेदान्त, भजनादिद्वारा वह मुक्त होनेका प्रयास करता हुआ सिद्धिको प्राप्त करता है। हरिवंशके श्राद्धकल्पके पाँच अध्यायोंमें (१ । २१-२५) में यह बात निरन्तर देखनेको मिलती है।

(२)

जातिस्मरताके अनेकानेक साधन-उपाय

मन्वादि स्मृतियों तथा शिव-स्कन्दादि अनेक पुराणोंमें 'जातिस्मरता'के अनेकानेक साधन निर्दिष्ट हैं। यथा—

(१) **वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च।**
अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम्॥

(मनु० ४ । १४८)

'अनवरत क्रियमाण वेदाभ्यास, शरीर और मनकी पवित्रता तथा तपके द्वारा एवं प्राणियोंके प्रति द्रोह न रखनेसे मनुष्य पूर्वजन्मकी स्मृतिसे युक्त होता है।'

'निरन्तरवेदाभ्यासतीर्थस्नानात्मशुद्धितपोऽहिंसादिभिः पूर्वभवस्य जातिं स्मरति।'

(मेधातिथि, कुल्लूक, राघवानन्द, रामानन्दयति, असहाय, गोविन्दराज, धरणिधर, भारुचि आदिकी टीकाओंका सारांश)

(२) **अहर्निशं श्रुतेर्जाप्याच्छौचाचारनिषेवणात्।**
अद्रोहवत्या मत्या च पूर्वं जन्म स्मरेद् द्विजः॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ३८ । ८९ तथा स्कन्दपुराण, ब्रह्मोत्त० ३ । ६ । ९१)

(प्रायः वही पूर्वोक्त भाव—रामानन्द सरस्वती)

(३) **शरीरसंक्षये यस्य मनः सत्त्वस्थमीश्वरम्।**
अविप्लुतमतिः सम्यक् स जातिस्मरतामियात्॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३ । १६१)

---

१. प्रायः इन दोनों ही श्लोकोंमें तथा अन्यत्र भी इसी प्रकारके वचनोंमें एक ही प्रकारकी बात कही गयी है। जिस प्रकार अद्रोह, सद्भाव, सरलता आदिको जातिस्मरता (आध्यात्मिकता, कुण्डलिनी-जागरणादि) में सहायक माना है, उसी प्रकार अहंकार, [illegible]-द्वेष-द्रोहादिको आध्यात्मिकतामें बाधक भी मानना चाहिये और कल्याणकामीको उनसे सदा बचते रहनेकी भी चेष्टा करनी चाहिये।

म्रियात् । दृढतरवैराग्यनिमित्तभूतां सकलपूर्वजन्मस्मृतिं प्राप्नुयात् । मोक्षे च प्रवर्तते ।'

(सुबोधिनी, मिताक्षरा, अपरार्क, वीरमित्रोदय, बालभट्टी आदि-का सारांश)

और ये निश्चय ही सभी सत्य हैं। इन सभीके द्वारा आत्मशुद्धि ही इष्ट है। सांख्यदर्शन-योगदर्शनादिमें भी त्याग, तप, ज्ञान-विचारादिद्वारा जातिस्मरता प्राप्त होनेकी बात है[1]—

'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ।'

(योगदर्शन ३ । १८)

'संस्कारोंका साक्षात्कार होनेसे पूर्वजन्मकी स्मृति हो जाती है।'

'अपरिग्रहस्थैर्ये पूर्वजन्मकथन्तासम्बोधः ।'

(योग० २ । ३९)

'अपरिग्रह (संग्रहके अभाव) का भाव स्थिर होनेपर पूर्वजन्मके वृत्तान्तका ज्ञान हो जाता है।'

'पूर्वापरजातिस्मरणं भवेत् पूर्वापरजन्मज्ञानं भवति ।'

'पहले तथा आगेके भी जन्मोंका ज्ञान हो जाता है।'

(व्यासभाष्य, शंकरविवरण, वाचस्पति, भोज, विज्ञानभिक्षु, भावागणेश, नागेश, मणिप्रभा, चन्द्रिका, भास्वती आदिका सारांश ।)

(हरिवंश १ । २१ । १८)

श्रीमद्भागवतमें देवर्षि नारद, राजा नृग, असमञ्जस तथा गजेन्द्रादिको हरिभक्ति एवं योगसाधनादिसे जातिस्मरता बतलायी गयी है। यथा—

प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ।

(भागवत १ । ६ । २५)

हर्यर्चनानुभावेन यद् गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ।

(भागवत ८ । ४ । १२)

असमञ्जस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम् ।
जातिस्मरः पुरा सङ्गाद् योगी योगाद्विचालितः ॥

(भागवत ९ । ८ । १६)

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव !
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः ॥

(भागवत १० । ६४ । २५)

ब्रह्मपुराण (मोर संस्करण) पृ० १५१० में पुराणों पाठमात्रसे जातिस्मरता निर्दिष्ट है—

जातिस्मरत्वं विद्यां च पुत्रान् मेधां पशून् धृतिम् ।
धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं तु लभते नरः ॥

(ब्रह्मपुराण २४५ । ३२)

'(पुराणोंके पाठसे) मनुष्य पूर्वजन्मोंकी स्मृति, वि पुत्रों, मेधा, पशुधन, धर्ममें रुचि, धन, कामोपभोग मोक्षको भी पा लेता है।'

महाभारत, वनपर्व ८५ । १०३-४ में तीर्थोंके श्र पूर्वक माहात्म्य-श्रवण मात्रसे ही जातिस्मरता निर्दिष्ट है—

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थपुण्यं नरः शुचिः ॥
जातीः स स्मरते बह्वीर्नाकपृष्ठे च मोदते ।
मनसा तानि गच्छेत सर्वतीर्थसमीक्षया ॥

(वही, १

---

[1] १. सांख्यदर्शन २ । २ में भी 'विरक्तस्य तद् सिद्धेः ।' में यही बात कही गयी है। G. R. Ballantyn ने अनादिवासना (२ । ३) की सर्वाधिक विस्तृत व्याख्यामें लिखा है— 'Vāsanā is the resultant impression of all the past experiences. It is which inclines to rebirth.' इन्होंने इसमें विज्ञान, अनिरुद्ध, महादेवादि सबका सार ले लिया है। वैशेषिक एवं पूर्वमीमांसामें भी इसपर सुन्दर समीक्षा है। विस्तारभयसे नहीं लिखा गया।

पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ५२ । २१३ में पितृभक्तिसे जातिस्मरता निर्दिष्ट है—पितरोंका विधि एवं श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करनेसे भी जातिस्मरता प्राप्त होती है—

सर्वस्वेन कृतं श्राद्धं येन पुत्रेण धीमता ।
जातिस्मरत्वं प्राप्नोति पितृभक्तिफलं लभेत् ॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ५२ । २१३ मोर तथा वेङ्कटेश्वर एवं बंगवासी सं०; पूना संस्करणका ४७ वाँ अध्याय)

इसी खण्डके ६१ । ३२ श्लोकमें देव-कृपा तथा यमराजके वरदानसे एक चोरको जातिस्मरता प्राप्त होती है । इसी प्रकार महाभारत, अनुशासनपर्व ११७ । २७-२८ में एक शूद्रको जो अपने पापसे कीट बनता है तथा पुनः भगवान् व्यासके दर्शन और कृपाद्वारा महर्षि मैत्रेय बन जाता है, केवल एक बार ब्राह्मणपूजनद्वारा जातिस्मरता प्राप्त होनेका उल्लेख प्राप्त होता है—

माता च पूजिता वृद्धा ब्राह्मणश्चार्चितो मया ।
सकृज्जातिगुणोपेतः संगत्या गृहमागतः ॥

अतिथियोंके पूजनसे भी पूर्वजन्म एवं अगले जन्मोंकी स्मृति प्राप्त होनेकी बात पुराणोंमें आयी है—

अतिथिः पूजितो ब्रह्मंस्तेन मां नाजहात् स्मृतिः ।
कर्मणा पुनरेवाहं सुखभागाभिलक्षये ॥

(महा० १३ । ११७ । ३०)

यह कथा स्कन्दपुराण, कुमारिकाखण्ड अध्याय ४२-४३ में भी आयी है ।

उपर्युक्त यह अतिथि सर्वत्र वही ब्राह्मण ही है । भागवत १० । ६४ । २५ में ब्रह्मण्यतासे जातिस्मरता निर्दिष्ट है ।

इस तरह पुराणोंमें और भी बहुत-से धर्मोंद्वारा 'जातिस्मरता'का वर्णन है और ये सब धर्म एक ही धर्मके प्रमुख अङ्ग हैं । अतः विरोध नहीं है । विस्तारभयसे अन्य उदाहरण नहीं दिये गये हैं । गीता शाङ्करभाष्य १७ । २ के अनुसार ये लक्षण प्रायः 'जातिस्मर'में पीछे भी बने रहते हैं ।

(३)

जातिस्मर-व्रत

'वृद्धसूर्यारुणकर्मविपाक'में कई जातिस्मर-व्रतोंका उल्लेख है । मनु भी ४ । १४८ में 'तप'को जातिस्मरताका साधन मानते हैं । पर यह 'तप' भी व्रत ही है—यह बात 'कल्याण' वर्ष २९ अङ्क ८ 'तपस्याके इतिहास'में स्पष्ट है । उत्तरपर्व, अध्याय १३ में 'जातिस्मर' भद्र-व्रत उल्लेख है । युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा काल विस्मारक है, अतः जातिस्मरता कठिन है साधनसे प्राप्य है ? कृपया बतलायें ?'

जातिस्मरत्वं देवेश दुष्प्राप्यमिति मे
तदहं ज्ञातुमिच्छामि प्राप्यते केन कर्म

(

भगवान्ने कहा कि 'मार्गशीर्ष, फाल्गुन, भाद्रपद मासमें चार बार भद्र-व्रत करनेसे मनुष्य होता है । इसके उदाहरणमें संजयके स्वर्णष्ठीवी प्रसिद्ध है । कहते हैं कि द्वारकामें संजय नामक एक था । उसके नारद तथा पर्वत—ये दोनों ही थे । नारदजीकी कृपासे राजाको सुवर्णष्ठीवी पुत्र प्र उसका मल-मूत्र, खखार—सब सुवर्ण ही होता था

यस्य मूत्रं पुरीषं वा श्लेष्माणं क्षिपति क्षि
जातरूपं हि तत्सर्वं सुवर्णं भवति स्थिर

(भविष्यपुराण, उत्तरपर्व १३

जायते कनकं सर्वं प्रसादान्नारदस्य च

(भविष्यपुराण, उत्तरपर्व १३

उससे राजा यज्ञ-दान करता रहा । बातके फैल पर्वतके शापके कारण डाकुओंने लोभसे उस पुत्रको मार पुनः भद्र-व्रतके सहारे नारदजीने उसे छः मासमें पिताका शोक दूर कर दिया ।

संक्षिप्त विधि

पूर्वोक्त चार मासोंमें यह व्रत तीन वर्षतक करना है । प्रति मार्गशीर्षादिके २ से ५ तिथियोंतक चन्द्रमा आराध्य हैं । शशि, चन्द्र, शशाङ्क और इन्दु—नामसे पूजा करनी चाहिये । चन्दन, कर्पूर, दधि, दूर्वा, मोती, अगुरु आदिसे उनको अर्घ्य दे । चन्द्रवृद्धिके अ प्रतिदिन लवण, गुड, घृत और दूधकी वृद्धि भी मन्त्र इस प्रकार है—

गगनाङ्गणसद्दीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव ।
भा भासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते ॥

(भवि०,

'आकाशरूपी प्राङ्गणके देदीप्यमान दीप, क्षीरसागरके मन्थनसे प्रकट हुए तथा अपने प्रकाशसे दिशाओंके विस्तारको प्रकाशित करनेवाले भगवती रमाके छोटे भाई, आपको नमस्कार।'

तत्पश्चात् रात्रिमें मौन भोजन कर, चन्द्रस्मृतिपूर्वक शयन करे। द्वितीयाको लवणरहित हविष्य, तृतीयाको मुन्यन्न (नीवारादि), चतुर्थीको गोरस और पञ्चमीको कृशर (घीयुक्त खिचड़ी) खाये। चावलकी जगह सावाँका चावल ले। दूसरे दिन देवर्षि-पितृ-तर्पण करे। फिर ब्राह्मणोंको दान देकर विसर्जन करे। इससे धन, पुत्र, स्त्री आदि सम्पूर्ण सुखपूर्वक जातिस्मरता मिलती है और उसके द्वारा सदा कल्याणका आचरण होता है—

भद्राण्यवाप्य धनपुत्रकलत्रजानि
जातिस्मरो भवति भारत भद्रकर्ता।
(भविष्यपुराण, उत्तर० ४। १३। १००)

(४)

जातिस्मर-तीर्थ

ध्यान देनेपर जातिस्मरताके साधनोंमें तीर्थस्नान ही सर्वश्रेष्ठ दीखता है। यही बात पुराणों, स्मृतियों तथा वैयाकरणोंको भी इष्ट है—

शौचेन तपसैव च।···जातिः स्मरति पौर्विकीम्।
(मनु० ४। १४८; स्कन्दपुराण, काशी० ३८। ६९; ब्रह्मोत्तर० ३। ६। ९१, याज्ञ० ३ इत्यादि)

शौचेन—तीर्थस्नानादिभिः, जातिः—स्वपूर्वजन्माभिस्मरति—मेधातिथि धरणिधर, विश्वरूप, रामानन्दादि। जातिः स्मर्यतेऽत्र स्नानादिना—स्मृतिः।
(वाचस्पत्य कोश)

स्कान्द-सेतु-माहात्म्य एवं महाभारत, बनपर्व ८५। १०३—५ में श्रद्धापूर्वक मनसे भी तीर्थोंके गमन तथा तीर्थ-माहात्म्य-श्रवणसे भी 'जातिस्मरता' बतलायी गयी है—

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थपुण्यं नरः शुचिः॥
जातीः स स्मरते वह्नीर्नाकपृष्ठे च मोदते।
गम्यान्यपि च तीर्थानि कीर्तितान्यगमानि च॥
मनसा तानि गच्छेत सर्वतीर्थसमीक्षया।
(महाभारत, वन० ८५। १०३—५[1])

कई तीर्थों तथा सरोवरोंका नाम ही 'जातिस्मर-तीर्थ', 'जातिस्मर-हृद' आदि है। महाभारत, वनपर्व ८४। १२९ में आता है कि हरिहर-क्षेत्रके समीपवर्ती जातिस्मर-तीर्थमें स्नान करनेसे निस्संदेह जातिस्मरता प्राप्त हो जाती है—

जातिस्मरमुपस्पृश्य शुचिः प्रयतमानसः॥
जातिस्मरत्वमाप्नोति स्नात्वा तत्र न संशयः।
(महा० वन० ८४। १२८-२९, पद्मपुराण, स्वर्गखं० ३८। ४६)

इसी प्रकार कोकामुख, वाराह-क्षेत्र, सूकरक्षेत्र—सोरोमें भी संयम तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास तथा स्नानादि करनेसे जातिस्मरता निर्दिष्ट है—

कोकामुखमुपस्पृश्य ब्रह्मचारी यतव्रतः।
जातिस्मरत्वमाप्नोति दृष्टमेतत्पुरातनैः॥
(महाभारत वन० ८४। १५८; पद्म० स्वर्ग० ३८। ६८; पद्म० आदि १५८। ३८ पूना)

कृष्णवेणानदीके देवहृदमें भी स्नान करनेसे जातिस्मरता बतलायी गयी है[2]। इसका भी दूसरा नाम 'जातिस्मरहृद' या 'जातिस्मर-सरोवर' है।

ततो देवहृदेऽरण्ये कृष्णवेणाजलोद्भवे॥
जातिस्मरहृदे स्नात्वा भवेज्जातिस्मरो नरः।
(महाभा०, वनपर्व ८५। ३७-३८; पद्म०, स्वर्गखण्ड ३९। ३७)

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें इन्द्रप्रस्थस्थित कालिन्दी-माहात्म्यके १९९ से २२२ तकके २४ अध्यायोंमें (बंगवासी, वेंकटेश्वर तथा मोर संस्करण, पूनामें यह संख्या १९५ से २१९ समझनी चाहिये।) आये हुए सभी तीर्थ जातिस्मर-तीर्थ हैं। १९९ वें अध्यायमें आता है कि शतमखयाजी एक इन्द्र क्षीणपुण्य होकर हस्तिनापुरमें शिवशर्मा तथा गुणवतीके पुत्र विष्णुशर्मा ब्राह्मण हुए। वृद्धावस्थामें अपने पिता शिवशर्माके साथ विष्णुशर्मा भी भगवदाराधनके लिये

---

[1] सच्ची श्रद्धा ही इसमें हेतु है। श्रद्धापूर्वक माहात्म्यश्रवणमें सर्वाधिक श्रद्धा द्योतित होती है, यह स्पष्ट है।

कहा भी है—

तीर्थानां दर्शनं धन्यमवगाहं ततोऽधिकम्।
स्मरणं पुण्यकरं प्रोक्तं माहात्म्यं सर्वतोऽधिकम्॥
(वामनपुराण ३३। ४, स्कन्द० काशी०)

यच्छ्रुत्वा वै पतति न जनो मातृगर्भे कदाचित्।
(पद्म० ६। २१६। १०१)

[2] यह कोई कृष्णवेणा नदीके अन्तर्गत कुण्ड है।

इन्द्रप्रस्थ आये। वहाँ निगमबोधतीर्थके[3] प्रभावसे अपने पुराने यज्ञोंके यूपोंको देखकर उन्हें अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया—

अत्रागतः स्वविहितान् पूर्वजन्मनि यूपकान्।
विष्णुशर्मा समालोक्य सस्मार हरिसंगमम्॥

(पद्म० २०० । ५७ वेंकटेश्वर और मोर सं०, पूनामें १९६ । ५६ वाँ श्लोक)

जब उनके पिताको शङ्का हुई तो उन्होंने अपने पितासे कहा कि 'पिताजी! आप भी यहाँ स्नान करें तो आपको भी पूर्वजन्मकी स्मृति हो जायगी'—

निगमोद्बोधके तीर्थे स्नानमत्र पितः कुरु।
दुर्लभं प्राप्स्यसे ज्ञानं पूर्वजन्मस्मृतिप्रदम्॥
ममापि पूर्वजनुषः प्रवृत्तिं त्वं स्मरिष्यसि।
एतत्तीर्थजलस्पर्शात् तात सत्यं वदामि ते॥

(वही २०० । ८४-८५)

वे लोग ऐसी बात कर ही रहे थे कि तबतक एक सिंहके द्वारा पीछा किया जाता, भागता आता महाहिंसक भील दीख पड़ा। वह काला-कलूटा, बिडाल-नेत्र और हाथमें बर्छा लिये देखनेमें बड़ा ही भयानक था। उन्हें देख दोनों पिता-पुत्र डरकर वृक्षपर चढ़कर कृष्णस्मरण करने लगे। इतनेमें वह भील भी वृक्षपर चढ़ने लग गया। तबतक सिंहने उसे पकड़ लिया और उस भीलने भी भालेसे उसका वध कर डाला। इस तरह वे दोनों ही मर गये तथा उन्हें लेने विष्णुदूत आये और उन्हें तत्क्षण जातिस्मरता प्राप्त हो गयी—

स्मृतिर्नो जायते पूर्वकर्मणां वां प्रसादतः।

(वही २०० । १०८)

यह सब देखकर शिवशर्माको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने वृक्षसे उतरकर विधिपूर्वक उस निगमोद्बोध या निगम-बोधतीर्थमें अवगाहन किया और गङ्गादि सप्त नदियों तथा अयोध्यादि सप्त पुण्य पुरियोंको स्मरण करते हुए भगवान् नारायणका ध्यान किया। पुनः बाहर आकर सूर्यार्घ्य देकर उन्होंने भगवान् विष्णुकी सविधि षोडशोपचारसे पूजा की और विष्णुशर्मासे अपने पूर्वजन्मका हाल बतलाया—

जगाद संस्मरन् पूर्वजन्मस्वकर्माणि कृत्स्नशः।

(वही २०१ । १६)

ये पूर्वजन्ममें सुमति नामके वैश्य थे। इन शरभको कोई संतति न थी। देवलके उपदेश आराधनाद्वारा ये ही उनके पुत्र हुए।[4] दुर्वासाके कारण तीर्थराजमें मरनेपर भी उन्हें पुनर्जन्म लेना

इसी ग्रन्थके २०४वें अध्यायमें शरभके तथा वञ्चक यात्रियोंके खानेवाले 'विकट'नामक राक्षसको भी जल पीनेसे जातिस्मरता प्राप्त होनेका उल्लेख है—

मुखे चिक्षेप च तदा रजनीचरपुङ्गवः
क्षिप्तमात्रे जले तस्य पूर्वजन्मभवा स्मृतिः

(वही २०४

पुरानी दिल्लीके पूर्वमें इन्द्रप्रस्थ नाम होनेका एक कारण यह है कि यह जातिस्मर निगमोद्बोधतीर्थ ... यागस्थलपर रहा और वहीं यह पुरानी दिल्ली बनी थी

सुराचार्यस्य तत्रास्ति तीर्थं सर्वार्थसाधकम्
निगमोद्बोधकं जाता स्मृतिस्ते यज्जलाशनात्।

(वही २०४ ।

उस राक्षसने बतलाया था कि उसे उस दिव्य ... प्राप्ति भी अनायास नहीं हुई थी, बल्कि जन्मान्तरमें ... स्त्रीद्वारा प्रेरित होकर एक वैष्णवको भोजन कराया जाना इस सौभाग्यका हेतु बना—

कृतं पुण्यमिदं वैश्य नोदितेन मया स्त्रिया।
पूर्वजन्मनि येनेदं प्रापितं तीर्थवारि मे॥

(वही २०४ । ११

उस जलके प्रभावसे वे शरभके शत्रु तथा शिवि... वाहक तो मरकर कुबेरके लोक गये और शरभकी प्रेरणा... विकट राक्षस उन्हें पुनः इन्द्रप्रस्थमें निगमोद्बोधतीर्थमें आया। वहाँ वे दोनों मित्रभावसे रहकर स्नान करने लगे... पिता (शरभ) की ओर अस्वस्थताका समाचार पा... शिवशर्मा (पूर्वजन्मके सुमति) भी उनकी सेवामें ...

३. यह तीर्थ पुरानी दिल्ली ६ में यमुनातटपर है। यहीं समीपमें 'धर्मसंघ महाविद्यालय' भी है।

४. यही दिलीपका चरित्र है। कालिदासने इसके ही आधार रघुवंशकी रचना की थी।

५. ऐसे ही कारणोंसे श्रेष्ठ तीर्थोंमें भी मरनेपर प्राणीको कभी पुनर्जन्म लेना पड़ता है—

मरणं प्राप्तवान् कूले गङ्गाया मुनिसेविते।
मुनेर्दुर्वाससः शापाज्जातोऽद्य वैष्णवे कुले।

(वही २०५ । ४४)

दत्त्वा स्वकीयसारूप्यमारोप्य गरुडं तदा ।
पितरं मम ब्रह्माद्यैर्वृतो वैकुण्ठमारुहत् ॥

(वही २०४ । १३६, ३९)

यह सब आश्चर्य देखकर शिवशर्मा (पूर्वजन्मके सुमति) मोक्षकी इच्छासे उस राक्षसके साथ वहीं निवास करने ; गये । एक बार उस राक्षसने कीचड़में फँसी हुई गायको रकर उसे निकालनेके लिये ज्यों ही उसमें प्रवेश या कि उसे एक जलहस्तीने पकड़ लिया और पेटमें पानी भर नेसे राक्षस मर गया और देवतारूपमें परिणत हो गया; ोंकि उसकी यही अभिलाषा थी ।

इसी प्रकार इसके २०८वें अध्यायके ५७-५८ वें ोकोंमें विमल नामक ब्राह्मणके द्वारा इन्द्रप्रस्थ-सीमान्तर्गत पुनातटवर्ती द्वारकातीर्थके जलके छींटोंसे सिञ्चन करनेसे ाशाचिनियोंको जन्मान्तरका ज्ञान होता है—

तास्तज्जलाभिमर्शात्तु सर्वेषां जन्मकर्मणाम् ।
संस्मृत्य तत्यजुश्चैव राक्षसं देहमुल्बणम् ॥

(वही २०८ । ५८)

इसी उत्तरखण्डके २११ । ४१ में एक सर्पको सोये हुए मदारीके पिटारेसे बाहर निकलने तथा यहींपर अन्य लोगोंद्वारा मार दिये जानेपर जन्मान्तर-स्मृति होती है । इसी खण्डके २१६ । ४५ श्लोकमें एक महिषको भी इसका जल पीनेसे जन्मान्तर-ज्ञान होनेकी सुन्दर कथा है । इसीके २२१वें अध्यायमें हेमाङ्गी नामकी रानीको केवल इसी तीर्थके अन्तर्गत प्रयाग नामक तीर्थके दर्शनमात्रसे जन्मान्तर-ज्ञान होनेका उल्लेख है—

(९३ । १३६)

भगवान्‌ने इसे कठिन एवं गूढ़ प्रश्न कहा—'**गुह्याद् गुह्यतरं महत् ।**' (१३५) पुनः उसे जन्मान्तरका 'दण्डपाणि नामक शबर' बतलाया । पूर्वजन्ममें एक वनमें सर्ववेदा नामक ब्राह्मणको भगवत्पूजार्थ पुष्प प्रदान कर वैकुण्ठसे लौटकर वह ब्राह्मण हुआ था । इसी प्रकार यहाँ अन्य भी बहुत-से जातिस्मर तीर्थोंका वर्णन है ।

(५)

विश्वकी सर्वप्रथम जातिस्मरा (पूर्वजन्मस्मर्त्री) देवी पार्वती

(पराम्बा भगवती पार्वतीका पूर्वजन्म)

वेदोंसे लेकर साधारण साहित्य तकके पन्ने-पन्ने भगवती पार्वतीके शुद्ध स्नेहके विवरणसे भरे पड़े हैं । वेदोंमें पार्वतीका अनेक रूपोंमें विशद वर्णन है । कालिकापुराण, देवीपुराण, देवीभागवत, महाभागवत आदि तथा मार्कण्डेय-पुराण, देवीमाहात्म्य आदिके वर्ण्य-विषय यही भगवती पार्वती हैं । इसी तरह स्कन्दपुराणका कौमारिकाखण्ड, माहेश्वरखण्ड, केदारखण्ड एवं बृहद्धर्मपुराण तथा पद्मपुराणमें भी पार्वतीके अद्भुत स्नेहका विस्तारसे वर्णन है । शिवपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, लिङ्गपुराण एवं ब्रह्मपुराणमें तो यह वर्णन बार-बार आया है । कालिदास भी इसीलिये कालिदास हैं । उन्होंने कुमारसम्भव आदिमें इसका रम्यतम चित्र खींचा है । यों वाल्मीकिरामायण तथा महाभारत-वनपर्वमें भी स्कन्दजन्म विस्तारसे निरूपित है ।

स्वामी तुलसीदासजीने मानसमें शिवविवाहका वर्णन तो
या ही, एक 'पार्वती-मङ्गल' नामकी स्वतन्त्र पुस्तक भी लिख
ली । तत्तद्ग्रन्थोंके विशिष्ट व्याख्याकारोंने भी कुछ
ा नहीं रक्खा है । इनके चरित्रका एक बड़ा भाग
तेस्मरतासे सम्बद्ध है ।

वेदों तथा कालिकापुराण, शिवपुराण, देवीपुराण,
ीभागवत, वृहद्धर्मपुराण, महाभागवतादि सभीके अनुसार
ावती दक्षपुत्री सती ही भगवान् शिवकी प्रथम पत्नी थीं[1] ।
्होंने दक्षके यज्ञमें भगवान् शिवका अपमान देखकर
ना शरीर अग्निमें भस्म कर दिया । तदनन्तर वे
वान् पर्वतके घरमें मेनकाके गर्भसे उत्पन्न हुईं ।
का व्रत ही था—

न्म कोटि लगि रगर हमारी । वरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ॥
(मानस १।८०।३)

अथावमानेन पितुः प्रयुक्ता
दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी ।
सती सती योगविसृष्टदेहा
तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे ॥
(कुमारसम्भव १।२१)

मने—पुनरुद्भवाय तां शैलवधूं मेनकां प्रपेदे (मल्लिनाथ)

ततः सा चण्डिका योगात् त्यक्तदेहा पुरा पितुः ।
ईहया भवितुं भूयः समैच्छद् गिरिदारतः ॥
(शिवपुराण, रुद्रसं० पार्वतीखं ६ । २, कालिकापुराण ४० । ५०)

'पूर्वजन्ममें योगबलसे अपने पिताके दिये हुए देह
त्याग करके उन कोपनी-स्वभावा देवीने पुनः हिमालयपर
(मेनका) के गर्भसे उत्पन्न होनेकी कामना की

'सतीं जो तजी दच्छमख देहा । जनमी जाइ हिमाचल गेहा ।
(मानस १।८२।१३

वे स्वयं बतलाती हैं—

अहं हिमाचलसुता साम्प्रतं नाम पार्वती ॥
पुरा दक्षसुता जाता सतीनामान्यजन्मनि ॥

× × ×

अत्र जन्मनि सम्प्राप्तः शिवोऽपि विधिवैभवात् ॥
(शिवपुराण, रुद्रसंहिता, पार्वतीखण्ड २६ । १५-१७
कालिकापुराण ४५ । ६१, ६२; स्कन्दपुराण, माहेश्वर
खण्ड २।४१।१६)

'इस जन्ममें मैं हिमाचलकी पुत्री हूँ, मुझे लोग
पार्वती कहते हैं । पूर्वजन्ममें मैं दक्षप्रजापतिकी कन्याके
रूपमें प्रकट हुई थी । उस समय मेरा नाम सती था ।
इस जन्ममें भी विधाताके विधानसे मुझे भगवान् शिव
(पतिरूपमें) प्राप्त हुए हैं ।'

इसे नारदादि सभी ज्ञानी ऋषि-मुनि भी भलीभाँति
जानते और कहते थे—

जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई । नामु सती सुंदर तनु पाई ॥
तहँहु सती संकरहि बिबाहीं । कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं ॥

× × ×

अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया ।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकर प्रिया ॥
(मानस ९७ । ३ छं० १)

इनकी प्रेम-परीक्षा भी बहुत हुई । स्वयं भगवान्
शंकरने बहुत-से वेष धारण कर कई बार परीक्षा की ।
सप्तर्षियोंने विष्णुभगवान्‌की महत्ताका प्रलोभन दिखाया ।
पर उन्होंने—

---

१. कालिकापुराण, बृहद्धर्मपुराण, त्रिपुरारहस्य आदिमें आता है कि पहले गौरी स्वयं दिव्यरूपमें उत्पन्न हुईं, वे ही दूसरे जन्ममें सती और तीसरे जन्ममें पार्वती बनीं ।

अथ गौरी महादेवं मृगयित्वा तु सर्वतः ।
वियुक्ता देवदेवेन दुःखेनात्यन्तभूयसा ॥
देहं विलोपितवती ⋯ ⋯ दक्षप्रजापतिर्देवीं तपसातोषयच्छिवाम् ।
तदा गौरी देहहीना गगनैकस्वरूपिणी ।
तुष्टा तं छन्दयामास वरेण वरवर्णिनी ।
स वव्रे तनया भूत्वा गृहे मे वस शंकरि ।
इति दत्त्वा समुत्पन्ना ⋯ ⋯ ⋯ ⋯ ⋯ ⋯ ॥
दाक्षायणीं शिवाय तां ददौ दक्षः प्रजापतिः ॥
(कालिका०, बृहद्धर्म०, त्रिपुरारहस्यमाहात्म्य० २३ । ७–१२)

२. इसीलिये पीछे 'सती' शब्द पतिव्रतामें रूढ़ हो गया । अर्थात् जिसका जन्म-जन्मान्तक प्रेम एवं साथ बना रहे और प्रेमद्वारा पतिका अनुगमन करनेवालीको आज भी 'सती' कहा जाता है ।

र मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ॥

(मानस १ । ८०)

कर सबको निरुत्तर कर दिया और अपनेको
के रूपमें परिणत कर डाला,' जो अबतक
वं कनिष्ठिकाधिष्ठताको ही संकेत करता रहा।

(६)

न् आद्यशंकराचार्य तथा वाचस्पति दृष्टिमें जातिस्मरताका स्वरूप

मरता'की विभिन्न परिभाषाओंपर अलग विचार
गया है। यहाँ इस सम्बन्धमें अद्वैत
यन्त विरक्त आचार्योंकी सूक्ष्म समीक्षा प्रस्तुत
ान् शंकराचार्यने गीताभाष्य (७ । १७)
ादिके भाष्यमें कई जगहोंपर अति उच्चभावयुक्त
ी है। उन्होंने ब्रह्मसूत्र (३ । ३ । ३२) पर
करते हुए जो कुछ लिखा है, उसका भाव यह है—

न्तरतमा नामके ऋषि विष्णु भगवान्‌के
लि एवं द्वापरकी संधिमें कृष्णद्वैपायन वेदव्यास
प्रकार ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ राजा निमिके शापसे
उर्वशीके पुत्ररूपमें घड़ेसे पुनः प्रकट हुए।
त्कुमार स्वयं ही शिवको वरदान देकर उनके
न बने। इसी प्रकार उन-उन स्मृति-पुराणोंमें
देकी अनेक जन्मोंमें देहादि ग्रहणकी कथाएँ
ये सभी वेद-वेदान्तमें निपुण थे। फिर इनका
होना ब्रह्मविद्याकी दुर्बलता सिद्ध करता है।
र है कि वास्तवमें ये लोग अधिकारी पुरुष थे।
ान् सूर्य सृष्टिके अन्तमें उदयास्तसे मुक्त होकर
नुभव करेंगे' यह (छान्दोग्य ३ । ११ । १)

सभी कर्मोंका दाह कर देती है—'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि
भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ॥' (गीता ४ । ३७) वामदेवने भी
ज्ञान होनेपर अनेक जन्मोंका स्मरण करते हुए मोक्ष पाया
था—**'तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं**
सूर्यश्च ।' (बृहदा० १ । ४ । १०)।"

जातिस्मरता भी अनेक श्रेष्ठ सत्क्रियाओंका फल है
पर उसका भी परम सदुपयोग या लाभ यही है कि व
जीव अपने सभी अच्छे-बुरे लंबे कालतकके कर्मोंके अनुभ
स्मरणस्वरूप—बुरे कार्यसे तो निरन्तर बचे और भले का
एवं आध्यात्मिकतामें विशेष तल्लीन रहे और मोक्षकी ओ
सर्वात्मना अग्रसर होकर, उसे प्राप्त भी कर ले। इसीलिये पुराणों
के पाठादिसे भी शिवपुराणादिमें जातिस्मरता सुलभ होनेकी
बात भी कही गयी है और तद्वत् ज्ञान तो सभीको हो जात
है। यह बात प्रत्येक विचारशीलको स्वीकार करनी पड़ेगी
जातिस्मर व्यक्तियोंमें बाल्यकालसे ही स्वाभाविक गाम्भी
एवं दार्शनिकता दृष्ट होती है। पूर्वस्वभाव भी रहता है
यह शंकराचार्य, विज्ञानयोगी आदि (गीता १७ । २)
कहते हैं। वे हल्के-फुल्के साहित्य, दृश्य, सिनेमा, गंदी
रोचक तामसी कहानी आदि नहीं पढ़ते। भगवच्चरित्र-दर्शन
शब्दशक्ति, वेदान्तादि एवं वैराग्यपूर्वक ईश्वरभजन ए
सत्सङ्गमें ही प्रवृत्त रहते हैं। बाल्यकालसे ही सरलत
साधुता उनका स्वाभाविक गुण होता है।[२] अन्यथा 'हरिस्मृति

---

१. इसका उदाहरण हरिवंश (१ । २१-२७) अध्यायों
ध्यानसे देखना चाहिये।

२. परम सरलताको ही योगशास्त्रोंमें कुण्डलिनी-जाग
कहा गया है। कुटिलता तद्विपरीत वस्तु है। कूटनीति, सांसारिक
आदि जातिस्मरता आदिके बाधक हैं। भगवान् भी कहते हैं—
'निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा

(मानस ५ । ४३ । ..

...दि के बिना जातिस्मरतासे कोई लाभ नहीं है । अतः ...स्मृति' ही सार है । जातिस्मृति तो एक उसकी साधक— ...यक वस्तुमात्र है । यदि यह नहीं है तो वास्तवमें ...तिस्मृति ही व्यर्थ है । अतः जातिस्मृति हो या न हो, सब चिन्ता छोड़कर भगवान्‌का भजन ही करना चाहिये । अन्यथा केवल जातिस्मरताकी प्राप्ति तथा उसके अभिमानमें तो जानेवाला समय व्यर्थ ही नहीं, पातक और हानिकारक भी हो सकता है ।

हिंदू-धर्म और पुनर्जन्म-सिद्धान्त

(लेखक—श्रीरामनाथजी सुमन)

पुनर्जन्म हिंदू मस्तिष्कका आश्चर्यजनक आविष्कार है । ...ा इसके संसारकी अनेक विषमताओंका कहीं कोई ...धान सम्भव नहीं है । हम देखते हैं कि एक मनुष्य ...र्म करते हुए भी कष्ट पा रहा है, दूसरा नीची कर्म- ...पर रहकर भी सुखोपभोग कर रहा है; एक ही घरमें ... ही माता-पिताकी समान स्थितिमें उत्पन्न होनेवाली ...नें एक-दूसरेसे बहुत भिन्न होती हैं । कोई धनवान् कोई गरीब है, कोई बिना श्रम किये एक धनवान्‌के घर होनेके कारण सब ऐहिक सुख पा रहा है । यह सब ... है ? क्या कोई ईश्वर नहीं है ? सृष्टि किसी नियमसे ...त नहीं है ? या ईश्वर है भी तो वह बिल्कुल ...च्छाचारी है ? या फिर सब कुछ एक अन्ध-नियतिका ... है ? तब क्या मनुष्य बिल्कुल कठपुतली है और वह ...नेको उच्चस्तरपर नहीं ले जा सकता ?

अनात्मवादियों, प्रकृतिवादियों या विकासवादियोंके पास ...का कोई उत्तर नहीं । केवल हिंदू ऋषियों और ...निकोंने कर्म-सिद्धान्तकी खोज करके मानवजीवनमें ...म सम्भावनाओंका उद्‌घाटन किया है । हाइरोक्लीजने स्वीकार करते हुए कहा है—'विदाउट दि डाक्ट्रिन आफ़ ...साईकोसिस, इट इज नाट पासिबल टु जस्टीफाई दि आफ़ गाड ।' अर्थात् 'पुनर्जन्म-सिद्धान्त माने बिना ...के विधानको न्यायोचित मानना सम्भव नहीं है ।'

यदि हमारे भाग्यके निर्माणमें हमारा कोई हाथ नहीं ...र सब कुछ नियतिपर निर्भर है तो भलाई-बुराईकी सब ...ाएँ निरर्थक हैं; तब आशाका कोई अर्थ नहीं रह जाता सम्पूर्ण सुखका मूल आशा ही है । हिंदूधर्मने पुनर्जन्म कर्म-सिद्धान्तकी स्थापना करके न केवल हमारे बीच जानेवाली व्यापक विषमताओंकी एक न्याययुक्त ...या हमारे सामने प्रस्तुत की है, वरं आगे हमारे विकास और उन्नतिका मार्ग भी खुला रक्खा है । आजकी स्थिति पूर्वजन्मोंके कर्मोंका परिणाम है; किंतु भावी स्थितिका निर्माण हमारे अपने कर्मोंपर निर्भर करता है । ज्यों ही हम पुनर्जन्मको स्वीकार कर लेते हैं, हमारे सम्पूर्ण सुख-दुःखका कारण हमें समझमें आ जाता है और हम अपने भविष्यके प्रति आश्वस्त हो सकते हैं ।

पुनर्जन्म-सिद्धान्त आस्तिकदर्शनका प्रमुख आधार है । इसका सम्बन्ध ईश्वर-सिद्धि, आत्माकी सत्ता और कर्म-विपाक या कर्म-फलसे है । ये तीनों मिलकर हिंदू-दर्शनका आधार बनते हैं । ये सिद्धान्त-त्रय हिंदूधर्मकी कायामें प्राणवत् व्याप्त हैं । वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण सर्वत्र इसका विवेचन और इसकी महिमा हम देखते हैं । समस्त आस्तिक दर्शन ईश्वरकी सत्ता स्वीकार करते हैं । नास्तिक दर्शन या तो ईश्वरके विषयमें मौन हैं या स्वयं अपनेको अस्वीकार करके नये-नये प्रश्न खड़ा कर देते हैं । जिनके लिये ईश्वर 'प्रत्यक्ष'का विषय नहीं है, उनके लिये भी वह 'अनुमान-प्रमाण'का विषय तो हो ही सकता है । उदयनाचार्यके अनुसार 'आकाशका ग्रहण किसी इन्द्रियसे न होनेपर भी शब्दके उत्पन्न होनेसे उसकी सत्ता स्वीकार करनी पड़ती है । बिना अवकाशके शब्द उत्पन्न नहीं हो सकता ।' इसी तरह ईश्वर प्रत्यक्षका विषय न होकर अनुमान-द्वारा तो सिद्ध है ही—योगिजन तो उसका प्रत्यक्ष दर्शन भी करते हैं । ब्रह्माण्डकी समस्त लीला बिना किसी चेतन कर्ताके सम्भव नहीं । प्रकृतिवादियोंके पास भी इसका कोई उत्तर नहीं है कि ब्रह्माण्ड यदि प्रकृतिसे बना तो प्रकृति परमाणुओंको एकत्र या संयुक्त करके नया-नया नमस्कार या सृष्टि कौन करता है ? इतनी विराट् प्रकृति है; उसमें अनन्त ग्रह-नक्षत्र प्रतिक्षण अपनी-अपनी कक्षामें, नियमितताके साथ गतिमान् हैं, ये टकराते क्यों नहीं ? इनमें एक अपार

भी अनियमितता क्यों नहीं आती ? स्वभावतः इनका नियामक कोई होना ही चाहिये । वही इस महाप्रकृतिका धारक, नियामक महत्तत्त्व है । जर्मन दार्शनिक काण्टने ठीक ही लिखा है—'अनन्त चमत्कारोंसे शोभित तारिका-खचित द्युलोक और मनुष्यके अन्तःकरणमें सदसद्विवेक-शक्तिके भाव मुझे हठात् विश्वास दिलाते हैं कि इस दृश्यमान जगत्से परे भी कोई अपूर्व शक्ति अवश्य है ।'

ईश्वरके बाद आत्माकी सत्ता और नित्यताकी बात आती है । हमारे प्रमुख शास्त्रोंमें इसका बड़ा विस्तृत विवेचन मिलता है । सांख्यदर्शन कहता है—

संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात् ।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात्कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥
तस्माच्च विपर्यासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य ।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च ॥

(सांख्यकारिका १८-१९)

जड प्रकृतिमें विकारसे जितने भी पदार्थ होते हैं, सब भोग्य हैं; अतः इनका भोक्ता भी होना ही चाहिये । हमारा शरीर भी प्रकृतिके विकार या संयोगसे उत्पन्न है, इसलिये उसका भी कोई चेतन उपभोक्ता हो । जड तो जडका उपभोग कर नहीं सकता । इसलिये चेतन जीवात्मा ही शरीरका भोक्ता है । प्रत्येक कर्मके लिये कर्त्ता, साधन तथा विषयकी आवश्यकता पड़ती है । साधन हो, किंतु कर्त्ता न हो तो कर्मकी सिद्धि भी नहीं हो सकती । हम यह भी देखते हैं कि मनुष्यका शरीर यन्त्रवत् नहीं चलता; इस मार्गपर चलना चाहिये, इसपर नहीं, यह विवेक भी उसमें है । यह विवेक करनेवाला कौन है ? मनको कौन प्रेरित करता है ? जो चला गया है, उसकी याद आकर सुख-दुःखका अनुभव या भोग कौन करता है ? कभी जिसका सुख लूटा था, वह तो आज है नहीं; फिर भी रसकी, उसके रूपकी अनुभूति होती है । क्यों होती है यह अनुभूति ! बीतेको कौन भोगता है ? वही जो बीते कालमें भी था और आज भी है । वही है—आत्मा । उसके किये कर्म नष्ट नहीं होते; बादमें भी फल देते रहते हैं । सब कर्मोंका फल तुरंत ही नहीं मिल जाता; इस जन्ममें जो कर्म किये हैं, उनका भोग यहीं समाप्त नहीं हो जाता; इसीलिये शेष कर्म-फल-भोगके लिये दूसरा जन्म होता है । न्यायदर्शन भी कहता है—'आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः ।' (४ । १ । १०) 'आत्मा यदि शरीरके बाद ही रहता है, नित्य है, तो पूर्व-कर्मोंके भोगके लिये पुनर्जन्म मानना ही होगा ।'

जब मनुष्य शरीर-त्याग करता है, तब इस जन्मकी विद्या, कर्म और पूर्वप्रज्ञा या वासना आत्माके साथ जाती है । इसी ज्ञान और कर्मके अनुसार नवीन जन्म होता है । महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।
सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।

(योगदर्शन० २ । १२-१३)

यदि कर्म अच्छे हैं तो उत्तम जाति, आयु और भोग प्राप्त होते हैं । समान साधन और परिस्थितिके बीच भी एक लड़का विद्याके क्षेत्रमें उच्च स्थान प्राप्त करता है, जब दूसरा सामान्य ही रह जाता है । यह विषमता क्यों है ? यही है कि सब प्रकारकी विषमताओंका कारण पूर्वकर्म ही है । किसीमें बचपनसे ही वैराग्यकी ओर प्रवृत्ति देखी जाती है; जब दूसरे लोग सिर हिलने तक संसारके भोगोंसे चिपके रहते हैं । इसका कारण भी यही है कि पहले प्रकारके लोग पूर्वजन्ममें वैराग्योन्मुख रहे होंगे, जब दूसरे प्रकारके लोगोंमें भोगकी वासना मृत्युपर्यन्त रही होगी । दोनों अपनी पूर्वोपलब्धियोंके संस्कार इस जन्ममें भी ले आये ।

मीमांसादर्शनमें भी पुनर्जन्मका समर्थन मिलता है । भेद ब्यौरेकी बातोंमें है । वे जीवात्माकी जगह 'आतिवाहिक' अर्थात् एक शरीरसे दूसरे शरीर तक ले जानेवाले देहाभिमानी देवताकी बात कहते हैं । सांख्य आत्माको सर्वव्यापक मानते हुए भी एक दूसरे 'लिङ्ग' शरीरकी सत्ता मानता है । यह 'लिङ्ग' या सूक्ष्म शरीर ही एक देह छोड़ दूसरी ग्रहण करता है । न्याय तथा वैशेषिक भी आत्माको सर्वव्यापी मानते हैं और अणुस्वरूप मनद्वारा एक शरीरसे दूसरा शरीर प्राप्त करनेकी बात कहते हैं । योग आत्मा, इन्द्रियाँ और अहंकार तीनोंको व्यापक मानता है और अहंकारादिसे युक्त वासनाओंके कारण ही फलोपभोगकी बात करता है । तात्पर्य यह है कि शास्त्रकारोंमें विचार-भेद तो है, किंतु पुनर्जन्मको किसी-न-किसी रूपमें सब मानते हैं ।

गीता समस्त भारतीय ज्ञानराशिका आकर है । उसमें हिंदूधर्म-सिद्धान्तकी समस्त विचारधाराओंका आकलन हुआ है । उसमें पुनर्जन्मके विषयमें बार-बार उल्लेख मिलता है । देखिये श्रीकृष्ण कहते हैं—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥
देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
(२ । १२-१३)

—'न ऐसा है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू नहीं था अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि हम सब आगे नहीं रहेंगे। जैसे इस देहमें जीवात्माकी कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है, वैसे ही उसे देहान्तरके बाद दूसरा शरीर भी प्राप्त होता है। तत्त्वज्ञ पुरुष इससे भ्रमित नहीं होते।'

'न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।'
(गीता २ । २०)

'शरीरके नाश होनेपर भी आत्माका नाश नहीं होता।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(गीता २ । २२

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्र ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर नयी देह धरता है।' इसी प्रकार गीताके अध्याय ४, ५, ६, ८, ९, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८ आदिमें भी पुनर्जन्म-परलोक आदिके समर्थक बहुतसे श्लोक हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदसे पुराणतक हिंदू-धर्ममें सर्वत्र पुनर्जन्मका ग्रहण एवं विवेचन है। वस्तुतः कर्म-सिद्धान्त, क्रियमाण कर्मोंके विषयमें जीवात्माका स्वातन्त्र्य तथा पुनर्जन्मके मूलाधार हैं; जिनपर हिंदूधर्म खड़ा है।*

मरणोत्तर जीवनपर पाश्चात्य मनीषी

(लेखक—ब्रह्मचारी श्रीअमिताभजी)

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम् ।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥
(महाभारत)

सभी विचारोत्तेजक धर्मशास्त्रोंमें वेद तथा उपनिषद् मरणोत्तर जीवनकी स्थितिका निरूपण करनेमें तर्कसंगत तथा ठोस आधार प्रस्तुत करते हैं। इन्हीं शास्त्रोंके विचारोंका सहारा अन्यान्य देशोंद्वारा लिया गया है। इसमें संदेह नहीं कि अति प्राचीनकालसे विदेशोंके लोग इनपर विचार करते रहे हैं। प्रस्तुत लेखमें हम इस विषयसे सम्बन्धित पाश्चात्य जगत्‌के दार्शनिकों, लेखकों तथा वैज्ञानिकोंकी सम्मतियोंका अनुशीलन करेंगे।

दार्शनिक

प्राचीन यूनानके महान् दार्शनिक तथा वैज्ञानिक पाइथागोरस (Pythagoras) का विचार था कि 'साधुताका पालन करनेपर आत्माका जन्म उच्चत्तर लोकोंमें होता है और दुष्कृत आत्माएँ निम्न पशु आदि योनिमें जाती हैं। यदि मनुष्य अनियन्त्रित इन्द्रियोंकी दासतासे मुक्ति पा सके तो वह बुद्धिमान् बन जाता है और जन्म-मृत्युके चक्रसे छुटकारा पा जाता है।' सुकरात (Socrates) के अनुसार 'मृत्यु स्वप्नविहीन निद्रा है और पुनर्जन्मका द्वार है।' प्लेटो (Plato) भी यही मानते थे और उनका विचार था कि 'कामना ही पुनर्जन्मका कारण है। मनुष्य अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण कर सकता है तथा यदि उसे इस जीवनके बन्धनको काट डालना हो तो उसे सब प्रकारके भोग-विलासोंको तिलाञ्जलि देनी होगी।' प्लूटार्क तथा सालोमन (Plutark and Solomon) भी पुनर्जन्मपर आस्था रखते थे। महान् ऋषि प्लाटिनस (Plotinus) के भी इस विषयमें वही विचार थे, जो पाइथागोरसके थे। उनका कथन था 'नैतिक गुणोंसे जीवनका यापन न करनेपर मनुष्य मृत्युके उपरान्त वृक्षतक बन सकता है। जिसने इस जन्ममें अपनी माँकी हत्या की है, वह अगले जीवनमें स्त्री बनेगा और अपने पुत्रद्वारा मारा जायगा।' दार्शनिक महात्मा आर्फ्यूस

* गीताके बहुतसे उदाहरण इस लेखमें दिये गये थे, परंतु अन्यान्य लेखोंमें वे श्लोक कई जगह आ गये हैं और स्थानाभाव है। इसलिये वे श्लोक इस लेखमें नहीं दिये गये हैं। लेखक महोदय क्षमा करें। —सम्पादक

(Orpheus) के मतानुसार 'पापमय जीवन बितानेपर आत्मा घोर नरकमें जाता है और पुनर्जन्मके बाद उसे मनुष्य, पशु तथा कीटके शरीरोंमें रहना पड़ता है। पवित्र जीवन बितानेपर आत्मा जन्म तथा मृत्युके चक्रसे मुक्ति पा जाता है और स्वर्गको जाता है।' कैथारिस्ट (Catharist) दार्शनिक सभी प्रकारके वैवाहिक सम्बन्धोंसे घृणा करते थे। इनके अनुसार 'दुष्ट आत्माको पशुओं और यहाँतक कि पत्थर-जैसे जड पदार्थकी योनि धारण करनी पड़ सकती है।' स्पिनोजा, हर्टली तथा प्रीस्टले (Spinoza, Hertly and Priestley) 'आत्माके अमरत्वपर विश्वास करते थे।' रूसो (Rousseau) की नित्य नरकपर आस्था नहीं थी और उसने लिखा कि 'वास्तविक जीवनका प्रारम्भ मृत्युके बाद होता है।' क्रिस्टन वुल्फे (Cristian Walfe) के कथनानुसार 'आत्मा सूक्ष्म होता है और हमारे गुप्त कर्म ही हमारे वर्तमान जीवनके कारण हैं।' लेसिंग (Leceing) के विचार उपनिषदोंमें वर्णित विचारोंसे मिलते-जुलते हैं। उसका कथन है कि 'प्रत्येक आत्मा पूर्णताके लिये सचेष्ट है और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये इस धरतीपर उसे अनेक जन्म लेने पड़ते हैं।' कान्ट (Kant) के विचार भी इसी प्रकारके थे। उनके अनुसार 'प्रत्येक आत्मा मूलतः शाश्वत है।' फिकटे (Fichte) के मतके अनुसार 'मृत्यु आत्माओंके जीवनप्रवाहमें एक विश्राम-स्थितिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ईश्वर सनातन है और एक है और वह प्रत्येक आत्मामें निवास करता है।' शेलिंग (Schelling) ने जीवन तथा मृत्युके मार्गपर आत्माकी यात्राकी एक कहानी लिखी है। वे पुनर्जन्ममें विश्वास करते थे और उनका विचार था कि 'उच्च आत्मा उच्च नक्षत्रों (तारों) में जन्म लेते हैं।' नोवालिस (Novalis) की दृष्टिमें 'जीवन है कामना और कर्म हैं उसके परिणाम। जीवन और मृत्यु एक ही वस्तु हैं और इनमेंसे होता हुआ (गुजरता हुआ) आत्मा अमरताको प्राप्त करता है।' स्लायर मेकर (Slier Maker) का भी यही दृष्टिकोण था और उसने कहा कि 'आत्मध्यानकी सहायतासे मनुष्य जन्म तथा मृत्युके चक्रसे छुटकारा पा जाता है और ईश्वरके साथ एकाकार हो जाता है।' हेगल (Hegal) के मतानुसार 'सभी आत्मा पूर्णताकी ओर बढ़ रहे हैं तथा जीवन और मृत्यु इनकी अवस्थाएँ हैं।' महान् दार्शनिक वैज्ञानिक लीबनिज (Leil
लिखा—'प्रत्येक जीवित वस्तु अविनाशी है
उसके ह्रास तथा अन्तरावर्तन (invalution
मृत्यु है और उसकी वृद्धि तथा विकासका
है। मरनेवाला प्राणी अपने शरीर-यन्त्रका
अंश ले लेता है और विकासकी उस तन्द्र-अवस
उद्भवस्थितिमें लौट जाता है, जिसमें जन्मके
पशुओं तथा मनुष्योंका उनके वर्तमान जीवनसे
अस्तित्व था और इस जीवनके बाद भी कोई अस्ति
इस बातको स्वीकार करना ही होगा।' बर्कले,
डाक्टर मैकटेगार्ट, प्राध्यापक ह्विस्लप और इंगे (B
Bosanquet, Dr. Mactaggart, Prof.
and Inge) आत्माकी अमरतापर विश्वास करते

विचारशील लेखक

पाश्चात्य दार्शनिक कवियोंमें एमर्सन,
वर्ड्सवर्थ, मैथ्यू, आरनोल्ड, शेली तथा
(Emerson, Dryden, Wordsworth, M
Arnold, Shelley and Browni
नहीं मानते थे कि 'मृत्युका नाम विना
ड्राइडनने लिखा—

'Death has no power the immorta
t
That, when its present body
t
Seeks a fresh home, and with unle
Inspires another frame with life

'इस अमर आत्माका वध करनेकी सामर्थ्य
नहीं है। जब मृत्यु आत्माके वर्तमान शरीरका व
चलती है तो आत्मा अपनी अक्षुण्ण शक्तिसे नया
खोज निकालता है और जो दूसरे शरीरको जीव
प्रकाशसे भर देता है।'

राल्फ वाल्डो एमर्सन (Ralph
Emerson) ने अपनी कवितामें कहा—

'If the red slayer thinks he slays,
Or if the slain thinks he is slain,
They know not well the subtle
I keep and pass and turn again.'

'यदि मृत्यु यह सोचे कि यह आत्माका विनाश कर है और आत्मा यह सोचे कि वह नष्ट किया जा रहा है, तो ों ही उस सूक्ष्म तत्त्वज्ञानसे अनभिज्ञ हैं, जिसके अनुसार मा स्थित रहता है और आवागमनके चक्रमें घूमता ता है।'

वाल्ट विटमैन (Walt Whitman) ने कहा था—स्संदेह मैं इसके पहले १० हजार बार मर चुका हूँ।' आर्थर कानन डायल (Sir Arthur Conan Doyle) मतानुसार 'साक्षियोंने बतलाया कि लोग, जिन्हें उन्होंने होनेकी क्षमतावाले माध्यम नाम दिया, वे अद्भुत ता रखते हैं।'

वैज्ञानिक

मरणोत्तर जीवनके सम्बन्धमें पाश्चात्य वैज्ञानिक अपने से सोचते थे। सर विलियम क्रुक्स (Sir William rookes), गर्णे (Gurney), डाक्टर मायर्ज़ (Dr. yers), फ्रेंक पोडमोर(Frank Podmore),अलफ्रेड लेस (Alfred Wallace), प्राध्यापक आक्साकफ Prof, Aksakof) और रिचर्ड हजसन (Richard odgeson) की कृतियाँ बहुत रोचक थीं और वे ग इस क्षेत्रमें अपनी प्रामाणिकताके लिये प्रसिद्ध थे। क्षेत्रमें इंगलैंडके बरमिंघम विश्वविद्यालयके प्राचार्य आलीवर लाज (Sir Oliver Lodge) की भी हुत ख्याति थी। इन लोगोंने सन् १८८५में वैज्ञानिक द्धतिसे प्लैनचिट (Planchet) की सहायतासे तत्सम्बन्धी त्यका शोध करनेके लिये इंगलैंडमें एस० पी० र० नामक मानसिक शोध-संस्थान (Society for e Psychical Research) की स्थापना की। उस स्थाकी एक शाखा अमेरिकामें भी है। इंगलैंडके ध्यापक मायर्ज़ तथा अमेरिकाके डाक्टर हजसनने अपने त्रोंको मृत्युके उपरान्त पुनः उनके पास आनेका वचन या था। मायर्ज़ने अपनी मृत्युके एक महीने बाद और जसनने अपने मरनेके एक सप्ताह पश्चात् इस वचनको रा कर दिखाया। विलियम जेम्स (William James) भी यही किया। सन् १९१३ के सितम्बर महीनेमें ब्रिटिश एसोसियेशनके अध्यक्षीय भाषणमें सर लॉजने हा—'शारीरिक मरणके बाद भी व्यक्तित्व विद्यमान रहता है।' महान् अंग्रेज वैज्ञानिक अलफ्रेड वालेस (Alfred Walla ce) का कथन है कि 'प्रेततत्त्वको प्रमाणित करनेके लिये किसी और अधिक साक्षीकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि विज्ञानमें किसी भी मान्य तथ्यके समर्थनमें इससे अधिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।' डाक्टर हजसनने भी कहा 'आज जो कोई भी प्रेततत्त्वको अस्वीकार करता है, वह नास्तिक कहलानेका अधिकारी नहीं, वह अज्ञानी (मूर्ख) है।' फ्लामारियन, स्टेड तथा प्राध्यापक हिस्लप (Flammarion, Stead and Prof. Hyslop) इस बातसे सहमत थे कि 'विगत आत्माएँ हमसे सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं।' बी० वी० श्रेनेक नोटजिंग (B. V. Schrenck Notging) तथा सर क्रुक्स (Sir Crookes) ने छायाचित्र (फोटो) खींचनेके विशेष कैमरेकी सहायतासे मृत आत्माओंके चित्र खींचनेकी चेष्टा की और उसमें सफल भी हुए। श्रेनेकने अपनी पुस्तक 'फेनामीनन आफ मैटिरियलायजिंग' (Phenomenon of Materialising) और स्वामी अभेदानन्दने अपनी पुस्तक 'लाइफ बियोण्ड डेथ (Life beyond Death) में मृत आत्माओंके बहुतसे चित्र भी दिये हैं। स्वामी अभेदानन्दने अमेरिकामें ऐसी कितने ही मृत आत्माओंका आवाहन करनेवाली तिपाइयों (Planchet talles) का परीक्षण किया। वे इस विषयका असंदिग्ध रूपसे समर्थन भी करते थे। पाश्चात्य देशों और विशेषतया इंगलैंड, अमेरिका और जर्मनीमें ऐसी कई प्रेत-तत्त्व बैठकें आयोजित की जाती हैं। इन तिपाइयों (Planchet talles) पर जीवित व्यक्तियोंके माध्यमोंकी सहायतासे मृत आत्माओंको बुलाकर इन बैठकोंमें बातचीत की जाती है। ऐसे कई विद्वान् हैं जो नियमित रूपसे इन बैठकोंका संचालन करते हैं तथा घटनाओंको पत्रिकाओंमें प्रकाशित कराते हैं। उनके कथनानुसार 'भोगासक्त आत्मा मरनेके बाद बहुत कष्ट भोगते हैं।' वे यहाँतक अनुभव करनेमें अक्षम रहते हैं कि वे मृत हो चुके हैं। साधारणतया मरणोपरान्त वे निद्राच्छन्न अवस्थाको प्राप्त होते हैं; परंतु वे उसमें शान्तिसे सो नहीं सकते। भौतिक आसक्तियाँ उनके पूर्वसंस्कार उन्हें संसारमें अपने चाहनेवालोंसे मिलनेके लिये—आनेके लिये बाध्य करते हैं। परंतु उन्हें कोई भी निमन्त्रित करनेवाला दिखायी नहीं देता तो बहुत दुखी हो जाते हैं। जिस लोकमें उन्हें सामान्यतः

रहना पड़ता है, वह उनके लिये एक अज्ञात देशके समान होता है। आत्माका आवाहन करनेवाली ऐसी एक गोष्ठीमें डाक्टर मायर मरनेके बाद प्रकट हुए और अपनी स्थितिके विषयमें उन्होंने बताया कि उनके यह जाननेके पूर्व कि वे मर चुके हैं, उन्हें अपना रास्ता टटोलना पड़ा था। उन्हें यह लगा कि वे किसी अपरिचित नगरमें रास्ता भूल गये हैं। और यहाँतक कि जब उन्होंने ऐसे लोगोंको वहाँ देखा, जिनके मर जानेकी उन्हें जानकारी थी तो भी वे यही मानते रहे कि यह केवल उनकी छाया (Visions) मात्र है।

निस्संदेह उच्च आत्माओंको कोई कष्ट नहीं होता और पवित्र जीवन बितानेके कारण प्रकाशकी सहायतासे वे अपना मार्ग खोज सकते हैं। निम्न आत्मा सदैव इस जगत्‌में माध्यमोंकी सहायतासे नीचे आनेके लिये प्रस्तुत रहते हैं और वे स्थूल आकृतिके रूपमें प्रकट हो सकते हैं। कई बार वे अपनी हीन कामनाओंकी पूर्तिके लिये माध्यमोंका दुरुपयोग भी करते हैं। काल-अवधिका उनका ज्ञान हमारे ज्ञानसे भिन्न होता है। हमारे लिये जो ५०० वर्ष हैं, उनके लिये वे ५ सेकेण्ड हो सकते हैं। उनके शरीरोंका आकार सूक्ष्म रहता है और पाश्चात्त्य विद्वानोंने उसे 'एक्टोप्लाज्म' (Ectoplasm) की संज्ञा दी है। एक शरीरका भार साधारणतया १-२ या ३-४ औंस रहता है और पाश्चात्त्य वैज्ञानिकोंने अत्यन्त सूक्ष्म तथा संवेदनशील फोटोग्राफीकी प्लेटोंकी सहायतासे उन शरीरोंके चित्र भी खींचे हैं।

पाश्चात्त्य देशोंमें मरणोत्तर जीवनके विषयमें अभी भी शोधकार्य चल रहे हैं और उनके इन कार्योंके परिणाम-स्वरूप नये तथ्य प्रकट हो रहे हैं। यह कहा जाता है कि भारतमें अंग्रेजीकालके एक प्रमुख प्रशासक वारेन हेस्टिंग्स (Warren Hastings) का आत्मा अभी भी कलकत्ता-स्थित अपने मकानमें आया करता है। ब्रिटिश संग्रहालयमें रात्रिके समय पहरा देनेवाले चौकीदार अभी भी संग्रहालयके कक्षोंमें कई आत्माओंको घूमते हुए देखते हैं। पेरिसके एक संग्रहालय-कक्षके चौकीदारोंका भी यही अनुभव है और उन्होंने बहुत संदेहजनक वातावरणमें घूमते हुए कई मृत राजाओं तथा रानियोंके आत्माओंको देखा है।

पाश्चात्त्य विज्ञान और मृत्यु

(लेखक—डॉ० श्रीभीखनलालजी आत्रेय, एम्० ए०, डी० लिट्०, अवकाशप्राप्त प्रोफेसर तथा अध्यक्ष दर्शन, मनोविज्ञान और भारतीय धर्म तथा दर्शन-विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

सन् १८८२ में इंगलैंडमें विद्वानोंकी एक समितिका निर्माण हुआ, जिसका नाम पड़ा 'ब्रिटिश सोसाइटी फार साइकिकल रिसर्च' अर्थात् 'ब्रिटेनकी आध्यात्मिक अनुसंधान करनेकी समिति'। इसमें केवल ब्रिटेनके ही विद्वानोंका सहयोग न था, बल्कि यूरोपके सभी प्रगतिशील देशोंके विद्वानों और वैज्ञानिकोंका सहयोग और सम्पर्क था। इस समितिने पिछले ८० वर्षोंमें वैज्ञानिक रीतिसे बहुत अनुसंधान किया और इस अनुसंधानके आधारपर दो विज्ञानोंको जन्म दिया, जिनके नाम हैं—'साइकिकल रिसर्च' (आध्यात्मिक अनुसंधान) और 'पैरासाइकोलौजी' (परा-मनोविद्या)। इन दोनों विद्याओंमें वैज्ञानिक रीतिसे मनुष्यका स्वरूप, उसकी अद्भुत शक्तियाँ, मृत्युका स्वरूप, मृत्यु-पश्चात् जीवन, परलोक, पुनर्जन्म आदि विषयोंकी गहन गवेषणा की गयी है। आज इन विषयोंपर अंग्रेजी और अन्य पाश्चात्त्य भाषाओंमें बहुत विशाल साहित्य छप चुका है [illegible] वैज्ञानिक प्रतिपादन और अनुमोदन होता है। इनमें अंग्रेजीमें प्रकाशित हुए कुछ ग्रन्थोंके नाम ये हैं—

(1) Carrington:—The Story of Psychic Science (आध्यात्मिक विज्ञानकी कहानी); Laboratory Investigation into Psychic Phenomena (प्रयोगशालाओंमें किये गये आध्यात्मिक अनुसंधान); The Psychic World (आध्यात्मिक जगत्)।

(2) Fodor, Naudor:—Encyclopaedia of Psychic Science (आध्यात्मिक विज्ञानका विश्वकोष)।

(3) Crookall:—Astral Projection (सूक्ष्मशरीरका बहिर्निष्कासन); Events on the thrashhold of Death (मृत्युके अवसरपर होनेवाली घटनाएँ); Supreme Adventure (महान् अनुभव—मृत्यु)।

(4) Stevenson:—Twenty cases suggesting Reincarnation (बीस ऐसी जीवन-[illegible] केत करती हैं)।

(5) Atreya, B. L.:—Introduction to rapsychology (परामनोविज्ञान—एक परिचय) ।

(6) Walker:—Reincarnation (पुनर्जन्म)

परामनोविद्या तथा आध्यात्मिक अनुसंधानके मुख्य कर्ष ये हैं—

मनुष्य इस भौतिक शरीरके अतिरिक्त और इसके द्वारा करनेवाला एक आध्यात्मिक प्राणी है, जिसमें अनेक ुत मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ—जैसे दिव्य , अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष (Entra-sensory Perception), :प्रलयज्ञान (Telepathy); दूरक्रिया elepinesis), प्रच्छन्न संवेदन (Cryptesthesia), ोध (Premonition) आदि हैं । मृत्यु प्राणीको नष्ट कर पाती । उसका अस्तित्व किसी अन्य सूक्ष्म लोकमें रूपसे रहता है, जहाँ रहते हुए वह इस लोकमें रहने- प्राणियोंके सम्पर्कमें आ सकता है । डॉ० क्रूकाल)r. Crookall) ने सहस्रों घटनाओंका निरीक्षण के इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है कि 'प्रत्येक प्राणीके सूक्ष्मशरीर होता है, जो कुछ अवसरोंपर, विशेषतः के अवसरपर इस पाञ्चभौतिक शरीरको छोड़कर बाहर ल जाता है । परलोकमें प्राणी इस सूक्ष्मशरीरद्वारा हाँके जीवन और भोगोंको भोगता है ।' उन्होंने अपनी क 'Supreme Adventure' में जो मृत्यु एवं परलोकका वर्णन किया है, वह हिंदूशास्त्रोंमें वर्णित मृत्यु और परलोकके वर्णनसे बहुत कुछ मिलता है । अमेरिकाके 'वर्जीनिया विश्वविद्यालय' के मैडिकल विज्ञान-के प्रोफेसर स्टीवेन्सनने, जो तीन बार भारतवर्ष आ चुके हैं, अपनी पुस्तक 'Twenty cases suggesting Reincarnation' में, जो अभी कुछ दिन पूर्व प्रकाशित हुई थी, यह प्रतिपादन किया है कि 'केवल भारतवर्षमें ही नहीं, बल्कि अन्य पश्चिमी देशोंमें इस प्रकारकी जीवन-घटनाएँ हो चुकी हैं, जिनसे पूर्वजन्मकी सच्ची स्मृतियोंका प्रमाण मिलता है ।' उनका कहना यह है कि 'पुनर्जन्मके सिद्धान्तको माने बिना इस प्रकारकी घटनाओंको समझना कठिन है ।' राल्फ सिर्ली (Ralph Sirley) ने भी अपनी पुस्तक 'The Problem of Rebirth' में कुछ घटनाएँ ऐसी दी हैं, जो पुनर्जन्मका प्रतिपादन करती हैं । लेखकने भी अपनी पुस्तक परामनोविज्ञानमें कुछ ऐसी घटनाओंका वर्णन किया है, जिनसे पुनर्जन्मका सिद्धान्त प्रतिपादित होता है ।

पाश्चात्त्य आध्यात्मिक अनुसंधान, जो आजकल 'परा-मनोविज्ञान'के नामसे प्रसिद्ध हो चला है, उसके अध्ययनसे यह निश्चित हो जाता है कि हिंदूशास्त्रोंमें वर्णित मृत्यु, परलोक और पुनर्जन्मके सिद्धान्त वैज्ञानिक एवं सर्वथा सत्य हैं ।

परम मधुर श्रीराधेश्याम

मौन ग्रहणकर रटूँ निरन्तर जिह्वासे श्रीराधेश्याम ।
नेत्रोंसे देखूँ न कभी कुछ, रहें दीखते राधेश्याम ॥
कानोंसे सब शब्द त्याग कर सुनूँ सर्वदा राधेश्याम ।
मनसे सभी प्रपञ्च दूर कर रहूँ निरखता राधेश्याम ॥
भोग-मोक्षकी चाह मिटे सब, चाहूँ केवल राधेश्याम ।
एकमात्र बस, लगें परम प्रिय मुझको केवल राधेश्याम ॥
मिले उच्च या नीच जन्म, पर रहें संग नित राधेश्याम ।
अतुल अमल-सौन्दर्य-सुधानिधि परम मधुर श्रीराधेश्याम ॥

वैष्णवाचार्योंका परलोक और पुनर्जन्म-सिद्धान्त

(लेखक—श्रीरंगरामानुजाचार्य, व्याकरण-न्याय-वेदान्ताचार्य)

करुणावरुणालय अखिलकोटिब्रह्माण्डनायक परात्पर पूर्ण परमब्रह्म परमेश्वर प्रलयके अन्तमें जगत्-निर्माणके लिये संकल्प करते हैं:—'**तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय**' (छा० ६ । २ । ३)। तदनन्तर पञ्चमहाभूतादिके निर्माणोत्तरकरण कलेवरशून्य जीवोंके कर्मानुसार विभिन्न योनियोंसे सम्बन्ध कराते हैं। नित्य, अजर, अमर, अविनाशी जीवात्माको अनादि अविद्यासे होनेवाले पुण्य-पाप कर्म-प्रवाहके फलोंको भोगनेके लिये चार प्रकारके शरीरोंमें प्रवेश करना पड़ता है। वे चार प्रकारके शरीर ये हैं—(१) ब्रह्मा आदि देवोंका शरीर, (२) मानव-शरीर, (३) पशु, मृग और पक्षी आदि तिर्यक् शरीर और (४) तृण, वृक्ष, लता, गुल्म आदिका स्थावर शरीर। इन चार प्रकारके शरीरोंमें जीवात्माका कर्मफलस्वरूप प्रवेश होता है। उन-उन देहोंमें प्रविष्ट होते ही जीवात्माको देहाभिमानरूपी अविद्या तथा अस्वकीय वस्तुओंमें स्वकीयत्वाभिमानरूपी अविद्या होने लगती है। उससे कर्म, उससे देह-प्रवेश और उससे अविद्या—इस प्रकारका चक्र अनादि कालसे चला आता है। इस चक्रके कारण ही जीवात्माको विविध सांसारिक ताप भोगने पड़ते हैं। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने विनयपत्रिकामें लिखा है—

बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
तातें सहौं बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक॥

सांसारिक त्रिविध तापसे मुक्त होनेके लिये शास्त्रकारोंने कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रपत्ति आदि साधनोंका प्रतिपादन किया है। पर वे सब साधन भी भगवत्कृपा होनेपर ही प्राप्त होते हैं। अतः भगवत्कृपासे ही जीव इस विषम संसारसे मुक्त होकर परम-पद पा सकता है।

अतएव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा है—

मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥
(गीता- १८ । ५६)

अर्थात् 'मेरे प्रसादसे शाश्वत और अव्यय पद प्राप्त करता है।' उस अव्यय परमपद परलोकके सम्बन्धमें वैष्णवाचार्योंके निम्नलिखित विचार हैं—

परमब्रह्म परमेश्वरकी दो विभूतियाँ हैं—भोग-विभूति और त्रिपाद-विभूति—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि
(यजुर्वेद ३१ । ३)

अर्थात् 'एक पादमें भोग-विभूति है, जिसे संसार कहते हैं और तीन पादमें त्रिपाद-विभूति है, जिसका वैकुण्ठ, दिव्यलोक, दिव्य धाम, परम पद, परम धाम, गोलोक, साकेत आदि अनेक नामोंसे शास्त्रोंमें वर्णन मिलता है। इन दोनों लोकोंके मध्यमें विरजा नदीकी दिव्य ज्ञानमयी धारा प्रवाहित होती है—

'वैकुण्ठसीम्नि विरजां स्यन्दमानां महानदीम्।'
'विरजानदीं तां मनसात्येति।'

ये दोनों श्रुतिवाक्य विरजानदीको प्रमाणित करते हैं। विरजाके इस पार संसार और उस पार भगवान्का दिव्यलोक परम पद है। उस परम पदका क्षय कभी नहीं होता। वह सूर्य, अग्नि आदि प्राकृत प्रकाश्यमान पदार्थोंसे विलक्षण अत्यन्त देदीप्यमान है, अत्यन्त उज्ज्वल है। महाभारतमें श्रीवैकुण्ठके वर्णनमें कहा गया है—

अत्यर्कानलदीप्तं तत् स्थानं विष्णोर्महात्मनः।
स्वयैव प्रभया राजन् दुष्प्रेक्ष्यं देवदानवैः॥

अर्थात् 'परमात्मा श्रीविष्णुभगवान्का वह स्थान सूर्य और अग्निसे बढ़कर देदीप्यमान है। उसकी प्रभा चारों तरफ अधिकाधिक फैलती रहती है। उस प्रभाकी चकाचौंधके कारण वह परम पद देव और दानवोंको भी दृष्टिगोचर नहीं होता है।' वह परम पद स्वयंप्रकाश है, उसे प्रकाशके लिये दूसरे किसीकी अपेक्षा नहीं है।' जिस प्रकार दीप, सूर्य, मणि, अग्नि आदि स्वयं प्रकासते हैं, वैसे ही परम पद भी स्वयं प्रकासता है। पर उसकी दीप्ति अपार है। अनन्त, गरुड, विष्वक्सेन आदि नित्य सूरिगण सर्वदा उस परम पदका दर्शन कर आनन्दानुभव करते हैं। वह परम पद शुद्ध-सत्त्वमय है। वहाँ रजोगुण और तमोगुणका नामोनिशान भी नहीं है। स्वामी श्रीरामानुजाचार्यने वेदार्थ-संग्रहमें तथा 'तमेव शरणं गच्छ०' इस श्लोककी व्याख्या करते हुए गीतामें, श्रीवेदान्ताचार्यने न्याय-सिद्धाञ्जनके नित्य-विभूति-परिच्छेदमें परलोक-स्वरूपका वर्णन करते हुए निम्नलिखित श्रुतियोंका उल्लेख किया है—

'क्षयन्तमस्य रजसः पराके' ।

(ऋ० १०७ । १०० । ५)

अर्थात् 'इस रजोगुणमय प्रकृतिके ऊपर श्रीभगवान् निवास करते हैं ।'

'यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात् ।'

(महानारायण १ । ५)

'श्रीभगवान्‌का एक नित्य नव अनन्तविश्व-व्यापक दिव्यरूप अर्थात् प्रकृतिके ऊपर है । वह चक्षु आदि इन्द्रियोंसे व्यक्त नहीं होता ।'

'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ।'

(नारायण उत्तरता० १ । ५)

अर्थात् 'परमाकाश परम पदमें विराजमान श्रीभगवान् हृदय-गुहामें अवस्थित हैं, ऐसा जो जानता है, वह परमात्माके साथ सर्वकल्याण-गुणोंका अनुभव करता है ।'

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।'

(ऋ० सं० १ । २२ । २०)

'उस विष्णुके परमपदको ज्ञानीलोग सदा देखते हैं ।'

'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् ।' (ऋग्वेद सं०)

'जो इसका अध्यक्ष है, वह **(त्रिपाद्विभूतिरूप)** परम व्योममें रहता है ।'

'अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते ।'

(छा० उ० ३ । १३ । ७)

'इस द्युलोकसे परे जो परम-ज्योति प्रकाशित है ।'

'सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।'

(कठ उ० ३ । ९)

'मुक्तात्मा मार्गके पार श्रीविष्णुभगवान्‌के पदपर पहुँच जाता है ।' श्रीरामानुजस्वामीने वेदार्थ-संग्रहमें इतिहास-पुराणादिके द्वारा भी परम पदको प्रमाणित किया है—

तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः ।
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः ॥

यहाँपर **'तमसः परमः'** शब्दसे श्रीभगवान्‌का वह दिव्यस्थान, जो प्रकृतिके ऊपर है, सूचित होता है ।

श्रीरामचन्द्रजीकी वैकुण्ठयात्राके प्रसंगमें ये श्लोक मिलते हैं—

शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतविग्रहम् ।
अन्वगच्छन्त काकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहाः ॥
विवेश वैष्णवं धाम सशरीरः सहानुगः ।

(वाल्मीकिरा० ७ । १०९ । ७)

अर्थात् 'अनेकविध बाण और लम्बे आकारवाला धनु जो पुरुषरूप लेकर श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे चलते थे, श्रीरामचन्द्रजीके शरीर एवं अनुयायियोंके साथ वैष्णव धाममें प्रवेश कर गये ।'

विष्णुपुराणके निम्नलिखित श्लोकोंमें दिव्य स्थान और दिव्य सूरियोंका वर्णन मिलता है—

एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनश्च ये ।
तेषां तु परमं स्थानं यत्तत्पश्यन्ति सूरयः ॥

(१ । ६ । ३९)

अर्थात् 'जो योगिजन अनन्य होकर सदा ब्रह्मध्यान करते हैं, वे उस परम स्थानमें पहुँच जाते हैं, जिसका दर्शन नित्य सूरियोंको होता है ।'

महाभारतमें नित्यविभूति और उसकी नित्यताके विषयमें वर्णन इस प्रकार मिलता है—

दिव्यं स्थानमजरं चाप्रमेयं दुर्विज्ञेयं चागमैर्गम्यमाद्यम् ।
गच्छ प्रभो रक्ष चास्मान् प्रपन्नान् काले काले जायमानः स्वमूर्त्या ॥

अर्थात् 'हे प्रभो ! जराहीन, अप्रमेय, दुर्ज्ञेय एवं शास्त्रोंसे ही विदित होनेवाले उस आदि दिव्य स्थानमें पहुँचनेके लिये पधारिये । आप प्रतिकल्प अपने रूपसे प्रकट होकर आश्रित हमलोगोंकी रक्षा कीजिये ।'

कालं स पचते तत्र न कालस्तत्र वै प्रभुः ।

अर्थात् 'श्रीभगवान् नित्य विभूतिमें कालको परिणत कर देते हैं । काल वहाँ कुछ भी नहीं कर सकता ।' इन वचनोंसे दिव्य स्थान और उसकी नित्यता सिद्ध होती है ।

श्रीस्वामी रामानुजाचार्यजीने गद्यत्रयके वैकुण्ठगद्यमें लिखा है कि—

'चतुर्दशभुवनात्मकमण्डं दशगुणितोत्तरं चावरणसप्तकं समस्तं कार्यकारणजातमतीत्य परमव्योमशब्दाभिधेये ब्रह्मादीनां वाङ्मनसाऽगोचरे श्रीमति वैकुण्ठे दिव्यलोके ।'

अर्थात् 'चौदह लोकोंसे बने हुए इस ब्रह्माण्डको, एक-दूसरेसे दसगुणा अधिक सात आवरणोंको भी क्रमशः पारकर, कार्य-कारणभावापन्न समस्त पदार्थसमूहको पारकर,

रहनेवाले, 'परमव्योम' शब्दसे कहे जानेवाले, चतुर्मुख ब्रह्मा आदि बड़े ज्ञानियोंकी भी वाणी एवं मनसातीत, अत्यन्त जाज्वल्यमान श्रीवैकुण्ठ-नामक दिव्यलोकमें श्रीभगवान् नित्य सूरियोंके साथ विराजमान रहते हैं।'

अतएव श्रीवैकुण्ठस्तवमें लिखा है कि—

कदा मायापारे विशदविरजापारसरसि
परे श्रीवैकुण्ठे परमरुचिरे हेमनगरे।
महारम्ये हर्म्ये वरमणिमये मण्डपवरे
समासीनं शेषे तव परिचरेयं पदयुगम्॥

'हे भगवन्! वह समय कब आयेगा, जब प्रकृतिमण्डलके आवरणसे परे, अति विस्तृत विरजा नदीके पार, 'आरंगहृद' सरोवरसे परे, चित्र-विचित्र मणियोंसे जटित परम मनोहर सुवर्णपुरी श्रीवैकुण्ठ महानगरमें, अत्यन्त रमणीय, सर्वोच्च स्थान, श्रेष्ठ मणियोंसे प्रकाशित रत्नमणि-मण्डपमें सहस्रफण-युक्त शेषशय्यापर नित्य मुक्तोंसे सम्मिलित हो, सुखसे बैठे हुए आपके दोनों चरणकमलोंकी परिचर्या करूँगा।'

विष्वक्सेनसंहितामें लिखा है कि—

वैकुण्ठे तु परे लोके श्रीसहायो जनार्दनः।
उभाभ्यां भूमिनीलाभ्यां सेवितः परमेश्वरः॥
महायोगी जगद्धाता दिव्यसिंहासनोपरि।
दिव्यसंस्मरणोपेते शेषाहिफणमण्डिते॥
पञ्चोपनिषदाम्नातदिव्यमङ्गलविग्रहः।
अप्राकृततनुर्देवो नित्याकृतिधरो युवा॥
नित्यातीतो जगद्धाता नित्यैर्मुक्तैश्च सेवितः।

इस प्रकार ऊपर जीवके सम्बन्धमें जो लिखा गया है वह परम वैदिक सिद्धान्तानुयायी समस्त वैष्णवोंका मान्य है। उसीसे वैष्णवाचार्योंका पुनर्जन्म-सिद्धान्त सुस्पष्ट हो जाता है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी और पारलौकिक श्रेय

(लेखक—श्रीमाधवजी गोस्वामी)

प्राचीन भारतीय धर्मसाधनाके इतिहासमें जहाँ हमारे बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ताओंने, ऋषि-मुनियोंने, युगावतारोंने एवं महान् आचार्यप्रवरोंने परलोक एवं पुनर्जन्मके विषयमें विपुल प्रमाणमें अध्ययन तथा अनुशीलन किया है, वहाँ आजके कुछ विज्ञानवादी अनुसंधानकर्ता सज्जन भी इस निष्कर्षपर पहुँच सके हैं कि विश्वका एवं प्राणिमात्रके जीवनका सुचारु रूपसे सम्यक् संचालन करनेवाली कोई विराट् शक्ति अवश्य है, जो समग्र जगत्का सुनियन्त्रित रूपमें परिचालन करती है।

प्राचीन धर्मशास्त्रोंमें, वेदमें, श्रीमद्भागवत-गीतादि सच्छास्त्रोंमें हमारे पूर्वपुरुषोंने एक सर्वथा मौलिक एवं उपादेय दृष्टिकोणसे परलोक तथा पुनर्जन्मका समीचीन विचार करके, उसे जनसमाजके सम्मुख रक्खा है। यद्यपि आजके भौतिकवादी लोग भले ही ईश्वरकी सत्ता, महत्ता एवं परलोकपर विश्वास न रखकर केवल दृश्य पदार्थोंको ही सत्य मानें; किंतु आधुनिक वर्तमानपत्रोंमें भी कई बार हम पुनर्जन्मके वृत्तान्त पढ़ते हैं, जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्यका अपने शेष कर्मोंको भोगनेके लिये पुनर्जन्म होना—एक ध्रुव सत्य है और इस सनातन सत्यको जगत्का कोई भी प्राणी मेटनेके लिये सर्वथा शक्तिमान् नहीं है।

भारतके विभिन्न आचार्यों एवं विचारकोंकी भाँति सोलहवीं शतीमें अवतरित भगवान् श्रीवल्लभाचार्यचरणोंने भी अपनी विचारधारामें 'परलोक'पर विचार किया है, आपकी विचारधाराके अनुसार सृष्टिको पुष्टि, प्रवाह तथा मर्यादा—इन तीन विभागोंमें बाँटकर अपने-अपने अधिकारानुसार जीवोंकी विभिन्न गतियोंका भी निर्देश किया गया है। जिन लोगोंकी केवल प्रवाहमार्गमें ही अभिरुचि रहती है, वे बार-बार इस संसारमें जन्म लेकर, संसारके अनेक दुःखोंको भोगते हुए, अहंता-ममताके भँवरमें डूबकर अपनी क्षणिक तथा नाशवान् इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिये जन्म-मरणके चक्करमें पड़े रहते हैं। ऐसे जीवोंके लिये न कोई कर्तव्य है, न कोई ध्येय है और न कोई जीवनका अन्तिम या चरम लक्ष्य ही है। और जो मर्यादामार्गीय जीव होते हैं, वे स्वर्गसुखकी लालसासे जीवनमें अनेक धर्मकार्य—दान, पुण्य, व्रत, तीर्थ, यज्ञादि करके, इष्टलोककी प्राप्ति करके सर्वसुखोंका उपभोग करते हैं; किंतु 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।'—इसके अनुसार 'पुण्यक्षय होनेपर पुनः मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं।'

र जो पुष्टि-सृष्टि है, वह भगवान्‌में निरोध प्राप्त करके सेवा, ण-कीर्तनसे 'रसो वै सः'—इस श्रुतिप्रतिपादित स्वरूपमें आसक्तिद्वारा भगवल्लीलामें प्रविष्ट होती है। किंतु इसका मतलब नहीं है कि भगवद्भक्ति करनेवालेका पुनर्जन्म ीं होता। बड़े-बड़े महापुरुषोंको भी जगत्-हितार्थ अपने नके अवशिष्ट कार्योंको पूरा करनेके लिये एवं लोक-याणके लिये पुनर्जन्म ग्रहण करना ही पड़ता है।

जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यजीके अनन्य भक्त ८४ वैष्णवों-वार्तामें भी इस बातका उल्लेख उपलब्ध होता है कि नके सेवक स्थानेश्वरनिवासी रामानन्द पण्डितने कुछ गवोंका अपराध किया था, जिससे आचार्यचरण उनपर त ही अप्रसन्न हुए और उसी समय आपने उनका ग किया। पीछेसे उनकी अवस्था अत्यन्त विकल हो । उन्हें अपनी देह, कर्तव्य, भगवत्सेवा, आचार-ार—किसी भी बातका अनुसंधान न रहा। एक दिन ी हलवाईकी दूकानपर गरमागरम जलेबियाँ बनती उन्हें इच्छा हुई। थोड़ी जलेबी लेकर भगवान् ाथजीको उन्होंने भोग लगाया। पर देखिये, भक्तका आर्तनाद सुनकर कृपालु श्रीनाथजीने वहाँसे मीलों दूर पुराके मन्दिरमें राजभोगके समय जलेबियाँ आरोगीं। महाप्रभुने भगवान्‌के मुखमें जलेबीका टूक देखा तो ा—'बाबा! आज हमने तो यह सामग्री सिद्ध नहीं की, आपने यह कहाँसे आरोगी?' तब प्रभु बोले—'तुम्हारे न्यसेवक रामानन्दने आरोगायी है।' महाप्रभु बोले, ्का तो त्याग किया है; इसलिये आपको उसके हाथका लेना चाहिये।' तब श्रीनाथजी मुस्कुराकर बोले—ने भले ही उसका त्याग किया, किंतु मैंने तो श्रावण शुक्ला एकादशीकी मध्यरात्रिको श्रीमद्गोकुलमें यमुना-तटपर साक्षात् प्रादुर्भूत होकर तुमसे कहा था कि तुम कलिप्रवाहमें बहते हुए जीवोंको शरणमें लोगे, उसे किसी भी कालमें मैं नहीं छोड़ूँगा। अतः मैंने अपना वचन निभाया है।' अहा! भगवान्‌की वाणीसे आचार्यचरण भावविभोर हो उठे और कुछ जन्मोंके अन्तरायके बाद रामानन्द पण्डितका अखण्डलीलामें प्रवेश हुआ।

इस प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभुकी दृष्टिसे जीव भक्तिमार्गमें शरणागत होनेके पश्चात् भी जो अपराध करता है, उसे अवश्य ही उस अपराधका फल मिलता है और जब अनेक जन्मोंका अन्तराय दूर होकर उस जीवकी परिशुद्धि होती है, तभी भगवान्‌की परम आनन्दमयी उस अखण्ड लीलासृष्टिमें वह भगवान्‌के निजानन्दका अमन्द आस्वाद लेता हुआ अपने जीवनके सर्वोत्कृष्ट परम-चरम लक्ष्यको प्राप्त करता है।

आज समग्र जगत्‌में जो सामाजिक, धार्मिक, राजनयिक तथा अनेक तरहकी उथल-पुथल एवं अशान्ति मची हुई है, उसका मुख्य कारण यही है कि लोगोंकी ईश्वर, धर्म, संस्कृति, मानवता, सदाचार, ब्राह्मण, आचार्य एवं गौमेंसे श्रद्धा कम होती जा रही है और मानव परलोक तथा पुनर्जन्मसे अपना विश्वास खोने लगा है। अतः देशमें, विश्वमें सच्ची शान्ति तभी होगी, जब लोग ईश्वरकी महत्ताको मानते हुए अपने पारलौकिक उत्थानकी ओर आगे बढ़ेंगे। भगवान् सभी प्राणियोंको ऐसी ही सद्बुद्धि दें एवं सबमें विश्वबन्धुत्वकी भावनाएँ उत्पन्न हों, यही एकमात्र सच्चे हृदयकी कामना है। सर्वे भवन्तु सुखिनः।

सबमें नित्य भगवान्‌को देखूँ

जड-चेतन सबमें देखूँ नित बाहर-भीतर श्रीभगवान।
करूँ प्रणाम नित्य नत-मस्तक-मन, तजकर सारा अभिमान॥
करूँ सभीकी यथायोग्य शुचि सेवा उनमें प्रभु पहचान।
करूँ समर्पण उन्हें उन्हींकी वस्तु विनम्र सहित-सम्मान॥
राग-कामना-ममता सारी प्रभु-चरणोंमें पाकर स्थान—
नित्य करातीं रहें मधुरतम प्रेम-सुधा-रसका ही पान॥

सिख गुरु श्रीगुरु गोविन्दसिंहद्वारा प्रस्तुत दशम ग्रन्थमें पुनर्जन्म-सिद्धान्त

(लेखक—प्रोफेसर श्रीलालमोहर उपाध्याय, एम्० ए०, 'हिंदी' रिसर्चस्कॉलर, पी-एच्० डी०)

सभी भारतीय विचारकोंके सदृश गुरुगोविन्दसिंहजीने दशम-ग्रन्थमें जीवात्माके पुनर्जन्मपर अपना विश्वास प्रकट किया है। स्वयं वे अपना पुनर्जन्म ईश्वरकी प्रेरणासे दुष्टोंके संहारके निमित्त स्वीकार करते हैं। संत गुरुगोविन्दसिंहने इसका वर्णन विचित्र नाटकमें पूर्णरूपसे किया है, जिसपर स्वतन्त्र रूपसे एक बृहद् शोध-निबन्ध-पत्र तैयार किया जा सकता है। जीवात्मा अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये बार-बार जन्म लेता है। पुनर्जन्मके सिद्धान्तका मूल ही यही है। जो जैसे कर्म करते हैं, वैसी योनि भी प्राप्त करते हैं। मानव-योनिको पाकर उत्तम कर्मोंके द्वारा आवागमन-बन्धनोंसे मुक्त होना ही जीवका मुख्य धर्म कहा गया है। जीवके आवागमनसे छूटनेका एक ही मार्ग है—सांसारिक विषय-वासनाओंसे विरक्त होकर शुभ कर्मोंको निष्काम सम्पन्न करना। मुक्ति पाकर जीवकी क्या गति होती है, इसपर भारतीय विचारकोंमें अनेक सम्प्रदायगत विचार हैं। संत गुरुगोविन्दसिंहने जीवमात्रका मूल-स्रोत परमात्माको ही माना है। सारी योनियाँ उसीसे उत्पन्न हुई हैं—

केते कच्छ मच्छ केते उन कउ करत भच्छ,
केते अच्छ बच्छ हुइ सपच्छ उड जाहिंगे।
केते नभ बीच अच्छ पच्छ कउ करेंगे भच्छ,
केते प्रतच्छ हुए त्रचाइ खाइ जाहिंगे।
कालके बनाइ सबै काल ही चबाहिंगे।
तेज जिऊँ अतेजमें अतेज जैसे तेज लीन,
ताही ते उपज सबै ताही में समाहिंगे॥

(विचित्रनाटक पृष्ठ ४१)

उस आवागमनके चक्रसे छुटकारा पानेके लिये मनुष्यको शुभ कर्मोंमें रत होना चाहिये। आवागमनसे छुटकारा पानेके लिये बहुधा लोगोंने वैराग्यको अत्यधिक महत्त्व तथा सांसारिक जीवनको बिल्कुल मिथ्या मानकर उसके प्रति उदासीन होनेका उपदेश दिया है। परंतु मध्यकालके संत भक्तोंने सांसारिक जीवनका भी महत्त्व समझा है। गृहस्थ रहते हुए भी ईश्वरकी आराधना की जा सकती है, इसपर उनका अटल विश्वास था। ये लोग अधिकांशतः गृहस्थ ही थे। संत गुरुगोविन्दसिंह भी लौकिक जीवनके उत्तरदायित्वोंका निर्वाह आव[श्यक] मानते हैं। संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हुए भी उ[…] जन्मान्तरके हेर-फेरसे मुक्त हुआ जा सकता है, यही उ[नका] दृढ़ विचार था। वे स्वयं कहते हैं—

छत्री के पूत हौं बामन को नहिं के तपु आवत है जु कर[ौं]
अस अउर जंजार जितो गृहको, तुहि त्याग कहा चित तामें धर[ौं]
अब रीझ के देहु वहै हमको, जोउ हौं बिनती करजोर कर[ौं]
अब आऊकी अउध निदान बने, अति ही रनमें तब जूझ मर[ौं]

(अकालस्तुति छंद-संख्या […])

बाह्य आडम्बरों, कृच्छ्राचारों तथा अन्य सभी प्र[…] दिखावोंकी उन्होंने कटु आलोचना की है। शुष्क तीर्थ, व्रत, तप, उपवास, स्नान-मंजन ईश्वर-प्राप्तिमें सहायक नहीं हो सकते। भगवान्की निश्छल भक्ति ह[ी] जन्म-मरणके भयको हटा सकती है—

तीरथ ध्यान दया दम दान, सुसंजम नेम अनेक बिसे[…]
बेद पुरान कतेब कुरान जमीन जमान सबान के पे[…]
पउन आहार जतीजत घाट सबै सुविचार हजारक दे[…]
श्रीभगवान भजे बिनु भूपति, एक रती बिनु एक न ले[…]

(कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्रीदशम गुरुग्रन्थ छन्द-संख्या २[…])

नीरस शुष्क मन्त्र-पाठमात्र मनुष्यके लिये […] नहीं—

लिख जंत्र थाके पढ़ं मंत्र हारे
करे काल ते अन्त लेके विचारे
कितिओ तंत्र साधे जु जनम बिताअे
भए फोकटं काज एकै न आयो

(अकालस्तुति, छन्द-सं[ख्या …])

इतना ही नहीं बिना प्रभुकी निश्चल भक्ति[…] दुर्लभ है—

बिना सरन ताकी न अउरे उपा[…]
कहा देव दइतं कहा रंक रा[…]
जितै जीव जन्तं सु दुनीयं थप[…]
सबै अन्त कालं वही काल पा[…]

बिना सरन ताकी नहीं और ओटं ।
लिखे जन्म केते पढ़ भजे कोटं ॥
(विचित्रनाटक, छन्द-संख्या ६२, पृष्ठ १०)

इस तरह हम देखते हैं कि संत गुरुगोविन्दसिंहजीने दशम ग्रन्थमें परलोक एवं पुनर्जन्ममें पूर्णतः विश्वास प्रकट किया है ।

रामस्नेही-मतमें जीवात्माकी स्थिति एवं गति

(लेखक—श्रीश्रीपुरुषोत्तमदासजी शास्त्री महाराज, श्रीखेड़ापा रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य)

गुरु कूँ वंदन कीजिये, मुख सूँ कहिये राम ।
रामदास सो सिष जन, पावे आदू धाम ॥

जीवात्माकी स्थिति एवं उत्पत्ति

इस नश्वर संसारमें आकर प्राणी अपने आद्य-धाम अर्थात् जहाँसे वह उत्पन्न हुआ है, उस स्थानको भुला देता है । इसी कारण वह आध्यात्मिक पथसे विमुख होकर अधिकतर भौतिकवादकी ओर ही अग्रसर होता है । ऐसे समयमें प्राणीको यह ज्ञान करानेके लिये कि 'तू कहाँसे आया है ? किधर जा रहा है ? और तुझे किस दिशामें जाना चाहिये ?'—

कौन दिसा सूँ आविया, कहो कौन दिस जाय ।
रामदास अब भूलग्या, इहाँ पड़े हैं आय ॥

इस भूलकी चिन्ता किसे होगी ? जो इस जीवात्माका स्वामी (पिता) है, उसे ही तो इसकी चिन्ता होगी—

बालक करम कुसंगत लाग्या, चेत अचेते नाहीं ।
माता पिता करे रुखवाली, निजर बालका माहीं ॥

पर हम सभी जीवोंको परमात्माका ही बालक कैसे मान लें ? इसलिये कि महात्माओंने लिखा है—

सभी जीव का एक पीव है, जुदा जुदा मत जाणो ।
आपा उलट आप में देखो, आपा ब्रह्म पिछाणो ॥
चारूँ बरण आतमा माँई, एक बाप का जाया ।
रामदास एको कर जाण्या, एकण मंझ समाया ॥

इसमें स्पष्ट है कि यह जीव परमेश्वरका ही अंश है । अतः इसका आदू (आदि) स्थान भी परमात्माका ही आदिस्थान अर्थात् वैकुण्ठधाम ही है । कुमार्गपर जाते हुए प्राणियोंको देखकर परमपिताने उन्हें सही पथ-प्रदर्शन करानेके लिये अपने ही नित्य-अवतार-स्वरूप संत-महात्माओं-को पृथ्वीपर जन्म लेनेकी आज्ञा दी—

संत रूप हुय साहिब आया, देह धार अरु संत कहाया ॥
तुम जावो संसार में, जनम धरो घर जाय ।
अनत हंस कूँ संग ले, आण मिलो मो माँय ॥

जब भगवान्‌ने आज्ञा दी तो आज्ञाको शिरोधार्य करना सेवकका प्रथम कर्तव्य है ही—

परम धरम यह नाथ हमारा ।
सिर धरि आयस करिअ तुम्हारा ॥

इस प्रकार राम महाराजकी आज्ञाको अङ्गीकार कर श्री-रामदासजी महाराजने इस पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया तथा सभी प्राणियोंको रामभजनका उपदेश दिया—

राम भजो रे प्राणिया, भूले मति भाई ।
सुमिरण बिन छूटो नहिं, जम द्वारे जाई ॥

जो प्राणी आपके ऐसे सदुपदेशको हृदयङ्गम कर राम-मन्त्रका जाप करते हैं, वे आगे लिखे जानेवाले सूर्य-मार्गसे गमनकर प्रभुके चरणोंमें निवास करते हैं तथा भगवान् भी भक्तके इच्छानुसार सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य—इन चारों मुक्तियोंमेंसे उसे कोई मुक्ति प्रदान कर देते हैं—

चारों मुक्ति विष्णु के संगा, साधु मिलाप उछव अनभंगा ॥
बैठे सिंघासन प्रभु, गोदी में ले दास ।
इच्छा सोई लीजिये, स्वयं प्रकाश प्रकाश ॥

महात्माओंका गमन-मार्ग

मुक्ति अर्थात् मोक्षका वही अधिकारी है, जो कि गुरु महाराजद्वारा निर्दिष्ट सन्मार्गपर चलता है और उनके निर्देशानुसार राममन्त्रका जाप करता है । महात्माओंने भजन करनेके लिये ऊँच-नीचके भेद-भावको सर्वथा परित्यक्त किया है । उनके विचारानुसार भजनके लिये घरका त्याग करना भी जरूरी नहीं है । जरूरी है तो केवल भगवान्‌के नामका जप है—

पाँति कारण नहिं कोई । सब ही का हरि एको होई ॥
बड़े नीच कुण ऊँचा । राम कहत सबही नर सूचा ॥

माथ टोप कारण नहिं, घर वन कारण नाँहि ।
रामा सिवरे राम कूँ, मिले राम पद माँहि ॥

इस प्रकार भजन-साधन करनेवाले महात्माओंके देह-के समय उनके गमन-मार्गका वर्णन श्रीदयालजी जिने 'परची' नामक ग्रन्थमें किया है। प्रस्तुत वर्णन पूज्य-प्रातःस्मरणीय श्रीरामदासजी महाराजके परलोक-गमनके पर लिखा गया है। यह वर्णन अर्चिरादि ग्रन्थोंके ऊपर लिखा गया है; क्योंकि श्रीदयालजी महाराजका है कि भगवान् और उनके सभी भक्तोंके गमनमार्गमें भी अन्तर नहीं होता—

अर्चिरादि ग्रन्थ के माहीं, भगवद्भक्त दूसरा नाहीं ॥

गमनमार्ग (सूर्यमार्ग) वर्णनमेंसे उपयुक्त स्थल ही पर लिखे जा रहे हैं—

महूरत युग चढ़ताँ दिवस, अद्भुत भो आख्यान ।
षोडस हिलमिल पारसद, लाये दिव्य विमान ॥

इस प्रकार सूर्यमार्गसे गमन करके श्रीरामदासजी महाराज अपने आदू-धाममें परम पिताकी सेवामें उपस्थित हो गये ।

अनत हंस कूँ संग ले, आण निवाए शीश ।
तुम्हें कह्या सो मैं किया, सुणो पिता जगदीश ॥
(बालबोध, रामदासजी म०)

पापी पुरुषोंका गमन-मार्ग

सूर्यमार्ग जितना आनन्दप्रद है, उससे भी विशेष कष्ट-प्रद यह निरय-पथ है। पापीजनोंकी अधोगतिके मार्गका वर्णन श्रीदयालजी महाराजने 'ग्रन्थ चिंत्रामण'में बहुत विस्तारसे किया है। उनमेंसे उदाहरणके रूपमें कुछ पंक्तियाँ नीचे लिखी जा रही हैं—

इम सब पूरा भया आज, कोप्यो तबे जमपुर राज ।
लावो दुष्ट पापी बन्ध, ऐसे कह्यो काल निकन्द ॥
जीव ने पकड़ मोकम काल, लेकर चाल्या तब तत्काल ।
बंधत छेदत मार मचाय, बिलखत जीव हा हा त्राय ॥
कठन सु पंथ अंत करूर, महा अंधार तहाँ नहिं सूर ।
छ्यासी सेंस जोजन बाट, तहाँ नहीं कोइ जिवको घाट ॥

चुकाने (प्रत्युपकार करने) के लिये, (७) अकाल मृत्यु हो जानेसे, या (८) अपूर्ण साधनको पूर्ण करनेके लिये।

इनका विवेचन निम्न प्रकार है—

(१) भगवान्‌की आज्ञासे—ऊपर लिखे हुए सूर्य-मार्गसे गमन करनेवाले महात्माओंको जरूरत पड़नेपर भगवान् उन्हें पृथ्वीपर जन्म लेनेकी आज्ञा फरमाते हैं, तब ही वे महात्मा पृथ्वीपर अवतरित होते हैं।

तुम जाओ संसार में, जन्म धरो धर जाय।
अनत हंस कूँ संग ले, आण मिलो मो माँय॥
(बालबोध, राम०)

इस आज्ञाका पालन कर श्रीरामदासजी महाराजने अवतार ग्रहण किया।

(२) पुण्य क्षय हो जानेपर—संसारमें पुण्यकर्म करनेवाला व्यक्ति जब अपने कर्मसे स्वर्ग-सुख भोगनेका अधिकारी बन जाता है, तब उसे देवता बनाकर स्वर्गमें भेज दिया जाता है। पर जब उसके वे पुण्य कर्म पूर्ण हो जाते हैं, तब उसे पुनः मृत्युलोक या नरकमें जाना पड़ता है—

धर्मी जीव धरमके मारग, सुरग लोक ले देवे।
बैठ विवाण देवता होई, सुरग तणा सुख लेवे॥
सुख भुगताय घेर ले पूठा, पकड़ जन्म ले जावे।
साहिब बिना परत नहिं छूटे जीव जूण बहु पावै॥
(ग्रंथ जगजनराम)

(३) पुण्यका फल भोगनेके लिये—किसी समय ऐसा कोई विशेष पुण्य हो जाता है, जिसे भोगनेके लिये मृत्यु-लोकमें ही पुनः जन्म लेना पड़ता है—

खीर खुलाई साध कूँ, देखो पुण्य प्रताप।
शालभद्र दूजे जनम, भूपत राखी छाप॥
(मायाविचार, अंग बालदास)

यह प्रसङ्ग बिना पूरे दृष्टान्तके समझमें नहीं आ सकता; अतः संक्षेपसे यह दृष्टान्त निम्न प्रकार है—

एक गरीब माता-पुत्र थे। बालकने एक दिन कहीं पर खीर देख ली। मातासे खीर खिलानेका पूरा हठ किया। माताने दूध, चावल, शक्कर आदि वस्तुएँ माँगकर खीर बनायी। माता खीर बालकको देकर पानी लाने चली गयी। तत्काल एक भूखे महात्मा भिक्षाके लिये वहाँ आ गये। बालकने आधी खीर देनेके विचारसे अपनी थाली उडेल दी, जिससे सारी खीर एक साथ खप्परमें चली गयी। महात्मा चले गये। माताके द्वारा खीरकी बात पूछे जानेपर बालकने कहा—'खीर बढ़िया थी, मैंने खा ली'। कालान्तरमें माता-पुत्र दोनोंकी मृत्यु हो गयी। इस पुण्यके प्रभावसे यही बालक दूसरे जन्ममें श्यालभद्र नामक नगरसेठ बना। माता भी यहाँ फिर माता बनी। यहाँ इन्हें अपार धन प्राप्त हुआ। एक समय इस नगरमें बहुमूल्य साड़ियोंका एक व्यापारी साड़ियाँ लेकर राजाके पास गया। राजाने कीमत प्रति. साड़ी सवा लाख रुपया सुनकर लेनेसे इन्कार कर दिया। निराश होकर लौटते समय उस सेठकी माताद्वारा वह व्यापारी बुलाया गया और उसकी सब साड़ियाँ खरीद ली गयीं। सेठकी स्त्रीका यह नियम था कि जिस वस्त्रको एक बार पहन लिया, उसे दुबारा नहीं पहनती। दूसरे दिन वही साड़ी पहनकर मेहतरानी राजाके यहाँ काम करने गयी। राजाने आश्चर्यचकित हो उस साड़ीके मिलनेका कारण पूछा। ज्ञात हो जानेपर राजाने सेठको बुलाने हेतु सेवक भेजा। माताने सेठसे कहा 'राजाने बुलाया है।' 'कारण क्या है ?' 'वे हमारे स्वामी हैं।' 'तब तो मैं जहाँ कोई स्वामी नहीं है, वहाँ रहूँगा'। सेवकसे सभी बातें सुनकर राजा स्वयं सेठके यहाँ पधारे। अँगूठी खो जानेपर सेठने अपने यहाँसे अनेक अमूल्य अँगूठियाँ राजाको दे दीं। राजा लज्जित होकर चला गया। दूसरे दिन श्यालभद्र भी अपने बहनोईके साथ जंगलमें तपस्या करने चला गया। इस तरह पूर्व पुण्यके प्रभावसे अपार धन भी मिला और अन्तमें भजन करनेका अवसर भी।

(४) पापका फल भोगनेके हेतु—पापकर्मका फल भोगनेके लिये प्राणी नरकमें जाता है और बादमें चौरासी लाख योनियोंके चक्करमें पड़ता है—

नरक कुंड भुगताय कर, पूठा किया बुलाय।
चौरासीमें रामदास, बहता दिया चलाय॥
परथम जल का जीव पठाया, नव लाख के माहि मिलाया॥
(चेतावनी राम)

इस चक्करमें कौन पड़ता है ?

हरिया राम न सुमरियो, तास पटंतर [illegible]।
जोनि जोनि फिर अवतरे, सुख दुख भुगते [illegible]॥

(५) बदला लेनेके लिये—यह प्रसङ्ग [illegible] महाराजके ग्रन्थ 'मोहमरद राजाकी कथा'में इस प्रकार लिखा है—

एक राजकुमारकी समीपस्थ तपस्वीसे गाढ़ मित्रता हो गयी। महात्मा काशी जानेको रवाना हो गये तो राजकुमार भी हठ करके साथ चला। तब राजाने सवा सेर सोना एक लकड़ीमें भरकर साथ में दे दिया। एक दिन रास्तेमें रात्रिके समय एक सेठके यहाँ विश्राम किया। रात्रिमें उस सेठने लकड़ीमेंसे सोना निकालकर उसके स्थानपर कंकड़ भर दिये। राजकुमारने काशी पहुँचकर भोजन करनेके लिये ब्राह्मणों तथा संतोंको निमन्त्रण दिया, पर लकड़ी देखकर बड़ा चिन्तित हुआ और कहा—

वान्ये गृहे अवतरूँ जाई, बहुत भाँति भुगताऊँ ताई।
छल बल डालस करण अनेका, दाम दाम भुगताऊँ एका॥

ऐसा सोचकर काशीमें करवत लेकर उस कुमारने उसी सेठके यहाँ पुत्र-रूपमें जन्म लिया, जिसके यहाँ रात्रिमें ठहरे थे। बड़ा हो जानेपर पुत्रका विवाह किया गया। एक अलग सुन्दर महल बनवाकर पति-पत्नी ऊपर चढ़ने लगे। दोनों ही ऊपर चढ़कर एक साथ नीचे गिरकर मृत्युको प्राप्त हुए। सेठ इससे बड़ा दुःखी हुआ। तब उन्हीं महात्माने (जो कि कुँवरके साथ थे) कहा—

मेरे साथ कुँवर [illegible] हाई। तेरे गृहे अवतर्यो सोई॥
तैं उनको सब धन छिनायो। अपनो बदलो लेवण आयो॥

इस प्रकार राजकुमारने अपना पूरा बदला ले लिया।

(६) **बदला चुकानेके लिये**—उपर्युक्त ग्रन्थमें निम्नलिखित प्रसङ्ग भी हैं—

दूजो लियो द्विज अवतारा। जनमत धनको कियो बधारा॥
अपनो बदलो श्वान चुकायो। सुख दुख अपनो करतब पायो॥

एक समय दो कुत्ते गङ्गास्नानार्थ साथ-साथ रवाना हुए। एक दिन किसी नगरमें भूखसे व्याकुल होकर दोनों अलग-अलग भोजनकी तलाशमें गये। पहला श्वान एक गरीब ब्राह्मणके घरमें गया और वहाँ रक्खी हुई थालीमेंसे रोटी खाने लगा। ब्राह्मणने देखकर कुछ भी नहीं किया। दूसरा श्वान एक सेठके घरमें घुसा, जहाँपर बिना कुछ नुकसान किये ही लाठीसे उसे अधमरा कर दिया गया। मिलनेपर पहले श्वानने इसका कारण पूछा, तब दूसरे श्वानने कहा—

बिना बिगार मार भुगताई। मैं तो करवत लेसूँ भाई॥
करवत लेह अवतरूँ जाई। वान्ये के जनमूँ दुखदाई॥

यह सुनकर पहलेने भी कहा—

ब्राह्मण सत्त कहा कूँ तोकूँ। दीन्हो नहीं कछू दुःख मो[illegible]
मैं भी करवत लेसूँ भाई। ब्राह्मण गृहे अवतरूँ ज[illegible]
पुत्र होय कर सुख भुगताऊँ। फल दायक ऐसे मन [illegible]

ऐसा निश्चय करके दोनोंने काशीमें करवत ली। दू[illegible] श्वान तो सेठके यहाँ उत्पन्न हुआ और जन्मते ही [illegible] रोगी बनकर नाना प्रकारसे खर्च कराया। बड़ा होनेपर कभी केश खींचता, कभी-कभी पत्थर मारता। अन्तमें उ[illegible] एक दिन लाठीसे सेठका मस्तक फोड़ दिया। इस प्रकार उ[illegible] अपना बदला लिया। पहला श्वान उसी ब्राह्मणके [illegible] पैदा हुआ। ब्राह्मणको बड़ा लाभ होने लगा। कई [illegible] जिनपर ऋण था, पर दे नहीं रहे थे; उन्होंने स्वतः ही [illegible]ला दिये। कई नये यजमान हुए। पुत्रने भी पिताकी आज्ञ[illegible] पालन कर तथा धन लाकर उसे अनेक प्रकारसे सुख दिय[illegible] इस तरह इस श्वानने भी अपने प्रति किये हुए उपकार[illegible] बदला दूसरा जन्म लेकर चुकाया।

(७) **अकालमृत्युसे** ही प्रायः प्रेत (भूत) योनि हुआ करती है। इस योनिमें गये हुए प्राणी प्रा[illegible] दूसरे लोगोंको कष्ट दिया करते हैं—

परथम मुवो पुत्र इक ताको। प्रेत योनिमें दुखी सदा को[illegible]
धालु बालु पे गाथा गाई। मार्यो प्रेत प्रेत सुत थाई[illegible]

प्रेत-उद्धारका उल्लेख भी निम्न प्रकार है—

एक मास तेरह दिवस, रहे देवगढ़ बास।
भूत इग्यारे तारिया, सतगुरु रामादास॥

इनसे प्राप्त होनेवाली बाधाओंको भी राममन्त्र[illegible] प्रभावसे दूर किया जा सकता है—

रामपरताप जलु जोगिणी चण्डिका, भैरवा भूत छलु छिद्र नाहीं[illegible]
रामपरताप तें विघ्न व्यापै नहीं, रामपरताप तिहुँ लोक माँही[illegible]

(८) **अपूर्ण साधनको पूर्ण करनेके लिये**—पह[illegible] जन्ममें धालजी महाराज (रामकृष्णजी) का साधन पूर्ण न[illegible] हुआ था। अतः दूसरे जन्ममें धाल बालके रूपमें उसे पू[illegible] किया। इसका उल्लेख श्रीअर्जुनदासजी महाराजके ग्रन्[illegible] 'पूरब जनम'में किया है।

इस प्रकार रामस्नेही-सम्प्रदायके मतसे जीवात्माक[illegible] 'पुनर्जन्म' अवश्य होता है। पर इसे मिटानेके लिये साधन

करनेका उपदेश रामस्नेही-सम्प्रदायद्वारा दिया जाता है। इसके लिये इस मनुष्य-शरीरमें ही प्रयत्न किया जाना चाहिये; क्योंकि अन्य किसी भी योनिमें प्राणी अपना उद्धार नहीं कर सकता। जब पुनर्जन्म मिट जाता है तो जीवको परमानन्दकी प्राप्ति होती है। पुनर्जन्म मिट जानेपर जीवात्मा जिस स्थानमें जाता है, वह कैसा है?—

जनम मरण ब्यापै नहीं, दुख सुख संसा नाँहि।
रामदास जहाँ मिल रह्या, राम पुरा के माँहि॥

पुनर्जन्म और परलोक

(लेखक—रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य प्रधानपीठाधीश्वर सिंथल श्रीश्रीभगवद्दासजी शास्त्री महाराज)

पुनर्जन्मका अर्थ है—एक शरीरका त्याग करके दुबारा जन्म लेना। इसके अनेक कारण होनेपर भी, प्रधानतः अपने शुभाशुभ कर्मोंकी वासना ही मुख्य कारण है।

आशीर्वाद, शाप, भगवदाज्ञा आदिसे भी जन्म धारण किये जाते हैं। संतोंके द्वारा प्रदत्त आशीर्वादसे सुन्दरदासजीका जन्म; शापसे पुराणोंमें जय-विजय, गज-ग्राह; भगवदाज्ञासे इतिहासप्रसिद्ध कारक संत—जिनका संत-मतानुसार संतोंकी वाणीमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

अमर लोक सूँ अहदि आया, हंसा कारण आप पठाया।
अमर लोक सूँ आय सिंहस्थल माँहि विराजै॥
तेज पुंज परकास, बजे अनहदके बाजै।
हरि रामा हरिहै अवतारा अंतर कला कबीरहूँ।
....

शुभाशुभ कर्मवासनासे तो सम्पूर्ण चराचर जीव जन्म लेते ही हैं। श्रीदयालजी महाराजने इस प्रकार वर्णन किया है—

दोष पदारथ त्याग मन, कह मन त्यागी होय।
रामा जब लग वासना, जन्म धरत है सोय॥
जप तप संजम जोग जिग, शील धारणा सूंन।
रामा मन की वासना, अंत धरावै जूंन॥
नव तत नासत ना भया, जब लग जन्म अनेक।
रामा सूक्ष्म जन्म का, जाणै संत विवेक॥

यहाँपर 'वासनाओंके कारण' ही संतोंने अपनी वाणीमें पुनर्जन्म होनेका दिग्दर्शन कराया है। संयम, ज्ञान तथा प्राण-अपानकी गति एक होनेपर एवं अपरिग्रह-यमकी सिद्धि होनेपर पूर्वजन्मका ज्ञान होता है।

वेद-पुराण-इतिहास तो परलोक और पुनर्जन्मकी घटनाओंसे भरे हुए हैं। इसी प्रकार संतमतमें भी संतोंके द्वारा अपने एवं दूसरोंके पुनर्जन्म तथा पूर्वजन्मकी प्रत्यक्ष घटनाएँ तथा बातें बतायी गयी हैं।

नागर ब्राह्मण रामकिशनजी जूनागढ़में निवास करते थे। बड़ोदा, अहमदाबादमें भी इनकी दुकानें थीं। ये दण्डी स्वामीके शिष्य थे। एक दिन रामकिशनजीने सत्संगमें सभीको एक पंक्तिमें बैठे हुए देखकर दण्डी स्वामीजीसे निवेदन किया कि 'महाराज! उपदेश अवश्य देवें; किंतु जरा दूर रखावें तो अच्छा।' दण्डी स्वामीने रामकिशनजीके मनकी बातको जानते हुए कहा—'तुमने भक्तिका तत्त्व नहीं पहचाना है। अतः यह त्रुटि हो गयी है; इसलिये तुमको जन्मधारण करना पड़ेगा—भगवान् जाति-अभिमान नहीं रखते, वे गर्वाशनी हैं।' तब तो रामकिशनजी घबराते हुए दण्डी स्वामीके चरणोंमें पड़कर प्रार्थना करने लगे—'महाराज! मेरा जन्म जहाँ-कहीं भी हो, मैं सदा आपके साथ रहूँ। इसलिये आपके अंशसे ही मेरा जन्म हो।'

इस प्रार्थनापर दण्डी स्वामीको भी भक्तका एवं जनहितका ध्यान करके जन्म धारण करनेकी स्वीकृति देनी पड़ी। समयानुसार दोनोंने ही शरीर त्यागा। क्रमशः जोधपुर राज्यान्तर्गत वीकोकोरमें दण्डी स्वामीने शरीर धारण किया, जिनका नाम श्रीरामदासजी हुआ। इन्हीं श्रीरामदासजीके यहाँ उन्हीं रामकिशनजीने वि० सं० १८१६ मार्गशीर्ष शुक्ला ११ के दिन अवतार लिया। यहाँपर इनका नाम श्रीदयालजी रक्खा गया। बड़े होनेपर जब आप अहमदाबाद पधारे, तब वहाँपर रामकिशनजीके पद सुनाये तो आप उनकी अगली पंक्ति पहले ही कहनी प्रारम्भ कर दी तथा पूर्वजन्मका संचित धन एवं सबका परिचय नामोल्लेख बता दिया। श्रीअर्जुनदासजीने इसका वर्णन 'पूर्वजन्मकी' इस प्रकार किया है—

विश्वमें पुनर्जन्म-सिद्धान्तकी व्यापकता

(श्रीरामनाथजी 'सुमन' द्वारा संकलित)

१–हिंदूधर्ममें पुनर्जन्म-सिद्धान्तका एक प्रधान स्थान है। वेद-वेदाङ्ग, दर्शन, स्मृति, पुराण सर्वत्र इसे देखा जा सकता है। चार्वाक-दर्शनके अतिरिक्त और सब दर्शन उसे मानते हैं।

२–बौद्ध और जैन-धर्म भी अपने-अपने ढंगसे इसे मर्यादित रूपमें स्वीकार करते हैं।

३–प्राचीन मिस्रमें भी प्रेतात्मा और पुनर्जन्मका सिद्धान्त माना जाता था।

४–प्राचीन यूनानके थेल्स, एम्पिदाक्लीज, फिरिसाइडिस, प्लेटो तथा पैथागोरस इत्यादि दार्शनिक इसे स्वीकार करते हैं।

५–रोमन भी इसे मानते थे, जैसा कि सिसरो, वर्जिल तथा ओविदकी रचनाओंमें प्रकट है।

६–पुराने यूरोपकी अनेक जातियोंमें पुनर्जन्मका विश्वास प्रचलित था।

७–अमेरिकाके आदिनिवासी रेड इण्डियन तथा जापानी, चीनी, तिब्बती और बर्मी लोग भी इसे मानते हैं।

८–मैक्सिकोके प्राचीन निवासियोंमें यह विश्वास प्रचलित था।

९–सीरियन सम्प्रदाय 'कार्डिसिनीज'का एक सूक्ष्म शरीरमें विश्वास था।

१०–संस्कृतके अनेक महाकवियोंके अलावा, अंग्रेजीके टेनीसन, ब्राउनिंग, वर्ड्सवर्थ इत्यादि कवियों तथा इमर्सन-सरीखे चिन्तकोंकी रचनाओंमें भी इसका प्रतिपादन मिलता है।

११–मैक्समूलर कहते हैं कि 'मानवताके सर्वोत्तम चिन्तकोंने पुनर्जन्म-सिद्धान्तको स्वीकार किया है।'

१२–जोसेफुसके अनुसार यहूदी भी इसे मानते थे।

१३–ईसाने इसे स्वीकार करते हुए अपने शिष्योंसे कहा था—'जान बैपटिस्ट वस्तुतः एलिजा है।'

१४–गेटे, फिख्ते, शेलिंग तथा लेसिंग इत्यादि जर्मन दार्शनिक इसे स्वीकार करते हैं।

१५–काण्ट, ह्यूम, मैकटैगार्ट इत्यादि यूरोपीय दार्शनिक भी पुनर्जन्ममें विश्वास करते हैं।

१६–इस प्रकार इस्लामके सिवा प्रायः सभी धर्म, मत, किसी-न-किसी रूपमें पुनर्जन्म मानते हैं।

---

१. विशेष जानकारीके लिये 'पूर्वजन्म' पढ़ें। पता–'सत साहित्य संगम' बड़ा रामद्वारा, बीकानेर।

इस्लामधर्म और परलोक

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

आत्मा क्या है और इसके रहस्यपूर्ण गुण क्या हैं ! शरियत (इस्लामधर्मके शास्त्रवाक्य) इसे सामान्य जनोंपर प्रकट करनेकी आज्ञा नहीं देता । इस कारण इस्लामके सबसे बड़े प्रचारकके द्वारा भी आत्मा (रूह) के गुणोंपर सुस्पष्ट प्रकाश नहीं डाला गया है तथापि गुप्तरूपसे कुछ आत्मीय श्रेष्ठ पुरुषोंको इस सम्बन्धमें कुछ बताया गया है । उनमें निम्नलिखित पुरुषोंके नाम प्रख्यात हैं—

१. हद्रत अबूबकर सिद्दिक
२. ,, ऊमर फारूख
३. ,, उस्मान गनी
४. ,, अली मुर्तुजा
५. ,, इमाम हसन
६. ,, इमाम हुसैन
७. ,, वास कुरानी
८. ,, अबू हुरेरा

इनमें अली मुर्तुजाके सम्बन्धमें महान् नबीकी घोषणा है—'मैं ज्ञानका सुदृढ़ दुर्गमय नगर हूँ और अली इसका सदर द्वार है ।'

वर्तमान समयके आध्यात्मिक गुरुओंने भी अपने महान् नबीका अनुकरण करके अपने विशिष्ट प्रिय शिष्योंको ही आत्माके सम्बन्धमें कुछ बताया है ।

आत्माके सम्बन्धमें इस्लामधर्मके ग्रन्थ कुरानशरीफमें अल्लाहकी वाणी है—'लोग तुमसे रूहके सम्बन्धमें पूछेंगे तो उनसे कहना कि रूह मेरे मालिककी आज्ञासे उत्पन्न हुई है ।'

कुरानशरीफके एक अंशसे विदित होता है कि जगत् दो प्रकारका है—'आलमे-खलक' और 'आलमे-अमर ।'

आलमे-खलकमें मापनीय और विभाजनीय वस्तुएँ होती हैं; किंतु मनुष्यका आत्मा अमापनीय और अविभाजनीय गुणोंसे पूर्ण है । उसे सृष्टि-पदार्थोंसे निर्मित जगत्में सम्मिलित नहीं किया जा सकता ।

कुछ दार्शनिक रूहको कदीम (स्वतन्त्र, सनातन और स्वतःस्थितिवाला) बताते हैं; किंतु इस्लाम इसे स्वीकार नहीं करता ।

कुछ दूसरे दार्शनिक रूहको गुणवाचक वस्तु मानते हैं; किंतु गुणवाचक वस्तु किसी दूसरे पदार्थपर निर्भर करेगी; पर आत्मा शरीरमें स्वामीकी भाँति रहता है । उसे किसीकी सहायता अपेक्षित नहीं । इस कारण इस्लाम इसे भी स्वीकार नहीं करता ।

तीसरे वर्गका कथन है कि आत्मा हृदय और रुधिरसे निर्मित है । अतएव वह शारीरिक पदार्थ है; किंतु पदार्थ मापनीय एवं विभाजनीय होता है, इस कारण इसे भी स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

आत्मा (रूह) दो प्रकारका होता है—
१—रूहे-हैवानी (जीवात्मा)
२—रूहे-इन्सानी (परमात्मा)

'रूहे-हैवानी' जानवरोंसे लेकर मनुष्योंतकमें होती है; लेकिन रूहे-इन्सानी केवल मनुष्यमें ही होती है । इस रूहके सम्बन्धमें कुरानशरीफमें खुद अल्लाह फरमाते हैं—'उसने अपनेमेंसे निकालकर आत्माको हद्रत आदमके शरीरमें प्रविष्ट कराया ।'

रूहे-इन्सानीमें ज्ञान प्राप्त करनेकी योग्यता है और वह सृष्टिके स्वामी अल्लाह-अकबरके दर्शनका सुख प्राप्त कर सकता है । ज्ञानहीन पशु, जो ज्ञानी पशु (मनुष्य) से पृथक् है, उसे यह रूह नहीं प्राप्त होती । वह न तो कोई पदार्थ है और न किसी दूसरे पदार्थपर निर्भर रहनेवाला है । वह ईश्वरीय प्रकृतिका एक वायु-सम्बन्धी तत्त्व है । उसके गुण-रहस्य समझने कठिन हैं । वाणीसे उसका वर्णन सम्भव नहीं । शरियतमें उसकी व्याख्या न करनेका आदेश है । उसका विचार एवं व्याख्या ईश्वरीय ज्ञानके प्रेमी और उस पथपर चलनेवाले सत्पुरुष कर सकते हैं ।

इस ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये प्रारम्भमें तीन बातोंकी आवश्यकता पड़ती है—

१. इरादत (विश्वास) ।

२. बैय्यत (अल्लाह और अपने नबीपर विश्वास करना तथा उनको आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक स्वीकार करना) ।

३. रियादत (अमली उद्योग तथा अटंभावके नाशके साथ त्याग और आध्यात्मिक ज्ञान) ।

इन मार्गोंसे जो निरन्तर प्रयत्न करता रहे और सोत्साह अल्लाहकी ओर बढ़ता रहे, उसकी जिज्ञासा और प्रीति बढ़ती जाय तो उसे अल्लाहकी ओरसे मार्ग-दर्शन होता जाता है और अन्ततक वह अल्लाह तक पहुँच जाता है। कुरानशरीफमें अल्लाहकी प्रतिज्ञा है—

'जो मुझे प्राप्त करनेके लिये उद्योग-रत रहते हैं, उन्हें मैं मार्ग दिखाकर अपनेमें मिला लेता हूँ।'

साधक जबतक रियादत (क्रियात्मक उद्योग) पूरा नहीं कर लेता, तबतक उसपर परम आत्माके गुणोंको प्रकट करना बुद्धिमानीकी बात नहीं; क्योंकि प्रारम्भमें यह विषय बड़ा दुरूह प्रतीत होता है और भ्रम भी उत्पन्न हो सकता है। अतएव जीहाद (धर्मयुद्ध) में सफलता प्राप्त करनेसे पूर्व उनका ज्ञान आवश्यक है।

इस जगत्में मनुष्यका अस्तित्व उसके साकार शरीरके साथ उसकी मृत्युके साथ ही समाप्त हो जाता है। जीवकी जिससे मृत्यु होती है, वह महान् अल्लाहकी सृष्टिका उत्पन्न किया हुआ प्राणी है, जिसे 'मलकुल मौत' या 'अजरायल' कहते हैं। इसका नाम तो लोग जानते हैं किंतु इसका ज्ञान दीर्घकालिक आध्यात्मिक साधन (सूफीइज्म) पर निर्भर है।

चिकित्सा-विज्ञान एवं मानसिक दर्शनके मुसलमान डाक्टरोंके मतानुसार पशु-शरीरके हृदयका मांसखण्ड रूहे-हैवानीका बैटरी है। यह रूह न स्वतन्त्र है और न इसकी कोई स्वतःस्थिति है। वह एक गरमी है, जो पशुकी आन्तरिक रासायनिक क्रियाओंका परिणाम है। इस चिनगारी या रूहे-हैवानीसे पशुके शरीरमें प्रगति होती है। उसके मस्तिष्कमें पहुँचनेपर गरमी कम हो जाती है और पञ्चेन्द्रियाँ अपनी-अपनी शक्ति प्राप्त करती हैं।

रूहे-हैवानी अपनी साधारण स्थितिमें रहनेपर शरीरके भिन्न-भिन्न भागोंपर शासन करती है और सर्वशक्ति-सम्पन्न प्रभुकी कृपासे दैवी-जगत्का प्रकाश प्राप्त करनेमें समर्थ रहती है। किंतु किसी भी कारणसे अपनी साधारण स्थिति खो देनेपर वह उस प्रकाशको प्राप्त करनेकी शक्तिसे वञ्चित हो जाती है।

जैसे स्वच्छ दर्पणके सम्मुख आनेवाली प्रत्येक वस्तुका प्रतिबिम्ब दीखता है, किंतु यदि दर्पणपर मैल जम जाय, वह घिस जाय या उसपर धब्बा पड़ जाय तो कि[illegible] प्रतिबिम्ब उसपर नहीं पड़ेगा; इस कारण [illegible] अभाव नहीं हो जायगा। कोई भी बुद्धिमान् [illegible] कहेगा कि दर्पणकी सामान्य स्थिति नहीं रही। [illegible] जब जीवकी रूहे-हैवानी सामान्य स्थितिमें नहीं [illegible] उसमें जीवके अवयवोंकी गतिशीलता लानेकी [illegible] रह जाती और वह दैवी-जगत्का प्रकाश पानेमें [illegible] हो जाता है। जीवकी मृत्यु यही है। इस द[illegible] हैवानी मर जाती है और भविष्यमें उसकी को[illegible] नहीं रह जाती।

यह तो साधारण जीवकी मृत्युकी बात [illegible] पहले कहा जा चुका है कि मनुष्यमें रूहे-हैवानीके [illegible] एक और रूह होती है, जिसे रूहे-इन्सानी कहा [illegible] रूहे-हैवानी एक प्रकारकी गरमी या चिनगारी है [illegible] आकार होता है; किंतु रूहे-इन्सानीका कोई [illegible] नहीं होता।

वह एकाकी है और उसका विभाजन नह[illegible] उसमें एकाकी और अविभाजनीय परमात्माका [illegible] करनेकी क्षमता है। विभाजनीय वस्तु अवि[illegible] परमेश्वरका ज्ञान प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं।

आप इसे इस प्रकार समझें कि रूहे-इन्सा[illegible] है और रूहे-हैवानीके शरीर तथा अङ्ग उसके वा[illegible] रूहे-हैवानीकी सामान्य स्थिति नष्ट होते ही मनुष्य[illegible] मृत्युको प्राप्त हो जाता है; किंतु रूहे-इन्सानी उ[illegible] भी रहती है। उसका नाश नहीं होता। सिर्फ [illegible] सवारी नष्ट हो जाती है। सवारीके नष्ट होनेसे [illegible] नाश नहीं होता।

यह शरीररूपी सवारी रूहे-इन्सानीरूपी [illegible] अल्लाहो-अकबरका ज्ञान और प्रेम प्राप्त करनेके [illegible] गयी है। परमात्माके सम्बन्धमें यदि हम ज्ञान औ[illegible] आखेट-रूप मानें, तब आखेट समाप्त हो जानेपर [illegible] और शस्त्रास्त्र नष्ट हो जायँ तो आखेट करनेवाले [illegible] क्षति नहीं होती; अपितु वह उससे छुटकारा पा[illegible] प्रकारसे बोझ और चिन्तासे मुक्त हो जायगा। इस [illegible] मृत्युके सम्बन्धमें इस्लाम धर्मके महान् प्र[illegible] कथन है—

'विश्वासवादीके लिये मृत्यु एक बहुमूल्य उपहार [illegible]

किंतु यदि इसके सर्वथा विपरीत आखेटके पूर्व ही सवारी और शस्त्रास्त्र नष्ट हो जायँ तो आखेटकके लिये बड़े ही दुःख और चिन्ताकी बात होगी।

मान लीजिये, आपके हाथ या पैरमें लकवा मार दिया या वह अङ्ग काट दिया गया या सारा शरीर लकवाग्रस्त होकर निष्क्रिय हो गया। ऐसी स्थितिमें इसे शारीरिक मृत्यु कहेंगे। इससे आपके अपनेपनकी मृत्यु नहीं हो जाती। आपका वह अपनापन तो बना ही रहता है।

आप इसे दूसरी तरह समझिये। आपके सम्मुख साठ वर्षके एक वृद्ध महानुभाव हैं। आप प्रत्यक्ष देखते हैं कि उनकी बाल्यकालकी कोमल और आकर्षक काया तथा यौवनका बलशाली सुगठित शरीर अब नहीं रहा। पर वे अब भी हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आपका अपनापन आपका प्राकृतिक शरीर नहीं, अपितु व और दूसरी वस्तु है। वह आपके शरीरके नष्ट होने नहीं होता, बल्कि बना ही रहता है। सदा कायम है। आपका यह अपनापन ही गोपनीय रहस्य है। स्पर्श सम्भव नहीं। वह अनश्वर और सत्य वस्तु है ईश्वरीय अंशका वायु-तत्त्व है, जिसे हम रूहे-इ कहते हैं।

महान सूफी दार्शनिक मौलाना जलालुद्दीन कहते हैं

ज़ाँकि मर्गम हमचू जाँ खुश आमदस्त।
मर्गमन दर वास चंग अन्दरज़दस्त॥

'मृत्यु मुझे जीवन-सा प्रिय है। मेरी मौतमें बिना हुए पुनर्जीवन सम्मिलित है अर्थात् मृत्युके बाद त ही मुझे फिर पुनर्जीवन प्राप्त हो जायगा।'

[शाहमुहम्मद वदीउल आलमके अनूदित लेखका सार

भारतीय दर्शनमें आत्माके साधक तर्क

(लेखक—मुनि श्रीनथमलजी)

[प्रेषक—श्रीकमलेशजी चतुर्वेदी]

किसी भी भारतीय व्यक्तिको आमके अस्तित्वमें कोई संदेह नहीं है; क्योंकि वह प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष-सिद्ध वस्तुके विषयमें कोई संदेह नहीं होता। जिन देशोंमें आम नहीं होता, उन देशोंकी जनताके लिये आम परोक्ष है। परोक्ष वस्तुके विषयमें या तो हमारा ज्ञान ही नहीं होता, यदि सुन या पढ़कर ज्ञान होता है तो वह साधक-बाधक तर्कोंकी कसौटीसे कसा हुआ होता है। साधक प्रमाण बलवान् होते हैं तो हम परोक्ष वस्तुके अस्तित्वको स्वीकार कर लेते हैं और बाधक प्रमाण बलवान् होते हैं तो हम उसके अस्तित्वको नकार देते हैं।

भारतमें जैसे आम प्रत्यक्ष है, वैसे ही आत्मा प्रत्यक्ष होता तो भारतीय दर्शनका विकास आठ आना ही हुआ होता। आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है। उसका चिन्तन-मन्थन, मनन और दर्शन भारतमें इतना हुआ है कि आत्मवाद भारतीय दर्शनका प्रधान अङ्ग बन गया। यहाँ अनात्मवादी भी रहे हैं; किंतु आत्मवादियोंकी तुलनामें आटेमें नमक जितने ही रहे हैं। अनात्मवादियोंकी संख्या भले कम रही हो, उनके तर्क कम नहीं रहे हैं। उन्होंने समय-समयपर आत्माके बाध तर्क प्रस्तुत किये हैं। उनके विपक्षमें आत्मवादियोंद्वा आत्माके साधक तर्क प्रस्तुत किये गये। संक्षेपमें उनका वर्ग करण इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) **स्वसंवेदन**—अपने अनुभवसे आत्मा अस्तित्व सिद्ध होता है। 'मैं हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ'— यह अनुभव शरीरको नहीं होता; किंतु उसे होता है, जो शरीरसे भिन्न है।

शंकराचार्यके शब्दोंमें—'सर्वोऽप्यात्मास्तित्वं प्रत्येति न नाहमस्मीति।'—सबको यह विश्वास होता है कि 'मैं हूँ।' यह विश्वास किसीको नहीं होता कि 'मैं नहीं हूँ।'

(२) **अत्यन्ताभाव**—इस तार्किक नियमके अनुसार चेतन और अचेतनमें त्रैकालिक विरोध है। जैन आचार्योंके शब्दोंमें 'न कभी ऐसा हुआ है, न हो रहा है और न होगा कि जीव अजीव बन जाय और अजीव जीव बन जाय।'

(३) उपादानकारण—इस तार्किक नियमके अनुसार जिस वस्तुका जैसा उपादानकारण होता है, वह उसी रूपमें परिणत होती है। अचेतनके उपादान चेतनमें नहीं बदल सकते।

(४) सत्-प्रतिपक्ष—जिसके प्रतिपक्षका अस्तित्व नहीं है, उसके अस्तित्वको तार्किक समर्थन नहीं मिल सकता। यदि चेतन नामक सत्ता नहीं होती तो न चेतन=अचेतन—इस अचेतन सत्ताका नामकरण और बोध ही नहीं होता।

(५) बाधक प्रमाणका अभाव—अनात्मवादी—आत्मा नहीं है; क्योंकि उसका कोई साधक प्रमाण नहीं मिलता। आत्मवादी—आत्मा है, क्योंकि उसका कोई बाधक प्रमाण नहीं मिलता।

(६) सत्का निषेध—जीव यदि न हो तो उसका निषेध नहीं किया जा सकता। असत्का निषेध नहीं होता; जिसका निषेध होता है, वह अवश्य होता है।

निषेधके चार प्रकार हैं—

१. संयोग।

२. समवाय।

३. सामान्य।

४. विशेष।

मोहन घरमें नहीं है—यह संयोग-प्रतिषेध है। इसका अर्थ यह नहीं कि मोहन है ही नहीं, किंतु 'वह घरमें नहीं है' इस 'गृह-संयोग' का प्रतिषेध है।

खरगोशके सींग नहीं होते—यह समवाय-प्रतिषेध है। खरगोश भी होता है और सींग भी; इनका प्रतिषेध नहीं है। यहाँ केवल 'खरगोशके सींग'—इस समवायका प्रतिषेध है।

दूसरा चाँद नहीं है—इसमें चन्द्रके सर्वथा अभावका प्रतिपादन नहीं, किंतु उसके सामान्य-मात्रका निषेध है।

मोती घड़े-जितने बड़े नहीं हैं—इसमें मुक्ताका अभाव नहीं; किंतु 'उस घड़े-जितने बड़े'—यह जो विशेषण है, उसका प्रतिषेध है।

आत्मा नहीं है, इसमें आत्माका निषेध नहीं होता। उसका किसीके साथ होनेवाले संयोगका निषेध है।

(७) इन्द्रिय-प्रत्यक्षका वैकल्य—यदि इन्द्रिय-प्रत्यक्ष नहीं होनेसे मानसे आत्माका अस्तित्व नकारा जाय तो प्रत्येक सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट (दूरस्थ) वस्तुके अस्तित्वका अस्वीकार करना होगा। इन्द्रिय-प्रत्यक्षसे मूर्त्त-तत्त्वका ग्रहण होता है। आत्मा अमूर्त-तत्त्व है, इसलिये इन्द्रियाँ उसे नहीं जान पातीं। इससे इन्द्रिय-प्रत्यक्षका वैकल्प सिद्ध होता है, आत्माका अनस्तित्व सिद्ध नहीं होता।

(८) गुणद्वारा गुणीका ग्रहण—चैतन्य गुण है और चेतन गुणी। चैतन्य प्रत्यक्ष है, चेतन प्रत्यक्ष नहीं है। परोक्ष गुणीकी सत्ता प्रत्यक्ष गुणसे प्रमाणित हो जाती है। भौंहारेमें बैठा आदमी प्रकाशको देखकर सूर्योदयका ज्ञान कर लेता है।

(९) विशेष गुणद्वारा स्वतन्त्र अस्तित्वका बोध—वस्तुका अस्तित्व उसके विशेष गुणद्वारा सिद्ध होता है। स्वतन्त्र पदार्थ वही होता है, जिसमें ऐसा त्रिकालवर्ती गुण मिले, जो किसी दूसरे पदार्थमें न मिले। आत्मामें चैतन्य नामक विशेष गुण है। वह दूसरे किसी भी पदार्थमें व्याप्त नहीं है, इसीलिये आत्माका दूसरे सभी पदार्थोंसे स्वतन्त्र अस्तित्व है।

(१०) संशय—जो यह सोचता है कि 'मैं नहीं हूँ' वही जीव है। अचेतनको अपने अस्तित्वके विषयमें कभी संशय नहीं होता। 'यह है या नहीं' ऐसी ईहा या विकल्प चेतनके ही होता है। सामने जो लम्बा-चौड़ा पदार्थ दीख रहा है, 'वह खंभा है या आदमी'—यह विकल्प सचेतन व्यक्तिके ही मनमें उठता है।

(११) द्रव्यकी त्रैकालिकता—जो पहले-पीछे नहीं है, वह मध्यमें नहीं हो सकता। जीव एक स्वतन्त्र द्रव्य है, वह यदि पहले न हो और पीछे भी न हो तो वर्तमानमें भी नहीं हो सकता।

(१२) संकलनात्मक ज्ञान—इन्द्रियोंका अपना-अपना निश्चित विषय होता है। एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रियके विषयको नहीं जान सकती। इन्द्रिय ही ज्ञाता हो, उनका प्रवर्तक आत्मा ज्ञाता न हो तो सब इन्द्रियोंके विषयोंका संकलनात्मक ज्ञान नहीं हो सकता। फिर 'मैं स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्दको जानता हूँ'—इस प्रकार संकलनात्मक ज्ञान किसे होगा? ककड़ीको चबाते समय स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द—इन पाँचोंको जान रहा हूँ, ऐसा ज्ञान होता है।

(१३) स्मृति—इन्द्रियोंके नष्ट हो [illegible] उनके द्वारा जाने हुए विषयोंकी स्मृति रहती [illegible]

कोई वस्तु देखी, कानसे कोई बात सुनी, संयोगवश आँख फूट गयी और कानका पर्दा फट गया, फिर भी दृष्ट और श्रुतकी स्मृति रहती है।

संकल्पनात्मक ज्ञान और स्मृति मनके कार्य हैं। मन आत्माके बिना चालित नहीं होता। आत्माके अभावमें इन्द्रिय और मन—दोनों निष्क्रिय हो जाते हैं। अतः दोनोंके ज्ञानका मूलस्रोत आत्मा है।

(१४) ज्ञेय और ज्ञाताका पृथक्त्व—ज्ञेय, इन्द्रिय और आत्मा—ये तीनों भिन्न हैं। आत्मा ग्राहक है, इन्द्रिय ग्रहणके साधन हैं और पदार्थ ग्राह्य है। लोहार संडासीसे लोहपिण्डको पकड़ता है। लोहपिण्ड ग्राह्य है, संडासी ग्रहणका साधन है और लोहार ग्राहक है। ये तीनों पृथक्-पृथक् हैं। लोहार न हो तो संडासी लोहपिण्डको नहीं पकड़ सकती। आत्माके चले जानेपर इन्द्रिय और मन अपने विषयको ग्रहण नहीं कर पाते।

(१५) पूर्व संस्कारकी स्मृति—नव-शिशुके हर्ष, भय, शोक आदि होते हैं। उनका कारण पूर्वजन्ममें किये हुए आहारके अभ्याससे ही होता है। जिस प्रकार युवकका शरीर बालक-शरीरकी उत्तरवर्ती अवस्था है, वैसे ही बालकका शरीर पूर्वजन्मके बादमें होनेवाली अवस्था है। यह देह-प्राप्तिकी अवस्था है। इसका जो अधिकारी है, वह आत्म देही है।

वर्तमानके सुख-दुःख अन्य सुख-दुःखपूर्वक होते हैं। सुख-दुःखका अनुभव वही कर सकता है, जो पहले उनका अनुभव कर चुका है। नव-शिशुको जो सुख-दुःखका अनुभव होता है, वह भी पूर्व-अनुभवयुक्त है। जीवनका मोह और मृत्युका भय पूर्वबद्ध संस्कारोंका परिणाम है। यदि पूर्वजन्ममें इनका अनुभव न हुआ होता तो नवोत्पन्न प्राणियोंमें ऐसी वृत्तियाँ नहीं मिलतीं।

इस प्रकार भारतीय आत्मवादियोंने बहुमुखी तर्कोंद्वारा आत्मा और पुनर्जन्मका समर्थन किया है।

जैनधर्मका कर्मवाद

(लेखक—पं० श्रीचैनसुखदासजी न्यायतीर्थ)

'कर्म'को समझनेके लिये 'कर्मवाद'को समझनेकी जरूरत है। 'वाद'का अर्थ सिद्धान्त है। जो वाद कर्मोंकी उत्पत्ति, स्थिति और उनकी रस देने आदि विविध विशेषताओंका वैज्ञानिक विवेचन करता है, वह 'कर्मवाद' है। जैन-शास्त्रोंमें कर्मवादका बड़ा गहन विवेचन है। कर्मोंके सर्वाङ्गीण विवेचनसे जैन-शास्त्रोंका एक बहुत बड़ा भाग सम्बन्धित है। कर्म स्कन्ध-परमाणु समूह होनेपर भी हमें दीखता नहीं। आत्मा, परलोक, मुक्ति आदि अन्य दार्शनिक तत्त्वोंकी तरह वह भी अत्यन्त परोक्ष है। उसकी कोई भी विशेषता इन्द्रिय-गोचर नहीं है। कर्मोंका अस्तित्व प्रधानतया आप्त-प्रणीत आगमके द्वारा ही प्रतिपादित किया जाता है। जैसे आत्मा आदि पदार्थोंका अस्तित्व सिद्ध करनेके लिये आगमके अतिरिक्त अनुमानका सहारा लिया जाता है, वैसे ही कर्मोंकी सिद्धिमें अनुमानका आश्रय भी लिया गया है।

इस कर्मवादको समझनेके लिये सचमुच तीक्ष्ण बुद्धि और अध्यवसायकी जरूरत है। जैन-ग्रन्थकारोंने इसे समझनेके लिये स्थान-स्थानपर गणितका उपयोग किया है। अवश्य ही यह गणित लौकिक गणितसे बहुत भिन्न है। जहाँ लौकिक गणितकी समाप्ति होती है, वहाँ इस अलौकिक गणितका प्रारम्भ होता है। कर्मोंका ऐसा सर्वाङ्गीण वर्णन शायद ही संसारके किसी वाङ्मयमें मिले। जैन-शास्त्रोंको ठीक समझनेके लिये कर्मवादको समझना अनिवार्य है।

कर्मोंके अस्तित्वमें तर्क

संसारका प्रत्येक प्राणी परतन्त्र है। यह पौद्गलिक (भौतिक) शरीर ही उसकी परतन्त्रताका द्योतक है। बहुत-से अभाव और अभियोगोंका वह प्रतिक्षण शिकार बना रहता है। वह अपने आपको सदा पराधीन अनुभव करता है। इस पराधीनताका कारण जैन-शास्त्रोंके अनुसार कर्म है। जगत्में अनेक प्रकारकी विषमताएँ हैं। आर्थिक और सामाजिक विषमताओंके अतिरिक्त जो प्राकृतिक विषमताएँ हैं, उनका कारण मनुष्यकृत नहीं हो सकता। जब सबमें एक-सा आत्मा है, तब मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट और वृक्ष-लताओं आदिके विभिन्न शरीरों और उनके सुख-दुःख आदिका कारण क्या है? कारणके बिना कोई कार्य नहीं

हो सकता। जो कोई इन विषमताओंका कारण है, वही 'कर्म' है—कर्मसिद्धान्त यही कहता है।

'सबको जीवनकी सुविधाएँ समानरूपसे प्राप्त हों और सामाजिक दृष्टिसे कोई ऊँच-नीच नहीं माना जाय'—मानव-मात्रमें यह व्यवस्था प्रचलित हो जानेपर भी मनुष्यकी व्यक्तिगत विषमता कभी कम नहीं होगी। यह कभी सम्भव नहीं है कि मनुष्य एक-से बुद्धिमान् हों, एक-सा उनका शरीर हो; उनके शारीरिक अवयवों और सामर्थ्यमें कोई भेद न हो। कोई स्त्री, कोई पुरुष और किसीका नपुंसक होना दुनियाँके किसी क्षेत्रमें बंद नहीं होगा। इन प्राकृतिक विषमताओंको न कोई शासन बदल सकता है और न कोई वाद या समाज। ये सब विविधताएँ तो साम्यवादकी चरम सीमापर पहुँचे हुए देशोंमें भी बनी ही रहेंगी। इन सब विषमताओंका कारण प्रत्येक आत्माके साथ रहनेवाला कोई विजातीय पदार्थ है और वह पदार्थ 'कर्म' है।

कर्म आत्माके साथ कबसे हैं और कैसे उत्पन्न होते हैं ?

आत्मा और कर्मका सम्बन्ध अनादि है। जबसे आत्मा है, तबसे ही उसके साथ कर्म लगे हुए हैं। प्रत्येक समय पुराने कर्म अपना फल देकर आत्मासे अलग होते रहते हैं और आत्माके राग-द्वेषादि भावोंके द्वारा नये कर्म बँधते रहते हैं। यह क्रम तबतक चलता रहता है, जबतक आत्मा-की मुक्ति नहीं होती। जैसे अग्निमें बीज जल जानेपर बीजकी परम्परा समाप्त हो जाती है, वैसे ही राग-द्वेषादि विकृत भावोंके नष्ट हो जानेपर कर्मोंकी परम्परा आगे नहीं चलती। कर्म अनादि होनेपर भी सान्त हैं। यह व्याप्ति नहीं है कि जो अनादि हो, उसे अनन्त भी होना चाहिये। नहीं तो, बीज और वृक्षकी परम्परा कभी समाप्त नहीं होगी।

यह पहले कहा है कि प्रतिक्षण आत्मामें नये-नये कर्म आते रहते हैं। कर्मबद्ध आत्मा अपने मन, वचन और कायकी क्रियासे ज्ञानावरणादिक आठ कर्मरूप और औ-दारिकादि चार शरीररूप होकर योग्य पुद्गल स्कन्धोंका ग्रहण करता रहता है। आत्मामें कषाय हो तो यह पुद्गल स्कन्ध कर्मबद्ध आत्माके चिपट जाते हैं—ठहरे रहते हैं। कषाय (राग-द्वेष) की तीव्रता और मन्दताके अनुसार आत्माके साथ ठहरनेकी काल-मर्यादा कर्मोंका 'स्थितिबन्ध' कहलाता है। कषायके अनुसार ही वे फल देते हैं। यही 'अनुभवबन्ध' या 'अनुमानबन्ध' कहलाता है। योग कर्मोंको लाते हैं और आत्माके साथ उनका सम्बन्ध जोड़ते हैं। कर्मोंमें नाना स्वभावोंको पैदा करना भी योगका ही काम है। कर्म स्कन्धोंमें, जो परमाणुओंकी संख्या होती है, उसका कम-ज्यादा होना भी योगहेतुक है। ये दोनों क्रियाएँ क्रमशः 'प्रकृतिबन्ध' और 'प्रदेशबन्ध' कहलाती हैं।

कर्मोंके भेद और उनके कारण

कर्मके मुख्य आठ भेद हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। जो कर्म ज्ञानको न प्रकट होने दे, वह ज्ञानावरणीय; जो इन्द्रियोंको पदार्थोंसे प्रभावान्वित नहीं होने दे, वह दर्शना-वरणीय; जो सुख-दुःखका कारण उपस्थित करे अथवा जिससे सुख-दुःख हो वह वेदनीय; जो आत्माभरण न होने दे, वह मोहनीय; जो आत्माको मनुष्य, तिर्यञ्च, देव और नारकके शरीरमें रोक रक्खे, वह आयु; जो शरीरकी नाना अवस्थाओं आदिका कारण हो, वह नाम; जिससे ऊँच-नीच कहलावे, वह गोत्र और जो आत्माकी शक्ति आदिके प्रकट होनेमें बिघ्न डाले, वह अन्तराय कर्म है।

संसारी जीवके कौन-कौन-से कार्य किस-किस कर्मके आस्रवके कारण हैं—यह जैन-शास्त्रोंमें विस्तारके साथ बतलाया गया है। उदाहरणार्थ—ज्ञानके प्रकारमें बाधा देना, ज्ञानके साधनोंको छिन्न-भिन्न करना, प्रशस्त ज्ञानमें दूषण लगाना, आवश्यक होनेपर भी अपने ज्ञानको प्रकट न होने देना आदि अनेकों कार्य ज्ञानावरणीय कर्मके आस्रवके कारण हैं। इसी प्रकार अन्य कर्मोंके आस्रवके कारणोंको भी जानना चाहिये। जो कर्म आस्रवसे बचना चाहते हैं, वह उन कर्मोंसे विरक्त रहे, जो किसी भी कर्मके आस्रवके कारण हैं। तत्त्वार्थसूत्रके छठे अध्यायमें आस्रवके कारणोंका जो विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है, वह हृदयङ्गम करने योग्य है।

कर्म आत्माके गुण नहीं

कुछ दार्शनिक कर्मोंको आत्माका गुण मानते हैं। पर जैन-मान्यता इसे स्वीकार नहीं करती। अगर पुण्य-पाप-रूप कर्म आत्माके गुण हों तो वे कभी उसके बन्धनके कारण नहीं हो सकते। यदि आत्माका गुण स्वयं ही उसे बाँधने लगे तो कभी उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। बन्धन

मूल वस्तुसे भिन्न होता है; बन्धनका विजातीय होना जरूरी है । यदि कर्मोंको आत्माका गुण माना जाय तो कर्मनाश होनेपर आत्माका नाश भी अवश्यम्भावी है; क्योंकि गुण और गुणी सर्वथा भिन्न-भिन्न नहीं होते । बन्धन आत्माकी स्वतन्त्रताका अपहरण करता है; किंतु अपना ही गुण अपनी ही स्वतन्त्रताका अपहरण नहीं कर सकता । पुण्य और पाप नामक कर्मोंको यदि आत्माका गुण मान लिया जाय तो इनके कारण आत्मा पराधीन नहीं होगा; और यह तर्क एवं प्रतीति सिद्ध है कि ये दोनों आत्माको परतन्त्र बनाये रखते हैं—इसलिये ये आत्माके गुण नहीं; किंतु सर्वथाः भिन्न द्रव्य हैं । ये भिन्न द्रव्य पुद्गल हैं । यह रूप, रस, गन्ध और स्पर्शवाला एवं जड है । जब राग-द्वेषादि विकृतियोंके द्वारा आत्माके ज्ञानादि गुणोंको घातनेका सामर्थ्य जड पुद्गलमें उत्पन्न हो जाता है, तब यही 'कर्म' कहलाने लगता है । यह सामर्थ्य दूर होते ही यही पुद्गल दूसरी पर्याय धारण कर लेता है ।

कर्म आत्मासे कैसे अलग होते हैं ?

आत्मा और कर्मोंका संयोग सम्बन्ध है । इसे ही जैन-परिभाषामें 'एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध' कहते हैं । संयोग तो अस्थायी होता है । आत्माके साथ कर्म-संयोग भी अस्थायी है । अतः इसका विघटन अवश्यम्भावी है । खानसे निकले हुए स्वर्णपाषाणमें स्वर्णके अतिरिक्त विजातीय वस्तु भी है । वही उसकी अशुद्धताका कारण है । जबतक वह अशुद्धता दूर नहीं होती, उसे सुवर्णत्व प्राप्त नहीं होता । जितने अंशोंमें वह विजातीय संयोग रहता है, उतने अंशोंमें सोना अशुद्ध रहता है । यही हाल आत्माका है । कर्मोंकी अशुद्धताको दूर करनेके लिये आत्माको बलवान् प्रयत्न करने पड़ते हैं । इन्हीं प्रयत्नोंका नाम 'तप' है । तपका प्रारम्भ भीतरसे होता है । बाह्य तपोंको जैन-शास्त्रोंमें कोई महत्त्व नहीं दिया गया है । आभ्यन्तर तपकी वृद्धिके लिये जो बाह्य तप अनिवार्य हैं, वे स्वतः ही हो जाते हैं । तपोंका जो अन्तिम भेद 'ध्यान' है, वही कर्मनाशका कारण है । श्रुतज्ञानकी निश्चल पर्यायें ही 'ध्यान' हैं । यह ध्यान उन्हींको प्राप्त होता है, जिनका आत्मोपयोग शुद्ध है । शुद्धोपयोग ही मुक्तिका साक्षात् कारण अथवा मुक्तिका स्वरूप है । आत्माकी पाप और पुण्यरूप प्रवृत्तियाँ उसे संसारकी ओर खींचती हैं । जब इन प्रवृत्तियोंसे वह उदासीन हो जाता है, तब नये कर्मोंका आना रुक जाता है । इसे जैन-शास्त्रोंकी परिभाषामें 'संवर' कहा गया है । संवर—हो जानेपर जो पूर्वसंचित कर्म हैं, वे अपना रस देकर आत्मासे अलग हो जाते हैं और नये कर्म आते नहीं; तब आत्माकी मुक्ति हो जाती है । एक बार कर्मबन्धनसे आत्मा अलग होकर फिर कभी कर्मोंसे सम्पृक्त नहीं होता । मुक्तिका प्रारम्भ है; पर अन्त नहीं है । वह अनन्त है । मुक्ति ही आत्माका चरम पुरुषार्थ है । इसकी प्राप्ति अभेदरत्नत्रयसे होती है । जैन-शास्त्रोंमें कर्मोंके नाश होनेका अर्थ है—आत्मासे उनका सदाके लिये अलग हो जाना । यह तर्कसिद्ध है कि किसी पदार्थका कभी नाश नहीं होता; उसका केवल रूपान्तर होता है । पदार्थ पूर्व-पर्यायको छोड़कर उत्तर-पर्याय ग्रहण कर लेता है । कर्म-पुद्गल कर्मत्व-पर्यायको छोड़कर दूसरी पर्याय धारण कर लेते हैं । उसके विनाशका यही अर्थ है—

'सतो नात्यन्तसंक्षयः ।' (आप्तपरीक्षा)

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।' (गीता)

'नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गल-भावतोऽस्ति ।' (स्वयम्भू स्तोत्र)

आदि जैन-अजैन महान् दार्शनिक सत्‌के विनाशका और असत्‌के उत्पादका स्पष्ट विरोध करते हैं । जैसे साबुन आदि फेनिल पदार्थोंसे धोनेपर कपड़ेका मैल नष्ट हो जाता है, अर्थात् दूर हो जाता है, वैसे ही आत्मासे कर्म दूर हो जाते हैं । यही कर्मनाश, कर्ममुक्ति अथवा कर्मभेदनका अर्थ है । जैसे आगमें तपानेकी विशिष्ट प्रक्रियासे सोनेका विजातीय पदार्थ उससे पृथक् हो जाता है, वैसे ही तपस्यासे कर्म दूर हो जाता है ।

सबको उनका हिस्सा देकर खाओ

जो कुछ है, मिलता है, तुमको उसमें सबका हिस्सा जान ।
करते रहो नित्य उसमेंसे यथायोग्य सबको ही दान ॥
फिर जो बचा हुआ खाओगे, होगा वह शुचि सुधा समान ।
उससे यहाँ-वहाँ पाओगे तुम निश्चित सुख शान्ति महान् ॥

जैनधर्ममें आत्मा, पुनर्जन्म और कर्म सिद्धान्त

(लेखक—श्रीकैलाशचन्द्रजी शास्त्री)

'आत्मा', 'पुनर्जन्म' और 'कर्मसिद्धान्त'—ये तीनों परस्परमें अनुस्यूत हैं। आत्माका स्वतन्त्र अस्तित्व माननेपर शेष दोनोंको भी मानना ही पड़ता है। जैनधर्ममें आत्माका स्वतन्त्र अस्तित्व है। छः द्रव्योंमें एक 'जीव' या 'आत्मा' नामका भी द्रव्य है।

जैनदर्शन एक 'द्रव्य' नामका पदार्थ ही मानता है और उसे इस रूपमें मानता है कि उसके माननेपर उसे अन्य किसी पदार्थके माननेकी आवश्यकता नहीं रहती। गुण और पर्यायोंके आधारको 'द्रव्य' कहते हैं। वे गुण और पर्याय द्रव्यके ही आत्मस्वरूप हैं; अतः वे किसी भी दशामें द्रव्यसे जुदे हो नहीं सकते। द्रव्यके परिणत होनेकी दशाको पर्याय कहते हैं। 'पर्याय' सदा बदलती रहती है। अन्य दर्शन किसीको नित्य और किसीको अनित्य कहते हैं; किंतु जैनदर्शन कहता है—

आदीपमाव्योमसमस्वभावं
स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु।
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यत्
इति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः॥

यह बात नहीं है कि आकाश नित्य हो और दीपक अनित्य हो, दीपकसे लेकर आकाशपर्यन्त सभी एक स्वभाववाले हैं; कोई भी वस्तु उस स्वभावका अतिक्रमण नहीं कर सकती; क्योंकि सभीपर स्याद्वाद अर्थात् अनेकान्त स्वभावकी छाप लगी हुई है। जो जैनशास्त्रोंको नहीं मानते, वे ही किसीको नित्य और किसीको अनित्य कहते हैं।

जैनदर्शन 'स्याद्वादी' या 'अनेकान्तवादी' है। स्याद्वादमें 'स्यात्' शब्द 'अनेकान्त' रूप अर्थका वाचक है। अतएव स्याद्वादका अर्थ अनेकान्तवाद कहा जाता है। अपेक्षा-भेदसे एक ही वस्तुमें परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले अनेक धर्म पाये जाते हैं। जैसे प्रत्येक वस्तु द्रव्यरूपसे नित्य और पर्याय-रूपसे अनित्य प्रतीत होती है। इसीको 'अनेकान्तवाद' कहते हैं।

अरूप, अगन्ध, अव्यक्त, अशब्द, अरस, चैतन्यस्वरूप और इन्द्रियोंके द्वारा अग्राह्य कहा है। यह आत्मद्रव्यका यथार्थ स्वरूप है। संसारी आत्माका स्वरूप द्रव्यरूपसे तो वही है, जो आत्मद्रव्यका यथार्थ स्वरूप है; किंतु उसके राग कर्मकी उपाधि लगी है; अतः संसारी आत्मा भी चैतन्यस्वरूप है, कर्ता है, भोक्ता है, अपने शरीरके बराबर परिमाणवाला है और कर्मोंसे संयुक्त होनेके कारण मूर्तिक है।

जैनधर्ममें जीवके दो प्रकार हैं—'संसारी' और 'मुक्त'। प्रारम्भमें सभी जीव संसारी होते हैं और संसारके बन्धनसे छूटनेपर ही मुक्त होते हैं। अनादि नित्यमुक्त जीव जैनदर्शनमें कोई नहीं है। प्रत्येक जीवकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता है और मुक्त होनेपर भी उसकी वह स्वतन्त्र सत्ता बनी रहती है; क्योंकि सत्का कभी नाश नहीं होता और असत्की कभी उत्पत्ति नहीं होती। जैनदर्शनकी मान्यताके अनुसार प्रत्येक संसारी जीव अनादिकालसे कर्मबन्धनसे बद्ध है। यह कर्मबन्धन उसीकी अनादि भूलका परिणाम है; किसी दूसरेने उसे नहीं बाँधा है। आचार्य कुन्दकुन्दने जीवके गुणोंका कथन करते हुए उसके एक 'प्रभुत्व' गुणका भी कथन किया है। जीव बन्ध और मोक्षका स्वामी स्वयं है। उसका बन्ध किसी अन्यके कर्तृत्वका परिणाम नहीं है और न बन्धनसे मुक्ति ही किसी अन्यके कर्तृत्वका परिणाम है; वह स्वयं ही अपनी करनीसे बद्ध होता है और स्वयं ही अपनी करनीसे मुक्त होता है।

कर्मसिद्धान्त

कर्मबन्धनके सम्बन्धमें भी जैनदर्शनकी अपनी एक विशेष मान्यता है। कर्मके दो प्रकार हैं—'भावकर्म' और 'द्रव्यकर्म'। जीवके राग-द्वेषरूप विकार भावोंको भावकर्म कहते हैं। जैनदर्शनकी मान्यताके अनुसार इस लोकमें सर्वत्र पौद्गलिक कर्मवर्गणाएँ भरी हुई हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म हैं। ये कर्मवर्गणाएँ जीवके राग-द्वेषरूप परिणामोंका निमित्त मिलनेपर स्वयं ही उस जीवके प्रति आकृष्ट होती हैं ...

को अनुभागबन्ध कहते हैं और आत्माके साथ कर्मरूपसे नेकी शक्तिको स्थितिबन्ध कहते हैं।

बन्धके चार प्रकार हैं—प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, तिबन्ध, अनुभागबन्ध। इनमेंसे आदिके दो बन्ध योगसे अन्तके दो बन्ध कषायके निमित्तसे होते हैं। मन, वचन कायसे युक्त जीवकी जो शक्ति कर्मोंको आकृष्ट करनेमें त्त होती है, उसे 'योग' कहते हैं और क्रोधादिरूप को 'कषाय' कहते हैं। योगकी उपमा हवासे और यकी उपमा गोंदसे दी जाती है। तथा कर्मकी उपमा से दी जाती है। जैसे हवाकी तीव्रता और मन्दताके सार धूल उड़ती है, वैसे ही जीवकी मानसिक, वाचनिक कायिक प्रवृत्तिकी तीव्रता और मन्दताके अनुसार के प्रति कर्मरजका आकर्षण होता है। तथा, जैसे उड़ी धूल दीवारपर लगे हुए पानी या चिपकानेवाली गोंद की चिपकाहटके अनुसार चिपक जाती है, वैसे ही से आकृष्ट हुए कर्मपरमाणु जीवके कषायरूप भावोंकी ता या मन्दताके अनुसार जीवके साथ अधिक या कम ते और अनुभागको लिये हुए बँध जाते हैं।

जैसे भोजनका एक ग्रास पाचनयन्त्रमें जाकर रस, रुधिर सप्तधातुरूपमें परिणत हो जाता है, वैसे ही जीवके आकृष्ट हुए कर्मपरमाणु भी आठ कर्मोंमें विभाजित जाते हैं—

१. ज्ञानावरण कर्म—जो कर्म जीवके ज्ञानगुणको ता है।

२. दर्शनावरण कर्म—जो कर्म जीवके दर्शन-गुणको ता है।

३. मोहनीय कर्म—जो कर्म जीवको मोहित करके उसके आदि गुणोंको विकृत करता है।

४. अन्तराय कर्म—जो कर्म जीवके वीर्य आदि गुणोंका क है।

५. वेदनीय कर्म—जो कर्म जीवको सुख-दुःख देता है।

६. आयुकर्म—जो कर्म जीवको मनुष्य आदिके शरीरमें क आयुतक रोके रखता है और मृत्यु नहीं होने देता।

७. नामकर्म—जो कर्म जीवके शरीरादिका निर्माण ता है।

८. गोत्रकर्म—जिस कर्मके उदयसे नीच या उच्च कु जन्म होता है। इन आठ कर्मोंके भी अवान्तर बहु भेद-प्रभेद हैं।

जब किसी बद्ध कर्मकी स्थिति पूरी होती है, तो अपना फल देता है और देकर छूट जाता है। इस त द्रव्यकर्मके उदयसे भावकर्म होते हैं और भावकर्मसे द्रव्यक का बन्ध होता है। पूर्वबद्ध कर्म ही नवीन कर्मबन्धमें निमि होते हैं। इस तरह संसारकी प्रक्रिया तबतक चलती जबतक इस बन्धसे छुटकारा नहीं मिल जाता। इस जी पुद्गल कर्मचक्रका वर्णन आचार्य कुन्दकुन्दने अपने 'पञ्चास्ति काय' नामक ग्रन्थमें इस प्रकार किया है—

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी॥१२८
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणी जायंते।
तेहिं दु विषयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा॥१२९
जायदि जीवस्सेवं भावो संसार चक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहि भणिदो अणादिणिधणो सणिधणोवा॥

'यहाँ जो संसारी जीव है, उसके अनादि बन्धनरू उपाधिके वश स्निग्ध (राग-द्वेषरूप) परिणाम होते हैं परिणामसे पुद्गलपरिणामात्मक नवीन कर्मोंका बन्ध होत है। उस कर्मके उदयसे नरक आदि गतियोंमें जाना पड़त है। गतिमें जन्म लेनेपर शरीर मिलता है, शरीरमें इन्द्रियं होती हैं, इन्द्रियोंसे वह विषयोंको ग्रहण करता है। विषयों ग्रहणसे जो विषय रुचते हैं, उनसे राग करता है और जे विषय नहीं रुचते, उनसे द्वेष करता है। राग-द्वेषसे पुन स्निग्ध परिणाम होते हैं। इस तरह जीव संसारचक्रमें भ्रमण करता रहता है। यह परस्परमें कार्यकारणभावसे अनुस्यूत जीव और पुद्गलका परिणामरूप कर्मजाल किन्हीं जीवोंका तो अनादि अनन्त है और किन्हीं जीवोंका अनादि सान्त है। अर्थात् बहुत-से जीव तो ऐसे हैं, जो कर्मबन्धनको काटकर मुक्त हो जाते हैं और बहुत-से जीव ऐसे हैं जिनका इस बन्धनसे कभी भी छुटकारा नहीं होगा। आचार्य कुन्दकुन्दने अपने 'समय प्राभृत'में एक उदाहरण दिया है।'
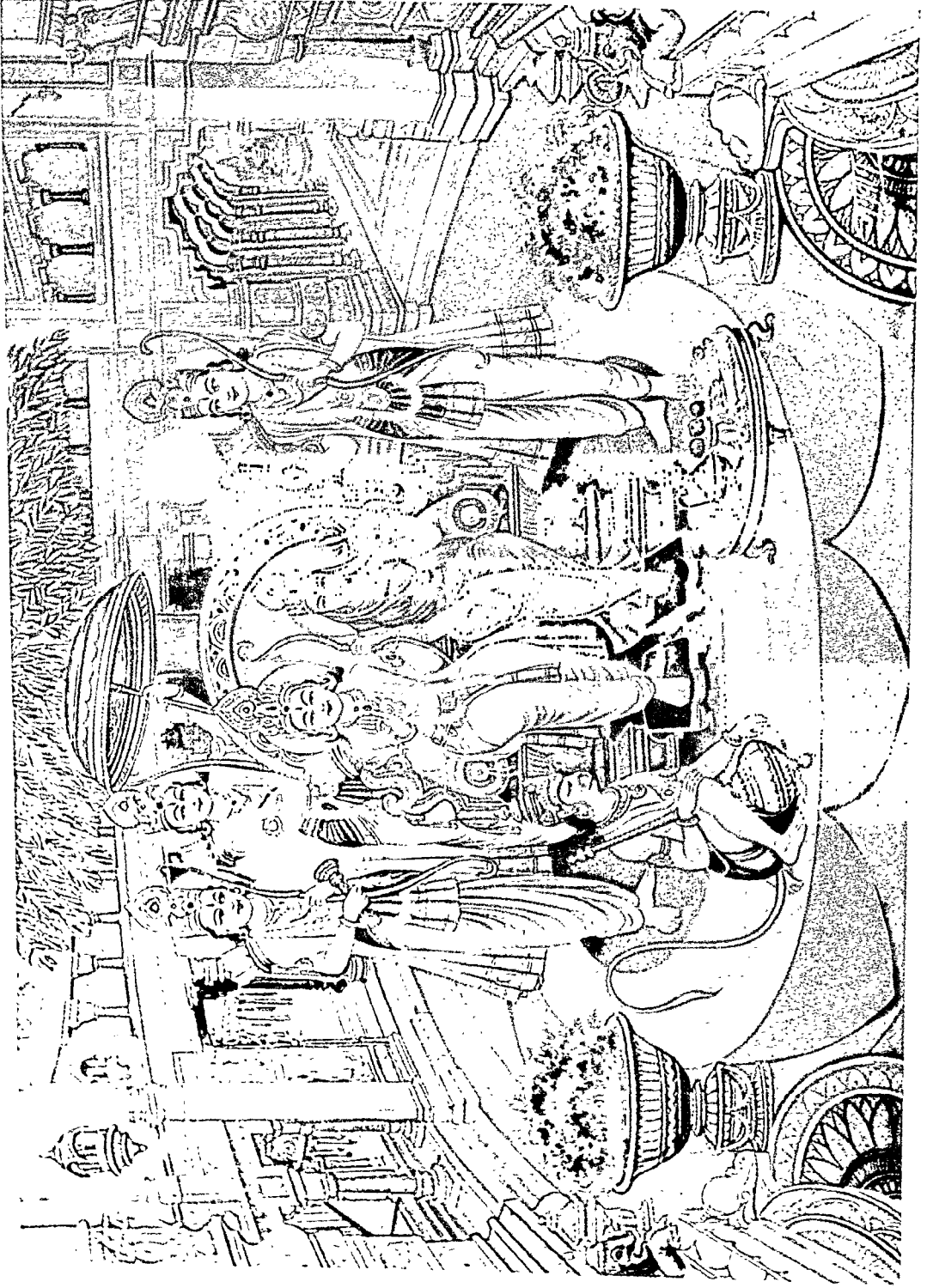
साकेतविहारी भगवान श्रीराम

एक आदमी शरीरमें तेल मर्दन करके धूलभरे स्थानमें व्यायाम करता है और सर्वाङ्गमें धूलसे लिप्त हो जाता है। यदि वह तेल मर्दन किये बिना व्यायाम करता है तो उसका सर्वाङ्ग धूलसे लिप्त नहीं होता। अतः धूलसे लिप्त होनेका कारण न तो उस स्थानका धूल-भरा होना है, न उस पुरुषका व्यायाम करना है; किंतु उसका कारण है उसके शरीरका तेलसे लिप्त होना। इसी तरह मिथ्यादृष्टि जीव कर्मपुद्गलोंसे भरे हुए इस लोकमें मानसिक, वाचनिक और कायिक क्रियाओंको करते हुए राग-द्वेषरूप भावोंको करता है और कर्मरूपी धूलिसे बँध जाता है। इसी बातको टीकाकार अमृतचन्द्राचार्यने इस प्रकार कहा है—

न कर्मबहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्म वा
न नैककरणानि वा न चिदचिद्वधो बन्धकृत्।
यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः
स एव किल केवलं भवति बन्धहेतुर्नृणाम्॥

'कर्मयोग्य पुद्गलोंसे भरा यह लोक कर्मबन्धका कारण नहीं है; हलन-चलनरूप क्रिया भी बन्धका कारण नहीं है; अनेक इन्द्रियाँ आदि भी बन्धका कारण नहीं हैं और न चेतन-अचेतनका घात ही बन्धका कारण है; किंतु आत्मा जब रागादि भावोंके साथ एकताको प्राप्त करता है, केवल वही बन्धका कारण है।'

जैनदर्शनमें पौद्गलिक परमाणुओंके बन्धमें कारण उनके 'स्निग्ध' और 'रूक्ष' गुणको कहा है। किंतु आत्मामें तो स्निग्ध और रूक्ष गुण नहीं है, तब उसका कर्मपरमाणुओंके साथ बन्ध कैसे होता है? इस प्रश्नके समाधानमें राग-द्वेषीको ही स्निग्ध और रूक्षगुणका स्थानापन्न कहा है। इन्हींका निमित्त पाकर आत्मा कर्मपरमाणुओंसे बद्ध होता है।

ये कर्म बँधनेके बाद जब उनका उदयकाल आता है तो स्वयं ही अपना फल देते हैं। जैसे शराब पीनेसे नशा होता है और दूध पीनेसे पुष्टि होती है; शराब या दूध पीनेके बाद उसका फल देनेके लिये किसी दूसरे फलदाताकी आवश्यकता नहीं होती, उसी तरह कर्म भी जीवपर अपना अच्छा या बुरा प्रभाव डालते हैं। कर्म तो जीवकी ही परिणतिका परिणाम है। जीवके परिणामोंके अनुसार ही वे शुभाशुभरूप होकर तदनुसार ही फल देते हैं। उदाहरणके लिये यदि किसीने नरक-गतिका बन्ध किया तो मरते समय उसके परिणाम खराब होंगे और वह मरकर नरक-गतिमें जन्म लेगा; किंतु यदि नरक-गतिका बन्ध करनेके पश्चात् उसके परिणाम सँभलते हैं और वह शुभ कार्योंमें लगता है तो नरक-गतिमें तो उसे अवश्य जाना पड़ेगा; किंतु अधिक दुःखवाले नरकोंमें न जाकर कम दुःखवाले नरकमें जायगा। जैन-कर्मसिद्धान्तके अनुसार आगामी भवकी आयुका बन्ध करके ही जीव मरता है और मरते ही दूसरा जन्म धारण कर लेता है।

जो दर्शन आत्माको व्यापक मानते हैं, उनके मतानुसार तो आत्माका गमन सम्भव नहीं है; किंतु जैनदर्शन आत्माको शरीर-परिमाण मानता है। जिस प्राणीके शरीरका जितना आकार होता है, उसके आत्माका भी उतना ही आकार होता है। जैसे दीपकका प्रकाश स्थानके अनुसार संकुचित या विस्तृत होता है, वैसे ही आत्मा भी शरीरके अनुसार संकुचित या विस्तृत होता है।

अतः शरीर-परिमाण होनेसे मृत्युके बाद आत्मा उस शरीरको छोड़कर दूसरा शरीर धारण करनेके लिये गमन करता है और पूर्वबद्ध कर्मके अनुसार नया जन्म धारण करता है। जन्म-मरणकी यह परम्परा तबतक चालू रहती है, जबतक मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती।

मुक्त होनेपर न तो आत्माका अभाव हो जाता है और न उसके स्वाभाविक ज्ञानादि गुणोंमें ही कोई कमी आती है। प्रत्युत जैसे सुवर्ण अग्निमें तपकर शुद्ध और निर्मल हो जाता है तथा उसका पीतता-गुण निखर उठता है, उसी तरह ध्यानरूपी अग्निमें तपकर आत्मा शुद्ध और निर्मल हो जाता है तथा उसके गुण परिपूर्ण होकर चमक उठते हैं और शुद्ध-बुद्ध वह परमात्मा अनन्तकालतक अपने स्वाभाविक सुखमें निमग्न रहता है। न वह किसीका इष्ट करता है और न अनिष्ट करता है। उसे संसारके बुरे-भलेसे कोई प्रयोजन नहीं है। वह एक आदर्श है, उसको सम्मुख रखकर हम उसके द्वारा निर्मित मार्गपर चलकर उसके ही-जैसे शुद्ध-बुद्ध निर्मल निर्विकार शुद्धात्मा बनकर संसारचक्रसे छूट सकते हैं।

र 'चारित्र'—दो भेद हैं। दर्शनमोहनीयके मिथ्यात्व, यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व तीन उपभेद हैं। चारित्र-हनीयके कषाय और नोकषाय दो उपभेद होते हैं। के भी क्रमशः १६ और ९ भेद होते हैं। इस गर मोहनीय कर्मके कुल २८ भेद हैं। आत्माकी र्य-शक्तिका घात करनेवाला 'अन्तराय कर्म' है। इसके न, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्य—पाँच भेद होते । 'वेदनीय कर्म' बाह्य सामग्रीका संयोग-वियोग करता र यदि मोह हो तो सुख-दुःखका वेदन कराता है। इके साता, असाता—जैसे दो भेद होते हैं। जो आत्माको चतुर्गतियोंमें रोक रक्खे, उसे 'आयुकर्म' हते हैं। इसके चार भेद होते हैं—देवायु, नारकायु, नुष्यायु तथा तिर्यञ्चायु। जीवको नाना शरीर धारण करनेवाला 'नामकर्म' है। नामकर्मके ४२ भेद हैं—ति, जाति, शरीर, अङ्गोपाङ्ग, निर्माण, बन्धन, संघात, स्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्वी, गुरुलघु, उपघात, परघात, आताप, उद्योग, उच्छ्वास, हायोगति, प्रत्येक, साधारण, त्रस, स्थावर, सुभग, र्भग, सुस्वर, दुःस्वर, शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, बादर, र्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, शःकीर्त्ति, अयशःकीर्त्ति तथा तीर्थंकर। जिस कर्मके दयसे जीवका उच्च तथा नीच गोत्रमें जन्म हो, उसे गोत्रकर्म' कहते हैं। इसके उच्च-नीच दो भेद हैं।

कर्मकी कुल प्रकृतियाँ १४८ हैं। इनमें पाप-प्रकृति ०० है। शेष ४८ में नामकर्मकी स्पर्शादिक २०,

भाग्यनिर्माणकी सम्भावना सदैव बना रहता है। ५७ जबतक वह अपने गुणोंके प्रति जागरूक नहीं होता, वह विजातीय द्रव्योंसे स्वयंको भिन्न समझनेमें असमर्थ रहता है और कार्मिक शरीर निरन्तर बनता रहता है।

कर्म-बन्धन तथा उसके कारणोंका अभाव होकर परिपूर्ण आत्मिक विकास ही 'मोक्ष' है। दूसरे शब्दोंमें ज्ञान और वीतराग भावकी पराकाष्ठा ही मोक्षकी स्थिति है। आचार्य उमास्वामीने मोक्षके सम्बन्धमें कहा है—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

(तत्त्वार्थसूत्र १।१)

अर्थात् 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र ही मोक्षके साधन हैं।' जिस गुण या शक्तिके विकाससे सत्य अथवा तत्त्वकी प्रतीति हो, उसे 'सम्यग्दर्शन' कहते हैं। नय और प्रमाणसे होनेवाला जीव आदि तत्त्वोंका यथार्थ बोध 'सम्यग्ज्ञान' है एवं सम्यग्ज्ञानपूर्वक काषायिक भाव या राग-द्वेषकी निवृत्तिसे जो स्वरूप प्राप्त होता है, वही 'सम्यक्चारित्र' है। इन्हें 'रत्नत्रयी' भी कहते हैं। ये तीनों साधन जब परिपूर्ण अवस्थामें उपलब्ध होते हैं, तभी सम्पूर्ण मोक्ष समझा जाता है। अस्तु, मोक्ष-साधनाके लिये तत्त्वोंको समझना परमावश्यक है जीव द्रव्यकी अवस्थाका नाम तत्त्व है। 'तत्त्व' सात हैं—जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष।

जीव द्रव्यका शाश्वत स्वभाव ही 'जीवतत्त्व' है। जीव द्रव्यके साथ जो पौद्गलिक संयोगी अवस्था होती है, उसीका नाम 'अजीव तत्त्व' है। कर्म-पुद्गलके

र द्रव्यके साथ संयुक्त होनेकी अवस्था 'आश्रव' है। श्रवसे ही कार्मिक शरीर बनता है। हिंसा, अदत्तदान, सत्य, परिग्रह और मैथुन—ये आश्रवके पाँच द्वार। पुष्पदन्तका कथन है कि 'पञ्चेन्द्रिय-सुखोंके कारण संख्य कर्मोंका आश्रव होता है'—

चिंदिय सुहि मणु चोयंतहु तहु आसवइ कम्मु असवंतहु।
(महापुराण ७। १३। १३)

आश्रवके कारण जीवका बन्ध होता है। आत्माकी द्धा, चारित्र और क्रिया गुणोंकी विकारी अवस्था ही न्ध' है। जब जीव अपने अनन्त ज्ञानादि जैसे स्वाभाविक णोंके स्मरणद्वारा कर्म-बन्धनसे मुक्त होनेकी चेष्टा करता तभी कर्मके आगम अथवा आश्रवमें बाधा पड़ती। आश्रवका निरोध ही 'संवर' है—आश्रवनिरोधः संवरः। वरद्वारा आश्रवके समस्त द्वार अवरुद्ध हो जाते हैं था नवीन कर्मोंका आगम रुक जाता है। मुक्तिकी शामें यह प्रथम पग है। गुप्ति, समिति, मुनिधर्म, नुप्रेक्षा, परिषह तथा व्रत-चारित्र संवरके कारण हैं। तः संवर आत्माकी वह स्वच्छता है, जिसके द्वारा वह पुद्गलसे अपनी रक्षा करता है। ऋषभदेवने इसे कालतक धारण किया था।

संवरद्वारा नवीन कर्मोंका आगम रोकनेके ही यह भी आवश्यक है कि संचित कर्म क्षय आत्मा निर्मल बने। कार्मिक शरीरका विघटन संचित कर्मोंका क्षय 'निर्जरा' कहलाता है। नि उपलब्धि तपसे होती है। मन, इन्द्रिय-समूह कायके तपन और निग्रहसे 'तप' होता जैनधर्मकी प्राचीन व्यवस्था द्वादशाङ्ग ही 'तप' बाह्य-अन्तरङ्ग भेदसे १२ तप इस प्रकार बाह्य तप—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, परित्याग, विविक्तशैयासन तथा कायक्लेश। अन्तरङ्ग त प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग तथा ध्यान प्रथमोक्त बाह्य तप आभ्यन्तरिक शुद्धिके कारण होते

तप-निर्जराद्वारा जीव अनावरित होकर परम एवं निर्मल हो जाता है। वह अपने प्राकृत दीप्तिमान् हो जाता है। निरन्तर आराधना तथा तल्ल द्वारा वह परमात्मपदको प्राप्तकर मोक्षके चरम पर स्थिर हो जाता है।

अन्नदान न करनेके कारण ब्रह्मलोकमें जानेके बाद भी अपने मुर्देका मांस खाना पड़ा

विदर्भदेशके राजा श्वेत बड़े अच्छे पुरुष थे। राज्यसे वैराग्य होनेपर उन्होंने अरण्यमें जाकर ालतक तप किया और तपके फलस्वरूप उन्हें ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई; परंतु उन्होंने जीवनमें कभ किसीको भोजन-दान नहीं किया था; इससे वे ब्रह्मलोकमें भी भूखसे पीड़ित रहे। ब्रह्माजीने उनसे ा—'तुमने किसी भिक्षुकको कभी भिक्षा नहीं दी। विविध भोगोंसे केवल अपने शरीरको ही पाल-पे कर तप किया। तपके फलसे तुम मेरे लोकमें आ गये। तुम्हारा मृत शरीर धरतीपर पड़ा है, वह था अक्षय कर दिया गया है। तुम उसीका मांस खाकर भूख मिटाओ। अगस्त्य ऋषिके मिलनेपर स घृणित भोजनसे छूट सकोगे।'

उन्हीं श्वेत राजाको ब्रह्मलोकसे आकर अपने शवका मांस खाना पड़ता था। यह अन्नदान न देनेक फल है। फिर एक दिन उन्हें अगस्त्य ऋषि मिले, तब उनको इस अत्यन्त घृणित कार्यसे छुटकारा मि

अतएव यहाँ अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान अवश्य करना चाहिये। यहाँका दिया हुआ रलोकमें या पुनर्जन्म होनेपर प्राप्त होता है। यह आवश्यक नहीं है कि कोई इतने परिमाणमें दान जिसके पास जो हो, उसीमेंसे यथाशक्ति कुछ दान किया करे।

राजा श्वेत हुए अति वैभवशाली तपोनिष्ठ मतिमान।
पर न किया था कभी उन्होंने जीवनमें भोजनका दान॥
क्षुधा भयानकसे पीड़ित, वे आते प्रतिदिन चढ़े विमान।
धरतीपर, खाते स्वमांस अपने ही शवका घृणित महान॥

मैथुनी सृष्टि

ुगलके सम्बन्धसे पैदा होनेवाली सृष्टिका नाम 'मैथुनी है। नर और मादाके सम्पर्कसे जो पदार्थ निकलता सका प्रथम (ओज) आहार करनेवाले 'मैथुनी जीव' कहलाते हैं। जैन आगमोंमें इस सृष्टिका 'गर्भज सृष्टि' मिलता है। जो प्राणी गर्भमें अमुक तक रहकर अपना शारीरिक विकास करता है पर्याप्त विकासके बाद गर्भसे बाहर आता है, उसे प्राणी' कहा जाता है। इसमें मनुष्य और समनस्क क्षी ही आते हैं। मनुष्य स्त्री और पुरुषके संयोगसे होता है। उसे नौ महीनोंतक गर्भमें रहना पड़ता कुछ बालक सात महीनोंके बाद गर्भसे बाहर आ हैं और कुछ बालक नौ महीनोंसे अधिक भी गर्भमें ते हैं।

ार्भज पशुओंकी गर्भमें रहनेकी अवधि अलग-अलग पाँच सप्ताहसे लेकर ढाई वर्षतक गर्भमें रहनेवाले ाये जाते हैं। इस अवधिमें शारीरिक संस्थान पूरा जाता है और बाहरके वायुमण्डलको सहन कर सके, शारीरिक क्षमता पैदा हो जाती है।

पक्षियोंका गर्भ अंडेके रूपमें होता है। जीव अंडेके में पैदा होता है और उसमें ही धीरे-धीरे शरीर बन है। अंडा कुछ समयतक तो मादा पक्षीके पेटमें है, फिर बाहर निकल आता है। बाहर निकलनेके नर और मादा पक्षी—दोनों ही उसे अपने शरीरकी पहुँचाते हैं। पूरे अवयव बन जानेके बाद अंडा स्वयं कर फूट जाता है, या मादा पक्षी उसे फोड़ देते हैं। ोंके रोम और पंख हमेशा अंडेसे बाहर आनेके बाद ाते हैं।

सृष्टिका दूसरा भाग 'अमैथुनी' है। यह मैथुनी सृष्टिसे बहुत बड़ी है। इसमें विकसित, अविकसित, दोनों योनियोंका समावेश है। अमैथुनी सृष्टिके मुख्य घटक हैं—देव-योनिके जीव, नरकयोनिके जीव, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा अमनस्क पञ्चेन्द्रियके जीव।

देवयोनिके जीव

देवयोनिमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंको माता-पिताके संयोगकी जरूरत नहीं, गर्भकी जरूरत नहीं, अंडेमें रहनेकी जरूरत नहीं। वहाँ वे फूलोंकी शय्यामें पैदा होते हैं और अन्तर मुहूर्त मात्रमें (अड़तालीस मिनटके भीतर-भीतर) परिमित शरीरकी रचना हो जाती है। देवयोनिके जीवोंमें न बचपन है और न बुढ़ापा। वे शक्तिसम्पन्न वैक्रिय शरीरवाले होते हैं, जिसमें हाड़-मांस नहीं होता। विशिष्ट अणुओंका समूह शरीरके रूपमें अवस्थित हो जाता है। इस उत्पत्तिमें किसीके संयोगकी अपेक्षा नहीं, किसीके पालन-पोषणकी अपेक्षा नहीं। फूलोंमें जन्मते हैं, जवानीमें रहते हैं, दीर्घायुषी होते हुए भी बीमारी या शारीरिक शैथिल्य उनमें नहीं आता।

नरक-योनिके जीव

इनके उत्पत्तिस्थान कुम्भी (मुँह छोटा पेट बड़ा) जैसा या पेटी (बक्स) जैसा होता है। अन्तर मुहूर्त (अड़तालीस मिनट) के भीतर-भीतर ये भी पूरा शरीर बना लेते हैं। बचपन और बुढ़ापा—दोनों इनमें भी नहीं हैं; किंतु जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त केवल पीड़ा-ही-पीड़ा है। सर्वथा असुविधा, भयंकर दुर्गन्ध, भयंकर शीत या ताप, पारस्परिक कलह, एक क्षण भी चैन नहीं लेने देता। नरक-योनिके जीव एक-एक श्वासोच्छ्वास भयंकर पीड़ामें बिताते हैं।

एकेन्द्रिय जीव

पृथ्वीकाय, अप्‌काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय—इन पाँचों स्थावर कायोंके जीव 'अमैथुनिक' हैं। इनके एक इन्द्रिय होनेके कारण 'एकेन्द्रिय' कहाते हैं। चैतन्यका न्यूनतम विकास यहाँ रहता है। वैसे कुछ वनस्पतियोंमें चैतन्यका विकास काफी विकसित है। उनकी संवेदन-शक्ति आश्चर्य-जनक है; किंतु एक इन्द्रिय होनेके कारण इनमें अभिव्यक्तिकी प्रक्रिया बिल्कुल नहीं है। ये जीव अनुकूल संयोग मिलते ही अपने आप स्वयं पैदा हो जाते हैं। इनमें मानसिक और वाचिक शक्तिका सर्वथा अभाव रहता है।

द्वीन्द्रिय आदि

द्वीन्द्रिय (दो इन्द्रियवाले), त्रीन्द्रिय (तीन इन्द्रियवाले), चतुरिन्द्रिय (चार इन्द्रियवाले), असनस्क पञ्चेन्द्रिय (पाँच इन्द्रियवाले) जीव भी ऐसी योनियोंमें उत्पन्न होते हैं, जो अमैथुनिक हैं। इनके कई प्रकार हैं। कुछ त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीव अंडेसे पैदा जरूर होते हैं; किंतु अंडेमें रहकर शरीर नहीं बनाते और न उसके कोई पालनेवाले माता-पिता होते हैं। कुछ जीवोंके पालनेकी प्रक्रिया हम देखते हैं, वह केवल संज्ञा मात्र है। निश्चित संतानोत्पत्तिका वहाँ कोई क्रम नहीं है। इनमें वाचिक शक्तिकी सत्ता तो विद्यमान है, मानसिक शक्तिका अभाव है। मनके अभावमें वाणीका विकास भी अधिक नहीं हो पाता।

एकेन्द्रिय जीव

वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय—ाँचों स्थावर कायोंके जीव 'अमैथुनिक' हैं। इनके एक य होनेके कारण 'एकेन्द्रिय' कहाते हैं। चैतन्यका न्यूनतम स यहाँ रहता है। वैसे कुछ वनस्पतियोंमें चैतन्यका स काफी विकसित है। उनकी संवेदन-शक्ति आश्चर्य-क है; किंतु एक इन्द्रिय होनेके कारण इनमें अभिव्यक्तिकी त्या बिल्कुल नहीं है। ये जीव अनुकूल संयोग मिलते अपने आप स्वयं पैदा हो जाते हैं। इनमें मानसिक र वाचिक शक्तिका सर्वथा अभाव रहता है।

द्वीन्द्रिय आदि

द्वीन्द्रिय (दो इन्द्रियवाले), त्रीन्द्रिय (तीन इन्द्रियवाले), चतुरिन्द्रिय (चार इन्द्रियवाले), अमनस्क पञ्चेन्द्रिय (पाँच इन्द्रियवाले) जीव भी ऐसी योनियोंमें उत्पन्न होते हैं, जो अमैथुनिक हैं। इनके कई प्रकार हैं। कुछ त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीव अंडेसे पैदा जरूर होते हैं; किंतु अंडेमें रहकर शरीर नहीं बनाते और न उनके कोई पालनेवाले माता-पिता होते हैं। कुछ जीवोंके पालनेकी प्रक्रिया हम देखते हैं, वह केवल संज्ञा मात्र है। निश्चित संतानोत्पत्तिका वहाँ कोई क्रम नहीं है। इनमें वाचिक शक्तिकी सत्ता तो विद्यमान है, मानसिक शक्तिका अभाव है। मनके अभावमें वाणीका विकास भी अधिक नहीं हो पाता।

पुद्गलवादका रहस्य

(लेखक—मुनि श्रीबुद्धमल्लजी साहित्य-परामर्शक)

पुद्गलका स्वरूप

जैन-मतानुसार यह लोक षड्द्रव्यात्मक है। लोकके घटक उन छः द्रव्योंके नाम हैं—

१. धर्मास्तिकाय।
२. अधर्मास्तिकाय।
३. आकाशास्तिकाय।
४. काल।
५. पुद्गलास्तिकाय।
६. जीवास्तिकाय।

इनमें पाँच द्रव्य अमूर्त हैं; केवल एक पुद्गलास्तिकाय ही मूर्त है। संक्षिप्तमें इसे केवल 'पुद्गल' भी कहा जाता है। यह एक जैन पारिभाषिक शब्द है। बौद्ध-दर्शनमें भी इस शब्दका प्रयोग हुआ है; परंतु वह इससे सर्वथा पृथक् 'चेतनी-संतति'के अर्थमें हुआ है। जैनागमोंमें भी क्वचित् पुद्गल-युक्त आत्माको पुद्गल कहा गया है[1], परंतु मुख्यतया मूर्त द्रव्यके अर्थमें ही इसका प्रयोग हुआ है। व्युत्पत्तिगत अर्थमें पूरण-गलनधर्मा होनेके कारण इसे 'पुद्गल' कहा जाता है[2]। भावात्मक आधारपर इसकी परिभाषा की जाती है। जो स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णवान् होता है, वह पुद्ग[ल] है[3]। न्याय-वैशेषिक आदिने जिसे भौतिक तत्त्व कहा है औ[र] वैज्ञानिक जिसे मैटर (Matter) शब्दसे पहचानते [हैं] जैनोंने उसी द्रव्यको 'पुद्गल' नामसे अभिहित किया है।

पुद्गलके प्रकार

जैनागमोंमें पुद्गल द्रव्यके दो प्रकार बताये गये [हैं] परमाणु पुद्गल और नोपरमाणु पुद्गल (स्कन्ध) अन्यत्र इसके चार प्रकार भी बताये गये हैं। स्कन्ध, दे[श] प्रदेश और परमाणु। जहाँ दो भेद किये गये हैं, स्कन्ध, देश और प्रदेशको नोपरमाणु पुद्गलमें ही समा[वेश] कर लिया गया है। मूलतः परमाणुको ही वास्तविक पुद[्गल] कहना चाहिये। शेष भेद तो परमाणुकी ही वि[भिन्न] अवस्थाओंपर आधृत हैं।

निर्विभागी पुद्गलको 'परमाणु' कहा जाता है [वह] पुद्गलका सबसे छोटा रूप होता है। निरंश [होनेके] कारण उसे अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य [कहा] जाता है।

---

१. भगवती ८। १०। ३६१। जीवेणं भंते ! पोग्गली, पोग्गले ? जीवे पोग्गलीवि, पोग्गलेवि।

२. तत्त्वार्थराजवार्तिक ५-१। पूरणगलनान्वर्थसंज्ञत्वात् पुद्गलाः।

३. जैनसिद्धान्तदीपिका १-११। स्पर्शरसगन्ध[वर्णवान्] पुद्गलः।

४. स्थानांग २।

५. उत्तराध्ययन ३६। १०

पुद्गलके गुण

पुद्गलके मूलतः चार गुण होते हैं। स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण। उपभेदोंके आधारपर निम्नोक्त प्रकारसे ये बीस हो जाते हैं—

स्पर्श—शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध, लघु, गुरु, मृदु और कर्कश।

रस—आम्ल, मधुर, कटु, कषाय और तिक्त।

गन्ध—सुगन्ध और दुर्गन्ध।

वर्ण—कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत।

प्रत्येक पुद्गल चाहे वह परमाणुरूप हो और चाहे स्कन्धरूप, उपर्युक्त चारों गुणों और अनन्त पर्यायोंसे युक्त ही होता है। एक परमाणुमें कोई भी एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श (शीत-उष्ण और स्निग्ध-रूक्ष—इन दोनों युगलोंमेंसे एक-एक) होते हैं। प्रत्येक परमाणुमें वर्णान्तर, गन्धान्तर, रसान्तर और स्पर्शान्तर होता रहता है। स्कन्धके लिये भी यही नियम है। यह परिवर्तन कम-से-कम एक समयके पश्चात् भी हो सकता है, परंतु अधिक-से-अधिक असंख्यकालके पश्चात् तो अवश्यम्भावी होता है।

पुद्गलकी परिणतियाँ

इस संसारमें जो भी कुछ इन्द्रियग्राह्य है, वह सब पुद्गलकी ही विविध परिणतियाँ हैं। इस जगत्के घटक द्रव्योंमें पुद्गलके अतिरिक्त और कोई भी द्रव्य चक्षुग्राह्य नहीं है। मात्र एक पुद्गल द्रव्य ही ऐसा है जो आँखों या यान्त्रिक उपकरणोंसे देखा जा सकता है। परंतु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि सारे पुद्गल दृष्टि-ग्राह्य ही होते हैं। बहुत सारे पुद्गल अनन्त परमाणुओंके पिण्डीभूत स्कन्ध होनेपर भी न दृष्टिग्राह्य होते हैं और न यन्त्रग्राह्य ही। पुद्गलोंकी यह दृश्यता और अदृश्यता वास्तवमें उनके स्कन्ध' कहलाते हैं। ये स्पर्श पूर्ववर्ती चार स्पर्शोंके सापेक्ष संयोगसे बनते हैं। जैसे रूक्षस्पर्शी परमाणुओंके बाहुल्यसे 'लघुस्पर्श' स्निग्धस्पर्शी परमाणुओंके बाहुल्यसे 'गुरुस्पर्श' शीत एवं स्निग्धस्पर्शी परमाणुओंके बाहुल्यसे 'मृदुस्पर्श' और उष्ण तथा रूक्षस्पर्शी परमाणुओंके बाहुल्यसे 'कर्कशस्पर्श' बनता है।

इनके अतिरिक्त शब्द, बन्ध, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत आदि सभी पुद्गलोंकी ही विभिन्न परिणतियाँ हैं। संसारमें न कभी एक परमाणु घटता है और न एक भी बढ़ता है; केवल उनकी विभिन्न परिणतियोंके कारण ही दृश्य जगत्की सारी उथल-पुथल होती रहती है।

पुद्गलोंका परिणमन जब किसी प्रकारकी बाह्य प्रेरणाके बिना स्वभावतः होता है, तब वे 'वैस्रसिक' कहलाते हैं। जीवके प्रयोगसे शरीरादिरूपमें परिणत पुद्गल प्रायोगिक और जीव-मुक्त होनेपर भी, जिनका प्रायोगिक परिणमन जबतक नहीं छूटता, तबतक वे पुद्गल अथवा जीव-प्रयत्न और स्वभाव दोनोंके संयोगसे परिणत पुद्गल 'मिश्र' कहलाते हैं।

जीवके साथ सम्बद्ध पुद्गल

पुद्गलका अन्य पुद्गलके साथ तो मिलन होता ही है, परंतु इसके अतिरिक्त जीवके द्वारा भी उसका ग्रहण किया जाता है। जीव अपनी विभिन्न क्रियाओंके द्वारा पुद्गलोंको आकृष्ट करता है, तब वे, उसके साथ संलग्न होते हैं और उसे अनेक प्रकारसे प्रभावित करते हैं। पुद्गलोंपर जीवोंके और जीवोंपर पुद्गलोंके विभिन्न प्रभावोंके परिणामस्वरूप ही सृष्टिकी सारी विचित्रताएँ घटित होती रहती हैं। जीवके साथ सम्बद्ध होने योग्य पुद्गलोंको मुख्यतः आठ वर्गणाओं—श्रेणियोंमें विभक्त किया जाता है।

पुद्गल-समूह ।

५. कार्मण-वर्गणा—जीवोंकी सत्-असत् प्रवृत्तियोंसे आकृष्ट होकर कर्मरूपमें परिणत होने योग्य पुद्गल-समूह ।

६. श्वासोच्छ्वास-वर्गणा—जीवोंके श्वास और उच्छ्वासमें प्रयुक्त होने योग्य पुद्गल-समूह ।

७. भाषा-वर्गणा—वचनरूपमें परिणत होने योग्य पुद्गल-समूह ।

८. मनोवर्गणा—चिन्तनमें सहायक बनने योग्य पुद्गल-समूह ।

उपर्युक्त वर्गणाओंके अवयव क्रमशः अधिकाधिक सूक्ष्म और अधिकाधिक प्रचयवाले होते हैं । ये वर्गणाएँ परस्पर सर्वथा भिन्न नहीं हैं; अतः प्रत्येक वर्गणाके पुद्गलोंकी वर्गणान्तर-परिणति सम्भव है । प्रथम चार वर्गणाओंके पुद्गल-स्कन्ध अष्टस्पर्शी अर्थात् शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध, लघु, गुरु, मृदु और कर्कश—इन आठों स्पर्शोंसे युक्त होते हैं । कार्मण, भाषा और मनोवर्गणाके पुद्गल-स्कन्ध

हमारे शरीरसे प्रतिक्षण प्रतिबिम्बात्मक पुद्गलोंका प्रक्षेप होता रहता है । हमारे प्रत्येक चिन्तनमें जो मनोवर्गणाके पुद्गल ग्रहण होते हैं, वे तदनुकूल आकृतियोंमें परिणत होकर अगले ही क्षण वहाँसे मुक्त होकर आकाश-मण्डलमें फैल जाते हैं । हमारी प्रत्येक ध्वनि या शब्द पहले भाषा-वर्गणाके पुद्गलोंके रूपमें ग्रहण होते हैं, उसके पश्चात् ही यदि वे तीव्र प्रयत्नसे उत्सृष्ट हुए हों तो अतिसूक्ष्म कालमें ही लोकान्ततक ऊर्मियोंके रूपमें फैलते चले जाते हैं । उपर्युक्त सभी प्रकारके पुद्गल-स्कन्ध असंख्य कालतक उसी रूपमें ठहर भी सकते हैं । उपयुक्त साधन उपलब्ध हों तो हजारों वर्ष पूर्वके व्यक्तियोंकी आकृतियाँ, उनका चिन्तन और शब्द आज भी पकड़े जा सकते हैं ।

जैन-चिन्तकोंने ईसाकी अनेक शताब्दियों पूर्व पुद्गल या परमाणुविषयक जो अन्वेषण किया था; वह बहुत मौलिक और महत्त्वपूर्ण है । आजके विज्ञानकी अन्वेषणाओंको उससे बहुत कुछ मार्ग-दर्शन मिल सकता है ।

मरनेके समय रोगी क्या करे ?

मृत्युके समय होश रहे तो रोगीको रोगमें 'तप'की तथा मरणमें 'मुक्ति'की दृढ़ भावना करनी चाहिये । वैराग्यपूर्वक घरका, जगत्का चिन्तन छोड़कर भगवन्नामका मन-ही-मन जप-स्मरण करना चाहिये । वृत्ति लग सके तो भगवान्के जिस रूपमें रुचि हो, उसका ध्यान करना चाहिये । संभव हो तो भगवान्का कोई सुन्दर चित्र सामने रखकर उसे देखते रहना चाहिये । सुनानेवाले हों तो श्रीमद्भगवद्गीताका आठवाँ-पंद्रहवाँ अध्याय, रामचरितमानसका जटायुका मरण-प्रसंग अथवा भगवन्नामकी ध्वनि सुननी चाहिये, जिससे मन भगवान्में ही लग जाय ।

घरवाले स्नेहीजनोंसे घरकी बात, उनके सुख-दुःखकी बात, जगत्के किसी भी विषयकी चर्चा बिल्कुल नहीं करनी चाहिये, न सुननी चाहिये ।

जैन-दर्शनमें जन्म और मृत्युकी प्रक्रिया

(लेखक—मुनि श्रीरूपचन्द्रजी)

मेरे सामने एक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र पड़ा है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञानके संदर्भमें मृत्युका विश्लेषण करते हुए उसमें लिखा है—“आज स्थिति यह है कि डाक्टर हृदय-गति रुकनेको मृत्यु नहीं, ‘कार्डिएक एरेस्ट’ कहते हैं और मानते हैं कि मालिश या बिजलीके झटकेसे रुका हृदय फिर चलाया जा सकता है। इसी तरह साँसका न चलना भी उसके लिये मृत्युका द्योतक नहीं रहा, कृत्रिम श्वासयन्त्रसे साँस फिर चलाया जा सकता है। फिलहाल डॉक्टर मस्तिष्ककी विद्युत्तरंगोंके रुक जानेको मृत्युका लक्षण मान रहे हैं, लेकिन साथ ही यह भी कह रहे हैं कि शायद निकट भविष्यमें रुके मस्तिष्कको फिर चला देना सम्भव हो जाय।”

हो सकता है, विज्ञान मस्तिष्ककी रुकी विद्युत्तरंगोंको पुनः चलानेमें भी सफल हो जाय, किंतु प्रश्न यह है कि ‘क्या वह आदमीको मृत्युसे बचा सकता है?’ धर्म-दर्शनोंके आधारपर मनुष्यको जन्म और मृत्युके चक्रमेंसे नहीं निकाला जा सकता। हाँ, जब वह समस्त प्रकारके कर्मावरणोंसे मुक्त हो जाता है, तब वह जन्म और मरणसे छुटकारा अवश्य पा लेता है; उससे पहले नहीं।

जैन-दर्शन प्राणीकी मृत्युका कारण ओज-आहारका समाप्त होना मानता है। ओज-आहारका अर्थ है—जीवनको धारण करनेवाली पौद्गलिक शक्ति। प्राणी जब गर्भमें आता है, उस पहले क्षणमें वह जिन पुद्गलों—अणुपिण्डोंको ग्रहण करता है, वह ‘ओज-आहार’ कहलाता है। यह आहार ही समूचे जीवनका आधार होता है। प्राणीके शरीरका निर्माण, आँख, कान आदि इन्द्रियोंका निर्माण, श्वासोच्छ्वास और भाषाकी सामर्थ्य और मनकी शक्तिका उदय—ये सब क्रमशः ओज-आहारके बादकी ही निष्पत्तियाँ हैं। जैन-साहित्यमें इन्हें छः पर्याप्तियाँ कहा गया है—आहार-पर्याप्ति, शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रिय-पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति, भाषा-पर्याप्ति और मनः-पर्याप्ति।

पर्याप्तिका अर्थ है—‘**भवारम्भे पौद्गलिकसामर्थ्यनिर्माणं पर्याप्तिः।**’—‘जन्मके प्रारम्भमें जीवके द्वारा जो पौद्गलिक-शक्तिका निर्माण होता है, वह पर्याप्ति है।’ पहले समयमें आहार-पर्याप्तिका निर्माण होता है, अन्यान्य पर्याप्तियोंके निर्माणमें अन्तर्मुहूर्त समय लग जाता है।

आहार-पर्याप्तिके माध्यमसे प्राणी आहारके योग्य पुद्गलोंका ग्रहण, आहारके रूपमें परिणमन और फिर निस्सारका उत्सर्ग करता है। आहारके तीन प्रकार हैं—ओज-आहार, रोम-आहार और प्रक्षेप या कवल-आहार। इसी प्रकार शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनके योग्य पुद्गलोंका ग्रहण, परिणमन और उत्सर्ग करनेवाली पौद्गलिक शक्तियोंके निर्माणको क्रमशः शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रिय-पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति, भाषा-पर्याप्ति और मनः-पर्याप्ति कहते हैं।

प्राणीके जीवनकी सम्पूर्ण रचना और क्रियाएँ इन्हीं पर्याप्तियोंके आधारपर होती हैं। किंतु फिर भी केवल इन्हींके आधारपर नहीं होतीं। ये तो मात्र पौद्गलिक शक्तियाँ हैं। इनमें संवेदन नहीं होता। इनका संचालन करनेवाला एक दूसरा तत्त्व होता है, जिसे जैन-दर्शनमें ‘प्राण’ कहा गया है। प्राणका अर्थ है—जीवन-शक्ति। प्राण संवेदनशील होता है और अपनी अभिव्यक्तिके लिये पर्याप्तियोंकी अपेक्षा रखता है। प्राण और पर्याप्तिमें अन्तर यह है कि प्राण आत्मशक्ति है और पर्याप्ति आत्माके द्वारा ग्रहण किये गये पुद्गलोंकी शक्ति। आत्माकी जितनी भी मानसिक, वाचिक तथा कायिक प्रवृत्ति होती है, वह सब बाह्य द्रव्यसापेक्ष है—पुद्गल ग्रहण करनेसे ही होती है। प्रवृत्तियोंका सम्पादन करनेवाली आत्म-शक्तिका नाम ‘प्राण’ है और जिन पौद्गलिक शक्तियोंकी सहायतासे ये क्रियाएँ सम्पादित होती हैं, वे ‘पर्याप्तियाँ’ हैं।

पर्याप्ति और प्राणमें कार्य-कारण सम्बन्ध है। पर्याप्ति कारण है और प्राण कार्य। पाँच इन्द्रिय-प्राणोंका कारण है—इन्द्रिय-पर्याप्ति। मनोबल प्राण, वचन-बल प्राण और कायबल प्राणके क्रमशः कारण हैं—मन-पर्याप्ति, भाषा-पर्याप्ति और शरीर-पर्याप्ति। श्वासोच्छ्वास प्राणका कारण है—श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति। आयुष्य-प्राणका कारण है—आहार-पर्याप्ति। आहार-पर्याप्तिके आधारपर ही आयुष्य-प्राण टिकता है।

इस प्रकार जैन मान्यताके अनुसार आहार-पर्याप्तिके निर्माणके समय ग्रहण किया गया ओज-आहार और आयुष्य-प्राण ही प्राणीको जीवित रखता है। इसका समाप्त होना ही मृत्यु है। जबतक ये समाप्त नहीं होते, प्राणीका शरीर चाहे सर्वथा विगलित हो जाय, शरीरके यन्त्र—फेफड़े, हृदय या मस्तिष्क भी अपना काम बंद कर दें, इन्द्रियाँ क्षीण हो जायँ,

भाषा मूक हो जाय और श्वासोच्छ्वास भी बंद हो जाय, फिर भी प्राणी जीवित रहेगा। ओज-आहार और आयुष्य-प्राणके अभावमें शरीर, इन्द्रियाँ आदि सब स्वस्थ होते हुए भी प्राणी अपनेको मृत्युके पंजेसे मुक्त नहीं कर सकता। ४८ घंटोंतक श्वास और हृदयकी गति बंद रहनेवाले मनुष्य भी जीवित पाये जाते हैं। इससे हम अच्छी तरह अनुमान लगा सकते हैं कि जीवन धारण करनेवाली शक्ति दूसरी ही है, यह नहीं। इस विश्लेषणके आधारपर हम यह भी कह सकते हैं कि श्वास और हृदय-गतिका पुनः संचालन करनेवाला विज्ञान मस्तिष्ककी रुकी हुई विद्युत्-तरङ्गोंको पुनः प्रवाहित करनेमें सफल हो भी जाय, फिर भी वह प्राणीको मृत्युसे बचा सके, यह सम्भव नहीं लगता।

सामान्यतः प्राणियोंके तीन शरीर होते हैं—'औदारिक' 'तैजस' और 'कार्मण'। स्थूल पुद्गलोंसे निष्पन्न शरीर 'औदारिक' कहलाता है। जो तेजोमय है, वह 'तैजस' शरीर है। जो कर्मजन्य शरीर है, वह 'कार्मण' है। जैन-दर्शनके अनुसार मृत्युका वस्तुतः अर्थ है—आत्माका औदारिक शरीरसे विलग हो जाना। तैजस और कार्मण शरीर सूक्ष्म होते हैं और मृत्युके बाद भी वे आत्माके साथ जाते हैं। मृत्युके बाद आत्मा ऋजु या विग्रह गतिसे अपने गन्तव्य—जहाँ उसे फिर जन्म लेना है, वहाँ पहुँच जाता है। वर्तमान भव और अगले भवके अन्तरालमें वह लम्बे समयतक भटकता नहीं। वहाँतक पहुँचनेमें उसे अधिक-से-अधिक चार समय लगता है, जो कि एक क्षणका शतांश भी नहीं। वहाँ पहुँचते ही सबसे पहले आत्मा इसी कार्मण शरीरके द्वारा ओज-आहारका ग्रहण करता है, जो कि उसके समूचे जीवनका आधार होता है, फिर अन्यान्य इन्द्रियोंका। जैन-दर्शनके अनुसार संक्षेपमें प्राणीके जन्म और मृत्युकी यही प्रक्रिया है।

अन्तराल गति

(लेखिका—साध्वी श्रीमती कनकप्रभाजी)

जीवन एक अथाह सागर है। उसके दो तट हैं—जन्म और मृत्यु। जो व्यक्ति मृत्यु-तटपर पहुँचकर भी पुनः लहरोंद्वारा आकर्षित हो जाता है, वह डूबता-उतराता हुआ एक दिन जन्मके तटपर पहुँच जाता है और वहाँसे फिर मृत्युकी गोदमें सो जाता है। जन्म-मरणकी यह परम्परा अनादिकालसे चली आ रही है और अनन्त कालतक चलती रहेगी। कुछ व्यक्ति इस परम्पराके धागोंको काटकर दोनों तटोंको लाँघ जाते हैं; लहरोंका तीव्र आघात उनको पथच्युत नहीं कर सकता, इसलिये वे जन्म-मरण अर्थात् इस संसारसे अतीत हो जाते हैं। संसार-परिभ्रमणके हेतु कर्म-बन्धनसे मुक्त होनेके कारण वे 'मुक्त' कहलाते हैं। जो व्यक्ति अनवरत कर्म-बन्धनके हेतुओंका संग्रह करनेमें तत्पर रहते हैं, वे इस परम्पराको और अधिक कसते चले जाते हैं। होनेका प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ मृत्युका सम्बन्ध शरीर-परित्याग और जन्मका सम्बन्ध नये शरीरके स्वीकार करनेसे है। अवस्थान्तर-प्राप्तिका यह क्रम जैन-दर्शनके अनुसार पर्याय-परिवर्तन कहलाता है।

स्वकृत कर्मोंका फल भोगनेके लिये आत्मा एक जन्मसे दूसरे जन्ममें जाता है। कर्मोंका फल एक जीवनमें भी भोगा जा सकता है। पर जो कर्म लंबे समयकी स्थितिसे बद्ध हैं, वे अल्प आयुमें भोगे नहीं जा सकते। कृतकर्म अपना फल दिये बिना आत्मासे अलग नहीं होते; अतः कर्मोंकी प्रेरणासे ही व्यक्ति पुनर्जन्मकी परम्परा चलाता है।

जन्म और मृत्युके बीचकी स्थिति स्पष्ट है; क्योंकि इस समय प्राणी सबके सामने है। किंतु मृत्युके बाद जन्मतकका समय अज्ञात रहता है, अतः उसके बारेमें

अन्तराय—चार कर्मोंकी निर्जरा हो जाती है, उसके अरहंत अवस्था प्रकट होती है। आयुका अन्त होनेतक वेदनीय, नाम, गोत्र और आयुका विनाश हो जाता है। इसीको मुक्ति या मोक्ष कहते हैं।

आत्मा अपने मन, वचन और तनसे पाप और पुण्य करता रहता है। इससे कर्मोंका आस्रव और बन्ध होता रहता है। उसका फल भोगने हेतु नाना योनियोंमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है। कर्तृत्व और भोक्तृत्व आत्माके गुण हैं। अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य (शक्ति) अरहंत अवस्थामें प्रकट हो हैं। सिद्ध अवस्थामें अनंत गुण प्रकट होते हैं।

इस प्रकार परमात्मा आत्माकी शुद्ध अवस्थाका है। संख्याकी दृष्टिसे अनन्त होनेपर भी परमात्माके गु अपेक्षा वे एक ही हैं।

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।' श्रीमद्भगवद्गीतामें आत्माके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है वह जैन-दर्शनके अनुसार भी आत्माके स्वरु दिग्दर्शक है।

जैन-वाङ्मयमें शरीर-वर्णन

(लेखक—कं० श्रीलालचन्दजी नाहटा 'तरुण')

तत्त्वार्थसूत्रकी टीकामें शरीरकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'जीवके क्रिया करनेके साधनको शरीर कहते हैं'। तत्त्वार्थ-वार्तिककार इसकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

'शीर्यन्त इति शरीराणि।'

अर्थात् जो शीर्ण हो वह शरीर है। जैनागम 'पन्नवणा'के २१वें पदमें शरीर पाँच प्रकारके बताये हैं—

'कतिणं भंते! सरीरया पण्णत्ता? गोयमा! पंच सरीरा पण्णत्ता, तंजहा—औरालिते वेउव्विए आहारए तेयए कम्मए।'

अर्थात् गौतम स्वामी पूछते हैं—'भगवन्! शरीर कितने होते हैं?'

'गौतम! शरीर पाँच कहे गये हैं—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस और कार्माण।'

पूरे जैन-साहित्यमें जहाँ-जहाँ भी शरीरोंका वर्णन है, वहाँ ये ही पाँचों भेद बताये गये हैं। इनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया गया है—

(१) औदारिक—जो मांस, रुधिर, अस्थि आदिसे बना हुआ हो, जो जलाया या छेदन-भेदन किया जा सके, जो अन्य चारों शरीरोंकी अपेक्षा अवस्थित रूपसे विशाल अर्थात् बड़े परिमाणवाला हो, अथवा उदार (प्रधान) या स्थूल पुद्गलोंसे निर्मित हो—उसे 'औदारिक शरीर' कहा जाता है। देवता तथा नारकी जीवोंके अतिरिक्त सभी संसारी प्राणियोंका शरीर स्थूल पुद्गलोंसे निर्मित औदारिक शरीर ही है। तीर्थंकरों और गणधरोंका प्रधान पुद्गलोंसे निर्मित औदारिक होता है।

(२) वैक्रिय—जो शरीर कभी लघु, कभी स्थूल, छोटा, कभी बड़ा, कभी पतला, कभी मोटा, कभी एक, अनेक और विविध रूपोंको धारण कर सके; दृश्य अदृश्य हो सके; पृथ्वीपर या आकाशमें चल सके— शरीरको 'वैक्रिय शरीर' कहते हैं। औदारिकके अति अन्य किसी भी शरीरमें मांस, रुधिर, अस्थि इत्यादि होते। वैक्रिय शरीर सभी देवताओं तथा नरकके जी नियमसे जन्मसे ही प्राप्त होता है। तपादिद्वारा भी यह किन्हीं महर्षियोंको प्राप्त हो जाती है।

(३) आहारक—भरत और ऐरावत क्षेत्रमें च पूर्वधारी महामुनिराजको जब किसी गहन अथवा विषयमें संशय हो और इस क्षेत्रमें सर्वज्ञका सा न हो, तब वे औदारिक शरीरसे क्षेत्रान्तरमें जाना अस समझकर अपनी विशिष्ट लब्धिका प्रयोग करते हैं हस्तप्रमाण छोटा-सा शरीर बनाते हैं, जो शुभ पुद्गल होनेसे अति विशुद्ध स्फटिकके समान सुन्दर होत प्रशस्त उद्देश्यसे बनाये जानेके कारण निरवद्य हो और अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण अव्याघाती अर्थात् को रोकनेवाला या किसीसे रुकनेवाला नहीं है वज्रपटल तकमें यह प्रवेश कर सकता है। ऐसा क्षेत्रान्तरमें सर्वज्ञके पास पहुँचकर उनसे संशय-नि कर अपने स्थानमें वापिस आ जाता है। यह कार्य
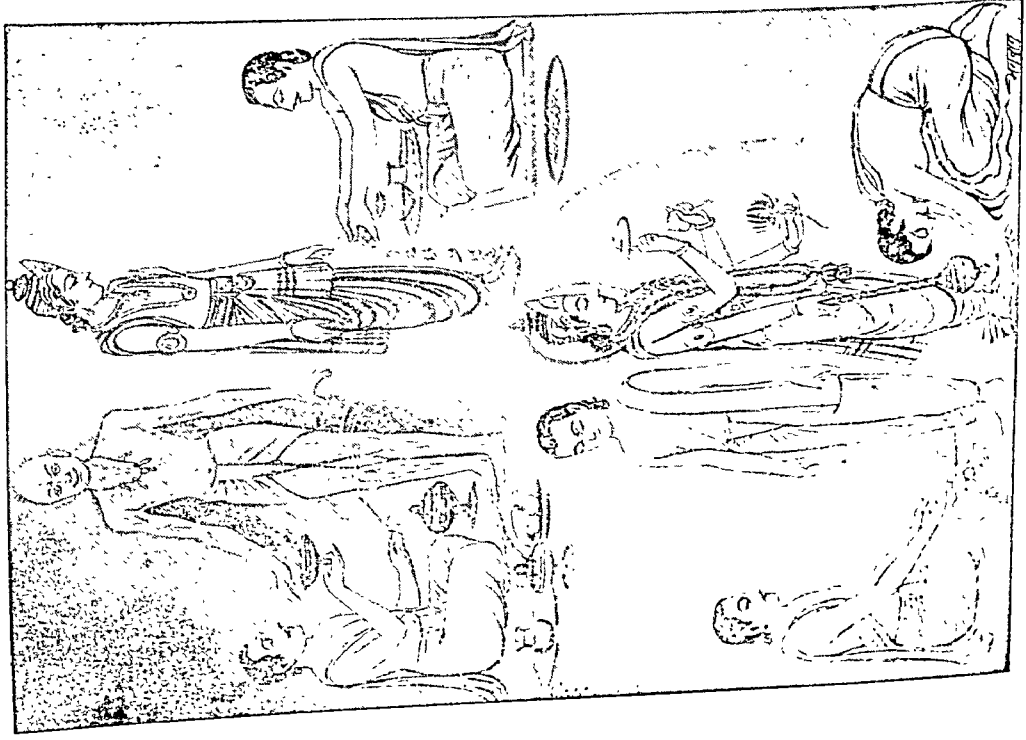
भूत-पूजा, पितर-पूजा, देव-पूजा, भगवत्-पूजा (गीता ९ । २५)
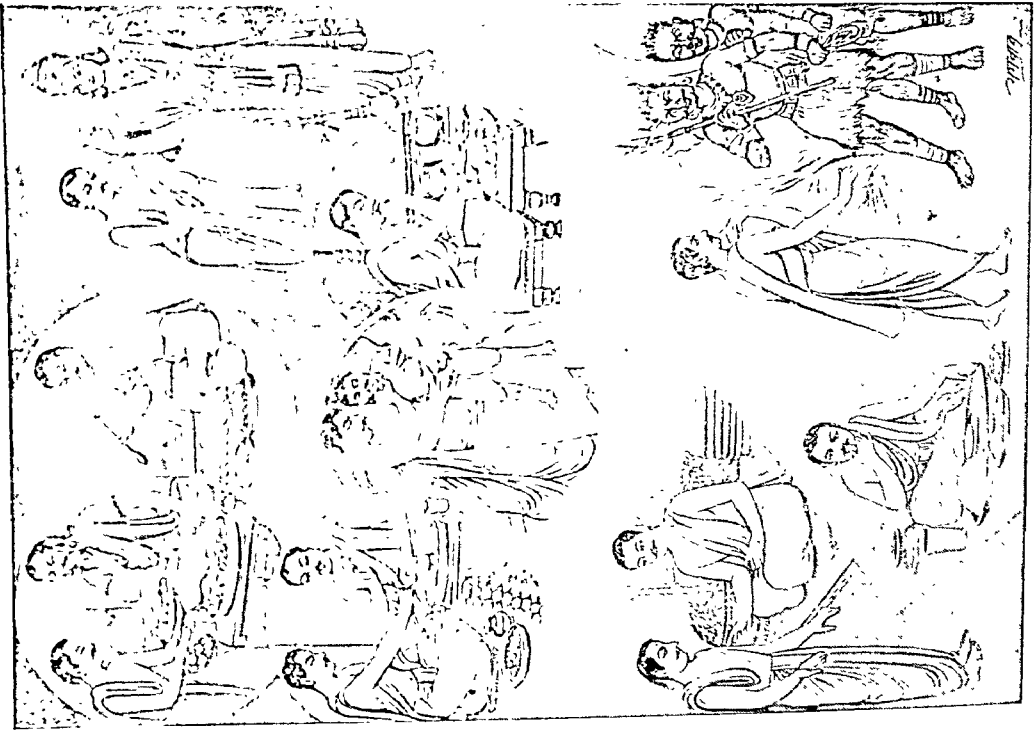
खिलाकर खानेमें पाप-नाश, न देकर खानेसे नरक (गीता ३ । १३)

औदारिक-शरीर सबसे स्थूल होता है। आगेके शरीर मशः सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर होते हैं।

मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके औदारिक-शरीर होता है। वैक्रिय रीर नेरयिक और देवोंके होता है तथा तिर्यञ्चों और नुष्योंके भी हो सकता है। आहारक-शरीर केवल तुर्दश पूर्वधारी मुनिराजोंके ही हो सकता है। तेजस ौर कार्माण शरीर चारों गतियों (मानव, तिर्यञ्च, देव, ारकी) के जीवोंके होता है।

औदारिक, तेजस और कार्माण शरीरोंमें सभी छः संस्थान— (आकार (१) समचतुरस्र, (२) न्यग्रोध-परिमंडल, (३) ादि, (४) कुब्ज, (५) वामन, (६) हुंडक)] पाये जाते । वैक्रियमें समचतुरस्र और हुंडक दो संस्थान पाये ाते हैं। आहारक शरीरमें एक समचतुरस्र संस्थान पाया ाता है।

औदारिक, तेजस और कार्माण शरीरोंमें सभी छः (१) ज्र, ऋषभ, नाराच, संहनन, (२) ऋषभ, नाराच, (३) ाराच, (४) अर्थ-नाराच, (५) कीलिका, (६) सेवार्त्त ंहनन (शरीर और अस्थियोंकी मजबूती) पायी जाती । आहारक-शरीरमें एक वज्र, ऋषभ, नाराच, संहनन ाया जाता है। वैक्रिय-शरीरमें कोई संहनन नहीं होता।

अष्टकर्मोको क्षयकर मोक्ष प्राप्त करना औदारिक- ारीरका प्रयोजन है। नाना प्रकारके रूप बनाना वैक्रिय- ारीरका प्रयोजन है। संशय-निवारण आहारक-शरीरका प्रयोजन है। संसारमें परिभ्रमण करते रहना तेजस और कार्माण-शरीरका प्रयोजन है।

औदारिक-शरीरका विषय रुचक द्वीपतक है। वैक्रिय-शरीरका विषय असंख्यात द्वीप समुद्रतक है। आहारक-शरीरका विषय ढाई द्वीपपर्यन्त है। तेजस और कार्माणका विषय चौदह राजू परिमाण है।

एक औदारिक-शरीरका यदि अन्तर पड़े तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम। वैक्रिय-शरीरका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल। आहारक-शरीरका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन। तेजस और कार्माण-शरीरका अन्तर कभी नहीं पड़ता।

औदारिक, वैक्रिय, तेजस और कार्माण—ये चारों शरीर लोकमें सदा पाये जाते हैं। आहारक-शरीर उत्कृष्ट षट्मासतक नहीं भी पाया जाता।

कार्माण-शरीरको 'कर्म-शरीर' और शेष शरीरोंको 'नो-कर्म-शरीर' भी कहा जाता है।

तेजस और कार्माण शरीर प्रवाहकी अपेक्षासे जीवके साथ अनादिकालसे हैं। जब कि बाकीके तीनों शरीरोंका सम्बन्ध अस्थायी है।

इस प्रकार जैन-साहित्यमें शरीरोंके विषयमें जो कुछ कहा गया है, उसका सार संक्षेपमें यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस वर्णनसे परलोक और पुनर्जन्मके विषयकी सभी भ्रान्तियाँ दूर हो जानी चाहिये; क्योंकि यह बहुत कुछ विज्ञानसम्मत भी है।

जैसी पूजा, वैसा फल

करता जो भूतोंकी पूजा वह भूतोंको ही पाता।
पितरोंका पूजक निश्चय ही पितृ-लोकमें है जाता॥
विधिपूर्वक देवोंका पूजक देवलोकको ही पाता।
भगवत्पूजक पुण्यवान भगवच्चरणोंमें ही जाता॥

यज्ञशिष्ट भोजनसे पाप-नाश

सुर-ऋषि-पितर-मनुज सब जीवोंको उनका हिस्सा देकर।
बचा हुआ जो खाता वह हो पापमुक्त पाता ईश्वर॥
पर जो निजके लिये कमाता, बिना दिये ही है खाता।
वह अघभोजी निश्चय ही यमदूतोंसे पीड़ा पाता॥

जैनधर्ममें जीवोंका परलोक

(लेखक—श्रीमिलापचंदजी कटारिया, जैनविद्याभूषण)

जिस धर्मका यह सिद्धान्त हो कि—अनेक योनियोंमें जन्म मरण प्राप्त करके ये जीव अपने किये पुण्य-पापके फलोंको भोगते रहते हैं, वह धर्म 'आस्तिक धर्म' कहलाता है। इस दृष्टिसे जैनधर्म भी एक आस्तिक धर्म माना जाता है; क्योंकि उनके धर्मशास्त्रोंमें भी ये सब बातें लिखी हैं और विस्तारसे लिखी हैं। उसका कहना है कि समस्त संसारी जीवोंका अस्तित्व नारकी, देव, तिर्यञ्च (पशु, पक्षी, कीड़े) और मनुष्य—इन चार भेदोंमें पाया जाता है। इन्हें ही चार गतियाँ कहते हैं अर्थात् संसारी जीवोंका आवागमन सदा इन चार स्थानोंमें होता रहता है। हर एक गतिके जीवोंकी अपनी अलग-अलग आयु होती है। जितनी जिसकी आयु होती है, उतने ही कालतक वह उस गतिमें रहता है। तिर्यञ्च और मनुष्य कारणवश अपनी निर्धारित आयुसे पहले भी मर जाते हैं जिसे 'अकालमरण' कहते हैं। नरक और देवगतिमें अकालमरण नहीं होता है। मरनेके बाद वह जीव अपनी अच्छी-बुरी करनीके फलसे या तो उसी गतिमें, जिसमें कि वह मरा है, फिरसे जन्म लेता है या अन्यान्य गतियोंमें जन्म लेता है; किंतु नरक और देवगतिके जीव लौटकर पुनः अपनी उसी गतिमें जन्म नहीं लेते हैं, अन्य गतियोंमें जानेके बाद जीव नरक और देवगतिको प्राप्त हो सकते हैं। नियमतः देव और नरक दोनों ही गतिके जीव तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमें ही जन्म लेते हैं। देवों और नारकियोंकी आयु प्रायः दस हजार वर्ष होती है, किसी भी गतिसे मरे हुए जीवको भवान्तरमें जन्म लेनेमें निमेष (आँखकी टिमकार) मात्र कालसे भी बहुत कम समय लगता है। जिस शरीरमेंसे निकलकर कोई जीव जब भवान्तरमें जाता है, तब रास्तेमें उस जीवका आकार पूर्वशरीर-जैसा रहता है। जब वह भवान्तरमें दूसरा नया शरीर ग्रहण करता है, तब उसका नये शरीरके आकार-जैसा आकार हो जाता है।

जैनधर्मके सिद्धान्तशास्त्रोंमें लिखा है कि देवों और नारकियोंकी वर्तमान भवकी आयुके समाप्त होनेमें जब छः मासका समय शेष रह जाता है, तब उनके किसी अगले भवकी आयुका निर्माण होता है। अर्थात् तब उनके अगले भवकी आयु (कर्म) का बन्ध होता है और उस आयु-कर्मके फलसे जितनी आयु उसने बाँधी है, उ[illegible] समयतक उसे अगले भव (योनि) में रहना पड़ता [illegible] इसी तरह मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके अपनी वर्तमान भ[illegible] आयुके तीन भागोंमें दो भाग व्यतीत हो जानेके बाद ती[illegible] भागमें अगले भवकी आयुका बन्ध होता है। किंतु इन[illegible] यह पता नहीं लगता कि हमारी आयु कितनी है और अग[illegible] भवकी आयुबन्धका कौन समय है ? आयुबन्धके सम[illegible] श्रेष्ठ परिणाम होनेसे अगले भवमें अच्छी गति मिलती है[illegible] इसलिये मानवोंको सदा ही अपना उत्तम आचार-विच[illegible] रखना चाहिये। पता नहीं, कब आयुबन्धका समय आ जाय[illegible]

उपर्युक्त चार गतियोंमेंसे मनुष्य और तिर्यञ्च (पशु-पक्ष[illegible] कीड़े) गतिके जीवोंका हाल तो प्रत्यक्ष ही है; अतः उनक[illegible] वर्णन न करके यहाँ हम नरक और देवगतिका वर्ण[illegible] करते हैं—

कुल नरक सात हैं। जिस पृथ्वीपर हम रहते हैं उसका नाम 'रत्नप्रभा' है। उसके भीतर कोसोंतकके लंबे-चौड़े बिल अनेक हैं। जमीनमें ढोलके गाड़ देनेपर जो पोलाई ढोलमें रहती है, उस तरहके बिल हैं, जिनमें नारकी जीव रहते हैं। इस रत्नप्रभा पृथ्वीके भीतरी बिलोंमें जितने नारकी रहते हैं, वह सब प्रथम नरक कहलाता है। इससे नीचे फासलेपर 'शर्कराप्रभा' नामकी दूसरी पृथ्वी है। उसके भीतर भी उसी तरहके कितने ही बिल हैं, जिनमें नारकी जीव रहते हैं। यह दूसरा नरक कहलाता है। इसी तरह फासलेपर उत्तरोत्तर नीचे-नीचे पाँच पृथ्वियाँ और हैं जिनके बिलोंमें भी नारकी जीव रहते हैं, जिन्हें कि तीसरेसे सातवाँ नरक कहना चाहिये। किसी एक नरकका नारकी अन्य नरकोंमें नहीं जा सकता, बल्कि किसी एक ही नरकके भिन्न-भिन्न बिलोंमें रहनेवाले नारकी अपने ही नरकमें अपने बिलके सिवा अन्य बिलमें भी नहीं जा सकते। इन सबकी आयु ऊपरकी अपेक्षा नीचेके नरकोंमें अधिक है। प्रत्येक बिलमें बहुत-से नारकी रहते हैं और प्रायः वे एक दूसरेको मार-काटकर दुःख देते रहते हैं। यहाँ आनेके बाद अपनी पूरी आयुतक यहाँ रहकर दुःख सहना पड़ता है। चाहे उनके शरीरोंको तिल-तिलमात्र भी काट दिया जाय, तो भी वे अपनी

आयु पूर्ण होनेके पहले वहाँसे निकल नहीं सकते हैं। उनके कटे हुए शरीरके टुकड़े पारेकी तरह मिलकर फिर एक शरीररूप बन जाते हैं। नरकोंमें स्त्रियाँ नहीं होती हैं। उनका जन्म बिलोंकी छतके अधोभागमें होता है। उस समय वे चमगादड़ोंकी तरह औंधेमुँह लटकते हुए जन्मते हैं और नीचे जमीनपर गिरते हैं। जन्म लेनेके बाद ही अपना मार-काटका काम शुरू कर देते हैं। सभी नारकियोंका रूप बड़ा भयंकर होता है। नरकोंमें आपसकी मार-काटका ही दुःख नहीं होता, अन्य भी असहनीय दुःख होते हैं। वहाँ कितने ही बिलोंमें ऐसी भयानक गरमी पड़ती है कि जिस गरमीसे लोहेका गोला भी गलकर पानी हो जाय। कितने ही बिलोंमें ऐसी प्रचण्ड ठंढ पड़ती है कि जिससे लोहेके गोलेका खण्ड-खण्ड हो जाय। प्यास उन नारकियोंको इतनी अधिक लगती है कि सब समुद्रोंका पानी पी जायँ, तब भी प्यास बुझे नहीं; परंतु उनको बिंदुमात्र भी जल मिलता नहीं है। भूख उनको इतनी प्रचण्ड लगती है कि सारे संसारका अनाज खा जायँ; परंतु उन्हें कणमात्र भी अनाज मिलता नहीं है। वहाँकी भूमिका स्पर्श ही इतना दुःखदायी है कि जैसे बिच्छुओंने डंक मारा हो। ये सब दारुण दुःख नारकियोंको उम्रभर भोगने पड़ते हैं। वहाँ क्षणभर भी सुख नहीं है। घोर पापोंका फल भोगनेके लिये प्राणियोंको इन नरकोंमें जाना पड़ता है।

इसके विपरीत जो पुण्यात्मा होते हैं, वे देवलोकमें जाकर सुख भोगते हैं। जिस मनुष्यलोकमें हम रहते हैं, वह 'मध्यलोक' कहलाता है। उससे नीचे 'अधोलोक' है—उसमें नरक हैं। मध्यलोकसे ऊपर 'ऊर्ध्वलोक'में देवोंका निवासस्थान है। वहाँ देव किसी पृथ्वीपर नहीं रहते हैं। वे सब विमानोंमें रहते हैं। इनसे भी बहुत ऊपर 'स्वर्गलोक' है। वह हमारे नेत्रगोचर नहीं है। वहाँ उत्तम श्रेणीके देवोंका निवास है। उससे भी ऊपर 'अहमिन्द्रलोक' है, जहाँ उनसे भी उत्कृष्ट देव रहते हैं। कुछ निम्नश्रेणीके देव अन्यत्र भी रहते हैं। स्वर्ग १६ माने गये हैं। प्रत्येक स्वर्गके दायरेमें बहुत-से विमान होते हैं, जिन सबका स्वामी उस स्वर्गका एक इन्द्र होता है। उन सब विमानोंके [illegible] हैं। विमानोंकी लंबाई-चौड़ाई काफी विस्तृत होती है। उन देशोंके अलग-अलग राजा अलग-अलग इन्द्र कहलाते हैं। जैसे मनुष्यलोकमें राजा, मन्त्री, पुरोहित, सेना, प्रजा आदि होते हैं, वैसे ही देवलोकमें भी होते हैं। वहाँके राजाको 'इन्द्र' कहते हैं और प्रजाके लोग 'देव' कहलाते हैं। इन इन्द्रादि देवोंका शरीर बहुत सुन्दर होता है। उनके शरीरोंमें हाड़, मांस, रक्त, धातु, मज्जा, मल, मूत्र, पसीना नहीं होते हैं। उनको निद्रा नहीं होती, बुढ़ापा नहीं होता और किसी प्रकारका रोग नहीं होता। उनको प्यास नहीं लगती। वे खाते कुछ नहीं। बहुत वर्षोंमें कभी भूख लगती है तो उसी क्षण उनके कण्ठोंमें अपने-आप अमृत झर पड़ता है। उससे वे तृप्त हो जाते हैं। वहाँ किसी प्रकारका उनको शारीरिक दुःख नहीं होता है। इसी प्रकारकी वहाँ सुन्दर देवियाँ होती हैं, जिनके साथ वे देव नाना प्रकारके भोग-विलास करते हैं। वे देवियाँ वहाँ केवल भोगविलासके लिये ही होती हैं। उनके गर्भ धारण नहीं होता है। देवों और देवियोंकी उत्पत्ति वहाँ किसी स्थानविशेष (जिसे उपपादशय्या कहते हैं) से होती है। पैदा होनेके थोड़े ही समय बाद वे जवान हो जाते हैं और फिर उम्रभर जवान ही बने रहते हैं। उन सबकी कोई निश्चित आयु होती है। देवियोंकी आयु देवोंसे कम होती है। आयु समाप्त होनेके बाद इन्द्रादिको भी अन्य योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। इसलिये मनुष्यादिकी तरह वे भी संसारी जीव ही हैं। एक प्रसिद्ध पुरातन जैनाचार्य समंतभद्रस्वामीने कहा है—

> श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्बिषात्।
> कापि नाम भवेदन्या संपद्धर्माच्छरीरिणाम्॥

अर्थात्—'धर्मके प्रतापसे कुत्ता भी देव हो जाता है। देवयोनिमें जन्म लेता है और पापके फलसे देव भी मरकर कुत्तेकी योनिमें जाता है। इसलिये प्राणियोंके लिये धर्मसे अतिरिक्त अन्य कोई क्या सम्पदा हो सकती है!'

इस स्वर्गलोकसे ऊपर एक 'अहमिन्द्रलोक' भी है, जिसमें भी देवोंका निवास है। वे देव भी [illegible]

इस अहमिन्द्रलोकसे ऊपर 'शिवलोक' है । वहाँ वे जीव रहते हैं, जिन्होंने मनुष्य-जन्ममें वैराग्य-तप-संयमके द्वारा आत्माको पूर्ण शुद्ध बना लिया हो । ऐसे जीव संसार-से निकलकर शिवलोकमें पहुँचते हैं । वहाँ वे अनन्तकाल-अतीन्द्रिय, आत्मजनित सुखका अनुभव करते रहते हैं । का संसारका आवागमन सदाके लिये छूट जाता है । अनन्त ज्ञान दर्शन-सुख-वीर्यके धारी होते हैं ।

जैनधर्ममें जीवोंकी तीन दशा मानी है—शुभ दशा, अशुभ दशा और शुद्ध दशा । शुभ दशावाले जीव पुण्यकर्मके फलसे देवलोकको प्राप्त होकर सांसारिक सुख भोगते हैं । अशुभ दशावाले जीव पापकर्मके फलसे नरकोंमें जाकर दुःख भोगते हैं । कभी वे जीव पशुयोनिमें भी जाकर दुःख उठाते हैं। जिनकी शुभ और अशुभ—दोनों मिलकर मिश्रदशा होती है, वे जीव पुण्य और पाप—दोनोंके मिश्रित फलसे मनुष्य-लोकमें जन्म लेकर वहाँ सुख-दुःख दोनोंको भोगते हैं। और शुद्ध दशा वह है, जिसमें आत्माके साथ पुण्यकर्म और पापकर्मका कुछ भी मैल नहीं रहता । आत्मा शिवलोक'में पहुँच जाता है । वहाँ अब वह शरीरधारण नहीं करता है । जहाँ शरीर है, वहीं जन्म-मरण है, आवागमन है और संसारका चक्र है । अतः शिवलोकके निवासी जीव अशरीरी होते हैं—उनका केवल वहाँ अपना शुद्ध आत्मा ही होता है । मोक्षस्थान, मुक्तिस्थान, सिद्धालय इत्यादि नाम शिवलोकके ही पर्याय नाम हैं । वहाँके जीव निरञ्जन, निर्विकार, चिद्रूप, परमात्मा, परब्रह्म, सर्वज्ञ, ईश, सिद्ध इत्यादि नामोंसे पुकारे जाते हैं । ऐसे सिद्ध जीव वहाँ अगणित पहुँच चुके हैं और आगे भी पहुँचते रहेंगे । यह स्थान सृष्टिका ऊपरी आखिरी स्थान है ! इससे ऊपर अलोक है, जहाँ एकमात्र आकाशके सिवा अन्य कोई पदार्थ नहीं है ।

इस प्रकार हमने यहाँ जीवोंके आवागमनके स्थानोंका जैनमतानुसार संक्षिप्त वर्णन किया है । जैनशास्त्रोंमें इस विषयका बहुत विस्तारसे विवेचन है । जैनकथा-ग्रन्थोंमें ऐसी बहुत-सी कथाएँ लिखी हैं, जिनमें जीवोंके अनेक भवान्तरोंका वर्णन किया गया है ।

मृतात्माओंको बुलानेवाले विश्वस्त पुरुष कौन-कौन हैं ? और मृतात्माओंको बुलानेकी विधि क्या है ?

दृढ़ विश्वासपूर्वक नहीं बताया जा सकता कि देशमें कहाँ कौन सज्जन आत्माओंको बुलानेका सफल प्रयोग करते हैं । मैं तो समझता हूँ, कभी किन्हींको बहुत ही आवश्यक हो तो स्वयं ही एकान्तमें कुछ विश्वासी लोग, किसी पवित्र स्थानमें, पवित्र होकर, जिस आत्माको बुलाना हो उसका ध्यान करके बार-बार नम्र निवेदन करें और कागज-पेन्सिल रखकर, तिपाईके खटकोंद्वारा अथवा किसी अल्पवयस्क कोमलमति माध्यम (मीडियम) को नियुक्त करके उसके द्वारा बातचीत करनेके लिये नम्र अनुरोध करें । सम्भव है, ऐसा करनेपर उनका वाञ्छित आत्मा आ जाय और बात करे । यह प्रयोग करना चाहिये—अनिवार्य आवश्यकता होनेपर ही; क्योंकि इससे पारमार्थिक साधनमें हानि होती ही है, यदि कोई भयानक पापात्मा आ जाता है तो उसके द्वारा कष्ट-प्राप्ति एवं अपना तथा माध्यम (मीडियम) का अनिष्ट भी हो सकता है !

लामा टोमो गेशे रिम्पोचे लेखकके गुरु थे; वृद्धावस्थाको प्राप्त हो जानेपर उन्होंने समाधिके द्वारा अपने शरीरका त्याग किया और फिर सिक्किमके एक नगर गूँगटोकमें अपनी भविष्य-वाणीके अनुसार पुनर्जन्म धारण किया। प्रस्तुत लेखमें लामा अनागरिक गोविन्दने इस घटनाका वर्णन करते हुए पुनर्जन्मपर अपने विचारोंको अभिव्यक्त किया है। —अनुवादक)

टोमो गेशे रिम्पोचेने मृत्युके समय अपने शिष्योंसे प्रतिज्ञा की थी कि वे एक निश्चित अवधिके भीतर दूसरा शरीर धारण करके अपने मठको लौट आयेंगे। कुछ समय उपरान्त उनकी यह प्रतिज्ञा सत्य सिद्ध हुई। जहाँतक मेरा विचार है, मेरे गुरुदेवका पुनर्जन्म उसी घरमें हुआ, जिसमें एक बार तो अपनी प्रथम तिब्बत-यात्राके समय और दूसरी बार इस महान् संतसे मिलनेके उद्देश्यसे की गयी यात्राके दौरान, एक मेहमानके रूपमें मैं टिक चुका था। यह घर गंगटोकमें था, जिसके स्वामी ऐन्चे काजी थे। मुझे उन्हींके मुँहसे टोमो गेशेके पुनर्जन्म और ल्हासाकी महान् राजकीय भविष्यवाणीके आधारपर उनकी खोजका समाचार ज्ञात हुआ।

यह जानते हुए कि ऐन्चे काजी एक ईमानदार और धार्मिक पुरुष हैं, मैं भी इस घटनाकी सत्यताकी पुष्टि करता हूँ। इस घटनाकी साक्षीके रूपमें ली गौतमी (लेखककी पत्नी) भी उस समय मेरे साथ थीं। यद्यपि ऐन्चे काजी-को टुल्कूके पिता होनेका गर्व प्राप्त था, फिर भी उन्होंने इस घटनाको दुःखित होकर सुनाया; क्योंकि इस बच्चेके जन्मके तुरंत बाद ही उनकी पत्नीका देहान्त हो गया था* और कुछ भी त्याग देना पड़ा। इस घटनाका सबसे रोमाञ्चक प्रमाण यह है कि जब उस बालकने स्वयं प्रसन्नतापूर्वक अपने पूर्व-जन्मके मठको लौट जानेके लिये उत्सुकता प्रकट की, तब अपने पुत्रकी प्रसन्नताको ध्यानमें रखते हुए विवश होकर पिताने अपने इकलौते पुत्रके त्यागका निश्चय कर लिया और उसे 'डुंगकर गोम्पा' ले जानेकी स्वीकृति देनी पड़ी।

सिक्किमके महाराजाने स्वयं भी बालकके पितासे यह अनुरोध किया कि वे बच्चेकी उच्चतर नियतिके सम्बन्धमें हस्तक्षेप न करें; क्योंकि नी चुंगकी महान् देववाणीके द्वारा यह पहले ही संकेत किया जा चुका था, जिसकी पुष्टि उस बालकके वचनों और व्यवहारसे भी हो गयी थी। वह बालक सदासे ही आग्रह करता था कि वह सिक्किमी न होकर तिब्बती है। जब उसके पिताने उसे 'पू-चुंग' कहकर पुकारा, जिसका अर्थ 'छोटा बेटा' होता है, तो उसने इसका विरोध किया और उसने कहा कि उसका नाम 'जिग्मे' है, जिसका अर्थ 'निर्भीक' होता है। यह वही नाम था, जिसका उल्लेख ल्हासाकी देववाणीने भी किया था कि 'टोमो गेशे' का पुनर्जन्म इसी नामसे होगा।

राजकीय देववाणीके द्वारा इस बातको इतना अधिक महत्त्व दिये जानेसे यह प्रकट होता है कि टोमो गेशेके पुनर्जन्मका कितना अधिक महत्त्व है। वास्तवमें नी-चुंगकी देववाणीने न केवल उस दिशाका ही निर्देश किया, जिस ओर पुनर्जन्म होनेकी सम्भावना थी, बल्कि उस नगर और स्थानका विस्तृत वर्णन भी बता दिया, जहाँ यह जन्म होने-वाला था। इन सभी प्रकारके विस्तृत वर्णनोंसे यह बात स्पष्ट हो गयी थी कि यह नगर सिर्फ गंगटोक ही हो सकता है। यहाँतक कि देववाणीने बच्चेके जन्म लेनेका वर्ष, उसके माता-पिताकी ठीक-ठीक अवस्था, उसके घरका सही विवरण तथा उसके बगीचेके पेड़ोंके सम्बन्धमें भी पूरा वर्णन कर दिया

---

* तिब्बतमें यह विश्वास प्रचलित है कि टुल्कूके जन्मके बाद ही उसकी माँकी मृत्यु हो जाती है। मुझे भी अन्य कई घटनाओंका स्मरण है, जहाँ ऐसा हुआ, केवल वर्तमान 'दलाई लामा' का जन्म इस सम्बन्धमें अपवादस्वरूप है। शाक्यमुनि बुद्धकी माँ रानी मायाकी भी मृत्यु बुद्धके जन्मके कुछ ही दिनों बाद हो गयी थी।

पिताके रोके जानेके बावजूद भी वह इन साधुओंसे
के लिये प्रसन्नतापूर्वक दौड़ पड़ा । उसका पिता उस
अपने इकलौते बच्चेका त्याग करनेके लिये तनिक भी
नहीं था; किंतु उस बालकने ही अपने पितासे
न किया कि ये उसको अपने पूर्वस्थानकी ओर वापस
दें । जैसे ही साधुओंने उसके सामने मठसम्बन्धी
वस्तुएँ फैला दीं, जो प्रतिदिनके धार्मिक अनुष्ठानमें
लायी जाती हैं—जैसे जप करनेकी माला, वज्र, घंटियाँ,
ी प्यालियाँ, लकड़ीके बने हुए कमण्डलु और डमरू
। इन वस्तुओंको देखते ही तुरंत उस बालकने अपनी
तुएँ उठा लीं, जिनको वह अपने पूर्वजन्ममें भी काममें
था । जो वस्तुएँ उससे सम्बन्धित नहीं थीं, उनको
छोड़ दिया; यद्यपि कुछ वस्तुएँ तो उसकी वस्तुओं-
लनामें कहीं अधिक सुन्दर और आकर्षक लग रही थीं।

पिताने ये सब प्रमाण देख लिये । अपने बच्चेकी
ान्य बुद्धि और अलौकिक व्यवहारसे भी उसे कई
आश्चर्य होता था । अन्ततः जब उसे पूरी तरह अपने
के पूर्वजन्मके सम्बन्धमें विश्वास हो गया तो उसने
हृदयसे अपने पुत्रको तिब्बतके मठवासियोंके इस
ण्डलके साथ जानेकी अनुमति दे दी ।

डुंगकर गोम्पाकी यात्राके दौरानमें इस दलकी भेंट
ी डाक्टर आमन्चीसे हुई । टोमो गेशेके अन्तिम दिनोंमें
डाक्टरने उसका इलाज किया था । बालकने डाक्टरको
ही पहचान लिया और फिर पुकारकर कहा—'ऐ
ची ! क्या तुम मुझे नहीं जानते ? क्या तुम्हें यह स्मरण
कि मेरे पूर्वजन्मके अन्तिम दिनोंमें तुम्हींने मेरा इलाज
था ?'

डुंगकर गोम्पामें भी उसने कुछ पुराने साधुओंको
दिव्य व्यवहारके द्वारा सभीको प्रभावित कर दिया । जब वह
बालक मन्दिरके विशाल कक्षमें स्थित सिंहासनपर बैठकर
पूजा करता या विशिष्ट अवसरोंपर धार्मिक अनुष्ठानोंकी
अध्यक्षता करता और तीर्थयात्रियोंको आशीर्वाद देता,
उस समय इसके विलक्षण और गम्भीर व्यवहारसे सभी
चकित रह जाते; किंतु अन्य अवसरोंपर अपने ही उम्रके
दूसरे बालकोंके समान इसका व्यवहार सामान्य हो जाता ।
धार्मिक अनुष्ठानोंके समय उसका चेहरा एक बालकके समान
न लगकर एक वयोवृद्ध विद्वान्के समान लगता । शीघ्र ही
यह स्पष्ट हो गया कि इस बालकने अपने पूर्वजन्ममें जो
ज्ञान अर्जित किया, उसे अभी वह भूला नहीं है । उसकी
शिक्षामात्र उसके पूर्व-अर्जित ज्ञानके पूर्वाभ्यासके रूपमें
हुई और उसने अपनी शिक्षामें इतनी शीघ्रतासे
प्रगति की कि डुंगकरमें उसको पढ़ानेके निमित्त नियुक्त
शिक्षकोंके समक्ष उसको पढ़ानेके लिये कोई भी विषय शेष
नहीं रहा । इस प्रकार केवल सात वर्षकी अवस्थामें
ही उच्च शिक्षाके लिये तथा दिव्यताके डाक्टरकी अर्थात् 'गेशे'
उपाधि प्राप्त करनेके लिये उसे ल्हासाके निकट सेराके महान्
मठके विश्वविद्यालयमें भेज दिया गया ।

पश्चिमके आलोचक-प्रवृत्तिके लोगोंको यह सारी घटना
अविश्वसनीय लग सकती है और मैं भी स्वीकार करता हूँ
कि प्रारम्भमें मुझे भी इन सब बातोंमें विश्वास नहीं हुआ,
जबतक कि मैंने इसी प्रकारके अन्य उदाहरण नहीं देखे ।
इस प्रकारकी घटनाओंने यह सिद्ध कर दिया कि पुनर्जन्म-
की धारणा केवल एक सिद्धान्त या एक अस्थापित विश्वास
ही नहीं है, बल्कि इससे पूर्वोत्तर जन्मोंकी उपलब्धियोंकी
स्मृतिकी सम्भावनाओंपर भी प्रकाश पड़ता है । एक
वैज्ञानिक, जो केवल भौतिक वंशानुक्रमपर ही विश्वास करता

है, कभी अपने आपसे यह पूछनेका प्रयास नहीं करता कि वंशानुक्रमके सिद्धान्तका वास्तविक अर्थ होता क्या है ? यह एक अर्जित विशेषताओंकी सुरक्षा और निरन्तरताका सिद्धान्त है, जिसकी अन्तिम परिणति चेतन अनुस्मारक और संगठित ज्ञानकी चेतन-दिशाके अन्तर्गत होती है। अर्थात् समन्वित अनुभवोंके माध्यमसे, दूसरे शब्दोंमें वंशानुक्रम-स्मृतिका ही दूसरा नाम है। यह एक स्थायी सिद्धान्त है और विसर्जन तथा अस्थिरताकी प्रतिशक्ति है। चाहे हम स्मृतिको एक आध्यात्मिक या भौतिक गुण कहें या उसे जीव-विज्ञानका एक सिद्धान्त मानें तो यह अलग बात हुई; क्योंकि भौतिक, आध्यात्मिक या जैविकीय उन भिन्न-भिन्न स्तरोंको प्रकट करती है, जिनमें एक ही शान्ति क्रियान्वित होती है या उनके माध्यमसे यह प्रकट होती है। जो बात महत्त्वकी है, वह यह है कि यह वस्तुओंको सुरक्षित रखनेवाली तथा वस्तुओंका निर्माण करनेवाली एक दोनों प्रकारकी शक्ति है; जो भूत और भविष्यके बीचमें सम्बन्ध जोड़ती है और जो अन्तमें समयातीत वर्तमान और चेतन अस्तित्वकी अनुभूतिके माध्यमसे प्रकट होती है। संरक्षण और निर्माणकी समकालीनता निरन्तर परिवर्तनकी प्रक्रियासे ही उपलब्ध हो सकती है, जिसमें आवश्यक तत्त्व और रूप-विधान एक आदर्श केन्द्रके रूपमें वर्तमान रहता है, जिससे अन्तर्निहित नियमानुसार तथा बाह्य उद्दीपकोंके प्रभावके अन्तर्गत नये-नये रूप विकीरित होते रहते हैं।

बौद्धोंके लिये 'चेतना' ही वह केन्द्रबिन्दु है, जहाँसे अन्य सारी वस्तुएँ विकसित होती हैं और जिसके बिना न तो हम अपने अस्तित्वकी ही कल्पना कर सकते हैं और न अपने चारों ओर फैले हुए जगत्‌की, चाहे हमारे चारों ओरका जगत् हमारी ही चेतनाके द्वारा निर्मित हो या हमारे ही भीतर निहित हो। यह बात गौण है कि जगत् हमें वैसा ही दीखता है, जैसा कि हम उसे अनुभव करते हैं। इससे इस तथ्यको नकारा नहीं जा सकता कि चेतनामें ही हमारे संसारकी जड़ें निहित हैं और अपनी चेतनाके द्वारा ही हम इस संसारमें क्रियाशील हो सकते हैं। अपनी चेतनाके द्वारा ही हम इस संसारको बदल सकते हैं, दूसरे अन्य किसी साधनसे नहीं। चेतनासे ही हमारा संसार है और चेतनासे ही हम इससे परे हो सकते हैं अर्थात् 'संसृति' और 'विस्मृति', जिन्हें हम संसार और निर्वाण कहते हैं, दोनोंका कार्य और कारण चेतनामें ही है।

चेतना दो कार्योंपर आधारित है—'भिज्ञता' (Awareness) और 'अनुभवसे होनेवाले परिणामोंका संरक्षण', जिसे हम स्मृति कहते हैं। चेतनाकी व्याख्यामें उसे ज्ञानका पर्यायवाची कहनेकी अपेक्षा पूर्वानुभवोंका खजाना कहना अधिक उपयुक्त होगा। ज्ञान जब कि क्षणिक है और एक विशिष्ट वस्तुतक ही सीमित है, चेतना सार्वभौम, समयनिरपेक्ष है और निरन्तर क्रियारत रहनेवाली है; चाहे हम इसके बारेमें जानते हैं या नहीं। इसी कारणसे विज्ञानवादी गहनतम चेतनाको अलय विज्ञान या चेतना-भण्डारके रूपमें व्याख्या करते हैं, जिसमें न केवल हमारे ही जीवनके अनुभव संगृहीत हैं, बल्कि काल और समयनिरपेक्ष हुए हमारे पूर्वजोंके अनुभव भी सुरक्षित हैं और जो इसीलिये विश्वव्यापी चरित्रकी विशेषता रखनेवाली चेतना बन गयी है। यह चेतना व्यक्तिको उन सबसे जोड़ती है, जिनका अस्तित्व है, जिनका कभी अस्तित्व था या भविष्यमें जिनका कभी अस्तित्व होगा।

चेतना एक जीवन्त धाराके समान है, जिसे संकीर्ण अहंकारके पाशमें नहीं बाँधा जा सकता; क्योंकि इसका स्वभाव गतिमान् रहनेका है। चेतना अविरल रूपसे प्रवाहित हो रही है और प्रवाहका अर्थ जहाँ निरन्तरतासे है, वहाँ यह एक साथ दो या दो ध्रुवोंसे भी सम्बन्धित है। इन दो ध्रुवोंको जोड़नेकी विशेषताके होनेके कारण कोई गति नहीं है, कोई जीवन नहीं है, कोई —

जितना ही अधिक बड़ा होगा, उतनी ही चेतना उच्चतर स्तरकी होगी।

एक औसत चेतना फिर भी सांसारिक उद्देश्य और इच्छाओंमें ही परिरुद्ध होकर रह जाती है, जिससे चेतनाका वह अनवरत प्रवाह उलझ जाता है; उसकी दिशा बदल जाती है। उसकी शक्ति बिखर जाती है तथा ज्ञानका प्रकाश धूमिल होता चला जाता है। जब वैयक्तिकताका चैतन्य-सम्बन्ध विश्वजनीनताके साथमें समाप्त होने लगता है और वैयक्तिकता ही अपने क्षणिक अस्तित्वके लिये स्वयंमें साध्य होने लग जाती है, तब एक अपरिवर्तनीय पृथक् अहंकारका भ्रम उत्पन्न होने लग जाता है। चेतनाका प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है और एक निष्क्रियता सम्पूर्ण जीवनपर छाने लग जाती है। इसको दूर करनेका उपाय वैयक्तिकताका दमन करना नहीं है; बल्कि यह अनुभव करनेकी आवश्यकता है कि वैयक्तिकता ऊपर वर्णित अहंकारके समान नहीं है, बल्कि यह निरन्तर परिवर्तित होती रहती है, जो कि जीवनका एक सहज और स्वाभाविक लक्षण है। यह परिवर्तनशीलता अर्थहीन या निरंकुश नहीं है, बल्कि यह सृष्टिमें अन्तर्निहित शाश्वत नियमके अनुसार अग्रसर होती है, जो कि गतिके प्रवाह और उसके स्थायित्वको सुनिश्चित करती है।

वैयक्तिकता न केवल सार्वजनीनताकी एक आवश्यक और सम्मानसूचक प्रतिपक्षी है, बल्कि यह इसीमें केन्द्रित भी है, जिसके माध्यमसे ही सार्वजनीनताकी अनुभूति की जा सकती है। वैयक्तिकताके दमनसे, उसके दार्शनिक और धार्मिक महत्त्वकी अस्वीकृतिसे केवल उदासीनता और समापनकी स्थिति ही प्राप्त की जा सकती है। इस स्थितिको दुःखसे निवृत्तिकी स्थिति भले ही मान लिया जाय, लेकिन यह विशुद्ध रूपसे नकारात्मक है; क्योंकि यह हमें उस उच्चतम अनुभूतिसे वञ्चित करती है, जो व्यक्तित्वकी प्रक्रियाका अन्तिम लक्ष्य है; या ब्रह्मत्वकी प्राप्तिकी अनुभूति है। जिसमें अपने अस्तित्वकी सार्वजनीनताकी अनुभूति की जाती है।

केवल 'समुद्रमें बूँद'के समान उस पूर्णत्वको ... किये बिना पूर्णत्वमें समाहित हो जाना विनाश करनेका एक काव्यात्मक ढंग है और इसका ... वैयक्तिकताके आडम्बरके तथ्यकी समस्याको ट... है। जब ब्रह्माण्डकी यह सहज जन्मजात ... नहीं है, तब यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि ब्रह्माण्डमें जीवन और चेतना वैयक्तिक रूपोंमें होती है? परंतु प्रश्न वही रहता है, चाहे ब्रह्माण्डको एक वैज्ञानिककी दृष्टिसे भौतिक ... यथार्थ ब्रह्माण्डके रूपमें देखें या एक बौद्धके ... आध्यात्मिक शक्तिके निःसृति-पदार्थ या आलय ... देखें, जो कि सर्वत्र अङ्गीकृत ब्रह्माण्ड 'चेतना कोष (... विज्ञान)' के आत्मनिष्ठ रूपमें अनुभव किया ... हमारे वैयक्तिक अस्तित्वके ब्रह्माण्डके क्रममें एक ... स्थान होना चाहिये, जिसे मात्र एक भ्रम या एक घटना मानकर जिसकी उपेक्षा नहीं की जा ... भ्रम—किसका भ्रम?···कोई भी इसे पूछ सकता है।

हमारी बौद्धिक विवेचनासे अधिक महत्त्व... अवलोकनीय तथ्य हैं, जिनकी व्याख्या बहुत पहले ... दर्शन या मनोविज्ञानके द्वारा किये जानेके पहले ... हमें न केवल इस धारणाकी ओर ले जाती है कि अस्तित्वके उच्चतर और निम्नतर क्षेत्रोंमें मृत्युके उ... भी एक वैयक्तिक चेतनाका अस्तित्व रहता है, बल्कि हमारे मानव-जगत्‌के पुनर्जन्मकी धारणाको भी ... करती है।

जैसा बीज—वैसे फल

जैसा बीज, बहुतसे होते फल वैसे ही; उसी प्रकार—
कर्मबीज होता जैसा, फल भी होते उसके अनुसार॥
इह-परलोक चाहते यदि तुम नित्य परम सुख-शान्ति अपार।
सावधान रह, करो सतत शुभ कर्म पुण्य आचार उदार॥

बौद्धमतानुसार परलोक, कर्मफल-भोग

(लेखक—पं० श्रीछेदीजी 'साहित्यालंकार')

बौद्धधर्ममें अहिंसा एवं सत्यको सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। कोई भी अनात्म एवं अनीश्वरवादी अहिंसापर बल नहीं लगा सकता है। वह सदैव हिंसक ही रहेगा। परलोक एवं कर्म-फलपर विश्वास रखनेवाले ही अहिंसक हो सकते हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि बौद्धधर्ममें परलोक तथा पुनर्जन्म आदिको स्थान ही नहीं, वरं सर्वप्रथम स्थान दिया जाता है।

'धम्मपद' (धर्मपद) नामक ग्रन्थमें तथागत बुद्धने अनेक स्थानोंपर स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य, सद्गति, दुर्गति आदिका स्पष्ट शब्दोंमें उल्लेख किया है। यहाँ मैं कुछ बुद्ध-वचनोंको समासरूपसे उद्धृत कर रहा हूँ। ये सभी वाक्य 'धम्मपद' नामक ग्रन्थसे ही लिये गये हैं—

'हे भिक्षु! ध्यान कर और सावधान रह। अपने चित्तको खुशीकी ओर न ले जा, ताकि तुझे बेपरवाहीके बदले नरकमें लोहेका गोला न निगलना पड़े और जलते समय न चिल्लाना पड़े कि हाय! यह दुःख है।'

(धम्मपद व० ३७१)

'जो मिथ्या भाषण करता है, नरकको जाता है……।'

(वचन ३०६)

'अच्छा आदमी इस दुनियाँमें भी खुश रहता है और परलोकमें भी खुश रहता है। उसे दोनों लोकोंमें सुख मिलता है।'

(वचन १…)

जाते हैं, पुण्यात्मा स्वर्गको जाते हैं। जो सांसारिक वा… मुक्त हैं, वे 'निर्वाण पद' पाते हैं।' (वचन …

'ज्ञान बिना ध्यान नहीं और ध्यान बिना … नहीं। जो ज्ञान और ध्यान दोनों रखता है, वह 'नि… के समीप है।' (वचन …

'इस शरीरके बनानेवालेको ढूँढ़नेमें मुझे अनेक… लेने पड़े, क्योंकि उसका पता न पाया। और बार-बार… लेना दुःखदायी है। किंतु हे शरीरकर्ता! अब तुझे… लिया है। तू अब इस शरीरको फिर बना नहीं पा… शरीरकी तमाम हड्डियाँ टूट गयी हैं, शहतीर टूट ग… चित्त निर्वाणके समीप पहुँचकर सारी वासन… नष्ट कर चुका है।' (वचन १५३-…)

'कृपण लोग देवलोकमें नहीं जाते, केवल मूर्ख… ही उदारताकी प्रशंसा नहीं करते। बुद्धिमान् … उदारतामें खुश रहता है और उसीके द्वारा पर… सुख पाता है।' (वचन १…

'दुनियाँ अँधेरी है। बहुत कम आदमी इसमें दे… हैं। बहुत कम लोग जालसे छूटी हुई चिड़ियोंके… स्वर्गमें जाते हैं।' (वचन …

भगवान् बुद्धने सम्पूर्ण धम्मपदमें पाप, पुण्य, नरक, लोक-परलोक आदिका …

परलोकगत आत्माओंसे सम्पर्क

(लेखक—श्रीश्यामनोहरजी व्यास, एम्० एस्-सी०, बी० एड्०)

मरणोपरान्त जीवनपर विश्वके दार्शनिकोंने पर्याप्त विचार-विमर्श किया है; पर अन्तिम परिणाम कुछ नहीं निकला है। आत्मा, पुनर्जन्म, भूत-प्रेत, परलोक आदि मनुष्यके लिये सदैवसे रहस्यके विषय रहे हैं। यद्यपि भारतीय ऋषि-मुनियोंका यह निश्चित तथा अनुभूत सिद्धान्त है कि आत्मा नित्य है और जीवात्माको पुनर्जन्म तथा परलोककी कर्मानुसार प्राप्ति होती है।

पाश्चात्य जगत्में इसकी खोज चल रही है।

नार्मन विन्सेन्ट पीलं नामक विद्वान्ने 'जीवनभर जीवित रहिये' (Stay alive all your life) नामक एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने मृत्युके उपरान्त जीवन पर प्रकाश डाला है। इस पुस्तकके अनुसार, प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन मृत्युके बाद जीवनमें विश्वास रखते थे। वे मानते थे कि आत्माका पृथक् अस्तित्व है, जो मृत्युके समय शरीरको छोड़ जाता है। मृत्युके समय एडीसनके शब्द थे—'अहा, आगे कैसा सुन्दर लग रहा है।' पीलके अनुसार कई मरणोन्मुख व्यक्तियोंने उन्हें बताया कि 'उन्हें आश्चर्यजनक ज्योति दिखायी पड़ रही है, विचित्र संगीत सुनायी दे रहा है।' कई मरनेवालोंने कहा था—कि 'उन्हें ऐसे चेहरे दीख रहे हैं, जिन्हें वे जानते हैं।' इन मरनेवालोंकी आँखोंसे बहुधा भाव आश्चर्य टपकता था।

परलोक-विद्यामें रुचि रखनेवाले जिज्ञासुओंके समक्ष समस्या यह है कि मृत-आत्माओंका आवाहन कैसे किया जाय? कौन-कौन-से ऐसे साधन हैं, जिनके द्वारा मृत-आत्माओंसे शीघ्र सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। कुछ प्रयोग ऐसे हैं, जिनके द्वारा मृत-आत्माओंसे शीघ्र सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इन प्रयोगोंके पीछे साहस, उत्कण्ठा, विश्वास आदि गुण प्रयोगकर्तामें होने चाहिये।

सबसे सरल विधि 'तिपाईद्वारा आत्माओंका आवाहन'के नामसे प्रसिद्ध है। हल्की तीन पायेकी गोल मेज लीजिये। इनके पाये किनारोंसे लगे हुए नहीं, बल्कि कुछ अंदरकी तरफ हों। यदि गोल न मिले तो साधारण हलकी मेजसे ही काम लिया जा सकता है। उसके पायेके नीचे लकड़ी लगा देनी चाहिये, जिससे थोड़े संकेतसे वह हिल-डुल सके। पायोंके नीचेका सिरा गोल रखना चाहिये। मेजके चारों ओर कुर्सियोंपर आत्माका आवाहन करनेवाले बैठ जायँ और उस मृत-आत्माका ध्यान करें, जिसका आवाहन करना हो। पंद्रह मिनट उस आत्मासे वार्तालाप करनेके लिये मानसिक प्रार्थना करते रहें।

कुछ समय पश्चात् मेजमें एक कँपकँपी-सी उत्पन्न होगी और एक पाया खटपट करने लगेगा। यह खटपट उस आत्माके आगमनकी सूचना देती है। तदनन्तर उस आत्मासे प्रश्न कीजिये, जैसे—आप किस वर्णके हैं। अगर एक बार पाया खटके तो समझिये मृत-आत्मा ब्राह्मण है। दो बार खटके तो क्षत्रियका इत्यादि। खटकोंके अनुसार वर्णमाला बनाइये और मृतक आत्माओंसे वार्तालाप करिये।

दूसरी विधि प्लैन्चेटकी है। यह पानके आकारका पतला लकड़ीका टुकड़ा होता है। इसमें पीछेकी ओर सब तरफ घूमनेवाले दो छोटे-छोटे पहिये लगे रहते हैं। नोंककी ओर एक छेद होता है, जिसमें पेन्सिल लगा दी जाती है। मेजपर एक कोरा कागज रखकर उसपर यह यन्त्र रख दिया जाता है। प्रयोगकर्ता अपनी अँगुलियोंको उस यन्त्रपर रखता है और एकाग्रतापूर्वक उस आत्माका ध्यान करता है, जिसे बुलाना है। थोड़ी देरमें हाथोंमें हरकत-सी होती है और प्लैन्चेट आगे चलने लगता है। ऐसा मृत-आत्माके आनेके कारण होता है। तत्पश्चात् मृत-आत्मा प्रयोगकर्ताके प्रश्नोंके उत्तर पेन्सिलद्वारा लिखकर देता है।

तीसरी विधिको 'स्वयंलेखन' कहा जाता है। इसमें प्रयोगकर्ता हाथमें पेन्सिल लेकर और मेजपर कागज रखकर बैठता है। तदनन्तर वह किसी प्रेतात्माका ध्यान करके उसे आवाहन करता है। यदि मृतात्मा आ गया तो पेन्सिल हाथके सहारे अपने-आप चलती है और प्रयोगकर्ताके प्रश्नोंका उत्तर देती है।

इसमें प्रयोगकर्ता माध्यम है। प्रयोगकर्ताका सरल चित्त, भावुक एवं दृढ़ विश्वासी होना आवश्यक है।

उस सैरन्ध्री कुब्जाने पूर्वजन्ममें कौन-सा ऐसा दुष्कर तप किया था कि जिसके फलस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण उसपर रीझ गये; क्योंकि उनकी प्रसन्नताका लेश तो देवताओंके लिये भी अति दुर्लभ है ?'

इसपर देवर्षि नारदजीने कहा कि 'बहुत पहलेकी बात है। त्रेतायुगमें शूर्पणखा भगवान् रामको पञ्चवटीमें देखकर हृदयसे आसक्त होकर मूर्च्छित-सी हो गयी थी। पर उधर उसने देखा कि रामका स्नेह तो उसपर तनिक भी नहीं हो रहा है। वे उससे परम विरक्त तथा निर्विण्ण-से हो रहे हैं और उनका एकमात्र स्नेह सीताकी ओर ही है, तो वह सीताजीको खानेके लिये झपट पड़ी। इधर लक्ष्मणजीने भी तत्काल उसके नाक-कान काट डाले। फलतः वह रावणके पास आयी और उसने सीताको चुरानेकी प्रार्थना की। राम-लक्ष्मणको अकेले पाकर पुनः वह वनमें विवाह करनेके लिये प्रार्थना करने आयी[1]। पर उसकी एक भी न चली। अन्तमें जब रावण मार डाला गया और सीताविरहित राम भी बीचमें जब उसपर न रीझे तो वह पुष्कर क्षेत्रमें निराहार रहकर शिवके (मृत्युंजय-त्र्यम्बक) रूपका ध्यान करती हुई तपस्या करने लगी। जब प्रभुने दर्शन देकर उससे वर माँगनेको कहा तो उसने रामकी पतिरूपमें कामना की। इसपर भगवान् शंकरने भविष्यद् द्वापरमें कृष्णरूपसे उन्हें प्राप्त करनेका उसे वर दे दिया। वही शूर्पणखा द्वापरमें चलकर कुब्जा हुई—

सैव शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी।
अभूच्छ्रीमथुरायां तु कुब्जा नाम महामते॥
महादेववरेणापि श्रीकृष्णस्य प्रियाभवत्।

(गर्गसंहिता, मथुराखण्ड ११। १०-११)

'इच्छानुसार रूप बदलनेकी सामर्थ्य रखनेवाली वही शूर्पणखा नामकी राक्षसी, हे महाप्राज्ञ! मथुरामें कुब्जाके रूपमें जन्मी। देवाधिदेव महादेवके वरदानसे ही वह श्रीकृष्णकी प्यारी बनी।'

(२)

पर श्रीलोमशरामायण एवं सत्योपाख्यानके[2] अनुसार रामावतारकी कैकेयी-दासी मन्थरा ही द्वापरकी कृष्णप्रिया (कंस-सैरन्ध्री) कुब्जा हुई। संक्षेपमें वह कथा इस प्रकार है—

रामराज्यमें विघ्न उत्पन्न करनेपर अयोध्यावासियोंने श्रीलोमशजीसे पूछा—'प्रभो! यह मन्थरा ही केवल रामविरोधिनी क्यों है? पशु-पक्षी तथा जड वृक्ष तक भगवान् रामके प्रेमी हैं।'

इसपर लोमशजीने उत्तर दिया—'यह मन्थरा जन्मान्तरमें प्रह्लादकी पौत्री तथा विरोचनकी पुत्री थी। उस समय भी इसका नाम मन्थरा ही था। इसका छोटा भाई बलि जब माताके गर्भमें ही था, तब देवताओंने छलपूर्वक ब्राह्मणका रूप धारण कर विरोचनसे सारी आयु ब्राह्मणोंको दान दे देनेकी प्रार्थना की। अतः विरोचनने अपना शरीर त्याग दिया। दैत्य निराश्रित हो गये। वे मन्थराकी शरणमें गये। मन्थराने उनको रक्षाका आश्वासन दिया। उत्साहित होकर शंबर, मय, बाणादि दैत्य युद्धार्थ निकले, पर वे देवताओंसे हार गये। तब मन्थराने क्रुद्ध होकर पाशके द्वारा समस्त देवताओंको बाँध लिया। नारदजीने देवताओंकी विपत्ति वैकुण्ठस्थित भगवान् नारायणके समक्ष निवेदित की। भगवान्की प्रेरणासे इन्द्रने मन्थराको मारकर बेहोश कर दिया[3] और वह कुब्जा-सी हो गयी। दैत्यस्त्रियोंने भी पीछे उसका बड़ा उपहास किया। वही मरकर उसी रूपमें काश्मीरमें उत्पन्न हुई और बदला लेनेके लिये कैकेयीकी दासी बनकर उसने राज्यमें विघ्न डाला। उसे ही भगवान्ने अपयश सहनेके कारण कृष्णावतारमें कुब्जा होनेका वरदान दिया।' (सत्योपाख्यान पूर्वार्द्ध अध्याय ७ से १५ तक)

पद्मपुराण तथा महाभारत, वनपर्व अध्याय २७६। ९-१० के अनुसार दुन्दुभी गन्धर्वी ही मन्थरा हुई—

तेषां समक्षं गन्धर्वीं दुन्दुभीं नाम नामतः।
शशास वरदो देवो गच्छ कार्यार्थसिद्धये॥
पितामहवचः श्रुत्वा गन्धर्वी दुन्दुभी ततः।
मन्थरा मानुषे लोके कुब्जा समभवत् तदा॥

(महा०, वन० २७६। ९-१०)

''उनके सामने ही वरदानी देवता ब्रह्माजीने दुन्दुभी नामक गन्धर्वीको आदेश दिया—'तुम साध्यप्रयोजनकी

---

१. इनके अनुसार वाल्मीकि-रामायणकी 'अयोमुखी' भी यही है।

२. यह पूरा ग्रन्थ मानो 'मन्थराचरित' ही है।

३. श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुतां नृप।
पृथिवीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामभ्यसूदयत्॥
(वाल्मी० रामा० १। २५। २०)

उपवर्हणकी मृत्यु, देवता तथा ब्राह्मण-कुमारके वेशमें भगवान

उपवर्हण जीवित हो गये—मालावतीको श्रीकृष्ण-प्रार्थना [पृष्ठ ५०७

रामराज्यकी पुनर्जन्म-सम्बन्धी एक घटना—कुत्तेका न्याय

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

ारतीय जनताकी दृष्टिमें रामायणकालीन दो महान् उपमारहित हैं। उनकी समझमें 'राम-रावण' के समान न तो कोई दूसरा युद्ध हो सकता है न तो पहले हुआ। उसी प्रकार न तो रामराज्यके न्यायप्रिय दूसरा कोई राज्य होगा और न हुआ। राज्यसे रामराज्यकी तुलना करना भी व्यर्थ ही अपनी प्रजाको राम-राजाने कितना सुख पहुँचाया, हाँ प्रकट नहीं किया जा सकता। आदिकविने जाके प्रजा-रञ्जनसम्बन्धी कार्योंके उल्लेखमें एक विचित्र घटनाका वर्णन उपस्थित किया है। इस अवगत होता है कि राजा रामके राज्यमें मानव हीं, किंतु पशुओं और पक्षियोंके प्रति आदर, स्नेह न्याय करनेकी सहज प्रथा थी। राजा राम पशुओं पक्षियोंके प्रति अपनी न्यायप्रियता अक्षुण्ण थे।

एक दिन राजा रामने अपने भाई लक्ष्मणसे कहा—'भाई ! देखो, राजदरबारके बाहर कोई न्याय प्राप्त करनेके आया तो नहीं है ?' लक्ष्मण आज्ञा पाते ही तुरंत गये और चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा, उनको कोई दुखिया दीख न पड़ा। लक्ष्मण राजमहलमें आकर रामसे बोले—'प्रभो ! बाहर ऐसा कोई भी मानव है, जो क्षुब्ध हो या दुखी हो और जो कुछ निवेदन के लिये आया हो।' लक्ष्मणजीके वचनसे रामको संतोष नहीं हुआ। राजा रामने लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण ! मुझे विश्वास है कि नीति और न्यायपद्धतिसे शासन करनेपर प्रजा सर्वदा सत्पथपर रहती है और उसे किसी प्रकारका कष्ट नहीं मिलता। सब होते हुए, तुम प्रजाके हित-चिन्तनमें सर्वदा रहना। एक बार पुनः बाहर जाकर किसी भी

लक्ष्मणको देखते ही वह कुत्ता उठ बैठा और दुःखीमन-की भावनाको व्यक्त करते हुए जोर-जोरसे रोने लगा। कहा जाता है कि उन दिनों राजा और राजघरानेके लोग तथा विद्वान् लोग पशु और पक्षियोंकी भाषा जानते थे। पशुओंकी भाषाके ज्ञाता लक्ष्मणने कुत्तेसे रोनेका कारण पूछा—'हे सारमेय ! तुम्हारा क्या कार्य है ? निडर होकर कहो।' लक्ष्मणका आश्वासन प्राप्त करके कुत्ता बोला—'प्रभो ! समस्त जीवोंके रक्षक, प्रशस्त कर्म करनेवाले राजा रामसे मुझे कुछ निवेदन करना है।' कुत्तेकी बात सुनकर लक्ष्मणजी तुरंत राजसभामें पहुँचे और राजा रामसे उन्होंने कुत्तेकी कामना सुना दी। राजा रामने उसी समय कुत्तेको राजसभामें बुलाया और रामकी आज्ञा पाते ही लक्ष्मण बाहर जाकर कुत्तेको बुला लाये। राजसभामें प्रवेश करनेके पूर्व लक्ष्मणने कुत्तेसे कहा था कि 'सारमेय ! राजा रामके सम्मुख जो कुछ कहना, सत्य-सत्य कहना।' लक्ष्मणकी बात सुनकर कुत्तेने कहा—'नाथ ! देवमन्दिर और राजभवन तथा ब्राह्मण, अग्नि, इन्द्र, वरुण, सूर्य आदिके निवास-स्थानपर मेरे-जैसे जीवोंको नहीं जाना चाहिये। मैं राजा रामके महलमें कैसे जा सकता हूँ ? राजा शरीरधारी स्वयं धर्मका अवतार माना जाता है। राजा राम तो सर्वोपरि हैं। प्रजाके रक्षक, नीतिज्ञ और सत्यवादी, समदर्शी हैं। वही चन्द्र, सूर्य, वरुण और अग्नि हैं। हे लक्ष्मण ! आप तुरंत राजा रामसे मेरे लिये आज्ञा प्राप्त कीजिये; बिना उनकी आज्ञाके मैं राजसभामें नहीं जा सकता।' लक्ष्मण तुरंत राजभवनमें वापस गये और राजा रामसे बोले—'प्रभो ! राजभवनके बाहर एक कुत्ता है। वह आपसे कुछ निवेदन करना चाहता है। प्रतीक्षा कर रहा है। यदि आज्ञा हो तो उसे राजमहलमें बुला लूँ।' लक्ष्मणका कथन सुनकर रामने तुरंत लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण ! तुरंत उस सारमेयको भीतर ले आओ। उसे मुझसे न्याय प्राप्त करनेका

कुत्ता बोला—'राजन् ! धर्मसे ही राज्यकी प्राप्ति होती है। धर्मसे ही प्रजाका पालन होता है। धर्मसे ही राजा प्रजा-वत्सल और शरणागतवत्सल बनता है। राजा प्रजाके समस्त भयको दूर करता है। यह सब समझकर मेरा जो कार्य है, उसे आप समझ लें। सर्वार्थसिद्ध नामक एक ब्राह्मण है। वह भिक्षावृत्ति करता है। उसने बिना अपराध मेरा सिर फोड़ डाला है।'

कुत्तेकी यह बात सुनकर राजा रामने उस ब्राह्मणको बुलानेके लिये द्वारपालको भेजा। द्वारपाल तुरंत ब्राह्मणको बुला लाया। ब्राह्मण राजा रामकी सभामें उपस्थित हुआ। राजा रामके पास पहुँचकर ब्राह्मण बोला—'राजन् ! आपने मुझे क्यों बुलाया है ?' राजा रामने ब्राह्मणसे पूछा—'ब्राह्मणदेव ! आपने इस कुत्तेको क्यों मारा है ? जान पड़ता है कि आपने क्रोधावेशमें ही ऐसा पाप किया है। क्रोध मानवको धर्मरहित बना देता है।' राजा रामकी धर्मपरक बात सुनकर वह ब्राह्मण बोला—'हे राम ! यह सत्य है कि मैंने क्रोधावेशमें ही इस कुत्तेको मारा है। भिक्षाके लिये मैं भ्रमण कर रहा था। कुत्ता बीच मार्गमें बैठा था। भिक्षा उस समय नहीं मिली थी, अतः मैं कुछ अन्यमनस्क था। मुझे भूख भी लगी थी। मैंने इसे मार्गमेंसे हट जानेको कहा; किंतु यह मार्गसे नहीं हटा। मैं भूखा तो था ही, क्रोध आ गया और उसी क्रोधमें मैं इसे मार बैठा। मैं अवश्य दोषी हूँ। इस अपराधका जो दण्ड हो सो आप मुझे वह दण्ड दें। आपसे दण्ड पानेके बाद मुझे नरकका भय नहीं रहेगा।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर राजा राम अपने सभासदोंसे पूछने लगे—'इस ब्राह्मणको क्या दण्ड दिया जा सकता है ?

कालिंजरका मठाधीश बनाये जानेका रहस्य कोई नहीं जान सका। सभासद् आश्चर्यचकित थे। कु मॉंग पूरी कर दी गयी। ब्राह्मण भी इस दण्डसे बहुत हुआ। नित्यकी भिक्षावृत्तिसे उसे छुटकारा मिला। ब्राह्म हाथीपर बिठलाकर बिदाई दी गयी; क्योंकि उस परम यही नियम था। ब्राह्मणकी प्रसन्नताका ठिकाना न र सभासद् कुत्तेकी मॉंगका परिहास उड़ा रहे थे। सभास मुसकराते हुए राजा रामसे पूछा—'महाराज ! ब्राह्म दण्डके बदले वरदान मिल गया।' राजा रामने कहा—' लोगोंको यह रहस्य समझमें नहीं आया। आप लोग ज्ञानी कुत्तेसे ही यह रहस्य जानिये।' रामने स्वयं इ कालिंजरकी महन्तीका रहस्य पूछा। कुत्तेने बताया- राजा राम ! पूर्वजन्ममें मैं उसी कालिंजरमें मठाधीश मैं उत्तम वंशमें उत्पन्न हुआ था और उसी आधारपर वहाँ महन्ती मिली थी। मैं मठमें बढ़िया पदार्थ खाता दूसरोंको भी खिलाता था। मैं देवोंका पूजन भी करता अपने अधीनस्थ जनोंका पालन भी करता था। मैं स कार्योंमें धर्म और नीतिको महत्त्व भी देता था। उ अनुसार आचरण भी करता था। इतना करनेपर भी कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ा। (हाँ, उन आचर कारण मेरा पूर्वजन्मका अभ्यास बना रहा।) मुझे बना रहा।

अहं कुलपतिस्तत्र आसं शिष्टान्नभोजनः।
देवद्विजातिपूजायां दासीदासेषु राघव॥
सोऽहं प्राप्त इमां घोरामवस्थामधमां गतिम्॥

कुत्ता कहता ही गया—'हे महाराज ! यह ब्राह्म अत्यन्त क्रोधी है। धर्मशून्य, अहितकर, हिंसक स्वभावका

मूर्ख है। वहाँका महन्त बनकर यह अपनी माताके तथा पिताके सात कुलोंको नरकमें ले जायगा। हे राजन्! कैसी स्थिति क्यों न आ जाय, ज्ञानी मानव किसी भी स्थानकी महन्ती स्वीकार न करे। हे प्रभो! जिसको बन्धु-बान्धवोंसहित नरकमें भेजना हो, उसे देव, गौ और ब्राह्मणके अधिष्ठानका महन्त बना दे। हे सर्वज्ञ! जो देव, बालक और स्त्री-ब्राह्मणके लिये अर्पित धनको स्वयं भोगता है, वह निश्चय ही नरकमें जाता है।' कुत्तेकी बात सुनकर राजा राम गद्गद हो गये और कुछ विस्मित भी हुए। इस रहस्यका उद्घाटन करनेके बाद वह कुत्ता जहाँसे आया था, वहीं चला गया। उस समय कुत्तेके रहस्योद्घाटनसे सब लोग चकित थे।

यह रामराज्यकी एक साधारण घटना थी।

उपबर्हणका पुनर्जीवन

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

साध्वी मालावती चीत्कार कर उठी। उसके प्राणप्रिय पति उपबर्हणने श्रीकृष्ण-नामका स्मरण करते हुए शरीर त्याग दिया था। यह देखकर उसके श्वशुर (उपबर्हणके पिता) गन्धर्वराजने भी सपत्नीक योगधारणाद्वारा अपने प्राण त्याग दिये। मालावती अधीर हो गयी।

करुण विलाप करती हुई मालावतीने भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, धर्म, दिक्पाल—सबकी स्तुति करके अपने पतिके प्राण वापस कर देनेके लिये प्रार्थना करते हुए उनसे कहा— देवताओंके बीच प्रकट हुआ और उनकी अनुमतिसे उनके मध्य बैठता हुआ बोला और मालावतीकी ओर देखते हुए उसने कहा—'तुम्हारे अङ्कमें सूखा हुआ यह शव किसका है? जीवित सुन्दरीके समीप शवका क्या प्रयोजन है?'

फूट-फूटकर रोती हुई मालावतीने देवताओं तथा ब्राह्मण-कुमारसे अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'मैं चित्ररथकी पुत्री हूँ। यह मेरे प्राणपति उपबर्हणकी निर्जीव देह है। मैंने अपने इन

पुरुषोंकी वाणी मिथ्या नहीं होती । अतएव मेरे पतिके : जीवित हो जानेमें मेरे मनमें कोई संदेह नहीं रहा । तु इसके पूर्व, मैं आपसे कुछ बातें कर लूँ । द्विजेन्द्र ! प कृपापूर्वक काल, यम और मृत्युकन्याको मेरे सामने ा दीजिये । आप समर्थ हैं !'

ब्राह्मणवेषधारी विष्णुके प्रभावसे यम, मृत्युकन्या और ग—सभी उपस्थित हो गये । मालावतीने स्थूल पैर, ामवर्ण एवं श्रीकृष्णका मन्त्र-जप करते हुए यमसे कहा— र्मनिष्ठ धर्मराज ! असमयमें ही आप मेरे प्राणनाथको लिये जा रहे हैं ?'

'समय पूरा हुए बिना तथा परमेश्वरकी आज्ञाके बिना ीकी मृत्यु नहीं होती !' यमने बड़े प्रेमसे उत्तर दिया—'मैं, ल, मृत्युकन्या तथा अत्यन्त दुर्जय व्याधियाँ आयु पूर्ण पर ही ईश्वरकी आज्ञासे जीवको उसके शरीरसे पृथक् ले जाती हैं । मृत्युकन्या विचारशीला है । तुम उससे सकती हो कि वह किस कारण जीवको प्राप्त होती है !'

'हे सखी !' मालावतीने मृत्युकन्याकी ओर देखा । वह यन्त भयंकर, काली तथा लाल वस्त्र पहने हुए थी । सके छः भुजाएँ थीं । वह मन्द-मन्द मुस्करा रही थी । महासती थी । अपने पति कालके बायें भागमें अपने सठ पुत्रोंके साथ खड़ी मालावतीकी ओर देख रही थी । लावतीने बड़े ही प्यारसे उससे पूछा—'तुम स्त्री होनेके रण पति-वियोगकी पीड़ासे परिचित हो । मेरे जीवित ते मेरे प्राणनाथका प्राण-हरण क्यों कर रही हो ?'

'आदरणीया सती !' मृत्युकन्याने बड़े ही स्नेहसे उत्तर या—'बहुत पहले विधाताने इस कर्मके लिये मेरी सृष्टि की । ात्र इच्छा होनेपर या कठोर तप करके भी मैं इस कार्यको

अत्यन्त दुर्बल और बूढ़े होनेपर भी माताके दूध पीते देख रहे थे । मालावतीने पूछा—'आप सर्वज्ञ हैं । मेरे जीते ही मेरे स्वामीको क्यों लिये जा रहे हैं ?'

'साध्वी मालावती !' कालने बड़ी ही शान्तिसे उत्तर दिया—'मुझमें, यम, मृत्युकन्या तथा व्याधियोंमें तनिक भी सामर्थ्य नहीं कि कुछ कर सकें । हम सब सदा ईश्वरके आज्ञा-पालनमें तत्पर रहते हैं । निखिल सृष्टि एवं देव-समुदाय तथा मायाको भी मोहित करनेवाली माया जिनके द्वारा निर्मित है, जिनके भ्रू-संचालनसे देव, दानव, यक्ष, किंनर प्रभृति जीवन धारण करते हैं; सूर्य प्रकाशित हैं, वायु बहते हैं, वसुधा क्षमाशील है और वेद जिन्हें 'नेति-नेति' कहकर स्तुति करते हैं, वे श्रीकृष्ण ही सर्वेश्वर हैं । वे कालके भी काल तथा परब्रह्म परमेश्वर हैं । सम्पूर्ण लौकिक-पारलौकिक सुखोंके दाता उन श्रीकृष्णका ही तुम चिन्तन करो । तुम्हारा आत्यन्तिक मङ्गल होगा ।'

'सती मालावती !' ब्राह्मणकुमारने उपबर्हणकी पत्नीसे कहा—'तुमने काल, यम, मृत्युकन्या तथा व्याधियोंको देख लिया । अब तुम्हारे मनमें और कुछ संदेह हो तो उसका भी निवारण कर लो ।'

'दयालु द्विजेन्द्र !' मालावतीने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'आप दीनोंपर दया करनेवाले हैं । रोग आदिके कारण तथा अन्यान्य कल्याणकी बातें आप कृपापूर्वक मुझे बताइये ।'

'रोगका पापोंके साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है ।' ब्राह्मणने उत्तर दिया—'पाप ही रोग, बुढ़ापा, दैन्य, दुःख एवं भयंकर शोकका कारण है । इसलिये पापसे सदा साव-धानीपूर्वक बचते रहना चाहिये । किंतु तीर्थ-व्रत, उपवास

एवं धर्माचरण-सम्पन्न जीवन व्यतीत करते रहनेसे पापकी छाया भी समीप नहीं आती। ऐसे पुरुषके समीप जरा एवं दुर्जय रोगसमूह नहीं जा पाते। साध्वी! तुम्हारे पतिका शरीरान्त किस रोगसे हुआ है। बताओ, मैं इन्हें जीवित करनेका यत्न करूँगा।'

'विपत्ति भी धन्य है।' चित्ररथ-पुत्रीने ब्राह्मणवेषधारी श्रीविष्णुसे निवेदन किया—'जिसके द्वारा आप-जैसे महात्माओंका दुर्लभ संग सुलभ हो जाता है। आपकी सार-गर्भित वाणीसे मेरा बड़ा उपकार हुआ है।'

'विद्वन्!' मालावतीने आगे कहा—'मेरे स्वामीने ब्रह्माके शापसे योगबलसे शरीरका त्याग किया है। आप कृपापूर्वक इन्हें शीघ्र जीवित कर दीजिये। मैं आप समक्ष देवताओंके चरणोंमें प्रणामकर पतिके साथ घर चली जाऊँगी।'

'देवताओ!' ब्राह्मण-वेषधारी श्रीविष्णुने अपनी मायासे मोहित देव-समुदायकी ओर दृष्टिपात किया। श्रीविष्णुकी मायासे मोहित देवताओंको स्मरण ही नहीं रहा कि वे मालावतीके शाप-भयसे श्वेतद्वीपमें श्रीविष्णुकी प्रार्थना कर रहे थे और उनके पधारनेका निश्चित आश्वासन पाकर ही वे यहाँ आये थे। ब्राह्मणकुमारके वेषमें कमला-कान्त भगवान् विष्णुने कहा—'उपबर्हणकी पत्नी मालावती शाप देनेके लिये प्रस्तुत थी, पर इस समय मैंने इसका क्रोध शान्त कर दिया है। अब इसके पतिको जीवित करनेके लिये क्या करना चाहिये?'

'श्रीविष्णु क्यों नहीं पधारे?' ब्राह्मणकुमारने आगे कहा—'श्वेतद्वीपमें आपलोगोंने श्रीहरिकी स्तुति की थी। आकाशवाणी हुई थी कि तुमलोग चलो, श्रीविष्णु भी पीछे जायँगे।'

'आपका यह प्रश्न ठीक नहीं है! वे सर्वात्मा हैं, सर्वज्ञ हैं सर्वत्र हैं, सर्वव्यापक हैं और सर्वेश्वर हैं। मैं, संहारकार शिव, कर्मोंके साक्षी धर्म, काल, यम, सर्वजननी प्रकृति—सभी जिनसे भयभीत एवं आज्ञा-पालनमें तत्पर रहते हैं वे आद्यन्त-मङ्गलकर भगवान् विष्णु सर्वेश्वर हैं।'

'तुम बालक होकर भी अपने तेजसे देवताओंको तिरस्कृ कर रहे हो।' भगवान् शंकरने ब्राह्मणसे कहा—'कि सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वर परमात्मा श्रीविष्णुको नहीं जानते यह आश्चर्यकी बात है। मैं निरन्तर उनके नाम और गुण तन्मय रहकर मृत्युञ्जय हो गया हूँ। निरन्तर भगवन्नाम: जप करनेवालेको देखकर मृत्यु भाग जाती है।'

'ब्रह्मन्!' महेश्वरने आगे कहा—'गोलोकधाम विराजनेवाले श्रीकृष्ण ही वैकुण्ठ और श्वेतद्वीपमें भी हैं। उन महिमामय परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णकी एक कलाम हूँ। उनकी महिमाका बखान करना सम्भव नहीं।'

'तुम्हारी बातसे मुनियोंको मतिभ्रम हो सकता है महेश्वरके चुप होते ही धर्म बोलने लगे—'जो श्रीवि सबके अन्तरात्मासे प्रत्यक्ष हैं, सर्वत्र विद्यमान हैं, उनके लि तुम्हारे वचन उचित नहीं। जहाँ श्रीभगवान्‌की निन होती है, वह स्थान अपवित्र हो जाता है। श्रीविष्ण स्मरणमात्रसे पातक मिट जाते हैं और पवित्रता आ ज है। भगवान् विष्णु त्रैलोक्यमें सबके माता-पिता, गु ज्ञानदाता, पोषक, पालक, भयसे त्राण देनेवाले परम हैं, सर्वत्र हैं, सर्वव्यापक हैं।'

'आदरणीय देवताओ!' ब्राह्मण-कुमार मुस्कराते बोले—'मैंने तो यही कहा कि आकाशवाणीके अनुसार श्रीवि यहाँ नहीं पधारे। उनकी निन्दा मैंने ...

श्रीचित्रगुप्तका प्राकट्य, पद तथा कार्य

(लेखक—श्रीरामसेवकजी सक्सेना, विशारद)

मन्त्री श्रीधर्मराजस्य चित्रगुप्तः शुभंकरः ।
पायान्मां सर्वपापेभ्यः शरणागतवत्सलः ॥

युधिष्ठिरजी भीष्मजीसे बोले—हे पितामहजी ! आपकी प्रसन्नतासे मैंने धर्म-शास्त्र सुने । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंके सब धर्म आपने कहे और तीर्थयात्रा-विधि, मास-नक्षत्र-तिथि-वारोंके व्रत कहे, उनमें यमद्वितीया कही । उसको विस्तारसे कहिये । इस यमद्वितीयाका क्या पुण्य है, क्या फल है, किस समय हो, कैसे हो ? आपसे मैं सुनना चाहता हूँ, कृपा करके विस्तारपूर्वक कहिये ।

भीष्मजी बोले—हे प्यारे ! तुमने अच्छी बात पूछी । मैं इस व्रतको विस्तारपूर्वक कहता हूँ । तुम चित्त देकर श्रवण करो ।

कार्तिक शुक्लपक्ष और चैत्र कृष्णपक्षमें जो द्वितीया होती है, वह 'यम' नामकी अर्थात् 'यमद्वितीया' कहलाती है ।

धर्मराज युधिष्ठिरजीने पूछा—उस कार्तिकके उजेले पक्षकी द्वितीयामें किसका पूजन करना चाहिये और चैत्रमासमें यह व्रत कैसे हो तथा किसका पूजन किया जाय !

भीष्मजी बोले—हे युधिष्ठिर ! पुराणसम्बन्धी कथा कहता हूँ, तुम सुनो । निस्संदेह उस कथाको सुनकर प्राणी सब पापोंसे छूट जाता है । पिछले सत्ययुगमें भगवान्‌से, जिनकी नाभिमें कमल है, चार मुँहवाले ब्रह्माजी पैदा हुए, जिनसे वेदवक्ता भगवान्‌ने चारों वेद कहे ।

नारायण बोले— ब्रह्माजी ! तुम संसारको पैदा करनेवाले और योगियोंकी गति हो । मेरी आज्ञासे जगत्‌को शीघ्र रचो ।

इनके सिवा और भी गन्धर्व, पिशाच, गौ और पक्षियोंकी जातियाँ उत्पन्न हुईं और अपने-अपने अधिकारोंपर स्थिर हुए धर्मराजजीको धर्मप्रधान जानकर सबके पितामह ब्रह्माजीने सब लोकोंका अधिकार दिया और धर्मराजसे कहा कि 'तुम आलस्य त्यागकर काम करो । जीवोंने जैसे-जैसे शुभ और अशुभ कर्म किये हैं, उसी प्रकार न्यायपूर्वक वेद-शास्त्रमें कही विधिके अनुसार कर्मकर्ताको कर्मका फल दो । सदा मेरी आज्ञाका पालन करो ।'

ब्रह्माजीकी यह आज्ञा सुन बुद्धिमान् धर्मराजजीने नम्र हो, हाथ जोड़कर सबके परम पूज्य ब्रह्माजीसे मधुर शब्दोंमें कहा—'प्रभो ! मैं आपका सेवक निवेदन करता हूँ । सारे जगत्‌को कर्मोंका विभागपूर्वक फल देनेकी आपने मुझे आज्ञा दी है । आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । इससे कर्ताओंको फल मिलेगा । परंतु, जीव और उनके देह अनन्त हैं । उनमें कर्ताने कितने कर्म किये, कितने भोगे, कितने शेष हैं और उनका भोग कैसा है तथा एक-एक कर्म भी मुख्य-गौणके भेदसे अनेक हो जाते हैं । साथ ही, कर्ताने उस कर्मको कैसे किया, स्वयं किया या दूसरेकी प्रेरणासे किया—इत्यादि कर्मचक्र बहुत ही गहन है; अतः मैं अकेला किस प्रकार इस भारको उठा सकूँगा । आप विचार लें । मुझे कोई ऐसा सहायक चाहिये, जो धार्मिक, न्यायी, बुद्धिमान्, शीघ्रकारी, लेखकर्ममें विज्ञ, चमत्कारी, तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ और वेद-शास्त्रका ज्ञाता हो ।' धर्मराजके इस प्रकार कथनको सुन विधाताने उसे उचित समझा और वे मनमें प्रसन्न हुए । वे धर्मराजका मनोरथ पूर्ण करनेकी चिन्ता करने लगे कि ऐसे सब गुणोंवाला ज्ञानी लेखक पुरुष होना चाहिये । उसके बिना धर्मराजका मनोरथ पूर्ण नहीं होगा ।

श्यामवर्ण, कमलनयन, शङ्खकी-सी गर्दन, गूढ़मस्तक, चन्द्र-मुख, लेखनी, दावात और पाटी हाथोंमें लिये, वेद-शास्त्रमें विलक्षण, महाबुद्धि, धर्माधर्मके विचारमें महान् प्रवीण, लेख-कर्ममें अत्यन्त निपुण पुरुषको देखा। ब्रह्माजीने पूछा—'आप कौन हैं?' तब उस महापुरुषने कहा—'प्रभो! मैं माता-पिताको नहीं जानता; किंतु आपके शरीरसे प्रकट हुआ हूँ। इसलिये आप ही मेरा नामकरण कीजिये। और किसलिये मैं उत्पन्न हुआ हूँ, यह भी कहिये। मैं क्या करूँ! ब्रह्माजी! मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूँ। आप ही बताइये।'

ब्रह्माजीने उस महापुरुषके वचन सुन अपने हृदयसे उत्पन्न उस विलक्षण पुरुषसे हँसकर कहा कि 'तुम मेरी कायासे प्रकट हुए हो, इससे मेरी काया (शरीर) में तुम्हारी स्थिति है और तुम कायस्थ चित्रगुप्त नामक क्षत्रिय हो। धर्मराजके पुरमें प्राणियोंके शुभाशुभ कर्म लिखकर धर्मराजके सब कामोंमें सखारूपसे उनकी सहायता करो। इसीलिये तुम्हारी उत्पत्ति हुई है कि तुम प्राणियोंको कर्मका फल दो।'

चित्रगुप्तसे यों कहकर ब्रह्माजीने धर्मराजसे कहा कि 'धर्मराज! यह उत्तम लेखक सखा तुम्हें दे दिया गया है, जो संसारमें समस्त कर्मसूत्रोंकी मर्यादाके पालनके लिये है। ये चित्रगुप्त सदा तुम्हारी आज्ञामें रहेंगे।' इतना कह ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये।

'राजन्! फिर वह पुरुष कोटिनगरको जाकर चण्डी-प्रचण्ड ज्वालामुखीजीके पूजनमें लग गया। दस हजार वर्षतक जप-स्तोत्रसे भजन-पूजन और उपासना की। चित्रगुप्तकी स्तुति-आराधनासे प्रसन्न होकर देवीजीने वरदान दिया कि 'तुम परोपकारमें कुशल, अपने अधिकारमें सदा स्थिर और असीम आयुवाले होओगे।' यह वर देकर दुर्गादेवीजी अन्तर्धान हो गयीं।

इसके पश्चात् चित्रगुप्त धर्मराजके साथ गये और वे आराधना करनेयोग्य अपने अधिकारपर स्थित हुए। उसी समय ऋषियोंमें उत्तम ऋषि सुशर्माने, जिनको संतानकी चाह थी, ब्रह्माजीका आराधन किया। ब्रह्माजीकी प्रसन्नतासे उन्होंने इरावतीको पाया।

श्रीब्रह्माजीके बारह पुत्रोंमें प्रथम पुत्र मरीचि थे। मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। कश्यपजीकी द्वितीय पत्नी अदितिके गर्भसे विवस्वान् अथवा सूर्य हुए थे। सूर्यके पाँच पुत्र और एक कन्या थी। धर्मशर्मा (सुश[र्मा] केवल एक ही कन्या इरावती हुई, जो चित्रगुप्तको [ब्याही] गयी। उससे आठ पुत्र हुए। वे कायस्थ हैं।

कश्यपजीके दूसरे पुत्र श्राद्धदेव मनुकी पुत्री, [जिसका] नाम नन्दिनी या दक्षिणा था, चित्रगुप्तको विवाही [गयी।] उससे चार पुत्र उत्पन्न हुए, वे कायस्थ हैं। यों चि[त्रगुप्तके] बारह पुत्र विख्यात हुए तथा पृथ्वीतलपर विचरने [लगे।] भिन्न-भिन्न स्थानोंमें रहनेके कारण भिन्न-भिन्न [नामोंसे] प्रसिद्ध हुए।

उस समय सौदास नामका एक राजा था, जो सौरा[ष्ट्रमें] उत्पन्न हुआ था। वह महापापी, पराया धन चुर[ानेवाला,] लम्पट, महान् अभिमानी, चुगल और पापकर्म क[रनेवाला] था। राजन्! जन्मसे लेकर सारी आयुमें उसने [कोई] धर्म नहीं किया। किसी समय वह राजा अप[नी सेना] लेकर उस वनमें, जहाँ बहुत हरिण आदि जीव [थे,] शिकार खेलने गया। वहाँ उसने निरन्तर व्रत क[रनेवाले] एक ब्राह्मणको देखा। वह ब्राह्मण चित्रगुप्त और य[मराज]का पूजन कर रहा था। यमद्वितीयाका दिन था।

राजाने पूछा—'महाराज! आप क्या कर [रहे हैं?'] ब्राह्मणने यम-द्वितीयाके व्रतको, जो वह कर र[हा था,] कह सुनाया। सुनकर राजाने वहीं उसी दिन [कार्तिक] महीनेमें शुक्लपक्षकी द्वितीयाके दिन धूप[-दीप आदि] सामग्रीसे चित्रगुप्तके साथ धर्मराजका पूजन [किया।] व्रत करके वह अपने धन-सम्पत्तियुक्त घरमें लौट [आया।] कुछ दिनों बाद वह व्रत भूल गया। पर याद [आनेपर] फिर व्रत किया। पश्चात् कालसंयोगसे वह राजा म[र गया।] यमदूतोंने दृढ़तासे बाँधकर उसे यमराजके पास पहुँ[चाया।] यमराजने उस घबराये मनवाले राजाको अपने [दूतोंसे] पिटते देख चित्रगुप्तजीसे पूछा, 'इस राजाने [क्या] किया, अच्छा या बुरा जो कुछ उसने किया हो, मे[रे सामने] कहिये।' उस समय धर्मराजके वचन सुनकर [चित्र]गुप्त बोले—'इसने बहुत ही दुष्कर्म किये हैं, परंतु [मरने]से पहले एक व्रत किया। कार्तिक शुक्लपक्षमें य[मद्वितीया] होती है, उस दिन इसने आपका तथा मेरा गन्ध-पु[ष्प आदि] सामग्रीसे, एक बार भोजनके नियमसे और रात्रिमें ज[ागरण कर] पूजन किया। हे देव! हे महाराज! इस विधि[से] राजाने व्रत किया। इससे यह राजा नरकमें डाल[ने योग्य] नहीं है।' चित्रगुप्तजीके कथनानुसार धर्मराजने उ[से]

दिया और उस यमद्वितीया-व्रतके प्रभावसे वह उत्तम गतिको प्राप्त हुआ।

यों सुनकर राजा युधिष्ठिर भीष्मजीसे बोले—पितामह! इस व्रतमें मनुष्योंको धर्मराज और चित्रगुप्तजीका पूजन कैसे करना चाहिये? यह मुझसे कहिये।

भीष्मजी बोले—राजन्! यमद्वितीयाके विधानको सुनो। एक पानपर धर्मराज और चित्रगुप्तकी मूर्ति चन्दनसे लिखे और उनकी पूजाकी कल्पना करे। वहाँ उन दोनोंकी प्रतिष्ठा कर सोलह प्रकारकी सामग्रीसे श्रद्धा-भक्तियुक्त नाना प्रकारके पकवानों, मिठाइयों, फल-फूल-पान तथा दक्षिणादि सामग्रियोंसे धर्मराज और चित्रगुप्त-का पूजन करना चाहिये। फिर बार-बार नमस्कार करे, स्तुति करे। इस प्रकार पूजन करके दावात-कलमकी पूजा करे, कथा श्रवण करे, वक्ताको यथाशक्ति दक्षिणा दे। बहिनके घर भोजन करे और उसके लिये धन आदि पदार्थ दे। इस प्रकार भक्तिके साथ यमद्वितीयाका व्रत करने-वाला पुत्रोंसे युक्त होता और मनोवाञ्छित फल पाता है।

(यमद्वितीया-कथाके आधारपर)

भगवान् श्रीव्यास और कीड़ेका संवाद

(लेखक—श्रीलक्ष्मीकान्तजी त्रिवेदी)

भगवान्के इस निखिल प्रपञ्चमें उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्य युगानुसार हुआ ही करते हैं, परंतु कलि-कालमें अधम मनुष्योंका बाहुल्य हो जाता है। गोस्वामीजी-ने कहा है—

> ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
> द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं॥

भगवान् श्रीरामके अवतारके विषयमें संदेह होनेपर श्रीवृषभध्वजने देवी पार्वतीजीसे ऐसा कहकर अपना रोष प्रकट किया था।

इस पापबहुल कलियुगमें प्रायः ऐसे ही मनुष्य सर्वत्र मिलते हैं, जो न ईश्वरके अवतारपर, न धर्मपर, न पितृगणोंके श्राद्धपर और न इतिहास-पुराणोंके पठन-पाठनपर ही विश्वास करते हैं। यद्यपि इन मनुष्योंके मध्य भी कभी-कभी ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं, जो उनको विस्मयमें डालनेवाली

(१)

जातिस्मर कीड़ा

शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजी युधिष्ठिरसे कहते हैं—'हे राजन्! प्राचीन कालका वृत्तान्त है। एक समय भगवान् व्यास कहीं जा रहे थे। मार्गमें उनकी दृष्टि एक कीड़ेपर पड़ी, जो गाड़ीकी लीकमें बड़ी तेजीसे भागा जा रहा था। वे कीटके निकट आकर पूछने लगे—'कीट! तू क्यों इतनी आतुरतासे भागा जा रहा है? आज तुझपर कौन-सा भय आ गया है?' कीटने कहा—'भगवन्! देखिये न, यह बैलगाड़ी कितनी तेजीसे चली आ रही है। मुझे भय है कि कहीं आकर यह मुझे कुचल न डाले।' व्यासजीने कहा—'कीट! तू तो अधम तिर्यक् योनिमें उत्पन्न हुआ है। तेरा तो मर जाना ही अच्छा है। बता तो किस पापके कारण तू इस तिर्यक् योनिमें

इतना कहकर व्यासजी चले गये। इतनेमें वह बैलगाड़ी आयी और उससे दबकर कीटने प्राण-त्याग कर दिया। इसके बाद वह गोधा, शाही, शूकर, कूकर, शृगाल और चाण्डाल हुआ। तत्पश्चात् सत् शूद्र और वैश्य हुआ। इसके राजपुत्र हुआ; तब वह व्यासजीके पास गया और नी कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए उसने दास्यभाव माँगा। धर्मपूर्वक प्रजापालन करके अन्तमें उसने तपस्या करते देह-त्याग किया। इसके बाद वह ब्राह्मणकुमार हुआ। व्यासजीने आकर उसे फिर दर्शन दिये। उनकी से उसे तत्त्वज्ञान हो गया और अन्तमें परमपदकी हुई। (महाभारत, अनुशासनपर्व)

(२)

जातिस्मर जडभरत

जडभरतकी कथा तो सर्वत्र ही प्रसिद्ध है। भगवान् नदेवके पुत्र राजाधिराज भरत बहुत काल राज्य भोगनेके द् अपने पुत्रोंको राज्य देकर, वानप्रस्थका नियम लेकर ग्राम-क्षेत्रके निवासी हुए। वहाँ महायोगका आश्रय भी अन्तमें एक मृगछौनेके मोहमें आसक्त हो गये। वश देह-त्यागके समय वे उस मृगशिशुका ही ध्यान रहे। इसलिये उनका पुनर्जन्म मृगयोनिमें ही हुआ; उनकी पूर्वस्मृति नष्ट नहीं हुई थी। अतः उन्होंने मृगोंका साथ छोड़कर यत्किञ्चित् तृण चरते हुए ी नदीमें अपना आधा शरीर डुबोकर तप करते हुए, ग किया। पुनः वे एक श्रेष्ठ ब्राह्मणके घरमें पैदा वहाँ भी उनको पूर्वस्मृति बनी रही, अतः वे जड, गैर बहरेके समान आचरण करते थे। पिताके पढ़ानेपर उन्होंने विद्या नहीं पढ़ी। उनके पिताने उनका ोत-संस्कार कर दिया और खेतोंकी रखवालीमें नियुक्त ा। वहाँ वे परमब्रह्मका चिन्तन करते हुए कालकी करते थे। सौवीर-नरेशको उन्होंने धर्मका गूढ़ रहस्य था। अन्तमें उसी जन्ममें उन्हें मुक्ति प्राप्त हो गयी। (श्रीमद्भागवतपुराण)

अपने एक मित्र ब्राह्मण तपस्वीसे अपने पितरोंक सम्पन्न करवाया था, जिसके फलस्वरूप वह ताप पुनर्जन्ममें राजा हुआ और जातिस्मरताको प्राप्त हुअ वह तपस्वी ब्राह्मण उसी राजाका पुरोहित हुआ। रा अपने पुरोहितको देखकर हँसा करता था। एक पुरोहितने एकान्तमें राजासे उसका कारण पूछा। तब अपनी पूर्वस्मृतिके बलपर पुरोहितको सब ठीक-ठीक सुनाया। राजाकी बात सुनकर पुरोहित तपस्या करने गया और कठिन तप करके उसने मोक्ष प्राप्त किया। (महाभारत, अनुशास

(४)

जातिस्मर चार पक्षी

एक समय महर्षि जैमिनि मार्कण्डेय मुनिके पास और महाभारत-सम्बन्धी कुछ संदेह उपस्थित किये। संध्या-वन्दनका समय होनेके कारण मार्कण्डेय मुनिने उ विन्ध्य पर्वतकी कन्दरामें रहनेवाले चार पक्षियोंके जानेको कहा। महर्षि जैमिनिके पक्षियोंके बारेमें पूछे जा मार्कण्डेयजीने बतलाया कि "वे मुनिवर समीकके द्वारा पा पक्षी हैं। एक समय दुर्वासाजीके द्वारा शापित वपु ना अप्सराने गरुड़वंशीय कन्धर नामक पक्षीकी पत्नी मदनिक गर्भसे तार्क्षी पक्षिणीके रूपमें अवतार लिया था। वही तार्क्षी द्र नामक एक ब्राह्मणको ब्याही गयी थी, जिससे गर्भ धा करनेपर साढ़े तीन महीने बाद वह तार्क्षी, जब महाभार युद्ध हो रहा था, उड़ती हुई उधरसे निकली और अर्जुन बाणसे त्वक् छिल जानेपर वह गर्भस्थ अण्डोंको गिराय मृत्युको प्राप्त हुई। संयोगवश उसी समय भगदत्तके सुप्रती नामक गजराजका महान् गलघण्ट भी बाण लगनेसे टूटक गिरा और उसने उन अण्डोंको आच्छादित कर दिया। युद्ध समाप्तिके बाद शिष्योंके साथ विचरण करते हुए समीक मुनि उनको उठा लाये। आश्रममें परिपुष्ट होकर एक दिन वे पक्षी मनुष्यकी वाणी बोलते हुए गुरुको प्रणाम करने गये। मुनिवर समीकने विस्मित होकर उनसे पूर्वजन्मका वृत्तान्त पूछा। उन्होंने बतलाया कि 'हम चारों भाई पूर्वजन्ममें सुकृष नामक ब्राह्मणके ज्ञानी पुत्र थे। एक दिन हमने

पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया। इससे उन्होंने हमें तिर्यक् योनिमें जानेका शाप दे दिया। अतः हे गुरो! वे ही हम चारों ब्राह्मण-कुमार हैं, जो अब पक्षी होकर तार्क्षीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। हमारी माता महाभारतके युद्धमें मारी गयी है। गुरो! अब हमें आज्ञा दीजिये। हम विन्ध्य पर्वतकी मनोहर कन्दरामें निवास करेंगे।' मार्कण्डेयजीने कहा—'हे जैमिनि! तुम वहाँ जाओ। वे वेदज्ञानसम्पन्न पक्षी तुम्हें उपदेश करेंगे।' तब महर्षि जैमिनि वहाँ गये और पूर्वज्ञानकी स्मृतिसे सम्पन्न उन पक्षियोंने उनके सारे संदेह निवारण कर दिये। (मार्कण्डेयपुराण)

इस प्रकार हमारे धर्मग्रन्थों तथा इतिहास-पुराणादिके स्वाध्यायसे पता लगता है कि पशु-पक्षीतक भी जातिस्मर होते हैं और उन्हें भी पूर्वजन्मका ज्ञान होता है। ऐसे ही लोगोंके सत्य प्रमाणोंसे पुनर्जन्म ठीक-ठीक निश्चय होता है। हमारा भारत तो सदासे ही अध्यात्मज्ञान-सम्पन्न रहा है। दुर्भाग्यका विषय है कि इस कलिकालमें वह ज्ञान क्षीण हो चला है और मानव दानव बनता जा रहा है। भगवान् रक्षा करें।

पुनर्जन्मका सिद्धान्त हिंदुत्वका दीपस्तम्भ

(लेखक—श्रीगुरुजी श्रीमाधव सदाशिव गोलवलकर)

[प्रेषक—श्री'माधव']

हिंदूके लिये जीवन लक्ष्यहीन कदापि नहीं है। पर उसका लक्ष्य कोई ऐसी महानता नहीं है, जो सत्ता, पद, नाम अथवा ख्यातिसे नापी जाय। उसके सामने तो एक ही लक्ष्य है, अर्थात् अपनी वास्तविक प्रकृति—अन्तर्जात देवत्वकी स्फुल्लिंग, उसमें निवास करनेवाले परम सत्यकी अनुभूति, जो मनुष्यको स्थायी परम आनन्दकी अवस्थातक ले जाती है। किंतु मनुष्यका जीवनकाल बहुत छोटा है। इतने अल्पकालमें वह इस सर्वश्रेष्ठ अवस्थातक कैसे पहुँच सकेगा? वह तो इस शरीरके विषयमें भी पूर्णतया नहीं जानता; यद्यपि वह जीवनपर्यन्त इसका उपयोग करता है। ऐसी दशामें वह सर्वव्यापक अविनाशीको कैसे जान सकता है, जो शरीरमें अन्तर्भूत है। कार्य-कारणका नियम हमें बताता है कि हमारी प्रत्येक क्रिया 'कारण'का विशेष परिणाम होती है। यह कार्य-कारणका चक्र वृद्धिगत होना, विकसित होना और परा अवस्थाको प्राप्त होना है। इसलिये मनुष्यकी यह वर्तमान सत्ता उसके वास्तविक अस्तित्वकी पूरी कहानी नहीं है। मनुष्यमें विशिष्ट एवं सहज प्रेरणा इस बातकी रहती है कि वह विस्तार करे और अपनी दिव्य प्रकृतिको व्यक्त करे। वह तबतक बार-बार जन्म लेता रहेगा, जबतक उसमें अपनी सच्ची दिव्य आत्माके विषयमें अज्ञानका लेश भी रहेगा तथा यदि वह प्रामाणिकतासे प्रयत्न करता रहेगा तो प्रत्येक जन्ममें अधिकाधिक प्रगति करता जायगा।

उस परम सत्यके साथ अपनी एकताकी अनुभूतिके लिये यह पुनर्जन्मका सिद्धान्त मानव आत्माके लिये एक बहुत ही बड़ी आशा है। यह तो हिंदुत्वका ही दीपस्तम्भ है, जो इस अमर आशाके प्रकाशको विकीर्ण करता है कि इस वर्तमान जीवनके साथ ही सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता, अपितु हमारे सामने एक जीवनके पश्चात् दूसरा जीवन अर्थात् अनन्त समय पड़ा हुआ है, कार्यमें जुटनेके लिये और अपने गन्तव्यतक पहुँचनेके लिये। इस विशाल मानव-समाजमें यह हिंदू ही है, जो आशा और विश्वासकी दीपिकाको ऊँचा उठाये हुए है। हमारे सभी पवित्र ग्रन्थों तथा प्राचीन अथवा अर्वाचीन सभी सम्प्रदायोंमें यही मूलभूत तत्त्व अन्तर्हित है। ['विचार-नवनीत' से संकलित]

नित्य सुखमय परम धामकी प्राप्ति

जन्म-मरणके चक्र घोरका तबतक कभी न होगा अंत।
जबतक मानव नहीं भजेगा श्रद्धायुत मनसे भगवंत॥
दुःखयोनि भोगोंका मोह छुड़ाकर भजन बनाता संत।
पा जाता फिर इससे मानव सुखमय नित पर-धाम अनंत॥

चौरासी लाख योनि और पुनर्जन्मसे बचनेका उपाय

(लेखक—श्रीनारायणजी पुरुषोत्तम सांगाणी)

सृष्टिकर्ता परमात्मा श्रीहरिने लीला करनेकी इच्छासे नाना प्रकारकी अद्भुत सृष्टिकी रचना की। उस सृष्टिमें त्रिकालदर्शी ऋषि-मुनियोंके कथनानुसार चौरासी लाख जीवयोनि हैं।

जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज नामक चार प्रकारके प्राणियोंमें ९ लाख जलचर, ११ लाख कृमि, १० लाख पक्षी, २० लाख पशु, ३० लाख स्थावर और ४ लाख मनुष्ययोनि—यों कुल चौरासी लाख जीवयोनिका निर्माण हुआ है। इन सब योनियोंमें जन्म लेकर जीवको असंख्य प्रकारके जन्म-मरणके दुःख सहने पड़ते हैं। मनुष्ययोनिके सिवा इतर योनिके पशु-पक्षी, जलचर, स्थावर आदि जीव बुद्धिशक्तिके अभावमें दुःखसे मुक्तिका मार्ग न तो खोज सकते हैं और न तदनुकूल आचरण कर सकते हैं। पुण्यके प्रतापसे स्वर्गके भोगमें निमग्न देवता भी आत्मकल्याणका उपाय नहीं सोच सकते। अफ्रिका, यूरोप और अमेरिका आदि देशोंके यवन-म्लेच्छ आदि जातिके लोग महर्षि वसिष्ठकी कामधेनु नन्दिनी तथा विश्वामित्रके पचास पुत्रोंके शापके कारण वर्णाश्रमधर्मसे बहिर्मुख एवं जडवादमें आसक्त होनेके कारण वेद-शास्त्रको 'गडेरियेके गीत' कहते हैं और जगदुद्धारक वर्णाश्रमकी श्रेष्ठ प्रथाको जंगलीपन मानते हैं। इस कारण वे शाश्वत सुख-शान्ति और आनन्दकी झाँकी प्रायः नहीं कर सकते।

वस्तुतः वेद-शास्त्र, गीता-उपनिषद् आदिने, महानुभाव ऋषिगण—सनत्कुमार, नारद, वसिष्ठ, भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, स्वायम्भुव मनु, मार्कण्डेय, व्यास, शुकदेव, याज्ञवल्क्य आदिने स्पष्ट विधान किया है कि लोग अज्ञानवश क्षण-भङ्गुर, नाशवान् और दुःखदायी संसारमें, राजस-तामस पदार्थोंमें तथा स्त्री-पुत्र, धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य-अधिकार आदिमें जो सुख-शान्ति और आनन्द मान रहे हैं; यह उनकी भारी भूल है। बुद्धिको विकारयुक्त करनेवाले इन साधनों और पदार्थोंमें आनन्द और सुख-शान्ति नहीं है; बल्कि उनमें दुःख, अशान्ति और क्लेश ही है। यदि सच्ची सुख-शान्ति और आनन्द चाहिये तो इसके भण्डाररूप परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी शरणमें जाओ तथा उनके आज्ञा स्वरूप वेद-शास्त्रमें वर्णित वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार आचरण करो; क्योंकि वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न भगवान् हैं। वे 'रसो वै सः'—अर्थात् आनन्दस्वरूप ही हैं, ऐसी वेद घोषणा करते हैं।

भारतभूमि परम पवित्र गङ्गा-यमुना, विन्ध्य-हिमाचल, द्वारका-जगन्नाथ, बद्रीनाथ-रामेश्वर तथा काशी-मथुरा, पुष्कर-प्रयाग आदि दिव्य तीर्थोंसे सम्पन्न धर्मभूमि है, जहाँ परमात्मा श्रीहरि अजन्मा होते हुए भी धर्म, धर्मज्ञ, गौ और सतीकी रक्षा करने और अधर्मी दुष्ट लोगोंको दण्ड देने तथा धर्मकी स्थापना करनेके लिये मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हो चुके हैं। भारतके हिंदू, सनातनधर्ममें दृढ़ श्रद्धा रखनेवाले, भगवद्भक्ति, जप-तप, योग-यागका अनुष्ठान तथा होम-हवन, श्राद्ध-तर्पण आदि धर्मकृत्य करके, गोरक्षा तथा माता-पिताकी सेवा करते हुए परमात्मा श्रीहरि तथा उनकी विभूतिरूप इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, अग्नि, वरुण, वायु, कुबेर आदि देवोंको आहुति-अर्पणके द्वारा प्रसन्न करते थे और वे सहज प्रसन्न होकर ऋद्धि-सिद्धि, धन-धान्य, सम्पत्ति-संतति, इच्छानुकूल वृष्टि, सुख-शान्ति, दीर्घायु तथा स्वास्थ्य प्रदान करते थे। परंतु विदेशी विधर्मियोंके द्वारा नास्तिकवाद देशमें घुस गया; उनके द्वारा धर्म और संस्कृतिसे हीन शिक्षाका प्रचार हुआ; उनके भोजन-वसन आदिकी नकल होने लगी; इससे भारतका और हिंदुओंका घोर पतन हो गया।

पतन तो यहाँतक हो गया है कि जो हिंदू गीताकी आज्ञाके अनुसार स्वधर्मका पालन करते हुए यदि मृत्यु भी हो जाय तो हँसते हुए उसे वरण करते थे, परंतु परधर्म कभी स्वीकार नहीं करते थे; वे ही आज 'जगत्स्रष्टा ईश्वर और उनके आज्ञास्वरूप वेद-शास्त्र, वर्णाश्रमधर्मकी अवहेलना करते हुए स्वच्छन्द वर्तने लगे हैं। अपनेको शिक्षित कहते हैं, फिर भी मद्य-मांस, व्यभिचार, भ्रूणहत्या, वर्णान्तर-विवाह, सगोत्रविवाह आदि महापाप करते-कराते हैं। यही नहीं, सर्वदेवमयी, जगज्जननी गोमाताकी नित्य तीस हजारकी संख्यामें हत्या भी हो रही है। प्रतिवर्ष एक करोड़से अधिक संख्यामें गोवंशकी हत्या हो रही है। इसी कारण

देवता लोग असंतुष्ट होकर अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, महामारी, युद्ध, हत्या-लूट आदि सङ्कटोंकी वर्षा कर रहे हैं। अन्न, दूध-घी, तेल-गुड़ आदिका भाव बीसों गुणा बढ़कर भी उनका प्राप्त होना कठिन हो गया है। लोग हाहाकार मचाते हुए बुरी हालतमें जीवन-यापन करते हुए अकाल काल-कवलित हो रहे हैं।

ऐसी नारकीय दुःखद स्थितिसे मुक्त होना हो, लोक-परलोकको सुख-शान्तिमय बनाना हो तथा उपर्युक्त चौरासी लाख योनिके अवर्णनीय सङ्कटोंसे सदाके लिये त्राण पाना हो तो मनुष्यमात्रको, खास करके भारतके पचास करोड़ हिंदुओंको अपने प्रतापी प्रातःस्मरणीय पूर्वज—मनु, पृथु, ध्रुव, अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, नारद, भृगु, दधीचि, मार्कण्डेय, व्यास, पाण्डव, विक्रमादित्य, प्रताप, शिवाजी आदिका पवित्र पदानुसरण कर **'कार्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि'** का सुदृढ़ व्रत लेकर निम्नलिखित बातोंको तत्काल दृढ़तापूर्वक आचरणमें लाना आवश्यक है।

(१) जन्म-मरणके दुःखसे बचना हो तो मन और इन्द्रियोंको वशमें करे। विषय-विकार उत्पन्न करनेवाली वस्तुओं तथा व्यसनोंसे चित्तको हटा ले। जगन्नियन्ता श्रीहरिकी शरणागति ग्रहण करे। उनके आज्ञास्वरूप वेद-शास्त्र और वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार आचरण करे। कुतर्की तथा नास्तिक लोगोंसे दूर रहे। प्रभुका दर्शन प्राप्त करनेके धर्मविरुद्ध योजनाओंको बंद करके इन्द्रियसंयमपूर्वक बढ़ती हुई प्रजाकी रक्षाके लिये कुटीर, उद्योग तथा परती जमीनको कृषियोग्य बनाकर अधिक अन्न-उत्पादनकी चेष्टा करनी चाहिये।

(५) घूस-रिश्वत लेनेवालों और चोरबाजारी करने-वालोंको कठोर दण्ड देकर भ्रष्टाचार बंद करना चाहिये।

(६) समयपर वृष्टि हो सके, इसके लिये विधिपूर्वक यज्ञ-याग, हवन-होम आदि शुद्ध गायके घीके द्वारा करवाना चाहिये, जिससे देवगण प्रसन्न होकर समयपर जलवर्षण करें और धन-धान्यकी वृद्धिसे प्रजा सुखी हो सके।

(७) सिनेमा मनोरञ्जन प्रदान करनेके स्थानमें चोरी-लूट, व्यभिचार-अनाचार आदि दुर्गुणों और नाना प्रकारके व्यसनोंको बढ़ावा दे रहा है। इसलिये सिनेमाको सदाके लिये बंद कर देना चाहिये।

(८) आजकल हिंदूजातिके आचार्य, विद्वान् तथा श्रीमन्त लोगोंकी शिथिलताके कारण ईसाई-मुसल्मान आदि विधर्मी बड़े जोर-शोरसे हिंदूधर्मके विरुद्ध मिथ्या आरोप करके हिंदुओंको ईसाई-मुसल्मान बना रहे हैं। इसको रोकनेके लिये हिंदुओंको जागना चाहिये और जिन गरीबोंको फुसलाकर तथा सुविधा देकर धर्मच्युत किया जा रहा है, उनकी सेवा-सुविधा करते हुए धर्मान्ध अन्य धर्मियोंको मुँहतोड़ जवाब देकर हिंदूजातिकी रक्षा करनी चाहिये।

(९) राष्ट्रभाषाके पदसे अंग्रेजीको हटा देना चाहिये

गवदाराधना करके अपने पापोंका नाश जिसने किया , वही भारत-जैसी पवित्र भूमिमें, हिंदूजातिमें, उत्तम अकुलमें जन्म लेता है और परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्तिका उसके शुद्ध अन्तःकरणमें उदय ता है।' मनु महाराज कहते हैं कि 'जगत्में भारतदेश श्रेष्ठ है। यहाँ उच्चकोटिके तत्त्वज्ञानी ब्राह्मण रहते हैं उनके द्वारा दुनियाभरके लोगोंको आचारकी शिक्षा प्रा करनी चाहिये।' (२। २०) अतएव हिंदुओंको वैसा उ और सफल जीवन बनाना चाहिये कि जो दुनियाके लोगों लिये आदर्श बन सके। यही हिंदुओंसे मेरी नम्र विज्ञप्ति है

पूर्वजन्म, पुनर्जन्म और छुट्टी

(लेखक—पं० श्रीसूरजचंदजी सत्यप्रेमी [डाँगीजी])

इन तीनों बातोंको समझनेके लिये तीन वचनामृत ननीय हैं—

मुनि बचन सुजाना रोदन ठाना,
होइ बालक सुर भूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं,
ते न परहिं भवकूपा॥
(मानस १। १९१। छं० ४)

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥
(गीता ४। ९)

'विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।'

(१) कौसल्या माताके वचनोंको सुनकर परम ज्ञानस्वरूप ने रोना स्वीकार किया। देवताओंकी पृथ्वीका संरक्षण नेवाले भगवान्ने अपने चतुर्भुज नारायणस्वरूपका र्जन करके बालवैभव धारण किया। यह चरित्र परमार्थ-से भी कोई पहचान ले तो प्रभु-पदकी उपलब्धि हो । और फिर बद्ध होकर भव-कूपमें नहीं पड़ना पड़े।

(२) भगवान् श्रीकृष्णकी घोषणा है—'हे अर्जुन ! दिव्य जन्म-कर्मको कोई तत्त्वतः जान ले तो देह छूटने- वह पुनर्जन्मको न प्राप्त हो और मुझे प्राप्त हो जाय। वरूप धारण कर ले।'

(३) 'विष्णुभगवान्का पादोदक पीनेके बाद र्जन्म कदापि नहीं होता है।' अब इन तीनों वेद-वेदान्त : सिद्धान्तके निर्विवाद प्रवचनोंपर विचार करें।

'कबहु बिचारु सुजन मन माहीं।' आप सज्जन हैं—मनमें ार करें, विचारके द्वारा जान लें, निश्चय कर लें कि—

नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं।
(मानस १। २४। २)

'नाम लेते ही जन्म-मरणका समुद्र सूख जाता है।' उ पार ही नहीं करना पड़ता। यह तो बात हुई जन्म-मरण छुट्टी पानेकी। अब पूर्वजन्म और पुनर्जन्ममें हम कै बँधे ! यह बन्धन है क्या ! कबसे है ! बँधे थे कि नहीं क्यों बँधे !—जब कि आकाश भी बादलोंसे नहीं बँधता क्यों नहीं बँधे ! जब कि बन्धन प्रत्यक्ष नजर आ रहा है हाँ, प्रभुके जन्म-कर्मको समझकर उनका नाममात्र भ इससे छुट्टी दिला देता है। यह शाश्वत सिद्धान्त है।

जैसे सूर्यमें तापशक्ति भी है और प्रकाशशक्ति भी उसी प्रकार ब्रह्ममें 'वैभवशक्ति' भी है और 'स्वभाव-शक्ति' भी। 'स्वभाव-शक्ति'से वह निर्लिप्त, निर्गुण, निराकार, निराधार, निर्विशेष, सर्वातीत,, सर्वाकार, सर्वाधार, सर्वगुण-सम्पन्न और परम प्रेमपरिपूर्ण है और 'वैभव-शक्ति'से उसमें अनन्तानन्त कालतक अनन्तानन्त स्थानोंमें, अनन्तानन्त लीलाएँ करते रहनेकी अचिन्त्य सामर्थ्य है।

सूर्यकी तापशक्तिसे अनेक बादल बनते हैं और प्रकाश-शक्तिसे दिखायी देते हैं। उसी प्रकार प्रभु अपनी वैभवशक्तिसे अपनी माया और इसकी छाया-कायाके आधारसे अनेक लीलाएँ करते हैं और ज्ञानशक्तिसे द्रष्टा—ज्ञाता बने सब देखते रहते हैं।

हम जन्मके पूर्व माँके गर्भमें थे। यह हमारा पहला पूर्वजन्म सभी जानते हैं। माँके गर्भके पहले पिताके वीर्यमें, उससे पहला पूर्वजन्म। पिताके वीर्यके पहले कामाग्निमें, उससे पहला पूर्वजन्म। कामाग्निके पहले वातावरणमें, उससे पहला पूर्वजन्म। वातावरणके पहले वाग्दान-संस्कारके कारण शब्द—गुण आकाशमें, इसके पहले माता-पिताके मनमें। इसके पहले ब्राह्मणकी बुद्धिमें,

इसके पहले ब्रह्माके अहंकारमें, इसके पहले विष्णुके चित्तमें, इसके पहले शंकरके हृदयमें, इसके पहले शक्तिके कण्ठमें, इसके पहले श्रीकृष्णके भालमें, इसके पहले श्रीरामके मस्तकमें । रामके मस्तककी किसीको खबर नहीं ।

। दारु जोषित की नाईं । सबहिं नचावत राम गोसाईं ॥

इन पूर्वजन्मोंको नहीं समझा और फिर संसारकी वासना रह गयी तो मस्तकसे भालमें, भालसे कण्ठमें, कण्ठसे हृदयमें, हृदयसे चित्तमें और चित्तसे अहंकार-बुद्धिवाले मनमें पड़कर शून्याकाशद्वारा वाग्दान वातावरणमें, कामाग्नि-द्वारा अधःपतित होकर कर्म-मल-चक्रमें जन्म-मरण होता रहता है । 'निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।'

निर्मम-निरहंकार हो जाय तो बस, छुट्टी ।

आठ चिरंजीवी

(लेखक—योगाभ्यासी श्रीमदनमोहनजी वानप्रस्थी)

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः ।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥
सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम् ।
जीवेद्वर्षशतं सोऽपि सर्वव्याधिविवर्जितः ॥

(आचारमयूख)

अर्थात् 'अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, [कृ]पाचार्य, परशुराम और मार्कण्डेय—इन आठों चिरंजीवोंकी [जो] मनुष्य प्रातःकाल श्रद्धापूर्वक स्तुति करता है, वह सब [रो]गोंसे मुक्त होकर सुखपूर्वक सौ वर्षकी आयुको प्राप्त होता [है] तथा सदा-सर्वदा नीरोग रहता है ।'

इसपर तार्किक कहते हैं कि 'अश्वत्थामाने उत्तराका [ग]र्भपात करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया । द्रौपदीके सोते हुए सात पुत्रोंका वध किया—ऐसे दुष्टात्माको चिरंजीव कहना अनुचित है । बलिने गर्दभकी योनि प्राप्त की; व्यासका जन्म शूद्रासे हुआ; विभीषणने वंशका क्षय किया; परशुरामने क्षत्रियोंका विनाश किया—ऐसे दोषयुक्त पुरुष स्मरण करनेके योग्य नहीं हैं ।' इसपर आस्तिक संत समाधान करते हैं कि ''महाभारत, अनुशासनपर्वमें सावित्री-स्तोत्रमें वर्णन है कि ये आठ चिरंजीवी दिव्य मुनि हैं । इस लोकमें इनमेंसे प्रत्येक मुनि सात-सात प्रकारसे शान्ति और [...] जाते हैं, वे घोर पातकी होनेपर भी पापसे मुक्त होकर दिव्य स्वरूपको प्राप्त होते हैं ।

विभीषणके लिये 'गोपालसहस्रनाम'में उल्लेख आया है कि 'लङ्काधिपकुलध्वंसी विभीषणवरप्रदः ।'—श्रीभगवान् रावणका नाश करते हैं और विभीषणको वरदान देते हैं । भगवान् भक्त-पुण्यात्माको सदैव वरदान दिया करते हैं । अतः विभीषण सब तरहसे दोष-युक्त होकर भी अमरताको प्राप्त हुए । मानसमें भी वर्णन आया है कि जब विभीषण भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें पहुँचकर प्रार्थना करते हैं—

अब कृपाल निज भगति पावनी । देहु सदा सिव मन भावनी ॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा । मागा तुरत सिंधु कर नीरा ॥
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं । मोर दरस अमोघ जग माहीं ॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमन बृष्टि नभ भई अपारा ॥

(५ । ४८ । ४-५)

सारांश यह है कि जिस मनुष्यको किसी प्रकार भी श्रीभगवान्का संस्पर्श प्राप्त हो जाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर परम विशुद्ध अमरत्वको प्राप्त करता है । ऐसी ही कृपा भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामापर करके उसे उच्चप[द] प्रदान किया । महाभारत, शान्तिपर्वमें दर्शाया है कि बलिने दान करके इन्द्रासन प्राप्त किया, तब इन्द्रने स[...]

नीच है। इसपर तुम्हें कुछ विचार होता है या नहीं? बड़े कष्टकी बात है कि आज मैं तुमको शत्रुओंके अधीन, तेज, बल, लक्ष्मीसे रहित, इष्ट-मित्रोंसे पृथक् गुप्तरूपमें देख रहा हूँ। किसी समय तुम हजारों सवारियोंके साथ अपने इष्ट-मित्रोंसे घिरे सब लोकोंको तपाते हुए हमलोगोंको तुच्छ समझते चलते थे। तुम्हारे राज्यमें पृथिवी बिना बोये-जोते भी अन्न उत्पन्न करती थी। अब इस भयानक दुःखमें हो। इसकी तुम्हें चिन्ता होती है या नहीं?' इन्द्रके ऐसे हृदय-विदारक वचन सुनकर बलिने इन्द्रको तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया। जिससे इन्द्रने प्रसन्न होकर बलिसे कहा कि 'ब्रह्माजीकी आज्ञासे मैं तुम्हे नहीं मारता हूँ। तुम दक्षिण दिशामें जाकर निवास करो। वहाँ तुम अमरत्वको प्राप्त होओगे।' इस तरह ब्रह्माजी और इन्द्रसे वरदान पाकर गर्दभ-योनिसे मुक्त हो बलि अमरत्वको प्राप्त हुए।' इससे तार्किकको शान्ति प्राप्त हुई।

'जो पुरुष गुरुवारको दक्षिण दिशामें प्रातःकाल खड़ा होकर राजा बलिका ध्यान करता है, वह सुवर्ण प्राप्त करता है।' 'ब्रह्मपुराण'में यह निर्देश है।

'श्रीव्यासजीपर तार्किककी जो शङ्का है, उसका आस्तिक संत यों समाधान करते हैं कि व्यासजीकी माता उच्चकोटिके तपस्वियोंकी सेवा-शुश्रूषा बड़े सद्भावसे किया करती थीं। उनके भुक्त अन्नके सेवन करनेसे व्यासजीके पूर्वजन्मकृत पाप नष्ट हो गये। फिर माहेन्द्र पर्वतपर जाकर वे समाधिस्थ हो गये। ब्रह्माजीने उनको दर्शन दिया। उनकी जिह्वापर 'सरस्वती' बीज लिखकर पुराणोंकी रचनाकी आज्ञा दी और यह वरदान दिया कि 'तुम सदैव अमर बने रहोगे।' प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमाको संसारभरमें

श्रीहनुमान्जी वायुपुत्र हैं। वायु सृष्टिके आदि-अन्ततक रहता है। इसीके साथ ये हनुमान्जी भी अमर हैं। इनकी शनिवारको उपासना करनेसे मनुष्यके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। जो मनुष्य शनिवारको श्रीहनुमान्जीकी प्रतिमापर मीठे तेलकी धारा देता है, उसको शनिदेवकी पीड़ा नहीं होती है।

श्रीमार्कण्डेय ऋषिकी उपासना करनेसे मनुष्य शतायु होता है। एक तोला गोमूत्रको इनके नामसे शत बार अभिमन्त्रित करके जो पीता है, उसको कभी ज्वर नहीं आता है, उसकी बुद्धि तेज होती है; शरीरमें स्फूर्ति आती है। प्रतिवर्ष जब मनुष्यकी जन्म-तिथि आती है, उस दिन धर्मात्मा और आस्तिक भद्रपुरुष नूतन वर्षकी पूजा करते हैं। उस समय दीर्घायु-प्राप्तिके लिये श्रीमार्कण्डेय ऋषिकी स्तुति करते हैं।

प्रार्थना

ॐ मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन।
चिरंजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने ॥
रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन् मुने ॥
चिरंजीवि यथा त्वं भो मुनीनां प्रवरो द्विजः।
कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीविनम् ॥
नवत्वर्षायुतं प्राप्य महता तपसा पुरा।
सप्तैकस्य कृतं येन ह्यायुर्मे सम्प्रयच्छतु ॥

इस प्रकार प्रार्थना करके एक पात्रमें दो पल दूध तथा तिल-गुड़ मिलाकर पीनेसे मनुष्य शतायु होता है।* निद्रा टूटते ही सर्वप्रथम जो उपर्युक्त चिरंजीवोंका स्मरण करते हैं, वे सदैव नीरोग रहते हैं। इति शम्

* ॐ सतिलं गुडसम्मिश्रमञ्जल्यर्धमितं पयः। मार्कण्डेयवरं लब्ध्वा पिबाम्यायुष्यहेतवे ॥

गीता, गङ्गा, गायत्री, गयाश्राद्ध और गोसेवासे प्रेतत्व-मुक्ति

(लेखक—आचार्य श्रीगदाधर रामानुजम् 'फलाहारी')

भगवत्कृपासे जीवको परम दुर्लभ मनुष्ययोनि प्राप्त हुई है। इसमें सत् साधन करनेपर इहलोकमें सुख-शान्ति और मृत्युके उपरान्त श्रीवैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास आदि दिव्यलोकोंकी प्राप्ति होती है। नहीं तो, कर्मानुसार पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि स्थूलशरीरमय चौरासी लक्ष योनियोंका भ्रमणचक्र निरन्तर चलता रहता है।

जैसे उपर्युक्त दृष्ट योनियाँ जीवको कर्मानुसार प्राप्त होती हैं, वैसे ही प्रेतादि सूक्ष्म अदृष्ट योनियाँ भी हैं, जिनमें आहार-निद्रादि शारीरिक आवश्यकता-पूर्तिकी प्रबल आकाङ्क्षा होती है, किंतु पञ्चतत्त्वमय स्थूलशरीरके अभावमें उक्त वस्तुओंकी प्राप्ति हो नहीं सकती। क्षुधा-पिपासा-वस्त्र आदिके अभावसे दुःखित होकर प्रेत-जीव इधर-उधर भटकते रहते हैं। यही भ्रमित दुर्गतिप्राप्त जीव जब सम्बन्धियों, इष्ट-मित्रों और परिचित जनोंको दिखायी देते हैं या किसी प्रकारका अन्य उपद्रव करते हैं, तब सबको भयकी अनुभूति होती है और तब 'इनका उद्धार कैसे हो ?' यह प्रश्न सम्मुख आता है। एक महात्माके कथनानुसार—'भूत-प्रेतोंकी भी सात्त्विक, राजसिक, तामसिक—तीन श्रेणियाँ होती हैं, जो अपने-अपने गुण-स्वभावानुसार कार्य करते हैं। इनकी भी अन्य प्राणियोंकी तरह कर्मानुसार आयु-मर्यादा निश्चित रहती है। इससे पूर्व यदि शास्त्रलिखित कोई उपाय किया जाय तो इन्हें शीघ्र मुक्ति मिल जाती है, नहीं तो, अवधि-समाप्तिपर ये स्वयं ही योनिमुक्त हो जाते हैं।'

आधुनिक शिक्षित समुदाय विज्ञानकी दुहाई देकर भूत-प्रेतादिको केवल मिथ्या भ्रम मानता है। चिकित्सा-विज्ञान इनकी मानसिक व्याधियोंके रूपमें गणना करता है। धर्मशास्त्र हमारे सनातन प्रमाण-ग्रन्थ हैं। उनमें 'अकाल-मृत्यु, दुष्कर्म, मृत्युके उपरान्त प्रेतकल्याणार्थ किये जानेवाले कर्मकाण्डोंके अभाव या उनके विधिवत् न होने आदि कारणोंसे और प्रारब्धवश जीवको उक्त योनियोंमें भटकना पड़ता है।' जहाँ शास्त्रोंमें ऐसा वर्णन है, वहाँ प्रेतत्वमुक्तिके विविध साधन भी बताये गये हैं। श्रीमद्भागवत-माहात्म्यका धुन्धुकारी-उद्धारका 'उपाख्यान' लोक-प्रसिद्ध है।

गीतापाठ, गङ्गास्नान, गायत्रीजप, गयाश्राद्ध और गो-सेवा—प्रेतत्वमुक्तिके सर्वोत्तम सुगम उपाय हैं। उक्त र द्वारा किस प्रकार प्रेतत्वसे मुक्ति मिली, ऐसी कुछ यहाँ दी जा रही हैं, जो सिद्ध महात्मा वैकुण्ठवासी श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी महाराजके जीवनकालकी औ करीब सत्तर वर्ष पूर्वकी हैं। उक्त सत्य घटनाएँ स्व उत्तराधिकारी वै० वा० स्वामी श्रीनिवासाचार्यजी । सम्बन्धित सज्जनोंके मुखसे सुनी हुई हैं।

(१)

श्रीमद्भगवद्गीता

भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे निकली हु अमृतवाणी है, जिसके श्रवणमात्रसे परम दुर्लभ प्राप्ति होती है।·········'नगरसे बाहर एक है, जिसके सम्बन्धमें ऐसा प्रसिद्ध था कि इर दुर्गति-प्राप्त आत्माओंका निवास है। समीपमें ही । स्थान था, जिसका मालिक स्वामीजीका अनन्य भ उसने एक दिन दुःखित होकर सम्मुखके स्थानमें घटनाओंके सम्बन्धमें बताया कि 'किस प्रकार रात्रि पर विविध छाया-आकृतियाँ उभरती हैं और । जाती हैं। विभिन्न पशु-पक्षियोंकी आवाजें आती फिर पत्थर गिरने लगते हैं। पहले तो यह सब उर तक ही सीमित था, किंतु अब तो समीपके सब लं भयभीत हैं। लोगोंने रात्रिमें इस ओर आना भी ; है। आदि·········।' यह सुनकर आपने उस वहाँ निवास किया तो मध्यरात्रिके बाद आपने ; कि उपर्युक्त सभी घटनाएँ यथार्थमें घटित होती दिन स्थानीय १८ पण्डितोंको बुलाकर १८ दि गीतापाठका आयोजन उस स्थानके सामने शुरू जिसमें छः विद्वान् एक साथ बैठकर चार घंटा दिन घंटा रात्रि—इस प्रकार गीताजीका पाठ करते थे। में गीता अध्याय ११ श्लोक ३५ से ४६ तक ब्राह्मण-भोजन हुआ और ११ पत्थरोंपर—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च

रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥
(गीता ११ । ३६)

—लिखवाकर स्थान-स्थानपर दीवालोंमें लगवा दिया। इसके बाद वह स्थान श्रीगीताजीके पुण्य-प्रभावसे सर्वथा भयमुक्त हो गया और लोग वहाँ निर्भय होकर रहने लगे।

(२)

गङ्गास्नान

पुण्यसलिला भगवती भागीरथी गङ्गाजी प्रत्यक्ष मुक्ति-दात्री हैं। सेठ ········ बड़े धर्मपरायण, सात्त्विक-स्वभाव, ब्राह्मण-साधु-महात्माओंमें भक्ति रखनेवाले और दयालु थे। पूर्णायु प्राप्त कर भरा-पूरा परिवार और सम्पन्न व्यवसाय छोड़कर वे मृत्युको प्राप्त हुए। ········ श्रीस्वामीजीके अनन्य शिष्य थे। जब बद्रीनाथयात्रामें उन्होंने यह समाचार सुना तो लौटते समय सान्त्वना देनेके लिये उनके घरपर पधारे। एक दिन रात्रिमें जब सब सो गये तो ········ का बड़ा पुत्र स्वामीजीके पास आया और रोते हुए उसने अपने पिताकी दुर्गति-प्राप्तिका वर्णन किया। ऐसे परम भागवत शिष्यकी यह गति! स्वामीजी भी सुनकर आश्चर्य करने लगे। तब ········ के पुत्रने स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि—'महाराज! यह सत्य है और पिताजी मुझे समय-समयपर दिखायी देते हैं और यदा-कदा उनका आवेश भी मेरे शरीरमें होता है। आप शीघ्र उनकी मुक्तिका उपाय कीजिये।'—यों कहकर वह रोने लगा। रात्रिमें कुछ आहट होनेपर जब स्वामीजी उठे तो उन्होंने अपने पलंगके समीप अस्पष्ट पुरुषाकृतिको देखा। आप जब खड़े हो गये तो वह आकृति आपके चरणोंमें गिर पड़ी और अत्यन्त धीमी आवाजमें अपनी इस दुर्गति होनेकी घटना कह सुनायी। उसका सारांश यह था कि एक महात्माने किसी तीर्थमें धर्मशाला-निर्माणके लिये कुछ अर्थ-संग्रह किया था, वह द्रव्य इनके यहाँ जमा करा दिया था। बहुत वर्षोंतक महात्मा नहीं आये। बादमें सुना कि हरिद्वार-कुम्भमें उनका देहान्त हो गया। उनका वह संग्रहीत द्रव्य सेठजीके पास ही रह गया, जिसके कारण उनको यह दुर्गति प्राप्त हुई।

श्रीस्वामीजीने प्रातःकाल यह घटना सेठजीके पुत्रको बतायी और कहा कि 'तुम उस महात्माका धन और उसका इतने वर्षोंका व्यावसायिक ब्याज एवं अपने पिताके निमित्त कुछ धन—इतने रुपये लेकर हरिद्वार चले जाओ और नित्य साधु-महात्माओंकी अन्न-वस्त्रसे सेवा करो और प्रति समय गङ्गा-स्नान करो तथा गङ्गाजलकी अञ्जलि प्रदान करो। जब सब रुपये साधु-सेवामें व्यय हो जायँगे तो तुम्हारे पिताकी सद्गति हो जायगी।' उन्होंने ऐसा ही किया। भागीरथीके पुण्य-प्रभावसे ········ मुक्त हो गये।

(३)

गायत्रीजप

ईर्ष्या, द्वेष या पारस्परिक वैमनस्यताके कारण किसी व्यक्तिपर कोई तान्त्रिक प्रयोग करानेसे या अन्य किसी हेतुसे वह बुद्धि भ्रमित होकर पागलोंकी तरहसे व्यवहार करने लगा। उसके परिवारवालोंने चिकित्सक, ओझे, साधु-संन्यासी आदिसे बहुत-से उपाय करवाये, परंतु कुछ लाभ नहीं हुआ। स्थिति दिनोंदिन अधिक बिगड़ने लगी। रोगी मरणासन्न हो गया। ऐसी स्थितिमें स्वामीजीको भी दिखाया गया और इसके ठीक होनेका उपाय पूछा गया, तब उन्होंने बताया—

'गायत्री-मन्त्र इस लोकमें सिद्धि और परलोकमें मुक्ति-प्राप्तिका महान् उपाय है। प्रतिदिन उपनयनधारी किसी व्यक्तिद्वारा शुद्ध आसनपर बैठकर गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल इसको पान कराओ, उसी जलसे इसके शरीरका प्रोक्षण करो और जिस स्थान (कमरेमें) गायत्री-जप होता हो, वहीं रात्रिमें इसको शयन कराओ, निश्चय ठीक हो जायगा।'

रोगीके बड़े भाईने उपर्युक्त प्रकारसे गायत्री-मन्त्रका अनुष्ठान किया, जिसके प्रभावसे रोगी पूर्ण स्वस्थ हो गया और उन्होंने बताया—'मेरे शरीरमें किसी दुष्ट आत्माका निवास था। जिस दिन गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलका प्रथम प्रोक्षण हुआ, उसी दिन वह निकल गया और मेरा मन, आत्मा, शरीर पूर्ण स्वस्थ होने लगा।'

इसके बाद वह भी प्रतिदिन नियमित गायत्री-मन्त्र जपने लगा।

(४)

गयाश्राद्ध

········ की धर्मपत्नीका युवावस्थामें एक संतान छोड़कर देहान्त हो गया। माता-पिता एवं अन्य सम्बन्धियोंके बहुत कहनेपर ········ ने दूसरा विवाह कर लिया। विवाहके कुछ महीनों बाद ही उनकी दूसरी पत्नीके शरीरमें प्रथम पत्नीका आवेश आना प्रारम्भ हो गया। बहुत चिकित्सा करायी गयी, कुछ लाभ नहीं हुआ। किसी-

ने वायुप्रकोप, उन्माद, मानसिक व्याधि बतायी; उनकी भी चिकित्सा हुई, फायदा नहीं हुआ। जब स्वामीजीसे इसकी मुक्तिका उपाय पूछा गया, तब उन्होंने रोगिणीकी स्थिति देखकर ही उपाय बतानेके लिये कहा। उसके घरवालोंने जिस समय आवेश आया, उस समय स्वामीजीको बुलाया तो रोगिणीने दूरसे ही उनको देखकर प्रथम साष्टाङ्ग प्रणाम किया और फिर एकदम निढाल होकर गिर गयी और अस्पष्ट वाणीमें कुछ बड़बड़ाने लगी। स्वामीजीने उसको 'विष्णु सहस्रनाम'का एक पाठ सुनाया और ·······की पूर्वपत्नीका नाम लेकर पूछा कि 'क्या तुम वही हो? तुम तो बड़ी धार्मिक भगवद्भक्त पतिपरायणा स्त्री थी। तुम्हारी यह गति कैसे हुई?' इसके उत्तरमें प्रारब्धको ही उसने कारण बताते हुए कहा कि 'देहान्तके समय मेरा मन सांसारिक वस्तुओं तथा कार्योंमें रह गया था। अब आप महात्मा हैं, मेरी मुक्तिका उपाय कीजिये। आपके इस पाठसे मुझे बड़ी शान्ति मिली है।'

स्वामीजीने उसके श्वसुर, सास, पति—सबको सम्बोधित करते हुए कहा कि 'इसका गयाश्राद्ध करवा दो। गयाश्राद्धसे निश्चय ही इसकी मुक्ति हो जायगी।' परिवारवालोंने विधिवत् गयाश्राद्ध करवाया। अन्तिम पिण्डदानके दिन स्वप्नमें आकर उसने बताया कि 'अब मैं मुक्त होकर भगवद्धामको जा रही हूँ।'

(५)

गोसेवा

एक व्यक्तिने बहुत ही अल्प मूल्यपर पूर्वबंगालमें एक जूट-प्रेस खरीदा, जिसके सम्बन्धमें ऐसा प्रसिद्ध था कि जो भी व्यक्ति यह प्रेस लेगा, उसको कोई आर्थिक लाभ तो होगा ही नहीं, साथ ही उसको लेते ही कुछ अमङ्गल भी हो जायगा। बात भी सत्य थी। फिर भी, इतनी बड़ी सम्पत्ति अल्प मूल्यमें मिल रही है, जानकर उन्होंने प्रेस खरीद लिया। प्रेस लेनेके बाद कई प्रकारकी शारीरिक, आर्थिक विपत्तियाँ आयीं। जगन्नाथ-रथयात्रासे लौटकर जब स्वामीजी कलकत्ता पधारे और उनके यहाँ ठहरे तो उन्होंने स्वामीजीको उपर्युक्त सब बातें बतायीं और एक दिन स्वामीजीको प्रेस दिखानेके लिये भी उस स्थानपर ले गये। गङ्गा-तटपर सुरम्य स्थानपर विस्तृत जगहमें प्रेस देखकर स्वामीजीने कहा कि 'तुम्हारे ऊपर भगवान्‌की कृपा है, जो ऐसा स्थान अनायास ही प्राप्त हो गया है। अब इसको बेचनेका विचार छोड़कर ऐसा उपाय करो, जिससे इसका अमङ्गल दूर हो जाय। वह उपाय है—'गो-सेवा'। यहाँपर यथाशक्ति अच्छी गायें रक्खो। कुछ गायोंका दूध स्वयं अपने उपयोगमें न लाकर उनके बछड़ोंको ही पीने दो। प्रेमपूर्वक उनके चारा-दाना आदिकी सुव्यवस्था करो और स्थानके मध्यमें भगवान् श्रीगोपालकृष्णका सुन्दर छोटा-सा मन्दिर बनवा दो। इस कारखानेके सभी अमङ्गल स्वयमेव दूर हो जायँगे।'

उन्होंने ऐसा ही किया। भगवत्कृपा और गोसेवासे जो कारखाना 'भूतहा प्रेस'के नामसे प्रसिद्ध था, उसमें सुख-शान्ति और समृद्धिका निवास हो गया। पहले जो लोग उसमें काम करनेको तैयार नहीं थे, कहा करते थे कि उसकी मशीनोंको रात्रिमें भूत चलाते हैं; उसी स्थानपर गो-सेवाके प्रभावसे नयी-नयी मशीनें लगने लगीं और उस कारखानेके स्वामीको पर्याप्त लाभ मिलने लगा।

'गीता, गङ्गा, गायत्री, गयाश्राद्ध एवं गो-सेवासे निश्चय ही प्रेतत्वसे मुक्ति मिलती है।' ऐसा शास्त्र-वचन है और एक सिद्ध महात्माके जीवनमें घटित उपर्युक्त घटनाएँ इस सत्यका ज्वलन्त प्रमाण है। आज भी यदि श्रद्धा, भक्ति और विश्वासके साथ ऐसे कार्योंमें गीतापाठ, गायत्रीजप, गङ्गास्नान, गया-श्राद्ध और गोसेवा की जाय तो निश्चय ही मुक्ति मिलती है। किंतु उपयोगका वास्तविक कार्य होना चाहिये—आधिकारिक, श्रद्धासम्पन्न, शुद्ध सदाचारी व्यक्तियोंके द्वारा निःस्वार्थभावसे।

'गीता' वाणी कृष्णकी मंत्र-मंत्रमें ज्ञान।
'गङ्गा' मुक्ति-प्रदायिनी, पावन स्रोत महान॥
पावन स्रोत महान मंत्र, गायत्री, सुखकर।
'गयाश्राद्ध'की महिमा सब श्राद्धोंसे बढ़कर॥
'गोसेवा' अति पुण्य है, पाँच विभूति प्रधान।
साधन हैं ये मुक्तिके, घटना सत्य प्रमाण॥

परकाय-प्रवेश—सिद्धान्त, प्रक्रिया एवं प्रमाण

(लेखक—श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी 'आनन्द', एम० ए० [हिंदी, संस्कृत], बी० एड०, व्याकरणाचार्य)

परकाय-प्रवेशकी सिद्धि यौगिक सिद्धियोंमें अन्यतम है। इस सिद्धिकी प्रक्रिया, इसके सिद्धान्त एवं उदाहरण न केवल योग-ग्रन्थोंमें ही प्राप्त होते हैं, प्रत्युत महाभारत, पुराण, रामायण आदि ग्रन्थोंमें भी प्राप्य हैं।

परकाय-प्रवेशके सिद्धान्त—

(१) अन्नमय कोशसे प्राणमय कोशके उद्गमन (Projection) की क्रियाद्वारा ही परकाय-प्रवेशकी सिद्धि होती है।

(२) चित्तवृत्तियोंके निरोधके बिना अन्नमय कोशसे प्राणमय कोशका जाग्रत् उद्गमन सम्भव नहीं है।

(३) चित्तवृत्तियोंका निरोध मनःसंयमन या प्राण-संयमनद्वारा सिद्ध होता है; अतः परकाय-प्रवेशार्थ प्रथमतः चित्तवृत्तियोंका किसी भी प्रक्रियाद्वारा निरोध करना आवश्यक है।

(४) प्राच्यविधिसे परकाय-प्रवेशकी साधना करनेमें तत्त्वसाधन भी आवश्यक है और साथ ही खेचरी मुद्रा भी।

(५) जीवन-तन्तु (Silver Cord या Astral Cord) पर स्वामित्व प्राप्त किये बिना इस प्रक्रियामें सफलता असम्भव है।

(६) 'बन्धनके कारणका शैथिल्य' (पतञ्जलि) परकाय-प्रवेशका प्रथम सिद्धान्त एवं प्रक्रिया है।

(७) 'प्रचार-संवेदन' (पतञ्जलि) परकाय-प्रवेश-का द्वितीय सिद्धान्त एवं प्रक्रिया है।

(८) आत्मा एवं चित्त व्यापक हैं; किंतु धर्माधर्मरूप सकाम कर्मके द्वारा दोनों षाट्कौशिक शरीरमें परिबद्ध रहते हैं। पर चित्तवृत्तियोंके निरोधके द्वारा दोनोंके बन्धनका कारण शिथिल हो जाता है और परिणामस्वरूप चित्तको विषयोंमें प्रवाहित करनेवाली 'चित्तवहा' नाड़ीके स्वरूप एवं उसके परिभ्रमण-मार्गका भी ज्ञान हो जाता है। अतः बन्धनोंसे मुक्त होनेके कारण व्यापक चित्त 'चित्तवहा' नाड़ीके परिभ्रमण-मार्गको जानकर किसी भी व्यक्तिके शरीरमें प्रविष्ट हो सकता है।

(९) आधुनिक 'Para-Psychology' एवं normal Psychology' ('परा-मनोविज्ञान' एवं मान्य मनोविज्ञान') भी स्थूल मनके अतिरिक्त व्यापक मन'में विश्वास करने लगा है। यह व्यापक मन' निरोधसम्पन्न चित्त ही है।

(१०) प्रस्तुत साधना करनेके समय नियमित अ सत्त्वसंशुद्धि, नियमितचर्या, ब्रह्मचर्य, सत्त्ववृत्ति, ए सेवन, अन्तःपावित्र्य, मौन-साधन, मनःसंयम, मनःप्र लक्ष्यपर एकाग्रता एवं नियमित ध्यान आदिकी अनि चित्तके शुद्धिकरणके लिये की जाती है, जिससे बि बन्धनोंसे मुक्त हो सके।

परकाय-प्रवेशकी प्रक्रिया—

(१) महर्षि पतञ्जलिके कथनानुसार—

बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य पर रावेशः। (३ । ३

अर्थात् 'धर्माधर्म सकाम कर्मरूपी बन्धनोंके कार शिथिल करनेसे एवं इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें चि प्रवाहित करनेवाली चित्तवहा नाड़ीके स्वरूप एवं चि परिभ्रमण-मार्गको ज्ञात कर लेनेसे, साधकके चित्त (शरीर) का दूसरे जीवित या मृत व्यक्तिके शरीरमें अ हो जाता है।

(२) 'भोजवृत्ति'के मतानुसार—

'समाधिद्वारा धर्माधर्मरूप बन्धनके कारणको शि करके एवं चित्तको विषयोंमें प्रवाहित करनेवाली नाड़ स्वरूप जानकर योगी किसी भी प्राणीके शरीरमें अपने चि प्रवेश करा सकता है; क्योंकि उसे अपने चित्तके प्रचा ज्ञान होते ही अन्य प्राणियोंके चित्त-प्रचारका भी ज्ञान हो जाता है।

'चित्तके साथ ही अन्य सभी इन्द्रियाँ भी दूस शरीरमें प्रविष्ट हो जाती हैं, जैसे सम्राज्ञी मक्षिकाके पी हो पीछे अन्य मक्षिकाएँ भी अनुसरण किया करती हैं।'

(३) 'व्यासभाष्य'के मतानुसार—

धारणा-ध्यान-समाधिके अभ्याससे सकाम कर्मोंका त्याग करके चित्तके बन्धनका निराकरण किया जाता है। बन्धनोंके कारणको शिथिल करनेपर, नाड़ियोंमें संयम करके चित्तके उनमें आवागमन करनेके मार्गका ज्ञान किया जाता है और इस प्रकार चित्त-बन्धके कारणोंके शिथिल हो जानेपर और नाड़ियोंमें चित्तके परिभ्रमण करनेके मार्गका ज्ञान हो जानेपर योगी अपने शरीरसे इन्द्रियोंसहित चित्तको निकालकर दूसरे प्राणीके शरीरमें प्रविष्ट कर सकता है।

'तत्त्ववैशारदी' एवं 'योगवार्तिक' आदि ग्रन्थोंमें भी परकाय-प्रवेशकी यही प्रक्रिया दी हुई है।

(४) 'योगवासिष्ठ'के मतानुसार—

रेचक प्राणायामके अभ्यासरूप युक्तिसे मुखद्वारा १२-१२ अङ्गुल परिमित देशमें प्राणको चिरकालतक स्थिर रखनेपर योगी अन्य शरीरमें प्रवेश कर सकता है।

(५) शौनकऋषिके कथनानुसार—

सुषुम्णादिसप्तसूक्तानि जपेच्चेद्विष्णुमन्दिरे।
मार्गशीर्षेऽयुतं धीमान् परकायं प्रवेशयेत्॥
निवर्तध्वं जपेत् सूक्तं परकायाच्च निर्गतः।

परकाय-प्रवेश एवं कायोद्गमनकी सिद्धिके लिये सुषुम्णादि सप्तसूक्त एवं 'निवर्तध्वम्'से प्रारम्भ होनेवाले सप्तसूक्तोंका पाठ करना चाहिये। शौनकऋषिके कथनानुसार परकाय-प्रवेशकी साधना मार्गशीर्ष मासमें प्रारम्भ की जानी चाहिये और ग्यारह मासोंके अनन्तर परकाय-प्रवेशकी साधना फलवती होती है।

(६) श्रीशंकराचार्यके कथनानुसार—

श्रीत्र्यम्बक भास्करके कथनानुसार भगवान् शंकराचार्यकी दृष्टिमें 'यथाभिध्यानाद्वा'के अनुसार ध्यान करनेसे भी परकाय-प्रवेशकी सिद्धि होती है।

(७) भगवान् शंकराचार्यके कथनानुसार द्वितीय विधि—

भगवान् शंकराचार्यके कथनानुसार निम्न यन्त्रके साथ 'सौन्दर्यलहरी'का ८७ क्रमाङ्कका श्लोक नित्यप्रति एक सहस्र बार जपनेपर परकायप्रवेशकी सिद्धि प्राप्त होती है। यन्त्र निम्न है—

(८) तन्त्रमतानुसार—

तन्त्रशास्त्रवेत्ता परकाय-प्रवेशकी साधना तत्त्वसाधनकी प्रक्रियासे भी मानते हैं। प्रातःवेलामें आकाशतत्त्वके उदय होनेकी स्थितिमें १२ घण्टेतक सततरूपसे आकाशतत्त्वका संयम करना पड़ता है। आकाशतत्त्वमें स्थायित्व आनेपर खेचरीमुद्राकी साधना करनी पड़ती है। खेचरीमुद्राकी सिद्धि होनेपर परकाय-प्रवेशकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

(९) पाश्चात्त्य विधिके अनुसार—त्रिकुटीपर त्राटक करनेकी विधि—

परकाय-प्रवेशकी साधनाके लिये भ्रूमध्यमें त्राटक करते हुए यह भावना करनी पड़ती है कि 'मैं एवं मेरा सूक्ष्मशरीर इस स्थूलशरीरसे बाहर जा रहा है।' अपनी प्रबल इच्छाशक्तिसे नियमित रूपमें प्रतिदिन यह भावना करते हुए ध्यान करनेसे यथासमय सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरसे प्रोद्गमित हो जाता है और सूक्ष्मशरीरके स्थूलशरीरसे बहिर्गमनकी क्रिया सम्पन्न हो जानेपर जिस प्रकार अपना सूक्ष्मशरीर अपने स्थूलशरीरमें प्रविष्ट हो सकता है, उसी प्रकार किसी भी प्राणीके शरीरमें प्रविष्ट किया जा सकता है।

(१०) पाश्चात्त्य विधिके अनुसार—निद्रावृत्तिका संयमन—

पाश्चात्त्य परलोकतत्त्ववेत्ताओंके कथनानुसार स्वप्न-नियन्त्रणकी साधनाका अभ्यास करनेपर भी सूक्ष्मशरीरका स्थूलशरीरसे प्रोद्गमन होता है।

साधक साधनारम्भमें यह सोचकर सो जाता है कि 'मैं आज अमुक स्वप्न देखूँगा या अमुक व्यक्तिसे मिलूँगा या अमुक स्थानपर जाऊँगा या अमुक कार्य करूँगा।'

पाश्चात्य परलोक-तत्त्वज्ञोंमें मि० मुलडोन, मोशिये वेल, मि० आलिवर फास्क फेंचमैन, प्रोफेसर निकोलस-, कैरिंगटन हैवरहिलमाग, डा० माल्थ एवं जेल्ट, काट, मैडम ब्लावैट्स्की, सर आलिवर लाज आदि गत व्यक्ति हैं। पाश्चात्य महिला अलेक्जेंड्रा डेविड भी लामाओंके साथ तान्त्रिक अभ्यास करती हुई प्रक्रियामें पारङ्गत हो गयी थीं।

(११) यूनानी पद्धतिके अनुसार—

परकाय-प्रवेशकी प्रक्रियाका यूनानी पद्धतिमें विशेषतः ायापुरुष' या 'हमजाद'की साधनासे सम्बन्ध है। ायापुरुषकी साधनाकी अनेक विधियाँ हैं—

(१) जलमें दिखायी पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बकी त्रिकुटीपर त्राटक।

(२) तेलमें दिखायी पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बकी त्रिकुटीपर त्राटक।

(३) धूपमें दिखायी पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बकी त्रिकुटीपर त्राटक।

(४) दीपकके प्रकाशमें दिखायी पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बकी त्रिकुटीपर त्राटक।

(५) चन्द्रिकाके प्रकाशमें दिखायी पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बकी त्रिकुटीपर त्राटक।

(६) घृतमें प्रतिबिम्बित अपनी प्रतिच्छायाकी त्रिकुटीपर त्राटक।

मृतशरीरमें प्रवेश करके कामशास्त्रका अध्ययन किया था।

—'शंकरदिग्विजय'

(२) राजा शिखिध्वजको समाधिसे जाग्रत् करनेके लिये उनकी पत्नी चूडाला अपने शरीरको वहीं छोड़कर स्वामीके अन्तःकरणमें प्रविष्ट हो गयी। वहाँ पहुँचकर उसने सत्त्वसम्पन्न स्वामीकी चेतनाको स्पन्दित किया और लौटकर पुनः अपने शरीरमें प्रविष्ट हो गयी।

—योगवासिष्ठ

(३) राजा पद्मके मृत शरीरमें राजा विदूरथके सूक्ष्मशरीरका प्रवेश हुआ और राजा पद्म जीवित हो उठे।

—योगवासिष्ठ

(४) तत्त्वज्ञानका श्रोता शुक शैवास्त्रसे भयभीत होकर व्यासकी पत्नीके उदरमें प्रविष्ट हो गया। शुकके पार्थिव शरीरका किसीके उदरमें प्रविष्ट होकर १२ वर्ष न निकलना शरीरशास्त्रकी दृष्टिसे असङ्गत है; अतः इसका अर्थ यही है कि शुकका जीवात्मा ही व्यासपत्नीके शरीरमें प्रविष्ट हुआ था।

(५) 'गोरक्षविजय'के अनुसार—गौरी मक्षिकाका रूप धारण करके गोरखनाथके उदरमें प्रविष्ट हो गयी थीं।

—'गोरक्षविजय'

(६) 'नाथचरित्र'के अनुसार—मत्स्येन्द्रनाथ पर्यटनको निकले थे। उनके एक नगरमें प्रविष्ट होनेपर उन्हें एक मृत राजाका शव मिला, जिसे परिचर जलाने जा रहे थे। मत्स्येन्द्रनाथने अपने शरीरकी रक्षाका भार शिष्योंपर छोड़कर उस मृत राजाके शरीरमें प्रवेश कर लिया एवं वे बहुत दिनोंतक भोग-विलास

करते रहे। —'नाथचरित्र'

(७) 'नाथ-पुराण'के अनुसार—मत्स्येन्द्रनाथ कामरूपमें तप करते समय किसी मृत राजाके शरीरमें प्रविष्ट होकर उसकी रानी मङ्गलाके साथ भोग करने लगे। —नाथपुराण

(८) स्वामी शिवानन्दके कथनानुसार—जसवीर नामक मृत बालकके शरीरमें शंकरलाल त्यागीके मृत युवा पुत्रके सूक्ष्मशरीरके प्रवेश होनेसे वह बालक जी उठा, किंतु वह अपनेको त्यागीजीका पुत्र मानता रहा, न कि अपने सगे पिताका।

स्वामी शिवानन्दने इसी प्रकारकी अनेक घटनाओंका वर्णन अपनी पुस्तक "What becomes of the Soul after death ?" नामक ग्रन्थमें दिया है।

राजस्थान विश्वविद्यालयके परामनोविज्ञानने भी ऐसी सैकड़ों घटनाओंका अध्ययन करके इस तथ्यकी प्रामाणिकता सिद्ध कर दी है। इसके अतिरिक्त 'Spirit Possession' एवं 'Double Personality' 'प्रेतावेश' एवं 'द्विविध व्यक्तित्व' के सैकड़ों आधुनिक उदाहरणोंने 'परकाय-प्रवेश'को आधुनिक भौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे भी प्रमाणित सिद्ध कर दिया है।

पुनर्जन्म और परकाया-प्रवेश

(१)

(लेखक—श्रीबलरामजी शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

पुनर्जन्म और परकायाप्रवेश दोनों दो तथ्य हैं। इन दोनोंका सम्बन्ध एक ही जीवात्मासे अवश्य हो सकता है। हमारे शरीरके दो रूप माने गये हैं। एक रूप स्थूलशरीरका है, जो प्रत्यक्ष दीखता है। इसका दूसरा रूप भी है जो सूक्ष्म-शरीरके नामसे प्रख्यात है। दूसरा रूप सर्वसाधारणको सर्वदा दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रोंने यत्र-तत्र उस शरीरका आकार-प्रकार इसी शरीरके आकार-प्रकार-का बताया है; किंतु लम्बाई अङ्गुष्ठमात्र ही मानी गयी है। कुछ विद्वानोंने उसका रूप ऐसा झीना माना है कि उस झीने रूपमें प्रकाश आर-पार हो सकता है। जीवात्मा इस स्थूलशरीरको छोड़नेके पश्चात् उसी शरीरसे यात्रा करके, किसी गर्भमें प्रवेश करके पुनर्जन्म ग्रहण करता है और उसी शरीरके द्वारा सिद्ध योगीजन परकायाप्रवेश भी करते हैं।

योगवासिष्ठमें महर्षि वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीको 'परकाया-प्रवेश' की विधि समझाते हुए बताया था—'राम! जिस तरह वायु पुष्पमेंसे गन्ध खींचकर उसका घ्राणेन्द्रियसे सम्बन्ध कर देता है, उसी तरह योगी रेचकके अभ्यासरूप योगसे कुण्डलिनीरूप घरसे बाहर निकलकर ज्यों ही दूसरे शरीरमें करनेवाला पुरुष जलपूर्ण कुम्भसे जिस वृक्ष और लताको सींचनेकी इच्छा करता है, उसे ही सींचता है, वैसे ही अपनी रुचिके अनुसार देह, जीव, बुद्धि, स्थावर और जङ्गम सबमें उनकी सम्पत्तिका भोग करनेके लिये जीवको प्रविष्ट किया जाता है। उक्त प्रणालीसे परदेहमें सिद्धि-श्रीका उपभोगकर स्थित हुआ योगी यदि अपना पहला शरीर विद्यमान रहा तो उसमें पुनः प्रविष्ट हो जाता है और यदि न रहा तो दूसरे शरीरमें जबतक उसकी रुचि रहती है, तबतक उसमें प्रविष्ट होकर स्थित रहता है। योगरूप ऐश्वर्य-से सम्पन्न चेतन जीवात्मा सदा प्रकट दोषशून्य परमात्म-तत्त्वको जानकर जो भी कुछ जैसा चाहता है, वैसा ही उसे तत्काल प्राप्त कर लेता है। वास्तवमें अनावरणतारूप उत्तमपद ही यथार्थ पद है—यह अनुभवी लोग कहते हैं।' (देखिये, योगवासिष्ठ, गीताप्रेस, पृष्ठ ४४७-४४८)

योगी वसिष्ठजीने उपर्युक्त प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीको परकायाप्रवेशकी साधनाको समझाया। इस प्रसङ्गसे अवगत होता है कि 'परकायाप्रवेश' योगसाधनाकी महान् सिद्धि है। यह सिद्धि सबको नहीं प्राप्त हो सकती। इसके लिये महान् प्रयत्नकी आवश्यकता पड़ती है। 'रेचक' प्राणायाम-

श्रीशंकराचार्यका परकाया-प्रवेशके लिये शरीर-त्याग

श्रीशंकराचार्यका राजाके शरीरमें प्रवेश

[पृष्ठ ५२८

शास्त्रार्थ समाप्त होनेपर मण्डनमिश्र और उनकी धर्मपत्नी दोनों आचार्य शंकरके शिष्य हो गये ।

लिङ्गशरीर जीवका प्रेमीके पास जाना

(क)

सद्योमृत प्राणीका प्रेतात्मा या लिङ्गशरीर अपने प्रेमी या जिसमें उसका चित्त लगा रहता है उसके पास पहुँच जाता है । यह कथन बिलकुल सत्य है । मुझे भी इसका एक बार अनुभव हो चुका है । मेरे पिताजी जब मरे तो मैं काशीमें 'सन्मार्ग'में कार्य करता था । उस समय मेरा अध्ययन प्रायः समाप्त था । पिताजीका मेरे ऊपर अधिक स्नेह था । अधिक स्नेह होनेके कई कारण थे । सन् १९४६ के फाल्गुन कृष्ण षष्ठीको हृदयकी गति रुक जानेके कारण सहसा वे मर गये । उनकी मृत्यु हो जानेपर उस दिन मेरा चित्त सहसा चञ्चल हो गया । मैं छुट्टी लेकर कार्यालयसे अपने निवासस्थानपर चला आया और दिनभर उदास-मन होकर बैठा रहा । सायंकाल सहसा मेरे ज्येष्ठ भाई मेरे पास पहुँचे । उनको देखते ही मेरा मन उद्विग्न हो गया । पिताकी मृत्युका समाचार सुनकर मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया । मैं उस विपत्तिका समाचार सुननेको तैयार नहीं था । अन्तमें अपने कर्तव्यको निभाने मैं मणिकर्णिकाघाट पहुँचा । पिताजीका शव वहाँ आ चुका था । मैं उनके अन्तिम समयमें उनका दर्शन न कर सका । उनका चित्त मुझे देखनेके लिये लालायित था । मेरे घरसे रेलवे स्टेशन और तारघर भी बहुत दूर थे । पिताजी प्रातः पाँच बजे मरे थे, अतः घरके लोगोंने शवको काशी ले आना ही उचित समझा था । मणिकर्णिकाघाटपर जब मैं पिताजीके शवमें आग लगानेके लिये प्रदक्षिणा करने लगा तो मुझे प्रतीत हुआ कि पिताजी स्पष्ट कह रहे हैं—'देखो, घबराना नहीं; अपने भाइयों और परिवारको भलीभाँति सँभालना । तुम्हारे भाइयोंको किसी प्रकारका दुःख न हो ।' और यह सुनकर मैं उस समय कुछ विशेषरूपसे समझ नहीं सका । पिताजी मरनेके पूर्व पूर्ण स्वस्थ थे । उस दिन श्मशानपर चिताके पास मैंने जो अनुभव किया या सुना, मुझे भूलता ही नहीं ।

(ख)

एक उद्भ्रान्त व्यक्तिने जाग्रत् अवस्थामें अपने वृद्ध भाईको, जो एक अफसर था, खाकी वर्दीमें देखा । उसका चेहरा पीला था और वह विदा ले रहा था । पूछनेपर कहा—'मुझे गोली लगी है ।' 'कहाँ गोली लगी है ?' पूछनेपर उसने बताया—'फेफड़ेमें' और आगे पूछनेपर छाया गायब हो गयी । देखनेवाला स्वप्न नहीं देख रहा था, बल्कि पूरी तरहसे जाग रहा था । उस समय घड़ीमें चार बजकर दस मिनट हुए थे । दो दिन बाद समाचार मिला कि वह अफसर छाया दीखनेकी रातको ग्यारह और बारहके मध्यमें मारा गया था ।

ऊपर जो चूडाला और श्रीआदिगुरु शंकराचार्यके परकायाप्रवेशकी चर्चा की गयी है, उसपर अविश्वास करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । इस युगमें ही ऐसे लोग हैं, जो परकायाप्रवेश तो नहीं, किंतु परचेतनाको उद्वेलित करके अपने नियन्त्रणमें कुछ देर रखकर दर्शकोंको मन्त्र-मुग्ध कर देते हैं । ऐसे कई लोग भारतमें घूम-फिरकर अपना प्रदर्शन भी करते रहते हैं । भारतके सिद्धयोगी तो प्रदर्शनमें विश्वास नहीं करते; न तो वे आत्मप्रदर्शन ही करना चाहते हैं । पाठकोंकी जानकारीके लिये २४ जुलाई सन् १९६६के 'धर्मयुग'में प्रकाशित 'परामनोवैज्ञानिक' फ्रांसीसी युवक पाल गोल्डीन द्वारा प्रदर्शित कुछ कृत्योंका उल्लेख करना चाहता हूँ । श्रीपाल गोल्डीन फ्रांसीसी नवयुवक हैं और वे भारत-भ्रमण करने आये थे । 'धर्मयुग'में श्रीप्रमोदशंकर भट्टने एक लेखमें उनके प्रदर्शनका विवरण प्रकाशित कराया था । अपने लेखमें उन्होंने लिखा है—(१५ अगस्त, माटुंगा, बम्बईका विशाल षण्मुखानन्द हाल ।)

अखबारमें यह पढ़कर कि पाल गोल्डीन अपनी छठी शक्तिका प्रदर्शन करेंगे, असंख्य लोग इसलिये वहाँ आये कि देखें कि यह छठी शक्ति क्या चीज है ! ठीक साढ़े बारह बजे दोपहरको हालके दरवाजे बंद कर दिये गये । हाल खचाखच भरा था । मञ्चपर काला सूट पहने, हाथमें एक तारका माइक लिये एक नवयुवकने प्रवेश किया । यही थे—पाल गोल्डीन । आते ही इन्होंने सबका अभिनन्दन किया और बोले 'मैं पाल गोल्डीन हूँ फ्रांसका रहनेवाला । न कोई जादूगर हूँ और न कोई हिप्नोटिस्ट । मैं आत्मामें विश्वास करता हूँ और आज उसी शक्तिका प्रदर्शन आपलोगोंके सामने

चौ० [illegible] जाट, जो [illegible]
सुपुत्र हैं, उनके एक लड़का हुआ, जिसका
शुभ नाम उन्होंने जसवीर रक्खा । जिस समय यह
जसवीर लड़का लगभग ३ वर्ष ४ महीनेका हुआ तो
वह अकस्मात् बीमार हो गया । उसके चेचक निकली ।
बहुत इलाज कराया गया, पर लाभ कुछ नहीं हुआ ।
अन्तमें लड़का चेचककी बीमारीमें मृत्युको प्राप्त हो गया।
वह रात्रिमें मरा था । सबने यही निश्चय किया कि रात्रि
अधिक हो गयी है, इसलिये प्रातःकाल ही इसे मिट्टी देनेको
ले जाना उचित होगा । जसवीरके मृतक शरीरको ढँककर
छोड़ दिया गया ।

जिला मुजफ्फरनगरके ही एक दूसरे ग्राम बहेड़ीके निकट
रोहाना मिलमें चौधरी शंकरलाल त्यागीके एक लड़का
शोभाराम त्यागी था, जिसकी आयु थी उस समय
लगभग २३-२४ वर्ष । शोभाराम त्यागीका विवाह हो
चुका था । उसके दो लड़कियाँ और एक लड़का था । एक
बारात मौजे केन्दकीसे ग्राम निर्माण, जिला मुजफ्फरनगरको
जा रही थी तो उसमें बहेड़ीके शंकरलाल त्यागीका लड़का
यह २४ वर्षीय शोभाराम त्यागी अपना रथ हाँककर ले जा
रहा था । अकस्मात् शोभाराम त्यागी उस रथसे गिरा और
उस रथका पहिया उसकी गरदनपर उतर गया । अधिक
चोट लगनेके कारण उसके नाक-मुँहसे रक्त बहने लगा ।
सबको बड़ी चिन्ता हो गयी । शोभाराम बिल्कुल बेहोश
हो चुका था । उसे बेहोशीकी हालतमें ही रथमें डालकर

सबको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, बड़ी प्रसन्नता हुई
कि जसवीरके मृत पड़े शरीरमें अकस्मात् जीवनका संचार हो
गया । वह धीरे-धीरे बिल्कुल स्वस्थ हो गया । उस समय
तो सबने यही समझा कि जसवीर जिन्दा हो गया है ।
जसवीरके शरीरसे गया हुआ जीव पुनः लौट आया है, पर
वास्तवमें यह बात बिल्कुल नहीं थी । बादमें सबको यह
देखकर बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि जसवीरका मृत
शरीर तो वास्तवमें जिन्दा हो गया है, पर उसमें जसवीरका
आत्मा नहीं है । आत्मा किसी दूसरे व्यक्तिका घुस बैठा है ।
बात यह थी कि जसवीरका तो यह शरीर था, पर इसमें
आत्मा घुस रहा था बहेड़ीके शोभाराम त्यागीका ।

बालक जसवीरके मृत-शरीरमें शोभाराम त्यागीका
आत्मा घुस जानेपर उसको अपने पिछले जन्मकी सब बातें
याद रहीं । उसे जसवीरके एक ही छोटे-से शरीरमें अपने
२४ वर्षके पुरुषको इस प्रकार घुसा देखकर और त्यागी
ब्राह्मणसे जाटके घरमें आया हुआ देखकर, अपने बहेड़ी गाँवमें
छोड़े स्त्री, लड़के, लड़की तथा अन्य घरवाले सबको छूटा
देखकर बड़ा दुःख हो रहा था । उसने यह कहा—'मैं तो
त्यागी ब्राह्मण हूँ और तुमलोग जाट हो । मैं तुम्हारे घरका
खाना नहीं खाऊँगा । तुम्हारे घरमें मिट्टीकी हाँडियोंमें जो
साग बनता है, मैं उसे नहीं खाऊँगा; मुझे तो ब्राह्मणोंके
घरका भोजन मिलना चाहिये ।' अब तो घरवालोंको बड़ी
चिन्ता हुई । उन्होंने यह सोचकर कि यदि इसने कुछ

नहीं खाया-पीया तो भूखा प्यासा मर जायगा; इसलिये उसे निराल नामक गाँवके पं० हुकमचन्दकी पत्नी ब्राह्मणी, जो रसूलपुर जाटानमें ही आयी हुई थी, उसके द्वारा खानेका प्रबन्ध कर दिया। वर्षोंतक बराबर यह ब्राह्मणी ही उसे अपने हाथोंसे रोटी बनाकर खिलाती रही। अब न तो जसवीर जाटोंके घरोंकी रोटी खाता था और न मिट्टीकी हाँडीका औटा हुआ दूध पीता था। बड़ी ही पवित्रताका ध्यान रखता था। वह बड़ा ही उदास-सा रहा करता था। यदि मिट्टीकी हाँडीके बदलेमें पीतलके बरतनोंमें दूध औटा-कर दिया जाता था तो उसे वह पी लिया करता था।

एक दिन लगभग चार वर्षके पश्चात् जसवीरकी माँ राजकली जाटनी उसे अपने साथ लेकर अपने मैके जा रही थी। मार्गमें वह स्थान पड़ता था, जहाँ कि शोभारामके रूपमें रथसे गिरकर उसकी मृत्यु हुई थी; वहाँसे दो रास्ते जाते थे। एक तो ग्राम वहेड़ीको और दूसरा रास्ता ग्राम परईको। जसवीर लड़केने अपनी माँसे कहा—'माँ! मैं जब शोभाराम था, तब मैं यहाँपर रथसे गिरा था। हमारे घरका रास्ता तो उधर (वहेड़ी ग्रामकी ओर संकेत करके कहा) को है। माँ बच्चेकी बातको यों ही झूठी समझकर उसका हाथ पकड़कर अपने मैके परईको चल दी।

मार्च सन् १९५८ की बात है कि केन कोआपरेटिव

अबतककी सारी घटना सुना दी। जगन्नाथने आश्चर्यचकित होकर पूछा—'तू फिर यहाँपर कैसे आ गया?' तो उत्तरमें जसवीरने कहा—'गिरकर मरनेके बाद मुझे और कोई खाली जगह नहीं मिली। मैं इस शरीरको खाली देखकर इसमें घुस गया।'

जगन्नाथ अपने गाँव वहेड़ी गया तो उसने पूरी-की-पूरी घटना गाँववालोंको सुनायी। गाँवमें जिसने भी सुना, वही आश्चर्यचकित रह गया। लड़केके ताऊ-चाचा आदि सभी घरवाले गाँव रसूलपुर जाटान गये। लड़के जसवीरने तुरंत सबको पहचान लिया। सबको नाम ले-लेकर 'राम-राम' किया। लड़केके सम्बन्धियोंने उससे अनेकों प्रश्न किये। उसने बड़े संतोषजनक उत्तर दिये। वहेड़ीसे आनेवाले उन ग्रामीणोंमेंसे एक व्यक्तिने, जो कि उसी रथमें सवार था, जिस रथमेंसे गिरकर शोभारामकी मृत्यु हुई थी, बालक जसवीरसे पूछा—'मेरा नाम क्या है?'

जसवीरने कहा—'मैं तुम्हारा नाम तो भूल गया हूँ, किंतु मुझे इतना अवश्य याद है कि जिस समय मैं उस रथसे गिर गया था तो तुमने ही मुझे उस समय अपनी गोदमें लिटाये रक्खा था।' यह सुनकर वह आश्चर्यचकित हो गया। उसने सबके सामने यह स्वीकार किया कि वास्तवमें मैंने ही इसे रथमेंसे गिरनेपर रथमें लिटाया

अनादिकालसे 'मानव' यह प्रश्न करता रहा है—'मनुष्य या मानव क्या है ? वह कहाँसे आता है और कहाँ जाता है ? उसका प्रारम्भ इस जन्मसे होता है अथवा जन्मसे पहले भी उसका अस्तित्व था ? यदि उसका कोई अस्तित्व था तो किस रूपमें ? क्या मृत्यु ही मानवीय जीवनकी अन्तिम परिणति है ?' सी० फ्लेम्मरियन, ई० डी० वाकर, पैस्कल डब्ल्यू० लुटोस्लावस्क, व्हाइट-जैसे महान् लेखक इस सवालपर बहुतसे ग्रन्थ लिख चुके हैं । हो सकता है कि इन विचारकोंके सिद्धान्त बहुत अधिक व्यावहारिक न मालूम पड़ें । संसारके किसी भी विज्ञानमें अभीतक इस प्रकारके रहस्यपूर्ण प्रश्नोंको सुलझानेके लिये किसी माध्यमका आविष्कार नहीं हो सका है ।

मैं अपने विद्यार्थी-जीवनसे ही इस विषयमें गहरी दिलचस्पी लेता रहा हूँ । अतः इस विषयमें मैंने बहुत-से विद्वानोंके ग्रन्थोंका अध्ययन किया, जिन्होंने मेरे मनपर गहरा असर डाला । स्वभावतः मैं स्वीकार करने लगा कि सम्भवतः यह एक सचाई हो, पर मैं इस बारेमें पूरे निश्चयपर नहीं पहुँच सका ।

समय बीतता गया । मैं एक विद्यार्थीके जीवनसे फौजी जीवनमें प्रविष्ट हुआ । सैनिक-जीवनमें मैं अनुशासन, शिष्टाचार तथा सत्ता आदिके प्रति आकर्षित होने लगा । इतनेपर भी अन्तश्चेतनापर इस प्रकारकी सामग्री अज्ञात रूपसे एकत्र होती रही, जिसे प्रज्वलित करनेके लिये एक छोटी-सी चिनगारीकी ही जरूरत थी ।

मुर्दा शरीरमें आत्माका प्रवेश

मेरा खयाल है कि यह घटना १९३९ के आसपासकी है । आसाम-बर्माकी सरहदपर एक नदीके किनारे मैं कुछ अफसरोंके साथ एक फौजी योजना बनानेमें संलग्न था । नदीके दूसरे किनारेपर घना जंगल था और बीचमें नदीका गहरा नीला जल शान्तिसे बह रहा था । इसी बीच काफी दूरीपर नदीके पानीमें हम सबने कोई चीज बहती देखी । उत्सुकता मिटानेके लिये मैंने एक ताकतवर टेलिस्कोप (दूरवी-क्षणयन्त्र) लिया और सामने देखा । वह नवयुवककी लाश थी, जिसे नदीसे बाहर निकालनेके लिये एक सफेद दाढ़ी-वाला, अस्थि-कंकाल मात्र बूढ़ा आदमी कोशिश कर रहा था । साथी अफसरोंका ध्यान खींचे जानेपर उन्होंने भी टेलिस्कोपका प्रयोग किया । हम सबने देखा कि उस बूढ़े आदमीने लाशको बाहर निकाला और उसे वह नजदीकके एक पेड़के पीछे ले गया । कुछ समय तक हम बारीकीसे देखते रहे । फिर हमने आश्चर्यसे देखा कि वह लाश, जिसे हम मरा हुआ समझ रहे थे, उसी गीली पोशाकमें एक जीवित आदमीकी तरह चलती जा रही थी । मैं हक्का-बक्का रह गया और मैंने तुरंत सीटी बजायी । इसपर मेरे कुछ आदमी आ गये । उन्हें उस व्यक्तिको पकड़नेका हुक्म दिया गया, जो कुछ मिनट पहले ही एक लाशके रूपमें था ।

उस आदमीको दफ्तरमें मेरे सामने पेश किया गया । मैंने उससे पूछा—'तुम कौन हो ? कुछ समय पहले तुम एक मुर्दा आदमीके रूपमें बहे जा रहे थे और अब तुम

ज़िन्दा हो। यह सब क्या रहस्य है ? वह बूढ़ा आदमी कहाँ गया ?' इसके जवाबसे मैं अचम्भेमें रह गया। उसने कहा—'वह स्वयं बूढ़ा आदमी है।' अधिक सवाल-जवाब करनेपर उसने रहस्योद्घाटन किया कि 'वह योग जानता है। कड़ी तपस्या करनेसे वह ऐसा तरीका जान गया है, जिससे वह शरीर बदल सके। वह अपनी इच्छासे आदमियों या प्राणियोंके शरीरमें अपने आत्माको प्रविष्ट करा सकता है; परंतु एक जीवित व्यक्तिके शरीरमें आत्माका प्रवेश पाप है। इसलिये बूढ़ा होनेपर जब वह किसी नवयुवककी लाश देखता है, तब वह उसमें अपने आत्माको प्रविष्ट कर देता है; क्योंकि बूढ़े शरीरसे चलना-फिरना भी कठिन हो जाता है।' मेरे लिये यह एक चमत्कार था। मैं इसपर विश्वास न कर सका। मैंने पूछा—'उस बूढ़े आदमीका शरीर कहाँ है ?' मुझे बतलाया गया कि 'उस पेड़के पीछे वह निर्जीव शरीर पड़ा है।' मेरे हुक्मपर वह लाश लायी गयी और वास्तवमें यह चमत्कार एक निर्णीत तथ्य बन गया। मैंने उस नवयुवकको अपने यहाँ एक मेहमानके रूपमें ठहरनेका आमन्त्रण दिया; परंतु मुझे खेद है कि उसने उसी रातको वह ठिकाना छोड़ दिया और इसके बाद मैं उसका पता लगानेमें असमर्थ रहा।

उक्त घटनाने मुझे आत्माके रहस्यको जाननेके लिये बेचैन बना दिया; परंतु वर्षों प्रयत्न करनेपर भी—पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिणमें निरन्तर खोज करनेपर भी मैं उस आदमीका पता नहीं लगा सका। कई वर्षोंतक मैं बड़े विद्वानों, साधुओं और योगियोंसे मिलता रहा। वे योग, वेद तथा गीताके सिद्धान्तोंपर प्रकाश डालते रहे; परंतु कोई भी व्यावहारिक परीक्षणद्वारा इन्हें दिखानेमें समर्थ नहीं हुए। मैं हिंदुओं तथा मुसल्मानोंके बहुत-से तीर्थस्थानोंपर गया, जहाँ बड़ी इज्जतसे मेरा स्वागत किया गया; परंतु इस सबका कोई परिणाम कुछ नहीं निकला।

(ख)

कई वर्ष पूर्व चम्पानाथ नामक एक योगी गरमीके दिनोंमें जम्मूमें आया करते थे। उनका स्थान तवी नदीके किनारे था। वे मुझसे बहुत प्रेम करते थे। योगी निःस्वार्थ, स्वच्छन्द थे और उन्होंने अनेक समय अपने अद्भुत चमत्कार सहज ही दिखलाये थे। उनकी आयु लगभग ७० वर्षकी थी, परंतु शरीर हृष्ट-पुष्ट था। उस समय दो वर्षके बाद हरद्वारसे जम्मू पधारे थे। अब बहुत दुर्बल मालूम पड़ते थे। इस दुर्बलताका कारण पूछनेपर उन्होंने कहा कि 'मुझे एक ऐसे मित्र मिल गये थे, जिन्होंने मद्य पिला दिया और उसीसे मेरा शरीर दुर्बल हो गया। अब मैं इसको बदलना चाहता हूँ।' यह सुन मैंने समझा कि उन्होंने समाधि लेनेका निश्चय किया होगा। एक दिन जब मैं उनके पास अकेला था, तब उन्होंने मुझसे कहा कि 'यदि तुम मेरी एक बात गुप्त रक्खो तो मैं अपने मनकी बात तुमसे कहूँ।' मेरे आश्वासनपर उन्होंने कहा कि 'एक बोतल शराब*, एक कटोरा मांस और एक कटोरा खीर मुझे ला दो।' उनके आज्ञानुसार मैं वे वस्तुएँ लेकर निर्दिष्ट समयपर उनके पास जा उपस्थित हुआ। मुझे देखते ही वे उठ खड़े हुए और मुझे लेकर मुसल्मानोंके कब्रस्तानकी तरफ चले। मध्य रात्रिका समय था। उसी दिन एक मुसल्मान रँगरेजका एक सुन्दर लड़का मरा था। उसी तरुण लड़केकी कब्रके पास योगी महाराज जा खड़े हुए। इसके बाद मुझे कोई छः हाथकी दूरीपर खड़ाकर उन्होंने मेरे चारों ओर एक वर्तुलाकार रेखा खींची और मुझसे कहा कि 'मैं चाहे कितना ही बुलाऊँ, तुम मेरे पास मत आना। जब मैं ये चीजें माँगूँ तो एक-एक कर मुझे दे देना।' फिर उन्होंने कब्रके पासकी जमीन साफ करके और कब्र खोदकर लड़केके शवको साफ की हुई जमीनपर लिटा दिया। कब्रके उत्तरकी ओर थोड़ी जमीन साफ की और वे स्वयं उसपर लेट गये। आध घंटेके बाद वे व्याकुल होने लगे और अब आवाज भी निकलनी कठिन हो गयी। उन्नीस-बीस मिनटके बाद वे चिल्ला उठे और उनके शरीरका हिलना-डुलना सहसा बंद हो गया। इतनेमें उधर लड़केका शव हिलने लगा और थोड़ी ही देरमें उसने नेत्र खोल दिये। उसके नेत्र जलती हुई आगके समान लाल हो गये थे। मैं भयसे हत-ज्ञान हुआ। इतनेमें उस तरुणने या यों कहिये कि उस तरुणके शवने करवट ली और मेरी तरफ हाथ बढ़ाने लगा। हाथ इतना लंबा हुआ कि वह मेरे पास पहुँच गया। मैंने योगीके इच्छानुसार डरते-डरते उसको सब चीजें देनी आरम्भ कर दीं। उन वस्तुओंको खा-पीकर वह लड़का अथवा प्रेत उठ खड़ा हुआ और मुझे अपने पास बुलाने लगा। मैंने योगीकी आज्ञाको स्मरणकर उसी जगहसे कहा—'माफ कीजिये। मैं आपके पास नहीं आ सकता।'

* वाममार्गमें एवं कौलाचारकी उपासनाओंमें मांस-मद्यादिका सेवन होता है, दक्षिण मार्गमें नहीं।

इच्छा-मृत्यु

(१)

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

मृत्यु-विजयिनी भक्तिमती देवी श्रीभिरावाँ बाईजी

[आयी मृत्युको एक मास आठ दिनके लिये लौटा देने तथा ठीक समयपर पद्मासनसे बैठकर भगवद्-
ारण करते हुए देह-त्याग करनेकी विलक्षण सत्य घटना]

(गत जुलाई सन् १९६८ में एक बार सुप्रसिद्ध आशुकवि ब्रह्मर्षि स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी
हाराजने कृपा कर हमारे यहाँ पिलखुवा पधारकर अपने महत्त्वपूर्ण सदुपदेशोंके द्वारा सबको लाभान्वित
ज्या था। एक दिन सत्सङ्गमें मेरे प्रश्न करनेपर उन्होंने कृपापूर्वक जो कहा, उसीका सारांश संक्षेपमें
ोचे दिया जा रहा है। —लेखक)

परम पूजनीया माता श्रीभिरावाँ बाईका जन्म मुल्तान
वर्तमान पाकिस्तान) में सारस्वत ब्राह्मण पं० श्रीप्रभुदयाल-
। शर्माकी धर्मपत्नीकी कोखसे हुआ था। समयानुसार
ापका शुभ विवाह पण्डित श्रीहरनारायण झींगरनजी
हराजके साथ सम्पन्न हुआ। पं० श्रीहरनारायणजी महाराज
त्यन्त सरल, सौम्य, सदाचारी, सात्त्विक विचारोंसे सम्पन्न-
ादा जीवन व्यतीत करनेवाले थे। वे सरकारी नौकरी करते
। श्रीभिरावाँ बाई अत्यन्त सदाचारिणी, धर्मपरायणा, पतिव्रता,
नी थीं। भगवत्कृपासे पति-पत्नी दोनों ही साधन, भजन,
त, उपवास, तीर्थयात्रा आदि बड़े प्रेमसे साथ-साथ
रते थे।

उसी समय पंजाबके प्रसिद्ध योगिराज पूज्यपाद
श्रीस्वामी सियारामजी महाराज मुल्तान पधारे। आपके
सत्सङ्गमें श्रीभिरावाँ बाई भी अपने पतिके साथ जाने लगीं।
श्रीस्वामीजीके सत्सङ्गसे यह दम्पति बड़ी प्रभावित हुई। इनकी
प्रार्थना सुनकर श्रीस्वामीजीने पति-पत्नीको योगकी दीक्षा दी।
पति-पत्नी योगसाधनामें लग गये। प्रतिदिन प्रातःकाल पति-
पत्नी दोनों ब्राह्ममुहूर्तमें उठते। स्नानादिसे निवृत्त होकर
अपने इष्टदेव श्रीकृष्णकी पूजा-आराधना करते। फिर योगकी
साधनामें लग जाते और समाधिका आनन्द लूटते।

पूजनीया श्रीमाताजी तो साधनमें शरीरकी तनिक भी
चिन्ता नहीं करती थीं। पाँच-पाँच दिन निराहार रह जातीं।

कई चान्द्रायण व्रत किये और व्रतोपवासद्वारा शरीरको सूक्ष्म बनानेका उनका प्रयत्न चलता रहा ।

योग-साधनाके समय भी उनके इष्टदेव श्रीकृष्णका श्रीविग्रह सदा उनके साथ रहता । श्रीविग्रहकी पूजा-आरती वे श्रद्धा-भक्तिद्वारा करती रहतीं । श्रीकृष्ण-कीर्तनमें वे प्रायः प्रेम-विभोर हो जाया करतीं । योग-साधन, श्रीकृष्ण-आराधनके साथ वे पति-सेवामें भी चूक नहीं पड़ने देती थीं । पतिकी सेवा-शुश्रूषा वे दत्तचित्त होकर करतीं । श्रीमाताजीका आहार सर्वथा सात्त्विक होता । लहसुन, प्याज, सलजम आदिका वे स्पर्श भी नहीं करती थीं । आचार एवं स्पर्शास्पर्शका वे अत्यधिक ध्यान रखती थीं । अपने हाथ कूप-जल निकालकर लातीं । स्वयं रसोई बनातीं और अपने इष्टदेवको भोग लगाकर पतिको खिलातीं । उसके अनन्तर स्वयं प्रसाद-ग्रहण करतीं । अपने जीवनमें उन्होंने कभी नलका पानी स्पर्श नहीं किया । रेलकी यात्रामें आप निर्जल उपवास कर लेतीं और यात्रा पूरी होनेपर सचैल स्नान करतीं । अंग्रेजी ओषधियाँ भी वे नहीं लेती थीं ।

आपके पुत्र श्रीकृष्णानन्दजी कथा-कीर्तनद्वारा सनातन धर्मका प्रचार करते थे । श्रीमाताजी आपसे कुछ नहीं लेती थीं । आपके दूसरे पुत्र श्रीचन्द्रमणिजी रेलवेकी नौकरी करते थे । आप नियमितरूपसे गायत्री मन्त्रका जप करते । जप किये बिना वे अन्न-ग्रहण नहीं करते थे । रिश्वतको वे पाप समझते । उनकी शुद्ध ईमान एवं श्रमकी कमाई थी । इस कारण श्रीमाताजी उनसे अपने निर्वाहके लिये केवल पाँच रुपये लेतीं । एक बार श्रीचन्द्रमणिजीने २५) भेजे । पर श्रीमाताजीने वापिस कर दिये । बोलीं—'मुझे पाँच रुपये मासिकमें ही जीवन-निर्वाह करना है ।'

श्रीमाताजी अपने यहाँ प्रतिदिन संध्या-समय पास-पड़ोसकी बहनोंके साथ श्रीभगवन्नाम-कीर्तन करतीं एवं सत्सङ्ग कराया करतीं । वे विधवा बहनोंको त्याग एवं तप-

आपके पूज्य पतिदेव पं० श्रीहरनारायणजी महाराजने श्रीभगवान्‌की कथा सुननेके पश्चात् बड़ी शान्तिसे शरीर त्याग दिया । श्रीमाताजीको बड़ा दुःख हुआ; किंतु अब उनका मन संसारसे और अधिक विरक्त हो गया । उनके साधन तीव्र हो गये । फलस्वरूप उन्हें अपने मृत्युकालका ज्ञान हो गया और उन्होंने अपने शरीर-त्यागका निश्चित काल समयपर प्रकट कर दिया । श्रीमाताजीके प्रेमियों और भक्तोंको बड़ा क्लेश मालूम हुआ; किंतु विवशतः उन लोगोंने उनके सभी सम्बन्धियों एवं प्रीति-पात्रोंको पत्रादिके द्वारा सूचना दे दी ।

उक्त तिथिको बड़ी भीड़ थी । श्रीमाताजीके पुत्रादि सभी सम्बन्धी, सत्सङ्गी तथा सभी परिचित उनके पर-धाम-गमनका दृश्य देखने उपस्थित हो गये थे । गौके पवित्र गोबरसे धरती लीपी गयी । दर्भासन बिछाया गया । सामने श्रीकृष्णका चित्रपट रक्खा गया । बाजे-गाजेके साथ भगवन्नाम-कीर्तन प्रारम्भ हुआ ।

दिनके चार बजे माताजीको यह संसार छोड़ देना था । उन्होंने स्नानोपरान्त शुद्ध वस्त्र धारण कर श्रीकृष्णकी सविधि पूजा एवं प्रार्थना की । श्रीगङ्गाजल, तुलसी एवं श्रीभगवान्‌का चरणामृत मुखमें लेकर आसनपर बैठ गयीं । प्राणायामके द्वारा वे शरीर छोड़ने ही जा रही थीं कि उनके भतीजे पं० जुगलकिशोर जैतिलीके पुत्र वैद्यराज पं० श्रीदेवेन्द्र शर्मा षट्शास्त्री भीड़ चीरते हुए श्रीमाताजीके चरणोंमें प्रणामकर उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये ।

'परम पूजनीया माँ !'—षट्शास्त्रीजीने निवेदन किया 'आप प्रेम, भक्ति एवं वैराग्यकी मूर्ति सनातनधर्मकी प्रचारिका हैं । फिर धर्मविरुद्ध आचरण क्यों ?'

'धर्मविरुद्ध आचरण कैसा बेटा ?'—श्रीमाताजीने शान्ति और प्रेमसे पूछा ।

षटशास्त्रीजी बोले—'आप ...

गोंको अपने पवित्र दर्शन, सत्सङ्ग एवं सेवासे लाभ उठानेका अवसर प्रदान करें ।'

'अच्छा जाओ । अब मैं एक मास बाद आऊँगी ।' सबको लगा, जैसे श्रीमाताजी मृत्युको इतने दिनके लिये विदा कर रही हैं । सबने जय-जयकार की ।

ममताशून्य चित्त, भगवत्प्रेम, गो-माताकी सेवा एवं गोवत्सले श्रीमाताजीने आयी मृत्युको वापस कर दिया; किंतु उनके कथनानुसार उनका शरीर अधिक दुर्बल और अशक्त हो गया । उनकी सेवामें श्रीदेवेन्द्र शर्मा पट्शास्त्रीजी और पूज्य माताजीकी बड़ी पुत्री कुशाबाई रहने लगी । कुएँसे पानी लानेसे लेकर सारा सेवाकार्य ये लोग करते ।

शरीर-त्यागके चार-पाँच दिनों पूर्व समीपके गाँवके एक सज्जन पधारे और श्रीमाताजीके पुत्र श्रीकृष्णानन्दजीको उसी दिन, गोशालाके उत्सवपर भाषण देनेके लिये निवेदन किया, जिस दिन श्रीमाताजी अपने भौतिक शरीरको छोड़नेवाली थीं । श्रीकृष्णानन्दजीने सर्वथा विवशता प्रकट की ।

वे सज्जन श्रीमाताजीके पास पहुँचे और बोले—'माँ ! उसी दिन, जिस दिन आप सदाके लिये पधारनेवाली हैं, गोशालाका उत्सव है । आपके पुत्र श्रीकृष्णानन्दजीके भाषण न करनेसे हजारों रुपयेकी होनेवाली आय मारी जायगी और गायें भूखों मरेंगी ।'

श्रीमाताजीने अपने पुत्रसे कहा—'बेटा ! तुझे भाषण देने अवश्य जाना चाहिये । गोमाता भूखों मरेंगी तो बड़ा पाप होगा । तू मेरी चिन्ता न कर; अवश्य जाना ।' श्रीमाताजीके आज्ञानुसार श्रीकृष्णानन्दजी उक्त उत्सवमें चले गये ।

नियत समयपर श्रीमाताजीने स्नान-पूजनसे निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र धारण किया । गङ्गाजल तथा तुलसीदल मुखमें लिया और गोबरसे लिपी भूमिपर बिछे कुशासनपर बैठकर उपस्थित जन-समुदायके द्वारा भगवन्नाम-कीर्तन सुनती एवं *भगवन्नाम लेती हुई शरीर त्याग दिया । जन-समुदाय* श्रीमाताजीकी जय-जयकार करने लगा ।

प्रातःस्मरणीया श्रीमाता भिरावाँ बाईकी अर्थीका जुलूस-सा निकला । भगवन्नाम-कीर्तन हो रहा था । अर्थीपर पुष्प और पुष्प-मालाएँ चढ़ायी जा रही थीं । श्रीमाताजीकी जय बोली जा रही थी ।

यह घटना अधिक दिनोंकी नहीं, लगभग सन् १९४५ ई० की देखी-सुनी सर्वथा सत्य है ।

बोलो सनातन धर्मकी जय !

(२)

(लेखक—पं० श्रीमुनि देवराजजी विद्यावाचस्पति)

मृत्युको दूर हटानेकी सत्य घटना

कांगड़ी ग्रामके पास मेरे पिताजीका लगता हुआ ग्राम था, जिसका नाम गाजीवाली है । वहाँ थाना नामक एक बनिया रहता था । वह अति वृद्ध था । एक दिन उसने अपने पास बैठे हुए लोगोंसे सहसा कहा—'अब हम जाते हैं ।' यों तो वह स्वस्थ था, कोई बीमारी उसे नहीं थी । तब उपस्थित मनुष्योंने प्रार्थना की—'अभी मत जाइये; कुछ समय और ठहरिये; क्योंकि आपके दर्शनार्थ अन्य बहुत-से मनुष्योंको बुलाना है ।' तब उस वृद्ध बनियेने कहा—'अच्छा, कितने दिन ठहर जाऊँ ?' लोगोंने उससे कहा—'दो दिन और ठहर जाइये ।'

उसने उत्तर दिया—'अच्छा, दो दिनके बाद नहीं ठहरूँगा ।' दो दिनके अंदर सब दर्शनार्थी आ गये । जब दो दिन पूरे हो गये, तब वृद्ध पुरुषने कहा—'अब दो दिन हो गये, अब हम नहीं रुकेंगे ।' इतना कहकर उसने शरीरसे प्राण निकाल दिये ।

यमदूत-दर्शन

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

अभी सन् १९६७ की बात है कि हम हापुड़ 'सनातनधर्म-सम्मेलन'में गये हुए थे। वहाँ हम हापुड़के वयोवृद्ध कांग्रेसी नेता एवं भूतपूर्व यू० पी० विधान परिषद् (लेजिस्लेटिव कौंसिल) के सदस्य माननीय बाबू श्रीलक्ष्मीनारायणजी बी० ए० से भेंट करनेके लिये उनके स्थानपर गये। आपसे जिस समय हमारी बातें होने लगीं तो हमने कुछ शास्त्र-पुराणोंके सम्बन्धकी सत्य घटनाएँ आपके सामने रक्खीं। सहसा बाबू श्रीलक्ष्मीनारायणजीने कहा—

'भक्त रामशरणदासजी! मैं विशेष तो आपके शास्त्र-पुराणोंकी बातोंको जानता नहीं हूँ; कारण कि मैंने शास्त्र-पुराणोंको देखा ही नहीं है। मैं तो बहुत कालतक कांग्रेसमें रहा हूँ। जितनी मुझसे बन सकी है, मैंने निःस्वार्थ-भावसे देशकी सेवा की है। मैंने अपने जीवनमें एक-दो ऐसी घटना अवश्य देखी है कि जिन्हें अपनी आँखोंसे देखकर मुझे भी कुछ शास्त्र-पुराणोंमें श्रद्धा हुई।'

'क्या देखी हैं आपने अपने जीवनमें आश्चर्यजनक घटना?' मैंने उनसे पूछा।

उन्होंने बतलाया—''मैंने जो महान् भयंकर विशालकाय काली शक्लवाले दो व्यक्ति देखे थे, वे भूत थे या वे यमराजके भेजे हुए दूत थे, यह तो मैं नहीं जानता; पर आज भी यदि मुझे उनका भूलसे भी कभी स्मरण हो जाता

आदमियोंकी कमी थी, इसलिये हमलोग हापुड़से इनकी देख-भाल करनेके लिये मेरठ गये। प्रोफेसर साहब उस समय चौधरी श्रीरघुवीरनारायणसिंहजी असौडेवालोंके मकानपर सिपट बाजारमें, उस मकानकी ऊपरकी दूसरी मंजिलमें थे। हमें इनकी देख-भाल करनेका जो काम सौंपा गया, हम करने लगे। दो-तीन दिनके पश्चात् प्रो० साहबकी हालत पहलेसे और भी ज्यादा बिगड़ गयी। डा० करौली जब प्रोफेसर साहबको देखनेके लिये आये तो उन्होंने हम लोगोंको सावधान करते हुए कहा—'आजकी रात प्रोफेसर साहबके लिये बड़े खतरेकी है। इनकी देख-भाल करनेकी आज बड़ी आवश्यकता है।'

''यह सुनकर अब तो सभीको बड़ी चिन्ता हुई। हमारी सबकी ड्यूटी लगा दी गयी कि आज रातको इनकी बराबर देख-भाल की जाय। हम सबकी ड्यूटी तीन-तीन घंटेकी थी। मेरी ड्यूटी धर्मवीरसिंह त्यागीकी धर्मपत्नीके साथ रात्रिके १ बजेसे ३ बजेतककी लगायी गयी थी।

ड्यूटीके समय मुझे लघुशङ्काकी हाजत हुई। उन दिनों आजकी बिजली तो थी नहीं। रोशनीके लिये मैं अपने हाथमें लालटेन लेकर और बहनजीसे कहकर बाहर आ गया। बाहर आकर लघुशङ्का करनेके लिये ज्यों ही नालीपर बैठा, देखा कि दो भयंकर विशालकाय व्यक्ति खड़े हुए हैं, जो छः फुटसे भी अधिक लंबे हैं। उनका सारा शरीर बड़ा काला है और वे बड़े बलवान् हैं। उनकी लाल-लाल

विषयके प्रधान तथा प्रसिद्ध अन्वेषक प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जीका मुख्य तथा प्रथम स्थान है। उन्होंने देश-विदेशोंमें घूम-घूमकर स्वयं जाँच की हुई घटनाओंके आधारपर लेख लिखे हैं। इनकी विशद् लेखमालाने स्वदेश तथा विदेश—दोनोंमें इस विषयकी ओर पर्याप्त रुचि, जागृति तथा श्रद्धाको जाग्रत् किया है। इसके फलस्वरूप इस विषयकी जिज्ञासा अत्यधिक बढ़ गयी है। श्रीबनर्जी महोदय कहते हैं कि पुनर्जन्मके विषयमें जिज्ञासु पुरुषोंके पत्रोंकी बाढ़ आ गयी है। पत्रोंका इतना विशाल समूह एकत्र हो गया कि प्रो० बनर्जी महोदयके लिये प्रत्येक व्यक्तिको पृथक्-पृथक् उत्तर देना असम्भव हो गया। अतः उन्होंने प्रश्नकर्ताओंके प्रश्नोंमेंसे चुन-कर उनके उत्तर नवीन लेखमालाओंके रूपमें देनेका निश्चय किया। तदनुसार उन्होंने विभिन्न शीर्षकोंसे कई लेखमालाएँ लिखीं तथा अब भी वे लिख रहे हैं। हमारे पास भी वे लेखमालाएँ प्रकाशनार्थ आयी हैं। प्रो० श्रीबनर्जी महोदयके शोधकार्यको जनतामें प्रचारित करनेमें हाथ बँटाकर 'कल्याण' अपना कर्तव्य पालन कर रहा है।

न माननेके कारण बढ़ते हुए यथेच्छाचार प्रवाहको रोकनेके लिये उसका सप्रमाण लो सत्य घटनाओंके रूपमें रक्खा जाना कल्य इसलिये इन घटनाओंको प्रकाशित किया ज वास्तवमें इस सत्यको विज्ञानके द्वारा समर्थन की आवश्यकता नहीं है। विज्ञान यदि इ अनुभव करनेमें असमर्थ है तो वही अधूरा तो सत्य है ही। अतएव 'कल्याण' इसे पराम लोगोंकी तरह वैज्ञानिक 'शोध'का विषय नहीं मान इस शोधकार्यसे सत्य सामने आ रहा है, यह है। इसीलिये 'कल्याण' इस शोधकार्य तथा इ तत्पर श्रीबनर्जी महोदयके कार्योंकी प्रशंसा करत उनके लेखोंको छापनेमें गौरव-बोध करता है इस अङ्कमें स्थानाभावसे उनके पूरे लेख नहीं छप सके हैं। केवल घटनाओंको ही विभिन्न छापा गया है। सो भी सब घटनाओंको नहीं लिये श्रीबनर्जी महोदयसे क्षमा-प्रार्थना है।

उज्ज्वल भगवत्प्रेमकी प्राप्ति

सत्य अहिंसा सेवा संयम सबके साथ साधु-व्यवहार।
सर्वभूतहितमें ही निज हित समझ सदा करता आचार॥
वह पाता न कदापि यातना पुनर्जन्ममें किसी प्रकार।
जाता उच्च देवलोकोंमें पाता दुर्लभ भोग अपार॥
पर जो इन शुभकर्मों द्वारा सदा पूजता श्रीभगवान्।
इह-परलोक-भोग-विषयोंसे मनमें रख विरक्ति मतिमान॥
भगवत्स्मृति, भगवत्सेवा ही होते जिसके लक्ष्य महान्।
भगवत्प्रेम प्राप्त करता वह उज्ज्वल, मिटता तम-अज्ञान॥

पुनर्जन्मकी विदेशी घटनाएँ

(लेखक—डा० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

ईसा और पुनर्जन्म

आधुनिक ईसाईधर्म पुनर्जन्मके सिद्धान्तको नहीं मानता। फिर भी प्राचीन ईसाइयोंके सम्प्रदाय इसमें आस्था रखते थे। सेंट जानकी बाइबिल (११वाँ अध्याय) में एक ध्यानाकर्षक वचनावली मिलती है, जिसकी पुनर्जन्मको माने बिना संतोषप्रद व्याख्या की ही नहीं जा सकती।

फिर कुछ आधुनिक विद्वानोंने यहाँतक प्रश्न किया है कि 'क्या हजरत ईसा पिछले जन्ममें एलीसियस थे?' एक विद्वान् लिखते हैं—"मुझे निश्चित रूपसे ज्ञात है कि वह (जीसस) पिछले जन्ममें एलीसियस और जीससके 'गुरु जान दि बैप्टिस्ट एलीजा' थे।" जीससके रूपमें एलीसियसके अवतारकी भविष्यवाणी कई सौ साल पहले की जा चुकी थी; क्योंकि उन्हें परमात्माकी एक दैवी योजनाको पूरा करनेके लिये जन्म लेना था।

यह भविष्यवाणी ईसासे ८ वीं शताब्दी पूर्व एसाइयाहकी पुस्तक (७–१४) में की गयी है—'इसलिये भगवान् स्वयं तुम्हें एक निशानी देंगे। देखो—एक कुमारी गर्भ धारण करेगी और एक बेटेको जन्म देगी और उसका नाम एमैनूएल रखेगी।'

क्राइस्ट (ईसा) के जन्मकी घटनाका उल्लेख करते हुए सेंट मैथ्यूने कहा—'पैगंबरकी भविष्यवाणीमें प्रभुके बारेमें जो कुछ कहा गया था, वह पूरा होनेके लिये अब यह सब कुछ किया गया है। देखो, एक कुमारी गर्भ धारण करेगी और एक बेटेको जन्म देगी और लोग उसे एमैनुएलके नामसे पुकारेंगे, जिसका अर्थ होगा कि 'भगवान् हमारे बीचमें आ गये हैं।' (मैथ्यू १–२२, २३)

क्राइस्टके विवादपूर्ण अवतारके अतिरिक्त भी, हमारे पास ईसाई-परिवारोंके कुछ पुनर्जन्म-सम्बन्धी उदाहरण मौजूद हैं। हालाँकि ईसाई-मतमें इस सिद्धान्तके लिये कोई जगह नहीं है।

नीचे विदेशोंके पुनर्जन्म-सम्बन्धी कुछ प्रसङ्ग दिये जा रहे हैं—

(१)

क्यूबानिवासी महिलाकी घटना

राचाले ग्राण्ड

इस समय न्यूयार्कमें रहनेवाली क्यूबानिवासी २६ वर्षीया राचाले ग्राण्ड (Rachale Grand) को यह अलौकिक अनुभूति हुआ करती थी कि वह अपने पूर्वजन्ममें नर्तकी थी और यूरोपमें रहती थी। उसे अपने पहले जन्मके नामकी स्मृति थी। खोज करनेपर पता चला कि यूरोपमें आज से ६० वर्ष पूर्व स्पेन देशमें उसके विवरणकी एक नर्तकी रहती थी। राचालेकी कहानीका अधिक आश्चर्यजनक अंश यह था, जिसमें उसका कथन है कि 'उसके वर्तमान जन्ममें भी वह जन्मजात नर्तकी ही है और उसने बिना किसीके मार्गदर्शन अथवा अभ्यासके हावभावयुक्त नृत्य सीख लिया था।'

(२)

स्विट्जरलैण्डकी घटना

गैब्रियल उराइब

एक आश्चर्यजनक घटना ३२ वर्षके गैब्रियल उराइब (Gabriel Uribe) नामक स्विट्जरलैण्डवासीकी है। वह स्विस (Swiss) रहन-सहनसे बहुत असंतुष्ट और बेचैन था। उसका अधिक लगाव गहरे रंगके लोगोंकी ओर था।

अपने यूरोपके प्रवासमें एक बार वह स्पेन गया। वहाँके अल्पकालीन निवासने उसकी उद्विग्न अन्तरात्माको शान्त कर दिया। उसने अपने-आपको अपने पूर्वजीवनके कोलम्बियानिवासी एक राजनीतिज्ञ यू राफेल (U Raphael) के रूपमें देखा। उसमें अपने पूर्वजन्मकी पत्नी सिक्स्टा तुलिया (Sixta Tulia) तथा बच्चे जुलियन और मारियाकी भी स्मृति उदित हो गयी। १९१४ में कोलम्बियामें एक कुल्हाड़ेसे यू राफेलकी हत्या कर दी गयी थी। हत्यारेने उसके माथेपर एक प्राणघातक प्रहार किया था। अधिक विस्मय तो इस बातका है कि राफेलके सिरपर जहाँ कुल्हाड़ेका प्रहार हुआ था, गैब्रियलके माथेका वह भाग पूरी तरहसे उभरा हुआ नहीं दिखायी देता।

जा रहा था तो वह सबसे आगे-आगे चल रहा था। एक घरकी ओर संकेत करते हुए वह चिल्लाया—'यही मेरा घर है।' पूछताछ करनेपर पता चला कि 'वह घर हौशिरो और उसकी पत्नी शिडजूका था। इन दोनोंके टोजो नामका एक पुत्र था, जो तेरह वर्ष पूर्व चेचकसे मर गया था।' कटसूगोरोने यह भी बताया कि उस घरके आसपास बहुत परिवर्तन हो गये हैं। उसने बताया कि 'पहले सड़कके उस पार तम्बाकूकी दूकान नहीं थी।' यह बात भी बिल्कुल सच निकली। इससे यह सिद्ध हो गया कि कटसूगोरो ही पिछले जीवनमें टोजो था।

(६)

परिचित मार्गकी पुनर्यात्रा

एक फौजी सिपाही

"......मैं अंग्रेजी फौजका एक सिपाही रहा हूँ। फौजमें भर्ती होनेके बाद ही हमारे रेजीमेंटको आदेश मिला कि वह पूर्वीय देशोंकी ओर कूच करे। मैं कभी विदेश नहीं गया था। हमलोग जब अपने निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचे तो हमलोगोंको ऐसे स्थानपर जानेका आदेश मिला, जहाँ अंग्रेज फौजोंने कभी कदम भी नहीं रक्खा था। हमारे अधिकारी भी बहुत परेशानीमें थे; क्योंकि किसी नक्शेके अभावमें वे यह समझ ही नहीं पा रहे थे कि किस रास्तेसे आगे बढ़ें। और भी सब इस देशसे सर्वथा अपरिचित थे। न जाने मेरे हृदयमें कैसी प्रेरणा उठी। मैं सीधा अपने अफसरोंके पास गया, जो परामर्श कर रहे थे और बोला—'क्षमा कीजियेगा, यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपको इस अपरिचित प्रदेशके मार्गोंके बारेमें बता सकता हूँ। मैं यहाँकी एक-एक इंच भूमिके बारेमें जानता हूँ।'

"अधिकारीगण मेरी ओर आश्चर्यसे देखने लगे। बोले—'क्या मतलब?' मैंने उत्तर दिया—'मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसका कारण मैं नहीं जानता। लेकिन इतना निश्चित है कि मैं इस स्थानसे भली प्रकार परिचित हूँ।'

"मुझे स्वयं आश्चर्य है कि क्यों हर वस्तु मुझे जानी-पहचानी हुई लग रही थी। एक पहाड़ीकी ओर एक चौकोर मकान मिलेगा, जिसकी छत वजनी पत्थरकी है।' मेरी बातकी सत्यता जाननेके लिये वे मेरे बताये रास्तेपर गये और उन्हें निर्दिष्ट स्थानपर वैसा ही मकान मिला। इसका आश्चर्य उन्हें भी था और मुझे भी। फिर उन्होंने मुझे मार्ग-निर्देशक मान लिया। मैंने हमेशा उस प्रदेशके सारे मार्गोंके बारेमें सही-सही बताया। किंतु इस बातसे मैं स्वयं अपनेसे भय खाने लगा।"

यह सिपाही कभी उस जगह नहीं गया था, जहाँके मार्गोंके बारेमें उसने फौजको सही-सही बताया था। उसके साथी और फौजी अधिकारियोंका मत है कि 'यह सिपाही अपने गत-जीवनमें उस प्रदेशमें रहा होगा।'

इस प्रकारकी घटनाओंका अध्ययन करते समय शोधकर्ताको चाहिये कि अधिक-से-अधिक साक्षियोंसे प्रमाण एकत्रित करे। उसे यह भी चाहिये कि वह पुनः जन्म लेनेका दावा करनेवाले व्यक्ति तथा उसके वर्तमान और गत-जन्मके परिवारोंके लोगोंके व्यवहारोंका भी सतर्कतासे अध्ययन करे।

(७)

फ्रांसकी घटना

कुमारी थिरीज गे

तीन महीनेकी बच्ची थिरीज गे (Therese Gay) ने एक दिन अपनी माँ (मदाम हेनरियेट गे) तथा पिताको चौंका दिया। बात यह हुई कि उसने अपने जीवनमें जो पहला शब्द मुँहसे निकाला था, वह था—'अहरू-पाह' । (Ahroo-pah) माता-पिता हँसने लगे; क्योंकि उन्हें इस शब्दका अर्थ समझमें ही नहीं आया। बादमें उन्हें पता चला कि यह संस्कृतका शब्द 'अरूप' है, जिसका अर्थ है—रूपरहित।

तीन सालकी आयुमें इस लड़कीने अंग्रेजी शब्द बोलना शुरू कर दिया, यद्यपि उसकी माँ बार-बार फ्रेंच शब्दोंके प्रयोगपर बल देती थी। कुछ दिनों बाद उसने महात्मा गाँधीके बारेमें बतलाना शुरू किया। वह उन्हें 'बापू' कहती थी। उसने बतलाया कि दक्षिणी

ोसे मिलनेके लिये उसके गाँवमें आयी। मुख्य
ापर वह कुछ हिचकते हुए खड़ी हो गयी; क्योंकि
उस लड़कीके मकानकी स्थिति नहीं मालूम थी।
लड़की स्कूल जा रही थी। लड़कीने उसे देखते
हचान लिया। वह 'माँ-माँ' चिल्लाती हुई दौड़कर
लिपट गयी और उसे अपने घर लिवा ले गयी।
बादमें उस लड़कीको उस जगह ले जाया गया,
वह पिछले जन्ममें रहा करती थी। उस जगहको
अपने वर्तमान जीवनमें कभी नहीं देखा था।
वर्तमान माता-पिताने भी उस जगहको नहीं देखा
फिर भी वह अपने 'पुराने' घरका रास्ता पहचानती
वहाँ पहुँच गयी। वहाँ उसकी परीक्षा ली गयी।
। चीनी पिता लगभग ५० आदमियों (जिसमें
आदमी चीनके तथा कुछ स्यामके थे) के साथ
हालमें खड़ा हो गया। उसकी पीठ दरवाजेकी
थी। जैसे ही लड़की हालमें घुसी, उसने अपने
ो पहचान लिया और उसे देखकर बहुत प्रसन्न
पहले तो चीनी पिताने उसे संदेहकी दृष्टिसे देखा,
उसे विश्वास हो गया कि वह उसकी मृत लड़की
;, जिसने दुबारा जन्म लिया है।

पुष्टि

लड़कीको बहुत-सी चीजें दिखायी गयीं। उनमेंसे

(३)

थाईलैंडमें पुनर्जन्मकी घटना

सार्जेन्ट थियन

यह घटना सुरेन्द्र नामक स्थानकी शाही थाई सेनाके एक सार्जेन्टसे सम्बन्धित है। जन्मसे ही सार्जेन्ट थियन (Sgt. Thien) के बायें कानके ऊपरसे उसकी खोपड़ीतक ऊपर उठा हुआ एक बालदार तिरछी रेखा-जैसा चिह्न है। उसका आग्रह है कि उसे अपने पूर्वजन्मकी मृत्युतक तथा उसके बादतककी घटनाओंकी स्मृति है। पशु-चोरी करनेके अपराधमें गाँववालोंने उसके सिरमें उस स्थानपर छुरा भोंका था, जहाँ अब वह चिह्न बना हुआ है। मृत्युके पश्चात् उसे अपने ही शरीरको देखनेकी भी स्मृति है। बचपनमें ही वह उस घटनाकी प्रत्येक बात बता सकता था।

उसके पूर्वजन्ममें उसकी मृत्युके समय उसके दाहिने पैरके अँगूठेमें एक खुला हुआ घाव था तथा उसके हाथों और पैरोंमें गोदनेके चिह्न थे। इस जन्ममें भी उसके पैरके उसी अँगूठेमें जन्मजात विकृति है। उसके जन्मके समय गोदनेके स्थानपर उसीके अनुरूप चिह्न दिखायी देते थे। उसके विवरणकी पुष्टि ग्रामके मुखियाने की है। वह उसे पूर्वजन्ममें जानता था। इसी प्रकार उसके सगे-सम्बन्धियों तथा सेनाके उच्च अधिकारियोंने भी, जो तथ्योंसे भलीभाँति परिचित हैं, उसके कथनकी पुष्टि की है। सेनामें उसका

'जमींदार' (Landlord) नामकरण हो गया है; क्योंकि उसने सेनाके पड़ावके निकटकी कुछ भूमिपर अपना अधिकार जताया है, जो पूर्वजीवनमें उसकी सम्पत्ति थी। यह उन सैकड़ों व्यक्तियोंमेंसे एक व्यक्तिकी घटना है, जो अपने पूर्वजन्मकी स्मृतिका दावा करते हैं।

(१०)

आस्ट्रिया देशका प्रमाण

एलेक्जैण्ड्रिना सैमोना

डा० कारमेलो सैमोना और उनकी पत्नी एडेलाके एक पुत्री थी। उसका नाम था—एलेक्जैण्ड्रिना सैमोना। पाँच वर्षकी उम्रमें १५ मार्च सन् १९१० को पैलेरमो सिटी, सिसिलीमें उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्युके तीन दिन बाद माँने एक स्वप्न देखा, कि उसकी मृत पुत्रीका पुनर्जन्म होगा।' माँको इस स्वप्नपर विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि एक शल्यक्रियाके परिणामस्वरूप उसे अब यह आशा नहीं रह गयी थी कि वह अब और संतानोंको भी जन्म देगी। परंतु २२ नवम्बर सन् १९१० को माँने जुड़वा बालिकाओंको जन्म दिया। एक बालिकाकी आकृति मृत बालिकाकी आकृतिसे बिल्कुल मिलती-जुलती थी; इसलिये उसका भी नाम एलेक्जैण्ड्रिना रक्खा गया। सुविधाके लिये हम यह कह लें कि मृत पुत्रीका नाम एलेक्जैण्ड्रिना प्रथम तथा नवजात पुत्रीका नाम एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय था। दोनोंमें कुछ समानताएँ बहुत महत्त्वपूर्ण थीं। एक समानता यह थी कि दोनों ही शान्तिप्रिय, स्वच्छ और अकेलेमें रहकर स्वयंसे ही खेलना पसंद करती थीं। एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय और प्रथममें कुछ शारीरिक समानताएँ भी थीं। दोनोंके चेहरे तो मिलते ही थे, दोनोंकी बायीं आँखोंमें अधिरक्तताका लक्षण था और दाहिने कानोंसे स्राव हुआ करता था। दोनों ही बायें हाथसे सारा काम करती थीं और दोनोंको ही छालटीनके कपड़ेको

और वहाँ उसे लाल कपड़े पहने हुए पुजारी मिले थे।' [illegible] स्मरण हो आया कि 'एलेक्जैण्ड्रिना प्रथमकी मृत्युके कुछ [illegible] पूर्व वह उसे (एलेक्जैण्ड्रिना प्रथमको) लेकर मानरि[illegible] गयी थी। साथमें एक महिला भी थी जिसके माथेपर [illegible] सींग थे। वहाँ उनकी भेंट यूनानी पुजारियोंसे हुई [illegible] जिनके नीले कपड़ोंको लाल रंगकी वस्तुओंसे अलंकृत [illegible] गया था।'

शारीरिक समानता, आदतोंकी अभिन्नता [illegible] एलेक्जैण्ड्रिना प्रथमके जीवन-कालकी घटनाओंकी स्मृ[illegible] कारणोंसे डा० सैमोना तथा उनके मित्रोंको विश्वास हो [illegible] कि एलेक्जैण्ड्रिना प्रथमने ही द्वितीयके रूपमें पुनः [illegible] लिया है।

(११)

ब्राजीलके पौलो लोरेन्ज (Paulo Loreng) प्रमाण

'माँ, अब तुम मुझे अपने पुत्रके रूपमें स्वीकार [illegible] मैं अब तुम्हारा पुत्र बनकर जन्म लूँगी।' यह संदेश [illegible] था श्रीमती इडा लारेन्जको उनकी मृत पुत्री इमि[illegible] लारेन्जने, जिसकी मृत्यु विष-सेवनके परिणामस्वरूप हो [illegible] थी। यह विचित्र संदेश माँको प्रेततत्त्वसे सम्बन्ध रखने[illegible] एक सभामें मिला था।

"इमिलिया लारेन्जका जन्म ४ फरवरी सन् १९०[illegible] हुआ था। उसके पिताका नाम था—एफ० वी० लारे[illegible] जबतक वह जीवित रही, वह हमेशा यह कहकर अप[illegible] कोसती रही कि उसने लड़की होकर क्यों जन्म लिया। [illegible] अपने भाई-बहनोंसे कई बार यह कहा कि 'यदि वास्[illegible] पुनर्जन्म होता है तो वह पुत्र होकर जन्म लेना [illegible] करेगी।' उसने विवाह करनेसे इन्कार कर दिया और [illegible] कि 'वह अविवाहित ही रहकर मरना चाहती है।' [illegible]

"उसकी माँने कहा कि इस बच्चीका नाम मार्गारेट केम्पथोर्न (Margaret Kempthorn) था, जो एक किसानकी इकलौती बच्ची थी। कहानी कहनेवालीकी माँ उन दिनों उस फार्मपर दूध बेचनेके कामपर नियुक्त एक नौकरानी थी।

"जब मार्गारेट लगभग ५ वर्षकी बच्ची थी, तभी एक बार उस नौकरानी तथा अन्य एक महिलाके साथ पहाड़ीसे भागकर नीचे उतरते समय एक महिलाका पैर एक खरगोशके गड्ढेमें जा पड़ा था। सबके गिर पड़नेसे वह लड़की सबके नीचे आ गयी। उसकी टाँग बुरी तरह टूट गयी थी, जो फिर ठीक न हो सकी और वह दो महीनेके बाद मर गयी। उस वृद्धा महिलाने रोगग्रस्त तीक्ष्णताके साथ मुझे बतलाया—'मेरी माँ कहा करती थी कि इतनी दुबली लड़की होकर भी उसने जीवित रहनेके लिये बहुत संघर्ष किया और यह अन्तिम शब्द कहती हुई मरी कि 'मैं मरूँगी नहीं।'

"उसे यह पता नहीं था कि वह फार्म कहाँ था, परंतु मण्डी (Market) के स्थानका नाम येओविल (Yeovil) था। उस घटनाका समय पूछनेपर उसने वह चित्र नीचे उतारा। उसकी पिछली तरफ एक कागजका टुकड़ा चिपका हुआ था, जिसपर लिखा था—मार्गारेट केम्पथोर्न, जन्म २५ जनवरी, १८३०, मृत्यु ११ अक्तूबर, १८३५। और मार्गारेटकी मृत्युके दिन ही मेरे पिताकी माँका जन्म नार्थेण्ट्समें हुआ जो यहाँसे मीलों दूर है। मेरा स्वयंका जन्म दिन है २५ जनवरी।"

(१३)
कनाडाकी एक महिला

अब कनाडाकी एक महिलाकी पुनर्जन्मसम्बन्धी असाधारण घटनाका अवलोकन कीजिये—

"मैं तथा मेरा पति कनाडाके आन्टारियो (Ontario) स्थानसे मोटरमें जा रहे थे। जैसे-जैसे हम 'सिथस् फाल्स' (Smith's Falls) के निकट पहुँचने लगे, मैंने उस नगरका वर्णन करना आरम्भ कर दिया।

"मेरा पति यह जानता था कि इसके पहले मैं कभी कनाडा नहीं गयी थी। इसलिये तब तो वह और भी आश्चर्यचकित हो गया, जब मैंने मुख्य बाजारके एक भागका वर्णन किया—'इसके एक कोनेमें डेसजारडिंग्स (Desjardings) की किरानेकी दूकान है और दूसरे नुक्कड़पर 'रायल बैंक आफ कनाडा'की एक शाखा।' जब हमारी गाड़ी बाजार पहुँची तो हमारे आश्चर्यकी सीमा न रही कि उसके एक कोनेमें बैंक था और दूसरेमें किरानेकी दूकान। मेरे पतिने गाड़ी रोकी और किरानेकी दूकानमें प्रवेश किया। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि आजसे तीस वर्ष पहले इस दूकानके आखिरी मालिकका नाम डेसजारडिंग्स था।"

(१४)
इटलीकी एक लड़की

"जब मैं छोटी लड़की थी तो एक बार सर्वप्रथम मैंने इटलीकी यात्रा की। जैसे ही रेलगाड़ी चली, मैं उत्तेजित और बेचैन हो उठी। डिब्बेके भीतर और बाहर घूमने तथा अधिकांश समय गलियारेमें रहनेके कारण मेरे परिवारवाले खीझ गये। मैं चुप हो गयी और खिड़कीके किनारे एक छोटेसे चौड़े स्टूलपर बैठ गयी। मैं यह अनुभव करती थी कि हमारी रेलगाड़ी धीरे-धीरे ऊँचाईपर चढ़ रही थी। मैं सहसा बोल उठी—'दाहिनी तरफकी अगली नुक्कड़की पहाड़ीपर एक गिरजाघर दिखायी देगा और वहाँ वही एकमात्र भवन है। अकेला होनेसे वह वातावरणपर हावी है। आस-पास कोई गाँव नहीं है।' और शीघ्र ही वह सामने आ गया।

"मैं पुनः कहने लगी—'फिर आगे बायीं ओर एक नाला दिखायी देगा, जिसके किनारे ऊँचे और काले रंगके पेड़ उगे हुए हैं। उसके आगे चाँदी-रंगके पत्तोंवाले पेड़ोंका झुंड पहाड़ीके किनारे दिखायी देगा।' परंतु चाँदी-से पत्तोंवाला क्यों? मैं आश्चर्य करने लगी; क्योंकि वृक्षोंके सम्बन्धमें मेरा ज्ञान बहुत अल्प था। मैंने इसके पूर्व जैतूनके बगीचे नहीं देखे थे। जैसे ही वे दिखायी देने लगे, मुझे बतलाया गया कि वे कैसे थे।

"मुझे पुनः कभी भी ऐसा अनुभव नहीं हुआ जैसा इस समय हुआ था कि मैं एक ऐसे देशमें प्रवास कर रही हूँ, जिसे मैं अच्छी प्रकारसे जानती हूँ, यद्यपि मेरी जानकारीमें मैंने इसके पूर्व इसे कभी नहीं देखा था।

"उसके बाद अपने कुछ फ्रेंच मित्रोंके साथ मैं पेरिस देखने गयी थी। हमलोग एक भवनके किवाड़ खुलनेकी प्रतीक्षामें थे। कुछ कारीगरोंने हमारा स्वागत किया और

उनमेंसे एक मेरी ओर बढ़कर इटालियन भाषामें बातचीत करने लगा। मैंने फ्रेंच भाषामें उसे उत्तर दिया कि 'मैं इटालियन भाषा नहीं जानती।'

'परंतु तुम तो इटालियन हो, क्या तुम इटालियन नहीं हो! तुम्हें इटालियन ही होना चाहिये और मुझे विश्वास है कि तुम इटालियन ही हो। मैं भी उसी देशका हूँ।' उसने टूटी-फूटी फ्रेंच भाषामें प्रतिवाद करते हुए कहा।

"तभी मैं अपनी उस यात्राका विचार करने लगी और मुझे इटली-सम्बन्धी प्रत्यक्ष जानकारीका भी ध्यान हो आया और अब इस कारीगरका आग्रह है कि मैं इटलीकी रहनेवाली हूँ।

"क्या मैं किसान महिलाके रूपमें उस छोटेसे पहाड़ी गिरजाघरमें गयी-आयी हूँ अथवा उन देवदारके-से वृक्षों और जैतूनके बगीचेमें भटकनेके लिये छोड़ दी गयी कोई गैर-ईसाई हूँ? मैं समझ नहीं पा रही थी।"

(१५)

आस्ट्रेलियाकी पुनर्जन्मसम्बन्धी घटना

श्रीअर्नेस्ट ब्रिग्ग—

अभी थोड़े दिन पूर्व आस्ट्रेलियासे एक घटना प्राप्त हुई है। इसके अनुसार श्रीअर्नेस्ट ब्रिग्ग (Earnest Brigg) को मिस्रदेशमें अपने पूर्वजन्मकी स्पष्ट स्मृति है।

(१६)

फ्रा राजसुथाजार्न

पुनर्जन्मकी सभी घटनाओंको दूरदर्शन अथवा दूरानुभूति कहकर उनका विवेचन नहीं किया जा सकता। इन विकल्पोंका मूल्याङ्कन करनेके बाद अब मैं आपके सामने थाईलैंडकी एक घटनाका विवरण प्रस्तुत करता हूँ—

एक दुबले-पतले योगी-जैसे दिखायी देनेवाले बौद्ध भिक्षु थाईलैंडके नाखोन सावन गाँवमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक साधारणसे ग्रामीण घरके बरामदेके कोनेकी ओर संकेत करते हुए शान्त तथा सहज स्वाभाविक ढंगसे कहना आरम्भ किया कि 'किस प्रकार ४९ वर्ष पूर्व यहींपर अपनी मृत्यु हो जानेपर उन्होंने शोक मनानेवाले लोगोंको अपनी चटाईके चारों तरफ देखा था। उसपर उनका शव रक्खा हुआ था। उन्होंने स्वयं अपनी दाहक्रियाको देखा था और अपनी छोटी बहनके लड़केके [illegible] पुनर्जन्म हुआ था। उन भिक्षुका नाम फ्रा र[illegible] (Phra Rajasuthajarn) है और वे [illegible] बौद्ध संघके अत्यन्त सम्मानित सदस्य हैं। व[illegible] पुनर्जन्मकी कथा सबको भलीभाँति ज्ञात है। उनके सम्बन्धियोंद्वारा इन तथ्योंकी पूरी तरहसे पुष्टि [illegible] है। जैसे ही उन्होंने बोलना आरम्भ किया था, त[illegible] अपनी इस समयकी माँको बहन कहकर सम्बोधन [illegible] और अपने सभी सम्बन्धियोंके नाम बताकर उन्हें [illegible] लिया था। उन्होंने गत जीवनकी घटनाओंकी बहुत [illegible] जानकारी प्रदर्शित की है, जिसे सम्भवतः वे इस [illegible] नहीं जान सकते थे।

(१७)

रूबीका मामला

यदि पुनर्जन्मका सिद्धान्त मान लिया जाय [illegible] कहना बड़ा अजीब लगता है कि व्यक्तिका अपनाप[illegible] हो जाता है। यदि इसका तर्कसंगत परिणाम निक[illegible] तो मतलब यही होगा कि एक दूसरे आदमीके [illegible] वजहसे एक नये व्यक्तिको मुसीबत भुगतनी पड़[illegible] यह बात युक्तिकी कसौटीपर खरी नहीं उतरती।

सन् १९६२में लंकाके बाटापोला गाँवमें रूब[illegible] पैदा हुई। उसका बाप सीमन सिल्वा एक डाकि[illegible] रूबी जब बोलने लगी तो वह प्रायः अपने गत [illegible] बातें करती।

वह कहती—'वह एक लड़का थी। उसका घर वहाँसे चार मील दूर अलुथवाला गाँवमें [illegible] रूबीका दावा था कि उसका पुराना घर [illegible] घरसे बहुत बड़ा था और उसके पास बहुतसे पाजामे [illegible]

कुछ दूसरी बातें

उसकी वह माँ इस माँसे बहुत गोरी थी। वह [illegible] और कपड़े पहनती थी। घरमें खानेको बहुत [illegible] नारियलकी भरमार थी। इस माँ सोमी मोनाके प[illegible] भोजनमें डालनेके लिये भी अक्सर नारियल नहीं [illegible]

बच्चीने अपने माँ-बापको यह भी बताया [illegible] स्कूलमें पढ़ती थी। एक बार उसकी प्यारी [illegible] उसे अलुथवाला नंदराम मन्दिर ले गयी,

बरामदेमें किताबें रखनेका एक बक्सा रक्खा हुआ था। उसे यह भी अच्छी तरह याद है कि उसकी चाचीने उसे वह पेंसिल उठा लेनेको कहा, जो बक्सेमेंसे गिर गयी थी।

कुएँमें गिरना

उसे यह भी याद था कि उसने मन्दिरके अहातेमें नेली फल भी खाया था। मन्दिरके आँगनके बीचोंबीच नेलीका एक पेड़ था, जिससे वह फल गिरा था। अपने पहले बापके बारेमें उसका कहना था कि वह मोटर-बस चलाता था और जब भी घर आता था, टमाटर और शक्कर लाता था।

रूबी अपनी पहली मौतका जिक्र जब भी करती थी तो उसके माता-पिता बड़ी उलझनमें पड़ जाते थे। उसका कहना था कि फसलकी कटाईमें हाथ बँटानेके बाद जब वह घर लौटी तो कुएँपर अपने पैर धोने गयी। अचानक उसका पैर फिसला और वह कुएँमें गिर पड़ी। उसने हाथ ऊपर करके शोर भी मचाया, परंतु किसीने सुना नहीं।

रूबीके पुराने माता-पिता श्री और श्रीमती पुंचीनोनाको ढूँढ़ निकालना मुश्किल नहीं था। उनका बेटा करुणासेना १९५६ में मरा था। उन्होंने उसके कुएँमें डूब जानेकी घटना और दूसरी बातें भी सच बतायीं और कहा कि लड़कीकी सारी बातें बिल्कुल सच हैं।

उसके बाद जाँच-पड़ताल करनेवाले अलूथवाला नंदराम मन्दिर गये। मन्दिरके पुजारीने बताया कि 'लड़कीने मन्दिरके बारेमें जो कुछ कहा है, वह सच है।' उन्होंने किताबें रखनेका बक्सा भी दिखाया और अहातेके बीचों-बीच नेलीका पेड़ भी।

खड़ा होकर चीखने लगा—'वहाँ, वहाँ मेरी माँ रहती है!'

माँने बच्चेकी सचाईकी तह तक पहुँचनेकी ठान ली। लौटते समय उन्होंने एक कार ली और वहीं आये। यहाँ आते ही बच्चा गाड़ीसे उतरने लगा—'मेरी माँ यहीं रहती है।'

बच्चा श्रीमती सेनेविरत्नेके घरकी ओर भागा जा रहा था। पड़ोसके लोगोंने उसे पकड़कर कारतक पहुँचाया। उसके माँ-बापको पता चला कि पाँच साल पहले यहाँके आदमीका बच्चा खो गया था।

शाम हो चुकी थी। इसलिये जयसेनाने सेनेविरत्नेको परेशान नहीं करना चाहा। बच्चेसे फिर यहाँ लानेका वादा करके उसे वापस ले आये। बादमें बच्चेके मामा बड्डेगामा सेनेविरत्नेसे मिले। उन्होंने उनसे सब कुछ बताया और बच्चेको पहचाननेके लिये लानेका दिन निश्चित हुआ।

उसे कुछ मिठाईकी गोलियाँ दी गयीं कि वह अपनी असली माँको दे दे। कार धीरे-धीरे जा रही थी और जब एक सड़कसे मुड़ी तो बच्चेने खड़े होकर ड्राइवरसे कहा—'उधर नहीं, वहाँ चाली चाचा रहते हैं। मेरा घर दूसरी सड़कपर है।'

फिर बच्चेसे कहा गया कि 'वह आगे-आगे चले।' वह सीधे अपने घर पहुँचा और भीड़को चीरता हुआ श्रीमती विनी सेनेविरत्नेके पैरोंपर उसने मिठाईका पैकेट रख दिया। वह ऐसे मिला, जैसे किसी अपने घरवालोंसे बहुत दिन बाद मिल रहा हो। बच्चेने अपने भाईको भी पहचान लिया और उसे असली नामसे पुकारते हुए अपनी असली माँको याद दिलाया कि 'एक बार उसके भाईने उसे पीटा

भक्तिमती देवी श्रीभिरावाँ बाईजी [पृष्ठ ५३४]

इटलीके डा० प्रैस्टोन उगूसियोनी [पृष्ठ ५४०]
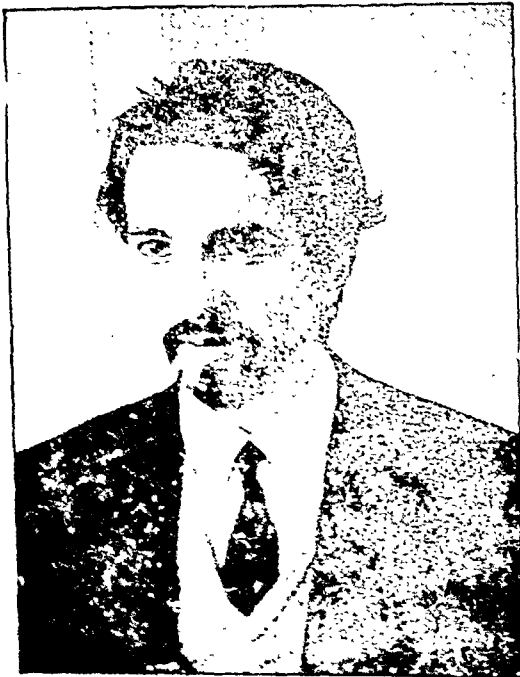
स्विट्ज़रलैण्डके गैब्रियल उराइच [पृष्ठ ५३९]

फ्रांसकी थिरीज गे [पृष्ठ ५४१]

आस्ट्रियाकी एलेक्जेण्ड्रिना [पृष्ठ ५४२]

लंकाकी रूबी कुसुमा [पृष्ठ ५४६]

आस्ट्रेलियाके श्रीअर्नेस्ट ब्रिग्ग [पृष्ठ ५४६]

जैनीफर और गेलियन [पृष्ठ ५४८]

गेलियनको उनके माता-पिता अपनी दिवंगत
ोंका पुनर्जन्म मानते हैं। जोआना (११ वर्षकी) और
ीन (६ वर्षकी) नार्थवरलैंडके अपने गाँव हैक्समसें, जहाँ
परिवार उस समय रहता था, एक दूसरीका हाथ थामे
की ओर जा रही थीं कि वे एक मोटरकारके
आ गयीं।

जुड़वाँ बच्चोंके बाप श्रीपोलकने कहा—'मैंने रोमन
लिक धर्म अङ्गीकार कर लिया है। इसलिये मुझसे कहा
ा है कि मैं पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं कर सकता।
न मेरी पत्नी और मैं इतने दिनोंसे जो कुछ देख और
रहे हैं, उसके कारण मैं अब यह बात मान
सकता।'

लड़कियोंकी मौतके बाद जब श्रीमती पोलक दुबारा
ती हुई तो श्रीपोलकको विचित्र आभास होने लगा कि
ी बेटियाँ उनके पास वापस आ रही हैं। वे नहीं
ते थे कि इसपर विश्वास करें और उनकी पत्नी तो
सुनना भी नहीं चाहती थी। लेकिन गर्भावस्थाके दिन
होते-होते यह भावना बहुत ही प्रखर हो गयी और
ोंने अपनी पत्नीकी डाक्टरी परीक्षा करायी।

पुराने निशान

डाक्टरने कहा कि 'इस बातकी बिल्कुल कोई सम्भावना
है कि वह एकसे ज्यादा बच्चेको जन्म दे; क्योंकि
एक ही हृदयकी धड़कन और एक ही शिशुके हाथ-
का पता चला है।' एक सप्ताह बाद जुड़वाँ शिशुओंका
म हुआ।

श्री और श्रीमती पोलकका ध्यान आकर्षित करनेवाली
ली चीज थी कि जैनीफरके माथेपर दायीं आँखकी
उभरने लगीं। वह लिखनेमें स्वाभाविक रुचि लेने लगी
और कलम या पेंसिलको अपने दायें हाथके बीचकी
अँगुलियोंमें थामनेकी और पहली अँगुलीसे चलानेकी उसे
विचित्र आदत पड़ गयी।

गेलियन, जो जोआनासे मिलती-जुलती है, पर उसकी
समानताएँ इतनी स्पष्ट नहीं हैं। वे ऐसी चीजें हैं, जिन्हें
माता-पिता ही आसानीसे देख सकते हैं। उदाहरणके लिये छोटे
बच्चोंके प्रति उसका वही व्यवहार और उनके लिये वही
प्यार, उसी तरह अपनी बहनको हाथ थामकर घुमाना,
वैसी ही दुबली-पतली, वही स्वभाव और ढंग।

'डैडी, देखो!'

गेलियनको जैनीफरका चेहरा प्यारसे दोनों हाथोंमें
लिये यह बताते देखा गया कि जैकेलीनको गिरनेपर कैसे-
कैसे चोट आयी थी। वह जो कुछ बता रही थी, वह सब
सही था। एक मौकेपर जब श्रीपोलकने संयोगसे पुराने
खिलौनोंके एक पार्सलको, जो उन्होंने जोआना और
जैकेलीनकी मौतके बाद अलग रख दिया था, निकाला तो
गेलियनने गुड़ियोंके धुले कपड़े निचोड़नेवाला रिंगर छीन
लिया और बड़े आवेशमें बोली—'डैडी, देखो, वह
मेरा रिंगर है।' असलमें वह जोआनाको दिया गया था।

इसी तरह जब जैनीफरने जैकेलीनकी गुड़िया देखी
तो वह भी चिल्ला पड़ी—'वह मेरी है।' जैकेलीन इस
गुड़ियाको ठीक 'मेरी' के ही नामसे पुकारती थी, हालाँ कि
जेनीफरने यह गुड़िया इससे पहले कभी नहीं देखी थी।

पहचान

एक और अवसरपर श्रीपोलक कुछ रँगाई कर रहे
थे और उन्होंने अपने कपड़ोंको बचानेके लिये ऊपरसे

पुनर्जन्ममें एक शरीरके शारीरिक चिह्नोंका दूसरे शरीरमें चले जाना बल्कि दूसरे शरीरपर उत्पन्न हो जाना कोई असाधारण बात नहीं है ।

(२१)

कुरान और पुनर्जन्म

टर्कीकी एक घटना (इस्माइल)

यद्यपि हिंदुओं, बौद्धों तथा जैनियोंका युगोंसे पुनर्जन्ममें विश्वास है, तथापि इस्लाम आदि कुछ धर्म लौकिक दृष्टिसे इस सिद्धान्तमें विश्वास नहीं करते । इस्लाममें पुनर्जन्मके स्वरूपके लिये कोई स्थान न होनेपर भी कुछ विद्वानोंने कुरानसे इस प्रकारके उद्धरण दिये हैं, जिनसे पुनर्जन्मके सिद्धान्तको समर्थन प्राप्त होता है । इस प्रकारके उद्धरणमें कहा है कि 'पृथ्वीमें विचरण करो और देखो कि उस (ईश्वर) ने किस प्रकार जीवोंको जन्म दिया है । इसके पश्चात् (सृष्टिकी दूसरी आवृत्ति होनेपर) वह उन्हें फिरसे जन्म देगा; क्योंकि अल्लाह (ईश्वर) सर्वशक्तिमान् है ।'

तुर्कीकी एक घटना

'मैं यहाँ रहते-रहते थक गया हूँ, मैं वापिस अपने घर तथा बच्चोंके पास जाना चाहता हूँ ।' यह उद्गार किसी अकेले रहनेवाले बूढ़े आदमीके नहीं थे, जो अपने स्वजनोंका परित्याग करके अकेला रहनेके लिये विवश किया गया हो, अपितु एक बालकके थे ।

इस्माइल तुर्किस्तानके जिला अडानामें सन् १९५६ ई० में एक पंसारी मिश्रित कसाई-परिवारमें उत्पन्न हुआ था । जब कि वह केवल १८ मासका शिशु था, तब वह अपने पिछले जीवनकी बात इस प्रकार बड़बड़ाता था । अपने पिताके साथ बिस्तरमें लेटे-लेटे उसने इस बातको स्वीकार किया 'मैं यहाँ रहते-रहते थक गया हूँ । मैं अपने बच्चोंमें अपने घर वापस जाना चाहता हूँ ।'

पिछला जीवन और अलबैत सुजुल्मस (Albeit Suzulmus)

इस्माइलने कहा कि 'वह वास्तवमें अलबैत सुजुल्मस है, जिसकी हत्या की जा चुकी है । लड़केके सिरपर रेखाका निशान जन्मसे था, जो उसकी माताके कथनानुसार सन् १९६२ तक स्थित रहा । इस संदर्भमें यह याद रखना समीचीन है कि अलबैत सुजुल्मसकी मृत्यु सिरमें चोट लगनेसे हुई थी ।

अलबैत सुजुल्मस बाजारका एक धनाढ्य बागवान (माली) था, जो जिला मिदिकके बहादेहे भागमें रहता था । चूँकि उसकी प्रथम पत्नी हतीससे कोई संतान नहीं थी । उसने उसको तलाक दे दिया और एक दूसरी स्त्रीसे विवाह कर लिया । उसकी दूसरी पत्नी साहिदासे उसे कई संतानें उत्पन्न हुईं । फिर भी अलबैत हतीसका भी भरण-पोषण अपनी ही जायदादसे करता रहा, जो उसके पड़ोसमें रहा करती थी । वह स्वयं साहिदा तथा बच्चोंके साथ दूसरे मकानमें रहता था ।

अलबैत सुजुल्मसने अपने बागमें काम करनेके लिये किसी दूसरे नगरसे कई मजदूर कामपर लगा रक्खे थे । एक दिन किसी अज्ञात कारणवश इन्हीं मजदूरोंने अलबैतको मार डाला । मजदूर उसे घोड़ोंके अस्तबलमें ले गये और सिरपर आघात करके उसका वध कर दिया । उसकी चिल्लानेकी आवाज सुनकर साहिदा और उसके दो बालक घटनास्थलपर दौड़कर पहुँच गये । लेकिन हत्यारोंने उनको भी मार डाला और वे भाग गये । एक सप्ताहके पश्चात् हत्यारे पकड़े गये । उनपर मुकदमा चला और उनकी सजा हुई ।

बालककी अपने पुराने घरकी लालसा

इस्माइल यह समझता है कि वह अलबैत सुजुल्मस ही इस्माइल होकर पैदा हुआ है । उसने बार-बार अपने घरके लोगोंसे कहा कि उसे अलबैतके घर जाने दें । पहले तो उन लोगोंने लड़केका आग्रह इसलिये नहीं पूरा किया कि व्यर्थका झंझट होगा । साथ ही वे उसे इस दावेसे प्राप्त भी करना चाहते थे । लेकिन बादमें इरोल अर्ककी सम्मति मानकर वे मान गये । इस्माइल, जो उस समय केवल ३ वर्षका था, उन्हें मार्ग बताकर अलबैतके लगभग पौन मील दूर मकानपर ले गया । वहाँ पहुँचनेपर उसने अलबैतके परिवारके सभी सदस्योंको पहचान लिया और हतीसको गले लगाया । उसने अपने साथमें गये हुए माता-पिताको अचम्भित करते हुए अलबैतकी परिचित सब वस्तुओं तथा लोगोंको पहचाना । यादमें अलबैतकी एक लड़की इस्माइलसे मिलने गयी । उससे इसने घण्टों बातचीत की । इससे उसको पक्का विश्वास हो गया कि वही उसका पिता है, जिसने फिरसे जन्म धारण किया है ।

विचित्र प्यार

इस्माइल सदैव अपने पुराने कुटुम्ब तथा सगे-सम्बन्धियोंके विषयमें विचार करता रहता है। कभी-कभी यह उसके माता-पिताके लिये समस्या बन जाती है। एक समय जब इस्माइलका पिता, मेहमत अल्तिनक्लिश कुछ तरबूज ले आया। तब इस्माइलने इच्छा प्रकट की कि उनमेंसे सबसे बड़ा तरबूज उसकी लड़की गुलशरीनके लिये भेजा जाय। जब उसके पिताने ऐसा करनेसे इन्कार कर दिया, तब वह बुरी तरहसे रोने लगा। वास्तवमें मेहमत अधिक धनी नहीं है और वह इस्माइलके पहले जन्मके परिवारके लिये उपहार नहीं भेज सकता। कभी-कभी इस्माइल अपने माता-पिताके साथ एक वयस्क व्यक्तिकी तरह व्यवहार करता और उसके माता-पिता उसमें अपने अन्य बालकोंकी अपेक्षा अधिक समझदारी पाते। वह डटकर राकी पीता है और अलबैत भी खूब राकी पीनेके लिये कुख्यात था।

इस्माइलका एक पिछले हिसाबको तय करना

एक मेहमत नामक कुल्फी-मलाई बेचनेवाला एक बार मिदिक जिला गया। इस्माइलने उसे पुकारा और उससे पूछा कि 'क्या वह उसे पहचानता है?' जब कुल्फी-मलाई बेचनेवालेने स्पष्टतः इन्कार कर दिया, तब इस्माइलने कहा कि 'तुम मुझे भूल रहे हो। मैं अलबैत हूँ। पहले तुम कुल्फी-मलाई नहीं बेचते थे, बल्कि तरबूज और साग बेचा करते थे।' उस मनुष्यने इस परिवर्तनको स्वीकार किया और लड़केसे बहुत देर बात करनेके पश्चात् उसने निश्चय किया कि वह अलबैत ही है, जो अब फिरसे पैदा हुआ है। जब इस्माइलने अपने पिताको कुल्फी-मलाईका दाम देते हुए देखा तब वह बीचमें बोल उठा—'कुल्फी-मलाईका दाम मत दीजिये पिताजी! इसे पहले ही मेरे तरबूजके दाम देने हैं।' मेहमतने अलबैतका वह कर्ज स्वीकार किया।

यह एक वास्तविकता है अथवा धोखा?

क्या इस्माइलका उदाहरण एक धोखा है? कौन जाने। किंतु तत्काल ही कुछ विचार मनमें उठते हैं। कोई आर्थिक लाभ नहीं हुआ। वास्तवमें मेहमत अल्तिनक्लिशने इनके विषयमें सब पूछताछको, अपने समय तथा धनपर अवाञ्छित हस्तक्षेपके रूपमें देखा है। इसके अतिरिक्त वे तथा उसके परिवारके लोग इस बातसे भी सदैव भयभीत रहते हैं कि बालक किसी समय भी अपने पुराने परिवारमें वापस जा सकता है। क्या यह भी सम्भव है कि मेहमत अल्तिनक्लिशने इस बालकके साथ एक धोखा-धड़ी करनेके लिये साझेदारी कर ली हो; क्योंकि उसने अलबैत सुजुल्मसका काम करते हुए उसके परिवारकी बहुत-सी जानकारी इकट्ठी कर ली थी। इस सम्भावनाको भी अस्वीकार करना होगा; क्योंकि स्वतन्त्र मुखबिरोंकी जानकारीके अनुसार कुछ ऐसे तथ्योंकी जानकारी मेहमतको नहीं थी, जिनका उल्लेख अलबैतके सम्बन्धमें इस्माइलने किया था। न ही इसका विवेचन 'प्रच्छन्न स्मृतिलोप' कहकर किया जा सकता है; क्योंकि यह सम्भावना अलबैतके परिवारके सदस्योंकी पहचानके साथ जुड़े हुए भावनात्मक पक्षका कोई उत्तर नहीं देती।

(२२)

पिछले जन्मके हत्यारेका नाम बतानेवाला बालक नेकाती उनलकास्किरोन

नेकाती उनलकास्किरोन जब उत्पन्न हुआ तब उसके माँ-बापने उसका नाम 'मलिक' रक्खा था; किंतु केवल दो ही दिन बाद उसकी माँ सेलिलेको सपना आया कि नवजात शिशु अपना नाम 'मलिक'के बदले 'नेसिप' रखनेके लिये हठ कर रहा है। उनके निकट-सम्बन्धियोंमें नेसिप नामक एक बालक पहले ही मौजूद था और इस अन्धविश्वासके कारणसे कि दो बच्चोंका नाम एक ही रख देना परिवारके लिये अशुभ हो सकता है, उन्होंने 'मलिक'का नाम 'नेकाती' रख दिया।

जब नेकाती बोलने-चालने लगा तो वह अपने पिछले

हुए घावोंके निशान हों।

जब नेकातीको नेसिपके घर ले जाया गया तो उसने अपनी बीबी जेहराको फौरन पहचान लिया। उसने एकके अलावा बाकी सभी बच्चोंको भी पहचान लिया और उनके नाम बताये। पता चला कि यह बच्चा उसकी मौतके बाद पैदा हुआ था। जेहराको नेकातीकी यह बात सुनकर अचम्भा हुआ कि 'एक बार नेसिपने गुस्सेमें उसकी टाँगपर चाकूसे वार किया था।' जेहराकी जाँघपर उसी जगह पुराने घावका एक लम्बा निशान इस कथनके सबूतके तौरपर मौजूद था। नेकातीने यह भी बताया कि 'जिस दिन नेसिपको दफनाया गया था, उस दिन बड़ी तेज वर्षा हो रही थी।' जेहरा और दूसरे लोगोंने इस बयानकी सच्चाईकी तस्दीक की।

इससे पहले कि हम नेसिप बुदकके नेकातीके रूपमें पुनर्जन्मकी सम्भावनापर गौर करें, हमें कुछ ठोस सचाइयों-पर विचार कर लेना चाहिये।

नेकातीका जन्मस्थान अपना शहर, जहाँ वह रहता है, मेरसिनसे, जहाँ नेसिप बुदक रहता था, लगभग ७४ किलो-मीटर दूर है। इसलिये मुमकिन नहीं कि नेकातीको नेसिपके बारेमें वैसे ही मालूम हो गया हो, जैसे कि लोगोंको अपने पड़ोसियोंके बारेमें हो जाता है।

दूसरे, नेकातीके दावेसे पहले दोनों परिवार एक दूसरेसे बिल्कुल अपरिचित थे। इसलिये नेकातीको नेसिपके बारेमें इस तरह भी मालूम नहीं हुआ, जिस तरह कि दूर-

नहीं दिया है। इसके अलावा दूरानुभूतिकी विद्या सिर्फ लोगोंको सही-सही पहचान लेनेकी शक्ति नहीं देत नेसिपसे सम्बन्धित थे।

(२३)

लूना मार्कोनी

जब लूना मार्कोनी अपने माता-पितासे यह कहने कि 'मैं अपने घर फिलिपाइन्स लौट जाना चाहती हूँ' समय उसकी उम्र तीन सालकी थी।

इस समय वह सात वर्षकी है और कोपेनहेगेन, डेनमा रहती है। उसने यह भी कहा कि 'मेरा नाम 'मारि एस्पिना' था। मेरे पिता एक रेस्तराँके मालिक थे।'

उसने बताया कि "मेरा घर हाई वे ५४ पर गिरजाघ पास था। मैं फिलीपीनी समारोह 'फीस्ते' में शरीक हो थी। इसमें उपनगरोंके लोग शहर आते थे। मुझे नारियल मिठाई 'बोकन' बहुत अच्छी लगती थी। मैं ईंगुका 'कार पहनकर हर रविवारको गिरजाघर जाती थी।" उसने यह भ कहा कि 'मैं मैकोपापल—फिलिपाइन्सके भूतपूर्व प्रेसिडेंटक बारेमें बहुत-सी बातें सुना करती थी।' उसकी मौत बारह सालकी आयुमें बुखारसे हुई थी।

यह लेखक इस लड़कीके दावोंकी तस्दीक करनेके लिये फिलीपाइन्स गया। मुझे हैरानी हुई कि जो कुछ बातें उसने बतायी हैं, सब सही हैं। उन्हें पहलेसे जाननेका साधन उसके पास बिल्कुल नहीं था। लड़कीके माँ-बाप उसे पिछले जन्मकी बातें करनेसे सदा रोकते रहे हैं।

दुर्व्यवहारसे खीझकर उसे एक चपत लगा दी। बच्चेने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा—'माँ! मुझे मारो मत। मैं अपने गाँव इतरानी वापस चला जाऊँगा। मैं उस गाँवका रहनेवाला भजनसिंह हूँ। मेरी पत्नी है, तीन भाई हैं, माँ है और एक लड़की है। मेरा घर है, कुआँ है, बगीचा है और खेत है।'

अपने चार सालके लड़केकी ऐसी अनर्गल बातें सुनकर भगवती देवी आगबबूला हो गयी। अच्छी खासी पिटाईसे वह लड़का उस समय चुप हो गया।

परंतु जैसे-जैसे वह बड़ा होने लगा, उसने अपने सहपाठियोंको यह बतलाना आरम्भ किया कि उसकी पत्नी तथा परिवार है। इसके कारण वह शीघ्र ही अपने सहपाठियोंमें उपहासका विषय बन गया।

सहसा एक दिन उसने अपने दादा ठाकुर नेत्रपालसिंह-को भी वही कहानी सुनायी। इस कहानीने ठाकुरके मनमें एक कौतूहल जाग्रत् कर दिया। तब उसने इतरानीके एक व्यक्तिसे यह पूछताछ की कि 'क्या वहाँ कोई भजनसिंह नामका व्यक्ति भी था?' उस व्यक्तिके विचारमें वहाँ इस नामके एक सज्जन थे।

शीघ्र ही उसके दादा इतरानी गये और वहाँ उन्हें यह पता चलते देर नहीं लगी कि वहाँ भजनसिंह नामका एक व्यक्ति अवश्य था, जो अपनी पत्नी तथा एक पुत्रीको पीछे छोड़कर सन् १९५१में ही ज्वरसे चल बसा था।

मुनेशका जन्म सन् १९५१में वीरेन्द्रपालसिंहकी पत्नीसे

भजनसिंहकी विधवा स्त्रीके पास संवाद पहुँचना

बहुत शीघ्र ही यह समाचार भजनसिंहकी विध पत्नी अयोध्यादेवीके पास पहुँच गया, जो विसारा ग्रा अपने पिताके घरपर रह रही थी। आश्चर्य तथा जिज्ञास भरकर वह अपनी भावजके साथ चाँदगरीके लिये च पड़ी। वे दोनों ही लंबी तथा दुबली-पतली थीं ओ दोनों एक-जैसे कपड़े पहने हुए थीं। दोनों ही उसी प्र परदेमें थीं, जिस तरह कि जनतामें अपनी पहचान छिपाये रखनेके लिये भारतीय महिलाएँ घूँघट काढ़ा क हैं। जब वे चाँदगरी पहुँचीं तो गाँववाले इकट्ठे हो और मुनेशको वहाँ बुलवाया गया।

मुनेश इन महिलाओंको वास्तवमें जानता है अथ नहीं, इस बातकी परीक्षा करनेके लिये उसके ताऊने उ पूछा कि 'क्या तुम अपनी माँको पहचानते हो?' मुने उत्तर दिया कि 'इनमें उसकी माँ नहीं है और वे दो उसकी पत्नी तथा उसकी भावज हैं।' अचानक लड़ अयोध्यादेवीका हाथ पकड़ लिया। उस विधवाने वस्त्र भयसे उस लड़केको एक ओर करते हुए पूछा—'हम जीवनके किसी ऐसे विशिष्ट प्रसङ्गका वर्णन करो, जि मुझे यह विश्वास हो सके कि तुम मेरे पति हो और रूपमें फिरसे तुमने जन्म लिया है।' किसी भी प्रका तनिक-सी भी हिचकिचाहटके बिना मुनेशने कहा—'जब आगरासे अपनी इन्टरमीडियटकी परीक्षा देकर इतर वापस लौटा था तो मुझे पता चला कि मेरी माँ

सालकी भी नहीं हुई थी कि उसी जिलेके जूनागढ़में अपने पिछले जन्मकी बातें बताने लगी। उसने कहा कि 'मेरा नाम राजूल नहीं, गीता था।'

पहले तो उसके माता-पिताने उसकी बातोंको बच्चेकी खयाली उड़ान समझा और इसलिये जब भी वह पिछले जन्मकी बातें याद करती, वे उसे हतोत्साहित करते।

लेकिन उसके दादाजी वजुभाई शाहने उसके दावोंकी जाँच-पड़ताल करनी चाही। उन्होंने अपने दामाद सुरेन्द्रनगरके प्रेमचंदसे जूनागढ़ जाकर यह पता लगानेको कहा कि 'क्या हालमें गीता नामकी किसी लड़कीकी मृत्यु हुई है?'

जूनागढ़ म्युनिसिपैलिटीसे प्रेमचंदको पता चला कि टैली स्ट्रीट, जूनागढ़के गोकुलदास ठक्करकी बेटी गीताकी मृत्यु अक्तूबर १९५९ में हुई थी। उस समय वह ढाई सालकी थी।

राजूलके दादाजीको जब इतनी बात मालूम हुई तो उन्होंने इसकी और भी जाँच-पड़ताल करनेका फैसला किया। इसलिये वजुभाई सन् १९६५में राजूलको और अपने कुछ रिश्तेदारोंको साथ लेकर जूनागढ़ पहुँचे। उन्होंने यहाँ आनेसे पहले वे सब बातें, जो राजूल कहती थी, लिख ली थीं।

फिर वे सब घरके अंदर गये, जहाँ राजूल कान्ताबेनको भाभी कहकर बुलाने लगी। एक अपरिचित लड़कीके मुँहसे यह शब्द सुनकर कान्ताबेनको बड़ा अचम्भा हुआ; क्योंकि उन्हें सिर्फ उन्हींके बच्चे 'भाभी' कहते थे। ऐसा ही आश्चर्य शाह-परिवारको भी हुआ; क्योंकि उनके बच्चे माँको 'बा' कहते थे।

अगली सुबह ये लोग राजूलके साथ टहलने निकले। वे मन्दिरकी ओर जा रहे थे। राजूलसे पूछा गया—'क्या तुम मन्दिरको पहचानती हो?' लेकिन राजूलने मन्दिरके बजाय एक घरकी ओर इशारा किया और कहा कि 'वह माँके साथ पूजा करने उस मन्दिरमें जाया करती थी।' बाहरसे वह स्थान साधारण मकान-जैसा लगता था, लेकिन बादमें मालूम हुआ कि वह सचमुच मन्दिर था और खास मौकोंपर ही खुलता था। इस महत्त्वपूर्ण ब्योरेने सभीको आश्चर्यमें डाल दिया। जब राजूलको गोकुलदासके घर दुबारा ले जाया गया तो उसके व्यवहारसे कान्ताबेनके प्रति गहरे भावनात्मक लगावका परिचय मिला।

कान्ताबेन रसोईघरमें चाय बना रही थी। राजूल फौरन उसके पास दौड़कर गयी और कहने लगी 'मैं तुम्हारे ही साथ चाय पिऊँगी माँ।'

'जी हाँ, मेरे तीन भाई थे और उनमेंसे एकने मुझे ोलीसे मार डाला।'

यह बातचीत दिल्लीमें एक गुप्ता और उनके बेटे ालकी है।

गोपालका जन्म १९५६ में हुआ था। बातचीतके ान उसने कहा कि 'वह मथुराका रहनेवाला है और छले जन्ममें उसके 'सुख-संचारक कंपनी' नामक एक ाओंकी दूकान थी।'

गोपालके माता-पिताने इन बातोंको पहले तो कोरी बकवास समझा; किंतु बादमें बच्चेकी बार-बारकी रटको देखकर क दिन पिताने अपने कुछ मित्रोंसे इसकी चर्चा की। उन्होंने हा—'सम्भव है कि बच्चा जो कुछ कहता है, वह ठीक ो; क्योंकि कुछ साल पहले मथुरामें 'सुख-संचारक कंपनी'के ालिक श्रीशक्तिपाल शर्मा गोलीसे मारे तो गये थे।' इसलिये ोपालके पिता मथुरा गये और वहाँ आसानीसे ही शक्तिपाल- के परिवारसे मिलकर उन्होंने सचाईका पता लगाया।

जब श्रीशक्तिपालके परिवारको यह मालूम हुआ कि दिल्लीमें एक लड़का पिछले जन्ममें शक्तिपाल होनेका दावा करता है, तो शक्तिपालकी पत्नी और भाभी दिल्ली आयीं और गोपालसे मिलीं। गोपालने दोनोंको पहचान लिया। उसने भाभीसे तो बात की, परंतु पत्नीसे एक शब्द भी नहीं कहा।

जाँचसे पता चला कि वह अपनी पत्नीसे बहुत नाराज था। 'मैंने इससे पाँच हजार रुपये माँगे थे, पर इसने देनेसे इन्कार कर दिया और कहा कि कंपनीसे जाकर लो। मैं वहाँ गया और मेरे छोटे भाईने मुझे गोलीसे मार डाला।'

श्रीशक्तिपाल शर्माकी विधवाने इस बयानकी तस्दीक की।

मेरी दूकान—

इसके बाद गोपालको मथुरा ले जाया गया कि देखें वह पिछली चीजोंको पहचानता है या नहीं। द्वारकाधीश मन्दिरके पास उससे कहा गया कि वह स्वयं आगे-आगे चलकर 'अपने घर' का रास्ता बताये। लड़का जैसे ही 'सुख-संचारक कंपनी'के पास पहुँचा, उसने जोरसे पुकारकर कहा— 'यह रही मेरी दूकान'।

फिर पेंचदार गलियोंसे होता हुआ वह श्रीशक्तिपालके घरके सामने खड़ा हो गया। उसने कहा—'यह मेरा घर है। मैं ऊपरवाले कमरेमें रहता था।' घरमें उसने शक्तिपालकी बेटीको पहचाना। उसे एक एलबम दिया गया, जिसमें लगे हुए शक्तिपालके सभी फोटोग्राफोंको उसने अपने फोटो बताया।

फिर उससे वह जगह पूछी गयी, जहाँ उसे गोली मारी गयी थी। कहा जाता है कि उसने दुबारा कंपनीमें जाकर ठीक वही जगह बतायी, जहाँ शक्तिपालको गोली मारी गयी थी। उसने पूरी घटनाका वर्णन किया कि वह दूकानमें किस जगह और किस तरह खड़ा था और गोली किस दिशासे आयी थी और उसके कहाँ लगी थी।

शक्तिपालके बेटेने गोपालके बयानोंकी तस्दीक की।

स्वार्थ नहीं—

यह धोखाधड़ीका मामला नहीं लगता; क्योंकि लड़केके माता-पिताने इस घटनाका न कभी प्रचार किया था और न उन्हें इससे कोई आर्थिक लाभ ही हुआ था। धोखाधड़ीके पीछे कोई स्वार्थ होना ही चाहिये।

न इस मामलेको हम स्मृतिकी विकृति या तोड़-मरोड़ ही कह सकते हैं; क्योंकि बच्चेके हर बयानकी तस्दीक हुई। फिर हमारे पास इन बातोंका क्या जवाब है कि उसने बहुत-सी चीजें न सिर्फ सही-सही पहचान लीं, बल्कि अलग-अलग लोगोंके साथ उसका व्यवहार भी ठीक वैसा ही रहा जैसा कि शक्तिपालका था। क्या कोई अति दिव्य निमित्त सम्भव है?

जीवनभर हृदयसे भगवान्‌का स्मरण करो

जैसे कर्म किये जीवनभर जैसे मनमें रखे विचार।
अन्तकालका भाव मनुजका होगा उसके ही अनुसार॥
तदनुसार ही सद्गति, दुर्गति होगी उसे प्राप्त अनिवार।
अतः रखो प्रतिपल ही मधुमय भगवत्स्मृतिमें हृदय उदार॥

प्रसन्न हुए। अब यह प्रश्न यहाँपर बहुत महत्त्वपूर्ण में आ जाता है कि जीवात्माको पुनः उसी शरीरमें आनेमें केवल घंटोंका समय लगा, किंतु उस जीवको प्रतीत हुआ। मुझे यह प्रतीत होता है कि यह ान्तर केवल अनुभवसे ही अधिक और कम ज्ञात है।

(२)

बालक करीम उल्लाह

भारत और पाकिस्तानका बँटवारा १९४७ में हुआ। बँटवारेके बाद बरेलीमें एक मुस्लिम परिवारमें पुनर्जन्म-न्धी घटना घटी। बरेलीमें ही एक प्रतिष्ठित मुसल्मान इकराम अली हैं। उनके दो लड़के बताये गये हैं। एक केस्तानमें हैं और दूसरे भारतमें ही रह गये। भारतमें बरेलीमें) रहनेवाले लड़केका नाम श्रीमोहम्मद फारूक। मोहम्मद फारूककी मृत्यु १९५४ ईस्वीमें हुई और का जन्म उसी सन्‌में बरेलीमें ही एक मुसल्मान-परिवारमें ा। इस घटनाका रहस्य तब मिला, जब मुस्लिम अध्यापक मतुल्लाह अन्सारी ईद मिलने अपने पाँचवर्षीय पुत्रके थ श्रीइकराम अलीके यहाँ पहुँचे। श्रीइकराम अलीके यहाँ न्सारी साहब बच्चोंको पढ़ाते थे और ईदके दिन वे पने बच्चेके साथ मिलने गये। उस मकानमें, जिसमें कराम अली साहब रहते थे, पहुँचकर श्रीअन्सारीके पञ्चवर्षीय ालकने सबको अचम्भेमें डाल दिया और अनेक ौलवियोंको अपने मजहबके विरुद्ध पुनर्जन्म-सिद्धान्तकी ओर आकृष्ट कर दिया। बालकने अपने पूर्वजन्ममें, जब वह ोहम्मद फारूकके नामसे श्रीइकराम अलीका लड़का था, अपने समस्त सामानोंको पहचाना और अपने पूर्वजन्मकी बीबी श्रीमती फातिमा बेगमको भी पहचाना। उनसे बातें भी उसी रूपमें कीं और उसने कई ऐसे रहस्योंको भी उद्घाटित किया, जिन्हें केवल दिवंगत मोहम्मद फारूक और वर्तमान फातिमा बेगम ही जानती थीं। उसने एक बंदूक और अपने भाईके पास पाकिस्तानमें अपने द्वारा भेजे गये पाँच हजार रुपयेका भी रहस्य बताया। उसने यह भी समाचार कई पत्रोंमें छपा था। वाराणसीके 'संसार'में (३ । ७ । ५९) में भी छपा था। इस घटनासे मृत्यु और पुनर्जन्मके ठीक दिनाङ्कका पता तो नहीं चला; किंतु वर्षका पता तो चल ही गया। मोहम्मद फारूक १९५४ में मरे थे और उसी सन्‌में उनका उसी बरेली नगरमें जन्म हो गया था।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णजीने जो घोषणा की है, उसका साधारण अर्थ यदि यही मान लिया जाय कि मरणके बाद जीवात्माको तुरंत दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है तो दूसरा शरीर धारण करनेमें समयका कितना व्यवधान पड़ता है? इसका उत्तर 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' की साधारण व्याख्यासे नहीं मिल सकता। आचार्योंने बहुत प्रकारसे इस श्लोककी व्याख्या उपस्थित की है। बृहदारण्यक उपनिषद्‌में पुनर्जन्मकी व्याख्या विशेषरूपसे की गयी है। जैसे भोजन करनेके बाद उसे पचानेमें कुछ समय लगता है और पचनेके बाद पुनः भोजन करनेकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मरनेके बाद जीवको 'कर्मविपाक'के लिये कुछ समयतक रुकना पड़ता है। कर्मविपाक, एक ऐसा पवित्र और सत्य सिद्धान्त है कि उसकी सत्यता और निश्चयतामें किसीको व्यावहारिक-रूपसे संदेह नहीं होना चाहिये। कुछ उपनिषदों और अन्यान्य ग्रन्थोंमें पुनर्जन्मके विषयमें यह लिखा है कि 'मरणोत्तर जीवात्माको कर्मानुसार सूक्ष्मशरीर, स्थूलशरीर, लिङ्गशरीर आदिमें अपने कर्मोंके फल भोगने पड़ते हैं। जीवके लिये जन्म और मरण—दो ही अवस्थाएँ ही नहीं हैं। इन दोनों अवस्थाओंके बीच प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय अवस्थाएँ भी बितानी पड़ती हैं। इस प्रसङ्गमें भारतीय पुराण-ग्रन्थों और उपनिषदोंमें विशेष उल्लेख प्राप्त होते हैं। मैंने यहाँ कुछ प्रसङ्ग उन घटनाओंसे लेनेका प्रयत्न किया है, जिनमें बालकोंद्वारा अपनी स्मृतिके आधारपर पुनर्जन्मके उल्लेख हुए हैं।

(३)

था। दुर्योगसे समाचारकी तिथि फट जानेके कारण यहाँ उसका निर्देश नहीं किया जा रहा है। घटनाका विवरण निम्न प्रकारसे है—"शाहजहाँपुरका चारवर्षीय बालक अवधेश, जो स्वयंको पूर्वजन्मका कोटाहारका जागीरदार गजेन्द्रसिंह बताता है, प्राप्त सूचनाके अनुसार कोटाहारस्थित भवनमें स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहजीकी विधवाका मेहमान है। उस बालक अवधेशका जन्म 'सिंपुरा' गाँवके एक ठाकुर परिवारमें हुआ है। बताया जाता है कि उसने अपनी माँको, अपने पिछले जन्मकी कथा सुनाते हुए कहा कि, 'उसे उसके पुराने कोटाहार-स्थित भवनमें रहनेका अवसर दिया जाय।' उल्लेखनीय है कि स्वर्गीय गजेन्द्रसिंह कोटाहारके प्रभावशाली जागीरदार थे। एक मामलेके सिलसिलेमें अदालतमें सुनवाई जारी थी कि उसके निर्णय सुनाये जानेके पूर्व बरेली अस्पतालमें उनकी मृत्यु हो गयी। उक्त बालकके हठ तथा पूर्वजन्मके वृत्तान्तकी चर्चा स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहकी पत्नी तक पहुँची तो उन्होंने बालकको अपने पास बुलाया। वहाँ पहुँचनेपर उस बालकने अपने पूर्वजन्मके घरकी प्रत्येक वस्तुको पहचान लिया और अपने परिवारके प्रत्येक सदस्यको, उनके नामोंसे पुकारने लगा। बालककी अनेक बातोंसे उसके कथनकी पुष्टि हो चुकी है। बालकका आचरण स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहके समान देखकर रानी साहिबाने ब्राह्मणोंको भोज तथा गरीबोंको दान देकर हर्ष मनाया।

"पूर्वजन्मकी विविध बातोंमें, उक्त बालक अवधेश उस दुःखद परिस्थितिका भी वर्णन करता है, जिसमें स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहकी दुःखद मृत्यु हुई थी। दूसरी बात यह भी बताते हैं कि 'एक बार शेरका शिकार करते समय वह अपने एक हाथको खो बैठा था।' कहा जाता है कि उक्त बालकने रानी साहिबाको उनके अपने सम्बन्धकी अन्य कितनी ही बातें बतायीं।" ('संसार' वाराणसी)

(५)

बालक लवकुश

यह समाचार भी अन्य पत्रोंके साथ वाराणसीके 'संसार' (२४-९-६१) में प्रकाशित था। "आगरा, ताजगंजके अन्तर्गत कुँआखेड़ाके लवकुश नामक एक बालक (ढाई वर्षीय बालक) के द्वारा अपने पूर्वजन्मकी बातें बताकर, गाँववालोंको आश्चर्यचकित कर देनेका समाचार मिला है। इस बालकको देखनेके लिये सैकड़ों गाँववाले नित्य आ रहे हैं। समाचारोंके अनुसार उक्त बालकने अपने पूर्वजन्मके घाघपुराका नाम बताया, जो कुँआखेड़ासे एक मीलकी दूरीपर है। साथ ही उसने अपने परिवार और अपने नामके बारेमें सारी बातें बतायीं, जो सही साबित हुईं।

"लड़केने बताया कि उसका पूर्वजन्मका नाम 'शिवशरण' है तथा उसको एक रातको कुछ व्यक्तियोंने सोते हुए कत्ल कर दिया। स्मरण रहे कि लगभग ढाई साल पूर्व घाघपुरा गाँवमें शिवशरणसिंहका खून हुआ था, जिसमें लाशके सिरका अभीतक पता नहीं चल पाया है।

"इसके अलावा बालकने बताया है कि मेरे कुछ रुपये घरके एक कोनेमें एक स्थानपर एक गिलासमें गड़े हुए हैं। जिसकी गाँववालोंने जाँच की तो बताये हुए स्थानपर रुपये गिलासमें गड़े हुए मिले।" (संसार २४-९-६१)

पढ़ा-लिखा बाबू उस होटलमें खाता था तो वह शायद मैं ही था। खास बात यह थी कि उस होटलके मालिकके दो लड़के मिलमें काम करते थे। इसलिये मुझसे उनका बहुत काम पड़ता था। इन्हीं कारणोंसे मैं इस होटलका विशेष ग्राहक बन गया था। जिस मेजपर मैं खाना खाता था, उसकी मेरे खानेसे पहले अच्छी तरह सफाई होती थी और त्योहारोंपर जब कोई पकवान बनाया जाता था तो मेरी राय अन्तिम मानी जाती थी। प्रतिदिन मेरी ही पसंदकी सब्जी बनती। मेरी थालीमें ज्यादा दही परोसा जाता। होटलका मालिक गंगाधर पचपन सालका एक वृद्ध, किंतु हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति था। जवानीमें वह अखाड़ा चलाता था। वह मेरी आदतोंसे खूब परिचित हो गया था। मेरे लिये बगैर कहे कड़क चाय बनती। ४ बजे बिना मँगाये मेरे दफ्तरमें नौकर चाय लाता। खाना खानेके बाद मेरे लिये तुरंत पान मँगा दिया जाता और बिना कहे उसमें मैनपुरी तम्बाकू डाली जाती। मेरा खाना होनेके बाद वह अपने कंधेपर लटकी तौलिया मुझे हाथ पोंछनेके लिये देता। उसका यह क्रम अबाधगतिसे उस समयतक बराबर जारी रहा, जब-तक कि मेरा दूसरे शहरको तबादला नहीं हो गया।

"लगभग २० सालतक फिर मुझे लौटनेका मौका नहीं मिला और धीरे-धीरे मैं उसे भूल गया। एक बार बीचमें पता लगा था, गंगाधर होटलवाला मर गया। यह घटना मेरे होटल छोड़नेके शायद एक साल बादकी थी।

"अचानक २० साल बाद मुझे सरकारी कामसे वापस और कोनेमें रेडियो बज रहा था। बैठते ही मेरे बिना माँगे मेरी टेबलपर आठ-नौ सालका एक लड़का चाय रखकर चला गया। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आखिर यह लड़का बिना पूछे मेरे लिये कड़क चाय ही क्यों रख गया। मैं इस होटलमें पहले ऐसी ही चाय पीनेका आदी था। रातको खानेके समय उसी लड़केने बिना माँगे मेरी थालीमें मेरी पसंदकी सब्जी परोस दी। मैंने देखा कि दूसरे ग्राहकोंकी अपेक्षा मेरी थालीमें अधिक दही परोसा गया था और मौजूद होते हुए भी टमाटरका साग मुझे नहीं परोसा गया था। न जाने क्यों मुझे टमाटरका साग बिलकुल पसंद नहीं था और २० साल पहले मैंने गंगाधरसे कह रक्खा था कि 'मुझे टमाटरका साग कभी न परोसा जाय।' किंतु उसे मरे नौ साल बीत गये थे। यहाँ कोई आदमी मुझे पहचानता न था; फिर इस लड़केने मुझे क्यों टमाटरका साग नहीं परोसा; इसलिये मैंने पूछा—'तुमने मुझे टमाटरका साग क्यों नहीं परोसा?' 'आपको अच्छा नहीं लगता, इसीलिये।' 'तुम्हें क्या पता? मुझे तो यहाँ कोई नहीं पहचानता।'

'आप बीस साल पहले यहाँ खाना खाते थे, तब आपको टमाटरका साग पसंद नहीं था।'

'पर तुम तो ८-९ सालके बच्चे हो; २० साल पहलेकी बातें तुम्हें कैसे मालूम?'

'हाँ, ठीक है। किंतु मैं तब भी इसी होटलमें था, तब मैं इतना छोटा नहीं था।'

"जवाब सुनकर मैं सन्नाटेमें आ गया। सोचा, शायद वह बहक रहा है। इसलिये फिर पूछा—'तुम्हारा नाम?' 'लोग मुझे बालमुकुन्द कहते हैं और समझते हैं कि मैं यहाँ नौकर हूँ। पर मेरा नाम गंगाधर है। मैं इस होटलका मालिक हूँ।'

"मेरे पैर थर-थर काँप रहे थे। मैंने मुँह-हाथ जल्दी-जल्दी धोया और दफ्तर लौट आया। उस समय रातके ९ बजे थे और मेरे सोनेका प्रबन्ध दफ्तरके ही एक कमरेमें किया गया था। इसी रातको १२ बजे लौटना था। समयपर स्टेशन पहुँचा। साथमें मेरे दफ्तरका चपरासी और मेरे एक क्लर्क मित्र स्टेशन आये। जब हम स्टेशन पहुँचे तो मैं यह देखकर चकित रह गया कि बालमुकुन्द भी वहाँ मौजूद था। मैंने उससे बहुत कम बातें कीं। इतनेमें ट्रेन आ गयी। जब गाड़ी चलने लगी तो उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। वह बोला—'अच्छा, जल्दी ही मिलूँगा।'

"मैंने क्लर्कके कानमें कहा—'शायद गंगाधर फिर पैदा हो गया है। तुम इस लड़केपर नजर रखना और मुझे इसके बारेमें खबर भेजते रहना।' इन २० वर्षोंमें मेरी शादी हो चुकी थी। मेरी पत्नी गर्भवती थी। प्रसूतिगृहमें भर्ती की गयी। इसके सात दिनों बाद मैं लड़केका बाप बना। मुझे रोज अस्पताल जाना पड़ता। दो-तीन दिन बाद जब मैं अस्पतालसे एक शामको घर लौटा तो मैंने अपने नाम दरवाजेपर एक लिफाफा पड़ा पाया। खोलकर पढ़ा तो मुझे ऐसा लगा कि जैसे किसीने मेरे गालपर भरपूर तमाचा मार दिया हो। पत्रमें बालमुकुन्दकी मृत्युका समाचार था। पाँच वर्ष बिना किसी महत्त्वपूर्ण घटनाके बीत गये और मैं धीरे-धीरे बालमुकुन्द और गंगाधरको भूलने लगा; पर कभी-कभी बालमुकुन्दका चेहरा अचानक मेरे सामने आ जाता और तब मुझे ऐसा महसूस होता जैसे मेरे सीनेमें किसीने लात मार दी है।

"मेरा लड़का मोहन जब पाँच सालका था; एक दिन मेरी पत्नीने उससे पूछा—'बेटा! तू डाक्टर बनेगा?' 'नहीं।' 'तो वकील बनेगा?' 'नहीं।' 'जज बनेगा?' 'नहीं।' 'तो क्या करेगा?' 'मैं होटल चलाऊँगा माँ!'—वह बोला। उस समय मैं लिख रहा था। उत्तर सुनते ही मेरी कलम छूट गयी। पर मैंने अपनेको संयत कर लिया और देवी-देवताओंको मनाने लगा। एक दिन मैं दफ्तरसे लौटा और खाना खाने बैठा तो मैंने देखा कि पत्नीने टमाटरका साग बनाया है। साग देखकर मोहन चिल्लाया—'बाबूजी टमाटरका साग नहीं खाते। उन्हें अच्छा नहीं लगता।' मैंने झपटकर उसका मुँह पकड़ लिया और कहा—'मोहन! ऐसा नहीं कहते।'

'क्यों, पहले तो तुम टमाटरका साग नहीं खाते थे।' 'कब?' 'पहले, बहुत साल पहले।'

"आगे उससे बात करनेकी मेरी हिम्मत नहीं थी। मैंने फिर एक बड़ी गलती की। मैंने अपनी पत्नीको अलग बुलाकर कहा—'मैं एक होटलमें खाना खाता था। वहाँका मालिक गंगाधर ही हमारे यहाँ पैदा हो गया है।' और दूसरे दिनसे ही मोहनको बुखार आने लगा। एक सप्ताह बाद मोहन मर गया। उसके अन्तिम समयमें मैंने उससे पूछा था—'मोहन! तुम मुझे कबतक छलते रहोगे?'

"वह मुस्कराकर बोला था—'अब नहीं मिलूँगे।' तबसे मोहनके पुनर्जन्मकी कोई सूचना मुझे फिर नहीं मिली।"

करके घंटों रोया करते थे। लोगोंने पूछा—'यहाँ कैसे आये?' तो उन्होंने बताया कि 'जब मेरी मृत्यु हो गयी और मेरी लाश सरयू नदीमें बहा दी गयी, उस समय मेरे ये माता-पिता अयोध्याजी गये हुए थे और सरयूजीमें स्नान कर रहे थे। मैं उन्हींके साथ यहाँ चला आया।'

यह बात उस समयके फसमण्डा नरेश स्व० राजा सूर्यबक्शसिंहजीको मालूम हुई तो उन्होंने अपने खजांची श्रीभगवानदीनको फैजाबाद भेजकर पता लगवाया। सभी बातें सत्य निकलीं। इस घटनाका तथ्य उस समयकी एक मासिक पत्रिका (माधुरी) में भी प्रकाशित हुआ था। स्व० पुत्तूलालजी बच्चेकी पुनर्जन्म-सम्बन्धी स्मृतिके लिये बहुत चिन्तित रहने लगे, वे साधु-महात्माओंसे मिले और उन्होंने तन्त्र-मन्त्रका भी सहारा लिया। तब पिछले जन्मकी याद कुछ कम पड़ी।

अभी दि० ११-११-१९६८ ई०को उनसे मेरी मुलाकात फिर हो गयी। मैंने उनसे पूछा कि 'क्या आपको पूर्व-जन्मकी बातें अभी याद हैं?' तो उन्होंने बताया कि 'पूर्वजन्मकी बातें मुझे अभी याद हैं' और यह भी कहा कि 'मेरी आयु ५४ या ५५ वर्षकी होते हुए भी फैजाबाद जानेकी लालसा मनमें अब भी बनी हुई है।'

नौ वर्षतक प्रेत रहनेके बाद पुनर्जन्म तथा अन्य घटनाएँ

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

(१)

लड़का वीरसिंह

पिछले दिनों यह बड़ी आश्चर्यजनक घटना सुनी थी कि जिला मुजफ्फरनगरके खेड़ी अलीपुर गाँवमें एक जाटके यहाँ एक ऐसे बालकने जन्म लिया है कि जो अपने पूर्वजन्मकी बातें बताता है और कहता है कि 'मैं ९ वर्षतक बराबर पीपलके वृक्षपर प्रेत बन करके रहा।' यह सुनकर हम इस सत्य घटनाकी जाँच करनेके लिये अपने साथ अपने पुत्र शिवकुमार गोयलको और श्रीस्वामी कल्याणनाथजी महाराजको लेकर मार्च सन् १९६० में खेड़ी अलीपुर गये। मुजफ्फरनगरके 'ब्राह्मणवाणी' मासिक पत्रिकाके सम्पादक श्रद्धेय गोस्वामी श्रीब्रह्मदत्त शर्मा करोड़ीजीसे भी मिले और घटनाकी पूरी-पूरी जाँच की। उसे पूरी-पूरी सत्य पाया। पूज्य गोस्वामी ब्रह्मदत्तजीने यह सत्य घटना इस प्रकार सुनायी। ब्रह्मदत्तजी कहते हैं—

'जिला मुजफ्फरनगरमें यह बात फैली हुई थी कि शिकारपुर जिला मुजफ्फरनगरमें पाँच वर्षका बालक पिछले जन्मकी बातें बताता है। 'सन्मार्ग' काशीमें भी यह समाचार प्रकाशित हुआ था। मुझे इस बातमें न तो विश्वास था और न दिलचस्पी। कहने-सुननेपर मैं २६।५। १९५१ को शिकारपुर ६॥ बजे पहुँच गया। यह लड़का मुझे वहाँपर सोता हुआ मिला। उसे उठवाया गया। लड़का चेष्टावान् ५ वर्षका था और उस समय कुछ तुतला कर बोलता था। पण्डित लक्ष्मीचंदके यहाँ २८।४।५१ से आया हुआ था। पं० श्रीलक्ष्मीचंदजीको अपना पिता और उनकी स्त्रीको अपनी माता कहता था। पं० श्रीलक्ष्मीचंदजीकी तीन कन्याएँ प्रकाशवती, कैलाशवती, सरला देवी हैं। इसी प्रकार दो लड़के विष्णुदत्त और रविदत्त हैं। इन सबमें यह बालक बड़े प्रेमसे रहता है।

गाँव खेड़ी अलीपुरमें यह लड़का कलीराम जाटके यहाँ पैदा हुआ है, जिसका नाम वीरसिंह है। जब यह ३॥ वर्षका हुआ, तबसे यह यही कहता रहा कि 'मैं शिकारपुरका हूँ। मेरा नाम सोमदत्त है। मेरे पिताका नाम पं० लक्ष्मीचंद है। मेरी माता मुझे मेलेमें जानेके लिये बहुत पैसे दिया करती थी।' यह चर्चा बहुत फैली। खबर पाकर २४।४।१९५१ को लक्ष्मीचंद भी खेड़ी, जो शिकारपुरसे पाँच कोसकी दूरीपर है, पहुँच गये। सैकड़ों आदमी जमा हो गये। लड़का लाया गया। जनसमूहमें यह लड़का पं० लक्ष्मीचंदसे लिपट गया और पिता-पिता पुकारने लगा। इसे यहाँसे शिकारपुर ले आया गया। गाँवके पास पहुँचते ही लड़केने पुकारना शुरू कर दिया कि 'हमारा गाँव शिकारपुर आ गया।' रास्तेमें वह स्वयं ही पं० लक्ष्मीचंदका जंगल, कुआँ देखकर कहने लगा कि 'यह हमारे हैं।' गाँवमें घुसते ही उसे छोड़ दिया गया।

यह स्वयं ही गलियोंके रास्ते चौराहेपर पहुँच गया। इसी चौराहेके पास पं० लक्ष्मीचंदका मकान था। इसे दूसरे घरमें ले जाया गया। कहने लगा कि 'यह हमारा घर नहीं है। यह तो पटवारीका घर है।' वास्तवमें ही वह पटवारीका घर था। धीरे-धीरे चलकर उसने पं० लक्ष्मीचंदका मकान जा पकड़ा। स्वयं उसमें घुस गया। वहाँ पचासों स्त्रियाँ, लड़कियाँ—इकट्ठी हो रही थीं। लक्ष्मीचंदकी सब लड़कियोंको बारी-बारीसे पहचानकर बतलाया। लक्ष्मीचंदकी स्त्रीको देखकर कहा—'यह मेरी माँ हैं।' परंतु उनसे दूर ही रहा। पूछा गया लड़केसे—'तुम अपनी माँसे दूर क्यों हो?' लड़का कहने लगा—'मेरी माँने मुझे कुछ दिया तो है ही नहीं।' ज्यों ही उसे पाँच रुपयेका नोट दिखाया गया, वह लक्ष्मीचंदकी स्त्रीकी गोदमें जा बैठा और 'माँ-माँ' कहने लगा। अन्य बातें पूछनेपर बतलाया कि 'मैं ९ वर्षतक बराबर पीपलपर प्रेत बनकर रहा हूँ। (लक्ष्मीचंदके मकानके पास ही यह पीपलका पेड़ है।) मैं उस समय प्रेतावस्थामें कुएँमें घुसकर पानी पी लेता था और घरमें घुस रोटी खा लिया करता था।' एक नौकर, जो लक्ष्मीचंदके यहाँ बहुत पहले रहता था, उसके बारेमें पूछने लगा कि 'अमुक नामका नौकर जो रहा करता था; वह कहाँ है?' उसे भी उसने स्वयं ही भीड़में पहचाना। अपने पूर्वजन्मके भाइयोंको भी पहचाना। अब यह लड़का खेड़ी गाँवमें, जहाँ यह पैदा हुआ है, जाना नहीं चाहता। इसे बलात्कारसे दो बार गाँव खेड़ी ले जाया गया; परंतु वहाँ जानेपर इसने खाना नहीं खाया। लड़का कहता है—'मैं तो ब्राह्मणका लड़का हूँ और यह जाट है। मैं जाटोंके यहाँका कच्चा खाना, कच्चे बर्तन (हाँडी) का दूध नहीं पीऊँगा।' चार-पाँच दिन इसे अलग बर्तनमें दूध पिलाते रहे और अन्तमें जब परेशान हो गये तो तंग आकर इसे शिकारपुर पं० लक्ष्मीचंदके पास भेज दिया गया। अब वह पहले जन्मके माता-पिता लक्ष्मीचंदके पास शिकारपुरमें ही है। इसने स्कूलमें पढ़ने

इस घटनासे जहाँ पुनर्जन्मका सिद्धान्त सत्य प्रतीत होता है, वहाँ ९ वर्षतक पीपलपर प्रेत बनकर रहना एक अपूर्व बात है। सबको पहचानना इस बातका प्रमाण है कि यह अवश्य ही पीपलपर प्रेत बनकर रहा है। किस-किस समय गाँवमें ९ वर्षतक क्या-क्या होता रहा, ऐसी भी सभी बातें यह लड़का बताता है। पं० लक्ष्मीचंदका कहना है कि '१४ वर्ष हुए मेरा लड़का सोमदत्त ३॥ वर्षका मर गया था। उस समय कैलाशवती, प्रकाशवती और विष्णुदत्त थे और सरला, रविदत्त सोमदत्तके मरनेके पश्चात् पैदा हुए थे।' अब कैलाशवती, प्रकाशवती तथा विष्णुदत्तको तो पहचान लिया सो ठीक है, परंतु पश्चात्के पैदा होनेवाले सरला तथा रविदत्तको भी पहचान लिया; क्योंकि यह लड़का (सोमदत्त) मरनेके पश्चात् पीपलपर ९ वर्षतक रहना बतलाता है, ऐसी दशामें सबको पहचानना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। सोमदत्तका आत्मा पीपलपर बैठा सब कुछ देखता रहता था।'

हम स्वयं अलीपुर खेड़ी गाँव पहुँचे तो हमें मालूम हुआ कि घटना अक्षर-अक्षर बिल्कुल सत्य है। लड़का वीरसिंह अपने पूर्वजन्मके माता-पिता पं० लक्ष्मीचंदजीके साथ रहता है। लक्ष्मीचंदजी आजकल नैनीतालमें रहते हैं, तो वह भी उनके साथ ही गया हुआ है। वे उसे अपने पास पुत्र मानकर रखते हैं और कभी-कभी खेड़ीमें भी चला आता है। हमने लड़के वीरसिंहके सगे चाचा श्रीसीतलप्रसाद जाटसे तथा और भी बहुत-से गाँवके मनुष्योंसे बातें कीं, जिससे घटना बिल्कुल सत्य सिद्ध हुई।

× × ×

(२)

दाह-संस्कारमें त्रुटिका दुष्परिणाम

पता नहीं, मेरे इस धर्मप्राण भारतके ऋषि-मुनियोंकी संतान हिंदुओंको आज न जाने क्या हो गया है कि जो उन्हें अपना तो सब कुछ बुरा प्रतीत होने लगा है और

किसी क्रियाके ऐसे ही बिजलीसे फूँक देनेकी योजना की गयी है। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ते आदिमें तथा और भी कई जगह, सुनते हैं, यह कार्य प्रारम्भ भी हो चुका है।

दाह-संस्कारमें तनिक भी कमी रहनेसे मृतक आत्माको अगले जन्ममें कितना दुष्परिणाम भोगना पड़ता है, इसकी ये आजके पाश्चात्त्य सभ्यताके रंगमें रँगे लोग तनिक भी परवा नहीं करते हैं। सनातनधर्मानुसार दाह-संस्कार न करनेसे क्या-क्या भयंकर दुष्परिणाम भोगने होते हैं; शास्त्रोंमें आयी पुनर्जन्मकी बातें अक्षर-अक्षर सत्य कैसे हैं और आशुतोष भगवान् श्रीशंकरकी उपासनासे पुत्र-प्राप्ति और मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति कैसे होती है;—इस सम्बन्धकी एक बिल्कुल सत्य घटना नीचे दी जा रही है।

मार्च सन् १९६० की बात है। हम मुजफ्फरनगर गये हुए थे। एक दिन सहसा काली नदीके किनारे देव-मन्दिरोंके दर्शन करते हुए किसी संतके सत्सङ्गकी तलाशमें घूम रहे थे। अकस्मात् एक जगह एक तख्तपर विराजमान, गीताका पाठ करते हुए संत दृष्टिगोचर हुए। संतजीको सारी गीता कण्ठस्थ थी और उन्होंने उपनिषद् भी खूब देखे थे। आप योगाभ्यासी भी थे। शुभ नाम था—श्रीस्वामी मदनानन्द सरस्वती। प्रसङ्ग चलनेपर महाराजजीने कहना प्रारम्भ किया—

''मेरा जन्म जिला कानपुरके तहसील देरापुरमें संवत् १९४२में हुआ था। मैं जातिका दुबे ब्राह्मण था। हमारी माताजीके चार लड़कियाँ हुईं; पर उनके लड़का कोई नहीं हुआ। वह लड़का न होनेके कारण दिन-रात लड़के होनेकी चिन्तामें निमग्न रहा करती थीं। किसी संतके बतानेके अनुसार उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके लिये आशुतोष भगवान् श्रीशंकरकी शरण ली। हमारे गाँवके बाहर एक भगवान् श्रीशंकरजीका मन्दिर था। हमारी माताजीने पुत्र-प्राप्तिके निमित्त उन्हींकी पूजा-आराधना करना प्रारम्भ कर दिया। भगवान् शंकर बड़े ही दयालु हैं। उन्होंने हमारी माताजीकी प्रार्थना सुनी। पर जहाँ शास्त्रानुसार चलकर श्रीशंकर-पूजन करनेसे श्रीशंकर भगवान् प्रसन्न हुए, जहाँ उनकी कृपासे पुत्रप्राप्तिका शुभ अवसर हाथमें आया, वहाँ अकस्मात् एक कार्य शास्त्रविरुद्ध होनेके कारण एक घोर अनर्थ भी हो गया।

''बात यह हुई कि इसी दरम्यान अकस्मात् हमारे पूज्य बाबा श्रीपरमसुख दुबेजीका स्वर्गवास हो गया। आपकी आयु उस समय लगभग ९० वर्षकी थी। शरीर पूरा हो[illegible] उन्हें मृतक-घाट अर्थात् श्मशान-भूमिमें ले जाया ग[illegible] हमारे उधर शास्त्रानुसार प्रथा है कि सूर्यास्त होते समय [illegible] नहीं फूँका जाता है। सूर्यास्तके समय मुर्दा फूँकना पाप म[illegible] जाता है। इसलिये सब कोई सूर्यास्त होनेसे पहले ही मुर्दा फूँ[illegible] देते हैं। हमारे घरवालोंने अज्ञानतावश यह शास्त्रविरुद्ध कर्म [illegible] डाला। 'सूर्यास्त हो रहा है, इस समय नहीं फूँकना चाहिये' इस बातकी तनिक भी परवा न कर सूर्यास्तके समय [illegible] दाह-संस्कार कर डाला।

''इस दाहकर्म-संस्कार करनेका घोर दुष्परिणाम य[illegible] हुआ कि जो अब उन्हीं बाबाको मुझ पोतेके रूपमें आक[illegible] आजतक भोगना पड़ रहा है। अर्थात् मेरी एक आँखसे मुझे हाथ धो बैठना पड़ा।

''बात यह हुई कि एक दिन रात्रिमें हमारी माताजीको बाबाजीने स्वप्न-दर्शन देकर कहा—'तुमलोगोंने हमारा दाहकर्म सूर्यास्तके समय कर दिया, इसलिये हमारा क्रियाकर्म भ्रष्ट हो गया। शंकर-पूजनसे तुम्हारे पुत्र होगा। हम ही तुम्हारी कोखसे पुत्र बनकर जन्म लेंगे; किंतु सूर्यास्तके समय हमारा दाहकर्म करनेके कारण हमारा एक नेत्र जाता रहा। अब हम तुम्हारे एक नेत्रवाले पुत्र होंगे।'

''माताजीने यह स्वप्न देखा और उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बाबाकी यह भविष्यवाणी सबको सुनायी। स्वप्नके कुछ दिनों पश्चात् ही मेरी माताजीके गर्भ रहा। स्वप्नकी भविष्यवाणीके अनुसार मैं एक आँखवाला पुत्र उत्पन्न हुआ।

''माताजीको मेरी एक आँख न होनेका बड़ा कष्ट रहा। जब मैं आगे जाकर कुछ बड़ा हुआ, बोलने लगा तो मैं सबके सामने बाबा होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण देने लगा। मैं सबको यह बताने लगा कि 'यह मेरी लाठी है, जिसे मैं पूर्वजन्ममें बूढ़ा होनेके कारण लेकर चला करता था। यह मेरा अंगरखा है, जिसे मैं पहना करता था। अमुक-अमुक हमारे रिश्तेदार हैं।' ये सब बातें बतानेपर भी हमारी माताजीने हमारी बातोंपर कोई ध्यान नहीं दिया। आगे चलकर हम बड़ी-बड़ी विचित्र बातें बताने लगे। पूर्वजन्ममें जब हम बाबा थे, उस समयके गाड़े हुए रुपये बताकर सबके सामने निकाल कर दिखाये। यह देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये।''

(३)

ठाकुरसाहबका लड़का

पिलखुवा, हमारे स्थानपर सुप्रतिष्ठित विद्वान् शास्त्रार्थ-
थी पं०श्रीबिहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थजी पधारे थे। उन्होंने
मुखसे प्रसंगवशात् पूर्वजन्मके सम्बन्धकी श्रीरामनाम
, श्रीगङ्गास्नान करने और दानपुण्य करनेकी अद्भुत
माकी एक अपनी घटना सुनायी थी। वह सत्य घटना
में यह है—

''उझानी जिला बदायूँमें एक जगह है। एक बार कुछ
पूत लोग, जो उझानीके पासके ही किसी गाँवके रहनेवाले
आये थे। वे अपने गाँवसे श्रीभगवती भागीरथीका
न करनेकी दृष्टिसे सपरिवार जा रहे थे। उनकी अपने
की सवारी थी, उसीमें बैठकर वे लोग आये थे। अपने
से चलकर जब उझानी आये तो उझानीके चौराहेपर
विश्राम करनेकी दृष्टिसे कुछ देरके लिये रुक गये।
स्कुल सड़कके पास उन दिनों कुछ कंजर लोग रहा
ते थे। उन कंजरोंकी वहाँपर झोंपड़ियाँ पड़ी हुई थीं।
ठाकुर लोगोंके साथमें इनका एक छोटा बालक था,
सकी आयु लगभग ५ वर्षकी थी। वह ठाकुरोंका
लक उन अपने घरवालोंके पाससे चलकर उन सामने-
ले कंजरोंके पास उनकी झोंपड़ियोंमें पहुँच गया। उसने
हाँपर जाकर उन कंजरोंके सामने उनमेंकी एक कंजरीका
ाम लेकर पुकारा। कंजरकी उस स्त्रीको उस बालकके इस
कार बिना जाने-पहचाने अपना नाम लेकर पुकारनेपर बड़ा
आश्चर्य हुआ। कंजरकी स्त्रीने उस बालकसे पूछा—'अरे,
किसको पुकारता है? तू कौन है?' इसपर उस ठाकुरके
ड़केने कहा—'क्या तू मुझे नहीं जानती? क्या तू मुझे
ूल गयी?' कंजरीने कहा—'मैं तुझे नहीं जानती कि तू
ौन है और कहाँका रहनेवाला है?'

कभीका मर गया है। अब मेरा पति
क्या कहता है?'

उत्तरमें उस बालक ठाकुरके लड़केने कहा—
नहीं कि तेरे पतिका नाम मोहनसिंह कंजर था?'

कंजरीने कहा—'हाँ, मेरे पतिका नाम मोहनसिंह कंज
था, पर तू कोई मोहनसिंह कंजर थोड़े ही है। वह त
मर गया?'

ठाकुरके लड़केने कहा—'मैं ही तेरा पति मोहनसि
कंजर हूँ।'

लड़केने बताया कि 'मैं पहले जन्ममें तेरा प
मोहनसिंह कंजर था और अब मैंने इन ठाकुरोंके घर
आकर जन्म ले लिया है।' लड़केने वहाँपर बैठे हुए स
कंजरोंको भी पहचान लिया। उसने उस समयकी और स
बातें भी बतानी प्रारम्भ कर दीं और बहुत-सी गुप्त बातें भ
जो उससे पूछी गयीं, उसने उन्हें बतायीं। उसकी बतायी ह
सभी बातें सत्य थीं, उन्हें सुनकर सभी कंजरोंने और कंजरिये
स्वीकार किया। इसलिये उन्होंने झटसे उस बालकको अप
गोदमें उठा लिया।

इधर जब उन ठाकुरोंने देखा कि हमारा बच्चा यहाँ
खेल रहा था और अब देखते-देखते वह किधर चला गया
उन्होंने अपने उस बच्चेकी तलाश की। सामने कंजरों
झोंपड़ियोंकी ओर जो उनकी दृष्टि गयी तो देखा वह ब
कंजरोंके पास है। कंजर उसे अपनी गोदमें उठाकर
प्रेमसे खिला रहे हैं। ठाकुर लोग भागे हुए वहाँपर गये अ
जाकर उन कंजरोंसे अपने बालककी माँग की। कंजर
कहा—'नहीं, यह तो हमारा मोहनसिंह कंजर है। हम
अपने पास रक्खेंगे।'

ठाकुरोंने उन कंजरोंको बहुत कुछ समझाने-बुझाने
प्रयत्न किया कि किसी प्रकार यह हमारे बालकको हमें र
दें, पर वे लाख समझानेपर भी

देनेके लिये कहा और उन्हें धमकाया भी, समझाया भी, फिर भी वे कंजर लड़केको देनेके लिये तैयार नहीं हुए।

पुलिस उस ठाकुरोंके बालकको कंजरोंसे अपने कब्जेमें लेकर उझानीके सुप्रतिष्ठित रईस रायबहादुर श्रीव्रजलाल भदावरजीके सामने ले गयी। ठाकुर लोग और वह कंजर भी वहाँपर पहुँच गये। ज्यों ही वह ठाकुरोंका ५ वर्षका बालक श्रीभदावरजीके सामने पहुँचा तो उसने जाते ही सबसे पहले भदावरजीको पहचान लिया। उसने उनका शुभ नाम लेकर कहा कि 'भदावरजी! राम राम।'

रायबहादुर श्रीव्रजलाल भदावरजीको उस छोटेसे बालकके मुखसे ये शब्द सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने चकित होकर उस बालकसे पूछा—'भाई तू कौन है? हमें तू पहले कभी आजतक नहीं मिला है; फिर तू हमें कैसे जानता है? तैंने हमें कहाँपर देखा है?' इसपर उस बालकने कहा—'रायबहादुर साहब! मैं पूर्वजन्मका आपका कंजर हूँ। मेरा नाम मोहनसिंह है और मैं जब कंजर था तो उस समय आपके घरपर आकर आपकी कोठीके लिये खसके पर्दे बनाया करता था।'

माननीय रायबहादुर साहबने जब ये बातें सुनीं तो वे दंग रह गये। उस बालककी बतायी सभी बातें अक्षर-अक्षर बिल्कुल सत्य थीं। उन्होंने उस बालककी बातोंकी पुष्टि कि मोहनसिंह कंजर हमारी कोठीके लिये खसके पर्दे बनाया क[रता] था। रायबहादुर साहबने उन कंजरोंको समझा-बुझाकर, [वह] बालकको उन कंजरोंसे उन ठाकुरोंको दिलवा दिया।

माननीय रायबहादुर श्रीव्रजलाल भदावरजीने मुझे बत[लाया] कि 'इस कंजरका कंजरसे धनाढ्य ठाकुरोंके घरमें ज[न्म] लेनेका कारण यह है कि जब यह पूर्वजन्ममें मोहनसिंह कं[जर] था तो उस समय यह इतना संयमी था और इतना सात्वि[क] था कि कभी भी मांस नहीं खाता था। मांस-मछली, अंडे-मुर्गों[से] बिल्कुल दूर रहता था। यह किसी भी जीवको कभी न [तो] मारता था और न शिकार खेलता था। यह श्रीगङ्गाजीमें ब[ड़ी] श्रद्धा-भक्ति रखता था। कंजर होकर भी यह श्रीगङ्गा-स्ना[न] करनेके लिये जाया करता था। नित्य श्रीरामनामका जा[प] किया करता था। इसने गरीब होकर भी अपनी खू[न]-पसीनेकी गाढ़ी कमाईका पैसा-पैसा जोड़कर ४०० रुप[ये] इकट्ठे किये थे और ये रुपये मुझे देकर मेरेद्वारा एक कुँआ भी बनवाया था कि जिससे सब लोग उस कुएँका पा[नी] पीकर अपनी प्यास बुझा सकें। इसी श्रीरामनामके जप करने[से,] गङ्गाके स्नान करनेसे, कुआँ बनवाने और जीवोंपर द[या] करने आदि पुण्योंके प्रतापसे इसे ऐसा जन्म प्राप्त हुआ है।

कर्म रहते जीवकी मुक्ति नहीं

कर्म तीन प्रकारके हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। जो नये कर्म कामना-अहंकारसे किये जाते हैं वे 'क्रियमाण' हैं; वे संचितमें चले जाते हैं, जैसे खेतसे अनाज आया और अन्नके कोठारमें चला गया। 'संचित' उनका नाम है, जो अनन्त जन्मोंके अच्छे-बुरे कर्म फल बिना भुगताये पड़े हैं और जिनमें नये कर्म जमा हो रहे हैं। उस संचित कर्मराशिमेंसे एक जन्ममें फल भुगतानेके लिये जो कर्म पृथक् हो जाते हैं और जन्मसे पहले ही जिनका फल निर्माण हो जाता है, उन फलदानोन्मुख कर्मोंको 'प्रारब्ध' कहते हैं। जबतक नये कर्म बनते रहते हैं और जबतक संचित कर्मोंका नाश नहीं हो जाता, तबतक जीव बन्धन-मुक्त नहीं हो सकता; उसे कर्मफल-भोगके लिये बार-बार सत्-असत् योनियोंमें जन्म धारण करना और स्वर्ग-नरकादि लोकोंमें जाना-आना पड़ता ही है। अहंकार, कामना न रहनेपर नवीन कर्म संचितमें नहीं जाते और ज्ञानकी अग्नि अथवा भगवान्की शरणागतिसे संचितकी कर्मराशि जल जाती है, तब जीव मुक्त हो जाता है, अतएव अहंकार-कामनाका त्याग करके भगवच्छरणागतिपूर्वक सब कुछ भगवान् ही है, ऐसा समझते हुए भजन करना चाहिये। मनुष्य-जीवनका यही चरम और परम ध्येय है।

मृतात्माओंके द्वारा—आवेशद्वारा और प्रकट होकर संवाद देना

(लेखक—श्रीनिरंजनदासजी 'धीर')

(१)

मृत व्यक्तिके और्ध्वदैहिक कर्मोंकी आवश्यकता

(प्रेत-संवाद)

मेरे एक विभागीय कर्मचारीकी धर्मपत्नीकी दिल्लीके एक अस्पतालमें कन्याको जन्म देकर मृत्यु हो गयी और नवजात कन्या भी चल बसी। जैसा प्रायः शिक्षितवर्गमें होता है, दाह-संस्कारसे ही अन्त्येष्टि कर्मकी इतिश्री हो गयी। पतिदेव तथा बच्चे रो-धोकर शान्त हो गये और अपने साधारण दैनिक व्यापारोंमें लिप्त हो गये। एक गढ़वाली सेवक उनके परिवारमें था। पहले वह गृहिणीकी देख-रेखमें भोजन बनाता था। अब हमारे मित्रको उधर ध्यान देना पड़ा और काम चलने लगा।

छुट्टीका दिन था। भोजनोपरान्त विश्राम करके हमारे मित्र कर्मचन्दजी पत्र लिख रहे थे कि गढ़वाली सेवक वमन करके काँपने लगा। उसकी मुखाकृति बदल गयी और वह मृत महिलाकी भाषा तथा रीति-ढंगसे बोलने लगा, जिसको सुनकर श्रीकर्मचन्दजी समीप आये। उस समय सभीने ऐसा अनुभव किया कि उनकी पत्नी गढ़वाली सेवकके माध्यमसे बात कर रही है। उसने कहा कि 'आपने न तो मेरे नामसे और न अपनी कन्याके नामसे वस्त्रका दान किया। हम दोनों वस्त्रहीन हैं। मुझे बड़ा संकोच होता है और मैं एक वटवृक्षके नीचे पड़ी हूँ। जब कोई व्यक्ति इधर आता दृष्टिगोचर होता है तो मैं वृक्षकी ओटमें हो जाती हूँ। अतएव आप मेरे लिये और बच्चीके लिये एक-एक जोड़ा वस्त्र किसी वस्त्रहीनको अथवा निर्धन ब्राह्मणको हमारे नामसे दे दें।' श्रीकर्मचन्दकी स्वीकारोक्तिके पश्चात् आवेश समाप्त हो गया और गढ़वाली साधारण अवस्थामें आ गया। वस्त्र दो-चार दिनोंमें ही दे दिये गये।

कर्मकाण्डका ज्ञान नहीं था। मेरे लिये हरद्वारमें अमुक नामधारी पण्डितसे, जो भीमगोडाकी बस्तीमें रहते हैं, जैसा वे कहें, कराओ।' इन्होंने कहा,—'अच्छा।' आवेश समाप्त हो गया।

हरद्वारमें एक रायसाहबसे इनका परिचय था। इन्होंने उनको पत्र लिखा कि 'कृपया भीमगोडाकी बस्तीमें अमुक पण्डितजीका पता लेकर सूचना दें तो मैं हरद्वारमें आकर उनसे मिलूँ; क्योंकि उनसे मुझे विशेष काम है।' पत्र मिलनेपर रायसाहबने अपने भृत्यको इस नामके पण्डितजीका पता लगानेके लिये भेजा, जिसने आकर कहा कि 'इस नामके पण्डित भीमगोडा बस्तीमें नहीं हैं।' यही उत्तर श्रीकर्मचन्दजीको मिल गया। दो-तीन दिन पीछे जब गढ़वालीको आवेश हुआ तो उसने रायसाहबका नकारात्मक उत्तर पत्नीको बताया तो वे बोलीं कि 'पण्डितजी वहीं रहते हैं। वे सारा दिन एकान्तमें किवाड़ बंद किये रहते हैं। चार बजेके पीछे मिल सकते हैं। उनके घरका दरवाजा पूर्व-मुखी है और किवाड़ोंपर नीला पालिश हो रहा है।' इस सविस्तार पहचानके मिलनेपर रायसाहबका पत्र आया कि 'पण्डितजी मिल गये हैं। और वे उचित कर्मकाण्ड करानेको सहमत हो गये हैं।' श्रीकर्मचन्द हरद्वार गये और उन पण्डितजीसे कर्मकाण्ड कराकर आ गये तो गढ़वालीके माध्यमसे उनकी पत्नीने कहा कि 'अब उनको प्रेमनगरमें बसनेकी अनुमति मिल गयी है।' पूछनेपर उसने बताया कि 'यह हरद्वारके समीप ही अन्तरिक्षमें है; किंतु साधारण जीवोंके लिये अदृश्य है। अब वह सप्ताहमें एक बार आ जाती, बाल-बच्चोंको देख जाती और पतिसे अनुरोध करती कि 'तुम्हारे पुत्र-कन्या दोनों संतान हैं। अब दूसरा विवाह न करना।'

उन्हीं दिनों श्रीकर्मचन्दजीका एक सम्बन्धी युवक

बता दिया कि 'बक्सकी चाबी उस सम्बन्धीकी कमीजकी जेबमें है, जो वहाँ टँगी है ।' इनके पुत्रने बक्स खोलकर कम्बल निकालकर ताला बंद करके ताली वहीं रख दी ।

जब भी वह आती, अपने बच्चोंसे ऐसे ही वात्सल्य तथा प्रेमसे बातें करती और उनको अच्छी शिक्षा देती और यदि कोई उनकी वस्तु खो जाती तो बता देती कि कहाँ और किसके पास है ।

इनके पतिदेव दूसरा विवाह करना चाहते थे,जो इनकी मृतपत्नीकी इच्छाके विरुद्ध था । इसलिये ये चाहते थे कि वह न आया करे । अतः इन्होंने गढ़वाली भृत्यको निकाल दिया और दूसरा रसोइया रख लिया ।

यह सच्ची घटना है और श्रीकर्मचन्दजीने स्वयं मुझे बतायी थी । इस विवरणसे सिद्ध होता है कि प्रसव आदि अशुद्ध अवस्थामें मृत्युसे मृत व्यक्तिको परलोकमें कष्ट उठाना पड़ता है, जो शास्त्रोक्त कर्मोंके द्वारा दूर किया जा सकता है ।

(२)

मृत व्यक्तिका सशरीर प्राकट्य

हम भारतवासियोंके लिये, मृत्युके पश्चात् भी आत्माका अस्तित्व रहता है—ऐसा सत्य है कि जिसके लिये किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं समझी जाती; क्योंकि भारतीय विचारधाराका मूल कर्मफल तथा पुनर्जन्ममें दृढ़ विश्वास है ।

पश्चिमके विज्ञानवेत्ताओंको इस सिद्धान्तकी सत्यताको प्रमाणित करनेके लिये वर्षों अपनी वैज्ञानिक विधिसे खोज तथा घटनाओंका अध्ययन करना पड़ रहा है और अभी भी दुर्भाग्यवश सब लोगोंने इसको नहीं माना है । पहले तो यह निर्णय करना ही एक समस्या थी कि मानवका व्यक्तित्व क्या है ? क्योंकि उनके समक्ष 'आत्मा' नामकी वस्तुके अस्तित्वका प्रमाण तथा उनके सूक्ष्मशरीरके अस्तित्व तथा गुण और शक्तिका ही कोई ज्ञान नहीं था । वे केवल मनसे परिचित थे और उसीको सर्वेसर्वा मानते थे । आधुनिक समयमें भी अधिकतर पश्चिमीय वैज्ञानिक चार्वाकके सिद्धान्तके ही अनुयायी हैं कि 'स्थूलदेहके भस्मीभूत होनेपर कुछ नहीं रहता । इसलिये खाना-पीना, मौज उड़ाना ही जीवनका लक्ष्य है ।'

पश्चिमीय सभ्यताके पुजारी हमारे देशवासी भी, जो इस सिद्धान्तमें विश्वास रखते हों, उनको इस तथ्यका ज्ञान होना चाहिये कि पश्चिमीय विज्ञानवेत्ताओंने सहस्रों अकाट्य प्रमाण एकत्रित किये हैं कि 'मा[illegible] व्यक्तित्व मृत्युके पश्चात् भी वैसा ही विद्यमान है, जैसा जीवनमें था ।' किंतु ये प्रमाण अनुमानके हैं और पश्चिमीय भाषाओंकी अनगिनत पुस्तकों[illegible] पड़े हैं । केवल प्रत्यक्ष ही ऐसा प्रमाण है, [illegible] सत्यताको मानना अनिवार्य है । ऐसे सज्जनोंके वि[illegible] लिये कतिपय ऐसी घटनाओंका उल्लेख किया जात[illegible] जिनमें मृत व्यक्तियोंको साक्षात् सशरीर देखा गया [illegible] द्रष्टाके वचनकी सत्यतापर अविश्वासका कोई कारण [illegible] यह असम्भव घटना कैसे हो सकती है, इसका भी सैद्धान्तिक उत्तर है । किंतु यह विषय दूसरा है; मिलनेपर इसपर भी प्रकाश डाला जा सकता ये विचित्र घटनाएँ इस प्रकार हैं—

(३)

मृत पत्नीका प्रकट होकर बात करना

लुधियानाके निवासी आर्यसमाजी विचारोंके सज्जन पूर्वी अफ्रीकाकी राजधानी नैरोबी नगरमें [illegible] बस गये और व्यापारद्वारा अपार सम्पत्तिके मा[illegible] हो गये । उनकी प्रिय पत्नी अपने सगे-सम्बन्धि[illegible] मिलने पंजाब आयी तो उसको भयानक हृदय-रो[illegible] आक्रमण हो गया । सूचना मिलनेपर उसके [illegible] व्यक्तिगत हवाई जहाज लेकर उसको एक डाक्[illegible] निरीक्षणमें अपने घर नैरोबी उसी वायुयानद्वारा गये, जहाँ अपने परिवारवालोंके अतिरिक्त दो न[illegible] द्वारा उसकी कई मास बड़े प्रेमसे सेवा-शुश्रूषा [illegible] रही । रोग घातक होनेसे उस महिलाकी मृत्यु गयी ।

यह महिला सनातनधर्मी थी । उसने अपने प[illegible] प्रार्थना की थी कि 'मृत्युके पश्चात् उसकी अस्थियाँ श्रीग[illegible] मैयामें विसर्जित की जायँ और उसकी गति सनातन-[illegible] की विधिके अनुसार करा दी जाय ।' उसके प[illegible] आर्यसमाजी होते हुए भी उसकी इच्छाको पूर्ण करने वचन दे दिया था ।

पत्नीकी मृत्युके पश्चात् नैरोबीसे वे भारत आ[illegible] अस्थि-विसर्जन तथा अन्य उचित कर्मकाण्ड पूरे वि[illegible] विधानसे कराये गये । यहाँतक कि गयामें जाकर पत्न[illegible]

सद्गतिके लिये श्राद्ध भी करा दिया और फिर वे अपने देश चले गये।

कुछ समय पश्चात् उनको एक अविज्ञात रोग हो गया और नैरोबीके डाक्टरोंने उनको रोगके निदान तथा उपचारके लिये लन्दन जानेका परामर्श दिया। वे वायुयानद्वारा वहाँ पहुँचे और विशेषज्ञोंद्वारा जाँच करायी तो उन्होंने निर्णय दिया कि जिस घातक रोगका संदेह था, वह नहीं है। यह कष्ट शीघ्र-साध्य है।

रात्रिको वे अपने होटलके कक्षमें, जिसके किवाड़ उन्होंने बंद कर लिये थे, सोने जा रहे थे। प्रकाश बंद करके लेटे ही थे कि उनको ऐसा लगा कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस कक्षमें है। उन्होंने प्रकाश किया तो अपनी मृतपत्नीको सशरीर विद्यमान देखकर वे ठिठक गये और कुछ बोल न पाये। उनकी पत्नी बोली कि 'आजके डाक्टरोंके निदानसे मेरे मनको शान्ति मिली है।' उसने बताया कि 'मेरी इच्छाके अनुसार जो कर्मकाण्ड आपने मेरे लिये कराये थे, मुझे ज्ञात हैं और जो स्वर्णकी अँगूठी आपने दक्षिणामें दी थी, वह भी मैंने देखी थी। मैं आपके इन कर्मोंसे परम संतुष्ट हूँ और मैं यहाँ आपके साथ ही आयी हूँ। अमेरिकामें पिछले दिनों मोटर-दुर्घटनासे मैंने ही अपने दूसरे पुत्रके जीवनकी रक्षा की थी।' और भी कई रहस्यकी बातें बतलायीं, जो उस पत्नीके अतिरिक्त किसीको ज्ञात न थीं। पतिसे जब वह विदा माँगने लगी तो पतिने उसे गलेसे लगाया। उस समय उसका शरीर वैसा ही था, जैसा जीवनमें था। फिर वह वहीं अन्तर्धान हो गयी। इन सज्जनकी स्वयं लिखित पुस्तक 'रूहों की दुनियाँ' उर्दू भाषामें है। यह वृत्तान्त उसीपर आधारित है।

(४)

वर्षोंसे चला आ रहा था। कर्मवश उनको कैंसररोग हो गया। व्रतका क्रम रोगी-दशामें भी चलता रहा। अन्तमें उनकी मृत्यु भी पूर्णिमाके दिन ही हुई।

ललिताबाईके भ्राता श्रीसामन्तजी भी बम्बईमें रहते थे। इन बहिन-भाईमें बड़ा प्रेम था। मृत्यु तथा दाह-संस्कारके दूसरे दिन, ललिताबाई श्रीसामन्तके समक्ष सशरीर प्रकट हुई। इस असम्भव घटनाको देखकर भाई ठिठक गया। उसने यह देखनेके लिये कि वह स्वप्न तो नहीं देख रहा, अपने शरीरकी चुटकी काटी। जब उसने अपने-आपको पूर्णरूपसे सजग तथा चेतन पाया तो उसने अपनी प्रिय बहिनका स्वागत किया और हाथ पकड़कर पलंगपर बैठा लिया। उसका हाथ जीवित मनुष्यकी भाँति उष्ण था। ललिताबाईने कहा—'कल मेरा पूर्णिमाका उपवास था। मृत्यु हो जानेके कारण मैं पारण नहीं कर पायी। अब तुम मुझे एक काफीका कप बना दो तो मैं पारण कर लूँ।' उसका भाई घरमें उस समय अकेला ही था। उसको पता नहीं था कि दूध कहाँ रक्खा है। ललिताबाईने बता दिया। काफी तैयार करके जब कप ललिताबाईके हाथमें दिया तो उसने देखकर अपने भाईको लौटा दिया और उससे कहा कि 'इसको तुम पी लो। तुम्हारे पीनेसे ही पारण हो जायगा।' भाईके काफी पीनेके पश्चात् बहिन अन्तर्धान हो गयी। इस सशरीर प्राकट्यके पश्चात् जो कुछ हुआ, वह इससे भी अधिक विचित्र है, जिसके लिखनेके लोभको मैं संवरण नहीं कर सकता।

श्रीसामन्तजीकी पत्नीके कोई संतान नहीं थी, यद्यपि उसकी आयु चालीस वर्षकी हो गयी थी। डाक्टर करनाडेने कई बार परीक्षा करके यह निर्णय किया था कि इस महिलाकी बच्चेदानी इतनी संकुचित है कि उसमें गर्भ रह ही नहीं सकता। मृत्युके पूर्व भी भाईके निःसंतान होनेका ललि-

दानीका परिमाण साधारण हो गया है, अपितु उसमें गर्भ भी स्थापित हो चुका है। यह विज्ञानकी दृष्टिसे चमत्कारी घटना थी। ललिताबाईने फिर अपने भाईको सूचना दी कि 'वे स्वयं ही भाभीके गर्भसे जन्म लेंगी।' उचित समयपर वैसा ही हुआ। डाक्टर भट्ट, जिन्होंने अपनी पुस्तकमें इस विचित्र घटनाका उल्लेख किया है, लिखते हैं कि 'इन सभी बातोंकी सत्यता इस कन्याके माता-पिताने स्वयं प्रमाणित की थी और कन्याको भी, जिसका नाम ललिताबाई ही रक्खा गया, देखा था।

(५)

मृत मित्रसे बातचीत

शैमिल्लो फ्लेमोरिऑ (Camillo Flammorion) फ्रांस देशके प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे और राज्यकी ज्योतिष-वेधशालाके अध्यक्ष थे। उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम था 'यूरानिया' (Urania)। इसमें अपने एक घनिष्ठ मित्रके, जिनको वे स्पैरोके नामसे पुकारते थे, मृत्युके पश्चात् मिलनेका वृत्तान्त लिखा है। वे कहते हैं— मेरा पाँव अभी अन्तिम सीढ़ीपर ही था कि जो दृश्य मैंने देखा, उससे मेरा पैर वहीं जम गया। भयत्रस्त होकर मेरे कण्ठसे एक चीख उठी, किंतु कण्ठमें ही समा गयी। मैं पैरिसमें जैसा उसको जीवित छोड़कर गया था, उसकी मुखाकृति तथा शरीर ठीक वैसे-का-वैसा था और वह छतकी मुँडेरपर बैठा था। मैंने कहा 'स्पैरो!' तो वह मेरी चिर-परिचित अपनी कोमल वाणीमें बोला कि 'क्या तुमको मुझसे भय लगता है?' वह मेरी ओर देखकर मन्द-मन्द मुसकरा रहा था। मैं उसको देखता ही रह गया। फिर मैंने कहा— 'क्या तुम सचमुच विद्यमान हो? मैं तुम्हारी भली प्रकार देख-भाल कर लूँ?' मैंने अपने हाथोंसे उसके मुख, शरीर, बालोंको स्पर्श किया तो मुझे यही लगा कि वह जीवित है। मेरे मुखसे आश्चर्यके उद्रेकसे निकला कि 'यह तुम्हीं हो।' फिर मैं उसके समीप ही मुँडेरपर बैठ गया और चिर बिछुड़े मित्रोंमें प्रेमालाप होने लगा। स्पैरोने अपने परलोकके अनुभव सुनाये और वहाँके जीवनपर प्रकाश डाला। उसने बताया कि 'जो आत्माएँ इस लोकमें सचेत हो जाते हैं, वे काल तथा दूरी (Time and Space) के बन्धनसे मुक्त होते हैं। उनके सूक्ष्म होनेके कारण शरीर स्थान नहीं घेरते। मनुष्य अपने प्रारब्धको अपने कर्मोंसे स्वयं बनाता है। आत्माका लक्ष्य प्राकृत संसारकी मोहमायासे निकलना है। तब इसका अध्यात्मजीवनमें प्रवेश होता है। मानव-मात्रका परम पुरुषार्थ मुक्ति तथा परमानन्दकी प्राप्ति है।' यह वार्तालाप पर्याप्त समयतक चलता रहा। फिर स्पैरो वहीं अदृश्य हो गया।

(६)

रोजाली

इंगलैंडके विज्ञानवेत्ताओंकी प्रसिद्ध 'साइकिक रिसर्च सोसाइटी'के विख्यात कार्यकर्ता थे श्रीहैरी प्राइस (Harry Price)। उन्होंने इस सोसाइटीके पचास वर्षके कार्यकी समीक्षापर एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम था— 'फिफ्टी ईयर्स आफ् साइकिक रिसर्च'। इस पुस्तकमें एक छोटी बालिकाके, जिसका नाम रोजाली था, सशरीर प्राकट्य-का बड़ा हृदयग्राही वृत्तान्त है। इस घटनाकी हैरी प्राइस महोदयने स्वयं वैज्ञानिक ढंगसे जाँच की थी।

रोजाली एक धनी-मानी महिलाकी पुत्री थी। उसके पिताकी मृत्यु प्रथम महायुद्धके आरम्भमें ही हो गयी थी। उसकी विधवा माताके लिये स्नेहकी पात्री एक यह बच्ची ही रह गयी थी, जिसका देहान्त अपने पिताकी मृत्युके पाँच वर्ष पश्चात् हो गया। उसकी माताको इससे कल्पनातीत दुःख हुआ। वह सदा अपनी प्यारी पुत्रीको स्मरण करती रहती और उसको देखनेके लिये छटपटाती। वह 'सीऐंस' (मृत आत्माओंसे वार्तालाप करनेके मण्डल) में जाने लगी। उसको इस बातका विश्वास हो गया कि मेरी प्यारी पुत्री परलोकमें सूक्ष्मशरीरसे विद्यमान है। उसको देखे तो कैसे? वर्षोंके स्मरण और ध्यानका फल यह हुआ कि मृत्युके चार वर्ष पीछे उसने एक रात्रिको रोजालीकी प्यारी वाणीमें 'माँ'का शब्द सुना, जिसके श्रवणसे उसको निश्चय हो गया कि 'उसकी पुत्री यद्यपि अदृश्य है, पर है विद्यमान।' वह प्रतिदिन उसकी वाणी सुननेके लिये जाग्रत रहती। शनैः-शनैः रोजालीका प्राकट्य भी होने लगा। पहले धूएँके रूपमें, फिर स्थूलशरीरकी आकृतिमें और अन्तमें एक रात्रिको उसने प्रकट होकर अपनी माताका हाथ पकड़ लिया। माँ—वियोगिनी माँके सुख-संतोषकी सीमा नहीं थी।

अब रोजाली दिनके समय भी सीऐंसके मण्डलमें बुलानेपर सशरीर प्रकट हो जाती।

नेकाती उनलकासिकरोन [पृष्ठ ५५१]

लेबनानका अहमद एलावर [पृष्ठ ५५३]
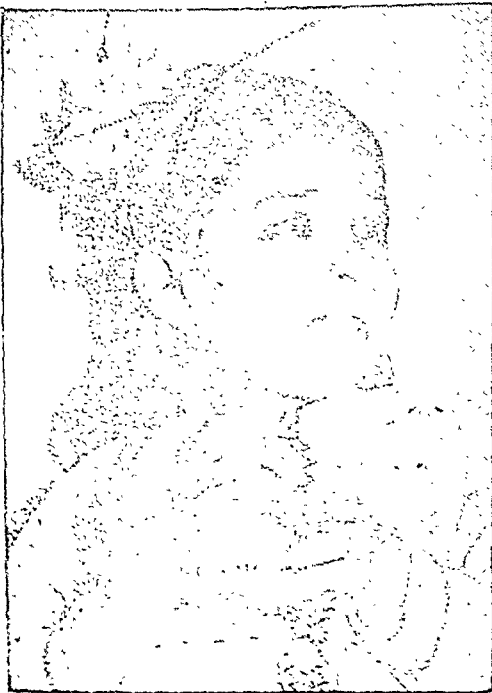
गुजरातकी राजूल शाह [पृष्ठ ५५६]

मध्यप्रदेशकी [illegible]
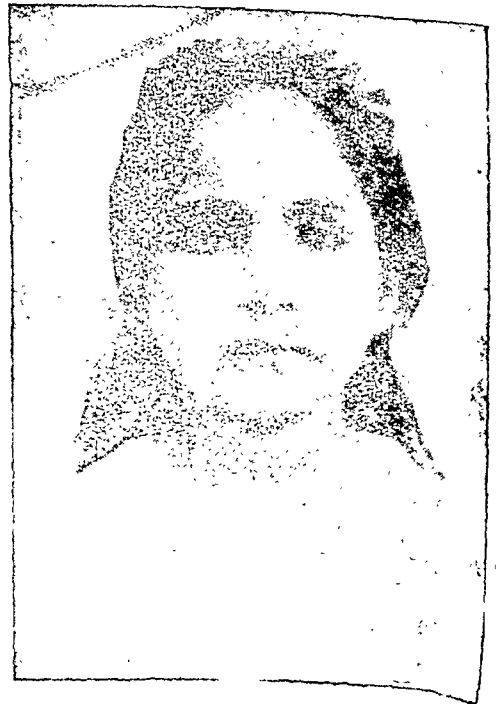
गोपाल [पृष्ठ ५५८]

लेविव कैकिन [पृष्ठ ५७७]

दक्षिण अफ्रिकाकी जोय वर्वे [पृष्ठ ५९५]

जेरूसलमका डेविड मॉरिस [पृष्ठ ६००]

रोजालीकी माता श्रीहैरी प्राइससे परिचित थीं। जब इनको इस विचित्र घटनाका पता चला तो इन्होंने रोजालीकी मातासे इसकी वैज्ञानिक ढंगसे जाँच करनेके लिये अनुमति तथा सहयोगके लिये प्रार्थना की, जिसके स्वीकार किये जानेपर एक दिन निश्चित हुआ। उस दिन रोजालीकी माताके घरपर 'सीऐंस' चक्र आयोजित किया गया। हैरी प्राइसने खिड़कीके किवाड़ बंद करके मोहरें लगा दीं। सीऐंसकी प्रणालीके अनुसार प्रकाश मन्द कर दिया गया और रोजालीका आवाहन करते ही वह प्रकट हो गयी। कन्याके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था। हैरी प्राइसने उसकी माताकी अनुमति लेकर उसके शरीरको हाथोंसे स्पर्श किया। उसने कन्याके वक्ष, मुखपर हाथ फेरा तो जीवित व्यक्तिकी भाँति उष्ण पाया। उसका श्वास चल रहा था, जिसके कारण वक्ष गतिमय था। उसने सारे शरीरपर हाथ फेरा। नाड़ीकी परीक्षा की, जो ८० थी। हृदयके स्पन्दनको वक्षसे कान लगाकर सुना तो स्पन्दन स्पष्ट प्रतीत हुआ। अब प्राइस महोदयने कन्याका रूप-रंग देखनेके लिये प्रकाश अधिक तीव्र किया तो उसके चमकते हुए नैन और गोल कपोल, पतली नासिकासे उसकी मुखाकृति बड़ी ही सुन्दर लगी। इन्होंने कन्यासे कुछ प्रश्न किये, जिसका उसने बालसुलभ अपरिचितसे संकोचके कारण उत्तर न दिया। किंतु जब उससे पूछा गया कि 'तुम मातासे प्यार करती हो' तो उसने बड़े प्यारसे कहा—'हाँ'। तब उसकी माताने उसको छातीसे चिपटा लिया और पंद्रह मिनटमें कन्या अदृश्य हो गयी। अब प्रकाश कर दिया गया। खिड़कीके किंवाड़की मोहरें ज्यों-की-त्यों थीं। इससे सिद्ध हुआ कि रोजाली न कहींसे आयी थी और न कहीं गयी। वहीं उसका प्रादुर्भाव हुआ और वहीं लीन हो गयी।

इस प्रमाणित घटनासे यह सिद्ध होता है कि माताके प्रगाढ़ प्रेम तथा नित्य-नियमित ध्यानने परलोकगत कन्याको सशरीर प्रकट करा दिया। यह घटना अभूतपूर्व हो सकती है; किंतु असम्भव नहीं। सर्वशक्तिमान् लोकमहेश्वर श्रीभगवान्‌को भी प्रगाढ़ प्रेम, सतत चिन्तन, ध्यान तथा हृदयकी तड़पसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर भक्तोंकी इच्छाकी पूर्ति करनी पड़ती है, तो एक मृत कन्याका प्राकट्य भी, यदि उसमें ऐसा करनेकी शक्ति हो तो, सम्भव है।

(७)

लेबिब कैकिन

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

प्रेतावेशमें कहकर भी पुनर्जन्मकी घटनाओंकी व्याख्या की जाती है।

पुनर्जन्मका दूसरा विश्लेषण है, किसी व्यक्तिका अस्थायी रूपसे अपने व्यक्तित्वको किसी प्रेतात्माके समक्ष समर्पित कर देना। निम्नलिखित घटनाके संदर्भमें अब हम इस अनुमान-प्रमाणकी प्रक्रियाका अवलोकन करें।

लेबिब कैकिन (Lebbi Kakin) नामक एक युवतीको अपने शयन-कक्षमें हर सायंकालको एक दृश्य (Vision) दिखायी देता था, जिसमें वह एक बहता हुआ झरना देखा करती थी और एक व्यक्ति, जो अपने तो भी उन दोनोंमें एक सम्बन्धकी भावना क्रमशः बढ़ती गयी और वे आपसमें प्रेम करने लगे।

यह क्रम दो-तीन महीनेतक चलता रहा और एक-एक बंद हो गया। कुछ वर्षोंके अन्तरके बाद वह व्यक्ति स्वप्नमें उस महिलाके सामने प्रकट हुआ। उस महिलाने स्वप्न देखा कि 'उसकी उस व्यक्तिसे समुद्रके किनारे भेंट हुई है और उसने एक बार पुनः उसकी भाषा सीखना आरम्भ कर दिया है।' उसने परस्परके वार्तालापको लिपिबद्ध करनेका अभ्यास कर लिया, परंतु जाग्रत् अवस्थामें वह उस भाषाको कभी भी सीख नहीं सकी। उस महिलाका विश्वास था कि [illegible]

(८)

मानव-जन्मका संस्कार प्रेत-योनिमें भी

(लेखक—श्रीउमाशंकरसिंहजी)

मानव-जीवनका संस्कार अमिट होता है । आत्मा चाहे जिस योनिमें जन्म ले, पूर्व-संस्कारके अनुसार ही उसका स्वभाव बनता है । अतः वर्तमान जन्मका संस्कार ही भावी जीवनका स्वभाव होता है । इसलिये पूर्व-संस्कारके अनुसार ही प्रेतात्माओंका स्वभाव भी मनुष्योंसे मिलता-जुलता होता है । वे भी अपना कल्याण चाहते हैं तथा उनके हृदयमें भी हर्ष-विषादकी लहरें उठती-मिटती हैं ।

हमारे समाजमें बहुधा ऐसी घटनाएँ घटती रहती हैं, जिनसे उपर्युक्त बातोंकी पुष्टि होती है । ऐसी ही दो सत्य घटनाएँ यहाँ दी जा रही हैं—

(क)

प्रेतने आत्मकल्याण किया

ब्रह्मपुर (शाहाबाद) क्षेत्रमें 'गरहथा' नामक एक छोटा-सा गाँव है । वहाँसे दो मीलकी दूरीपर 'योगियाँ' है, जिसमें बहुत पहले एक कथावाचक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे । एक दिन वे गरहथामें हरि-कथा सुनाने आये थे । वहीं रात हो गयी । दूसरे दिन अन्यत्र जाना था । अतः रातको दस बजे लोगोंके आग्रहके विरुद्ध भी वे अपने गाँव (योगियाँ) के लिये अकेले ही रवाना हो गये । हाथमें पोथी एवं एक लालटेनके अलावा उनके पास विशेष कोई सामान नहीं था । योगियाँ एवं गरहथाके बीचमें एक 'कुतसागर' नामक प्रसिद्ध तालाब है । पण्डितजी जब उस तालाबके पास आये तो अकस्मात् एक प्रेत सामनेसे उनका मार्ग अवरुद्ध करने लगा । डरकर वे वहीं बैठ गये, तब प्रेत भी उनके पास आकर खड़ा हो गया । पण्डितजीके यह पूछनेपर कि 'भाई ! तुम कौन हो और मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो मुझे तंग कर रहे हो ?' प्रेतने रो-रोकर अपनी रामकहानी सुनायी—''पण्डितजी ! मैं प्रेत हूँ । मानव-जीवनमें मैं एक ग्वाला था । एक दिन अपने कुटुम्बियोंके यहाँसे लौट रहा था तो अचानक मार्गमें यहाँ बाढ़ आ गयी थी । गाँव जानेके लिये नदी पार करने लगा तो डूब गया । तबसे मैं पानीका प्रेत (बुडवा) बनकर यहीं इस तालाबमें रहता हूँ । मैंने मनुष्य-जीवनसे लेकर आजतक किसीका कुछ भी बिगाड़ा नहीं है । मनुष्य-जन्मकी साधुता ही मुझे चैनसे रहने देती है । परंतु उस जन्मकी एक चूक इस योनिमें भी खलती है । यदि पूर्वका अभ्यास होता तो मैंने डूबते समय 'हरिनाम' लिया होता, जिससे मेरा कल्याण हो जाता । पर ऐसा नहीं हो सका ।' यों कहते-कहते वह सिसकियाँ भरने लगा और पुनः बोला—''अब मेरा कल्याण आप ही कर सकते हैं । यदि कृपा हो तो मैं आपके साथ रहकर नित्य 'हरि-कथा' सुनूँ । हरि-कथासे मेरा उद्धार हो जायगा ।'' उसकी दशा देखकर पण्डितजीको भी दया आ गयी और उसको अपने साथ रहनेकी उन्होंने स्वीकृति दे दी ।

वह बहुत दिनोंतक पण्डितजीके साथ रहकर उनकी पोथी ढोते फिरता था । उसे केवल पण्डितजी ही देखा करते । दूसरोंके लिये वह अदृश्य था । अपने परम प्रस्थानके एक दिन पहले वह कथामें उपस्थित हो गया और तरह-तरहसे पण्डितजीको धन्यवाद देते हुए उनके चरणोंमें लिपट गया । फिर यह कहते हुए कि 'हरिनाम-धुन एवं हरिकथाके प्रभावसे मेरी प्रेतयोनि छूट रही है । मेरा आत्म-कल्याण हो गया ।' वह अदृश्य हो गया ।

(ख)

प्रेतकी पुण्य-याचना

घटना बहुत पुरानी नहीं है और है यह बिल्कुल सत्य । मेरे सम्पर्की श्रीरामसिंहासन साहु बहुत दिनोंसे आसाममें व्यापार करते आ रहे हैं । पहले वे वहाँ घोड़ेकी लदिया करते थे; अब कपड़ा आदिकी दूकान है । एक दिन वे घोड़ा लादनेके लिये (घोड़ेपर सामान लेने) अपने साथियोंके साथ बहुत दूर एक बड़ी बस्तीमें चले । दोपहरके समय सभी लोग रास्तेमें पड़नेवाली एक नदीके किनारे भोजन करने बैठे । इनमें एक 'भोला' नामक आदमी था, जो स्वभावका भी भोला था । वह अपना खाना थालीमें रखकर नदीमें जल लेने गया । लौटनेपर देखा कि 'उसका खाना एक कुत्ता खा रहा है और

उसके साथी देख-देखकर हँस रहे हैं।' मनमें यह सोच-कर कि 'खाना तो कुत्तेने जूँठा कर ही दिया, उसे खदेड़ने-मारनेसे क्या लाभ ?'—भोलाने कुत्तेको सारा खाना खिला दिया और थाली मलकर रख ली। इस तरह वह उस दिन भूखा रहा। उसके इस भोलेपनका साथियोंने खूब मजाक उड़ाया।

सामान लेकर लौटते समय संध्या हो जानेके कारण एक समीपके गाँवमें वे लोग ठहर गये। संयोगसे ये लोग एक ऐसे आदमीके द्वारपर ठहरे, जिसके घरमें एक आदमी 'ब्रह्मदुखी' था। घरका मालिक उदास एवं चिन्तित बैठा था। उसे देखकर व्यापारियोंने उदासीका कारण पूछा तो उत्तर मिला—'क्या करें भाई! हमारे घरमें एक आदमी ब्रह्मपीड़ित है।' मजाकमें ही व्यापारियोंने ब्रह्मदुख झाड़नेके लिये भोलाको उस आश्रयदाताके घर जानेको कहा। आश्रयदाता भी भोलाको तान्त्रिक व्यक्ति समझकर अपने घर चलनेके लिये आग्रह करने लगा। भोला तो बेचारा भोला था ही, अपने भोलेपनमें ही उसके घर चला गया। आँगनमें बैठे ब्रह्मराक्षससे पीड़ित व्यक्तिने जब भोला देखा तो जोरसे हँसकर कहा (उस समय वह प्रेतावेशमें था अतः प्रेत ही बोल उठा)—'क्या जी, तुम्हीं आये हो अच्छा, मैं तो इसके घरसे चला जाऊँगा, पर एक शर्त मानो तब।' भोलाने शर्त पूछी तो उत्तर मि 'तुम आजकी अपनी कमाई मुझे दे दो तो मैं इसे सद लिये छोड़कर इसके घरसे चला जाऊँ।' भोला जब बातको नहीं समझ सका तो प्रेतने उसे कुत्तेको ख खिलानेकी बात याद दिलायी और कहा कि—

'मनुष्यकी सच्ची कमाई यही है। इसका तुम्हें अ पुण्य मिला है। यदि किसी ब्राह्मणद्वारा मेरे नामसे पुण्यके अर्पणका संकल्प कर दो तो मैं यहाँसे चला जाऊँ

भोलाने उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाकर अ पुण्य प्रेतको दान कर दिया। फिर तो सदाके लिये स्वामीको प्रेतपीड़ासे छुटकारा मिल गया!

यमराजके दर्शन करके लौट आये

[मृत्युके पश्चात् लौटे हुए लोगोंकी घटनाएँ]

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

(१)

भाँगरी मनिहारिन

नवम्बर, सन् १९५७ में कानपुरमें श्रीसर्ववैदिकशाखा-सम्मेलन हुआ था। उस अवसरपर काशीके विद्वान् पं० श्रीलालबिहारी मिश्रजी, अध्यापक श्रीगोयनका संस्कृत महाविद्यालयसे हमारी कुछ परलोक-सम्बन्धी बातें होने लगीं। आपने अपनी पूरी जाँच की हुई परलोकसम्बन्धी घटना सुनायी। वह इस प्रकार है—

सकलडीहा स्टेशनसे (जिला वाराणसी) तीन कोस उत्तरकी ओर प्रभुपुर नामक एक ग्राम है। उसी ग्राममें भाँगरी नामक एक मुसलमान स्त्री थी, जो काँचकी चूड़ियाँ बेचनेवाले मुसलमान मनिहारकी पत्नी थी। एक बार उस मुसलमान भाँगरीके पड़ोसकी एक स्त्री सांघातिक रोगसे पीड़ित थी। भाँगरी उसकी बीमारीका समाचार सुनकर उस स्त्रीको देखनेके लिये उसके स्थानपर गयी। उस बीमार स्त्रीको देखनेके पश्चात् ज्यों ही लौटकर वह घर वापस आयी तो अचानक ही उसकी मृत्यु हो गयी। अपने घरसे उस बीमार स्त्रीके पास जानेसे पहले वह बि ही अच्छी थी। उसे किसी भी प्रकारका कोई रोग नहीं

भाँगरी मुसलमान थी। उसे मुसलमानी प्रथाके अ दफनानेकी क्रिया करनी प्रारम्भ कर दी गयी। उसे दफ लिये गाँवसे बाहर जंगलके कब्रिस्तानमें एक गड् खोद लिया गया और भाँगरीके शवको वस्त्रोंसे लपेट दिया गया। जब उसे कब्रमें दफनानेके लिये रक्खा जा तो वह एकाएक जीवित हो गयी। उसके मुखसे कुछ अव्यक्त शब्द निकले। उसने अपने हाथके अपने मुखपरसे कपड़ा हटानेके लिये जब उसके मुखपरसे कपड़ा हटाया गया तो उ लोगोंने बड़े ही आश्चर्यके साथ देखा कि उसका सि बिल्कुल ठीकठाक था; पर अब तो उसके सिरमें जल निशान लगे हैं, मानो किसीने उसे त्रिशूल गरमा

दिया है, जिससे उसके कुछ केश भी जल गये थे। बादमें जबतक भाँगरी जीवित रही तबतक वे केश बराबर जले रहे। वह त्रिशूलका निशान भी बराबर मरनेतक इसी प्रकार बना रहा। लोगोंने इसका कारण पूछा तो उन्हें भाँगरीने बताया—

"मैं बिल्कुल ठीकठाक थी। मुझे कोई रोग नहीं था। एकाएक मेरे सामने दो व्यक्ति आये। वे मुझे पकड़कर अपने साथ कहीं बहुत दूरपर ले गये। वे मुझे जहाँ ले गये, वहाँ पहुँचकर मैंने देखा कि एक बहुत बड़ी सभा लगी हुई थी। एक ऊँचे आसनपर एक बड़ा ही तेजस्वी व्यक्ति बैठा हुआ था। उस तेजस्वी व्यक्तिने उन दोनों व्यक्तियोंको, जिन्होंने मुझे उसके सामने ले जाकर उपस्थित किया था, बहुत ही फटकारा कि 'तुम इसे यहाँ-पर क्यों ले आये हो? इसकी मृत्यु अभी नहीं थी। इसकी तो आयु अभी चौदह वर्ष और बाकी है। तुम्हें तो हमने इसके पड़ोसकी जो स्त्री बीमार है, उसको लानेके लिये भेजा था। यह स्त्री बड़ी पापात्मा है। जब यह अपनी आँखोंसे अपनी दोनों लड़कियोंके मरनेका दुःख देख लेगी, तब मरेगी। तुमलोगोंने इसे व्यर्थ कष्ट दिया है; इसलिये इसके हितकी दृष्टिसे त्रिशूलसे इसके सिरको दाग दो, ताकि इसे अब जीनेके बाद यहाँपर आनेकी बात याद रहे। यह पापोंसे बचे।' उन्होंने मुझे झटसे त्रिशूलसे दाग दिया। इसी कारण ये मेरे सिरके केश जल गये हैं और मेरे सिरपर उनका लगाया त्रिशूलका निशान लगा हुआ है।"

भाँगरीकी बतायी हुई चारों ही बातें सत्य सिद्ध हुईं। सिरमें यमदूतोंद्वारा लगाया चिह्न जीवनभर रहा। जिस समय भाँगरी जीवित हुई थी, उसी समय उसके पड़ोसकी बीमार स्त्रीका देहावसान हो गया। १४ वर्षके भीतर ही सचमुच भाँगरीके सामने उसकी दोनों लड़कियाँ मरीं। उनके मरनेका घोर दुःख इसे अपनी आँखोंसे देखनेको मिला। १४ वर्ष पूरेकर वह १५वें वर्षमें मर गयी।

(२)

पधारे थे। एक दिन उन्होंने कथाके बीच प्रसङ्गमें अ घरकी एक परलोक-सम्बन्धी घटना सुनाते हुए कहा—

"सन् १९४६ की बात है। हमारे पिताजी, जिन शुभनाम श्रीरक्खामलजी था, नानकाना साहबमें रहा क थे। वहाँपर हमारा अपना घर था। हमारे पिताजी नि प्रति प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें ही उठ जाया करते किंतु एक दिन वे ब्राह्ममुहूर्तमें नहीं उठे। इससे चिन्ति होकर घरके हमलोग पिताजीके कमरेमें उन्हें देखने लिये गये। वहाँ जाकर देखा कि पिताजी पलंगपर प सो रहे हैं। हमने उन्हें जोरसे आवाज देकर पुकारा। बोले नहीं। हमने उन्हें पासमें जाकर समीपसे देखा औ उनके शरीरके अपना हाथ लगाया। उस समय उनक शरीर ऐसा था कि जैसा कोई मुर्दा होता है। हम सब बहु घबराये। तुरंत दौड़े हुए डाक्टरके पास गये और डाक्टरक अपने साथ बुलाकर लाये। डाक्टरने पिताजीको ब गौरसे देखा और कहा कि 'इन्हें अत्यधिक कमजोरी है।' उस समय पिताजीका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ था। वे बिल्कुल पीले पड़ गये थे।

"कुछ देरके पश्चात् पिताजीको जैसे-तैसे होश हुआ। होशमें आनेपर उन्होंने हमें बताया—'प्रातःकाल लगभग पाँच बजे दो यमके दूत मुझे लेनेके लिये आये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि 'तुम हमारे साथ चलो।' मैं उन दोनों यमदूतोंके साथ चला गया। दूर जानेपर मैंने देखा कि एक बहुत बड़ा मैदान है, जहाँपर एक मनुष्य बैठा हुआ है। उसने मुझे देखते ही उन दोनों यमदूतोंसे कहा—'इसे यहाँपर मत लाओ। हमने तुम्हें इसे लानेके लिये कब कहा था? यह तो दूसरा रक्खामल अग्रवाल है, जो इनके बिल्कुल पड़ोसमें ही रहता है? तुम जल्दीसे जाओ और उसी रक्खामल अग्रवालको ले आओ। इन्हें अभी ले जाकर वापस कर आओ।' वे दोनों यमदूत मुझे वहाँसे अपने साथ लाकर यहाँपर छोड़ गये। तबसे मेरे शरीरमें बिल्कुल ही शक्ति नहीं रही।"

हमने यह घटना कहाँतक सत्य है, यह जाननेके लिये तुरंत अपने मोहल्लेके लाला रक्खामल अग्रवालका पता

(३)

सागवाली अहीरिन

हमारे पिलखुवाके पास एक गाँवकी बुढ़िया थी अहीरिन। वह बेट-कचरिया या साग आदि बेचकर अपना निर्वाह करती थी। हमारी माताजीसे उसका बड़ा स्नेह था। जब भी वह कभी कोई फल बेचने आती थी तो हमारे घर अवश्य आती थी। एक दिन वह अकस्मात् मर गयी। घरवालोंने उसे मरा समझकर, बाँसोंकी अर्थीपर कसकर, श्मशानघाट ले जाकर, लकड़ियोंपर लिटा दिया। ज्यों ही आग लगानेकी तैयारी हुई, वह हिलने लगी और बोल पड़ी। सबको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। जीवित होनेपर उसने परलोक-सम्बन्धी अपना अनुभव बताया। हमने भी उसे अपने स्थानपर बुलाकर माताजीके सामने सुना। उसने बताया—

'मैं बीमार नहीं थी, ठीक थी। मेरे सामने बड़ी-बड़ी डरावनी सूरतवाले दो काले-काले आदमी आकर खड़े हो गये और मुझे पकड़कर अपने साथ ले गये। मैंने वहाँपर देखा कि एक बहुत बड़ा दरबार लगा हुआ है। एक सुन्दर सिंहासनपर एक बहुत बूढ़ा व्यक्ति बैठा हुआ है, जिसके बिल्कुल सफेद चाँदी-जैसे बाल हैं। उसके हाथमें बहुत बड़ी बही है और कागजके ढेर लगे हुए हैं। उसने मुझे अपने सामने खड़ी देखकर उन दूतोंसे कहा—'अरे! तुम इसे क्यों ले आये? इसे अभी नहीं। इसे जल्दीसे नीचे डालो। तुम इसे भूलसे ले आये हो।' उन्होंने जल्दीसे लाकर यहाँ छोड़ दिया। यमदूतोंकी लगी मार आज भी मेरे शरीरमें कष्ट पैदा करती रहती है।'

(४)

श्रीविश्वम्भरनाथजी बजाज

दिल्लीके दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' में ता० २० दिसम्बर, सन् १९५७ को यह समाचार छपा था—

''मुरैना। इस बातपर विश्वास होना कठिन है; किंतु घटना यह सत्य है कि यहाँके एक व्यवसायी विश्वम्भरनाथ बजाजका, जिनकी आयु ७५ वर्ष है और जो कई दिनोंसे बीमार चले आ रहे थे, अभी १६ तारीखको पहले तो उनका प्राणान्त हो गया; किंतु कुछ देर बाद वे फिर जीवित हो उठे। उसी समय उनके बजाय एक दूसरे व्यक्तिका देहावसान हो गया।

''घटना इस प्रकार बतायी जाती है कि १६ ता० को श्रीविश्वम्भरनाथकी दशा बिगड़ने लगी। धीरे-धीरे जीवनके सभी लक्षण उनके शरीरसे लुप्त हो गये। उनकी नाड़ीकी गति बंद हो गयी। श्वास बंद हो गया। शरीर पूर्णतया ठंडा हो गया। इसपर उनके कुटुम्बियोंने उन्हें मृत समझकर भूमिपर उतार लिया और अन्त्येष्टि-क्रियाकी तैयारियाँ करने लगे। किंतु लगभग आध घंटेके बाद ही वे अचानक उठ बैठे और आश्चर्यमें पूछने लगे कि 'यह सब क्या हो रहा है? उन्होंने लोगोंको यह आश्वासन देते हुए कि 'मैं मरा नहीं हूँ।' आगे बताया कि 'कुछ लोगोंने उन्हें उठाकर आकाशमें एक दिव्य पुरुषके सामने रख दिया, जो एक वृषभपर आरूढ़ था। उस दिव्य पुरुषने वाहकोंको फटकारते हुए कहा कि 'इस आदमीको शीघ्र ही पृथ्वीपर छोड़ आओ। मैंने इसे नहीं, बल्कि दूसरे व्यक्तिको बुलाया था।' इसपर वह वापस उन्हें यहाँ छोड़ गये, उन्होंने यह घटना सुनायी ही थी कि लोगोंको थोड़ी देर बाद यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि श्रीविश्वम्भरनाथमें चेतना उत्पन्न होनेके ठीक समय नगरके एक दूसरे व्यवसायी श्रीग्यासीराम, जो ४० वर्षकी आयुके थे और जिनका स्वाथ्य पूर्णतया ठीक था, हृदयगतिके रुक जानेसे अचानक मर गये। इस दैवी घटनाकी चर्चा नगरके कोने-कोनेमें हो रही है।''

(५)

जानकी खटिकिन

'श्रीमारुतिसंजीवन' मासिक अङ्क १० अक्टूबर, सन् १९५६ में यह घटना इस प्रकार छपी है—

''अभी पूरे पचीस वर्ष नहीं हुए, इसी नुनहड बस्तीमें एक महिला जानकी नामकी थी, जो जातिकी खटिक थी, बीमार हुई और महीनों पड़ी रहकर एक दिन मरणासन्न अवस्थामें पृथ्वीपर लिटा दी गयी। हिचकियोंसे उसका प्राणान्त हो गया। इसी ग्रामकी वह लड़की थी और अपने नामकी जायदाद उत्तराधिकारमें पाकर अपने पति सीताराम नामक खटिकके सहित यहीं आकर रहने लगी थी। उन दिनों सीताराम जीवित था। हम गाँववाले अधिकांश जानकीको 'जनुकिया' कहकर ही पुकारते थे।

मृत्युके उपरान्त उसे श्मशान ले जानेके लिये बाँसकी लकड़ियोंपर उसकी अर्थी बनायी जाने लगी। सीताराम बूढ़ा था और दमाका रोगी था। लोगोंको बुलाने आदिमें पर्याप्त समय

निकल गया। लोग अर्थी बाँध रहे थे कि उधरसे जनुकियाकी बुरी तरहसे जोरसे चीखनेकी आवाज आयी। लोग इस आश्चर्यको देखने दौड़कर पहुँचे। उसे रोते देखकर पूछा तो 'उसने कमरमें बुरी तरह चोट लगने और बड़ी दूर ऊँचेसे पटक देनेकी चर्चा करते हुए बताया कि 'यहाँसे दो काले आदमी मुझे घसीट कर ले गये थे। मैं रोती-चिल्लाती रही; पर उन्होंने तनिक भी दया नहीं दिखायी। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा—एक बूढ़े बाबा सफेद दाढ़ीवाले बैठे थे—तख्तपर। उनके पास ढेर-के-ढेर बस्ते रक्खे थे। उनके सामने पहुँची तो उन्होंने देखते ही उन ले जानेवाले लोगोंसे कहा—'इसे क्यों लाये हो? दूसरी जमुलिया है, उसे लाओ।' यह सुनकर उन लोगोंने मुझे वहाँसे पटक दिया, इससे मेरी कमर टूट गयी। मैं बच भी गयी तो अधमरी हो गयी।' उसकी ये सब बातें सुनकर सब लोग अपना-अपना तर्क और बुद्धिमानी बघारने लगे, पर दो घंटेके पश्चात् स्थानीय एक दूसरी बुढ़िया जमुनिया नामकी लोध राजपूतनी मर गयी। उस घटनाके पश्चात् जनुकिया खटिकिन दस वर्षसे भी अधिक जीवित रही।"

(६)

श्रीरुद्रदत्त

'नवभारत टाइम्स' दिल्ली (९ । १ । १९६०) लिखता है। "नैनीताल ८ जनवरी। गढ़वाल जिलेमें रानाघाटके पास छुंडी ग्रामका निवासी रुद्रदत्त मृत घोषित किये जानेके कुछ देर बाद पुनः जीवित हो उठा। उसके सगे-सम्बन्धी रोते हुए विलाप कर रहे थे और उसकी अन्तिम क्रियाकी तैयारी की जा रही थी। इतनेमें मृत व्यक्तिमें पुनः जीवनके चिह्न दिखायी दिये। उसने आँखें खोलीं। अपने सम्बन्धियोंको और ग्रामवासियोंको परलोकयात्राके अनुभव सुनाये। रुद्रदत्तने कहा कि 'मुझे श्रीहनुमान्‌जीका मन्दिर बनानेका दैवी आदेश मिला है।' रुद्रदत्त काफी समयसे बीमार था। अब वह अच्छा हो गया है और उसने परलोकमें मिले दैवी आदेशके अनुसार एक श्रीहनुमान्‌जी महाराजका मन्दिर बनाना शुरू कर दिया है।"

(७)

तुलसी बुआ

'प्रभात' दैनिक, मेरठ ता० ४ मार्च, सन् १९६६ में छपी घटना इस प्रकार है—

"कानपुर। मौतको उन्होंने छला था या मौतने उन्हें—यह तय करना तो कठिन है, लेकिन अन्तमें श्रीतुलसी बुआको मरना ही पड़ा। तुलसी बुआ यहाँसे चालीस मील दूर स्थित एक ग्रामकी निवासिनी थीं। अपने धर्मप्रेम तथा पूजापाठके लिये विख्यात थीं। विगत १४ फरवरीको रात्रिमें १० बजे उनका देहान्त हो गया और दूसरे दिन प्रातः जब उन्हें चितापर रक्खा गया तो वे उठकर बैठ गयीं और बोलीं कि 'यमदूत मुझे भगवान्‌के सामने ले गये तो वे बोले कि अभी इसका समय नहीं हुआ है। इसपर यमदूत मुझे वापस भेज गये।' उन्होंने यह भी बताया कि 'भगवान्‌के सिंहासनपर इतनी चमक थी कि मुझे उनकी झलकतक नहीं दीख पायी।' तुलसीदेवीको, जो उस क्षेत्रमें बुआजीके नामसे विख्यात हैं, बाजे-गाजेके साथ घर लाया गया। समाचार-पत्रोंमें यह भी खबर छपी थी कि स्वर्गसे लौटी इस देवीके दर्शनोंके लिये हजारोंकी भीड़ उस गाँवमें पहुँचने लगी। तुलसी बुआ एक तख्तपर लेटी रामनाम जपती रहती थीं और कभी कदा दर्शनार्थियोंपर आशीर्वाद भी लुटा देती थीं। ठीक शिवरात्रिके दिन उन्होंने सहसा कहा कि 'अब मेरा अन्तकाल आ गया है।' और तत्काल उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। उनकी अन्त्येष्टिमें हजारों लोग शामिल हुए।"

सर औकलैंड गैडीजका अनुभव

(लेखक—श्रीनिरञ्जनदासजी 'धीर')

मृत्यु क्या है? स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीरका सदाके लिये अलग हो जाना। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार (अन्तःकरण) सूक्ष्मशरीरका वह भाग है, जिसका मानव जीवित अवस्थामें भी हर समय प्रयोग करता है। मानवका व्यक्तित्व सूक्ष्मशरीर, जिसमें अन्तःकरण है, रहता है। जो मृत्युके पश्चात् भी वैसा ही रहता है। सूक्ष्म-शरीर काल तथा आकाश (Time and Space) के बन्धनसे मुक्त होता है। जहाँ ध्यान जाय वहीं वह स्वयं है। इन तथ्योंकी सत्यताकी पुष्टि सर औकलैंड गैडीज (Sir Auckland Geddes) के उस निबन्धसे होती है, जो इन्होंने २६ फरवरी १९२७ को 'रायल मेडिकल सोसाइटी'के अधिवेशनमें पढ़ा था, जिसमें मरते हुए एक

रोगीका अनुभव है। इस रोगीको ठीक मृत्युके द्वारसे चिकित्साद्वारा लौटाया गया था। सर औकलैंडने बताया कि "उस व्यक्तिको एक प्रकारका विषूचिका रोग हो गया था। वह कई घण्टोंसे वमन तथा अतिसारसे आक्रान्त था। रोगकी तीव्र व्यथा तथा उसके विषके प्रभावसे उसकी जीवनी-शक्ति जाती रही और वह निश्चेष्ट होकर पड़ गया। उसने अपनी आर्थिक स्थितिका मूल्याङ्कन किया, जिससे सिद्ध होता था कि उसकी चेतना सजग थी।

"अचानक उसने अनुभव किया कि उसकी एक चेतना (क) उसकी दूसरी चेतना (ख) से पृथक् हो रही है और यह (ख) चेतना भी वही है। उसका अहंकार मैं (क) चेतनाके साथ था और (ख) उसका शरीर था। फिर उसने अनुभव किया कि (क) चेतना (ख) शरीरसे बाहर है, जो (ख) शरीरको देख रही है, जो बिगड़ना आरम्भ हो गया था। शनैः-शनैः उसने यह अनुभव किया कि वह केवल समीपकी वस्तुएँ ही नहीं देख रहा है, वरं लंदनमें अपने घरको भी देख रहा है; यहाँतक कि स्काटलैंड तथा अन्य स्थानमें, जहाँ उसका ध्यान जाता, वही स्थान उसकी दृष्टिके समक्ष होता। उसको बताया गया कि काल तथा स्थान (Time and Space) के बन्धनसे वह मुक्त है। जिसका अर्थ था कि 'अब' (वर्तमान) और 'यहाँ' ही रह गये हैं। अब वह अपने परिचित लोगोंको पहचानने लगा; किंतु उसके चारों ओर रंगदार प्रकाश जमा हुआ प्रतीत होता था। जब डाक्टरने कहा कि 'रोगी तो हो चुका' तब उसने ये शब्द तो सुन लिये, किंतु वह उत्तर नहीं दे सकता था; क्योंकि वह (ख) शरीरसे बाहर था। डाक्टरने तब कैम्फरका इंजेकशन लगा दिया, जिससे हृदयमें शक्तिका संचार हुआ और वह गतिशील हो गया तो (क) को खींचकर (ख)में डाल दिया गया। इस घटनासे उसको महान् दुःख हुआ और उसे क्रोध आया; क्योंकि वह इस कौतुकको तथा वह कहाँ है और क्या देख रहा है, समझने लगा था। रोगीने बताया कि 'यह उसका अनुभव स्वप्नवत् नहीं था, जिसको भुलाया जा सके। यह उसकी सजग चेतनाका प्रत्यक्ष अनुभव था।' सर औकलैंडका कथन है कि 'यह अनुभव कृत्रिम नहीं था। सोलहों आने सत्य है।'

श्रीबालाबख्शजी

[पुत्रप्राप्ति]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

यह सही सत्य घटना मैंने अपनी पूजनीय माता श्रीबालाबाईके श्रीमुखसे सुनी थी, जो मुझे आज भी ज्यों-की-त्यों याद है।

राजपूताना हाड़ौती प्रान्तमें देहलनपुर नामकी तहसील पहले झालावाड़, कोटा राज्योंमें रही, अब बृहत् राजस्थानमें है।

इसी देहलनपुर तहसीलमें मेरे पितामह पू० बालाबख्शजी कारकूनके पदपर नियुक्त थे। अवस्था अधिक हो जानेपर भी पितामहीके कोई पुत्र—संतान न होनेसे दोनों बहुत उदास रहते थे। उन्होंने पुत्र-प्राप्त्यर्थ दान-पुण्य, अनुष्ठान-व्रतादि किये-कराये; किंतु सफलता नहीं मिली। इससे पू० पितामही रुग्ण रहने लगीं। चिकित्सासे लाभ नहीं हुआ। अन्तमें उनका देहान्त हो गया।

इस व्यथाको सम्बन्धी-जन यों व्यक्त करने लगे—'व्रतादिके फलस्वरूप इसको पुत्र-प्राप्ति हो जाती तो इसे अत्यधिक सुख मिलता। तो क्या ये सब सदुपाय निष्फल जाते हैं?' कोई कहता—'पुत्र-प्राप्तिके हेतु पहले बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया जाता था। अब साधारण उपायोंसे क्या होता है? माना कि कलियुगमें भगवन्नाम-स्मरणसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, पर इसमें अटल श्रद्धा भी तो होनी चाहिये।'

इधर यह चर्चा चल रही थी; उधर तैयार अर्थीपर शवको सुलाकर आवश्यक विधियाँ पूर्ण कर ली गयी थीं। अब केवल अर्थी उठाना ही शेष था। 'राम नाम सत्य है' कहते हुए ज्यों ही चार जनोंने अर्थी उठानेको हाथ बढ़ाये, त्यों ही शवमें कुछ चेतनता जान पड़ी। अपने कफनके बन्धनोंको तोड़नेकी मानो वह चेष्टा कर रहा है। यह देख सब लोग, सम्भावित भूत-प्रेत होनेकी शङ्का-कर शवकी ओर आश्चर्यभरी दृष्टिसे देखते हुए आपसमें कानाफूसी करने लगे—'कोई प्रेत समा गया है—इस शवमें।' कोई कहता—'किसी शव-साधकने अभीसे इसपर विद्या चलायी है।' हितैषी चिन्ता करने लगे—'यह शव

भूत-प्रेत कुछ भी यदि हो जाय, तो इस धर्मपरायण घरानेमें कलङ्क लग जाय !' कोई कहता—'मरणके उपरान्त जीवित होना असम्भव है। यह किसी अज्ञात कारणसे हलचल हुई जान पड़ती है।'

इतनेमें ही शवके उठनेकी विशेष चेष्टा देखकर साहसी लोगोंने उसको उठानेमें सहारा दिया। अब पितामही उठकर बैठ गयीं; मानो गहरी निद्रासे जागी हों। धीरे-धीरे उन्होंने बोलना शुरू किया—

"मुझे यमदूत ले गये और यमराज चित्रगुप्तजीके सामने खड़ा कर दिया। वह स्थान मुझे स्वर्णपुरी-सा जान पड़ा। रत्नजटित स्वर्णके ऊँचे सिंहासनपर चित्रगुप्तजी विराजमान थे। उनके सम्मुख लंबे पन्नोंका साहूकारी बड़ी बही-जैसा एक बड़ा भारी पोथा रक्खा था। दूसरे ऐसे ही सिंहासनपर यमराजजी विराजमान थे, जिनका श्याम वर्ण, बड़े-बड़े लाल नेत्र और मोटा शरीर था। उनकी आज्ञासे पोथेके पन्ने उलटकर मेरे पाप-पुण्यका हिसाब देखते हुए चित्रगुप्तजी बोले—'इसकी तो अभी बहुत आयु भोगना शेष है। इसने जो भगवदाराधन, व्रत-अनुष्ठानादि किये हैं, उनके फलस्वरूप इसको एक धर्मात्मा पुत्रकी प्राप्ति होगी।'

यह सुन यमराजने दूतोंसे कहा—'तुमने बड़ी भूल की है। अब इसे शीघ्रातिशीघ्र इसके स्थानपर ले जाओ। नहीं तो इसके शवको जला देनेपर इसका आत्मा इधर-उधर भटककर शेष आयु बितायेगा और इसकी जगह उसी मुहल्लेकी इसी नामकी दूसरी महिलाको शीघ्र लाओ।'

मैंने कर जोड़ धर्मराजसे सानुनय निवेदन किया—'दयानिधान ! अब मैं मृत्युलोकमें घर जाकर क्या करूँगी ? मुझ निपूतीका कोई मुँह देखना भी पसंद नहीं करेगा। पुत्र-रत्नरूपी प्रकाशके बिना घरमें अन्धकार दिखायी देगा। मैं अशान्त और पहले-जैसी रुग्ण बनी रहूँगी। मुझे कुछ दिनोंके पश्चात् तो फिर आपके दरबारमें आना ही पड़ेगा। इसलिये जब आ गयी हूँ, तो वापस न भेजा जाय।'

मेरी प्रार्थना सुन धर्मराज बोले—'देखो, तुम्हारी मृत्यु-घड़ी अभी आयी नहीं है। दूत भूलसे तुमको यहाँ ले आये हैं। अभी भवनपर सुखपूर्वक जीवित रहो। भगवान्की तीर्थयात्रा करनेसे तुम्हारे धर्मशील, भगवद्भक्त और मातृ-पितृ-भक्त पुत्र उत्पन्न होगा।'

'यह वरदान सुन प्रसन्नतापूर्वक मैंने अपने घर आना स्वीकार कर लिया। किंतु, एक प्रार्थना पुनः यों की—'कृपासागर ! मुझे कोई निशानी दीजिये। इसके बिना वहाँ मेरी बातपर कोई विश्वास नहीं करेगा। लोग मुझे भूत-प्रेतकी संज्ञा देकर मेरे पास नहीं आवेंगे। मेरा जीवन दूभर हो जायगा।'

तब उन्होंने मुझे लोहेके चने निशानीके रूपमें दिये। फिर तत्काल मुझे यहाँ लाया गया। यह देखो, मेरी मुट्ठियोंमें लोहेके चने मौजूद हैं।"

इतना कहते हुए दादीजीने सबको वे लोहेके चने दिखाये, जिन्हें देखकर उपस्थित जनोंको विस्मयके साथ विश्वास हुआ।

यह संवाद थोड़ी देरमें ही सारे नगरमें बिजलीकी भाँति फैल गया, जिसे सुनकर नगर-निवासी एवं दूर-दूरके लोगोंके समूह बड़ी उत्सुकतासे इस अनोखे दृश्यको देखनेके लिये आने लगे। रक्षार्थ भवनके द्वार बंद कर लेने पड़े। तब भी बाहरसे प्रश्नावलीकी झड़ीसे मानो वातावरण गूँज उठा। सही बात बताकर बड़ी कठिनाईके साथ भीड़को वहाँसे हटाया गया।

सत्य समाचार जानकर सबको पूरा विश्वास हो गया कि 'सचमुच ही हमारे पुराणोंमें वर्णित यमलोक है, यमराज हैं, चित्रगुप्त हैं और वहाँ जीवोंके पाप-पुण्यका न्याय होकर कर्मोंके अनुसार दण्ड दिया जाता है।' इस प्रकार आपसमें वार्तालाप करते हुए वे अपने भवनोंको गये।

उसी समय सबने देखा-सुना कि ज्यों ही पितामहीका शव चैतन्य हुआ, तभी पड़ोसकी एक महिलाकी मृत्यु हो गयी और यों धर्मराजकी बात सत्य प्रमाणित हुई। तत्काल इस ताजी घटनाको देख जनताका परलोकके अस्तित्वपर और भी दृढ़ विश्वास जम गया।

पूज्य पितामहीके कथनमें पुराणवर्णित ऐसी किसी नरक-नदीकी चर्चा नहीं आयी, जिसमें पापी जीवोंको रखकर भाँति-भाँतिके कष्ट दिये जाते हैं और पुण्यात्माओंको सुख। जान पड़ता है—पुण्यमयी होनेसे उन्हें सीधे-सरल-मार्गद्वारा यमालयमें ले जाया गया होगा और उनको नरक दिखाये भी नहीं होंगे। सुनता आया हूँ—हमारी कई पीढ़ियोंमें अभक्ष्य-भोजन तथा कदाचारका तनिक भी

चलन नहीं रहा। यह भी एक कारण हो सकता है।

इस घटनाके कुछ दिनों पश्चात् श्रीधर्मराजका वरदान सिद्ध हुआ। पू० पितामह-पितामहीने पुत्र-कामनाके हेतु सम्पूर्ण भक्ति-भावनाके साथ श्रीजगन्नाथपुरीकी तीर्थ-यात्रा की। वहाँ सविधि यात्रा पूरी कर भवनपर लौटनेके बाद दयासिन्धु श्रीहरिकी महती कृपासे मेरे पिताजीने जन्म ग्रहण किया।

श्रीधर्मराजके वरदानके अनुसार पिताजी अपने जीवनमें बड़े धर्मशील, भगवत्परायण, मातृपितृ-भक्त, दानी एवं साधु-सेवी रहे, जिसके कारण उनका स्वर्गवास मुक्ति-प्रदायिनी काशीजीमें हुआ।

उनका जन्म-वृत्तान्त सुनकर उन लोगोंके विस्मयकी सीमा नहीं रही, जो व्रत-अनुष्ठानादिके द्वारा अथवा भगवान्‌की आराधनासे मनोकामना सिद्ध होनेमें संदेह करते थे, एवं धर्मराजके वरदानकी बात असत्य मानकर हँसी उड़ा रहे थे। अब तो उनके पास पश्चात्तापके सिवा हँसी उड़ानेका कोई उपाय नहीं रहा।

जीव अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियोंमें जन्म लेकर कर्मोंका फल भोगता है। यही हमारी आर्य-संस्कृतिका शाश्वत सत्य निश्चित सिद्धान्त है। इसपर पूरा विश्वास करना ही अभीष्ट है।

आजका मानव अविश्वासी बन, भगवान्‌को भूलकर स्वार्थ, व्यभिचार, अत्याचार, हिंसा, चोरी-डकैती, ईर्ष्या, द्रोह, असत्य, बेईमानी आदि अनेक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त हो, खुशियाँ मना रहा है। अपने दुर्लभ जीवनका इस प्रकार दुरुपयोग कर दिनोंदिन उसका ह्रास करनेमें जरा भी लज्जित नहीं होता है। यह निश्चित ही उसे अधोगतिमें डालनेवाली भयंकर भूल है। इसे शीघ्रातिशीघ्र त्यागना होगा, तभी संसारके मानवका सभी भाँतिसे भला हो सकता है। यह अकाट्य सत्य है।

(४)

अन्नदान करनेवाली बुढ़िया माई

(प्रेषक—श्रीज्योतिनारायणजी तिवारी)

पंद्रह वर्ष पूर्वकी बात है—मेरी माताजी बीमार पड़ीं। तीन दिनोंतक मूर्च्छित मृतकवत् रहीं। चौथे दिन उनको होश आया और वे अच्छी हो गयीं। अब वे, जो भी भूखा उनके द्वारपर आता, उसको खुले हाथों अन्न देने लगीं। उनसे पूछा तो उन्होंने बताया—"तीन दिनकी बेहोशीमें मैं स्वर्ग गयी थी। वहाँ बहुत प्रकारकी खान-पानकी सामग्री थी। मैं माँगती तो मुझे देवदूत कहते—'तुमने अन्नदान किया ही नहीं, तो तुमको कहाँसे मिलेगा।' इसके बाद धर्मराजने कहा कि 'इसकी आयु अभी है।' अतः मुझको छोड़ दिया गया। छोड़ते ही मैं होशमें आ गयी। तबसे अन्नदान कर रही हूँ।"

अन्य धर्मावलम्बी भी सद्गतिके लिये 'गयापिण्ड' चाहते हैं

अंग्रेजी राज्यमें कलकत्तेमें ब्रिटिश तथा पश्चिमीय देशोंके सैकड़ों व्यापारी-संस्थान (फर्म) थे, जो प्रायः आयात-निर्यातका व्यापार करते थे। उनके साथ बाजारके व्यापारियोंसे क्रय-विक्रयका सौदा करानेवाले सैकड़ों बड़े-बड़े प्रतिष्ठित भारतीय फर्म थे, जो कमीशनपर मध्यस्थका काम करते थे। एक अंग्रेज फर्म था—श्रीएण्ड्रयू यूल कम्पनी (Andrew Yule Co.), जो अब भी है। उसके मध्यस्थका काम करनेवाला था—कलकत्तेका प्रसिद्ध 'जटिया' फर्म।

इस जटिया फर्मके बड़ोंके दिवंगत हो जानेपर स्व० श्रीकन्हईलाल जटिया गयाश्राद्ध कराने गये थे। वहाँ चतुर्दशीकी रात्रिको इन्हें उपर्युक्त ईसाई फर्मके दिवंगत श्रीयूल (Yule) साहेब दिखायी दिये और उन्होंने इनसे अपने लिये पिण्डदान करनेका अनुरोध किया और दूसरे दिन वह पिण्डदान किया गया।

एक मृत पारसी आत्माने एक सज्जनसे कहकर अपने लिये गयामें पिण्डदान करवाकर सद्गति प्राप्त की थी।

'कल्याण'में भूत-प्रेत-चर्चा क्यों ?—प्रेतयोनि कभी न मिले इसलिये !

एक सज्जन लिखते हैं—'कल्याण' तो परमार्थ-पथपर ले जानेवाला आध्यात्मिक पत्र है । इसमें भूत-प्रेतोंकी चर्चा नहीं होनी चाहिये और न प्रेतावेश या प्रेतोंके उपद्रव आदिकी घटनाएँ ही छपनी चाहिये ।' पत्र-लेखक महोदय 'कल्याण'के प्रेमी हैं और उन्होंने जिस दृष्टिकोणसे पत्र लिखा है, वह सर्वथा आदरणीय है । 'कल्याण' उनका तथा उन्हीं-जैसे प्रेमी बन्धुओंका नित्य कृतज्ञ है । वास्तवमें 'कल्याण'का उद्देश्य भगवान्की ओर प्रवृत्त करना ही है । प्रेत-चर्चा करना या प्रेतोंमें आस्था उत्पन्न करना 'कल्याण'का कदापि लक्ष्य नहीं है । न 'कल्याण' प्रेत-पूजाका प्रचार चाहता है । इसीलिये इस विशेषाङ्कमें प्रेतोंके सम्बन्धमें आयी हुई घटनाओंमेंसे बहुत थोड़ी-सी ही दी गयी हैं । सब दी जातीं तो विशेषाङ्क उन्हींसे भर जाता । ये भी इसीलिये दी गयी हैं कि 'प्रेतयोनि सत्य तथ्य है, कल्पना या वहममात्र नहीं है ।' यह सर्वथा सत्य है कि प्रेतावेशके नामपर ढोंग, ठगी, बदमाशी बहुत चलती है और उससे सावधान ही रहना चाहिये । कहीं जान-बूझकर धोखा नहीं भी दिया जाता तो वहाँ मानस-दुर्बलता या हिस्टीरिया आदिकी बीमारीको प्रेतबाधा मान लिया जाता है । तथापि तथ्य तो है ही । और संसारके मनुष्य त्रिगुणमयी सृष्टिके हैं । उनमें तमोगुणी भी हैं ही । ऐसे कर्म भी प्रायः बहुत लोगोंसे हो जाते हैं, जिनके फल-स्वरूप प्रेतयोनि भोगनी पड़ती है । प्रेतयोनि अत्यन्त यातना-मयी है । इसमें मनुष्योंको न जाना पड़े और वे धर्ममार्गपर चलें तथा फलतः अध्यात्म-पथारूढ़ होकर भगवान्को प्राप्त करें, इसी उद्देश्यसे प्रेतचर्चा भी आवश्यक समझकर की जाती है । प्रेतयोनिके सम्बन्धमें संक्षेपमें नीचे लिखी बातें जाननेकी हैं—

प्रेतयोनि सत्य है

प्रेतयोनि होती है । वह वायुप्रधान शरीर होता है । प्रेत सभी एक-सी शक्ति, बुद्धिवाले नहीं होते । यहाँकी भाँति विभिन्न जातियोंके प्रेत, कम-ज्यादा शक्ति-सामर्थ्यवाले, अच्छे-बुरे स्वभाववाले, शान्त-अशान्त प्रकृतिवाले, तमोगुणप्रधान होनेपर भी सत्त्व, रज या तमकी न्यूनाधिकतावाले होते हैं और उसीके अनुसार उनके आचरण होते हैं । इस लोकके-जैसी ही उनकी आकृति-प्रकृति होती है । यहाँके अनुसार ही उनमें राग-द्वेष, अपना-पराया, ममता-विषमता आदि होते हैं और वे तदनुसार ही शक्तिभर भला-बुरा करना चाहते हैं । शक्ति होती है तो शक्तिके अनुसार हित-अहित करते भी हैं । सत्-स्वभावके प्रेत भी होते हैं; परंतु अधिकांशमें वे पापात्मा, द्वेष-हिंसा-परायण ही होते हैं । वे प्रायः अनवरत अत्यन्त अशान्त तथा दुखी रहते हैं । प्रेत नीचे लिखे कारणोंसे अधिकतर होते हैं ।

प्रेतयोनि क्यों मिलती है ?

१—संसारमें किसी प्राणी-पदार्थके प्रति प्रबल द्वेष या वैर होनेपर या अत्यन्त आसक्ति या ममता होनेपर प्रेतयोनि प्राप्त होती है । किसीसे द्वेष रखकर मरनेवालेको बड़ी पीड़ा-दायक प्रेतयोनि मिलती है । (अतः किसीसे द्वेष न रक्खे । किसीका अपराध हो गया हो तो मृत्युसे पहले उससे क्षमा माँग ले । अपने मनसे द्वेष निकाल दे ।)

२—जिनका अन्त्येष्टि-संस्कार, शास्त्रोक्त पिण्डदान, तिलाञ्जलि, श्राद्धादि शास्त्रविधिसे नहीं होते, उनको प्रेतत्वकी प्राप्ति होती या उनके प्रेतयोनिमें निवासकी अवधि बढ़ जाती है ।

३—जो यहाँ भूत-प्रेतोंकी पूजा करते हैं, तामसी साधन करते हैं, तामस खान-पान तथा आचार-व्यवहार करते हैं, वे प्रायः प्रेत होते हैं ।

४—शराबखोर, चोरी-डकैती करनेवाले, हत्याकारी, व्यभिचारी, शास्त्रविरुद्ध आचरण करनेवाले तथा अधर्मके प्रचारक प्रेत होते हैं ।

५—जो आत्महत्या करते हैं, वे प्रेत होते हैं ।

६—जिसकी किसीके द्वारा हत्या कर दी गयी हो, वह जीव भी मारनेवालेसे बदला लेनेकी प्रबल भावनासे प्रेत होता है ।

इनके सिवा और भी कई कारण प्रेतत्व-प्राप्तिके होते हैं । इन सभी कारणोंसे बचना चाहिये तथा घरवालोंको बचानेकी चेष्टा करनी चाहिये । प्रेतत्वसे बचा देना या प्रेत-योनिसे छुड़ा देनेका प्रयत्न करना घरवालोंका, मित्र-बन्धुओंका कर्तव्य तो है ही, महान् पुण्यका कार्य भी है ।

प्रेतयोनिसे छूटनेके उपाय

प्रेतत्व-निवारणके लिये तर्पण, श्राद्ध आदि विधि-श्रद्धाके साथ अवश्य करने चाहिये । जो श्राद्धके अधिकारी हैं, वे ही सम्पत्तिके भी उत्तराधिकारी हैं । पुत्र इसलिये उत्तराधिकारी नहीं कि वह पुत्र है, इसलिये है कि वह पिण्डदान, श्राद्ध करके अपने पिता-पितामह आदिका उद्धार करता है ।

प्रेतत्व निवारणके लिये श्रीमद्भागवत सप्ताह, विष्णु-

सहस्रनामके पाठ, गायत्री-पुरश्चरण, भगवन्नाम-कीर्तन, द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रका जप, गयाश्राद्ध, तीर्थश्राद्ध आदि परमावश्यक हैं । यथायोग्य इनका प्रयोग करना चाहिये ।

कौन प्रेत नहीं होते ?

प्रेतत्वसे बचनेके लिये सदाचारी, सत्कर्मपरायण, शास्त्रविधिको जाननेवाले, माता-पिता-गुरुजनोंके पूजक, प्राणिमात्रका हित चाहनेवाले तथा भगवान्‌का भजन करनेवाले बनना चाहिये । निरन्तर भगवान्‌के नाम-जप तथा भगवत्स्मरणका अभ्यास करना चाहिये । भक्त कभी प्रेत नहीं होता ।

प्रेतका आवेश कब कहाँ होता है ? और उससे बचनेके उपाय

प्रेतोंका आवेश होता है—यह सत्य है; परंतु वे प्रायः उन्हींमें आविष्ट होते हैं या उन्हींको पीड़ा दे सकते हैं, जो अपवित्र, असदाचारी हों । नियमित संध्या, अग्निहोत्र तथा गायत्री-जप करनेवाले, पवित्र आचरण करने तथा पवित्र खान-पानवालोंको प्रेत पीड़ित नहीं कर सकते । प्रेतयोनिमें जीव अतृप्त वासनाओंसे जलता रहता है । अतएव—

१—अशुद्ध स्थानमें, खुली जगह मिठाई खाते समय, एकान्तके अन्धकारमें, स्त्रियोंके नग्न स्नान करनेकी स्थितिमें, तालाव आदिके किनारे, पीपल, बड़, ताड़-खजूर आदिके नीचे, सुनसान जगहमें, पेड़के नीचे, श्मशान-भूमिमें, समाधि या कब्रके पास, कुएँ-बावड़ीके तटपर और चौराहेपर मलमूत्रका त्याग करनेपर वहाँके निवासी प्रेतोंका आवेश हो सकता है । इनसे बचना चाहिये ।

२—जो मकान, पुराने दुर्ग-किले—बहुत दिनोंसे निर्जन पड़े हैं, उनमें रात्रि या दिनको भी सहसा नहीं जाना चाहिये और न उनमें रात्रि-निवास करना चाहिये । उनमें रहना हो तो पहले हवन-पूजन, श्रीमद्भागवत-सप्ताह, रामायण सुन्दरकाण्ड-पाठ कराकर तब रहना चाहिये ।

३—जिन स्थानोंमें जानेको मना किया गया है, उन स्थानोंपर जाना ही पड़े तो भगवन्नामका जप करते हुए, गायत्री-मन्त्रका जप करते हुए अथवा जोर-जोरसे भगवन्नामका कीर्तन करते या कोई भगवान्‌की स्तुतिके बोलते हुए जाना चाहिये ।

४—कभी कोई अद्भुत आकृति दीख ही जाय या मनुष्यके रूपमें ही कोई दीखे और उसके प्रेत होनेकी सम्भावना हो तो भगवन्नाम या गायत्री-मन्त्रका जप करने लगना चाहिये । उससे स्वयं नहीं बोलना चाहिये । वह बोले तो नम्रतासे उचित उत्तर देना चाहिये । अपने पास कोई वस्तु हो और वह माँगे तो उसे दे देनी चाहिये ।

५—किसी भी दशामें डरना नहीं चाहिये । डर लगता ही हो तो उच्चस्वरसे भगवन्नाम लीजिये । उन सकल-भयहारी सर्वसमर्थ प्रभुको पुकारिये । भय स्वयं भाग जायगा । लेकिन घबराकर भागिये मत ।

६—कोई प्रेत, देवता आदि आपसे कुछ अनुचित करनेको कहे, कोई अपवित्र वस्तु दे या माँगे, कोई ऐसा धन या पदार्थ दे जो आपका नहीं है तो नम्रतापूर्वक, किंतु दृढ़तासे अस्वीकार कर दीजिये । उसकी बात स्वीकार करनेमें हानि होनेकी सम्भावना है । वह धमकावे तो भी अस्वीकार करनेमें ही हित है ।

७—जो प्रेत-पूजक, तन्त्र-मन्त्र, टोना-टोटका करनेवाले लोग हैं, किसी बाधाके निवारणके लिये इनकी सहायता लेना आवश्यक हो तो लेनी चाहिये । किंतु चमत्कार देखनेके कुतूहलवश अथवा कुछ सीखने, कुछ लाभ उठानेकी आशासे इनसे परिचय मत बढ़ाइये । इनसे अपरिचितोंकी अपेक्षा प्रायः परिचितोंकी हानि अधिक हुआ करती है ।

८—अशुद्धावस्थामें, खाकर, दूध पीकर या मिठाई खाकर बिना कुल्ला किये कहीं मत जाइये । अपने शरीर तथा वस्त्रको, अपने रहनेके स्थानको शुद्ध रखिये ।

९—प्रेतसिद्ध करके उससे कुछ भी काम लेनेकी कभी भी न इच्छा कीजिये, न वैसी क्रिया ही कीजिये ।

१०—जो भगवान्‌की शरण ले लेता है, भगवान्‌का भजन करता है, उसे किसीका भय नहीं है । देवता भी उसका अपकार नहीं कर सकते । अतः भगवान्‌की शरण लेकर, उनका स्मरण, उनका नाम-जप-कीर्तन करनेमें लगे रहना सर्वदा-सर्वत्र-सर्वथा मनुष्यको निर्भय कर देता है ।

किसीको प्रेतबाधा हो, प्रेतावेश होता हो तो आवेशके समय पहले उससे नम्रताके साथ पूछिये कि 'वे कौन हैं, क्या चाहते हैं ?' वे बता दें तो उनकी उचित माँग पूरी कर दीजिये । अन्न, वस्त्र, जलदान तो बिना माँगे ही मृतात्माओंके

लिये करना चाहिये; माँगनेपर तो तुरंत कर देना चाहिये। अनुचित पापकी माँग हो तो न मानिये। प्रेतबाधा-निवारणके लिये नीचे लिखे उपाय करने चाहिये। इनसे लाभ होता देखा गया है।

जिस कमरे या मकानमें वह व्यक्ति रहता हो, जिसको प्रेतबाधा हो, उस कमरे या मकानमें अखण्ड भगवन्नाम-कीर्तन किया जाय।

गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित जल (मँजे हुए शुद्ध बर्तनमें शुद्ध कूपजल या गङ्गाजल डालकर ११ बार गायत्रीमन्त्र बोलते हुए उसमें दाहिने हाथकी तर्जनी अँगुली फिराकर) उस मकानमें या कमरेमें सर्वत्र छिड़क दें। थोड़ा-थोड़ा, प्रातः-संध्या दोनों समय उस व्यक्तिको पिला दें और उसके बिछौनोंपर छिड़क दें। उसके कानमें गायत्री-मन्त्र सुनावें। गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित गङ्गाजल नहाते समय उसके मस्तकपर थोड़ा-सा डाल दें।

श्रीमद्भगवद्गीताका यह श्लोक उसको बार-बार सुनावें और कई प्लेटोंपर लिखकर दीवालपर टाँग दें—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥
(११। ३६)

इसके द्वारा (उपर्युक्त रीतिसे) अभिमन्त्रित जल भी रोगीको पिलाना चाहिये। नीचे लिखा यन्त्र मङ्गलवारके दिन भोजपत्रपर लाल चन्दनसे लिखकर और उसके नीचे उपर्युक्त गीताका श्लोक लिखकर रोगीके (पुरुष हो तो दाहिने हाथमें, स्त्री हो तो बायें हाथमें) ताँबेके तावीजमें डालकर, धूप देकर बाँध दें और प्रतिदिन गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित जल उसपर छिड़कते और उसे पिलाते रहें।

२४	३१	२	७
६	३	२८	२७
३०	२५	८	१
४	५	२६	२९

ऐसे और भी बहुत-से मन्त्र-यन्त्र भी हैं, जो प्रेतपीड़ा-निवारणके सफल साधन हैं। परंतु इनके जानकार बहुत कम मिलते हैं और आजकल तो अधिकांश स्थानोंपर ठगी चलती है। कुछ वर्ष पहले हमारे एक मित्र प्रेतबाधासे पीड़ित थे। वे इन मन्त्र-तन्त्रवालोंसे बुरी तरह ठगे गये थे। अतएव मन्त्र-यन्त्रका प्रयोग वे ही लोग कर सकते हैं, जो इस विषयमें पूरा ज्ञान रखते हों तथा जो सर्वथा निःस्पृह हों। व्यवसायियों तथा विज्ञापनबाजोंसे सावधान रहना चाहिये।

आयुर्वेदमें भी प्रेतबाधाकी चिकित्सा बतलायी गयी है। उसमें ऐसे विशेष धूपों तथा अर्घ्योंका उल्लेख है, जिनसे प्रेतपीड़ा मिट जाती है। उनका उपयोग हानिकर नहीं है, परंतु उसमें भी जानकारीकी जरूरत तो है ही। ऐसे कई 'देवस्थान' भी माने जाते हैं, जहाँ जानेपर प्रेतबाधा दूर होती है, पर इनमें भी ठगी न चलती हो सो बात नहीं है। अतः कौन-सा स्थान, कितने अंशमें ठीक है, यह कहना बहुत कठिन है।

महामृत्युञ्जयके जाप, श्रीहनुमानचालीसा तथा बजरंगबाणके पाठसे भी प्रेतबाधा दूर होती है।

प्रेतोपासना या प्रेतसेवा कभी न करे। प्रेतोंसे लाभ उठानेका कभी प्रयत्न न करे। यह सब तामसी है। इनका फल परमार्थपथसे च्युति और प्रेतत्वकी या नरकोंकी प्राप्ति ही है।

घोर प्रेत कौन होता है?

भूत-प्रेतकी पूजा करता, करता जो तामस व्यवहार।
अंडे-मांस-शराब उड़ाता, चोरीका करता व्यापार॥
रखता मनमें वैर-द्वेष-मद, करता जो हिंसा, व्यभिचार।
होता घोर प्रेत वह, पाता असहनीय यातना अपार॥

पुनर्जन्ममें योनिपरिवर्तन

(१)

लड़केसे लड़की

हीराकुँवरिका जन्म सितम्बर सन् १९१९में हुआ था। उसके पिता बाबू श्यामसुन्दरलाल, स्टेशन मास्टर हलद्वानी आर० के० आर० सन् १९२२ ई० के अगस्तमें अपनी पत्नी और कन्या हीराकुँवरिके साथ तीर्थयात्रा करनेके लिये मथुरा गये हुए थे। उन्होंने मथुरासे गोकुल जानेके लिये एक नाव की। गोकुलमें जिस समय वे उस स्थानसे होकर गुजर रहे थे जिसे यात्री लोग प्राचीन 'नन्दमहल' कहते हैं तो वह छोटी-सी बालिका जबरदस्ती नौकरकी गोदीसे उतर पड़ी। इसी ऐतिहासिक गृहके समीप एक छोटा-सा मकान था, जिसके दरवाजेपर एक वृद्धा स्त्री बैठी हुई थी। बालिका मकानके अंदर तेजीके साथ घुसती चली गयी और उसकी माँ भी उसके साथ-साथ चल दी। यहाँपर वह लड़की बातें करने लगी, मानो वह लड़का है। उसका पहला सवाल उस तख्तीके बाबत था, जिसपर वह लिखा करती थी। उसने अपनी कलमके बारेमें भी पूछा, जिसे वह तख्तके नीचे छोड़ गयी थी। दूसरी चीज जिसके बारेमें उसने पूछा, वह चौकी थी, जिसके ऊपर वह लिखनेके लिये बैठा करती थी। इन प्रश्नोंको सुनते ही वह बुढ़िया रोने लगी। तब उस बालिकाने बुढ़ियासे कहा कि 'हमारी माँको पान दो और सुपारी हमारे पीतलके सरौतेसे काट लो।' इसके बाद उसने अपनी माँसे कहा कि 'तुम चली जाओ, क्योंकि मैं अपने घर आ गयी हूँ, किंतु जानेके पहले पान ले लो।' हीराकुँवरिकी माँने नौकरको इशारा किया और उसने झट उस बालिकाको मकानसे खींचकर बाहर निकाल लिया।

इसके बाद सब लोग यमुनाजीकी ओर चले गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने कछुओंको चने और लाई चुनायी। कछुओंको देखकर हीराकुँवरिने कहा—'तुमने पहले मुझे डुबो दिया था और इस बार फिर वही करनेके लिये आये हो।' यह सुनते ही जो बुढ़िया साथमें आयी थी, वह फिर फूट-फूटकर रोने लगी। आगे और पूछनेपर उस बालिकाने वह स्थान भी बतलाया, जहाँपर वह नहाते समय फिसल पड़ी थी और डूबकर मर गयी थी। बुढ़ियाने बालिकाकी सारी बातोंका समर्थन किया और कहा कि 'करीब चार साल हुए मेरा एक बारह वर्षका लड़का इसी स्थानपर डूब गया था।'

(२-३)

दो अद्भुत घटना

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

१.

मैं पिछले जन्ममें स्कूलमास्टर थी, फिर गौ बनी और अब एक लड़की हूँ।

दिल्लीके दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' में ८ फरवरी, १९६६ में यह 'पुनर्जन्मसम्बन्धी' घटना इस प्रकार छपी थी—

'रोहतक। गोल परवाँपुरमें चञ्चलकुमारीने अपने पहले जन्मके हालात बताकर अपने माता-पिता तथा जनतामें सनसनी पैदा कर दी है। पिछले दिनों उसकी माताजी किसीके घर कथा सुननेके लिये गयीं। जब वह कथा सुनकर वापस आयीं तो चञ्चलकुमारीने उनसे पूछा—'माँ! क्या सुनकर आयी हो?' माताने उत्तर दिया—'मुझे कुछ याद नहीं।' लड़कीने कहा—'माँ तुम्हें तो यह कथा याद नहीं, किंतु मुझे तो अपने पहले जन्मकी कथा याद है।'

चञ्चलकुमारी इस समय ९ वर्षकी है। उसने अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि 'गत जीवनमें मैं पानीपतके एक स्कूलमें टीचर थी। मेरा नाम कृष्णलाल था मेरे पिताका नाम रामप्यारा नागपाल था। २५ वर्षकी आयुमें मेरी मृत्यु पेटके दर्दके कारण हो गयी। सगाई हो

चुकी थी, पर विवाह नहीं हुआ था। मुझे अपने भाइयोंके तथा माताका नाम भी याद है।'

चञ्चलकुमारीने बताया कि 'कृष्णलालने मरकर गौका जन्म लिया। यह गौ शाहदरा जिला लाहौरके एक मुस्लिम परिवारके पास रही। गौ दूध कम देती थी। उसके मालिकने एक दिन लाठियोंसे उसे इतना मारा कि गौ निढाल होकर मर गयी। गौने मरनेके बाद गाँव परवाँपुरमें आपके घर जन्म लिया।'

गत सप्ताह चञ्चलकुमारीके जोर देनेपर उसके घरवाले उसे पानीपत ले गये। पानीपतमें उसने स्कूलकी बिल्डिंगको पहचाना एवं अपने पुराने घरको भी देखा। इस मुहल्लेके कुछ परिवारोंने तस्दीक की कि 'कुछ वर्षों पूर्व इस गलीमें एक स्कूलमास्टरकी मृत्यु पेटमें दर्द होनेके कारण हुई थी। चञ्चलके पिछले जन्मके परिवारके लोग पानीपत छोड़ चुके हैं। रोजगार करनेके लिये कहीं बाहर चले गये हैं।'

२.

नाईकी लड़कीने अपने पूर्वजन्मकी बातें बतलायीं

जिला मुजफ्फरनगरमें हमारी बहन सावित्रीदेवी विवाही है। मैं अभी पिछले दिनों जब उससे मिलने गया तो [illegible] नगरके सुप्रसिद्ध रायबहादुर कुँवर श्रीजगदीशप्रसाद-[illegible] रईससे भी मेरी भेंट हुई। माननीय कुँवर साहबने मुझे बताया कि हमारे नाईकी लड़की है, जो अपने पूर्वजन्मकी सब बातें बताती है। मैंने उसे देखनेकी इच्छा प्रकट की। कुँवर साहबने तुरंत अपने आदमीको मेरे साथ कर दिया और वह मुझे धूमसिंह नाईके मकानपर ले गया। बालिकाका नाम गीतारानी है। आयु लगभग उस समय ४ वर्षके थी। मैंने उसे अपने पास बिठाकर पूछा—

मैं—बेटी! तुम्हारा क्या नाम है?

गीतारानी—मेरा नाम गीतारानी है।

मैं—तुम्हें अपने पहले जन्मकी याद है? उस समय तुम कहाँ रहती थी?

गीतारानी—मैं श्यामली गाँवमें रहता था।

मैं—वहाँपर तुम क्या करते थे?

गीतारानी—दूकान करता था।

मैं—काहेकी दूकान करते थे?

गीतारानी—मैं वहाँपर फलोंकी दूकान करता था।

मैं—क्या वहाँपर तुम्हारी पत्नी भी थी?

गीतारानी—हाँ, मेरी स्त्री भी थी।

मैं—सुना है तुमने वहाँ श्यामलीमें अपना लड़का भी बताया था?

गीतारानी—मेरा लड़का भी था।

उससे हमारी बहुत-सी बातें हुईं। घरवाले नहीं चाहते थे कि व्यर्थ ही इस बातको तूल दिया जाय और चर्चाका विषय बनाया जाय।

(४-५)

बर्माके प्रमाण—स्त्रीका जन्म पुरुषरूपमें

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

बर्माके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री ऊ नू ने बौद्ध-दर्शनपर अपने विचार प्रकट करते हुए पुनर्जन्मकी कुछ घटनाओंके बारेमें बतलाया था।

१.

एक घटना उस महिलाकी है, जो भूतपूर्व सूचनामन्त्री स्वर्गीय श्री डीडोक ऊ० बा चो (Deedok U. Ba Choe) की सम्बन्धी है। इस महिलाकी मृत्युके बाद ही एक ज्योतिषीने भविष्यवाणी की कि 'वह अपनी किसी (महिला) सम्बन्धीके पुत्रके रूपमें जन्म लेगी। पुत्रका पिता सरकारी अफसर होगा और जन्म किसी बुधवारको होगा।'

इस भविष्यवाणीको बहुत संदेहकी दृष्टिसे देखा गया; क्योंकि परिवारमें कोई भी महिला किसी सरकारी अफसरको नहीं ब्याही थी। लेकिन उस महिलाकी मृत्युके बाद जल्दी ही उसकी पुत्रीका विवाह एक सरकारी अफसरसे हो गया। फिर एक बुधवारको उसने एक पुत्रको जन्म दिया।

जैसे-जैसे पुत्र बड़ा होता गया, उसे अपनी माताके साथ रहना खराब लगने लगा। उसको अपनी मामीसे मिलना बहुत अच्छा लगता था। मामी मृत महिलाकी अभिन्न मित्र थी। बादमें बच्चेको परिवारके लोगों तथा मित्रोंके कुछ आभूषण दिखाये गये। उसने उनमेंसे रूबी (माणिक)

जटित एक अँगूठी उठा ली। यह अँगूठी उसकी दादीको विशेषरूपसे पसंद थी।

२.

श्री ऊ नू ने एक दूसरा उदाहरण एक नर्तकी बल्ब्यान (Balbyan) का भी दिया। उसने कभी बताया था कि पिछले जन्ममें वह औंगबाला (Aungbala) नामका एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ नर्तक था।

उसे औंगबालाके व्यक्तिगत जीवनकी भी जानकारी थी। औंगबाला उसके जन्मसे बहुत पहले मर चुका था। वह यह भी कहती थी कि उसके शरीरका चिह्न औंगबाला-का आपरेशन होनेके कारण ही बन गया है। जब औंगबालाकी शल्यक्रिया हो रही थी, तभी वह मर गया था।

पुराना निशान

भूतपूर्व प्रधानमन्त्रीने एक डा यीन (Daw Yin) नामकी वृद्धाका भी उदाहरण दिया। डा यीनने अपनी बड़ी बहनकी मृत्युके बाद उसके पतिसे विवाह कर लिया था। उसकी बहनकी मृत्यु एक गिल्टीके असफल आपरेशनके कारण हो गयी थी।

बादमें डा यीनने एक पुत्रीको जन्म दिया। उस पुत्रीके गलेमें आपरेशनका निशान था। जब वह पुत्री बड़ी हुई तो वह अपनी मृत मौसीके जीवनकी घटनाओंका सही विवरण बताने लगी। उसे यह भी याद था कि डा यीन अपनी मृत बहनके बच्चोंको दण्ड दिया करती थी।

वह उन बच्चोंसे (जो इस जन्ममें उसकी मौसीकी संतान थे) वैसा ही व्यवहार करने लगी, जैसे माँ अपने बच्चोंके साथ करती है।

आलोचना

पुनर्जन्मकी घटनाओंपर शोधकार्य करनेवाले परामनो-वैज्ञानिकको नीम-हकीम कहकर पुकारा गया है और उनके शोधकार्योंको अव्यवस्थित कहा गया है। इन घटनाओंके प्रकाशित होनेके कारण आलोचना कम होने लगी है और लोगोंकी रुचि इस ओर हुई है। पुनर्जन्मकी अनेकानेक घटनाएँ प्रकाशमें आ रही हैं। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक अब यह मानने लगे हैं कि पुनर्जन्म वैज्ञानिक जाँचका एक उपयुक्त विषय है। इस प्रकारकी घटनाओंमेंसे एक हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं—

(६)

लङ्काकी घटना

ग्नानाटिल्लेका बैड्डेविथाना (Gnanatille Baddewithana) का जन्म मध्य लङ्कामें हेदून (Hedunawewa) के निकट १४ फरवरी, १९५६ को हुआ था। जब वह एक वर्षकी बची तभीसे वह दूसरे माता-पिताके बारेमें बताने लगी दो वर्षकी आयुमें उसने अपने गत जीवनके बारेमें संकेत किया। उसने कहा कि उसके माता-पिता, दो और बहुत-सी बहनें किसी दूसरे स्थानपर हैं। पहले उसने अपने पूर्वजन्मके निवासका स्थान ठीक-नहीं बताया, लेकिन जब कुछ गाँववाले तालावा (Talawakele) नामक स्थानसे होते हुए उसके आये, तब उसने कहा कि उसके माँ-बाप तालावाकेलेमें हैं। उसने कहा कि वह अपने पिछले जन्मके माँ-बा देखना चाहती है। उसने पूर्वजन्मके अपने घरके कुछ विस्मयकारक जानकारी दी और परिवारके लो नाम भी बताये। इस बातकी खबर कैण्डी नामक स्था पियादासी थेरा (Piyadassi Thera) और श्री ए एस० निस्सांका (Mr. H. S. Nissanka) के पहुँची। उन दोनोंने इस बचीके द्वारा बतायी हुई बा आधारपर एक परिवारको ढूँढ़ निकाला। जाँच कर पता चला कि बच्चीके द्वारा बतायी गयी बातें बिल सच हैं। ९ नवम्बर, सन् १९५४ को इस परिव तिल्लेकेरत्ने (Tillekeratne) नामके एक लड़ मृत्यु १२ वर्षकी अवस्थामें ९ नवम्बर, सन् १९५४ हो गयी थी।

जल्दी ही (सन् १९६० में) ग्नानाटिल्लेक परिवारवाले उसे तालावाकेले ले गये। तालावाकेलेमें ब कस्बेके बहुत-से भवनोंको ठीकसे पहचान लिया। लें जिस जगह उसने अपने 'पुराने' मकानके बारेमें बत था, वहाँ पहुँचनेपर पता चला कि मकान गिर चुका और उसका 'पुराना' परिवार तिल्लेकेरत्ने (जिसे वह अ पूर्वजन्मका रूप बताती थी) की मृत्युके थोड़े ही बाद दूसरी जगह बस गया था। इस प्रकार जब ग्ना टिल्लेका पहली बार तालावाकेले गयी तो उसके 'नये' 'पुराने' परिवार एक-दूसरेसे नहीं मिल पाये।

तिल्लेकेरत्ने श्रीपाद कालेजमें पढ़ता था, जो कि तालावाकेलेसे १२ मील दूर स्थित हटनमें है। इस कालेजके तीन अध्यापक जब ग्नानाटिल्लेकासे मिले तो उसने ठीक तरहसे पहचान लिया और इस कालेज-की कुछ घटनाएँ भी सुनायीं। सन् १९६१में ग्नाना-टिल्लेकाको दुबारा तालावाकेले लाया गया। पियादस्सी थेरा, श्रीनिस्सांका, श्री डी० वी० सुमिथपलाकी उपस्थितिमें तिल्लेकेरत्नेके बहुत-से सम्बन्धियों और परिचितोंको बुलाया गया। ग्नानाटिल्लेकासे हर व्यक्तिके बारेमें पूछा गया—'क्या तुम इसे जानती हो?' ग्नानाटिल्लेकाने तिल्लेकेरत्नेके परिवारके सात लोगोंको ठीकसे पहचान लिया। इसके अलावा उसने दूसरे दो लोगोंको भी पहचाना।

दूरदर्शन, दूरानुभूति, भविष्यकथन

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

दूरदर्शन (Clairvoyance)

पुनर्जन्मकी घटनाओंकी एक व्याख्या 'दूरदर्शनकी शक्ति' कहकर भी की जाती है। इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके माध्यमका उपयोग किये बिना देख लेना, अथवा इन्द्रियोंकी सहज सीमासे अतीत वस्तुओंको अनुभव कर लेना **'दूरदर्शन'** कहलाता है।

घटनाओंकी दूरवीक्षण-प्रणाली (Television) से दूरदर्शन (Clairvoyance) की तुलना की जा सकती है। इसमें अनुभव करनेवाला व्यक्ति टेलीविजनके पर्देके समान ही दूरवर्ती वस्तुओं तथा घटनाओंकी प्रतिच्छायाको पकड़ लेता है। दूरदर्शन एक स्वप्नके रूपमें भी हो सकता है और जाग्रत् अवस्थामें दृश्य देखनेके रूपमें भी इसकी परिणति हो सकती है।

दूरदर्शन—पूर्वचेतावनी

(१)

(प्रेसीडेंट लिंकन)

प्रेसीडेंट लिंकनने अपनी हत्याके थोड़े ही पहले एक स्पष्ट स्वप्न देखा था, जिसमें उन्होंने अपनी मृत्युको पहलेसे देख लिया था। जिन परिस्थितियोंमें लिंकनने यह स्वप्न बतलाया और जिस ढंगसे यह लिपिबद्ध कर लिया गया, वे इस घटनाको एक असाधारण महत्त्व प्रदान करते हैं। और वे म्लान दिखायी देते थे। उनकी पत्नीके चुटकी लेने-पर उन्होंने अपने स्वप्नकी बात कह दी। अमेरिकाके कोलम्बिया जिलेके मार्शल वार्ड हिल लेमन (Ward Hill Lamon) ने लिंकनके ही शब्दोंको इस प्रकार लिपिबद्ध किया है। यह सज्जन उस सभामें उपस्थित थे और उन्होंने घटनाके विवरणको उसी रात्रिको लिपिबद्ध कर लिया था।

'लगभग दस दिन पहलेकी बात है कि मैं बहुत देरसे सोया। मैं किसी आवश्यक पत्र भेजनेकी प्रतीक्षा कर रहा था......जल्दी ही मैं स्वप्न देखने लगा। मेरे चारों ओर मृत्युका-सा सन्नाटा प्रतीत होता था। तभी मैंने सुबक-सुबककर रोनेकी आवाज सुनी। ऐसा लगता था, जैसे बहुत-से लोग रो रहे हों। मैं सोचने लगा और अपना बिस्तर छोड़कर सीढ़ियोंसे उतरकर नीचे घूमने लगा। दुःखद सुबकियोंने वातावरणके सन्नाटेको भंग कर दिया था; परंतु शोक मनानेवाले दिखायी नहीं दे रहे थे। मैं एक कमरेसे दूसरे—प्रत्येक कक्षमें गया; परंतु कोई भी जीवित व्यक्ति दिखायी नहीं दिया; परंतु उन कमरोंमेंसे गुजरते समय वह शोकपूर्ण दुःखद ध्वनि सतत आती रही। सभी कमरोंमें प्रकाश था। प्रत्येक वस्तु मेरी देखी हुई थी; परंतु वे सब लोग हैं कहाँ, जो इतने दुखी हैं, मानो उनके हृदय विदीर्ण हो रहे हैं।

दफनानेके वस्त्रोंमें लिपटा हुआ एक शव रक्खा है। इसके चारों ओर सुरक्षाके लिये सैनिक नियुक्त थे। अपार भीड़ थी। शवका चेहरा ढक दिया गया था, जिसमें कुछ तो शोक-युक्त मुद्रामें शवको निहार रहे थे और अन्य लोग बुरी तरह रो रहे थे।'

'मैंने एक सैनिकसे पूछा—'व्हाइट हाउसमें किसकी मृत्यु हो गयी है ?' उसने उत्तर दिया—'प्रेसीडेंटकी। उनकी एक हत्यारेने हत्या कर दी।'

इस प्रकार ऊपर पुनर्जन्मके स्पष्टीकरणके लिये अन्यान्य विकल्प प्रस्तुत किये गये हैं।

(२)

एक युवक

इसका अर्थ है कि इन्द्रियोंकी सीमासे परे स्थित वस्तुओंको जाननेकी शक्ति। यहाँ दूरदर्शनका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

'एक युवक अपने घरसे पाँच मील दूर साप्ताहिक छुट्टियाँ बिता रहा था। अचानक उसने स्वप्न देखा कि उसके घरमें आग लग गयी है। वह अर्धनिद्रित अवस्थामें बड़बड़ाते हुए उठा और अपने घरकी तरफ भागा। उसकी माँने इस स्वप्नको अर्थहीन समझकर उसे रोकनेकी चेष्टा की। परंतु युवक सीधा गाड़ीमें तेजीसे अपने घरकी ओर चल पड़ा और वहाँ जाकर स्वप्नकी घटनाको सत्य पाया। तबतक गैरेज (मोटरखाना) पूरी तरहसे जल चुका था और विनाशकारी लपटें तीव्रतासे घरकी ओर बढ़ रही थीं। पड़ोसियोंकी सहायतासे बहुत कठिनाईसे किसी तरह घरको बचाया जा सका।'

उपर्युक्त घटना दूरदर्शनकी विशिष्टताओंका दिग्दर्शन कराती है, जो टेलिविजन (Television) के समान ही कोई वस्तु है। परामनोविज्ञान ऐसी बातोंका भी अध्ययन करता है।

(३)

कुमारी गीना बोशाँ

जूनके आरम्भमें एक शनिवारकी बात है कि चोशायरकी एक २३ वर्षीया लड़की गीना बोशाँ (Miss Gina Beauchamp) तथा उसकी माँ छुट्टी मनानेवाली भीड़के जानेके लिये अपनी घोड़ागाड़ीकी प्रतीक्षामें थीं, जहाँसे अपनी छुट्टी बितानेके लिये कोस्टा ब्रावेकी हवाईयात्रापर जानेका उनका विचार था।

अचानक गीना (Gina) ने अपनी माँकी ओर मुड़ते हुए कहा—'मैं नहीं जा सकती। कोई घटना होनेवाली है।'

उसकी माँके समझानेपर भी वह अपने निर्णयपर डटी रही। उसकी निराश माताने अकेली ही यात्रा जारी रक्खी और गीना घर लौट आयी।

कुछ घंटे बाद वह हवाई जहाज फ्रांसके दक्षिणमें परपीयों (Perpignon) स्थानपर दुर्घटनाग्रस्त हो गया और गीनाकी माँ अन्य ८२ सहयात्रियोंके साथ मारी गयी।

क्या यह केवल आकस्मिक संयोग था ? या केवल यों ही उसकी लड़कीने हवाई जहाजसे न जानेका निर्णय कर लिया अथवा उसने भावी संकटको देख लिया था ? निश्चितरूपसे इस लड़की बोशाँ (Miss Beauchamp) की घटनाको अन्य इसी प्रकारकी हजारों घटनाओंसे तुलना करनेपर यह सामान्य इन्द्रियोंके सीमाक्षेत्रसे बाहर और ऊपरकी बात प्रतीत होती है। इसका विवेचन इसके अतिरिक्त अन्य ढंगसे नहीं किया जा सकता कि यह काल और देशके सीमाक्षेत्रसे अतीत मानसिक क्रियाकलापोंका एक निश्चित उदाहरण है।

(४)

एक सिपाही

इसे एक उदाहरणसे स्पष्ट करें—

'द्वितीय विश्वयुद्धके प्रारम्भिक कालमें एक सिपाहीको उसके घरसे लगभग ५० मील दूर एक अस्पतालमें भर्ती कराया गया। वह सिपाही अपनी पत्नीसे प्रतिदिन पत्रव्यवहार करता था। एक दिन उसकी पत्नीको उसका कोई पत्र नहीं मिला; परंतु सायंकाल लगभग ८ बजे अपने आराम-कक्षमें एक समाचारपत्र पढ़ते समय उसके हृदयमें अपने पतिसे टेलीफोनपर बातचीत करनेकी बहुत ही प्रबल प्रेरणा उत्पन्न हुई। उसकी यह इच्छा इतनी अधिक तीव्र होती गयी कि उसने टेलीफोनके पास जाकर उसके रिसीवरको उठा लिया तभी उसे स्मरण हो आया कि आपात स्थितिके अतिरिक्त अन्य अवसरोंपर अस्पतालको फोन करनेपर प्रतिबन्ध है

८.३० के बीचमें टेलीफोन करनेके लिये लिखा था और दूसरे पत्रमें उसने फोन न किये जानेपर निराशा प्रकट की थी; क्योंकि वह आधे घंटेतक बहुत उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा करता रहा था।'

उपर्युक्त घटनाके द्वारा इस दूरानुभूति (Telepathy) का स्पष्टीकरण हो जाता है, जो परामनोविज्ञानकी शोधका एक विषय है।

(५)

मुश्येर द च.

भावी घटनाओंको पहलेसे ही जान लेनेकी ोग्यताके सम्बन्धमें प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डाक्टर लाइबोंकी ोट बुकमेंसे उद्धृत निम्न उदाहरण बहुत रोचक है—

"सन् १८८६ की ७ जनवरीको डाक्टर लाइबो Dr. Liebeault) से मुश्येर द च. (Monsieur e Ch.) नामक एक सज्जन परामर्श करनेके लिये आये। क्त सज्जनने २६ दिसम्बर, १८७९ को पेरिसमें कौतूहलवश क माध्यम (medium) से परामर्श लिया था। उस ध्यमके रूपमें एक महिलाने उससे कहा था—'ठीक आजके दिन एक वर्ष बाद तुम्हारे पिताकी मृत्यु हो जायगी। । जल्दी ही सेनाके सिपाही बन जाओगे, परंतु लंबे समय- ; सेनामें नहीं रहोगे (उस समय उसकी अवस्था १९ की थी)। तुम युवावस्थामें ही विवाह कर लोगे। तुम्हारे बच्चे होंगे और २६ वर्षकी अवस्थामें तुम्हारी मृत्यु हो ागी।' २६ दिसम्बर, १८८० को उसके पिताकी मृत्यु हो गयी। वह सेनामें सिपाही बना, परंतु केवल ७ लिये। उसका विवाह भी हो चुका था और उसके दो थे। अब उसका छब्बीसवाँ जन्मदिवस निकट आ र और वह बुरी तरहसे डरा हुआ था और यही सोच कि अब उसके जीवनके थोड़ेसे दिन शेष बचे हैं।

डाक्टर लाइबोने उसे इस मनोग्रस्ततासे छुट दिलानेका निश्चय कर लिया। उन्होंने उसका एक व्यक्तिसे परिचय कराया, जिसने अपने दीर्घकालिक वातरे मुक्त होनेकी भविष्यवाणी की थी और मानसिक सुझ प्रक्रियाद्वारा अपनी लड़कीको भी रोगमुक्त कर दिया उस व्यक्तिने युवक एम. द च. को उत्साहित करने उसमें विश्वास जाग्रत् करनेकी चेष्टा की। इस व्यक्तिने उ मामलेकी स्थितिको देखते हुए बहुत प्रभावशाली ढ एम. द च. को बतलाया कि उसकी मृत्यु ४१ व अवस्थामें होगी।

इसका परिणाम आश्चर्यजनक हुआ। युवक उत्साहसे भर गया और जब ४ फरवरीका दिन निकल ग तो वह अपने-आपको सुरक्षित अनुभव करने लगा। युवक व्यक्तिको मनोविज्ञानके एक उपचारने अपने श्रम मुक्त करके स्वस्थ कर दिया था और अपनी मृत्युसे भयभी होनेसे बचा लिया था। परंतु एक घटना और घटी। ३ सितम्बर, १८८६ को अचानक उसकी आयुके २७ वर्ष पू होनेके पूर्व ही उदरच्छदकोप (Peritonitis) रोगसे उसक मृत्यु हो गयी। इस प्रकार डाक्टर लाइबोद्वारा सारी सावधानी बरतनेपर भी उस माध्यमकी भविष्योक्ति पूरी हो गयी।

गया-पिण्ड सभीको दीजिये

किसी भी जाति-वर्णका कोई भी मनुष्य हो, वह मरकर कर्मवश प्रेतयोनिमें जा सकता है और प्रेत- ानेके प्राणियोंके लिये गया-श्राद्धकी बड़ी आवश्यकता होती है। अतएव गयामें या कहीं भी पिण्डदान या जाय तो अपने कुटुम्बके लिये ही नहीं; बन्धु-बान्धव, मित्र-शत्रु, परिचित-अपरिचित जो कोई भी इ आवे, सबको पिण्डदान करवाना चाहिये। परिचित प्रेत तो आशा-प्रतीक्षा करते रहते हैं और समयपर प्रक्ष होकर माँग भी लेते हैं। लेडी—राजस्थानके स्व० श्रीकस्तूरचन्दजी गाड़ोदिया गया-श्राद्ध कराने गये । वहाँ एक दिन रात्रिको एक नौजवान नाई-प्रेतने प्रकट होकर, 'मैं आपके गाँवका अमुक नाई हूँ, मुझे ड दीजिये' कहा। गाड़ोदियाजी उसे पहचानते नहीं थे; पर पिण्डदान दे दिया। घर लौटनेपर पता ाया तो मालूम हुआ कि 'कई वर्ष पूर्व इस नामका एक नौजवान नाई मर गया था।'

अनेक जन्मोंकी स्मृति

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

संसारके विभिन्न भागोंसे ऐसी घटनाओंकी सूचनाएँ मिली हैं, जिनमें पुनर्जन्म लेनेवाला व्यक्ति एकसे अधिक जन्मोंकी स्मृति रखनेका दावा करता है । आइये, अब एक अत्यन्त आकर्षक तथा थोड़े ही काल पूर्वकी घटनाका परीक्षण करें । घटनाका विवरण इस प्रकार है—

१३ वर्षीया बालिका जोयद्वारा ९ पूर्वजन्मोंका दावा

१३ वर्षकी 'जोय वर्वे'(Joey Verwey)को विश्वास है कि उसके दस जन्म हो चुके हैं । वह कहती है कि एक पूर्वजन्ममें उसका अन्त तब हुआ, जब उसका सिर उतार दिया गया ।

जोयने विस्तारपूर्वक अपने पूर्व-जन्मोंका विवरण देते हुए बतलाया कि 'उसके पूर्व जीवनोंका सम्बन्ध उन सैकड़ों वर्षोंके काल-खण्डसे है, जो पत्थरके युगसे लेकर बाईबलके मिश्र, प्राचीन रोम, १५ वीं शताब्दीके इटली, १७ वीं शतीके दक्षिण अफ्रीकाके जंगलोंमें रहनेवालों तथा गत १९ वीं शताब्दीमें समाप्त होता है ।

दक्षिण अफ्रीकाके प्रिटोरिया नगरकी इस छात्राने अपने गत-जीवनोंके सम्बन्धमें तभीसे बतलाना प्रारम्भ कर दिया था, जब उसने बोलना सीखा ही था और वह पेंसिलका प्रयोग करने लगी थी । कुछ ही मास पूर्व तक उसकी शब्दों-द्वारा कही गयी कथाओं तथा चित्राङ्कित कृतियोंको केवल बच्चोंकी कल्पनाएँ समझा जाता था और इस बातका निर्णय करनेके लिये वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल प्रारम्भ नहीं हुई थी कि गत वर्षोंमें उसका पुनर्जन्म हुआ है, अथवा नहीं; परंतु अब उनपर विश्वास किया जाने लगा है ।

जोयका कथन है—

(१) एक भीमसरट (Dinosaur—प्राचीन भीमकाय वन-पशु) ने उसका पीछा किया था ।

(३) वह रोममें एक स्थानपर रहती थी और रेशमी धागेसे कम्बल बुना करती थी ।

(४) ईश्वरके पुत्रके आगमनकी बात करनेवाले एक धर्म-उपदेशकको उसने पत्थर दे मारा ।

(५) वह भित्तियों तथा छतोंपर बनाये गये बड़े-बड़े चित्रोंवाले देशमें बड़ी हुई थी (उसका संकेत उस समयके इटली देशकी ओर है, जब वहाँ कला और साहित्यका पुनर्जागरण हो रहा था) ।

(६) वह उन 'ठिगने पीले रंग'के लोगोंमेंसे थी जो बचपनमें रेतमें दबे हुए अण्डोंको खोद डालते थे (यह गुड होपके अन्तरीयमें १७वीं शतीके जंगलियोंकी एव आदत थी) ।

(७) वह सन् १८८३ से सन् १९०० में ट्रांसवाल गणतन्त्रके तत्कालीन प्रेसीडेंट (President) स्टेफनर जोहन्स पर्लास (ऊम पॉल) (Stephanus Johanne Paulus or Oom Paul) क्रगरके पास आया-जाय करती थी ।

जोयके पूर्वजन्मोंके विस्तृत विवरणकी वैज्ञानिकोंद्वारा प्रामाणिकता

प्राध्यापक आर्थर ब्लेक्स्ले (Professor Arthu Bleksley) ने जोयसे भेंट करके पूछताछ व है । यह प्राध्यापक दक्षिणी अफ्रीकाके जोहन्सबर्ग नगर विट्टाटर स्ट्रैंड (Wittater Strand) विश्वविद्यालय तत्त्वावधानमें मानस-अनुभूति (साइकिक) के सम्बन्ध प्रयोग कर रहे हैं ।

जोयके पिता हैं—४४ वर्षीय एडवर्ड माइकल वर्वे, ः कभी पुराने बायलर बनाया करते थे । वे प्रारम्भमें जोयः बातोंपर हँस दिया करते थे । अब वे उसे गम्भीरतापूर्व सुनते हैं । एक कार्यालयमें काम करनेवाली उसकी ः वर्षीया माता 'कैरोलिन फ्रांसिस एलिजाबेथ' भी अब इन बार की ओर ध्यान देने लगी हैं और जोयके हर कथनकी डार रखने लगी हैं । उसके पिता वर्वेने बताया कि 'जोय दो

पहलेसे ही उसने पुराने समयके ऐतिहासिक दृश्यों तथा बहुत पुराने समयमें उपयोगमें लायी जानेवाली वस्तुओंके चित्र बनाना आरम्भ कर दिये थे ।'

पहाड़की गुफा तक भीमसरट (पुराने कालके भीमकाय हिंसक वन्यपशु) द्वारा पीछा किये जानेवाली घटनाके विषयमें जानकारी देते हुए जोयने कहा कि 'वह पशु मकानसे भी बड़ा था' । उसने बताया—

'हमारी गुफाका केवल एक ही प्रवेशद्वार था । गुफामें बहुतसे आने-जानेके रास्ते होनेसे खतरा यह रहता था कि रातमें आसपास चुपके-चुपके घूमनेवाले बबर-शेर तथा बाघ भीतर आ सकते थे ।'

'जब कभी जानवर भीतर आ जाते, दूसरे दिन प्रातःकाल रक्तका एक ढेर दिखायी देता था और उस समय हम यह जान जाते थे कि हममेंसे कोई शेर या बाघके चङ्गुलमें फँस गया ।'

'जब वह बहुत छोटी थी, तभी उसने एक दास पोतका चित्र बनाया, जिसके विषयमें उसने कहा कि 'वह उसमें कैद थी ।' उसने एक महलका भी चित्र खींचा, जहाँ वह बन्धनमें रक्खी गयी थी ।

उसने यह भी बतलाया कि 'हम दासोंको कभी बोलने नहीं दिया जाता था । यदि हम ऐसा करते थे तो हमारी जीभ काट दी जाती थी ।'

जोयने बतलाया कि 'दासीके रूपमें हम सब महलमें एक मूर्तिके सामने गोलाकार घूम-घूमकर चिल्लाते और नाचते हुए बालाका नाम ले-लेकर सूर्यदेवकी प्रार्थना किया करते थे ।'

उसने यह भी कहा—'बादशाह एक भयानक व्यक्ति था । उसकी सुन्दर तथा लंबे केशोंवाली एक पत्नी थी । एक दिन क्रुद्ध हो जानेपर उसने उसका सिर काटकर थालीमें लानेका आदेश दिया । एक दीर्घकाय दास उसे धोकर और सुगन्धित करके बादशाहके सामने ले आया । ताँबेकी एक थालीमें उसका सिर सुन्दर लंबे बालोंसे सभी तरफसे ढका हुआ था ।'

'एक दिन बादशाहने मुझे बुलवा भेजा । मैं भयभीत हो उठी और जाना नहीं चाहती थी ।'

'एक दीर्घकाय व्यक्ति, जो जहाजमें डाँड चलानेवालोंके समान प्रतीत होता था, मुझे ले गया और एक प्रकारके बरामदेमें एक भारी लकड़ीके ऊपर जबर्दस्ती पकड़े रक्खा । एक दूसरे व्यक्तिने एक लंबे और चौड़े चाकूसे मेरा सिर धड़से अलग कर दिया ।'

गत जीवनोंमें जोय जिन स्थानोंपर रह चुकी थी, ऐसे वहाँके बहुतसे स्थानोंके नाम उसने नहीं बताये । परंतु घटनाओंके रीतिरिवाजों तथा स्थानोंके विवरणसे भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टिसे उन स्थानोंको ढूँढ़ लिया गया है । ऊँटपर सवारी करनेकी उसकी कहानीसे यह बात स्पष्ट हो जाती है ।

उसने कहा—'मैंने जब लोगोंसे बालूके ढेरों तथा ऊँटोंकी चर्चा की तो वे पहचान गये कि मैं मिश्र देशकी चर्चा कर रही थी ।'

रोममें उसके गत पुनर्जन्मका विवरण सुनकर ऐसा लगता है कि वह सारी घटनाओंके बारेमें अच्छी तरहसे जानती है । उसने लकड़ीकी खड़ाऊँ तथा युद्धकी पोशाक और ऐसी चमड़ेकी ढालका उल्लेख किया, जिसपर ताँबे और सोनेके बेल-बूटेकी कढ़ाई की हुई रहती थी ।

'रोममें मैं जवान लड़की थी । हममेंसे लगभग १५ लड़कियाँ रेशमके धागेसे रंग-बिरंगे कम्बल बुना करती थीं ।'

अंडे खोदकर निकालनेवाली कहानीने श्रोताओंको उत्तमा शान्तरीयमें (Cape of good hape) रहनेवाले उन जंगली लोगोंकी याद दिला दी, जो वहाँ १७वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें रहा करते थे । उस समय उन लोगोंने एक रसदपूर्तिका अड्डा यहाँ स्थापित किया था, ईस्ट इन्डीज जानेके लिये ।

जोयने बताया कि 'जंगली लोग जहाँ बड़े-बड़े अंडे जमीनमें दबाया करते थे, वहाँ निशानीके तौरपर लकड़ी गाड़ दिया करते थे । हम बच्चोंको इन लकड़ियोंको उखाड़ डालने तथा उनपर लगे हुए पशुओंके रक्तके निशान पोंछकर मिटा देनेमें बड़ा मजा आता था ।'

जोयकी इन विचित्र कथाओंका प्रचार तबसे प्रारम्भ हुआ, जब वह गत वर्ष क्रुगर हाउस (Kruger House) देखने गयी थी, जहाँ ऊम पॉल रहा करता था । वह पंद्रहवीं शताब्दीमें गणतन्त्रका प्रधान था ।

इक्कीस वर्षीया कैरोल तथा सोलह वर्षीया एड्ना नामकी अपनी दोनों बहनोंको जोयने बताया कि 'इस स्थानके संग्रहालय बननेसे पूर्व वह वहाँ गयी थी और ऊम पॉलको व्यक्तिगत रूपसे जानती थी । ऊम पॉलकी मृत्यु स्विट्जरलैंड-

में निर्वासित अवस्थामें सन् १९०४में हुई थी। उसने कहा कि 'क्रम पॉलकी प्रथम पत्नी सोलह वर्षीया मेरिया डू प्लेसिज (Maria du plessis) की मृत्यु एक बच्चेको जन्म देते समय हुई थी और उसकी दूसरी पत्नी (जो पहली पत्नीकी भतीजी थी) से उसके सोलह बच्चे हुए।' बादमें यह बात बिल्कुल सही निकली।

जोयके विद्यालयके प्राचार्य (जो इतिहासके भी शिक्षक हैं) ने जाँच करके यह प्रमाणित किया है कि 'वह ठीक कहती है।' शिक्षकने बताया कि 'वे स्वयं जोयकी बतायी हुई बातोंसे अनभिज्ञ थे। और यदि वे जोयसे इन्हें न जानते तो कक्षामें उनके बारेमें कुछ नहीं बता सकते थे।'

दक्षिणी अफ्रीकाके जोहन्सबर्ग नगरमें विट्वाटर स्ट्रैंड विश्वविद्यालयके मनोविज्ञानके प्राध्यापक ब्लेक्स्ले जोयसे बात करनेपर बहुत प्रभावित हुए। साथ ही वे दुविधामें भी पड़ गये। उन्होंने कहा 'मैंने विस्मित होकर बत्ती काटनेकी कैंची-जैसी वे सारी बातें सुनीं, जिनके बारेमें लोग अधिक नहीं जानते। उसने सब वस्तुओंका इतना सही वर्णन किया कि यह विश्वास करना बहुत कठिन है कि उसने उन्हें कभी देखा ही नहीं था।

डाक्टर ब्लेक्स्लेकी राय है कि हो सकता है कि 'जोयको दूरानुभूति (Telepathy) जैसी साधारणतः अप्राप्य ईश्वरीय देन प्राप्त हो और वह लोगोंके द्वारा प्रश्न करते समय उन (लोगों) के मनोंमें उनके प्रश्नोंके उत्तर पढ़ लेती हो। परंतु इस कथनसे उन सब कहानियोंकी बातें समझमें नहीं आतीं, जिन्हें बिना प्रश्न किये ही जोय बताया करती है।'

इस विचित्र लड़कीका अध्ययन करनेवाले डाक्टर ब्लेक्स्लेने कहा है—'वैज्ञानिक पद्धतिसे किसी व्यक्तिके भौतिक रूपमें पुनर्जन्म लेनेकी बातको प्रमाणित कर सकना दूरानुभूति (जिसका वास्तवमें अस्तित्व है) को प्रभावित करनेकी अपेक्षा अधिक कठिन है।

परंतु इससे यह भी तो सिद्ध नहीं होता कि जोयका पुनर्जन्म नहीं हुआ। पुनर्जन्मकी उपर्युक्त घटना इस लेखके आरम्भमें पूछे गये प्रश्नका उत्तर प्रस्तुत करती है।

बहुत पहलेके पूर्वजन्मोंकी स्मृति तथा दूसरी भाषाका ज्ञान

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

(१)

कोरियाकी घटना

बालक किन ऊँग योंग

वैज्ञानिकोंकी अपेक्षा जनसाधारणको किसी भी मानसिक घटनापर प्रायः आसानीसे विश्वास करते देखा गया है। बच्चोंकी विलक्षण प्रतिभाकी घटनाओंके समाचारके कारण पुनर्जन्मके प्रति अधिक रुचि दिखायी जाने लगी है; क्योंकि पुनर्जन्मकी परिकल्पनाको दृष्टिगत रक्खे बिना इस अलौकिकताकी व्याख्या कर सकना सहज नहीं है। अब हम कोरियामें सियोल (Seoul) नगरके एक लड़के किन ऊँग यांग (Kin Ung Yong) के उदाहरणपर विचार करें—

अद्भुत बौद्धिक विकास परिलक्षित होता है। वह अपनी कोरियन मातृभाषाके अतिरिक्त धाराप्रवाह अंग्रेजी तथा जर्मन भाषा अधिकारपूर्वक बोल लेता है। वह गणितकी विशेष कठिन प्रणाली 'परिमितान्तर कलन' (Differential and Integral Calculus) आदिकी जटिलतम समस्याओंको हल कर देता है। वह कुशलतासे सुन्दर हस्तलिपिमें लिख सकता है और उस सूक्ष्म दार्शनिकताके साथ अपनी कविताएँ लिखता है, जो औसतसे अधिक होती हैं। इस लड़केने प्रवेशके लिये अमरीकी उच्च विद्यालयमें आवेदन किया है। विद्यालयके अधिकारी उसकी बुद्धिकी अपेक्षा उसके कद (ऊँचाई) के सम्बन्धमें अधिक चिन्तित

(लेखक—श्रीनिरञ्जनदासजी धीर)

(२)

तीन-चार सहस्र वर्ष पूर्व पश्चिमी एशियामें, जहाँ अब टर्की, इराक, जोर्डन आदि देश हैं, वहाँ असीरिया साम्राज्य स्थापित था, जिसकी राजधानी बाबल थी, जिसको Babylonia कहते थे। इस इतिहासके प्रसिद्ध साम्राज्य तथा सभ्यताको लोप हुए सहस्रों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस साम्राज्यका उल्लेख यहूदियों और ईसाइयोंके प्राचीन धार्मिक ग्रन्थोंमें बार-बार आया है। आधुनिक समयके पुरातत्त्ववेत्ताओंने इस प्राचीन सभ्यताके इतिहासका पता लगाया और बाबल नगरके भग्नावशेषोंको खोद निकाला। इस सभ्यताके एक विशेषज्ञ प्रोफेसर 'हिल प्रेचट' थे जो अमेरिकाकी पैन्सिलवानिया यूनिवर्सिटीमें असीरियन सभ्यताके प्रोफेसर थे।

इन प्रोफेसर महोदयका वक्तव्य है—

"मैं आगेट (Agate) नामक बहुमूल्य मणिके दो छोटे खण्डोंपर खुदे अक्षरों तथा रेखाओंके स्पष्टीकरणके प्रयत्नमें प्राणपणसे लगा था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि बाबल राज्यके किसी अधिपतिकी अँगूठीके ये नग हैं, जिनका समय ईसाके जन्मसे १००० से ११४० वर्ष पूर्व था। एक खण्डको मैंने महाराजा कुरिगालजूसे सम्बन्धित किया और दूसरे खण्डको उन वस्तुओंमें डाल दिया, जिनका पता नहीं चलता था।

अर्धरात्रिको मैंने विचित्र स्वप्न देखा—

उस समयके एक पतले लंबे निपपुरके पुजारीके दर्शन हुए जो मुझे मन्दिरके कोषकक्षमें ले गया और कहा कि "ये दोनों खण्ड पृथक्-पृथक् नहीं हैं, एक ही वस्तुके खण्ड हैं। महाराज कुरिगालजूने एक बार एक बेलनाकार आगेट मणिको बेलदेवताके मन्दिरमें 'अपनी भक्तिकी भेंटके रूपमें' भेजा था, जिसपर यह खुदा हुआ था। पीछे हम पुजारियोंको आज्ञा हुई कि निलिब देवताके लिये आगेट मणिके कुण्डल बनाये जायँ और आगेट मणि सुलभ नहीं थी। तब हमने उसी मणिके तीन खण्ड करके तीन कुण्डल बना लिये, जिनपर पहले ही अक्षर खुदे हुए थे। यदि तुम दोनों खण्डोंको साथ मिलाओगे तो मेरे वचनकी सत्यता प्रकट हो जायगी।" दूसरे दिन प्रातः जब ऐसा करके देखा तो रात्रिके स्वप्नकी सारी बातें सत्य प्रमाणित

पेशंस वर्थकी साहित्यिक रचनाएँ

श्रीटाइरेलकी पुस्तक 'मनुष्यका व्यक्तित्व' (TYRRELL'S 'Personality of Man') में इस अद्भुत घटनाका उल्लेख है—

"श्रीमती कूरन अमेरिकाके पश्चिमके मध्यभागकी निवासी थी और विशेष शिक्षाप्राप्त भी नहीं थी। जब उसकी आयु तीस वर्षकी हुई तो उसमें माध्यम (मीडियम) के गुणोंका विकास हो गया, जिसका अर्थ यह है कि अन्य आत्मा उसके शरीरका प्रयोग करने लगा। एक विलक्षण बात यह थी कि श्रीमती कूरनमें जब इस आत्माका आवेश होता था तो वह स्वयं संज्ञाहीन नहीं होती थी। उसको इस बातका पूर्ण भान रहता था कि दूसरा आत्मा, जो अपना नाम पेशंस वर्थ बताता था, उसके हाथसे लिख रहा है। पेशंस वर्थने जो साहित्य सृजन किया, वह अत्यन्त महान् है। इसमें कथा, कहानी, उपन्यास, प्रार्थनाएँ और महात्मा ईसाका जीवनचरित्र भी है। डाक्टर प्रिंस तथा डाक्टर शिलरने इस साहित्यके अध्ययनके पश्चात् यह मत प्रकट किया कि इतना उत्तम लेखन साधारण व्यक्तिकी शक्तिसे बाहर है।

"पेशंस वर्थ अपनेको सतरहवीं शताब्दीकी इंगलैंडके डोरसेटशायर इलाकेकी कन्या बताती थी, जो अपना देश छोड़कर अमेरिकामें जा बसी थी। उसकी हत्या अमेरिकाके एक आदिनिवासी, जिनको 'इंडियन' कहते हैं, के हाथसे हुई थी। इसकी भाषामें सन् १६५० की प्रचलित अंग्रेजी भाषाके पश्चात्का कोई शब्द नहीं मिलता। श्रीमती कूरनकी अपनी बोलीसे यह भाषा नितान्त पृथक् है, जिसको वह प्रारम्भमें समझ नहीं पाती थी।"

(३)

निपपुरके पुजारीद्वारा आगेट मणिपर खुदे शब्दोंका स्पष्टीकरण

इंगलैंडकी 'साइकिक रिसर्च सोसाइटी' के वैज्ञानिक संस्थापकोंमें श्रीमेयर प्रधान कार्यकर्ताओंमें थे। इनकी लिखी प्रसिद्ध पुस्तक जिसका नाम है (HUMAN PERSONALITY) (मानवका व्यक्तित्व) में एक विचित्र चकित करनेवाली घटनाका उल्लेख है—

। पूर्वकी खुदाईके शब्द स्पष्ट हो गये 'कुरिगालज़ूने पुत्र भगवान् निलिबके लिये अर्पण किया ।'

"डाक्टर हिल प्रेचटने इस्तम्बोलकी, जो उस समय टर्की यकी राजधानी थी और वहाँके राजकीय संग्रहालयमें पुरकी खुदाईमें निकली वस्तुएँ सुरक्षित थीं, यात्रा की र वहाँ संग्रहालयमें तीसरे खण्डको जोड़ा तो स्वप्नकी री बातोंकी सत्यता प्रत्यक्ष हो गयी ।"

(४)

मिस्रदेशकी प्राचीन भाषाका शुद्ध उच्चारण

महाभारतके समयके बने हुए मिस्रदेशके प्रसिद्ध रामिड नामी स्तम्भ यह प्रमाणित करते हैं कि मिस्रदेश ी बहुत प्राचीनकालसे सभ्यताका केन्द्र रहा है । रातत्त्ववेत्ताओंने वहाँकी सहस्रों वर्ष पुराने राजाओंके माधिस्थानों अथवा कब्रोंको खोदकर विविध भाँतिकी हुमूल्य स्वर्णनिर्मित वस्तुएँ निकाली हैं, जिनमें विशेष भाँतिके चर्मपर लिखित ग्रन्थ भी थे, जिनको 'स्क्रोल' (Scroll) कहते हैं । ये ग्रन्थ एक विचित्र प्रकारकी लिपिमें लिखित थे, जिसको 'हाइरोग्लिफिक' कहते हैं, जिसको हमारे देशकी 'सिन्धुसभ्यता'की मोहरोंकी भाँति कोई पढ़ नहीं सकता था । किंतु विशेषज्ञोंके अनथक प्रयत्नसे इस विचित्र लिपिकी कुञ्जी मिल गयी, जिससे इन ग्रन्थोंका तात्पर्य समझा जाने लगा । जिस भाषामें ये ग्रन्थ लिखे गये हैं, उसके बोलनेवालोंका सहस्रों वर्ष पूर्व लोप हो चुका था ।

सन् १९३१ में श्रीहोवर्ड होमको एक 'रोज मेरी' नामक युवतीका पता लगा, जिसमें एक मृतात्माका आवेश होता था, जो अपना नाम 'नोना' बताता था । इस आत्मासे पूछताछ करनेपर ज्ञात हुआ कि ईसासे १३८० वर्ष पूर्व वह 'फाराओह अमेनहोतप तृतीय'की रानी थी । व्यञ्जन अक्षरोंका उच्चारण तो कुछ-कुछ पहले भी ज्ञात हो चुका था, स्वरोंका उच्चारण 'नोना'से ही होवर्ड होमने सीखा । नोना वह भाषा बोलती थी, जो ३३०० वर्ष पूर्व मिस्रमें प्रचलित थी । प्राचीन मिस्रसम्बन्धी विशेषज्ञों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओंको नोनाकी कृपासे और भी कई रहस्योंका उद्घाटन हुआ और ज़ेनोग्लोसी (Xenoglossy) नामक पुरातत्त्वविज्ञानकी शाखाका सूत्रपात हुआ । प्राचीन मिस्रकी बोलीके ही सौ उदाहरण नोनाने दिये, जिनका परिच्छेद तथा अनुवाद विशेषज्ञोंने किया । रोज मेरी एक साधारण अंग्रेज बाला थी, जिसको मिस्रका कोई ज्ञान नहीं था । नोनाका कहना था कि 'मैं अपने पार्थिव जीवनमें रोज मेरीसे परिचित थी ।'

(५)

स्वयं कनफ्यूसियसद्वारा कूट कविताका उच्चारण

ढाई सहस्र पूर्व चीन देशमें कनफ्यूसियस नामके एक जगद्विख्यात तत्त्ववेत्ता, विज्ञ, विद्वान् तथा धर्मसंस्थापक महात्मा हो गये हैं । उन्होंने अपने समयमें एक अति प्राचीन ग्रन्थका सम्पादन भी किया था, जिसका नाम 'शेतिकिं' था । इस प्राचीन ग्रन्थकी टीका पीछेके कई चीनी विद्वानोंने की थी, किंतु पश्चिमी चीनी भाषाके विशेषज्ञोंका मत है कि कई कविताओंका वास्तविक अभिप्राय वे नहीं समझ सके । अमेरिकाके पूर्वदेशोंकी भाषाओंके प्रसिद्ध विशेषज्ञ डाक्टर वाइमाण्ट महोदय थे । उनका भी यही मत था । जार्ज वालियान्टिन न्यूयार्कमें एक मीडियम (माध्यम) था, जिसके शरीरद्वारा परलोकवासी आत्मा वार्तालाप करते थे । यह व्यक्ति स्वयं एक अशिक्षित, सरल तथा मन्दबुद्धि था ।

डाक्टर वाइमाण्टने एक दिन इस मीडियमके मुखसे चीनदेशकी मुरलीका शब्द सुना और अस्पष्ट-सा 'कुं फूं त्सी' (कनफ्यूसियस) नाम सुना । वह कुछ और भी बोल रहा था जो डाक्टर महोदय समझ नहीं पा रहे थे । मीडियमके कई बार दुहरानेपर डाक्टरको ज्ञात हुआ कि कनफ्यूसियस महाराज अपने समयकी सुन्दर चीनी भाषा बोल रहे हैं, जिसकी गिनती मृतभाषामें हुए बहुत समय हो गया था । इस बातकी परीक्षा करनेके लिये कि क्या वास्तवमें यह श्रीकनफ्यूसियस महाराज ही हैं, जो मीडियमके मुखसे बोल रहे हैं, डाक्टर महोदयने 'शेतिकिं' की एक लंबी कविताकी व्याख्या करनेके लिये प्रार्थना की । उनको स्वयं तीसरे छन्दका एक पाद ही स्मरण था, जो उन्होंने पढ़ दिया ।

मीडियमद्वारा बोलनेवाले व्यक्तिने यह सारी कविता अन्ततक सुना दी । इसका उच्चारण ही नितान्त विलक्षण था, जिसकी विलक्षणताको तथा कविताको डाक्टर महोदयने लिपिबद्ध तथा स्वरचिह्नित कर लिया । अब इस कविताने,

जिसको समझनेके लिये इतना प्रयत्न किया गया था, एक सरल कविताका रूप धारण कर लिया। इस कार्यमें सहयोग देनेके लिये कनफ्यूसियस महाराजको बारह पड़ा था।

(६)

पुनर्जन्ममें धार्मिक मान्यताओंका स्थान

[डेविड मॉरिस]

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

पुनर्जन्म होनेकी घटनाओंमें अपनी आस्था या धार्मिक मान्यताओंका भी कुछ भाग होनेकी सम्भावना है, इसलिये भी अधिकतर घटनाएँ उन स्थानोंसे उपलब्ध होती हैं, जहाँके लोग पुनर्जन्मपर आस्था रखते हैं। अनुकूल सामाजिक वातावरण पूर्वजन्मका स्मरण दिलानेके लिये एक उपयोगी मानसिक दृष्टिकोण प्रदान करता है और प्रतिकूल परिस्थिति उस स्मरणका निवारण करती है। जिस प्रकार कलाकारको अपनी कलाके प्रदर्शनके लिये विशेष परिपार्श्वकी आवश्यकता है, उसी प्रकार यह प्रतीत होता है कि स्मृति उपलब्ध कर सकनेकी योग्यताके सम्पादनके लिये भी अनुकूल सामाजिक परिपार्श्वकी आवश्यकता है। परंतु इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि उन स्थानोंसे पुनर्जन्मकी घटनाओंके समाचार प्रकाशमें नहीं आये हैं, जहाँ पुनर्जन्मकी आस्थाकी निन्दा की जाती है। अब हम आपके समक्ष जेरूसलमकी घटनाका उदाहरण रखते हैं, जहाँ पुनर्जन्म-सिद्धान्त मान्य नहीं है।

अनेक जन्मोंकी स्मृति

पवित्र भूमि (Holy Land) की एक घटना

जेरूसलममें दाँतोंके डाक्टर सामे मॉरिस (Samme

कारण बताते हुए उसने कहा कि 'मैं डेविडके चिन्तित हूँ; क्योंकि वह आजकल स्वाभाविक ढं चीत नहीं कर रहा है। उसे एक प्रकारकी समावि- जाती है और वह मुँहसे लार गिराने लगता है त जल्दी-जल्दी बड़बड़ाता है। वह अन्य बच्चोंसे त लौटनेपर आपसे तो स्वाभाविक बातचीत करता है, धारणा है कि वह जान-बूझकर मुझे तंग करनेके लिये करता है और यदि मैं उसे दण्ड देती हूँ तो उसके लार ट लगती है तथा बड़बड़ानेकी क्रिया बढ़कर स्थिति और भी अ खराब हो जाती है। उसे किसी विशेषज्ञके पास ले च चाहिये, अन्यथा बच्चा मानसिक दृष्टिसे विकृत हो जायग

डाक्टर मॉरिसने अपने सचिवको उस दिनके अन्य कार्य स्थगित करनेकी बात कही और अपनी पत्नी साथ उसने घरकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ उस कि डेविड उनके निवास-कक्षमें प्लास्टिक तथा टुकड़ों आदिको मिलाकर एक दुर्ग बना रहा है। मॉरिसने क्रोधमें उसे झिड़कते हुए कहा कि 'मैंने इसे ही बार केवल अपने ही कमरेमें खेलनेके लिये का

डाक्टर झुककर अपने मौन बच्चेके पास बैठ गया और धीमी आवाजमें पूछा—'डेविड, बेटा ! क्या बना रहे हो ? यह कोई दुर्ग है या रेलवे स्टेशन ?' बच्चेने एकाग्रतासे जलती हुई आँखोंके साथ उसकी ओर देखा। उसके अधरोंसे शब्दोंका एक निर्झर-सा फूट पड़ा, जो केवल बड़बड़के समान सुनायी देता था। उसमेंसे केवल एक शब्द 'आ' को डाक्टर मॉरिस समझ सके, जिसका यहूदी भाषामें अर्थ है—'देवालय'। बच्चा उसके द्वारा निर्मित भवनकी एक दीवारकी ओर बराबर अङ्गुलिनिर्देश करता रहा।

डाक्टर मॉरिसने शीघ्रतासे कहा—'जल्दी करो, टेप रेकार्डर लाओ।' उसकी पत्नी शीघ्रतासे इसे लानेके लिये दौड़ी, साथ ही यह भी सोचती जाती थी कि बच्चेके अस्वाभाविक व्यवहारका रेकार्ड किया हुआ नमूना मानसिक-चिकित्सकके समक्ष उपस्थित करनेपर दुःख भी नहीं होगा। टेप रेकार्डकी मशीनके चालू होते ही उस नन्हे डेविडके स्पष्ट तथा उच्च स्वरमें उच्चरित वाक्य टेपपर अङ्कित होने लगे। उसमें 'आ' शब्दको वह बार-बार बोल रहा था। अचानक बच्चा उठा, अपने नन्हेसे पाँवकी ठोकर मारी और लकड़ीके उन चौकोर टुकड़ोंको उसने बिखेर दिया। वह विचित्र प्रकारसे हँसा और तेजीसे भागकर अपने कक्षमें प्रविष्ट हो गया।

श्रीमती मॉरिसने शिकायत की कि 'देखिये, वह कितना अधिक उत्तेजित हो जाता है।' 'डेविड, जल्दी यहाँ आओ। शरारती लड़के ! जल्दीसे इन टुकड़ोंको बटोरो, नहीं तो ठीकसे पेश न आनेपर आज आइसक्रीम नहीं मिलेगी…।'

डाक्टर मॉरिसने टेपकी रीलको निकाला और सीधे राष्ट्रीय संग्रहालयकी ओर गाड़ी चला दी। उसके पुराने मित्र तथा इस समयके राष्ट्रीय संग्रहालयके प्राचीन पाण्डुलिपि-विभागके प्रमुख डाक्टर ज्वी हरमन (Dr Zvi Hermann) ने अपने कोलाहलभरे कार्यालयमें इनका स्वागत किया। डाक्टर हरमन पवित्र देश इसराइल (Holy Land) के इतिहासके सर्वोच्च अधिकृत जानकार व्यक्ति हैं। साथ ही प्राचीन शिलालेखों और चमड़ेपर लिखी हुई प्राचीन पाण्डुलिपियोंको पढ़ सकनेवाले एक प्रसिद्ध विशेषज्ञ हैं। डाक्टर मॉरिसने डाक्टर हरमनकी टेप मशीनपर उस टेपको लगाकर मशीनको चालू करनेवाले बटनको दबा दिया।

ध्वनि-विस्तारक (Loud Speaker) से डेविडकी ध्वनि निकली … ने शब्दोंमें आश्चर्यजनित विस्मयसे … तथा ऊँची-नीची ध्वनिमें तबतक सुनाया, जबतक डाक्टर हरमनने कुछ सोचते हुए अपने होंठ भींचकर तेजीसे लिखना आरम्भ नहीं कर दिया।

उसने कहा कि 'यह ध्वनि प्राचीन हिब्रू (यहूदियोंकी भाषा) के समान सुनायी देती है। हमारी वर्तमान भाषासे उसके बहुत-से शब्द मिलते-जुलते हैं। इसी कारण हम प्राचीन पाण्डुलिपियोंको आसानीसे पढ़ लेते हैं; परंतु उनका शब्द, रूप, विभक्तियाँ, उच्चारणशैली तथा व्याकरण बहुत ही भिन्न हैं। फिर भी मेरे विचारसे मैंने इसे पढ़ लिया है और वह इस प्रकार है—'इसमें एक बादशाह अपनी प्रजासे कह रहा है कि मेरे कहे अनुसार चलो। मैं तुम्हें गौरवकी ओर ले चलूँगा।'

डाक्टर हरमनने जिज्ञासा की कि 'इसे आपने कहाँसे रेकार्ड किया। यह किसी नाटकमें अभ्यास करनेवाले पेशेवर कलाकारकी ध्वनि-सी प्रतीत होती है। शाह डेविड और देवालयके निर्माणका विरोध करनेवाले गुटके संघर्षसे इतिहासकार भलीभाँति परिचित हैं। विरोधियोंने इसके निर्माणका कार्य पूरा होनेसे पूर्व ही इस योजनाका त्याग करनेके लिये उसे बाध्य कर दिया था। इस कार्यको उसके उत्तराधिकारी शाह सोलोमनने पूरा किया था। यह नाटकके लिये एक अच्छा विषय है, परंतु मुझे यह पता नहीं था कि हमारे कलाकार पुरानी हिब्रू भाषाके भी जानकार हैं। वास्तवमें मुझे आजतक ऐसा व्यक्ति नहीं मिल पाया जो इतनी सरलता और अधिकारपूर्ण ढंगसे इसे बोल सके, जैसा कि यह कलाकार। परंतु यह है कौन ?'

एक गद्देदार कुरसीमें लुढ़कते हुए डाक्टर मॉरिसने उत्तर दिया—'मेरा बेटा।'

डाक्टर हरमन दौड़कर पानी ठंढा करनेकी मशीनकी ओर लपके और पानीका एक भरा हुआ गिलास लेकर लौटे—'ऐसा लगता है कि तुम कुछ अस्वस्थ हो। लो, यह पानी पी लो। लगता है, तुम यह सब गम्भीरतासे नहीं कह रहे हो। क्या सचमुच यही बात है ?'

यह सब उस घटनाका विवरण है, जो १९६४ में घटी उस समय इस शरीरमें डेविडकी अवस्था केवल तीन वर्षकी थी और उसका आत्मा तीन हजार वर्ष पुराना था।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन

प्राध्यापक एफ्रेम एयूरबैच (Ephraim Auerbach) तथा डाक्टर त्वी हरमन (Zvi Hermann) को मेरे घर-पर मैंने रोक कर रक्खा, ताकि वे काफी समयतक कई बार लड़केका निरीक्षण कर सकें और उसकी बड़बड़को लेखबद्ध करें तथा उसके व्यवहारकी कारण-मीमांसा कर सकें । इन वैज्ञानिकोंने देखा कि उसके कक्षकी खिड़कियाँ बंद कर देनेपर तो अपनी आयुके अन्य बच्चोंके समान वह व्यवहार करता है और खिड़कियोंको खोल देनेपर वह अन्तर्लीन होने लगता है । उन्होंने यह भी देखा कि उसकी अन्तर्लीनताकी स्थिति उस समय जल्दी-जल्दी आती थी, जब कि वायुकी गतिकी दिशा उत्तर-पूर्वसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर रहा करती थी । पवित्र नगरी (जेरूसलम) के एक मानचित्रपर वायुलहरियोंकी दिशाकी खोज की गयी । उनके शोध-प्रयत्नोंसे पता चला कि डाक्टर मॉरिसका रेहाविया क्वार्टर (Rehavia Quarter) जैसे सुन्दर क्षेत्रमें स्थित निवास माउन्ट मोरिया (Mount Moriah) की दक्षिण-पश्चिम दिशामें दो मीलकी दूरीपर है । यह स्थान पुराने जेरूसलममें ईश्वरके प्रथम देवालय तथा शाह डेविडके दुर्गका स्थान था । वैज्ञानिकोंने तथ्योंको लिपिबद्ध कर दिया, परंतु वे कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सके ।

माता-पिता भयभीत हैं

बादमें डाक्टर हरमनने टेपको एक बड़े लिफाफेमें बंद करके, उसे चिपकानेके फीतेसे चिपकाते हुए कहा—'देखो, सामे ! यदि हम इस सारी सामग्रीका प्रचार करते हैं तो तीव्रतासे एकके पश्चात् एक तीन बातें होंगी—

(१) प्रथमतः तुम्हें और मुझे दोनोंको विकृत मस्तिष्कका समझकर मानस-चिकित्सककी जाँचके लिये बंद कर दिया जायगा ।

(२) बच्चेको असंतुलित मस्तिष्कवाले बच्चोंकी किसी संस्थामें भरती करनेके लिये ले लिया जायगा, और

(३) तुम्हारी पत्नी भयानक रूपसे घबरा जायगी ।

एक अन्धे रामायणी बालककी कथा

(प्रेषिका—सुश्री सु० कुमारी)

कोई पचीस-छब्बीस साल पहलेकी बात है । हमारे शहरमें एक व्यक्ति आया, जो जातिका लोदी था और उसके साथ उसका एक ५-६ वर्षका बच्चा था । उसे लेकर वह घर-घर फिरता था । वह बच्चा रामायण बोलता था और लोग सुन-सुनकर कुछ पैसे दे देते थे । इस प्रकार उसने बालकको जीविकाका साधन बना रक्खा था ।

हमने जब सुना तो उसको अपने घर बुलाया । उन दिनों माँ पर्दा करती थीं, इसलिये अकेले बालकको गोदमें उठाकर माँके बैठकके कमरेमें ले आये । बालक देखनेमें अन्धा था; उसका रंग गेहुँआ था । वह जन्मान्ध था और उसके पैर पतले और कमजोर थे, जिससे वह चल नहीं पाता था । जैसे ही उसको गोदमेंसे नीचे उतारने लगे ... बोलते हो ?' उसके 'हाँ' करनेपर कहा कि 'बोलो तो ।' उसने कहा कि 'पहले रामायण मेरे हाथमें दो ।' उसके हाथमें रामायण दी तो उसने पहले बड़ी भक्तिपूर्वक सिर झुकाया । फिर थोड़ी देर कुछ ध्यान किया । फिर उसने रामायण गुरुजीके हाथमें दे दी और कहा कि 'बताओ—कहाँसे बोलें ?' गुरुजी रामायण बीचसे खोलकर एक आधी चौपाई बोले, वहाँसे उसने बोलना शुरू कर दिया । वह बोलता गया और गुरुजी मिलाते गये; रामायणसे एक-एक शब्द मिलता गया । इसी प्रकार रामायण बंद करके फिर दूसरी जगहसे दूसरे प्रसङ्गकी चौपाई बोले । वहाँसे वह बालक ठीक-ठीक बोलता गया; यानी उसको सारी रामायण कण्ठस्थ थी, चाहे कहाँसे भी पूछो । इसके बाद उसने 'गीतगोविन्द' तथा रामरक्षा

मार्कण्डेय-आश्रम, तो हम तुम्हींको वहाँ पहुँचा दें ?' फिर उसने ठीकसे जवाब नहीं दिया। बात ही टाल गया कि 'बिल्ली दूध पी गयी और मेरा बाप मुझे घर-घर घुमाता है और तंग करता है।' पता नहीं, उसने जान-बूझकर नहीं बताया था, या फिर उसे स्मरण ही न रहा हो।

बादमें सुना कि वह सबेरे चार बजे उठ जाता है और दीवालकी तरफ मुँह करके बैठ जाता है तथा बड़ी देरतक कुछ पाठ किया करता है। उसका यह नित्य नियम है, जबसे उसने बैठना और बोलना सीखा।

उस समयके बाद फिर उन लोगोंका कोई पता नहीं लगा। ऐसा भी सुना कि वह लड़का ग्यारह सालका होकर मर गया। परंतु ठीक-ठीक कुछ पता नहीं लगा। यह पुनर्जन्मकी आँखों-देखी घटना है, इससे कर्मभोग और पुनर्जन्मपर विश्वास कैसे न करें!

एक हजार वर्षोंतक प्रेतयोनिमें रहनेवाले मुसल्मान पीर सुलेमान

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुआ)

एक हजार वर्षोंतक प्रेतयोनिमें रहनेवाले मुसल्मान पीर सुलेमानने, जिसे अभी सिखोंके पूज्य संत राड़ेवाले श्रीईश्वर-सिंहजी महाराजकी कृपासे ५ अगस्त सन् १९६८ को एक सिख-परिवारमें मनुष्ययोनि प्राप्त हुई है, छात्र मनमोहनसिंहके शरीरमें प्रवेश करके जो परलोकसम्बन्धी आश्चर्यजनक अपनी स्वयंकी आँखों-देखी घटनाओंका वर्णन किया है, वह जहाँ बड़ा रोमाञ्चकारी है, वहाँ हमारे शास्त्र-पुराणोंकी परलोक-सम्बन्धी सभी बातोंको सर्वथा सत्य प्रमाणित करनेवाला भी है। पूज्य संतजी महाराजकी सेवामें हर समय रहनेवाले मास्टर श्रीराजेन्द्रसिंहजीने हमें बताया कि हमने छात्र मनमोहनसिंहको अपनी एकान्त कोठरीमें बैठाकर मनमोहनसिंहके शरीरमें स्थित एक हजार वर्षके मुसल्मान पीर प्रेतसे परलोकसम्बन्धी प्रश्न किये और उसने हमें जो उत्तर दिये, वह ज्यों-के-त्यों इस प्रकार हैं—

श्रीराजेन्द्रसिंहजी—'तुम्हारा क्या नाम है ?'

प्रेत—'मेरा नाम सुलेमान है।'

'तुम कहाँके रहनेवाले हो ?'

'मैं ईरानका रहनेवाला मुसल्मान हूँ।'

'तुम हिंदुस्तान देशमें कैसे आये ?'

'हम मुसल्मान बादशाह नादिरशाह अब्दालीके साथ, दिनों एक हिंदू तपस्वी रहा करता था, जो इस समय मन-मोहनसिंहके रूपमें आपके सामने बैठा है। वह तपस्वी गण्डे-तागे, तावीज आदिका काम करता था और पाखण्ड भी करता था। मेरी एक नौजवान बड़ी खूबसूरत लड़की थी, जिससे उस तपस्वी साधुने अपने नाजायज ताल्लुकात पैदा कर लिये। उन नाजायज ताल्लुकातका मुझे पता चल गया। मैंने उस समय बहुत कोशिश की कि किसी प्रकार इनके नाजायज ताल्लुकात टूट जायँ। खुद भी मैंने बहुत समझाया-बुझाया और उस वक्तकी हुकूमतके जरिये भी ताल्लुकात तुड़वानेकी बड़ी कोशिश की; लेकिन मुझे कामयाबी नहीं मिली। मेरे दिलपर इस बातका ऐसा गहरा असर हुआ, मैंने उस वक्त अपने उस खुदावन्दतालासे यह दुआ की कि मैं इससे इसका बदला किसी प्रकार जरूर लूँ। इसी ख्यालमें मैं कुछ दिनोंके बाद मर गया।'

'सुलेमान! तुम अपने मरनेके वक्तकी सारी हकीकत बताओ। तुम कैसे मरे और उस समय तुम्हारे साथ कैसे गुजरी ?'

'जब मेरे मरनेका वक्त आया, तब मेरी आँखोंसे आँसू निकलने लगे। मेरी जबान एकदम बंद हो गयी। मुझे उस समय चार यमराजके दूत लेने आये थे। वे आकर

'धर्मराज बहुत ही खूबसूरत था और उसके सफेद लंबी दाढ़ी थी और उसके सिरपर भी केश थे और धर्मराज बड़े रोबवाला और जलालवाला था और उसका सूक्ष्म और बड़ा दिव्य शरीर था और उसमें अपने शरीरको पलटनेकी भी ताकत है ।'

'प्रेतोंकी क्या खुराक है और प्रेत क्या-क्या खाते-पीते हैं ?'

'प्रेत हड्डियाँ चूसते हैं और खून पीते हैं और गंदगी खाते हैं और टट्टी खाते हैं और लकड़ीके बुझे हुए कोयले खाते हैं। यही उनकी खुराक है।'

'तुम प्रेतलोग कहाँपर रहते हो ?'

'हम खण्डहरोंमें रहते हैं और पेड़ोंके ऊपर लटकते हैं। खूब चीखते हैं, चिल्लाते हैं, पुकारते हैं; लेकिन हमारी कोई आवाज नहीं सुनता। हमें भूख-प्यास भी खूब लगती है और हमलोग बहुत ही दुखी रहते हैं।'

'प्रेतयोनि क्यों मिलती है ? तुम्हें प्रेत-योनि क्यों मिली ?'

कीर्तनमें आनेका हुक्म नहीं है। अगर कथा-कीर्तनमें, सत्संगमें भूत-प्रेत आयेंगे तो उन्हें आग लग जाती है और शरीर जलने लगता है। जहाँपर कथा-कीर्तन होता है और जहाँपर सत्संग होता है, वहाँसे भूत-प्रेत एकदमसे भाग जाते हैं। यदि कोई प्रेत किसी मनुष्यके शरीरके अंदर प्रवेश कर जाय और फिर वह आदमी यदि किसी महापुरुषकी शरणमें चला जाय तो उस महापुरुषकी दया-दृष्टिसे और उनकी दयालुतासे उसके लिये यह वचन हो जाय कि तुम सत्संग-कथा-कीर्तन सुनो तो तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी तो उसे सत्संग-कथा-कीर्तन सुननेसे अवश्य शान्ति प्राप्त होती है।'

यह सब प्रेतसे किये गये मास्टर श्रीराजेन्द्रसिंहजीके प्रश्नोत्तर ज्यों-के-त्यों दिये गये हैं। यह स्मरण रहे कि छात्र मनमोहनसिंहके शरीरमें रहनेपर वह मुसल्मान प्रेत कुरानकी आयतें बोलता था, जब कि छात्र कुरानका एक अक्षर भी नहीं पढ़ सकता। और भी बहुतसे प्रश्नोत्तर हैं कि जो कभी फिर सामने रक्खे जायँगे।

बोलो सनातन धर्मकी जय!

परमधाम

निर्गुण-निराकार स्वरूपके एकत्व तथा उसकी सर्वव्यापकता समझमें आनेवाली बात है, परंतु विविध विचित्र रूपोंमें प्रकट त्रिगुणातीत सगुण-साकारका एकत्व तथा उसकी सर्वव्यापकताकी बात समझमें नहीं आती। पर यह परम सत्य है कि वह सगुण-साकार तत्त्व नित्य अनेक होते हुए ही नित्य एक है और एक देशमें होते हुए ही सर्वत्र है। वह सबमें और उसमें सब हैं—इस अचिन्त्य, अनिर्वचनीय परमरहस्यका ज्ञान भगवत्कृपासाध्य ही है।

भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण अयोध्यानिवासियोंसे एक ही साथ पृथक्-पृथक् मिले। भगवान् श्रीकृष्ण रासमण्डलमें सहस्र-सहस्र कृष्णरूपमें प्रकट थे। क्या यह भगवान्की माया थी? जादू था? नहीं, यह वास्तवमें भगवान्की स्वरूप-स्थिति है। वे एक रहते हुए ही अनन्त स्थानोंमें, अनन्त भक्तोंके सामने पृथक्-पृथक् स्थित रहकर उनकी पूजा-अर्चना स्वीकार करते हैं। एक ही समय, एक ही साथ परस्पर-विरोधी गुणधर्मोंका आश्रय उनका स्वरूप है—'अणोरणीयान् महतो महीयान्।' वे ही एक भगवान् विभिन्न नित्य दिव्य लीलारूपोंमें लीलायमान हैं। सत्यस्वरूप, सत्यसंकल्प भगवान्का कुछ भी असत्य नहीं है। लीलाके अनुरूप ही उनके अनादि-अनन्त विभिन्न दिव्य नित्यलोक हैं—उनमें सृष्टि-प्रलयका कोई संस्पर्श नहीं है। इन सत्य दिव्यलोकोंकी भाँति ही इनकी विभिन्न-विचित्र रचना, वहाँकी प्रत्येक अणु-महान् वस्तु, प्रत्येक स्थान, प्रत्येक पार्षद-परिकर, प्रत्येक निवासी, वहाँके नद-नदी, वृक्ष-लता, गिरि-कूट, सर-सागर तथा वहाँकी सभी लीलाएँ भी सत्य दिव्य हैं। सभी भगवत्स्वरूप हैं। इसी प्रकार वे एकदेशीय होनेपर भी सर्वदेशीय तथा सर्वदेशीय होनेपर भी एकदेशीय हैं; क्योंकि सब भगवत्स्वरूपकी ही अभिव्यक्ति है।

वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास, देवीद्वीप या मणिद्वीप आदि सभी दिव्य परमधाम हैं। पृथक्-पृथक् होते हुए ही वे नित्य एक ही दिव्य परमधामके स्वरूप हैं। परमधाम कोई महाविशाल, अतिविस्तृत प्राकृतिक महाद्वीप, लोक, देश या स्थानविशेष नहीं है। जैसे भगवान् प्रकृतिसे, प्रकृतिजनित तीनों गुणोंसे तथा सभी आवरणोंसे अतीत एवं प्राकृतिक पाञ्चभौतिक आकार—शरीरसे अतीत निजस्वरूपभूत गुण-देह हैं, वैसे ही उनके ये धाम तथा धामगत पदार्थमात्र भी भगवत्स्वरूप ही हैं।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
(गीता ६।३

जहाँ भगवान्की नित्य दिव्य व्यक्त लीला है, ‹ दिव्य 'रस' और 'भाव'का प्रकाश है। 'रस'-स्वरूप भगव देव हैं और 'भाव'-स्वरूपा उनकी अभिन्न-तत्त्व ह्लादि देवी हैं। भगवान् शक्तिमान् हैं, ह्लादिनी शक्ति हैं दोनोंका नित्य अविनाभाव-सम्बन्ध है। भगवान् श्रीकृ और प्रेममयी श्रीराधा, भगवान् श्रीविष्णु और भगव श्रीलक्ष्मीजी, भगवान् श्रीराम और देवीशिरोमणि श्रीसीताजं भगवान् श्रीशंकर और उनकी प्रिया सतीशिरोमणि श्रीस देवी शक्तिमान् और शक्तिस्वरूप हैं। श्रीदेवी-स्वरूपमें विपरी लीला है। वहाँ शक्तिका स्वामित्व है, शक्तिमान्की वश्यता है पर वहाँ भी है—वही अभिन्न शक्ति-शक्तिमान् तत्त्व ही। सभी एक ही नित्य दिव्य लीलाके नित्य स्वरूप हैं, परम सत्य हैं, महात्माओं तथा संतोंके द्वारा अनुभूत, उपलब्ध और सेवित हैं।

जैसे एक ही भगवान्के प्रत्येक स्वरूपमें उस एककी प्रधानता तथा अन्यान्य सभी रूपोंकी गौणरूपसे विद्यमानता है, वैसे ही उनके प्रत्येक दिव्यलोकमें उस एककी प्रधानता तथा अन्यान्य लोकोंकी गौणरूपसे विद्यमानता है। उनमें कोई श्रेष्ठ और कनिष्ठ नहीं है। सभीमें नित्य एकत्व, समत्व तथा श्रेष्ठत्व है। भक्त अपने भावानुसार एकको सर्वोपरि सर्वश्रेष्ठ देखता तथा दूसरोंको उससे कनिष्ठ देखता है—उन दिव्य लोकोंका तथा भक्तहृदयका यह अनुपमेय अनन्य-वैचित्र्य सदा ही आह्लादजनक है, पर वैसे यह नित्य अभेदमें ही भेद-दर्शन है।

जहाँ 'वैकुण्ठ'की प्रधानता है, वहाँ गोलोक, साकेत, कैलास, देवीद्वीप आदि उसमें गौणरूपसे विद्यमान हैं और चतुर्भुज 'भगवान् विष्णु' ही वहाँ सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ 'गोलोक'की प्रधानता है, वहाँ वैकुण्ठ, साकेत, कैलास, देवीलोक गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'मुरलीमनोहर द्विभुज भगवान् श्रीकृष्ण' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ 'साकेत' की प्रधानता है, वहाँ वैकुण्ठ, गोलोक, कैलास, देवीद्वीप गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'धनुर्धर भगवान् श्रीराम' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ 'कैलास'का प्राधान्य है, वहाँ

वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, देवीद्वीप गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'कर्पूरगौर भगवान् श्रीशंकर' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। इसी प्रकार भगवती श्रीदेवीजी तथा देवीलोककी प्रधानतामें कैलास, वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत आदि गौणरूपसे विद्यमान हैं। दिव्य गणपति तथा दिव्य सूर्यलोकके लिये भी ऐसा ही समझना चाहिये। पर यह केवल समझनेकी ही बात या कोई 'अर्थवाद' नहीं है। वास्तवमें यह नित्य परम सत्य है।

प्रत्येक दिव्यलोक—परमधाम उसके प्रधान भगवत्-स्वरूपकी महत्ताको घोषित करता हुआ उस रूपकी आराधना करनेवालोंकी निष्ठाको पुष्ट तथा संतुष्ट करता है और उन भक्तोंके तत्त्वज्ञानमें तनिक भी त्रुटि न रहनेपर भी उनको नित्य-नित्य लीलानन्द-महासुधार्णवमें निमग्न रखता है।

वास्तवमें भगवान्के स्वरूपका रहस्य भगवान् ही जानते हैं। भगवान्की दृष्टि भगवान्से अभिन्न है और उनकी दृष्टिमें जो कुछ है, वही सत्य है। उनकी दृष्टिमें, ऐसा ही विश्वास होता है कि उनके अपने सिवा कुछ है ही नहीं।

मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवत्प्राप्ति

(कर्मानुसार गतियोंके भेद)

मनुष्य-जीवनका एकमात्र पवित्र उद्देश्य या परम ध्येय है—जन्म-मृत्युके चक्रसे नित्यमुक्ति। इसीको मोक्ष, आत्मसाक्षात्कार, तत्त्वज्ञान, बोध, भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम-की प्राप्ति कहते हैं। अनन्य तीव्र इच्छाके साथ उपयुक्त साधन करनेपर मनुष्य इसी जन्ममें अपने इस महान् ध्येयको प्राप्त कर सकता है। इसीलिये उसको मानवजन्म मिला है। पर वह कर्म करनेमें स्वतन्त्र है—साधनानुकूल कर्म भी कर सकता है और इसके सर्वथा प्रतिकूल भी। कर्मानुसार ही फल प्राप्त होता है। मनुष्य साधना करके मुक्त भी हो सकता है; सत्कर्म करके विपुल भोगमय स्वर्गकी प्राप्ति भी कर सकता है; असत्-कर्म करके घोर यन्त्रणामय नरकोंमें भी जा सकता है और पशु, पक्षी, कीट-पतंग तथा जड वृक्ष-लता-पाषाण भी बन सकता है। मानव-जीवनको व्यर्थ-अनर्थके कार्योंमें खोकर अनन्तकालीन दुःखका भविष्य निर्माण कर सकता है। इसीलिये कहा जाता है कि दुर्लभ मनुष्य-जन्मका एक क्षण भी व्यर्थ-अनर्थमें न खोकर केवल भगवत्प्राप्तिके साधनमें ही लगाना चाहिये। स्वर्गके भोग-सुख मिलेंगे, तो वे भी वस्तुतः विनाशी तथा दुःखप्रद ही होंगे। कहीं कर्मके फलस्वरूप दुर्गति हो गयी, तब तो बहुत ही बुरी बात होगी। लेनेके देने पड़ जायँगे। पर वर्तमानकालमें अधिकांशमें मनुष्य ऐसा भोगासक्त हो गया है कि वह जीवनके असली उद्देश्य भगवत्प्राप्तिको भूलकर अहंता-ममता, राग-द्वेष एवं काम-क्रोध-लोभसे अभिभूत हो ऐसे ही कर्म करता है, जिनसे जीवनभर यहाँ भी रहता है और भोगोंकी प्राप्तिके लिये पापकर्ममें लगा रहनेके कारण मृत्युके बाद आसुरी योनियोंको तथा नरकोंकी घोर यन्त्रणाओंको प्राप्त होता है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

> आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
> मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥
>
> (१६। २०)

'(ऐसे लोगोंको) मेरी (भगवान्की) प्राप्ति तो होती ही नहीं, वे मूढ पुरुष जन्म-जन्ममें आसुरी योनि (राक्षस, पिशाच, भूत-प्रेत या कुत्ते, सूअर, गधे आदि) को प्राप्त होते हैं; फिर उससे भी अति नीच गतिमें अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं।'

दुर्लभ मनुष्य-जीवनका यह कितना अवाञ्छनीय दुष्परिणाम है!

कर्मानुसार मनुष्य निम्नलिखित गतियोंको प्राप्त होता है—

(१) अहंता-राग-द्वेषसे सर्वथा रहित जीवन्मुक्त पुरुष अथवा इस भावके साधनसे सम्पन्न पुरुष, मरनेपर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते। सूक्ष्म-कारण शरीर नष्ट हो जाते हैं। यह 'सद्योमुक्ति' है।

(२) भगवान्की भक्तिमें ही जीवन समर्पण कर देने-वाले भक्तको भगवान्के दिव्य पार्षद स्वयं आकर ज्योतिर्मय, स्वप्रकाश सच्चिदानन्दमय भगवत्स्वरूप नित्य परमधाम—वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास आदिमें दिव्य विमान-द्वारा ले जाते हैं। वह वहाँ उन दिव्य धामों ...

करके अचिन्त्य-अनिर्वचनीय भगवत्स्थितिमें रहता है। पर, प्रेमी साधक इस स्थितिको भी स्वीकार नहीं करते; वे साक्षात् सेवारूप बनकर नित्य भगवत्-सेवापरायण ही रहते हैं। देनेपर भी उपर्युक्त सालोक्यादिको ग्रहण नहीं करते।* यही पराभक्ति या प्रेमाभक्तिको प्राप्त पुरुषका भगवत्सेवामें नित्य प्रवेश है।

ये दोनों ही परम गति हैं। यही मानव-जीवनकी परम सफलता है। यही अनादिकालसे भटकते हुए जीवका उससे मुक्त होकर, नित्य सत्य परमानन्द-स्वरूपको प्राप्त होना है।

(३) निष्काम भावसे परमार्थ साधन करनेवाले ब्रह्मवेत्ता पुरुष देवयान—उत्तरायण या अर्चिमार्गसे दिव्य देवलोकोंमें देवताओंके द्वारा ले जाये जाकर, वहाँ अभ्यर्थित होते हुए ब्रह्मलोकमें पहुँच जाते हैं और वहाँ ब्रह्माजीके साथ ही मुक्त हो जाते हैं। संसारमें उनका पुनरावर्तन नहीं होता। यह 'क्रममुक्ति' है।

(४) सकाम भावसे शास्त्रोक्त सत्कर्म करनेवाले पुरुष पितृयाण—दक्षिणायन या धूममार्गसे दिव्य चन्द्रलोक-तक जाते हैं, यही भोगमय प्रकाशमय स्वर्गधाम है। इसके सहस्रों रूप हैं। पुण्यात्मा पुरुष इस जरा-व्याधिरहित स्वर्गमें देव-भोग-सुख प्राप्त करते हैं और पुण्य क्षीण होनेपर पुनः मर्त्यलोकमें लौट आते हैं।

(५) ज्ञान-विज्ञानरहित मोहग्रस्त भोगासक्त पाप-परायण मनुष्य मरनेके बाद वायुके सहारे चलनेवाले (वायुप्रधान) दूसरे शरीरको धारण कर लेते हैं, जो रूप, रंग और अवस्था आदिमें ठीक पहले (मृत) शरीरके जैसा ही होता है। यह शरीर माता-पिताके द्वारा उत्पन्न नहीं होता। यह कर्मजनित होता है और यातना-भोगके लिये ही मिलता है। तदनन्तर शीघ्र ही उसे दारुण पाशसे बाँधकर घोर भयंकर-आकृति क्रूरकर्मा यमदूत डंडोंसे पीटते तथा बड़ी बुरी तरह यातना देते हुए दक्षिण दिशामें यमलोककी ओर खींचकर ले जाते हैं।† वहाँ कर्मानुसार उसके लिये नरकादि यन्त्रणा-भोगकी व्यवस्था होती है।

(६) जो न तो मुक्त होते हैं, न देवयान-पितृयाण मार्गसे जाते हैं और न नरकोंमें ही जाते हैं—ऐसे प्राणी कर्मानुसार यहीं मच्छर, मक्खी, जूँ, लिक्षा, घुन आदिकी योनिको प्राप्त करते हैं।

कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि मनुष्य मरते ही तत्काल यहीं दूसरे मनुष्य-शरीरको अथवा पशु-पक्षी-तिर्यक् या वृक्ष-पाषाण आदिके शरीरको प्राप्त हो जाता है, अन्य लोकोंमें नहीं जाता। शाप-वरदानसे या प्रबल वासनायुक्त तत्काल पुनर्जन्मदायक कर्मोंके कारण ऐसा होता है। कई योगभ्रष्ट पुरुष भी मरनेपर तुरंत मनुष्य-शरीर प्राप्त करते हैं। इसके भी नियम हैं।

वैसे साधारणतः मरते ही दूसरा वायुप्रधान देह मिल जाता है, जिसे 'आतिवाहिक देह' कहते हैं; क्योंकि सूक्ष्म-शरीरधारी जीवको किसी आश्रयभूत शरीरकी आवश्यकता होती है। इसीसे कहा गया है कि जैसे जोंक अपना अगला पैर अगले पत्तेपर रख देती है तब पिछलेको छोड़ती है अथवा पुराना वस्त्र त्यागते ही नवीन वस्त्र जैसे पहन लिया जाता है, वैसे ही मरते ही 'आतिवाहिक शरीर' मिल जाता है। तत्पश्चात् समयपर कर्मानुसार सुख-भोगार्थ 'देवादि शरीर' या पीड़ा भोगनेके लिये 'यातना-शरीर'की प्राप्ति होती है।

इन सब बातोंपर विचार करके मनुष्यको अपने जीवनके वास्तविक एकमात्र परम तथा चरम ध्येय भगवत्प्राप्तिके साधनमें ही प्रवृत्त रहना चाहिये और वास्तवमें अहंता-राग-द्वेष-अभिनिवेशरूप अविद्यासे मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूपता या भगवान्‌के दिव्य परमधामको प्राप्त कर लेना चाहिये। इसमें जरा भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। भगवत्कृपासे प्राप्त मनुष्यशरीर-रूप सुअवसर भविष्यमें भयानक दुःख देनेवाले व्यर्थ-अनर्थके कार्योंमें चला न जाय। शरीर क्षणभङ्गुर है; अतः किसी स्थितिविशेषकी प्रतीक्षा न कर भजनपरायण हो ही जाना चाहिये। नामरूपके अभिमान तथा राग-द्वेषसे छूटनेपर ही मनुष्य परम पद या भगवान्‌को प्राप्तकर सफलजीवन हो सकता है; केवल संत-महात्मा, भक्त-प्रेमी या ज्ञानी कहलानेमात्रसे नहीं। कहलायें चाहे नहीं, पर बनें अवश्य।

---

* सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥
(श्रीमद्भा० ३। २९। १३)

† वाय्वग्रसारी तद् रूपं देहमन्यं प्रपद्यते।
तत्कर्मजं यातनार्थं न मातृपितृसम्भवम्।
तत्प्रमाणवयोऽवस्था संस्थाने प्राग्भवं यथा॥

ततो दूतो यमस्याशु पाशैर्बध्नाति दारुणैः।
दण्डप्रहारसम्भ्रान्तं कर्षते दक्षिणां दिशम्॥
(मा० पु० १०। ३४-३५)

भले कहें कोई भी ज्ञानी मुक्त भागवत योगी संत।
राग-द्वेष-अहंता रहते कभी न होगा भवका अंत॥
राग-द्वेष-मुक्त हो जाओ, कहलाओ फिर भले असंत।
हो जाओगे सहज स्वयं तुम 'चिन्मय परमानन्द' अनन्त॥

मनुष्य मरनेके बाद पुनः मनुष्य ही होता है—यह मत भ्रान्त है। वह कर्मानुसार मोक्ष या परमधामको प्राप्त हो सकता है, देवता या राक्षसयोनिमें जा सकता है, मनुष्य भी बन सकता है और पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, वृक्ष-पाषाण भी। अतएव मनुष्यको सावधानीके साथ सदा-सर्वदा ऐसे ही भजनरूप कर्म करने चाहिये, जिससे मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्‌की ही प्राप्ति हो। यही मानवका एकमात्र धर्म है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति॥
(श्रीमद्भा० १।२।६)

प्रार्थनाकी अद्भुत शक्ति

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

क्या प्रार्थना असम्भवको सम्भव बना सकती है ?

जनवरी १९६५में मेरे मस्तिष्कसे कैंसरकी गिल्टी निकालनेके लिये तीन बार गम्भीर शल्यक्रिया की गयी। जिनमेंसे मैं जीवित बच निकली। मेरे इस अनुभवकी कहानी 'दी नाइट आइ डाइड' (The Night I Died) शीर्षकके अन्तर्गत मार्च, १९६६में प्रकाशित हो चुकी है।

थोड़े दिन पूर्व डाक्टरोंको यह विश्वास हो गया था कि मैं पूर्णतः स्वस्थ हो गयी हूँ और अब पुनः खोपड़ीके उस भागको लगानेके लिये शल्यक्रिया की जा सकती है, जिसे उन्होंने पिछली शल्यक्रियाओंको ठीक करनेके लिये अपने स्थानसे हटा दिया था। मैं इस कठिन परीक्षासे बहुत घबराती थी। अस्तु, मेरे पति श्रीहग (Hugh) ने आवश्यक सामर्थ्य जुटानेके लिये प्रार्थना करनेमें मेरी सहायता की। हमने मेरे अस्पताल रहनेकी अवधिमें तीन छोटी बच्चियोंकी देख-भालका प्रबन्ध कर दिया और मैंने अपने-आपको इसके लिये तैयार कर लिया।

डाक्टरोंने चतुर्थ शल्यक्रियाको सफल घोषित कर दिया और हम घावके भरनेकी प्रतीक्षा करने लगे। परंतु किसी कारणसे मेरा शरीर प्लास्टिककी उस प्लेट (Plate) को सहन नहीं कर पा रहा था, जिसे मेरी खोपड़ीमें तारके साथ लगाया गया था। सिरमें उस स्थानपर एक तरल पदार्थ-सा इकट्ठा होने लगा और इस स्थितिके कारण मुझे भयंकर सिरदर्दका सामना करना पड़ा। मेरे सिरकी वेदनाओंका अन्त तभी हुआ, जब डाक्टरोंने एक बहुत बड़ी सुई, जिसे मैं घोड़ेवाली सुई (Horse Needle) कहती थी, उस तरल पदार्थको खींचनेके लिये उसमें घुसा दी। अब घावके टाँकोंके जल्दी ठीक न होनेके कारण एक नयी समस्या उत्पन्न हो गयी। शल्यक्रियाओंके इन विविध प्रयोगोंके कारण मेरी त्वचा बहुत ही मुलायम और जलसिक्त हो गयी थी और ठीक ही नहीं हो पाती थी।

एक शनिवारको मुझे बहुत असह्य पीड़ा होने लगी। यह सब देखकर डाक्टर बहुत चिन्तित हुए। उन्हें आशा थी कि अबतक घाव भरना आरम्भ हो गया होगा। डाक्टरने कहा—'हमें इसे कम-से-कम एक सप्ताह और देना चाहिये और तब सम्भवतः तुम्हें घर जानेकी अनुमति मिल सकेगी।' मैंने पूछा कि 'यदि उस समयतक भी टाँके न भरे और तरल पदार्थ बहता रहा तब ?' उसने उत्तर दिया कि 'उस स्थितिमें उस कष्टकारक प्लेटको हटानेके लिये पुनः शल्यक्रिया करना आवश्यक हो जायगा।'

डाक्टरके जाते ही मेरे पति आ गये और मुझे अपनी भुजाओंमें ले लिया। मैं निराश होकर रोने लगी।

मैंने रोते हुए कहा कि 'अब और शल्यक्रिया नहीं कराऊँगी।' पहले ही एक वर्षमें चार बार करा चुकी हूँ, अब उसे सहन नहीं कर पाऊँगी।'

मेरे शान्त एवं सुहृद् पतिने मुझे विश्वास और प्यारभरे शब्दोंमें ढाढस बँधाया। हम दोनोंने मिलकर भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'वह हमपर अपनी दया-दृष्टि डालें तथा अपनी करुणासे मेरा सिर ठीक कर दें।'

उस सायंकाल घर लौटनेपर मेरे पतिने हमारी छोटी बच्चियोंको अपनी बाँहोंमें लेकर उनके साथ मेरे स्वास्थ्यलाभके लिये प्रार्थना की और अपने कई मित्रोंसे फोनपर मेरे लिये प्रार्थना करनेका निवेदन किया। उन लोगोंने अपने-अपने मित्रोंको मेरे लिये प्रार्थना करनेकी प्रेरणा दी। बादमें हमें पता चला कि सैकड़ों व्यक्तियोंने उस रात्रि मेरे स्वास्थ्यके लिये प्रभुसे प्रार्थना की। एक मित्रने हवाई (Hawai) तथा दूसरेने हैफा (Haifa) स्थित मित्रोंको इसमें सम्मिलित होनेके लिये समुद्री तार (Cables) तक भेजे।

दूसरे दिन डाक्टर मेरी प्रगतिका परीक्षण करनेके लिये आया और धीरे-धीरे मेरी पट्टी खोलते समय वह मुझे आगामी आपरेशनके लिये भी तैयार कर रहा था। पट्टी खुलते ही वह आश्चर्यचकित रह गया। 'मैं इसपर विश्वास नहीं कर सकता'—उसके इन शब्दोंसे मुझे सूचना मिली कि 'कुछ तो हुआ है।'

उसने संदेहजनक दृष्टिसे मेरी ओर देखकर कहा—'तरल पदार्थ कहीं दिखायी नहीं देता। त्वचा भी पुष्ट दिखायी देती है और घाव भर चुका है। टाँके भी ठीक हैं। यह रातों-रात कैसे हो सकता है? यदि मैंने इसे अपनी आँखोंसे न देखा होता तो मैं इसपर कभी विश्वास नहीं करता।'

मेरी प्रसन्नताकी कोई सीमा न थी। मैं उसके गलेमें अपनी बाँहें डाल देना चाहती थी। मैंने जी भरकर उसको धन्यवाद दिया। उसने कहा—'मुझे धन्यवाद मत दो। प्रार्थना करनेवाले अपने मित्रोंको धन्यवाद दो। मैंने इसमें कुछ भी नहीं किया है।'

घाव पूरी तरहसे भर चुका था। उसने उसी समय वहीं टाँके काट दिये और मेरे पतिको मुझे घर ले जानेके लिये कह दिया। मेरे पतिने मेरे गलेमें यह कहते हुए अपनी बाँहें डाल दीं कि—'ईश्वर सर्वशक्तिमान् है।'

डाक्टर मुस्कराया और अपना छोटा-सा काला बैग उठाकर चलते-चलते दरवाजेकी ओर दृष्टि डालते हुए उसने कहा—'क्या आप जानते हैं कि मैंने सदा ही श्रद्धाकी शक्तिपर विश्वास किया है; परंतु इस अनुभवने निश्चित ही मेरी आस्थाको दृढ़ किया है और उसे बढ़ाया है।'

अब पुनः मेरा जीवन सामान्य हो गया है। मैं घरका सब काम करती हूँ और भोजन भी बनाती हूँ। थोड़ी घुमरी (सिरके चक्कर) या सिरकी पीड़ा उस अनुभवका स्मरण कराती रहती है।

रोज मैं इस जीवनदान देनेवाले तथा प्र सूर्यके स्वागतके लिये उठनेका आनन्द देनेवा धन्यवाद देती हूँ। अनुभवके लिपिबद्ध कर देने श्रद्धा बढ़ी तो मेरा यह प्रयास सार्थक होगा।*

स्वर्गोंसे मनुष्ययोनिमें आये हुए प्राणियोंके लक्षण

दया भूतेषु सद्वादः परलोकप्रतिक्रिया। सत्यं भूतहितार्थोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम्॥
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनं साधुसङ्गमः। सत्क्रियाभ्यसनं मैत्रीमिति बुध्येत पण्डितः॥
अन्यानि चैव सद्धर्मक्रियाभूतानि यानि च। स्वर्गच्युतानां लिङ्गानि पुरुषाणामपापिनाम्॥

(मार्कण्डेयपुराण १५। ४२-

जीवोंपर दया, अच्छी बातें करना, परलोकके लिये शुभ कर्म करना, सत्य बोलना—सत्यका आचरण करना प्राणियोंका हित हो—ऐसी वाणी बोलना, वेद स्वतः ही प्रमाण है—ऐसी निष्ठा रखना, गुरु-देवता, ऋषि, सिद्ध महात्माका सत्कार करना—उनके बताये मार्गपर चलना, साधु पुरुषोंका सङ्ग करना, सत्कर्मोंका अभ्यास करना, साथ मित्रभाव रखना तथा अन्य भी सत्-धर्म-सम्बन्धी कार्योंमें लगे रहना—यह स्वर्गसे लौटे हुए मनुष्योंकी पहचान

* लेखिका अपना नाम और पता बताना नहीं चाहतीं, इसलिये उसे नहीं दिया गया।

मृत्युके समय क्या करे ?

मृत्युके समय सबसे बड़ी सेवा है—किसी भी उपायसे मरणासन्न रोगीका मन संसारसे हटाकर भगवान्‌में लगा देना। इसके लिये—

(१) उसके पास बैठकर घरकी, संसारकी, कारबारकी, किन्हींमें राग या द्वेष हों तो उनकी, ममताके पदार्थोंकी तथा अपने दुःखकी चर्चा बिल्कुल ही न करे।

(२) जबतक चेत रहे, भगवान्‌के स्वरूपकी, लीलाकी तथा उनके तत्त्वकी बात सुनावे। श्रीमद्भगवद्गीताका (सातवें, नवें, बारहवें, चौदहवें, पंद्रहवें अध्यायका विशेष रूपसे) अर्थ सुनावे। भागवतके एकादश स्कन्ध, योगवासिष्ठका वैराग्यप्रकरण, उपनिषदोंके चुने हुए स्थलोंका अर्थ सुनावे। इनमेंसे रोगीकी रुचिका ध्यान रखकर उसीको सुनावे। नामकीर्तनमें रुचि हो तो नामकीर्तन करे या संतों-भक्तोंके पद सुनावे। जगत्‌के प्राणि-पदार्थकी, राग-द्वेष उत्पन्न करनेवाली बात, ममता-मोहको जगाने तथा बढ़ानेवाली चर्चा बिल्कुल ही भूलकर भी न करे।

(३) रोगी भगवान्‌के साकार रूपका प्रेमी हो तो उसको अपने इष्ट—भगवान् विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, गणेश—किसी भी भगवद्रूपका मनोहर चित्र सतत दिखाता रहे। निराकार-निर्गुणका उपासक हो तो उसे आत्मा या ब्रह्मके सच्चिदानन्द अद्वैत तत्त्वकी चर्चा सुनावे।

(४) उस स्थानको पवित्र धूप, धूएँ, कर्पूरसे सुगन्धित रक्खे; कर्पूर या घृतके दीपककी शीतल परमोज्ज्वल ज्योति उसे दिखावे।

(५) समर्थ हो और रुचि हो तो उसके द्वारा उसके इष्ट भगवत्स्वरूपकी मूर्तिका पूजन करवावे।

(६) कोई भी अपवित्र वस्तु या दवा उसे न दे। चिकित्सकोंकी राय हो तो भी उसे ब्रांडी (शराब), नशैली तथा जान्तव पदार्थोंसे बनी एलोपैथिक, होमियोपैथिक दवा बिल्कुल न दे। जिन आयुर्वेदिक दवाइयोंमें अपवित्र तथा जान्तव चीजें पड़ी हों, उनको भी न दे। न खानपानमें अपवित्र तामसी तथा जान्तव पदार्थ दे। रोगीकी क्षमताके अनुसार गङ्गाजलका अधिक या कम पान करावे। उसमें तुलसीके पत्ते अलग पीसकर छानकर मिला दे। यों तुलसी-मिश्रित गङ्गाजल पिलाता रहे।

(७) गलेमें रुचिके अनुसार तुलसी या रुद्राक्षकी माला पहना दे। मस्तकपर रुचिके अनुसार त्रिपुण्ड्र या ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक पवित्र चन्दनसे, गोपीचन्दन आदिसे कर दे। अपवित्र केसरका तिलक न करे।

(८) रोगीके निकट रामरक्षा या मृत्युञ्जयस्तोत्रका पाठ करे। एकदम अन्तिम समय पवित्र 'नारायण' नामकी विपुल ध्वनि करे।

(९) रोगीको कष्टका अनुभव न होता दीखे तो गङ्गाजल या शुद्ध जलसे उसे स्नान करा दे। कष्ट होता हो तो न करावे।

(१०) विशेष कष्ट न होता हो तो जमीनको धोक[illegible] उसपर गङ्गाजल (हो तो) के छींटे देकर भगवान्‌का ना[illegible] लिखकर, गङ्गाकी रज या व्रजरज हो तो डालकर चारपाई[illegible] नीचे सुला दे।

(११) मृत्युके समय तथा मृत्युके बाद [illegible] 'नारायण' नामकी या अपने इष्ट भगवन्नामकी तुमुल ध्व[illegible] करे। जबतक उसकी रथी चली न जाय, तबतक यथाश[illegible] कोई घरवाले रोवें नहीं।

(१२) उसके शवको दक्षिणकी ओर पैर करके सुल[illegible] दे। तदनन्तर शुद्ध जलसे स्नान करवाकर, नवीन धुला हु[illegible] वस्त्र पहिनाकर अपनी जातिप्रथाके अनुसार शवयात्रामें [illegible] जाय; पर पिण्डदानादिका कार्य जानकार विद्वान्‌के द्वा[illegible] अवश्य कराया जाय। श्मशानमें भी पिण्डदान तथा अग्नि[illegible] संस्कारका कार्य शास्त्रविधिके अनुसार किया जाय[illegible] रास्तेभर भगवन्नामकी ध्वनि 'रामनाम सत्य है', 'हरि बोल[illegible] 'नारायण-नारायण'की ध्वनि होती रहे। श्मशानमें [illegible] भगवच्चर्चा ही हो।

मृत्यु, परलोक और और्ध्वदैहिक कृत्य

(लेखक—शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

वेदका वेदत्व केवल इस विशेषतापर निर्भर है कि जो रहस्य प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान आदि किसी भी प्रमाणद्वारा वेद्य न हो, उस रहस्यको जो प्रकट करे, तादृश प्रमाणको 'वेद' कहते हैं। इसलिये आस्तिक समाजकी यह गर्वोक्ति शास्त्रसिद्ध है कि 'शास्त्रप्रमाणिका वयम्' अर्थात् 'हम शब्द (वेद) को प्रमाण माननेवाले—आस्तिक हैं।'

यह बात युक्तिसङ्गत भी है। बहुत-से ऐसे विषय हैं, जिनतक मानवकी पहुँच नहीं हो सकती है। जैसे उदाहरणार्थ 'मृत्युके बाद क्या गति होगी ?'—यह रहस्य मानव-बुद्धिका विषय नहीं। जो मर जाते हैं, वे लौटकर कुछ कहने नहीं आते और जिन्हें मरना है वे उसका स्वयं क्या अनुमान कर सकते हैं ? इसी प्रकार 'परलोक क्या है ? वह है भी या नहीं ? है तो तदर्थ हमारा अपना क्या कर्तव्य है ? परलोकगत प्राणीकी उसके जीवनसम्बन्धी भी कुछ सहायता हम कर सकते हैं क्या ?' इत्यादि अनेक प्रश्न हैं, जिनका उत्तर एकमात्र वेद ही दे सकता है। वस्तुतः वेदका आरम्भ वहाँसे होता है, जहाँ मानव-बुद्धिकी दौड़ समाप्त हो जाती है। इसलिये मृत्यु क्या है, परलोक क्या है, मृत्युके अनन्तर क्या-क्या ऐसे अनुष्ठान हैं, जिनके करनेसे परलोकगत आत्माकी सद्गति हो सकती है—इत्यादि परोक्ष विषयोंपर ही इस लेखमें वेद-शास्त्रके प्रमाणानुसार संक्षिप्त विचार किया जायगा।

मृत्यु क्या है ?

हमारा यह मानव-शरीर पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश), पञ्चकर्मेन्द्रिय (हस्त, चरण, गुदा, लिङ्ग और जिह्वा), पञ्चज्ञानेन्द्रिय (श्रोत्र, चक्षु, रसना, त्वक् और घ्राण), पञ्चप्राण (प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान), अन्तःकरण-चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) तथा अविद्या, काम और कर्म—इन २७ तत्त्वोंका संघात है, जिसे 'स्थूलशरीर' कहते हैं।

स्थूल पञ्चमहाभूत और स्थूल पञ्चकर्मेन्द्रिय—इन दस तत्त्वोंके अतिरिक्त जो शेष सत्रह तत्त्व बचते हैं, उतने संघातका नाम 'सूक्ष्मशरीर' है। मृत्युका अर्थ है—'स्थूल पञ्चमहाभूत और स्थूल पञ्चकर्मेन्द्रियोंका छूट जाना।' अतः मृत्युमें प्राणीका सर्वनाश नहीं हो जाता; किंतु केवल पूर्वोक्त दस तत्त्वोंकी निवृत्तिमात्र हो जाती है। शेष सत्रह तत्त्वोंका सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर मुक्तिपर्यन्त तथैव विद्यमान रहेंगे।

मृत्युके अनन्तर क्या गति होती है ?

यह गति सबके लिये समान नहीं है। अपने-अपने कर्मानुसार प्राप्त होती है। ज्ञानाग्निमें जिनके शुभाशुभ कर्म दग्ध हो जाते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं—'न स पुनरावर्तते।' वे फिर जन्म-मृत्युके चक्रमें नहीं पड़ते। जिनके उग्र सकाम शुभ कर्म हैं, वे स्वर्ग आदि लोकोंमें अपने शुभ कर्मोंका फल उपभोग करते हैं। जिनके उग्र पापकर्म हैं, वे नरकमें सड़ते हैं। परंतु जब भोगते-भोगते शुभ किंवा अशुभ कर्म ऐसे स्तरके अवशिष्ट रह जाते हैं, जो मृत्युलोकमें ही भोगे जा सकते हैं, तब स्वर्गीय प्राणी शुचि-श्रीमानोंके या योगियोंके कुलमें उत्पन्न होकर पुण्य-फल प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार नारकीय प्राणी सूकर, कूकर, कुष्ठी, निर्धनके रूपमें जन्म लेकर अपने शेष पापकर्मोंका उपभोग करते हैं।

चन्द्र-कक्षाके उपरिभागमें पितृलोक है। सूर्य-कक्षामें द्युः-स्वर्गलोक है और शनिकी अन्धकारमय कक्षामें अट्ठाईस नरक-लोकोंकी अवस्थिति है।

मृत्युके अनन्तर सूक्ष्मशरीरधारी जीवको स्वर्गोपभोगके लिये 'दिव्य शरीर'की प्राप्ति होती है, नरकोपभोगके लिये 'यातना-शरीर' प्राप्त होता है, सर्वाधम पापियोंको एक ही दिनमें जन्म और मरणका कष्ट भोगनेवाली कीट-पतङ्गादिकी 'जायस्व म्रियस्व'-गति मिलती है। जिनके न अपने शुभ कर्म हैं, न अशुभ उग्र कर्म हैं और न उनके सम्बन्धी ही और्ध्वदैहिक अनुष्ठानोंद्वारा उनकी कुछ सहायता करते हैं, वे लोकान्तरमें न जाकर 'वायुभूतो दिगम्बरः।' रूपमें मृत्युलोकमें ही भूत-प्रेत आदि योनियोंमें परिभ्रमण करते हैं। इस प्रकार अपने-अपने कर्मोंके तारतम्यसे विभिन्न गतियाँ होती हैं।

और्ध्वदैहिक कृत्य

वेदका तीन चतुर्थांश भाग केवल परलोकविषयक

कुछ ऐसी भी होती हैं, जिनको हरे खेत खानेकी बुरी आदत होती है। गोपाल उनके गलेमें घंटी बाँधता है, मोटा लक्कड़ बाँधता है; परंतु फिर भी वे काँटोंकी ऊँची बाड़ें लाँघकर हरा खेत खाये बिना नहीं मानती हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी दो प्रकारके स्वभावके हैं—एक तृप्त, दूसरे अतृप्त। तृप्त वह है, जोअपने घरका चनाचूरी—जो भी भोजन मिलता है—उसे खाकर ही संतुष्ट रहता है। उसे अपने पड़ोसमें रहते धनीके उन छत्तीस पदार्थोंकी कभी लालसा नहीं होती। परंतु ऐसे भी जंगी जीव हैं, जो धनी-मानी हैं, दिनभर नानाविध पदार्थ चरते रहते हैं; परंतु उनकी भोगोंसे कभी तृप्ति नहीं होती। रातको सोते-सोते भी उनको खाने-पीनेके ही स्वप्न आते हैं। बस, समझ लीजिये कि जो प्राणी तृप्तकोटि-के हैं, वे ये हैं, जिनके कि पूर्वजन्मके सम्बन्धी श्राद्ध-कृत्य करते हैं, जिसके फलस्वरूप उनको यह तृप्ति प्राप्त है। दूसरी कोटिके अतृप्त व्यक्ति वे हैं, जिनके पूर्वजन्मके नास्तिक पुत्र श्राद्धादि नहीं करते। वे लालसाके गर्तमें पड़े भटकते हैं।

पितरोंको दिखा दो तो हम मानें ?

यह नास्तिकोंका अन्तिम ब्रह्मास्त्र है। परंतु इन सज्जनों- यह विदित नहीं कि स्थूलशरीर ही नेत्रका विषय है। म आत्मा चर्मचक्षुओंका विषय नहीं। मरते हुए प्राणीका जीव सबके देखते-देखते निकल जाता है, परंतु वह भी दीख नहीं पड़ता। अतः जो जीव शरीरसे निकल वही श्राद्धमें आवाहन करनेपर आता है। जब वह हुआ नहीं दीख पड़ा, तब वह आता हुआ कैसे दी जातेको नास्तिक दिखा दें तो हम आतेको दिखा योगी और दिव्य चक्षुवालोंको ही पितृदर्शन हो भगवान् रामके वनमें श्राद्ध करते समय सीता माताने निम ब्राह्मणोंमें दशरथजीके दर्शन किये थे। भीष्मजीने श्राद्ध अपने पिता शान्तनुके हाथके दर्शन किये थे। यह इति पुराण ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है। वस्तुतः मृत व्यक्तिके आत्माको श पहुँचानेकी इच्छा एक स्वाभाविक मानव-भावना है। मु मान कब्रोंपर दीपक जलाते हैं, फातिहा पढ़ते हैं, ताजि निकालते हैं। रोमन कैथलिक ईसाई कब्रोंपर पुष्पचादि लगाते हैं, दूधकी बोतलें रखते हैं, क्रॉसका चिह्न खड़ा क हैं। आर्यसमाजी अजमेरमें स्वामी दयानन्दजीके चितास्थान अखण्ड अग्नि जला रहे हैं। अन्यान्य सभ्य लोग भी स जुटाकर एक मिनट सब मौन खड़े होकर खास प्रार्थन करते हैं; श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं। ये सब विभि क्रियाएँ श्राद्धकी प्रतिनिधिभूत क्रियाएँ ही हैं। यह विषय इतना विस्तृत और परिश्रमगम्य है कि जिसे एक लेख क्या किसी एक ग्रन्थमें भी पूरा-का-पूरा नहीं लिखा जा सकता।*

नरकोंसे मनुष्ययोनिमें आये हुए प्राणियोंके लक्षण

परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्मावघट्टनम्। नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम्॥
परस्वापहरणाशौचं देवतानां च कुत्सना। निकृत्या वञ्चनं नृणां कार्पण्यं च नृणां वधः॥
यानि च प्रतिषिद्धानि तत्प्रवृत्तिश्च संतता। उपलक्ष्याणि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु॥

(मार्कण्डेयपुराण १५। ३९—४१)

परनिन्दा करना, कृतघ्नता (उपकार करनेवालेका उपकार न मानना), दूसरेके गुप्त भेदको खोलना, निष्ठुरता, ता, परस्त्री या परपुरुषसेवन, दूसरेके हकका हरण करना, अपवित्र रहना, देवताओंकी निन्दा करना, छल-कपटसे को ठगना, कंजूसी करना, मनुष्योंकी हत्या करना इत्यादि निषिद्ध कर्मोंमें निरन्तर लगे रहना—नरक भोगकर लौटे नुष्योंकी पहचान है।

* जिज्ञासुओंको अधिक जाननेकी इच्छा हो तो वे लेखक महोदयके 'क्यों' नामक सहस्रपृष्ठात्मक ग्रन्थके उत्तरार्धमें ते हैं। यह ग्रन्थ १०३ ए., कमलानगर, दिल्लीमें मिल सकता है।

महामृत्युञ्जयका चमत्कार

(लेखक—श्रीवेंकटलालजी ओझा)

मेरे जीवनमें एक समय ऐसा आया, जब मेरे सभी कार्य उलटे हो रहे थे । चारों ओर परेशानियाँ-ही-परेशानियाँ दिखायी दे रही थीं । अच्छे कार्यका भी परिणाम बुरा ही निकल रहा था । पूज्य पिताजीके आदेशसे मैं जन्मपत्रिका लेकर दैवज्ञके पास गया । उन्होंने पत्रिका देखकर कौनसी दशा चल रही है, यह कुछ नहीं कहा । कहा बस इतना ही, कि 'यदि अपना कल्याण चाहते हो तो स्वयं 'महामृत्युञ्जय'का जप करो । तुम ब्राह्मण हो । दूसरेसे जप करानेसे तुम्हें फल नहीं मिलेगा । यदि इसके लिये तैयार हो तो मैं जप बतलाता हूँ ।' अतः मैं इसके लिये तैयार हो गया । पण्डितजीके आदेशसे मैंने सं० १९९७ श्रावण शुक्ल पूर्णिमाके शुभ मुहूर्तसे महामृत्युञ्जयका जप आरम्भ किया । तत्काल फल मिलने लगा । कई उलझे हुए कार्य अनायास ही सुलझ गये । बिगड़े काम बन गये । जप बराबर चलता रहा । सं० २००१ माघ शुक्ल ११ को अचानक जब मैं एक यन्त्रको खोलकर, वापस यथा-स्थान बैठाकर उसका परीक्षण कर रहा था । दस अश्वबलसे चलनेवाला यन्त्र एकाएक रुक गया जब कि बिजली चालू ही थी । यन्त्र रुक जानेपर पता चला कि मेरा हाथ उसमें आ गया है । दूसरे आदमीने बिजली बंद की । यन्त्रको हाथोंसे उलटा घुमाकर हाथ निकाला गया । हथेली और अँगुलियाँ तो बच गयीं, पर अंगूठा मूलीकी तरह कटकर पतली चमड़ीके साथ लटक रहा था । मुझे किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ, न दर्द ही । पर एक व्यक्ति इसे देखकर मूर्च्छित हो गया । अस्पताल गया । पट्टी बँधाकर घर आ गया, तब कहीं दर्द चालू हुआ ।

जैसे ही पण्डितजीको समाचार मिला, उन्होंने यही कहा 'अच्छा हुआ' । तब कहीं उन्होंने आकर पूज्य पिताजीको बतलाया कि 'प्राणघातक मारकेश था, जो अब टल गया है । शूलीकी पीड़ा सुईमें बदल गयी ।' चार-पाँच मास मैं बहुत बीमार रहा । दुआ और दवा दोनों चलते रहे । जो कोई मिलने आता, यही कहता—'सीधे हाथका अंगूठा कटा है । अब लिखना कैसे होगा ?' मैं कोई उत्तर न देकर मौन रह जाता; क्योंकि अस्पताल जानेके पहले मैंने अपने सीधे हाथसे हस्ताक्षर करके देख लिये थे । अतः हितैषियोंके निराशावादी कथनका मुझपर कोई प्रभाव नहीं हुआ । मेरा आत्मबल अक्षुण्ण रहा । शारीरिक दृष्टिसे मैं बीमार था, पर मेरा मानसिक बल अक्षुण्ण बना रहा ।

डाक्टरद्वारा गलत ढंगसे पट्टी बँधनेसे मेरी अँगुलियाँ पहले तो सूजीं और बादमें पतली पड़ गयीं । पर सद्भाग्यसे जर्मनीसे लौटे डा० चम्पत बसु मिल गये । उनकी चिकित्सासे हाथ बच गया । अन्यथा रक्तसंचार न होनेसे हाथ सूख जाता ।

भगवान् महामृत्युञ्जयकी जप-विधि बड़ी सरल है । जो इस प्रकार है—१. संकल्प, २. श्रीगायत्रीकी एक माला, ३. महामृत्युञ्जयकी पाँच माला और ४. श्रीगायत्रीकी एक माला ।

महामृत्युञ्जय जप—

अथ पदन्यासः—

ॐ त्र्यम्बकं शिरसि । यजामहे भ्रुवोः । सुगन्धिम् दृशोः । पुष्टिवर्द्धनं मुखे । उर्वारुकं कण्ठे । इव हृदये । बन्धनात् उदरे । मृत्योः गुह्ये । मुक्षीय ऊर्वोः । मां जान्वोः । अमृतात् पादयोः । इति पदन्यासः ।

अथ मृत्युञ्जयध्यानम्—

ॐ हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम् ।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटाभातं त्रिनेत्रं भजे ॥
मृत्युञ्जय महादेव त्राहि मां शरणागतम् ।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः ॥

अथ बृहन्मन्त्रकी पाँच माला जप—

ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं
यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ।
भूर्भुवः स्वरों जूं सः ह्रौं ॐ ।

मैं तो उपर्युक्त मन्त्रका जप आज भी कर रहा हूँ । पर कुछ विज्ञजन निम्नलिखित छोटे मन्त्रके लिये भी कहते हैं—

ॐ जूं सः सः जूं ॐ ।

इस प्रकार महामृत्युञ्जयके दैविक चमत्कारसे उस दिन

यन्त्र स्वयं ही रुक गया और मेरा हाथ बच गया। अन्यथा, सीधा हाथ कट जानेसे मैं बेबस हो जाता। मेरा पढ़ना-लिखना ही नहीं छूट जाता, मेरा जीवन भी दूभर हो जाता, जो मृत्युसे भी अधिक भयंकर और कष्टदायक था। हाथके साथ ही कोई नाड़ी कट जाती तो मृत्यु तो निश्चित ही थी। मेरा तो पुनर्जन्म ही भगवान् मृत्युञ्जयकी कृपासे हुआ।

अध्यात्म-लोकका विज्ञानात्मक आलोक

(लेखक—श्रीयुगलसिंहजी खीची, एम्० ए०, बार-एट-ला, विद्यावारिधि)

सन् १९४३में जब द्वितीय महायुद्धकी ज्वाला समस्त संसारको त्रस्त कर रही थी, मुझे जयपुरके एक होटलमें अमेरिकनोंके साथ ठहरनेका सुयोग प्राप्त हुआ। वह दल जापानके विरुद्ध इस ज्वालामें कूदने जा रहा था। उसका नेता अमेरिकाके किसी विश्वविद्यालयमें भौतिक शास्त्रका प्राध्यापक था। हम दोनोंके कमरे निकट होनेके कारण परस्पर सम्पर्क स्थापित हो गया और विविध विषयोंपर वार्तालापकी नौबत शामकी चायपर आ गयी। आत्माके बारेमें चर्चा छिड़नेपर वे कहने लगे कि 'जिसे आत्मा माना जाता है, वह हमारे शरीरके परमाणुओंके संघर्षसे उत्पन्न हुई चेतना, भौतिक विज्ञानके अनुसार मानी जाती है और देहका नाश होनेपर वह नष्ट हो जाती है।' मुझसे प्रश्न करनेपर मैंने कहा कि 'भारतीय संस्कृतिके मूलमें चार मुख्य सिद्धान्त हैं—(१) आत्मा, (२) कर्मफल, (३) परलोक और (४) पुनर्जन्म।' सार यह है कि जीवात्मा अपने कर्मके अनुसार परलोकमें जाता है या भूतलपर फिर जन्म लेता है।

पाश्चात्त्य देशोंमें अधिकांश विज्ञानवेत्ताओंके कोशमें आत्माके लिये कोई स्थान नहीं है। हमारे यहाँ भी इस प्रकारके अनेक विद्वान् हैं, जो आत्मा, परमात्मा, परलोक और पुनर्जन्मको अन्धविश्वासकी बकवास बतलाते हैं। ता० २२। १०। १९६८ के 'इण्डियन ऐक्सप्रेस' नामक दैनिक पत्रमें 'पुनर्जन्म और उसकी स्मृति'के सम्बन्धमें कतिपय भारतीय विज्ञान-विशेषज्ञोंके तत्सम्बन्धी विचार लिखे गये हैं। एक प्रोफेसरने फरमाया कि 'हमारे यहाँके नितान्त अनपढ़ ग्रामीणोंमें पुनर्जन्मके वृत्तान्त मिले हैं

अमर आत्मा विद्यमान है और प्रकृतिके सारे पदार्थ अचेतन हैं। आध्यात्मिक प्रश्नोंका विचार वेदान्त करता है और विज्ञानका क्षेत्र भौतिक तत्त्व है। मनीषी बेकनके शब्दोंमें 'हम प्रकृतिके समक्ष प्रश्न प्रस्तुत करते हैं और उससे उपयुक्त उत्तर प्राप्त करते हैं।' वैज्ञानिक परिपाटीका मूल सिद्धान्त यह है कि किसी घटनाकी खोज पूर्वाग्रहरहित होकर निरीक्षण या परीक्षणद्वारा की जाय। निरीक्षणमें किसी घटनाका अवलोकन इन्द्रियोंद्वारा किया जाता है। उदाहरणके लिये सूर्य या चन्द्रके ग्र[illegible] को हम केवल देख सकते हैं। चन्द्रमा और पृथ्[illegible] गतिका ज्ञान प्राप्त होनेके कारण हम गणितशास्त्र[illegible] अगले ग्रहणका निश्चित करना बतला सकते हैं। परी[illegible] प्रयोगात्मक है और घटनाएँ हमारे नियन्त्रणमें घटित [illegible] जाती हैं। उदाहरणके लिये हम प्रयोगद्वारा यह [illegible] सकते हैं कि वस्तुका आयतन गरम करनेपर बढ़ता और ठंड पाकर सिकुड़ जाता है। किसी धातुका गो[illegible] जो लोहेके छलनेमेंसे होकर निकल जाता है, पर [illegible] गरम किये जानेपर उसी छलनेमेंसे नहीं गुजर सकता जब ठंडा पानी डालनेपर वह शीतल हो जाता है, त[illegible] छलनेमेंसे होकर निकल जाता है। अब विचारणी[illegible] यह है कि आध्यात्मिक समस्याओंके सुलझानेमें वैज्ञानि[illegible] प्रणाली कहाँतक सहायक हो सकती है? यह निस्संदेह है कि प्राकृतिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रोंमें अवलोकनका प्रयोग होता है। जैसे कर्मोंका फल और पूर्वजन्मकी स्मृति अवलोकन और अनुभवके अन्तर्गत हैं।

आध्यात्मिक रहस्योंको जाननेके लिये पदे-पदे बाधाओं

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥
(५।१२)

अर्थात् 'जो पदार्थ इन्द्रियातीत होनेके कारण चिन्तन नहीं किये जा सकते, उनका निश्चय केवल तर्कसे नहीं हो सकता। जो मूल प्रकृतिसे परे हैं वे पदार्थ अचिन्त्य कहलाते हैं।' इस भावको शेक्सपीयरने निज नाटक 'हेमलेट'में इस प्रकार व्यक्त किया है—

"There are more things in heaven and earth, Horatio, than are dreamt of in your philosophy."

अर्थात् 'स्वर्गमें और पृथ्वीपर ऐसे अनेक पदार्थ हैं, जिनके सम्बन्धमें दर्शन-शास्त्र कल्पना तक नहीं करता।' ऐसी हालतमें प्रश्न उठता है कि 'जो पदार्थ निरीक्षण, परीक्षण या चिन्तनकी गतिसे परे हैं, उनकी जानकारी कैसे की जाय?' प्रश्नका उत्तर यह है कि वे स्वयंवेद्य या अनुभवगम्य हैं। भर्तृहरिके शब्दोंमें **स्वानुभूत्येकमानाय—अर्थात्** उनके अस्तित्वका एकमात्र प्रमाण निज अनुभव है।' अनुभव पुरुषोंके अन्तःकरणमें होता है। अतएव पवित्र अन्तःकरणवाले महात्माओंका अनुमान ही प्रमाण माना गया है। आप्तपुरुषका वचन प्रमाणोंके अन्तर्गत है। प्लेटोने अपने ग्रन्थ 'रिपब्लिक' (Republic) में ऐसे पुरुषको 'आप्त' (prudent) कहा है और उसीके निर्णयको अन्तिम माना है। वही महाजन कहलाने योग्य है और उसका आचरण दूसरोंके लिये पथ-प्रदर्शक है। जैसा कि कहा गया है—'**महाजनो येन गतः स पन्थाः**।' सच्चा मार्ग वही है, जिसपर महाजन चलता है। मनीषी ए. हक्स्लेने अपनी पुस्तक (Perennial Philosophy) 'शाश्वत दर्शनशास्त्र'में संतों और महात्माओंके विचारोंको ज्ञानका मूलाधार बतलाया है।

वृष्टि दो प्रकारकी है—जड या अचेतन और चेतन। हमारे सृष्टि-विज्ञानके अनुसार चेतन सृष्टिके चार विभाग इस तरह हैं—(१) जरायुज (वह जीव, जो आवरणमें लिपटा उत्पन्न हो), (२) अण्डज (अंडेसे पैदा होनेवाले जीव), (३) स्वेदज (पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले जीव), (४) उद्भिज्ज (जो भूमि फोड़कर निकलते हैं, जैसे पेड़-पौधे)। श्री. जे. सी. बोसने अपने वैज्ञानिक यन्त्रोंसे यह सिद्ध कर दिखाया कि वनस्पतिमें चेतना है। जड-जगत् पञ्चभूतात्मक है और आकाशादि किसी भौतिक तत्त्वमें चेतना नहीं है। आधिभौतिक विज्ञानने उन्नति करते-करते ऐसे यन्त्रोंका आविष्कार कर दिया है, जो गणना, अनुवाद, संदेश इत्यादि कठिन कार्य सफलतापूर्वक कर रहे हैं। वैज्ञानिक अणु-बम-से लाखों प्राणियोंकी हत्या कर सकता है, पर एक अणु-में भी चेतनता उत्पन्न नहीं कर सकता। अमेरिकाके विश्व-विख्यात वैज्ञानिक श्री जे. बी. राइन अपने ग्रन्थ (The Reach of the Mind) के प्रारम्भमें लिखते हैं—

"Science cannot explain what the human mind really is and how it works with the brain. No one even pretends to know how consciousness is produced."

'विज्ञान यह नहीं बतला सकता कि मानव-मन वास्तवमें क्या है और वह मस्तिष्कके साथ कैसे काम करता है। कोई वैज्ञानिक यह जाननेका दावा तक नहीं कर सकता कि चेतना कैसे पैदा होती है।'

कहा जाता है कि शरीरका चेतन होना प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। शंकरने ब्रह्मसूत्रोंपर निज शारीरक-भाष्यमें देहात्मवादका पूरी तरह खण्डन किया है। वे चेतनाका कारण आत्मा मानते हैं। धर्मी और उसका धर्म अभिन्न है। अग्नि धर्मी और जलाना या तपाना उसका धर्म है। जहाँ आग है, वहाँ यह गुण देखा जायगा। यदि शरीरका धर्म चेतना होती तो वह सदा शरीरके साथ रहती। पर मरनेपर शरीर पड़ा रहता है और उसमें चेतनाका अभाव हो जाता है। योगवासिष्ठमें देहके चेतनवत् प्रतीत होनेका कारण इस प्रकार बतलाया गया है—

अग्निसंगाद् यथा लोहमग्नित्वमुपगच्छति।
आत्मसङ्गात्तथा गच्छत्यात्मतामिन्द्रियादिकम्॥

'जैसे लोहा अग्निके सङ्गसे तपकर अग्निमय यानी प्रकाशवान् प्रतीत होता है, वैसे ही देह और इन्द्रियाँ इत्यादि आत्माके संसर्गसे आत्माके ही समान चेतन दीख पड़ती हैं।' परम योगी शंकरने प्रयोगात्मक पद्धतिसे यह प्रमाणित कर दिया कि 'जब उनके आत्माने परकायाप्रवेश किया तो उनका शरीर शवमात्र रह गया और जब वे फिर अपने देहमें आ गये तो वह चेतन हो गया।' साप्ताहिक हिंदुस्तानके १७-५-१९५९के अङ्कमें भारतीय सेनाके अवसरप्राप्त अंग्रेज अफसर श्री एफ० पी० फैरकका

र लेता हुआ नयी देहमें जाता है।' यही बात छठे यायमें कही गयी है कि 'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते दैहिकम्।' (६ । ४३) अर्थात् जब पुरुष मतिमान् गेयोंके कुलमें जन्म लेता है तो पहले देहमें प्राप्त किये ए बुद्धिके संस्कारोंका उसे अनायास ही लाभ मिलता है। प्रकार सिद्धि प्राप्त करनेमें उसका प्रयास सरल और हज हो जाता है।

शास्त्रोंमें पूर्वजन्मकी स्मृतिको 'जाति-स्मर' या 'जाति-ान' कहा गया है। ऐतरेयोपनिषद् (२ । ५) में और हदारण्यक (१ । ४ । १०) में वामदेवऋषिको पूर्व-न्मोंकी स्मृतिका उल्लेख है। योगदर्शनके सूत्र (३ । १८) संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्।' पर व्यास-भाष्यमें योगीश्वर जैगीषव्यको अनेक जन्मान्तरोंकी स्मृति होनी बतलायी गयी है। बुद्ध भगवान्‌की जातक कथाओंमें उनके पूर्वजन्मोंकी स्मृतिका विशद वर्णन है। भारतमें परामनोविज्ञानसम्बन्धी संस्थाओंने ऐसी अनेक घटनाओंकी खोज की है, जिनमें पूर्वजन्मोंकी स्मृति सच्ची साबित हुई है। इन घटनाओंसे यह प्रमाणित होता है कि अनेक पूर्वजन्मोंकी स्मृति धारण करनेवाला वही जीवात्मा सतत विद्यमान रहता है। इसी सिद्धान्तका वेदान्तदर्शनके सूत्र 'ज्ञोऽत एव।' (२ । ३ । १८) में अर्थात् 'जीवात्मा जन्म-मरणसे रहित है, इसलिये वह पूर्वजन्मोंको जानता है'—प्रतिपादन किया गया है। यह अनुभवसिद्ध है कि बालकपन, जवानी और बुढ़ापेमें हमारे शरीरकी अवस्थाएँ बदलनेपर भी प्रत्येक पुरुषको लड़कपनकी कई बातें याद रहती हैं; क्योंकि वह (जीवात्मा) नहीं बदलता। शरीर शब्दकी (शृ+ईरन्) व्युत्पत्ति बतलाती है कि वह क्षय होता जाता है और शरीर-विज्ञानके अनुसार जब धातुओंका नवीनीकरण क्षतिकी गतिसे पिछड़ने लगता है, तब बुढ़ापा और निर्बलताका आरम्भ होने लगता है। जिस प्रकार किसी कार्यालयमें पुराने कर्मचारियोंके अवसरप्राप्त होनेपर नये नौकर उनकी जगहोंपर आते रहते हैं, उसी प्रकार हमारी देहमें भी उपर्युक्त क्रम चलता रहता है।

हमारे सामने अब यह प्रश्न आता है कि पूर्वजन्मकी स्मृतिका आश्रय कौन है? कठोपनिषद्‌के श्लोक 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।' (१ । ३ । ४) अर्थात् 'तत्त्वज्ञानी जीवात्माको आत्मा और सूक्ष्मशरीरसे युक्त मानते हैं।' आत्मा निर्विकार होनेके कारण संस्कारोंके विकारोंसे रहित है जैसा कि गीतामें कहा है—'सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।' (१३ । ३२) अर्थात् 'जिस प्रकार आकाश लिपायमान नहीं होता है, उसी प्रकार देहमें सर्वत्र स्थित आत्मा विकारोंसे निर्लिप्त रहता है।' जैसे कागजके दो पृष्ठ होते हैं—अगला और पिछला, वैसे ही जीवात्माका अग्रिम आत्मा है और पीछे सूक्ष्मशरीर है। गीताके अध्याय ७ श्लोक ४-५ के अनुसार सूक्ष्मशरीर परमात्माकी अपरा प्रकृति और जीवरूप परा प्रकृति है। अध्याय १५ श्लोक ७ में जीवात्माको परमात्माका ही अंश बतलाया गया है, अतएव वह भी दो प्रकृतिवाला है। वेदान्तदर्शनके सूत्र 'तस्य च नित्यत्वात्।' में जीवात्माको नित्य माना गया है। गीताके अध्याय १३ में पुरुष और प्रकृति दोनोंको 'अनादि' कहा है। इसी अपरा प्रकृतिके दो भाग हैं—स्थूलशरीर और सूक्ष्म-शरीर। स्थूलशरीरके मरनेपर—परित्याग करनेपर जीवात्मा-का सम्बन्ध सूक्ष्मशरीरसे बना रहता है और उसीमें पूर्व-जन्मोंकी स्मृतिका निवास है। सूक्ष्मदेह प्रकृतिजन्य है, अतएव प्रकृतिके स्वरूपका आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक पहलुओंसे विवेचन करना है।

सांख्यदर्शनके अनुसार मुख्य तत्त्व दो हैं—चित् या पुरुष और अचित् या प्रकृति। इन दोनोंके सम्पर्कसे सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन प्रकृतिके गुण माने गये हैं। अतः वह त्रिगुणात्मिका कहलाती है। यह मूलप्रकृति अव्यक्त है और सूक्ष्मशरीरके बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ इत्यादि प्रकृतिसे ही उत्पन्न होते हैं। अन्तः-करण और भौतिक पदार्थ सजातीय होनेके कारण एक दूसरेको प्रभावित करते हैं। कहा भी है—'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः।' आहार शुद्ध हो तो अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। इसीलिये गीतामें 'आहाराः सात्त्विकप्रियाः।' (१७ । ८) का उल्लेख है। तामसप्रिय भोजनके कारण हमारा देश अधोगतिको प्राप्त हो रहा है। सूक्ष्मशरीरका प्रत्येक तत्त्व अगोचर होता है और अनुमान ही उसका प्रमाण है। उदाहरणके लिये प्रेम, दया इत्यादि अन्तःकरणके धर्म या गुण हैं। बाहरी व्यवहारसे उनके अस्तित्वका अनुमान होता है। इस प्रकारकी सात्त्विक चेष्टाएँ लक्षणोंसे जानी जाती हैं। बुद्धिको 'परेङ्गितज्ञानफला' कहा है। अर्थात् 'दूसरेकी चित्त-वृत्तिका ज्ञान उसकी चेष्टाओंसे बुद्धि कर लेती है।' सूक्ष्म-देहके आकारके बारेमें श्वेताश्वतरोपनिषद्‌में कहा गया है—

'वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।' (५-९) अर्थात् 'वह बालके नोकके दस हजार भाग करनेपर एक भाग-जितना सूक्ष्म है।' स्थूलशरीरसे वियोग होनेपर जीवात्मा इसी लिङ्गदेहसे युक्त रहता है और वह योगबलसे परकायामें प्रवेश कर सकता है। वह आत्मबलसे पूर्व स्थूलशरीरमें प्रकट हो जाता है। वाल्मीकिरामायणके युद्धकाण्ड, अध्याय ११९ में यह वर्णन है कि 'सीताजीकी अग्निपरीक्षाके पश्चात् इन्द्रलोकसे दशरथजी विमानद्वारा आये और उन्होंने रामको गोदमें लिया।' महाभारतमें भी उल्लेख है कि 'दिवंगत परीक्षित् अपने प्रिय पुत्र जनमेजयसे मिलने पूर्वदेह धारणकर आये थे।' जीवात्मा प्रेतयोनिको प्राप्त करनेपर सूक्ष्मशरीर धारण करता है, पर वह स्थूलदेहमें भी प्रकट हो सकता है।

इस जन्म और पूर्वजन्मोंकी स्मृतियोंका सम्भार जिस प्रकृतिसे उत्पन्न सूक्ष्मशरीरमें समाया हुआ है, उसके सम्बन्धमें आधिभौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे विचार करना है। आधुनिक अनुसंधानोंके अनुसार इस भूतलपर जो प्राकृतिक तत्त्व पाये जाते हैं, उनकी संख्या १०३ है और उनके दो भाग हैं। यथा (१) धातु—लोहा, सोना, चाँदी इत्यादि और (२) अधातु—ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन इत्यादि। 'तत्त्व' वह पदार्थ है जिसकी स्वतन्त्र इकाई (unit) है। प्रत्येक तत्त्व कणोंका समूह है। प्रातः-कालमें सूर्यकी किरणें आपके कमरेमें प्रवेश करनेपर अनेक कण ऊपरको उठते हुए दिखायी देंगे। यदि हम सोनेके छोटे-से टुकड़ेको तोड़ते चले जायँ तो ऐसी सीमा आ जायगी जब हम अन्तिम कणको और अधिक छोटे कणोंमें नहीं तोड़ सकते। वास्तवमें भौतिक रीतियोंद्वारा इस अन्तिम सीमातक नहीं पहुँचा जा सकता; केवल ऐसा अनुमान किया जाता है। अनुमानको ही प्रमाण माननेका एकमात्र कारण यह है कि वह अन्तिम कण इतना सूक्ष्म होगा कि उसे न तो छू सकते हैं, न तोड़ सकते हैं और न किसी यन्त्रद्वारा देख सकते हैं। तत्त्वके ऐसे सूक्ष्म कणको 'परमाणु' (Atom) जीवात्माका लिङ्ग या सूक्ष्मदेह "अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः।" (श्वे० ५-८) है।

भौतिक विज्ञानकी आधुनिक प्रगतिने यह सिद्ध कर दिया है कि परमाणुको इलेक्ट्रॉन (Electron), प्रोटॉन (Proton) और न्यूट्रॉन (Neutron) में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार परमाणुके इन तीन सूक्ष्म कणोंसे समस्त सृष्टिकी रचना है। सहस्रों वर्ष पहले कपिल मुनिने प्रकृतिको त्रिगुणात्मिका बतलाया और सांख्यदर्शनके सत्त्व, रज और तम गुणोंकी परमाणुके कणोंसे समानता है। कणाद मुनिने संसारमें सबसे प्रथम परमाणुको द्रव्यका अन्तिम रूप वैशेषिकदर्शनमें कहा है और उसे नित्य माना है। परमाणुकी रचनाके आधारपर ऐटम-बमकी विनाशकारी शक्तिका आविर्भाव हुआ। सूक्ष्मशरीरमें निहित स्मृतिके सम्बन्धमें कनाडाके प्रसिद्ध स्नायु-सर्जन डा० पेनफील्डके प्रयोगोंका विचित्र वर्णन अंग्रेजी मासिकपत्र 'रीडर्स डाइजेस्ट' सन् १९५८ के सितम्बर अङ्कमें प्रकाशित हुआ है। 'भौतिक विज्ञानके अनुसार मानव-मस्तिष्कमें कोशों-(Cells) की संख्या दस अरब आँकी गयी है। सूक्ष्मशरीर, जिसमें स्मृति-संचय है, मस्तिष्कके अन्तर्गत है। प्रत्येक कोशमें परमाणुकी रचनाके अनुसार विद्युत्-कण विद्यमान हैं। ज्ञानवाहिनी और गतिवाहिनी नाड़ियाँ इन कोशोंसे संलग्न हैं और प्रत्येक इन्द्रियके अनुभवोंकी स्मृतियोंके अलग-अलग विभाग हैं। पेनफील्डने बाल-सरीखी महीन सुईको एक महिलाके दिमागके भरे गूदेमें लगाया तो वह वर्षों पुराने जच्चाखानेके अनुभवोंको इस प्रकार बतलाने लगी, मानो वे उसी समय उसके सामने हो रहे हों। इसी प्रकार एक युवतीको अपने परिवारसहित रहनेकी पंद्रह साल पहलेकी याद ताजा हो गयी और वह अपने मकानके ग्रामोफोनका गान सुनने लगी। इससे प्रमाणित होता है कि स्थूलशरीरमें अवयव विनाशशील हैं, पर सूक्ष्मशरीर नित्य य…

किया जाता है । सन् १८९३ में शिकागोके धर्म-सम्मेलनमें भाग लेनेके बाद जब वे अमेरिकाके अनेक नगरोंमें भाषण करते हुए भ्रमण कर रहे थे, तब उनकी मुलाकात उस देशके प्रसिद्ध वक्ता और विद्वान् इन्जरसोलसे हुई । वार्तालापके दौरानमें वे कहने लगे कि 'मैं अपने इस जीवन-कालमें संसारका पूरा आनन्द लेना चाहता हूँ; क्योंकि यह जीवन ही निश्चित और सब कुछ है ।' स्वामीजी बोले कि 'मैं आत्माकी अमरतामें विश्वास करता हूँ और पुनर्जन्मको मानता हूँ । इसलिये मेरे लिये जल्दबाजी करनेका कोई कारण नहीं है । सब वस्तुओं और प्राणियोंमें परमात्माकी व्यापकतामें विश्वास होनेके कारण मेरा आनन्द असीम और अनन्त है ।' निज अनुभवके आधारपर श्रीशंकराचार्यने अपरोक्षानुभूतिमें कहा है—**'दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत् ।'** (११६) अर्थात् 'जब जीवात्माकी दृष्टि ज्ञानमय हो जाती है, तब वह सारे संसारमें परमात्माको देखने लगता है ।' वह एक सूफी भक्तके शब्दोंमें कह उठता है—'जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है ।' पुनर्जन्मका नियामक परमेश्वर है और जिसे यह दृढ़ धारणा हो जाती है, वह इस जन्ममें शुभ कर्मोंकी ओर प्रवृत्त होता है और गीताके अनुसार—**'यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।'** (६ । २२) अर्थात् 'इस अवस्थामें स्थित हुआ पुरुष दारुण दुःखसे भी विचलित नहीं होता ।'

गया-श्राद्धसे पुत्र

(लेखक—श्रीवेंकटलालजी ओझा)

गया-श्राद्ध पितरोंकी तृप्तिके लिये परमावश्यक बताया गया है । पर आजके आधुनिक वातावरण और शिक्षा-दीक्षामें पालित-पोषित लोग इसे ढोंगमात्र कहकर हँसी उड़ाते हैं । मैं एक ऐसे सज्जनको जानता हूँ, जिनको इसमें नाममात्रके लिये भी विश्वास नहीं था । घरमें श्राद्ध आदि होते थे, पर उनके लिये कोई महत्त्व नहीं था । परम्पराका निर्वाहमात्र था ।

उनके कई पुत्र हुए । पर होते ही मर जाते थे । कई ज्योतिषियोंने भाग्यमें पुत्र नहीं है, कह दिया पर सौभाग्यसे एक पण्डितजीने गया-श्राद्धका सुझाव दिया । वंशकी रक्षाके लिये विवश हो वे तैयार हुए सबसे पहले श्मशानमें जा पितरोंको गया-श्राद्धके लिये आमन्त्रित किया और वहाँसे घर न आकर सीधे स्टेशन चले गये । पहले प्रयागमें त्रिवेणीस्नान और बादमें काशीमें गङ्गास्नान किया । पटना होते हुए पुनपुन गये । पहला पिण्डदान वहीं किया ।

गयाजीमें सौभाग्यसे उन्हें उत्तम कर्मकाण्डी पण्डितजी मिल गये । उन्होंने 'कल्याण'के तीर्थाङ्क बतायी विधिके अनुसार गयाजीमें सभी स्थानोंपर पिण्डदान शास्त्रोक्त रीतिसे सम्पन्न करवाया ।

इसके दो वर्ष बाद पितरोंकी कृपासे उनके एक पुत्र हुआ और दो वर्ष बाद और एक पुत्र हुआ इस प्रकार आज उनके एक नहीं, दो-दो पुत्र हैं । यह सब 'गया-श्राद्ध' का ही पुण्य-प्रताप वे मानते हैं अब तो श्रद्धा और भक्तिपूर्वक श्राद्ध करते हैं । उनका विश्वास दृढ़ हो गया है । वे अपने अनेक मित्रोंको गया-श्राद्धके लिये प्रेरितकर भेज चुके हैं ।

परलोक-सुधारके साधन

[एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ सिद्ध संतके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश]

[नाम प्रकाशित करनेकी आज्ञा नहीं]

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

यदि तुम अपना परलोक बनाना चाहते हो और यमदूतोंकी मार और नरकके द्वारसे बचना चाहते हो तो निम्नलिखित बातोंपर अवश्य ही ध्यान दो, तभी तुम्हारा परलोक बन सकता है। अन्यथा लाख प्रयत्न करो, नहीं बन सकता।

१—भूलकर भी पूज्य गौ-ब्राह्मणोंका कभी अपमान और निरादर मत करो। इन्हें कष्ट मत पहुँचाओ और जितनी बने, इनकी सेवा करो।

२—भूलकर भी कभी अपनी बेटी, जिस घरमें विवाही हो, उस घरका भोजन मत करो, पानी मत पीओ। यहाँतक कि भतीजी, भानजी जहाँ विवाही हो, उसके घरका भी खाना-पीना पाप समझो। बेटीके घरका खाने-पीनेसे तेज नष्ट हो जाता है और परलोक बिगड़ता है।

३—भूलकर भी यथेच्छाचारी नेताओंके चक्रमें फँस जाति-पाँत तोड़कर विवाह-शादी मत करो। अपनी ही जातिमें सगोत्रादि बचाकर सनातन-धर्मानुसार शास्त्रानुसार विवाह करो। यदि तुमने जाति-पाँत तोड़कर विवाह किया तो उनसे उत्पन्न होनेवाली संतान वर्णसंकर होगी और उनका दिया पिण्डदान, श्राद्ध-तर्पण आदि पितरोंको नहीं पहुँचेगा। परलोक बिगड़ जायगा। वर्णाश्रमधर्मके अनुसार चलो। इसीमें परम कल्याण है।

४—भूलकर भी देवमन्दिर, श्रीतुलसी-पीपल-गौ-साधु—, इनका अनादर-अपमान मत करो और इन्हें अपने दाहिने हाथ करके चलो और इनका मान-सम्मान करते रहो।

५—भूलकर भी पतितपावनी कलिमलहारिणी भगवती भागीरथी श्रीगङ्गा, श्रीयमुना, श्रीसरयू, श्रीत्रिवेणी आदिके समीप जाकर कोई पाप मत करो और इनमें थूको मत, साबुन-तेल मलकर इनमें स्नान मत करो, मल-मूत्रका त्याग मत करो और इन्हें बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे नमन करो।

६—भूलकर भी पर-स्त्रीको बुरी दृष्टिसे मत देखो। परस्त्रीसे अपना कोई सम्बन्ध मत रक्खो। साधु हो तो परस्त्रीका चित्र भी मत देखो और भगवान्‌के भक्त हो तो परस्त्रीसे बातें करना भी पाप समझो।

७—भूलकर भी कभी मांस, मछली, अंडे, शराब मत खाओ-पीओ। प्याज-लहसुन, सलजम, बिस्कुट, बरफ, चाय, कोकोकोला, बीड़ी-सिगरेट आदिका भी त्याग करो। नहीं तो परलोक बिगड़ना अवश्यम्भावी है।

८—भूलकर भी कभी सिनेमा मत देखो। जवान लड़कियोंके डान्स मत देखो। विषयासक्ति बढ़ानेवाले नाटक, ड्रामा, स्वांग मत देखो। नहीं तो, मन दूषित हो जायगा और परलोक बिगड़ जायगा।

९—भूलकर भी कभी गंदे उपन्यास, अश्लील साहित्य और नास्तिकोंकी किताबें मत पढ़ो। नहीं तो बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी और परलोक बिगड़ते देर न लगेगी।

१०—भूलकर भी कभी होटलोंका बना खाना मत खाओ। गोभक्षक तथा वर्जित जातिके हाथका बना भोजन मत करो। व्यभिचारिणी स्त्री, रजस्वला स्त्रीके हाथका बना मत खाओ। खान-पानमें पूरी-पूरी सावधानी बरतो। अपने घरका शुद्ध पवित्र चौकेका बना अन्न श्रीठाकुरजीको भोग लगा भोजन करो। हाथ-पैर धोकर, जमीनपर आसनपर बैठकर भोजन करो। अपवित्र वस्तु, जूँठी चीज मत खा[illegible]। भोजन करके कुल्ले करो, हाथ-मुँह धोओ। खान-[illegible] तनिक भी असावधानी हुई कि परलोक बिगड़ते दे[illegible] लगेगी।

११—भूलकर भी चीनीमिट्टीके पात्रोंमें, काँचके गि[illegible] कोई भी चीज मत खाओ-पीओ। नहीं तो बुद्धि भ्रष्ट[illegible] और परलोक बिगड़ते देर न लगेगी।

१२—भूलकर भी दानका एक पैसा भी मत खा[illegible] धर्मादेका एक पैसा भी मत हड़पो। धर्मशाला, गोशाला, मन्दि[illegible]

त खाओ। नहीं तो परलोक बिगड़ जायगा और रलोकमें गिद्ध नोच-नोचकर खायँगे। संत कबीरकी । याद रक्खो—

ारीका टूकड़ा नौ-नौ आँगल दाँत।
जन करे तो ऊबरे नातर फाड़े आँत॥

सीका टुकड़ा खाना भी जब पाप बताया गया है तो के नामपर रुपया इकट्ठा करके डकार जाते हैं, उनकी र दुर्दशा होगी, इसे कौन कह सकता है।

३—भूलकर भी धर्मद्रोहियोंसे, गो-ब्राह्मण-द्रोहियोंसे, ोंसे और पाखंडियोंसे, व्यभिचारियोंसे, नशेबाजोंसे सम्बन्ध मत रक्खो। नहीं तो परलोक बिगड़नेमें देर ाहो।

४—भूलकर भी म्लेच्छ-आचरण मत करो; खड़े-खड़े मत और पाश्चात्त्य सभ्यता-संस्कृतिके गुलाम मत बनो। रस्ती मत करो। परस्त्रीका स्पर्श मत करो। चर्बीसे ाबुन, क्रीम-पाउडरका प्रयोग मत करो और होटल-बोतलपंथी मत बनो। विदेशी वेशभूषा मत पहनो। ाय पोशाक पहनो। अपनी प्राचीन भारतीय सभ्यता-तिको अपनाओ और ऐसा कोई भी काम मत करो, लोक बननेमें बाधक हो।

१५—भूलकर भी अपने शिखा-सूत्रका परित्याग मत और सनातनधर्मकी शरणमें रहो तथा धर्मपर दृढ़ । वर्णाश्रम-धर्मानुसार चलो और यदि अनधिकार हो तो न्त्रोंका उच्चारण मत करो। श्रीरामनाम, श्रीकृष्णनामामा निरन्तर प्रेमसे पान करो। अधिकार न हो तो देवमन्दिरके शिखरका दर्शनकर महान् पुण्यके भागी बनो। भूलकर भी देवमन्दिरोंमें बलात् जानेका प्रयत्न मत करो और मर्यादानुसार जीवन बनाओ।

१६—भूलकर भी किसी भी जीवको किसी प्रकारका भी कष्ट मत पहुँचाओ। किसीको भी मत सताओ, मत रुलाओ। किसीको भी कभी अपशब्द मत कहो और सभीमें अपने प्रभुको देखो और इसे याद रक्खो—

जो जग सो जगदीश ईश नहिं जग से न्यारा।
करिये सब सों प्रेम, प्रेम भगवत को प्यारा॥

सबको सुख पहुँचाने तथा सबका हित करनेका प्रयत्न करो।

१७—भूलकर भी पूज्य माता-पिताका, गुरुजनोंका, बाबा-दादीका, वृद्धोंका, साधु-संतोंका, प्राज्ञ-विद्वानोंका अपमान मत करो और इनका अनादर मत करो। जहाँतक बन सके, भूदेव ब्राह्मणोंका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेसे न चूको और इसे याद रक्खो—

पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा।
मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू।
दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥

१८—भूलकर भी शास्त्रोंकी अवज्ञा मत करो और शास्त्रोक्त उपवास, व्रत, श्राद्ध, तर्पण, तीर्थयात्रा, श्रीगङ्गा-यमुनास्नान, कथा-कीर्तन, सत्सङ्ग आदिमें खूब भाग लो।

बोलो सनातन धर्मकी जय।

लोक-परलोक-सुधारके अनिवार्य उपाय

तन-इन्द्रियको वशमें रखना, करना नित्य सभी शुभ काम।
अनाचारसे बचना, करना संयम, नित सेवा निष्काम॥
मधुर-सत्य-हित वचन बोलना, त्याग झूठ-कटु-अहित तमाम।
जपना प्रभुका नाम निरन्तर जिह्वासे मनसे अभिराम॥
मनमें दया सौम्यता रखना, रखना उसपर निज अधिकार।
राग-द्वेष-भरे कर पाये नहीं, कभी वह अशुभ विचार॥
नित्य देखना प्रभुको मनमें, बाहर भी सबमें साकार।
लोक तथा परलोक सुधरनेके हैं ये उपाय अनिवार॥

हम अपना भला-बुरा स्वयं ही करते हैं

[श्रमण नारद*]

पाठकगणके सामने उस समयकी एक आख्यायिका उपस्थित की जाती है, जिस समय भारतमाता उन्नतिके शिखरपर पहुँचकर स्वर्गीय सुखका अनुभव कर रही थी। उनकी संतान हर तरहसे शान्त, सुखी, सदाचारी और स्वतन्त्र थी। धनी, मानी, उद्योगी और ज्ञानी थी। क्षमा, दया, परोपकार आदि सद्गुण अन्य देशोंको इन्हींसे सीखने थे। उस समय यहाँके व्यापारी सुदूर देशोंमें व्यापारके लिये जाया करते थे और विदेशी व्यापारी यहाँ आते रहते थे।

उस समय यहाँ बहुत-से बम्बई और कलकत्ता-जैसे समृद्धिशाली नगर थे और व्यापारका क्षेत्र विशाल होनेके कारण लोगोंका आना-जाना भी बहुत था।

छोटे शहरों, कस्बों और गाँवोंकी स्थिति अच्छी थी। प्रजा-जीवन सुख-शान्तिसे व्यतीत होता था।

बौद्धधर्मका यह मध्याह्नकाल था। जहाँ-तहाँ बुद्धदेवकी शिक्षाका पवित्र, शान्त और दयामय संगीत सुनायी देता था। बड़े-बड़े राजा-महाराजा और धनिक बौद्धधर्मका प्रचार करते थे। हजारों बौद्ध-श्रमण जहाँ-तहाँ विहार करते दृष्टिगोचर होते थे।

× × × ×

(१)

वाराणसीकी ओर जानेवाली सड़कपर एक घोड़ागाड़ी दौड़ी जा रही थी। घोड़े बड़ी तेजीसे बढ़े जा रहे थे। गाड़ीमें केवल दो ही व्यक्ति थे। एक मालिक और दूसरा उनका नौकर। मालिकने अपने वैभव और प्रतिष्ठाके अनुरूप मूल्यवान् वस्त्रालंकार धारण कर रक्खे थे। उनकी मुख-मुद्रासे ऐसा जान पड़ता था कि वे अपने निश्चित स्थानपर जल्दी पहुँचना चाहते हैं।

हालहीमें बरसात होनेके कारण ठंढी हवा चल रही थी। लगातारकी वृष्टिके पश्चात् बादल बिखर गये थे। सूर्यनारायणके प्रकाशसे धरती उजली हो रही थी। दिन सुहावना लगता था। वर्षाके जलसे धुलकर स्वच्छ हुए हरे-हरे पत्ते पवनकी लहरोंसे आनन्द-नृत्य कर रहे थे। प्रकृतिदेवीने अपूर्व शोभा धारण कर रक्खी थी।

आगे थोड़ा-सा चढ़ाव था, अतः घोड़ोंकी च धीमी पड़ी। सेठने जब बाहरकी ओर दृष्टि की, तब एक बौद्ध-श्रमणको नीची नजर किये, सड़कके गुजरते हुए देखा। उनकी मुखमुद्रापर शान्ति, और गम्भीरता छायी थी। उनके दर्शन क सेठके हृदयमें उनके प्रति पूज्यभावका उद्भव और उनके मनमें यह विचार आया—'ये कोई लगते हैं; पवित्रमूर्ति और धर्मावतार दिखायी दे विद्वान् लोगोंने सज्जन-समागमको पारसमणिकी उप है। जैसे पारसके संयोगसे लोहा सुवर्ण बन जाता उसी तरह सज्जनके संगमसे भाग्यहीन भी भाग्यशाल जाते हैं। यदि महात्माको वाराणसी जाना हो तो अपनी गाड़ीमें बैठनेके लिये प्रार्थना करूँ। यदि मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली तो बहुत ही उत्तम है। समागमसे मुझे अवश्य लाभ होगा।' इस तरहका मनमें आते ही सेठजीने गाड़ी रोक ली और महात्मा पु प्रणाम करके उनसे गाड़ीमें बैठनेके लिये प्रार्थना महात्माजीको काशी ही जाना था, इसलिये वे गाड़ीमें गये और कहा—

'सेठजी! आपका मुझपर बड़ा उपकार है। बहुत स चलते-चलते मैं थक गया था और आपने मुझे गाड़ीमें बैठा लिया, इससे मैं आपका ऋणी हो गया। मुझ साधुके पास आपको देने योग्य ऐसी कोई उपयुक्त वस्तु है, जिससे मैं आपका ऋण चुका सकूँ। फिर भी गुरु महात्मा बुद्धदेवके उपदेश-रूपी अक्षय भण्डारमेंसे कुछ भी मैं संग्रह कर सका हूँ, उसमेंसे आपके इच्छानु थोड़ा कुछ देकर मैं आपके इस ऋणभारको तनिक हल करना चाहता हूँ।'

सेठजीको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। आनन्दमें स बीतने लगा। उन्होंने श्रमणके सुबोधरूपी रत्नोंको प्रेमसे अपने हृदयमें धारण करना शुरू किया। गाड़ी बढ़ रही थी। लगभग एक घंटेके बाद गाड़ी एक

* 'श्रीरामकृष्ण सेवा समिति' अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित 'श्रमण नारद' गुजराती पुस्तिकाका हिन्दीभाषान्तर, समितिके आदेशानुस

होता है ।' डरते-डरते किसानने पूछा—'महाराज ! जहाँतक मुझे याद है, मैंने इन सेठजीका कुछ भी नहीं बिगाड़ा था । फिर भी, बिना कारण उन्होंने मेरा इतना नुकसान क्यों किया ? क्या कारण है इसका ?'

श्रमण–भाई ! आज जो कुछ भी तुम भोग रहे हो, वह तुम्हारे पूर्वकर्मका ही फल है ।

किसान–कर्म क्या है महाराज ?

श्रमण–मनुष्यके द्वारा स्वयं किये हुए कार्य ही उसका 'कर्म' है । अनेक जन्मोंके कर्मोंकी एक माला है । इस मालामें विविध कर्मरूपी मनके हैं । वर्तमान कार्यों एवं विचारोंसे इसमें परिवर्तन भी होते हैं । हमलोगोंने जो कुछ कर्म पूर्वमें किये हैं, उन्हींका फल इस जीवनमें भोग रहे हैं और इस जन्ममें इस समय जो कर्म कर रहे हैं, उनका फल अगले जन्ममें भोगेंगे ।

किसान–ऐसा होगा; किंतु ऐसे घमंडी और दुष्ट मनुष्योंके लिये, जो हमारे-जैसे निरपराधियोंको हैरान करते हैं, क्या किया जाय ?

श्रमण–भाई ! मेरी समझसे तो तुम्हारे विचार भी लगभग उस सेठके विचारोंके समान ही हैं । जिन कर्मोंके फलस्वरूप वह जौहरी और तुम किसान बने हो, ऊपरी दृष्टिसे देखा जाय तो उनमें बड़ा भेद दिखायी देता है, किंतु यदि हम गहराईसे विचार करेंगे तो बहुत अन्तर नहीं दिखायी देगा । मानव-स्वभावके अभ्यासके कारण मैं कहता हूँ कि यदि तुम उस जौहरीकी जगह होते, तुम्हारे पास भी उसके नौकर-जैसा बलवान् नौकर होता और तुम्हारी गाड़ी रास्तेमें उसकी गाड़ीसे रुकती तो तुमने भी वैसा बर्ताव किया होता, जैसा कि सेठने तुम्हारे साथ किया है । उसके चावलोंका सत्यानाश हो जायगा—ऐसा विचार तुम्हारे मनमें भी

किसानकी बैलगाड़ी दुरुस्त हो गयी । कुछ दूर ही दोनों बैल चौंककर रुक गये । किसानने पुकारा–महाराज ! सामने यह साँप-जैसा क्या पड़ा है ?' श्रमणने ध्यानसे देखा तो कोई थैली-जैसी चीज दिखायी दी । समीप जाकर तो सोनेकी मोहरोंसे भरी हुई थैली ही थी । उनको लगा 'अन्य किसीकी न होकर यह थैली उन सेठकी ही है ।' उ... वह थैली उठाकर किसान देवलको देते हुए कहा—'वारा... जाकर उन सेठका पता लगाना और उन्हें यह थैली ... की-त्यों दे देना । उनका नाम पाण्डु जौहरी है और उ... नौकरका नाम महादत्त है । तुम्हारे ऐसा करनेपर उ... अपने किये हुए अन्यायके लिये पश्चात्ताप होगा । थै... देकर उनसे कहना कि 'आपने मेरे साथ जो कुछ बर्ताव कि... था, उसको लेकर मेरे मनमें अब कुछ भी नहीं है । ... आपको क्षमा करता हूँ और चाहता हूँ कि आपको अप... व्यापारमें सच्ची सफलता मिले ।'

'तुम्हारा भाग्य उनके भाग्यसे जुड़ा हुआ है । ज्यों-ज्यों उनकी उन्नति होगी, त्यों-ही-त्यों तुम्हारा भाग्य भी खुलेगा ।'

इतना कहकर 'परोपकारकी प्रतिमा' दीर्घदृष्टि वे श्रमण महाशय वहाँ एक पलक भी न ठहरकर अपने रास्ते चल दिये । रास्तेमें विचार करने लगे—'यदि वे जौहरी फिर कभी मुझे मिलेंगे तो मैं यथाशक्ति उनका भला करनेका प्रयत्न करूँगा । उपदेश देकर उन्हें सच्चा मानव बनाऊँगा ।'

(३)

वाराणसीमें मल्लिक नामके एक व्यापारी थे । वे पाण्डु जौहरीके आढ़तिया थे । पाण्डु वाराणसी आकर उनसे मिले । जौहरीके मिलते ही मल्लिक रो पड़े और पाण्डुके पूछनेपर उन्होंने अपनी कठिनाई बतायी—

राज-कोठारीसे मैंने चावलके वायदेका व्यापार किया है। यह बात जानते ही उसने मुँहमाँगे दाम देकर, जितने अच्छे चावल बस्तीमें थे, सब खरीद लिये हैं और ऐसा जान पड़ता है कि उसने कुछ रिश्वत देकर कोठारीको भी अपने वशमें कर लिया हो। कल मेरी क्या हालत होगी—इसकी मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। मेरी इज्जत बचनी कठिन है। मैं तो मरा जा रहा हूँ। भाई! यदि विधाता मेरी सहायता करें और कहींसे बढ़िया चावलकी एकाध गाड़ी मिल जाय तो मैं बच सकता हूँ। अन्यथा, मेरी तो मौत ही हुई समझो।

मल्लिककी बातें सुनते-सुनते पाण्डु एकाएक चौंक उठे। उन्हें फौरन ही गाड़ीमें अन्य चीजोंके साथ रक्खी हुई अपनी थैलीका स्मरण हो आया और वे तुरंत ही दौड़े हुए घर गये। सारी चीजें, कपड़े-लत्ते छान मारे। गाड़ीकी पूरी जाँच की; किंतु कहीं भी थैली नहीं मिली। उन्हें अपने नौकर महादत्तपर संदेह हुआ। पुलिसको फौरन ही खबर दी गयी और पुलिसने आकर गरीब निर्दोष सेवक बेचारे महादत्तको गिरफ्तार कर लिया। फिर क्या था! निरपराधीको अपराधी साबित करनेवाली यमदूत-सी पुलिसने चोरीका अपराध स्वीकार कर लेनेके लिये महादत्तको खूब पीटा। महादत्त जोर-जोरसे रोने लगा। गिड़गिड़ाकर बोला—'अरे! मैं बिल्कुल निरपराध हूँ। मैं सच कहता हूँ कि मैंने थैली नहीं चुरायी। मुझपर दया करो। सेठके कहनेसे मैंने उस बेचारे गरीब किसानको रास्तेमें बहुत सताया था, मुझे उसी पापका यह फल मिल रहा है। हे भाई किसान! तू तो जगत्का पिता (किसान) है। मैंने तुझे बिना कारण सताया है। सचमुच मुझे यह दण्ड मिलना ही चाहिये।'

इस तरह महादत्त पश्चात्ताप करने लगा; किंतु पुलिसको उसकी बातोंपर ध्यान देनेकी फुरसत ही कहाँ थी। उसका यह काम नहीं, उसका काम तो था—उसे बुरी तरहसे पश्चात्ताप किया और देवलसे क्षमा माँगी। महानुभाव श्रमणके सङ्गसे सदाके सरल-हृदय किसानका हृदय उदार हो गया था। उसने अपने सच्चे हृदयसे उन्हें क्षमा दे दी और उनके अभ्युदयकी इच्छा की।

महादत्त छोड़ दिया गया। उसे अपने सेठपर बड़ा गुस्सा आ रहा था। देखते-ही-देखते वह कहीं दूर चला गया, एक पलके लिये भी वहाँ नहीं रुका।

मल्लिकको जब इस बातका पता चला कि देवलके पास बढ़िया—अच्छे किस्मके एक गाड़ी चावल हैं, तब उसने मुँहमाँगे पैसे देकर सब-के-सब चावल खरीद लिये। इस तरह उसके वचन तथा मानकी रक्षा हो गयी। राजाके कोठारमें समयपर चावल पहुँच गये। इधर, देवलने कभी स्वप्नमें भी, उसे चावलकी इतनी बड़ी कीमत मिलेगी, यह आशा नहीं की थी। वह तो बेहद खुश हो गया और तुरंत ही उसने अपने गाँवका रास्ता पकड़ा।

अब पाण्डु "यह विचार करने लगे कि "यदि वह देवल यहाँपर न आया होता तो मेरी और मल्लिककी क्य स्थिति होती? वह कितना ईमानदार है? यह श्रमण महाशयके समागमका ही परिणाम है। लोहेको सुवर्ण बनानेकी शक्ति 'पारस'के सिवा और किसके पास हो सकती है?" पाण्डुका हृदय रो उठा। महात्माजीके दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठा जा उठी उनके मनमें और वे फौरन ही उनकी खोजमें निक पड़े तथा विहारोंमें पूछ-ताछ करते-करते वे अन्तमें उनके प जा पहुँचे।

कृतज्ञतापूर्ण अन्तःकरणसे उन्होंने श्रमणको साष्टा दण्डवत् प्रणाम किया। व्यापारीका दक्ष और कठोर हृदय कुसुम-कोमल महात्माजीके दर्शनसे कोमल बन गया। वे कु भी बोल न सके। उनका हृदय भर आया। महात्माजी उ आश्वासन देते हुए समझाने लगे।

श्रमण—सेठजी! देखा न, कर्मकी रचना कि

का मन हो, तब पहले अपने-आपसे यह पूछना चाहिये कि 'ऐसा ही दुःख कोई मुझको दे तो मेरे मनपर उसका क्या असर होगा ? क्या मैं उसको सहन कर सकूँगा ?' यदि तुम सहन करनेमें असमर्थ हो तो फिर दूसरेको दुःख पहुँचानेकी वृत्ति क्यों हो ? ऐसी वृत्ति हो तो उसे तुरंत दबा देना चाहिये । इसी तरह दूसरा यदि कोई हमारी सेवा करता है तो वह हमें कितनी अच्छी लगती है। ठीक उसी तरह, हमारी सेवा भी अन्यको अच्छी लगती है—यह दृढ़ निश्चय रक्खें । दूसरेकी सेवा करनेका एक भी अवसर हाथसे नहीं खोना चाहिये । आज हम जिस सुकृतके बीज बोयेंगे तो उसका अच्छा फल हमें कालान्तरमें अवश्य मिलेगा, यह विश्वास रखना ।

पाण्डु—महाराज ! आपकी अमृतवाणी सुनते-सुनते मेरे मनको तृप्ति नहीं मिलती । मेरा चरित्र उत्कृष्ट बने और मन दृढ़ रहे । इसके लिये कुछ और सुनाइये । मैं कर्मकी गहन गतिको समझना चाहता हूँ ।

श्रमण—अच्छा, तो सुनो ! मैं आपको कर्मभेदकी कुंजी बता रहा हूँ । मेरे और आपके बीच एक पर्दा पड़ा है । इस पर्देको 'माया' कहते हैं । इस मायारूपी पर्देके कारण आप मुझको और मैं आपको पृथक्-पृथक् समझ रहे हैं । इस पर्देके कारण ही तो मनुष्य सत्यको नहीं देख पाता और पापके कुएँमें जा गिरता है । चूँकि आपकी आँखोंके आगे यह मायाका पर्दा पड़ा हुआ है, इसीसे आप अन्य अपने मानव-बन्धुओंके साथ आपका कितना निकट सम्बन्ध है, उसे जान नहीं सकते । सच पूछा जाय तो एक शरीरके भिन्न-भिन्न अवयवोंका एक दूसरेके साथ जैसा प्रगाढ़ सम्बन्ध है, वैसा ही, वरं उससे भी अधिक प्रगाढ़ सम्बन्ध मानव-मानवके बीच है । इस स्थितिको बहुत कम लोग समझ पाते हैं । इस सत्यको समझकर इसके अनुसार बर्ताव करना—यही तो मानव-जीवनका कर्तव्य है । इस सत्यकी प्राप्तिके लिये मैं आपको तीन मन्त्र दे रहा हूँ । इन्हें आप अपने हृदयमें लिख रखिये—

(१) दूसरोंको दुःख पहुँचानेवाला स्वयं ही अपनेको दुःख देनेवाले दुःखके बीज बोता है ।

(२) दूसरोंको सुख पहुँचानेवाला अपने लिये सुखका बीज बोता है ।

—इन तीन बातोंपर गहराईसे विचार करते उनकी उपासना करते रहिये—आपको सत्यके द[र्शन] होंगे ।

पाण्डु—महाराज ! आपके शब्दोंका मेरे हृदय[पर] गहरा प्रभाव पड़ा है । आपके वचन तो आपके प्रतिबिम्ब हैं । मैंने वाराणसी आते समय ए[क] लिये आपको अपनी गाड़ीमें बैठा लिया इसमें मेरे एक पाईका भी खर्च नहीं हुआ । कितना महान् बदला । प्रभो ! मुझपर आपका महान् है । आपने ही तो देवलको मोहरें देनेके लिये मेरे [पा]स था । यदि वे मोहरें मुझे प्राप्त न हुई होतीं तो मैं सौदा न कर पाता । आपकी दीर्घदृष्टि है । मैं कि[तनी] तारीफ करूँ ? देवलको सहायता देकर उसे आपने वाराणसी भेज दिया, जिससे मेरे मित्र मल्लिकका हो गया; उसकी इज्जत बच गयी । मेरे सेवक मा[...] भी रक्षा हुई, नहीं तो, पता नहीं, उस बेचारेकी क्या होती ।

महाराज ! जिस तरह आप सत्यके दर्शन [...] ठीक उसी तरह मानवमात्र करने लगे तो सारा जगत् सुखी हो जाय । असंख्य पाप रुक जायँ और सर्वत्र प्रणाली प्रचलित हो जाय । महाराज ! संतोंकी सेवा [...] इच्छा मेरे मनमें जाग्रत् हुई है । कौशाम्बीमें एक बनवा दूँ, जहाँपर आप-जैसे श्रमण रहें और ज[...] सन्मार्गपर चलावें ।

(४)

कौशाम्बीमें पाण्डु जौहरीका विहार तैयार हो चुका इसमें सैकड़ों विद्वान् और दयामूर्ति श्रमण निवास करते अल्प समयमें ही इस विहारकी ख्याति दूर-दूरतक [फैल] गयी । दूर रहनेवाले धर्मपिपासु लोग भी यहाँ [...] उपदेशामृतका पान करके अपनी तृष्णाको शान्त करने [...]

पाण्डु जौहरी भी एक सुप्रसिद्ध जौहरी बन गये उनकी यशोगाथा दूर-दूरतक सुनायी देने लगी ।

× × ×

संसारमें कहीं भी न देखा गया हो। इस मुकुटमें बहुमूल्य रत्न जड़े हों। ऐसी मेरी इच्छा है। पाण्डु जौहरीके सिवा इतना बड़ा काम कोई भी दूसरा नहीं कर सकता। इसलिये शीघ्र ही पाण्डु जौहरीको ऐसा मुकुट बनवा देनेके लिये कहलवा दो।' राजाके आदेशानुसार कोषाध्यक्षने पाण्डु जौहरीको सूचित कर दिया।

निश्चित समयपर मुकुट तैयार हो गया। इसके अतिरिक्त भी, पाण्डु जौहरीने अपनी सारी पूँजी लगाकर हीरे-माणिक और सोने-चाँदीके बहुत-से आभूषण तथा अन्यान्य चीजोंके बढ़िया नमूने बनवाये। ये सभी चीजें अपने साथ लेकर वे राजधानीकी ओर निकल पड़े। पंद्रह-बीस बलवान् रक्षक अपने साथ ले लिये और खुशी तथा सावधानीके साथ आगे बढ़ने लगे। उन्हें विश्वास था कि उनकी सारी चीजें राजाके यहाँ खप जायँगी और अच्छी कमाई एवं कीर्ति बढ़ेगी। किंतु जब वे एक घने जंगलमेंसे गुजर रहे थे, तब उन्हें डाकुओंका एक दल मिला। इस दलमें पचास-साठ डाकू थे। उन डाकुओंने जौहरीको लूट लिया। जौहरीके थ आये हुए रक्षकोंने बहादुरीके साथ सामना किया, पर ाखिर डाकुओंकी ही जीत हुई और वे जौहरीकी तमाम ाजें लेकर चम्पत हो गये!

सब समाप्त! एक क्षण पहलेके लक्षाधिपति जौहरी ल्कुल कंगाल स्थितिमें आ गये। उनकी सारी आशाएँ ूलमें मिल गयीं। वे कहींके भी न रहे। अब उन्हें अपने ातीतके पापोंके लिये बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। जवानीमें ेकसका कितना बुरा किया था, सब सामने आ ाया। जो बोया था, वही फल गया। उनकी आँखोंके ागेका पर्दा दूर हो गया। कर्मकी गतिका अभिप्राय जैसा, जेतना इस समय समझमें आ रहा था, वैसा, उतना पहले कभी नहीं आया था। अब उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया। उनके हृदयमें दयाका स्रोत उमड़ने लगा। पश्चात्तापकी अग्निसे मानस पवित्र हो गया।

पाण्डुको आज अपनी निर्धन परिस्थितिका कोई दुःख नहीं हो रहा है। दुःख है तो केवल इतना ही है कि धनके द्वारा जो दूसरोंकी भलाई कर सकते थे और श्रमणोंकी सेवा करके उनके द्वारा धर्म-प्रचारका जो कार्य हो रहा था, उसमें रुकावट आ गयी।

राक्षसी डाकुओंने बेचारे पाण्डुको लूट लिया था। उस रास्तेसे आज एक बौद्ध साधु जा रहे थे। वे त अपने ही विचारोंमें मस्त थे। हाथोंमें एक कमण्डल और एक छोटी-सी गठरी थी, जिसमें कुछ हस्तलिखित पुस्तकें थीं। गठरीके ऊपर एक बहुमूल्य वस्त्र बँध था। किसी श्रद्धालुने ग्रन्थमहिमासे आकर्षित होक पूज्यभावसे गठरी बाँधनेके लिये उन्हें यह कपड़ दिया हो, ऐसा लगता था। यही बहुमूल्य वस्त्र साधुके लिये विपत्तिका कारण बन गया। डाकुओंने दूरसे ह इस गठरीको देखा और 'बहुमूल्य वस्त्रमें अवश्य को कीमती चीजें छिपी होंगी'—यों समझकर वे उस साधुप टूट पड़े। जब उन्होंने गठरी खोलकर देखी औ उसमें केवल कुछ कागज ही निकले, तब तो उन क्रोधका पारा और भी चढ़ गया। उन्होंने मिलव साधुको घूँसोंसे मार-मारकर गिरा दिया और यों अप नीचताका प्रदर्शन करके चले गये।

साधु अत्यन्त पीड़ासे कातर था। उस रातको वहाँ आगे नहीं बढ़ सका। सुबह होनेपर बड़ी कठिनतासे अ बढ़नेका प्रयत्न किया। कुछ ही आगे बढ़ा होगा कि उ समीपकी झाड़ीमें शोरगुल और हथियारोंकी खड़खड़ा सुनायी दी। साधु धीरे-धीरे वहाँ जा पहुँचा। पहुँचते देखा कि पिछली रातके जिस डाकुओंके दलने उसे लूट मारा था, उसी दलके लोग आपसमें लड़ रहे थे। इन एक डाकू बड़ा बलवान् था। जैसे शिकारी कुत्तोंसे घि हुआ सिंह गुस्सेमें आकर उनपर टूट पड़ता है, वैसे ही बलवान् डाकू उन सब डाकुओंको मार रहा था। किंतु अकेला था, जब कि विरोधियोंकी संख्या बहुत अधिक थ दस-बारह आदमियोंको उसने जमीनपर गिरा दिया; आखिर वह भी घायल होकर जमीनपर गिर पड़ा। उ शरीरपर बहुत चोटें थीं। उसे वहींपर छोड़कर जीवित भाग गये।

श्रमणने समीप आकर देखा तो दस-पंद्रह लाशें पड़ी इनमेंसे केवल एक वही बहादुर डाकू जीवित था, जो जीवनकी आखिरी साँस ले रहा था। साधुका हृदय आया। इस निरर्थक हत्याकाण्डसे उसे बड़ा दुःख हुआ। ही एक निर्मल पानीका झरना बह रहा था, उनमेंसे

खुलीं और वह बड़बड़ाने लगा—'साले बेईमान कुत्ते कहाँ भाग गये ? सैकड़ों बार मैंने अपनी जान जोखिममें डालकर उन लोगोंको बचाया है और मैं न होता तो कभीका शिकारियोंने उन कमजोर कुत्तोंको मौतके घाट उतार दिया होता। इसका उन्हें कहाँ भान है ? क्या वे सब कुछ भूल गये ?'

श्रमण—भाई ! अब तुम अपने उस पापमय जीवनके साथियोंकी याद न करो। अब तुम केवल आत्माका ही विचार करो और अपने जीवनके अन्तको सुधार लो। थोड़ा-सा पानी पी लो और मुझे देखने दो—तुम्हें कहाँ-कहाँ चोट लगी है। हो सकेगा तो मैं कुछ उपाय करूँगा और बचना होगा तो तुम बच जाओगे।

डाकू शान्त हो गया। श्रमणने उसके घाव पानीसे धो डाले और बादमें जंगलसे वनस्पति लाकर, उसमेंसे रस निकालकर घावोंपर लगा दिया। इससे डाकूको बड़ा आराम मिला। उसे नींद-सी आ गयी।

जब वह जगा तो उसे बहुत आराम मालूम हो रहा था। उसने श्रमणको अपने पास देखा। उसके हृदयका परिवर्तन होने लगा।

'दयामय ! अबतक मैंने सब बुरे-ही-बुरे काम किये हैं। कभी किसीका कुछ भी भला किया ही नहीं। अपनी बुरी वासनाओंके जालमें मैं स्वयं ही फँस रहा हूँ। इसमेंसे निकल सकूँ, ऐसा नहीं लगता। मैं तो नरकका ही अधिकारी हूँ। मोक्ष पाने योग्य रहा ही नहीं।'

श्रमण—हाँ भाई ! तुम्हारा कहना सत्य है। तुम्हारे अपने किये हुए कर्मोंका फल तुम्हें ही भोगना पड़ेगा। जो गड्ढा खोदता है, वही गिरता है। इसका कोई इलाज नहीं है। फिर भी निराश मत होओ। अब ऐसे सुकर्मरूपी बीज बोओ, जिससे आगे बुरे फल न भोगने पड़ें; पश्चात्ताप करनेका समय ही न आये। ज्यों-ज्यों दुष्टताकी मात्रा तुम्हारे हृदयसे कम होती जायगी, त्यों-ही-त्यों शरीरसम्बन्धी ममत्वबुद्धि भी कम होती जायगी और परिणामस्वरूप विषय-लालसा भी नष्ट हो जायगी। इस सम्बन्धका एक आख्यान है, वह मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। उसे सुननेपर तुम्हें पता चलेगा कि दूसरोंकी भलाई करनेमें ही अपनी भलाई है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो मनुष्यके अपने ही कर्म अपने तथा दूसरोंके सुखके मूल हैं।

'कदन्त नामका एक जबरदस्त डाकू था। वह अपने पापोंका प्रायश्चित्त किये बिना ही मर गया, जिसके कारण नरकमें उसे नारकी-योनि प्राप्त हुई। बहुत कल्पोंतक उसे अपने कर्मोंका फल वहाँ भोगना पड़ा; फिर भी, उनका कोई अन्त नहीं दिखायी दिया। इसी बीच भगवान् बुद्धने इस पृथ्वीपर अवतार लिया। बुद्धभगवान्के पुण्यकी एक किरण नरकमें भी जा पहुँची, जिसके फलस्वरूप नारकी लोगोंको भी अपने शीघ्र उद्धारकी आशा हो गयी। इस प्रकाशको देखकर कदन्त जोरसे चिल्ला उठा—'हे भगवान् ! मुझपर दया करो, कृपा करो ! मैं यहाँ अवर्णनीय दुःखोंसे पीड़ित हूँ। मुझे इस संकटसे छुड़ाओ। प्रभो ! अब मैं सदा सत्यके मार्गपर ही चलूँगा। मुझे मुक्त करो, प्रभो ! मुझे मुक्त करो।'

यह तो प्रकृतिका नियम है कि बुरे कर्म प्रायः मनुष्यको विनाशकी ओर ही ले जाते हैं। बुरे कर्म सृष्टि-नियमके विरुद्ध हैं, अस्वाभाविक हैं; इस कारण उनकी आयु कम होती है। सत्कर्म दीर्घजीवी हैं; क्योंकि वे स्वाभाविक हैं। वे आत्माके प्रति आगे बढ़ते हैं। पापकर्मोंका अन्त है, पुण्य-कर्मोंका अन्त नहीं है।

जिस तरह बाजरेके एक दाने (बीज) से एक पौधेमें हजारों दाने लग जाते हैं और जैसे अनेक पौधे मिलकर खेतको लहलहा देते हैं, ठीक वैसे ही थोड़ेसे भी सत्कर्मसे हजारोंकी संख्यामें सत्-फल प्राप्त होते हैं और उनकी परम्परासे सृष्टि छा जाती है। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो मानव भला कार्य करते-करते जन्म-जन्ममें इतनी दृढ़ता प्राप्त करता जाता है कि अन्तमें वह 'अनन्तवीर्य' बुद्ध बनकर निर्वाण-पदका भागी बनता है।

कदन्तका आक्रन्दन सुनकर दयासागर बुद्धभगवान् बोले—'तुमने कभी किसी भी प्राणीपर थोड़ी-सी भी दया की है ? यदि की होगी तो वह दया तुरंत दौड़ती हुई आयेगी और तुम्हें उन दुःखोंसे छुड़ा देगी। किंतु जबतक तुम्हारे मनसे देहका ममत्व, क्रोध, मान, कपट, ईर्ष्या और लोभका नाश न होगा, तबतक उन दुःखोंसे तुम्हें मुक्ति नहीं मिल सकती।' कदन्तका मूल स्वभाव बड़ा क्रूर था। उसे अपने उद्धारका मार्ग कहीं भी दिखायी न पड़ा। पर करुणानिधि बुद्धभगवान् तो सर्वज्ञ थे। उन्होंने उसके पूर्वजन्मके तमाम कर्मोंको एकके बाद एक देखना आरम्भ किया। देखा, तो एक बार उसने थोड़ी-सी दयाका भाव दिखाया था। कदन्त अपने पूर्वजन्ममें एक दिन एक जंगलसे गुजर रहा था। उसके आगे एक मकड़ा चला आ रहा था।

उसके मनमें आयी कि उस मकड़ेको पैरोंतले कुचलकर आगे निकल जाऊँ। किंतु तुरंत ही यह विचार आया कि नहीं, नहीं, यह बेचारा निरपराधी है। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये और इस विचारके फलस्वरूप वह कदन्त पाप करनेसे बच गया और मकड़ेके प्राणोंकी रक्षा हो गयी। बस, भगवान् बुद्धने उसके इस छोटे-से सत्कार्यको ध्यानमें लेकर कदन्तका उद्धार करनेका विचार किया। उन्होंने मकड़ेको जालके एक तन्तुके साथ नरकमें भेजा। उसने कदन्तसे जाकर कहा कि 'लो, इस तन्तुको पकड़ लो और इसकी मददसे तुम ऊपर चढ़ जाओ।' इतना कहकर मकड़ा तो अदृश्य हो गया। उसके बाद, कदन्त बेचारा बड़ी कठिनतासे तन्तुको पकड़कर ऊपर चढ़ने लगा। आरम्भमें तो तन्तु मजबूत मालूम दिया, किंतु बादमें धीरे-धीरे वह टूटनेकी तैयारी करने लगा; क्योंकि नरकके अन्य दुखी जीव भी उसी तन्तुको पकड़कर ऊपर चढ़ने लगे थे। कदन्त बहुत घबरा गया। उसे ऐसा लगा, जैसे कि वह तन्तु लंबा होता जा रहा है और वजनके कारण पतला बनता जाता है। 'मेरा वजन तो वह झेल ही सकता है। फिर ऐसा क्यों हो रहा है?' इस तरह विचार करके कदन्तने जो नीचेकी ओर देखा तो असंख्य नारकी जीव उस तन्तुको पकड़कर ऊपर चढ़ते हुए दिखायी दिये। अब उसे लगा कि 'इतने सारे जीवोंके वजनसे तो यह तन्तु अवश्य टूट जायगा।' वह घबरा गया और एकाएक बोल उठा—'यह तार तो मेरा है, तुमलोग इसे छोड़ दो।'—ये शब्द उसके मुँहसे निकलते ही कदन्त पुनः नरकमें जा गिरा।

कदन्तके देहका ममत्व और अहंभाव अभी छूटा नहीं था। वह केवल अपनेको ही अपना समझता था। सत्यका वास्तविक ज्ञान उसे नहीं था। सिद्धि प्राप्त करानेवाली अन्तःकरणकी सूक्ष्म शक्तिसे वह अज्ञात था। वह शक्ति देखनेमें तो जालके तन्तु-सी पतली-पतली होती है, किंतु वह इतनी मजबूत होती है कि हजारों [illegible]

गहरे कूएँमें जा गिरता है। स्वार्थीपन नरक है और निःस्वार्थीपन स्वर्ग है। हमारे जीवनमें जो अहंता और ममत्वके भाव पाये जाते हैं, वे ही सच्चे नरक हैं।

श्रमणकी कथा सुनकर मृत्युके मुखमें पड़ा हुआ डाकू बोल उठा—'महाराज! मैं उस मकड़ेके जालके तन्तुको पकड़ूँगा और नरककी अगाध गहराईमेंसे अपनी शक्तिका प्रयोग करके बाहर निकल जाऊँगा।'

(६)

इतना कहकर डाकू कुछ देरके लिये शान्त हो गया और फिर विचार स्थिर करके बोला—"पूज्य महाराज! सुनिये! मैं पहले कौशाम्बीके सुप्रसिद्ध जौहरी पाण्डुके यहाँ नौकर था। मेरा नाम है—महादत्त। एक दिन उन्होंने मेरे साथ ऐसा क्रूर व्यवहार किया कि मैंने नौकरी छोड़ दी और मैं डाकुओंके दलमें शामिल हो गया। फिर, धीरे-धीरे मैं उस डाकू-दलका सरदार बन गया। कुछ दिन बाद मैंने सुना कि 'वही पाण्डु जौहरी अपने साथ बहुत-सा धन लेकर इस जंगल-मार्गसे एक राजाके यहाँ जानेवाले हैं।' तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने दलको साथ लेकर उन्हें लूट लिया। अब आप कृपा करके उनके पास जाइये और मेरे इस कुकृत्यके लिये मुझे क्षमा कर देनेके लिये उन्हें समझाइये। मैं भी उन्हें माफ किये देता हूँ। जब मैं उनके यहाँ नौकरी कर रहा था, तब वे धन-मदसे मत्त हो गये थे। उनका कलेजा पत्थर-सा कठोर बन गया था। उस समय तो वे यही समझ रहे थे कि इस संसारमें बस, स्वार्थकी ही विजय है। किंतु अब मैंने सुना है कि उनका हृदय पलट गया है। वे अब परोपकारी बन गये हैं और लोग उन्हें न्यायी तथा भला आदमी मान रहे हैं। अब उन्होंने यह ऐसा अपूर्व धन प्राप्त किया है, जिसे कोई भी चुरा नहीं सकता और जिसका कभी विनाश होनेवाला नहीं।

"अबतक मैं दुष्कर्ममें ही मस्त हो रहा था; किंतु अब [illegible]

दूसरा सारा द्रव्य, जो मैंने लूटा था, वह सब यहीं करीबकी गुफामें गड़ा हुआ है। वे यहाँ आकर ले जायँ। मेरे जिन दो साथियोंको उस गड़े हुए धनका पता था, वे अब मर चुके हैं। इसलिये अब वह धन सुरक्षित है।' मैं चाहता हूँ कि मरते-मरते भी मैं कुछ ऐसा काम करता जाऊँ, जिससे मेरे पापोंका बोझ कुछ हल्का हो जाय। मेरी मानसिक मलिनता भी इस तरह धुलकर स्वच्छ हो जायगी और मोक्षके मार्गकी ओर जानेका कोई वास्तविक अवलम्बन भी मुझे मिल ही जायगा।" यों कहकर गुफाकी जगहका सही पता बताते हुए श्रमणकी गोदमें ही महादत्तने अपनी जीवनयात्रा समाप्त कर दी।

(७)

श्रमण महात्माने कौशाम्बीमें जाकर पाण्डु जौहरीको सारी बातें बता दीं। पाण्डु तुरंत ही कुछ सिपाहियोंको साथ लेकर गुफापर पहुँचे। गुफामें जाकर वहाँ अपने गड़े हुए सारे धनको बाहर निकाला। फिर उन्होंने महादत्त और दूसरे डाकुओंकी लाशोंका सम्मानपूर्वक अग्निसंस्कार करवाया। उस समय महादत्तकी चिताके आगे खड़े होकर पान्थक श्रमणने निम्नलिखित उपदेश दिया—

'हम स्वयं ही बुरे काम करते हैं और स्वयं ही उन बुरे कामोंका फल भोगते हैं। इसलिये हमें स्वयं ही इस बुराईको दूर करके स्वयं ही शुद्ध होना चाहिये। पवित्रता और अपवित्रता दोनों अपने ही हाथमें हैं। दूसरा कोई भी हमें पवित्र नहीं बना सकता। हमें स्वयं ही पवित्रता पानेके लिये प्रयत्न करना होगा। बुद्धभगवान्का भी यही उपदेश है।

'हमारे कर्म किसी दूसरे देवताके बनाये नहीं हैं, हमारे कर्मोंके भीतर ही मोक्ष-प्राप्तिका बीज छिपा है।'

पाण्डु तमाम धनको कौशाम्बी ले आये। वहाँ पहुँच वे बड़ी सावधानीके साथ धनका सदुपयोग करने ल पैसेकी छूट होनेसे व्यापार भी खूब बढ़ गया। उस व्याप कमाईको भी वे उदारतापूर्वक सत्कार्यमें ही व्यय करने ल

जब उनकी वृद्धावस्था आयी और आयुके दिन होते दिखायी दिये, तब उन्होंने अपनी सभी संतानें बुलाकर कहा—"मेरे प्यारे बच्चो! निराश होकर कभी किसी भी अच्छे कामको छोड़ मत देना। यदि वि कार्यमें तुम्हें सफलता न मिले तो उसके लिये किसी दू पर दोष न मँढ़ना। हमें अपनी निष्फलता या दुःख कारणको अपने ही कामोंमें ढूँढ निकालना चाहिये; क्यों वह कारण इन्हींमें छिपा है। उस कारणको दूर कर चाहिये। यदि तुम अभिमान या अहंकारके पर्देको ह दोगे तो तुम्हें अपने जीवनमें ही स्थित अपनी निष्फल और कठिनाइयोंके कारणोंका पता अपने-आप ही ल जायगा और साथ-ही-साथ उनसे छूटनेका मार्ग भी दीख लगेगा। दुःख-नाशका उपाय भी हमारे हाथमें है तुम्हारी आँखोंके सामने मायाका पर्दा न पड़ जाय, इसक खयाल सदा रखना और मेरे जीवनमें जो वाक्य अक्षरश सिद्ध हुआ है, उसका सदा स्मरण करना। वह वाक् यह है—

'जो दूसरोंको दुःख देता है, वह अपने-आपको दुःख पहुँचाता है और जो दूसरोंका भला करता है वह अपना ही भला करता है।' ऐसा मानना।

'देहकी ममताका पर्दा दूर होते ही स्वाभाविक सत्यका मार्ग मिल जाता है।'
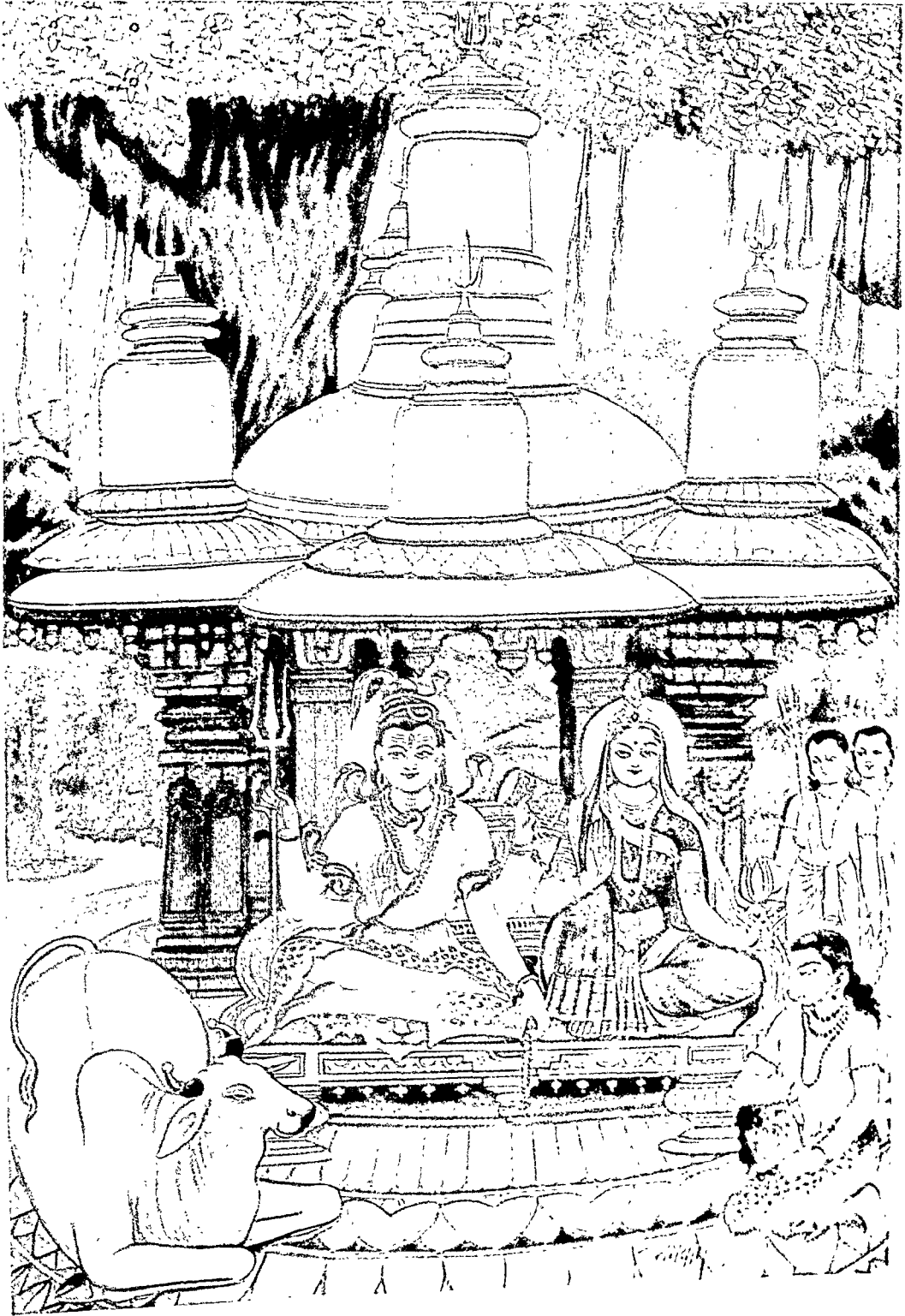
दिव्य कैलासमें भगवान् महादेव-महादेवी

सुन्दर परलोककी बात

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

कौन जानता है कि मरनेपर क्या होगा ?
मृत्युके पर्देके उस पार न जाने क्या है ? कैसा है ?
उस रहस्यमय अवगुण्ठनको किसने खोल पाया है ?

अनिश्चितताके उस महासागरमें डुबकी लगानेपर कहाँ ठिकाना लगेगा—इसे कौन जानता है ?

इत ते सब ही जावहीं मार लदाय लदाय।
उत ते कोउ न आवई..................॥

पर हताश होनेकी बात नहीं।
कुछ प्रमाण 'उत ते' आनेवालोंके भी मिले हैं।

रहस्यका भेद जाननेके लिये मानवकी जिज्ञासा अनादिकालसे सचेष्ट रही है। जीवनके साथ लगी हुई अनिवार्य मृत्युकी ओर मानव कबतक आँख मूँदे बैठा रहता ?

हमारे वेद, उपनिषद्, योगशास्त्र, पुराण आदिमें तो स्थान-स्थानपर जीवन और मृत्युके रहस्यका विशद विवेचन मिलता ही है, विश्वके भिन्न-भिन्न धर्मोंमें भी इसपर कुछ-न-कुछ चर्चा मिलती है। पर आजके संशयशील मानवने भी इस दिशामें कदम उठाया है। मृत्युके उपरान्त जीवनकी शोधके लिये विश्वके विभिन्न अञ्चलोंमें जो कार्य हुआ है, हो रहा है, उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता। इस विषयमें हुई अनेक शोधें प्रकाशमें भी आ चुकी हैं। मरणोत्तर जीवन, परलोक और पुनर्जन्मपर पर्याप्त साहित्य भी उपलब्ध है।

इस सम्बन्धमें प्रामाणिक विवरण प्राप्त करनेके लिये मानसशास्त्री, परामनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक अनेक वर्षोंसे प्रयत्नशील हैं। निम्नलिखित कुछ पुस्तकोंसे इन बातोंकी अच्छी जानकारी प्राप्त की जा सकती है—

लेखकोंके नाम	पुस्तकोंके नाम
१. Dr. D. D. S. Clark डा० डी० डी० एस० क्लार्क	Psychiatry Today साइकिऐट्री टुडे
२. Harry Price हैरी प्राइस	Fifty Years of Psychical Research फिफ्टी ईयर्स ऑव साइकिकल रिसर्च
३. Dr. Richet डा० रिचेट	Thirty Years of Psychical Research थर्टी ईयर्स ऑव साइकिकल रिसर्च
४. Dr. J. B. Ryne डा० जे० बी० राइन	Extra-sensory Perception एक्स्ट्रा-सेंसरी परसेप्शन New Frontiers of Mind न्यू फ्रन्टियर्स ऑव माइंड The Reach of Mind दि रीच ऑव माइंड The World of Mind दि वर्ल्ड ऑव माइंड
५. William James विलियम जेम्स	Varieties of Religious Experience वेराइटीज़ ऑव रेलीजस एक्सपीरियन्स
६. Professor Pratt प्रो० प्रेट	Religious Consciousness रेलीजस कांशसनेस
७. F. W. Wyres एफ० डब्लू० वायर्स	Human Personality and its Survival ह्यूमन पर्सनैलिटी ऐण्ड इटस सर्वाइवल
८. Dr. Hudson डा० हड्सन	Law of Psychical Phenomena लॉ ऑव साइकिकल फेनोमेना
९. Kanga कांगा	Lives of Alien Incarnation, लाइव्ज ऑव एलियन इन्कार्नेशन Fact or Fallacy where Theosophy and Science Meet फैक्ट ऑर फैलेसी हेयर थियॉसॉफी ऐण्ड साइन्स मीट
१०. Theosophical Publication थियासाफिकल प्रकाशन	The other side of Death दि अदर साइड ऑव डेथ

११. Bishop Leadbeater	Chakras; Clairvoyance; Invisible Helpers and Man; Whence, How & Whither
बिशप लेडबीटर	चक्रज़, क्लेयरवायन्स; इन्विज़बल हेल्पर्स ऐण्ड मैन; ह्वेन्स, हाउ ऐण्ड ह्विदर
१२. Butler	Exploring the Psychic World
बटलर	एक्सप्लोरिंग दि साइकिक वर्ल्ड
१३. Oliver Lodge	Survival of Man
ऑलिवर लॉज	सर्वाइवल ऑव मैन
१४. J. C. Bose	Response in the Living and Non-living
जे० सी० बोस	रिस्पॉन्स इन दि लिविंग ऐंड नॉनलिविंग
१५. Dr. Krafford	Reality of Psychic Phenomena
डा० क्रैफर्ड	रियेलिटी ऑव साइकिक फेनोमेना
१६. S. Desmond	You can speak with the Dead
एस० डेसमाण्ड	यू कैन स्पीक विथ दि डेड
	The Incarnation for Every man
	दि इन्कार्नेशन फॉर एवरी मैन
	We do not die
	वी डू नॉट डाइ
	World Birth
	वर्ल्ड बर्थ
	How you live when you die
	हाउ यू लिव ह्वेन यू डाइ !
१७. Randell	The Dead have never Died
रैण्डेल	दि डेड हैव नेवर डाइड
१८. Sir Arthur Edington	Science and The Unseen World
सर आर्थर एडिङ्गटन	साइन्स ऐण्ड दि अनसीन वर्ल्ड

१९. Aurobindo Ghosh	The Problem of Rebirth
अरविन्द घोष	दि प्राब्लेम ऑव रीबर्थ
२०. Vishnu Mahadev Bhatt	Yogic Powers and Realization
विष्णु महादेव भट्ट	योगिक पावर्स ऐण्ड गॉड-इज़ेशन
२१. Arthur Findlay	On the Edge of Etheric
आर्थर फिण्डले	ऑन दि एज ऑव दि एथे
२२. William Cooks	Researches in Spirit
विलियम कुक्स	रिसर्चेज़ इन स्पिरिचुअलि
२३. Simeon Edmunds	Spiritualism: a Cr Survey
साइमन एडमंडस	स्पिरिच्युएलिज्म: ए क्रिटि
	Miracles of the M
	मिरैकल्स ऑव दि माइंड
	Spirit Photograph
	स्पिरिट फोटोग्राफी
२४. F. W. H. Myers	Human Person and Its Surviva Bodily Death
एफ० डबल्यू० एच० मायर्स	ह्यूमन पर्सनैलिटी ऐण्ड इ सर्वाइवल ऑव बोडिली डे
२५. Frank Podmore	Modern Spirituali
फ्रैंक पॉडमोर	माडर्न स्पिरिच्युएलिज्म
२६. Sir William Crookes	Researches in Phenomena of Spiritualism
सर विलियम क्रुकस	रिसर्चेज़ इन दि फेनोमेना स्पिरिच्युएलिज्म
२७. J. Arthur Hill	Spiritualism: its History, Phenom and Doctrine
जे० अर्थर हिल	स्पिरिच्युएलिज्म: इट्स हिस फेनोमेना ऐण्ड डॉक्ट्रिन
२८. Antony Flew	A New Approach Psychical Research
एंटनी फ्ल्यू	ए न्यू एप्रोच टु साइकिकल रि
२९. Sir William Fletcher Barrett	Psychical Research
सर विलियम फ्लेचर बैरेट	साइकिकल रिसर्च

३०. Hereward-Carrington हियरवार्ड कैरिंग्टन	The Psychical Phenomena of Spiritualism दि साइकिकल फेनोमेना ऑव स्पिरिच्युएलिज्म
३१. Joseph MacCabe जोसेफ मैक्केब	Spiritualism: a Popular History from 1847 स्पिरिच्युएलिज्मः ए पोपुलर हिस्ट्री फ्राम १८४७
३२. Charles Richet चार्लस रिचेट	Traite de Metapsychique ट्रेटे द मेटासाइकिक
३३. S. G. Soal एस० जी० सोल	My Thirty Years of Psychical Research माइ थर्टी ईयर्स ऑव साइकिकल रिसर्च
Dion Fortune ा फोरच्यून	Psychic Self-Defence साइकिक सेल्फ-डिफेंस
B. Abdy llins, C. I. E. · एब्डीं कॉलिन्स, › आई० ई०	The Death is not the End दि डेथ इज़ नॉट दि एण्ड
. T. R. ınapathiramier ० आर० गणपथिरामियर	The Life After Death दि लाइफ आफ्टर डेथ
	Conquest of Death, its Fears कान्केस्ट ऑव डेथ, इट्स फीयर्स
›. Chamanlal ठ	Mysteries of Life and Death मिस्टेरीज ऑव लाइफ ऐंड डेथ
४१. H. F. Saltmarsh एच० एफ० साल्टमार्श	Foreknowledge फोरनॉलेज Evidence of Personal Survival from Cross Correspondences एविडेंस ऑव पर्सनल सर्वाइवल फ्राम क्रॉस कॉरेसपाण्डेन्सेज
४२. Zoe Richmond जू, रिचमण्ड	Evidence of Purpose एविडेंस ऑव परपस
४३. C. K. Shaw सी० के० शा	Yes, We do Survive येस, वी डु सर्वाइव
४४. Robert Crookall राबर्ट क्रूकल	More Astral Projections मोर ऐस्ट्रल प्रोजेक्शन्स

× × ×

मृत्युके उपरान्त जो जीवन है, उसकी शोध बहुत ही मनोरञ्जक है। 'इन्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट फॉर साइकिकल रिसर्च'के संस्थापक और 'साइकिकल लीग' के अध्यक्ष श्रीशा डेसमण्डने 'हाउ यू लिव व्हेन यू डाइ' (मृत्युके उपरान्त आप कैसे रहते हैं ?) पुस्तकमें उसका अत्यन्त ही आकर्षक वर्णन किया है। आइये, हम उसकी हलकी-सी झाँकी करें।

× × ×

श्रीशा डेसमण्डके एक मित्र थे—नाटककार। 'जान ब्लेक' मान लीजिये उनका नाम। उनकी बीबी नहीं चाहती उनका नाम प्रकट करना। हाँ, तो ब्लेक साहब 'परलोक' आदिमें कोई विश्वास नहीं करते थे। डेसमण्डसे बात होती तो वे हँसीमें उड़ा देते। कहते, 'क्या बेकारकी बातें करते हो ? कहाँ है, क्या है परलोक······!'

पर पत्नी तो मानो ब्लेककी बात ही नहीं सुनती। ब्लेक कुछ जोरसे बोलता है। अपनी बात दोहराता है। पत्नी फिर भी नहीं सुनती। ब्लेक हैरान। सोचता है—'मैं अपनी आवाज साफ सुन रहा हूँ, पर मेरी बीबी क्यों नहीं सुन पा रही है?'

अचानक ब्लेकको लगता है कि वह चल-फिर सकता है। बिस्तरसे हटकर वह अपनी पत्नीके पास पहुँचता है और उसे छूनेको अपना हाथ बढ़ाता है।

अरे, यह क्या! उसका हाथ पत्नीके आर-पार हो जाता है, पर पत्नीको उसके स्पर्शकी रत्ती भर भी अनुभूति नहीं होती। वह न तो उसे देख पाती है, न उसकी बात ही सुन पाती है।

ब्लेक समझ ही नहीं पाता कि यह सब क्या रहस्य है। तभी उसे खयाल आता है कि वह 'मर' तो नहीं गया! सचमुच, वह 'मर गया' है।

वह सोचने लगता है—"था डेसमण्ड ठीक तो कहता था। ऐसी ही बातें तो वह सुनाया करता था। मैं उसकी सारी बातोंको हँसीमें उड़ा देता था। वह कहता था कि "आत्मा तो कभी मरता नहीं। इस लोकके परे एक दूसरा लोक है—'परलोक'। वह इन आँखोंसे दीखता भले न हो; पर है वह वास्तविक।""

ब्लेक अपनी चारपाईके अगल-बगल चक्कर काटता है। लोहेके पलंगपर उसका शरीर पड़ा है। वह पलंगके लोहेसे टकराता है, पर उसे कोई चोट नहीं लगती। वह आसानीसे इस पारसे उस पार हो जाता है।

अब ब्लेकको लगता है कि वह दरसल 'मर गया'।

× × ×

ब्लेक देखता है कि 'उसके शवके आस-पास सगे-

ब्लेकको लगता है कि वह एक 'नयी दुनिया'में गया। वह बंद दरवाजेके पास पहुँचता है। उसे छू तो अपने आप अपनेको दरवाजेके उस पार पाता दरवाजा बंद है, फिर भी वह दरवाजेके बाहर! किसी दिक्कतके वह दीवालके आरपार हो जाता है।

अब वह उत्तर-पश्चिमी दनके अपने सुन्दर मका आस-पास चक्कर काटता है। उसे लगता है कि मैं चाहे, वहाँ जा सकता हूँ। लार्डके क्रिकेट मैदानमें प्रायः जाया करता था। उसकी बात सोचते ही अपनेको उस मैदानमें पाता है।

ब्लेक थोड़ी देर मैदानमें इधर-उधर चक्कर काट रहता है। कुछ देरमें उसका जी ऊब उठता है। 'अ मेरा घर! मेरी प्यारी बीबी! मेरे प्यारे बच्चे! मित्र!—ये सब कहाँ हैं?' ऐसा सोचते ही ब्लेक फि अपने घरमें पहुँच जाता है।

दरवाजा बंद-का-बंद और ब्लेक भीतर दाखिल बिस्तरपर एक शरीर पड़ा है। यह शरीर 'मेरा' ही है! अ ब्लेकको कुछ झपकी-सी मालूम होती है। कहाँ लेटूँ! इ शरीरके पास—मेरा ही शरीर है यह—इसीके बगलमें लेटूँ यह तो अच्छा नहीं। चलूँ, बैठक-खानेमें लेटूँ। अचान ब्लेक अपने आपको अपने बैठक-खानेमें पाता है। तभी उसे अपने सामने एक महिला दीखती है। बुजुर्ग-सी महिलाकी छाया। 'कौन? अरे,.........'

'बेटा जान, तू आ गया! मैं कबसे तेरी प्रतीक्षा कर रही हूँ।'

वह जान ब्लेककी माँ है। बेटेको वह अपनी बाँहोंमें ले लेती है। ब्लेक गहरी नींदमें ढुलक जाता है।

× × ×

"एक विमान-दुर्घटनामें एक अंग्रेज लड़की 'मेरी'

वह उस समय भी विमानमें थी। हवा बह रही थी और ऊपर था खुला आकाश। वह सोचती है—'पर यह शरीर तो मेरा ही है—मेरीका। तो क्या मैं मर गयी? पर, मैं तो जीवित हूँ। मुझे अपने मित्र आर्थरसे मिलना चाहिये। कितनी बातें कहनी हैं उससे।' और इतना सोचते ही वह आ पहुँची आर्थरके पास।

वह आर्थरको देख रही थी, उसकी बातें सुन रही थी। इतना ही नहीं, आर्थरने भी स्पष्ट रूपसे मेरीकी बातें सुनीं।

'फिर मिलेंगे'—कहकर मेरी वहाँसे विदा हुई।

× × ×

शा डेसमण्डने अपने 'मृत' पुत्र—जॉनके साथ हुई अपनी मुलाकातका भी वर्णन किया है। उन्होंने कई बार उससे भेंट की। २९ दिसम्बर १९३३ को कितने ही लोगोंके समक्ष जॉनने आकर डेसमण्डका हाथ और घुटना छूकर बड़े प्रेमसे कहा—'फादर, आई लव यू!' (पिताजी, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ!)

× × ×

शा डेसमण्डका ही नहीं, परलोकविद्यासे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक लोगोंका कहना है कि 'मरकर भी मनुष्य मरता नहीं। शरीर छूट जाता है, पर आत्मा अमर है। मृत्युके उपरान्त जीव परलोकमें मस्तीसे भ्रमण करता है।' और कैसा सुन्दर है—परलोक! शरीरकी आधि-व्याधिका वहाँ कोई पता नहीं। न कोई रोग है, न कोई बीमारी। न कोई चिन्ता, न कोई परेशानी। पैसेकी वहाँ कोई जरूरत नहीं। न कोई लेन-देन, न कोई खरीद-बिक्री, न कोई सौदेबाजी। न कोई दूकान, न कोई व्यापारी। इच्छाएँ मनमें आते ही पूरी हो जाती हैं वहाँ। ऐसा लगता है, मानो कल्पवृक्षके नीचे ही बैठे हैं सब लोग।

जो इच्छा की, वह तत्काल पूरी हो जाती है।

जिससे मिलना है, इच्छा करते ही उसके पास मौजूद।

आगसे, पानीसे, पत्थरसे, लोहेसे, पहाड़से बिना किसी अड़चनके आत्मा पार चला जाता है। उसके मार्गमें कहीं कोई बाधा ही नहीं आती। परलोकमें न कोई राजनीति है, न कोई दलबंदी। न युद्ध है, न अशान्ति। पुरुष और स्त्री—सब वहाँ समान हैं।

सर्वत्र प्रेम और आनन्दका साम्राज्य है। मस्ती मौजसे भरा जीवन है। आनन्द-कानन है। रंग-बिरंगे हैं, संगीत है और क्या नहीं है?

हाँ, जो लोग जगत्के मायाजालसे बहुत बँधे रहते रुपये-पैसेसे बहुत बँधे रहते हैं, राग-द्वेषके चक्करमें अपने डुबाये रखते हैं—वे जब परलोक पहुँचते हैं तो कुछ दिनों परेशान रहते हैं, रोते-झींकते और कुढ़ते रहते हैं—प कुछ उदार और दयालु आत्मा उनके पास आकर उ ढाढस देते हैं, उन्हें समझाते हैं, उन्हें रास्ता दिखाते तब धीरे-धीरे उनके जीकी जलन दूर होती है और वे तब स्वस्थ और प्रसन्न जीवन बिताने लगते हैं।

परलोकका शरीर ईथर (ether) का बना होता स्वाद, स्पर्श और गन्धसे उसका कोई वास्ता नहीं रहत बेतारके तारकी भाँति सारे समाचार उसे मिलते रहते जिससे जब चाहिये मिलिये, भेंट कीजिये। जब चा पृथ्वीके लोगोंसे मिलिये, जब चाहे परलोकवासियोंसे। जि इस जगत्से बहुत मोह होता है, ऐसे जीव पुनर्जन्म ले फिर इस पृथ्वीतलपर चले आते हैं।

× × ×

मतलब?

परलोक कोई हौआ नहीं।

परलोक कोई कष्ट और यन्त्रणाका आगार नहीं। परलो कोई भयोत्पादक स्थान नहीं। परलोकमें दुनियाकी व झंझट नहीं। वही हाल है—

'यानी रात बहुत थे जागे,
सुबह हुई आराम किया।'

हमारे सभी मृत सगे-सम्बन्धी परलोकमें हमसे मिल ज हैं। हमारी सारी इच्छाएँ वहाँ आनन-फानन पूरी हो जा हैं। सर्वत्र प्रेम, आनन्द और संगीतकी मधुरिमा लहरा दीख पड़ती है। आत्माकी अमरताका प्रत्यक्ष दर्शन हो है। अपने सत्-चित्-आनन्द-स्वरूपका प्रत्यक्ष भास होता है फिर परलोकके नामसे डरने और भयभीत होनेका प्रश्न कहाँ उठता है?

सचमुच, कैसा सुन्दर है इहलोक,
कैसा सुन्दर है परलोक!

अपना सुख देकर दूसरोंका दुःख मिटानेमें महान् सुख और अपार पु

[विदेहराजका अनुपम त्याग]

विदेह देशके प्रसिद्ध राजा विपश्चित बड़े ही धर्मात्मा, सदाचारी, संयमी, यज्ञावशेषभोजी, प्रजापालक, उदार और देवर्षि-पितृपूजक पुण्यपुरुष थे। उन्होंने जीवनमें एक बार अपनी एक धर्मपत्नीका तिरस्कार कर दिया था, इसलिये मृत्यु होनेपर उन्हें नरकोंको देखते हुए नरकोंके समीपके मार्गसे जाना पड़ा।

नरकोंको देखते हुए उनके समीप पहुँचते ही विभिन्न प्रकारकी घोर यातनाओंको भोगते हुए यातनाशरीरधारी नारकी प्राणियोंकी नरक-पीड़ा शान्त हो गयी। यमदूतने राजाके पूछनेपर किस पापसे, किस नरकमें पड़कर जीव कैसी, क्या भयानक पीड़ा भोगता है—यह बताया। तदनन्तर यमदूतके कथनानुसार राजा ज्यों ही आगे बढ़े कि नरकयन्त्रणासे पीड़ित प्राणियोंकी करुण पुकार उन्हें सुनायी पड़ी—'महाराज! हमपर कृपा कीजिये, कुछ देर और ठहर जाइये। आपके शरीरको छूकर बहनेवाली शीतल वायुका स्पर्श पाते ही हमारे सारे संताप, वेदना, यन्त्रणा दूर हो गये हैं। अतः कृपा कीजिये।'

राजा रुक गये। उन्होंने यमदूतसे पूछा कि 'मुझसे स्पर्श करके जानेवाली वायुसे इन नरकके प्राणियोंको क्यों आनन्द मिलता है? मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है?'

यमदूतने कहा—राजन्! आपने कभी केवल अपने लिये नहीं कमाया-खाया है। आपका यह शरीर देवता, पितर, अतिथि, नौकर-चाकर सबको खिलाकर बचे हुए ... से ... हुआ है तथा आपका मन भी सदा

है तो हे भद्रपुरुष! मैं सूखे काठकी तरह अचल यहीं रहूँगा—

> यदि मत्संनिधावेतान् यातना न प्रबाधते
> ततो भद्रमुखात्राहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः
> (मार्कण्डेयपुराण १५

यमदूतने फिर कहा—'यह स्थान आपके लिये न... आप पुण्य-प्राप्त दिव्यलोकमें चलकर वहाँके भोगोंका ... कीजिये।' इसके उत्तरमें राजाने जो कुछ कहा, वह ... कल्याणकामी पुरुषको अपने हृदयपर अङ्कित करके त... आचरण करना चाहिये। राजा बोले—

'मेरे समीप रहनेसे इन नरकवासियोंको ... मिलता है और मेरे न रहनेपर ये सब प्राणी ... हो जायँगे, जब ऐसी बात है तो मैं यहाँसे ... जाऊँगा। शरणमें आनेकी इच्छा रखनेवाले ... एवं दण्डित मनुष्यपर, चाहे वह शत्रुपक्षका ही न हो, जो कृपा नहीं करता, उसके जीवनको धि... है। जिनका मन संकटमें पड़े हुए प्राणियोंकी ... करनेमें नहीं लगता, उनके यज्ञ, दान और ... इहलोक तथा परलोकमें भी कल्याणके साधक ... होते। जिसका हृदय बालक, वृद्ध और क... आतुर प्राणियोंके प्रति कठोरता रखता है, उसे ... मनुष्य नहीं मानता, वह तो निरा राक्षस है—

> ......'न तं मन्ये मानुषं राक्षसो हि सः।'

परमपद अथवा परमधाम-विज्ञान

(लेखक—श्रीमहावीरप्रसादजी श्रीवास्तव 'अनुराग')

नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये ।
नमो नमोऽनन्तमहाविभूतये
नमो नमोऽनन्तदयैकसिन्धवे ॥

परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापक होनेसे संसारके कण-कणमें व्याप्त हैं, यह बात लोकमें प्रसिद्ध है । साथ ही उन्हीं सर्वव्यापी भगवान्के प्रकृतिपार निज धामका उल्लेख भी आर्ष-ग्रन्थोंमें बराबर पाया जाता है, जहाँ जीव कर्म-बन्धन तथा आवागमनके चक्रसे मुक्त हो कैवल्य मोक्ष अथवा भगवान्के साथ दिव्य अप्राकृत लीला-विहारको प्राप्त होते हैं । भगवान्ने स्वयं श्रीमद्भगवद्गीतामें अपने उस परमधामका संकेत किया है—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
(१५ । ६)

अर्थात् भगवान् (अर्जुनके प्रति) कहते हैं—'जहाँ न सूर्य प्रकाश करता है, न चन्द्रमा, न अग्नि (तात्पर्य यह कि जो स्वयं प्रकाशमान है) और जहाँ जाकर फिर नहीं लौटते; अर्थात् आवागमनके चक्रसे मुक्त हो जाते हैं; वह मेरा परमधाम है ।'

इतना ही नहीं; किंतु भगवान्के विविध सगुण-साकार रूपोंके उपासक-सम्प्रदाय, उसी परमधामके अन्तर्गत अपने-अपने इष्ट-धामोंकी ओर भी लक्ष्य करते हैं और उनके लिये आर्ष-ग्रन्थोंमें प्रमाण भी बराबर उपलब्ध होते हैं; जैसे—भगवान् श्रीरामका परमधाम 'साकेत', भगवान् श्रीकृष्णका परमधाम 'गोलोक' और शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज परविष्णुका परमधाम 'पर वैकुण्ठ' इत्यादि ।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सर्वव्यापी परमात्माका भी अलग एक परमधाम मानना कैसे युक्तिसंगत होगा ? कारण कि दोनों बातें एक साथ माननेमें दोनोंमें विरोध स्पष्ट है । तात्पर्य यह कि वे परब्रह्म परमात्मा, यदि सर्वत्र समानरूपसे व्याप्त हैं; तो फिर उनका अलग एक निजधाम होना कैसे सम्भव है ? और यदि इस प्रकार उनका निजधाम माना जाय; तो फिर उन्हें सर्वत्र समान रूपसे व्यापक कैसे कह सकेंगे ? अतएव इस विरोधका समन्वय ही प्रस्तुत निबन्धका मुख्य विषय है ।

इस समन्वयके लिये सबसे प्रथम परमात्माकी सर्वव्यापकतासे सम्बन्धित एक विशेष समस्याकी ओर हमें दृष्टिपात करना अपेक्षित होगा । वह समस्या यह कि परमात्माको लोग सर्वव्यापक मानते और कहते अवश्य हैं; पर साथ ही यह भी सत्य है कि उनकी यह मान्यता अधिकतम शास्त्रप्रमाण अथवा अनुभवी संत-महात्माओं और महापुरुषोंके वचनोंपर ही आधारित रहती है । प्रत्यक्ष रूपसे तो उन सर्वव्यापी परमात्माका दर्शन अथवा अनुभव विशेष साधनाके द्वारा किन्हीं विशेष भाग्यशाली साधकों और भक्तोंको ही हो पाता है । अतएव प्रश्न यह है कि जब वह परमात्मा जगत्के कण-कणमें सर्वत्र व्याप्त और उपस्थित है ही; तो फिर उसका दर्शन अथवा अनुभव सर्वसाधारणको भी क्यों न होना चाहिये ?

कुछ लोग इस प्रश्नके उत्तरमें कह सकते हैं कि 'परमात्मा सर्वव्यापक अवश्य है; पर वह साकार न होकर निराकाररूपसे सबमें व्याप्त है । इसलिये विशेष योगी महापुरुष ही योग-दृष्टिसे उसका अनुभव कर पाते हैं । सर्वसाधारणके लिये यह सम्भव नहीं है ।' पर समस्याके समाधानके लिये यह उत्तर पर्याप्त और संतोषजनक इसलिये नहीं है कि निराकार पदार्थ तो और भी हैं; जैसे वायु और आकाश भी निराकार हैं, पर वायुका अनुभव सभीको होता है । आकाशको भी सभी देखते हैं । इसी प्रकार उस निराकार परमात्माका भी अनुभव किसी सीमातक सर्वसाधारणको भी होना चाहिये ।

कुछ लोग कह सकते हैं कि 'निराकार परमात्मा सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी वह स्थूलदृष्टिका विषय न होकर सूक्ष्म दिव्यदृष्टिद्वारा ही उसका अनुभव तथा साक्षात्कार सम्भव होता है; इस कारण सर्वसाधारणको उसका दर्शन अथवा अनुभव नहीं होता ।' पर यह उत्तर भी पर्याप्त और संतोषजनक तब हो सकता है, जब कि उस परमात्माको स्थूलतामें व्याप्त न मानकर केवल सूक्ष्म और दिव्य जगत्तक ही उसे सीमित मान लिया जाय । पर ऐसा न होकर उसे सूक्ष्म और स्थूल—सभी पदार्थोंमें समानरूपसे व्याप्त माना जाता है । तो फिर स्थूलमें भी सर्वसाधारणमें

प्रह्लादका पूर्वजन्म

[पृष्ठ ४९८

देवर्षि नारदके पूर्वजन्म

[पृष्ठ ४९८

विपश्चित्से नारकी प्राणियोंकी पुकार [पृष्ठ ६३८

विपश्चित्से धर्मराज और इन्द्रकी बातचीत [पृष्ठ ६३९

विपश्चित्का नरकके समीप रहनेका निश्चय [पृष्ठ ६३९

विपश्चित् भगवान् विष्णुके साथ विमानमें [पृष्ठ ६३९

स्वाभाविकरूपसे ही उसका दर्शन अथवा अनुभव क्यों नहीं होना चाहिये ?

अब हम इस सम्बन्धमें यथार्थ कारणकी खोजके लिये लोकव्यवहारके स्वाभाविक नियमोंकी ओर दृष्टि ले जाना उचित समझते हैं।

संसारमें देखा जाता है कि कोई वस्तु सामने उपस्थित होते हुए भी जब हम उसे देख नहीं पाते, तो अवश्य ही उस वस्तुके और हमारे बीच कोई आवरण होता है। उसीके कारण सामने उपस्थित रहते हुए भी हम उस वस्तुको देख नहीं पाते। अतएव ऐसी ही कोई बात हमारे और सर्वव्यापी परमात्माके बीच भी सम्भव हो सकती है, जिसके कारण उस परमात्माके जगत्के कण-कणमें व्याप्त होते हुए भी सर्वसाधारणको उसका दर्शन अथवा अनुभव नहीं हो पाता।

अब यह आवरण भी संसारमें कितने प्रकारके हो सकते हैं, इस बातकी ओर ध्यान ले जाना भी आवश्यक होगा; क्योंकि इसीके सहारे हम अपने और सर्वव्यापी परमात्माके बीच आवरणकी खोज कर सकेंगे।

साधारणरूपसे एक आवरण होता है—दीवार-जैसा। इसमें दीवारके बीचमें होनेके कारण, उस पारकी वस्तु सामने उपस्थित होते हुए भी हमें दिखायी नहीं देती। पर हमारे और सर्वव्यापी परमात्माके बीच इस तरहका कोई पर्दा नहीं है; क्योंकि यदि ऐसा कोई पर्दा हो, तो वह सर्वव्यापी प्रभु उस पर्देमें भी तो व्याप्त है; अतएव उस पर्देपर ही उसका दर्शन अथवा अनुभव बिना किसी प्रयत्नविशेषके स्वाभाविकरूपमें ही सम्भव होना चाहिये।

दूसरा एक प्रकारका पर्दा अभ्यास अथवा निर्माण-कलाके द्वारा सामने उपस्थित होनेवाले चमत्कारों अथवा आविष्कारोंके सम्बन्धमें देखा जाता है। जैसे शीतोष्णका असाधारणरूपसे सहन कर लेना, पहाड़की चोटियोंपर सुगमताके साथ चढ़ जाना, नेत्र बंद करनेपर अनेक प्रकारके दृश्य सामने उपस्थित होना, कान बंद करनेपर अनेक प्रकारके शब्द सुनायी देना, शब्दभेदी बाण चलाना, इत्यादि; ऐसे ही कई वस्तुओंके युक्तिपूर्वक संयोग और संयमके द्वारा रेलके इंजन, तार, मोटर, वायुयान, सिनेमा, रेडियो आदि आविष्कारोंका सामने आ जाना। इन चमत्कारों, अथवा आविष्कारोंकी सम्भावना निश्चित होनेपर भी, उनकी प्रत्यक्षतामें अभ्यासके अभाव अथवा निम[…] कलाके अज्ञानका ही पर्दा रहता है, जिसके कारण सामा[…] रूपसे उनकी प्रत्यक्षता सम्भव नहीं हो पाती। पर ह[…] और सर्वव्यापी परमात्माके बीच इस प्रकारका कोई आव[…] भी सम्भव नहीं है; क्योंकि परमात्मा किसी प्रकारके अभ[…] अथवा निर्माणका परिणाम न होकर नित्य सच्चिदानन्द[…] सबका प्रभु, जैसा वह है वैसा ही नित्य एकरस रहनेवा[…] भगवान् है और सभी प्रकारके अभ्यासों और निम[…] कौशलोंके पीछे मौलिकरूपसे उसका ही नियन्त्रण [...] हुआ है। भौतिक विज्ञानके आविष्कारोंमें भी वैज्ञा[…] विशेषज्ञ प्रकृतिके नियमोंका निर्माण नहीं करते; किंतु [...] अथवा अज्ञातरूपसे प्रकृतिके अन्तर्गत उस सर्वव्य[…] परमात्माद्वारा नियन्त्रित नियमोंको ही खोजते और [...] सीमातक उनकी सूक्ष्मतातक पहुँच पाते हैं।

एक और विचित्र प्रकारका पर्दा होता है—बाजी[…] नटके इन्द्रजालका। बाजीगर नट एक जन-समूहके [...] उपस्थित होकर जादूके द्वारा अनेक प्रकारके आश्चर्यज[…] दृश्य दिखाता है, जो वास्तवमें उस रूपमें सत्य न हो[…] केवल जादूके प्रभावसे उस रूपमें दर्शकोंको दिखायी प[…] हैं। इसे प्रायः नजरबंदीका खेल कहा जाता है। [...] जादू अथवा नजरबंदीके पर्देमें विचित्रता यह होती है [...] वास्तवमें उस स्थलपर हर एक वस्तु अपनी जगहपर जैसी-तैसी बनी रहते हुए भी दर्शकोंको दिखायी दूसरे रू[…] पड़ती है और जादूका प्रभाव हटा लेनेपर फिर पूर्व[…] जैसी-की-तैसी दिखायी पड़ने लगती है। उदाहरणके [...] जैसे बाजीगर नट जादूके द्वारा रुपयेके ढेर दिखा दे[…] है। पर वास्तवमें वहाँ रुपये न होकर केवल जादूके प्रभा[…] रुपयेके ढेर दिखायी पड़ते हैं। उन जादूके रुपयोंसे [...] व्यापार नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता, तो बाजी[…] नट इस प्रकार रुपयोंके ढेर पैदाकर स्वयं बहुत बड़ा [...] बन जाता और पैसेकी लालचमें सड़कोंपर अथवा द्व[…] द्वार जादूका खेल दिखाते फिरनेकी उसे आवश्यकत[…] होती। इसी प्रकार बाजीगर नट शरीरको टुकड़े-टुकड़े [...] हुआ दिखाकर पुनः जादूका प्रभाव हटाकर, शरीरको [...] पूर्ववत् जैसा-का-तैसा दिखा देता है। वास्तवमें शरीर [...] नहीं; किंतु केवल जादूके प्रभावसे कटा हुआ दिखा [...] गया था। तुलसीकृत रामचरितमानसमें, अंगद-रा[…]

संवादके अन्तर्गत प्रसंगवश ऐसे जादूकी चर्चा आयी है। यथा—

इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥
(६।२८।५)

अवश्य ही तीसरे प्रकारके इस जादूके विचित्र आवरणको दृष्टान्तरूपमें सामने रखकर हम अपने और सर्वव्यापी परमात्माके बीच आवरणकी रूपरेखाको समझनेमें किसी सीमातक सफल होनेकी आशा कर सकते हैं; कारण कि सृष्टिव्यापारके सम्बन्धसे परमात्माको भी एक जादूगर नटके रूपमें व्यक्त किया गया है; जैसा कि तुलसीकृत रामचरितमानसमें ही—

नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापइ माया॥
(उत्तरकाण्ड १०३। ४)

सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला॥
(अरण्यकाण्ड ३८। २)

उस अद्भुत नटनागर परमात्माने अपनी मायारूपी जादूके द्वारा इस जगत्-प्रपञ्चकी रचना की है, जैसा श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामके वचनोंसे ही स्पष्ट है—

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा॥
(उत्तरकाण्ड ८५। २)

अतएव हमारे और सर्वव्यापी-परमात्माके बीच नट-द्वारा उपस्थित किये हुए जादूके दृश्योंके समान, परमात्माकी मायाद्वारा उत्पन्न यह जगत्-प्रपञ्चकी रचना ही विचित्र ढंगका आवरण है; जिसके कारण ही, परमात्माके जगत्के कण-कणमें सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी सर्वसाधारणको उनका दिखायी पड़ता है और यही सत्य प्रतीत होता है; जैसा कि तुलसीकृत रामचरितमानसमें ही स्पष्ट है—

जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥
(बालकाण्ड ११६। ४)

इस स्थलपर एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि उपर्युक्त श्रुतिके अनुसार यदि अपने संकल्पसे स्वयं परमात्मा ही जगत्-प्रपञ्चके रूपमें परिणत हुआ है तो फिर यह जगत् भी तो ब्रह्म अथवा परमात्मा ही हुआ। तो फिर इस संसार-प्रपञ्चसे पृथक् ब्रह्म अथवा परमात्माके दर्शन अथवा अनुभवके प्रयत्नकी आवश्यकता ही क्या है?

अवश्य ही उक्त श्रुतिकी सामान्य ध्वनिको देखते हुए इस प्रकारका प्रश्न असंगत नहीं कहा जा सकता। इतना ही नहीं, एक दूसरी श्रुति स्पष्टरूपमें ही जगत्को ब्रह्मका रूप कह रही है; यथा—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।'

पर इस स्थलपर विशेषरूपसे ध्यान देनेकी बात यह है कि वह परमात्मा प्रत्यक्ष रूपमें नहीं; किंतु नटके जादूकी तरह अपनी मोहिनी मायाके द्वारा इस जगत्के रूपमें उपस्थित हुआ है; अतः जगत्के ब्रह्म अथवा परमात्माका ही रूप होते हुए भी, ब्रह्म अथवा परमात्माके जो गुण और लक्षण शास्त्र तथा अनुभवी महापुरुषोंके द्वारा सुने जाते हैं और जिनके कारण ही मुमुक्षु अथवा भक्त साधक उस परम प्रभुके साक्षात्कारके लिये उत्सुक और लालायित होते हैं; वह बात इस मायिक जगत्में नहीं पायी जाती। अतएव जगद्रूपी ब्रह्मके सामने उपस्थित होते हुए भी प्रत्यक्ष रूपसे उस ब्रह्म अथवा परमात्माके दर्शन और साक्षात्कारकी अपेक्षा अनिवार्य-रूपमे बनी ही रहती है।

सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ।
प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥

भगवान् ब्रह्माको अपनेसे उत्पन्न करके उन्हें आदेश देते हैं कि 'हे ब्रह्माजी ! तुम स्वयम्भू, सर्ववेदमय, अपने-आपसे ही मुझमें लीन हुई सम्पूर्ण प्रजाकी पूर्वके समान रचना करो ।' और भी—

कदाचिद्ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् ।
कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान् समवेतान् यथा पुरा ॥
(श्रीमद्भा० ३ । १२ । ३४)

'ब्रह्माने विचार किया कि मैं पहलेके ही समान सब लोकोंकी रचना किस प्रकार करूँ । उस समय उनके चार मुखोंसे चार वेद प्रकट हुए ।' और भी भगवान्का साक्षात्कार कर लेनेके पश्चात् ब्रह्माद्वारा विश्व-सृजनके सम्बन्धमें निम्नलिखित श्लोक आया है—

अन्तर्हितेन्द्रियार्थाय हरये विहिताञ्जलिः ।
सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥
(श्रीमद्भा० २ । ९ । ३८)

'ब्रह्माने अन्तर्धान हुए हरिको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पूर्ववत् इस विश्वको रचा ।'

उपर्युक्त श्लोकोंमें आये रेखाङ्कित यथापूर्व, यथापुरा और पूर्ववत् शब्द इस सम्बन्धमें विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य हैं ।

इस प्रकार महाप्रलयमें जब सारी सृष्टि परमात्मामें लय हो जाती है, उस समय वह परमात्मा अपनेमें लय हुई सृष्टिके सहित एक रहते हैं; यही **'एकोऽहं बहु स्याम ।'**में **'एकोऽहं'** का तात्पर्य है । फिर उस एकसे बहुत हो जानेका संकल्प होनेपर उस अपनेमें लीन सृष्टिको ही पूर्वकी भाँति पुनः प्रकट कर देते हैं, यही **'बहु स्याम'** का अभिप्राय है । अब इस सृष्टि अथवा जगत्-प्रपञ्चकी परमात्मासे पृथक् कोई स्वतन्त्र सत्ता न होकर, उनके अङ्गविशेषके रूपमें नित्य स्थित रहते हुए, उन परमात्माके ही संकल्पसे रचनाकालमें, उनसे ही इसका केवल आविर्भाव और प्रलयकालमें उनमें ही तिरोभावमात्र होता रहता है । यह संसार जड-चेतनात्मक होनेसे इसे 'चिदचित् प्रकृति' भी कहा जाता है । यह चिदचित् प्रकृति अथवा जगत् यद्यपि उपर्युक्त दृष्टिसे परमात्मासे पृथक् न होकर उनका अङ्ग ही है; फिर भी इसकी अपनी एक विचित्र विशेषता है । वह विशेषता यह कि इस चिदचित् प्रकृतिमें परिवर्तन अथवा विकृति भी सम्भव है, पर इसके परिवर्तन अथवा विकृतिसे, परमात्माके स्वरूप और उनकी नित्य एक-रसता और निर्विकारतामें कोई अन्तर नहीं आता । मनुष्यके शरीरमें बालोंके दृष्टान्तसे इस बातको सुगमताके साथ समझा जा सकता है । वह इस प्रकार कि जैसे शरीरमें सिरके अथवा अन्य स्थलके बाल भी हैं तो शरीरका ही भाग; पर जैसे शरीरके किसी भागपर त्वचामें किसी प्रकारकी चोट अथवा आघातसे शरीरमें जख्म अथवा पीडा उत्पन्न होकर वह भाग विकृत हो जाता है; उस प्रकार बालोंमें किसी प्रकारकी चोट अथवा दबाव पड़नेपर भी उनमें कोई विकृति नहीं आती; सिरके बालोंको अनेक प्रकारसे ऐंठिये, गुहिये, गाँठ लगाइये, कंघीसे उन्हें छेड़कर इधर-उधर कीजिये; पर उससे शरीरमें कोई आघात अथवा विकृति नहीं आती; किंतु इस प्रकार बालोंको छेड़कर उनमें अनेक प्रकारके गठन अथवा रूप-परिवर्तनसे शरीरके सौन्दर्य और शृङ्गारमें ही एक विशेषता उत्पन्न होती है । इसी प्रकार उपर्युक्त कथनके अनुसार परमात्मामें ही उसके अङ्गरूपमें स्थित चिदचित् प्रकृति अथवा संसारके परिणामी और परिवर्तन-शील होनेसे भी, उस नित्य एकरस परमात्माके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं आता; प्रत्युत वेदान्तदर्शनके **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ।'** (२ । १ । ३३) सूत्रके अनुसार उन प्रभुके बिना किसी विकारके केवल लीलाके रूपमें, उसके द्वारा इस सृष्टि-व्यापारका अवकाश प्राप्त होता है । इस दृष्टिसे ब्रह्मको चिदचिद्विशिष्ट भी कहा जाता है । पर इस चिदचित् प्रकृतिकी ब्रह्मसे पृथक् कोई स्वतन्त्र सत्ता न होकर, शरीर रोम और नखके समान यह उस परमात्मामें ही स्थित है इसलिये इससे ब्रह्मके अद्वैत होनेमें भी कोई बाधा नहीं उपस्थित होती ।

अब जैसे नटके द्वारा उपस्थित किये हुए जादूके दृश्योंको देखनेवाले अज्ञ बालक तो उन दृश्योंको सत्य ही मानकर भ्रमित रहते हैं; पर जिन प्रौढ़ लोगोंको जादूका ज्ञान हो जाता है, वे उन जादूके दृश्योंसे भ्रमित, चकित और मोहित न होकर, उन्हें जादूका खेल समझकर सजग और सावधान रहते हैं; यद्यपि दृश्य तो उनके सामने वही रहते हैं । इसी प्रकार शास्त्र और सत्संगद्वारा जिन्हें इतना पता हो जाता है कि यह संसार मायाद्वारा उत्

भगवान्‌का खेल है, वे इसमें मोहित और भ्रमित न होकर, इसे भगवान्‌के ऐश्वर्यके रूपमें ही देखते हैं।

अब जैसे पर्दा मोटा और घना होनेपर उस पारकी वस्तु बिल्कुल नहीं दिखायी देती; पर किन्हीं उपायोंद्वारा पर्देके हल्का और झीना हो जानेपर कुछ दिखायी देने लगती है; और इस प्रकार विशेष उपायोंद्वारा पर्दा जितना-जितना हल्का और झीना होता जाता है, उतना ही पारकी वस्तु अधिक स्पष्टरूपमें दिखायी देने लगती है। इसी प्रकार भक्ति, योग और ज्ञानकी गम्भीर साधनाद्वारा, मायाका आवरण भी हल्का पड़ता जाता है और इस प्रकार उपासनाके द्वारा जितना यह मायाका आवरण हल्का पड़ता जाता है, उतना-ही-उतना इस मायिक जगत्‌के पीछे सर्वव्यापी ब्रह्मकी संज्ञा भी झलकने लगती है। इस प्रकार अनेक भक्ति और अध्यात्म-पथके साधकों तथा महापुरुषोंको शरीर रहते इस मानव-जीवनमें ही परमात्माका साक्षात्कार अथवा अनुभव होने लगता है। पर इस जगत्-प्रपञ्चकी उत्पत्ति ही मायाद्वारा हुई है; अतः इस जगत्‌में वह साक्षात्कार अथवा अनुभव कितना भी स्पष्ट क्यों न हो, पर उसमें कुछ-न-कुछ प्रकृति अथवा मायाका आवरण रहता ही है। अब इस स्थलपर स्वाभाविकरूपमें ही एक प्रश्न उठता है कि शास्त्र तथा अनुभवी संत-महात्माओंके वाक्योंमें भगवान्‌को जीवके सच्चे स्वामी, पिता, माता, सखा, प्रियतम—कहकर अतिशय निकटका सम्बन्ध सूचित किया गया है। तब इस प्रकारकी आत्मीयता और इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी वे प्रभु साधक जीवात्माके लिये भी सदा पर्देमें ही रहें; प्रत्यक्ष निरावरण और स्थायीरूपमें उनका संयोग कभी सम्भव ही न हो; यह भी कहाँतक युक्तिसंगत कहा जा सकता है। साथ ही दूसरी समस्या यह भी है कि यह प्राकृत शरीर तो कर्मोंसे उत्पन्न होता है और प्रारब्ध-भोगतक ही रहता है। इस संसारमें आवागमन और शरीरोंकी प्राप्ति कर्मोंके द्वारा होती है; पर ज्ञान और भक्तिकी साधनाके द्वारा कर्म-बन्धन समाप्त हो जानेपर, इस संसारमें शरीर-धारण करनेका अवकाश ही नहीं रहता; अतः उस स्थितिमें वह मुक्त जीवात्मा कहाँ रहेगा?

यद्यपि सामान्यरूपसे लोगोंका ज्ञान प्रायः परमात्माके सर्वव्यापकत्वके गौरवतक ही सीमित रहकर, वे इतनेसे ही उसे सर्वदेशी मानते हैं; पर वास्तवमें उस परब्रह्म परमात्माकी महिमा इतने तक ही सीमित न होकर, वह इस सर्वव्यापकत्वसे भी बहुत महान् है। इस बातका संकेत श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने स्वयं अर्जुनके प्रति किया है। यथा—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥
(१०।४२)

भगवान् कहते हैं—'अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तुम्हारा क्या प्रयोजन? (सारांश रूपमें यह कि) मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌को अपने एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ।'

अब भगवान्‌के इस कथनके अनुसार उपर्युक्त समस्याओंके समाधानके सम्बन्धमें श्रुति-वाक्योंकी ओर ध्यान दीजिये।

परमात्माकी इस महिमाकी स्पष्ट घोषणा वेदोंमें भी की गयी है। वहाँ परमात्माको चतुष्पाद् कहकर, उनके एक पादमें उत्पत्ति, पालन और संहारके व्यापारवाला यह सारा विश्व जगत् और इससे परे तीन पाद अमृत, शुद्ध ब्रह्म, प्रकृतिपार दिव्य विभूतिमें कहा गया है। यथा—

'सोऽयमात्मा चतुष्पात्। पादोऽस्य सर्वभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।' और भी पुरुषसूक्तमें—

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥
(ऋग्वेद १०।९०।३)

पुरुषसूक्तकी उपर्युक्त श्रुतिमें परमात्माकी उक्त महिमाका संकेत करते हुए उसी स्थलपर आगेकी निम्नलिखित श्रुतिमें 'त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः' उस परम पुरुष परमात्माको त्रिपादसे भी ऊर्ध्व अर्थात् एकपाद और त्रिपाद दोनों विभूतियोंका स्वामी, अधिष्ठातृदेव अर्थात् उभय विभूतिनायक सूचित किया गया है। यथा—

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि॥
(ऋग्वेद १०।९०।४)

तुलसीकृत रामचरितमानसमें भी बालकाण्डके अन्तर्गत, मानस-प्रतिपाद्य भगवान् श्रीरामको शंकरजीके द्वारा 'परावरनाथ' (पर अर्थात् त्रिपाद्-विभूति, अवर अर्थात् अपर, एकपाद-विभूति) इस प्रकार दोनों विभूतियोंके नाथ कहा गया है। यथा—

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥
(बालकाण्ड ११६)

उपर्युक्त त्रिपाद्विभूति अथवा पर विभूतिको उपनिषदोंमें दिव्य ब्रह्मपुर, परव्योम, विष्णुपरमपद इत्यादि अनेक नामोंसे व्यक्त किया गया है, जिसमें उस परम पुरुष परमात्माका निवास सूचित किया गया है। यथा—

मुण्डकोपनिषद्, मु० २। खं० २। ७ में—

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः॥

'**यः सर्वज्ञः**=जो सर्वज्ञ; **सर्ववित्**=सब ओरसे सब कुछ जाननेवाला है; **यस्य**=जिसकी; **भुवि**=जगत्में; **एषः**=यह; **महिमा**=महिमा है; **एषः हि आत्मा**=यह ही सबका आत्मा (परमात्मा); **दिव्ये व्योम्नि ब्रह्मपुरे**=दिव्य आकाश, ब्रह्मपुरमें प्रतिष्ठित है।'

और भी—मुण्डकोपनिषद्, मु० २, खं० २। ९ में—

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥

तत्=वह; **विरजम्**=निर्मल; **निष्कलम्**=अवयवरहित; **ब्रह्म**=ब्रह्म; **हिरण्मये परे कोशे**=प्रकाशमय परमकोश (परव्योम) में प्रतिष्ठित है; **तत्**=वह; **शुभ्रं**=विशुद्ध; **ज्योतिषां ज्योतिः**=ज्योतियोंकी भी ज्योति है; **यत्**=जिसको; **आत्मविदः**=आत्मज्ञानी; **विदुः**=जानते हैं।'

उस परमपद अथवा परमधाममें न सूर्य प्रकाश करता है, न चन्द्रमा, न अग्नि; तात्पर्य यह कि वह स्वयं प्रकाशमान है। इस सम्बन्धमें प्रमाणके लिये श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १५, श्लोक ६, प्रस्तुत निबन्धके आरम्भमें ही दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त उपनिषद्में भी यही बात स्पष्ट है। यथा—मुण्डकोपनिषद् में—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥
(२। २। १०)

'**तत्र**=वहाँ; **न सूर्यः भाति**=न सूर्य प्रकाश करता है; **न चन्द्रतारकम्**=न चन्द्रमा और नक्षत्र ही प्रकाश करते हैं; **न इमाः विद्युतः भान्ति**=न ये बिजलियाँ ही वहाँ प्रकाश करती हैं; **अयं अग्निः कुतः**=फिर इस (लौकिक) अग्निकी तो बात ही क्या है? तात्पर्य यह कि तो फिर यह लौकिक अग्नि वहाँ क्या प्रकाश करेगी? (कारण कि); **तम् भान्तम् एव**=उसके प्रकाश करते हुए ही (उसके प्रकाशसे); **सर्वम्**=ऊपर कहे हुए सूर्य, चन्द्रमा आदि सब प्रकाशित होते हैं। **तस्य भासा**=उसीके प्रकाशसे; **इदं सर्वम्**=यह सम्पूर्ण विश्व—जगत्; **विभाति**=प्रकाशित होता है।

यह त्रिपाद्-विभूति, दिव्य परव्योम अथवा परमधाम उन परब्रह्म परमात्मासे भिन्न कोई अन्य तत्त्व न होकर, उन्हींका प्रकाश, उन्हींका रूप, शुद्ध ब्रह्म ही है। केवल संसारी कर्मबन्धन और आवागमनके चक्रसे मुक्त आत्माओंके उसमें प्रवेश और निवासके सम्बन्धसे उसे परमधाम, ब्रह्मपुर आदि (स्थानसूचक) शब्दोंसे व्यक्त किया गया है। दृष्टान्तके लिये, जैसे सूर्य अपनी किरणोंके प्रकाशके बीच रहता है; वह किरणोंका प्रकाश, सूर्यसे भिन्न कोई पदार्थ न होकर सूर्यका ही रूप है; ऐसे ही परमधामके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये।

कर्मोंके भोगपर्यन्त जीव इस एकपाद्-विभूति संसारमें अनेक शरीर धारण करते हुए, आवागमनके चक्रमें जन्म-मरणको प्राप्त होते रहते हैं। पर ज्ञान और भक्तिकी साधनाद्वारा कर्मबन्धनसे मुक्त होनेपर फिर वे इस संसारमें जन्म नहीं धारण करते। अब ऐसी स्थितिमें वे मुक्तात्मा कहाँ तो रहेंगे? वही है यह 'परमपद' अथवा 'भगवान्‌का परमधाम', जहाँ कर्मबन्धनसे मुक्त जीव, अपने सहज आत्मस्वरूपको प्राप्त होकर स्वयं ब्रह्ममें निवास करते हैं।

इस प्रकार परमात्माका सर्वव्यापकत्व तो इस एकपाद्-विभूति, विश्व-जगत् तक ही सीमित है; कारण कि व्यापक शब्द कहते ही, व्यापक और व्याप्य दोकी कल्पना सामने आ जाती है और इस प्रकारका द्वैत इस मायिक जगत्में ही सम्भव है। यहाँ जगत् व्याप्य और परमात्मा व्यापक है। यह व्याप्य और व्यापकका द्वैत, परमपद अथवा परमधाममें नहीं होता। वहाँ तो एक अद्वितीय शुद्ध ब्रह्म ही है; वही धाम भी है और वही धामी भी है। द्वैतरूप मायाका आवरण वहाँ नहीं है।

पर उस दिव्य परमधाममें त्रिगुणात्मिका मायाका व्यापार न होते हुए भी एक अलौकिक विचित्रता यह है

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥

'वह परब्रह्म सर्व-इन्द्रियगुणोंके आभाससे युक्त है; यद्यपि वह सर्व-इन्द्रियोंसे रहित है। वह स्वयं अनासक्त है। तात्पर्य यह है कि उसमें जो इन्द्रियगुणोंका आभास है, उसमें वह स्वयं अपने सुखके लिये आसक्त नहीं है। पर वह सबका भरण करनेवाला अर्थात् अपने प्रति संयोग और लीलाके आनन्दकी तीव्र उत्कण्ठावाले, सभी प्रेमभक्ति-परायण उपासकोंके उस चरम लक्ष्यको पूर्ण करनेवाला है। इस प्रकार वह सच्चिदानन्द, रसरूप, परब्रह्म परमात्मा अपने लिये अनासक्त और निर्गुण होते हुए भी, प्रेमभक्ति-परायण आत्माओंको अपने दिव्य संयोग और लीला-विहारका आनन्द देनेके लिये गुणोंका भोक्ता भी है। यह उसकी अलौकिक सामर्थ्य और सर्वशक्तिमत्ता है।'

सर्व-इन्द्रियोंसे रहित होते हुए भी उस परब्रह्ममें सर्व-इन्द्रियगुणोंके व्यापारकी अपार अलौकिक दिव्य शक्ति और सामर्थ्यको अन्य श्रुतियोंमें भी व्यक्त किया गया है। यथा—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३। १९)

'वह परमात्मा हाथ-पैरोंसे रहित होते हुए भी समस्त वस्तुओंको ग्रहण करनेवाला तथा वेगपूर्वक सर्वत्र गमन करनेवाला है। नेत्रोंके बिना भी वह सब कुछ देखता है, कानोंके बिना भी वह सब कुछ सुनता है। वह समस्त जाननेवाली वस्तुओंको जानता है; पर उसको कोई नहीं जानता। अर्थात् उसका कोई पार नहीं पाता। उस परमात्माको महान् आदिपुरुष कहा जाता है।'

तुलसीकृत रामचरितमानसमें भी बालकाण्डके अन्तर्गत यही बात स्पष्ट है। यथा—बालकाण्ड ११७। ३-४ में—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु कर्म करइ बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥

इस प्रकार इस एकपाद्-विभूति जगत्के कण-कणमें व्याप्त होते हुए भी प्रकृतिपार त्रिपाद्-विभूति उस परब्रह्म परमात्माका निज धाम है। वहाँ व्यापक-व्याप्यका द्वैत न होकर इस परमधाममें वह अद्वितीय परब्रह्म मुक्तात्माओंमें बिना किसी व्यवधान (आवरण) के सतत प्रत्यक्ष रहता है। कैवल्यमोक्षके नैष्ठिक वहाँ अपने अहंको विलीन करके सहज आत्मस्वरूपको प्राप्तकर 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भव[illegible]' चरितार्थताको प्राप्तकर ब्रह्मरूप हो जाते हैं। पर प्रे[illegible] के नैष्ठिक माधुर्य-उपासक उस परमधाममें उसी स्वरूपमें स्थित हो, देही-देहविभागरहित दिव्य विग्रहको प्राप्तकर, उस सत्-चित्-आनन्दघन, [illegible] प्रेमस्वरूप, आनन्दस्वरूप, प्रकाशस्वरूप पर[illegible] साथ स्वामी, सखा, प्रियतम आदि नित्य सम्बन्धोंमें समस्त ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, प्रकाश, प्रेम, [illegible] आदि दिव्य गुणोंका रसास्वादन करते हुए, अपने लक्ष्य भगवान्के साथ नित्य लीला-विहारको प्राप्त होते [illegible] उपासनाके दृष्टिकोणसे उस नित्य लीला-विहारके अ[illegible] भाविक उपासकगण साकेत, गोलोक, वैकुण्ठ आदि इष्ट धामोंका भी लक्ष्य रखते हैं; वह भी उस अखिल विराट्मय परब्रह्ममें कोई असम्भव बात न होकर [illegible] उपस्थिति भी उस अनन्त दिव्य लीलामय परम[illegible] स्वाभाविकरूपसे है ही।

एक बात और समझ लेनेकी है। वह यह कि त्रिपाद्-विभूति, परमधामके सम्बन्धमें धाम और ब्रह[illegible] जैसे स्थान-सूचक शब्दोंके प्रयोगसे कहीं यह भ्रम न [illegible] जाय कि वह परमधाम इस प्रकृति-मण्डलके [illegible] विशाल देश अथवा महाद्वीप-जैसा कोई विस्तृत विशाल स्थानविशेष ही होगा। किंतु वह कहीं बाहर होकर प्रकृतिके स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों आवरणोंके एवं जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंसे नि[illegible] तुरीयरूप, देश और कालकी सीमासे परे, शून्यके पार [illegible] अध्यात्म है और ध्यानकी गम्भीर एकाग्रतासे उ[illegible] समाधिकी स्थितिमें उपलब्ध अध्यात्मज्ञानके द्वारा अनुभवगम्य है। इसीका संकेत तुलसीकृत विनयपत्रिका[illegible] अन्तर्गत भक्तिकी अलौकिक महिमासे सम्बन्धित एक पद[illegible] अन्तिम भागमें किया गया है। यथा—

ते-भगति करत कठिनाई।
सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई॥

× × ×

: द्दस्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत बियोगी॥
मोह भय हरष दिवस-निसि देस काल तहँ नाहीं।
तदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं॥
(पद १६७)

इस प्रकार उपर्युक्त विस्तृत विवेचनसे यह स्पष्ट हो ा है कि परम पुरुष, परमात्माके इस एकपाद् विश्व-त्के कण-कणमें सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी, प्रकृतिपार के परमधामकी मान्यता श्रुति, पुराण एवं अन्य ग्रन्थोंके प्रमाणके साथ-ही-साथ सात्त्विक तर्ककी दृष्टिसे सर्वथा युक्तिसङ्गत है।

अब अन्तमें प्रस्तुत विषयसे ही सम्बन्धित उपनिषद्के प्रसिद्ध मन्त्रको स्पष्टीकरणके सहित उपस्थित कर न्थको समाप्त किया जाता है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

परमधामके संदर्भमें, इस मन्त्रमें 'अदः' शब्दसे त्रिपाद्-विभूति परमधाम और 'इदम्' शब्दसे एकपाद्-विभूति विश्व-जगत्का लक्ष्य मानकर अर्थ करनेसे मन्त्रका तात्पर्यार्थ बहुत स्वाभाविकरूपमें सामने आ जाता है।

यथा—

ॐ; पूर्णमदः, अर्थात् वह त्रिपाद्ब्रह्म, परमपद अथवा परमधाम, शून्य न होकर सच्चिदानन्दघन परमात्माके ऐश्वर्य, माधुर्य, आकाश, सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द आदि दिव्य गुणोंके वैभवसे 'पूर्ण' अर्थात् भरा हुआ है।

पूर्णमिदं, अर्थात् यह एकपाद्, विश्व-जगत् भी, अनेक प्रकारकी विचित्र त्रिगुणात्मिका सृष्टि और उसके कण-कणमें परमात्माकी व्याप्तिसे पूर्ण अर्थात् भरपूर है।

पूर्णात्पूर्णमुदच्यते, अर्थात् पूर्वोक्त पूर्णत्रिपाद् शुद्ध ब्रह्म, अथवा परमधामसे ही यह द्वितीय पूर्ण एकपाद् विश्व-जगत् भी पूर्ण अर्थात् भरपूर है; ऐसा कहा जाता है।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। अर्थात् पूर्वोक्त पूर्ण, त्रिपाद् ब्रह्म अथवा परमधामके अर्थात् उससे उत्पन्न पूर्ण, विश्व-जगत्को निकाल लेने, तात्पर्य यह कि सृष्टिके रूपमें पृथक्रूपमें प्रकट कर देनेपर भी, वह त्रिपाद्ब्रह्म अथवा परमधाम, पूर्ण ही अर्थात् कुछ कम न होकर पूर्ववत् सम्पन्न और भरपूर ही बचा रहता है।

भगवत्तत्त्व एक है

निर्गुण निराकार हैं वे ही निर्विशेष वे ही पर-तत्त्व।
वही सगुण हैं निराकार सविशेष सृष्टि-संचालक तत्त्व॥
वही सगुण साकार दिव्य लीलामय शुद्धसत्त्व भगवान।
अगुण सगुण साकार सभी हैं एक अभिन्न रूप सुमहान्॥

कैवल्य मोक्ष और परमधामके अधिकारी

निर्गुण निराकारके साधक पाते हैं 'कैवल्य' महान्।
होते लीन ब्रह्ममें तत्क्षण क्षारोदधिमें लवण-समान॥
पर 'कैवल्य' नहीं दे पाता जिन प्रेमी भक्तोंको तोष।
मुक्त भक्त वे 'परमधाम'में जाकर पाते हैं परितोष॥

परलोकको सुधारनेके उपाय

(लेखिका—श्रीमती प्रेमवती देवीजी शर्मा)

परलोकको सुधारनेके लिये मनुष्यको गीतोक्त दैवी सम्पत्तिका आश्रय लेना चाहिये। दैवी-सम्पत्तिके आश्रयसे मनुष्यका स्वभाव देवताके सदृश बन जाता है, जिससे वह सर्वदा-सभीमें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की दृष्टि रखता है। ऐसा व्यक्ति सर्वदा, सभीके लिये हित-चिन्तनमें तत्पर रहता है और स्वप्नमें भी किसीके अनिष्टका चिन्तन नहीं करता। वह सर्वत्र ईश्वरकी व्यापकता और सभीमें ईश्वरका अस्तित्व समझता है। वह ईश्वरमें विश्वास और धर्ममें श्रद्धा-विश्वास रखता है। वह सभीमें समभाव और सुहृद्भाव रखता है, सभीके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझता है। वह सर्वदा परोपकारमें तत्पर रहता हुआ परमात्म-चिन्तनमें संलग्न रहता है। वह अपने पिता, माता एवं गुरुजनोंमें श्रद्धा-भक्ति रखता हुआ उनकी सेवा-शुश्रूषा करता है। वह इहलोककी तरह परलोकमें पूर्ण विश्वास रखता है। इस प्रकार जो लोग दैवी-गुणोंसे सम्पन्न रहते हैं, वे ही अपना इहलोक और परलोक दोनों सुधार लेते हैं। परलोकको सुधारनेके लिये बहुत-से उपाय हैं, जिनमेंसे कुछ उपाय लिखे जाते हैं। इनके पालन करनेसे अवश्य ही परलोकमें सुधार हो सकता है।

१—इहलोककी तरह परलोकको भी मानना चाहिये।

२—अच्छे और बुरे कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है, विश्वास रखना चाहिये।

३—अपने पितरोंका श्राद्ध और तर्पण सदा करना चाहिये।

४—वेद और वेदोक्त कर्मोंमें श्रद्धा-विश्वास करना चाहिये।

५—पर-निन्दा और पर-हानिसे सर्वदा बचना चाहिये।

६—परद्रव्य और पराये हकसे सदा बचना चाहिये।

७—गीता, रामायण और श्रीमद्भागवतका अध्ययन—इनकी कथा सुननी चाहिये।

८—महापुरुषोंके चरित्र प्रतिदिन सुनने चाहिये और तदनुसार अपने चरित्रको बनाना चाहिये।

९—अपने-अपने बालकोंको ऐतिहासिक, [illegible] और धार्मिक कथाएँ सुनानी चाहिये, जिनसे उनका [illegible] उज्ज्वल हो।

१०—अपना रहन-सहन, खान-पान सादगीसे और सात्त्विक होना चाहिये।

११—जो मनुष्य जिस आश्रममें रहे, वह उसके [illegible] रहे और उसको उस आश्रमकी मर्यादाका पालन [illegible] करना चाहिये।

१२—प्रत्येक जातिको अपनी जातिके अनुसार [illegible] पालन करना चाहिये।

१३—अपने किये हुए धर्मकी और अपने किये [illegible] दानकी प्रशंसा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दू[illegible] सुननी चाहिये।

१४—आत्मस्तुति या आत्मप्रशंसा न तो स्वयं [illegible] चाहिये और न दूसरेसे सुननी चाहिये।

१५—अपने आत्माको सब प्रकार उन्नतिशील बना[illegible] प्रयत्न करना चाहिये।

१६—पुरुषको परस्त्री और स्त्रीको परपुरुषसे स[illegible] बचना चाहिये।

१७—वेदादि सच्छास्त्रोंकी निन्दा, गुरुजनोंकी निन्[illegible] ब्राह्मणोंकी निन्दा, साधु-महात्माओंकी निन्दा, धार्मिकों[illegible] निन्दा और देवी-देवताओंकी निन्दा न तो स्वयं कर[illegible] चाहिये और न दूसरोंसे सुननी चाहिये।

१८—मनसा-वाचा-कर्मणा—किसीके आत्माको क[illegible] नहीं पहुँचाना चाहिये।

१९—धर्म करनेसे उत्तम लोककी प्राप्ति और अध[illegible] करनेसे अधम लोककी प्राप्ति होती है, इसमें विश्वा[illegible] रखना चाहिये।

२०—धर्माचरणसे समस्त दुःखोंकी निवृत्ति होकर सुखकी प्राप्ति होती है, यह निश्चित समझना चाहिये।

२१—परमात्माकी सर्वव्यापकतापर पूर्ण विश्वास करना चाहिये।

२२–परमात्मा सबके शुभाशुभ कर्मोंको देखते हैं और ;सार वे सबको उचितानुचित दण्ड देते हैं, ऐसा ास करना चाहिये।

२३–परमात्माकी कृपाके बिना कोई भी मनुष्य कुछ ाहीं कर सकता, ऐसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिये।

२४–परमात्माकी कृपासे ही प्रत्येक मनुष्यको संतति, धन, ा, बल, आरोग्य आदि सुखोंकी प्राप्ति होती है, यह ास होना चाहिये।

२५–परमात्मा ही सर्वविध पूर्णतासे परिपूर्ण कहे गये अतः परमात्माकी कृपासे ही मनुष्य पूर्णताको प्राप्त कर ाा है, यह दृढ़ निश्चय रखना चाहिये।

२६–परमात्माकी भक्तिसे ही मनुष्य सर्वगुणसम्पन्न हो ाा है, इस बातको कभी भी नहीं भूलना चाहिये।

२७–परमात्माको ही समस्त संसारका कर्ता, धर्ता और ा समझना चाहिये।

२८–परमात्माको ही सबका रक्षक और पालक समझना ़्ये।

२९–परमात्माको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये।

३०–सत्य ही परमात्माका असली स्वरूप है। अतः स्वरूप परमात्माका अथवा परमात्मस्वरूप सत्यका कभी परित्याग नहीं करना चाहिये।

३१–पुरुषको अपने माता, पिता और गुरुको ईश्वरका ाप समझना चाहिये और स्त्रीको अपने पतिको ईश्वरका ाप समझना चाहिये।

३२–अपने गुणोंकी प्रशंसा और आत्माभिमान नहीं ाा चाहिये।

३३–किसी भी जीवकी हिंसा कभी नहीं करनी चाहिये। ़हिंसाको महापाप समझना चाहिये।

३४–परमात्माकी भक्तिसे कभी भी विमुख नहीं होना हिये।

३५–प्राणिमात्रसे अपने परिवारकी तरह प्रेम करना हिये।

३६–ज्ञानका सम्पादन करना चाहिये। ज्ञानसे ही मुक्तिकी प्राप्ति होती है। ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती, यह विश्वास रखना चाहिये।

३७–ज्ञानसे ही भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपका परिचय मिलता है। अतः ज्ञान-सम्पादनार्थ सर्वदा प्रयत्नशील होना चाहिये।

३८–अपनी मातासे भी बढ़कर सबका कल्याण करनेवाली गोमाता है। अतः गोमाताकी सेवा और रक्षा सर्वदा करनी चाहिये।

३९–साधु, संत, महात्मा और विद्वान्‌का सर्वदा आदर करना चाहिये।

४०–सन्ध्योपासन, पञ्चमहायज्ञ, तीर्थयात्रा और अतिथि-सेवा सदा करनी चाहिये।

४१–भगवत्सेवार्थ धनिकोंको द्रव्यदान, श्रमिकोंको श्रमदान, विद्वानोंको विद्यादान और बलवानोंको बलदान करना चाहिये।

४२–अपनेसे सभीको श्रेष्ठ समझना चाहिये।

४३–दूसरे किसीका भी, भूलकर भी अपमान नहीं करना चाहिये।

४४–दूसरोंका दोष न देखकर अपना दोष देखना चाहिये।

४५–सबको सर्वदा सद्भाव और परोपकार-सम्पन्न होना चाहिये।

४६–अपने अमूल्य समयको सर्वदा प्रभु-भक्ति और सत्सङ्गमें लगाना चाहिये।

४७–सर्वदा मिथ्या-अभिमान और मिथ्या-प्रपञ्चोंसे बचना चाहिये।

४८–बड़ी-से-बड़ी आपत्ति आनेपर भी धैर्यका त्याग नहीं करना चाहिये।

४९–मानव-जीवन बार-बार नहीं मिलता। अतः इस अमूल्य जीवनका सर्वदा सदुपयोग करना चाहिये।

५०–प्रभुको सदा स्मरण रखना चाहिये।

कर्मफलकी ईश्वरीय वैज्ञानिक विधिव्यवस्था

(लेखक—डा० श्रीचमनलालजी गौतम, सम्पादक 'युग-संस्कृति')

कर्मका अभिप्राय और नियम

कर्मका अर्थ है, जो किया जाय—क्रिया, उसकी परम्परा, नियम, जिसमें कार्य अपने कारणके पीछे चलता है। देवी-भागवत (१।५।७४) में भी कहा है—'बिना कारणके कार्यका होना कैसे सम्भव हो सकता है?' कार्य और कारणका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्यके पुराने विचार जब साकाररूप धारण कर लेते हैं तो वे कर्म कहलाने लगते हैं। इसके साथ वर्तमान, भूत और भविष्य जुड़ा रहता है। प्रत्येक कर्मकी ये तीनों अवस्थाएँ होती हैं।

सृष्टिकी रचनाके गम्भीर अध्ययनसे ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संचालन निश्चित नियमोंपर आधारित है, जिन्हें बदला नहीं जा सकता, अल्पज्ञताके कारण उन नियमोंको हम नहीं जानते और हानि उठाते हैं, उनके ज्ञान और पालनसे हम शक्ति प्राप्त करते हैं।

प्राकृतिक नियमोंका पालन करना ही प्रकृतिकी शक्तियों-को अपने वशमें करना है। नियमोंका पालन करनेवाला प्रकृतिको अपने अनुकूल बना लेता है और प्रतिकूल परिस्थितियोंको टाल सकता है। इसलिये चतुर व्यक्ति गतियोंका अध्ययन करता है। अनुकूल नियमोंका पालन करके वह शक्तियोंका सृजन करता है, विरोधी धाराको वह दबा देता है। जिस तरह दो रसायनोंको मिलानेसे एक दूसरा निश्चित रसायन बन जाता है, इसी तरह प्रकृतिके व्यवस्थित नियमोंकी अनुकूल धाराके अनुसार चलनेसे निश्चित परिणाम ही निकलते हैं, जिनका हमें पूर्वज्ञान होता है। इसलिये प्रतिकूल फलके उपस्थित होनेपर दैवयोगसे कहना या भाग्यपर दोषारोपण करना अज्ञानताके चिह्न हैं। जिस तरह दो और दो चार होते हैं, उसी तरह कर्मोंके

रोगोंसे कराहने और भाग्यको कोसनेवालोंको भी देखा जा सकता है। समाजका अभिशाप सहनकर हड्डियोंका ढाँचा बननेवालोंकी भी कमी नहीं है। परिस्थितियोंका रोना रोने-वाले और दुःखों तथा चिन्ताओंकी दावानलमें जलनेवालोंका भी अभाव नहीं है!

जो ज्ञानी हैं, वे जानते हैं कि जो भी दुःख या सुखके दृश्य हमारे सामने आ रहे हैं, उस प्रत्येक चित्रके पीछे उसका कारण निहित है। बिना कारणके कार्य सम्भव नहीं है। प्रकृति किसीका पक्षपात नहीं करती और न किसीका विरोध ही करती है; वह तो समताकी देवी है। उसके राज्यमें जो जैसा कार्य करता है, उसे वह वैसा ही फल देती है। जो नियम-व्यवस्था जानकर उसके अनुसार चलता है, उसे वह सुख देती है और नियम-भङ्ग करनेवालेको दुःख। फिर दुःख आनेपर रोना कैसा? दुःख आनेपर यह जानना चाहिये कि अवश्य हमने किसी प्राकृतिक नियमका उल्लङ्घन किया है। उसकी खोज करके उसका पालन करना आरम्भ कर देना चाहिये। वह दुःख सुखमें परिणत हो जायगा। प्रकृति उस व्यक्तिके लिये आज्ञाकारी सेवकका कार्य करती है, जो नियमोंका पालन करता है। वही शक्ति और सिद्धिके साम्राज्यका स्वामी बन पाता है, धन और वैभव-ऐश्वर्य भी उसे ही प्राप्त होते हैं, परिस्थितियाँ उसके आज्ञा-पालनकी प्रतीक्षा करती हैं, सफलता उसके स्वागतके लिये सदैव आरतीका थाल लिये खड़ी रहती है। अतः विकासका उत्तम सूत्र है—प्रकृतिके नियमोंका पालन करना। इसीसे सुख-शान्ति और शक्तिकी प्राप्ति सम्भव है। देवीभागवतमें कहा है—'ब्रह्मादि सभी इस नियमके वशमें हैं।' (४।२।८)। इसीसे संसारका सुव्यवस्थित संचालन हो रहा है।

में इसी तथ्यका समर्थन किया है—'कर्मफलमें आसक्त व्यक्ति जैसे कर्म करता है, वैसे ही शुभ और अशुभ फलोंको वह भोगता है।' इसलिये महाभारत, शान्तिपर्व (२९१।१२) में प्रेरणा दी है कि 'बीजके बिना किसी वस्तुकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। सत्कर्मके बिना सुखकी उपलब्धि नहीं हो सकती। मनुष्य अच्छे कार्य करके ही परलोकमें सुख प्राप्त करता है।' परंतु गीता (५।१२) के अनुसार 'जब वह कर्मफलमें आसक्त हो जाता है तो बन्धनमें पड़ जाता है।'

कर्मोंकी जड़ विचारोंमें है और विचारोंका मूल मनमें है। कर्मोंकी रचना मनसे ही होती है। वही इनकी रचना करनेवाला है और वही इनका नियामक है। जैसे ब्रह्मा सृष्टिकी रचना करता है, वैसे ही मन विचारोंको बनाता है। मनुष्य जैसे विचार करता है, वह उसी धारामें बहता है, वैसा ही बन जाता है। छान्दोग्योपनिषद् (३।१४।१) में कहा है—'मनुष्यका निर्माण उसके अपने विचारोंके अनुसार ही होता है।' क्षुद्र या महान्, पापी या सत्कर्मी, संत या डाकू बनना उन्हींके अधिकारमें है। इनमें अपार शक्ति है। यह व्यक्तिको निम्न परिस्थितियोंसे विकासकी उच्चतम अवस्थामें पहुँचानेमें समर्थ है। देवीभागवत (९।२७।१८-२०) में कहा है—'जीव अपने शुभकर्मोंकी सहायतासे इन्द्रपद प्राप्त कर सकता है, वह हरिका सेवक हो सकता है, आवागमनके चक्रसे मुक्त हो सकता है, समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करता हुआ अमरत्वपदतक पहुँच जाता है, सालोक्य मुक्तिका अधिकारी बन सकता है और वह देवता, राजा, शिव, गणेश और जो कुछ भी चाहे, वही बन सकता है। मनको अपूर्व शक्तियोंसे विभूषित किया गया है; परंतु उन शक्तियोंका लाभ मनुष्य तभी उठा सकता है, जब उसे प्रकृतिके नियमोंके अनुकूल चलाया जाय। यदि वह स्वच्छन्द होकर अपनी मनमानी करने लगे तो मनुष्यको नाना प्रकारके दुःखोंकी

दुःखको गले लगानेसे सुखका द्वार खुलता है—

दुःख आनेपर रोना-पीटना हमारी अज्ञानताका परिचायक है। इसका स्पष्ट अभिप्राय है—प्रकृतिके नियमोंकी जानकारीका अभाव। कोई भी दुःख बिना कारणके नहीं आ सकता, जैसे कोई भी पेड़ बिना बीजके नहीं उग सकता। कारणकी खोज किये बिना दैवको कोसना, भाग्यको फूहड़ बताना और नास्तिकताकी भावनाओंको उद्दीप्त करना अज्ञानताके प्रदर्शनके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो भी बुरा कार्य किया गया है, प्रकृति उसका बुरा फल अवश्य देगी। यह उसका नियम है। उसके चरणोंमें गिड़गिड़ानेवालेपर वह क्षमा नहीं करती। उसका स्पष्ट निर्देश है कि पिछले कर्मोंके फलोंको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करो और आगामी जीवनको नियमबद्ध करो। यही सुखका राजमार्ग है। जो आदेशका पालन नहीं करते हैं, वे अपने दुःखोंको और बढ़ाते हैं। प्रकृति हमारी शत्रु नहीं है। हमें दुःख देनेमें उसे प्रसन्नता नहीं होती। सभी प्राणी उसके लिये समान हैं। जो मार्गसे भटक गये हैं, उनके सुधारका कार्य ही उसे सौंपा गया है। बुरे कार्यका परिणाम सामने आनेसे उसके कारणकी जड़ कट जाती है। प्रकृति हमारे स्थायी सुखकी उत्तम व्यवस्थापिका है। वह हमारे दुःखोंके कारणोंको ही नष्ट करनेका प्रयत्न करती है; परंतु हम अज्ञानतावश उसे नहीं समझते और कृतज्ञताकी भावना व्यक्त करनेके स्थानपर उसे दुःख देनेके लिये कोसते हैं और उसे अपनी विरोधी और शत्रु घोषित कर देते हैं। क्या विडम्बना है! अपने हितैषीको हम अपना शत्रु समझने लगते हैं और कृतघ्नताकी पापमयी भावनाएँ उपज पड़ती हैं, जिनका दुष्परिणाम फिर हमें और भुगतना पड़ता है। नियम तो यही है कि जिसने हमारे प्रति उपकार किया है, हम उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करें और वैसा ही उपकारी कार्य उसके प्रति करनेका प्रयत्न करें, तभी संतुलनसे हमें शान्ति मिल सकती है। हम एक व्यक्तिसे लेते-ही-लेते रहें और दें नहीं ...

बनाये रखनेके लिये ही आते हैं। जब उन्हें स्वीकार नहीं किया जाता है और असंतोष, क्लेश, चिन्ताकी अग्नि जला दी जाती है तो इसका परिणाम यह होता है कि पहले कर्मके परिणामका निपटारा तो हुआ नहीं, दूसरा और उपज पड़ा। पहले ऋणको उतारा नहीं गया, दूसरा और आ गया। यह दुःख कम होनेके नहीं, बढ़नेके लक्षण हैं। दुःखोंको कम करनेकी कला यही है कि उन्हें प्रसन्नतापूर्वक भोगा जाय। यह तो निश्चित है कि उन्हें टाला नहीं जा सकता। वे आयेंगे ही। उन्हें धीर-वीर पुरुषकी तरह सहन करना चाहिये। उनसे डरना नहीं चाहिये, वरं वीरतासे उनका प्रेमालिङ्गन करना चाहिये। दुःख तो अपनी संतान हैं। अपनी संतान यदि प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दें तो क्या उनको शत्रु समझ लिया जाता है? उनके दुष्कर्मोंको सहन ही किया जाता है। दुःखोंको भी हमने स्वयं उपजाया है और स्वयं ही अपने पास बुलाया है। निमन्त्रित व्यक्तिके साथ बुरा व्यवहार नहीं किया जाता। वह बुरा हो तो भी उसका सम्मान किया जाता है। वस्तुतः दुःखोंका ऊपरी रूप अवश्य भयावना होता है, परंतु उनका परिणाम सदैव सुखदायी सिद्ध होता है।

एक तो वे भोगोंका निपटारा करने आते हैं और हमें सुख-शान्तिके मार्गपर लाकर खड़ा कर देते हैं और दूसरे वे हमें संघर्षके लिये प्रेरित करते हैं, जिससे हमारी शक्तियोंका विकास होता है, प्रगतिके लिये बंद द्वार हमारे स्वागतके लिये खुल जाते हैं। दुःखके अभावमें व्यक्ति सुखमें लिप्त होकर विलासी, आलसी और निकम्मा हो जाता है। उसकी शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं, जिससे सफलताके खुले द्वार बंद हो जाते हैं। शक्तिके अभावमें चारों ओरसे विरोधी [illegible] आक्रमण होने लगते हैं और जीवन एक नाश होता है। अतः सुलझा हुआ दृष्टिकोण अपनाने ही बुद्धिमानी है और यही स्वस्थ-जीवन जीनेकी कला है। जो व्यक्ति इस कलाको जान जाते हैं, वे दुःखोंको अपना मित्र और साथी समझते हैं। डरनेवालोंको भूल लगते हैं। उन्हें मित्र बनानेमें ही हमें लाभ है। शत्रु तो सदैव विनाशकी ही सोचता है। अतः दुःखको अपना सहयोगी समझना ही जीवनकी उत्तम नीति है।

कर्मफल प्राकृतिक नियमोंपर आधारित है

कर्म-व्यवस्थामें प्रकृतिका गहरा हाथ है। वही इस पेचीदी व्यवस्थाको निष्पक्ष रीतिसे सम्पन्न करती है। शक्तिके लिये सिद्धान्तसे इस प्रक्रियाका जो सुसंचालन होता है, वह इस प्रकार है। विश्वमें प्रत्येक कार्यकी प्रतिक्रिया होती है। दीवालपर एक गेंदको हम जितनी शक्तिसे फेंकते हैं, उतनी ही शक्तिसे वह लौटकर आती है। गेंदका फेंकना क्रिया है और लौटकर आना उसकी प्रतिक्रिया है। पहाड़के नीचे या गुम्बदमें खड़े होकर हम आवाज देते हैं तो वह आवाज लौटकर आती है। आवाज देना क्रिया और उसका लौटकर आना प्रतिक्रिया है। पृथ्वीपर हम पैर रखते हैं, इससे दबाव पड़ता है, यह क्रिया है। पृथ्वी अपनी शक्तिसे पैरको ऊपर उठानेका प्रयत्न करती है, यह प्रतिक्रिया है। चूँकि ये दोनों शक्तियाँ समान होती हैं, इसलिये दोनों ओरके स्पष्ट दबावका पता नहीं चलता। यदि उनमें थोड़ी भी असमानता हो तो यह प्रतीत होने लगे। पैरका दबाव अधिक हो तो वह पृथ्वीमें उसी अनुपातसे धँस जायगा। जो भूमि पैरके दबावको उसी अनुपातसे वापस नहीं करती है, वहाँ पैरको भूमि नीचे जानेकी आज्ञा देती है। प्रकृति-का कार्य शक्तिका संतुलन बनाये रखना है।

विश्वकी शक्तियोंमें समता स्थापित हो सकती है। प्रतिक्रियाके समय और आकारमें अन्तर हो सकता है; परंतु प्रकृतिके साम्राज्यमें यह नहीं हो सकता कि किसी क्रियाकी प्रतिक्रिया न हो। कर्म एक क्रिया है, फल उसकी प्रतिक्रिया है। यदि प्रकृतिके नियम निश्चित और अटल हैं तो कर्म और कर्मफलकी व्यवस्था भी स्वाभाविक और प्राकृतिक नियमोंके आधारपर अवस्थित है। इन नियमोंको बदलना किसी व्यक्ति-विशेषकी सामर्थ्यके बाहर है। इसीलिये कहा जाता है कि कर्मकी गति टाली नहीं जा सकती। जो भले या बुरे कर्म हमने किये हैं, उनका अच्छा या बुरा परिणाम हमें भुगतना ही पड़ेगा। इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

अन्तर्मनद्वारा कर्मोंका सूक्ष्म चित्रण

हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें प्राणियोंकी ८४ लाख योनियोंका वर्णन आता है। प्रत्येक प्राणी प्रतिदिन अनेक कर्म करता है। कुछ कर्म स्पष्ट और व्यक्त होते हैं, कुछ गुप्तरूपसे एकान्त स्थानपर किये होते हैं। कुछ मानसिकरूपसे होते हैं। इन सभी कर्मोंकी प्रतिक्रियाओंकी व्यवस्था प्रकृति कैसे करती होगी, यह भी एक उलझनभरी समस्या है। इसको बड़ी चतुराईसे सुलझाया गया है।

हमारे शरीरके संचालनके लिये विभिन्न प्रकारके यन्त्र लगाये गये हैं। कुछ स्थूल हैं और कुछ सूक्ष्म। फेफड़े, हृदय, यकृत्, आँतें आदि स्थूल हैं। मन सूक्ष्म है। मनके दो प्रकार होते हैं—एक बाहरी मन और दूसरा अन्तर्मन। आधुनिक मनोवैज्ञानिकोंका कहना है कि 'जो कार्य भी हम करते हैं, उसका सूक्ष्म चित्रण हमारे अन्तर्मनमें हो जाता है।' इस चित्रणको आध्यात्मिक भाषामें रेखाएँ कहा जाता है। इस सिद्धान्तके प्रबल समर्थक हैं— विश्वप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ० फ्रायड। अन्तर्मनपर हुए चित्रणको ही भाग्य-रेखाएँ कहा जाता है। वैज्ञानिकोंने इन रेखाओंका गहन अध्ययन किया है। डा० योवन्स इसमें अग्रणी रहे हैं। उन्होंने अपने अनुसंधानके फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला कि 'जब मस्तिष्कके भूरे चर्बीदार पदार्थको सूक्ष्मदर्शक यन्त्रोंसे देखा गया तो उसके एक-एक परमाणुपर असंख्य रेखाएँ अङ्कित हुई मिलीं। ये रेखाएँ क्रियाशील प्राणियोंमें अधिक और क्रियाशून्य प्राणियोंमें कम देखी गयीं।' विशेषज्ञोंका कहना है कि यही रेखाएँ उपयुक्त समयपर कर्मोंका साकार रूप धारण करती रहती हैं। इसे ही कर्मफल कहते हैं।

रेखाएँ कर्मोंका साकार रूप कैसे धारण कर सकती हैं, इस समस्याको आधुनिक विज्ञानने अनेक आविष्कारोंद्वारा सिद्ध कर दिया है। ग्रामोफोनके अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जायगा। गाने बजानेको विशेष यन्त्रोंकी सहायतासे रिकार्डमें भर लिया जाता है। यह ध्वनि रेखाओंके रूपमें ही होती है। इन ध्वनियोंका रेखाओंके रूपमें चित्रण सुरक्षित रहता है। जब भी चाहे एक विशेष विधिसे सुईके आघातसे उसी ध्वनिको साकार रूप दे दिया जाता है। इसी तरहसे प्रत्येक शारीरिक एवं मानसिक कार्यका सूक्ष्म चित्रण अन्तर्मनके परमाणुओंपर होता रहता है और उपयुक्त अवसर पाकर आघात लगनेसे वह प्रकट हो जाता है। यह प्रकट होना उस क्रियाकी प्रतिक्रियाका स्थूलरूप है।

चित्रगुप्तकी निष्पक्ष कर्तव्यभावना

कर्मोंका सूक्ष्म रेखाङ्कन स्वचालित यन्त्रद्वारा ही अपने-आप होता रहता है। इस प्रतिक्रियाको समझानेके लिये चित्रगुप्तरूपी देवताका नाम रक्खा गया है कि वे प्राणियोंके सभी कर्मोंको निरन्तर बहीमें लिखते रहते हैं और मृत्युके पश्चात् जब प्राणीको यमराजके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो चित्रगुप्त ही उसके भले-बुरे कार्योंका लेखा-जोखा बताते हैं; उसीके अनुसार उसे फल मिलता है। यह चित्रगुप्त वास्तवमें हमारा अन्तर्मन—गुप्त मन ही है, जो निरन्तर हमारे कार्योंके चित्र लेता रहता है और उन्हें सुरक्षित रखता है। उपयुक्त समय आनेपर उन्हें प्रकट कर देता है।

इस गुप्त मनको 'ईश्वरीय शक्ति'की संज्ञा दी गयी है। यह सत्यनिष्ठ जजके समान है। यह किसीका पक्षपात नहीं करता। निष्पक्षरूपसे हर कार्यके चित्र लेते रहकर सुरक्षित रखते रहना ही इसका कार्य है। इन चित्रोंमें कोई परिवर्तन करनेकी सामर्थ्य किसीमें भी नहीं है। वहाँतक पहुँचका अधिकार किसीको भी नहीं दिया गया है। बाहरी मन तो तर्क-वितर्क करता है, झूठको सत्य और सत्यको झूठ सिद्ध करता रहता है। यदि उसे यह व्यवस्था दी जाती तो निश्चयरूपसे कार्यमें शिथिलता आ जाती। बाहरी मन पुण्योंको तो बढ़ा-चढ़ाकर दिखाता; परंतु पापोंको बिल्कुल दर्ज न करता। इससे ईश्वरीय न्याय खण्डित हो जाता और प्रकृतिका संतुलन बिगड़ जाता। परंतु ऐसा हुआ नहीं।

जगत्में तो पुलिस जिस मुकदमेको जैसे प्रस्तुत करे, जज उसे वैसे ही ग्रहण करता है। परंतु प्रकृतिका जज दोनों कार्योंको स्वयं करता है। इसलिये कर्मोंका विकृत रूप उपस्थित होनेका प्रश्न ही नहीं उठता। उनका विशुद्ध रूप ही सामने आता है। यह अन्तश्चेतनाका निष्पक्षभावसे सभी कर्मोंके समाचार अपनी लिपिमें लिखते रहनेका कार्य ही प्रकृतिकी प्रतिक्रियाओंको वास्तविक रूपमें व्यक्त करनेमें सहायक होता है।

असंख्य क्रियाओंको कैसे लिपिबद्ध किया जाता है, इसकी भी व्यवस्था कर दी गयी है। यह प्राकृतिक नियम है कि स्थूल वस्तुओंके लिये स्थानकी अपेक्षा रहती है। सूक्ष्म इस सीमाके बाहर है। लाखों विचार और भावनाएँ हमारे मनमें रहती हैं, समय पाकर वे उभर भी आती हैं। यदि उन्हें निवासके लिये स्थानकी आवश्यकता रहती तो मनमें उनका समा सकना सम्भव न था; परंतु यदि लाखों विचार और आ जायँ तो भी वहाँ समानेकी गुंजायश रहती है। चित्रगुप्तके खींचे हुए चित्र सूक्ष्म होते हैं। इसलिये सूक्ष्म-चित्रणके लिये स्थानकी कमीका कोई प्रश्न नहीं उठता।

सूक्ष्म भावनाओंका मूल्याङ्कन

चित्रगुप्तके दरबारमें स्थूल क्रियाओंका महत्त्व नहीं है। वहाँ तो सूक्ष्म भावनाओंकी जाँच होती है। गुप्त मन एक ऐसा यन्त्र है, जो भावनाओंकी माप-तोल करके ही अपना फैसला लिखता है। दान यश, कीर्ति और किसी अन्य स्वार्थके लिये भी दिया जा सकता है और विशुद्ध परमार्थ-भावनासे भी। सेवा दिखावेके लिये भी की जाती है और पवित्र भावनासे भी। धर्मप्रचारकमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों छिपे रहते हैं। किसीको सहयोग देनेमें दोनों भाव करती हैं। संसार तो बाह्य रूपरेखाका मूल्याङ्कन एक लाख रुपया दान देनेवाले सेठकी कीर्ति फैल जायगी, बड़े-बड़े धर्मध्वजियोंको जनता भरपू देती है; परंतु उनके अन्तर्मनमें झाँककर देखने किसीमें नहीं है, ताकि उनकी भावनाओंकी जाँच क यह कार्य केवल गुप्त मन ही कर सकता है। उसके स्थूल क्रियाका महत्त्व नहीं है। वह उच्च भावना समझता है; भले ही स्थूलरूपसे उस क्रियाका कोई महत्त्व न हो। जैसे किसी बुढ़ियाने अपनी समस्त दस रुपये दानमें दे दिये हों। दस रुपयेके दानका को महत्त्व नहीं है; परंतु जिस त्याग-भावनासे उसने सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है, ईश्वरके दरबारमें इसीक अधिक लगाया जाता है और इसकी जिम्मेदारी गुप्त सौंपी गयी है, जो निष्पक्षभावसे दिन-रात इस कार्यको रहता है। इसमें भूल-चूककी कुछ भी सम्भावना न इन बाह्य-क्रियाओंसे स्थूल-नेत्रोंको तो धोखा दिया जा है; परंतु दिव्यदृष्टिकी महान् शक्तियोंसे सम्पन्न आँखोंमें धूल नहीं डाली जा सकती। वहाँ स्थूल, गुप्त या मानसिक जैसे भी हम कार्य करते हैं, उनको रूपमें, उसी तरह लिख लिये जानेकी व्यवस्था है। अतः सुव्यवस्थाके अनुसार प्राणीकी समस्त क्रियाओंका रेखाङ्कन होता रहता है और प्रकृतिके संतुलनको य रखनेके लिये प्रतिक्रियारूपमें आघात लगनेपर उपयुक्त अ पाकर वह साकाररूपमें प्रकट होती रहती है। कर्मफल ये समस्त प्रक्रियाएँ वैज्ञानिक रीतिसे स्वयमेव संचालित ह रहती हैं।

पापोंके अनुसार नारकीय गति

जीवको माताके गर्भमें अनेक जन्मोंकी बातें याद आती हैं, जिससे व्यथित होकर वह इधर-उधर फिरता और निर्वेद (खेद) को प्राप्त होता है । अपने मनमें सोचता है—'अब इस उदरसे छुटकारा पानेपर मैं फिर ऐसा कार्य नहीं करूँगा, बल्कि इस बातके लिये चेष्टा करूँगा कि मुझे फिर गर्भके भीतर न आना पड़े ।' सैकड़ों जन्मोंके दुःखोंका स्मरण करके वह इसी प्रकार चिन्ता करता है । तत्पश्चात् कालक्रमसे वह अधोमुख जीव जब नवें या दसवें महीनेका होता है, तब उसका जन्म हो जाता है । गर्भसे निकलते समय वह प्राजापत्य वायुसे पीड़ित होता है और मन-ही-मन दुःखसे व्यथित हो रोते हुए गर्भसे बाहर आता है । तदनन्तर वह जीव पहले तो बाल्यावस्थाको प्राप्त होता है, फिर क्रमशः कौमारावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्थामें प्रवेश करता है । इसके बाद मृत्युको प्राप्त होता और मृत्युके बाद फिर जन्म लेता है । इस प्रकार इस संसारचक्रमें वह घटीयन्त्र (रहट) की भाँति घूमता रहता है । कभी स्वर्गमें जाता है, कभी नरकमें । कभी इस संसारमें पुनः जन्म लेकर अपने कर्मोंको भोगता है, कभी कर्मोंका भोग समाप्त होनेपर थोड़े ही समयमें मरकर परलोकमें चला जाता है । कभी स्वर्ग और नरकको प्रायः भोग चुकनेके बाद थोड़ेसे शुभाशुभ कर्म शेष रहनेपर फिर इस संसारमें जन्म लेता है—

नारकी जीव घोर दुःखदायी नरकोंमें गिराये जाते हैं । पुण्यवान् स्वर्गमें जाते हैं । स्वर्गमें पहुँचनेके बादसे ही मनमें इस बातकी चिन्ता बनी रहती है कि पुण्यक्षय होनेपर हमें यहाँसे नीचे गिरना पड़ेगा । साथ ही नरकमें पड़े हुए जीवोंको देखकर महान् दुःख होता है कि कभी हमें भी ऐसी ही दुर्गति भोगनी पड़ेगी ।

यमराजके आदेशानुसार पापी जीव यातना-शरीर प्राप्त करके विविध नरकोंमें गिराये जाते हैं । फिर, विभिन्न दुःखद योनियोंमें भेजे जाते हैं । उनका कुछ विवरण यह है—

एक भयानक नरकका नाम है—'रौरव' । इस दूत पापी प्राणीको इसीके भीतर डाल देते हैं । वह धधकती आगसे जब जलने लगता है, तब इधर-उधर दौड़ता है; किंतु पग-पगपर उसके पैर जल-भुनकर राख होते रहते हैं । वह दिन-रातमें कभी एक बार पैर उठाने और रखनेमें समर्थ होता है । इस प्रकार सहस्रों योजन पार करनेपर वह इस नरकसे छुटकारा पाता है ।

(यातना-देह उस देहको कहते हैं, जो नरककी पीड़ा भुगतानेको दिया जाता है । इसमें जलने-कटने आदिकी भयानक पीड़ा होती है, पर यह जल या कटकर नष्ट नहीं होता । पीड़ा भोगनेके लिये ज्यों-का-त्यों बना रहता है ।)

अब 'महारौरव'का वर्णन सुनिये—इसका विस्तार सब ओरसे बारह हजार योजन है । वहाँकी भूमि ताँबेकी है, जिसके नीचे आग धधकती रहती है । उसकी आँचसे तपकर वह सारी ताम्रमयी भूमि चमकती हुई बिजलीके समान ज्योतिर्मयी दिखायी देती है । उसकी ओर देखना और स्पर्श आदि करना अत्यन्त भयंकर है । यमराजके दूत हाथ और पैर बाँधकर पापी जीवको उसके भीतर डाल देते हैं और वह लोटता हुआ आगे बढ़ता है । मार्गमें कौवे, बगुले, बिच्छू, मच्छर और गिद्ध उसे जल्दी-जल्दी नोच खाते हैं । उसमें जलते समय वह व्याकुल हो-होकर छटपटाता है और बारंबार 'अरे बाप ! अरे मैया ! हाय मैया ! हा तात !' आदिकी रट लगाता हुआ करुण क्रन्दन करता है, किंतु उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती । इस प्रकार उसमें पड़े हुए जीव, जिन्होंने दूषित बुद्धिके कारण पाप किये हैं, दस करोड़ वर्ष बीतनेपर उससे छुटकारा पाते हैं ।

इसके सिवा 'तम' नामक एक दूसरा नरक है, जहाँ स्वभावसे ही कड़ाकेकी सर्दी पड़ती है । उसका विस्तार भी महारौरवके ही बराबर है; किंतु वह घोर अन्धकारसे आच्छादित रहता है । वहाँ पापी मनुष्य सर्दीसे कष्ट पाकर भयानक अन्धकारमें दौड़ते हैं और एक-दूसरेसे भिड़कर लिपटे रहते हैं । जाड़ेके कष्टसे काँपकर कटकटाते हुए उनके

सटकर वे परस्पर रक्त चाटा करते हैं। इस प्रकार जबतक पापोंका भोग समाप्त नहीं हो जाता, तबतक वहाँ भी मनुष्योंको अन्धकारमें महान् कष्ट भोगना पड़ता है।

इससे भिन्न एक 'निकृन्तन' नामक नरक है। उसमें कुम्हारकी चाकके समान बहुतसे चक्र निरन्तर घूमते रहते हैं। यमराजके दूत पापी जीवोंको उन चक्रोंपर चढ़ा देते और अपनी अंगुलियोंमें कालसूत्र लेकर, उसीके द्वारा उनके पैरसे लेकर मस्तकतक प्रत्येक अङ्ग काटा करते हैं। फिर भी उन पापियोंके प्राण नहीं निकलते। उनके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं, किंतु फिर वे जुड़कर एक हो जाते हैं। इस प्रकार पापी जीव हजारों वर्षोंतक वहाँ काटे जाते हैं। यह यातना उन्हें तबतक दी जाती है, जबतक कि उनके सारे पापोंका नाश नहीं हो जाता।

अब 'अप्रतिष्ठ' नामक नरकका वर्णन सुनिये, जिसमें पड़े हुए जीवोंको असह्य दुःखका अनुभव करना पड़ता है। वहाँ भी वे ही कुलालचक्र होते हैं। साथ ही दूसरी ओर घटीयन्त्र भी बने होते हैं, जो पापी मनुष्योंको दुःख पहुँचानेके लिये बनाये गये हैं। वहाँ कुछ मनुष्य उन चक्रोंपर चढ़ाकर घुमाये जाते हैं। हजारों वर्षोंतक उन्हें बीचमें विश्राम नहीं मिलता। इसी प्रकार दूसरे पापी घटीयन्त्रोंमें बाँध दिये जाते हैं; ठीक उसी तरह, जैसे रहटमें छोटे-छोटे घड़े बँधे होते हैं। वहाँ बँधे हुए मनुष्य उन यन्त्रोंके साथमें जब घूमने लगते हैं तो बारंबार रक्त वमन करते हैं। उनके मुखसे लार गिरती है और नेत्रोंसे अश्रु झरते रहते हैं। उस समय उन्हें इतना दुःख होता है, जो जीवमात्रके लिये असह्य है।

अब 'असिपत्रवन' नामक अन्य नरकका वर्णन सुनिये। वहाँ एक हजार योजनतककी भूमि प्रज्वलित अग्निसे आच्छादित रहती है तथा ऊपरसे सूर्यकी अत्यन्त भयंकर एवं प्रचण्ड किरणें ताप देती हैं, जिनसे उस नरकमें निवास करनेवाले जीव सदा संतप्त होते रहते हैं। उसके बीचमें एक बहुत ही सुन्दर वन है, जिसके पत्ते चिकने जान पड़ते हैं; किंतु वे सभी पत्ते तलवारकी तीखी धारके समान हैं। उस वनमें बड़े बलवान् कुत्ते भूँकते रहते हैं, जो दस हजारकी संख्यामें सुशोभित होते हैं। उनके मुख और दाढ़ें बड़ी-बड़ी होती हैं। वे व्याघ्रोंके समान भयानक प्रतीत होते हैं। वहाँकी भूमिपर जो आग बिछी होती है, उससे जब दोनों पैर जलने लगते हैं, तब वहाँ गये हुए जीव 'हाय माता! हाय पिता!' आदि कहते हुए अ[illegible] दुःखित होकर कराहने लगते हैं। उस समय तीव्र पिपा[illegible] कारण उन्हें बड़ी पीड़ा होती है, फिर अपने सामने शी[illegible] छायासे युक्त असिपत्रवनको देखकर वे प्राणी विश्रा[illegible] इच्छासे वहाँ जाते हैं। उनके वहाँ पहुँचनेपर बड़े जो[illegible] हवा चलती है, जिससे उनके ऊपर तलवारके समान ती[illegible] पत्ते गिरने लगते हैं। उनसे आहत होकर वे पृथ्वीपर ज[illegible] हुए अङ्गारोंके ढेरमें गिर पड़ते हैं। वह आग अप[illegible] लपटोंमें सर्वत्र व्याप्त हो सम्पूर्ण भूतलको चाटती हुई-[illegible] जान पड़ती है। इसी समय अत्यन्त भयानक कुत्ते व[illegible] तुरंत ही दौड़ते हुए आते हैं और रोते हुए पापियोंके स[illegible] अङ्गोंको टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं।

अब इससे भी अत्यन्त भयंकर 'तप्तकुम्भ' नाम[illegible] नरक है। वहाँ चारों ओर आगकी लपटोंसे घिरे हु[illegible] बहुत-से लोहेके घड़े मौजूद हैं, जो खूब तपे होते हैं। उनमेंसे किन्हींमें तो प्रज्वलित अग्निकी आँचसे खौलत[illegible] हुआ तेल भरा रहता है और किन्हींमें तपाये हुए लोहेक[illegible] चूर्ण होता है। यमराजके दूत पापी मनुष्योंको उनका मुँह नीचे करके उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं। वहाँ पड़ते ही उनके शरीर टूट-फूट जाते हैं। शरीरकी मज्जाका भाग गलकर पानी हो जाता है। कपाल और नेत्रोंकी हड्डियाँ चटककर फूटने लगती हैं। भयानक गृध्र उनके अङ्गोंको नोच-नोचकर टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं और फिर उन टुकड़ोंको उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं। वहाँ वे सभी टुकड़े सीझकर तेलमें मिल जाते हैं। मस्तक, शरीर, स्नायु, मांस, त्वचा और हड्डियाँ—सभी गल जाती हैं। तदनन्तर यमराजके दूत करछुलसे उलट-पुलटकर खौलते हुए तेलमें उन पापियोंको अच्छी तरह मथते हैं।

पौंसलेपर पानी पीनेको जाती हुई गौओंको जो वहाँ जानेसे रोक देता है और वे प्यासी रह जाती हैं, इससे उसको भयंकर नरकमें जाना पड़ता है, जो आगकी लपटें निकलती रहनेके कारण घोर दुःखदायी होता है। उसमें लोहेकी-सी चोंचवाले पक्षी रहते हैं, जो पापियोंको नोचनोच नोचा करते हैं। वहाँ पापियोंके शरीरको कोल्हूमें पेरनेके लिये उनके मुखसे रक्तकी धारा बहने लगती है, जिससे रक्त-कीचड़ जमा रहता है। तप्तवालुका और तप्तकुम्भ नरकोंमें उसे संतप्त किया जाता है।

जो नीच मनुष्य काम और लोभके वशीभूत हो, दूषित दृष्टि एवं कलुषित चित्तसे परायी स्त्री और पराये धनपर आँखें गड़ाते हैं, उनकी दोनों आँखोंको ये वज्रतुल्य चोंचवाले पक्षी निकाल लेते हैं और पुनः-पुनः इनके नये नेत्र उत्पन्न हो जाते हैं। इन पापी मनुष्योंने जितने निमेषतक पापपूर्ण दृष्टिपात किया है, उतने ही हजार वर्षोंतक ये नेत्रकी पीड़ा भोगते हैं। जिन लोगोंने असत्-शास्त्रका उपदेश किया है तथा किसीको बुरी सलाह दी है, जिन्होंने शास्त्रका उलटा अर्थ लगाया है, मुँहसे झूठी बातें निकाली हैं तथा वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुकी निन्दा की है, उन्हींकी जिह्वाको ये वज्रतुल्य चोंचवाले भयंकर पक्षी उखाड़ते हैं और वह जिह्वा नयी-नयी उत्पन्न होती रहती है। जितने निमेषतक उनके द्वारा जिह्वाजनित पाप हुआ होता है, उतने वर्षोंतक उन्हें यह कष्ट भोगना पड़ता है। जो नराधम दो मित्रोंमें फूट डालते हैं; पिता-पुत्रमें, स्वजनोंमें, यजमान और पुरोहितमें, माता और पुत्रमें, सङ्गी-साथियोंमें तथा पति और पत्नीमें वैर करवा देते हैं, वे ही ये आरेसे चीरे जा रहे हैं। आप इनकी दुर्गति देखिये। जो दूसरोंको ताप देते, उनकी प्रसन्नतामें बाधा पहुँचाते, पंखे, हवादार स्थान, चन्दन और खसकी टट्टी आदिका अपहरण करते हैं तथा निर्दोष व्यक्तियोंको भी प्राणान्तक कष्ट पहुँचाते हैं, वे ही ये अधम पापी हैं, जो तपायी हुई बालूमें पड़कर कष्ट भोगते हैं। जो अपनी अनुचित बातोंसे साधु पुरुषोंके मर्मपर आघात पहुँचाता है, उसको ये पक्षी अत्यन्त पीड़ा देते हैं। इन्हें ऐसा करनेसे कोई रोक नहीं सकता। जो झूठी बातें कहकर और विपरीत धारणा बनाकर किसीकी चुगली खाते हैं, उनकी जिह्वाके इस प्रकार तेज किये हुए छूरोंसे दो टुकड़े कर दिये जाते हैं।

जिन्होंने उद्दण्डतावश माता, पिता तथा गुरुजनोंका अनादर किया है, वे ही यहाँ पीब, विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए गड्ढोंमें नीचे मुख करके डुबाये जा रहे हैं। जो लोग देवता, अतिथि, अन्यान्य प्राणी, भृत्यवर्ग, अभ्यागत, पितर, अग्नि तथा पक्षियोंको अन्नका भाग दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं, वे ही दुष्ट यहाँ पीब और गोंद चाटकर रहते हैं। उनका शरीर तो पहाड़के समान विशाल होता है, किंतु मुख सूईकी नोकके बराबर रहता है। जो लोग पङ्क्तिमें बिठाकर भोजनमें भेद करते हैं, उन्हें यहाँ विष्ठा खाकर रहना पड़ता है। जो लोग एक समुदायमें साथ-साथ आये हुए अर्थार्थी मनुष्यको निर्धन जानकर छोड़ देते और अकेले अपना अन्न भोजन करते हैं, वे ही यहाँ थूक और खखार भोजन करते हैं। जिन्होंने स्वेच्छा-पूर्वक जूठे मुँह होकर भी सूर्य-चन्द्रमा और तारोंपर दृष्टिपात किया है, उनकी आँखोंमें आग रखकर यमराजके दूत उसे धौंकते हैं। गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण, ज्येष्ठ भ्राता, पिता, बहिन, कुटुम्बकी स्त्री, गुरु तथा बड़े-बूढ़ोंका जो जान-बूझकर पैरोंसे स्पर्श करते हैं, उनके दोनों पैर यहाँ आगमें तपायी हुई लोहेकी बेड़ियोंसे जकड़ दिये जाते हैं और उन्हें अङ्गारोंके ढेरमें खड़ा कर दिया जाता है। उसमें उनके पैरसे लेकर घुटनेतकका भाग जलता रहता है। जो नराधम अपने कानोंसे गुरु, देवता, द्विज और वेदोंकी निन्दा सुनते हैं और उसे सुनकर प्रसन्न होते हैं, उन पापियोंके कानोंमें ये यमराजके दूत आगमें तपायी हुई लोहेकी कीलें ठोंक देते हैं। जो लोग क्रोध और लोभके वशमें होकर पौंसले, देवमन्दिर, ब्राह्मणके घर तथा देवालयके सभाभवन तुड़वाकर नष्ट करा देते हैं, उनके यहाँ आनेपर ये अत्यन्त कठोर स्वभाववाले यमदूत इन तीखे शस्त्रोंसे शरीरकी खाल उधेड़ लेते हैं। उनके चीखने-चिल्लानेपर भी ये दया नहीं करते। जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण तथा सूर्यकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करते हैं, उनकी आँतोंको कौए गुदामार्गसे खींचते हैं। जो किसी एकको कन्या देकर फिर दूसरेके साथ उसका विवाह कर देता है, उसके शरीरमें बहुत-से घाव करके उसे खारे पानीकी नदीमें बहा दिया जाता है। जो मनुष्य दुर्भिक्ष अथवा संकटकालमें अपने पुत्र, भृत्य, पत्नी आदि तथा बन्धुवर्गको अकिंचन जानकर भी त्याग देता और केवल अपना पेट पालनेमें लग जाता है, वह भी जब इस लोकमें आता है तो यमराजके दूत भूख लगनेपर उसके मुखमें उसके ही शरीरका मांस नोचकर डाल देते हैं और वही उसे खाना पड़ता है। जो अपनी शरणमें आये हुए तथा अपनी ही दी हुई वृत्तिसे जीविका चलानेवाले मनुष्योंको लोभवश त्याग देता है, वह यमदूतोंद्वारा इसी प्रकार कोल्हूमें पेरे जानेके कारण यन्त्रणा भोगता है। जो मनुष्य अपने जीवनभरके किये हुए पुण्य धनके लोभसे बेच डालते हैं, वे इन्हीं पापियोंकी तरह चक्कियोंमें पीसे जाते हैं। किसीकी धरोहर हड़प लेनेवाले लोगोंके सब अङ्ग रस्सियोंसे बाँध दिये जाते हैं और उन्हें दिन-रात कीड़े, बिच्छू तथा सर्प काटते-खाते रहते हैं।

इसमें लोहेके बड़े-बड़े काँटोंसे भरा हुआ सेमरका विशाल वृक्ष है। इसपर चढ़ाये हुए पापियोंके सब अङ्ग विदीर्ण हो जाते हैं और अधिक मात्रामें गिरते हुए खूनसे ये लथ-पथ रहते हैं। नरश्रेष्ठ! परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करनेवाले लोग यमराजके दूतोंद्वारा घरियामें रखकर गलाये जाते हैं। जो उद्दण्ड मनुष्य गुरुको नीचे बिठाकर और स्वयं ऊँचे आसनपर बैठकर अध्ययन करता अथवा शिल्पकलाकी शिक्षा ग्रहण करता है, वह इसी प्रकार अपने मस्तकपर शिलाका भारी भार ढोता हुआ क्लेश पाता है। यमलोकके मार्गमें वह अत्यन्त पीड़ित एवं भूखसे दुर्बल रहता है और उसका मस्तक दिन-रात बोझ ढोनेकी पीड़ासे व्यथित होता रहता है। जिन्होंने जलमें मूत्र, थूक और विष्ठाका त्याग किया है, वे ही लोग इस समय थूक, विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए दुर्गन्धयुक्त नरकमें पड़े हैं। ये लोग जो भूखसे व्याकुल होनेपर एक-दूसरेका मांस खा रहे हैं, इन्होंने पूर्वकालमें अतिथियोंको भोजन दिये बिना ही भोजन किया है। जिन लोगोंने अग्निहोत्री होकर भी वेदों और वैदिक अग्नियोंका परित्याग किया है, वे ही ये पर्वतोंकी चोटीसे बारंबार नीचे गिराये जाते हैं। पतितोंका दिया हुआ दान लेने, उनका यज्ञ कराने तथा प्रतिदिन उनकी सेवामें रहनेसे मनुष्य पत्थरके भीतर कीड़ा होकर सदा निवास करता है। जो कुटुम्बके लोगों, मित्रों तथा अतिथिके देखते-देखते अकेले ही मिठाई उड़ाता है, उसे यहाँ जलते हुए अङ्गारे चबाने पड़ते हैं। पीठ-पीछे बुराई करनेवाले पापी लोगोंकी पीठका मांस भयंकर भेड़िये प्रतिदिन खाया करते हैं।

उपकार करनेवाले लोगोंके साथ कृतघ्नता करनेवाले भूखसे व्याकुल तथा अन्धे, बहरे और गूँगे होकर भटकते हैं। मित्रोंकी बुराई करनेवाले तप्तकुम्भ नरकमें गिराये जाते हैं। इसके बाद चक्कियोंमें पीसे जाते, फिर तपायी हुई बालूमें भूने जाते हैं। उसके बाद कोल्हूमें पेरे जाते हैं। तत्पश्चात् असिपत्रवनमें यातना दी जाती है। फिर आरेसे यह चीरा जाता है। तदनन्तर कालसूत्रसे काटा जाता है। इसके बाद और भी बहुत-सी यातनाएँ इसे भोगनी पड़ती हैं। सुवर्णकी चोरी करनेवाले, ब्रह्महत्यारे, शराबी तथा गुरुपत्नीगामी—ये चारों प्रकारके महापापी नीचे और ऊपर धधकती हुई आगके बीचमें झोंककर सब ओरसे जलाये जाते हैं। इस अवस्थामें उन्हें कई हजार वर्षोंतक रहना पड़ता है। तदनन्तर वे मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होते तथा कोढ़ एवं यक्ष्मा आदि रोगोंसे युक्त रहते हैं। वे मरनेके बाद फि[र] जाते हैं और पुनः उसी प्रकार नरकसे लौटनेपर जन्म धारण करते हैं। इस प्रकार कल्पके अन्तत[क] आवागमनका यह चक्र चलता रहता है। गौ[-वध] करनेवाला मनुष्य तीन जन्मोंतक नीच-से-नीच नरकों[में जाता] है। अन्य सभी उपपातकोंका फल भी ऐसा ही [बताया] किया गया है। नरकसे निकले हुए पापी जिन-जिन [पापोंके] कारण जिन-जिन योनियोंमें जन्म लेते हैं, उनका कुछ [वर्णन] इस प्रकार है—

पतितसे दान लेनेपर ब्राह्मण गदहेकी योनिमें [जाता] है। पतितका यज्ञ करानेवाला द्विज नरकसे लौटनेप[र कीड़ा] होता है। अपने गुरुके साथ छल करनेपर उसे [कुत्तेकी] योनिमें जन्म लेना पड़ता है तथा गुरुकी पत्नी और धनको मन-ही-मन लेनेकी इच्छा होनेपर भी उसे [...] यही दण्ड मिलता है। माता-पिताका अपमान कर[नेवाला] मनुष्य उनके प्रति कटुवचन कहनेसे मैनाकी योनि[में जन्म] लेता है। भाईकी स्त्रीका अपमान करनेवाला कबूतर [होता] है और उसे पीड़ा देनेवाला मनुष्य कछुएकी योनिमें [जन्म] लेता है। जो मालिकका अन्न तो खाता है, किंतु [उसका] अभीष्ट साधन नहीं करता, वह मोहाच्छन्न मनुष्य [मरनेके] बाद वानर होता है। धरोहर हड़पनेवाला मनुष्य [नरकसे] लौटनेपर कीड़ा होता है और दूसरोंका दोष देखने[वाला] पुरुष नरकसे निकलकर राक्षस होता है। विश्वास[घाती] मनुष्यको मछलीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। [जो] मनुष्य धान, जौ, तिल, उड़द, कुलथी, सरसों, [चना,] मटर, कलमी धान, मूँग, गेहूँ, तीसी तथा दूसरे अनाजोंकी चोरी करता है, वह नेवलेके समान बड़े मुँहवाला चूहा होता है। परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे म[नुष्य] भयंकर भेड़िया होता है। उसके बाद क्रमशः कु[त्ता,] सियार, बगुला, गिद्ध, साँप, सूअर तथा कौएकी यो[निमें] जन्म लेता है।

यज्ञ, दान और विवाहमें विघ्न डालनेवाला [...] कन्याका दुबारा दान करनेवाला पुरुष कीड़ा होता है। देवता, पितर और ब्राह्मणोंको दिये बिना ही अन्न-भो[जन] करता है, वह नरकसे निकलनेपर कौआ होता है। पिताके समान पूजनीय बड़े भाईका अपमान करता है, [वह] नरकसे निकलनेपर क्रौंच पक्षीकी योनिमें जन्म लेता है। ब्राह्मण[की] स्त्रीके साथ सहवास करनेवाला शूद्र भी कीड़ेकी योनि[में] जन्म लेता है। यदि उसने ब्राह्मणीके गर्भसे संतान उत्पन्न [...]

इसमें लोहेके बड़े-बड़े काँटोंसे भरा हुआ सेमरका विशाल वृक्ष है। इसपर चढ़ाये हुए पापियोंके सब अङ्ग विदीर्ण हो जाते हैं और अधिक मात्रामें गिरते हुए खूनसे ये लथ-पथ रहते हैं। नरश्रेष्ठ! परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करने-
ग यमराजके दूतोंद्वारा घरियामें रखकर गलाये जाते उद्दण्ड मनुष्य गुरुको नीचे बिठाकर और स्वयं ासनपर बैठकर अध्ययन करता अथवा शिल्पकलाकी ग्रहण करता है, वह इसी प्रकार अपने मस्तकपर भारी भार ढोता हुआ क्लेश पाता है। यमलोकके ाह अत्यन्त पीड़ित एवं भूखसे दुर्बल रहता है और स्तक दिन-रात बोझ ढोनेकी पीड़ासे व्यथित होता ़। जिन्होंने जलमें मूत्र, थूक और विष्ठाका त्याग ़, वे ही लोग इस समय थूक, विष्ठा और मूत्रसे दुर्गन्धयुक्त नरकमें पड़े हैं। ये लोग जो भूखसे होनेपर एक-दूसरेका मांस खा रहे हैं, इन्होंने में अतिथियोंको भोजन दिये बिना ही भोजन किया ा लोगोंने अग्निहोत्री होकर भी वेदों और वैदिक का परित्याग किया है, वे ही ये पर्वतोंकी चोटीसे नीचे गिराये जाते हैं। पतितोंका दिया हुआ दान नका यज्ञ कराने तथा प्रतिदिन उनकी सेवामें रहनेसे ात्थरके भीतर कीड़ा होकर सदा निवास करता है। ़म्बके लोगों, मित्रों तथा अतिथिके देखते-देखते ी मिठाई उड़ाता है, उसे यहाँ जलते हुए अङ्गारे ़ड़ते हैं। पीठ-पीछे बुराई करनेवाले पापी लोगोंको मांस भयंकर भेड़िये प्रतिदिन खाया करते हैं।

ाकार करनेवाले लोगोंके साथ कृतघ्नता करनेवाले भूखसे तथा अन्धे, बहरे और गूँगे होकर भटकते हैं। बुराई करनेवाले तप्तकुम्भ नरकमें गिराये जाते हैं। ााद चक्कियोंमें पीसे जाते, फिर तपायी हुई बालूमें ते हैं। उसके बाद कोल्हूमें पेरे जाते हैं। तत्पश्चात् वनमें यातना दी जाती है। फिर आरेसे यह चीरा ़ै। तदनन्तर कालसूत्रसे काटा जाता है। इसके ़र भी बहुत-सी यातनाएँ इसे भोगनी पड़ती हैं। सुवर्णकी ़रनेवाले, ब्रह्महत्यारे, शराबी तथा गुरुपत्नीगामी—आदि रोगोंसे युक्त रहते हैं। वे मरनेके बाद फिर नरकमें जाते हैं और पुनः उसी प्रकार नरकसे लौटनेपर रोगयुक्त जन्म धारण करते हैं। इस प्रकार कल्पके अन्ततक उनके आवागमनका यह चक्र चलता रहता है। गौकी हत्या करनेवाला मनुष्य तीन जन्मोंतक नीच-से-नीच नरकोंमें पड़ता है। अन्य सभी उपपातकोंका फल भी ऐसा ही निश्चय किया गया है। नरकसे निकले हुए पापी जिन-जिन पातकके कारण जिन-जिन योनियोंमें जन्म लेते हैं, उनका कुछ विवरण इस प्रकार है—

पतितसे दान लेनेपर ब्राह्मण गदहेकी योनिमें जाता है। पतितका यज्ञ करानेवाला द्विज नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है। अपने गुरुके साथ छल करनेपर उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है तथा गुरुकी पत्नी और उनके धनको मन-ही-मन लेनेकी इच्छा होनेपर भी उसे निस्संदेह यही दण्ड मिलता है। माता-पिताका अपमान करनेवाला मनुष्य उनके प्रति कटुवचन कहनेसे मैनाकी योनिमें जन्म लेता है। भाईकी स्त्रीका अपमान करनेवाला कबूतर होता है और उसे पीड़ा देनेवाला मनुष्य कछुएकी योनिमें जन्म लेता है। जो मालिकका अन्न तो खाता है, किंतु उसका अभीष्ट साधन नहीं करता, वह मोहाच्छन्न मनुष्य मरनेके बाद वानर होता है। धरोहर हड़पनेवाला मनुष्य नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है और दूसरोंका दोष देखनेवाला पुरुष नरकसे निकलकर राक्षस होता है। विश्वासघाती मनुष्यको मछलीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य धान, जौ, तिल, उड़द, कुलथी, सरसों, चना, मटर, कलमी धान, मूँग, गेहूँ, तीसी तथा दूसरे-दूसरे अनाजोंकी चोरी करता है, वह नेवलेके समान बड़े मुँहका चूहा होता है। परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य भयंकर भेड़िया होता है। उसके बाद क्रमशः कुत्ता, सियार, बगुला, गिद्ध, साँप, अजगर तथा कौएकी योनिमें जन्म लेता है।

यज्ञ, दान और विवाहमें विघ्न डालनेवाला तथा कन्याका दुबारा दान करनेवाला पुरुष कीड़ा होता है। जो देवता, पितर और ब्राह्मणोंको दिये बिना ही अन्न-भोजन करता है, वह नरकसे निकलनेपर कौआ होता है। जो

दी हो तो वह काठके भीतर रहनेवाला कीड़ा होता है। उसके बाद क्रमशः सूअर, कृमि, विष्ठाका कीड़ा और चाण्डाल होता है। जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ एवं कृतघ्न होता है, वह नरकसे निकलनेपर कृमि, कीट, पतंग, बिच्छू, मछली, कौआ, कछुआ और चाण्डाल होता है। शस्त्रहीन पुरुषकी हत्या करनेवाला मनुष्य गदहा होता है। स्त्री और बालकोंकी हत्या करनेवालेका कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। भोजनकी चोरी करनेसे मक्खीकी योनिमें जाना पड़ता है। साधारण अन्न चुरानेवाला मनुष्य नरकसे छूटनेपर बिल्लीकी योनिमें जन्म लेता है। तिलचूर्णमिश्रित अन्नका अपहरण करनेसे मनुष्यको चूहेकी योनिमें जाना पड़ता है। घी चुरानेवाला नेवला होता है। नमककी चोरी करनेपर जलकागकी और दही चुरानेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। दूधकी चोरी करनेसे बगुलेकी योनि मिलती है। जो तेल चुराता है, वह तेल पीनेवाला कीड़ा होता है। मधु चुरानेवाला मनुष्य डाँस और पूआ चुरानेवाला चींटी होता है। हविष्यान्नकी चोरी करनेवाला बिसतुइया होता है।

लोहा चुरानेवाला पापात्मा कौआ होता है। काँसेका अपहरण करनेसे हारीत (हरियल) पक्षीकी योनि मिलती है और चाँदीका बर्तन चुरानेसे कबूतर होना पड़ता है। सुवर्णका पात्र चुरानेवाला मनुष्य कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। रेशमी वस्त्रकी चोरी करनेपर चकवेकी योनि मिलती है तथा रेशमका कीड़ा भी होना पड़ता है। हरिणके रोएँसे बना हुआ वस्त्र, महीन वस्त्र, भेड़ और बकरीके रोएँसे बना हुआ वस्त्र तथा पाटम्बर चुरानेपर तोतेकी योनि मिलती है। रूईका बना हुआ वस्त्र चुरानेसे क्रौंच और अग्निके अपहरणसे बगुला अथवा गदहा होना पड़ता है। अङ्गराग और पत्तियोंका साग चुरानेवाला मोर होता है। लाल वस्त्रकी चोरी करनेवालेको चकवेकी योनि मिलती है। उत्तम सुगन्धयुक्त पदार्थोंकी चोरी करनेपर छछूँदर और वस्त्रका अपहरण करनेपर खरगोशकी योनिमें जाना पड़ता है। फल चुरानेवाला नपुंसक और काठकी चोरी करनेवाला घुन होता है। फूल चुरानेवाला दरिद्र और वाहनका अपहरण करनेवाला पङ्गु होता है। साग चुरानेवाला हारीत और पानीकी चोरी करनेवाला पपीहा होता है। जो भूमिका अपहरण करता है, वह अत्यन्त भयंकर रौरव आदि नरकोंमें जाकर वहाँसे लौटनेके बाद क्रमशः तृण, झाड़ी, लता, बेल और बाँसका वृक्ष होता है। फिर थोड़ा-सा पाप शेष रहनेपर वह मनुष्यकी योनिमें आता है। जो बैलके अण्डकोषका छेदन करता है, वह नपुंसक होता है और इसी रूपमें इक्कीस जन्म बितानेके पश्चात् वह क्रमशः कृमि, कीट, पतङ्ग, पक्षी, जलचर जीव तथा मृग होता है। इसके बाद बैलका शरीर धारण करनेके बाद चाण्डाल और डोम आदि घृणित योनियोंमें जन्म लेता है। मनुष्य-योनिमें वह पङ्गु, अन्धा, बहरा, कोढ़ी, राजयक्ष्मासे पीड़ित तथा मुख, नेत्र एवं गुदाके रोगोंसे ग्रस्त रहता है। इतना ही नहीं, उसे मिरगीका भी रोग होता है तथा वह शूद्रकी योनिमें भी जन्म लेता है। गाय और सोनेकी चोरी करनेवालोंकी दुर्गतिका भी यही क्रम है। गुरुको दक्षिणा न देकर उनकी विद्याका अपहरण करनेवाले छात्र भी इसी गतिको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य किसी दूसरेकी स्त्रीको लाकर दूसरेको देता है, वह मूर्ख नरककी यातनाओंसे छूटनेपर नपुंसक होता है। जो मनुष्य अग्निको प्रज्वलित किये बिना ही उसमें हवन करता है, वह अजीर्णताके रोगसे पीड़ित एवं मन्दाग्निकी बीमारीसे युक्त होता है। (मार्कण्डेयपुराणके आधारपर)

भगवान् कालस्वरूप

(लेखक—श्रीपरशुरामजी पाण्डेय बी० ए०)

भगवान् समस्त प्राणियोंके नियामक हैं। उनकी लीला एवं उनके संकल्पोंका रहस्य जीव किसी साधनसे नहीं जान सकता। भगवत्कृपासे ही जीव उनके सम्बन्धमें यत्किंचित् जान पाता है। भगवान् अप्रमेय हैं। कालोंके भी काल हैं। उनकी प्रत्येक लीला अलौकिक होती है। भगवान् मन-वाणीके विषय नहीं हैं। फिर भी यथाशक्ति कवियों, भक्तों एवं प्रेमियोंने उनका गुणानुवाद किया है। वेदोंने 'नेति-नेति' कहकर भगवान्के गुणों एवं लीलाओंका वर्णन किया है। भगवान् ब्रह्मारूपसे संसारकी सृष्टि करते हैं, विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं रुद्ररूपसे संहार करते हैं। यहाँपर उनके इसी संहारकारी रूपका—कालस्वरूपका किंचित् दिग्दर्शन कराया जाता है।

भगवान्में सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य आदि अनेकानेक गुण हैं।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥
(विष्णुपुराण ६।५।७४)

सभी गुणोंके निवास-स्थान भगवान् ही हैं। भगवान्ने अपनी लीला-हेतु ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है। उनके लिये सृष्टि, पालन एवं संहार—तीनों ही प्रकारकी लीलाएँ समान हैं। जिस प्रकार बालक मिट्टीका घरौंदा बनाते हैं, उससे खेलते हैं और अन्तमें उसे नष्ट कर देते हैं; उन्हें तीनों ही क्रियाओंमें बराबर आनन्द आता है। उसी प्रकार ये भगवान्की तीनों लीलाएँ हैं। भगवान् मङ्गलमय हैं। उनकी हरएक लीला मङ्गलमयी है। अतएव उनकी संहारकारी लीलामें भी मङ्गल गुप्तरूपसे भरा हुआ है। (वास्तवमें वे लीलामय ही लीला भी बनते हैं।)

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्ने अपने प्रिय सखा अर्जुनको अपने विराट्स्वरूपका दर्शन कराया था, उसमें भगवान्ने अपने कालस्वरूपका दिग्दर्शन कराया—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥
(गीता ११।३२)

श्रीभगवान् बोले—'मैं लोकोंको नाश करनेवाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिये जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करनेपर भी इन सबका नाश हो जायगा।'

दसवें अध्यायमें भगवान्ने अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हुए बतलाया कि 'गणना करनेवालोंमें मैं काल हूँ, अक्षरोंमें अकार, समासोंमें द्वन्द्व तथा अक्षयकाल अर्थात् कालका भी महाकाल मैं ही हूँ—'अहमेवाक्षयः कालो'''।'

भगवान् पृथ्वीका भार कालस्वरूप होकर ही उतारा करते हैं। भगवान् सत्य-संकल्प हैं। जीवके संकल्पकी सफलता भगवदिच्छापर है। भगवान् लोकमें अपनी इच्छाके विपरीत भी कार्य करते देखे जाते हैं; परंतु उन्हें उसमें सफलता नहीं मिलती। उदाहरणार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण लोकसंग्रहके निमित्त पाण्डवोंके दूत बनकर हस्तिनापुर गये। दुर्योधनादि कौरवोंको समझानेका प्रयास किया, परंतु दुर्योधन संधि करनेको तैयार नहीं हुआ। त्रिभुवनमें कौन ऐसा कार्य है, जिसे भगवान् करना चाहें और उसमें सफलता न मिले। परंतु भगवान्की इच्छा इसके विपरीत थी। भगवान् युद्धद्वारा भू-भार उतारना चाहते थे। हुआ भी ऐसा ही। १८ अक्षौहिणी सेनामें पाण्डव पक्षमें—भगवान् श्यामसुन्दर, पाँचों पाण्डव एवं सात्यकि तथा कौरव पक्षमें—कृपाचार्य, कृतवर्मा एवं अश्वत्थामाके अतिरिक्त सभी काल भगवान्के मुखमें चले गये। भगवान्के कालस्वरूपका दर्शन कर अर्जुनके सदृश भगवद्भक्त भी भयभीत होकर धैर्य एवं शान्तिको खो देते हैं तो फिर दुष्टोंके लिये तो कहना ही क्या है।

महाभारत-युद्धके पश्चात् पृथ्वीका भार हल्का हो गया था और सभी लोग यही सोचते भी थे; परंतु भगवान्ने सोचा कि 'यद्यपि लोगोंकी दृष्टिमें भू-भार उतर गया है; लेकिन मेरे विचारसे अभी पूर्णतया पृथ्वीका भार हल्का नहीं हुआ है; क्योंकि अभी ये यदुवंशी बचे हुए हैं। ये मेरे आश्रित हैं, अतः इनको कोई पराजित भी नहीं कर सकता। अब मुझे ही किसी प्रकारसे इन्हें नष्ट करना है।'

स्वामीका अन्न खाकर उसका काम न करनेवालोंकी गति [पृष्ठ ६६२]

पर-स्त्रीगामियोंकी गति [पृष्ठ ६६२]

कृतघ्न आदिकी गति [पृष्ठ ६६२]

भोजनादिकी चोरी करनेवालोंकी गति [पृष्ठ ६६१]

ऐसा विचारकर भगवान्ने ब्राह्मणोंके शापके बहाने यदुवंशियोंमें ही फूट डालकर उन्हें कालके हवाले कर दिया । भगवान्ने श्रीमद्भागवतमें कहा है—

अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम् ।
गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥
(११ । १६ । १०)

'गतिशील पदार्थोंमें मैं गति हूँ । अपने अधीन करनेवालोंमें मैं काल हूँ । गुणोंमें मैं उनकी मूलस्वरूपा साम्यावस्था हूँ और जितने भी गुणवान् पदार्थ हैं, उनमें उनका स्वाभाविक गुण हूँ ।'

भगवान् कालके भी आधार हैं—महाकाल । भगवान्के समान तो कोई है ही नहीं, फिर उनसे बढ़कर कौन हो सकता है ? भगवान् स्वयं ही प्रकृति, पुरुष और दोनोंके संयोग-वियोगके हेतु काल हैं । रामचरितमानसमें माल्यवन्त राक्षसराज रावणको सचेत करते हुए भगवान्के कालस्वरूपका बोध कराता है—

कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध ।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध ॥
(लंकाकाण्ड ४८ ख

इसी प्रकार भगवान्के अन्य स्वरूपोंके साथ-स भगवान्के कालस्वरूपका वर्णन सभी शास्त्रों, पुरा महाभारत एवं रामचरितमानसके अनेकानेक स्थलोंपर अ है । यदि मनुष्य भगवान्के कालस्वरूपका स्मरण क रहे तो वह बहुत-सी बुराइयोंसे बच सकता है तथा उस निश्चित ही कल्याण हो सकता है । कंसने भगवान्के स्वरूपका स्मरण करते हुए भगवत्प्राप्ति की । वह चौ घंटे—उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते, काम करते, वि करते समय उन्हीं भगवान्का चिन्तन करता था । उ भगवान्का स्मरण प्रेमसे नहीं, वैरसे ही किया, परंतु उ कल्याण हो गया । नारायणभक्तने कहा है—

दो बातन कौं भूल मत, जो चाहै कल्यान ।
'नारायन' एक मौत को, दूजे श्रीभगवान ॥

सुकरात और परलोक

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

'मुझे राज्यके विशेष सम्मानित व्यक्तियों और कतिपय हितचिन्तकोंकी तरह जन-कोषसे खर्च देकर नगर-भवनमें भोजन करनेका अधिकार प्राप्त होना चाहिये ।'

प्राण-दण्ड सुन लेनेके बाद उसके स्थानपर दूसरे दण्डका प्रस्ताव रखनेकी आज्ञा मिलनेपर सुकरातने इतनी तिक्त बात कह दी । इसका कारण यही था कि उन्हें अपने शरीरका तनिक भी मोह नहीं था । वे अच्छी प्रकार समझते थे और उनका दृढ़ विश्वास था कि आत्मा अनश्वर एवं अमर है । भौतिक देहके नष्ट हो जानेपर उसकी स्थितिमें कोई अन्तर नहीं होता । वे प्रायः कहा करते कि 'तुम्हें इस बातसे लज्जा नहीं आती कि तुम केवल धन, यश और सम्मानका अर्जन करनेमें ही व्यस्त हो तथा ज्ञान, सत्य और आत्माकी पूर्णताके लिये प्रयत्नशील होनेकी तुम्हें तनिक भी चिन्ता नहीं है ?'

न्यायालयमें अपने भाषणके अन्तमें सुकरातने अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें जन-समाजसे प्रार्थना की कि 'जब मेरे पुत्र सयाने हो जायँ तो उन्हें भी दण्ड देना तथा उन्हें भी इसी प्रकार तंग करना जैसा कि मैं दूसरोंको करता रहा हूँ, जब कि आप उन्हें सम्पत्ति-संग्रहमें संलग्न पायें तथा वि आचरणसे बढ़कर अन्य किसी प्रकारकी चेष्टा करते दे इतना ही नहीं, यदि वे यह समझ बैठें कि वे अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं, जब वास्तवमें वे इस योग्य न अवश्य ही आप लोग उन्हें प्रताड़ित करें जैसा कि मैं लोगोंको करता आया हूँ । आप उन्हें बेशक इस उलाहना दें कि उन्हें कर्तव्यको पहचानना चाहिये अपनेको बड़ा नहीं समझना चाहिये, वास्तवमें वे निरे ३ ही हों ।'

सुकरात दृढ़तासे कहते कि ''हर व्यक्तिकी विशे पीछे छिपे 'अविशेष' को देखनेका प्रयत्न किया ज मानव-जीवनके शाश्वत सत्यको ढूँढ़ा जा सकता है व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे राग-द्वेष, वेष-भूषा, आचार-वि कितना ही भिन्न हो, सब व्यक्तियोंमें एक ही समान विद्यमान है, जो कि उनके विशेषणोंके आडम्बरोंसे रहता है, किंतु उसे ढूँढ़ा जा सकता है । यह 'समानत मानवका आत्मा है । इसे जानना ही मानव-जीवनके सत्यको जान लेना है ।''

सुकरात प्रायः अपने मिलनेवालों और नगर-निवासियोंसे बार-बार आग्रह करते कि उन्हें आत्मज्ञानके लिये सम्पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। उन्होंने स्वयं कहा है—'मैं तुमसे हर एकके पास जाकर यही अनुरोध करता हूँ कि पहले अपने आत्माको उन्नत और पवित्र करो; फिर संसारी बातों, धन आदिपर ध्यान दो।'

वे आगे और बल देकर कहते कि 'तुम्हें अपने बारेमें तबतक चिन्ता नहीं करनी चाहिये, जबतक कि तुम अपने आत्माकी चिन्तासे निवृत्त न हो जाओ और जबतक कि अपनेको तुम भरसक बुद्धिमान् और परिपूर्ण न बना लो।'

ज्ञान-प्राप्त करनेके लिये मृत्युसे नहीं डरना चाहिये। सुकरात कहा करते—'जो व्यक्ति मरनेसे डरता है, वह ज्ञानका प्रेमी नहीं है, किंतु अपने शरीरका प्रेमी है। वह कदाचित् धन या नामका या दोनोंका ही प्रेमी है।'

× × ×

'मैं समझता हूँ कि शरीरके साथ अत्यन्ताधिक रहनेसे और उसके लिये अधिक चिन्ता करनेसे उसका स्वभाव शारीरिक हो जाता है। वह उसमें बिंध जाता है।'

मृत्यु डरनेकी वस्तु नहीं, वह तो थके यात्रीको विश्राम देनेके लिये आती है। वह शान्ति एवं सुख देनेवाली है। सुकरात कहते हैं—'जब हम मृत्युका भय करते हैं, तब हम अपनेको उससे डरनेके लिये बुद्धिमान् समझते हैं; किंतु वास्तवमें हम मृत्युके बारेमें कुछ नहीं जानते; क्योंकि मनुष्यके लिये सबसे भलाई मृत्यु ही है। किंतु वे उससे डरते हैं और यह समझते हैं कि मानो मृत्यु ही सबसे बड़ी विपत्ति है और यह समझना कि मृत्यु भयंकर विपत्ति है, क्या लज्जाजनक मूर्खतासे कम है?'

सुकरातकी तर्कबुद्धि अत्यन्त विलक्षण थी। संसारमें जन्म लेनेवाले प्राणीकी मृत्यु निश्चित है और मृत्युके अनन्तर कालान्तरमें पुनर्जीवन प्राप्त होता है। इस विषयको कारागारमें उन्होंने अपने प्रिय शिष्य सीविसको प्रमाणोंद्वारा बताया था। उन्हींके शब्दोंमें—

सुकरात—आत्मा मृत्युके बाद दूसरे लोकमें रहता है या नहीं, इस प्रश्नपर हमें इस भाँति विचार करना चाहिये। यह एक पुराना विश्वास है कि मृत्युके बाद आत्मा दूसरे लोकमें रहता है और लौटकर मरे हुए शरीरसे वह फिर उत्पन्न होगा। किंतु यदि यह सत्य हो कि मरे हुएसे जीवित पैदा होते हैं तो हमारा आत्मा मरनेके बाद अवश्य दूसरे लोकमें रहता है, नहीं तो वह फिर उत्पन्न न होता। यदि हम यह प्रमाणित कर सकें कि मरे हुएसे जीवित उत्पन्न होता है तो हमारा कथन प्रमाणित हो जायगा; किंतु यदि हम ऐसा न कर सकेंगे तो हम किसी दूसरे तर्कका आश्रय ग्रहण करेंगे।

सीविस—यह ठीक है।

सुकरात—इस बातको हल करनेकी सबसे सरल रीति यह है कि हम इस बातको देखें कि केवल मनुष्य ही नहीं, किंतु सारे जीव और वृक्षके ऊपर जो कि उत्पन्न होनेवाली वस्तु हैं, यह सिद्धान्त लागू है या नहीं? क्या वह वस्तु, जिसके विपरीत (विरुद्ध) भी कोई वस्तु है, अपनी विपरीत वस्तुसे उत्पन्न होती है या नहीं? विरुद्ध या विपरीत कहनेसे मेरा मतलब ऐसी चीजोंसे है—जैसे माननीय और नीच, न्यायी और अन्यायी आदि। अब हमें यह देखना चाहिये कि क्या यह आवश्यक है कि ऐसी वस्तु अपनी वस्तुहीसे उत्पन्न हो? उदाहरणके लिये जो वस्तु बड़ी हो जाती है, वह पहले अवश्य ही छोटी रहती है और पीछे बड़ी होती है।

सीविस—हाँ।

सुकरात—और यदि कोई वस्तु छोटी हो जाती है तो पहले वह बड़ी रहती है और तब छोटी होती है।

सीविस—हाँ, यह ठीक है।

सुकरात—और फिर जो अधिक कमजोर होता है, वह पहले अधिक शक्तिशाली होता है और जो अधिक तेज हो जाता है, वह अवश्य ही पहले धीमा होगा।

सीविस—निस्संदेह।

सुकरात—फिर बुराई भलाईसे उत्पन्न होती है और अधिक न्याय अधिक अन्यायसे उत्पन्न होता है।

सीविस—ठीक है।

सुकरात—तो यह स्पष्ट है कि सब वस्तु अपने विरुद्ध उत्पन्न होती है।

सीविस—बहुत ठीक।

सुकरात—और प्रत्येक विरुद्ध वस्तु, जब एक दशासे दूसरी दशामें पहुँचती है और फिर उस दशासे अपनी पहली दशामें पहुँचती है, तब क्या उसे दो अवस्थाओं

होकर जाना नहीं पड़ता ? बड़ेसे छोटे और छोटेसे बड़े होनेमें वस्तुको घटना और बढ़ना पड़ता है और हम कहते हैं कि वह घटती या बढ़ती है । क्या हम यह नहीं कहते ?

सीविस–हाँ, यह ठीक है ।

सुकरात–और इसी तरह फिर विभाग और जोड़ है, सर्दी और गरमी है । असलमें हम इस नियमको इतने लंबे-चौड़े शब्दोंमें नहीं कहते, तथापि क्या यह नियम विश्वव्यापी नहीं है कि विरुद्ध विरुद्धहीसे उत्पन्न होते हैं और एक दशासे दूसरी दशामें जाते समय उसे उत्पन्न होनेकी अवस्थामें होकर जाना होता है ?

सीविस–हाँ, ऐसा ही होता है ।

सुकरात–अच्छा, तो जिस तरह जाग्रत्-अवस्थाकी उलटी अवस्था निद्रावस्था है, क्या वैसे ही जीवनकी भी कोई उलटी अवस्था है ?

सीविस–अवश्य है ।

सुकरात–वह क्या है ?

सीविस–मृत्यु ।

सुकरात–तब यदि जीवन और मृत्यु दोनों एक दूसरेके उलटे हैं, तो वे एक दूसरेसे उत्पन्न होते हैं । ये अवस्था दो (भिन्न अवस्था) हैं और इन दोनों अवस्थाओंके बीचमें दो उत्पन्न होनेकी अवस्थाएँ हैं । ऐसा है कि नहीं ?

सीविस–निस्संदेह ।

सुकरात–अब मैं अभी कहे हुए दो विरुद्ध जोड़ोंमेंसे

सीविस–मरा हुआ ।

सुकरात–और मरे हुएसे क्या उत्पन्न होता है ?

सीविस–हमको अवश्य यह कहना होगा कि मरे [illegible] जीवित उत्पन्न होता है ।

सुकरात–तो सीविस ! जीवित वस्तु और [illegible] मरी हुई वस्तु और मरे हुए मनुष्योंसे उत्पन्न होते हैं ?

सीविस–यह साफ जाहिर है ।

सुकरात–तो हमारा आत्मा दूसरे लोकमें (मृत्युके बाद) वर्तमान रहता है ?

सीविस–मालूम तो ऐसा ही पड़ता है ।

सुकरात–अच्छा, तो इन उत्पन्न होनेवाली अवस्थाओंमेंसे मैं समझता हूँ कि एक अर्थात् मृत्यु अवश्यम्भावी है ।

सीविस–अवश्य ।

सुकरात–तो अब हमें किस पथका अनुसरण करना चाहिये ? क्या हम (इस अवश्यम्भावी अवस्था) मृत्युके विरुद्ध नियमानुसार कोई उलटी अवस्था नियत नहीं कर सकते ? अथवा प्रकृति इस स्थानपर अपूर्ण है ? क्या मरनेका कुछ उलटा नहीं है ?

सीविस–अवश्य कुछ होना चाहिये ।

सुकरात–और वह क्या होना चाहिये ?

सीविस–पुनर्जीवन ।

सुकरात–और यदि पुनर्जीवन कोई वस्तु है तो यह मृत्युसे जीवनका उत्पन्न होना है ?

सुखोंमें मग्न नहीं होने देता। वह अपनी सम्पत्तिकी बर्बादी या अपनी दरिद्रतासे नहीं डरता, जैसा कि जन-समुदाय डरा करता है और न वह शक्ति या मान-प्रतिष्ठाके भूखे लोगोंकी तरह दुष्टोंके अनादर या अपमानसे ही डरता है।'

सुकरात मनुष्यके आत्यन्तिक मङ्गलके लिये, उसमें शुद्ध सत्त्वगुणोंको भरनेके लिये प्राणपणसे प्रयत्न करते थे। वे चाहते थे कि मनुष्यके जीवनमें दम्भका लेश भी न हो। वे न्तर्बाह्य सदा स्वच्छ और पावन रहे—जीवनान्त ज्ञानकी विषणामें संलग्न रहे। वे कहते हैं—

'यदि हम शरीरकी आवश्यकताएँ मात्र पूरी कर दिया करें और उसकी आदतोंसे अपनेको अपवित्र न हों तो जीवनमें हम ज्ञानके बहुत पास पहुँच जायँगे। हमें (शरीरसे) बचकर जहाँतक हो सके, वहाँतक पवित्र चाहिये, जबतक कि ईश्वर हमें इससे (शरीररूपी बन्ध न छुड़ा दे। और जब इस तरहसे हम पवित्र हो और शरीरकी मूर्खताओंसे सम्बन्ध न रक्खेंगे, तो (परलोकमें) पवित्रात्माओंके साथ निवास करेंगे हम स्वयं पवित्र बातोंको जान जायँगे; और सम्भव है पवित्र बातें ही 'सत्य' (ज्ञान) हों; क्योंकि मुझे वि है कि अपवित्र वस्तु पवित्र वस्तुको नहीं पा सकती।'

परलोक एवं पुनर्जन्मविषयक विचारधारा

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत)

[पृष्ठ-संख्या १६७ से आगे]

(ज) क्या परलोकमें जानेसे पुनर्जन्ममें अनुपपत्ति आती है?

कई व्यक्तियोंका यह विचार होता है कि "पुनर्जन्म-द्धान्तके आधारपर स्वर्ग-नरक आदि लोकविशेषोंकी ावश्यकता ही नहीं रहती। पुण्य-पापकर्मोंके फलस्वरूप स्वर्ग-रककी प्राप्ति बतायी जाती है, वह आत्माके जन्म-जन्मान्तरोंमें रीरके धारण करनेसे भाँति-भाँतिकी योनियोंमें यहीं प्राप्त हो ाती हैं; उनकी परलोकमें स्थिति नहीं होती। 'स्वर्ग'का अर्थ सुख' है और 'नरक'का अर्थ 'दुःख' है। 'लोक'का अर्थ ारीर' है। ये लोक हमारे शरीर ही हैं, जो आत्माको अपने र्मानुसार प्राप्त होते हैं। यदि स्वर्ग-नरक आदि लोक-शेषोंमें जीवका गमन माना जाय; तब यह पुनर्जन्म सका होता है? पुनर्जन्म और स्वर्गादि-लोककी प्राप्ति— दो सिद्धान्त इकट्ठे नहीं रह सकते। जो मुसल्मान ादि सम्प्रदाय पुनर्जन्म (आवागमन) में विश्वास नहीं रते, उनके मतमें तो स्वर्ग (बिहिश्त), नरक (दोज़ख) पनी सत्ता रखते हैं; परंतु आवागमनरूप पुनर्जन्म मानने-ले हिंदुओंके लिये स्वर्ग-नरकादि परलोकमें जानेकी बात हास्यास्पद है। इसलिये परलोकगत जीवोंके लिये ण्डदान-श्राद्ध-तर्पण आदि कर्म भी व्यर्थ हैं।

"जब कि जीव मरणके बाद तत्काल ही पुनर्जन्मको ग्रहण कर लेता है, जैसे कि बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४ 'तृणजलौका' न्यायसे स्पष्ट कर दिया गया है। जैसे ज जलमें तृणके अन्तमें पहुँचकर दूसरे तृणपर जाती हुई, प तिनकेको तब छोड़ती है, जब वह दूसरे तिनकेपर प जमा लेती है; इस प्रकार जीवात्मा भी एक शरीरको छोड़ तत्काल ही दूसरे शरीरको धारण कर लेता है।

(ख) इसलिये महाभारतमें भी कहा है—

आयुषोऽन्ते प्रहायेदं क्षीणप्रायं कलेवरम्।
सम्भवत्येव युगपद् योनौ नास्त्यन्तरा भवः॥
(वनपर्व १८३।७७

'मरनेपर जीव तत्क्षण ही अन्य योनिमें चला जा है; क्षणके लिये भी जीव असंसारी (बिना शरीरके) नहीं रहता

(ग) भगवद्गीतामें भी यही कहा है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(२।२२

यहाँपर पुराने वस्त्रके त्याग तथा नये वस्त्रके पहननेके दृष्टान्तसे जीवात्मा इस शरीरको छोड़नेके बाद

ः पुनर्जन्म ग्रहण कर लेता है, तब उसके लिये मृतक [illegible]ादि व्यर्थ हैं।

"जीवके इस शरीरको छोड़नेपर उसका सारा सांसारिक बन्ध समाप्त हो जाता है। पुनर्जन्म होनेपर पितरोंके [illegible]से दी हुई सामग्री हमारे पास नहीं आती। हम भी [illegible]सीके पितर होंगे ही। इस प्रकार स्वर्ग-नरक आदिकी [illegible]ति मृतक श्राद्ध-तर्पण आदिका भी पुनर्जन्म-सिद्धान्तके [illegible]थ कुछ भी सामञ्जस्य नहीं बैठता।"

यह एक विचारणीय आवश्यक विषय है। इसपर भी हम [illegible]चार करना चाहते हैं। इसमें यह ध्यान देना चाहिये [illegible]—परलोकादि विषय प्रत्यक्ष नहीं हैं, किंतु परोक्ष हैं; तब [illegible]रोक्षविषयमें युक्तियोंकी भला गति कैसे हो सकती है? उसमें [illegible]ो, वेदादि शास्त्रोंका ही प्रामाण्य होगा। देखे हुए चन्द्रमाको माननेवाले चार्वाक हुआ करते हैं। उनकी वाणियाँ आपात-मनोहर हुआ करती हैं; वस्तुतः तो निरर्थक ही होती हैं।

यह हमारा पृथ्वीलोक 'इहलोक' वा 'अयं लोकः' कहा जाता है; परंतु स्वर्गादि लोक तो 'परलोक' वा 'असौ लोकः' इत्यादि शब्दोंसे कहा जाता है। पहले कहा जा चुका है कि—'अदस्' शब्दका प्रयोग 'दूरस्थित' के लिये आता है और 'इदम्' शब्द निकटके लिये आता है। अतएव 'पृथिवीलोक' के लिये हम 'अयं लोकः' कहते हैं; और स्वर्गादिको 'असौ लोकः' कहते हैं। वे इस लोकसे भिन्न एवं दूर सिद्ध होते हैं; इस विषयमें 'घ' भागके 'ङ' आदि विभागोंमें हम प्रमाण दे चुके हैं।

'तस्माद् लोकात् पुनरेति अस्मै लोकाय कर्मणे।'

(शतपथ १४। ७। २। ८)

यही वचन बृहदारण्यक उपनिषद् (४। ४। ६) में भी आता है। यहाँ 'तद्' शब्दसे 'परलोक' स्वर्गादि इष्ट है। उससे वापस इस लोकमें फिर कर्म करनेके लिये आना या पुनर्जन्म लेना कहा है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि परलोक भोगस्थान है। उसमें प्राप्त हुए 'भोगयोनि' होते हैं; वहाँ कर्म करना फलजनक नहीं होता। इस लोकको 'कर्मस्थान' कहा गया है। तब जो व्यक्ति परलोक जानेपर फिर उसके इस लोकमें आवागमनमें अनुपपत्ति मानते हैं, वे भ्रान्त सिद्ध होते हैं। अधिकतया भोग तो स्वर्गादि लोकमें हो जाता है। शेष बचे हुए-से हम यहाँ आते हैं, उनका फल भी प्राप्त करते हैं और नवीन कर्म भी करते हैं। हाँ, जब जीव मुक्तिलोकमें जाता है; उस समय कोई भी कर्म शेष न रह जानेसे उसका फिर इस लोकमें भी कर्मबद्ध आगमन नहीं होता।

ईसाई और मुसलमान मरे हुओंकी कब्रमें स्थि[illegible] मानते हैं; उनका पुनर्जन्म नहीं मानते। पर वे भी 'कयामत' के समय पुनः परमात्माके द्वारा मरे हुओंका जीवन मान[illegible] पुनर्जन्म-सा मानते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि—परलोक इस लोकसे भि[illegible] है। हमें रातको जो तारामण्डल दीखता है, यही स्वर्गलो[illegible] का परलोक हुआ करता है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कहा है- 'देवाह्वा वै नक्षत्राणि' (१। ५। २। ६) यहाँ ता[illegible] मण्डलको देवताओंका स्थान कहा है। वहीं कहा गया है- 'यो वा इह यजेत। अमुं स लोकं नक्षते, तन्नक्षत्र नक्षत्रत्वम्' (१। ५। २। ५) यहाँ पृथिवीलोकमें [illegible] करनेवालोंका परलोकमें तारामण्डलमें जाना कहा है [illegible] कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयसंहितामें कहा है—'सुकृतां वा ए[illegible] ज्योतींषि यन्नक्षत्राणि।' (५। ४। १। ३) यहाँ त[illegible] मण्डलको यज्ञ करके परलोकमें गये हुओंकी ज्योति ब[illegible] गया है।

न्यायदर्शनके वात्स्यायनभाष्यमें भी कहा है—'[illegible] खलु अयमात्मा। यस्माद् एकस्मिन् शरीरे धर्मं च[illegible] कायभेदाद् (मरणे सति) स्वर्गे देवेषु उपपद्यते। [illegible] चरित्वा देहभेदाद् (मृत्यौ) नरकेषु उपपद्यते।' (३[illegible] ४१) यहाँ भी स्वर्गादि लोक तथा उसमें देवता मा[illegible] हैं। 'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्य[illegible] विशन्ति।' (भगवद्गीता ९। २१) यहाँपर देवता स्वर्गलोक भोगकर फिर मनुष्यलोकमें आना कहा है।

वेदान्तदर्शनके शाङ्करभाष्यमें कहा है—'लोक' [illegible] प्राणिनां भोगायतनेषु भाष्यते—'मनुष्यलोकः, पितृ[illegible] देवलोकः।' (४। ३। ४) अर्थात् लोकका अर्थ है प्राणियोंको जिस लोकमें सुख-दुःखका फल मिले। '[illegible] लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः।' (अथर्ववेद सं० १२[illegible] ४५) यहाँपर मृतकोंका 'पितृलोक' में जाना कहा है

आर्यसमाजके प्रवर्तक श्रीस्वामी दयानन्दजी [illegible] नक्षत्रमण्डलमें पुरुषोंकी स्थिति मानते हैं। देखिये, उद्धरण—

प्रश्न—सूर्य, चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं; और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं ?

(उत्तर—) ये सब भूगोललोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती है ·········'जब पृथ्वी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं, पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजाके होनेमें क्या संदेह ?·········(प्रश्न)—जैसे इस देशमें मनुष्यादि सृष्टिकी आकृति अवयव है, वैसे ही अन्य लोकोंमें भी होंगी, वा विपरीत ? (उत्तर—) कुछ-कुछ आकृतिमें भेद होना भी सम्भव है·········(सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लासके अन्तमें) ।

वेदान्तदर्शन शाङ्करभाष्यमें कहा है—'**सम्पतन्ति अनेन अस्माद् लोकाद् अमुं लोकं फलोपभोगाय** ।' (३ । १ । ८) यहाँपर आर्यसमाजके श्रीतुलसीरामजीके भाष्यका सारांश यह है कि—'इष्टापूर्त आदि उत्तम कर्मके करनेवाले चन्द्रलोक आदि उत्तम लोकोंमें फल भोगकर कुछ अपना अवशिष्ट कर्म अपने साथ लाकर इस लोकमें उत्तमयोनिमें जन्म लेते हैं ।' वहीं ३ । १ । १२ शाङ्करभाष्यमें भी कहा है—'**ये वै केचिद् अधिकृता अस्माल्लोकात् प्रयन्ति, चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति** ।' यहाँ भी वही बात कही है । मृतकोंका चन्द्रलोकमें जाना कहा है ।

'**विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति**' (सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय, त्रिप्रश्नवासना १३ श्लोक) यहाँ पितरोंका चन्द्रलोकपर रहना कहा है । जब ऐसा है, तब मृत पितर लोग विशेष शक्तिशाली होनेसे हमसे दिये हुए श्राद्ध-पिण्ड-दानादिको अपनी आकर्षण-शक्तिसे खींच लेते हैं ।*

तृणजलौका-न्याय

अब इस न्यायपर भी विचार करना चाहिये । बृहदारण्यक उपनिषद्में यह वचन है—'*तद् यथा तृणजलायुका तृणस्य अन्तं गत्वा अन्यमाक्रममाक्रम्य आत्मानम् उपसंहरति, एवमेव अयमात्मा इदं शरीरं निहत्य अविद्यां गमयि अन्यमाक्रममाक्रम्य आत्मानं उपसंहरति* । (४ । ४ । ३

उक्त वचनमें मृत्युके बाद जो देह तैयार होता है, पारलौकिक सूक्ष्मदेह ही होता है, चाहे वह देवलोक देह हो, चाहे पितृलोक या गन्धर्वलोकका । इसलिये प स्थान 'शरीर' लिखा है, दूसरे स्थान 'शरीर' न लिखा 'अक्रम' ही लिखा है । वह भी 'पुनर्जन्म'रूप है । मृत बाद जीवका इस लोकमें पुनर्जन्म तत्क्षण नहीं होता । स्वा दयानन्दजी भी '*सविता प्रथमेऽहन्*·········· (यजुर्वेदभाष्य ३९ । ६) इस मन्त्रसे क्रम-से-क बारह दिनके बाद जीवका पुनर्जन्म मानते हैं । तब ज इतने दिनोंतक जहाँपर सूक्ष्मशरीरसे रहता है, वही 'परलो कहा जाता है । स्वामी दयानन्दजीने उसका नाम संस्कारवि (अन्त्येष्टिके आरम्भमें) 'यमालय' माना है । यमालय अन्तरिक्ष (आकाश) में मानते हैं । तब वह जी उपनिषदोंके अनुसार बादलोंमें, फिर वृष्टिके साथ सब्जियोंमें फिर सब्जियोंके साथ पुरुषके शुक्रमें और शुक्रके सा स्त्रीके गर्भाशयमें प्रवेश करके उसीसे दसवें महीने उत्पन्न होता है । तब वहाँ 'तृणजलायुका' न्यायका संघटन नह हो सकता । मरनेके बाद पारलौकिक सूक्ष्मदेह तो तत्काल ही मिल जाता है, जो परलोकमें स्थिति करानेवाला होत है । वह 'पितृदेह' भी हो सकता है, 'प्रेतदेह' भी हो सकता है और 'देवदेह' भी हो सकता है । अतः उक्त बृहदारण्यकका उपक्षिप्त वचन उसीमें समन्वित होता है । वह वचन मनुष्य या पशुके देहसे विलक्षण सूक्ष्मदेहोंके लिये है । उसीकी स्पष्टता करनेवाला बृहदारण्यकका वचन उक्त वचनके आगे मिलता है, जिससे हमारा कथन स्पष्ट हो जाता है । वह है—

'*तद् यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामुपादाय अन्यद् नवतरं कल्याणतरं रूपं तनुते एवमेव अयमात्मा इदं शरीरं निहत्य अविद्यां गमयित्वा अन्यद् नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते—पित्र्यं वा, गान्धर्वं वा, दैवं वा प्राजापत्यं वा, ब्राह्मं वा अन्येषां वा भूतानाम्* ।' (४ । ४ । ४)

---

* इस विषयमें आर्यसमाजके विद्वान् श्रीरघुनन्दनशर्माजीकी 'वैदिक सम्पत्ति' (प्र० स०) के पृ० ३७१ । ३७२ पृष्ठमें तथा

है।' ये सब शरीर सूक्ष्म होते हैं। अतः पृथ्वीलोकमें नहीं रह सकते; किंतु परलोकमें रहते हैं। वहाँसे पतन होनेपर फिर मनुष्यलोकमें स्थूलशरीर धारण करते हैं। पहला 'सूक्ष्म पुनर्जन्म' था और यह 'स्थूल पुनर्जन्म' हो जाता है।

इससे मृतकोंकी जब पितृलोकमें प्राप्ति भी सूचित हो गयी, तब पित्र्य-शरीरवश उनके लिये मृतक पितृ-श्राद्ध भी प्रयोजनीय सिद्ध हो गया। पितृलोकका वर्णन यजुर्वेद-शतपथ ब्राह्मण (१४। ४। ३। २४; ३। ७। १। २५) में स्पष्ट है। पितृ, गन्धर्व, देवता, प्रजापति—ये मनुष्ययोनिसे उन्नत योनियाँ होती हैं, जिनका वर्णन और पृथक्-पृथक् आनन्दकी मात्रा बृहदारण्यक उपनिषद् (४। ३। ३३) में तथा तैत्तिरीयोपनिषद् (ब्रह्मानन्दवल्ली अष्टम अनुवाक) में स्पष्ट है। इनके लिये भी पिण्डदान आदिका शास्त्रोंमें विधान है।

इससे स्पष्ट हो गया कि जीव मृत्युके बाद साधारण रूपसे पारलौकिक विविध लोकोंमें स्थित होकर, वहाँका आनन्द अनुभूत करके, तब अवशिष्ट कर्मोंसे फिर इस मर्त्यलोकमें पुनर्जन्म प्राप्त करनेके लिये गर्भमें आता है। इससे पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें कुछ भी बाधा नहीं पड़ती। यह बात वेद एवं उपनिषद्की शिक्षाके अनुकूल है। इसमें स्वर्ग-नरक आदि वादकी भी अनुकूलता हो जाती है। पितृलोक-प्राप्तिमें पितृयज्ञरूप पितृश्राद्ध उसमें सहायक होनेसे उपयोगी ही होता है। अथवा यदि जीव तत्काल ही मनुष्य-शरीर भी ग्रहण कर ले, तब उस समय भी श्राद्धादि कर्मकी व्यर्थता नहीं होती। उस समय नित्य पितर, वसु, रुद्र और आदित्य उसका फल उस जीवको मनीआर्डरकी भाँति मनुष्यलोकमें भिजवा दिया करते हैं; अथवा यदि जीव मुक्तिलोकमें गया हुआ हो, तब श्राद्ध वहाँ नहीं पहुँचता; वह श्राद्धकर्ताको ही पुनः प्राप्त हो जाता है।* हमें जो भोजन प्राप्त हो गया है, इसे हम नहीं जान पाते कि यह हमारे कर्मोंका हमें प्राप्त हो रहा है, या हमारे पुत्रादिद्वारा दिये गये श्राद्धके फलरूपमें हमें प्राप्त हो रहा है। अथवा हम अकालके मुखमें आ पड़ें तो यह भी सम्भव हो सकता है कि—हमारे लिये हमारे गतजन्मके पुत्रादि श्राद्धकर्म नहीं करते रहे हों।

* इस विषयमें 'श्रीसनातनधर्मालोक' के चतुर्थ तथा पञ्चम पुष्प देखने चाहिये।

(ख) महाभारतका जो वचन पहले दिया उसके साथवाले पद्योंको मिलाकर अर्थ क स्पष्टता होती है। वह यह है—

एष तावदबुद्धीनां गतिरुक्ता युधिष्ठि
अतः 'परं ज्ञानवतां निबोध गतिमुत्तमा

(महाभारत, वन० १८

अर्थात् साधारण गति तो मूर्खोंकी होती ज्ञानियोंकी गति यह होती है—

'कर्मभूमिमिमां प्राप्य पुनर्यान्ति सुरालय

(महाभारत, ३। १८

यहाँ कर्मभूमि इस मनुष्यलोकमें स्थित देवलोक स्वर्गलोकमें प्राप्ति भी कही गयी है। 'तेषामयं चैव परश्च लोकः।' (९१) 'स्वर्गं परं निवासं क्रमेण सम्प्राप्स्यथ कर्मभिः स्वैः।' (९ मनुष्यलोक तथा स्वर्गलोकका प्राप्त करना कहा है।

(ग) 'वासांसि जीर्णानि' इस गीताके कहा है—

'तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही

(

यहाँ नये शरीरोंमें बहुवचन होनेसे पि शरीरोंकी प्राप्ति सूचित की गयी है। वे भी शरीर ही कहे जाते हैं। जैसे कि न्यायदर्शनमें कहा

'तत्र मानुषं शरीरं पार्थिवम्।···आप्य तैजस लोकान्तरे शरीराणि' (३। १। २८)। ह पार्थिव तत्त्वकी अल्पता तथा जल, तेज, वायु मुख्यता होनेसे वे शरीर मनुष्य-शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म करते हैं। तभी तो भगवद्गीतामें भी कहा है—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रत
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि मा

(

यहाँपर जीवको देव, पितर, प्रेत आदि लोकों कही है।

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसा
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जना

(१

यहाँ भी पूर्ववचनकी स्पष्टता है। वेदमें भी इस विषयमें स्पष्टता है—

'पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः।'

(अथर्व० १२। २। ४५)

'अधा मृताः पितृषु सम्भवन्तु।'

(अथर्व० १८। ४। ४८)

इन मन्त्रोंमें मृतकोंकी पितृलोकमें प्राप्ति सूचित की गयी है। मृतकोंका श्राद्ध भी वेदमें सूचित किया गया है। जैसे कि—

'जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।'

(ऋग्वेदसं० १। १६४। ३०)

यहाँपर श्रीसायणाचार्यने व्याख्या की है—

'मृतस्य शरीरस्य सम्बन्धी जीवः; मर्त्येन—मरणधर्मकेण शरीरेण सयोनिः पूर्वं समानोत्पत्तिस्थानः। यद्यपि जीवस्य न जन्मास्ति, तथापि वपुषस्तत्सद्भावात् तत्सम्बन्धेन उपचर्यते। तदेवाह अमर्त्यः—अमरणस्वभावः। 'जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते, न जीवो म्रियते।' (छान्दोग्योपनिषद् ६। ११। ३) इति श्रुतेः। उक्तस्वभावो जीवः स्वधाभिः चरति—पुत्रकृतैः स्वधाकारपूर्वकदत्तैः अन्नैः चरति—वर्तते इत्यर्थः।'

'मृतकका जीव जिसका पहले शरीरसम्बन्धसे जन्म उपचारभावसे कहा जाता है; वस्तुतः अमरणस्वभाववाला जीव पुत्रसे दिये हुए स्वधान्न (श्राद्ध) से तृप्त हो जाता है।'

फलतः जीवके परलोक प्राप्त होनेपर भी पुनर्जन्मवादमें कोई भी अनुपपत्ति नहीं आती। परलोकमें फल अनुभव करके जीव अवशिष्ट कर्मवश फिर मनुष्यलोकमें वापिस आता है।

(झ) क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति

कर्मवश जीव स्वर्गादि परलोकमें जाता है और [illegible] अनुभव करके तब मनुष्यलोकमें

लिये जीव पुनः कर्म करनेके लिये इस लोकमें आता है और मनुष्य बनता है। मनुष्य 'कर्मयोनि' माना जाता है।

कर्मफल भोगकर स्वर्गसे गिरकर इस लोकमें आना भगवद्गीतामें भी कहा है—'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।' (९। २१) इससे पूर्व वहीं कहा है—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्॥

(९। २०)

यह आशय है कि 'जीव यज्ञादि-कर्मोंसे स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं। वहाँ देवता बनकर दिव्य भोगोंको भोगते हैं फिर पुण्यके समाप्त हो जानेपर स्वर्गसे गिरकर इस मनुष्यलोकको प्राप्त होते हैं।' यही बात उपनिषदोंमें भी कही है—

'तद् यथा इह कर्मजितो लोकः क्षीयते, एवमेव अमुत्र [परलोके] पुण्यजितो लोकः [स्वर्गः] क्षीयते।' (छान्दोग्य० ८। १। ६)। यहाँ स्वर्गकी क्षीणताका तात्पर्य स्वर्गसे गिरकर फिर मनुष्यलोकमें पुनर्जन्म लेनेमें है।

इसी प्रकारका वचन मुण्डकोपनिषद्में भी मिलता है—

'इष्टापूर्तं (यज्ञादिकं) मन्यमाना वरिष्ठं······यज्ञादिभिः (प्राप्तस्य) नाकस्य [स्वर्गलोकस्य] पृष्ठे ते [जीवाः] सुकृते [पुण्यलभ्ये] अनुभूत्वा इमं [मानुषम्] लोकं हीनतरं वा विशन्ति।' (१। २। १०)

यहाँ भी कर्मयोनि मनुष्योंके फलभोगके लिये स्वर्गगमन कहा है; तब वे भोगयोनि देव होकर, कर्म समाप्तप्राय हो जानेपर स्वर्गलोकसे गिरकर फिर इस मनुष्यलोकमें आ जाते हैं और कर्मयोनि होकर कर्ममें प्रवृत्त हो जाते हैं। यही बृहदारण्यक उपनिषद्में भी कहा है—

'प्राप्य अन्तं कर्मणः [स्वर्गलोकमें कर्मफल प्राप्त करके] तस्य यत् किंच [कर्म] इह [इस मनुष्यलोकमें] करोति अयम् [कर्मयोनिर्मनुष्यः]; तस्मात् [स्वर्गात्] लोकात् पुनरेति अस्मै लोकाय [अस्मिन् मनुष्यलोके] कर्मणे [कर्म
[illegible]

...मायतनम्' (शत० १४ । ३ । २ । ८)। स्वर्ग जब ...क है, इस लोकसे भिन्न है, तब स्वर्ग 'सुख'का पर्याय-...क नहीं—'**एतत् स्वर्गसुखं विप्र लोका नानाविधास्तथा ।**' ...हा०, वन० २६१ । २७) यहाँ स्वर्गका सुख कहा ... यदि स्वर्ग 'सुख'का पर्यायवाचक होता, तो '**स्वर्ग-...म्' में पुनरुक्ति या व्यर्थता होती । '**न स्वर्गेण सुखेन वा**' ...हा०, वन० २६१ । ४२) यहाँ भी स्वर्ग और सुख ...नोंको भिन्न-भिन्न बताया गया है; अतः स्वर्गलोक इस ...कसे भिन्न ही सिद्ध हुआ । इसलिये अथर्ववेद-संहितामें—

'**पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहम्, अन्तरिक्षाद् ...वमारुहम् । दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ।**' ...४ । १४ । ३)

यहाँ द्युलोक, जिसके पृष्ठपर स्वर्गलोक है, पृथिवीलोकसे ...भिन्न माना गया है । उसीमें देवता रहते हैं । इससे सिद्ध ...होता है—मनुष्य '**कर्मयोनि**' है और देवता केवल '**भोगयोनि**' । यदि देवता भी कर्मयोनि होते तो उन्हें कर्म करनेके लिये फिर इस लोकमें आना न पड़ता ।

कर्मोंका फल जो स्वर्ग कहा है, उसमें 'कर्म' यज्ञादि समझना चाहिये । इसी कारण वेदमें कहा है—'**यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्**' (अथर्ववेद-सं० १८ । ४ । २) (**ईजानाः**—यज्ञ करते हुए) । '**स्वर्गकामो यजेत**'—यह वचन भी दर्शनोंमें सुप्रसिद्ध है । तब यज्ञके कर्म होनेसे और कर्मोंके सीमित होनेसे उससे प्राप्त स्वर्गके भी सीमिततावश क्षयी होनेसे '**क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।**'—यह पूर्वोक्त गीता-वचन संगत हो जाता है । '**गतागतं कामकामा लभन्ते ।**' (गीता ९ । २१)—इस वचनमें 'गमनागमन' कहनेसे 'पुनर्जन्म' भी सिद्ध हो गया ।

इससे यह भी सिद्ध हो गया कि 'काम' ही कर्म है; काम न होनेपर कर्म भी 'अकर्म' होता है । कामना न होनेपर कर्म न रह जानेसे 'मुक्ति' कही गयी है । कामना होनेपर कर्म रह जानेसे उन कर्मोंके क्षयी तथा सीमित होनेसे स्वर्ग भी क्षयी होता है । कामनाके अभावमें अभावके नित्य होनेसे कर्माभावसे होनेवाली मुक्ति भी नित्य हुआ करती है ।

तब मुक्ति हो जानेपर तो पुनर्जन्ममें अवश्य अन्तराय हुआ करता है, परंतु स्वर्गादि परलोक प्राप्त होनेपर पुनर्जन्म स्वतः सिद्ध है; उनमें कोई बाधा नहीं पड़ती; क्योंकि उसमें मुक्तिकी भाँति सदाके लिये निवास नहीं रहता; अतः इस विषयमें जो कि कई व्यक्तियोंको संदेह हुआ करता है, उसका कारण यह है कि उन्होंने स्वर्ग-नरकमें भी जीवका मुक्तिकी भाँति सदा निवास मान रक्खा है; पर वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है । मुक्तिको छोड़कर अन्य लोक-लोकान्तरोंमें जानेसे तो पुनर्जन्मकी सिद्धि हुआ करती है । पर मुक्ति परम कठिन है, प्रत्येकको प्राप्त नहीं हो सकती; अतः पुनर्जन्म सर्वसाधारण है । पुनर्जन्मवाद एवं स्वर्ग-नरकादि माननेसे ही पुरुषोंको पुण्यके लिये प्रोत्साहन तथा पापसे घृणा-भीति उत्पन्न होगी; पर नास्तिकतावाद माननेसे तो पापकी भारी वृद्धि होगी; उसीसे संसारमें अव्यवस्था फैलेगी । इसीलिये लोगोंका कल्याण मानकर 'कल्याण'ने 'पुनर्जन्म'में वास्तविकता बताकर जगत्में व्यवस्था लानेका अनुकरणीय प्रयास किया है । पुनर्जन्मकी घटनाएँ आये दिन समाचारपत्रोंमें निकला करती हैं । उनमें अनुसंधानसे सत्यता सिद्ध हुई है; अतः पुनर्जन्मवाद जहाँ शास्त्रीय है । वहाँ प्रत्यक्ष सिद्ध भी है ।

(ञ) परलोकविद्या

हिंदुओंद्वारा मृतकोंका श्राद्ध-तर्पण देखकर वैदेशि... वैज्ञानिकोंका इधर ध्यान गया । उन्होंने उसका परीक्ष... प्रारम्भ कर दिया । उससे उन्हें प्रतीत हुआ कि मरा हु... व्यक्ति अभावको प्राप्त नहीं हो जाता, किंतु मरनेके बा... उसकी स्थिति परलोकमें हो जाती है । उत्तम माध्यमद्वा... हम उससे सम्बन्ध करके उससे लाभ ले सकते हैं । हम भारतीय पुरुषोंका भी इधर ध्यान गया और इसमें उन्होंने ... पर्याप्त सफलता प्राप्त कर ली । वैदेशिक लोग सब परीक्षण... अपना ही दृष्टिकोण रखते हैं । उन्हें ऐसा आभास हुआ ... मृतकका जीव सदा परलोकमें ही रहता है; उसका ... लोकमें पुनर्जन्म नहीं होता । पर पुनः-पुनः अवगाहनसे ... वैदेशिक भी अब परलोकगतका इस लोकमें 'पुनर्जन्म' मानने लग गये हैं ।

सबकी शैलियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं । वैदेशिकोंने मृत... आकर्षणार्थ अपने ढंगके उपाय जारी किये । हमारे पूर्व... कुश, मधु, तिल, गङ्गाजल, तुलसीपत्र, चावलोंके ... आदिका मृतकोंके जीवके आकर्षणार्थ उपयोग कर रक्खा... अब इनका भी यन्त्र बनाकर निरीक्षण-परीक्षण ... चाहिये । हमारे पूर्वजोंकी प्रायः सभी बातें परीक्षण-निर... करनेपर सत्य सिद्ध हुई हैं ।

अब इस परलोकविद्याका अपलाप नहीं किया जा सकता। अभिज्ञजन इसमें उद्यत हो रहे हैं। इस विद्यासे कई लाभ होनेकी सम्भावना है। वह यह कि हम स्थूल-शरीरी होनेसे सीमित शक्तिवाले हैं; पर मृतक पुरुष स्थूल-शरीर छूट जानेसे पारलौकिक दिव्य सूक्ष्मशरीर मिलनेसे अलौकिक शक्तिशाली होते हैं। उनसे सम्बन्ध स्थापित करके हम उस लोकोत्तर शक्तिका लाभ उठा सकते हैं। घड़ेमें ढके दीपककी प्रकाशन-शक्ति सीमित होती है। घड़ेसे बाहर ठहरे दीपककी प्रकाशन-शक्ति अधिक रहा करती है। हम भी स्थूल शरीराच्छन्न होनेसे उस घड़ेमें रक्खे दीपककी तरह हैं और परलोकप्राप्त पुरुष उसके अपवाद हैं। आत्माके न्यायादि शास्त्रसम्मत विभुत्वका वही उपयोग ले सकते हैं।

मान लीजिये कि एक व्यक्ति बहुत बीमार है। हम उसका उपचार करके भी उसे स्वस्थ नहीं कर सके। उस समय यदि हम परलोकस्थ आत्मासे सम्बन्ध करके उससे उसकी दवाइयाँ पूछें, तो अधिक ज्ञानशाली होनेसे उनसे बतायी गयी दवाइयाँ सम्भवतः उस बीमारके लिये हितकारक सिद्ध होंगी। इस प्रकारकी परलोकस्थ आत्माओंसे बतायी गयी दवाइयाँ प्रायः सफल सिद्ध भी हो चुकी हैं।

जब परलोकप्राप्तके हस्ताक्षर मिल जाते हुए देखे गये हैं; उनकी बतायी गुप्तधन गड़नेकी बातें मिल गयी हैं; उनके छाया-चित्र गृहीत हो जाते हैं; तो इस विद्यामें उन्नति करके हम कई लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस विषयमें श्रद्धा करनेसे 'श्रद्धया सत्यमाप्यते।' (यजुर्वेद १९। ३०) 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।' (गीता ४। ३९) हमें सत्य एवं ज्ञानकी प्राप्ति होगी। हमारे प्राचीन लोग भी मृतक व्यक्तिका परलोकमें निवास और उसका आह्वान भी मानते थे। लङ्का-विजयके बाद अग्नि-शुद्धिके समय परलोकसे आये हुए राजा दशरथने भी सीताकी शुद्धिमें साक्षी दी थी।

इस विषयमें यह एक बड़ा लाभ मिलेगा कि फिर 'मृत्युभय' छूट जायगा। अन्य लाभ यह होगा कि हमारा मृतक-सम्बन्धी, जिसे हम सदाके लिये बिछुड़ गया मानते हैं, फिर हम उसे अपने निकट पायेंगे। फिर बुद्ध्यग्राह्य मालूम पड़ती हैं, पर हमारे ऋषि-मुनि थे। उनकी बातें अब विज्ञान-सिद्ध सिद्ध हो रही हैं।

हमारी अपेक्षा पितरोंमें अधिक शक्ति रहती है। अपेक्षा देवताओंमें अधिक शक्ति होती है। देवता बहुत जटिल है, यह ठीक है। आरम्भमें पितृ भी बहुत जटिल था। पितरोंका आह्वान तथा आकर्ष उनका यहाँ आगमन और संवाद तथा उनसे हमारा स होता है—यह बात बहुत लोग नहीं मानते थे। इति पुराणमें मृतक दशरथ आदिका इस लोकमें आनेका आता है। योगदर्शनके व्यासभाष्यमें भी 'पितॄन् अत अकस्मात् पश्यति।' (३। २२) में भी यह संकेत आय अनुसंधाता लोगोंकी गवेषणाओंसे यह विषय समूल हो रहा है। बहुत कुछ सफलता भी इस विषयमें प्रा चुकी है; तब आगे अनुसंधाताओंका देवतावादकी ओर ध्यान बढ़ेगा।

शास्त्रानुसार पितृगण चन्द्रलोकके पृष्ठपर रहते चन्द्रग्रहकी कक्षा सब ग्रहोंसे नीचे और भूमण्डलके नि है। तभी भूमण्डलके निवासी उसके साथके ठहरे चन्द्रलो पृष्ठपर रहनेवाले पितरोंका यथाशक्ति आह्वान या आक करनेमें शीघ्र सफल हो गये हैं।

वेदमें भी 'आ यन्तु नः पितरः' (यजु० १९। ५८ इत्यादि मन्त्रोंसे पितरोंका आह्वान तथा 'अस्मिन् यज्ञे स्वध मदन्तः।' से तृप्ति 'अधि ब्रुवन्तु' से पितरोंका हमें उपदे वा संवाद, 'ते अवन्तु अस्मान्' से हमारी पितरोंद्वा 'पान्ति रक्षन्ति इति पितरः' इस व्युत्पत्तिसे हमारे कि बीमार आदिके स्वास्थ्यकी; (उत्तम ओषधि बताकर) र करना प्रसिद्ध है।

पितरोंके आकर्षणपर आर्यसमाजी विद्वान् श्रीरघुनन्द शर्माने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वैदिक-सम्पत्ति' (प्र० सं०) के ३७१ पृष्ठपर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—

'प्रश्न यह है कि चन्द्रलोकसे जीवोंको किस प्रकार खींचा जाय। जीवोंके खींचनेका वही तरीका है, जो सूर्यकान्तमणिके द्वारा सूर्यताप खींचनेमें और चन्द्रकान्तमणिके द्वारा चान्द्र-

पदार्थोंमें खिंच आते हैं, जो चन्द्राकर्षणके लिये विधिसे एकत्रित किये जाते हैं। वे पदार्थ—दूध, घृत, चावल, मधु, तिल, रजतपात्र, कुश [तुलसीदल] और जल हैं। यह प्रक्रिया शरत्पूर्णिमाके दिन लोग करते हैं; परंतु विधि-पूर्वक क्रिया तो पितृश्राद्धके समय ही होती है। पितृश्राद्ध अपराह्णके समय होता है। उसमें दूध, घृत, मधु, कुश आदि सभी पदार्थ रक्खे जाते हैं। पितरोंका प्रतिनिधि पुत्र अथवा पौत्र भी उन पदार्थोंको छूता हुआ वहींपर बैठता है। इसलिये यह सब हवि आदि सामग्री उसी प्रकारका यन्त्र बन जाती है, जिस प्रकार चन्द्रमणि। इसीमें पितर खिंचकर आते हैं—

'परा यात पितरः सोम्यासः।'

(अथर्ववेद १८। ४। ६३)

भूमण्डलके निकट होनेसे ही वैज्ञानिक लोग भी राकेट आदिसे चन्द्रलोककी यात्रा करनेकी चेष्टा करते हैं, पर देवता द्युलोकके अन्य विभागोंमें रहा करते हैं। वे पितरोंकी अपेक्षा हमसे बहुत दूर हैं। हमारा एक मास पितरोंका दिन-रात होता है। हमारा एक वर्ष देवताओंका दिन-रात होता है। परंतु यदि हमारा विज्ञान बढ़ता गया तो हम पितरोंकी भाँति देवताओंके भी निकट हो जायँगे। कुन्तीको दुर्वासा मुनिसे दिये हुए मन्त्रोंसे सूर्य, यम, वायु, इन्द्र, अश्विनी-कुमार—ये देवता आये थे, यह प्रसिद्ध ही है।

पुराण-इतिहासमें भी जो देवताओंका भूलोकमें आना बताया गया है, वह इसी बातको सिद्ध करता है कि हमारे पूर्वजोंको देवताओंको बुलानेकी विद्या भी ज्ञात थी। हमारे राजा दशरथ आदि रथोंद्वारा देवलोकमें भी जाया करते थे। अब यदि प्रयत्नसे पितृवाद कुछ सुलझ गया है; तब समयपर देवतावाद भी सुलझ जायगा।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथि-भिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु। तेऽवन्तु अस्मान्। (यजुर्वेद-सं० १९। ५८)

—इस मन्त्रसे मालूम होता है कि पितरोंको स्वधासे तृप्त करनेका विचार करनेसे ही वे हमारे आह्वानपर हमारे यहाँ आते हैं और वे हमसे संवाद करते हैं और हमें उत्तम उपाय बताकर 'पितृ' नामको (पाति रक्षति इति) सार्थक करते हुए हमारी रक्षा भी करते हैं। इस अवसरपर माध्यम

था। श्राद्धविधिके अनुसार सुचरित्र, वेदादि शास्त्रोंका विद्वा बहुभाषाप्रवीण, पितृकर्मनिष्णात ब्राह्मण माध्यम रक्खा जा इस कर्ममें मृतकके पुत्र, पौत्र वा प्रपौत्रका सम्पर्क अव होना चाहिये। उन्हें श्रद्धालु भी होना चाहिये।

पितरोंके आह्वानके समय अमावास्या आदि तिथि नियम, अपराह्णकाल, यज्ञोपवीतके दक्षिण स्कन्धमें करन नियम, तिल, घृत, मधु, तुलसीदल, गङ्गाजलयुक्त ओदन तथा रजतपात्रका उपयोग भी शास्त्रानुकूल अनुसृत कि जाना चाहिये। हाँ, आश्विनके दिनोंमें मृतककी मृत-तिथि अनुसार भी पितरोंका आह्वान हो सकता है, अ क्षयाहवाले दिन भी मृतकका आह्वान हो सकता उसका कारण यह है कि पितृलोक चन्द्रलोकपर है आश्विनके दिनोंमें चन्द्रमा अन्य मासोंकी अपेक्षा पृथिव अधिक निकट होता है, इसलिये उसकी आकर्षण-शक्ति प्रभाव पृथिवी तथा उसमें स्थित देहधारियोंपर विशेष रू पड़ता है। तब चन्द्रलोकस्थित पितरोंका भी हमसे सम्ब होकर परस्पर आदान-प्रदान होता है। क्षयाहकी तिथि पितर सीधे उसी मार्गमें होते हैं; क्योंकि तिथि चन्द्रग अनुसार हुआ करती है और उस स्थितिमें वे पितर उ मार्गमें हुआ करते हैं, जिस तिथिमें वे मृत्यु प्राप्त क उस स्थानमें प्राप्त हुए थे।

कृष्णपक्षमें पितरोंके आह्वानका कारण यह होत कि उस समय सूर्य उनके निकट होनेसे वह उनका होता है, अमावास्या उनका मध्याह्न होती है। जब पितर निद्रा-समय हो, (शुक्लपक्षकी दशमीसे कृष्णपक्षकी सप्तमीत उस समय पितरोंका आह्वान नहीं करना चाहिये; क्यो उस समय वे बिना आश्विनमासके अन्य मासमें संवाद करना चाहते, उस समय कई अन्य भूत-प्रेतादि ही ह संवाद कर रहे हों, यह सम्भव होता है। तीन पी अधिकके पितरोंको भी संवादके लिये नहीं बुलाना चा क्योंकि वे उस समय चन्द्रलोकसे ऊपरके लोकमें जाते हैं। पितृकोटिमें न रहकर देवकोटिमें चले जाते उन्हें बुलानेके लिये शास्त्रीय अन्य उपाय करने पड़ेंगे। मृतक तो आरम्भमें ही पितृकोटिमें न जाकर परलो निम्नस्तर नरकादि लोकोंमें अथवा भूत-प्रेतादि योनिमें जाते हैं, जहाँ उन्हें बहुत अशान्ति रहती है।

आधिभौतिक प्रकारसे तथा यन्त्रशक्तिसे करते हैं। पहले प्रकारका अवलम्बन करनेपर शास्त्रोंपर दृढ़ निष्ठा बनी रहती है, श्रद्धा-विश्वास बना रहता है, आस्तिकता बनी रहती है। अतः हमें इधर प्रवृत्ति करनी चाहिये।

फलतः परलोकविद्या अवश्य है, पुनर्जन्म भी अवश्य है। यह सब सुकर्म-दुष्कर्मके फल हैं। जो इन वादोंपर हृदयसे आस्था रखते हैं; वे असत्य, कपट, चोरी, ठगी, बेईमानी आदि दुष्कृत्य नहीं करते; पर परलोकसे डरनेवाले लोग, पुनर्जन्म और परलोक एवं कर्मफलमें विश्वास रखनेवाले, धर्मपरायण, निर्लोभ, प्रायः निःस्वार्थ, परोपकार-परायण, पुण्यनिरत रहा करते हैं। आजकल कई लोग तो 'पुनर्जन्म' मानते हैं; पर वेद-शास्त्रादिमें छ[illegible] अनर्थ आदि करके, स्वविरुद्ध शास्त्रीय सिद्धा[illegible] बताकर ऋषि-मुनियोंके अनभीष्ट अर्थ करके [illegible] परलोकसे डर नहीं रखते, उन्हींके लाभार्थ [illegible] इस विशेषाङ्कसे जनताकी सेवा की है। आशा है [illegible] इसका प्रचार करके हिंदू-धर्मको गौरवमय [illegible] करनेमें कुछ भी उठा नहीं रखेगी। यह वि[illegible] 'श्रीसनातनधर्मालोक ग्रन्थमाला' के विभिन्न पुष्प[illegible] चाहिये।*

(जन्माष्टमी सं० २०२५)

पुनर्जन्मः एक दार्शनिक विवेचन

(लेखक—पण्डित श्रीजनार्दनजी मिश्र, पङ्कज, शास्त्री)

[पृष्ठ २०० से आगे]

कई नास्तिकोंका कहना है कि 'जबतक शरीर है, तभीतक इसमें चेतन आत्माकी प्रतीति होती है, शरीरके जला या दफना दिये जानेपर आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है; अतः शरीरसे भिन्न आत्मा नहीं है। अतएव मरणके पश्चात् परलोककी यात्रा अथवा ब्रह्मलोकादिमें पहुँचकर मुक्त हो जानेकी बातें असंगत हैं।' (चार्वाक दर्शन) उनके कथनका वेदान्तने युक्तियुक्त खण्डन किया है। शरीर ही आत्मा है और पुनर्जन्म नहीं होता—यह कथन ठीक नहीं, गुमराह करनेवाला है। किंतु शरीरसे भिन्न, शरीर आदि पञ्चभूतों तथा उनके कार्योंको जाननेवाला, द्रष्टा या साक्षी आत्मा अवश्य है। सांख्योक्त सूत्र—'देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ।' से यह सिद्ध होता है; क्योंकि मृत्युकालमें शरीर हमारे-आपके सामने निश्चेष्ट पड़ा रहता है, तो भी उसमें सब पदार्थोंको जाननेवाला चेतन आत्मा नहीं रहता। अतः जिस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि शरीरके रहते हुए भी उसमें जीवात्मा नहीं रहता, इसी प्रकार यह भी मान लेना होगा कि शरीरके न रहनेपर भी आत्मा रहता है। वह इस स्थूलशरीरमें नहीं तो अन्य (सूक्ष्म व लिङ्ग) शरीरमें रहता है। अतः दर्शन-शास्त्रका यह कथन कि लिङ्गनाश होनेपर ही मुक्ति होती है—कितना सारगर्भित एवं रहस्यमय है, यह [illegible] चिन्तनका ही विषय है। अथच मृत्युके बाद भी [illegible] अभाव नहीं होता। असत्का भाव नहीं और [illegible] अभाव नहीं—इस न्यायसे यह कथन सर्वथा युि[illegible] है कि 'स्थूलशरीरसे भिन्न आत्मा नहीं है।' यदि इस [illegible] पृथक् चेतन आत्मा नहीं होता तो वह अपने तथा [illegible] शरीरोंको नहीं जान सकता; क्योंकि घटादि जड [illegible] एक-दूसरेको या अपने-आपको जाननेकी शक्ति न[illegible] अतएव जिस प्रकार सबका ज्ञाता होनेके कारण ज्ञा[illegible] आत्माकी उपलब्धि प्रत्यक्ष है, उसी प्रकार शरीरक[illegible] होनेके कारण इस ज्ञेय शरीरसे उसका भिन्न-पृथक् भी प्रत्यक्ष है।

कहना नहीं होगा कि गौतमादि तार्किकोंने अपुनर्ज[illegible] नास्तिक दर्शनों तथा बाइबिल और कुरानादिकी [illegible] जवाब पत्थरसे दिया है। इनकी युक्तियाँ बड़ी प्रबल [illegible] अकाट्य हैं। न्यायदर्शनमें स्पष्ट लिखा है—

'पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्ते[illegible]

(न्या० सू० ३।१।[illegible])

यहाँ एक प्रश्न उठाकर उत्तर देनेकी चेष्टा की गयी है नवजात शिशुओंके मुखपर जो आनन्द, भय और कके चिह्न देखनेमें आते हैं, उनका क्या कारण है ? रके सूत्रकी व्याख्या करते समय दिग्गज तार्किक चस्पति मिश्रजी कहते हैं—

'अभिप्रेतविषयकप्रार्थनाप्राप्तौ सुखानुभवो हर्षः । निष्टविषयसाधनोपनिपाते तज्जिहासोर्हानाशक्यता भयम् । ष्टवियोगे सति तत्प्राप्त्यशक्यप्रार्थना शोकः । तदनुभवः म्प्रतिपत्तिः । प्रत्यक्षबुद्धिनिरोधे तदनुसंधानविषयः मृतिः । अनुबन्धो भावनास्मृतिहेतुः संस्कारः ।'

(न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका)

भावार्थ—"अभीष्ट विषयकी पूर्ति होनेपर 'हर्ष' होता है । अनिष्ट विषयकी उपस्थिति हो जानेपर उसे दूर करनेकी इच्छा होनेपर भी दूर नहीं कर सकनेपर 'भय' होता है । इष्टके वियोगसे 'शोक' होता है । इन्हींका प्रत्यक्ष अनुभव 'सम्प्रतिपत्ति' कहलाता है । अतीत अनुभवके अनुसंधानको 'स्मृति' कहते हैं और स्मृतिका कारणस्वरूप संस्कार ही 'अनुबन्ध' कहलाता है ।"

अब स्पष्ट समझ लीजिये कि हर्ष, भय, शोककी उत्पत्तिका कोई-न-कोई कारण तो होगा ही । अथच सद्योजात शिशुकी मुखाकृतिपर प्रकट और लुप्त होनेवाले हर्ष, भय, शोकादि विकारोंका एकमात्र कारण पूर्वजन्मका अभ्यास ही है । यह पूर्वस्मृति एवं तज्जन्य संस्कार ही है, जिससे बालखिल्यों (छोटे-छोटे बच्चों) के मुखपर हर्ष, भय और शोकके लक्षण उदित होते रहते हैं ।

बहुत सम्भव है, अपुनर्जन्मवादी यहाँ एक शङ्का खड़ी कर दें और अपनी दलीलमें कह दें कि 'बच्चोंका यह हँसना, रोना, किलकारियाँ भरना आदि प्राकृतिक हैं । जिस प्रकार कमल तालाबमें मुसकरा उठते हैं और संध्या समय सम्पुटित हो जाते हैं, अथच इसे क्यों न 'आकस्मिकवाद' मान लिया जाय ?' उपर्युक्त आक्षेपके उत्तरमें न्याय-सूत्रकारने अपना दूसरा सूत्र सामने रख दिया है—

'नोष्णशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मकविकाराणाम् ।'

(न्या० सू० ३ । १ । २१)

कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि कमलके विकास तथा संकोचवाले इस उदाहरणसे भी 'आकस्मिकवाद' की सिद्धि नहीं होती । इसलिये कि पञ्चभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश) से बनी वस्तुओंमें जो विकार भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, उनके कारण ग्रीष्म, वर्षा तथा शीत हैं । विशेष कारणके बिना उनकी उत्पत्ति सम्भव नहीं । अथच शिशुके मुखपर जो भिन्न-भिन्न विकार या लक्षण परिलक्षित होते हैं, उनके लिये कुछ-न-कुछ कारण तो मानना ही पड़ेगा । यही विशेष कारण 'पूर्वजन्माभ्यास' है । यही कारण है कि जन्म लेते ही शिशुकी जननीके स्तन्यपानकी ओर प्राकृतिक प्रवृत्ति जग जाती है । लिखा भी है—

'प्रेत्याऽऽहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात् ।'

(न्या० सू० ३ । १ । २२

अर्थात् 'सद्योजात शिशुको माताका स्तन चूसन बतलानेवाला गुरु उसका पूर्वजन्मका अभ्यास ही है ।' ऊपरके सूत्रका भाष्य करते हुए वात्स्यायनने लिखा है—

'जातमात्रस्य वत्सस्य प्रवृत्तिलिङ्गः स्तन्याभिलाष गृह्यते । स च नान्तरेणाहाराभ्यासम् ।' 'तेनानुमीयते भूतपू शरीरं यत्रानेनाहारोऽभ्यस्त इति । स खल्वयमात्मा पू शरीरात् प्रेत्य शरीरान्तरमापन्नः क्षुत्पीडितः पूर्वाभ्यस्तमाहारम मनुस्मरन् स्तन्यमभिलषति ।' (वा० भा०)

भावार्थ—'जन्म लेते ही बच्चेमें माताके स्तनोंको चू चूसकर दूध पीनेकी प्रवृत्ति देखी जाती है । दुग्धपा (भोजन) की ऐसी अभिलाषा पूर्वाभ्यासके बिना कदा सम्भव नहीं । इसीसे अनुमान होता है कि वही आत्मा ए शरीरसे दूसरे शरीरमें आकर पूर्वाभ्याससे प्रेरित भूख लगने दूध पीनेमें प्रवृत्त होता है ।'

नास्तिकवादने आगे चलकर फिर दूसरा आक्षेप कि है । उसका कहना सम्भवतः यदि ऐसा हो—

'अयसोऽयस्कान्ताभिगमनवत्तदुपसर्पणम् ।'

(न्यायसूत्र ३ । १ । २३

अर्थात् 'जिस प्रकार लोहा स्वभावतः (बिना वि अभ्यासके) चुम्बककी ओर खिंच जाता है, उसी प्र शिशु भी स्वभावतः (न कि पूर्वाभ्यासवशात्) दुग्धपा ओर प्रवृत्त होता है ।'

इस युक्तिका उत्तर नैयायिक गौतमने जिस प्र युक्तिसे दिया है, वह विचारणीय है ।

'नान्यत्र प्रवृत्त्यभावात् ।' (न्या० सू० ३ । १ । २

—वस्तुतः ऐसा आक्षेप निःसार है—तथ्यहीन है। इसलिये कि लोहा चुम्बकसे आकृष्ट होता है, अन्य वस्तुओंसे नहीं। इससे तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि कारण-कार्यका सम्बन्ध नियमित है—विनिश्चित है और उसमें अन्यथा भी नहीं हो सकता। माताके स्तनोंको चूसनेवाले बालकका स्तन्यपान सकारण है—आकस्मिक नहीं। न्यायसूत्रमें महर्षि गौतमने प्रमेयोंके अन्तर्गत बारह पदार्थोंके नाम दिये हैं। जैसे—आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म), फल, दुःख और अपवर्ग। प्रेत्यभावका अर्थ है—

'प्रेत्य मृत्वा भावो जननम् इति प्रेत्यभावः।'

"मृत्युके पश्चात् पुनः जन्म लेना ही 'प्रेत्यभाव' है।" ार्थात् प्रेत्यभाव पुनर्जन्मका ही पर्याय है। 'तर्कदीपिका'में ळखा है—

'मरणोत्तरं जन्म प्रेत्यभावः।' अर्थात् मृत्युके अनन्तर न्म लेना ही 'प्रेत्यभाव' है। न्यायसूत्र (१।१।१९) । सूत्रकारने कहा है—**'पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः।'**—अर्थात् रणके उपरान्त पुनः उत्पन्न होना ही 'प्रेत्यभाव' है। ात्स्यायनके भाष्यानुसार—**'उत्पन्नस्य सम्बद्धस्य सम्बन्धस्तु देहेन्द्रियमनोबुद्धिवेदनाभिः, पुनरुत्पत्तिः पुनर्देहादिभिः सम्बन्धः।'**

शरीरान्तरके साथ-ही-साथ इन्द्रिय, मन, बुद्धि और संस्कारोंसे युक्त होना ही 'प्रेत्यभाव' है।

श्रीमद्भगवद्गीताके १५वें अध्यायमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका वचन है—

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

अर्थात् 'जब यह जीवात्मा शरीर धारण करता है और जब इसे छोड़ देता है, वह इन्हें इस प्रकार ले जाता है जैसे वायु अपने साथ गन्ध लिये जाती है।' कहना नहीं होगा कि वायुका एक दूसरा नाम 'गन्धवह' भी है। उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर शरीरान्तर धारण करनेवाला यह जीव भी कान, आँख, स्पर्श, रसना (जीभ), घ्राण (नाक) तथा छठे मनकी सूक्ष्मशक्तिको साथ लेकर चलता है और उनके द्वारा विषयोंका उपसेवन करता है।

न्याय तथा अपर दार्शनिक ग्रन्थोंके मतानुसार मृत्युसे स्थूलशरीरका अवसान तो हो जाता है; आत्माका विनाश नहीं होता। हाँ, प्राचीन शरीरके साथ अलबत्ता उ सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। तदनन्तर नवीन देह ध करना ही 'प्रेत्यभाव' अथवा 'पुनर्जन्म' है। पुनर्ज पुष्टिके लिये न्यायसूत्रकारने एक-से-एक बढ़कर युक्तिये सहारा लिया है। उनका एक सूत्र है—

'वीतरागजन्माऽदर्शनात्।' (न्या० सू० ३।१।२

इसका अभिप्राय यह है कि 'वीतरागपुरुषका जन्म होता।' इससे सिद्ध हो जाता है कि रागी या राग पुरुषका ही पुनर्जन्म होता है। राग क्या है? पूर्वा विषयोंका चिन्तन। और यही चिन्तन रागका कारण पूर्वजन्ममें अनुभूत भोग-विषयोंको याद करके ही जीव पु पुनरपि विषयोंमें आसक्त होता है और पूर्ववत् आच करने लगता है। बस, जन्मना कर्म तथा कर्मणा जन्म ताँता लग जाता है।

ऐसी अवस्थामें योगभ्रष्ट—अपरिपक्वकषाय पुरुष भी 'पुनर्जन्म' लेना पड़ जाता है। गीतामें अर्जुनका प्रश्न कि 'योगसे विचलित तथा अप्राप्त योग-संसिद्धि पुरुष क्या गति होती है?' धनञ्जयकी इस शङ्काके उत्तरमें (गी ६। ४०-४१) भगवान् हृषीकेशने कहा है कि 'ये यो विचलित पुण्यात्माओंके लिये सुरक्षित लोकोंमें अनेक वर्षों वास करके पुनः पवित्र ब्राह्मण अथवा राजकुलमें ज लेते हैं।'

गीतामें एक बात बड़े मार्केकी है। भगवान्ने अर्जु कहा है कि 'हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत-से—न ज कितने जन्म इससे पूर्व भी हो चुके हैं। मुझे तो सभी जन्म याद हैं, लेकिन तुझे एक भी याद नहीं।' (गी ४। ५) यहाँ यह शङ्का स्वाभाविक है कि अपने वि जन्मोंका स्मरण सभीको क्यों नहीं रहता? इस शङ्क निराकरणके लिये दिग्गज तार्किक वाचस्पति मिश्रने अप 'न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका'में लिखा है कि 'पूर्वाभ्यास ही जीवनका स्मृति-संस्कार बनता है—यह एक अनुभ सिद्ध बात है।' किसी भी शिशुमें पूर्वसंस्कारजनित प्रवृ दृष्टिगोचर होती है, उसीसे उसके पूर्वजन्मका अनुम होता है। फिर क्या कारण है कि उसे पूर्वजन्मकी बातें याद नहीं रह जाती? इसका उत्तर यही है कि 'अदृष्ट परिपाक जितना संस्कार उद्बोधित करता (जगाता) उतनी ही स्मृति उद्बुद्ध हो सकती है।' ऐसा कोई निय नहीं है कि एक बात यदि स्मृति-पटलपर अङ्कित हो

तो सारी बातें भी अङ्कित ही हो जायँगी। शरीरान्तर-प्राप्ति होनेपर केवल प्रबलतम संस्कार ही सूक्ष्मरूपसे पुनरुत्पन्न होता है।

इस विषयमें पातञ्जलयोगदर्शनमें एक सूत्र आया है—

'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्।'

(योगदर्शन, विभू० पाद, सू० १८)

भावार्थ—'संस्कारके साक्षात् करनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान होता है।' संस्कार दो प्रकारके होते हैं–(१) एक स्मृतिके बीजरूपसे रहते हैं, जो स्मृति और क्लेशोंके कारण हैं। (२) विपाकके कारण वासनारूपसे रहते हैं, जो जन्म, आयु, भोग और उनमें सुख-दुःखके कारण होते हैं। वे धर्म और अधर्मरूप हैं। ये सभी संस्कार इस जन्म तथा पिछले जन्ममें किये हुए कर्मोंसे बनते हैं तथा ग्रामोफोनकी प्लेटके रेकार्डके समान चित्तमें चित्रित रहते हैं। वे परिणाम, चेष्टा, निरोध, शक्ति, जीवन और धर्मकी भाँति अपरिदृष्ट चित्तके धर्म हैं। उनमें संयम करनेसे योगीको उनका साक्षात् हो जाता है। इससे उसको जिस देश, काल और जिन-जिन निमित्तोंसे वे संस्कार बने हैं, सब स्मरण हो जाते हैं। यही 'पूर्वजन्म-ज्ञान' है। (योगियोंके अतिरिक्त भी बहुत-से शुद्ध संस्कारवाले बालक भी अपने पूर्वजन्मका हाल बतला देते हैं।) जिस प्रकार संस्कारोंके साक्षात् करनेसे अपने पूर्वजन्मका ज्ञान होता है, उसी प्रकार दूसरेके संस्कारोंके साक्षात् करनेसे दूसरेके पूर्वजन्मका ज्ञान होता है। विज्ञानभिक्षुके अनुसार 'पर' अर्थात् भावी जन्मोंका भी इसी भाँति संस्कारके साक्षात् करनेसे ज्ञान हो जाता है। इस क्रममें योगसूत्र-भाष्यकारोंने आवट्य नामक योगीश्वरका योगिराज जैगीषव्यके साथ एक संवाद उपन्यस्त किया है।

'साधनपाद'के ३९वें सूत्र—'अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।' के अनुसार 'अपरिग्रहकी स्थिरतामें भूत तथा भविष्य जन्मका ज्ञान हो जाता है कि इससे पूर्वजन्म क्या था, कैसा था और कहाँ था? और आगे कैसा होगा।'

'आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः।'—अक्षपादके ऊपरके सूत्रसे इतना सिद्ध हो जाता है कि 'मृत्युके बाद प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म) होता है तथा आत्मा नित्य होनेके कारण एकरस रहता है।'

न्यायदर्शनके भाष्यकार वात्स्यायनके मतानुसार प्रेत्यभाव अर्थात् पुनर्जन्मकी अस्वीकृतिसे दो प्रबल दोष उपस्थित होते हैं—

(१) कृतहान—किये हुए कर्मोंके फलोंका अभोग।

(२) अकृताभ्यागम—अकृत अर्थात् नहीं भी किये हुए कर्मोंका भोग। आस्तिक दर्शनोंका सिद्धान्त है—

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'—तदनुसार हमारे जीवनके सुख-दुःख हमारे कर्मोंके ही फल हैं। शुभ कर्मोंके फल शुभावह तथा अशुभके भयावह होते हैं। किंतु यह भी देखनेमें आता है कि इस जीवनमें किये गये बहुत-से कर्मोंके फल हमें इसी जीवनमें नहीं मिलते। अब प्रश्न उठता है कि यदि जन्मान्तर नहीं माना जाय तो इन कृत कर्मोंके फल ही लुप्त हो जाते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि तब तो ऐसा प्रतीत होने लगेगा कि जीवनमें बिना पुण्य या तप किये ही कोई सुख भोग रहा है और बिना पाप किये ही कोई दुःख उठा रहा है। अथच यदि पूर्वजन्मका पचड़ा हटा दिया जाय तो फिर बिना कर्मोंके ही फलभोग मानना पड़ जायगा।

'न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका'में वाचस्पति मिश्रजीका कहना है कि 'यदि पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंका अस्तित्व ही नहीं माना जाय और अणु-परमाणुओंके संयोगसे ही शरीरोत्पत्ति मान ली जाय, तब तो इसे मान ही लेना पड़ेगा कि सुख-दुःखका भोग यों ही होता है। तब तो फिर कार्य होता है, परंतु कारणका अभाव है और फल कर्मपर बिल्कुल निर्भर नहीं करता। ऐसी अवस्थामें कर्मफल कोई वस्तु ही नहीं रह जाता। साथ ही शास्त्रीय विधि-निषेध भी महत्त्वहीन और निरर्थक हो जाते हैं। जब मनुष्य बिना शुभ कर्म किये ही सुख भोगता है, तब वह आपातमनोहर वर्जित कर्मको छोड़कर कष्टसाध्य शास्त्रविहित कर्मोंकी ओर क्यों अग्रसर होगा? और तब उस द्राविड़ प्राणायामका मूल्य ही क्या रह जाता है? यदि कर्मको निष्फल और जीवनको आकस्मिक मान लिया जाय तो सभी शास्त्र बगल झाँकने लग जायँगे—व्यर्थ प्रतीत होने लगेंगे। शास्त्रानुष्ठानके लिये तो गीतामें स्वयं भगवान्ने श्रीमुखसे आदेश दिया है—(१६।२३-२४) के अनुसार अर्थात् 'कर्तव्याकर्तव्य-विवेचन'के लिये शास्त्र ही प्रमाण हैं। अतएव कृतहान और अकृताभ्यागम दोषके परिहारार्थ कर्मानुसार पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मको स्वीकार करना ही पड़ेगा।

अब प्रश्न हो सकता है कि 'जन्म ही क्यों होता है?' इसका समीचीन एवं तर्कसंगत उत्तर न्यायदर्शनने दिया है—

'पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः ।'

(न्या० सू० ३ । २ । ६४)

अर्थात् 'पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंके फलानुबन्धसे ही देहकी उत्पत्ति होती है।' यह शरीर-धारण स्वतन्त्र भूतोंसे नहीं, बल्कि धर्माधर्मरूप अदृष्टकी शक्तिसे प्रेरित पञ्चभूतोंसे होता है। यहाँ भी नास्तिक अडंगा लगाते हैं और अपनी लचर दलील पेश करते हैं कि 'जब पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—पञ्चतत्त्वोंसे ही देह बन जाता है तो फिर उसके निमित्त पूर्वजन्मके कर्मोंको मान लेनेकी आवश्यकता ही क्या ? घट (घड़े) की भाँति भौतिक अणु-परमाणुओंके संयोगसे बन जानेवाले शरीरके लिये निमित्त कारण क्यों ?' इस आक्षेपका उत्तर गौतमने निम्नस्थ सूत्रमें दिया है—

'भूतेभ्यो मूर्त्युपादानवत्तदुपादनम् ।'

(न्या० सू० ३ । २ । ६५)

महर्षि वात्स्यायनके भाष्यानुसार भावार्थ यह है—सिकता (बालू) से कंकड़-पत्थर आदिकी उत्पत्ति कर्मसापेक्ष नहीं। इसलिये कि ये कंकड़-पत्थर अपने-आप भौतिक परमाणुओंके संयोगसे बन जाते हैं। लेकिन गर्भस्थ शरीर केवल शुक्र-शोणितके संयोगसे ही नहीं बन जाता। वहाँ तो पूर्वकर्मको हेतु मानना ही पड़ेगा। इसलिये कि कंकड़-पत्थर वीर्यके बिना ही उत्पन्न हो जाते हैं, किंतु शरीरोत्पत्ति वीर्यसे होती है।'

ऊपरके आक्षेपका खण्डन न्यायसूत्र-भाष्यकार वात्स्यायनने बड़े ही जोरदार शब्दोंमें किया है। वे कहते हैं—

'विषमश्चायमुपन्यासः। कस्मात्? निर्बीजा इमा मूर्तयः उत्पद्यन्ते, बीजपूर्विका तु शरीरोत्पत्तिः। सत्त्वस्य गर्भवासानुभवनीयं कर्म पित्रोश्च पुत्रफलानुभवनीये कर्मणी मातुर्गर्भाशये शरीरोत्पत्तिभूतेभ्यः प्रयोजयन्ति ।'

(३ । २ । ६७ की टीका)

अर्थात् 'यह कैसी उलटी गङ्गा बहाते हो! सबीज शरीरका दृष्टान्त निर्बीज मिट्टी-कंकड़-पत्थरसे नहीं दिया जा सकता। देहोत्पत्तिके लिये जीवका माताके गर्भमें वास आवश्यक है। अपने माता-पिताके कर्मानुरूप जीवकी सृष्टि गर्भमें होती है। कर्म ही पञ्चभूतोंसे जीवके शरीरकी रचना करवाते हैं।'

शरीरकी रचनाके विषयमें महर्षि गौतमने अपने न्याय-दर्शनमें कहा है कि 'खाया-पीया आहार भी देहकी उत्पत्तिमें कारण है। वात्स्यायनके भाष्यानुसार वही आहार पच जानेपर माताके शरीरमें रस होकर बढ़ता है। उसीके अनुसार गर्भस्थ बीज बढ़कर मांस, ग्रन्थि आदि अनेक रूप धारण करता है। गर्भकी नाड़ीसे उतरकर रस-द्रव्यकी जो वृद्धि होती है, उसीसे गर्भस्थ शरीर पुष्ट होकर प्रसव-योग्य बन जाता है। लेकिन थालीमें सजे-सजाये भोजन-द्रव्यमें ऐसी शक्ति नहीं होती। इससे प्रमाणित होता है कि आमाशयस्थ भोजन ही गर्भ-शरीरकी उत्पत्तिका एकमात्र कारण नहीं है। इसलिये कि कर्मकी सहायता लेनी पड़ती है।' (३ । २ । ६८)

अपुनर्जन्मवादी यह आक्षेप कर सकते हैं कि जब स्त्री-पुरुषके रजोवीर्यका संयोग ही गर्भाधानका कारण है, तब फिर पुनर्जन्मका अस्तित्व क्यों माना जाय? तो इसका खण्डन गौतमके नीचे लिखे सूत्रमें किया गया है—

'प्राप्तौ चानियमात् ।' (न्या० सू० ३ । २ । ६९)

इसपर महर्षि वात्स्यायनका भाष्य कहता है—

'न सर्वदम्पत्योः संयोगो गर्भाधानहेतुर्दृश्यते, तत्रासति कर्मणि न भवति सति च भवति, इति अनुपपन्नो नियमाभाव इति ।'

—अर्थात् 'पति-पत्नीके सभी संयोग गर्भ स्थापित नहीं कर सकते। इससे प्रकट होता है कि शुक्र-शोणितसंयोग ही गर्भाधानका एकमात्र निरपेक्ष कारण नहीं है।' उसके लिये किसी और वस्तुकी अपेक्षा बनी रहती है और वह है 'प्रारब्ध'। प्रारब्धकर्मके अतिरिक्त रजोवीर्यका संयोग गर्भधारण करनेमें किसी प्रकार भी समर्थ नहीं। अथच पञ्च महाभूतोंको देहोत्पत्तिका निरपेक्ष कारण नहीं माना जा सकता। प्रारब्धकर्मानुसार कर्म-सापेक्ष मानना ही युक्तियुक्त होगा। प्रारब्धकर्मानुसार ही देहकी उत्पत्ति और उसमें आत्माका संयोग होता है। गौतमने लिखा है—

'शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं कर्म ।'

(न्या० सू० ३ । २ । ७०)

ऊपरके सूत्रसे स्पष्ट हो जाता है कि यह कर्म ही कारण है कि कोई ब्राह्मण अथवा राजाके कुलमें जन्म लेता है और कोई शूद्रादि नीच कुलमें। कोई शरीरके सर्वावयवोंसे पूर्ण होता है और कोई अपूर्ण या विकलाङ्ग। कोई रोगी तथा कोई नीरोग। इसी प्रकार कोई मेधावी और कोई मन्द। शरीरगत यह

भिन्नता भिन्न-भिन्न प्रारब्ध कर्मोंके फलस्वरूप ही हुआ करती है। अब यदि प्रारब्ध कर्मका अस्तित्व न माना जाय, तब तो सभी आत्माओंको तुल्य (एक समान) मानना होगा। साथ ही पृथ्वी, जल, पावक, पवन और गगन—पञ्चभूतोंका कोई नियामक ही नहीं रह जाता और नियामक न हो तो सभी शरीर एक-से बनेंगे, किंतु यह कथन तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। भिन्न-भिन्न आकार-प्रकारके शारीरिक संस्कार लेकर ही जीव जन्म ग्रहण करते हैं। अथच इस कर्मको ही निमित्त मानना पड़ेगा। यदि प्रारब्धकर्म नहीं माना जाय, तब तो जन्म-विषयक अनियम या अव्यवस्था बनी ही रहेगी। अतः गौतमके निम्नलिखित सूत्रसे—

'एतेनानियमः प्रत्युक्तः।' (न्या० सू० ३। २। ७१)

'प्रारब्ध कर्मको निमित्त कारण मान लेनेसे जन्मसम्बन्धी अव्यवस्था अथवा अनियम खण्डित हो जाता है।'

यह सत्य है कि कृतकर्मोंका फल समय पाकर कर्ताके पास स्वयमेव पहुँच जाता है। जिस प्रकार हजारों गौओंको मैदानमें खड़ी कर दीजिये और किसी एकका बछड़ा खोल दीजिये और देखिये कि वह बछड़ा सभी गौओंके बीच ओटमें छिपी-खड़ी अपनी माताके पास पहुँच जाता है कि नहीं।

एक बात और ध्यान देनेकी है। वह यह है कि यदि देहोत्पत्तिमें कर्मको निमित्त नहीं माना जाय और केवल भौतिक तत्त्वों (रजोवीर्य) का संयोग ही एकमात्र कारण मान लिया जाय तो फिर संयोगके नाश अर्थात् मृत्युका क्या कारण हो सकता है? विशेष कारणके बिना तो शरीरकी नित्यता और मृत्युकी अनुपपत्ति (असिद्धि) का एक जबर्दस्त प्रश्न उठ खड़ा होता है। इसी आक्षेपके निराकरणके लिये महर्षि गौतमने निम्नस्थ सूत्र लिखा है—

'नित्यत्वप्रसंगश्च प्रायणानुपपत्तेः।' (न्या० सू० ३। २। ७६)

इसके भाष्यमें वात्स्यायनका कहना है कि 'भोगद्वारा कर्माशयका क्षय हो जानेपर एक देहका अन्त हो जाता है। साथ ही दूसरे कर्माशयका फल भोगनेके लिये शरीरान्तर धारण करना पड़ता है। यदि केवल पञ्चभूत ही मृत्युके कारण होते तो फिर मृत्यु क्योंकर होती? इसलिये कि पञ्चभूत नित्य हैं। अथच किसका क्षय होनेपर शरीरान्त होता है?' इससे सिद्ध हुआ कि शरीरकी उत्पत्ति और विनाश कर्माशयपर अवलम्बित हैं। प्रारब्धकर्मके अनुसार ही फल भोगनेके लिये जन्म होता है और कर्माशयका क्षय हो जानेपर शरीरसे आत्मा निकल जाया करता है। अथच जन्म-मरण कर्मसापेक्ष हैं—सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र नहीं।

इस प्रसङ्गमें नैयायिकोंका 'तृणजलौका' न्याय प्रसिद्ध है। इस न्यायका प्रयोग नैयायिक आत्माके एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरमें प्रवेश करते समय दृष्टान्तरूपसे किया करते हैं। श्रीमद्भागवतमहापुराणमें इसका आशय सुस्पष्ट किया गया है कि 'जिस प्रकार घासपर रेंगनेवाली जोंक दूसरी घासपर जाते समय अपना अगला पाँव घासकी किसी पँखुड़ीको आधार बनाकर रख लेती है, तब पिछला पाँव पहली घासपरसे उठाती है, उसी प्रकार जीव शरीरान्तरका आधार लेकर ही पूर्वतन शरीरका त्याग कर देता है।'

सच तो यह है कि मृत्यु पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मके बीचका प्रवेशद्वार है। यहीं पहुँचकर नैयायिकोंका 'देहली-दीपकन्याय' चरितार्थ होता है।

मनने कभी शान्ति नहीं पायी

कबहूँ मन विश्राम न मान्यो।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो ॥
जदपि बिषय-सँग सह्यो दुसह दुख, बिषम जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानतहूँ नहिं जान्यो ॥
जनम अनेक किये नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो।
होइ न बिमल बिबेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो ॥
निज हित नाथ पिता गुरु-हरिसों हरषि हृदैं नहिं आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहिं जनम सिरान्यो ॥

—तुलसीदासजी

जन्म-मृत्यु, अमरत्व, परलोक और पुनर्जन्मका स्वरूप तथा रहस्य

(लेखक—श्रीश्रीराम माधव चिंगले, एम्० ए०)

[पृष्ठ २०६ से आगे]

५—जन्म-मृत्युका यथार्थ तात्त्विक स्वरूप

'देह आत्मा नहीं' यह भारतीय धर्म तथा दर्शनका मुख्य सिद्धान्त या कहिये कि प्राण ही है। इसीलिये इस सिद्धान्तको एक चार्वाक या लोकायत दर्शनके नगण्यसे अपवादको छोड़कर शेष सभी दार्शनिक प्रयत्नपूर्वक सिद्ध करते हैं। देह तो प्रत्यक्षरूपसे जन्म-मृत्यु इत्यादि षड्भाव-विकारोंसे ग्रस्त है। किंतु देहके संदर्भमें भी जन्म और मृत्यु या नाशका अर्थ समझ लेना चाहिये। सत्कार्यवादके सिद्धान्तके अनुसार, जिसे आधुनिक विज्ञानका समर्थन प्राप्त है, किसी भी वस्तुका आत्यन्तिक विनाश नहीं होता—('Nothing is lost'); होता है—रूपान्तरमात्र। **'णश अदर्शने'** इस व्युत्पत्तिके अनुसार नाश शब्दका अर्थ है—'दिखायी न देना।' अर्थात् व्यक्त रूपसे अव्यक्तरूप प्राप्त कर लेना। वस्तुका कार्यरूप छोड़कर कारणावस्थामें चला जाना ही उसका नाश है। यही बात 'जन्म' शब्दकी भी है। **'जनी प्रादुर्भावे।'**—इस व्युत्पत्तिके अनुसार जन्म लेनेका अर्थ है—वस्तुका अव्यक्तावस्थाको छोड़कर व्यक्तावस्था प्राप्त कर लेना, कारणावस्थाको छोड़कर कार्यावस्थामें अभिव्यक्त हो जाना।

पुनश्च, स्थूलशरीरकी लौकिक दृष्टिसे मृत्यु भी ऐसी बात नहीं कि एक बार मरनेपर हमें फिर दूसरा शरीर ही न मिले। **'नाभुक्तं क्षीयते कर्म।'**—इस कर्मसिद्धान्तके अनुसार एक शरीरके छूटनेपर प्रारब्ध-कर्मानुसार दूसरा शरीर मिलना अवश्यम्भावी है। शरीर तो अज्ञान दशामें मनुष्यको स्वेच्छा या अनिच्छापूर्वक मिलता ही रहता है। यह क्रम तबतक चलता रहता है, जबतक मनुष्य अपना आध्यात्मिक विकास पूर्ण न कर ले, अर्थात् जबतक कि वह तत्त्वज्ञानके द्वारा अपने नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द-

मृत्युकी निम्न व्याख्या विचारणीय है—'देहान्तरार्थं दे[illegible] **संत्यागो मरणं स्मृतम्।'** अर्थात् 'दूसरे देहकी प्राप्तिके[illegible] जो पहले देहका त्याग किया जाता है—वही मरण है।' [illegible] लिये मृत्युसे डरनेका कोई कारण नहीं। मरणभय स[illegible] अविचारितसिद्ध है। इसके अनन्तर श्रीवसिष्ठ मह[illegible] 'अभ्युपगम न्याय'से मृत्युविषयक एक और विचार उप[illegible] करते हैं। यदि मरण आत्यन्तिक नाश हो, तब भी मृ[illegible] घबरानेकी कोई बात नहीं; क्योंकि तब तो संसाररूपी रोग[illegible] जड़से कट जाय,—**'मृतिरत्यन्तनाशश्चेत्तत्रामयसंक्षय[illegible]** किंतु यदि मृत्युके कारण नये देहकी प्राप्ति होती हो तो [illegible] यह शोकका विषय न होकर हर्षका ही विषय होना चा[illegible] क्योंकि नयी वस्तुको तो सभी खुशीसे चाहते हैं—**'मृ[illegible] देहलाभश्चेत्तत्र एव तदुत्सवः।'** अन्तमें श्रीमहामुनि वसि[illegible] बतलाते हैं कि 'मृत्युका स्वरूप सर्वनाशात्मक नहीं [illegible] सकता। वर्तमान देहविषयक संकल्पका बंद होना [illegible] देहान्तर-विषयक संकल्पका स्थिर होना ही मृत्यु है। प्र[illegible] जीव देश तथा कालके भेदसे अपनी वासना तथा संस्का[illegible] अनुसार किसी-न-किसी देहकी कल्पना करके फिर-फिर उत्[illegible] होता रहता है।' ध्यान रहे योगवासिष्ठ दृष्टि-सृष्टिवा[illegible] ग्रन्थ है, जो मुख्यतः वेदान्तके मुख्याधिकारीके लिये [illegible] इसी दृष्टिसे यह प्रक्रिया उपस्थित की गयी है।

विचारवान् पुरुष मृत्युके वास्तविक स्वरूपसे परि[illegible] होनेके कारण देहादिके वियोगकी सम्भाव[illegible] यत्किंचित् भी विचलित या उद्विग्न नहीं होते[illegible] पञ्चमहाभूतोंसे निर्मित देहको वे पञ्चमहाभूत[illegible] वस्तु समझकर मृत्युका सहर्ष स्वागत करते हैं। अ[illegible] मनुष्योंकी स्थिति इससे विपरीत होती है। वे मृ[illegible] वास्तविक स्वरूप और रहस्यसे अपरिचित होनेके क[illegible] [illegible]

उचित-अनुचित प्रयत्नोंके रूपमें देखनेको मिलता है। किंतु श्रीमद्भागवतमें इस विषयमें स्पष्ट निर्णय दिया गया है कि शरीर स्वरूपतः ही विनश्वर होनेसे उसे अमर बनानेके सारे प्रयत्नोंका निष्फल होना अवश्यम्भावी है—

नहि तत् कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः।
अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः॥
(११।२८।४२)

शरीरका मरणधर्मसे ग्रस्त होना यह कोई गूढ़ रहस्य नहीं है,—'यत्कृतकं तदनित्यम्।' अर्थात् 'जो उत्पन्न होता है वह अनित्य होता है।' इस न्यायसे हम देख सकते हैं कि जब स्वयं यह पृथ्वी, जिसके आधारपर हमारा भौतिक जीवन रहता है और सम्पूर्ण सूर्यादि सृष्टि ही दीर्घकाल अवस्थायी होनेपर भी अन्ततोगत्वा विनश्वर ही है, तब भला इनके आधारपर रहनेवाले क्षुद्र शरीरके विनश्वर होनेमें संदेह ही क्या हो सकता है?

६—मृत्यु मनुष्यकी मित्र है, शत्रु नहीं

यदि हम प्रकृतिमें मृत्युके उद्देश्यको भलीभाँति समझ लें तो हमें यह देखते देर न लगे कि मृत्युका भय अविचारमूलक है; क्योंकि मृत्यु मनुष्यकी हित-शत्रु न होकर उसकी सच्ची हितैषिणी है। इस सम्बन्धमें पहले हमें इस महत्त्वपूर्ण बातको ध्यानमें रखना चाहिये कि मानव-जीवनका मुख्य ध्येय आध्यात्मिक विकास है। आनन्दमय प्रभुके विश्वरचना-रूप लीलाविष्करणका मुख्य ध्येय यही है। प्रकृति

एक ही शरीरमें बँधा रहे। चौरासी लाख योनियोंमेंसे घूमकर मानवदेहकी प्राप्ति आखिर मृत्युके कारण ही तो हुई है। मृत्युकालमें मरनेवाले मनुष्यकी आँखोंके सामने अँधेरा छाने लगता है। इस अँधेरेके द्वारा मानो प्रकृतिमाता विश्व-रंग-मंचपर चलनेवाले जीवनरूपी महानाटकके एक अङ्कके अन्तमें पर्दा डालना चाहती है। यह पर्दा डालनेकी क्रिया नाटकका दूसरा अङ्क प्रारम्भ होनेसे पहलेकी आवश्यक मध्यवर्ती अवस्था है। फिर पिण्ड-प्राणका वियोग हो जाता है, अर्थात् मृत्यु हो जाती है। तदनन्तर योग्यकालमें प्रारब्ध कर्मानुसार नये पिण्डके साथ प्राणका योग होकर, नये जीवनका और उसके साथ ही विकासकी अगली मंजिलका प्रारम्भ होता है। मनुष्य नया जन्म पाकर नये उत्साह और उमंगके साथ विकासकी ओर चल पड़ता है। मृत्यु होनेपर मनुष्यकी भौतिक सम्पत्ति, पुत्र-परिवारादि जहाँके तहाँ धरे रह जाते हैं। मनुष्यके साथ जाता है—केवल उसका विकास। अपनी विकास-भूमिके अनुसार ही मनुष्य नया शरीर, नया जन्म ग्रहण करता है और अपने विकासके अनुकूल वातावरणमें ही वह जन्म लेता है।

७—ज्ञानी और अज्ञानी पुरुषकी मृत्युमें महान् अन्तर है

आध्यात्मिक विकासकी दृष्टिसे मृत्युके उपर्युक्त आवश्यक संक्रमणकालको विवेकी पुरुष मृत्युके वास्तविक रहस्यसे परिचित होनेके कारण हँसते-खेलते पार कर जाते हैं। वे मृत्युका सहर्ष स्वागत करते हैं।

मानव आखिर कबतक टिक सकता है ? प्रकृति उसकी चेतनाशक्तिको हरण करके उसके जीवनपर पर्दा डाल ही देती है। प्रकृतिके साथ इस खींचातानीके फलस्वरूप ही मृत्युका दुःख महाभयंकर हो उठता है। इस प्रकारके संघर्षसे विहीन विवेक और वैराग्यशील मनुष्यकी मृत्यु शान्तिपूर्ण होती है।

८—प्रकृतिमें पूर्वजन्मकी विस्मृति सहेतुक है

पूर्वजन्ममें संदेह करनेवाले प्रायः यह शङ्का उपस्थित किया करते हैं कि यदि हमारा पूर्वजन्म होता तो हमें उसकी स्मृति होनी चाहिये। मृत्युको 'दीर्घ' निद्रा कहा गया है, हम देखते हैं कि प्रतिदिन सोकर उठनेपर हमारी पूर्वकालीन स्मृति बनी रहती है। किंतु हमें पूर्वजन्मकी इस प्रकारकी कोई स्मृति नहीं होती। पूर्वजन्म माननेवालोंकी ओरसे इस शङ्काका समाधान करना आवश्यक है।

उक्त शङ्काका एक समाधान तो यह है कि विशिष्ट परिस्थितिमें व्यक्तिविशेषमें पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ जगती हैं, इसके अनेक उदाहरण हैं। महाकवि कालिदासने पूर्वजन्मकी स्मृतिका निम्न श्लोकमें नितान्त सुन्दर काव्यमय वर्णन किया है—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥
(अभिज्ञानशाकुन्तलम् ५। २)

'परामनोविज्ञान'ने इस प्रकारके आश्चर्यजनक उदाहरणोंका सशास्त्र संकलन और छानबीन की है। यह विज्ञान उत्तरोत्तर प्रगतिपथपर है।

उक्त शङ्काका दूसरा समाधान यह है कि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिकमें आत्यन्तिक साम्य होना आवश्यक नहीं है। आंशिक साम्य अवश्य है। हम देखते हैं कि दीर्घकालतक गहरी नींदसे उठनेपर हम कुछ देरतक निश्चेष्ट स्थितिमें रहते हैं। उस समय पूर्वकालीन कोई स्मृति नहीं जगती। धीरे-धीरे एक-एक स्मृति उद्बोधक निमित्तको पाकर जगती है। मृत्यु तो अत्यन्त दीर्घनिद्रा है, अतएव उसके टूटनेपर यदि पूर्वस्मृतियाँ उद्बोधक निमित्तके अभावमें न जगें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

यह साधारण समाधान है। किंतु इस विषयका मुख्य रहस्य यह है कि प्रकृतिमें पूर्वजन्मकी विस्मृति हेतु-पुरस्सर होती है। ध्यान रहे, प्रकृतिमें पुनर्जन्मका मुख्य हेतु है—मनुष्यका आध्यात्मिक विकास। इसके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य नव शरीरको प्राप्त करके नये उत्साह और उमंगोंके साथ अपने नये जन्मकी विकासयात्राका प्रारम्भ करे। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि उसकी पुरानी, अप्रिय तथा अनावश्यक सब प्रकारकी स्मृतियोंका भार हल्का हो जाय। इस विकासके हेतु जितनी आवश्यक बातें हैं, वे तो पूर्वसंस्कारोंके कारण उद्बुद्ध हो ही जाती हैं, यथा नवजात शिशुमें स्तन्य-पानादिकी सहज प्रवृत्ति, विशिष्ट बातोंमें अभिरुचि तथा प्रवृत्ति, विशिष्ट बातोंसे द्वेष तथा निवृत्ति इत्यादि। यदि मनुष्यकी अतीत अनन्त स्मृतियोंका भार हल्का न हो तो नवीन जन्ममें भी मनुष्य अपने अनन्त जन्मोंकी अनन्त प्रिय, अप्रिय सब तरहकी स्मृतियोंके भारसे दबा रहे और यह भार असह्य होकर उसके विकासमें एक बड़ी बाधा, एक बड़ा रोड़ा बन जाय। हम देखते हैं कि हमारे वर्तमान जन्ममें ही ऐसी अनेक अप्रिय स्मृतियाँ होती हैं जिनके कारण हमें बहुत बेचैनी होती है, हम इन्हें भूल जाना चाहते हैं किंतु भूलते नहीं। किंतु प्रकृति माता मृत्युके अनन्तर इनपर विस्मृतिका परदा डाल देती है। इसका यह अर्थ नहीं कि ये स्मृतियाँ पूरी तरहसे नामशेष हो जाती हैं और कभी जग ही नहीं सकतीं, योगबलसे, तपःसिद्धिसे, भगवद्भक्तिके प्रभावसे या तत्त्वज्ञानके प्रभावसे भी केवल अपने ही नहीं, दूसरोंके भी पूर्वापर जन्मका ज्ञान सम्भव है। ऐसे लोगोंको 'जातिस्मर' कहा गया है। महात्मा जडभरत इसके सुप्रसिद्ध उदाहरण हैं। पातञ्जलयोगदर्शनके दो सूत्र इसी बातको सिद्ध करते हैं—(१)'अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः' (२। ३९) 'अपरिग्रहके दृढ़ होनेपर पूर्वजन्मोंका भलीभाँति ज्ञान हो जाता है।' (२) 'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्' (३। १८) 'संयमद्वारा पूर्वसंस्कारोंको साक्षात् कर लेनेपर पूर्वजन्मोंका ज्ञान हो जाता है।' ध्यान रहे अज्ञान-दशामें साधारण मनुष्यको इनका ज्ञान हो नहीं होता। इनका ज्ञान तो तब होता है, जब ज्ञान या योगके प्रभावसे मनपर इनका कोई प्रभाव नहीं होता। प्रकृति माताकी इस बुद्धिमानीपूर्ण योजनाका हमें स्वागत ही करना चाहिये। यदि अज्ञानी मनुष्यको इनका ज्ञान हो जाय तो उसका साधारणरूपसे जीवन-यापन करना ही कठिन हो जाय।

इससे यह सिद्ध होता है कि प्रकृतिमें पूर्वजन्मकी विस्मृति सहेतुक है।

९—अमरत्वका स्वरूप

अमरत्वका विचार करते समय एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि सच्चे अमरत्वमें और किसी भी प्रकारके दीर्घकाल-अवस्थायित्वमें महदन्तर है। यदि अमरत्वसे अभिप्राय केवल दीर्घकालतक बने रहनेसे हो तो ऐसे अमरत्वका न तो व्यावहारिक दृष्टिसे कोई मूल्य हो सकता है और न तात्त्विक दृष्टिसे ही, व्यावहारिक दृष्टिसे किसी भी प्रकारका उपाधिसे ग्रस्त अस्तित्व एक निश्चित अवधिके अनन्तर बजाय सुखके दुःखके लिये ही कारण बन जाय। ऐसा जीवन असह्य भाररूप ही हो जाय। स्वर्गस्थ देवादिको 'अमर' कहा गया है। 'अमर' शब्द 'देव' शब्दका पर्यायवाची है। किंतु देवादिका अमरत्व भी केवल दीर्घकाल-अवस्थायित्वका द्योतक है, न कि तत्त्वज्ञानद्वारा प्राप्य सच्चे अमरत्वका, तात्त्विक दृष्टिसे सच्चा अमरत्व दिक्कालाद्यनवच्छिन्न आत्म-तत्त्ववेत्ताओंको ही प्राप्त हो सकता है।

देवादि भोग-योनि है। पुण्यकर्मोंके संचयद्वारा और स्वर्गस्थ भोगोंकी इच्छाके कारण वह प्राप्त होती है और पुण्यकर्मोंके भोगद्वारा समाप्तिके साथ ही उसकी भी समाप्ति हो जाती है और उन्हें फिर वापिस मृत्युलोकमें ही आना पड़ता है। **'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।'** (गीता ९। २१) हमारे शास्त्रकारोंने किसी भी प्रकारकी जन्म-मरण-परम्पराको 'भव' या 'संसार' कहा है। इस घटीयन्त्र-वत् परम्परासे छूटनेमें ही मनुष्यका सच्चा परम पुरुषार्थ है और मनुष्य-जीवनकी सार्थकता है। सच्चा अमरत्व किसी भी प्रकार कालसे घटित न होकर वह सर्वथा कालसे अस्पृष्ट रहता है। आत्माको काल-परिच्छेद नहीं। वेदान्तदर्शनके अनुसार कालका अर्थ है—ब्रह्म तथा मायाका अनादिकालसे चला आया हुआ सम्बन्ध।' यह सम्बन्ध आध्यासिक होनेसे काल भी आध्यासिक अतएव मिथ्या है। वह अनादि सान्त है। वह 'ज्ञाननिवर्त्य' है। तत्त्वतः आत्मा कालमें नहीं है, काल स्वयं आत्मामें है और वह उसपर अध्यस्त है। इसलिये सच्चा अमरत्व कालसे अघटित, कालसे सर्वथा अस्पृष्ट ही हो सकता है। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द आत्मस्वरूप ही सच्चे अर्थमें अमर है और यही 'अमरत्व'का अर्थ है। उसे छोड़कर अन्य सब काल-सर्पसे ग्रस्त है—'ग्रस्तं कालाहिना जगत्।' अमर आत्मा ही जीवमात्रका सच्चा स्वरूप है। वह नित्य प्राप्त है। अमरत्व कहीं बाहरसे लाना नहीं है; उसके अनुभवमें प्रतिबन्ध करनेवाली अज्ञानमूलक कल्पनाओंको यथार्थ ज्ञानके द्वारा दूर कर देना है। सारा प्रयत्न, शास्त्रोक्त कर्म, उपासना तथा योगादि साधना इत्यादि सब एकमात्र आत्मज्ञानको सम्पादन करनेमें ही चरितार्थ होते हैं। यही सबका अन्तिम प्राप्तव्य है। इसलिये सच्चा अमरत्व मरणोत्तर दशामें प्राप्त होनेवाला न होकर इसी जन्ममें, यथार्थ ज्ञानोदयके साथ ही प्राप्त हो सकता है—

'ज्ञानसमकालमुक्तः कैवल्यं याति हतशोकः।'
'अत्र ब्रह्म समश्नुते॥'

इसीलिये मोक्ष दृष्टफल है, जिसे यथार्थ ज्ञानके द्वारा इसी जीवनमें सभी अधिकारी पुरुष प्राप्त कर सकते हैं और जीवन्मुक्त दशाका अनुभव कर सकते हैं। पाश्चात्त्य तत्त्वचिन्तक भी इस तथ्यसे सहमत हैं। श्रीप्रिंगल पेटिसन कहते हैं—

'अनन्तत्वका अर्थ अनन्त कालावस्थायित्व न होकर कालातीत वस्तुका अनुभव है।' इसीलिये धर्मशास्त्रज्ञ तथा दार्शनिक यह साग्रह प्रतिपादन करते हैं कि 'अनन्त और अमर जीवनका अनुभव मरणोत्तर न होकर यहीं और इसी समय प्राप्त होने योग्य है।' (अमरत्वका विचार पृ० १३४-१३५)

१०—जीवकी मरणोत्तर स्थिति गति

प्रारब्धकर्मकी समाप्तिके साथ ही रोगादि निमित्तको लेकर जीवका सूक्ष्मदेह या लिङ्गशरीर स्थूलशरीरसे पृथक् हो जाता है। इसीको 'पिंड' प्राणका वियोग या 'मृत्यु' कहते हैं। यहाँसे जीवकी परलोकयात्रा प्रारम्भ हो जाती है। जैसे जीवकी इहलौकिक अच्छी या बुरी स्थिति उसके कर्मोंपर ही अवलंबित रहती है, वैसे ही उसकी मरणोत्तर स्थिति भी उसके कर्मोंपर ही अवलम्बित होती है।

'यथाकारी यथाचारी तथा भवति। साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति। पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन।......काममय एवायं पुरुष इति स

यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते यत् कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते।' (बृ. उपनिषद् ४।४।५)

'वह (मनुष्य) जैसा करनेवाला और जैसे आचरणवाला होता है, वैसा ही हो जाता है। शुभ कर्म करनेवाला शुभ होता है और पापकर्मा पापी होता है। पुरुष पुण्य कर्मसे पुण्यात्मा होता है और पापकर्मसे पापी होता है। यह पुरुष काममय ही है। वह जैसी कामनावाला होता है, वैसा ही संकल्प करता है; जैसे संकल्पवाला होता है, वैसे ही कर्म करता है और जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है।'

मनुष्यकी शुभाशुभ वासनाओंके अनुसार ही उसके संकल्प बनते हैं और ये ही विशिष्ट प्रकारकी शुभाशुभ योनिमें जन्म ग्रहण करनेके कारण होते हैं। इस विषयमें कठश्रुति भी यही कहती है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥
(२।२।७)

'अपने कर्म और ज्ञानके अनुसार कोई देहधारी शरीरधारणार्थ विशिष्ट योनिको प्राप्त होते हैं और अन्य कोई देहधारी स्थावरभावको प्राप्त होते हैं।'

मनुष्यके यथार्थ या अयथार्थ एवं दूषित ज्ञानके अनुसार अन्तःकरणमें उत्पन्न होनेवाली वासनाएँ, उनकी पूर्तिके लिये किये जानेवाले संकल्प और कर्म इत्यादि होते हैं। यह अनुभवसिद्ध है। इनमेंसे विशिष्ट प्रबल वासनाएँ, जो जीवनकालमें सुप्त या प्रकट रहती हैं, मरनेके समय पूर्वाभ्यासवश जग जाती हैं और ये ही मनुष्यके जन्मान्तरकी नियामक बन जाती हैं—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ८।६)

'अन्ते मतिः सा गतिः' का यही अभिप्राय है। 'यथा प्रज्ञं हि सम्भवाः' अर्थात् 'बुद्धिके अनुसार ही जन्म हुआ करते हैं।' इस श्रुतिमें जन्मान्तरका रहस्य सूत्ररूपसे

मृत्युके साथ ही जीवको देवयान अथवा पि[illegible] मार्गसे विभिन्न देवता ले जाते हैं। इसका श्रीमद्भगवद्गीताके आठवें अध्यायमें अच्छी तरह [illegible] गया है। इनमेंसे प्रथम मार्गसे जानेवाले उपासक क्रम[illegible] को प्राप्त कर लेते हैं। अतएव वे इस मृत्युलोकमें लौटकर नहीं आते। दूसरे मार्गसे जानेवाले पु[illegible] लोग स्वर्गादि पुण्यलोकोंमें जाकर वहाँके भोग भो[illegible] वापस इसी लोकमें लौट आते हैं। निषिद्ध पा[illegible] करनेवाले नरकमें दुःख भोगकर फिर यहाँ आकर [illegible] लेते हैं। जिनके साधारणसे पाप-पुण्य होते [illegible] वे इसी लोकमें जन्म लेते हैं। घोर पापी [illegible] उत्कट वासनादिसे युक्त जीव भूत-पिशा[illegible] योनिमें जाते हैं। स्थूलशरीरसे रहित होनेके का[illegible] सब तरहके मानवोचित भोगोंसे वञ्चित रहते हैं। [illegible] भोग-योनि है। इस प्रकार जीवकी मरणोत्तर वि[illegible] गतिके विभिन्न प्रकार हैं। हमने इनका संक्षेपमें [illegible] किया है।

११—परलोक है और अवश्य है

परलोक है या नहीं?—यह विवाद्य प्रश्न है; क[illegible] इस विषयमें प्रत्यक्ष प्रमाणकी सम्भावना बहुत ही [illegible] है। वैज्ञानिक अभी अन्य ग्रहोंके साथ प्रत्यक्ष स[illegible] स्थापित करनेमें प्रयत्नशील हैं; किंतु अभीतक वे [illegible] दिशामें सफलता प्राप्त नहीं कर पाये हैं। अतएव श[illegible] प्रमाण ही इस विषयमें एकमेव महत्त्वपूर्ण प्रमाण [illegible] जो लोग परलोक नहीं मानते, उन्हें हमारे शास्त्र[illegible] उन्हींके हितमें कहते हैं—

संदिग्धे परलोकेऽपि त्याज्यमेवाशुभं जनैः।
नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हतः॥

'परलोक है या नहीं—यह संदेहका विषय होने[illegible] भी अशुभ कर्मोंका त्याग ही करना चाहिये; क्योंकि य[illegible] परलोक न हो तो शुभ कर्म करनेवाले आस्तिक पुर[illegible] को किसी हानिकी कोई सम्भावना नहीं। किंतु यदि पर[illegible] हो, तो इस सम्भावनाकी ओर ध्यान न देनेवाले नास्ति[illegible]

राज्यमें इतनी कृपणता नहीं कि उसमें यह छोटा-सा पृथ्वीमण्डल ही एकमात्र लोक हो। हमारे यहाँ परमात्माको 'अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक' कहा गया है। परमात्मा स्वयं अनन्त हैं। उनकी 'अघटितघटनापटीयसी' मायाशक्तिद्वारा निर्मित सृष्टि भी अनन्त और अगणित होनी चाहिये। सारी सृष्टि कर्ममय है। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जीवोंके कर्मोंके अनुसार ही विभिन्न सृष्टियोंकी रचना करते हैं। इसीलिये विभिन्न लोकोंमें तारतम्य होना चाहिये। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। इसलिये जीवोंके कर्म भी त्रिगुणोंके न्यूनाधिक्यसे अनेक प्रकारके हो जाते हैं। ये प्रकार अनन्त हैं। कोई 'शुद्ध सत्त्व-प्रधान' पुण्यलोक हैं, कोई 'दिव्य भोगप्रचुर सुखमय लोक' हैं, तो कोई 'दुःखबहुल लोक' हैं। इसी सृष्टिमें, इसी अवनीतलपर हम स्थावरादिसे लेकर ज्ञानी या भगवद्भक्त अथवा जीवन्मुक्त तत्त्वदर्शी महात्मातक कर्ममूलक अनेक योनियाँ पाते हैं; तो फिर, लोकान्तरमें इस प्रकारके विभेद होनेमें बाधा ही क्या हो सकती है? इन्हें ही हमारे यहाँ ब्रह्मलोक, विष्णुलोक या वैकुण्ठ, शिवलोक, स्वर्गलोक, नरकलोक इत्यादि संज्ञाएँ दी गयी हैं। हमारे यहाँके त्रिकालदर्शी शास्त्रकारोंने तो स्वर्गलोक या नरकलोकसे इस मर्त्यलोकमें आनेवाले मनुष्योंके लक्षण भी बतला रक्खे हैं। स्वर्गसे लौटे हुए पुरुषोंके लक्षण निम्न श्लोकमें दिये गये हैं—

स्वर्गच्युतानामिह जीवलोके
चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे।
दानप्रसंगो मधुरा हि वाणी
देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च॥

'स्वर्गलोकसे इस मनुष्य-लोकमें आये हुए पुरुषोंमें चार लक्षण रहते हैं—(१) दानादिमें प्रवृत्ति, (२) मीठे वचन, (३) ईश्वरोपासना, (४) ब्राह्मणोंका भोजनादिद्वारा सत्कार।'

इसके विपरीत नरकादिसे लौटे हुए पामरजनोंके लक्षण निम्न श्लोकमें दिये हुए हैं—

कार्पण्यवृत्तिः स्वजनस्य निन्दा
दुःशीलता नीचजनेषु संगः।
अतीव रोषः कटुता च वाचि
नरस्य चिह्नं नरकागतस्य॥

'कृपणता, आत्मीय जनोंकी निन्दा, दुराचारमें अभिरुचि, नीचजनोंकी संगति, अत्यन्त क्रोध, कडुवे वचन—ये हैं नरकलोकसे आये हुओंके लक्षण।

उपर्युक्त लक्षणोंके द्वारा हम अपने स्वयंकी परीक्षा भलीभाँति कर सकते हैं कि हम किस कोटिके जीव हैं। ध्यान रहे, शास्त्र एक प्रकारका दर्पण है, जिसमें हम अपने जीवनका रूप देख सकते हैं और उसमें इष्ट दिशामें परिवर्तन करनेका मार्गदर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं। यह है—संक्षेपमें परलोक-विषयक विचार।

१२—उपसंहार—भारतीय ब्रह्मविद्याका सार-सर्वस्व

नरदेह अत्यन्त दुर्लभ है। यह तीन प्रकारकी गतियोंका द्वार है। एक तो 'देवादि पुण्ययोनि', दूसरी 'स्थावरादि अधम योनि' तथा तीसरी शास्त्रविहित कर्माचरण, भगवदुपासना तथा तत्त्वज्ञानद्वारा 'मोक्षप्राप्ति'। प्रथम द्वार पुनरावर्ती होनेके कारण बुधजनके द्वारा अनादरणीय है। दूसरा घोर पतनका द्योतक होनेके कारण सर्वथा त्याज्य ही है। तीसरा ही मनुष्यमात्रका लक्ष्य होना चाहिये। जो इस दुर्लभ नरदेहको प्राप्त करके आत्मोद्धारके लिये प्रयत्न नहीं करते, उन्हें श्रीमद्भागवतमें 'आत्महा'—'आत्मघाती' कहा गया है। सनत्सुजातीयमें इसे सबसे बड़ा पाप और इसे करनेवालेको 'चोर' और 'आत्मापहारी' कहा गया है—

योऽन्यथा संतमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा॥

ईशोपनिषद्में इन्हें 'आत्महनो जनाः' कहा गया है, इसीलिये भगवान् श्रीमद्भगवद्गीतामें अर्जुनको निमित्त बनाकर मनुष्यमात्रको आदेश देते हैं कि 'वह आत्मोद्धारके लिये प्रयत्न करे और अपने-आपको सब तरहकी अधोगतिसे बचावे।'—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
(गीता ६।५)

भगवान्ने स्वयं ही यह आश्वासन दे रक्खा है कि शुभ कर्म करनेवाला कभी अधोगतिको प्राप्त नहीं होता। 'हे पार्थ! आत्मोद्धारके लिये अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। प्रिय अर्जुन! उस पुरुषका न तो इस लोकमें

जो ब्राह्मणका सत्कार करनेवाला तथा दीन-दुखी और आतुर आदिको भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान एवं वस्त्र देनेवाला है; जो यज्ञमण्डप, धर्मशाला, पौंसला तथा पुष्करिणी बनवाता है; मन और इन्द्रियोंको वशमें करके शुद्धभावसे नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म करता है; आसन, शय्या, सवारी, घर, रत्न, धन, खेतीकी उपज तथा खेत आदि वस्तुओंका सदा ही शान्तचित्तसे दान करता है; ऐसा मनुष्य देवलोकमें जन्म लेता है। वहाँ दीर्घकालतक उत्तम भोगोंका उपभोग करते हुए नन्दन आदि वनोंमें प्रसन्नतापूर्वक विहार करता है। वहाँसे च्युत होनेपर वह मनुष्योंके सौभाग्यशाली कुलमें, जो धन-धान्यसे सम्पन्न होता है, जन्म लेता है। वह मानव समस्त मनोवाञ्छित गुणोंसे युक्त, प्रसन्न, प्रचुर भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न एवं धनवान् होता है। जो दानशील महाभाग प्राणी हैं, ब्रह्माजीने उन्हें सर्वप्रिय बतलाया है।

जो न दम्भी है न मानी है; जो देवता और अतिथियोंका पूजक, लोकहितैषी, सबको नमस्कार करनेवाला, मधुरभाषी, सब प्रकारकी चेष्टाओंसे दूसरोंका प्रिय करनेवाला, समस्त प्राणियोंको सदा प्रिय माननेवाला, द्वेषरहित, प्रसन्नमुख, कोमलस्वभाव, सबसे स्वागतपूर्वक स्नेहमय वचन बोलनेवाला, प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला, श्रेष्ठ पुरुषोंका विधिवत् सत्कारपूर्वक पूजन करनेवाला, मार्ग देने योग्य पु मार्ग देनेवाला, गुरुपूजक और अतिथिको अन्नका अ अर्पित करनेवाला है, ऐसा पुरुष स्वर्गमें जाता है।

जो सब प्राणियोंको दयापूर्ण दृष्टिसे देखता है; प्रति मैत्रीभाव रखता है; पिताके समान निर्वैर होत दयालु होनेके कारण प्राणियोंको न डराता है और न ही है; जिसके हाथ-पैर वशमें होते हैं; जो सम्पूर्ण ज विश्वासपात्र है; रस्सी, डंडा, ढेला अथवा अस्त्र-श किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाता; शुभ कर्म और सबपर दया रखता है—ऐसे शील और आचरण मनुष्य स्वर्गमें जाता है। वहाँ देवताओंकी भाँति वह भवनमें सानन्द निवास करता है। वह यदि पुण्य पश्चात् मर्त्यलोकमें आता है तो मनुष्योंमें क्लेशरहि निर्भय होता है। वह सुखसे जन्म लेता और अभ्युद होता है। वह सुखका भागी तथा उद्वेगशून्य होता है।

जो लोग वेदवेत्ता, सिद्ध तथा धर्मज्ञ ब्राह्मणोंसे प्र शुभाशुभ कर्म पूछते हैं और अशुभका त्याग करके कर्मका सेवन करते हैं, वे इस लोकमें सुखसे रहते अन्तमें स्वर्गगामी होते हैं। ऐसे लोग जब फिर मनुष्य-योनिमें आते हैं, तब सुखी तथा बुद्धिमान् होते

(ब्रह्मपुराणके आधा

प्रेमसुधाका भंडार खोल दो

प्रकृति जगत्‌के भोग सभी हैं अशुचि, अपूर्ण, अनित्य, असार।
दुःखयोनि—सब भाँति शान्ति-सुखहर, अघ-आकर, दोषागार॥
इनमें सुखकी आस्था-आकाङ्क्षा-आशा करना बेकार।
किंतु इन्हींके मोहजालमें फँसा कराह रहा संसार॥
जबतक नहीं हटेगा पूरा मोहजालका विष-विस्तार।
बढ़ती नित्य रहेगी ज्वाला, मचा रहेगा हाहाकार॥
प्रभुकी प्रेम-सुधा ही कर सकती, इस ज्वालासे उद्धार।
प्रेम-भास्करके उगते ही हो जाता तमका संहार॥
अतः खोल दो तुरत प्रेमकी सरस सुधाका उर-भण्डार।
पल-पल उसे बढ़ाओ—होगा दिव्य भागवत-सुख साकार॥

सम्मान्य काका कालेलकरजीका स्नेहपूर्ण पत्र

प्रिय सम्पादकजी 'कल्याण'।

परलोक और पुनर्जन्माङ्क निकालनेका आपने सोचा, जिसके लिये आपका अभिनन्दन करना चाहिये। लेकिन दो-ढाई सौ विषयोंकी सूची देखकर मैं तो घबड़ा गया।

मैं स्वयं पूर्वजन्म और पुनर्जन्म याने जन्मपरम्परा मानता हूँ। कर्म और कर्मफलके सिद्धान्तपर मेरी असीम श्रद्धा है। 'कर्मके सिद्धान्तको बनाकर भगवान् सो गये हैं' सो भी नहीं। इसलिये तमाम व्यक्तियाँ पूर्वकर्मानुसार कर्म तो करती ही हैं। उपरान्त अपने नव-संकल्पसे प्रेरित होकर भी कर्म करते हैं।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि जिस तरह स्वयं भगवान्‌का आदि और अन्त हो नहीं सकता, उसी तरह इस विशाल, सनातन सृष्टिका न सर्वप्रथम आदि हो सकता है, न उसका कभी आत्यन्तिक अभाव हो सकता है।

जन्मान्तरका ज्ञान सर्वज्ञ भगवान्‌को होना ही चाहिये; क्योंकि 'सर्वज्ञ'की व्याख्या ही ऐसी है। लेकिन एक भगवान्‌को छोड़कर दूसरा कोई भी ऋषि, मुनि, संत, महात्मा, योगी, नबी, पयगंबर या अवतारी पुरुष इस तरहके सर्वज्ञ अथवा त्रिकालज्ञ है, ऐसा मानना मेरे लिये कठिन है। हम सब और वे सब, गीताके अर्जुनके ही प्रतिनिधि हैं। ऐतिहासिक कृष्ण भी उसीमें आ गये।

आपने जो विषय-सूची दी है इसमेंसे बहुतसे विषयोंके बारेमें बचपनसे कमीबेश पढ़ता आया हूँ। बहुत-सी बातें उपयोगी कल्पनाएँ हैं। लेकिन आखरी हैं तो कल्पनाएँ ही। और पुराणोंमें इहलोक-परलोक, विष्णुलोक, गोलोक आदि जो अनेक प्रकारके लोक बताये हैं और उनके इतिहास, भूगोल दिये हैं, इनमेंसे अधिकतर तो केवल ढकोसले ही हैं।

सनातनी लोग जितने ग्रन्थोंको 'धर्मग्रन्थ' मानते हैं वे सब-के-सब अनुभवकी सच बातें लिखते हैं, ऐसा कोई मान नहीं सकता। बहुत-सी बातें गाँववालोंकी लोककथाओंसे अधिक विश्वसनीय तो हैं नहीं, किंतु आदरणीय भी नहीं हैं। अमुक स्थानपर मरनेसे अथवा अमुक जलाशयमें स्नान करनेसे अथवा फलानी मूर्तिका दर्शन करनेसे मोक्ष मिलता है, पुनर्जन्म नहीं होता। इत्यादि वर्णन कभी-कभी इतने सस्ते हैं कि पढ़कर चिढ़ आती है।

भोले सनातनी लोग ऐसी बातोंपर अविश्वास भी नहीं कर सकते, और विश्वास करके चलते भी नहीं। लोगोंके आचरणसे ही सिद्ध होता है कि उनके 'विश्वास' पर उनका सचमुच और दृढ़ विश्वास नहीं होता।

आप जो जानकारी इकट्ठा करेंगे और असंख्य मान्यताओंका समर्थन भी इकट्ठा करेंगे, इससे संशोधकोंकी सहूलियत होगी सही। किंतु मुझे डर है कि ज्यादातर कचरेसे भरे हुए समुद्रमेंसे आप करीब-करीब इतना ही बड़ा कचरेवाला समुद्र तैयार करेंगे, जिसमें संशोधनके लिये डुबकी लगाना भी आसान नहीं होगा।

मैं देखता हूँ कि ऐसा किये बिना आपके लिये चारा ही नहीं था, इसीलिये आपका अभिनन्दन करता हूँ। जो कुछ भी मसाला आप इकट्ठा करेंगे, उसमेंसे विश्वासपात्र बातें कौन-सी, संशयास्पद कौन-सी और विश्वासपात्र बिल्कुल नहीं, ऐसी कौन-सी इसका वर्गीकरण अगर आप करवा सकें तो धर्मकी और जनताकी सेवा होगी।

सनातन हिंदूधर्मका विरोध करके अपने-अपने धर्मका प्रचार करनेवाले मतलबी लोगोंके लिये भी आपका संग्रह बहुत मदद कर सकेगा। वह कह सकेंगे कि इतनी-इतनी बे-बुनियाद, बेवकूफीभरी और धर्म-विरोधी बातें भारतके करोड़ों सनातनियोंकी विश्वासपात्र बन बैठी हैं। जो हो आपका अभिनन्दन जरूर करता हूँ।

मेरा यह पत्र आपके विशेषाङ्कमें आप प्रकाशित करें तो मुझे एतराज नहीं है। मैं तो आपको धन्यवाद ही दूँगा। चंद पाठक शायद गालियाँ देंगे तो हर्जा नहीं। किसी भी कारण उन्होंने यह पत्र पढ़ा तो उसकी बातें और उसकी दृष्टि लोगोंके मनमें उगेगी सही।

आपने भी जन्मपरम्पराके सिद्धान्तको लेकर समाजमें कितनी ठगी चली है, इसका ब्यौरा भी तो माँगा ही है।

आपका—काका कालेलकर

उत्तरमें नम्र निवेदन

परम सम्मान्य आचार्य काका कालेलकर महोदयका

सम्पादकका नम्र निवेदन

भगवान्, धर्म, परलोक, पुनर्जन्म, कर्मफलभोग आदिपर उत्तरोत्तर विश्वास कम होता रहनेके कारण आज मानव-जीवनमें उच्छृङ्खलता, यथेच्छाचारिता, भोगपरायणता, सत्कर्मोंमें उपेक्षा, दुष्कर्मोंमें प्रीति आदि महान् दोष आ गये हैं और क्रमशः उनकी वृद्धि हो रही है। यही कारण है—जगत्‌में इतनी वैज्ञानिक उन्नति होनेपर भी दुःख-क्लेश, मानस-अशान्ति उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे हैं। इस पतनके प्रवाहको वस्तुतः रोकना तो भगवान्‌के ही हाथ है। उन्हींकी कृपासे जब मनुष्यकी बुद्धिका ठीक निर्णय होगा और जब वह असत्-भोगोंके भविष्य-भीषण किंतु आपातरमणीय क्षेत्रसे हटकर भगवान्‌की सेवाके पथपर आरूढ़ होगा, तभी वह धर्मक्षेत्रको अपना नित्य निवास-स्थान बना सकेगा। तथापि भगवान्‌के तथा शास्त्रोंके आदेशानुसार प्रयत्न करना आवश्यक है और धर्म तथा कर्तव्य भी है। इसी दृष्टिसे 'कल्याण'का यह 'परलोक और पुनर्जन्माङ्क' प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें आये हुए विषयोंका ठीक-ठीक अध्ययन किया जानेपर, परलोक तथा पुनर्जन्ममें एवं कर्मफलभोगके सिद्धान्तमें विश्वास बढ़ना अनिवार्य है और उस विश्वाससे पतनके प्रवाहमें किसी अंशमें कुछ रुकावट आना भी सम्भव है। यद्यपि पतनके प्रवाहका वेग इतना प्रबल और भयानक है कि छोटी-मोटी बाधासे उसका रुकना सम्भव नहीं है, तथापि यदि कुछ लोग भी इससे बचेंगे तो उनको तो लाभ होगा ही, फिर, उनके संसर्गसे दूसरोंको भी परम्परागत लाभ होना सम्भव है।

इस अङ्कमें ऐसे कई प्रसंग आये हैं, जिनपर आस्था-रहित बुद्धिवादी पुरुषोंको संदेह हो सकता है। यह भी सम्भव है, हमारे प्रमादसे उनमें कुछ बातें कल्पनाकी आ गयी भी हों। परंतु सभी बातें सबकी समझमें आ जायँ, यह सम्भव नहीं है; क्योंकि सभी विषयोंसे सब लोग समान

सुख-सामग्रियोंसे सम्पन्न, महान् रत्नोंसे विभूषित, हीरे-पन्ने-नीलम-माणिक्य-मणि आदिसे निर्मित, बहुतसे कमरों तथा प्रत्येक कमरेमें पलंग, शय्या, पंखे और आसनादिसे तथा सुविधानुसार खेलनेके स्थान, शयनगृह, आँगन और चौक आदिसे युक्त अत्यन्त सुन्दर तथा समृद्धियुक्त है। उसमें सभी ऋतुओंमें रहनेकी सुविधा है इत्यादि।' तथा इसी प्रकार पुराणों आदि ग्रन्थोंमें आये हुए सर्वत्रगामी विमानोंके अन्यान्य वर्णन मिलते हैं, साथ ही विविध प्रकारके विमानोंके तथा विमान-निर्माणकी प्रविधियोंके उल्लेख भी पाये जाते हैं, जिनको पहले लोग काल्पनिक बताते थे, पर अब जब कि विमान—राकेट चलने लगे, तब वह बात नहीं रही।

यही नहीं, प्राचीन ग्रन्थोंमें पृथ्वीके मनुष्योंके सदेह विभिन्न लोकोंमें जाने-आनेके तथा दशरथ, दुष्यन्त, अर्जुन आदिके स्वर्ग जाकर देवताओंकी सहायता करनेके प्रसङ्ग भी मिलते हैं, जिनको बुद्धिवादी कहलानेवाले लोग निरी कपोलकल्पना मानते थे, यद्यपि अब उनकी मान्यतामें कुछ परिवर्तन हो रहा है।

मान लीजिये, कभी कोई ऐसा समय आ जाय, जिसमें वर्तमान विज्ञान तथा विज्ञानवेत्ता सर्वथा न रहें, केवल ग्रन्थोंमें बेतारके तार, रेडियो, टेलीविजन आदिके साथ यह वर्णन रहे कि 'पृथ्वीसे लाखों मील दूर आकाशमें स्वचालित विमान उड़ते थे और वहाँसे वे चित्र तथा संवाद आदि प्रेषित करते थे और ऐसे बहुत लंबे-चौड़े-ऊँचे, सैकड़ों मन वजनदार, सब सुविधाओंसे युक्त विमानोंपर इस पृथ्वीके जीवित मनुष्य, प्रति घंटे बीस-पचीस हजार मीलकी रफ्तारसे उड़ते हुए पाँच-सात दिनोंमें ही पूर्वनिश्चित क्रमानुसार पृथ्वी तथा चन्द्रमाकी दसों-बीसों परिक्रमा करके, लाखों मीलोंकी यात्रा पूर्णकर निश्चित समयपर सकुशल पृथ्वीपर लौट आते थे; लाखों मील दूरसे चित्र तथा संवाद भेजा गे और उन लोकोंकी जानकारी प्राप्त करके वहाँ उतरते थे।'